तार का पता—"JAINJAGAT" Ajmer. Reg: No. N 352.

१६ नवम्बर ॐ सन् १९३३

वर्ष ९ अंक १

जैनसमाज का एकमात्र स्वतन्त्र पाक्षिकपत्र।

卐 जैन जगत् 卐

वार्षिक मूल्य ३) रुपया मात्र।

विद्यार्थियों व संस्थाओं से २॥) मात्र।

(प्रत्येक अंग्रेज़ी महीने की पहली और सोलहवीं तारीखको प्रकाशित होता है)

"पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनम् यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः"॥—श्रीहरिभद्रसूरि।

सम्पादक—सा०र० दरबारीलाल न्यायतीर्थ, जुबिलीबाग़ तारदेव, बम्बई। प्रकाशक—फ़तहचंद सेठी, अजमेर।

प्राप्ति स्वीकार।

बम्बईकी एक भद्र जैनमहिला श्रीमती मीणाबाई नरोत्तमदासने कुछ समय तक श्रीमान पं० दरबारीलालजी (सम्पादक जैनजगत) के पास 'तर्क संग्रह' का अध्ययन कर उन्हें गुरुदक्षिणामें ३०) मूल्यकी खादीकी हुंडियाँ भेटकी थीं, जिन्हें सम्पादकजीने स्वयं ग्रहण न कर जैनजगतको अर्पण करदी। धन्यवाद।

श्रीमान नाथूलालजी काला छिंदवाड़ाने अपनी धर्मपत्नीकी स्मृतिमें ४) जैनजगतको प्रदान किये हैं। श्रीमतीजीके विशेष परिचयके लिये इस अंकके साथ कं.डपत्र वितरित किया जाता है। —प्रकाशक।

शीघ्रता करें।

आठवें वर्षके थोड़ेसे अंक बचे हैं। जिन ग्राहकोंकी फाइलमें किसी अंककी कमी हो वे शीघ्र दो आना प्रति अंकके हिसाबसे डाकके टिकिट भेजकर आवश्यक अंक मँगवालें।

पिछले वर्षोंके भी कुछ अंक मौजूद हैं। वे भी इसी मूल्यपर प्राप्त किये जासकते हैं।—प्रकाशक।

ग्राहकोंसे निवेदन।

ग्राहकोंसे नम्रनिवेदन है कि वे कृपया पत्रका वार्षिक मूल्य तीन रुपया मनीआर्डर द्वारा शीघ्र भिजवादें। वी०पी० द्वारा मूल्य वसूल करनेमें प्रत्येक ग्राहकको चार आनेकी वृथा हानि होती है; साथही हमारे लिये भी अनावश्यक कार्य बढ़ जाता है। जिन ग्राहकोंके लिये मनीआर्डर भेजना सम्भव न हो अथवा उन्हें विशेष असुविधा व कष्ट होता हो, वे कृपया सूचित करदें. उन्हें उनकी आज्ञानुसार वी०पी० भिजवादी जावेगी।

हम आशा करते हैं कि सभी ग्राहक महोदय आगे भी जैनजगत्के प्रति इसी प्रकार अनुराग रखेंगे तथा यथाशक्ति अपने मित्र-बांधवोंमें इसका प्रचार बढ़ावेंगे। यदि कोई महानुभाव किसी कारणवश आगेके लिये ग्राहक न रहना चाहें तो वे कृपया निःसंकोच इसकी शीघ्र सूचना देदें अथवा यह अंक दो पैसेका टिकिट लगाकर हमें वापिस भिजवादें। हम किसी ग्राहकको उसकी इच्छाके विपरीत वी०पी० नहीं भेजना चाहते; क्योंकि वी०पी० वापिस लौटकर आनेमें पत्रको प्रत्येक वी०पी०पर सवातीन आनेकी क्षति उठानी पड़ती है। आशा है ग्राहकगण हमारे इस नम्रनिवेदनपर अवश्य ध्यान देंगे। —प्रकाशक।

स्थानीय चर्चा।

चातुर्मास समाप्त होकर दो हफ्ते निकल चुके परन्तु चन्द्रसागरजी आदिने परम्परा निबाहनेके लिये भी अभी तक अजमेरसे बाहर पैर नहीं रक्खा। शायद भक्तलोग धार्मिक उत्सवकी दुहाई देंगे, परन्तु प्रथम तो यहाँ उत्सव चातुर्मासकी समाप्तिके तीनरोज़ बाद प्रारम्भ हुवा। दूसरे ऐसी परिस्थिति तो व्यावरमें भी थी; किन्तु फिरभी शांतिसागरजी आदिने मगसर बद १ को व्यावरसे विहार किया था। खैर। मिती कार्तिक सुदी ११ को केशलौंच उत्सव हुवा। इसके लिये चार रोज़ पहिले छपी हुई पत्रियाँ वितरण करदी गई थीं। इसप्रकार पूर्वनिश्चय कर केशलौंच करना धर्मविरुद्ध है, यह शान्तिसागरजी आदि भी स्वीकार कर चुके हैं। यद्यपि व्यावरस्थित साधुओंके केशलौंचका लिये अजमेरमें एक रोज़ पहिले ऐलान कर दिया जाता था, परन्तु फिरभी अखबारोंमें तो भक्तलोग यही प्रकाशित करते रहे हैं कि केशलौंचके लिये पहिले कोई सूचना न होनेपर भी [illegible] समुदाय एकत्रित होगया आदि। गत महावीर जयंतिके अवसर पर श्रीमान सेठ टीकमचन्दजी साहबकी [illegible] जैसवाल भाइयोंको दबाव दिया गया था कि वे श्वेताम्बरोंको उत्सवमे आमंत्रित न करें, परन्तु इस अवसर पर सेठ साहिबने समस्त जैनोंकोही नहीं किन्तु अजैनोंको भी, यहाँ तक कि शूद्र व म्लेच्छ कहे जानेवाले व्यक्तियोंको भी, सादर आमन्त्रित किया।

श्रीमान् सेठ टीकमचन्दजीकी नसियाँ में मिती मगसर बद ३ से मगसर सुद १० तक उत्सवका आयोजन किया गया है। ता० ५ नवम्बरको प्रारम्भिक रथयात्रा हुई। चन्द्रसागरजी आदिभी साथमें थे। राहमें रथके ठहरनेपर आप कुर्सियों पर बैठते थे। इसके पहिले गोधोंके धड़े, छोटे धड़े नये धड़ेकी तरफ़से रथयात्रा, कलशाभिषेक आदि उत्सव हुए थे, परन्तु उनमें ये लोग शरीक नहीं हुए। तेरहपंथी धड़ेके प्रति विशेष राग व अन्य धड़ोंके प्रति विद्वेष का कोई रहस्यमय कारण ही होगा। ता० ८ नवम्बरको चन्द्रसागरजीके आदेशानुसार श्रीमान् सेठ टीकमचन्दजी ने अपनी नसियों में मानस्तम्भकी नींवका मुहूर्त किया। पूजाकी सामग्रीमें नागरवेलके गीले पान जटादार नारियल आदि भी थे तथा दीपक भी जलाया गया था। मुनिमण्डली व सेठजी पर सचित्त पुष्पोंकी वर्षा की गई थी। उपस्थितव्यक्तियोंको केशरका तिलक किया गया तथा चन्द्रसागरजीके चरणोंमें केशर लगाई गई। देव व गुरुका स्थान बराबर ही है; सम्भव है कुछ दिनके बाद देव (जिनप्रतिमा) के चरणोंमें भी केशर लगाई जाने लगे।

नसियाँकी खूब सजावट कीगई है। बिजलीके हज़ार रङ्गबिरंगे बल्ब लगाये गये हैं। स्वर्गीय श्रीमान सेठ मूलचन्दजी मन्दिरमें शुद्ध तैलका दीपक जलाते थे तथा सूक्ष्म जन्तुओंकी रक्षाके लिये चिराग़के चारों ओर कपड़ेका खोल लगाते थे। ऐसी कपड़ेसे मढ़ी हुई कंडीलें वे बाजारमें दूकानदारोंको फ्री वितरण करते थे। उन्हीं स्वर्गीय सेठ मूलचन्दजीके पौत्र श्रीमान् सेठ टीकमचन्दजीमें इतना परिवर्तन लोगोंको आश्चर्यजनक प्रतीत होरहा है।

इसी अवसरपर सेठजीकी कतिपय संस्थाओंके उत्सव होंगे। श्रीमान् सेठ टीकमचन्दजीके पास श्री जैन औषधालय, श्री दिगम्बर जैन व्यापारिक पाठशाला व श्री जैन विद्यालय भंडार आदिका हज़ारों रुपया जमा है, जिसका वे कई वर्षोंसे व्याज तक नहीं देरहे हैं। अजमेर जैनसमाज के पारस्परिक वैमनस्यका मुख्यकारण सेठ साहिबकी उपरोक्त हठधर्मी ही है। सुना है कि सेठ साहिब निकट भविष्यमें पंचकल्याणक उत्सव या अन्य कोई उत्सव करानेवाले हैं। इसकार्यमें आपको पूर्ण सफलता तभी प्राप्त हो सकती है जब आप अपने घरकी कलहको शान्तकर सबका सहयोग प्राप्त करें। इन संस्थाओंका रुपया आपको एक न एक दिन लौटाना ही पड़ेगा। अतः यही अच्छा है कि यह झगड़ा शीघ्रातिशीघ्र शान्त करदिया जाय जिससे समस्त अजमेर जैनसमाजमें परस्पर प्रेमका संचार हो तथा सब काम पूर्ववत परस्पर सहयोगपूर्वक होने लगें।

चन्द्रसागरजीने मुनिवेष तो धारण कर लिया है परन्तु उनमें पंचसत्ता की हविस अभी तक ज्यों की त्यों मौजूद है। मिती मगसर सुद १ को तेरहपंथी धड़े की पंचायत अपने सामाजिक रीतिरिवाज़ों में फेरफार करने यथा आगरणी के अवसर पर पापड़ियों के बजाय पैसा बाँटने, विवाह आदि में अंगरेज़ी बैंड बुलवाने, बिनौरोंमें बाज़ार की मिठाई मँगाकर खिलाने आदि के सम्बन्ध में विचार करने के लिये एकत्रित हुई थी। आप मुनिपदारूढ़ होते हुए भी उक्त पंचायत में मौजूद थे और एक सरपंच की तरह कार्यवाही में भाग ले रहे थे। पंच लोग चाहते थे कि क्रम से एक एक प्रस्ताव पढ़ा जाए और उस पर

[शेष पृष्ठ २८ कॉलम २ में देखिये]

लिये भट्टियाँ लगानी पड़ती हैं, लकड़ीके लिये वृक्ष काटे जाते हैं। प्रारम्भके ये सबकाम संहारात्मक ही मालूम होते हैं—इन कार्योंमें विशालभवनके दर्शन नहीं होते। इसीप्रकार जो कुछ अभी तक लिखा गया है वह सब भवनके लिये जमीन खोदने और भट्टी लगानेके समान है। भविष्यके लिये जो मेरा स्वप्न है, उसकी पूर्ति इस जीवनमें हो सकेगी, इसकी तो मुझे आशा नहीं है; परन्तु यह सब तैयारी है उसीके लिये। अगर यह लेखमाला पूरी होसकेगी तो इस बातका कुछ आभास मिल सकेगा। यह लेख-माला भी मेरे जीवनके उद्देश्यकी भूमिका मात्र है।

एक तो जैनजगतके प्रारम्भमें ही इसके विरोधियोंकी संख्या काफी रही है। इधर लेखमालाने विरोधियोंकी संख्यामें और भी तरक्की की है। परन्तु नये विरोधियोंके समान नये सहायक मित्रोंकी भी वृद्धि हुई है। विरोध एक प्रकारसे सहायक ही हुआ है। अग्निके ऊपर ईंधन डालनेसे थोड़ी देरको अग्नि दबी सी मालूम होने लगती है; बादमें धुँआ घुटता है और देखते ही देखते अग्नि उस ईंधनको अग्निमय बना लेती है। जैनजगतने भी इसी शक्तिका परिचय दिया है। अनेक विरोधीमित्रोंकी ज्योतियाँ इसी ज्योतिमें मिलकर एकाकार हो गई हैं। कुछ लोकलाजसे ही अलग हैं। परन्तु मेरी आशा अनन्त है। कभी न कभी मेरे विरोधी मित्र यहाँ आयेंगे, सौबार आयेंगे।

विरोधी मित्रोंके समाधानके लियेभी एक लेख-माला चालू है। उसमें उनके आक्षेपोंका समाधान किया गया है और आगे भी इसी तरह किया जायगा। दुर्भाग्यसे विरोधी मित्रोंमें ऐसेभी मित्र हैं जो युक्तियोंसे विरोध कर नहीं सकते इसलिये बहुत ही अधिक बेजिम्मेदारीसे कुछ औंधीसीधी सुनाकर किसी तरह कलेजा ठण्डा करलेते हैं और पत्रों के सञ्चालक अपने उत्तरदायित्वको भूलकर ऐसे लेखोंको प्रकाशित कर दिया करते हैं। वे यह नहीं सोच सकते कि अगर किसी मनुष्यके विचारोंसे हम सहमत नहीं हैं तो उसके विचारोंका सयुक्तिक खण्डन करना ही उसके विरोधका उचित उपाय है। गम्भीर विचारके क्षेत्रमें गालियों और निन्दा वाक्यों के प्रयोगसे या मिथ्या आक्षेप करनेसे कुछ लाभ तो होना नहीं है, सिर्फ समाजमें असभ्य या निम्नश्रेणीके मनुष्योंकी संख्यावृद्धि ही सिद्ध होती है। उदाहरणार्थ अभी जैनमित्रमें "दीपावलि संवाद" नामका एक लेख प्रकट हुआ था। उस सम्वादका एक अंश निम्नलिखित है—

"मू०—सुना है जैनजगतके सम्पादक पंडित दरबारीलालजी महावीर प्रभुको कलंकित करनेकी चेष्टामें आपादमस्तक तल्लीन हैं, ब्रह्मचर्यका रूप उन्होंने अजीव सिद्ध किया है, सर्वज्ञ संस्थिति मानने में वे सहमत नहीं हैं।

सु०—नहीं, मित्र! नहीं, कुछ मनचले लोगोंका ही यह मन्तव्य है। भगवान वीरने कभी अपनी देशना में उपरोक्त बातें नहीं बतलाई। सम्पादक जैनजगत धर्म कर्म को खाकमें मिलाने की धुनमें हैं, अतएव ऐसे धर्मविरोधी जीवोंका ही यह कहना है। जो धर्म कर्मको मानते हैं, वे ऐसा करनेको तैयार नहीं।

मू०—ये मान्यताएँ नहीं होने पर उस पत्रका नाम जैनजगत् क्यों?

सु०—"जैनोंकी कमजोरी, वैमनस्यकी बढ़ती हुई आग ऐसा करनेमें सहायक हो जाती है।"

मतलब यह कि जैनोंमें अगर कमजोरी न होती तो जैनजगत पत्र जैन समाजमें न रहने पाता, और अगर वह रहनेकी चेष्टा करता तो उसके सञ्चालकों की किसी तरह इतिश्री होजाती! बलवान जैन-समाज नादिरशाहसे भी क्रूर और पोपडमको भी लजाने वाला होता! खैर, विचारके क्षेत्रमें सिर्फ इतना ही कहा जासकता है कि 'आपके विचार भूल से भरे हुए हैं,' परन्तु किसीकी नियतपर आक्रमण करना सभ्यताके बाहर है, और निरर्थक तो है ही। हाँ, किसीके विचारोंका अगर अच्छी तरह खण्डन कर दिया जाय, फिर भी वह किसी स्वार्थवश दुराग्रह न छोड़े तथा असभ्यतापूर्वक आक्रमण करे

तो उसमें कुछ अधिक भी कहा जासकता है। परन्तु जो निःस्वार्थभावसे स्वतन्त्र विचार करता हो तथा जिसके वक्तव्यका खण्डन भी न हुआ हो, न जो असभ्यतापूर्वक आक्रमण करता हो, उसपर इस प्रकारके आक्षेप करना किसी भी लेखकको या पत्र को कलंकित करनेके लिये काफी है। खैर, यह तो एक नमूना है। जैनपत्रोंमें ऐसे नमूनोंका टोटा नहीं है। अधिकांश जैनपत्रोंको देखकर यह कहना कठिन है कि ये किसी सभ्य या विचारक समाजके पत्र हैं। जिसके साथ मतभेद हुआ कि वह नास्तीकोंसे भी क्रूर और हर तरह बदमाश, धोखेबाज, धर्मकर्म-नाशक और बेईमान हो जाता है! और पत्रसञ्चालकोंकी दृष्टिमें मतभेद वाले व्यक्तिके ऊपर मनचाहे आक्षेप अंकित मारे जाते हैं। इस क्षुद्रतापूर्ण वातावरणसे जैनसमाज अपने उदाहरणसे कहाँ तक बचा रह सकेगा, यह तो भविष्यकी गोदमें है, परंतु जैनसमाजमें इतनी शक्ति अवश्य है कि वह बिना विचलित हुए ऐसे आक्रमण सहन कर सके।

दूसरी तरहके विरोधी मित्र ऐसे हैं जो अत्यन्त भद्र हैं। खेद है कि इस श्रेणीके मित्रोंको मेरी विचारधारासे बहुत दुःख हुआ है। ब्र० शीतलप्रसादजी इसी श्रेणीमें हैं। आप विधवाविवाह आदिके समर्थनके लिये परीक्षाप्रधानी और जैन सम्प्रदाय तथा खासकर दिगम्बर सम्प्रदायके गीत गानेके लिये आज्ञाप्रधानी हैं। खैर, यह तो अपनी अपनी रुचि है। सिर्फ थोड़ासा यही आश्चर्य होता है कि जिस व्यक्तिको युक्तिसे चर्चा करना नहीं है, युक्तिको मानना नहीं है, वह ऐसे आदमीके साथ क्या समझकर चर्चा करता है जो शास्त्रोंपर विश्वास न रखकर निष्पक्ष चर्चा करना चाहता है!

आप कहते हैं कि 'कुंदकुंद, समन्तभद्र, पूज्यपाद, हरिभद्र, हेमचन्द्र आदि आचार्योंने जो ग्रन्थ लिखे वे सब महावीरस्वामीका उपदेश मानकर लिखे, अपनी कल्पना नहीं की।' परन्तु यह बात अगर ठीक मानी जाय तो ये आचार्य दो सम्प्रदायमें क्यों बटगये? और आपसमें एक दूसरेके विरुद्ध क्यों लिखने लगे? महावीरका उपदेश लिख करके भी स्त्रीमुक्ति आदि प्रश्नोंपर ये भ्रममें क्यों पड़गये? इन समस्याओंमें कोई एक पक्ष अवश्य मिथ्यावादी है जब कि वह भगवान महावीरका उपदेश मानकर ही अपनी बात कहता है! इसलिये महावीरका उपदेश मानकर लिखनेसे ही महावीरका उपदेश नहीं हो जाता। यों तो मैं भी महावीरका उपदेश मानकरके ही लिख रहा हूँ, फिर भी आप क्यों नहीं मानते? न्याय तो यह है कि महावीरके उपदेशमें लिखी गई बातकी परीक्षा करली जाय। जो परीक्षाप्रधानी नहीं बनना चाहता, वह आज्ञाप्रधानतामें भले ही अपने आपमें मग्न रहे, परन्तु विचारक जगतके सामने उसे यह कहने का जरा भी अधिकार नहीं है कि अमुक मत या पक्ष ठीक है और अमुक ठीक नहीं है।

ब्रह्मचारीजी मेरी बातोंको संभवतः इसलिये नहीं मानना चाहते कि मैं पूर्वाचार्योंकी अपेक्षा विशेष तार्किक नहीं हूं। इस प्रश्नका उत्तर मैं कईबार देचुका हूँ कि कम योग्यतासे भी अच्छे बुरेकी जाँच की जासकती है। अन्यथा कोई मनुष्य किसी सम्प्रदायको तबतक मान्य नहीं करसकता जबतक कि वह अन्य सम्प्रदायके प्रवर्तकोंसे भी अधिक बुद्धिमान न होजावे।

ब्रह्मचारीजीको यहभी आपत्ति है कि "मेरा कहना महावीरका कहना है, यह कैसे समझा जावे।" इसका सीधा उत्तर यह है कि मेरा कहना सत्य है, इसलिये महावीरके कथनानुसार है। जो सत्य है उसे महावीरके वचनानुकूल कहने में कोई आपत्ति नहीं है। मेरा वक्तव्य अगर युक्तिसिद्ध है तो मुझे महावीरके अनुसार कहनेमें क्या आपत्ति होसकती है? दूसरी बात यह है कि मुझे सत्यकी पर्वाह है, व्यक्तिकी पर्वाह नहीं। व्यक्तिके अभावमें सत्य कलंकित नहीं होता, किन्तु सत्यके अभावमें व्यक्ति कलंकित होता है।

श्रीमान सेठ ताराचन्द जीने एकबार लिखा था कि 'पंडितजीने (मैंने) युक्ति और आगमके अनुसार लिखा है।' इसपर ब्रह्मचारीजीने पूछा कि बतलाइये किस आगमके अनुसार लिखा है? तब दूसरे लेखमें सेठजीने कहा कि—आप युक्तिके आधारपर तो मानते ही हैं; रहा शास्त्र, सो शास्त्रका जो स्थान है, उसके अनुसार उससे समर्थनभी कराया है। ब्रह्मचारीजी ने आगमके विषयमें ही प्रश्न किया इससे यह सिद्ध था कि युक्त्याधारता आप स्वीकार करते हैं, अन्यथा आप आगमानुसारताके समान युक्त्याधारताका भी प्रश्न करते। परन्तु आप कहते हैं कि 'क्या मैंने कभी कहा है कि मैं पंडितजीकी युक्तियोंको स्वीकार करता हूँ? यदि ऐसा मानलेता तो उनकी बात सत्य मानने में मुझे उज्रही क्या होसकता था?' यहाँ ब्रह्मचारी जी इस बातको भूलजाते हैं कि किसी व्यक्तिने युक्ति से लिखा है, यह कहना एक बात है, और उसकी युक्तियोंसे सहमत होजाना दूसरी। अगर मैंने युक्ति के आधारसे नहीं लिखा और आगमके आधारसे नहीं लिखा तो क्या आप बतायेंगे कि किस आधार से लिखा है? अथवा आप मेरे लिखनेको पागलका प्रलाप समझते हैं? खैर, 'युक्तियां माननेपर आपको उज्र नहीं होसकता' यह कथन आपके ही वक्तव्यसे खण्डित होजाता है। कुछ पंक्तियोंके बाद ही आपने लिखा है कि 'युक्तिवादमें बड़ी ताकत है, युक्तिवाद सत्यको असत्य और असत्यको सत्य सिद्ध करसकता है...।' इसप्रकार युक्तिवादके विरोध में इतना बड़ा उज्र होनेपर भी पूछते हैं कि युक्ति को मान लेनेपर मुझे क्या उज्र होसकता है! अव्यवस्थित मनोवृत्तिका यह अच्छा नमूना है।

ब्रह्मचारीजीकी आज्ञा है कि मैं एकही लेखमें सब बातें कहजाऊँ। एक बार ब्रह्मचारीजीके इस प्रकारके प्रश्नोंका मैंने संक्षेपमें उत्तर दिया भी था। परन्तु न तो संक्षेपमें लिखनेसे आप समझते हैं, न विस्तारसे समझते हैं, न युक्तिसे समझते हैं। इस प्रकार न समझनेकी कलामें आप इतने अधिक प्रवीण हैं कि मैं किसीभी प्रकारसे आपको समझाऊँगा, फिरभी आपकी कला बराबर अपना काम करेगी। इस प्रकारके दूसरी श्रेणीके विरोधी मित्र हैं।

एक तीसरी श्रेणीके विरोधी मित्र हैं जो युक्तिवाद का विरोध तो नहीं करते, न श्रद्धाकी इतनी दुहाई देते हैं, परन्तु असली बातोंको उड़ाकर युक्तिवादी कहलानेकी कोशिश करते हैं। आगे पीछेकी बातें छुपाजाते हैं या उनपर ध्यान नहीं देते। इसके अतिरिक्त चौथी श्रेणीके विरोधी मित्र हैं जो युक्तिसे विचार करते हैं। पिछली दो श्रेणियोंके मित्रोंका समाधान मैं "विरोधी मित्रोंसे" शीर्षक लेखमालामें करता हूँ और आगेभी करूँगा। अनेक मित्र मिश्रित श्रेणियोंके भी हैं।

इन सब मित्रोंसे तथा अन्य बन्धुओंसे मैं कहदेना चाहता हूँ कि साम्प्रदायिक पक्षपात भी एक प्रकारका मद है। जैसे जातिका मद, कुलका मद और विद्या आदिका मद होता है, उसी प्रकारका यह सम्प्रदायका मद है। दूसरोंको नीचा देखना और असत्य कहना और अपनेको उच्च और सत्य समझनाभी एक अहंकार ही है। हां, निष्पक्ष परीक्षा से अगर सत्य—असत्यका निर्णय किया जाय तो बात दूसरी है। परन्तु जब हम युक्तिवादकी अवहेलना करने लगते हैं, युक्तियोंको अपने विश्वासका गुलाम बनाना चाहते हैं, किसी शास्त्रको इसीलिये मानने लगते हैं कि वे हमारे हैं, और दूसरे शास्त्रोंकी इसीलिये अवहेलना करते हैं कि वे हमारे नहीं हैं, उस समय हम सत्यकी हत्या करते हैं, उसका अपमान करते हैं। यदि हमें अपनी अमुक मान्यता या अमुक सम्प्रदायसे प्रेम है तो दुनियाँके अन्य सभी लोगोंको भी अपनी मान्यता और अपने सम्प्रदाय से ऐसाही प्रेम होसकता है। ऐसी हालतमें तर्कसे विचार न करें तो हमें किसी दूसरेको असत्य कहने का क्या हक़ है? यदि हमें सचमुच धर्मसे प्रेम है, सत्यकी भक्ति है तो निष्पक्षतासे काम लेनाही चाहिये। इस धार्मिक कट्टरताने मनुष्य जातिका इतना अधिक

नाश किया है जिससे बढ़कर कोई दूसरा नहीं करसका। मनुष्य जातिको छिन्न भिन्न करनेवाली, मनुष्यको अनेक टुकड़ोंमें विभक्त करके शताब्दियों तक खूनकी नदियाँ बहानेवाली, प्रेम और सहयोगके तत्त्वपर पानी फेरनेवाली, घृणाका पाठ पढ़ानेवाली, यह धार्मिक कट्टरता है जैनधर्मके प्राणस्वरूप स्याद्वादका यह हर तरह घात करनेवाली है। क्या हम सत्यका विरोध करके जनताकी सेवा और अपना कल्याण करसकते हैं? क्या सत्यके विरुद्ध जाकर कोई धर्म, धर्म कहला सकता है? क्या तर्ककी अवहेलना करने वाला कोई धर्म इस वैज्ञानिक युगमें टिकसकता है? दूसरोंकी आलोचना करते समय हम जिन बातोंकी दुहाई देते हैं, क्या अपनी आलोचनाके लिये उनकी दुहाई न देना चाहिये? क्या यह संकुचितता और यह [illegible] जैनधर्मके नामको लजानेवाला नहीं है? क्या [illegible] न द्वेषः कपिलादिषु, [illegible] आदि गीत सिर्फ भाटवृत्तिसे ही गाये जाते हैं? इनके साथ हमारे जीवनका कुछ सम्बन्ध नहीं है? मेरे मित्र इन सब प्रश्नोंका उत्तर एकान्तमें अपने हृदयसे मांगें निष्पक्षतासे विचार करें कि सत्य क्या है? कल्याणकर क्या है? अगर आत्मकल्याण करना है तो अहंकार और पक्षपातको छोड़कर सत्यके आगे विनयपूर्वक सिर झुकावें।

मैं समाजसे और खासकर शिक्षासंस्थाओंके संचालकोंसे कहना चाहता हूँ कि आप लोग जैन धर्मको सत्य समझते हैं या नहीं? यदि समझते हैं तो उसकी परीक्षासे क्यों डरते हैं? यदि सत्य नहीं समझते तो असत्यके लिये लाखों रुपयोंकी बरबादी क्यों करते हैं? सांचको आँच नहीं, यह कहावत कमसे कम विचारोंके विषयमें बिल्कुल सत्य है। इसलिये विद्वानवर्गको विचारस्वातन्त्र्य प्रदान कीजिये। जो विद्वान जैनकुलमें पैदा हुआ है, जैनसंस्थाओंमें जिसने शिक्षण पाया है, जैन वातावरणमें रहता है और वर्षोंसे जैनशास्त्रोंका शिक्षण देरहा है, और जिसकी आजीविका जैन समाजके हाथमें है, क्या वह अपने विचारोंको अपने सम्प्रदायके विरुद्ध प्रकट करसकता है? यदि वह करता है या करना चाहता है तो सोचिये कि सत्यकी भक्तिके सिवाय इसका दूसरा कारण क्या होसकता है? आप लोगोंको अपना सम्प्रदाय जितना प्यारा है, उससे अधिक प्यारा उन्हें है। तब उनके विचारोंपर अंकुश न लगाकर उन्हें सत्यकी परीक्षा करने दीजिये और उसमें स्वतंत्र सम्मति पूछिये। उनको यह अभय वचन दे दीजिये कि आपके विचारोंसे आपकी आजीविकाको धक्का नहीं लगेगा। यदि आप इतना अभय वचन नहीं देना चाहते तो इसका सीधा अर्थ यही है कि आप अपने धर्मको बिलकुल मिथ्या और कमज़ोर समझते हैं, यहाँतक कि आप अपने आदमियोंसे भी उसकी परीक्षा नहीं कराना चाहते। डाक्टरसे चिकित्सा कराना और उससे यह कहना कि यदि मेरी इच्छाके विरुद्ध, अप्रिय औषधि दी तो हम तुम्हें निकाल देंगे, यह जितना आत्मघातक है उतनाही आत्मघातक विद्वानोंको अंकुशमें रखना है। इन्दौर, सहारनपुर आदिके श्रीमानोंको तथा अन्य स्थानके कार्यकर्त्ताओंको यह स्पष्ट घोषणा करदेना चाहिये और उसे व्यवहारमें चरितार्थ करना चाहिये जिससे विद्वान लोगोंकी विचारशक्ति बन्ध्या या विधवाकी तरह जीवन व्यतीत न करे, उससे सद्विचाररूपी पुत्र उत्पन्न हो। जबतक जनता इस प्रकार का अभय वचन नहीं देती, तबतक उसे यह कहने का कोई हक नहीं है कि हमारा धर्म सत्य है और हम सत्यके पुजारी हैं। योंतो भीलिनी भीलको राजा कहती है, परन्तु इसीलिये वह राजा नहीं कहलाता। अपने घरमें अपने धर्मको जो चाहे कहो परन्तु जो लोग अपनेही आदमियोंको निष्पक्ष परीक्षाका अवसर नहीं देना चाहते, उनके वचनोंका कौड़ी भरभी मूल्य नहीं है।

खैर, जो लोग धर्मके नामपर अहंकारके पुजारी हैं वे जो चाहें सो करें, उन्हें चेतावनी देते

रहना और सन्मार्ग दिखलाते रहना जैनजगत अपना कर्तव्य समझता है। परन्तु जो लोग सत्यके पुजारी हैं और वास्तवमें अपना कल्याण करना चाहते हैं, उनको जैनजगत पूरे सहयोगीका काम देगा, फिर भले ही वे किसीभी जाति या किसीभी सम्प्रदायमें पैदा हुए हों। जैनजगत इसी दिशामें काम कर रहा है और भविष्यमें भी करेगा।

जैनजगत नये वर्षमें क्या नयी सामग्री देगा, यह कहना कठिन है। लेखमाला आदिका आभास तो दिया ही जा चुका है। परन्तु, एक बात खेदके साथ सूचित करना पड़ती है कि पिछले छः मास मासमे श्रीमान पं० नाथूरामजी प्रेमी सख्त बीमार हैं। गत वर्ष मेरे अनुरोधसे "साहित्य और इतिहास" शीर्षकसे कुछ न कुछ बहुमूल्य लेख लिखाही करते थे। आप की सख्त बीमारीसे यह शीर्षक बन्द ही पड़ा है। हम आशा करते हैं कि दो चार महीनेमें आपकी तबीयत ज्योंकी त्यों हो जायगी और आपकी लेखनी का लाभ पाठकोंको मिलेगा।

और सब परिस्थितियाँ ज्योंकी त्यों हैं। मेरी पत्नीकी बीमारी भी ज्योंकी त्यों है। दो तीन मास बाद जब बीमारीका भयंकर दौरा होता है, तब प्रकाश डालनेके लिये मेरे जीवनकी मशीन भी रुकसी जाती है, और रोगीको सम्हालनेमें मेरी सारी शक्ति लग जाती है। इससे जैनजगतके कार्यमें भी अड़चन उपस्थित हो जाती है। इस विषयमें प्रकाशकजी भी कम सौभाग्यशाली नहीं हैं। वे भी सेवाधर्मका व्यवहार पाठ पढ़ा ही करते हैं। इसलिये जैनजगत कुछ पिछड़ जाता है। परन्तु हमें पाठकोंकी उदारता पर पूर्ण विश्वास है। इसके लिये बार बार क्षमायाचना करना निरर्थकसा ही मालूम होता है।

बहुत दिनोंसे मुझे इस बात का अनुभव हो रहा है कि जैन जगत में जो गम्भीर विचार प्रकट होते हैं उनके प्रचार के लिये सिर्फ लिखना ही पर्याप्त नहीं है। बहुत से सज्जन ऐसे हैं जिन्हें अनेक विषयों में शंकाएँ रहजाती हैं परन्तु लिखनेके आलस्यके कारण या लेखनपटु न होनेसे, अथवा विरोधी मित्रोंमें अपनी गिनतीकरानेकी इच्छा न होनेसे वे नहीं लिखते। कुछ तक जैनजगत् पहुँचताभी नहीं। और कई लोग पढ़नेकी अपेक्षा सुननेके अभ्यासी होते हैं। इन सबके सुभीतेके लिये भ्रमण करना आवश्यक है। परन्तु एकतो मैं नौकरीपेशा आदमी, दूसरे पत्नी बीमार, तीसरे आर्थिक प्रबन्धकी चिन्ता; इससे मेरा यह विचार मनका मनमें ही रहजाता है और बहुतसे मित्रोंके अनुरोधको टालदेना पड़ता है। परन्तु इस वर्ष मेरा विचार भ्रमण करनेका है। गर्मीकी छुट्टी ही मेरे लिये अवकाशका समय है। यद्यपि इसऋतु में सफर करना बहुत कष्टप्रद है परन्तु उपायान्तर न होनेसे मुझे यही समय चुनना पड़ता है। सफर खर्च के लिये यह निश्चयकिया है कि १००) रु० तक सफर खर्च मैं स्वयं सहन करूँगा। आवश्यकता होने पर ज्यादाके लिये विचार करलूँगा। अब सिर्फ यही विचारना है कि भ्रमण किस प्रान्त में कहाँ कहाँ किया जाय। सो इस विषयमें मेरे कुछ विचार नहीं हैं। जिसजगहके लोगोंकी अधिक सूचनाएँ आवेंगी और जहाँ अधिक लाभ होनेकी सम्भावना होगी वहीं मैं भ्रमण करूँगा। जो पाठक इस स्कीमसे लाभ उठाना चाहें वे अभी से मुझे सूचित करें। अगर कोई विशेष विघ्न उपस्थित न होगा तो इस तरह भी सेवा करनेका विचार है।

अन्तिम बात जैनजगतकी आर्थिक समस्याके विषयमें है। इस विषयमें १८ वें अंकमें मैंने बहुतकुछ लिखा है। इसके बाद करीब तीनसौ रुपया सहायता भी मिली है, परन्तु इससे पिछला ऋण चुकना तो दूर अभी आठवें वर्षका घाटा भी पूरा नहीं हो पाया है। हम अठारवें अंकके वक्तव्यको यहाँ फिर दुहराते हैं। साथ ही इतना निवेदन और है कि अब जैनजगतके लिये कुछ स्थायी प्रबन्ध होना चाहिये। जिन महानुभावोंने आठवें वर्षमें सहायता दी है वे इतनी सहायता प्रति वर्ष देनेकी स्वीकारता दें तो हमारी आधी चिन्ता दूर हो सकती है। बाकी सहा-

जैनधर्म का मर्म ।

(३६)

अङ्गप्रविष्ट बारह अंगोंमें विभक्त है। १-आचार, २-सूत्रकृत, ३-स्थान, ४-समवाय, ५-व्याख्याप्रज्ञप्ति, ६-ज्ञातृधर्म कथा, ७-उपासक दशा, ८-अन्तकृद्दशा, ९-अनुत्तरौपपादिक दशा, १०-प्रश्नव्याकरण, ११-विपाकसूत्र, १२-दृष्टिवाद ।

१-आचार—इसमें आचारका खास कर मुनियोंके आचारका विस्तारसे वर्णन है। सब अङ्गोंमें यह मुख्य है इसलिये इसका नाम पहिले दिया गया है। इस अङ्गको प्रवचनका सार* कहा है।

२-सूत्रकृत—इस अंगमें लोक अलोक, जीव अजीव, स्वसमय परसमयका संक्षेपमें वर्णन है। तथा ३६३ मिथ्यामतोंकी आलोचना‡ है।

प्रश्न- जैनधर्म तो सब धर्मोंका समन्वय करनेवाला धर्म है, इसलिये वह ३६३ मिथ्या-मतोंका खण्डन कैसे करेगा? और सूत्रकृतांगमें तो अन्य मतोंका खण्डन है।

उत्तर- जैनधर्म अगर किसी अन्य मतका खण्डन करता है, तो उसके किसी विचारका नहीं, किन्तु उसकी एकान्तताका खण्डन करता है। जो धर्म समन्वयका ही विरोधी हो, उसका खण्डन करना ही पड़ेगा। अथवा जिस द्रव्यक्षेत्र-कालभावके लिये जो बात कल्याणकारी न हो, किन्तु कोई उसी द्रव्यक्षेत्रकालभावके लिये उसका विधान करे तो उसका भी खण्डन करना पड़ता है। मतलब यह कि कोई सम्प्रदाय सदा

*—आयारो अंगाणं पढमं अंगं दुवालसण्हंपि। इत्थ य मोक्खोवाओ एस य सारो पवयणस्स ॥ आचाराङ्ग निर्युक्ति. ९ ।

‡सूयगडेणं लोए सूइज्जइ अलोए सूइज्जइ लोआलोए सूइज्जइ, जीवा सूइज्जंति अजीवा सूइज्जंति जीवाजीवा सूइ-ज्जंति ससमए सूइज्जइ परसमए सूइज्जइ ससमय पर समय सूइज्जइ; सूअगडेणं असीअस्स किरिया वाइसयस्स चउरासीए अकिरियवाईणं सत्तट्ठीए अण्णाणिअ वाईणं बत्तीसाए वेणइअ वाईणं तिण्हं तेसट्ठाणं पासंडिय समाणं वूहं किच्चा ससमए ठाविज्जइ। नंदीसूत्र ४६ ।

यताके लिये भी सब सज्जन प्रयत्न करते रहे। जैन-जगत्का घाटा करीब ६००) रु० वार्षिक है। अगर पच्चीस पच्चीस रुपये सहायता देनेवाले २४ महानु-भाव मिल जायँ तो बड़ी निराकुलतासे काम किया जा सकता है। कुछ महानुभाव तो ज्यादा सहायता देने वाले भी हैं, इसलिये कुछ कम सहायकोंसे भी काम चल सकेगा। मेरे ख्यालसे निम्नलिखित श्रेणियाँ बन जायँ तो अच्छा हो।

संरक्षक (१००) या इससे ज्यादा सहायता देनेवाले।
मुख्य सहायक—(२५) या इससे ज्यादा सहायता देने वाले।
सहायक—(१०) या इससे ज्यादा सहायता देनेवाले।

इनके नाम सालके सभी अंकोंमें तो नहीं, परन्तु स्थानके अनुसार चार छः अंकोंमें प्रकाशित कर दिये जायँगे। जो लोग १०) से कम सहायता देंगे वे भी सहायक समझे जायँगे, परन्तु उनके नाम एक ही अंकमें प्रकाशित होंगे। मैं आशा करता हूँ कि इस स्कीम के द्वारा ६००) रु० सालकी घाटापूर्ति करना पाठक अपना कर्तव्य समझेंगे।

वास्तवमें जैनजगत्की यह माँग बहुत छोटी माँग है। भविष्यमें जैनजगत् जो समाजके सामने कार्यक्रम रक्खेगा, उसके लिये हजारों नहीं, लाखों रुपये समाजको देने पड़ेंगे और प्रसन्नतासे देने पड़ेंगे। परन्तु भविष्य तो भविष्य ही है, इसलिये वह इस विषयमें अभी कुछ न कहकर नवमें वर्षकी सिर्फ खुराक माँग रहा है, जिसका पूर्ण करना पाठकोंका परम कर्तव्य है।

सर्वत्र और सबके लिये बुरा है यह बात जैनधर्म नहीं कहता। वह किसी न किसी रूपमें उनका समन्वय करता है, परन्तु एकान्त दुराग्रहोंका तथा अनुचित अपेक्षाओंका खण्डन भी करता है।

दिगम्बर शास्त्रों * के अनुसार इस अंगमें व्यवहार धर्मकी क्रियाओंका वर्णन है। दिगम्बर सम्प्रदायमें सूत्रकृतांग उपलब्ध न होनेसे राजवार्तिककी परिभाषाके विषयमें कुछ नहीं कहा जा सकता।

३–स्थगन—इस अंगमें एकसे लेकर दश † भेदों तककी वस्तुओंका वर्णन है। इसमें विशेषतः नदी पहाड़, द्वीप, समुद्र, गुफा आदिका विस्तृत वर्णन पाया जाता है।

दिगम्बर सम्प्रदायके अनुसार इसमें दश ‡ की मर्यादा नहीं है और स्थानोंका प्रतिपादन भी कुछ दूसरे ढंगसे है। श्वेताम्बर सम्प्रदायके अनुसार इस अंगमें पहिले एक एक संख्यावाली वस्तुओंका वर्णन है, फिर दो दो संख्यावाली, फिर तीन तीन आदि। दिगम्बर सम्प्रदायके अनुसार एक वस्तुका एक रूपमें, फिर उसीका दो रूपमें, फिर तीन रूपमें, इस प्रकार उत्तरोत्तर वर्णन है।

४–समवाय—इस अंगमें एकसे लेकर सौ स्थान § तककी वस्तुओंका वर्णन है। दिगम्बर

* सूत्रकृते ज्ञानविनयप्रज्ञापना कल्प्या कल्प्यच्छेदोपस्थापना व्यवहारधर्मक्रियाः प्ररूप्यन्ते। तत्त्वार्थराजवार्तिक १–२०–१२।

† एक संख्यायां द्विसंख्यायां यावद्दश संख्यायां ये ये भावा यथा यथाऽन्तर्भवन्ति तथा तथा ते ते प्ररूप्यन्ते। नन्दीसूत्र टीका ४७।

‡ जीवादिद्रव्यैकाद्येकोत्तरस्थान प्रतिपादकं स्थानं। श्रुतभक्ति टीका ७। स्थाने अनेकाश्रयणामर्थानाम् निर्णयः क्रियते। त० राजवार्तिक १–२०–१२।

§ एकादिकानामेकोत्तराणां शतस्थानकम् यावद्विवर्धितानाम् भावानाम् प्ररूपणा आख्यायते।

सम्प्रदायके * अनुसार इस अंगमें सब पदार्थों का समवाय विचारा जाता है अर्थात् द्रव्यक्षेत्र आदिकी दृष्टिसे जिन जिन वस्तुओंमें समानता है उनका एक साथ वर्णन किया जाता है। जैसे धर्म अधर्म और जीव (एक जीव) के प्रदेश एक बराबर हैं, केवलज्ञान, क्षायिक सम्यक्त्व, यथाख्यात चारित्रका भाव (शक्ति) एक बराबर है, आदि।

५–व्याख्याप्रज्ञप्ति—इस अंगमें महावीर और गौतमके बीचमें होनेवाले प्रश्नोत्तरोंका वर्णन है। दिगम्बर सम्प्रदायके अनुसार इस अंग में साठ † हज़ार प्रश्नोंका उत्तर है और श्वेताम्बर सम्प्रदायके अनुसार छत्तीस ‡ हज़ार प्रश्नों के उत्तर हैं। इसका प्राकृत नाम 'विवाहपण्णत्ति' है। अभयदेवने इसके अनेक संस्कृत रूप बनाये हैं। उसमें व्याख्याप्रज्ञप्ति तो प्रचलित ही है। दूसरा विवाह प्रज्ञप्ति बतलाया है, जिसका अर्थ किया है—वि = विविध, वाह = प्रवाह = नयप्रवाह। इसका अर्थ हुआ कि स्याद्वाद शैलीसे जिसमें अनेक प्रश्नोंका समाधान किया गया हो वह व्याख्याप्रज्ञप्ति है। तीसरा अर्थ विबाधप्रज्ञप्ति है। अर्थात् बाधारहित विवेचनवाली। वर्तमान में यह बहुत महत्वपूर्ण अंग समझा जाता है इसलिये इसका दूसरा नाम भगवती § भी प्रच-

* समवाये सर्वपदार्थानाम् समवायश्चिन्त्यते। स चतुर्विधः द्रव्यक्षेत्रकालभाव विकल्पैः … इत्यादि। त० राजवार्तिक १–२०–१२

† व्याख्या प्रज्ञप्तौ षष्टिव्याकरण सहस्राणि। किमस्ति जीवः? नास्ति? इत्येवमादीनि निरूप्यन्ते।

त० रा० १–२०–१२

‡ षट् त्रिंशत्प्रश्नसहस्र प्रमाण सूत्रदेहस्य। व्याख्याप्रज्ञप्ति अभयदेव वृत्ति।

§ इयञ्च भगवतीत्यपि पूज्यत्वेनाभिधीयते।

—अभयदेव वृत्ति।

लित है। दिगम्बर सम्प्रदायमें विवाय* पण्णत्ति विक्खा पण्णत्ति नाम भी प्रचलित है।

६—न्यायधर्म कथा—इस अंगके नामके विषयमें बहुत मतभेद है। दिगम्बर सम्प्रदायमें दो नाम प्रचलित हैं। (१) ज्ञातृधर्म कथा, (२) नाथधर्म कथा। परन्तु एक तीसरा नाम भी मालूम होता है। प्राकृत श्रुतभक्तिमें इसका नाम 'णाणाधम्मकहा' लिखा है। तदनुसार इसका नाम 'नानाधर्म कथा' कहलाया। इससे भिन्न एक नाम उमास्वातिकृत तत्वार्थभाष्यमें 'ज्ञातधर्म कथा' कहा है। इनमें कौनसा नाम ठीक है इसका पता लगाना मुश्किल हो जाता है। मूलसूत्र प्राकृतभाषामें थे इसलिये इस अंगके प्राकृत नामों पर ही विचार करना चाहिये।

प्राकृतमें इसके तीन नाम मिलते हैं णाणाधम्मकहा, णाहधम्मकहा और णायधम्मकहा। पहिला रूप बहुत कम प्रचलित है। मुझे तो सिर्फ श्रुतभक्ति में ही यह नाम मिला। दूसरा नाम गोम्मटसारमें है। इसका अर्थ होगा। तीर्थंकरोंकी कथाएँ। नाथ अर्थात् स्वामी, तीर्थंकर। परन्तु वर्तमानमें यह अंग जिस रूपमें उपलब्ध है उस परसे यह अनुमान नहीं किया जासकता कि इसमें सिर्फ तीर्थंकरोंका जीवनचरित्र या दिनचर्या आदि होगी। पिछला नाम 'णायधम्मकहा' सर्वमान्य मालूम होता है। परन्तु इसके संस्कृतरूप और उनके अर्थ भी अनेक हैं। णायधम्मकहाके संस्कृतरूप ज्ञातृधर्मकथा, ज्ञातधर्मकथा, न्यायधर्मकथा आदि होते हैं। फिर शब्दोंके अर्थमें भी बहुत अन्तर है। एक अर्थ है ज्ञात अर्थात उदाहरणः उदाहरण* प्रधान धर्मकथाएं जिसमें हों वह अंग। दूसरा अर्थ है—जिसके प्रथम श्रुतस्कंधमें ज्ञात = उदाहरण हों और दूसरे श्रुतस्कंधमें धर्मकथाएं हों, वह† अंग। राजवार्तिककार‡ सिर्फ इतना ही कहते हैं कि जिसमें बहुतसे आख्यान उपाख्यान हों। कुछ लोग णायका अर्थ ज्ञात अर्थात् महावीर करते हैं। इन सब कथनोंसे यह स्पष्ट है कि इसके दो अर्थ मुख्य और बहुसम्मत हैं। प्रथमके अनुसार इसमें तीर्थंकरोंका या महावीरका वर्णन है या उनसे सम्बन्ध रखनेवाली कथाएं हैं, दूसरेके अनुसार उदाहरण रूप धर्मकथाएं इसमें हैं। पहिला अर्थ कुछ ठीक नहीं मालूम होता, क्योंकि उपलब्ध अंगमें महावीरसे संबंध रखनेवाली धर्मकथाएं तो नहीं हैं, किन्तु अधिकांश कथाएं दूसरोंकी हैं बल्कि किसी भी कथाके मुख्यपात्र महावीर नहीं हैं। अगर कहाजाय कि ये कथाएँ महावीरके द्वारा कहीं गई हैं, इसलिये इन्हें महावीरकी कथाएं कहना चाहिये, तो यह कथन भी ठीक नहीं। क्योंकि जब द्वादशाङ्गका सभी विषय भगवान महावीरका वचन कहा जाता है तब सिर्फ इस अंगमें ही महावीरके नामके उल्लेखकी क्या आवश्यकता है? अगर कोई

* कि अत्थिणत्थि जीवो गणहर सट्ठी सहस्स कयपण्हा।
एदं दुग दोस निरूवणं पसरंख विवाय पण्णत्ती।
इसलिये यहाँ विवाहपज्ञप्ति नाम मानना चाहिये।

— श्रुतस्कंध १४।

तत्तं. विक्खापण्णत्तीए णाहस्स धम्मकहा।

—गोम्मटसार जीवकांड ३५६।

† नाथः त्रिलोकेश्वराणां स्वामी तीर्थंकर परमभट्टारकः तस्यधर्मकथा। —गोम्मटसार जीवकाण्ड ३५६।

* ज्ञातानि उदाहरणानि तत्प्रधाना धर्मकथा ज्ञाताधर्मकथा। ...पृषोदरादित्वात्पूर्वपदस्य दीर्घान्तता।

— नन्दीवृत्ति ५०।

† ज्ञातानि ज्ञाताध्ययनानि प्रथम श्रुतस्कंधे धर्मकथा द्वितीय श्रुतस्कंधे। —नन्दीवृत्ति सूत्र ५०।

‡ ज्ञातृधर्मकथायां आख्यानोपाख्यानानाम् बहुप्रकाराणां कथनं। १—२०—१२।

ऐसा भी अंग होता जिसमें महावीरसे भिन्न व्यक्तिसे कही गई कथाएँ होतीं तो इसके नाम के साथ ज्ञात (महावीर) विशेषण लगाना उचित समझा जाता। इसलिये ज्ञातशब्द मानना और उसका अर्थ महावीर करना उचित नहीं मालूम होता। इसलिये णायका अर्थ दृष्टान्त करनाही ठीक है। वह उपलब्ध अंगके अनुकूल भी है।

अब प्रश्न यह है कि 'णाय' का संस्कृतरूप 'ज्ञात' किया जाय या न्याय' किया जाय। मैं यहां न्याय शब्दका जो अर्थ करता हूं वही अर्थ प्राचीन टीकाकारोंने 'ज्ञात' शब्दका किया है। परन्तु साधारण संस्कृत साहित्यमें 'ज्ञात' शब्दका 'उदाहरण' अर्थ कहीं नहीं मिलता। इसलिये 'णाय' शब्द की 'ज्ञात' संस्कृतछाया मुझे पसन्द नहीं आई। उसके स्थानमें 'न्याय' रखना उचित समझा। न्याय शब्द संस्कृत साहित्यमें 'उदाहरण' अर्थमें खूब प्रचलित हुआ है। जैसे 'काकतालीयन्याय' 'सूचीकटाह न्याय' 'देहली दीपक न्याय' आदि सैकड़ों उदाहरण संस्कृत साहित्यमें प्रचलित हैं जो कि न्याय शब्द से कहे जाते हैं। इसलिये इस अंगका संस्कृत नाम 'न्यायधर्मकथा' उचित मालूम होता है।

'न्यायधर्म कथा' इस नाममें कथा शब्दका कहानी अर्थ नहीं है किन्तु कथन--कहना—उपदेश देना अर्थ है। जिस अंगमें दृष्टान्त देदेकर धर्मका उपदेश दिया गया है, वह न्यायधर्मकथा अंग है। यदि कथा शब्दका कहानी अर्थ भी किया जाय तो भी कुछ विशेष हानि नहीं है। उस समय 'णायधम्मकहा' का अर्थ होगा, ऐसी धर्मकथाएं जो दृष्टान्तरूप हैं। परन्तु इसमें कुछ पुनरुक्ति मालूम होने लगती है। इसलिये 'कथा' का अर्थ 'कथन' किया जाय, यही कुछ ठीक मालूम होता है।

ये कथाएँ प्रायः कल्पित हैं। कई कथाएँ बिलकुल उपन्यासोंकी तरह हैं, जैसे मल्लि आदि की कथा। कई ऐतिहासिक उपन्यासोंकी तरह हैं, जैसे अपरकंका आदिकी कथा। कई हितोपदेशकी कथाओंकी तरह हैं जैसे दो कच्छपों की कथा। कई को कथा न कहकर सिर्फ छोटासा दृष्टान्तही कहना चाहिये, जैसे तूमड़ीका छट्ठा अध्ययन आदि।

इससे यह बात अच्छी तरह मालूम होजाती है कि कथाएँ कोई इतिहास नहीं हैं किन्तु उपदेश देनेके लिये कल्पित, अर्धकल्पित और कोई कोई अकल्पित उदाहरणमात्र हैं। इनकी सचाई घटनाकी दृष्टिसे नहीं किंतु आशयकी दृष्टिसे है।

७—उपासकदशा—जिनको आज श्रावक कहते हैं उनको महावीर युगमें उपासक कहते थे। गृहस्थोंके लिये यह शब्द उस समय आमतौर पर प्रचलित था। इसके स्थानपर 'श्रावक' शब्दका प्रयोग तो बहुत पीछे हुआ है। इसीलिये इस अंगका नाम 'उपासकदशा' है न कि 'श्रावकदशा'। इस अंगमें मुख्य मुख्य व्रती गृहस्थोंके जीवनका वर्णन है। उस वर्णनसे गृहस्थों के व्रतोंका भी पता लगजाता है अर्थात् उसमें बारह व्रतोंका वर्णन भी आजाता है।

कोई भी आचार सदाके लिये और सब जगहके लिये एकसा नहीं बनाया जासकता, इसलिये आचार शास्त्र अस्थिर है। परन्तु मुनियों के आचारकी अपेक्षा गृहस्थोंके आचारकी अस्थिरता कई गुणी है इसलिये गृहस्थाचारका कोई जुदा अंग न बनाकर गृहस्थोंकी दशाका वर्णन करके ही उस आचारका वर्णन किया गया है।

दिगम्बर सम्प्रदायमें इस अंगका नाम उपा-

सकाध्ययन * है। परन्तु इस नामभेदसे कुछ विशेष अन्तर नहीं आता। नन्दीसूत्र ‡ के टीकाकार श्री मलयगिरिने दशाका अर्थ अध्ययनही किया है। इसलिये दोनों नामोंमें कुछ अन्तर नहीं रहता। फिर भी उपासकदशा यह नामही उचित मालूम होता है, क्योंकि इसमें आचाराङ्गकी तरह मुनियोंके आचारका सीधा वर्णन नहीं है किन्तु श्रावकोंकी दशाके वर्णनमें उसका वर्णन आया है। कुछ लोग दशा शब्दका दस (१०) अर्थ करते हैं क्योंकि इसमें दस अध्ययन हैं परन्तु नामके भीतर अध्ययनोंकी गिनती आवश्यक नहीं मालूम होती। दूसरी बात यह है कि प्राकृतमें इस अंगका नाम 'उवासगदसाओ' लिखा जाता है। प्राकृत व्याकरणके नियमानुसार 'दसाओ' पद 'दसा' शब्दके प्रथमाके बहुवचनका रूप है जो गिनतीके 'दस' शब्दसे नहीं बनता किन्तु 'दसा' शब्दसे बनता है। प्राकृतके नियम बहुल (अनियत) माने जाते हैं इसलिये भलेही कोई गिनतीके 'दस' का भी 'दसाओ' रूप मानले परन्तु जब नियमानुसार ठीक अर्थ निकलता है तब इतनी खींचतानकी या अपवादोंकी आवश्यकता नहीं मालूम होती।

वर्तमानमें जो यह अंग उपलब्ध है उसके दस अध्ययन हैं जिनमें दस श्रावकोंकी दशाओं का वर्णन है। परन्तु यह आश्चर्यकी बात है कि वर्तमानमें श्राविकाओंके अध्ययन नहीं पाये जाते। भगवान महावीरने श्रावकसंघकी तरह श्राविकासंघकी भी स्थापनाकी थी इसलिये यह सम्भव नहीं कि इस अंगमें श्राविकाओंका वर्णन न आया हो। बल्कि श्राविकाओंकी संख्या श्रावकोंसे कई गुणी थी इसलिये उनका वर्णन और आवश्यक मालूम होता है। अगर यह कहा जाय कि उससमयमें श्राविकासंघमें कोई मुख्य श्राविकाएँ नहीं थीं तो यह भी ठीक नहीं, क्योंकि श्रावक संघके मुखिया जिसप्रकार शंख और शतक थे उसीप्रकार श्राविकासंघकी मुख्याएँ भी रेवती और सुलसा थीं। कम से कम इनका वर्णन तो अवश्य ही आना चाहिये।

यह बात नहीं है कि अंग साहित्यमें स्त्री-चरित्रोंका वर्णन न हो। आठवें अंगमें बीस अध्ययन ऐसे हैं जिनमें पद्मावती, गौरी, गांधारी (पाँचवाँ वर्ग) कालीसुकाली (आठवाँ वर्ग) आदि महिलाओंका वर्णन है। एक एक महिला के नामपर एक एक अध्ययन बना हुआ है, तब ऐसा कैसे हो सकता है कि 'उपासकदशा' में उपासिकाओंकी दसाएँ न बनाई गई हों?

हाँ, यह कहा जासकता है कि 'पिछले युगमें श्राविकाओंका स्थान बहुत नीचा होगया था। वे आर्यिका बनकर तो समाजकी पूज्या हो सकतीं थीं परन्तु श्राविका रहकर आदरणीया नहीं हो सकती थीं। इसलिये आठवें अंगमें स्त्रियों के चरित्र आये क्योंकि वे मुक्तिगामिनी आर्यिकाओंके चरित्र थे, परन्तु श्राविकाओंके चरित्र न आये।' परन्तु यह समाधान सन्तोषप्रद नहीं है। जैन साहित्यसे इसका मेल नहीं बैठता। क्योंकि श्राविकाओं का भी जैन साहित्यमें सादर वर्णन किया गया है। और जब वे स्त्रीसंघकी नायिकाके पदपर बैठ सकती हैं तो उनके वर्णनमें आपत्तिके लिये ज़रा भी गुंजाइश नहीं है। हाँ, निम्नलिखित कारण कुछ ठीक मालूम होता है।

जैनधर्ममें स्त्रीपुरुषके हक़ बराबर रहे हैं।

* उपासकाध्ययने श्रावकधर्मलक्षणम्। त० राजवार्त्तिक १-२०-१२।

‡ उपासकाः श्रावकाः तद्गताणुव्रतगुणव्रतादिक्रियाकलाप प्रतिबद्धा दशा-अध्ययनानि उपासक दशाः।

राजनैतिक दृष्टिसे स्त्रियोंके अधिकार भले ही समाजमें नीचे रहे हों, परन्तु जैनधर्म उस विषमताका समर्थक नहीं था। यह बात दूसरी है कि उसके कथा साहित्यमें स्वाभाविक चित्रण के कारण विषम चित्रण हुआ हो, परन्तु धार्मिक दृष्टिसे वह समताका ही समर्थक रहेगा। इसलिये जो महाव्रत मुनियोंके लिये थे, वे ही आर्यिकाओंके लिये भी थे। इसीप्रकार जो अणुव्रत श्रावकोंके लिये थे वे ही श्राविकाओंके लिये भी थे। मुनि और आर्यिकाओंकी बराबरी तो निर्विवाद मानी जासकती है। उसका सामाजिक नियमों से संघर्ष नहीं होता। परन्तु श्राविकाओंके विषय में यह नहीं कहा जासकता। श्रावक तो सैकड़ों स्त्रियों को रखकर भी ब्रह्मचर्याणुव्रती कहलाना चाहता है और वेश्यासेवन करके सिर्फ़ अणुव्रत में अतिचार मानना चाहता है, न कि अनाचार; जबकि श्राविकाके लिये बहुत ही कठोर शर्तें हैं। जैनधर्म इस विषमताका समर्थन नहीं करसकता। उसकी दृष्टिमें दोनों एक समान हैं, इसलिये दोनों अणुव्रत भी एक सरीखे हैं। उपासक दशामें उपासिकाओंके वर्णनमें, सम्भव है, ऐसे चित्रण आये हों जो भगवान महावीरके जैनधर्मके अनुकूल किन्तु प्रचलित लोकव्यवहारके प्रतिकूल हों इसलिये उपासिकाओंके चरित्र न रहने दिये हों।

यहाँ एक प्रश्न यह होता है कि जैन शास्त्रों में अन्यत्र स्त्री पुरुषोंके चरित्र एक सरीखे मिलते हैं। उदाहरणार्थ 'णायधम्म कहा' के अपरकंका अध्ययनमें द्रौपदीने पांच पतियोंका वरण किया, यह बात बहुत स्पष्ट रूपमें और बिलकुल निःसंकोच भावसे कही गई है। ऐसी हालतमें 'उपासकदशा' में भी यदि ऐसा वर्णन कदाचित् था तो उसके हटानेकी क्या ज़रूरत थी?

यह प्रश्न बिलकुल निर्जीव नहीं है, परन्तु इसका समाधान भी हो सकता है। मैं कहचुका हूं कि 'णायधम्मकहा' में किसी एक बातको लक्ष्यमें लेकर एक कथा दृष्टान्तरूपमें उपस्थित की जाती है। उस कथाके अन्य भागोंसे विशेष मतलब नहीं रक्खा जाता है, परन्तु वह कथा जिस बातका उदाहरण है उसीपर ध्यान दिया जाता है। अपरकंका अध्ययनका लक्ष्य निदान की निन्दा करना§ है अथवा बुरी वस्तुका बुरे ढंगसे दान देनेका कुफल बतलाया है। इसलिये पांच पतियाली बात प्रकरणबाह्य या लक्ष्यबाह्य कहकर टाली जा सकती है, या लोकाचारकी दुहाई देकर उड़ाई जासकती है। परन्तु अगर यही कथा 'उपासक दशा' में हो तो वहां वह मुख्य बात बन जायगी, क्योंकि यह अंग उपासकोंके आचारका परिचय देनेके लिये है।

कुछ भी हो, परन्तु यह बात निश्चित है कि 'उपासक दशा' में उपासिकाओंके अध्ययनोंकी आवश्यकता है और सम्भवतः पहिले इस अंग में उपासिकाओंके अध्ययन भी होंगे। पीछे किसी अनिश्चित या अर्धनिश्चित कारणसे ये अध्ययन नष्ट कर दिये गये या नष्ट होगये।

८—अंतकृद्दशा—इस अंगमें मुक्तिगामियों की दशाका वर्णन है। दिगम्बर सम्प्रदायके अनुसार इसमें सिर्फ़ उन मुनियोंका ही वर्णन है जिनने दारुण उपसर्गोंको सहकर मोक्ष पाया†

§ सुबहुंपि तवकिलेसो नियाणदोसेण दूसिओ संतो।
न सिवाय दोवतीए जह किल सुकुमालिआ जम्मे॥
अमणुन्नमभत्तीए पत्ते दाणं भवे अणत्थाय।
जह कडुय तुंबदाणं नागसिरि भवम्मि दोवइए॥
—णा० ध० कहा १६ अध्ययन अभयदेव टीका।

† संसारस्य अंतः कृतो यैस्तेऽन्तकृतः नमि मतंग सोमिल... इत्येते दश वर्धमान तीर्थंकर तीर्थे। एवमृ-

किया है। इसप्रकारके दस मुनि वर्धमानके तीर्थ में हुए थे। इसीप्रकारके दस दस मुनि अन्य तीर्थंकरोंके तीर्थमें भी हुए थे, उनका इसमें वर्णन है। परन्तु हर एक तीर्थंकरके तीर्थमें दस दस मुनियोंके होने का नियम बनाना वर्णनको अस्वाभाविक और अविश्वसनीय बनादेता है। हाँ, अगर यह कहा जाय कि हर एक तीर्थमें उपसर्गसहिष्णु मुनियोंकी संख्या तो बहुत अधिक है, परन्तु उनमेंसे दस दस मुनि चुन लिये गये हैं तो किसी तरह यह बात कुछ ठीक मालूम हो सकती है। फिर भी यह शंका तो रहही जाती है कि चुनावकी बात दिगम्बर लेखकोंने स्पष्ट शब्दोंमें लिखी क्यों नहीं?

दशाका दश अर्थ करना यहाँ भी उचित नहीं मालूम होता। इसका कारण 'उपासकदशा' की व्याख्यामें बतलाया गया है। एक दूसरी बात यह है कि राजवार्तिककार इस अंगके विषय में अनेकबार 'अस्यां', 'तस्याम्' आदि सर्वनामों के स्त्रीलिंग रूपोंका प्रयोग * करते हैं। इससे मालूम होता है कि इस अंगका नाम स्त्रीलिंगमें होना चाहिये। ऐसी हालतमें 'अंतकृद्दश' इस नामके बदले 'अन्तकृद्दशा' यह नामही उचित है।

दस दस मुनियोंके वर्णनके नियममें राजवार्तिककार को भी संदेह मालूम होता है। इसीलिये 'अन्तकृद्दशा' की उपर्युक्त व्याख्याके बाद वे दूसरी व्याख्या देते हैं कि जिसमें अर्हत आचार्यकी विधि और मोक्ष जानेवालोंका वर्णन § हो। यह व्याख्या ठीक मालूम होती है और श्वेताम्बर व्याख्यासे भी मिलजाती है। श्वेताम्बर सम्प्रदायके अनुसार इसमें मोक्षगामी जीवोंके चरित्र हैं। उनके जन्मसे लेकर मरण (संलेखना) तककी दशाओंका वर्णन है। गजसुकुमाल आदि कुछ मोक्षगामी ऐसे हैं जिनने उपसर्ग सह कर तुरंत मोक्ष प्राप्त किया और बाक़ी ऐसे हैं जिनको विशेष उपसर्ग सहन नहीं करना पड़ा। उपलब्ध अंगमें तीर्थंकर आदिका वर्णन नहीं है परन्तु नंदीसूत्र टीकाकारके कथनानुसार तीर्थंकरों ‖ का भी वर्णन इस अंगमें होना चाहिये। इससमयमें तो इस अंगमें बहुत थोड़े मोक्षगामियोंके चरित्र हैं। वास्तवमें इसका कलेवर और विशाल होना चाहिये। अथवा इसकी कोई दूसरी कसौटी होना चाहिये जिसके अनुसार इन चरित्रोंका चुनाव किया गया हो।

एक विशेष बात यह भी है। इसमें निम्नलिखित स्त्रियोंके चरित्र भी पाये जाते हैं जिनने उसी जन्ममें (स्त्रीपर्यायसे) मोक्ष पाया है।

१ पद्मावती, २ गौरी, ३ गांधारी, ४ लक्ष्मणा, ५ सुसीमा, ६ जांबवती, ७ सत्यभामा, ८ रुक्मिणी, ९ मूल श्री, १० मूलदत्ता। ११ नंदा, १२ नंदवती, १३ नंदोत्तरा, १४ नंदिसेनिका, १५ मरुता, १६ सुमरुता, १७ महामरुता, १८ मरुदेवा, १९ भद्रा, २० सुभद्रा २१ सुजाता, २२ सुमना, २३ भूतदत्ता। २४ काली २५ सुकाली, २६ महाकाली, २७ कृष्णा, २८ सुकृष्णा, २९,

---

प्रभादीना अर्थे विनतेस्तीर्थेषु अन्येऽन्येच दशदशानगारा दारुणानुपसर्गान्निर्जित्य कृत्स्नकर्मक्षयादन्तकृतः दश अस्यां वर्ण्यंते इति अंतकृद्दश।

* अस्यां वर्ण्यंते इति अन्तकृद्दशा। तस्यामर्हदाचार्यविधिः ।

§ अथवा अन्तकृतां दश अन्तकृद्दश तस्यामर्हदाचार्यविधिः सिद्धयताञ्च।

‖ अन्तो विनाशः स कर्मणः तत्फलस्य संसारस्य वा ये कृतवन्तस्तेऽन्तकृतः। तीर्थकरादयस्तद्वक्तव्यताप्रतिबद्धाः दशा—अध्ययनानि अन्तकृद्दशा। नन्दीसूत्र मलयगिरिवृत्ति सूत्र ५२।

महाकृष्णा, ३० वीर कृष्णा, ३१ रामकृष्णा, ३२ पितृसेन कृष्णा, ३३ महासेन कृष्णा।

परन्तु इनके अतिरिक्त भी अनेक महिलाओं के नाम रहगये हैं जिनने मोक्षपाया है।

९-अनुत्तरोपपादिक दशा—आठवें अंगमें मोक्षगामियोंके चरित्र हैं और इस अंगमें अनुत्तर विमानमें पैदा होने वाले मुनियों के चरित्र हैं। राजवार्त्तिकमें इस अंगकी भी दो व्याख्याएँ की गई हैं। पहिलीके अनुसार दस दसका नियम है, जब कि दूसरीके अनुसार नहीं है। दूसरी बात यह कि इस अंगके चरित्रोंके बहुत से नाम दोनों सम्प्रदायोंमें एकसे मिलजाते हैं जैसे ऋषिदास, धन्य, सुनक्षत्र, अभयकुमार, वारिषेण आदि। बाकी शंकासमाधान आठवें अंगके समान ही समझ लेना चाहिये।
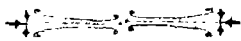
सम्पादकीय टिप्पणियाँ।

सवर्ण विवाह।

विवाहके प्रकरणमें जातिका विचार प्राचीन काल में न होता था। सामाजिक सुविधाके लिये वर्ण का बन्धन जुदे जुदे ढंगसे जुदे जुदे समयमें रहा। पीछे सुभीतेके विचारसे कुछ कुटुम्बोंमें समझौतासा हुआ और वे ज्ञाति कहलाये जानेलगे। खंडेलवाल, अग्रवाल, हूमड़ आदि जातियाँ वास्तवमें जाति नहीं, ज्ञाति है। गुजरात आदिकी तरफ इन्हें ज्ञातिही कहते हैं। वर्णपरिवर्तनके विशेष नियमानुसार 'ज्ञ' का 'ज' होगया इसलिये ज्ञातिको जाति कहनेलगे। वास्तव में इन्हें जाति कहना ही अनुचित है। ज्ञाति का अर्थ परिवार या कुटुम्ब होता है। पहिले जमाने में विवाहसम्बन्ध बहुत निकटमें होजाता था। उस समय ज्ञातिमें ही विवाहसम्बन्ध हुए। खैर, यह तो जातिकी बात हुई जिसका विवाहके प्रकरणमें कोई खास स्थान नहीं है।

जोकुछ थोड़ा बहुत विचार होता था वह वर्ण का होता था। उसमेंभी अनेक नियम थे। कभी कभी और कहीं कहीं शूद्रोंके साथ सम्बन्ध नहीं करते थे। और कचित् कदाचित् उनके साथ अनुलोम पद्धति थी। क्वचित कदाचित चारों वर्णोंमें अनुलोम पद्धति थी और कभी कहीं त्रिवर्णोंमें अनुलोम प्रतिलोम पद्धति थी। मतलब यह कि इन नियमोंका धर्मके साथ कोई सम्बन्ध नहीं था। ये क़ानून सामाजिक और राजकीय थे।

आज तो वर्णव्यवस्था है ही नहीं। समाज और राज्यने वर्णव्यवस्थाके भवनकी ईंटसे ईंट बजादी है। परन्तु दूसरी तरफ रूढ़ियोंके मारे लोग वर्णके अनुसार अपने वैवाहिक नियमोंमें परिवर्तन नहीं करते। एक वैश्यपुत्र विद्यापढ़कर ब्राह्मणकी आजीविका करता है। इस प्रकार वह वर्णसे ब्राह्मण तो बनजाता है, परन्तु वह ब्राह्मण कन्याके साथशादी नहीं करसकता। यह वास्तवमें असवर्ण विवाह है। खेद है कि इसप्रकारके सैकड़ों असवर्ण विवाह होते रहते हैं परन्तु वर्णव्यवस्थाके गीत गाने वाले चूँभी नहीं करते; और जो वास्तवमें सवर्ण विवाह होते हैं उन्हें असवर्णविवाह कहकर व्यर्थही चिल्लाते हैं।

आज जब वर्णव्यवस्थाही नहीं रही तब सवर्ण विवाह या असवर्णविवाहका विचारही कैसा? अगर किसी दृष्टिसे करनाही हो तो कर्मकी अपेक्षा ही विचार करना चाहिये। जीवनकी शान्ति सहयोग और आनन्दके लिये उसीकी आवश्यकता किसी तरह कही जासकती है। परन्तु वर्णव्यवस्था के गीत गाने वालोंमें इतना विवेक हो, तब न?

अभी महात्माजीके पुत्र देवीदासजीका श्री-राजगोपालाचार्यकी पुत्रीके साथ विवाह हुआ है। मनुष्यताके शत्रुओंने इस विवाहको असवर्ण विवाह कहकर खूबही कोसा है—जबकि यह आदर्श सवर्ण

विवाह है। गाँधीजीके पुत्र देशके लिये सर्वस्व त्याग करनेवाले एक त्यागी वीर हैं, इसलिये उनका वर्ण ब्राह्मणके सिवाय दूसरा नहीं कहा जासकता है। उनके पिता महात्मा गाँधीजी तो साधु होनेसे वर्णातीत हैं। अगर उनका वर्ण कहाभी जाय तो पूर्व आजीविकाकी दृष्टिसे ब्राह्मणही कहा जासकता है। महात्माजीने आफ्रिकामें जो बैरिस्टरीका धंधा किया था वह विद्याका ही धंधा था जो कि उन्हें ब्राह्मण सिद्ध करता है। इस प्रकार देवीदासजी स्वयंभी ब्राह्मण वर्णमें हैं, उनके पिताजीभी ब्राह्मण वर्णके हैं; तब राजगोपालाचार्यकी पुत्रीसे विवाह करनेमें असवर्ण विवाह किसीभी तरह नहीं कहा जासकता। यह आदर्श सवर्ण विवाह है।

इसी प्रकारका एक आदर्श सवर्ण विवाह अभी प्रयागमें हुआ है। राष्ट्रपति पं० जवाहिरलालजी नेहरूकी छोटी बहिन श्रीमती कृष्णाकुमारी नेहरूका विवाह अहमदाबादके तरुण बैरिस्टर श्रीगुणोत्तम दासके साथ हुआ है। वर महाशय जैन हैं। नेहरू कुटुम्बका सन्मान आज देशमें राजकुलोंसे भी ऊँचा है। उसके साथ एक जैनकुटुम्बका संबंध होनेसे जैन समाजके लिये यह गौरवकी बात कही जासकती है। वर महाशय बैरिस्टर होनेसे कर्मसे ब्राह्मण कहलाये और कन्याका कुलतो जन्म और कर्मसे ब्राह्मण है ही। इसप्रकार यहभी एक आदर्श सवर्ण विवाह हुआ है।

कोल्हापुरका मराठी 'सत्यवादी' इसीप्रकारके दो विवाहोंका और भी उल्लेख करता है। एक तो पूनाका शहा–परांजपे विवाह; दूसरा फलटनका शहा—सबनीस विवाह। इन दोनों विवाहोंमें भी वर पक्ष जैन है।

जैनसमाज, जिसने एक ऐसे धर्मको प्राप्त किया है जोकि वर्णव्यवस्थाके विषका सदासे संहार करता आया है, अगर आज इस प्रकार वर्णव्यवस्थाके निंद्य बंधनों को तोड़कर समाज की नूतन घटनामें इसप्रकार जैनत्वका परिचय देरहा है तो ऐसा कौन विवेकी है जो हर्षसे प्रफुल्लित न होउठे। हम इन सवर्ण विवाहोंका हृदयसे स्वागत करते हैं।

वृद्धविवाह निषेधक बिल।

इसी अंकमें अन्यत्र श्रीमान् सिघई गोकुलचंदजी वकील (दमोह) एम० एल० सी० का एक बिल प्रकाशित होरहा है जिसेकि वे मध्यप्रान्तकी धारासभामें उपस्थित करना चाहते हैं। बिल अभी महाक्षत्रप (गवर्नर जनरल) की मंजूरी को गया है। वहाँसे मंजूरी आनेपर वह धारासभामें पेश किया जायगा।

जिन लोगोंको इस प्रकार कन्याओंका शिकार करना है अथवा जो लोग इस प्रकारके शिकारमें शिकारी कुत्तेका काम करना चाहते हैं, अथवा जो लोग ऐसे शिकारियोंको खुश रखकर स्वार्थसिद्धि करना चाहते हैं, उन लोगोंको छोड़कर आज देशमें ऐसा कोई समझदार व्यक्ति न मिलेगा जो वृद्धविवाह का विरोधी न हो। वृद्धविवाहके विरोधमें केवल नवयुवक ही नहीं, किन्तु सभीश्रेणीके मनुष्य आवाज उठाते आरहे हैं। प्रायः सभी सामाजिक सभाओंने इस कुप्रथाका एकस्वर से विरोध किया है। इतनाही नहीं किन्तु अनेकबार उन प्रस्तावोंको दुहरायाभी है।

इतना होनेपरभी वृद्धविवाह बन्द नहीं होते, इसका कारण सिघईजी ने अपने वक्तव्यके प्रथम छेदक (पैराग्राफ) में बता दिया है। यहाँ उसके दुहरानेकी आवश्यकता नहीं है।

वृद्धविवाह कितना भयंकर रूपधारण करता जा रहा है इसका नमूना करीपुरके उस विवाहमें मिलता है जिसके विषयमें जैनजगत वर्ष ८ अंक १० में 'एक कन्याका बलिदान' शीर्षक लेखमें लिखा गया है। इसी लेखके सम्पादकीय नोट तथा इसी अंकमें 'शूद्रोंका अपमान' शीर्षक टिप्पणीमें भी इस विषय का विवेचन है।

इसमें ज़राभी सन्देह नहीं है कि वृद्धविवाहको रोकनेके लिये एक सख्त क़ानूनकी आवश्यकता है। जैनजगत्के वर्ष ८ अंक ११ की सम्पादकीय टिप्प-

णियोंमें 'कन्याओंकी रक्षा' शीर्षक एक टिप्पणी प्रकाशित हुई है, उसमें मैंने वृद्धविवाहके प्रतिबंधकी आवश्यकता बतलाकर वृद्धविवाहनिषेधक बिलका एक ढाँचासा दिया है जिसमें १० कलमे हैं। उसपर धारा सभाओंके सदस्योंका ध्यानभी आकर्षित किया गया था। मेरी वह टिप्पणी किन किन मेम्बरोंकी नजरमें पड़ी इसका पताती मुझे नहीं है, परन्तु टिप्पणी लिखते समय मेरी दृष्टि मिस्टर गोकुलचन्दजी दमोह और मिस्टर पन्नालालजी अमरावती पर बारबार जातीथी- क्योंकि ये दोनों महानुभाव मध्यप्रान्तके एम० एल० सी० हैं और जैन होनेसे इन तक मेरी आवाज पहुँचनेकी सम्भावनाभी थी। खासकर मिस्टर गोकुलचन्दजीसे मुझे बहुत आशाथी क्योंकि आप पुराने वकील, कानूनके अच्छे जानकार और अपने जिलेके सर्वश्रेष्ठनेता हैं। मेरी आवाज आप तक पहुँची कि नहीं पहुँची, यह मुझे नहीं मालूम परन्तु अनायास ही अगर आपके दिलमें यह शुभ विचार आया है तो इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। आपने इस विषयमें क्रियात्मक भाग लिया है इसलिये आपका अनुभवभी इस विषयमें पर्याप्त है। आप इस विषयमें सफल होंगेतो हजारों दीन बालिकाओंका मूक आशीर्वाद आपको मिलेगा और लाखों मनुष्य आपको धन्यवाद देंगे। सामान्यरूपसे इस बिलका मैं हृदयसे समर्थन करता हूँ। फिरभी इस बिलमें कुछ सुधार होनेकी गुंजाइश मालूम होती है। सम्भव है परिस्थितिवश बिलको कुछ संकुचित रखना पड़ा हो, परन्तु मुझे उस परिस्थितिका ठीक ठीक पता न होनेसे मैं अपने सुधार उपस्थित करता हूँ।

१—इस बिलकी चौथी कलम बदलना चाहिये। जिन जातियोंमें विधवाविवाहका अथवा विधवा-विवाह और तलाक दोनोंका रिवाज चालू है उन जातियोंको भी यह कानून लागू होना चाहिये। कहा जा सकता है कि "वृद्धके मरनेपर वह कन्या दूसरी जगह शादी कर सकती है, इसलिये वृद्धके साथ विवाह होनेमें उसकी क्या हानि है ?" परन्तु इसके विरोधमें निम्नलिखित आपत्तियाँ उपस्थितकी जा सकती हैं।

(क) इस सुधारयुगमें प्रायः सभी जातियोंमें विधवाविवाह होने लगे हैं। कुछ वर्षों बादतो उनकी संख्या औरभी बढ़ जायगी। कहीं कहीं पर पंचायतें जाति-बाहर कर देती हैं और कहीं कहीं पर नहीं भी करपाती हैं ऐसी हालतमें वृद्ध विवाह करनेवाला यह दावा कर सकता है कि हमारी जातिमें विधवा-विवाह होता है इसलिये यह क़ानून मुझपर लागू नहीं हो सकता। इस रिवाजका निषेध साबित करने के लिये शक्ति और समयकी बहुत बर्बादी होगी, और ऐसी ऐसी जटिल परिस्थितियाँ उपस्थित होंगी कि यह कहना कठिन होगाकि फैसलेका ऊँट किस करवट बैठेगा।

(ख) कई जातियाँ ऐसीभी हो सकती हैं और मुंबईमें तो है भी- जिनकी पंचायतोंमें विधवाविवाह का प्रस्ताव पास होगया है. तदनुसार कुछ विवाहभी होगये हैं जिससे जातिकी तरफसे कोई दण्ड नहीं दिया गया। इतना होने परभी इन जातियोंमें विधवा-विवाहके विषयमें अभी संकोच बनाही हुआ है। अनेक कुटुम्बोंका वातावरण विधवाविवाहके विरोध में होता है, जिससे जातिकी तरफसे कोई बाधा न होने परभी विधवाएँ विवाह नहीं कर पाती हैं। ऐसे वातावरणकी महिलाएँ वृद्धविवाहकी शिकार होनेपर विधवाविवाहकी छूटका कुछ उपयोग नहीं कर सकतीं, और उनकी जातिमें विधवाविवाहका प्रस्ताव होजाने से यह क़ानून वृद्धविवाहकी रोकमें बाधा न डाल पावेगा।

(ग) तीसरी बात यह है कि पुनर्विवाहका अधिकार मिल जाने परभी कन्याको जो वृद्धविवाह से कष्ट होता है वह दूर नहीं हो जाता। दूसरा विवाह तो वह तब करे जब वह बुड्ढा मरे। जबतक वह नाम-मात्रकी सधवा बनी रहेगी, तब तक वह विधवा न होने परभी वैधव्यकी यातना सहती रहेगी। और जब वह विधवा होगी तब उसके लिये ऐसा सम्बन्ध

मिलना मुश्किल होगा जैसाकि उसे कुमारी अवस्था में मिल सकताथा। जिन जातियोंमें विधवाविवाह और तलाक़का रिवाज है उनमेंभी यह अन्तर देखा ही जाता है। मतलबयह कि पुनर्विवाह या तलाक़के अधिकारसे वृद्धविवाहकी भयंकरतामें इतना अन्तर नहीं पड़ता जिससे उनको वृद्धविवाहनिषेधक क़ानून न लगाया जावे। एक युवककी किसी बुड्ढीके साथ शादी करदी जावे और उससे यह कहा जायकि जब यह बुड्ढी मरजाय तब तू दूसरी शादी कर लेना तो यह जितना अन्याय होगा उससेभी अधिक अन्याय उस बालिकाके साथ होगा जो वृद्धके साथ विवाही जाती है।

विवाह जितना स्थायी हो उतनाही अच्छा है। दुर्दैववश कोई स्त्री विधवा हो जावे तब उसका दूसरा विवाह करना उचित मालूम होता है। अन्यथा स्त्री के लिये एक कुटुम्बमें रहकर उसे त्याग कर दूसरे कुटुम्बमें जानेसे पुनर्जन्म सरीखी वेदना का अनुभव करना पड़ता है। फिर विवाहके लिये कुमारी अवस्था में जितनी सुविधाएं मिलती हैं उतनी विधवा अवस्था में नहीं; इसलिये उनका जीवन कष्टमयही बन जाता है। इसलिये सभीके लिये यह क़ानून लागू होना चाहिये।

दूसरी आपत्ति सम्भवतः यह उठाई जा सकती है कि अगर सबके लिये यह क़ानून होगातो अभीसे इसके विरोधियोंकी संख्या बढ़ जायगी। परन्तु मेरे खयालसे वृद्धविवाहके विरोधमें सभी जातियोंकी सम्मति है। विरोधियोंकी संख्या जितनी बढ़ेगी तदनुसार उसके समर्थकोंकी संख्याभी ज्यादः बढ़ेगी। यह विषय ऐसा है कि इसमें हिन्दू-मुसलमानोंकी खींचतान भी नहीं बढ़ सकती इसके अतिरिक्त मध्यप्रान्तमें मुसलमानोंका ज़ोरभी नहीं है।

सम्भव है और कुछ कारण हों जिनसे मि० गौड़जीने इस क़ानूनका क्षेत्र संकुचित रखना उचित समझा हो; परन्तु उन्हें प्रकाशमें लाना चाहिये जिनसे उनपर विचार किया जासके। अभीतक मेरीतो यही सलाह है कि यह क़ानून सभीके लिये लागू होना चाहिये।

२—पाँचवीं कलममें जो कन्याका अर्थ अविवाहित स्त्री किया गया है वह कुछ संकुचित है। इसके बदलेमें 'विवाह योग्य स्त्री' करना चाहिये, फिर भलेही वह विधवा अथवा त्यक्तपतिका हो। अनेक जातियाँ ऐसी हैं जिनमें दो दो तीन तीन वर्ष की बच्चियोंका विवाह करदिया जाता है और फिर उन्हें तलाक़भी दे दिया जाता है। बालविवाह निषेधक क़ानूनके होजाने परभी जहाँ उसका अमल नहीं हो पाता—और आजकल उसका अमल बहुत थोड़ा हो रहा है—वहाँ इस प्रकारकी विधवाएँ अथवा त्यक्ताएँ कन्या न कहला सकेंगी और फिर उनके अभिभावक उनको वृद्धोंके गले बाँध सकेंगे। जिन जातियोंमें पुनर्विवाह आमतौर पर चालू है, उनमें शैशव या बाल्यावस्थाके विवाहका इतना असर नहीं पड़ता जितनाकि युवा या किशोर अवस्थाके विवाहका पड़ता है। जो स्त्री युवावस्थामें किसी पतिके साथ रह जाती है फिर विधवा होनेपर उसको वे सुविधाएँ नहीं रहतीं जितनी कुमारी को रहती हैं।

विवाहके प्रकरणमें कन्या शब्दका अर्थ 'विवाह योग्य स्त्री' ही होता है, यह बात 'जैनधर्म और विधवा-विवाह' शीर्षक पुस्तक (द्वितीय-भाग) में मैं विस्तार से लिख कर चुका हूं। यहाँभी उसका यही अर्थ करना उचित मालूम होता है।

३—४५ वर्षसे अधिक उमरका पुरुष किसीभी कन्याके साथ शादी करेतो वह अपराधी है, यहाँ कन्याके बदले 'नाबालिग कन्या' रखना चाहिये। बालिग-कन्या (कुमारी, विधवा, या त्यक्तपतिका) जितनी चाहे उमरके पुरुषके साथ शादी कर सके, परन्तु उसे अमुक समय पहिले न्यायालयमें सूचना देना चाहिये और इक़रार करना चाहिये कि मैं यह सम्बन्ध स्वेच्छासे करती हूँ। अन्यथा छट्ठी कलमके अनुसार बालिग स्त्रीके साथ विवाह करनाभी अपराध माना जाय।

४—बारहवीं कलममें मुम्तगीससे जो जमानत लेनेकी बात है, उसकी रकम १०००) रु० अधिक है। अधिक से अधिक यह पचास या सौ रुपया होना चाहिये।

५—तेरहवीं कलमके भंगमें १५ वीं कलमके अनुसार सजा मिलेगी परन्तु इसमें छट्ठी कलमके भंगकी सजा शामिल न होना चाहिये। दोनों सजाएँ जुदी जुदी रहना चाहिये।

६—१४ वीं कलमकी दूसरी कलम इस क़ानून के प्रचारमें विशेष बाधा न डाल सके, इसलिये मावजे की रक़म ५००) के बदले कुछ कम करना चाहिये।

खैर, ये सब छोटी छोटी बातें हैं। सिलेक्ट कमेटीमें इन सब बातोंका विचार हो सकता है। परन्तु अभीतो इस बिलके समर्थनकी खास आवश्यकता है। इस बिलके समर्थनमें जैनजगत्के प्रत्येक पाठकको, खासकर मध्यप्रान्तके पाठकको, तुरंतही सम्मति भिजवाना चाहिये। साथही एक सम्मति-पत्र बनाकर उसपर हजारों हस्ताक्षर कराना चाहिये। हमारे पास जो हस्ताक्षर आयेंगे उन्हें हम जैनजगत् में प्रकाशित करदेंगे। अगर स्थानाभावसे न कर सके तो उनके सिर्फ नम्बर देकर वे पत्र सिंघईजीके पास भेजदेंगे।

हस्ताक्षर हरएक व्यक्तिसे कराना चाहिये। उसमें जैन या जैनेतरका भेद नहीं है। हाँ, एक पत्रपर ऐसे लोगोंसे हस्ताक्षर कराना चाहिये जिनमें पुनर्विवाह आदि होता है; दूसरे पर उनसे, जिनमें नहीं होता है। आशा है इस पुण्यकार्यमें पाठक अवश्य भाग लेंगे।

यह बिल अभी मध्यप्रान्तकी कौंसिलमें पेश होनेके लिये तैयार किया गया है, परन्तु बड़ी धारासभाके किसी सदस्यको इसकी तरफ ध्यान देना चाहिये। बड़ी धारासभामें पास होनेपर देशभरको इसका लाभ मिलेगा।

इतिहास और अलंकार।

अपने एक लेखमें मित्रवर बाबू कामताप्रसादजीने यह सिद्ध करनेकी चेष्टा की थी कि मुंडकोपनिषत्में जैनधर्म पाया जाता है, और वह जैनधर्मको प्राचीन सिद्ध करता है। इस विषयमें हर्टेल साहिबके कुछ उद्धरणभी मेरे मित्रने दिये थे। परन्तु उनमें जैनधर्म या जैनधर्मकी विशेषताओंका नामभी नहीं था। हाँ, उसमें एक जगह अग्निका नाम आया है। उसे मित्रजीने भावाग्नि बताकर जैनधर्मका सूचक बतलाया है। इसपर मैंने कहा था कि अग्निका सीधा अर्थ छोड़कर अगर इसप्रकार कल्पनाकी जायगी तब तो जिस चाहे वाक्यका जैसा चाहे अर्थ किया जासकेगा। फिर इस बातको मैंने अनेक उदाहरणसे समझाया था। इस विषयको मैंने जैनजगत वर्ष ८ अंक ६ में पृष्ठ ३ से ९ तक विस्तारसे समझाया है। बाबू कामताप्रसादजी इसका उत्तर देनेवाले हैं। तब रहीसही शंकाओंका मैं समाधान करदूँगा।

परन्तु इस चर्चाके बीचमें बैरिस्टर चम्पतरायजी जिस प्रकार आ कूदे हैं, यह उनके दुःसाहसका नमूना है। अगर बीचमें कूदनाही था तो मेरे आक्षेपोंका उत्तर देना था और मुंडकोपनिषत्में जैनधर्म साबित करना था। परंतु बैरिस्टर साहिबका विशाल पाण्डित्य ऐसे सूक्ष्म विषयमें घुसनेसे बहुत रगड़ा जाता है, शायद इसीलिये आपने बाहरसे ही औंधीसीधी सुनाकर अपने काँपते हृदयको आश्वासन दिया है।

आपने यह मानलिया है कि मैं अलंकार नहीं मानता। फिर अलंकार मनवानेके लिये निष्फल प्रयास किया है। परन्तु जिस वाक्यपर यह सारी चर्चा थी वह आलंकारिक है या नहीं, इसकी ज़राभी चर्चा आपने नहीं की है। मेरे विषयमें आप कहते हैं—"जब ऊँटकी नकेल कटजाती है तो सवार बिचारेकी बुरी दशा होती है। ठीक यही हाल बुद्धिका उस समय होता है जब बुद्धिके हाथसे कलमकी लगाम छूटजाती है। बुद्धि तो उस समय कलम जिधर चाहे घुमा फिरती है।"

बैरिस्टर साहिबके अलंकारशास्त्रके अगाध पाण्डित्य का परिचय इसी वाक्यसे मिलजाता है। आपको इतना भी नहीं मालूम कि इस रूपकमें ऊँट, नकेल और सवार इन तीनों उपमानोंके तीन उपमेय कौनसे हैं और ऊँटकी

नकेलकी तरह कलमकी लगाम क्या बला है ? इतने परभी आप कहते हैं कि "सम्पादक जैनजगत् मैं दावेके साथ कहसकता हूँ कि अलंकारके विषयमें बिलकुल अनभिज्ञ है।" इस वाक्यको पढ़कर अट्टहास्य करना अगर सभ्यता के विरुद्ध समझा जाय तोभी मुसकरानेको रोकना कठिन है। खैर, आपके दावेसे सिर्फ़ इतनाही सिद्ध होता है कि संसारमें आपके दावेसे बढ़कर निर्माल्य वस्तु दूसरी नहीं है।

पांडित्यके मिथ्योन्मादको प्रदर्शित करनेमें आपने जितना परिश्रम किया है उतना अगर यह बतानेमें करते कि आलंकारिक अर्थ कहाँ लगाया जाता है और कहाँ नहीं, तो ठीक था। परन्तु सम्भवतः इस विषयसेभी आप परिचित नहीं हैं। अमुक मनुष्य अग्निमें जलकर मरगया—यहाँ अग्निका अर्थ आलंकारिक नहीं है; और ज्ञानाग्निसे सब कर्म जलजाते हैं—यहाँ आलंकारिक है। इस भेदका क्या कारण है, अगर यह बात आपने समझी होती और फिर बाबू कामताप्रसादजीके वाक्यके आलङ्कारिक अर्थके औचित्यका समर्थन किया होता तो आपके अलंकारशास्त्र के पांडित्यका परिचय मिलता। खैर, अलंकारके विषय में आपके शब्दोंमें बिलकुल अनभिज्ञ होने परभी मुझे अपना दृष्टिबिन्दु उपस्थित करनेकी धृष्टता करना पड़ती है।

यहाँ मैं अभिधा, लक्षणा, व्यञ्जना आदिकी लम्बी चर्चा न करके सिर्फ़ यही कहूँगा कि जब हम किसीभी शब्दका अभिधेय अर्थ छोड़कर कोई दूसरा अर्थ लेते हैं तब वहाँ यह सिद्ध करना पड़ता है कि अभिधेय अर्थ यहाँ असंगत है—

'महात्माके दर्शनोंके लिये नगर दौड़ा आया'—इस वाक्यमें 'नगर'का अर्थ नगर में रहनेवाले मनुष्य' है, क्योंकि नगर कभी दौड़ नहीं सकता। अगर दौड़ना नगर में सम्भव होता तो नगरका अर्थ न बदला जाता।

मतलब यह कि किसी वाक्यको पढ़कर पहिले हमें यही देखना चाहिये कि इसका अभिधेय अर्थ संगत है या असंगत ? यदि असङ्गत हो तब हमें लक्षणासे अर्थ निकालनेकी कोशिश करना चाहिये। अन्यथा उसका सीधा (अभिधेय) अर्थही मानना चाहिये।

अलंकारका भाव अक़ली बेहूदगी नहीं है, किन्तु अलंकारके अर्थका विवेक न होना अक़ली बेहूदगी ज़रूर है। संसारसमुद्र, चारित्ररथ, शिवसुन्दरी, आदिमें आलंकारिक अर्थ है क्योंकि यहाँ इनका अभिधेय अर्थ असंगत है। परन्तु बाबू कामताप्रसादजीने जो अग्निका आलंकारिक अर्थ लिया है, वहाँ यह देखना चाहिये कि वास्तवमें वह ठीक है या नहीं।

"ईरानमें दाराके समयमें कई भारतीय संस्थान थे, जो प्रकाश और अग्निको पूजते थे, देवलोकके देवताओं की उपासनासे देवलोकमें पहुँचना मानते थे, देवताओं की प्रसन्नताके लिये पशुओंका बलिदान, सोमपान स्तवनादि करते थे। इन्डो ईरानियन मान्यता हिंसक और अपवित्र थी।"

उपर्युक्त वाक्यपर अगर थोड़ासाभी निष्पक्ष विचार किया जाय तो हरएक आदमी कहेगा कि यहाँ अग्निका अर्थ, भाव तप आदि नहीं है किन्तु साधारण अग्नि है। पहिले भारतीय, अग्निपूजा करते थे, ईरानमें अभीभी अग्निपूजा है और आजभी ईरानी धर्मस्थानोंमें अग्निकी उपासना होती है। अग्निका साधारण अर्थही यहाँ हर तरह संगत है, इसलिये उसका आलंकारिक अर्थ कदापि नहीं लिया जासकता।

बैरिस्टर साहिबने अपनी अलंकारज्ञताके तो बहुत गीत गाये परन्तु उनसे इतना न बना कि इस वाक्यमें अग्निका आलंकारिक अर्थ सिद्ध करते।

कभीकभी इतिहास या पुराण, काव्य जगत्में आकर अलंकार बनजाते हैं और कभी अलंकार, इतिहास बनजाते हैं। वेदोंके अनेक आलंकारिक वर्णन कथा बनगये हैं। और अनेक कथाओंके रूपक बनाकर कवियोंने उन्हें हवामें उड़ादिया है। उदाहरणार्थ रामायणकी कथाको कविवर बनारसीदासजीने आत्मामें ही घटादिया है। उनका—

'विराजे रामायण घटमाँहि'

वाला गीत प्रसिद्ध है, जिसमें आत्माको राम, ज्ञान को सीता आदि बताकर रामायणके सभी पात्रोंको आत्मा में घटादिया है। महात्मा गाँधीने अपने अनासक्ति योगमें कुरुक्षेत्रका अर्थ शरीर, कौरवका अर्थ आसुरी वृत्तियाँ और पांडवका अर्थ दैवीवृत्तियाँ किया है। स्व॰ वाड़ीलाल मोतीलाल शाहने गोशालका अर्थ इन्द्रियोंकी शाला किया था। ठीक इसीप्रकार मौलाना रूमने गोबधका

अर्थ इन्द्रियदमन किया है। इसप्रकारके कवित्वपूर्ण अर्थ काव्य जगतके सौन्दर्य कहे जासकते हैं और भावुक लोगों को उपदेश देनेके लिये काममें लाये जासकते हैं। परन्तु इन्हें इतिहासका आधार बनाना ऐसाही है जैसे किसी सुन्दरीका मुखचन्द्र काटकर प्रकाशके लिये किसी नगर के बीचमें लटकादेना। जो लोग काव्य और इतिहासके इस भेदको नहीं समझते उन्हें इतिहासके क्षेत्रमें बोलने का कोई उचित अधिकार नहीं है।

अलंकारोंका अगर इस प्रकार नासमझीसे उपयोग किया जायगा तो कविकी अनन्तशक्ति रामायण, महाभारत ही नहीं किन्तु संसार के सारे इतिहासको अलंकारोंमें परिणत करसकती है। फिर जैनइतिहासका भी अलंकारके शस्त्रसे संहार होजायगा।

बैरिस्टर साहिब कानूनके कितने बड़े पंडित हैं, इस विषयमें कुछ कहनेका मैं अपनेको अधिकारी नहीं मानता। परन्तु अलंकार और धर्मशास्त्रके विषयमें यह निश्चित कहा जासकता है कि इस विषयमें जिज्ञासुभावसे चर्चा करनेके लियेभी अभी बैरिस्टर साहिबको बहुत कुछ सीखना है। लेमगृ पंडिताईसे आप अनभिज्ञ लोगोंमें जितनी चाहे आत्मप्रशंसा करलें या करालें, परन्तु गम्भीर चर्चामें पड़ना आपके लिये बड़ाही खतरनाक है। इसका एक छोटासा नमूना आपके इस लेखमें भी है। आप लिखते हैं

"यदि यह बात सच है कि देवोंने इन कल्याणकोंमें भाग नहीं लिया तो फिर सिद्धों और तीर्थंकरोंका भेद उड़ जाता है और चौबीसकी संख्या व्यर्थ होजाती है, क्योंकि फिर तो तीर्थंकरभी सिद्धोंकी ही श्रेणीमें आजाते हैं।"

तीर्थंकरोंमें और सिद्धोंमें जो भेद है वह देवकृत है— इस अद्भुत आविष्कारसे आपके अगाध पांडित्यका पता लगता है। पाठक आश्चर्य करेंगे कि तीर्थंकर और सिद्धों का यह भेद कैसा? परन्तु जो लोग बच्चोंकी अस्तव्यस्त वचनावलीसे उनके भावोंको समझनेके अभ्यासी हैं, वे जल्दी समझ सकेंगे कि यहाँ बैरिस्टर साहिबने सामान्य केवलियोंके लिये 'सिद्ध' शब्दका प्रयोग किया है। बैरिस्टर साहिबको जैनधर्मका पारिभाषिक ज्ञानभी कैसा है, यह इसका एक नमूना है।

आपने जो जैनजगतके ऊपर ये आक्षेप किये हैं कि बाईस तीर्थंकरोंका अस्तित्व सिद्ध नहीं होता आदि, न सब बातोंका प्रस्तुत उत्तर बाबू कामताप्रसादजीके उत्तरमें खूब विवेचना पूर्वक दियागया है। जब आप इन सब बातोंका उत्तर देनेकी हिम्मत करेंगे तब आपको मालूम होगा कि मेरा वक्तव्य कितना दृढ़ है।

मोहनजोदारो और डॉ० प्राणनाथ साहिबान आदि की आपने दुहाई दी है। परन्तु शायद आपको यह पता नहीं है कि मोहनजोदारोकी खुदाईसे जैनधर्मकी प्राचीनतापर कितना प्रकाश पड़ता है, किस प्रस्तर में क्या चीज़ मिली है, और किस प्रस्तरकी प्राचीनता कितनी है। डॉक्टर प्राणनाथके वक्तव्यका जैनधर्मसे कितना सम्बन्ध है और उनके अर्थोंका ऐतिहासिक जगतमें अभी तक कितना मूल्य हुआ है, आदि बातोंका शायद आपको कुछभी पता नहीं है, उसकी गंभीर विवेचना तो दूर है। आप हैं तो बैरिस्टर परन्तु आपको इतनाभी ज्ञान नहीं है कि वादी, प्रतिवादी, साक्षी और न्यायाधीशके शब्दोंके मूल्यमें क्या अन्तर होता है और कब किसके किस वाक्य का क्या मूल्य है। खैर, मोहनजोदारोकी खुदाईके विषय में मैं बाबू कामताप्रसादजीके लेखका उत्तर देते समय स्पष्टतापूर्वक लिखनेवाला हूँ।

बैरिस्टर साहिबको मैं ज़ोरदार शब्दोंमें निमन्त्रण देता हूँ कि आप लेखमालाके किसीभी अंशपर या मेरे किसीभी लेखपर अपनी बैरिस्टरी शक्ति आज़मावें। इस प्रकार उड़ती हुई चुटकियाँ बजानेसे और मिथ्यापाण्डित्य के उन्मादका प्रदर्शन करनेसे आप उसकी दृढ़ताको नहीं समझ सकते। इन लोहेके चनोंको चबानेसे ही आपको मालूम होगा कि इनके चबानेसे दाँत टूट सकते हैं किन्तु ये नहीं फूट सकते।
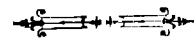
आवश्यकता है।

साहित्यसुधा ।

इस शीर्षकके नीचे मैं पाठकोंको संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी आदि भाषाओंके जैन साहित्यके ऐसे पद्योंका परिचय देना चाहता हूँ, जो शिक्षाप्रद हों अथवा जिससे पाठकोंका सात्त्विक मनोविनोद हो। जबजब मुझे समय मिलेगा तबतब मैं ऐसे पद्य हिन्दीअनुवाद सहित पाठकोंकी सेवामें रक्खूंगा। अन्य जैन विद्वानोंसेभी आग्रह है कि वे इस विषय में सहयोग दें। संस्कृतज्ञोंके पास इस विषयमें लिखने योग्य बहुत सामग्री रहती है।

यहाँ मैं "सिरिसिरिवालकहा"के पाँच पद्य देता हूँ जिससे पाठकोंको यहभी मालूम होगा कि जैन धर्ममें वीरताका क्या स्थान है, जैन महिलाएँभी वीरताकी कैसी पुजारिणी होती हैं। जैनधर्म युद्ध को ज़रूरी नहीं समझता, फिरभी न्यायरक्षाके लिये अगर युद्ध करना पड़े तो तलवार पकड़नेको वह कर्त्तव्य बताता है। एक तरफ़ जहाँ वह कीड़ीकी संकल्पी हिंसामें पाप समझता है, श्रावकत्वका नाश समझता है, दूसरी तरफ़ वह न्यायपक्ष पर रहकर खूनकी नदियाँ बहानेको कर्तव्य समझता है, श्रावकत्वकी रक्षा समझता है। वास्तवमें वह वीर और वीराङ्गनाओंका धर्म है।

श्रीपालके काका अजितसेनने बाल्यावस्थामें ही श्रीपालका राज्य छीनलिया था। श्रीपालको मारने की चेष्टा भी की थी परन्तु श्रीपालकी माताने बड़े साहसके साथ उसकी रक्षा की। समर्थ होनेपर श्रीपाल अपना राज्य लेने आया है और जब काका ने राज्य नहीं दिया तब यह न्याययुद्ध हुआ है। उसी समयका यह वर्णन है—

जणयपुरओवि तणयं का वि हु जणणी भणेइ वच्छ तए।
तह कहवि जुज्झिअव्वं जह तुह ताओ न संकेइ॥१०२५॥

पिताके सामनेही कोई माता अपने पुत्रसे कहती है 'हे पुत्र! तुझे इस प्रकार (वीरतासे) युद्ध करना चाहिये जिससे तेरे पिताको मेरे शीलके विषयमें संदेह न हो अथवा लोग तेरे पिताके विषयमें संदेह न करें। अर्थात् अगर तू कायरता दिखलायेगा तो लोग यही कहेंगे कि तू अपने पिताका पुत्र नहीं है। इसतरह मैं व्यभिचारिणी कहलाऊँगी।'

अन्ना भणेइ वच्छाहं वीरसुआ पिआ य वीरस्स।
तह तुमए जइयव्वं होमि जहा वीरजणणीवि॥१०२६॥

एक दूसरी माता अपने पुत्रसे कहती है—'वत्स! मैं वीरकी पुत्री हूँ, वीरकी पत्नी हूँ। अब तू इस तरह प्रयत्न कर जिससे मैं वीरकी माताभी बनजाऊं।'

धन्ना सच्चिअ नारी जीए जणओ पइअ पुत्तो अ।
वीरावयाय पयवी समस्सिआ हुंति तिन्निवि य॥१०२७॥

वह नारी धन्य है जिसका पिता पति और पुत्र ये तीनोंही वीरकी निर्मल पदवी प्राप्त करते हैं।

कावि पइं पइ जंपइ मह मोहो नाह नेह कायव्वो।
जीवंतस्स मयस्स व जं तुह पुट्ठिं न मुचिस्सं॥१०२८॥

कोई अपने पतिसे कहती है—'नाथ! तुम मेरा मोह न करना क्योंकि तुम जीवित रहोगे तो, अथवा युद्धमें काम आओगे तो, मैं किसीभी हालतमें तुम्हारा साथ न छोडूँगी।'

कावि हु हसेइ रमणं मह नयणह ओ विहोसि भयभीओ।
नाह तुमं किं तु जलंतभल्लअ घाए कहं सहसि॥१०२९॥

कोई नारी अपने पतिसे हँसकर कहती है—"जब तुम मेरी आँखोंके कटाक्षोंकी चोटसे भयके मारे काँपने लगते हो तो युद्धमें बिजलीके समान चमकते हुए भालोंकी चोट कैसे सहोगे?"

जिस देशकी पत्नियां अपने पतियोंको इसतरह हँसते हँसते युद्धक्षेत्रमें बिदा करसकती हैं, वह देश सदा अजेय है, वह कभी गुलाम नहीं होसकता।

सी० पी० वृद्धविवाहनिषेध बिल।

(१) इस ऐक्टका नाम सी० पी० वृद्ध विवाह निषेध ऐक्ट होगा।

(२) यह क़ानून सी० पी० भरमें लागू होगा।

(३) इसका अमल पास होनेपर फ़ौरन काममें लाया जायगा।

(४) यह कानून उन जातियोंमें लागू होगा जिनमें स्त्रियोंके पुनर्विवाह और तलाक़ होनेका रिवाज नहीं है।

(५) इस ऐक्टमें नीचे लिखे शब्दोंका अर्थ यह होगा:—

अ—'कन्या' के मायने अविवाहित स्त्री।

ब—'नाबालिग़' के मायने १८ सालसे कम उम्र का पुरुष या स्त्री।

(६) यदि कोई भी पुरुष जिसकी उम्र ४५ साल से अधिक हो, किसी कन्याके साथ विवाह करेगा तो उसको दोनों क़िस्ममें से एक क़िस्मकी क़ैदकी सज़ा दी जायगी जिसकी मियाद एक माह तक होगी या जुर्माना जिसकी हद १०००) रु० तक होगी, या दोनों सज़ा दी जायँगी।

(७) यदि कोई पुरुष ऐसी शादी करायगा, मदद देगा, शादीके कार्यमें भाग लेगा जो दफ़ा ६ के विरुद्ध की गई है तो वह उस दफ़ाके अयानतका जुर्मदार समझा जायगा और उसको वही सज़ा दी जायगी जो उस जुर्मके वास्ते रक्खी गई है।

(८) अ—अगर कोई नाबालिग़ लड़की ४५ वर्ष के ऊपरके उम्रके पुरुषको विवाही जायगी तो वह आदमी जिसके चार्जमें लड़की है, चाहे वह मा बाप हो, वली हो या किसी दूसरी हैसियतसे जायज़ या नाजायज़ तरह वली होकर लड़कीको रखता हो, शादी करनेकी इजाज़त दे या मदद दे या अपनी ग़फ़लतसे शादीको न रोके तो उसको दोनोंमें से एक क़िस्मकी एक माहकी क़ैद या १०००) रु० तक जुर्माना या दोनों सज़ायें दी जायँगी; मगर कोई जुर्मदार स्त्रीको इस दफ़ाके माफ़िक़ क़ैदकी सज़ा न जुर्मानेकी वसूली न होनेमें, न जुर्ममें दी जायगी।

ब—इस दफ़ाके लिये जबतक कि इसके विरुद्ध सबूती न दी जायगी यह मान लिया जायगा कि उसकी यदि नाबालिग़ लड़कीकी शादी दफ़ा ६ के विरुद्ध की गई है तो उस आदमीकी ग़फ़लतसे हुई है जिसके चार्जमें लड़की थी।

(९) दफ़ा १९० ज़ाब्ता फ़ौजदारी सन १८९८ लागू न होकर इस ऐक्टके जुर्मके मुक़द्दमे डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट या सबडिवीज़नल मजिस्ट्रेटकी अदालत में ही होंगे।

(१०) अदालतको इस ऐक्टके जुर्मके तहक़ीक़ातका अधिकार क़ानूनविरुद्ध शादी होनेके ६ महीनेके अन्दर इस्तग़ासा पेश होनेपर होगा।

(११) इस्तग़ासा पेश होनेपर अगर वह दफ़ा २०३ ज़ाब्ता फ़ौजदारी सन १८९८ के अनुसार ख़ारिज न हो तो अदालत बमूजिब दफ़ा २०२ ज़ाब्ता फ़ौजदारी सन् १८९८ के ख़ुद या बज़रिये मजिस्ट्रेट दर्जा अव्वलके तहक़ीक़ात करेगी।

१२) [१]मुस्तग़ीसके इज़हार होनेके बाद और मुलज़िमके तलब करनेके पेश्तर अदालत, सिवाय उन हालतोंके जो तहरीर किये जायँगे, मुस्तग़ीससे ज़मानतनामा मय या बिना ज़मानतदारोंके १०००) रु० तक बतौर ज़मानत वास्ते दिये जाने मावज़ा मुलज़िम बमूजिब दफ़ा २ ० ज़ाब्ता फ़ौजदारी सन् १८९८ के तलब करेगी और अगर यह ज़मानत वक़्त मुक़र्ररा पर पेश न की जायगी तो इस्तग़ासा ख़ारिज कर दिया जायगा।

[२]ज़मानतनामा जो इस दफ़ाके माफ़िक़ लिया जायगा वह ज़ाब्ता फौजदारी सन् १८९८ के माफ़िक़ समझा जायगा और ज़मानतनामोंकी दफ़ायें उसमें लागू होंगी।

(१३) अगर दफ़ा ६ के विरुद्ध शादीके होनेके पहले या शादी होते वक्त इस्तग़ासा पेश किया जाय और दफ़ा ११ और १२ की कार्रवाई हो चुके तो अदालतको अधिकार होगा कि मुलज़िम पर इस तरहका हुक्म निकाल सके कि मुलज़िम शादीकी कार्रवाईको बन्दकर दे और अदालतमें हाज़िर होकर सबब बतावे कि उसको ऐसी शादी न करनेका हुक्म क्यों न दिया जाय?

(१४) [१]—अगर तारीख़पेशी पर मुलज़िम अदालतको यह सबूत दे कि क़ानूनविरुद्ध शादी बिलकुल नहीं होना है तो अदालत अपना हुक्म रद्द करेगी और इस्तग़ासा ख़ारिज करेगी।

[२]—अगर अदालतकी रायमें यह पाया जावे कि मुस्तग़ीसने हुक्म झूठे वाक़यात वा दुश्मनीके सबबसे हासिल किया था तो अदालत मुलज़िमको ५००) रु० तक मुस्तग़ीससे मावज़ा दिला सकेगी और मावज़ेकी वसूली बतौर जुर्माना की जायगी।

(१५) जो आदमी दफ़ा १२ के हुक्मको न मानेगा, उसको सज़ा दोनों क़िस्ममें से एक क़िस्म क़ैद की होगी कि जिसकी मियाद ६ माह या १०००)रु० तक जुर्माना या दोनों होंगी।

(१६) अदालत जुर्माना होने पर मुस्तग़ीसको जुर्मानेकी रक़ममेंसे उसका असल ख़र्चा जो अदालत वाजिब समझेगी, दिलायगी।

कारण और उद्देश्य।

(१) इस समाजसुधारक क़ानूनकी आवश्यकता कईसालोंसे है। जिन जातियोंमें विधवाविवाहकी प्रथा प्रचलित नहीं है, उनमें बुड्ढोंकी शादी छोटी कन्याओंके साथ होनेका विरोध वे जातियाँ भरसक कररही हैं, पर सफलता नहीं होती। देशकी राय इन शादियोंके बिलकुल विरुद्ध प्रतीत हो रही है और हर ऐसी जातिके नवयुवकमंडल जी तोड़कर परिश्रम करने पर भी उनको बन्द नहीं करसके। सभाओंने प्रस्ताव पास किये पर शादी करनेवाले बुड्ढोंने उनको बिलकुल न माना। ये घृणित और भयंकर परिणाम वाली शादियाँ सिर्फ मालदार बुड्ढोंकी ही होती हैं और उनके बहुतसे रिश्तेदार वा मित्र उनके इस दुष्कृत्यमें शामिल होजाते हैं जिससे उनको समाजका कोई भय नहीं रहता, न उनको जरा भी ऐसी शादीका परिणाम लड़कीपर क्या होगा, इसका ध्यान रहता है। नतीजा यह होता है कि उन जातियोंमें विधवाओंकी तादाद बढ़ रही है जैसा कि मर्दुमशुमारीकी रिपोर्टोंसे जाहिर है और उन विधवाओंकी और उनके रिश्तेदारोंके कड़े व्यवहार वा दुःखभरी दशा देखकर अफ़सोस होता है। कैसे कैसे जुर्म इन विधवाओंके हाथसे होते हैं, यह हरएक समाज जानती है।

(२) दूसरा कारण यह है कि बुड्ढे धनवान लोग अपने स्वार्थवश लड़कीके वारिसोंको अच्छी रक़में देकर शादी कर लेते हैं। इससे नवजवान मध्यमदशाके कमाऊ पुरुषोंको वे लोग लड़कियोंको नहीं विवाहते। नतीजा यह होता है कि वे नवजवान विवश अपना सम्बन्ध किसी भी औरोंसे जोड़ लेते हैं और जातिसे अलग हो जाते हैं।

(३) पब्लिकको ऐसी शादियोंका बुरा परिणाम अच्छी तरहसे विदित है और कई सालोंसे इन शादियोंके बन्द करनेकी कोशिश होरही है पर, क़ानूनी सहायता न होनेसे सफलता नाममात्र ही होसकी।

(४) ख़ास करके मुझे स्वयं अनुभव इस प्रान्तकी परवार जातिका है। ३० सालसे समाज वा नवयुवक कोशिश कर रहे हैं पर बुड्ढोंके विवाह बन्द न कर सके।

(५) यह क़ानून केवल उन जातियोंको लागू होगा जिनमें विवाह एक धर्मसंस्कार समझा जाता है और एक वक़्त विवाह हुआ कि वह आजन्म संस्कार होचुका और जिन जातियोंमें स्त्रियोंका पुनर्विवाहका रिवाज नहीं है।

इन कारणोंसे इस क़ानूनकी आवश्यकता समझ बिल पेश किया गया है।

— गोकुलचन्द सिंघई, ऐम०ऐल०सी० दमोह।
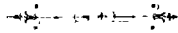
समाज–दशाष्टक।

(ले०—श्रीमूलचन्दजी जैन 'वत्सल' विशारद काव्यकलानिधि)

देशकी प्रगति।

अग्रसर बढ़ने को भरता छलाँग तीव्र,
करने लगा है विश्व क्रान्ति की उपासना।
खौलने लगा है रक्त युवकों की नाड़ियोंका,
भरने लगा विद्रोहकी प्रचंड भावना।
भग्न होने लगा दुर्ग स्वेच्छाचारिताका और–
नष्ट होचुकी है अंधश्रद्धाकी प्रभावना।
लेने को स्वतंत्रताको बढ़ने लगे हैं हाथ,
करने लगा है देश नव्य अवतारना।

जैन समाजकी प्रगति।

पड़ी अंधश्रद्धाकी हैं बेड़ियां पगों में और–
हाथ क्षुद्रता, संकीर्णता से जकड़े हुए।
मानते हैं वज्रलीक अपने विचारोंको ही,
होते टससे न मस टेक पकड़े हुए।
होरहा है विश्वमें क्या, भान इसका है नहीं,
अपनी ही आनबान में हैं अकड़े हुए।
गाते गीत पूर्वजों की कीर्ति और गौरव के,
आप अवनतिके हैं गर्त में पड़े हुए।

मुनिवर्ग।

दास बनालेतीं जिन्हें पलमें प्रलोभनाएँ,
जाता जिनका है दिल पल पलमें मचल।
नाचते गृहस्थवर्ग जैसा हैं नचाते इन्हें,
मर्कट जैसी जिनकी हैं वृत्तिएँ चपल।
जिनमें न नाम मात्र को भी स्वावलंबन है,
रहते न आत्मशक्ति पर कभी निश्चल।
तप का उग्र तेज ज्ञान का प्रकाश नहीं,
पंडितोंके हाथ ही हैं मुनि एकमात्र कल।

विद्वान् वर्ग।

जिनमें विचार की नहीं है सामयिक शक्ति,
रूक्ष तर्क जाल के नगाड़े जो बजाते हैं।
धनिकोंकी हाँ में हाँ मिलानेकी है बान जिन्हें,
दिनमेंही चन्द्र तारागण जो दिखाते हैं।
परदेमें दंभ, दुराग्रहके पड़े हुए हैं,
वचन विडंबना से जग को फँसाते हैं।
होरहे समाजपर नित्यही प्रहार नए,
किन्तु आप ताल ठोक सामने न आते हैं।

धनिक वर्ग।

आता क्षुद्र बंधुओं पै शासन चलाना इन्हें,
आता है स्वजातियों का प्रेम पाश तोड़ना।
आता निर्बलको सताना, पीस डालना है,
आता है सबल सन्मुख हाथ जोड़ना।
आता घरमें ही लड़ना अकड़ना है इन्हें,
आता धर्मयुद्ध से सशीघ्र मुँह मोड़ना।
आता पाप ढँकना समर्थ धनिकोंके और—
आता दीन हीन की कमर का मरोड़ना।

साधारण जनता।

भेड़िया धसान से हैं पद पीछे जाते चले,
स्वाभिमान है नहीं स्वतंत्रता की शक्ति है।
कुंठित हुआ है ज्ञान, तेज नहीं साहस है,
प्रतिभा, विचारशक्ति होती नहीं व्यक्त है।
आगे बढ़ते न स्वावलम्बन स्वगौरव से,
परतंत्रता से, दासता से अनुरक्ति है।
सबलोंकी छायाका है केवल सहारा इन्हें,
धनिकोंके चरण कमल की ही भक्ति है।

व्यापार ।

कोई ठगता की तलवार को चलाता नित्य,
कोई है स्वबंधुओं के स्वत्व को हड़पता ।
सट्टे की सटाकसे गटाक करता है कोई,
कोई फाटका के फाटकों पै आके अड़ता ।
दौड़ता है घुड़दौड़ की ही दौड़ में है कोई,
हीनाधिक्य देनेलेने से है कोई बढ़ता ।
ऋण लेके खोल देता अन्तमें दिवाला कोई,
यही व्यापार वणिकों का नित्य चलता ।

अकर्मण्यता ।

पड़े आप कूपमंडूकता के जाल में हैं,
चारों ओर अज्ञता का है अनंत अंधकार ।
पड़ती न आँखोंमें नवीन ज्योति विद्युत की,
दिखाता विज्ञान का इन्हें नहीं चमत्कार ।
रोते दीनता से भाग्य के भरोसे पर पड़े,
देखते चमकती न पौरुष की तलवार ।
वैभव विलासिता की ओर ललचाते और,
गाते शुष्क कंठसे हैं—संसार है असार ।

उपसंहार ।

सैनिको ! विशाल कर्मक्षेत्रमें निःशंक धँसो,
उठो ! अनुदारताके दुर्गको ढहादो आज ।
पतित, दलित, दीन बंधुओंको लगा गले,
भेद भाव कालिमा को शीघ्रही बहा दो आज ।
विश्व दौड़में न रह जाओ कहीं पीछे तुम,
शौर्य, शक्ति, साहस से चरण बढ़ादो आज ।
जातिको अखंड आत्म बलसे उठाके ऊँचे,
वीरता के गौरव गगन पै चढ़ा दो आज ।

वर्णव्यवस्था विषयक शास्त्रार्थ सम्बन्धी सूचना

वर्णव्यवस्थाके सम्बन्धमें ब्र० दिग्विजयसिंहजीके साथ हमारी जो लिखापढ़ी चली थी, उससे "जगत्" के पाठक परिचित ही हैं । कई मित्रोंने हमसे पूछा है कि आखिर उसका क्या हुआ ?

बात यह हुई कि लिखापढ़ीके प्रारम्भमें ब्र० दिग्विजयसिंहजी अजमेरमें थे । बीचमें वे अजमेर छोड़कर अन्यत्र कहीं चले गए और हमें अम्बालाके पतेसे पत्र लिखनेकी सूचना देते गए । हमने क़रीब तीन महीने पहिले अम्बालाके पतेपर उन्हें रजिस्टर्डपत्र लिखा, किन्तु उसका उत्तर अब तक उनकी ओरसे नहीं मिला है । ब्रह्मचारीजी इस समय कहाँ हैं, यहभी हमें पता नहीं । इसीकारण वह लिखापढ़ी बन्द होगई और शास्त्रार्थ रुक गया है । परिस्थितिपूजकों का सदासे यही हाल रहा है । वे ऐन मौक़े पर पीछे हट जाया करते हैं; यह सब देखते हुए पाठकोंको कुछ आश्चर्य नहीं करना चाहिए । —शोभाचन्द्र भारिल्ल, न्यायतीर्थ ।

ब्यावर समाचार ।

मुनिसंघके अत्यन्त दबाव पड़ने पर इस बार ब्यावर में मनमानी महासभाका नाटक खेल ही लिया गया ! महासभाकी इस समय जो स्थिति है उसे देखकर तरस आये बिना नहीं रहता । सचमुच अब वह इनेगिने ५–७ पंडितोंकी महासभा रहगई है ! उसकी कार्रवाइयाँ इतनी विचित्र हुआ करती हैं कि जिनसे प्रत्येक विवेकशील व्यक्ति को लज्जित होना पड़ता है । इस बार महासभाके अधिवेशन के आरंभका ही कुछ समय निश्चित न था । महासभाके कुछ सदस्य और प्रतिनिधि समझे हुए थे कि अधिवेशन १२ नवम्बरसे आरम्भ होने वाला है और महामन्त्रीकी सूचना भी इसी तारीख़की उनके पास पहुँची थी । मगर अधिवेशन ता० ११ नवम्बरसे ही आरम्भ कर दिया गया ! ता० ११ की रात्रि को कई महाशय पधारे—जिनमें डा० गुलाबचन्द्रजी पाटनी मुख्य थे । उन्होंने इस स्वेच्छाचारका तीव्र शब्दोंमें विरोध किया । आखिरकार ता० १२ को फिर पहले दिनका ही सीन दिखाया गया और विषयनिर्धारिणीसमितिका दूसरे दिन फिर चुनाव करना पड़ा ।

महासभाने क्या किया, यह बताना कठिन है । हमारी समझसे तो वह करने धरनेके क़ाबिलही नहीं रही है । यही कारण है कि महासभाका अधिवेशन करा देने की दया दिखाने वाले श्रीमानोंकी चापलूसीमें आकाश पाताल एक करके उन्हें उपाधियोंके जालमें फँसानेके सिवाय उससे कुछ भी न होसका ।

महासभाके नाटकके साथही साथ शास्त्रि परिषद्का भी ड्रामा खेला गया था । पं० इन्द्रलालजीने शान्त हुए कलहमें संतोष न मानकर एक नया राग आलापा । आपने

यह प्रस्ताव पेश किया कि विजातीय विवाहके पक्षपाती विद्वान् इस परिषद्के समासद न बनाए जायँ ! पं० देवकीनन्दनजी शास्त्री तथा पं० अजितकुमारजी शास्त्रीने इस प्रस्तावका विरोध किया । धीरे धीरे बात बढ़गई । पं० देवकीनन्दनजी पर मुनियोंकी ओरसे तथा श्रीमानों की ओरसे खूब दबाव डाला गया—उन्हें तरह तरहकी धमकियाँ दी गईं, उन्हें बर्बाद करने और बहिष्कृत करने का भय दिखाया गया, पर वे अपने पक्षसे ज़राभी विचलित न हुए । शास्त्रार्थकी नौबत आई । संभवतः शास्त्रार्थ का विचार पहलेही कर लिया गया था और इसी कारण विजातीयविवाहका विरोधी पंडितदल बड़ी तादादमें उपस्थित हुआ था ।

शास्त्रार्थ होना निश्चित होगया । आचार्य श्रीशान्तिसागरजीके स्थान पर पं० देवकीनन्दनजी आदि निश्चित समयसे कुछ पहले ही आपहुँचे; मगर प्रतिपक्षियोंका एक घंटे बाद तक पता न था । मालूम हुआ कि वे लोग महासभाकी सब्जेक्ट कमेटीमें जानेको तैयार हैं । अन्त में आग्रह करने पर वे किसी तरह आए ।

विरोधियोंका ख़याल था कि इतनी अधिक तादादमें हमें देखकर विजातीयविवाहके पक्षपाती शास्त्रार्थ करनेमें हिचक जावेंगे, मगर जब उनका यह विचार ग़लत प्रमाणित हुआ तो उनके रोंगटे काँपने लगे । उन्होंने एक बहाना बनाया कि शास्त्रार्थ एकान्तमें होना चाहिए । आचार्य महाराज भी विजातीयविवाहके पक्षकी प्रबलयुक्तियाँ जनता को सुनने देनेमें हिचकिचाते थे । पं० देवकीनन्दनजी आदि हरतरहसे शास्त्रार्थके लिए तैयार थे । मगर जनता शास्त्रार्थ में उपस्थित रहना चाहती थी । डा० गुलाबचंदजी पाटनी आदिने गुप्त शास्त्रार्थका तीव्रविरोध किया और इसी बात पर पं० इन्द्रलालजी, पं० पन्नालालजी सोनी आदिसे उनकी कुछ कहा सुनी भी होगई । जब जनताने एकान्तमें शास्त्रार्थ न होने दिया तो आचार्य महाराजने पं० मक्खनलालजी आदिकी प्रेरणासे उसे स्थगित कर दिया ।

सुनते हैं आचार्य महाराजने वंशीधरजी पंडित, मक्खनलालजी, खूबचन्दजी, कालारामजी, रामप्रसादजी आदिसे इस विषयमें कुछ शंकाएँ एकान्तमें कीं, मगर वे सबके सब मिलकर भी उनका समाधान न कर सके । आचार्य महाराजकी शंका थी—जबकि दोनों जातियाँ मोक्षकी अधिकारिणी हैं तो उनके पारस्परिक सम्बन्धसे उत्पन्न होने वाली सन्तान मोक्षकी अधिकारिणी क्यों न होगी ? इस शंकाका सन्तोषजनक समाधान पण्डित नहीं कर सके, तो आचार्य महाराजने कहा—बस, इन्हीं युक्तियोंपर शास्त्रार्थ करनेके लिए तैयार थे ? अस्तु ।

इस प्रकार इस पण्डित मण्डलीको जो कुबुद्धि सूझी उससे विजातीयविवाहका बहुत अच्छा प्रचार हुआ ।

—संवाददाता ।

वर की आवश्यकता ।

एक प्रतिष्ठित व धनसम्पन्न खण्डेलवाल कुलकी सुन्दर व शिक्षित बालिकाके लिये जिसकी आयु १३ वर्ष की है, एक सुयोग्य खंडेलवाल वरकी आवश्यकता है । कन्या पक्षकी सारें इसप्रकार हैं—

खुद—बाकलीवाल; लड़की भानजी—राँवका, पाटोदी बड़जात्या, पिता भानजा—गदिया; मा भानजी—पाटणी ।

पत्रव्यवहार पूर्णविवरणसहित इस पतेपर किया जाय—

बॉक्स नम्बर २५
C/o "जैनजगत्" अजमेर ।

[पृष्ठ दो से आगे]

विचार किया जाय । आप खिसिया कर प्रस्तावक व्यक्ति से बोले—तू तो सब प्रस्ताव एक साथ पढ़ कर सुनादे, पंच अपने आप मंजूर कर लेंगे । लेकिन कई पंचोंने चन्द्रसागरजी की निरधिकार चेष्टा तथा नीतियों में इस प्रकार पंचायत किये जाने का तीव्र विरोध किया । आख़िर चन्द्रसागरजी ने तय किया कि प्रस्ताव तो अभी पढ़ कर सुना दिये जायँ, जिस किसी को कोई ऐतराज़ हो वह एक महीने के भीतर सूचित करे; यदि कोई ऐतराज न आवे तो वे पास हुए समझे जावें । पंचायती कार्य में चन्द्रसागरजी इतने व्यस्त रहे कि उन्हें सामायिक करने की भी सुधि न रही और वे सायंकाल के ६। बजे तक वहीं बैठे रहे ।

बेहतर हो अगर चन्द्रसागरजी को अपनी पंचसत्ता की हविस पूरी करने के लिये कुछ समय के लिये छुट्टी देदी जाय । उन्हें अभी लोहड़साजनों को दस्सा प्रमाणित कर खंडेलवाल महासभा से अलग कराना है ! सम्भव है हविस पूरी हो जाने के बाद जब वे दुबारा मुनिपदारूढ़ हों तो ऐसी मुनिपद को लजाने वाली क्रियाएँ न करें ।

—संवाददाता ।

Printed by Pt. Radhaballabh Sharma, at the Ajmer Printing Works, Ajmer.

तार का पता—"JAINJAGAT" Ajmer. Reg: No. N 352.

वर्ष ९ — १ दिसम्बर — सन् १९३३ — अंक २

जैनसमाज का एकमात्र स्वतन्त्र पाक्षिकपत्र।

卐 जैन जगत् 卐

वार्षिक मूल्य ३) रुपया मात्र।

विद्यार्थियों व संस्थाओं से २॥) मात्र।

(प्रत्येक अंग्रेज़ी महीने की पहली और सोलहवीं तारीखको प्रकाशित होता है)

"पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनम् यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः"॥—श्रीहरिभद्रसूरि।

सम्पादक—सा०र० दरबारीलाल न्यायतीर्थ, जुबिलीबाग तारदेव, बम्बई।

प्रकाशक—फतहचंद सेठी, अजमेर।

प्राप्तिस्वीकार—

जैनजगत्के लिये निम्नप्रकार सहायता प्राप्त हुई है—

१०) श्रीमान् बा० अजितप्रसादजी ऐडवोकेट लखनऊ

१५) श्रीमती शान्तिदेवी बम्बई।

२५) गुप्तदान।

उपरोक्त दातारोंको इस उदारताके लिये अनेकानेक धन्यवाद। —प्रकाशक।
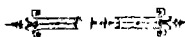
ग्राहकोंसे पुनः निवेदन।

गतांकमें प्रकाशित सूचनाके अनुसार कई ग्राहकोंने पत्रका वार्षिक मूल्य मनीऑर्डर द्वारा भिजवा दिया है; परन्तु अभीतक बहुतसे ग्राहकोंने न मूल्य भेजा है, न कोई सूचनाही दी है। हम ता० १५ दिसम्बर तक उत्तरकी प्रतीक्षा करेंगे। उस समय तक जिनकी ओरसे मूल्य प्राप्त न होगा, उन्हें यह समझकर कि वे ग्राहक रहना चाहते हैं तथा वी० पी० मँगवाना चाहते हैं, वी० पी० भिजवादी जायेगी। जो महानुभाव किसी कारणवश आगेके लिये ग्राहक न रहना चाहें, उनसे हम इतनी आशा अवश्य करते हैं कि वे इस अंकको पातेही हमें इनकारी भिजवादें अथवा यह अंक वापिस लौटादें। हमें पूर्णविश्वास है कि अपने दो पैसे बचानेके लिये वे पत्रको वृथा सवा तीन आनेकी हानि कदापि नहीं पहुँचायेंगे।

जैनजगत्के प्रेमी पाठकोंसे हमारा नम्र निवेदन है कि वे अपने मित्र बांधवोंमें जैनजगत्का प्रचार करें जिससे जैनजगत्के मंतव्योंके प्रचारके साथ पत्रकी आर्थिकस्थिति सुधरे तथा वह समाजकी अधिकाधिक सेवामें प्रवृत्त होसके। —प्रकाशक।

अजमेरमें मुनिसंघके दर्शन—

तीर्थक्षेत्रोंकी वंदना करता हुआ मैं ता० २५ नवम्बर को अजमेर उतर पड़ा था। दक्षिणी संघके मैंने अभीतक दर्शन नहीं किये थे, किन्तु उसके सम्बन्धमें तरह तरहकी बातें जैनजगत आदि पत्रोंमें पढ़ा करता था। प्रत्यक्षमें देखकर बहुधा वे सभी बातें सत्य पाई। जब मैंने रात्रि के समय मुनि चन्द्रसागरजीको शास्त्र सभामें और अनाथालय दिल्लीके एक ड्रामामें उपस्थित देखा तब तो मेरे आश्चर्यका कोई ठिकाना नहीं रहा। दिगम्बर मुनियोंका ड्रामामें, और वह भी रात्रिके समय, जाना मुनियोंका ही ड्रामा कहना चाहिये।

रात्रिको शास्त्रसभामें मुनि चन्द्रसागरजीने जब मुझे खादीमय देखा तब वे घूर घूरकर देख रहे थे, कारण कि खादीधारियोंसे उन्हें बहुत चिढ़ है! आचार्य शान्तिसागरजी आदि रातमें ही नहीं किन्तु दिनको ८ बजे भी एक कमरेमें पयाल (प्यार) पर कुकरे हुये बैठे थे और एक सेठसे धीरे धीरे कुछ सलाह कर रहे थे। उनके कमरेमें इलेक्ट्रिक लाइट (बिजली) लगी हुई थी। गृहस्थ लोग तो रातको ही बिजली जलाते हैं, मगर साधुओंको दिनमें भी बिजलीकी

रोशनीमें देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। बिजलीके कारण पंखियोंकी हिंसामें साधुलोग निमित्त नहीं माने जाने चाहिये? यह जानकर तो और भी आश्चर्य हुआ कि निर्ग्रन्थ (?) साधुओंके पास घड़ी और नाखून काटनेकी मशीन भी रहती है। हज़ारों स्त्री पुरुषोंकी भीड़में रथयात्राके समय मुनिसंघ चल रहा था, तब ईर्यासमितिका पालन कैसे होता होगा? एक नहीं, ऐसी कई बातें मैंने साधुओंमें देखी जिनसे वर्तमान मुनिसंघमें बहुतही अश्रद्धा उत्पन्न होगई। और साथही इस बातका दुःखभी हुआ कि जगत्पूज्य दिगम्बर धर्मका बुरी तरहसे विनाश हो रहा है।

—परमेष्ठीदास जैन न्यायतीर्थ-सूरत।

श्री शान्तिसागरजी (दक्षिण) से

वार्तालाप:—ता० २ दिसम्बरको करीब तीन घण्टे दिनको दो बजे से पाँच बजे तक श्री शान्तिसागरजी से हमारा वार्तालाप हुवा था। इसका पूरा विवरण आगामी अंकमें प्रकाशित होगा। वार्तालापमें कतिपय विषयोंके सम्बन्धमें निश्चय हुवा था कि उन्हें शास्त्र प्रमाण बताया जाय। तदनुसार ता० ३ दिसम्बर को उक्त शास्त्र प्रमाण बताये जाने तथा अन्य विषयों पर भी उनसे चर्चा होती, किन्तु एकाएक युगलसंघने वहाँसे प्रस्थान कर दिया।

—प्रकाशक।

मुनिवेषी चंद्रसागरजी—लोहड़ साजनों के खिलाफ़ आन्दोलन करनेके लिये खुल्लमखुल्ला मैदानमें आगये हैं। नसीराबादमें उन्होंने यह घोषित किया है कि जो व्यक्ति लोहड़साजनोंके यहाँ कच्ची रसोई जीमता है, वह भी लोहड़ साजनही है अतः हम उसके हाथका भी आहार नहीं लेंगे। प्रतिग्रहके समय श्रावक यदि यह कहे कि लोहड़ साजनोंके साथ कच्ची रोटीव्यवहार करने केमेरे आजन्म त्याग हैं तो मुनिजी आहार लेते हैं, वरना लौट जाते हैं। चन्द्रसागरजी तथा उनके भक्तलोग श्रीशान्तिसागरजी (दक्षिण) की खुल्लमखुल्ला बुराई करने लगे हैं।

खण्डेलवाल जैनसमाजके नेताओंको चाहिये कि वे चन्द्रसागरजीकी प्रवृत्तिको रोकें अन्यथा समाजमें भीषण कलह होने की सम्भावना है। —सम्वाददाता।

विधवा-विवाह।

ता० २२ नवम्बरको आकोलामें उज्जैन निवासी श्रीमान् जगन्नाथप्रसादजी खेतरामजी दिगम्बर जैन का विवाह श्रीमती पार्वती बाईके साथ हुवा। 'प्रजापत्र' के सहायक सम्पादक श्रीमान् भाऊराव साबरकर तथा श्रीमान् कस्तूरचन्दजी वैदने उक्त विवाहके अनुमोदनमें भाषण दिये। वर-पक्षकी ओरसे जैन विधवा आश्रमको १००) रु० तथा जैनमंदिरको २०) रु० भेंट किये गये। —मंत्री जैन विधवाश्रम।

भारत दिगम्बर जैनपरिषद्‌का १० वाँ वार्षिक अधिवेशन।

पाठकों को मालूम होगाकि श्रीभारत दि० जैन परिषद्‌का १० वाँ वार्षिक अधिवेशन ता० २९, ३० दिसम्बरको इटारसीमें होना निश्चय हुवा है। सभापतिका आसन श्रीमान् बा० जमनाप्रसादजी ऐम०ए० ऐलऐल० बी० बार एटलॉ, सबजज, सुशोभित करेंगे। अधिवेशनको पूर्णतया सफल बनानेके लिये खूब तैयारियाँ की जारही हैं। श्रीमान् बैरिस्टर चम्पतरायजी तथा अन्य कई विद्वानोंके पधारनेकी आशा की जाती है। आपभी परिषद्‌में सम्मिलित होनेके लिये अभीसे निश्चय करलें। — सुंदरलाल जैन वैद स्वागतमंत्री।

आवश्यकता।

मेरे एक खंडेलवाल जैनमित्रके विवाहके लिये, जिनकी आयु ३२ वर्षकी है, तथा जो स्वस्थ, सुंदर व सुधारप्रेमी हैं, किसीभी दिगम्बर जैनजातिकी कुमारी कन्या अथवा बालविधवाकी आवश्यकता है। उनकी घरकी दुकानदारी है तथा आर्थिकस्थिति अच्छी है। पत्रव्यवहार पूर्णविवरण सहित इस पते पर किया जाय— आर० के० जैन।

C/o पी० ऐन० काला, छिंदवाड़ा (सी० पी०)

वरकी आवश्यकता।

अन्तर्जातीय-विवाहके लिये सुयोग्य कन्याकी आवश्यकता है। वरकी उमर २४ वर्षको है। वे बीसा पोरवाल दिगम्बरी हैं। १४०) रु० वेतन मिलता है।

पता—गौतमचन्द नेमीलाल जैन हैडमास्टर,
गवर्नमेंट मिडिल-स्कूल आष्टी।
पो० बीड़ सांगली (जि० अहमदनगर)

जैनधर्म का मर्म ।

(३७)

१०—प्रश्नव्याकरण—इसकी सीधी व्याख्या यह है कि जिसमें प्रश्नोंका उत्तर हो, वह प्रश्नव्याकरण है। परन्तु किस विषयके प्रश्नोंका उत्तर है, यह कहना कठिन है। नंदीसूत्रमें लिखा है—"प्रश्न व्याकरणमें एकसौ आठ प्रश्न (पूछनेसे जो विद्या या मंत्र उत्तर दें) एकसौ आठ अप्रश्न (जो बिना पूछे उत्तर दें) और एक सौ आठ प्रश्नाप्रश्नका वर्णन है अर्थात उसमें अंगुष्ठ प्रश्न, बाहु प्रश्न, आदर्शप्रश्न‡ तथा औरभी विचित्र विद्या अतिशय देवोंके साथ वार्तालाप आदिका वर्णन है।*

परन्तु वर्तमानमें जो प्रश्नव्याकरण सूत्र उपलब्ध है उसमें इन बातोंका वर्णन नहीं है इसलिये इसके संस्कृत टीकाकार अभयदेवका† कहना है कि आजकल इसमें सिर्फ आश्रवपञ्चक और संवर पञ्चकका वर्णन है, पूर्वाचार्योंने आजकलके पुरुषोंकी कमजोरी देखकर अतिशयोंको दूरकर दिया है।

राजवार्तिककार अकलंकदेव* कहते हैं कि आक्षेप विक्षेपसे हेतु नयाश्रित प्रश्नोंका उत्तर (खुलासा) प्रश्न व्याकरण है। इसमें लौकिक और वैदिक अर्थों का निर्णय किया जाता है।

उमास्वातिभाष्यके टीकाकार श्रीसिद्धसेन‡ गणी कहते हैं कि पूछे हुए जीवादिकका भगवानने जो उत्तर दिया वह प्रश्न व्याकरण है।

धवलकार इसमें चार प्रकारकी कथाओं (चर्चा) का उल्लेख बताते हैं, और गन्धहस्ति तत्वार्थभाष्य† का एक श्लोक उद्धृत करतेहुए चर्चा ओंके नाम आक्षेपणी विक्षेपणी संवेगिनी निर्वेगिनी कहते हैं।

गोम्मटसारके टीकाकार इसकी व्याख्या दोतरह§

*पण्हावागरणेसु णं अट्ठुत्तरं पसिणसयं अट्ठुत्तरं अपसिणसयं अट्ठुत्तरं पसिणा पसिणसयं तं जहा अगुट्ठपसिणाइं बाहुपसिणाइं अद्दागपसिणाइं, अन्नेविविचित्ता विज्जा इसगा नागसुवण्णेहिं सद्धिं दिव्वा संवाया आघविज्जंति। नंदीसूत्र ५४

‡ मूलरूप 'अद्दागपसिण' है। अद्दाग देशी शब्द है जिसका अर्थ आदर्श अर्थात् दर्पण होता है। पुराने समय में रोगीको दर्पणमें प्रतिबिम्बित करके उसकी मानसिक चिकित्सा कीजाती थी। इसे आदर्श विद्या कहते थे।

† इदन्तु व्युत्पत्त्यर्थोऽस्य पूर्वकालेऽभूत् इदानीन्तु आश्रव पञ्चक संवर पंचक व्याकृतिरेवेहोपलभ्यते, अतिशयानां पूर्वाचार्यैरैदंयुगीनानामपुष्टालम्बनप्रतिषेविपुरुषापेक्षयोत्तारितत्वादिति।

* आक्षेपविक्षेपैर्हेतुनयाश्रितानाम् प्रश्नानाम् व्याकरणं प्रश्नव्याकरणं तस्मिंल्लौकिकवैदिकानामर्थानां निर्णयः रा० वा० १-२०-१२

‡ प्रश्नितस्य जीवादेर्यत्र प्रतिवचनम् भगवतादत्तं तत्प्रश्न व्याकरणम्। १–२०

† उक्तञ्च भाष्ये—आक्षेपणीं तत्त्वविचारभूताम्। विक्षेपणीं तत्त्वदिगन्तशुद्धिं। संवेगिनीं धर्मफलप्रपञ्चाम्। निर्वेगिनीं चाह कथाविरागाम्।

§ प्रश्नस्य—दूतवाक्य नष्ट मुष्टिचिन्तादिरूपस्य अर्थः त्रिकालगोचरो धनधान्यादिलाभालाभसुखदुःख जीवितम-

से करते हैं। प्रथमके अनुसार इसमें फलित ज्योतिष या सामुद्रिकका वर्णन है। इसमें तीनकालके धनधान्य लाभ अलाभ सुखदुःख जीवनमरण, जयपराजयका खुलासा किया जाता है। दूसरी व्याख्याके अनुसार शिष्यके प्रश्नके अनुसार आक्षेपणी विक्षेपणी संवेजनी निर्वेजनी चर्चा है। जिसमें परमतकी आशंका रहित चारों अनुयोगोंका वर्णन हो वह आक्षेपणी। जिसमें प्रमाण नयात्मक युक्तियोंके बलसे सर्वथैकान्तवादोंका निराकरण हो वह विक्षेपणी। तीर्थंकरादिका ऐश्वर्य बतलाते हुए धर्मका फल बताया जाय वह संवेजनी, पापों का फल बताकर वैराग्यरूप कथन जिसमें हो वह निर्वेजनी।

इसप्रकार दोनों सम्प्रदायोंमें दो दो तरहकी व्याख्या पाईजाती है। इससे यह बात मालूम होती है कि मूलमें इस अंगका विषय कितना किसढंगसे क्या था, यह ठीक ठीक किसी आचार्यको नहीं मालूम। फिरभी इस अंगके ठीक ठीक रूपको जानने की सामग्री अवश्य है। उपर्युक्त विवेचनमें निम्नलिखित प्रश्न विचारणीय हैं—

१—जैनधर्मका अंगसाहित्य वास्तवमें धर्मशास्त्र है इसलिये उसमें सामुद्रिक या फलित ज्योतिषकी मुख्यता लेकर विषयका विवेचन कैसे होसकता है? गौणरूपमें भलेही ये विषय आवें परन्तु मुख्यरूपमें ये विषय कदापि नहीं आसकते, इसलिये इसका मुख्य विषय बतलाना चाहिये।

२—व्याख्याप्रज्ञप्तिमें भी इसी विषयके प्रश्नोत्तर हैं, तब व्याख्याप्रज्ञप्तिसे इस अंगमें क्या विशेषता रहजाती है?

इनसब बातोंपर विचार करनेसे यह बात मालूम होती है कि उपर्युक्त आचार्योंके मत इस अंगके एक एक रूपको बतलाते हैं, उसके मुख्य रूपको प्रकट नहीं करते हैं इसलिये यह गड़बड़ी है। गड़बड़ीका एक कारण यह भी है कि जैनधर्मके अंगसाहित्यकी रचना इस ढंगसे हुई है कि उसका मौलिकरूप प्रारम्भमें ही नष्ट होगया है। जैनसाहित्यमें ऐसे वर्णन नहीं मिलते या नाममात्रको मिलते हैं कि कौनसी बात किसके द्वारा किस अवसरपर किस बातको लक्ष्यमें लेकर कही गई है। जैनसाहित्यमें नियमों और सिद्धान्तोंका संग्रह तो है परन्तु उनका इतिहास नहीं है, जैसाकि बौद्ध साहित्यमें पाया जाता है। कुछ तो मूलमें ही यह इतिहास नहीं रक्खा गया और कुछ शीघ्र नष्ट होगया।

मेरा कहना यह है कि प्रश्न व्याकरणमें भगवान महावीरके और उनके शिष्योंके उन शास्त्रार्थोंका, वादविवादोंका तथा वीतराग चर्चाओंका वर्णन है जो उस समय परस्परमें या दूसरे मतवालोंके साथ हुए हैं। इन चर्चाओंका विषय एक नहीं था, परन्तु जब जैसा अवसर आता था उसी विषयपर चर्चा होती थी। व्याख्याप्रज्ञप्तिमें तो इन्द्रभूतिने या भगवान महावीरके शिष्योंने जो प्रश्न भगवान महावीरसे पूछे उनका उत्तर है, परन्तु प्रश्न व्याकरणमें तो महावीर-शिष्योंकी पारस्परिक चर्चाएँ और अन्य तीर्थिकों के साथकी चर्चाएँ हैं। प्रश्न व्याकरणांग शास्त्रार्थों

रण जयपराजयादिरूपो व्याक्रियते व्याख्यायते यस्मिस्तत्प्रश्नव्याकरणं। अथवा शिष्यप्रश्नानुरूपतया अवक्षेपणी विक्षेपणी संवेजनी निर्वेजनी चेतिकथा चतुर्विधा। तत्र प्रथमानुयोगकरणानुयोगचरणानुयोग द्रव्यानुयोगरूपपरमागम पदार्थानां तीर्थंकरादिवृत्तान्त लोकसंस्थानदेशसकलयति धर्मपञ्चास्तिकायादीनां परमताशंकारहितम् कथनमाक्षेपणी कथा। प्रमाणनयात्मक युक्तियुक्त हेतुत्वादिबलेन सर्वथैकान्तादि परसमयार्थनिराकरणरूपा विक्षेपणी कथा। रत्नत्रयात्मकधर्मानुष्ठान फलभूत तीर्थंकराद्यैश्वर्यप्रभाव तेजोवीर्य ज्ञानसुखादि वर्णनारूपा संवेजनी कथा। संसारशरीर भोगरागजनित दुष्कर्मफलनारकादिदुःख दुष्कुल विरूपांग दारिद्र्यापमानदुःखादिवर्णनाद्वारेण वैराग्यकथनरूपा निर्वेजनी कथा एवंविधाः कथाः व्याक्रियन्ते व्याख्यायन्ते यस्मिंस्तत्प्रश्न व्याकरणं नाम दशमंमंगम्। गोम्मटसार जीवकाण्ड टीका ३५७

की रिपोर्टों का संग्रह है इसीलिये अकलंकदेव कहते हैं कि इसमें लौकिक वैदिक शब्दोंका अर्थ किया जाता है। शास्त्रार्थका अर्थ है, जिसमें शास्त्रका अर्थ किया जाता हो। अकलंकदेवकी एक परिभाषा प्रश्न व्याकरणके स्वरूपको बहुत कुछ स्पष्ट करती है।

ऊपर जो भिन्नभिन्न आचार्योंने प्रश्न व्याकरण के जुदेजुदे विषय बतलाये हैं, वे सब वादविवादमें सम्भव हैं इसलिये उन सबका विवरण प्रश्नव्याकरणांगमें आना उचित है।

शास्त्रार्थका लक्ष्य यद्यपि तत्त्वनिर्णयही है परन्तु अज्ञातकालसे इसमें जयविजयकी भावनाका भी विष मिला हुआ है। इसका एक कारण यह है कि जनसमाजकी निर्णय करनेकी कसौटीमें ही विकार आगया है। उदाहरणार्थ—सीता अग्निमें कूद पड़ीं और नहीं जलीं, इसलिये लोगोंने उन्हें सती मानलिया। परन्तु यह न सोचा कि सतीत्वका और अग्निमें न जलनेका क्या सम्बन्ध है ? दोदो चार चार वर्षकी बालिकाएँ जिनमें कि असतीत्वकी सम्भावना भी नहीं होसकती, अगर अग्निमें डालनेसे न जलती होतीं तो समझा जाता कि ब्रह्मचर्यमें अग्निको पानी करदेनेकी शक्ति है। वास्तवमें अग्निमें जलने न जलनेका असतीत्व सतीत्वके साथ कोई संबंध नहीं है। किसी मंत्र तंत्रके प्रभावसे एक असती भी यह सफ़ाई बता सकती है और सती भी फेल होसकती है। इसलिये निर्णयकी यह कसौटी ठीक नहीं है। फिरभी लोग इसे पसंद करते थे। इसीप्रकार एक साधु किसी राजकुमारको—जिसे सर्पने काटा है—जीवित करदेता है। लोग उसे सच्चा मानकर उसके धर्मको स्वीकार करलेते हैं। परन्तु वैद्यक के इस चमत्कारसे धर्मकी सत्यता असत्यताका क्या सम्बन्ध है, यह नहीं सोचते। दुर्भाग्यसे पुराने समय में धर्मप्रचारके लिये इस प्रकारके चमत्कारोंसे बहुत कुछ काम लिया जाता था। आजकल भी इस ढंगके चमत्कार दिखाये जाते हैं परन्तु अब लोग इन्हें तमाशा समझते हैं और ये अर्थोपार्जनके साधन समझे जाते हैं। पहिले समय ये चमत्कार मुख्यतः धर्मप्रचारके साधन बने हुए थे। भगवान महावीर इन चमत्कारोंका उपयोग करते थे कि नहीं, यहतो नहीं कहा जासकता परन्तु उनके शिष्य अवश्य करते थे। सम्भव यही है कि वे भी इस चमत्कारका उपयोग करते हों। उस युगकी परिस्थिति पर विचार करते हुए यह कोई निन्दाकी बात नहीं थी। ये चमत्कार धर्मप्रचारका अंग होनेसे धर्मशास्त्रोंमें इनका समावेश हुआ था।

यह बात केवल जैनसम्प्रदायके विषयमें ही नहीं कही जासकती, किन्तु अन्य सब सम्प्रदाय इनका उपयोग करते थे। महावीर और गोशालके अनुयायिओंमें जो प्रतिद्वन्दिता चलरही थी और गोशालने जो महावीरके ऊपर तेजोलेश्याका प्रयोग किया था उसका पूरा रहस्य यद्यपि अभी अज्ञात है परन्तु इससे जैन और आजीवक सम्प्रदायमें चमत्कारोंकी प्रतिद्वन्दिताका पता लगता है। बौद्धसाहित्यसेभी इस बातका पता लगता है। बुद्धके शिष्य बहुत चमत्कार बतलाया करते थे। पीछे बुद्धने अपने शिष्योंको चमत्कार दिखलानेकी मनाई की थी। मनाईका कारण चाहे बुद्धकी उदारता हो, या इस विषयमें उनके शिष्योंकी असफलता हो, या जनतामें फैलनेवाली अशान्तिका भय हो, निश्चयसे कुछ नहीं कहा जासकता। फिरभी स्वयम् महात्मा बुद्ध चमत्कार दिखलाते थे ! शिष्योंको मना करनेके बादभी उनने चमत्कार दिखलाये हैं। सभी दर्शनोंके प्रधान प्रधान व्यक्ति चमत्कारोंकी प्रतियोगितामें शामिल होते थे और दर्शकोंमें राजा लोगभी होते थे, यह बातभी बौद्ध साहित्य* से मालूम होती है।

ख़ैर, यहाँ मुझे इस विषयका विस्तृत इतिहास

* धम्मपदट्ठकथा।

नहीं लिखना है; सिर्फ इतनी बात कहना है कि वाद विवादके विषयोंमें चमत्कारोंका महत्त्वपूर्ण स्थान था, और यह बहुत पीछे तक रहा। इतनाही नहीं किन्तु विद्यार्पाठोंमें यह शिक्षणका विषयभी बना रहा है। तक्षशिलाके प्रसिद्ध विश्वविद्यालयमें इस विषयका प्रोफेसरही नियत किया गया था। इससे जैन शास्त्रोंमें भी इस विषयको स्थान मिला और प्रश्नव्याकरणमें ये सब चर्चाएँ आईं। इससे मालूम होता है कि प्रश्नव्याकरणमें महावीरके समयमें होने वाले वादविवादोंका वर्णन था और उसमें प्रायः सभी विषयोंपर चर्चाएँ थीं।

उपलब्ध प्रश्नव्याकरणके टीकाकार अभयदेव इस अंगका नाम 'प्रश्नव्याकरणदशा' भी बतलाते हैं। उनका कहना है कि कहींकहीं 'प्रश्न व्याकरण दशा' यह नामभी देखा जाता है*। परन्तु यह नाम ठीक नहीं मालूम होता और अर्वाचीन मालूम होता है। अन्तकृद्दशा सूत्रके वर्णनमें मैंने बतलाया है कि दश अध्ययन होनेसे 'दशा' लगाना ठीक नहीं मालूम होता। अगर कदाचित होभी तो यह निश्चित है कि प्रश्नव्याकरणके दश अध्ययन अर्वाचीन हैं इस बातको स्वयं अभयदेवभी स्वीकार करते हैं। इसलिये प्राचीन समयमें इस अंगके साथ 'दशा' यह प्रयोग कदापि सम्भव नहीं है।

११–विपाकसूत्र–इस अंगमें पुण्यपापका फल बताया जाता है। जिन लोगोंने महान् पाप किया है उनके दुष्फलकी कथाएँ और पुण्यशालियोंके सुफल की कथाएँ इस अंगमें है। वर्तमानमें दस कथाएँ पुण्य फलकी और दस कथाएँ पाप फलकी पाई जाती हैं।

१२–दृष्टिवाद–इस अंगमें सब मतोंकी खास कर३६३ मतोंकी आलोचना है। सच पूछा जाय तो जितना जैनागम है उस सबका संग्रह इस अंगमें है। उस समयकी जितनी विद्याएँ जैनियोंको मिलसकीं उन सबका किसी न किसी रूपमें इसमें संग्रह है। पहिले ग्यारह अंग इस अंगके सामने बहुत छोटे हैं और इसी अंगकी सामग्री लेकर उपर्युक्त ग्यारह अंग पीछेसे बनाये गये हैं। चौदह पूर्व इसी अंगके भीतर शामिल हैं, जो कि जैनागमके सर्व प्रथम संग्रह हैं। इसीलिये उनका नाम पूर्व है। यह बात आगेके विवेचनमें मालूम होगी। आजकल यह अंग ग्यारह अंगोंकी तरह विकृत रूपमें भी उपलब्ध नहीं है। इसका विवेचन इसके भेदप्रभेदोंके विवेचनके बिना ठीकठीक न होगा, इसलिये इसके भेदोंका वर्णन कियाजाता है। दृष्टिवादके पाँच भेद हैं—परिकर्म, सूत्र, पूर्वगत, अनुयोग और चूलिका।

परिकर्म—परिकर्मका अर्थ है योग्यता प्राप्त* करना। सूत्र, अनुयोग, पूर्व आदिके विषयको समझनेके लिये जो गणित आदि विषयोंकी शिक्षा है, वह परिकर्म है।

दिगम्बर सम्प्रदायके अनुसार इसमें गणितके करण† सूत्र हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि परिकर्म में प्रधानतया गणितका विवेचन है। यह बात ठीक भी है क्योंकि एकतो गणितसे बुद्धिका विकास होता है, दूसरे उस समय कोष व्याकरण आदिके ज्ञान की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि भगवान महावीरने लोकभाषापर बहुत जोर दिया था। इसलिये कोष और व्याकरण निरुपयोगी थे तथा लिखनेकी प्रथा बहुत कम थी। आगमको लोग सुनकरही

* क्वचित्प्रश्नव्याकरणदशा इत्यपि दृश्यते।

* तत्र परिकर्म नाम योग्यतापादनम्। तद्धेतुः शास्त्रमपि परिकर्म। किमुक्तम्भवति सूत्रादिपूर्वगतानुयोग सूत्रार्थग्रहणयोग्यता सम्पादन समर्थानिपरिकर्माणि–नन्दी सूत्र टीका ५६।

† तत्र परितः सर्वतः कर्माणि गणितकरण सूत्राणि यस्मिन् तत्परिकर्म तच्च पञ्चविधम्। गोम्मटसार जीव काण्ड टीका ३६१।

स्मरणमें रखते थे, इसलिये लिखने पढ़नेकी शिक्षा भी आवश्यक न थी। सिर्फ गणितही बहुत आवश्यक था। सम्भव है औरभी किसी विषयकी थोड़ी बहुत तैयारी कराई जाती हो परन्तु गणितकी मुख्यता होनेसे परिकर्ममें गणितका विषयही कहा गया है। साधारण अर्थ यह है कि किसी विषयको समझनेके पहिले उसमें सरलतासे ठीकठीक प्रवेश करनेके लिये जिसका शिक्षण लेना पड़ता है, वह परिकर्म कहलाता है।

दिगम्बर सम्प्रदायमें परिकर्मके पाँच भेद बतलाये गये हैं—(१) चन्द्रप्रज्ञप्ति (२) सूर्यप्रज्ञप्ति, (३) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, (४) द्वीपसमुद्र प्रज्ञप्ति, (५) व्याख्याप्रज्ञप्ति। चन्द्रसूर्य आदिकी गतियों और जम्बूद्वीप आदिके वर्णनोंमें अंकगणित और रेखागणितकी अच्छी शिक्षा मिलजाती है। व्याख्याप्रज्ञप्तिमें लक्षणोंका परिचय कराया जाता है। एक तरहसे यह पारिभाषिक शब्दोंके कोषकी शिक्षा है।

श्वेताम्बर सम्प्रदायमें परिकर्मके सातभेद कहेगये हैं। सिद्ध सेणिआ, मणुस्ससेणिआ, पुट्ठसेणिआ, ओगाढ़ सेणिआ, उवसंपज्जणसेणिआ, विप्पजहण सेणिआ, चुआचुअसेणिआ। इनमेंसे पहिले दोके चौदह * चौदहभेद और पिछले पाँचके ग्यारह ग्यारह† भेद हैं। इसप्रकार कुल तेरासी (८३) भेद हैं।

नंदीसूत्र और उसके टीकाकारका कथन है कि "प्रारम्भके छः परिकर्म तो अपने सिद्धान्त के अनुसार हैं और चुआचुअसेणिआ सहित सात परिकर्म आजीविक§ सम्प्रदायके अनुसार हैं। जैन मान्यतामें चार * नय हैं। संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, और शब्द। नैगम नयका संग्रह और व्यवहारमें समभिरूढ़ और एवंभूतका शब्द नयमें अन्तर्भाव होजाता है। इसलिये जैन मान्यता चतुर्नयिक कहलाती है। आजीविक लोग त्रैराशिक† कहलाते हैं क्योंकि ये सब वस्तुओंको तीन तीन भेदोंमें विभक्त करते हैं। नय भी इनके मतमें तीन हैं—द्रव्यास्तिक पर्यायास्तिक उभयास्तिक। इससे मालूम होता है कि पहिले आचार्य नयचिन्तामें आजीविक मतका अवलम्बन लेकर सातों ही परिकर्म तीनप्रकारके नयोंसे विचारते थे।"

परिकर्मके भेदोंका विशेषविवरण उपलब्ध नहीं है परन्तु इसमें इतना अवश्य मालूम होता है कि इसमें लिपिविज्ञान (मातृकापद) गणित, न्यायशास्त्र (नय) आदिका वर्णन था।

---

* माउगापयाइं, एगट्ठिया पयाइं, अट्ठपयाइं, पाढोआमासपयाइं, केउभूअं, रासिबद्धं, एगगुणं, दुगुणं, तिगुणं, केउभूअं, पडिग्गहो, संसारपडिग्गहो, नंदावत्तं, सिद्धावत्तं। नन्दीसूत्र ५६।

† उपर्युक्त चौदहमें से प्रारम्भके तीन छोड़कर।

§ छ चउक्कनइआइं सत्त तेरासियाइं सेत्तं परिकम्मे। नन्दीसूत्र ५६। सप्तानाम् परिकर्मणामाद्यानि षट् परिकर्माणि स्वसमयवक्तव्यतानुगतानि स्वसिद्धान्तप्रकाशकानि इत्यर्थः। येन् गोशाल प्रवर्तिता आजीविकाः पाखंडिनस्तन्मतेन च्युताच्युतश्रेणिका षट्परिकर्मसहितानि सप्तापि परिकर्माणि प्रज्ञाप्यन्ते।

* नेगमो दुविहो संगहिओ असंगहिओ य। तत्थ संगहिओ संगहं पविट्ठो असंगहिओ ववहारं तम्हा संगहो ववहारो उज्जुसुओ सद्दाइआ यएक्को, एवं चउरोनया एएहिं चउहिं नएहिं छ ससमइगा परिकम्मा चिंतिज्जंति। नन्दीचूर्णि ५६।

† ...त एव गोशालप्रवर्तिता आजीविकाः पाखण्डिनस्त्रैराशिका उच्यन्ते। कस्मादिति चेदुच्यते, इह ते सर्वं वस्तु त्र्यात्मकमिच्छन्ति तद्यथा जीवोऽजीवो जीवाजीवश्च। लोका अलोका लोकालोकाश्च, सदसत्सदसत्, नयचिन्तायामपि त्रिविध नयमिच्छन्ति तद्यथा द्रव्यास्तिकं पर्यायास्तिकं उभयास्तिकं च ततस्त्रिभी राशिभिश्चरन्तीति त्रैराशिकाः तन्मतेन सप्तापि परिकर्माणि उच्यन्ते ..एतदुक्तम्भवति पूर्वं सूरयो नयचिन्तायाम् त्रैराशिकमतमवलम्बमानाः सप्तापिपरिकर्माणि त्रिविधयाऽपि नयचिन्तया चिन्तयन्तिस्म नन्दी टीका ५६

सूत्र†—परिकर्मका दूसरा भेद सूत्र है। पूर्वसाहित्यका सूत्र रूपमें लिखा गया सार 'सूत्र' कहलाता था। परिकर्मके बाद सूत्ररूपमें जैनागमका सार पढ़ानेके लिये इनकी रचना हुई थी। दिगम्बर सम्प्रदायके अनुसार इसमें मिथ्यामतोंकी सूचना है। दृष्टिवादका मुख्य विषय सब दर्शनोंकी आलोचना है इसलिये सूत्रमें भी उस आलोचनाका सार रूपमें कथन हो यह उचित ही है। तात्पर्य यह है कि दोनों सम्प्रदायोंमें सूत्रकी परिभाषा एकसी है।

सूत्र अठासी हैं। अर्थात् बाईस* सूत्र चारचार तरहसे अठासी तरहके हैं। ये चार प्रकार, व्याख्या करनेके ढंग हैं। व्याख्याके चार भेद ये हैं—छिन्नच्छेदनय, अच्छिन्नच्छेदनय, त्रिकनय, चतुर्नय।

छिन्नच्छेदनय§—इस व्याख्याके अनुसार सूत्रोंकी अलग अलग व्याख्या कीजाती है। एक पदका दूसरे पदके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रक्खा जाता। यह व्याख्या जैन परम्परामें चालू रही है।

अच्छिन्नच्छेदनय‡—इस व्याख्याके अनुसार सूत्रोंका अर्थ आगे पीछेके श्लोकोंके साथ मिलाकर किया जाता है। मतलब यह है कि यह सापेक्ष व्याख्या है। यह व्याख्या आजीवक मतके सूत्रके अनुसार अथवा उसके लिये है।

त्रिकनय*—आजीवक मतकी नयव्यवस्थाके अनुसार जब इन सूत्रोंकी व्याख्या की जाती है तब वह त्रिकनयिक कहलाती है।

चतुर्नय§—जैन मान्यताके अनुसार जब वह व्याख्या कीजाती है तब वह चतुर्नयिक कहलाती है।

पहिली दो व्याख्याएँ सम्बन्धासम्बन्धकी अपेक्षाभेद बतलाती हैं और पिछली दो व्याख्याएँ नयविवक्षाकी दृष्टिसे भेद बतलाती हैं। चारोंमें दो जैन हैं और दो आजीवक। इसप्रकार बाईस सूत्र चार तरहकी व्याख्या से अठासी होगये हैं।

परिकर्म और सूत्रके इन वर्णनोंसे जैन सम्प्रदाय और आजीवक सम्प्रदायके इतिहास पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। अनेक इतिहासज्ञोंका मत है कि आजीवक सम्प्रदाय जैनसम्प्रदायमें विलीन हो

---

† सव्वस्स पुव्वगयस्स सुयस्स अत्थस्स य सूयगत्ति सूयणत्ताउ वा सुया भणिया जहाभिहाणत्था। चूर्णि। सूत्रयति—सूत्रयति कुदृष्टि दर्शनानीति सूत्रं। गो० जी० ३६१

* उज्जुसुयं, परिणयापरिणयं, बहुभंगिअं, विजयचरियं, अणंतरं, परंपरं, मासाणं, संजूहं, संभिण्णं, आहव्वायं, सोवत्थिअवत्तं, नंदावत्तं, बहुलं, पुट्ठापुट्ठं, विआवत्तं, एवंभूअं, दुआवत्तं, वत्तमाणप्पयं, समभिरूढं, सव्वओभद्दं, पस्सासं, दुप्पडिग्गहं।

§ यो नाम नयः सूत्रं छेदेन छिन्नमेवाभिप्रैति न द्वितीयेन सूत्रेण सह सम्बन्धयति।..... तथासूत्राण्यपि यत्रयाभिप्रायेण परस्परं निरपेक्षाणि व्याख्यान्तिस्म स छिन्नच्छेद नयः। छिन्नो द्विधाकृतः छेदः पर्यन्तो येन स छिन्नच्छेदः...। इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि स्वसमय सूत्रपरिपाट्यां स्वसमयवक्तव्यतामधिकृत्य सूत्र परिपाट्यां विवक्षितायां छिन्नछेदनयिकानि। नन्दी टीका ५६।

‡ इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि आजीविक सूत्रपरिपाट्यां—गोशालप्रवर्तिताजीविक पाखण्डिमतेन सूत्र परिपाट्यां विवक्षितायामच्छिन्नच्छेद नयिकानि। इयमत्र भावना-अच्छिन्नच्छेदनयोनाम यः सूत्रं सूत्रान्तरेण सहाच्छिन्नमर्थतः सम्बद्धमभिप्रैति।

* इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि त्रैराशिक सूत्रपरिपाट्यां त्रैराशिक नयमतेन सूत्र परिपाट्यां विवक्षितायां त्रिकनयिकानि। नन्दी टीका ५६

§ इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि स्वसमय सूत्र परिपाट्यां-स्वसमय वक्तव्यतामधिकृत्य सूत्रपरिपाट्यां विवक्षितायां चतुर्नयिकानि- संग्रह व्यवहार ऋजुसूत्रशब्दनय चतुष्टयोपेतानि संग्रहादिनय चतुष्टयेन चिन्त्यन्ते इत्यर्थः।

† इच्चेइआइं बावीसं सुत्ताइं छिन्नच्छेदनइआणि ससमयसुत्तपरिवाडीए, इच्चेइआइं बावीसं सुत्ताइं अच्छिन्नच्छेअनइआणि आजीविअ सुत्तपरिवाडीए, इच्चेइआइं बावीसं सुत्ताइं तिगणिआइं तेरासिअसुत्तपरिवाडीए, इच्चेइआइं बावीसं सुत्ताइं चउक्कनइआणि ससमयसुत्तपरिवाडीए एवामेव सपुव्वावरेणं अट्ठासीई सुत्ताइं भवंतीतिमक्खायं। नन्दीसूत्र ५६।

गया। उपर्युक्त विवरणमें यह मत बहुत ठीक मालूम होता है। जैनियोंने आजीवकोंके साहित्यको अपना लिया है। आजकल आजीवक साहित्य नहीं मिलता इसका एक कारण यह भी है।

सूत्रके व्याख्याभेदोंसे यह भी पता चलता है कि आजीवकसाहित्यकी व्याख्या जैनमतानुसार की जाने लगी थी। जो कुछ विरोध मालूम होता था वह अच्छिन्नच्छेदनयके अनुसार दूर करदिया गया था। यह सापेक्ष व्याख्या समन्वयके लिये अत्युपयोगी है।

आजकल सात नय प्रचलित हैं। परन्तु नन्दी-सूत्रके कथनानुसार पहिले चारही नय थे और आजीवकोंमें तीन नय थे। सम्भव है कि ये दोनों मत मिलाकर सातनय बने हों, और प्राचीन मतके ठीक ठीक नाम उपलब्ध न हों। कुछ भी हो परन्तु इतना निश्चित है कि वर्तमानकी नय व्यवस्थामें आ-जीवकोंका भी कुछ हाथ है। 'पहिले आचार्य आ-जीवक मतका अवलम्बन लेकर तीन प्रकारके नयों से विचारते थे'—नन्दीटीकाका यह वक्तव्य बहुत महत्वपूर्ण है।

जैन और आजीवकोंमें इतना अधिक आदान प्रदान हुआ है और वह मिश्रण इतना अधिक है कि दोनों का विश्लेषण करना कठिन होजाता है। अन्य सब दर्शनोंकी अपेक्षा आजीवकोंके विषयमें जैनियों आदर भी बहुत रहा है। जैनाचार्योंने जैनेतर मता-नुयायिओंको अधिकसे अधिक पाँचवें स्वर्ग तक पहुँचाया है जब कि आजीवकोंको अंतिम (बारह अथवा सोलह) स्वर्गतक पहुँचाया है। इसके अ-तिरिक जैनाचार्योंके मतानुसार गोशाल अंगपूर्व पाठी थे। इन सब वर्णनोंसे स्पष्ट ही मालूम होता है कि जैनाचार्योंने गोशालकी निन्दा करते हुए भी उनके आजीवक सम्प्रदायको अपना लिया है और उनके साहित्यसे अपने बाह्य साहित्य (परि-कर्म और सूत्र) को अलंकृत किया है, उनकी नय-विवक्षासे अपने नयभेदोंको बढ़ाया है और सापेक्ष व्याख्यासे आजीवकोंके विचारोंका और शास्त्रोंका समन्वय किया है। इससे जैनाचार्योंकी उदारता, समयज्ञता और समन्वयशीलताका पता लगता है। यद्यपि वह बहुत मर्यादित है, परन्तु उस समयको देखते हुए अधिक ही है। इससे यह भी मालूम होता है कि जिनवाणीका वर्तमानरूप अनेक संगमों का फल है। यह हरिद्वारकी गंगा नहीं, किन्तु गंगा-सागर की गंगा है।

पूर्वगत— जैन साहित्यका मूलसे मूल साहित्य यही है। ग्यारह अंग तथा दृष्टिवादके अन्यभेद सब इसके बादके हैं। सबसे पहिलेका होनेसे इसे पूर्व कहते हैं। नन्दीसूत्रके टीकाकार कहते हैं—

"तीर्थंकर § तीर्थरचनाके समयमें पहिले पूर्व-गतका कथन करते हैं इसलिये उसको पूर्वगत कहते हैं। फिर गणधर उसको आचार आदिके क्रमसे बनाते हैं या स्थापित करते हैं। आचाराङ्गको जो प्रथम स्थान मिला है वह स्थापनाकी दृष्टिसे मिला है, अक्षर रचनाकी दृष्टिसे तो पूर्वगतही प्रथम है।"

ग्यारह अंगमें जितना विषय है वह सब दृष्टि-वादमें आजाता है। ग्यारह अंगकी जो रचना है वह अल्पबुद्धियोंके * लिये है। ग्यारहअंगोंमें

§ इह तीर्थकरस्तीर्थप्रवर्तनकाले गणधरान् सकल श्रुतार्थावगाहनसमर्थानधिकृत्य पूर्वं पूर्वगत सूत्रार्थंभाषते ततस्तानि पूर्वाण्युच्यन्ते गणधराः पुनः सूत्ररचनां विदधतः आचारादिक्रमेण विदधति स्थापयन्तिवा। नन्वियं पूर्वा-परविरुद्धं यस्मादादौ निर्युक्तावुक्तं सव्वेसिं आयारो पढमो इत्यादि, सत्यमुक्तं किन्तु तत्स्थापनामधिकृत्यो-क्तमक्षर रचनामधिकृत्य पुनः पूर्वं पूर्वाणि कृतानि ततो न कश्चित्पूर्वापर विरोधः। नन्दी टीका ४६।

* जइवि य भूयावाए सव्वस्स वओगयस्स ओयारो। निज्जूहणा तहावि हु दुम्मेहे पप्प इत्थी य। ५५१। विशेषावश्यक।

सरलतासे विषयवार विवेचन है। पूर्वगतके चौदह भाग हैं। उनका लक्षणसहित विवेचन यह है।

उत्पाद— पदार्थोंकी उत्पत्तिका वर्णन है। जगत् कैसे बना, कौन पदार्थ कबसे है, आदि बातोंका विवेचन इस पूर्वमें है।

अग्रायणीय— अग्र अर्थात परिमाण (सीमा) उनका अयन अर्थात जानना। द्रव्यादिका परिमाण बताया जाता है। दिगम्बर सम्प्रदायके अनुसार इसमें सातसौ सुनय दुर्णय पंच अस्तिकाय छः द्रव्य सात तत्व नव पदार्थका विवेचन है।

वीर्यप्रवाद— इसमें संसारी और मुक्तजीवोंकी तथा जड़ पदार्थोंकी शक्तिका वर्णन है।

अस्तिनास्तिप्रवाद— इसमें सप्तभंगी न्याय अर्थात स्याद्वाद सिद्धान्तका विवेचन है।

ज्ञानप्रवाद—इसमें ज्ञानके भेद प्रभेद तथा उनके स्वरूपका विवेचन है।

सत्यप्रवाद—इसमें सत्यके भेद प्रभेद तथा उनके स्वरूपका विवेचन है। साथमें असत्य आदि की भी मीमांसा है।

आत्मप्रवाद—इसमें आत्माका विवेचन है। आत्माके विषयमें जो विविधमत हैं, उनकी आलोचना है।

कर्मप्रवाद—आत्माके साथ जो एक अनेक प्रकार के कर्म (एक प्रकारके सूक्ष्म शरीर) लगे हुए हैं जिनसे किये हुए कार्योंका अच्छा बुरा फल मिलता है उनका विवेचन है।

प्रत्याख्यान—इसमें त्याग करने योग्य कार्यों का (पापोंका) विवेचन है। यह आचार शास्त्र है।

विद्यानुवाद—इसमे विद्याओं-मन्त्रतन्त्रों—का वर्णन है।

कल्याणवाद—इसमें महर्द्धिक लोगोंकी ऋद्धि सिद्धियोंका वर्णन है जिससे लोग पुण्यपापके फलको समझें। शकुन आदिका विवेचन भी इसमें बताया जाता है। श्वेताम्बर सम्प्रदायमें इस पूर्वका नाम 'अवन्ध्य' है। इस नामके अनुसार इस पूर्वमें यह बताया गया है कि संयम आदि शुभकर्म और असंयम आदि अशुभ कर्म निष्फल नहीं जाते अर्थात् ये अवन्ध्य (अनिष्फल=सफल) हैं। इसप्रकार नाम और अर्थ भिन्न होने पर भी मतलबमें कुछ अन्तर नहीं है। ऋद्धि आदिका वर्णन पुण्यपापका फल बतलाने के लिये है।

प्राणवाद— इसमें अनेक तरहकी चिकित्साओं का वर्णन है। प्राणायाम आदिका वर्णन और आलोचना है।

क्रियाविशाल— इसमें नृत्यगान छन्द अलंकार आदिका वर्णन है। पुरुषोंकी बहत्तर और स्त्रियोंकी चौसठ कलाओंका वर्णन है। और भी नित्य नैमित्तिक क्रियाओंका वर्णन है।

लोकबिन्दुसार— त्रिलोकबिन्दुसार भी इसका नाम है। इसमें सर्वोत्तम वस्तुओंका विवेचन है। नन्दीसूत्रके टीकाकार कहते हैं कि जिसप्रकार अक्षर के ऊपर बिन्दु श्रेष्ठ होता है, उसीप्रकार जगत् और श्रुतलोक में जो सार अर्थात सर्वोत्तम है वह लोकबिन्दुसार § है। परन्तु नन्दीके इस वक्तव्यसे इस पूर्वके विषयका ठीक ठीक पता नहीं लगता। तत्त्वार्थ राजवार्तिककार† कहते हैं कि 'इसमें आठ व्यवहार चार बीज परिकर्मराशिक्रियाविभाग इस

‡ गोम्मटसार जी० टी० ३६५।

§ लोके जगतिश्रुतलोके च अक्षरस्योपरि बिन्दुरिव सारं सर्वोत्तमं सर्वाक्षरसन्निपातलब्धि हेतुत्वात् लोकबिन्दुसारं। सूत्र ५६

† यत्राष्टौ व्यवहाराश्चत्वारि बीजानि परिकर्मराशि क्रियाविभागश्च सर्वश्रुतसम्पदुपदिष्टा तत्खलु लोकबिन्दुसारं। १-२०-१२

प्रकार सर्वश्रुतसंपतका उपदेश है।' इससे मालूम होता है कि इसमें गणितकी मुख्यता है, और इसमें भूगोल खगोल आदिका भी वर्णन आगया है।

यद्यपि दृष्टिवादके प्रथमभेद परिकर्ममें भी इसका वर्णन है तथापि वहाँ पर वह उतना ही है जिससे पूर्व साहित्यमें प्रवेश होसके। यहाँ पर कुछ विशेषरूपमें है।

पिछले पाँच पूर्व लौकिक चमत्कारोंके लिये विशेष उपयोगी होसकते हैं। ऐसा मालूम होता है कि इन पूर्वोंको पढ़नेसे अनेक मुनि ख्याति लाभ पूजा आदिके प्रलोभनमें फँसकर भ्रष्ट हुए थे, इसलिये मिथ्यादृष्टियोंको पिछले पाँचपूर्व नहीं पढ़ाये जाते। मिथ्यादृष्टियोंको ग्यारह अङ्ग नव पूर्व तकका ही ज्ञान होसकता है। इसप्रकार जैनशास्त्रोंकी आज्ञाका यही रहस्य है। यह मतलब नहीं है कि मिथ्यादृष्टियोंमें पिछले पाँचपूर्व पढ़नेकी योग्यता नहीं है। योग्यता होनेपर भी दुरुपयोग होनेके भयसे उन्हें पूर्व पढ़ाना बन्द कर दिया गया था।
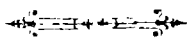
सम्पादकीय टिप्पणियाँ।

जैनजगत और मुनिवेषी।

गुरुके वेषमें छुपे हुए आततायियोंसे आज दुनियाँके प्रायः सभी सम्प्रदाय त्रस्त हैं। जैनसम्प्रदाय और उसमें का दिगम्बर उपसम्प्रदाय भी उन त्रस्त समाजोंमें से एक है। इस समाजमें शान्तिसागर मण्डली, मुनीन्द्र मण्डली ने जो ऊधम मचाया है, जो ताण्डव दिखलाया है, उससे दिगम्बर जैन साधुसंस्थाका महत्त्व मिट्टीमें मिलगया है। ये लोग दिगम्बर होकरके भी जिस शाही ठाठ बाटसे रहते हैं, दिगम्बरत्वके कष्टसे बचनेके लिये जैसे चित्र विचित्र आयोजन करते हैं, वीतराग होकरके भी जितने लड़ाई झगड़े और अकालमृत्यु कराते हैं, संयमी होकरके भी जैसा अकल्प्य और असंयमवर्द्धक आहार लेते हैं, जैन होकरके भी जितना जैनत्वका विद्रोह करते हैं, उसे बदनाम कराते हैं, उसके विरुद्ध प्रचार करते हैं, जैनधर्मके विरुद्ध साहित्यका प्रकाशन कराते हैं, सत्यवादी कहाते हुए भी जितना झूठ बोलते हैं, यहाँ तककि अपनी जाति तक छुपाते हैं, असभ्यसे असभ्य और घृणितसे घृणित शब्द बोलते हैं इन सब पापोंकी कहानी, कहानी नहीं पुराण है। जैनजगत् इन सब पापोंके साम्हने प्रारम्भसे ही खड़ा रहा है। उसने इसके लिये बहुत कुछ सहा है, परन्तु वह तपस्वीकी तरह इन सब उपसर्गोंको सहन करता हुआ आगे बढ़ता रहा है। यही कारण है कि जिन मुनिवेषियोंके साम्हने लोग सब कुछ देखते हुए भी चूं नहीं करसकते थे, उन्हींके विरोधमें आज अनेक पत्र और हज़ारों विवेकी पुरुष निर्भयतासे बोलते हैं। यों तो दुनियाँ में से कोई पापका नाश नहीं करसकता—तीर्थंकर भी मिथ्यात्वियोंका अभाव नहीं करसके—इसलिये मुनिवेषियोंके अन्ध उपासक हैं और स्वार्थी भी उपासनाका ढोंग करते हैं; परन्तु आज मुनिवेषियोंका भंडाफोड़ इतना अधिक कर दिया गया है कि जिसमें विवेकका थोड़ासाभी अंश है, वह भी उनके दम्भ जालमें नहीं फँस सकता।

जैन जगतका जीवन यद्यपि उमरकी दृष्टिसे छोटासा है, फिर भी वह अनेक आन्दोलनोंके अनेक युगोंका तथा असंख्य कठिनाइयोंका इतिहास है। प्रत्येक आन्दोलन अपनी असाधारणता रखता है, परन्तु यह असाधारणता किसी अलौकिक अतिशयका परिणाम नहीं, किन्तु रात्रि दिनके अटूट परिश्रमका परिणाम है। इसकी कठिनाइयाँ भुक्तभोगी ही जानता है।

जिन क्रान्तिकारी विचारोंके हृदयमें आनेसे लोगोंका हृदय धड़कने लगता है, और मुँहमें आनेसे जीभके जलने जैसा कष्ट होने लगता है, उन बातोंको जिस दृढ़ता के साथ जैनजगत्ने रक्खा है, वह सबको मालूम है। और आज तो वे बातें एक बच्चा भी कह सकता है। विचारक्रान्तिमें जिसप्रकार वीरताका परिचय जैनजगतने दिया है उतना ही परिचय मुनिवेषियोंसे समाजको सुरक्षित रखनेमें दिया है। उसने मुनिवेषियोंके जटिलसे जटिल इन्द्रजालको तोड़ा है, छुपेसे छुपे षड्यन्त्रोंका भंडाफोड़ किया है परन्तु इन सब कार्योंमें उसे एक क्षणके लिये

भी सत्यसे अलग नहीं होना पड़ा। उसने जो कुछ किया, सदा शुद्ध हृदयसे निःपक्ष होकर किया है। परन्तु जब डॉक्टर घावमें नश्तर लगाता है, तब मवादके साथ एकाध बूँद खून निकलना भी सम्भव है, लेकिन डॉक्टरकी इच्छा खून निकालनेकी नहीं होती। इसीप्रकार मुनिवेषियोंकी चिकित्सामें जैनजगतका हाल है। आजतक जैनजगत्ने मुनिवेषियोंका सैकड़ों मन पापरूपी मवाद निकाला है, और जो मवाद नहीं निकलपाया है तथा असाध्य रोग होने से जो नया मवाद पैदा होरहा है, उसका अस्तित्व लोगों को बता दिया है। इस महाभारत कार्यमें मवादके साथ एक खूनकी बूंद भी निकल गई है।

२१ वें अंकके समाचार संग्रहमें एक समाचार यह भी था कि शान्तिसागरजीने णमोकारमन्त्रके जापको आर्तध्यान कहा है। इस समाचारका विरोधियोंने विरोध किया है, और उस विरोधमें जैनजगतको जितनी गालियाँ दी जासकती थीं, दी हैं। जिसप्रकार भृगुकी लातको विष्णुने छातीपर झेल लिया था, इसीप्रकार जैनजगत्ने उन गालियोंको छातीपर झेल लिया है अर्थात् जैनजगत को गाली देने वाला वह लेख जैनजगतमें ही चौबीसवें अंकके टाइटिल पेजपर छाप दिया गया है। जैनजगतकी निर्भयता, निःपक्षता और सत्यप्रियताका यह भी एक उदाहरण है।

हमारे पास अभी विश्वस्त समाचार नहीं आने पाये हैं किन्तु विरोधियोंके लेखसे ही मालूम होता है कि वे समाचार पेसा सत्य, वास्तवमें शान्तिसागरजीने णमोकार मंत्रके जापको आर्तध्यान कहा था, परन्तु वह ऐसे अवसर पर कहा था कि ऐसा कहना अनुचित नहीं है।

बाहरसे आये हुए समाचारोंका कभी कभी अधूरा रहजाना भी सम्भव है; परन्तु इस अवसर पर न्यूनअंश की सूचना देना ही उचित मार्ग है जो बिना गालियोंके भी अच्छी तरह होसकता है।

जैनजगत सत्यका इतना अधिक भक्त है कि वह असत्यके एक परमाणुको भी सहन नहीं कर सकता, चाहे वह अपनेमें हो या दूसरे में। यही कारण है कि विरोधियोंको बोलनेकी भी जगह नहीं रहती। जैनजगत्में एक छोटीसे छोटीभी कमज़ोरी दिखाई देगी तो जैनजगत्के विरोधी व्याघ्रकी तरह झपटकर वहाँ नख दन्त प्रहार करनेके लिये मुँह बाये बैठे हैं। इतने पर भी विरोधियोंको वर्षोंतक मुँह बाये बैठा रहना पड़ता है और एक भी मौका उन्हें दांत लगानेका नहीं मिलता। इसीसे झुँझलाकर उनने एक मामूली समाचार पर इतनी उछलकूद मचाई है। परन्तु इससे जैनजगत्का स्थान नहीं गिरता किन्तु इससे उसकी निःपक्षता, निर्भयता चमकने लगती है।

जैनजगतके इस साधारण समाचार पर विरोधियों ने जितनी उछलकूद मचाई है (क्योंकि यह समाचार अधूरा था) उतनी इससे भयङ्कर अन्य समाचारों पर नहीं मचाई इससे इतनी बात अवश्य सिद्ध होजाती है कि इसके पहिले निकलनेवाले समाचारोंको विरोधियोंने भी प्रमाण माना है; इसीलिये उन्हें एक प्रकारसे मौन रहना पड़ा है अथवा तात्त्विक खुलासा किये बिना गाली गलौज़ करके हृदयको ठंडा करना पड़ा है।

जैनजगतके २१ वें अङ्कमें ही 'मुनि जयसागरजीकी वीरता' शीर्षक एक नोट प्रकाशित हुआ था। यद्यपि मैं मुनित्वके लिये दिगम्बरत्वको अनिवार्य नहीं समझता, फिर भी मैं दिगम्बरत्वके इस प्रकार निषेधके पक्षमें भी नहीं हूं। जयसागरजी जब जानपर खेलगये तब मैंने उनके इस कार्य की प्रशंसा की। साथ ही ऐसे अवसरों पर शान्तिसागर और सुधर्मसागरका फेल होनाभी खटका।

शान्तिसागर आदिकी जो चर्चा यहाँ थी, वह आनुषंगिक रूपमें थी। मुख्यरूपमें तो मैं इस घटनाका भंडाफोड़ करना उचित नहीं समझता था। और दिगम्बर समाजके हितके ख़यालसे अबभी मुझे बहुत संयमसे काम लेना पड़ता है। खण्डेलवाल हितेच्छुके सम्पादकने जो यह लिखा है कि किसीकी माईने दूध पिलाया हो तो वह प्रतिबन्ध साबित करे। इसके अतिरिक्त देहलीके एक भाईने भी 'दिगम्बरत्वके विरोधकी पराकाष्ठा और बिलकुल झूठ' शीर्षक एक लेख हितेच्छुमें छपाया है। इन सब धृष्टतापूर्ण लेखोंको पढ़कर संयम रखना किसी दूसरे के लिये कठिन है, परन्तु फिरभी मुझे रखना है।

प्रतिबन्धोंका मैं समर्थन नहीं करता, किन्तु इससे लगे हुए प्रतिबन्धोंको मिथ्या बतानेसे कुछ भी कार्यसिद्धि

नहीं है। देहलीमें लगा हुआ प्रतिबन्ध कुछ देहलीका ही प्रश्न नहीं था, किन्तु देहलीवालोंने इससे अपनी नाककटी हुई समझी इसलिये उनने इस समाचारको छुपाया। परन्तु कलकत्तामें जो कमेटी हुई थी वहाँ यह बात अच्छी तरह खुलगई कि देहलीमें भी प्रतिबन्ध लगा था; यहाँ तक कि यह बात जैन गज़टमें भी प्रकाशित हुई थी। जैनमित्र ने तो अभी भी इस बातको स्वीकार किया है कि वहाँ प्रतिबन्ध लगा था। हाँ, साथ ही कुछ लोगोंका यह कहना है कि पीछेसे वह प्रतिबन्ध हटा लिया गया था। परन्तु यह एक आश्चर्यकी बात है कि जब जयसागरजीका प्रतिबन्ध हटाया गया तब सब पत्रोंने बड़ी प्रसन्नता ज़ाहिर की, निज़ाम सरकारको धन्यवाद दिया गया; परन्तु शान्तिसागरजीके ऊपर लगाये गये प्रतिबन्ध हटाये जानेपर यह समाचार भी प्रकाशित न हुआ! क्या यह सम्भव है? शान्तिसागरजी देहलीमें घुसे ज़रूर परन्तु सौ सौ पचास पचास आदमियोंकी दीवालोंके बीचमें रहकर घूमे हैं—यह बात देहलीके एक महानुभावने एक पत्रमें मुझे सूचितकी है। इसी प्रकार एक अन्य नगरके श्रीमानजीका भी विस्तृत पत्र मेरे सामने है, जो कलकत्तेकी उस कमेटीके अवसरपर मौजूद थे। उनने सब कच्चा चिट्ठा लिखकर भेजदिया है। परन्तु उन्होंने समाजके हितकी दृष्टिसे इस कच्चेचिट्ठे को प्रकाशित न करनेका अनुरोध भी किया है और मैं भी उस अनुरोधकी रक्षा करना उचित समझता हूं।

कलकत्तेकी कमेटीके बाद जब मुझसे यह अनुरोध किया गया था कि मैं कुछ दिनके लिये दिगम्बर मुनियों के विषयमें न लिखूं, तदनुसार दो महीनेके लिये न लिखने का मैंने वचन दिया था। उस समय कलकत्तेकी कमेटीमें जो देहली प्रतिबन्धके लिये चर्चा हुई थी, उसका सार मेरे पास आगयाथा; और कुछ विशेष बातें उपर्युक्त महानुभाव के पत्रसे मुझे मालूम होगई हैं। मैं समझता हूं कि अगर मैं सारा भण्डाफोड़ कर दूं तो दिगम्बर समाज तथा देहली पञ्चायत के हकमें यह ठीक न होगा। इसीलिये खण्डेलवाल हितेच्छु सरीखे जैन समाजके नादान दोस्तों के द्वारा उत्तेजित होनेपर भी मैं चुप रहता हूँ। मैं इन नादान दोस्तोंसे कहना चाहता हूँ कि अगर तुममें थोड़ी भी समाजहितकी भावना है तो तुम सिंहको छेड़नेकी चेष्टा मत करो! समाज अगर अपना पेट छिपाना चाहती है तो तुम उसकी तरफ़से दाईको चुनौती मत दो! भण्डाफोड़ करनेके लिये दाईको उत्तेजित मत करो! शान्तिसागरकी कायरता छिपानेके लिये देहली पञ्चायतको नग्न मत कराओ!

जैनजगत्की अगर तुम्हें शक्ति देखना है तो 'जैनधर्म का मर्म' शीर्षक लेखमालाका सामना करो! अकेले अकेले, या सब मिलकर उसके ऊपर टूटपड़ो। तुम्हें मालूम होगा कि वह मेरुचूलिकाकी तरह अत्युच्च अगम्य और अचल है। तब समझमें आयगा कि जैनजगत् क्या है और तुम क्या हो। समाचारोंके ऊपर इन्द्र युद्ध सरीखी हुंकार करनेसे भी लेनेके देने पड़जायेंगे; परन्तु 'साँड लड़ें बारी के भुरसन' इस कहावतके अनुसार इस द्वन्द्वमें बेचारी जैन समाजका कचूमर होजायगा।

मुझे किसीसे द्वेष नहीं है—न आप लोगोंसे द्वेष है, न इन बेचारे मुनिवेषियोंसे। लोगोंके जब मिथ्यात्वका तीव्र उदय है तब आप सरीखे पण्डित और ये मुनिवेषी तो कर्म का काम करेंगे ही। आप लोग तो निमित्त मात्र हैं; असली कारण तो लोगोंके मिथ्यात्वका उदय है।

जब आज ६० लाख साधुवेषी साधुवेषका नाटक दिखाकर अपना पेट पालते हैं तब उनमें दर्जन दो दर्जन की वृद्धि और होजाय तो मेरे लिये विशेष चिन्ता उपस्थित नहीं होती। परन्तु स्वार्थवश उनकी रक्षाके लिये किसी समाजके स्वार्थका बलिदान आपलोग न कीजिये।

आवश्यकता है।

एक मेट्रिक पास अध्यापककी जो धर्म और महाजनी गणित भी जानता हो।

अध्यापक सेठ विजयराजजी मूथा के प्राइवेट चाहिये, जिसको मद्रास ही रहना पड़ेगा। वेतन अधिक से अधिक २०) रु० व भोजन हो सकेगा।

पत्रव्यवहार का पता—मंत्री,
मूथा जैन विद्यालय, बलूँदा (मारवाड़)

"जैनधर्मका मर्म" पर सम्मतियाँ।

(१०)

श्रीमान् मोहनलालजी दलीचंदजी देसाई बी० ए० एल एल० बी० हाईकोर्ट वकील मुम्बई, गुजराती साहित्य के प्रसिद्ध लेखक और इतिहासज्ञ विद्वान हैं। बहुत दिनोंसे आप 'जैनधर्मका मर्म" का गम्भीर स्वाध्याय करते हैं। आप जैन श्वेताम्बर कान्फरेंसके मुखपत्र 'जैनयुग' के सम्पादक हैं। ता० १-१'-३३ के जैनयुगमें आपने 'जैनधर्म का मर्म" पर जो आलोचनात्मक एक लेख लिखा है उसका अनुवाद यहाँ दिया जाता है। —सम्पादक।

अवलोकन।

('जैनधर्मका मर्म' लेखमाला)

एक विद्वान कहता है कि हिन्दुस्थान अपनी अनेक सम्पत्तियोंमें से जिस सम्पत्तिके लिये विशेष अभिमान रखता है, वह उसका तत्त्वज्ञान है। अपना तत्त्वज्ञान धर्मके साथ मिलगया है, यह सकारण है। यह संकीर्णता कोई दोष नहीं है। धर्म और तत्त्वज्ञान इन दोनोंका विषय एकही है। धर्मके सत्योंकी मीमांसा करना और उन्हें दृष्टिगोचर करना यही तत्त्वज्ञानका कार्य है। तत्त्वज्ञानके सत्यपर विश्व टिका हुआ (ध्रु) है, यह बताना और बताकर इसे जीवनमें उतारना धर्मका काम है। इसलिये यह बात स्वाभाविक है कि दोनों एक दूसरेके साथ मिलकर काम करें, तभी इनकी सफलता है। धर्म और तत्त्वज्ञानका प्रभाव एक दूसरेके ऊपर पड़े बिना नहीं रहता और न रहना चाहिये। कोई कोई लोग ऐसा आक्षेप करते हैं कि 'पूर्व' के तत्त्वज्ञानमें ज्ञान है परन्तु वह पद्धतिके अनुसार किया हुआ विचार नहीं है, वह तो सिर्फ वस्तुकी 'झाँकी' है। इसके उत्तरमें मुझे यही कहना है कि ज्ञान एक जीवित पदार्थ है इसलिये उसे स्वच्छन्द विलास करनेका अधिकार है और इसीप्रकार यह विलास करताभी है। इतनाही नहीं किन्तु विश्वके परम और चरमसत्य, पद्धतिसर विचारके द्वारा उतने प्रकट नहीं हुए हैं जितने दिव्यदर्शनके द्वारा प्रकट हुए हैं।

पूर्वके द्रष्टाओंने विश्व, आत्मा, परमात्मा, इत्यादि विषयोंपर विचार कर उसमें दिव्यदृष्टि डालकर जो वस्तुस्वरूप दर्शानेवाला सत्य प्रकाशित किया है वह अमुक पद्धतिपर रचा गया होता है और उसे 'दर्शन' यह नाम दिया जाता है।

भारतीय द्रष्टाओंसे स्थापित दर्शनोंकी दो श्रेणियों हैं—एक ब्राह्मण दर्शनोंकी, दूसरी श्रमणदर्शनोंकी। प्रथममें क्रियाकांडके साथ ज्ञानकांडका मेल है; दूसरीमें त्यागमार्गके साथ ज्ञानका मिश्रण है। ब्राह्मणदर्शनोंमें गिने जानेवाले छः दर्शनोंके विषयमें बहुत कहा गया है। श्रमण दर्शनोंमें जैन और बौद्ध हैं। उनमेंसे बौद्ध दर्शनके सम्बन्धमें सम्पूर्ण जगतमें बहुत साहित्य प्रकाशित हुआ है, जबकि जैनदर्शनके सम्बन्धमें तो खुद भारतमें भी ऐसा साहित्य प्रकाशित नहीं हुआ है जिसमें जैनदर्शनका यथोचित परिचय मिलसके; और भारतके बाहर तो बहुत कम प्रकाशित हुआ है। साधारणतः यह सत्य बात स्वीकार करना पड़ती है कि दूसरे दर्शनोंके समान जैनदर्शनसे दुनियाँ परिचित नहीं है।

इसका मुख्य कारण यह मालूम होता है कि दूसरे दर्शनोंके अनुयायिओंमें जैसे और जितने विचारक उत्पन्न हुए हैं वैसे जैनदर्शनके अनुयायिओंमें नहीं हुए। इस वर्गका बहुभाग व्यापारी है। उसकी वणिग्वृत्तिके साथ पांडित्यपूर्ण स्वाध्यायका मेल न मिले, यह स्वाभाविक है। दीर्घतपस्वी श्रमण भगवान श्री महावीरद्वारा प्ररूपित त्याग और ज्ञानमार्गके गृहस्थ उत्तराधिकारियोंको महावीरकी वह किलोसफी दुर्घट और अगम्य सिद्ध हुई है; और त्यागी उत्तराधिकारियोंमें सेभी बहुत थोड़े उसको अच्छी तरह समझ सके हैं। जो समझ सके हैं वे अपनी शक्ति और बुद्धिके अनुसार ग्रंथ और टीकाएँ लिख गये हैं; परन्तु उसमें गहरे जाकर समझने लायक कुशाग्र बुद्धि भाग्यसे ही देखनेमें आती है।

दुःखकी बाततो यह है कि 'पूर्व पुरुषोंने जो कुछ लिखा उसमें कानमात्राके फेरफार बिना उसे

सब तरह निःशंक सत्य मानना चाहिये, उसमें जरा भी शंका करना महापाप है'—इसप्रकारकी अंधश्रद्धा रखनेवाला वर्ग इतना बड़ा है कि अगर कोई विचारक दीपक लेकर विचारकी एक समान अखण्ड अबाध्य किरणधारासे समझाना चाहे तो वह वर्ग उस विचारकको हड़धूत करके न तो स्वयं कुछ देखता सुनता है, न दूसरोंको देखनेसुनने देता है। 'पहिले के पुरुषोंमें भी मतभेद था, उनमेंसे कई पुरुष तो आद्यप्रवर्तकके वक्तव्य सेभी कुछ भिन्न मार्गमें चलेगये थे'—यह बात अगर कोई युक्ति उदाहरण से बतावे तो अंधश्रद्धालु वर्ग घबराकर चिल्लाने लगता है कि 'हमें यह प्रकाश नहीं चाहिये, हमसे दूर रहो, हमारे पास आओगे तो हम तुम्हें धिक्कार देंगे, अपने बाड़ेमेंसे बहिष्कृत करेंगे।'

विचारकोंके बाड़ा नहीं होता। बाड़ा तो बंधन है और बन्धनको अलग करना हरएक दर्शन या तत्वज्ञानका लक्षण है। ऐसे बन्धनोंसे मुक्त रहकर सत्यकी शोधमें शुद्धनिष्ठासे कीगई विचारधाराके फलस्वरूप जो शोध मालूम पड़े उसको प्राप्त करनेके लिये पुरुषार्थ करनेवाले विचारक इनेगिने हैं। और उस अन्वेषणाके परिणामस्वरूप जो सत्य हाथ लगे उसे जनताके समक्ष रखनेकी हिम्मत रखनेवाले और लोकविरोधसे जो कुछ सहन करना पड़े उसे सहनेकी ताक़त रखनेवाले विचारक तो भाग्यसे ही मिलते हैं। वे अतिविरल हैं। ऐसे अतिविरल महापुरुषोंको धन्यवाद सहित अनेकबार वन्दन है।

'श्रीमद् राजचन्द्र' में लिखा है कि (१) "जब तक लौकिक अभिनिवेश अर्थात् द्रव्यादि लोभ, तृष्णा, दैहिकमान, कुलजाति आदि सम्बन्धी मोह या विशेषत्व मानना हो, वह बात न छोड़ना हो, अपनी बुद्धिसे-स्वेच्छासे-अमुक गच्छ आदिकका आग्रह रखना हो, तबतक जीवको 'अपूर्व' गुण कैसे उत्पन्न होसकता है, इसका विचार सुगम है। (२) 'यह अभिनिवेश आड़ा आकर सामने खड़ा रहता है इससे जीव मिथ्यात्वका त्याग नहीं करसकता। लौकिक और शास्त्रीय क्रमसे सत्समागमके द्वारा जीव जो वह अभिनिवेश छोड़े तो मिथ्यात्वका त्याग होता है'—इसप्रकार बारम्बार ज्ञानी पुरुषोंने शास्त्रादि द्वारा उपदेश दिया है तोभी जीव उसे छोड़नेके लिये उपेक्षा क्यों करता है, यह बात विचारणीय है। (३) आत्मार्थ सिवाय शास्त्रकी जिस जिस प्रकार मान्यता करकेजीवने कृतार्थता मानी है, वह सब शास्त्रीय अभिनिवेश है। आत्माको समझनेके लिये शास्त्र उपकारी है और वह भी स्वच्छन्दतारहित पुरुषके लिये, इतना लक्ष्य रखकर जो शास्त्रपर विचार किया जाय तो वह शास्त्रीय अभिनिवेश गिनने लायक नहीं है। (४) दिगम्बर और श्वेताम्बर ये दो भेद जैनधर्मके मुख्य भेद हैं, मत दृष्टिसे उनमें बड़ा अन्तर दिखलाई देता है। तत्त्व दृष्टिसे ऐसा विशेष भेद जैनदर्शनमें वस्तुतः परोक्ष है। जो परोक्ष कार्यरूप होसकता है उसमें ऐसा भेद नहीं है, इसलिये दोनों सम्प्रदायोंमें उत्पन्न गुणी पुरुष सम्यक् दृष्टिसे देखते हैं और जिसप्रकार तत्त्वप्रतीतिका अन्तराय कम हो, उसप्रकार प्रवृत्ति करते हैं।"

इतनी प्रस्तावनाको ध्यानमें रखकर हरएक सुज्ञ वाचकको 'जैनधर्मका मर्म' शीर्षक लेखमाला की जाँच करना चाहिये, उसका मनन करना चाहिये। उसका आरम्भ पाक्षिक 'जैनजगत्' के १-१-३२ के अंकमें शुरू हुआ है। हाल १-१०-३३के अंकमें उसकी संख्या ३४ हुई है। इन चौंतीस लेखों में श्रीमन् महावीर प्रभुके समयकी स्थिति, उनके शासनमें पड़े हुए भेद वगैरहकी प्राथमिक ऐतिहासिक और तात्त्विक गवेषणा करके पीछे भगवानके मूलगत सिद्धान्त और उसके बाद आचार्यों द्वारा कियागया विस्तार वगैरहकी चर्चामें, दिगम्बर और श्वेताम्बर जैनग्रंथोंके आधारसे तर्कदृष्टिसे लेखकने प्रवेश किया है।

लेखक महाशय जन्म से दिगम्बर जैन होनेसे उनने दिगम्बर आचार्योंके अनेक ग्रंथोंका अभ्यास प्रथम करलिया था। श्वेताम्बर जैन श्रीमहावीरप्रणीत

अंग—आगम—आचारांग आदि मानते हैं। उनका संकलन समय समयपर होता रहा है, इससे कुछ मूलअंश वे रक्षित करसके हैं। परन्तु दिगम्बर जैनी उन आगमोंको श्रीमहावीरप्रणीत आगम अथवा उनका एक विभागभी नहीं मानते। इन अंग ग्रंथोंमें वीरवाणी अवश्य है, ऐसा समझकर लेखकने उनका तथा श्वेताम्बराचार्यप्रणीत अन्य बहुतसे ग्रंथोंका अभ्यास किया। लेखकने दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायके पुरुषों द्वारा बनाई गई पुस्तकोंको शास्त्र स्वीकार किया है और उनको तर्ककी कसौटी पर कसकर सत्यान्वेषण करनेका भगीरथ प्रयत्न किया है।

विशेषमें लेखकका कहना है कि—'सब धर्मोंकी अपेक्षा मुझे जैनधर्म अधिक प्यारा है। मेरे हृदयमें अन्य महापुरुषोंकी अपेक्षा भगवान महावीरको अधिक स्थान है। परन्तु मैं इस भक्ति और प्रेमको अन्यायमें परिणत नहीं करना चाहता, क्योंकि ऐसा करके मैं जैनत्वकी निन्दाका कारण होजाऊँगा।' (१–३–३३ का जैन जगत)।

सम्पूर्ण लेखमालामें अनेक जटिल प्रश्नोंकी चर्चा कीगई है, और साथही अनेक सामाजिक धार्मिक विषयोंकी, जैनधर्मके सिद्धान्तोंकी दृष्टिसे मीमांसा कीगई है। इन विषयोंमें गहरा उतरकर निर्णय प्राप्त करनेका धैर्य और शक्ति हरएक वाचक में होना कठिन है। यहभी सम्भव नहीं है कि इस व्यवसायपूर्ण युगमें हरएक विचारशील वाचकको लेखकके वक्तव्यको पचानेको पूरा अवकाश मिले। फिरभी जिनमें जैनधर्मका मर्म समझनेकी प्यास है उनको गुजर, लेखमालाके प्रत्येक शब्दका शान्ति और धैर्यके साथ मनन किये बिना नहीं है।

मैंभी पूरी लेखमाला पढ़कर उसका मनन नहीं करपाया हूँ। जितना पढ़ा है और जितना विचार किया है उसपरसे कितनीही जगह ऐसा मालूम हुआ है, इसे पूरी तरह समझनेके लिये अन्य ग्रंथों और सिद्धान्तोंका अभ्यास करना आवश्यक है और (२) कुछ तो चमका देनेवाला, अमुक मान्यता को आघात पहुँचानेवाला, क्रान्तिकारी और विस्मयकारक लगता है। (३) कितनेही भागमें पूरी सम्मति नहीं दीजासकती, कुछ मतभेद रहता है।

इतना होनेपरभी सब लेखोंकी भाषा, दलील और प्रमाण वगैरहको नज़रमें रखते हुए मालूम होता है कि लेखकमें आवेश नहीं है, स्वच्छन्दता नहीं है, अविचार नहीं है, जल्दबाज़ी नहीं है; और मतलबी स्वार्थ, साम्प्रदायिक मोह, पूर्वग्रह या व्युद्ग्राहित विचारणाभी दिखाई नहीं देती। इतनी बातें जब न हों तब सत्यकी खोज करनेमें नग्न सत्य—संपूर्ण सत्य—की प्राप्ति होसकती है। लेखकमें यह स्पष्ट दिखाई देता है कि उनने बहुत दार्शनिक शास्त्र ग्रंथों का परिचय, तर्क और न्यायके शास्त्रोंका अभ्यास किया है, उनमें न्यायबुद्धि और समन्वय शक्ति है जिससे वे अपने निर्णयात्मक [illegible] मत रखते हैं और रखनेवाले हैं। उ[illegible] से कोई सम्मत हो यह आवश्यक [illegible] सम्मत हो यहभी नहीं है। पूर्वग्रहस[illegible] सिद्धान्तोंके विरुद्ध जब कोई क्रान्तिकारी निर्णय आता है तब विचारवान मनुष्यभी एकबार चमक जाता है—स्तंभित होजाता है। उस चमकार और स्तंभनके बाद विचारमंथन और मनन बुद्धिके बलसे वह अपना निर्णय करता है। इस निर्णयके बाद कोई लेखकको चाहे पूरी सम्मति दे या आंशिक सम्मति दे या असम्मति दे, परन्तु इस विचारधाराके लिये लेखक जो इतना विशाल परिश्रम कररहे हैं, शृंखलाबद्ध दलीलें और एकपर एक प्रमाण देते हैं उसके बदलेमें वह उनका सादर स्वागत अवश्य करेगा, उन्हें धन्यवाद अवश्य देगा अगर अपने विचारोंमें परिवर्तन हो तो उसे क्रान्ति मानकर अनिष्ट न समझेगा। विचारक्रान्तिके बिना सत्यान्वेषण नहीं होसकता, सत्य बिना धर्म नहीं मिलता, धर्मके बिना मुक्ति नहीं होती।

जैनसमाज में विचारक हैं और उनका सन्मान

करनेवाले समझदारभी हैं। उनमें यह लेखक अर्थात् पंडित दरबारीलाल तो कोई अद्भुत विचारक है, हृदयके ऊपर छाप लगादे ऐसा प्रतिभाशाली और तलस्पर्शी मीमांसक है, निर्भीक और सौम्य लेखक है। उनके वक्तव्यको सुनना, बाँचना, विचारना, मनन करना और उसमेंसे जो सारभूत मालूम हो वह ग्रहण करना अपना—हरएकका—कर्तव्य है। अगर इतना अपन न कर सकें तो मौन रखना और व्यर्थ का कोलाहल न करना योग्य मार्ग है।

साक्षर श्री न्यायतीर्थ दरबारीलाल साहित्यरत्न, विद्वान लेखक हैं, तदुपरांत वे कवि भी हैं। उनके लेखों से मैं उनका उग्र प्रशंसक बनगया हूँ। (परन्तु हाँ में हाँ मिलानेवाला नहीं)। उनके ज्ञानादि ओजस्वी गुण और सात्विक निरभिमान हृदयके साम्हने मेरा मस्तक झुकजाता है। वे निरुपाधिमय जीवन बितावें, दीर्घायुष्य भोगें तथा जैनधर्मके मर्मका आविष्कार और साथ ही समाजकी—देशकी विशेष विशेष सेवा करें, यह प्रार्थना करके मैं अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ।
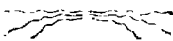
साहित्य परिचय।

Samaraicca-kaha—अनुवादक ऐम० सी० मोदी ऐम० ए० ऐल ऐल० बी०। प्रकाशक गुर्जर-ग्रन्थरत्नकार्यालय गाँधीरोड अहमदाबाद। मूल्य १॥) समराइच्च कहाकी दो कथाओंका यह इंग्लिश अनुवाद है। पीछे Supplementary Notes भी हैं। यूनिवर्सिटी कोर्स होनेसे इसके अनुवादकी आवश्यकता हमने २४ वें अङ्कमें बतलाई थी। इस इंग्लिश अनुवादसे विद्यार्थियोंको बहुत सुभीता होगा।

सतीसुभद्रा, चंपक सेठ, यशोधर—ये तीनों ट्रेक्ट जैनधर्मप्रचारक मंडल अजमेर से प्रकाशित हुए हैं। इनके लेखक या सम्पादक विद्याकुमार शास्त्री न्यायतीर्थ और राजमल लोढा जैन शास्त्री हैं। प्रत्येक का मूल्य एक आना है। प्रथमानुयोग शास्त्रोंमें से उठाकर आजकल की सरल भाषामें ये कथाएँ लिखी गई हैं। सम्पादकों का उद्देश्य बहुत अच्छा है। मध्यम श्रेणीके पाठक पाठिकाओंके लिये ये ट्रेक्ट बहुत उपयोगी होंगे। हाँ, एक बात विचारणीय है और वह आजकलके ज़मानेकी। आज कथासाहित्यके लिखनेका रास्ता बदल गया है। पहिले ज़मानेमें देवी कथाएँ लोगोंको बहुत रुचिकर होती थीं, उनपर लोग विश्वास भी करते थे। परन्तु आज तो देव भी मनुष्यरूपमें चित्रित किये जाते हैं, फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है? अगर चित्रणके इस ढंगसे काम किया जाय तो ये कथाएँ सुशिक्षित लोगोंके कामकी चीज़ भी बन सकती हैं।

रिपोर्ट—हीराचन्द गुमानजी पारमार्थिक संस्थाओं की यह दो वर्षकी रिपोर्ट है। इसमें जैन बोर्डिङ्ग मुंबई अहमदाबाद और रतलाम; जुबिलीबाग ट्रस्ट फंड, हीरा, बाग धर्मशाला और श्राविकाश्रम, इसप्रकार छः संस्थाओं की रिपोर्ट है। हर एक बातका विस्तृत विवेचन है।

रिपोर्ट—सत्तर्कसुधा तरङ्गिणी दि० जैन पाठशाला सागरकी दो वर्षोंकी रिपोर्ट है। मध्यप्रान्त और बुंदेलखण्डमें यह संस्था पचीस वर्षसे संस्कृत विद्वान तैयार कर रही है। इस ढंगकी पाठशालाओंमें और विद्यालयोंमें इसका बहुत ऊँचा स्थान है। जितना यह काम करती है उसकी अपेक्षा इसका व्यय अन्य संस्थाओं से थोड़ा है। रिपोर्टमें महिला विद्यालय, धर्मशाला की रिपोर्ट भी शामिल है।

वरकी आवश्यकता।

मेरे एक मित्रकी १५ वर्षीया कन्याके लिये जो सर्वांग सुन्दर है, हिन्दी मिडिल पास है, आश्रममें उच्च धार्मिक शिक्षा प्राप्त की है, तथा पाकविद्या, शिल्प आदि गृह-कार्योंमें प्रवीण है, एक सुयोग्य वरकी आवश्यकता है। वर किसी भी दिगम्बर जैनजातिका हो, परन्तु वह विद्वान व उदार विचारशील अवश्य हो। केवल वही महाशय पत्रव्यवहार करें जो अन्तर्जातीयविवाहको स्वार्थवश अच्छा न समझकर उसे धार्मिक समझते हों।

—पन्नालाल जैन हटैनी निवासी
मुकाम पोस्ट सिरोंज (सेंधुरी) यू० पी०

धर्म और समाज*

(ले०—श्री० पं० सुखलालजी, प्रोफ़ेसर हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस)

चिउँटीकी ओर ध्यान दीजिये, आपको मालूम होगा कि वह अकेली नहीं रह सकती। वह किसीका सहकार खोजती है। उसे चींटिकी तो बात ही क्या, अपनेसे भिन्न जातिकी चिउँटीकी भी संगति नहीं रुचती। वह अपनी ही जातिके सहचारमें अलमस्त रहती है। इस प्रकारके क्षुद्र प्राणियोंसे आगे बढ़कर पक्षीकी ओर नज़र फेरिये। मुर्गेसे बिछुड़ी हुई मुर्गी मोरके साथ रहे तो भी संतुष्ट नहीं रह सकती। उसेभी अपनी ही जातिका साहचर्य चाहिये। एक बन्दर और एक हिरन अपनी अपनी जातिमें जितने प्रसन्न रह सकते हैं और दीर्घजीवी हो सकते हैं, विजातिमें चाहे जितनी सुविधा और सुख होने पर भी उतने प्रसन्न नहीं रह सकते। मनुष्य जातिके द्वारा अपना बनाया हुआ, वफ़ादार सेवक और सहचर श्वान भी, यदि उसका साथी दूसरा श्वान न हो तो, असंतुष्ट रहेगा। और इसी कारण वह पाला हुआ श्वान, दूसरे श्वानसे डाह करते हुए भी उसे देखकर प्रारम्भ में लड़ाई करेगा, फिर भी अन्तमें उसके साथ हिलमिल जायगा और आनन्द करेगा। प्राणी, पक्षी और पशु जातिका यह नियम हमें मनुष्य में भी दिखाई देता है।

मनुष्य, पक्षी या पशुको पालकर जंगलमें अकेले रहनेका चाहे जितना अभ्यास करे, परंतु अंतमें उसकी प्रकृति मनुष्यजातिका ही साहचर्य खोजती है। एकसी रहन सहन, एकसी टेवें, समान भाषा और शरीरकी समान रचनाके कारण सजातीय साहचर्य ढूंढ़नेकी वृत्ति जीवमात्रमें हम देखते हैं। इतना होनेपर भी मनुष्यके सिवाय किसी भी दूसरे जीव वर्ग या देहधारी वर्गको हम समाज नहीं कहते। वह वर्ग भले ही समुदाय या गण कहलावे किंतु 'समाज' कहलानेकी पात्रता तो मनुष्यजातिमें ही है, क्योंकि मनुष्यमें इतनी बुद्धिशक्ति और विवेकशक्तिका बीज है कि वह अपने रहनसहन, वेष, भाषा, खानपान तथा अन्य संस्कारोंको बदल सकता है, संस्कृत बना सकता है। मनुष्य जब चाहे तभी प्रयत्न करके अपनी जन्मभाषाके अतिरिक्त दूसरी भाषाओंको सीख लेता है और उन भाषा-भाषियोंके साथ सहज ही हिलमिल जाता है। पहनावा और खानपान बदलकर या बिना ही बदले केवल उदारताको धारण करके भिन्न प्रकारके वेष और खानपान वाले मनुष्यके साथ सहजही बस सकता तथा ज़िंदगी बिता सकता है। दूसरेकी अच्छाई लेने और अपनी अच्छाई दूसरोंको देनेमें केवल मनुष्य ही गौरवका अनुभव करता है। भिन्न देश, भिन्नरंग और भिन्न संस्कार वाली मानवप्रजाके साथ सिर्फ़ मनुष्य ही एकता साध सकता है, वही उसे विकसित कर सकता है। इसी शक्तिके कारण मनुष्यवर्ग 'समाज' नामका पात्र बना है।

मनुष्य जहाँ भी रहेगा, किसी न किसी समाजका अंश होकर ही रहेगा। वह जिस समाजमें रहेगा उस समाज पर उसके अच्छे-बुरे संस्कारोंका प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। एक मनुष्य बीड़ी पीता होगा तो वह अपने आसपासके लोगोंमें बीड़ीकी तरफ जमाकर उस व्यसनका वातावरण बनाएगा। अफीमची चीनी अपने समाजमें वही रुचि जागृत करेगा। एक मनुष्य

* पर्युषण व्याख्यानसभामें पढ़ा हुआ।

यदि वह वास्तवमें शिक्षित होगा तो, अपने समाजमें, जानते अनजानते शिक्षाका वातावरण खड़ा करेगा ही। इसी प्रकार समस्त समाज या समाजके अधिकांशमें जो रीति-रिवाज़ और संस्कार रूढ़ हुए होंगे (फिर भले ही वे इष्ट हों या अनिष्ट) उन रीति-रिवाज़ों और संस्कारोंसे उस समाजका घटक मनुष्य मुक्त रह जाए, यह बात अशक्य नहीं तो दुःशक्य तो है ही। तार या टिकिट ऑफ़िसमें कार्य करने वाले या स्टेशनके कर्मचारियोंमें यदि कोई एक ऐसा आदमी जा पहुँचे जो घूँसखोरीको घृणाकी दृष्टिसे देखता हो और इतना ही नहीं किन्तु चाहे जितनी घूँसकी लालच होने पर भी जो घूँसखोरीका भोग न बनना चाहता हो, तो ऐसे खालिस मनुष्यको बाक़ी के घूसखोर वर्गकी तरफ़से बड़ी बड़ी आपत्तियाँ उठानी पड़ेंगी। क्योंकि जब वह स्वयं घूँस न खाएगा तो दूसरे घूँसखोरोंका विरोध करेगा और ऐसा करतेही तमाम घूँसखोर दल बाँधकर या तो उसे स्वयं घूँसखोर बना डालेंगे या उसे हैरान करने में कुछ भी उठा न रखेंगे। यदि वह मनुष्य असाधारण हिम्मत और बुद्धिशाली न हुआ तो अन्त में कमसे कम इतना तो उसे अवश्य करना पड़ेगा कि जब दूसरे घूँस खावें तो स्वयं तटस्थ रहकर आँखें मीच रखे। वह इसी प्रकार उस वर्गमें निभ सकता है। इसी न्यायके अनुसार अपने देशी आई० सी० एस० को विदेशियोंके साथ उस वर्गमें प्रायः बहुत बार बहुतही अनिष्ट सहन करना पड़ता है। इस प्रकारकी परिस्थिति होने पर ऐसे अनिष्टोंसे समाजको बचानेके लिए समाजके मुखिया और राज्यकर्त्ता क़ानून-क़ायदों की रचना करते हैं अथवा नैतिक नियमोंका निर्धारण करते हैं। किसी समय अधिक उम्रकी कन्याओंको कुँवारी रखनेमें कुछ अनिष्ट दिखाई दिए, इसलिए स्मृति शास्त्रकारोंने यह नियम बनाया कि आठ या नौ वर्षकी कन्या गौरी कहलाती है और उसी उम्रमें उसे ब्याह देना धर्म है। इस नियमको उल्लंघन करनेवाला कन्या का पिता और कन्या समाजमें निन्दाके पात्र बनते थे। इस भयके कारण बाल-विवाहकी नीति शुरू हुई। इस नीतिमें जब बहुत अनिष्ट बढ़ गए तब समाजके अगुवा लोगों और राज्यकर्त्ताओंको दूसरा नियम बनाना पड़ा। अब चौदह या सोलह वर्षसे कम आयुमें कन्याका ब्याह करनेवाला या तो शिक्षितों द्वाराकी जानेवाली निन्दासे डरता है या राज्यके दंडके भयसे इस नियमका पालन करता है। एक कर्ज़दार मनुष्य अधिकसे अधिक तंग हालतमें भी अपना कर्ज़ चुकानेके लिये पचता है। वह इसलिये कि यदि कर्ज़ न चुकाया तो साख चली जायगी और साख बिगड़नेसे कोई विश्वास न करेगा और इस प्रकार धन्धा खतरेमें पड़ जायगा। इस प्रकार यदि हम विचार करें तो मालूम होगा कि समाजमें जो नियम प्रचलित हैं उनका पालन लोग या तो भयसे करते हैं या स्वार्थ से। अमुक कार्य करने या न करनेमें यदि भय या लालच न हो तो उसे करने या न करनेवाले कितने निकलेंगे—यह एक महान् प्रश्न है। कन्या भी पुत्रकी तरह एक सन्तान है अतएव उसे भी लड़केके समान ही हक़ होने चाहिये; यह सोचकर कन्याको दहेज़ देनेवाले जितने माँ बाप निकलेंगे उससे हज़ार या लाख गुने ज्यादा माँ बाप ऐसे मिलेंगे जो यह सोच कर दहेज़ देते हैं कि यदि अच्छा दहेज़ न देंगे तो कन्याको योग्य घर नहीं मिलेगा और अपने लड़के अच्छे घर नहीं ब्याहे जा सकेंगे। यही भय या स्वार्थ

प्रायः लड़के लड़कियोंकी शिक्षाके सम्बन्धमें भी रहता है और इसी कारण काम चलाऊ शिक्षा प्राप्त होते ही उनकी शिक्षा बन्दकर दी जाती है (फिर भलेही वह लड़का या लड़की शिक्षा ग्रहण करने योग्यभी हो) क्योंकि वह शिक्षा शिक्षा देनेके लिये नहीं दी जारही थी। इसीप्रकार कितनेक समाजोंमें पुनर्लग्नकी रुकावटके विषयमें भी देखा जाता है। जिस समाजमें पुनर्लग्न नहीं होता, उस समाजके भी बहुतसे स्त्री-पुरुष यह मानते हैं कि बलात्कारसे पलाया जानेवाला वैधव्य, धर्म नहीं है। इतने पर भी अपनी लघु पुत्री या बहिन यदि विधवा हो तो उसकी इच्छा होनेपर भी उसका पुनर्विवाह करनेके लिये तैयार नहीं होते और अनेक बार तो वे अपनी ही मर्ज़ीके खिलाफ़ पुनर्विवाहमें सख्त रुकावट डालते हैं। बलात्कारी ब्रह्मचर्यकी इस नीतिके पर्देमें भय और स्वार्थके सिवाय और कुछ भी कारण नहीं होता। गृहस्थोंकी बात छोड़ दीजिये। त्यागी और गुरु गिने जानेवाले वर्गमें जाकर देखें तो हमें मालूम होगा कि उनके बहुतेरे नीति-नियमों और व्यवहारोंके पीछे केवल भय और स्वार्थ हीका साम्राज्य है। किसी त्यागीका शिष्य दुराचारी हो जाय या स्वयं गुरु ही भ्रष्ट हो तो वह शिष्योंका गुरु उसे वेषधारी बनाये रखनेका ही पूर्ण प्रयत्न करेगा—वह इस बातको नहीं देखेगा कि शिष्यकी वृत्ति सुधरी है या नहीं? क्योंकि उस गुरुको अपने शिष्यकी भ्रष्टतासे अपनी प्रतिष्ठा नष्ट होनेका भय है। कोई गुरु यदि अनाचारी हो तो उस सम्प्रदायके अनुयायी उसे पदभ्रष्ट करनेमें संकोच करेंगे और उसपर बलात्कारी ब्रह्मचर्य लादनेका प्रयत्न करेंगे क्योंकि उन्हें अपनी सम्प्रदायकी प्रतिष्ठामें धब्बा लगने का भय है। पुष्टिमार्गके आचार्यका बारम्बार स्नान और जैनधर्मके साधुका सर्वथा अस्नान कभी कभी सामाजिक भयके कारण ही होता है। मौलवियोंके गीतापाठमें और पंडितोंके कुरानपाठमें भी सामाजिक भय और स्वार्थ अधिकांशमें बाधा उत्पन्न करता है। इन सामाजिक नीति-नियमों और रीति-रिवाज़ोंके पीछे प्रायः भय और स्वार्थ ही रहता है। भय और स्वार्थ के कारण पालन किये जानेवाले नीति-नियमों को बिलकुल हटा फेंकना चाहिए या वे एकदम निकम्मे हैं अथवा उनके बिना भी समाजका काम चल सकता है—यह कहनेका हमारा आशय नहीं है। यहां तो सिर्फ़ नीति और धर्मके बीच जो भेद है वही बताना है।

जो बन्धन या जो कर्त्तव्य भय अथवा स्वार्थमूलक होता है वह नीति है, और जो कर्त्तव्य भय या स्वार्थमूलक न होकर शुद्ध कर्त्तव्यके ही लिए हो और जो सिर्फ़ योग्यता पर ही अवलम्बित हो, वह धर्म है। नीति और धर्मका यह अन्तर कुछ मामूली अन्तर नहीं है। यदि हम ज़रा गहराईमें घुसकर देखेंगे तो स्पष्ट दिखाई देगा कि नीति समाजके धारण पोषणके लिए आवश्यक होने पर भी उससे समाजका संशोधन नहीं हो सकता। संशोधन अर्थात् शुद्धि और शुद्धि अर्थात् सच्चा विकास। यदि यह विचार वास्तविक हो तो कहना चाहिए कि यह विकास धर्म परही अवलम्बित है। जिस समाजमें उपर्युक्त धर्म जितने अधिक अंशोंमें पालन किया जाता होगा वह समाज उतना ही अधिक उन्नत होगा। इस बातको ठीक ठीक समझ लेनेके लिए कुछ उदाहरण लीजिए। मान लीजिए दो आदमी हैं। एक टिकिट मास्टर है। वह अपने मदका हिसाब बड़ी सावधानीसे रखता है और रेलवे कम्पनी को एक पाईका भी नुकसान हो ऐसी भूल नहीं

करता—इसलिए कि कहीं भूल हुई तो दण्ड भोगना पड़ेगा या नौकरीसे हाथ धोना पड़ेगा! किन्तु इतनी ही लगन वाला वह टिकिट मास्टर यदि दूसरा भय न हो तो, मुसाफ़िरोंसे घूँस लेता है। अब दूसरे आदमीको लीजिए। वह स्टेशन मास्टर अपने हिसाबकी चौकसी रखता है और लाँच लेनेका कितना ही अनुकूल प्रसंग क्यों न हो, पर वह लाँच नहीं लेता और इतना ही नहीं बल्कि वह घूँसखोरीका वातावरण ही पसन्द नहीं करता। इसी प्रकार एक त्यागी व्यक्ति प्रकट रूपसे पैसा लेने या रखनेमें अकिंचन व्रतका भंग मानकर पैसा हाथमें नहीं लेगा या अपने पास नहीं रखेगा। फिर भी यदि उसके मनमें अकिंचनता न आई हो—उसके लोभका संस्कार नष्ट न हुआ हो, तो वह धनिकोंको शिष्य बनाकर मनही मन फूला नहीं समाएगा और मानो स्वयं ही धनवान् बन गया हो, इस प्रकार अपनेको दूसरोंसे ऊँचा समझ कर गर्वयुक्त होकर अहंकारका व्यवहार करेगा। जबकि दूसरा त्यागी, यदि वह सच्चा त्यागी हुआ तो, अपने अधिकार में पैसा रखेगा ही नहीं और यदि पासमें पैसा हुआ भी तो उसके मनमें जरा भी अभिमान या पृथक् स्वामित्वका गौरव उदित न होगा। वह बड़े बड़े धनकुबेरोंके बीच रहकर और धनिकोंकी सेवाके प्रसंग आने पर भी उससे फूल नहीं जायगा और न अपनेको दूसरोंकी अपेक्षा बड़ा ऊँचा मानेगा। नतीजा यह होगा कि यदि समाजमें नीतिकी दृष्टिसे त्यागी होंगे तो वह समाज उन्नत या शुद्ध नहीं हो सकेगा क्योंकि उस समाजमें त्यागीके वेषमें रहकर भोग भोगा जायेगा, जिससे कि त्यागका पालन गिना जा सके और भोगका भी पोषण हो। इस दशामें यद्यपि त्यागियोंमें प्रत्यक्षरूपसे धन प्राप्त करने और उसका संग्रह करनेकी गृहस्थोंकी सी होड़ाहोड़ी नहीं होगी तथापि दूसरोंकी अपेक्षा अधिक श्रीमान् शिष्योंको रिझाकर, समझा-बुझाकर, चकमा देकर अपनानेकी होड़ तो अवश्य ही रहेगी। इस प्रकारकी होड़में वे त्यागी जान बूझकर या बिना जाने समाजकी सेवा करनेके बदले कुसेवा ही अधिक करेंगे। इससे विपरीत, समाजमें यदि धार्मिक दृष्टिसे त्यागी होंगे तो न तो उनमें धन प्राप्त करने या संग्रह करनेकी होड़ाहोड़ी होगी और न श्रीमान् शिष्योंको अपनानेकी चिन्ता ही उन्हें सतायेगी। वे शिष्य-संग्रहमें या शिष्य-परिवारके विषयमें बिलकुल निश्चिन्त होंगे और सिर्फ़ समाजके प्रति उनका जो कर्तव्य है उसे पूर्ण करनेमें ही वे तल्लीन रहेंगे। इस प्रकारके धार्मिक त्यागियोंमें आपसमें परस्पर ईर्ष्या या कलहका प्रसंग उपस्थित नहीं हो सकता और उनके कारण समाजमें भी किसी प्रकारका विसंवाद नहीं फैल सकता। इस प्रकार हम देख चुके कि किसी समाजमें चाहे जितने नीतित्यागी हों, पर उनसे समाजका कल्याण न होकर अकल्याण ही अधिक होता है, जब कि किसी दूसरे समाजका एक ही सच्चा धर्म-त्यागी उस समाजको शुद्ध शुद्ध बनाता है।

एक दूसरा उदाहरण लीजिए। मान लीजिए दो सन्यासी हैं। इनमें से एक सन्यासी भोग-वासना जागने पर सामाजिक अपयशके भयसे ऊपरसे त्यागीका ढोंग बनाए रखकर अनाचार सेवन करता है। दूसरा सन्यासी इस प्रकारकी वासना प्रगट होनेपर जब उसे वह क़ाबूमें नहीं कर सकता तो चाहे जितने अपयश एवं तिरस्कारकी संभावना होने पर भी खुल्लमखुल्ला गृहस्थपन स्वीकार कर लेता है। ऐसी दशामें

पहले नीति-त्यागीकी अपेक्षा यह भोगी-त्यागी ही समाजकी शुद्धताकी अधिक रक्षा कर सकता है। कारण स्पष्ट है। पहला-नीतित्यागी-भयको नहीं जीत सका है जबकि दूसरे-भोगीत्यागीने भयपर विजय प्राप्त करली है तथा अन्तर और बाहरकी एकता साधकर धर्म और नीति दोनों का ही पालन किया है।

इस लम्बी चर्चासे समझा जा सकता है कि समाजकी वास्तविक शुद्धि एवं वास्तविक विकासके लिए धर्मकी अर्थात निर्भय निःस्वार्थ और ज्ञानपूर्ण कर्तव्यकी ही आवश्यकता है। अब हमें देखना चाहिए कि दुनियाँमें कौन ऐसा सम्प्रदाय है, कौन ऐसा पंथ है और कौन ऐसा धर्म है, जो यह दावा कर सके कि केवल हमही सिर्फ धर्मका सेवन करते हैं और धर्म-सेवन करके हमनेही दूसरोंकी अपेक्षा अधिक संशुद्धि की है ?

इसका उत्तर स्पष्ट है। दुनियाँमें एकभी ऐसा पंथ या सम्प्रदाय नहीं है जिसने केवल धर्मका ही आचरण किया हो और उस धर्माचरण द्वारा समाजकी शुद्धिही की हो। कोई पंथ या सम्प्रदाय यदि यह दावा करे कि हममें अमुक सच्चे महापुरुष हुए हैं और उन्होंने समाज की शुद्धिकी है, तो इस प्रकारका दावा दूसरा विरोधी पंथभी कर सकता है; क्योंकि प्रत्येक पंथमें कम या अधिक संख्यामें सच्चे त्यागी व्यक्ति हुए हैं; इस प्रकारका इतिहास हमारे सामने मौजूद है। कहे जाने वाले धर्मके बाह्य रूपों परसे समाजकी शुद्धिका माप करके किसी पंथको धर्मात्मापनका सर्टीफिकेट तो दियाही नहीं जा सकता। धर्मके बाह्यरूप परस्पर इतने अधिक विरोधी हैं कि उनपरसे यदि धर्मीपनका प्रमाणपत्र देने चलें तो या तो तमाम पंथों को धार्मिक कहना पड़े या तमामको अधार्मिक ही कहना पड़े। मान लीजिए—कोई पंथ, मंदिर और मूर्त्तिपूजा संबंधी अपने प्रचारका उल्लेख करके यह कहने लगे कि हमने इनका प्रचार करके जनसमाजको ईश्वरकी पहचान करानेमें और ईश्वरकी उपासनामें सहायता पहुंचाई है और इस प्रकार हम समाजमें शुद्धता लाए हैं; तब इसका विरोधी दूसरा पंथ इससे विपरीत यह कहनेके लिए कटिबद्ध है कि हमने मन्दिरों और मूर्त्तियोंका विध्वंस करके समाजको शुद्ध किया है, क्योंकि मन्दिरों और मूर्त्तियोंके बहाने बढ़े हुए वहम आलस्य और ढोंगको, मन्दिरों और मूर्त्तियोंका विरोध करके उसने अमुक प्रमाणमें बढ़नेसे रोका है। एक पंथ, जो तीर्थ-स्नानकी महिमा बखानता और बढ़ाता हो वह, शारीरिक शुद्धिके द्वारा मानसिक शुद्धि होती है इस प्रकारकी दलीलके द्वारा अपनी प्रवृत्ति को समाज कल्याणकारी बता सकता है; जबकि तीर्थस्नानका विरोधी दूसरा पंथ स्नान-नियमनके अपने कार्यको समाज कल्याणकारी सिद्ध करनेके लिये यह तर्ककर सकता है कि बाह्य-स्नान के महत्वमें फँसे हुए लोगोंको उस मार्गसे हटा कर अन्तर शुद्धिकी ओर ले जानेके लिए स्नान पर नियंत्रण करनाही हितकारक है। एक पंथ कंठी बँधाकर और दूसरा उसे तुड़वाकर समाजके कल्याण करनेका दावा कर सकता है। इस प्रकार पंथके बाहरी रूपोंसे, जो अक्सर एक दूसरेसे बिलकुल भिन्न होते हैं, हम यह निश्चय नहीं कर सकते कि अमुक पंथही सच्चा धर्मात्मा है और अमुक पंथने ही समाजको अधिक शुद्ध किया है।

तो क्या कोई ऐसा एक पैमाना है, जो सर्वमान्य हो और जिसके द्वारा निर्विवाद रूपसे

हम कह सकें कि बाह्य रूप कुछ भी हो पर अमुक वस्तुके होनेसे समाजका एकान्त कल्याण ही होगा? और वह वस्तु जिस पंथमें, जिस जातिमें, या जिस व्यक्तिमें, जितनी अधिक मात्रामें है उसी पंथने, उसी जातिने और उसी व्यक्तिने, समाजकी शुद्धिमें या समाजके विकासमें अधिक सहायता पहुचाई है, ऐसा कहा जासकता है? अलबत्ता ऐसी एक वस्तु है और ऊपरकी चर्चासे वह स्पष्ट होचुकी है। वह वस्तु है निर्भयता, निर्लेपता और विवेक। व्यक्ति या पंथके जीवनमें यह वस्तु है या नहीं, यह बात सहज ही जानी जा सकती है। जैसा मानना वैसा कहना और जैसा कहना उससे विपरीत न चलना, या जैसा चलना वैसा ही कह देना, यही तत्त्व निर्भयता है। इस निर्भयताको धारण करनेवाला कोई नौकर अपने मालिकसे डरकर सत्य बात नहीं छिपायगा और बड़ेसे बड़ा खतरा उठानेके लिए तैयार रहेगा। कोई भक्त गृहस्थ बड़प्पनमें कमी आने के भयसे धर्मगुरुके समक्ष या अन्यत्र कहीं भी अपने दोषोंको ढकने या बड़ा बननेके लिए झूठा ढोंग न करके सच्ची बात प्रकट करनेके लिए तैयार रहेगा। कोई धर्मगुरु, यदि उसमें निर्भयता हुई तो, अपने पापको ज़रा भी गुप्त न रखेगा। इसी प्रकार यदि वह निर्लोभ हुआ तो अपने जीवनको एक दम सादगीके साथ व्यतीत करेगा। निर्लोभ पन्थपर मूल्यवान् वस्त्रों और आभूषणोंका भार नहीं होता। जिस पन्थमें निर्लेपता होगी वह अपनी समस्त शक्तियोंको एकाग्र करके दूसरोंसे सेवा चाकरी करानेमें संतुष्ट नहीं होगा। यदि विवेक हुआ तो उस व्यक्ति या पन्थको दूसरोंके साथ झगड़े टंटेमें पड़नेका कोई कारण ही उपस्थित न होगा। वह अपनी शक्ति और सम्पत्तिका सदुपयोग करके ही दूसरोंके हृदयोंको जीतेगा। जहाँ विवेक होगा वहां क्लेश हो ही नहीं सकता और जहां क्लेश हो वहां समझ लेना चाहिए कि यहां विवेक है ही नहीं। इस प्रकार हम सहज ही समझ सकते हैं कि किसी व्यक्ति या पंथमें धर्म है या नहीं और वह व्यक्ति या पंथ समाजके लिए कल्याणकारी है या नहीं।

जातिमें महाजन (पंच), पंथमें उसके अगुआ और समस्त प्रजामें राज्यकर्त्ता, नीतिका निर्माण करते हैं, देशकालके अनुसार उसे बदलते हैं और उसका पालन कराते हैं। फिरभी समाजकी शुद्धिका कार्य शेष ही रह जाता है। यह कार्य कोई एक, पंडित या राजा अपनी सत्तासे नहीं कर सकता। यही कार्य मुख्य है। इसी कार्यको करना ही ईश्वरीय संदेश है। जिस व्यक्तिको यह कार्य करनेकी लगन हो वह दूसरोंको कहनेसे पहले अपने खुदके जीवनमें धर्मको स्थान देवे। यदि उसके जीवनमें धर्मका प्रवेश होगया तो उसका जीवन समाजकी शुद्धि कर सकेगा (फिर भले ही वह किसीको शुद्ध होनेका उपदेश वाणी, उपदेश या लेखन द्वारा न देता हो)। समाजकी शुद्धि, जीवन–शुद्धि पर अवलम्बित है और जीवनशुद्धिही धर्मका साध्य है। अतएव यदि हम अपने समाजको और जीवनको निरोगी बनाये रखना चाहते हों तो हमें आत्मनिरीक्षण करना चाहिये कि उपर्युक्त धर्म हमारे अन्तःकरणमें है या नहीं और यदि है तो कितने प्रमाणमें? इन धार्मिक माने जाने वाले दिनोंमें (पर्यूषणमें) यदि आत्मनिरीक्षणकी बात सीख लें तो वह सदा स्थायी बनेगी और ऐसा होनेसे हमारे सामने जो विशाल समाज और राष्ट्र है, उसकी हम यत्किंचित् सेवा बजा सकेंगे।

साहित्य-सुधा ।

(२)

प्रथमांकमें सिरिसिरि वालकहाके वीररस विषयक उद्गार प्रकाशित किये थे। इस अंकमें भी ऐसेही उद्गार प्रकाशित किये जाते हैं। पद्मपुराणके ५७ वें पर्वमें वीर लोग जब युद्धकी तैयारी करते हैं उस समय स्त्रीपुरुषोंमें जो चर्चा होती है उसका यह वर्णन है।

पत्नियाँ अपने अपने पतियोंसे कहती हैं—

संग्रामे संगते पृष्टे यदि नाथागमिष्यसि ।
दुर्यशः तदहं प्राणन् मोक्ष्यामि श्रुतिमात्रतः ॥ ४ ॥

स्वामिन ! लड़ाईमें अगर तुम पीछे भाग आओगे तो हे दुर्यश (अपने यशको कलंकित करने वाले), मैं इस बातको सुनतेही प्राण छोड़ दूँगी।

किंकराणामतः पत्न्यो वीराणामपि गर्विताः ।
धिक् शब्दं मे प्रदास्यन्ति किं नु कष्टमतः परम् ॥५॥

किंकरोंकी और वीरोंकी पत्नियाँ मुझे धिक्कार देंगी। इससे बढ़कर और कष्ट क्या हो सकता है ?

रणप्रत्यागतं धीरमुरोव्रण विभूषणम् ।
विशीर्णं कवचं प्राप्तं जयलब्ध भटस्तवम ॥ ६ ॥
द्रक्ष्यामि यदि धन्या हं भवन्तमविकत्थनम ।
जिनेन्द्रानर्चयिष्यामि ततो जाम्बूनदाम्बुजैः ॥७॥

जब मैं देखूँगी कि तुम रणसे बिना भागे लौट आये हो, तुम्हारी हिम्मत नहीं टूटी है, तुम्हारी छाती में घाव बनगये हैं, तुम्हारा कवच टूट गया है, विजय प्राप्त करनेसे तुम्हारी स्तुति होरही है, उस समय मैं अपनेको धन्य समझूँगी और सोनेके कमलोंसे जिनेन्द्र भगवानकी पूजा करूँगी।

अभिमुख्यगतं मृत्युं वरं प्राप्ताः महाभटाः ।
पराङ्मुखा न जीवन्तो धिक् शब्द मलिनीकृताः ॥८॥

जो महाभट साम्हने आई हुई मृत्युसे भेंट करते हैं वे श्रेष्ठ हैं; किन्तु जो पीठ दिखाकर जीते रहते हैं उनका जीवन किसी कामका नहीं, उनका जीवन धिक्कारसे मलिन है।

काचिज्जगाद ते नाथ हतसं व्रणभूषणम् ।
पुराणं रूढकं जातं ततो नैवातिशोभसे ॥१२॥
अतो नवव्रणन्यस्तस्तन मण्डल सौख्यदम् ।
द्रक्ष्येऽहं वीरपत्नीभिर्विकासि मुख पंकजैः ॥१३॥

कोई बोली—नाथ ! तुम्हारा यह व्रणरूपी भूषण पुराना पड़गया है इसलिये अब तुम सुन्दर नहीं मालूम होते। युद्धमें जब तुम्हें नये घाव लगेंगे और छातीके उन घावोंपर स्तन रखकर जब मैं सुख का अनुभव करूँगी तब प्रफुल्लित मुखसे वीर पत्नियाँ मुझे देखेंगी।

पति अपनी पत्नियोंसे कहते हैं—

नरास्ते दयितेश्लाघ्या ये गता रणमस्तकम् ।
त्यजन्त्यभिमुखा जीवं शत्रूणां लब्धकीर्तयः ॥२१॥

प्रिये ! वे मनुष्य धन्य हैं जो रणमें आगे बढ़कर शत्रुके साम्हने प्राण छोड़ देते हैं और कीर्त्ति प्राप्त करते हैं।

उद्भिन्नदन्ति दन्ताग्रदोलादुर्ललितं भटाः ।
कुर्वन्ति न विना पुण्यैः शत्रुभिर्घोषितस्तवाः ॥२२॥

योधा जब हाथियोंके दाँत तोड़कर उनकी सूँडों के ऊपर झूलनेका खेल करते हैं तब शत्रुभी उनकी प्रशंसा करते हैं। परन्तु यह सौभाग्य बिना पुण्यके नहीं मिलता।

गजदन्ताग्रभिन्नस्य कुम्भदारणकारिणः ।
यत्सुखं नरसिंहस्य तत्कः कथयितुं क्षमः ॥२३॥

गजदन्तको तोड़कर कुम्भस्थलको विदारण करने वाले मनुष्यरूपी सिंहको जो सुखानुभव होता है उसे कौन कह सकता है ?

त्रस्तम् शरणमायातं दत्तपृष्ठं च्युतायुधम् ।
परित्यज्य पतिष्यामो दयिते शत्रुमस्तके ॥२४॥

प्रिये ! जो भयभीत होगा, जो शरणागत होगा,

जो पीठ दिखाकर भागता होगा, जिसने शस्त्र छोड़ दिये होंगे, उसे छोड़कर हम शत्रुके सिरपर टूट पड़ेंगे।

भवत्या वांछितं कृत्वा प्रत्यागत्य रणाजिरात्।
प्रापयिष्ये समाश्लेषं भवन्तीं तोषधारिणीं ॥२५॥

आपकी इच्छा पूरी करके रणाङ्गणसे लौटकर सन्तुष्ट करके मैं आपका आलिङ्गन करूँगा।
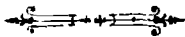
स्थानीय चर्चा।

इन दिनों अजमेरमें खूब चहलपहल रही। मुनिवेषियोंका नग्नतांडव, श्रावकोंकी गुरुमूढ़ता श्रीमानोंकी कीर्तिलोलुपता, पंडितोंकी स्वार्थसाधुता व मायाचार आदि का खासा प्रदर्शन हुआ। यहाँ आयोजन किया गया था—धर्मकी प्रभावनाका, परन्तु वास्तवमें धर्मकी प्रभावना या अप्रभावना कितनी हुई, यह पाठकोंको आगेके विवरणसे मालूम होगा।

मिती मगसर सुद ५ ता० २२ नवम्बरको सायङ्काल ४ बजेके क़रीब श्री शान्तिसागरजी (दक्षिण) व शान्तिसागरजी छाणीके सम्मिलित संघ आये। दोनों संघोंमें कुल मिलाकर ९ मुनिवेषी, १ अहिलकवेषी ४ क्षुल्लकवेषी व ब्रह्मचारी आदि थे। ब्यावरके कई श्रावक साथमें चौके लेकर यहाँ तक आये थे। मुनिलोगोंका सामान—घास (पयाल) चटाइयाँ, चौकियाँ, तख़्त, कपड़ेकी चिकें इत्यादि—संघकी मोटरलॉरीमें लादकर लाया गया था। भक्त लोगोंकी दृष्टिमें इतना परिग्रह रखते हुए भी ये पूर्ण निष्परिग्रही हैं। भक्त लोगोंकी इच्छा हुई कि इनको गाजे बाजेके साथ जलूस बनाकर शहरमें घुमावें, इस कारण उस रोज़ उन्हें शहरके बाहर रखा गया और दूसरे दिन शहरमें लाया गया। शान्तिसागर संघसे विद्रोह कर निकले हुए दो मुनिवेषी चन्द्रसागरजी व श्रुतसागरजी यहाँ पहलेसे मौजूद थे। ये लोग अब शान्तिसागरजीको न अपना गुरु मानते हैं, न उनकी वन्दना करते हैं, अतः अगर केवल आगन्तुक साधुवेषियोंका जुलूस निकाला जाता तो चन्द्रसागर श्रुतसागर आदि उसमें सम्मिलित न होते। इसलिये रथयात्राका उपक्रम किया गया और इस बहाने वे लोग भी शामिल होगये। मुनिलोगोंके आगे नृत्य होता जारहा था। जब कि अन्धभक्तलोग श्री जिन प्रतिमाके समक्ष भी मुनिवेषियोंका नाम लेकर उनकी जयके नारे लगा रहे थे, श्रीमान पं० बनारसीदासजी शास्त्री व अन्य कई सज्जन श्रीजीके रथके आगे अर्हन्तदेवकी स्तुतिमें तथा शास्त्रवर्णित आदर्श गुरुओंके गुणानुवादमें पद सवैया आदि गाते जारहे थे।

मिती मगसर सुद ८ ता० २४ नवम्बरको आगन्तुक साधुवेषियोंमें से दोका केशलौंच हुआ। केशलौंच करते हुए साधुओंका भक्तमंडली सहित फोटो लिवाया गया। केशलौंचके पश्चात् मुनिमंडली गाजे बाजेके साथ शहरके मन्दिरोंके दर्शन करनेके लिये गई। मुनिलोग इतनी तेज़ीके साथ चले जा रहे थे मानो कोई पलटन "क्विक मार्च" कर रही हो। ईर्यासमितिका श्राद्ध हो रहा था! बाज़ारोंमें लोग इन लीलाओंको देखकर हँसते थे, परन्तु भक्तोंकी दृष्टिमें यह प्रभावना थी!

मिती मगसर सुद ९ ता० २५ नवम्बरको कलशाभिषेक उत्सव हुआ। चन्द्रसागरजीकी आज्ञा हुई कि जल से भरे हुए कलशोंको जटासहित नारियलोंसे ढककर रखा जाय तथा अभिषेक करनेवाला दाहिने हाथमें नारियल व बाँयें हाथमें कलश लेकर अभिषेक करे! कई लोगोंको इसमें आपत्ति थी परन्तु जब स्वयं रायबहादुर सेठ टीकमचन्दजी, जिनकी नशियाँ में यह उत्सव हो रहा था, कठपुतलीकी तरह गुरुदेवकी आज्ञाका पालन कर रहे थे, तो औरोंका ऐतराज़ व्यर्थ था। इन दिनों उक्त नशियाँमें सेठ साहिबकी परम्परागत आम्नायके विरुद्ध कई क्रियायें हुईं। मिती मगसर सुद ५ ता० २२ नवम्बरको श्रीयुत हेमराजजी दोसीको क्षुल्लकदीक्षा देते समय उनसे बैठे हुए पूजा कराई गई थी। एक रोज़ एक शुद्धाम्नायी युवकने सेठ साहिबकी इस मनोवृत्ति व अकर्मण्यतापर बहुत कुछ कहा सुना। सेठ साहिब लज्जित अवश्य हुए किन्तु कुछ न बोले। मालूम हुआ है कि उस दिन चन्द्रसागरजीका इरादा पंचामृताभिषेक करानेका था तथा उसके लिये गुप्त रूपसे पूरी तैयारी भी करली गई थी परन्तु पीछे यह सोच कर कि कहीं सेठ टीकमचन्दजी इतना दबाव बर्दाश्त न न करें, उस रोज़ केवल जलसे अभिषेक कर ही सन्तोष किया गया। पंचामृत-अभिषेकके लिये दूसरे रोज़ एकाएक छोटेधड़ेकी (बीसपंथी) नसियाँ में आयोजन कराकर अपनी इच्छा पूरी की।

मिती मगसर सुद १० ता० २६ नवम्बरको रथयात्रा

उत्सव हुआ । जैनसमाजकी धनशीलताका काफ़ी प्रदर्शन हुआ । आसपासकी देहातसे स्त्री व पुरुष काफ़ी संख्यामें आये हुए थे । मुनिमंडली भी साथमें थी । जुलूस दरगाहबाज़ारमें पहुँचा कि एकाएक रङ्गमें भङ्ग हो गया ।

चन्द्रसागरजीकी उत्कट इच्छा है कि मैं किसी प्रकार कुछ नये चेले मूँडकर अपना संघ बनाऊँ तथा आचार्यपद प्राप्त करूँ । इस उद्देश्यसे उन्होंने मिती मगसर सुद ५ को अजमेरनिवासी श्रीयुत हेमराजजी दोसीको बिना किसी पूर्व अभ्यासके एकदम ग्यारह प्रतिमाधारी क्षुल्लक बना कर उन्हें जयसागर रूपमें परिणत कर लिया । ब्यावरमें शान्तिसागर संघके साथ श्रीयुत सालिगरामजी बड़जात्या ब्रह्मचारीरूपमें थे । सालिगरामजीने क्षुल्लकदीक्षा लेनेके लिये इच्छा प्रकट की, किन्तु शान्तिसागरजीने अभी उन्हें इसके लिये अयोग्य बताकर दीक्षा देनेसे इनकार करदिया । चन्द्रसागरजी मौकेकी ताकमें थे ही, उन्होंने फ़ौरन उन्हें बुलाकर मगसर सुद ११ ता० २७ नवम्बरको प्रातःकाल दीक्षा देनेकी घोषणा करादी । जुलूस जब दरगाहबाज़ार में था कि शान्तिसागरजीके हाथमें उपरोक्त नोटिस पहुँचा । दरगाहबाज़ारसे सरावगी मुहल्ले तक आते हुए रास्तेमें ही शान्तिसागरजी व चन्द्रसागरजीमें परस्पर खूब चखचख हुई । जिस व्यक्तिको शान्तिसागरजी दीक्षाके अयोग्य समझें, उसको उन्हींका एक शिष्य स्वयं उन्हींके सामने दीक्षा देकर अपना शिष्य बनावे—इसमें शान्तिसागरजी ने अपना अपमान तथा धर्मका घात समझा । लेकिन चन्द्रसागरजीको अपना समुदाय बढ़ाकर आचार्य पद लेने की हविस थी । धर्मका घात होता हो तो उनकी बलासे ! इसके अतिरिक्त वे शान्तिसागरजीको अपना गुरु मानते ही कब हैं, जो उनके अपमानका ख़याल करते ? चन्द्रसागरजीने यह कहा बताते हैं कि जब आप लोहड़साजनोंके यहाँ आहार लेनेके कारण वीरसागर आदिको प्रायश्चित्त नहीं देते हैं, तो मैं भी मेरे जीमें आयगी सो करूँगा । आख़िर जब किसी प्रकार आपसमें तय न हुआ तो नशियाँ आकर शान्तिसागरजीने अपने भक्तोंको बुलाकर कह दिया कि हम कल सवेरे सामायिकके पश्चात् यहाँसे बिहार करेंगे । उनका सामान उसी समय पैक किया जाने लगा तथा दूसरे रोज़के आहारके लिये सामान लेकर उनके आगे चलनेवाली दो मोटरें तैयार होगईं । रङ्ग बिगड़ा हुआ देखकर भक्तमंडलीमें खलबली मच गई । बड़नामोंके ख़यालसे मामलेको किसी प्रकार दबा देनेकी कई असफल चेष्टाएँ की गईं । लोगोंके अनुनय विनय करने व गिड़गिड़ाने पर शान्तिसागरजीने यह तय किया कि अगर सालिगरामको कल दीक्षा न दी जाय तो हम ठहर सकते हैं, वरना नहीं । इधर भक्तमंडलीमें भी दलबन्दी हो गई । ब्यावरवाले शान्तिसागरजीके पक्षमें थे और कहते थे कि हम लोग शान्तिसागरजीका अपमान हरगिज नहीं होने देंगे । देखें सालिगराम कैसे दीक्षा लेता है ! उधर अजमेरवाले कहते थे कि शान्तिसागरजीको खंडेलवालोंसे द्वेष है इसलिये वे सालिगरामजीको दीक्षा लेनेदेना नहीं चाहते । आख़िर किसी तरह सालिगरामजीको समझा बुझाकर उनसे यह घोषित कराया गया कि मैं किसी कारणवश कल दीक्षा नहीं लेना चाहता, और यह क़िस्सा ख़तम किया गया । परन्तु इस प्रबन्धसे चन्द्रसागरजीने अपना अपमान समझा । वे खिसिया गये । दूसरे रोज़ अर्थात् ता० २७ नवम्बरको सवेरे उन्होंने शान्तिसागरजीके प्रति तानेबाज़ी शुरू की—शान्तिसागरजी कहते थे कि मैं कल प्रातःकाल विहार करूँगा सो अभी यहीं बैठे हैं ? मुनिलोग इसी प्रकार वचन गुप्तिका पालन करते हैं ! यह बात जब शान्तिसागरजी तक पहुँची तो वे आहार लेनेके पश्चात् विहार करनेके लिये फिर हठ करने लगे । बड़ा अजीब दृश्य था । इधर शान्तिसागरजी कमंडलु पीछी लिए हुए अजमेरसे बिहार करनेके लिये अड़े हुए थे; उधर भक्त लोग उनके आगे ज़मीन पर लेटकर उन्हें ज़बरन रोक रहे थे । आख़िर यह तय हुआ कि शान्तिसागरजी अपना वचन निबाहनेके लिये अभी यहाँसे विहार तो करेंगे परन्तु वे अजमेरसे बाहिर कहीं नहीं जावेंगे; दुःसंगतिसे बचनेके लिये नशियाँ छोड़कर शान्तिपुरा जाकर रह जावेंगे । तदनुसार चन्द्रसागरजी, श्रुतसागरजी तथा ज्ञानसागरजी इन तीनों मुनिवेषियोंको छोड़कर शेषमंडली शान्तिपुरा चल दी ।

बादमें शान्तिसागरजी (छाणीको) अपना संघ अलग करनेकी सूझी और वे अपने शिष्यों सहित उसी रोज़ सायंकालको वापिस नशियाँ चले आये । दोनों शान्तिसागर संघ पिछले पाँच महीनों तक बराबर साथ रहे थे, इससे कुछ मुनिम्मन्योंमें इतना मोह पैदा हो गया कि शान्तिपुरासे बिदा होते समय फूट फूट कर रोने लगे । क्षुल्लकोंने अपने वस्त्रसे उनके आँसू पोंछ कर किसी तरह सान्त्वना दी ।

नशियाँ में आते ही छाणीसंघमें लूट खसोट शुरू हो गई। मुनिवेषी ज्ञानसागर यद्यपि शान्तिसागरजी छाणीका शिष्य है किन्तु बहुत अर्से तक स्वच्छन्द विहार कर चुकनेके कारण अब उसे किसी बन्दिशमें रहना सख नहीं होता। ब्यावरमें उसे कई बार प्रायश्चित्त लेना पड़ा, उसकी दीक्षा छेदी गई। वह पुनः उसी प्रकार स्वच्छन्द रूपसे विहार करना चाहता था; परन्तु एकलविहारी होने से उसकी प्रतिष्ठामें क्षति न हो जाय, इस आशङ्कासे वह किसी नाममात्रके मुनिको जो उसके वशवर्ती रह सके, अपने साथ रखना चाहता था। ऐसा करनेमें एक प्रलोभन उसे यह भी था कि किसी दिन मैं भी आचार्य बन जाऊँगा। अतः छाणी संघके वीरसागरको उसने अपने साथ कर लिया। इधर चन्द्रसागरजीने छाणी संघके मल्लिसागर पर हाथ मारा। शान्तिसागरजी छाणीके पास अब केवल ऐहिलकवेषी धर्मसागर रह गये। उन्होंने देखा कि इस तरह तो मेरा आचार्यपद ही छिना जाता है, इसलिये किसी तरह वीरसागरको समझा बुझाकर वापिस अपने साथ कर लिया और वे शान्तिपुरा जाकर पुनः दक्षिण संघके साथ होगये। मल्लिसागरजी चन्द्रसागरजीके साथ ही रह गये। बादमें ज्ञानसागरजी भी उन्हींमें आ मिले। इस तरह चन्द्रसागरजीने श्रुतसागरजी, ज्ञानसागरजी, मल्लिसागरजी इन तीन मुनिवेषियों तथा क्षुल्लक जयसागरजी को साथ लेकर अपना संघ अलग बनाया। ज्ञानसागरजी इनके साथ कितने दिन टिक सकेंगे, यह देखना है। लेकिन यह निश्चय है कि चन्द्रसागरजी इनके अलग होनेसे पूर्वही अपना मतलब पूरा कर लेंगे और आचार्य बन बैठेंगे।

रविवार ता० २६ नवम्बरकी रात्रिको नशियाँमें जब देहली अनाथाश्रमके बालक ड्रामा खेल रहे थे, कुदेवपूजा, शिकार खेलना, बन्दूक चलाना आदिके सीन दिखाये गये थे। कई श्रावकों को मन्दिरमें ऐसे सीन दिखाया जाना अनुचित प्रतीत हुआ। रात्रिको ११ बजे तक मुनिवेषी चन्द्रसागरजी भी बैठे हुए ड्रामा देख रहे थे। बीचमें उनके समक्षही बहुत गुल गपाड़ा भी हुवा था। चन्द्रसागरजी ड्रामा देखने, बिजलीकी रोशनी देखने आदिके लिये रात्रि के समय योंही इधर उधर फिरते रहते थे।

ता० २६ नवम्बरको श्रीयुत अमरचन्दजी गँगवालने 'श्री १०८ श्री आचार्य शान्तिसागरजी महाराजकी सेवा में नम्र निवेदन" शीर्षक एक विज्ञापन छपाकर वितरण किया जिसका अभिप्राय यह था कि जब चतुर्थ जातिमें (जिसमें विधवाविवाह व तलाक होते हैं) उत्पन्न व्यक्ति मुनिदीक्षा धारण कर आचार्य बन सकते हैं, तब दस्सा जैनियोंको पूजाके अधिकारसे भी वंचित रखना अन्याय है तथा वह दूर किया जाना चाहिये। उसी रोज़ श्रीमान् बिरधीचन्दजी जैनने "श्री शान्तिसागरजी (दक्षिण) से प्रश्न" शीर्षक पर्चा प्रकाशित कर शान्तिसागरजी से ११ प्रश्न पूछे थे। पर्चेमें यह भी लिख दिया गया था कि मैंने अमुक प्रेसके अध्यक्षको अधिकार दे रखा है कि अगर कोई भाई शान्तिसागरजीसे उत्तर प्राप्तकर तीन रोज़के भीतर छपावें तो उनसे बिना मूल्य लिये उत्तर छाप दिया जावे। परन्तु अभी तक किसीने उत्तर प्रकाशित नहीं किया। क़रीब दो महीने पहिले श्रीयुत चन्दनमलजी जैनने "श्री मुनि चन्द्रसागरजी महाराजसे प्रश्न" शीर्षक पर्चा प्रकाशित किया था जिसमें उनसे पचीस प्रश्न पूछे गये थे। भक्त लोग इन मुनिवेषियोंको महान् विद्वान् व अपूर्व प्रतिभाशाली बताते हैं। इन लोगोंके साथमें पंडित लोग भी रहते हैं। जब ये लोग साधारण गृहस्थोंद्वारा पूछे गये प्रश्नोंका उत्तर देनेकी भी क्षमता नहीं रखते तब इनके विद्वत्ता व पांडित्यके मिथ्या अभिमानका क्या मूल्य है?

संघविच्छेद होजाने पर एक श्रावकने चन्द्रसागरजी से शांतिसागरजी—सम्बन्धी प्रश्नोंका उत्तर पूछा। उन्होंने सबके सामने घोषित किया कि शांतिसागरजी चतुर्थ-जाति में उत्पन्न हुए हैं, चतुर्थ जातिमें विधवा-विवाह (नाता) व तलाक़ होता है, पाटील चतुर्थही हैं तथा पाटीलोंका चतुर्थ जातिवालोंके साथ परस्पर रोटी बेटी व्यवहार होता है, इसलिये इन्हें चतुर्थ जातिके समानही समझना चाहिये। इसपर इनके एक प्रमुख भक्तने कहा—महाराज! तब तो सब मर्यादा डूब गई; तो चन्द्रसागरजीने स्वीकार किया कि हाँ डूब गई। श्रुतसागरजीने भी उपरोक्त वक्तव्यका समर्थन किया। ये दोनों व्यक्ति बहुत अर्से तक शांतिसागर संघमें रहे हैं, तथा सत्यमहाव्रती कहलाते हैं अतः इनकी बात भक्तमंडलीकी दृष्टिमें तो अवश्यही विश्वास-योग्य मानी जानी चाहिये। किन्तु खैर, शांतिसागर संघ अभी कुछ समय अजमेर प्रान्तमें ही रहेगा। श्रावकोंका कर्तव्य है कि वे उनसे बिरधीचन्दजी जैनके प्रश्नोंका उत्तर पूछें और यदि चन्द्रसागरजीका वक्तव्य सत्य प्रमाणित हो तो मुनिधर्मकी रक्षाके लिये तथा जनताके भ्रम

को दूर करनेके लिये समुचित कार्यवाही करें। और यदि चन्द्रसागरजीने केवल कषायवश शांतिसागरजीके सम्बन्धमें उपरोक्त बातें कहीं हों तो निःसंदेह उनका यह कृत्य मुनिपदको कलंकित करनेवाला समझा जाना चाहिये और इसके लिये उन्हें शास्त्रानुकूल प्रायश्चित्त लेनेके लिये मजबूर करना चाहिये। शांतिसागरजी तथा चन्द्रसागरजी इन दोनोंमें से कोई एक अवश्यही दोषी है और इसलिये उसका निर्णय होना नितांत आवश्यक है। अपनी आँखोंके सामने ऐसी ऐसी हरकतें देखते रहना और दोनोंहीके जयके नारे लगाते रहना केवल मूढ़ता व अविवेक प्रदर्शित करता है।

मिती मगसर सुद १२ ता० २९ नवम्बरको चंद्रसागरजीने अपनी मंडली सहित बैंड बाजेके साथ नसियाँसे प्रस्थान किया। जैनधर्मशालामें उनकी विदाईके उपलक्ष्य में जलसा हुआ तथा भक्त-मण्डली सहित उनका फोटो किया गया। परस्पर एक दूसरेकी प्रशंसा करते हुए श्रीमान सुखदेवजी कासलीवालने कहाकि—क्याही अच्छा होता यदि चन्द्रसागरजी महाराजको अजमेर दिगम्बर जैनसमाजकी ओरसे आचार्यपद प्रदान किया जाता! लेकिन भक्त-मण्डलीमें से किसीने भी इस उद्गारका समर्थन नहीं किया। शायद चंद्रसागर मंडली अभी कुछ समय और अजमेरमें ठहरती किन्तु शान्तिपुरास्थित मण्डलीने वहाँ इनके खिलाफ़ प्रोपेगैंडा शुरू कर दिया था। सुना है कि एक रोज़ कुंथसागरजीने अपने भाषणमें कहाकि जो मुनि सेठ लोगोंके यहाँ माल खानेके लिये एक जगह पाँच पाँच महीने तक पड़ा रहे, वह मुनि नहीं कहा जा सकता। साथही यहभी प्रकट हो चुकाथा कि अबतक चंद्रसागर मण्डली अजमेरमें रहेगी, युगलसंघ शांतिपुरा छोड़कर शहरमें नहीं आवेगा। इसलिये इस मण्डलीको मजबूरन युगलसंघके लिये 'लाइनक्लीयर' करना पड़ा।

सुना है कि बहुत शीघ्र श्रीमान रायबहादुर सेठ टीकमचन्दजी यहाँ पर बिम्बप्रतिष्ठा उत्सव करानेवाले हैं। इस सम्बन्धमें सेठ साहिबका लाखों रुपया व्यय होगा। अपव्ययकी नाली अभीसे बहने लगी है। खुशामदियोंने अबतककी सफलताके उपलक्ष्यमें स्थानीय जैनकुमार सभा की ओरसे सेठ साहिबको 'धर्मभक्त शिरोमणि'की उपाधि दिलवादी। उपाधिदाता जैनकुमार सभाका क्या मूल्य है, तथा उसके द्वारा प्रदान कीगई उपाधिसे सेठ साहिबके महत्वमें कितनी वृद्धि हुई इसके विषयमें विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं। जनता वस्तुस्थितिसे भली भाँति परिचित है।

× × ×

चन्द्रसागरमण्डली यहाँसे नसीराबाद गई है। मालूम हुवा है कि चन्द्रसागरजी ज़बर्दस्ती आचार्य बन बैठे हैं। उनके सामने उनके सिखाये हुए भक्त "आचार्य चन्द्रसागरजी महाराजकी जय" के नारे लगाने लगे हैं। अशिक्षित जनता वेषपूजा व गुरु मूढ़ताके चंगुलमें बुरी तरह जकड़ी हुई है। न जाने कब इसका इन पापोंसे उद्धार होगा।

चन्द्रसागरजीके गुरुविद्रोहके समाचार जब जैनजगत् में प्रकाशित हुए थे तो खण्डेलवाल जैनहितेच्छुके सम्पादक महोदयने उनको झूठा बताते हुए लिखा था कि हमने अमुक अमुक व्यक्तियोंके समक्ष शांतिसागरजी व चन्द्रसागरजीसे दरयाफ्त कर मालूम किया है कि चन्द्रसागरजी विशेष धर्म प्रचारके लिये शांतिसागरजीकी आज्ञासे अजमेरमें चातुर्मास कररहे हैं, आपसमें कोई मनोमालिन्य नहीं है, चन्द्रसागरजी शांतिसागरजीको गुरु मानते है, आदि! क्या पं० इन्द्रलालजी शास्त्री अब भी जैनजगत्को झूठा बतानेकी हिमाकत करेंगे? शास्त्रीजी कृपया बतावें कि उपरोक्त बातें उन्होंने समाजको धोखा देनेके लिये स्वयं अपने मनकी प्रेरणासे लिखी थीं अथवा शांतिसागरजी व चन्द्रसागरजीने उनसे झूठ बोला था? मिती मगसर सुदी पूर्णिमाको युगलसंघ शांतिपुरासे वापिस शहरमें आया। —संवाददाता।
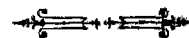
बधाई—जैन जातिभूषण डिप्टी चम्पतरायजी (भूतपूर्वमहामंत्री दि० जैन महासभा) के पौत्र तथा बा० नवलकिशोरजी वकील (भूतपूर्व कोषाध्यक्ष दि० जैन महासभा) के पुत्र श्रीमान् बा० लक्ष्मीचंद्रजी बी० ऐस सी० कानपुर इस वर्ष लंदनमें आई० सी० ऐस० परीक्षामें उत्तीर्ण हुए हैं। जैनसमाजके लिये यह महान् गौरवकी बात है। दिगम्बर जैनियोंमें शायद सर्व प्रथम आपही इस पद पर पहुँचे हैं।

Printed by Pt Radhaballabh Sharma, at the Ajmer Printing Works, Ajmer.

तार का पता—"JAINJAGAT" Ajmer. Reg: No. N 352.

१६ दिसम्बर सन् १९३३

वर्ष ९ अंक ३

जैनसमाज का एकमात्र स्वतन्त्र पाक्षिकपत्र।

वार्षिक मूल्य ३) रुपया मात्र। विद्यार्थियों व संस्थाओं से २॥) मात्र।

卐 जैन जगत् 卐

(प्रत्येक अंग्रेजी महीने की पहली और सोलहवीं तारीखको प्रकाशित होता है)

"पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनम् यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः"॥—हरिभद्रसूरि।

सम्पादक—सा०र० दरबारीलाल न्यायतीर्थ, जुबिलीबाग तारदेव, बम्बई। प्रकाशक—फतहचंद सेठी, अजमेर।

प्राप्ति स्वीकार।

श्रीमान मोहनलालजी दलीचन्दजी देसाई बी० ए० एल एल० बी० हाईकोर्ट वकील बम्बईने जैनजगतकी सहायतार्थ १५) रुपये प्रदान किये हैं।

श्रीमान ला० मुन्नूलालजी श्योसिहरायजी जैन रईस शाहदराके पुत्रका विवाह सिकन्दरपुर (खतौली) निवासी श्रीमान लाला रामजीलालजी सम्पतरामजी की पुत्रीके साथ हुवा था, जिसमें वरपक्षकी ओरसे २०१) नक़द व मन्दिरके लिये सौ रुपयेकी लागतके चाँदीके बरतन तथा कन्या पक्षकी ओरसे १०१) धार्मिक संस्थाओंको प्रदान किये गये। इसमें से ४) जैनजगतकी सहायतार्थ प्राप्त हुए हैं।

उपरोक्त दाताओंको इस उदारताके लिये धन्यवाद है। —प्रकाशक।

श्री शान्तिसागरजीसे वार्तालाप।

श्री शांतिसागरजी व चंद्रसागरजीमें यहाँ जो परस्पर संघर्ष हुआ था, उसके समाचार गतांकमें प्रकाशित होचुके हैं। मुनियोंके पारस्परिक वैमनस्यके कारण भक्त मंडलीमें भी दलबन्दी हो गई। चन्द्रसागरजी अपनी जातिके हैं—केवल इसी कारण अजमेर भक्तमण्डली चन्द्रसागरजीका गुणगान करने लगी तथा चन्द्रसागरजीके स्वरमें स्वर मिलाकर शान्तिसागरजी आदिकी निन्दा करने लगी। इधर सुधारकदलमेंसे भी कोई व्यक्ति शान्तिसागरसंघके पास नहीं गया। शान्तिपुरासे वापिस लौटकर आनेके बाद शान्तिसागरजीने सुधारकदल वालोंसे मिलने की इच्छा प्रकटकी। तदनुसार ता० २ दिसम्बरको मैं अपने कतिपय मित्रों, श्रीमान बाबू मिलापचन्द जी छावड़ा बी० एस सी० एल एल बी० वकील, सेठ बछराजजी पाटणी आदिके साथ उनके पास गया। करीब ३॥ घण्टे तक भिन्न भिन्न विषयों पर चर्चा हुई। वार्तालापके समय युगलसंघके प्रायः सभी साधु आकर जमा होगये थे। कई श्रावक भी मौजूद थे। प्रारम्भमें ही श्री शान्तिसागरजीने मुझसे जैनजगतमें 'मुनिनिन्दाविषयक लेखोंको प्रकाशित न करनेके सम्बन्धमें कहा और इस पर एक लम्बा भाषण देडाला, जिसके उत्तरमें संक्षेपमें मैंने कहाकि जब मुनिलोग दलबन्दीके पचड़ेमें पड़कर तथा अज्ञानतावश शास्त्रविरुद्ध क्रियाएँ करते हैं तथा किसी दलविशेषको प्रसन्न करनेके लिये अपने पदका दुरुपयोग कर उक्त दलके धर्मविरुद्ध मन्तव्योंके प्रचारमें सहायता देते हैं, तो पवित्र मुनिधर्मकी रक्षाके लिये तथा समाजहितके ख़यालसे विवश होकर हमें सिद्ध और साधक दोनोंका विरोध करना पड़ता है। आपसे अथवा और किसी मुनिसे हमारा कोई व्यक्तिगत द्वेष नहीं है। हमारा यह आन्दोलन सदिच्छासे प्रेरित है। जैनजगतमें प्रकटरूपमें आन्दोलन करनेसे पूर्व हमने कई मुनिविषयोंके सम्बन्धमें प्राइवेट तौर पर उनके भक्तोंको समझानेकी चेष्टाकी थी। जब भक्त

लोगोंने अपने दुराग्रहवश इसका उलटा अर्थ लगाया तो हमें मजबूर होकर जैनजगत् द्वारा आन्दोलन करना पड़ा। इसका परिणाम अच्छा ही हुवा है। जनतामें इस कारण काफी जाग्रृति हुई है—श्रीमान सेठ रावजी सखाराम दोशी सरीखे स्थितिपालक, तथा पं० वर्द्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री, जो मुनीन्द्रसागरसंघमें साथ रहकर तथा "स्याद्वाद मार्तण्ड" पत्र में मुनींद्रसागरसंघकी प्रशंसाके पुल बाँधा करते थे, आज मुनींद्रसागरका प्रकट रूपमें विरोध कररहे हैं। शूद्रजलत्याग, यज्ञोपवीत आदिका भी असली रहस्य जनताको प्रकट होने लगा है; आदि।

इसके बाद मैंने शान्तिसागरजीसे पूछा—आपका जन्म किस जातिमें हुवा है ? प्रश्न सुनतेही शांतिसागरजी बोले—जाति पूछनेसे क्या मतलब ? हमको किसीसे बेटीव्यवहार थोड़ेही करना है जो हमारी जाति पूछते हो ? लेकिन जब मैंने कहाकि—जाति छिपाने से फायदा क्या है ? तो आपने बात टालनेके लिये फिर लम्बी वक्तृता देना प्रारम्भ कर दिया। हम लोग शांतिपूर्वक उस असम्बद्ध प्रलापको सुनते रहे। जब शांतिसागरजी अपना भाषण खतम कर चुके तो मैंने नम्रतापूर्वक कहा—मेरा प्रश्न यह है; आपका जन्म किस जातिमें हुवा है ? आखिर बहुत देरतक टालमटूल करनेके बाद शांतिसागरजीने स्वीकार किया कि - मेरा जन्म चतुर्थ जातिमें हुवा है।

तब मैंने दूसरा प्रश्न पूछा "क्या यह सत्य है कि उक्त चतुर्थ जातिमें, जिसमें आपका जन्म हुवा है, विधवाविवाह व तलाक़ होता है तथा विधवाविवाह व तलाक़के पश्चात् भी ऐसे व्यक्तियोंके साथ जातिव्यवहार पूर्ववत् जारी रहता है और वे जाति से अलग नहीं किये जाते ? "

शांतिसागरजी फौरन बोले—तुम्हारी जातिमें भी तो नाता व तलाक़ होता है ! मैंने कहा—नहीं, हमारी जातिमें नाता व तलाक़ नहीं होता। लेकिन शांतिसागरजी बराबर आग्रहपूर्वक कहते रहे कि: "खण्डेलवाल जातिमें नाता व तलाक़ होता है, विधवाएँ बच्चे जनती हैं तथा उन बच्चोंके सम्बन्ध भी बीसोंमें होते हैं।" लेकिन जब उनको ऐसे कुछ उदाहरण नाम आदि सहित बतानेको कहा गया तो वे टालमटूल करने लगे। उनके इस प्रकारके बचाव से जाहिर होता था कि उन्हें अपनी चतुर्थ जातिमें विधवाविवाह व तलाक़ होना स्वीकार तो है, किन्तु साथही यह कहना है कि ये दोनों प्रथाएँ खण्डेलवाल जातिमें भी प्रचलित हैं, तो फिर केवल चतुर्थ जातिको ही इस कारण क्यों हीन समझा जाता है, खण्डेलवाल जातिको भी वैसाही समझना चाहिये ! क्या खण्डेलवाल समाजके नेता शांतिसागरजीके इस अभियोगको स्वीकार करते हैं ?

इसपर जब शांतिसागरजीसे खुलासा करानेके लिये श्रीमान बा० मिलापचन्दजी वकीलने कहाकि—हमारा प्रश्न तो चतुर्थ जातिके विषयमें है। खंडेलजाति उच्च समझी जानी चाहिये या नीच, इसका इस प्रश्नसे कोई सम्बन्ध नहीं है ! आप तो अपनी जातिके बारेमें कहिये; तो शान्तिसागरजी बहकने लगे। कभी कहते थे—हाँ, हमारी जातिमें नाता व तलाक़ होता तो है परन्तु धार्मिक लोग ऐसा नहीं करते और न ऐसे लोगोंको वे मंगलकृत्योंमें बुलाते हैं, उनके हाथसे मुनि आहार नहीं लेते, न उनको पूजा प्रक्षालकाही अधिकार है। किन्तु जब यह पूछागया कि क्या विधवाविवाह व तलाक़ करनेवाले व्यक्ति जातिबहिष्कृत किये जाते हैं ? तो वे चुप हो रहे, और कुछ उत्तर नहीं दिया।

इसी सम्बन्धमें एकबार उन्होंने यह भी कहा कि—हमारी अब कोई जाति नहीं है, हम न चतुर्थ हैं न खण्डेलवाल; जातिका सम्बन्ध गृहस्थ अवस्था तकही था। लेकिन इसपर भी वे कायम न रहे और फौरन कहने लगे—जाति रिवाजोंके सम्बन्धमें जाति के पंचोंको पूछना चाहिये। हमारा इन प्रश्नों से क्या सरोकार ?

उपरोक्त दो प्रश्नोंमें ही दो घंटे से अधिक व्यय होगये। अगर मायाचार करनेके बजाय साफ़ नियततसे उत्तर दियेजाते तो दो मिनटकीभी आवश्यकता न होती। शान्तिसागरमण्डलीने इन प्रश्नोंको टालने की पूरी कोशिश की, लेकिन हम लोग अड़े ही रहे। एक बार कुंथसागरजी बोले—"बाबूजी, प्रश्नकर्ता की पात्रता देखकर उत्तर दिया जाता है। पहिले आप यह बताइये कि विजातीयविवाह, विधवाविवाह, छुआ छूत लोप आदिके सम्बन्धमें आपका क्या अभिमत है ? आपके उत्तरसे आपकी पात्रता देखी जायगी और तब आपको उत्तर दिया जायगा।" यहाँ

(शेष पृष्ठ ३० कॉलम २)

वर्ष १ अंक ३
पौष कृष्णा १४ ता० १६ दिसम्बर
वीर संवत् २४६० सन् १९३३ ई०
जैनजगत्

जैनधर्म का मर्म ।

(३८)

अनुयोग।

इसमें जैनधर्मका कथासाहित्य है । श्वेताम्बर ग्रन्थोंमें इसको अनुयोग शब्दसे कहा है, जबकि दिगम्बर सम्प्रदायके ग्रंथ इसे प्रथमानुयोग कहते हैं। अर्थमें कुछ अन्तर नहीं है । श्वेताम्बर ग्रन्थोंके अनुसार इसका नम्बर दृष्टिवादके भेदोंमें चौथा है; जबकि दिगम्बर ग्रन्थोंमें तीसरा। ये मतभेद कुछ महत्त्वपूर्ण नहीं है, न इसके निर्णय करनेके साधन ही उपलब्ध हैं। पठनक्रमके अनुसार परिकर्मके बाद सूत्र पढ़ाना उचित है। बादमें पूर्व या प्रथमानुयोग कोई भी पढ़ाया जासकता है। प्रथमानुयोगकी आवश्यकता धर्मके स्वरूपको स्पष्ट और व्यावहारिक रूपमें समझनेके लिये है। इसलिये कोई सूत्रके बादही प्रथमानुयोग पढ़े तो कोई हानि नहीं है, अथवा कोई सूत्रके बाद पूर्व पढ़े और पूर्वके बाद प्रथमानुयोग पढ़े तो भी कोई हनि नहीं है । इसीलिये कहीं तीसरा नम्बर और कहीं चौथा नम्बर दिया गया है ।

अनुयोगका अर्थ है अनुकूल सम्बन्ध । हरएक सम्प्रदायका कथासाहित्य अपने सिद्धान्तके पोषण और प्रचारके लिये बनाया जाता है। कथा चाहे सत्य हो या कल्पित, उसका चित्रण इसी उद्देश्यको लेकर किया जाता है। जैनाचार्य इस बातको स्पष्ट शब्दोंमें स्वीकार करते हैं कि कथाएँ घटित भी हैं, और कल्पित भी हैं। समवाङ्ग * में णाय धम्मकहाका परिचय देते हुए कहा है कि 'इन अध्ययनोंमें आयी हुई कथाएँ चरित (घटित=सत्य) भी हैं और कल्पित भी।' इसलिये इन्हें इतिहास समझना भूल है। वास्तवमें ये अनुयोग हैं। ये धर्मशास्त्र हैं। अधिकांश कथाएँ कल्पित और अर्धकल्पित हैं। जैन कथासाहित्यमें या अन्य कथासाहित्यमें अगर इतिहासका बीज मिलता हो तो स्वतन्त्रतासे उसकी परीक्षा करके ग्रहण करना चाहिये; बाकी इन कथाओंको कथा ही समझना चाहिये, न कि इतिहास। इस बातके विस्तृत विवेचनके पहिले इसके भेदोंका वर्णन करना उचित है।

दिगम्बर ग्रन्थोंमें प्रथमानुयोगके भेद नहीं किये गये हैं, किन्तु श्वेताम्बर† ग्रन्थोंमें इसके दो भेद किये गये हैं। मूल प्रथमानुयोग और गण्डिकानुयोग। मूल प्रथमानुयोगमें तीर्थंकर और उनके सहयोगी परिवार का विस्तृत वर्णन है। और गण्डिकानुयोगमें एक सरीखे चरित्रवाले या अन्य किसी तरहसे समानता रखनेवाले लोगोंकी कथाएँ हैं। जैसे—जिसमें कुलकरों की कथा है वह कुलकर गण्डिका, जिसमें तीर्थंकरों की कथा है वह तीर्थंकरगण्डिका, इसीप्रकार चक्रि-

* ...एगूणवीसं अज्झयणा ते समासओ दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—चरिता कप्पिया य ।

† अणुयोगे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा मूल पढमाणुओगे गंडिआणुओगेय ।

वर्त्ति गण्डिका, दसार गण्डिका, बलदेवगण्डिका, वासुदेव गंडिका, गणधर गंडिका, भद्रबाहु गंडिका, तपः कर्मगण्डिका, हरिवंशगण्डिका आदि।

गन्ने आदिकी एक गाँठसे दूसरी गाँठ तकके हिस्सेको गण्डिका* कहते हैं। 'पोर' या 'गँडेरी' भी इसके प्रचलित नाम हैं। गन्नेकी एक पोरमें रसकी कुछ समानता और दूसरी पोरसे कुछ विषमता होती है। इसीप्रकार एक एक गंडिकाकी कथाओंमें किसी दृष्टिसे समानता पाई जाती है जो समानता दूसरी गंडिकाकी कथाओंके साथ नहीं होती।

ऊपरके भेद प्रभेद हमारे साम्हने कुछ प्रश्न उपस्थित करते हैं जिससे हमारे कथासाहित्यपर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है।

(क) मूलप्रथमानुयोगमें भी तीर्थंकर चरित्र है और गण्डिकानुयोगमें जो तीर्थंकरगण्डिका है उसमें भी तीर्थंकर चरित्र है, तब दोनोंमें क्या अन्तर है?

(ख) मूलप्रथमानुयोग यह नाम किस अपेक्षासे है? क्या गण्डिकानुयोग मूल नहीं है? एक भेदके साथ हम 'मूल' विशेषण लगाते हैं, और दूसरेके साथ नहीं लगाते—इस भेदका क्या कारण है?

(ग) भद्रबाहुगण्डिकाका काल क्या है? क्या भगवान महावीरके समयमें भी यह गण्डिका होसकती है? परन्तु उससमयतो भद्रबाहुका पताभी न था। यदि यह पीछेसे आईतो इसका यह अर्थ हुआ कि हमारा दृष्टिवाद अंगभी धीरे धीरे बढ़ता रहा है और भगवान महावीरके पीछे इन गण्डिकाओंकी रचना हुई।

उपर्युक्त समस्याओंकी जब हम पूर्ति करने जाते हैं, तब हमें कथासाहित्यके विषयमें एक नया प्रकाश मिलता है। मूलप्रथमानुयोगमें जो तीर्थंकर-चरित्र है वह भगवान महावीरका जीवनचरित्र है, और सत्य है, मौलिक है। इसीलिये उसे मूलप्रथमानुयोग कहा है। महावीरके जीवनके साथ उनके शिष्यों का, भक्तराजाओंका, वर्णनभी आजाता है। यहवर्णनही अन्य गण्डिकाओंके लिये मौलिक अवलम्बन बनता है। भगवान महावीरका जीवनचरित्रतो मूलप्रथमानुयोग कहलाया किन्तु उस जीवनके आधार पर जब अन्य तीर्थंकरोंकी कथाएँ बनाई गई तब वे तीर्थंकर गण्डिका कहलाई। इसीप्रकार उनके गणधरोंके चरित्रके आधार पर जो प्राचीन गणधरोंकी कल्पनाकी गई वह गणधरगण्डिका कहलाई। संक्षेपमें कहें तो मूलप्रथमानुयोग ऐतिहासिक दृष्टिसे बनाया गया था, और गण्डिकानुयोग उसका कल्पित, पल्लवित और गुणित रूप है। यही कारण है कि एक तीर्थंकरके जीवनचरितमें चौबीसका गुणा करनेसे चौबीसका जीवनचरित बन जाता है। यही बात अन्य चरित्रोंके बारेमें भी कही जासकती है। यह बात फिर दुहराई जाती है कि मूलप्रथमानुयोग मौलिक और गण्डिकानुयोग कल्पित है।

'भद्रबाहु गण्डिका' इस नामसे पता चलता है कि जब तक दृष्टिवाद व्युच्छिन्न नहीं हुआ तब तक उसमें कुछ न कुछ मिलता ही रहा। अंतिम श्रुतकेवली भद्रबाहु थे इसलिये भद्रबाहु तकसे सम्बन्ध रखने वाले परिवर्तन आदि, अंग साहित्य में शामिल होते रहे हैं। इसप्रकार कथासाहित्य बढ़ताही रहा है और यह बढ़ना स्वाभाविक है।

मालूम होता है कि म० महावीरके समयमें जैन कथासाहित्य बहुत थोड़ा था। दूसरे अंग पूर्वोके पदोंकी संख्या जब लाखों और करोड़ों तक है तब प्रथमानुयोगकी पदसंख्या सिर्फ पाँच हज़ार है। इससे कथासाहित्यकी संक्षिप्तता अच्छीतरह मालूम होती है।

मैं पहिले कहचुका हूँ कि दृष्टिवाद अंगसे बाकी अंग रचेगये हैं। इस प्रकार बाकी अंग दृष्टिवादके टुकड़ेही हैं। ऐसीहालतमें यह बात निःसंकोच कही जासकती है कि दृष्टिवादके इस प्रथमानुयोगमें से ही अन्यअंगोंका कथासाहित्य तैयार हुआ है। ऐसी हालतमें अंगोंका कथासाहित्य पाँचहज़ार पदोंसे भी

* इक्ष्वादीनां पूर्वापरपर्व परिच्छिन्नो मध्यभागो गण्डिका। गण्डिकेव गण्डिका एकार्थाधिकारा ग्रन्थपद्धतिरित्यर्थः। नन्दीसूत्र टीका ५१।

थोड़ा होना चाहिये। परन्तु अंगोंका कथासाहित्य लाखों पदोंका है, यह बात उवासगदसा, अंतगड, अणुत्तरोववाइयदसा, विपाकसूत्र आदिकी पदसंख्यासे मालूम होजाती है। इससे मालूम होता है कि दृष्टिवादके प्रथमानुयोगको खूबही बढ़ाचढ़ाकर अन्य अंगोंका कथासाहित्य तैयार किया गया है। और अंगोंके नष्ट होजानेके बादभी कथासाहित्य बढ़ता रहा है यहाँ तक कि वह वीरनिर्वाणके दोहजारवर्ष बाद तक तैयार होता रहा है।

कथासाहित्यके रचनेमें और बढ़ानेमें कैसी कैसी सामग्री लीगई है, उसके हम चार भाग कर सकते हैं।

१—म० महावीर और उनके समकालीन तथा उनके पीछे होनेवाले अनेक व्यक्तियोंके चरित्र। मूलप्रथमानुयोगका वर्णनीय विषय यही है।

२—मूलप्रथमानुयोगके समान अनेक कल्पित चरित्र। जैसे चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नव वासुदेव, नव प्रतिवासुदेव आदिके चरित्र। ये चरित्र गण्डिकानुयोगमें आते हैं।

३—धर्मका महत्व बतलानेके लिये या अनुकरण करनेकी शिक्षा देनेके लिये अनेक कल्पित कहानियाँ। जैसे—णायधम्मकहामें रोहिणी आदिकी कथाएँ अथवा विपाकसूत्रकी कथाएँ।

४—लोकमें प्रचलित कथाओंको अथवा दूसरे सम्प्रदायकी कथाओंको अपनाकर उन्हें अपने ढाँचेमें ढालकर परिवर्तित की गई कथाएँ। जैसे—रामायण, महाभारतकी कथाएँ पद्मपुराण, हरिवंश पुराण आदिमें परिवर्तित करके अपना लीगई हैं। विष्णुकुमार मुनिकी कथाभी इसी तरहकी कथा है। अनेक ऐतिहासिक पात्रों के चरित्रभी परिवर्तित करके अपनालिये गये हैं।

इन चार श्रेणियोंमें से पहिली श्रेणीही ऐसी है जो कुछ ऐतिहासिक महत्व रखती है। बाकी तीन श्रेणियाँ ऐतिहासिक दृष्टिसे सत्यसे कोसों दूर हैं। हाँ, वे धार्मिक दृष्टिसे अवश्य सत्यके पास होसकती हैं। फिरभी, हमें यह भूल न जाना चाहिये कि हमारा समस्त कथासाहित्य ऐतिहासिक दृष्टिसे नहीं लिखा गया है। उसकी जितनी उपयोगिता है वह धार्मिक दृष्टिसे ही है।

अपने कथासाहित्यका इस प्रकार श्रेणीविभाग एक श्रद्धालु भक्तके हृदयको अवश्य आघात पहुँचायेगा, क्योंकि श्रद्धालुहृदय हर एक छोटी से छोटी और अस्वाभाविक कथाको ऐतिहासिक दृष्टिसे सत्य, सर्वज्ञकथित समझता है। और खासकर एक सम्प्रदायभक्त व्यक्ति यह बात सुननेको तैयार नहीं होता कि हमारा कथासाहित्य दूसरोंके कथासाहित्यके आधारसे तैयार हुआ है।

परन्तु जैन कथासाहित्यके निरीक्षणसे साफ़ मालूम होता है कि इसका बहुभाग कल्पित, तथा दूसरोंकी कथाओंको लेकर तैयार हुआ है।

जैन पुराणोंमें 'पउमचरिय' सबसे अधिक पुराना है। उसीके आधारपर संस्कृत पद्मपुराण बना है जो कि पउमचरियके छायाके समान है। जैन संस्कृतपुराणोंमें यह सबसे पुराना है। इनके पढ़नेसे साफ़ मालूम होता है कि ये पुराण रामायणके आधारपर बनाये गये हैं और रामायणकी कथावस्तुको लेकर उसे जैनधर्मके अनुकूल वैज्ञानिक या प्राकृतिक रूप दिया गया है।

द्वितीय उद्देशमें राजा श्रेणिक विचार* करते हैं —

---

* सुव्वंति लोयसत्थे रावणपमुहाय रक्खसा सव्वे। वसलोहियमंसाई—भक्खणपाणे कयाहारा। १०७। किर रावणस्स भाया महाबलो नाम कुम्भयण्णोत्ति। छम्मासं विगयभओ सेज्जासु निरन्तरं सुयइ। १०८। जइ विय गएसु अंगं पेल्लिज्जइ गरुय पव्वय समेसु तेल्लघडेसु य कण्णा पूरिजन्ते सुयंतस्स। १०९। पडु पडहतूरसद्दं न सुणइ सो सम्मुह पि वजन्तं। नय उट्ठेइ महप्पा सेज्जाए अपुण्ण कालम्मि। ११०। अह उट्ठिओ विसंतो असण महाघोर परिगयसरीरो। पुरओ हवेज्ज जो सो कुंजर महिसाइणो गिलइ। १११। काऊण उदर भरणं सुरमाणुस कुंजराइ बहुएसु। पुणरवि सेज्जारूढो भयरहिओ सुयइ छम्मासं। ११२। अन्नंपि एव सुव्वइ जह इंदो रावणेण संगामे। जिणिऊण नियलबद्धो लंका नयरी समाणीओ। ११६।

"लौकिक शास्त्रोंमें यह सुनते हैं कि रावण वगैरह राक्षस थे, और वे रक्त मांस, पीप वगैरहका भोजन करते थे। रावणका भाई कुम्भकर्ण छः महीने तक निरन्तर सोता था, भलेही हाथियोंसे उसका मर्दन कराओ या तेलके घड़ोंसे उसके कान भरदो। साम्हने बजते हुए बाजोंको भी वह नहीं सुनता था, न छः महीनेके पहिले उसकी नींद टूटती थी। उठ करके भूखसे व्याकुल होकर साम्हने आये हुए हाथी भैंसे आदिको निगल जाता था। इसप्रकार देव, मनुष्य, हाथी आदि को खाकर वह फिर छः महीनेके लिये सो जाता था। और भी सुनते हैं कि रावणने इन्द्रको बेड़ियोंसे जकड़ा था और लंका नगरीमें ले आया था। परन्तु जो इन्द्र जम्बूद्वीपको भी उठा सकता है, उस इन्द्रको इस तीनलोकमें कौन जीत सकता है, जिसके पास ऐरावत सरीखा गजेन्द्र है, कभी व्यर्थ न जाने वाला जिसका वज्र है, जिसके चिन्तनमात्रसे दूसरा भस्म हो सकता है? यह तो ऐसीही बात है जैसे कोई कहे कि—मृगने शेरको मारडाला, कुत्तेने हाथीको पराभव कर दिया! कवियोंने यह सब औंधी रामायण रचदी है। यह सब मिथ्या है, युक्तिसे विरुद्ध है। पण्डित लोक कभी इस पर विश्वास नहीं करते।"

दूसरे दिन राजाने गौतम गणधरसे पूछा*—

"हे महाशय! कुशास्त्रवादियोंने बहुत उल्टी बातें फैला रक्खी हैं; मैं उनको साफ़ सुनना चाहता हूँ। हे महाशय! यदि रावण राक्षस था और इन्द्रके समान शक्तिशाली था तो वानर पशुओंने उसे युद्धमें कैसे जीतलिया? रामने सोनेका मृग जंगलमें मार डाला, सुग्रीवकी सुताराकेलिये छिपकर बालीको मारा! स्वर्गमें जाकर युद्धमें देवेन्द्रको जीतकर उसे बेड़ियोंसे जकड़कर कैदखानेमें रक्खा! सब पुरुषार्थ और शास्त्रोंमें कुशल कुम्भकर्ण छः महीने सोता था! बन्दरोंने समुद्रमें पुल कैसे बाँधा? भगवन्! कृपाकर असली बात बताइये जो युक्तियुक्त हो। ज्ञानरूपी प्रकाशसे मेरे संदेहरूपी अन्धकारको नष्ट कीजिये!"

तब गणधरने कहा—"रावण राक्षस नहीं था, न वह मांस खाता था। ये सब बातें मिथ्या हैं, जो कि मूर्ख कुकवि कहते हैं।"

ठीक ऐसाही वर्णन रविषेण कृत पद्मपुराणमें है जिसके श्लोक पउमचरियकी छाया कहे जासकते हैं।

दोनों ग्रंथोंके इस कथनसे यह बात साफ़ मालूम होती है कि जब यह कथा जैनशास्त्रोंमें आई होगी उसके पहिले अन्य लोगोंमें वह रामकथा प्रचलित थी जो कि आजकल रामायणमें पाई जाती है। परन्तु जैनाचार्योंको वह कथा युक्तियुक्त नहीं मालूम हुई और अस्वाभाविक अविश्वसनीय मालूम हुई, इसलिये उनने यह कथा बदलकर जैन साँचेमें ढली हुई रामकथा बनाई।

को जिणिऊण समत्थो इंदं सग्गुासुरे तिलोके। जो सागर पेरन्तं जम्बुद्दीवं समुद्धरइ। ११४। एरावणो गइंदो जस्सय वज्जं अमोहपहरत्थं। तस्स किर चिंतिएणवि अन्नो वि भवेज्ज भस्मिरासी। ११५। अहो मयेज निहओ सणेण य कुंजरो जहा भग्गो तह विवरीय पयत्थं कईहि रामायणं रइयं। ११६। अलियंपि सव्वमेयं उववत्ति विरुद्ध पच्चय गुणेहिं। नयसद्दहन्ति पुरिसा हवंति जे पण्डिया लोए। ११७।

* पउमचरियं महायस अहयं इच्छामि परिफुडं सोउं। उप्पाइया पसिद्धी कुसत्थवाईहि विवरीया। ३-८। जइ रावणो महायस निसायरो सुर वरो व्व अइविरिओ। कह सो परिहूओ च्चिय वाणर तिरियेहि रणमज्झे। ९। रामेण कणयदेहो सरेण भिन्नो मओ अरण्णम्मि। सुग्गीवसुतारत्थं छिद्देण विवाइओ वाली। १०। गन्तूण देवनिलयं सुर वइ जिणिऊण समरमज्झम्मि दढ कढिण निलय बद्धो पवेसिओ चार गेहम्मि। ११। सत्वत्थ सत्थकुसलो छम्मासं सुयइ कुम्भकण्णोवि कह वाणरेहि बद्धो सेउच्चिय सावर वरम्मि। १२। भयवं कुणह पसायं कहेह तच्चत्थ हेउसंजुत्तं। संदेहअंधयारं नाणुज्जोएण नासेह। १३।

न य रक्खसो त्ति भण्णइ दसाणणो णेय आमिसाहारो। अलियं ति सव्वमेयं भणंति जं कुकइणो मूढा। ३-१५।

* विस्तारभयसे पद्मपुराणके श्लोक उद्धृत नहीं किये जाते। विशेष जिज्ञासुओंको द्वितीय पर्वके २३०वें श्लोकसे २४८ तक, और तृतीय पर्वके १७वें श्लोकसे २७वें तक देखना चाहिये।

ज्यों ज्यों मनुष्यका विकास होता जाता है त्यों त्यों कथासाहित्यका भी होता जाता है। आजका युग भूत, पिशाच आदिकी अलौकिक घटनाओंपर विश्वास नहीं करता, इसलिये आजकल ऐसी कहानियाँ भी नहीं लिखी जाती। कथाएँ लोकरुचि और लोक विश्वासके अनुसार लिखी जाती हैं। वैज्ञानिक युगके समान कथाएँ भी वैज्ञानिक होती जाती हैं।

प्रकृतिके रहस्यका ज्ञान, विज्ञान है। साधारण मनुष्य जिन घटनाओंको अद्भुत समझता है, वैज्ञानिक उसके कार्यकारण सम्बन्धका पता लगाकर उसे एक नियमके अन्तर्गत सिद्ध करता है। यही नियमज्ञान, विज्ञान है। इसी विज्ञानके सहारे कथाओंका भी विकास हुआ है।

एक युग वह था जब लोग अपने पूर्वजोंको देव दैत्योंके समान महान समझते थे। उनमें अनेक अद्भुत शक्तियाँ मानते थे और व्यक्ति विशेषको ऐसा अद्भुत चित्रित करते थे जिसेकि विचारशक्ति सहन नहीं कर सकती। उस युगका मनुष्य हाथियोंको खाजाता था, नाककी श्वाससे पहाड़ोंको उड़ादेता था, उसके दस दस मुख और सैकड़ों हाथ तक होते थे। यह बिलकुल अवैज्ञानिक युग था।

दूसरे युगमें हम कुछ विज्ञानके दर्शन पाते हैं। इस युगमें अनेक विचित्र घटनाएँ असम्भव कहकर दूर करदी जाती हैं। कुछ सुसंस्कृत करदी जाती हैं, कुछ एक नियमके आधीन करदी जाती हैं। जैसे कुम्भकर्ण हाथियोंको खाजाता था, छः महीने तक सोता था, ये बातें असम्भव कहकर उड़ादी गई हैं। हनुमान वगैरह बंदर थे, यह यह ठीक नहीं; वे वानरवंशीराजा थे, उनकी ध्वजामें वानरका चिन्ह था, राक्षसभी मनुष्योंके एक वंशका नाम था, ऋक्ष आदिभी ध्वजाचिन्होंके कारण कहलाते थे। रावणके दस सिर नहीं थे, किन्तु वह एक हार पहिनता था जिसमें उसके सिरका प्रतिबिम्ब पड़ता था—इससे वह दशमुख कहलाने लगा। यह सब घटनाओंका सुसंस्कार था। राक्षस लोग विशालकाय थे, यह ठीक है परन्तु अकेले राक्षसही विशालकाय न थे, किन्तु उस युगके सब मनुष्य विशालकाय थे; राम और सीताभी विशालकाय थे। अन्यथा छोटीसी सीताको रावण क्यों चुराता? सीताका शरीर इतना बड़ा अवश्य होना चाहिये जिससे रावण पत्नी बनानेके लिये चुरासके। इस प्रकार कुछ घटनाएँ नियमाधीन करदी गई। जैनियोंमें जो उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालकी कल्पनाकी गई है उसका मूल, कथासाहित्यके इसी वैज्ञानिक सुधारमें है। प्रथम युगमें मनुष्य और देव बहुत पास पास हैं। इनमें परस्पर सम्बन्ध होता है, एक दूसरे पर विजयभी प्राप्त करते हैं। द्वितीय युगमें देवोंका स्थान तो वैसाही अद्भुत बनारहता है, परन्तु मनुष्योंका स्थान छोटा होजाता है। विद्याधर मनुष्योंमें देवोंके समान कुछ अद्भुतताएँ रह जाती हैं, परन्तु देवोंसे बहुत कम। शरीर आदिमें सब मनुष्य प्रायः समान होते हैं। बलवान होनेसे कोई मनुष्य पहाड़ जैसा नहीं माना जाता।

तीसरे युगमें मनुष्य तो बिलकुल मनुष्य होजाता है, परन्तु प्रेमवश, भक्तिवश, कृपावश देव उसे सहायता पहुँचाते हैं।

चौथे युगमें देवोंका सम्बन्ध टूट जाता है। प्रकृतिके साधारण नियमानुसार सब कार्य होने लगते हैं। यह आधुनिक युग है।

कथासाहित्यके इन चार युगोंमें जैन पुराणोंका युग दूसरा है। उनमें प्रथम युगकी कथाएँभी दूसरे युगके अनुरूप चित्रितकी गई हैं। यह कोई इतिहास नहीं है, किन्तु प्रथम युगकी कथाओंका अर्धवैज्ञानिक संस्करण है। यही कारण है कि प्रथम युगकी कथाओंसे द्वितीय युगकी कथाएँ कुछ विश्वसनीय मालूम होती हैं।

द्वितीय युगके संस्करणमें जैनियोंने कथाको जो जैनीरूप दिया है, उसमें कथाको रूपान्तरित तो कियाही है—जैसे, कैलाश उठानेकी घटना जो कि शिवके साथ सम्बन्ध रखती है उसे एक जैनमुनिके साथ लगादिया है; आदि; साथही निष्कर्ष निका-

लते समय और भी अधिक कमाल किया है। घटनाको ज्योंकी त्यों रखकरकेभी निष्कर्ष निकालनेमें जमीन आसमानका अंतर आगया है। रामायणके अनुसार रावण अधर्मी था, क्योंकि वह यज्ञोंका नाश करता था, जबकि जैनपुराणोंके अनुसार रावण धर्मात्मा था क्योंकि वह यज्ञोंका नाश करता था। वैदिक विद्वान और जैन विद्वानोंके इस दृष्टिभेदने राक्षसवंशको महान गौरव देदिया है। रावणतो परस्त्रीहरणके पापसे मारागया और नरक गया; किन्तु कुम्भकर्ण इन्द्रजित आदि युद्धमें पकड़े गये और जैनदीक्षा लेकर मोक्ष गये। अहिंसाका अधिक महत्त्व होनेसे जैनपुराणोंके युद्धमें खून कम बहाया जाता है। लड़ाई का अन्त क़ैद करनेसे, सुलहसे, या कामदेव के बीचमें आजानेसे होजाता है। (जैसाकि हनुमान् और लंकासुंदरीके युद्धमें होता है)। मतलब यह कि जैन विद्वानोंने प्रसिद्ध प्रसिद्ध प्रचलित कथाओंका जैनसंस्करण कर डाला है, जिससे वे जैनश्रोताओंके लिये हितकर उपदेश देनेवाली होगई हैं।

प्राचीन कथाओंको अपनाकर जैनरूप देनेसे कभी कभी बड़ी हास्यास्पद घटना होगई है। एकही वैदिक कथा जब दो जुदे जुदे जैन विद्वानोंके हाथमें पड़ी है, तब उसका संस्कार बिलकुल जुदा होगया है। उदाहरणार्थ इसी रामकथाको देखिये। पउमचरिय में रामायणके कथानकपर जिस प्रकार जैनीरूप चढ़ाया गया है, उत्तरपुराणमें उससे बिलकुल जुदे ढंगपर चढ़ाया है। रामायण और पद्मचरितकी कथातो प्रसिद्धही है, यहाँ उत्तरपुराणकी कथामें पद्मचरित्रकी कथासे क्या विशेषता और भिन्नता है यही बात बताई जाती है।

"दशरथ बनारसके राजाथे, राम लक्ष्मणका जन्म वहीं हुआथा। भरत, शत्रुघ्नका जन्म अयोध्यामें ही हुवाथा। राम, लक्ष्मण बनारसमें ही रहतेथे। जनकको यज्ञ करनाथा इसलिये मन्त्रीकी सलाहसे उनने रामके साथ सीताकी शादी करदी, जिससे यज्ञमें उनसे मदद मिले। धनुष चढ़ाने आदिकी घटना नहीं है। सीता रावणकी पुत्रीथी, ज्योतिर्विदोंने रावणके जीवनके लिये खतरनाक बताया इसलिये पिटारीमें रखकर वह जनकके राज्य में छोड़दी गई। जनकने उसे पुत्री समान पाला। रामको बनवास नहीं दिया गया। कलहप्रिय नारदने रावणसे सीताके सौन्दर्यकी प्रशंसाकी। रावणने सूर्पनखाको भेजा। उसने वृद्धाका रूप बनाकर अच्छी तरह दूतीकर्म किया किन्तु असफल रही। तब रावण मारीचको साथ लेकर सीताहरणके लिये आया। राम सीताके साथ चित्रकूटमें वनक्रीड़ाके लिये आयेथे। मारीच हरिण बना। रामने उसका पीछा किया। इधर रावणने रामका रूप बनाकर सीता को हर लिया। उधर अयोध्यामें दशरथको स्वप्न आयाकि राहु रोहिणीको चुरा लेगया है। इससे उनने अनुमान कियाकि रावण सीताको चुरा लेगया है। रामचन्द्रको पता नहीं था कि सीताको कौन ले गया, परन्तु दशरथने अयोध्यासे खबर भेजी। रावण ऊपर चढ़ाई करनेका उपाय सोचा जाने लगा। (पद्मपुराणके अनुसार बनवास होनेके समय दशरथने जैनदीक्षा लेलीथी) इसी समय सुग्रीव और हनुमान आये। सुग्रीव बोला—बालिने मुझे निकाल दिया है (पद्मपुराणके अनुसार बालि का रावणसे विरोध हुआथा; उसने सुग्रीवको राज्य देकर दीक्षा लेलीथी। रावणको उसने कैलाशके नीचे दबाकर रुला दियाथा जिससे वह रावण कहलाया)! एक मुनिने कहा है कि आपसे मेरा काम चलेगा इसलिये आपके पास आया हूँ। रामने आश्वासन दिया और हनुमानको दूत बनाकर लंका भेजा। सीताको देखकर मंदोदरीके मनमें सन्तान वात्सल्य जाग्रत हुआ, उसके स्तनोंसे दूध झरने लगा (जबकि पद्मपुराणमें मन्दोदरी, सीताको रावणकी पत्नी बननेके लिये समझाती है)। हनुमान समाचार लेकर लौटा। हनुमान फिर दूत बनाकर भेजा गया। इसी समय

बालिने संदेश भेजा कि सुग्रीव और हनुमानका आप त्याग कर दीजिये और मुझे दूत बनाइये। परन्तु अंगदने सलाह दी कि पहिले बालि का ही नाश करना चाहिये, नहीं तो पीछे यह विपक्षमें मिल जायगा। रामने बहाना निकालकर बालिसे युद्ध ठान दिया। लक्ष्मणके हाथसे बालि मारा गया। (पद्मपुराणके अनुसार बालि केवलज्ञानी हुएथे। उनके आगे भक्ति-पूर्ण नृत्य करनेसे रावणपर नागेन्द्र प्रसन्न हुआथा और शक्ति दी थी, जो शक्ति पीछे लक्ष्मणको मारी गई)। रावणको शीघ्रही युद्धमें बुलानेके लिये हनुमानने बन जलाया, राक्षसों को मारा। राक्षसियाँ मनुष्योंकी खोपड़ियाँ पहिनेथीं और खून पीतीथीं। (पद्मपुराणके अनुसार राक्षसवंश परमधर्मात्मा जैनवंश था)। युद्धमें लक्ष्मणको शक्ति नहीं लगी। रावणको जीतकर अयोध्याका राज्य भरतको दिया गया। राम बनारसमें रहे (पद्मपुराणके अनुसार राम अयोध्यामें रहे, भरतने तुरंत दीक्षा लेली) लवकुश वगैरहका जिकरभी उत्तर पुराणमें नहीं है। लक्ष्मणकी अचानक मृत्यु नहीं हुई, किन्तु रोगसे मरे। रामचन्द्रने तुरन्त संस्कार कर दिया, पद्मपुराणके अनुसार छः महीनेतक पागलके समान नहीं घूमते रहे।"

दो जैनाचार्य एकही कथाको कितने विचित्र ढंगसे चित्रित करते हैं इसका यह अच्छा से अच्छा नमूना है। इससे हमारे कथासाहित्यका रहस्योद्घाटन होजाता है। जो लोग यह समझते हैं कि हमारे आचार्य भगवान महावीरके कथनको ही ज्योंका त्यों लिखते हैं, वे नयी कल्पना नहीं करते, उनको उपर्युक्त कथा पर विचार करना चाहिये। और जब 'आचार्य नयी कल्पना करते हैं' यह सिद्ध होजाय तब आचार्योंकी प्रत्येक बातको भगवान महावीरकी वाणी न समझना चाहिये।

उत्तर पुराणकी कथापर बौद्धरामायणका प्रभाव स्पष्टही मालूम होता है। हिन्दू और जैनग्रंथोंमें अयोध्याको जितना महत्व प्राप्तहै उतना महत्व बौद्धसाहित्य में बनारसको प्राप्त है। इसलिये बौद्धसाहित्यमें रामायणका स्थानभी बनारस है। उत्तरपुराणकारने वैदिक रामायणकी अपेक्षा बौद्ध रामायणको अधिक अपनाया है। कथा-साहित्यके इस भेदसे हम दो में से किसीभी आचार्यको दोष नहीं दे सकते। इसमें उन आचार्योंका दोष नहीं किन्तु उन लोगोंका दोष है जो प्रथमानुयोगको इतिहास समझते हैं। आचार्योंने धर्मशिक्षाके लिये काव्य रचनाकी। उनकी रचनाको कोई इतिहास समझकर बैठ जाय या धोखा खायतो बेचारा आचार्य क्या करे? कवितो काव्यका विधाता होता है, उसे मनमानी सृष्टि करनेका अधिकार है। जो उसके इस अधिकारको नहीं समझते और ठोक पीटकर उसे इतिहासनिर्माताकी कठोर कुर्सीपर बिठलाते हैं; वे कविसे कुछ काम नहीं ले सकते; वे अच्छी तरह धोखा खाते हैं।

ये कवि कथाकार इतिहासकी कितनी अवहेलना करते हैं, इसपर अगर विस्तारसे लिखा जाय तो एक पोथा बनजाय। सब सम्प्रदायोंके कथा साहित्यकी अगर आलोचना कीजाय तो यह कार्यभी एक समर्थ विद्वानकी आजीवन तपस्या माँगता है। यहाँ न तो इतना समय है, न इतना स्थान। यहाँ तो सिर्फ दिशानिर्देश किया गया है। स्पष्टताके लिये एक उदाहरण और दिया जाता है।

आराधनाकथाकोषमें ७३ वीं कथा चाणिक्यकी है। चाणिक्य ब्राह्मण था, उसने नन्दका नाश किया था, इसके लिये नन्दके द्वेषी मन्त्रीने उसे निमन्त्रित कर भोजमें अपमानित किया था, आदि कथा प्रसिद्ध है। आराधना कथाकोषमें चाणिक्यका चित्रण इसी तरह है जिससे मालूम होता है कि यह वही प्रसिद्ध चाणिक्य है, न कि कोई दूसरा चाणिक्य।

कथाकोषमें यह कहानी ज्योंकी त्यों है, परन्तु पीछेसे चाणिक्य महाशय जैनमुनि होगये हैं, उनके पाँचसौ शिष्य हुए हैं, उनके ऊपर चाणिक्यके एक शत्रु (सुबन्धु) ने उपसर्ग किया है अर्थात् चाणि-

बयके साथ उस मुनिसंघको जलाडाला है। तब सब के सब मुनि आठकर्मोंका नाश कर मुक्त* हुए हैं।

कवि महाशय आखिर कवि हैं, वे इतिहासकी जरा भी पर्वाह नहीं करते। वे इस बातको भूल जाते हैं कि जम्बूस्वामीके बाद किसी भी व्यक्तिको यहाँ केवलज्ञान नहीं हुआ और चाणिक्यका समय जम्बूस्वामीके सौ वर्ष बाद है, तब ये ५०० मुक्तिगामी कहाँसे आगये ? महावीरके पीछे सिर्फ तीन ही केवली हुए हैं, सो भी ६२ वर्षके भीतर फिर क़रीब पौने दो सौ वर्ष बाद इकदम इतने केवलियोंका वर्णन करना कविकल्पना नहीं तो क्या है ?

यह तो एक नमूना है परन्तु हमारा कथा साहित्य, इतनाही नहीं किन्तु सभी सम्प्रदायोंका कथा साहित्य, ऐसी घटनाओंसे भरा पड़ा है।

बात यह है कि लेखकका कोई लक्ष्य होता है। कथा तो उसका सहारा मात्र है। जब लेखक अपने धर्मको सार्वधर्म सिद्ध करना चाहता है, तब वह सभी धर्मोंके पात्रोंको अपने धर्ममें चित्रित करता है। जब वह अपने धर्म और सम्प्रदायको प्राचीन सिद्ध करना चाहता है, तब वह प्रायः सभी अन्य सम्प्रदायोंके संस्थापकों और सञ्चालकोंको आधुनिक और अपने धर्मसे भ्रष्ट चित्रित करता है। अगर वह शूद्रोंको समानाधिकार देना चाहता है तब वह ऐसी कथाएँ बनाता है जिनमें शूद्रोंने तप किया है, धर्मका पालन किया है, स्वर्ग मोक्ष पाया है। कविका यह आशयही कथाका प्राण होता है। जो लोग कथाको इतिहास मानते हैं, वे कविके आशयकी अवहेलना करते हैं और सत्यसे वंचित रहते हैं। यह याद रखना चाहिये कि इतिहास आदर्श नहीं होता, किन्तु कथा आदर्शका प्रदर्शन करनेके लिये बनाई जाती है। इसी क्षेत्रमें उसकी उपयोगिता है और इसी दृष्टिसे वह सत्य या असत्य होती है।

मेरे इस वक्तव्यका समर्थन भावदेव कृत पार्श्वनाथ चरितके निम्नलिखित वक्तव्य* से भी होता है।

"उदाहरण दो तरहके हैं, चरित और कल्पित। जिस प्रकार भातके लिये ईंधनकी आवश्यकता है उसी प्रकार अर्थकी सिद्धिके लिये अर्थात् दूसरेको समझानेके लिये ये उदाहरण हैं। अथवा काल अनादि है, जीवोंके कर्म भी विचित्र हैं, इसलिये ऐसी कौनसी घटना है जो इस संसारमें संभव न हो।"

ऊपरके वक्तव्यसे कथानकोंका ऐतिहासिक मूल्य अच्छी तरहसे समझा जासकता है।

समन्तभद्रसूरिने भी प्रथमानुयोगको अर्थाख्यान† कहा है। अर्थाख्यान अर्थात् अर्थका आख्यान। इससे भी मालूम होता है कि प्रथमानुयोग धर्मके अर्थका व्याख्यान है न कि इतिहास।

धर्मकथाओंमें जो थोड़ी बहुत ऐतिहासिक सामग्री मिलती है। उसको निकालनेके लिये कठोर परीक्षा की आवश्यकता है। सुवर्णमें अगर थोड़ासी मैल हो तो उसे धधकते अंगारमें डालनेकी जरूरत होती है। कपड़ेमें अगर थोड़ासा भी मैल हो तो उसे पछाड़ पछाड़ कर ठिकाने लाना पड़ता है। ऐसी हालतमें भोले आदमी तो सुनार और धोबीको निर्दय ही कहेंगे, परन्तु जानकार उन्हें चतुर तथा विवेकी कहेंगे।

जब शास्त्रोंकी आलोचना की जाती है तब भी इसी तरह विवेकपूर्ण कठोरतासे काम लेना पड़ता है।

* पापी सुबन्धु नामा च मन्त्री मिथ्यात्वदूषितः। समीपे तन्मुनीन्द्राणां कारीषाग्निं कुधीर्ददौ। ७३। ४१। तदा ते मुनयो धीराः शुक्लध्यानेन संस्थिताः। हत्वा कर्माणि निःशेषं प्राप्ताः सिद्धिं जगद्धिताः। ७३ ४२।

* चरितं कल्पितं चापि द्विधोदाहरणं मतम्।
परस्मिन् साधनामार्थस्यौदनस्य यथेन्धनम्। १७।

अथवोक्तम्—

अनादि निधने काले जीवानाम् चित्रकर्मणाम्।
संभाव्यं हि तन्नास्ति संसारे यन्न सम्भवेत्। १८।

† प्रथमानुयोगमर्थाख्यानं चरितं पुराणमपि पुण्यं।
बोधिसमाधिनिधानं बोधति बोधः समीचीनः॥
। ४३। रत्नकरण्ड०।

भोले भाई उस समालोचकको कृतघ्न, निर्दय, धर्मभ्रष्ट आदि समझते हैं, परन्तु जानकार उसके मूल्यको जानते हैं, और जानते हैं कि सत्यकी प्राप्तिके लिये ऐसा करना अनिवार्य है। कथासाहित्यकी परीक्षा किस ढंगसे करना चाहिये, और उसके ऐतिहासिक सत्यासत्यको कैसे समझना चाहिये, इस विषयकी कुछ सूचनाएँ यहाँ उदाहरणपूर्वक लिखी जाती हैं।
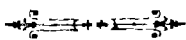
सम्पादकीय टिप्पणियाँ।

जर्मनीमें आर्य--अनार्यका प्रश्न।

जबसे हेर हिटलरकी जर्मनीमें तूती बोलने लगी है तबसे वहाँ पर एक न एक गुल खिलता ही रहता है। राजनीतिमें सने हुए समाचार इतने विरोधी प्राप्त होते हैं कि उनकी असलियतका पता लगाना अशक्य हो जाता है। परन्तु इतनी बात निश्चित है कि जर्मनीमें हेर हिटलरका खूब आतंक छाया है और दमनचक्र खूब ज़ोरसे चलरहा है। यहूदियोंको वहाँसे भागना पड़ा है, उनका धन ज़ब्त कर लिया गया है, यहाँ तक कि विश्वविख्यात वैज्ञानिक आइन्स्टाइन —जो कि किसी भी देशकी शोभा कहे जासकते हैं— वहाँसे निर्वासित होगये हैं। और पिछला समाचार यह है कि उनकी जितनी सम्पत्ति जर्मनीमें थी, वह सब ज़ब्त करली गई है, बैंकमें जो उनके रुपये जमा थे वे भी ज़ब्त हो गये हैं। हेर हिटलरका यह ताण्डव मौलिक अन्याय है, अथवा अन्यायकी प्रतिक्रियामें किया गया अन्याय है या अन्यायको दूर करनेके लिये किया गया न्याय है इस बातका ठीक ठीक निर्णय अभी नहीं हो सकता। इसका निर्णय करनेके लिये समय चाहिये, वर्तमान को भूत बनना चाहिये।

इन्हीं हिटलर महाशयकी कृपासे एक बिल यह भी पास हुआ है कि जर्मनीका कोई व्यक्ति हब्शी आदि किसी विजातीय व्यक्तिसे शादी न कर सकेगा। वे यह सिद्ध करना चाहते हैं कि किसी राष्ट्रका एक समुदाय एकही खून मासका एक समुदाय है, और जातिसंकरता राष्ट्रोंके विनाशका कारण है।

यद्यपि मनुष्य अभी उदारताके क्षेत्रमें आगे बढ़रहा है परन्तु उसमें जो क्षुद्रता है वह सर्वथा नष्ट नहीं हुई है। वह नये नये वेषमें मनुष्यको सता रही है। कभी मनुष्य जातिके नाम पर लड़ता था कभी कुलके नामपर, कभी धर्मके नामपर और आज राष्ट्रके नामपर लड़रहा है। पिछला महायुद्ध राष्ट्रीयताका नग्न ताण्डव था जिसने मनुष्यताके ऊपर छुरी पर छुरी चलाई थी।

राष्ट्रीयताको उलँघकर मनुष्यताकी प्राप्ति होती है। जिसने अभी राष्ट्रीयताकी भी प्राप्ति नहीं की, वह अगर एकदम मनुष्यताकी प्राप्ति करने लगे तो कठिन है। दलित या पराजित राष्ट्र अगर राष्ट्रीयताकी उपेक्षा करें तो वे मनुष्यताको पानेमें प्रायः असफल रहते हैं। जर्मनी अभी पराजित राष्ट्र है। यूरोपके राष्ट्रोंको एक तो यों ही राष्ट्रीयताका भूत सवार है, फिर जर्मनीको तो इससमय आवश्यकता है। तब फिर क्या कहना? ऐसी अवस्थामें वहाँ किसी एक हिटलरका आना अनिवार्य है।

हिटलर महाशय अन्तर्जातीयविवाहनिषेधक बिलको जो क़ानूनका रूप देना चाहते हैं, उसका कारण है जर्मनीका संगठन। जर्मन प्रजामें दूसरी प्रजाके लोग अगर मिल-जायँगे तो जर्मनीमें गृहकलह मच जायगा, घरका भेदी लंका ढाय वाली कहावत चरितार्थ होने लगेगी, इसलिये वे जर्मनेतर रक्तको जर्मन रक्तसे भिन्न रखना चाहते हैं और यहूदी आदिको निर्वासित कर देना चाहते हैं। वे इस विषयमें कहाँ तक सफल होंगे यह प्रश्न ही दूसरा है, परन्तु इससे हिटलरकी मंशा मालूम हो जाती है।

जर्मनीके इस बिलको पढ़कर स्थितिपालक भाई भारतवर्षकी जातिपाँति प्रथाका समर्थन कर रहे हैं, और आशा करते हैं कि एक दिन यूरपके लोग भारत सरीखी छोटी छोटी जातियाँ बनालेंगे तब भारतके सुधारक वर्तमान जातिपाँतिके पोषक हो जायँगे क्योंकि इनकी श्रद्धा का कुतुबनुमा पश्चिमी व्यवस्थाकी दिशाको देखकर फ़ौरन से पेश्तर बदल जाया करता है।

स्थितिपालक भाई स्वप्नमें धोखा न खावें इसलिये वे और भी कोई कल्पना करें तो हानि नहीं है, परन्तु उनको पीछेसे एकदम निराश न होना पड़े इसलिये अभीसे मैं कुछ सूचनाएँ करदेना चाहता हूँ।

१—हेर हिटलरका दल आज कुछभी कहे, परन्तु आज दुनियाँका एक भी देश ऐसा नहीं है, जहाँकी प्रजा

जातिसंकर न हो। इतनाही नहीं किन्तु, जातिसंकर होनेसे ही वह चैनसे जीवित रह सकी है। भारतमें जो जातियाँ आईं, वे यहाँ के निवासियोंसे संकर होती गईं। यहाँ तक कि पिछले समय तक शक, हूण आदि जातियोंको भारतीयोंने पचाया है। जबतक आर्योंने इन्हें नहीं पचाया तब तक इतने इतने भीषण अत्याचार किये जिनको सुनकर आजभी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। जब ये संकर हुई तभी शान्ति हुई। संकरताके अभावका कष्ट हम आज बहुत कुछ भोग रहे हैं। यद्यपि मुसलमान हिन्दुओंको पचा रहे हैं परन्तु हिन्दू, मुसलमानोंको नहीं पचा पाये हैं। संकरताकी इस कमीसे आज जो हिन्दू मुसलमानोंकी समस्या जटिलतम होगई है उसका अनुभव हम आज अच्छी तरह कर रहे हैं। जिस जर्मन प्रजाके बारेमें यह चर्चा है वह जर्मन प्रजा सैकड़ों हज़ारों वर्षसे संकर है। जब जर्मन लोगोंने पूर्वी और दक्षिणी यूरोपके भाग खाली कर दिये तब स्लाव नामक एक जाति वहाँ बसगई। इन स्लावोंको अनेक जातियोंने अपनेमें मिला लिया, और इनके बहुभाग को जर्मनोंने हज़म किया। लिथूनियन और प्रशियन जातियाँ भी इन्हींकी सन्तान हैं जो आज पूर्ण जर्मन समझी जाती हैं। जातिसंकरता की जो बात जर्मनीके विषयमें कही गई है, वही बात यूरोपके ही नहीं किन्तु पृथ्वीके हर एक देशके विषयमें सत्य है। आज किसी आवश्यकतावश हिटलर महाशय भलेही जातिसंकरताको कोसते हों, परन्तु यह परम-सत्य है कि जातिसंकरताने राष्ट्रोंके क्षुब्ध वातावरणको शान्त बनाया है, एक दूसरेके गले पर गिरने वाली तलवारोंको म्यानके भीतर रखवाया है और क्रोधसे काँपते हुए हृदयोंका प्रेमालिंगन कराया है।

२—स्थितिपालक बन्धुओंको यह भ्रम निकाल फेंकना चाहिये कि सुधारक पश्चिमकी नक़ल करना चाहते हैं। सामाजिक दृष्टिसे यूरोपके पास अगर कुछ अच्छा माल है तो सुधारकोंको वहाँसे लानेकी कुछ ज़रूरत नहीं है। भारतके इतिहासमें, खासकर जैन और बौद्ध संस्कृतिके इतिहासमें, वह माल इतना अधिक है कि सुधारकोंको यूरोपसे उधार लेनेकी ज़रा भी ज़रूरत नहीं है; तथा क्रान्तिकारी सुधारकोंको किसीकी नक़ल कैसे पसन्द आ-सकती है ?

३—राजनैतिक क्षेत्रमें जर्मनीका जो स्थान होगया है, उसको ऊपर उठानेके लिये जर्मनीमें जो आवश्यकता उत्पन्न हुई है उसे देखते हुए हिटलर महाशयके ताण्डव को किसी प्रकार क्षन्तव्य समझा जासकता है, अथवा उसका एक पहलू लाभप्रद तो ज़रूर है—भलेही भविष्यमें उसका परिणाम वर्तमान लाभकी अपेक्षा अधिक हानि-प्रद हो। परन्तु भारतमें जो टुकड़ियाँ जातिके नामसे प्रचलित हैं वे दूरभूतमें कैसी थीं, यह तो नहीं कहा जा सकता किन्तु निकटभूतमें और भविष्यमें हानिप्रद ही थीं और होंगी; तथा वर्तमानमें इनकी कुछ भी उपयोगिता नहीं है किन्तु हानियाँ अनन्त हैं।

जर्मन एक जाति है और जर्मन एक राष्ट्र है, इसलिये राष्ट्रीयताकी रक्षाके लिये जातीयताकी रक्षा उचित कही जासकती है। यह सोलह आने राजनैतिक समस्या है। यह धर्माधर्मका प्रश्न नहीं है। परन्तु आज क्या खण्डेलवाल राष्ट्र है, जिसे अग्रवाल राष्ट्र, परवार राष्ट्रसे अपनी रक्षा करना है, उनसे भिड़ना और उन्हें हटाकर अपना व्यक्तित्व ऊँचा बनाना है ? आज राष्ट्रोंके स्वार्थ जुदे जुदे हैं और वे परस्पर भिड़ते हैं; परन्तु क्या खण्डेलवाल, अग्रवाल आदिके भी स्वार्थ जुदे जुदे हैं और क्या वे परस्पर में घर्षण कर रहे हैं ? जैसे आज भारत राष्ट्र सैकड़ों नहीं किन्तु हज़ारों जातियोंमें बँटा हुआ है, उसीप्रकार जर्मनी राष्ट्रभी हज़ारों जातियोंमें बँटजाय तो क्या वह संगठित राष्ट्र बन सकेगा ? आज जर्मन लोग जर्मनेतरोंको निकाल बाहर कर रहे हैं, उनके नागरिक अधिकार छीन रहे हैं, इसप्रकार वे जर्मनराष्ट्र और जर्मन जातिका सामानाधिकारण्य बना रहे हैं, परन्तु भारतमें क्या कोई ऐसी जाति है जो भारतकी अन्य सब जातियोंको निकाल बाहर कर दे ? अगर नहीं है और सब जातियोंको यहीं मिलकर रहना है, सबके राष्ट्रीय स्वार्थ अगर एक ही हैं तब उनके सम्मिलनका जो द्वार अन्तर्जातीयविवाह है, उसे बन्द करना राष्ट्र के टुकड़े टुकड़े करना है।

४—ऊपर जो बातें कही गई हैं वे राष्ट्रीय दृष्टिसे कही गई हैं, परन्तु स्थितिपालक बन्धु जो अन्तर्जातीय-विवाहका विरोध करते हैं, वह धार्मिक दृष्टिसे करते हैं। परन्तु धार्मिकताका क्षेत्र, काल राष्ट्रीयताकी अपेक्षा अधिक उच्च और स्थायी है। इसलिये राष्ट्रीयता जर्मन और जर्मनेतरके भेदको स्वीकार कर सकती है, परन्तु वसुधैव कुटुम्बकम् वाली धार्मिकता इस तुच्छताको स्वीकार नहीं

कर सकती। उसकी दृष्टिमें तो म्लेच्छ भी सजातीय है, तीर्थंकर चक्रवर्ती आदिभी उनके साथ सम्बन्ध करते हैं।

मैं विरोधी बन्धुओंसे कहूँगा कि भाई, जिसके बारेमें कुछ लिखना हो उसका कुछ आगे पीछेका अध्ययन ज़रूर करलो। उस दिन एक भाईने बर्नार्डशॉ के विषयमें ऊट-पटाँग लिख मारा था, जिसका उत्तर जैनजगत्‌को देना पड़ा था। आज जर्मनी पर लिखमारा, उसका उत्तर भी दिया गया है।

स्त्री और पुरुषका पशुबल।

नर और मादाके पशुबलमें शक्तिका थोड़ा बहुत अन्तर होसकता है, परन्तु प्राणि जगत्‌में यह अन्तर नगण्य है। आत्मरक्षाके लिये मादाको नरकी कोई आवश्यकता नहीं होती, यह बात हम पशु पक्षी आदिको देखकर कह सकते हैं। सिंह जिसप्रकार शिकार कर सकता है, सिंहनी भी उसी प्रकार शिकार कर सकती है। पक्षियोंमें भी नर मादाका जोड़ा बराबर काम कर सकता है। तब यह सम्भव नहीं है कि मनुष्य जातिमें भी स्त्री–पुरुष समान न हों।

फिर भी आज हम देखते हैं कि पुरुष पशुबलमें बढ़ा हुआ है। परन्तु क्या यह भेद स्वाभाविक है? जब अन्य प्राणियोंमें यह भेद नहीं है, तब मनुष्यमेंही यह भेद कैसे होगा?

वास्तवमें यह भेद कृत्रिम है। मनुष्य एक बुद्धिमान प्राणी है इसलिये वह अन्य प्राणियोंकी अपेक्षा सहयोगके तत्त्वको अधिक समझता है। इसीके लिये वह अनेक प्रकारका कार्यविभाग कर सकता है। यद्यपि कीड़ियों तकमें यह कार्यविभाग पाया जाता है, परन्तु मनुष्यने इस विषयमें बहुत उन्नति की है। इसीलिये उसने हज़ारों वर्षसे स्त्रीपुरुषोंका कार्यविभाग कर दिया है। यही कारण है कि स्त्रीजीवन कलाप्रधान और पुरुष जीवन शक्ति प्रधान होगया है। परन्तु यह प्रधानता स्वाभाविक नहीं है किन्तु अभ्यासका फल है।

तुर्किस्तानमें एक पहलवान महिला है जिसका नाम या उपनाम है मिस एरमिन। यह ७५० पौंड का वज़न उठाकर चार व्यक्तियोंका बोझ भी सम्हाल लेती है। यह दाँतोंसे लोहे की छड़ दबालेती है जिसे दोनों तरफ़से दो पुरुष झुकानेकी कोशिश करते हैं। इसकी शक्तिका अन्दाज़ इसी बातसे लगाया जासकता है कि तुर्किस्तान भरमें आज एक भी पहलवान ऐसा नहीं है जो कुश्तीमें इससे बाज़ी ले सके।

हिन्दुस्तानमें ताराबाईका नाम प्रसिद्ध है। जिसने ताराबाईका सरकस देखा है, वे उसकी शक्तिका अन्दाज़ लगा सकते हैं।

जैन शास्त्रोंके अनुसार भोगभूमिके स्त्री पुरुष समान संहनन, समान उच्चता और समान शक्तिवाले थे। इससे मालूम होता है कि स्त्री–पुरुषमें जो पशुबलका अन्तर है वह स्वाभाविक नहीं है किन्तु समाजने ही परिस्थितिवश उसे पैदा किया है। इसलिये उनके जन्मसिद्ध अधिकारों में किसीप्रकारकी विषमता पैदा करना अन्याय है।

क़ानूनकी भूलें।

क़ानून न्यायकी रक्षाके लिये है, परन्तु आखिर क़ानून मनुष्योंकी सृष्टि है। कभी कभी वह ऐसी भूलें करता है कि जिसका नीतिसे ज़राभी समर्थन नहीं होता। एक आदमी किसी विधवासे शादी करना चाहता है, दोनों ही रज़ामन्द हैं, उनके इस कार्यसे दूसरे किसीभी व्यक्तिके नैतिक अधिकारोंको धक्का नहीं लगता; फिरभी सैकड़ों वर्षों तक भारतवर्षमें यह क़ानून बना रहा कि कोई हिन्दू, विधवाके साथ शादी न करे, करे तो उसकी सन्तान नाजायज़ न मानी जाय, वह अपने पिताकी सम्पत्तिका उत्तराधिकारित्व न पासके! यह कितना अन्याय था! किन्तु विद्यासागर आदिके प्रबल प्रयत्नसे यह अन्याय दूर हुआ। और भी ऐसे बहुतसे क़ानून हैं जो वास्तविक न्यायके विरुद्ध हैं। राज्यको व्यक्तिकी स्वतन्त्रतामें हस्तक्षेप तभी करना चाहिए जब वह अन्य व्यक्तिके अधिकारोंमें बाधा डालता हो, राज्यको नुक़सान पहुँचाता हो। जो जिस राज्यकी प्रजा नहीं है, उसका सम्बन्ध उस राज्यकी प्रजा के साथ न हो, इसप्रकारका क़ानून भी राज्यरक्षाकी दृष्टि से कभी उचित कहा जासकता है, परन्तु एक ही राज्यकी प्रजा परस्पर बेटीव्यवहार न कर सके, यह अन्धेर ही है! हर्ष है कि इसप्रकारके अन्यायी क़ानून अभी अभी उठ गये हैं और उठ रहे हैं। बड़ौदा सरकारने भी अभी इसप्रकारका संशोधन किया है।

पहिले जो हिन्दू लॉ था उसके अनुसार एक ही जातिके वर कन्याका विवाह होसकता था। परन्तु यह बन्धन उठादिया गया है और अब किसीभी जातिकी कन्या हो और किसीभी जातिका वर हो, उनका विवाह होसकता है।

बड़ौदा राज्यने जो यह भूलसुधार किया है, उसके लिये धन्यवाद है। यद्यपि यह सुधार बहुत पहिले ही पास होजाना चाहिये था परन्तु 'सुबहका भूला शामको ठिकाने लग जाय तो भूला नहीं कहलाता' इस कहावत के अनुसार यह कार्य सन्तोषप्रद है।

भक्त हृदय।

बैरिस्टर चम्पतरायजीने जो 'वीर' पत्रमें मेरे ऊपर आक्रमण किया था उसके उत्तरमें मुझे तदनुरूप ही प्रत्याक्रमण करना पड़ा था। इससे बैरिस्टर साहिबके भतीजे श्रीयुत भाई ऋषभचरणजीके हृदयको बड़ा धक्का लगा है। मैं श्री ऋषभचरणजीकी मनोवेदनाको समझता हूँ। बैरिस्टर साहिब और उनका जैसा सम्बन्ध है उससे उनको दुःख होना स्वाभाविक है। इसलिये आपने जैनजगत पढ़ना बन्द करदिया और इस महत्वपूर्ण समाचारको जैन मित्रमें छपाया, इससे मैं आपकी अनन्त वेदनाका और भी अधिक अनुमान कर रहा हूँ। खेद है कि सहानुभूति के सिवाय और कुछ उपाय मेरे पास नहीं है। कर्तव्यकी प्रेरणा इतनी प्रबल होती है कि अनेक कार्य अनिच्छापूर्वक करना पड़ते हैं। हाँ, श्रीयुत ऋषभचरणजीसे इतनी बात कहना आवश्यक मालूम होती है कि अगर आपने बैरिस्टर साहिबको भी इतनी प्रेरणा की होती कि वे किसी व्यक्तिको नाहानक, लक्ष्यभ्रष्ट न करके भी अपने पक्षका समर्थन करसकते हैं, इसलिये उन्हें मेरा खण्डनहीं करना चाहिये परन्तु खण्डनके नामको उड़ाकर निन्दा करनेसे उनके व्यक्तित्वको धक्का लगता है, तो अच्छा था। जैन जगतके पाठक यह अच्छी तरह जानते होंगे कि मैंने आज तक पहिलेसे ही किसीके व्यक्तित्व पर आक्रमण नहीं किया है। हाँ, जब किसीने मेरे ऊपर आक्रमण किया है तो थोड़ा बहुत प्रत्याक्रमण मुझे करना पड़ा है। खैर, श्री ऋषभचरणजीका हृदय एक भक्त हृदय है, इसलिये उन्हें बैरिस्टर साहिबके अभद्रव्यवहारको न देखनेका तथा उसके बचावमें किये गये प्रयत्नको अभद्रव्यवहार कहनेका अधिकार है। जैनजगतको इसप्रकार असहयोगोंका खूब अनुभव है, परन्तु उसकी निःस्वार्थ सेवा उसे ऐसे असहयोगोंकी पर्वाह नहीं करने देती। जैनजगत् विचारशुद्धि के कार्यमें सहायता करनेको सदा तैयार रहता है, वह किसीको मनाता नहीं है। जिनको जैनजगतसे कुछ भी लाभ प्राप्त न होता हो, वे बड़ी खुशीसे जैनजगत पढ़ना बन्द कर सकते हैं। अनिच्छापूर्वक जैनजगतको पढ़कर जैनजगत पर अहसान लादनेकी ज़राभी ज़रूरत नहीं है।

श्रीयुत भाई ऋषभचरणजी या और कोई 'जी' बैरिस्टर साहिबको महात्मा और भगवान् समझें, इसमें किसीको आपत्ति नहीं है। परन्तु इससे बैरिस्टर साहिब के अभद्रव्यवहारको हरएक सहन करे और विरोधमें चूँ भी न करे, यह आशा बहुत अधिक और हास्यास्पद है।

विजातीयविवाह आन्दोलन।

जिसने जैनधर्मका थोड़ा भी परिचय प्राप्त किया है वह कमसे कम इतनी बात अवश्य समझेगा कि जैनधर्म में जातिपाँतिको कोई भी स्थान प्राप्त नहीं है। जैन सिद्धान्तकी नींव समानताके उस तत्वपर खड़ी है, जहाँ वर्ण जातिका भेद दिखलाई नहीं देसकता। जैनियोंके प्रत्येक अनुयोगके ग्रंथोंसे तथा न्यायशास्त्र आदिकी चर्चाओंसे भी यही बात सिद्ध होती है। जैनियोंका इतिहास तथा वर्तमान उपजातियोंकी उत्पत्ति भी इसी सिद्धान्त का समर्थन करती है। फिरभी पिछले हजार बारहसौ वर्षमें जैनसमाजके ऊपर वैदिक रीतिरिवाजोंका इतना अधिक और बुरा असर पड़ा है कि सामाजिक दृष्टिसे जैनत्व नष्ट ही हो गया है। जातिपाँतिके ढकोसले यहाँ भी धर्मके नाम पर चलने लगे हैं।

परन्तु इस युगमें जब जैनधर्म शिक्षाका विशेष चलन हुआ, तब शिक्षितोंके हृदयमें यह बात चुभी। सबसे पहिले पं० गोपालदासजी बरैयाने विजातीय विवाहके लिये आवाज़ उठाई, परन्तु यह चर्चा शीघ्रही उपेक्षाके वातावरणमें विलीन होगई। इसके बहुत वर्षों बाद मैंने अपने क्षत्रियरत्न काव्यमें जातिपाँतिके विरोधमें कुछ उद्गार निकाले; उसका कुछ विरोध हुआ, जिसका मैंने उत्तर भी दिया, परन्तु यह चर्चा भी आगे न बढ़पाई।

इसके बाद देहलीके एक सज्जनका मेरे पास एकपत्र आया जिसमें उनने मुझसे विजातीय विवाहके पक्षमें कुछ लिखनेकी प्रेरणा की थी। ब्र० शीतलप्रसादजीने उनको मेरा नाम सुझाया था। मैंने एक विस्तृत लेख लिखा, वह ट्रेक्टरूपमें छपा, बादमें जैनमित्रमें प्रकाशित हुआ। बस। इसलेखसे विजातीयविवाहकी चर्चा विशालरूप धारण करती गई। पिछले आठ नव वर्षोंमें इस आन्दोलनने आशातीत उन्नतिकी है। मेरे इस लेखका विरोध पहिले पं० अजितकुमारजी मुलतानने किया, जिसका मैंने अन्त

तक उत्तर दिया। बादमें कई वर्ष तक यह आन्दोलन उग्ररूपमें चला। पं० मक्खनलालजीने चौदह प्रश्न रक्खे जिनका उत्तर मैंने और मेरे परममित्र पं० कुँवरलालजी न्यायतीर्थने दिया। इसके बाद बहुतसे विरोधी पंडित आये परन्तु उन सबके वक्तव्यका खण्डन मैंने कई वर्ष तक किया।

पं० मक्खनलालजी शास्त्री, पं० गौरीलालजी शास्त्री, पं० अजितकुमारजी शास्त्री, पं० वंशीधरजी न्यायतीर्थ, पं० श्रीलालजी अलीगढ़, पं० श्रीलालजी काव्यतीर्थ, पं० विजयकुमारजी न्यायतीर्थ, पं० पल्टूरामजी न्यायतीर्थ, पं० पन्नालालजी सोनी, आदि जिन जिन पण्डितोंने मेरा सामना किया उन सबको मैंने अन्त तक उत्तर दिया। जहाँ मौका लगा, वहाँ शास्त्रार्थका चैलेञ्ज दिया। जब ये लोग लेखनीके क्षेत्रमें चुप होगये, शास्त्रार्थके लिये नज़र बचाकर भागने लगे, गुण्डाशाही पर उतारू होगये—जैसा कि देहलीमें मेरे ऊपर आक्रमणकी तैयारी कराई गई थी—सब कुछ करके जब कौनेमें जाबैठे, तभी मैंने अपनी लेखनीको विश्राम दिया। इनने मेरी अनुपस्थितिमें इंदौर पंचायतपर यह दबाव डाला कि अगर मैं आन्दोलन बंद न करूँ तो मैं इन्दौर विद्यालयसे अलग होजाऊँ। इनकी कायरताकी यह चरमसीमा थी। परन्तु मैंने नौकरी छोड़दी लेकिन इनसे लड़ताही रहा। जब ये लोग बिलकुल चुप होगये तब मैंने दूसरे आन्दोलनको हाथ लगाया।

क्योंकि इस आन्दोलनसे समाजमें खूब जाग्रति हुई। विचारोंकी दृष्टिसे अन्तर्जातीय विवाह एक निर्विवाद प्रश्न बनगया। कुछ समय पहिले जब कि लोग इसके नामसे भी घबराते थे, अब खुली सम्मति देने लगे। जैनसमाजमें तथा जैन संस्थाओंमें काम करने वाले दर्जनों विद्वानोंने खुले दिलसे सम्मति दी।

बाबा भागीरथजी वर्णी, पं० दीपचन्दजी वर्णी, पं० कुँवरलालजी न्यायतीर्थ, पं० हजारीलालजी न्यायतीर्थ, पं० मुन्नालालजी काव्यतीर्थ, पं० चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ, पं० सत्यन्धरजी काव्यतीर्थ, पं० धर्मदासजी शास्त्री, पं० हीरालालजी न्यायतीर्थ, पं० पन्नालालजी चौधरी भूतपूर्व प्रकाशक जैनगजट, पं० रामदयालुजी काव्यतीर्थ, पं० गोविंदरामजी काव्यतीर्थ, व्याख्यानभूषण पं० मुन्नालालजी विशारद, पं० जगन्मोहनलालजी शास्त्री, व्याकरणरत्न, पं० सतीशचन्द्र न्यायतीर्थ, वयोवृद्ध पं० धर्मसहायजी लमेचू, पं० बुधचन्द्रजी, पं० माणिकचन्दजी न्यायतीर्थ, पं० वंटेश्वरदयालजी बकेवरिया, पं० मथुराप्रसादजी वैद्यभूषण, पं० मथुरालाल व्या० भूषण, पं० मूलचन्दजी पं० फूलचन्द्रजी शास्त्री, पं० राजेन्द्रकुमारजी शास्त्री, पं० जिनेन्द्रचन्द्रजी शास्त्री विद्याभूषण, पं० जुगमन्दरदासजी, पं० मुन्नालालजी राँधेलीय न्यायतीर्थ, ब्र० प्रेमसागरजी, पं० सुन्दरलालजी शास्त्री, पं० खेमचन्द्रजी, पं० बिहारीलालजी, पं० नन्दकिशोरजी, पं० पन्नालालजी अकलतरा, क्षुल्लक श्रुतसागरजी कर्नाटक, पं० मुन्नालालजी विशारद दमोह, पं० फुलजारीलालजी शास्त्री आदि दर्जनों विद्वानोंकी सम्मतियाँ प्राप्त हुई थीं, जिसमें विजातीय विवाहको जैनधर्मानुकूल और समाजहितकर स्वीकार किया गया था। ये तो सिर्फ उन लोगोंकी सम्मतियाँ हैं जो पण्डित कहलाते हैं, परन्तु इनसे भी ज्यादह: उन लोगोंकी सम्मतियाँ मुझे मिली थीं जो अंग्रेज़ीके विद्वान हैं, विचारक, अथवा श्रीमान हैं, पंचायतीके मुखिया हैं। इसके अतिरिक्त गाड़रवारा, रीठी, पड़रिया, अजयगढ़, सलेहा, विजयगढ़, पवई, महेबा, रैपुरा आदि स्थानोंकी पंचायतोंने पंचायती बैठक करके तर्कवितर्कके साथ इस बातका निर्णय करके सब पंचोंके हस्ताक्षरसे सम्मतिपत्र भेजे थे। इसके अतिरिक्त सागर, भिंड, दमोह, कटनी, पनागर, बिलहरी, सिवनी, सिंहपुर, पहारी, पण्डरभटा, गोसलपुर, मुडगाम, बिलराम, आमोद, जगदलपुर, मलकापुर, जयपुर, शहापुर, आदि स्थानोंके अनेक पत्र आये थे जिनपर सैकड़ों हस्ताक्षर थे। इस प्रकार यह आन्दोलन समाजके कौने कौनेमें फैलगया था, और सब जगह इसका स्वागत हुआ था। अनेक सम्मतियाँ तो मेरे पास ही पड़ी रहीं, फिर मैंने उनको निकालना उचितही नहीं समझा। बहुतसे विद्वानोंकी मौखिक सम्मतियाँ थीं, परन्तु बहुत सम्मतियाँ हो जानेसे मैंने उन पर भी उपेक्षा की।

समाजके कौने कौनेमें फैलकर यह आन्दोलन विचारक्रान्ति करकेही चुप न रहा, परन्तु तदनुसार बीसों विजातीय विवाह हुए। प्रारम्भमें तो इनके समाचार मैंने प्रकाशित कराये, परन्तु जब बहुत अधिक संख्यामें होने लगे और कई जगह जब ये आम रिवाज़ बनगये तब इनका प्रकाशन भी बन्द कर दिया। आज नागपुरकी आस पासकी अल्पसंख्यक उपजातियाँ तो विजातीयविवाह

बड़ौदा राज्यने जो यह भूलसुधार किया है, उसके लिये धन्यवाद है। यद्यपि यह सुधार बहुत पहिले ही पास होजाना चाहिये था परन्तु 'सुबहका भूला शामको ठिकाने लग जाय तो भूला नहीं कहलाता' इस कहावत के अनुसार यह कार्य सन्तोषप्रद है।

भक्त हृदय।

बैरिस्टर चम्पतरायजीने जो 'वीर' पत्रमें मेरे ऊपर आक्रमण किया था उसके उत्तरमें मुझे तदनुरूप ही प्रत्याक्रमण करना पड़ा था। इससे बैरिस्टर साहिबके भतीजे श्रीयुत भाई ऋषभचरणजीके हृदयको बड़ा धक्का लगा है। मैं श्री ऋषभचरणजीकी मनोवेदनाको समझता हूँ। बैरिस्टर साहिब और उनका जैसा सम्बन्ध है उससे उनको दुःख होना स्वाभाविक है। इसलिये आपने जैनजगत पढ़ना बन्द कर दिया और इस महत्वपूर्ण समाचारको जैन मित्रमें छपाया, इससे मैं आपकी अनन्त वेदनाका और भी अधिक अनुमान कर रहा हूँ। खेद है कि सहानुभूति के सिवाय और कुछ उपाय मेरे पास नहीं है। कर्तव्य की प्रेरणा इतनी प्रबल होती है कि अनेक कार्य अनिच्छापूर्वक करना पड़ते हैं। हाँ, श्रीयुत ऋषभचरणजीसे इतनी बात कहना आवश्यक मालूम होता है कि अगर आपने बैरिस्टर साहिबको भी इतनी प्रेरणा की होती कि वे किसी व्यक्तिको नास्तिक, दृष्टिभ्रष्ट न कहके भी अपने पक्षका समर्थन करसकते हैं, इसलिये उन्हें मेरा खण्डन नहीं करना चाहिये परन्तु खण्डनकी आड़में उद्गार निन्दा करनेसे उनके व्यक्तित्वको धक्का लगता है, तो अच्छा था। जैन जगतके पाठक यह अच्छी तरह जानते होंगे कि मैंने आज तक पहिलेसे ही किसीके व्यक्तित्व पर आक्रमण नहीं किया है। हाँ, जब किसीने मेरे ऊपर आक्रमण किया है तो थोड़ा बहुत प्रत्याक्रमण मुझे करना पड़ा है। खैर, श्री ऋषभचरणजीका हृदय एक भक्त हृदय है, इसलिये उन्हें बैरिस्टर साहिबके अभद्रव्यवहारको न देखनेका तथा उसके बचावमें किये गये प्रयत्नको अभद्रव्यवहार कहनेका अधिकार है। जैनजगतको इसप्रकार असहयोगोंका खूब अनुभव है, परन्तु उसकी निःस्वार्थ सेवा उसे ऐसे असहयोगोंकी पर्वाह नहीं करने देती। जैनजगत विचारशुद्धि के कार्यमें सहायता करनेको सदा तैयार रहता है, वह किसीको मनाता नहीं है। जिनको जैनजगतसे कुछ भी लाभ मालूम न होता हो, वे बड़ी खुशीसे जैनजगत पढ़ना बन्द कर सकते हैं। अनिच्छापूर्वक जैनजगतको पढ़कर जैनजगत पर अहसान लादनेकी ज़राभी ज़रूरत नहीं है।

श्रीयुत भाई ऋषभचरणजी या और कोई 'जी' बैरिस्टर साहिबको महात्मा और भगवान् समझें, इसमें किसीको आपत्ति नहीं है। परन्तु इससे बैरिस्टर साहिब के अभद्रव्यवहारको हरएक सहन करे और विरोधमें चूँ भी न करे, यह आशा बहुत अधिक और हास्यास्पद है।

विजातीयविवाह आन्दोलन।

जिसने जैनधर्मका थोड़ा भी परिचय प्राप्त किया है वह कमसे कम इतनी बात अवश्य समझेगा कि जैनधर्म में जातिपाँतिको कोई भी स्थान प्राप्त नहीं है। जैन सिद्धान्तकी नींव समानताके उस तत्वपर खड़ी है, जहाँ वर्ण जातिका भेद दिखलाई नहीं देसकता। जैनियोंके प्रत्येक अनुयोगके ग्रंथोंसे तथा न्यायशास्त्र आदिकी चर्चाओंसे भी यही बात सिद्ध होती है। जैनियोंका इतिहास तथा वर्तमान उपजातियोंकी उत्पत्ति भी इसी सिद्धान्त का समर्थन करती है। फिरभी पिछले हज़ार बारहसौ वर्षमें जैनसमाजके ऊपर वैदिक रीतिरिवाजोंका इतना अधिक और बुरा असर पड़ा है कि सामाजिक दृष्टिसे जैनत्व नष्ट ही हो गया है। जातिपाँतिके ढकोसले यहाँ भी धर्मके नाम पर चलने लगे हैं।

परन्तु इस युगमें जब जैनधर्म शिक्षाका विशेष प्रचार हुआ, तब शिक्षितोंके हृदयमें यह बात चुभी। सबसे पहिले पं० गोपालदासजी बरैयाने विजातीय विवाहके लिये आवाज़ उठाई परन्तु यह चर्चा शीघ्रही उपेक्षाके वातावरणमें विलीन होगई। इसके बहुत वर्षों बाद मैंने अपने क्षत्रियरत्न काव्यमें जातिपाँतिके विरोधमें कुछ उद्गार निकाले; उसका कुछ विरोध हुआ, जिसका मैंने उत्तर भी दिया, परन्तु यह चर्चा भी आगे न बढ़पाई।

इसके बाद देहलीके एक सज्जनका मेरे पास एकपत्र आया जिसमें उनने मुझसे विजातीय विवाहके पक्षमें कुछ लिखनेकी प्रेरणा की थी। ब्र० शीतलप्रसादजीने उनको मेरा नाम सुझाया था। मैंने एक विस्तृत लेख लिखा, वह ट्रेक्टरूपमें छपा, बादमें जैनमित्रमें प्रकाशित हुआ। बस। इसलेखसे विजातीयविवाहकी चर्चा विशालरूप धारण करती गई। पिछले आठ नव वर्षोंमें इस आन्दोलनने आशातीत उन्नतिकी है। मेरे इस लेखका विरोध पहिले पं० अजितकुमारजी मुलतानने किया. जिसका मैंने अन्त

तक उत्तर दिया। बादमें कई वर्ष तक यह आन्दोलन उग्ररूपमें चला। पं० मक्खनलालजीने चौदह प्रश्न रक्खे जिनका उत्तर मैंने और मेरे परममित्र पं० कुँवरलालजी न्यायतीर्थने दिया। इसके बाद बहुतसे विरोधी पंडित आये परन्तु उन सबके वक्तव्यका खण्डन मैंने कई वर्ष तक किया।

पं० मक्खनलालजी शास्त्री, पं० गौरीलालजी शास्त्री, पं० अजितकुमारजी शास्त्री, पं० वंशीधरजी न्यायतीर्थ, पं० श्रीलालजी अलीगढ़, पं० श्रीलालजी काव्यतीर्थ, पं० विजयकुमारजी न्यायतीर्थ, पं० पल्टूरामजी न्यायतीर्थ, प० पन्नालालजी सोनी, आदि जिन जिन पण्डितोंने मेरा सामना किया उन सबको मैंने अन्त तक उत्तर दिया। जहाँ मौक़ा लगा, वहाँ शास्त्रार्थका चैलेंज दिया। जब ये लोग लेखनीके क्षेत्रमें चुप होगये, शास्त्रार्थके लिये नज़र बचाकर भागने लगे, गुंडाशाही पर उतारू होगये— जैसा कि देहलीमें मेरे ऊपर आक्रमणकी तैयारी कराई गई थी—सब कुछ करके जब कौनेमें जाबैठे, तभी मैंने अपनी लेखनीको विश्राम दिया। इनने मेरी अनुपस्थितिमें इंदौर पंचायतपर यह दबाव डाला कि अगर मैं आन्दोलन बंद न करूँ तो मैं इन्दौर विद्यालयसे अलग होजाऊँ। इनकी कायरताका यह चरमसीमा थी। परन्तु मैंने नौकरी छोड़दी लेकिन इनसे लड़ताही रहा। जब ये लोग बिलकुल चुप होगये तब मैंने दूसरे आन्दोलनको हाथ लगाया।

वर्षोंके इस आन्दोलनसे समाजमें खूब जाग्रति हुई। विद्वानोंकी दृष्टिमें अन्तर्जातीय विवाह एक निर्विवाद प्रश्न बनगया। कुछ समय पहिले जब कि लोग इसके नामसे भी घबराते थे, अब खुली सम्मति देने लगे। जैनसमाजमें तथा जैन संस्थाओंमें काम करने वाले दर्जनों विद्वानोंने खुले दिलसे सम्मति दी।

बाबा भागीरथजी वर्णी, प० दीपचन्द्रजी वर्णी, पं० कुँवरलालजी न्यायतीर्थ, प० हजारीलालजी न्यायतीर्थ, पं० मुन्नालालजी काव्यतीर्थ, पं० चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ, पं० सत्यन्धरजी काव्यतीर्थ, प० धर्मदासजी शास्त्री, पं० हीरालालजी न्यायतीर्थ, पं० पन्नालालजी चौधरी भूतपूर्व प्रकाशक जैनगजट, पं० रामदयालुजी काव्यतीर्थ, पं० गोविंदरामजी काव्यतीर्थ, व्याख्यानभूषण पं० मुन्नालालजी विशारद, पं० जगन्मोहनलालजी शास्त्री, व्याकरणरत्न, पं० सतीशचन्द्र न्यायतीर्थ, वयोवृद्ध, पं० धर्मसहायजी लमेचू, पं० बुधचन्द्रजी, पं० माणिकचन्द्रजी न्यायतीर्थ, पं० वटेश्वरदयालजी बकेवरिया, पं० मथुराप्रसादजी वैद्यभूषण, पं० मथुरालाल न्या० भूषण, पं० मूलचन्द्रजी पं० फूलचन्द्रजी शास्त्री, पं० राजेन्द्रकुमारजी शास्त्री, पं० जिनेन्द्रचन्द्रजी शास्त्री विद्याभूषण, पं० जुगमन्दरदासजी, पं० मुन्नालालजी राँधेलीय न्यायतीर्थ, ब्र० प्रेमसागरजी, पं० सुन्दरलालजी शास्त्री, पं० खेमचन्द्रजी, प० बिहारीलालजी, पं० नन्दकिशोरजी, पं० पन्नालालजी अकलतरा, क्षुल्लक श्रुतसागरजी कर्नाटक, पं० मुन्नालालजी विशारद दमोह, पं० फुलजारीलालजी शास्त्री आदि दर्जनों विद्वानोंकी सम्मतियाँ प्राप्त हुई थीं, जिसमें विजातीय विवाहको जैनधर्मानुकूल और समाजहितकर स्वीकार किया गया था। ये तो सिर्फ़ उन लोगोंकी सम्मतियाँ हैं जो पण्डित कहलाते हैं, परन्तु इनसे भी ज्यादह: उन लोगोंकी सम्मतियाँ मुझे मिली थीं जो अंग्रेज़ीके विद्वान हैं, विचारक, अथवा श्रीमान हैं, पंचायतीके मुखिया हैं। इसके अतिरिक्त गाडरवारा, रीठी, पड़रिया, अजयगढ़, सलेहा, विजयगढ़, पवई, महेवा, रैपुरा आदि स्थानोंकी पंचायतोंने पंचायती बैठक करके तर्कवितर्कके साथ इस बातका निर्णय करके सब पंचोंके हस्ताक्षरसे सम्मतिपत्र भेजे थे। इसके अतिरिक्त सागर, भिंड, दमोह, कटनी, पनागर, बिलहरी, सिवनी, सिहपुर, पहारी, पण्डरभटा, गोसलपुर, मुहगाम, बिलराम, आमोद, जगदलपुर, मलकापुर, जयपुर, शहापुर, आदि स्थानोंके अनेक पत्र आये थे जिनपर सैकड़ों हस्ताक्षर थे। इस प्रकार यह आन्दोलन समाजके कौने कौनेमें फैलगया था, और सब जगह इसका स्वागत हुआ था। अनेक सम्मतियाँ तो मेरे पास ही पड़ी रहीं, फिर मैंने उनको निकालना उचितही नहीं समझा। बहुतसे विद्वानोंकी मौखिक सम्मतियाँ थीं, परन्तु बहुत सम्मतियाँ हो जानेसे मैंने उन पर भी उपेक्षा की।

समाजके कौने कौनेमें फैलकर यह आन्दोलन विचारक्रान्ति करकेही चुप न रहा, परन्तु तदनुसार बीसों विजातीय विवाह हुए। प्रारम्भमें तो इनके समाचार मैंने प्रकाशित कराये, परन्तु जब बहुत अधिक संख्यामें होने लगे और कई जगह जब ये आम रिवाज़ बनगये तब इनका प्रकाशन भी बन्द कर दिया। आज नागपुरकी आस पासकी अल्पसंख्यक उपजातियाँ तो विजातीयविवाह

के द्वारा मिलगई हैं, गुजरातकी जातियाँ भी मिलरही हैं और अन्यत्रभी इसका प्रचार खूब होही रहा है। स्थितिपालक दलके जो खास खास विद्वान हैं, जो शास्त्रिपरिषद्के सभापति रहचुके हैं, वेभी अब ताल ठोंककर विजातीय विवाहके समर्थनके लिये मैदानमें आरहे हैं। पिछले कई वर्षसे अब विजातीय विवाहका प्रश्न आन्दोलनका विषयही नहीं रहगया है, अब वह एक साधारण बात समझी जाती है।

अभी ब्यावरमें विजातीयविवाहके विरोधके लिये कुछ पण्डितोंने उछलकूद मचाई थी, जिसकी ठीक ठीक चिकित्सा पं० देवकीनन्दनजी सिद्धान्तशास्त्रीने वहीं करदी। विजातीयविवाहके विरोधियोंकी बुद्धि पर तो मुझे दया आती है। ये लोग हर तरह मुँहकी खाकर शेखी बघारते ही रहते हैं। इन लोगोंने महासभाके प्रवेश द्वार पर तीन बाधाएँ खड़ी कर रक्खी हैं। यह बहुत अच्छा किया है, क्योंकि इन्हीं बाधाओंसे महासभाका दम घुटरहा है, वह मृतप्राय है, इसी प्रकार दम घुटते घुटते वह श्मशानयात्रा करेगी। नवयुगके प्रवेशके लिये ऐसी सभाओंका इस ढङ्गसे नामशेष होना आवश्यक है।

यद्यपि विजातीयविवाहका आन्दोलन विजयी हो गया है, फिर भी अगर विद्रोही लोग सामहना करना चाहते हों तो जिस तरह वे चाहें उस तरह उन्हें सत्यका दर्शन कराया जासकता है। विजातीयविवाहके पक्षमें अनेक उद्भट विद्वान हैं और उनमेंसे कोई भी आगे आने को तैयार है। यद्यपि आज मेरा लक्ष्य 'जैनधर्मका मर्म' लिखनेकी तरफ़ है, क्योंकि सम्यक्त्व शुद्धि हुए बिना समाज सुधारका कार्य पूर्ण नहीं हो सकता; फिर भी अगर आवश्यक हो तो इसके लिये भी मैं अपनी थोड़ी बहुत शक्ति लगा सकता हूँ।

प्रेमीजीकी तबियत।

श्रीमान् नाथूरामजी प्रेमी गत अप्रेल माससे बीमार हैं। प्रारम्भमें स्वासकी बीमारी थी, बादमें और रोगोंने भी घर बनाया। बीमारी बढ़तीही गई। वज़न २६ पौंड घटगया और शरीर अस्थिचर्मावशिष्ट हो गया। बम्बईके प्रथम श्रेणीके अनेक डाक्टरोंसे चिकित्सा कराई गई है। इससमय स्वास कुछ शान्त है, खाँसी अगैरह है। शक्तिमें कोई विशेष प्रगति नहीं हुई है। बिस्तरसे उठ नहीं सकते। फिरभी आशा है कि कुछ महीनोंमें हालत बहुत कुछ सुधर जायगी।

स्वर्गीय श्रीगोकुलचन्दजी।

कौन जानता था कि वृद्धविवाह निषेधक बिलके प्रकाशनके बाद इतनी जल्दी उस बिलके प्रवर्तकके स्वर्गवास समाचार प्रकाशित करना पड़ेंगे। श्रीमान् गोकुलचंदजी वकील वर्षोंसे बीमार थे परन्तु इस बीमारीकी अवस्थामें भी उनने जो कार्य किये हैं वे चिरस्मरणीय रहेंगे।

आप मध्यप्रान्तके प्रसिद्ध नेता थे। राजनैतिक आन्दोलनमें जेलभी जाचुके थे। मध्यप्रान्तकी धारा सभाके मेम्बर थे और दमोह ज़िलेके तो सर्वेसर्वा थे। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, म्युनिसिपल कमेटी आपके इशारे पर चलते थे। वकालतके कार्यमें, खासकर फ़ौजदारी केसोंमें आपकी प्रखर बुद्धि अद्भुत चमत्कार दिखलाती थी। इस तरह आपने लाखों रुपये पैदा किये थे। परन्तु ये कार्य तो आपकी वे विशेषताएँ थीं, जिनसे किसी व्यक्तिके ऊपर आतंक छाजाता है। लेकिन जिनसे आपके प्रति मनुष्यका आदर और प्रेम बढ़ता है, वे समाज सेवाके कार्य जुदे हैं।

आपने जनसाधारणकी खासकर निम्नजातियोंकी चिरस्मरणीय सेवाकी थी। धारा सभा द्वारा आपने दमोह ज़िलेमें शराब बन्द करादी थी। चमार आदि नीची जातियोंमें से नशेबाज़ीको हटानेमें आपने बहुत सफलता प्राप्त की थी। अनेक निम्न जातियोंकी पंचायतों पर आप की सलाह आज्ञाके समान चलती थी, इस प्रकारके हर एक ग़रीब और सताए हुए मनुष्योंके लिये आप दृढ़ अवलम्बन थे।

जैन समाजके लिये भी आप बहुत काम करते थे। विचारोंके पूर्ण सुधारक थे। उनको आप कार्यरूपमें परिणत करते थे। फिर भी पुराने लोगों पर आपका खासा प्रभाव था। अनेक वृद्धविवाहोंको आपने रुकवाया था, तथा जब आपको यह अनुभव हुआ कि इस तरह ये वृद्धविवाह पूर्णतया नहीं रुकसकते तथा इस तरह अल्पफल बहुविघात होता है तब आपने उन्हें रोकनेके लिये बिल रक्खा था जो कि जैनजगत्के प्रथम अंकमें निकल चुका है। खेद है कि इस महत्वपूर्ण कार्यको आप पूरा न कर पाये।

श्रीमान् गोकुलचन्दजीके स्वर्गवाससे दमोह ज़िलेके एक बेताजके राजाका स्थान ख़ाली हो गया है, मध्यप्रान्त का एक नक्षत्र टूट गया है और जैनसमाजका एक नेता चलागया है। इस असह्य कष्टके समय हम उनकी धर्मपत्नी और पुत्रके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करते हैं।

जैनधर्मके दलितजातीय सन्तजन।

(लेखक—श्रीमान बा० कामताप्रसादजी जैन ऐम० आर० ए ऐस० सम्पादक "वीर")

एकान्तपक्षमें अंधकार है—अनेकान्त दृष्टि प्रकाशमय है। जैनधर्ममें अनेकान्तका ही प्राबल्य है। जो अनेकान्ती नहीं, वह मिथ्यात्वी है! फलतः जो लोग एकान्तके खूँटेसे बँधकर अछूतोद्धार कार्यका विरोध करते हैं वे अनेकान्त-धर्मसे बहुत दूर हैं। अनेकान्तधर्म, जैनधर्ममें, अस्पृश्यता—वह एकान्त-सार्वभौम स्थान नहीं रखती जो उसे वैदिकधर्ममें मिला हुआ है। वैदिक धर्म जब जाति और कुल परही धर्मकी मूलभित्ति स्थापित करता है तब जैन-धर्म रत्नत्रयकोही धर्मका आधार स्थिर करता है और एक श्रद्धानीको सावधान करदेता है कि 'खबरदार! जाति-कुल-ऐश्वर्य आदिका घमंड न करना।' बस, सनातनधर्मकी तरह जैनधर्मको सर्वथा जाति और कुलका पक्षपाती बतलाना मिथ्या है। स्वयं सनातनधर्म—वैदिकधर्म भी समयविशेषमें वैसा नहीं रह सका है। उसके व्यास सदृश ऋषि उच्च जातीय न थे। अवतार माने जानेवाले चैतन्य प्रभुने जाति को न-कुछ माना था और उन्होंने सबही जातियोंके वैष्णवोंका सहभोज किया था; यद्यपि वे स्वयं उच्चकुलीन ब्राह्मण थे। कबीर, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द आदि हिन्दू महापुरुषोंने नीच समझी जानेवाली जातियोंका सदा पक्ष लिया। जाति तथा अछूतपन पर कबीरने कटुव्यङ्गके साथ निखर सत्यका क्या अच्छा निरूपण किया है:—

'काहेको कीजे पाँडे छूत विचारा।
छूतिहिं ते अपना संसारा।
हमरे कैसे लोहू तुम्हरे कैसे दूध।
तुम कैसे बाँभन पाँडे हम कैसे सूद॥
छूति छूति करता तुम्हहीं जाये।
तौ गर्भवास काहे को आये॥
जनमत छूति मरत ही छूति।
कहै 'कबीर' हरिकी निरमल जोति॥'

सकतो है, जब बड़ेसे बड़े छूत (ब्राह्मणादि) को जन्मते और मरते अछूतके बिना गति नहीं मिलती, तब अछूतोंसे घृणा कैसी? अछूत धानुषकी स्त्री जब नवजात शिशुकी 'घाँटी' करती है तबही तो वह कहीं इस संसारको सोचने-समझनेके योग्य होपाता है और मरने परभी चाण्डालके श्मशानमें उस छूतको स्थान मिलता है। यदि अछूतको छूना पाप है तो यह पापतो मनुष्यके साथ लगा हुआ है—उससे कोई बचा कहाँ है? फिर इतना दम्भ क्योंकि अछूत बेचारेको मनुष्यभी न समझो! वह जीवन भर एकसा अछूत रहता है, पर 'कुलीन' तो जन्मते ही अछूतके संसर्गसे अछूत होजाने परभी दम्भ करता है और कहता है-'मैं सर्वथा स्पर्श्य हूँ। खबरदार, मुझे छू न लेना!' कितना भारी ढोंग है! क्या यह धर्म कहा जासकता है?

इस तरह वैदिकधर्म स्वतः जातिपक्षके एकांतमें अपनेको बन्द न रखसका। जैनधर्म तो प्रारम्भसे जाति-कुलको महत्ता देना अनावश्यक समझता रहा है। इसपर भी जो लोग शास्त्रोंसे गलत उद्धहरण उपस्थित करके जैनधर्ममें अस्पृश्यताका विधान घोषित करते हैं, वे भूलते हैं और एकान्तके अँधेरे गड्ढेमें जागिरते हैं। अस्पृश्यता कृत्रिम है, इसलिये वह वस्तुस्वभाव नहीं है—धर्म नहीं है। यह धर्म का पारमार्थिक विधान है। किन्तु लौकिक कार्योंको बिना साधे भी तो काम नहीं चलता—जीवनयापन के लिये समाजव्यवस्थाको बनाये रखना आवश्यक है। समाजमें जिस व्यक्तिके द्वारा गंदगी फैले—समाजका स्वास्थ्य बिगड़ जावे, उससे दूर रहना ठीक है। जैनशास्त्रोंमें इस दृष्टिसे ही अस्पृश्यताको स्थान मिला है। वह धर्मकी मूलभित्ति नहीं है। यही कारण है कि जैन कथाग्रंथोंमें ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनमें शूद्र और चाण्डाल सदृश

नीच मनुष्योंके धर्म पालने और उच्च गति पानेका उल्लेख है। 'वीर' के गत होलिकांकमें इस विषयके अनेक प्रमाण और उदाहरण दिये जाचुके हैं; किंतु खेद है कि नयवादसे विमुख होकर कोईकोई विवेकहीन उसपर कलमकुल्हाड़ा लेकर उलट पड़े हैं। यदि वस्तुत: 'होलिकांक' के प्रत्येक लेखका व्यवस्थित (Systematically) और सत्य आलोचन किया जाता तो हमें बड़ी खुशी होती और शायद तब हम कुछ उसपर लिखते भी, किन्तु जहाँ अर्थका अनर्थ किया गया हो—स्वयं शास्त्रोंके ग़लत उद्धरण देकर हमपर वह दोष लादा गया हो, वहां विवेक कहता है—उपेक्षा! भला कहिये तो 'सावयधम्मदोहा' के उद्धरणको एक आध्यात्मिक प्रमाण बतलाना कैसे उचित होसकता है? सामान्य पूजक और विशेष—प्रतिष्ठादि संस्कारोंके पूजकोंमें जो अन्तर है उसको छुपाकर यह कहना कि शास्त्रकारोंने शूद्रको पूजाका निषेध किया है, सत्यकी आँखें फोड़ना है। यह वृत्ति घृणोत्पादक और उसका अधिकारी करुणाका पात्र है।

जैन पुराणग्रन्थोंके उदाहरण और जैनसंघका पूर्व इतिहास इस बातको दिनके उजालेकी तरह स्पष्ट बताते हैं कि जैनधर्मकी आराधना नीचातिनीच पुरुषभी करसकता है। जैनसंघमें अछूत पुरुष भी सन्त हुए हैं। वे श्रावकाचारही नहीं, किन्तु विशेष अवसरोंपर साधुओंका जीवनभी बिता चुके हैं। भोपालमें मनुआ भाँडका समाधिस्थान आज भी इस बातका द्योतक है कि भाँड जैसा नीच समझा जानेवाला पुरुष भी एक साधु होकर अपने नामको अमर करगया। "आराधना कथाकोष" की 'विनयी पुरुषकी कथा' से इस विषयमें जैन और वैष्णव दृष्टिका अन्तर स्पष्ट होजाता है। उसमें वैष्णव साधुको जातिके घमंडमें अपने चाण्डाल गुरुको नमस्कार न करनेके कारण पतित होते दिखाया है। इस कथामें चाण्डालवेषधारी गुरु एक जैनी विद्याधर था। जब वैष्णव साधुका शिष्य कौशाम्बीका राजा धनसेन यह भेद जानता है तो वह ग्लानि न करके चाण्डाल गुरुकी भक्ति करता है। उसकी भक्तिसे प्रसन्न होकर वह विद्याधर अपना असली रूप प्रकट करदेता है और उसे बहुत सी विद्यायें भेंट करता है। अब यदि चाण्डालको छूना—उसका आदर करना सर्वथा पाप होता तो उपरोक्त जैन विद्याधर कौशाम्बीके उक्त राजाके कार्यको उचित न मानता! उसने अपने कृत्यसे स्पष्ट करदिया है कि जैनधर्ममें गुण पूज्य हैं—जाति नहीं! अनेक जैन कथायें हमारे कथनकी पोषक हैं! जैन संघमें वस्तुत: अनेक ऐसे धर्मात्मा मनुष्य हुए हैं जो जन्मसे नीच और अछूत थे। जिन्होंका परिचय पहले कराया जाचुका है। फिरभी और उदाहरण 'आराधना कथाकोष' से हम यहाँ उपस्थित करते हैं।

१.—सोमदत्त माली और अंजन चोर।

राजगृहमें जिनदत्त नामक सेठ रहता था। वह अपने विद्याबलसे प्रतिदिन जिन मंदिरोंके दर्शन करनेके लिये जाता था। एक दिन सोमदत्त माली ने उससे पूछा कि वे प्रतिदिन कहाँ जाते हैं। उत्तर में सेठने सच बात कहदी। "तब सोमदत्तने जिनदत्तसे कहा—प्रभो, मुझेभी विद्या प्रदान कीजिये, जिससे मैं भी अच्छे सुन्दर सुगन्धित फूल लेकर प्रतिदिन भगवानकी पूजा करनेको जाया करूँ और उसके द्वारा शुभकर्म उपार्जन करूँ।...सोमदत्तकी भक्ति और पवित्रता देखकर जिनदत्तने उसे विद्या साधनकी रीति बतलादी!" इस कथासे शूद्रवर्णके पुरुषों द्वारा जिनपूजा होनेकी पुष्टि होती है। दक्षिण भारतके शिलालेखोंसे प्रकट है कि सुनार, माली आदि लोगोंने जिन मंदिरोंको दान देकर और व्रतपालन करके धर्म अर्जित किया था।

इसी कथामें आगे अंजन चोरका वर्णन है, जो उक्त विद्याको उक्त मालीसे लेकर सिद्ध करलेता है। वह चोर उसी समय मेरु पर्वतके जिन चैत्यालयमें सेठके पास पहुँचकर उनकी विनय करता है, और

गुरु महाराजके निकट मुनि होकर वह सिद्ध परमात्मा होजाता है। यह है जैनधर्मकी विशालता—वह चोर जैसी पापी पुरुषको परमात्मा बनादेता है। किन्तु अभाग्यसे आजकलके स्थितिपालक जैनी कहते हैं कि—खबरदार, हीनाचरणीको मंदिरमें मत घुसने देना! कैसा पतन है!

२—धर्मात्मा ग्वाला।

चम्पानगरमें वृषभदत्त सेठका नौकर एक ग्वाला था। उसने दिगम्बर मुनिको वनमें ध्यान करते देखा। ग्वालाने करुणा और भक्तिसे मुनिराजकी खूब वैयावृत्य की। सवेरा होनेपर मुनिराज ने उस ग्वालेको निकटभव्य जानकर जैनमंत्र प्रदान किया। ग्वाला बड़ी भक्तिसे उस मंत्रका जाप करता था। एक रोज सेठने भी उसकी यह श्रद्धा जानली और वह प्रसन्न होकर बोले—"भाई, क्या हुआ यदि तू छोटेभी कुलमें उत्पन्न हुआ? पर आज तू कृतार्थ हुआ, जो तुझे त्रिलोकपूज्य मुनिराजके दर्शन हुए। सच बात है, सत्पुरुष धर्मके बड़े प्रेमी हुआ करते हैं!" यही ग्वाला णमोकार मंत्र जपते हुए मरा और मरकर उन्हीं सेठके यहाँ लड़का हुआ। पाठक देखिये, छोटे कुलका पुरुष भी धर्माराधना करके उच्चता पासकता है।

३—यमपाल चाण्डाल।

यमपाल चाण्डालका वृत्तान्त होलिकांकमें लिखा जाचुका है। उक्त कथाकोषमें उसकी कथाके अन्तमें जो निम्न शब्द कहे गये हैं, वे हमारी व्याख्याके पोषक हैं:—

चाण्डालोपि व्रतोपेतः पूजितो देवतादिभिः।
तस्मादन्यैर्न विप्राद्यैर्जातिगर्वो विधीयते ॥३०॥

अर्थात्—"स्वर्गके देवोंने भी एक अत्यन्त नीच चांडालका आदर (व्रतके कारण) किया, यह देखकर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंको अपनी अपनी जाति का कभी अभिमान नहीं करना चाहिये"। क्योंकि पूजा जातिकी नहीं होती, किन्तु गुणोंकी होती है।

४—अनंगसेना वेश्या।

कौशाम्बीमें अनंगसेना नामकी एक वेश्या रहती थी। धनकीर्ति नामक सेठसे उसका नैसर्गिक प्रेम था। उनके संसर्गसे उसके भाव अच्छे हुये थे। जब धनकीर्ति मुनि होगया, तब अनंगसेनाने हृदयसे विषयवासनाको दूर करके जिनदीक्षा ग्रहण करली और तप करके वह स्वर्ग गई। सच है, जिनशासनकी आराधना कर किस किसने सुख प्राप्त न किया!

५—सम्यक्त्वी प्रियंगुलता।

मथुरामें जब उग्रसेन राजा राज्य करतेथे तब वहाँ जिनदत्त सेठ रहतेथे। प्रियंगुलता उनकी नौकरानी थी। वह जातिकी धीमर थी, किन्तु अन्य धीमरोंकी तरह वह मिथ्यात्वमें प्रस्त नहींथी। धीमरों का गुरु वशिष्ट नामका एक तापसी था। एकदिन प्रियंगुलताको भी अन्य धीमरें उस गुरुके पास लेगईं; किन्तु प्रियंगुलता उसको प्रणाम न कर सकी! उसे धीमरतुल्य बताकर वह लौट आई। तापसीने राजा से शिकायतकी; किन्तु प्रियंगुलता वहाँभी न दबी। उसने तापसीके पाखंडकी धज्जियाँ उड़ादीं—भरी सभा में साधुको उसने मत्स्यभक्षक प्रमाणित कर दिया। उल्टा वह साधु दण्डित हुआ और प्रियंगुलताकी प्रशंसा हुई! उसके निमित्तसे धण्डित हुआ वह वशिष्ट साधुभी अन्ततः जैनधर्मकी शरण आया और सच्चा साधु बनगया! पाठक, देखिये एक धीमरके सम्यक्त्वको! छोटी जातिकी होनेपर भी वह स्वयं धर्ममें दृढ़ थी और उसने अन्योंको भी धर्मके मार्ग लगाया! क्या आप उससे घृणा कर सकते हैं? किन्तु आजके धर्म-पोप कहते हैं कि धीमरको पास न आनेदो! कैसा दम्भ है!

६—क्षुल्लिकिणी कारणा।

मगधदेशमें एक मल्लाह रहताथा। कारणा उसीकी पुत्री थी। वह बेचारी रोजमर्रा नाव खेकर लोगोंको पार उतारा करती थी। लोग उसे नीचजातिकी समझते थे। एक दिन उसे एक दिगम्बर मुनि महाराज मिल गये। उन्हें देखकर वह बोली कि मैंने कहीं आपको

देखा है ! मुनिने कहा—बच्ची, तू पूर्वजन्ममें ब्राह्मणी थी, तेरा नाम लक्ष्मीमती था और सोमशर्मा तेरा भर्त्ताथा। तूने अपने जातिके अभिमानमें आकर मुनिनिन्दाकी। उसके पापसे तेरे कोढ़ निकल आया और तू आगमें जलमरी। आत्मघातके पापसे तूने दुर्गतियोंके दुःख उठाये। अब तू मल्लाहकी पुत्री हुई है। अपना पूर्वभववृत्त सुनकर उसे ज्ञान उत्पन्न हुआ और उसने विनयकी कि–प्रभु, पापसे मेरी अब रक्षा करो ! तब मुनिने उसे धर्मका उपदेश दिया, जिसे सुनकर कारणा संतुष्ट और वैराग्यचित्त हुई। वह वहीं मुनिके पास दीक्षा लेकर क्षुल्लिकिनी होगई और खूब तपस्या तपी। फलतः वह स्वर्ग गई और वहाँ से चयकर राजा वासुदेवकी रानी हुई ! सचमुच जैनधर्म ऊँच-नीच सबका हित करनेवाला धर्म है !

७–मांस-भक्षी चित्रकार।

अहिक्षत्रपुरके राजा वसुपालने एक सहस्रकूट चैत्यालय बनवाकर उसमें भगवान पार्श्वनाथकी प्रतिमा विराजमान कराईथी। प्रतिमा अतिशय लिये हुयेथी। राजाने उसपर लेप चढ़ानेके लिए एक चित्रकार बुलाया। वह मांस-भक्षीथा। फलतः वह लेप चढ़ाने में सफल न हुआ। आखिर एक मुनिराजके उपदेश से उसने मांस खाना छोड़ दिया और तब लेपभी प्रतिमा पर चढ़ गया। मुनि-महाराजने उस मांस-भक्षीको भी धर्मव्रत देते संकोच नहीं किया !

८–देविल कुम्हार।

मालवादेशके घटगाँव नामक ग्राममें देविल नामका धनी कुम्हार और धर्मिल नामका नाई रहता था। दोनोंने मिलकर यात्रियोंके लिये एक धर्मशाला बनवादी। देविल धर्मात्मा व्यक्तिथा, और उसे जैनधर्मसे प्रेम था। उसने एक दिगम्बर मुनिराजको अपनी धर्मशालामें ठहरा दिया; किन्तु दुष्ट नाईने उनको बाहर निकाल दिया। देविलको यह बात सहन नहीं हुई। नौबत मारामारी पर पहुँची और दोनों क्रूर-भावोंसे मरकर सूअर और व्याघ्र हुये। देविलके जीव सूअरको एक रोज मुनियुगलके दर्शन होगए। अपने पूर्वभवके धार्मिक संस्कारके वशहो उसने कुछ व्रत ग्रहण कर लिए। उसी समय व्याघ्रने उनपर हमला किया। सूअर मुनिरक्षाके भावसे जूझ मरा और सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ ! कहाँ एक कुम्हार और कहाँ स्वर्गका देव ! किन्तु धर्मके प्रतापसे कुछ भी असाध्य नहीं है !

९–शूद्रा कन्यायें।

मालवामें एक कुटुम्बी जातिका शूद्र रहताथा। उसकी तीन कन्यायें अत्यन्त कुरूपा और रुग्णथीं। बेचारी ज्यों-त्यों अपना समय काट रहीथीं। एक रोज दि० मुनिराज संघसहित उधर आ निकले। लोग उनका धर्मोपदेश सुनने गये। वे कन्यायें भी वहाँ जाकर धर्म सुनने लगीं। सभा खतम हुई। तीनों कन्यायें मुनिराजके निकट पहुँचकर अपने लिये व्रत माँगने लगीं जिससे उनका अभाग्य दूरहो। मुनिराजने उन्हें लब्धिविधानव्रत प्रदान किया, जिसमें भगवानकी प्रतिमाका साभिषेक पूजन उन्होंने किया। व्रतप्रभावसे उन्हीं तीनों कन्याओंके जीव भगवान महावीरके इन्द्रभूति, अग्निभूति और वायुभूति नामक गणधर हुये ! कहाँ वे दीनहीन शूद्रा और कहाँ गण-धरपद ! धर्मसे सब सुलभ है ! इस उदाहरणसे शूद्र का मन्दिरमें जाकर साभिषेक पूजन करना स्पष्ट है, जिसका विधान पूजासार आदि ग्रन्थोंमें भी है।

१०–चामेक वेश्या।

चालुक्यवंशी राजा अम्म-द्वितीयके कलचुम्बार्क दानपत्रसे पता चलता है कि चामेक वेश्या जैनधर्मकी परम उपासिका थी। दानपत्रमें उसे राजाकी अन्यतम प्रियतमा और वेश्यायोंके मुख-सरोजोंके लिये सूर्य तथा जैनसिद्धान्तसागरको पूर्ण प्रवाहित करनेके लिये चन्द्रमा समान लिखा है। वह बड़ी विद्वानभी थी। सर्वलोकाश्रय जिनभवनके निमित्त उसने मूलसंघ अद्दकलि गच्छीय अर्हनन्दिको दान दियाथा, जिससे उसकी खूब प्रशंसा हुईथी। यह ऐतिहासिक उदाहरण जैनधर्मको प्रगटतः पतितपावन घोषित करता है। इस दानपत्रमें चारों जातियोंके जैनसाधुओंका भी

उल्लेख है; जिससे स्पष्ट है कि पहले जैनसंघमें शूद्र जातिके भी साधु होते थे। दानपत्रकी प्रतिलिपि 'इपीग्रेफिया इन्डिका', भा० ७ पृ० १८२ पर दी हुई है।

११—आर्यिका श्रीमती और मानकव्वे।

श्रवणबेलगोलके एक शिलालेखमें आर्यिका श्रीमती और उनकी शिष्या मानकव्वेका वर्णन है। श्रीमतीके तपश्चरणका बखान तब चहुँओर होताथा। आखिर उनके सन्यासमरण करने पर उनकी शिष्या मानकव्वेने यह शिलालेख और निषिधि बनवायेथे। शिलालेखमें दोनों नामोंके साथ 'गणित' (Ganti) शब्द आया है, जिसे प्रो० एस० आर० शर्मा 'गाणगित्ति' अथवा 'गाणिग' शब्द से निकला बतलाते हैं और लिखते हैं कि उक्त आर्यिकायें 'गाणिग' अर्थात् तेली जातिकी थीं। विजयनगरमें तब एक तेलिनका बनवाया हुआ जैनमंदिर उसीके नाम अपेक्षा 'गाणगित्ति जिनभवन" कहलाता था। उस समय उस देशके तेलियोंमें जैनधर्मकी विशेष पैठ हुई मालूम होती है! धन्य थे वे जैनाचार्य जिन्होंने संसारमें नीचे दबे हुये मनुष्योंका उद्धार किया!

उपरोक्त ऐतिहासिक उदाहरणोंको देखते हुये यह नहीं कहा जा सकता कि दलित–शूद्र लोगोंके लिये जैनधर्मका द्वार बन्द है। प्रत्युत यह स्पष्ट है कि वे देवदर्शन और यथोचित रूपमें पूजनभी कर सकते हैं; इतनाही क्यों वे गृहत्यागी क्षुल्लक–निर्ग्रन्थ और विशेष अवस्थामें महाव्रती निर्ग्रन्थभी हो सकते हैं, जैसे कि लब्धिसार क्षपणसारकी टीकासे स्पष्ट है।

नोट—कौन मनुष्य कितना योग्य है, इस बातका ज्ञान न होनेसे अगर हम उसकी अवहेलना कर जाँय तो क्षन्तव्य हैं, परन्तु किसीके विषयमें यह कहना कि 'अगर वह योग्य भी होगा तो भी हम उसे न मानेंगे अथवा उसे योग्य बननेका अधिकार ही नहीं है'—यह हद दर्जेकी धृष्टता है। कोई भी धर्म इसप्रकार गुणकी अवहेलना नहीं कर सकता। अगर करता है तो वह धर्म नहीं है। वह आत्मोपासक नहीं, मांसोपासक है। जैनधर्म जो कि एक आत्मधर्म है, मांसमें शुद्धयाशुद्धिका विचार नहीं करता, इसीलिये शूद्रकुलोत्पन्न होनेसे किसीके अधिकार नहीं छिनते। जैन पुराणोंमें इस तरह के उदाहरण पद पद पर मिलते हैं। अन्य अनुयोगोंकी तरह प्रथमानुयोगभी धर्मशास्त्र है, उसके चरित्र भी किसी लक्ष्यको लेकर लिखे गये हैं। घटनाओंकी दृष्टिसे वे कैसे भी हों परन्तु उनसे ग्रन्थकारका अभिप्राय अवश्य मालूम होता है। जैनाचार्योंने शूद्रोंके विषयमें जो चरित्र चित्रण किया है उससे जैनधर्मकी उदारता अच्छी तरह मालूम होती है। मित्रवर बाबू कामताप्रसादजीने इस तरहके उदाहरणोंका एक लेख पहिले भी लिखा था। यह लेख उसीका पूरक है। ऐसे उदाहरण और भी हैं, तथा श्वेताम्बर सम्प्रदायमें भी इसप्रकारके महत्त्वपूर्ण उदाहरण मिलते हैं। लेखक महोदय का यह प्रयत्न प्रशंसनीय है। आशा है वे इस विषय में और भी लिखेंगे। —सम्पादक।
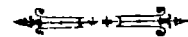
"जैनधर्मका मर्म" पर सम्मतियाँ।

(३१)

श्रीमान बा० माईदयालजी जैन बी० ए० (ऑनर्स) बी० टी० की सम्मति—

सन् १८१९ में रिचर्ड कारलाइलको एक पुस्तक बेचनेके अपराध पर तीन सालकी कैद और १५०० पौंड (२२५००) रु०) का जुर्माना हुआ था। उसी वर्ष उसकी पत्नीको दो वर्षकी कैद हुई और सन् १८२१ में उसकी बहिनको दो वर्षकी कैद और ५०० पौंड जुरमाना उसी अपराधके कारण हुआ था। इसीप्रकार १५० पुरुषों और स्त्रियोंको भिन्न भिन्न सज़ाएँ हुईं। वह पुस्तक 'एज ऑफ़ रीज़न' (Age of Reason.) थी। शायद पाठक समझें कि वह कोई राजनैतिक पुस्तक होगी। नहीं, राजनीतिसे उसका कुछभी सम्बन्ध नहीं था। उस पुस्तक में ईसाई धर्मकी युक्तिके आधार पर समालोचना की गई थी। ईसाई धर्मके सिद्धान्त युक्तियों पर कठिनता से पूरा उतरते हैं। लोगोंमें खलबली मच गई। पोपडम और पादरियोंकी जड़ें हिल गईं। पुस्तकको दबानेके लिए सारी राजनैतिक शक्तियाँ काममें लाई गईं, पर सब व्यर्थ। इस पुस्तकके लेखक थामस पेन प्रसिद्ध राजनैतिक विद्वान् और कार्यकर्ता तथा अमेरिका स्वातन्त्र्य युद्ध और फ्रांसकी

क्रान्तिमें मुख्य भाग लेनेवाले कर्मवीर थे। पुस्तकका उत्तर किसीसे न बन पड़ा और उसका उपयुक्त प्रभाव हुआ।

मैं १८-१९ वर्ष से देख रहा हूँ कि जैनसमाजमें भी जब कभी कोई नई बात होती है, खलबली मच जाती है। सख्त ऑपरेशनों और कड़वी दवाओंके प्याले देखकर बुड्ढा जैनसमाज बौखला उठता है। पर न मालूम उसके डाक्टर कैसे ज़िद्दी और कठोर प्रकृतिके हैं कि वे जैन समाजको नहीं बख्शते—एक के बाद दूसरी और दूसरीके बाद तीसरी कड़वा दवाई तैयार किए रखते हैं। जैनसमाज अभी छापे, विधवाविवाह, विजातीयविवाह, शास्त्र समालोचना आदि के आघातोंसे पनपा भी न था कि पण्डित दरबारीलालजीने 'जैनधर्मका मर्म' नामी लेखमाला आरम्भ करदी। इस लेखमालाके मैंने बहुतसे लेख पढ़े हैं। उनमें लेखकने युक्तियों और शास्त्रोंके प्रमाणोंपर जैनधर्मके मर्मको—धर्मके हृदयको—समाजके सामने पेश करनेकी कोशिश की है। मैं साधारण ज्ञान रखता हूँ, इसलिए मैं इन लेखोंके ठीक या गलत होनेके सम्बन्धमें कुछ नहीं कह सकता। सम्भव है वे तमाम ठीक न हों, किन्तु यह मैं स्वीकार नहीं करसकता कि जो कुछ पण्डितजी लिख रहे हैं वह सब कुछ एक पागलकी बड़ है, गलत है। लेखोंके पढ़ने से मेरे इस विचारकी पुष्टि ही हुई है कि हरएक धर्म बहुत समय बीतने पर कुछ विकृत होजाता है, उस पर मैल जम जाता है। उसका असली रूप आँखोंसे ओझल हो जाता है। क्या उस मैलको दूर करके धर्मका वास्तविक रूप प्रकट करने वाला विद्वान् हमारी कृतज्ञताका पात्र नहीं है?

यह बीसवीं सदी है। युक्तिवादका युग है। पण्डितजीके लेखोंका उत्तर युक्तिसे देना चाहिए। धर्म गया, धर्म डूबा आदिकी दुहाई देनेसे कोई लाभ नहीं होगा। पुराने हथियारों में जंग लग गया है, नाकारा होगये हैं। जैनसमाज विद्वानोंसे खाली नहीं होगया है। हाँ, ज़रा हिम्मत, निर्भीकता, और निरन्तर अध्ययनकी आवश्यकता है। थोड़ी देरके लिए यह मान लीजिए कि ये लेख गलत हैं। क्या इनके लेखकका समाधान करना, ये उसे उसकी गलती बताना तथा उन जैसे विचार रखनेवाले अन्य आदमियोंके सन्देहोंको दूर करना जैनधर्मके पण्डितोंका कर्तव्य नहीं है? यह खुशीकी बात है कि पण्डित राजेन्द्रकुमारजी 'जैनदर्शन' में इनके लेखोंकी समालोचना करने लगे हैं। यह एक अच्छा प्रयत्न है, किन्तु पण्डित राजेन्द्रकुमारजीको पण्डित दरबारीलालजी की ठीक बातों को स्वीकार करना चाहिए, जिससे उनकी अपनी उदारता और पण्डित दरबारीलालजीकी सत्यता प्रकट हो। केवल दोष ही दोष न निकालने चाहिए। विद्वानोंको दोनों प्रकारके लेखों पर विचार करना चाहिए और कुछ लिखना चाहिए तथा विद्वानोंको पक्ष या विपक्षमें अपने विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता दीजानी चाहिए। उन्हें अभय दान देना चाहिए कि उनके लेखों तथा विचारोंका उनकी आजीविका पर कोई असर न पड़ेगा। जैनसमाजका हित इसीमें है। लेकिन यहाँ हितकी बात कौन सुनता है?

मैं यहाँ एक बात और लिखना चाहताहूँ। जनता नामोंकी परवाह नहीं करती, वह सच्ची चीज़ चाहती है। वह दिगम्बरत्व, जैनत्व, श्वेताम्बरत्वके पचड़ेमें नहीं पड़ेगी। वह चाहती है खरा सत्य; फिर आप उसे किसी भी नामसे पुकारिये। हमें इस मोहको छोड़ना होगा। सत्य प्राप्त करनेका यह भी एक रास्ता है। जहाँ ममत्व या ठेकेदारीका खयाल आया कि आदमी सत्यसे कोसों दूर हुआ। ममत्व या ठेकेदारीके भावसे तड़प उठनेके और बहुतसे मौके होते हैं, किन्तु सत्यकी खोजमें तो उसे दूर ही रखना होगा।

पण्डित दरबारीलालजी से मेरा अनुरोध है कि वे शान्तिसे अपने काममें लगे रहें। उनके लेखोंका कोई जवाब नहीं देसकता, इस अभिमानमें भी न आयें! कोई मुकाबला करनेवाला नहीं है, इसलिए प्रयत्नमें शिथिल भी न हों। यदि होसके तो लेखमाला को संक्षिप्त करनेका प्रयत्न करें और चैलेंज, उत्तर, प्रत्युत्तर आदि के पचड़ेमें पड़कर अपनी शक्तियों और समयको मुख्य कार्यसे दूसरी तरफ़ न मोड़ें, क्योंकि यह जीवन छोटा है और काम अधिक है। यह आपका सौभाग्य या दुर्भाग्य है कि आप थामस पेनकी परिस्थितिमें नहीं हैं, वरना जैनसमाज तो अपनी परीक्षाप्रधानता, विचारशीलता और अहिंसा आदिको दूर रखकर आपकी अच्छी खबर लेता।

अन्तमें जैनसमाजका कर्तव्य है कि वह रुपयेकी कमीके कारण अपने संतरी और मन्त्री जैनजगत्‌को बन्द न होने दे। अपने संतरियों और मन्त्रियोंको बनाए रखना भी अपनी रक्षाका एक साधन है। मैं तो चाहता हूँ कि जैनसमाज पण्डितजीकी हर प्रकारसे सहायता करे, उन्हें

सब सुभीते दे ताकि वे अपना काम अधिक बेफ़िकरीसे कर सकें। यह काम एक बड़ी खोज (Research) से कम नहीं है।

नोट—लेखमालामें बहुतसी बातें छोड़ी गई हैं और कहीं कहीं संक्षेपभी किया गया है। फिरभी उसका बहुत संक्षिप्त होना ठीक न होगा। विचारणीय सामग्री जितनी रक्खीजाय उतना ही विचारकोंको सुभीता होगा। ऐसी लेखमालाएँ बार बार नहीं लिखी जासकती हैं। कुछ वर्षों बाद क्या हो, यह आज कौन कह सकता है; इसलिये जितनी सामग्री प्रकाशित होजाय उतना ही अच्छा है।

मुझमें अभिमान नहीं है, परन्तु परिस्थिति ऐसी है कि भीतर अभिमान आदि न होने पर भी बाहरसे अभिमान, रोष आदिका प्रदर्शन करना ही पड़ता है। जो लोग मेरे परिचय में आये हैं, वे इस बातको कुछ ठीक समझ सकेंगे। मैं जो चैलेञ्ज वग़ैरह देता हूँ, वह अभिमानसे नहीं किन्तु सत्यकी महत्ताके प्रदर्शनके भावसे देता हूँ। पिछले आन्दोलनोंसे तथा पण्डित प्रकृतिके ज्ञानसे मुझे यह आवश्यक मालूम हुआ है। यदि मैं अपनी अपनी हाँकता जाऊँ और विरोधी मित्रोंकी बातें न सुनूं, उनका उत्तर न दूं तो इससे लेखमालामें संशोधन न होसकेगा, तथा विरोधी मित्र सिर्फ़ इसी बातको लेकर मिथ्यात्व का प्रचार करेंगे कि लेखमालाका लेखक अपनी अपनी हाँकता है, परन्तु लेखमालाको कसौटी पर नहीं कसने देता। अगर मैंने पण्डितोंको थोड़ाभी मौका दिया होता तो इस दिशामें पण्डितोंने खूब ही शोर मचाया होता। हाँ, लेखमालाका जितना भाग प्रति अङ्कमें प्रकाशित होता है उतना तैयार करके ही मैं विरोधी मित्रोंको उत्तर देता हूँ। लेखमालाकी गति रोककर मैं ऐसा नहीं करता। विरोधी मित्रों से जो कुछ कहा जाता है, वह भी प्रायः खोजकी कुछ न कुछ सामग्री लाता ही है। हाँ, अगर कोई विरोधी मित्र कुछ न कुछ लिखते जानेका प्रण ही करले तो मैं उसे तब ही छोड़ूँगा जब उसके वचनोंका मूल्य समाजके सामने कुछभी न रह जायगा अर्थात् जब वह बार बार खण्डित वक्तव्यका पिष्ट पेषण करेगा अथवा अनर्गल प्रलाप करने लगेगा।

कौनसे लेखका कितना उत्तर देना, इसकी भी एक तराजू है जिससे माप कर उत्तर दिया जाता है। विरोधी मित्रके व्यक्तित्व तथा उनके लेखका ज़ोर जैसा होता है उसीके अनुसार शीघ्र या देरीसे संक्षिप्त या विस्तृत उत्तर दिया जाता है।

यह परिस्थिति भी स्थायी नहीं है। वह समय बहुत दूर नहीं है जब मैं इन सबकी उपेक्षा करने लगूँगा। परन्तु उस परिस्थितिमें पहुँचे बिना अभी उसका कोरा गौरव प्रदर्शित करना ठीक न होगा।

इसका यह मतलब नहीं है कि मुझसे भूल नहीं होती, अनावश्यक कार्य नहीं होते, आवश्यक कार्य छूट नहीं जाते या कभी अभिमान आदिका आवेश नहीं आता। शरीरमें मलकी तरह मनुष्यमें ये आत्मिक मल होते ही हैं, और मुझमें हैं। ये नटखटी दोष कुछ अधिक नटखटपन न करें इसलिये इनपर नज़र डालते रहना चाहिये। उसके लिये मैं यथाशक्ति प्रयत्न करता रहता हूँ। श्रीयुत् बाबू माईदयालजीकी सूचनासे इस प्रयत्नको कुछ न कुछ उत्तेजना ही मिलेगी, इसलिये उन्हें मेरा हार्दिक धन्यवाद है।

समाज बाबू माईदयालजीकी सम्मतिका मूल्य करे या न करे परन्तु कमसे कम उसे उनके इन शब्दों पर तो अवश्य ध्यान देना चाहिये कि वह पण्डितोंको विचार स्वातन्त्र्यके लिये अभय दान दे। —सम्पादक।

साहित्य परिचय।

निवापाञ्जलि—स्व० सूरजमल लल्लूभाई जवेरी की यादगारमें थानेगाममें एक उत्सव हुआ था। उसकी यह रिपोर्ट है। रिपोर्टमें स्व० सूरजमल भाईका संक्षिप्त जीवनचरित्र तथा संस्मरण हैं। इसके अतिरिक्त उत्सवमें जो नाटक आदि हुए थे वे भी हैं। आपसे सम्बद्ध व्यक्तियों और संस्थाओंके चित्रभी हैं। सूरजमलभाईसे हमारा भी ठीक ठीक परिचय था। उसपरसे कहा जा सकता है कि वे एक असाधारण पुरुष थे। एक साधारण गृहस्थसे वे अपने पुरुषार्थसे करोड़पति बने थे। इसपर भी उनमें असाधारण सत्यप्रियता थी। भारत, बर्मा और यूरोपमें उनकी एक दर्जन दूकानें थीं। बहुत ही शान्त निरभिमानी उदार और सहनशील व्यक्ति थे। उनकी स्मृतिमें जो उत्सव मनाया गया है, वह उनके योग्यही हुआ है। यह रिपोर्ट गुजरातीमें है और इसमें पठनीय सामग्री भी है। मूल्य पाँच आना। मिलनेका पता—

बालेरा मं० व्या० समिति, दूकान नं० १५८ (सी) न्यू फोरस रोड मुम्बई ७

हम दु:खी क्यों हैं ?—लेखक-श्रीयुत जुगलकिशोरजी मुख्तार। प्रकाशक जैनमित्र मण्डल धर्मपुरा देहली। मूल्य एक आना। अपनी आवश्यकताओंको बढ़ाकर किस तरह हमने अपने जीवनको दु:खी बना लिया है, इस विषयमें बहुतही अच्छा विवेचन है।

मिथ्यात निषेध—लेखक ब्र० शीतलप्रसादजी। प्रकाशक और मूल्य उपर्युक्त। इसका विषय नामसे प्रगट है। अनेक ग्रन्थोंके पद्य उद्धृत करके सम्यग्दर्शनकी भलाइयाँ और मिथ्यात्वकी बुराइयाँ बतलाई हैं।
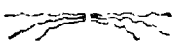
ड्यूटी।

मैगज़ीनके बाहर पहरेदार टहल रहा था। वह चौकस और हुशियार था। उसकी कमरमें कारतूसोंकी पेटी और कंधेपर बन्दूक थी।

रातके दस बजे थे। एक बूढ़ा देहाती फौजी बारकोंमें अपने लड़केको पूछता फिर रहा था। "तीन साल होगए! वह घर नहीं आया, इसकी माँ बहुत चिंतित है।"—उसने कहा।

"सामने मैगज़ीन पर जाइए आज नौ से बाहर तक उसकी ड्यूटी है" किसीने कहा।

बूढ़ा देहाती मैगज़ीनकी तरफ चल दिया।

पहरेदार अबभी टहल रहा था। सामने आदमीको आता देखकर वह ठहरगया। दायाँ हाथ बन्दूक के कुन्दे पर रखकर जोरसे पुकारा:—

"हॉल्ट! हू कम्ज़ देयर ?"* (Halt! who comes there?) बूढ़ा रुक गया। वह न आवाज का मतलब समझा, न उत्तर देसका। फिर जोरसे आवाज आई:—

"हॉल्ट! कौन है ?"

बूढ़ेने अपने बेटेकी आवाज पहचान ली और प्रेमसे चिल्लाता हुआ बढ़कर बोला—"तुम्हारा बाप!"

फायरकी आवाज आई। बूढ़ा भूमिपर गिरकर तड़फने लगा। गारदके सिपाही निकल आये। प्रकाशमें पहरेदारने देखा—उसका बूढ़ा बाप दम तोड़ रहा था। पहरेदारने एक ठण्डा साँस भरकर कहा—'ड्यूटी!'§

अनुवादक—माईदयाल जैन।

* "ठहरो! सामने कौन आता है ?"

§ 'कम्पन' से अनुवादित।

श्रीमती लेखवती जी ऐम० ऐल० सी०।

[लेखक—श्रीमान् बा० माईदयालजी जैन बी०ए० (ऑनर्स) बी० टी०, अम्बाला छावनी]

पिछले वर्ष शिमलानिवासी रायबहादुर लाला मोहनलालजीके देहांतसे पंजाब लेजिस्लेटिव कौंसिलमें एक सीट खाली हुई थी। उसके लिये रायबहादुर ला० पन्नालाल, लाला दुलीचन्दजीके पुत्र श्रीयुत टेकचन्दजी बेरिस्टर और श्रीमती लेखवती जैन (धर्मपत्नी बाबू सुमतिप्रसादजी वकील) खड़ी हुई थीं। सर्व प्रथम महानुभावकी अर्जी किसी गल्तीके कारण रद्द हो गई और श्रीमती लेखवती जी अर्जी उनके स्त्री होनेके कारण रद्द करदी गई; और मिस्टर टेकचन्द बिना मुकाबलेके मेम्बर बनगये। किन्तु लेखवतीजीकी अर्जीका नामंजूर होना स्त्रियोंके अधिकारोंपर एक कुठाराघात था और १९१९ के इण्डिया ऐक्ट (India Act 1919) के विरुद्ध था। इसलिये लेखवतीजीने इसके विरुद्ध (इलेक्शन पिटीशन Election Petition) अर्जी दी और वह स्वीकार होगई। मिस्टर टेकचन्दका चुनाव रद्द किया गया, और क़ानूनके मुताबिक स्त्रीका अधिकार स्वीकार किया गया। यह स्त्रीसमाजकी बड़ी भारी सेवा थी जोकि लेखवतीजीने की। यदि वे प्रयत्न न करतीं तो यह नज़ीर (Precedent) कायम होजाती।

दुबारा चुनावमें श्रीमतीजी फिर खड़ी हुईं और अबकी बार उनका मुक़ाबला एक स्त्रीसे पड़ा। लाहौरकी श्रीमती डॉक्टर दमयंती वाली बी० ए० उनके मुक़ाबलेमें खड़ी हुईं। कुछका ख़याल है कि उन्हें खड़ा करदिया गया। श्रीमती वालीजीका खड़ा होना यद्यपि क़ानूनकी नज़र में ठीक था, किन्तु पंजाबकी बहुत अधिक जनताने इसे अच्छा ख़याल न किया, क्योंकि उनके विचारोंमें यह सीट शिप्टताके नाते लेखवतीजीको ही मिलनी चाहिये थी क्योंकि यह उनकीही कोशिशसे ख़ाली हुई थी।

मुक़ाबला ज़बरदस्त था। लेखवतीजी आर्थिक दृष्टिसे एक साधारण वकीलकी पत्नी, शिक्षामें हिन्दी जाननेवाली (अंगरेज़ी समझ सकती हैं) और प्रेसकी सहायतासे वंचित। उधर डाक्टरनी महोदया, एक धनीकुलकी स्त्री, बी० ए० पास और पंजाबका लगभग समस्त प्रेस उनकी सहायता पर। लेखवतीजी जैन और वालीजी आर्यसमाजी हैं। किन्तु लेखवतीजी कांग्रेसकी कार्यकर्त्री, खद्दरपोश, अत्यन्त साक्षर हैं। वालीजीकी सहायतापर भाई परमानन्द, प्रोफ़ेसर दीवानचन्द, लाला दुनीचंदजी अम्बालवी आदि सभी थे, किन्तु जनताने बहुत अधिक वोटोंसे बहन लेखवतीजीको चुना और वे पंजाब कौंसिलकी सदस्या बनगई हैं।

पंजाबमें आप सर्वप्रथम महिला हैं जो कौंसिलकी सदस्या बनी हैं। शायद सिवाय मद्रास, मध्यप्रांत, और संयुक्त प्रांतके अभी और कहीं कोई महिला मेम्बर बनीभी नहीं है। जैन समाजमें आप सर्वप्रथम महिला हैं जो इतने ऊँचे दरजे पर पहुँची हैं। इसके लिये जैनसमाज जितना चाहे गर्व करसकता है।

श्रीमती लेखवतीजीकी सार्वजनिक सेवाओं का, विशेषकर महिला समाज और कांग्रेससंबंधी सेवाओंका अच्छा रिकार्ड है। आप नौजवान भारत सभा ज़िला अम्बालाकी प्रधान, ज़िला कांग्रेस कमेटी अम्बालाकी उपप्रधान, जैनेन्द्रगुरुकुल पंचकुलाकी उपप्रधान, जनमहिला कान्फ्रेंस पंजाबकी प्रधान और स्त्रीसभा अंबाला की जनरल सेक्रेटरी हैं। आपके लेकचर बड़े ज़ोरदार होते हैं। निर्भीकता और सादगी की आप मूर्ति हैं। आपके पति बाबू सुमतिप्रसाद जी वकील बड़े प्रेमी, मिलनसार और देशभक्त हैं और कई बार जेल जा चुके हैं। हम नहीं समझते कि इस सफलताके लिए किसको बधाई दीजाय—वकील साहबको या लेखवतीजी को? श्रीमतीजीके भाई सहारनपुरमें वकील हैं। मुझे विश्वस्तसूत्रसे मालूम हुआ है कि श्रीमतीके पिताजी प्रसिद्ध समाजसेवी बाबू सूरजभानुजी वकीलके मुंशी थे और कुछ आश्चर्य नहीं यदि बहनजी की इस प्रकारकी शिक्षा दीक्षामें बाबू सूरजभानुजीका अव्यक्त प्रभाव पड़ा हो।

हमें आशा करनी चाहिए कि श्रीमतीजी कौंसिलमें देश और समाजकी उपयुक्त सेवा करेंगी, जिन कारणोंसे आज उन्हें यह सम्मान प्राप्त हुआ है उन्हें न भूलकर आगे देशसेवाके कार्यमें अधिक दत्तचित होंगी पंजाबने उनकी सेवाओंकी उपयुक्त क़दर करदी।

यहाँ मैं जैन समाजसे भी कुछ बातें कहदेना चाहता हूँ। नवीन राजनैतिक विधानमें मर्दों और स्त्रियोंको राजनैतिक कामोंमें भागलेनेका काफ़ी मौक़ा मिलेगा। यदि जैनी समाजसेवा करें, देशसेवा करें और त्याग करें तो कोई कारण नहीं कि उन्हें राजनैतिक मामलोंमें दख़ल न हो। पारसी लोगोंका समुदाय अपनी विद्या, बुद्धि, और सेवाओंके बल पर ही एक अनुपेक्षणीय तथा महत्वपूर्ण समाज बना हुआ है। जैनसमाजमें कुछ व्यक्ति कभी कभी सीटें नियत कराने (Reservation of seats) की धुन अलापा करते हैं। मैं यह कहदेना चाहता हूँ कि इससे

अधिक घातक और कोई पॉलिसी नहीं हो सकती। वह तो निकम्मों कायरों और नाक़ाबिल आदमियोंके लिए ठीक होती है। उसमें योग्यता, सेवा और पब्लिक इच्छाको स्थान नहीं होता। इस इलेक्शनसे दो तीन बातें प्रकट हो गईं। एक तो यह कि वोटर धर्म, सम्प्रदाय, धन, शिक्षा आदिकी अपेक्षा योग्यता, हक और अपने अधिकारोंकी रक्षा चाहते हैं। वे नहीं परवाह करते कि खड़ा होने वाला जैन है, आर्यसमाजी है या किसी और धर्मका आदमी है, धनी या ग़रीब है। इसलिए मेरा विश्वास है कि यदि जैनी अपनी सार्वजनिक सेवाओंसे जनतामें मान्य बनें तो वे चुनावमें पीछे नहीं रह सकते। दूसरे, पंजाब के दिगम्बर, श्वेताम्बर और स्थानकवासी भाई सभीने दिलसे लेखवतीजीके लिए सिरतोड़ कोशिश की। वे भूल गये कि श्रीमतीजी किस सम्प्रदाय की हैं। क्या हम इसीप्रकार शिक्षा, राजनीति समाज सुधार, मन्दिर सुधार, साधु सुधार आदि कामोंमें नहीं मिल सकते? तीसरी बात यह है कि जैन समाज को स्त्रियोंकी शिक्षा आदिका अच्छा प्रबन्ध करना चाहिए ताकि वे ऐसे कामोंमें अधिक भाग ले सकें। सुविधाएँ देने पर स्त्रियाँ क्यासे क्या बन सकती हैं, यह बात आज बतानेकी विशेष आवश्यकता नहीं है।

क्या जैन समाज इस घटनासे कुछ शिक्षा ग्रहण करे?
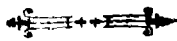
मुक्ता-माला

आगे बढ़ो, तनिक ठहरो मत,
चलो-चलो हाँ सबके साथ।
यदि वे जाते बढ़े कुपथ में,
तब तुम छोड़ो उनका हाथ॥
हटकर बढ़ो बुलाओ उनको
करो भव्य पथका निर्माण।
किन्तु न ठहरो क्योंकि ठहरना
तुम्हें बना देगा निष्प्राण॥१॥

अहो! तुम्हारा पिछला जीवन
कितना बुरा निकृष्ट महान।
बंधु! नहीं यह भयका कारण
इसपर दो न तनिक तुम ध्यान॥
यदि अगले जीवन को तुम
सुधार सकते बन कर सज्ञान।
तबतो अखिल विश्वमें मेरे
प्यारे! तुम हो महा महान॥२॥

यदि महान उद्देश्य मध्य
चाहते सफलता सिद्धिपवित्र।
तो महान स्वार्थोंका करना
होगा त्याग तुम्हे हे मित्र।
और! प्राप्त करना है प्रिय!
जितना ऊँचा स्थान तुम्हें।
प्रथम बनाना होगा उतना
ही ऊँचा सोपान तुम्हें॥३॥

जिसके पाने योग्य नहीं हो
अभी उसे चाहो मत तुम।
करो शक्ति-बल संचय और
बढ़ालो निज सत्ता गुरुतम॥
अधिकारी बन कर उस पर तुम
प्रथम प्राप्त करलो अधिकार।
होने पर अधिकार स्वयं वह
आएगा दौड़ा साकार॥४॥

व्यक्ति मात्र धन वैभव सत्ता
से क्यों हो न पूर्ण संपन्न।
नहीं तुम्हें यह आवश्यक है,
मनुजों का मन करो प्रसन्न॥

अन्तरात्मा को प्रसन्न
करना समझो आवश्यक कार्य ।
अन्तरात्मा की प्रसन्नता ही
है राज मार्ग हे आर्य ॥५
विपदाओं का अनुभव करना
हो न मनुज का प्रकृत स्वभाव ।
किन्तु सामहने आने पर दिखलाना
अपना आत्म प्रभाव ॥
योद्धाओं की तरह दुःख का
कर सामहना बन दृढ़तर ।
दे उसको चैलेञ्ज सामहने
आने का हो धीर निडर ॥६
—"वत्सल" विद्यारत्न ।

नसीराबादमें चन्द्रसागरजीका नग्न तांडव ।

अजमेरमें चन्द्रसागरजी बहुत कुछ सम्हले हुए थे. परन्तु वहाँ से रवाना होते ही वे फिर अपने पुराने ढंग पर आ गये । नसीराबादमें आकर उन्होंने जनताको लोहड़साजनोंके खिलाफ़ खुल्लमखुल्ला भड़काना शुरू किया । आपका कहना है कि लोहड़साजन दस्सोंसे भी हीन हैं, उन्हें छूना भी पाप है ! अगर कोई आपसे इस सम्बन्धमें कुछ प्रमाण बताने के लिये कहता है तो आप कड़क कर कहते हैं—"क्या प्रमाण माँगते हो ? मैं तुम्हारा गुरु स्वयं प्रमाण (शास्त्र) मौजूद हूँ ! क्या तुम गुरुका कहना नहीं मानते ?" आपने यह नियम कर रखा है कि जो व्यक्ति लोहड़साजनोंके साथ खानपान करनेका आजन्म त्याग करे, वही मुनिको आहार देसकता है । किसीके यह पूछने पर कि आचार्य शान्तिसागरजी तो लोहड़साजनोंके यहाँ आहार लेते हैं, उन्हें मुनि समझा जाय या नहीं ? आपने कहा कि—दक्षिणसे दस्सा आदि नीच जातियोंके व्यक्ति मुनि बनकर यहाँ आगये हैं । इधरके लोग उनकी जातिसे परिचित न होनेके कारण अज्ञानतावश उन्हें पूजते हैं; वे मुनिपद के अधिकारी नहीं हैं ! मज़ा यह है कि चन्द्रसागरजी कई वर्षतक श्री शान्तिसागर संघमें रहे हैं तथा शांतिसागरजीको, जिनकी तरफ़ उनका इशारा था, आचार्य तथा गुरु मानते रहे हैं । यद्यपि यह सत्य है कि शांतिसागरजी उस जातिके हैं जिसमें विधवाविवाह (नाता) व तलाक़ आमतौर पर प्रचलित है और इस तरह वे दस्सोंसे उच्च नहीं कहे जासकते, किन्तु प्रश्न यह है कि चन्द्रसागरजीने अबतक जानते बूझते हुए क्यों मौन धारण कर रखा था ? पंडितोंने शांतिसागरजी की जाति छुपाकर जनताको धोखेमें रखनेका जो मायाजाल रचा उसमें वे क्यों सम्मिलित हुए ?

चन्द्रसागरजीके अत्याचारसे तंग आकर नसीराबादस्थित लोहड़साजनोंने खण्डेलवाल महासभाके महामन्त्री श्रीमान माणिकचन्दजी बैनाड़ा को तार द्वारा परिस्थिति सूचित की । दो तार देने पर महामन्त्रीजीने नसीराबाद निवासी श्रीमान सेठ गजमलजी सेठी व सेठ ताराचन्दजी सेठीसे तार द्वारा परिस्थिति दरयाफ़्तकी और आग्रह किया कि वे चन्द्रसागरजीको निवेदन करें कि खण्डेलवाल महासभा द्वारा निर्णय होने तक लोहड़साजन सम्बन्धी आन्दोलन बन्द रखें । तदनुसार यहाँ के प्रतिष्ठित व्यक्तियोंका एक डेपुटेशन चन्द्रसागरजीके पास गया और चर्चा प्रारम्भ हुई ही थी कि चन्द्रसागरजी एकाएक बिना कुछ कहे सुने कमण्डलु उठाकर आहारके लिये चल दिये । उक्त महानुभावों ने समाजहितको खयालकर इस अपमानको धीरतापूर्वक सहन कर लिया । उनमेंसे कुछ व्यक्ति बादमें चन्द्रसागरजीके पास फिर गये और महामंत्रीजीके तारका जिकर किया तो चन्द्रसागरजी उत्तेजित होकर बोले—महासभा कौन होती है ? मैं स्वयं महासभा हूँ । पण्डितोंका क्या विश्वास ? सौ दो सौ रुपया खाकर वे लोहड़साजनोंके साथ मिल जावेंगे !

इन दिनों यहाँ पूजनविधान उत्सव हुवा था । चंद्रसागरजी चाहते थे कि लोहड़साजनोंको पूजा

प्रक्षाल नहीं करने दिया जाय, तथा यदि वे पूजा-प्रक्षाल करें तो उन्हें जबरन रोका जाय। उन्होंने इसके लिये अपने भक्तोंको खूब भड़काया लेकिन सब व्यर्थ रहा और लोहड़साजन सदाकी भाँति पूजा-प्रक्षाल करते रहे। हाँ, खिसियाहटके मारे चन्द्रसागरजी पूजामें शरीक नहीं होते थे।

एकरोज़ ७-८ बालकों का जनेऊ-संस्कार कराया गया। बालक ५ वर्षसे १२ वर्षकी अवस्था तकके थे। एक बालकने तो जनेऊ लेते समय वहींपर रँगे हुए कपड़ोंमें ही पेशाब कर दिया! एक श्रावकने इस पर चन्द्रसागरजीसे निवेदन किया कि—महाराज, इतने छोटे बच्चोंको जनेऊ नहीं देना चाहिये; तो चन्द्रसागरजी उत्तेजित होकर बोले—"जो बच्चा आज जनेऊ लेते समय मूत रहा है, वही कल तेरे मुँहमें मूतने लायक़ हो जावेगा!" अच्छा हुआ जो उस श्रावकने यह सुनकर अपने आपको बहुत शान्त रक्खा, वरना यदि उत्तमक्षमाधारी (!) मुनिजीके समान वहभी उत्तेजित होजाता तो न मालूम क्या अनर्थ होता!

चन्द्रसागरजीके साथके और साधु उनकी इन हरकतोंको अनुचित समझते हैं लेकिन लोक-लज्जा तथा नैतिक दुर्बलताके कारण चुप हैं। ज्ञानसागरजी ने स्पष्टही कहदिया था कि हमें न शूद्र-जल त्यागसे। मतलब है, न लोहड़साजनोंके साथ खानपानत्याग से। एक रोज़ ज्ञानसागरजी आहारके लिये गयेतो एक श्रावकने प्रतिग्रहके समय चन्द्रसागरजीके नौकर के कहनेसे इनके समक्ष भी यह कह दिया कि—महाराज, मेरे शूद्रजलका त्याग है, लोहड़साजनोंके साथ खानपान करनेका त्याग है आदि। इसपर ज्ञान सागरजी अन्तराय मानकर वापिस लौट आये और उक्त नौकरसे बोले—हमारे लिये लोहड़साजन व बड़साजन सब समान हैं। तुम्हें क्या मतलब है जो तुम श्रावकोंको व्यर्थ उलटा सीधा बहकाते हो? ज्ञानसागरजी, चन्द्रसागरजीसे क्षुब्ध तो पहिलेसे ही थे; उन्हें अब चन्द्रसागरजीकी लीलाएँ असह्य मालूम होने लगीं और उन्होंने निराहारही नसीराबाद से अकेले विहार कर दिया।

केकड़ी निवासी वयोवृद्ध पण्डित धन्नालालजी पाटणी व पण्डित मिलापचंदजी कटारियाने नसीराबादके कतिपय पंचोंके नाम एक चिट्ठी लिखी जिसमें उन्होंने लोहड़साजनोंके प्रश्नपर समुचित प्रकाश डालते हुए उन्हें विवेकसे काम लेनेका आग्रह किया था। उक्त चिट्ठी छपाकर प्रकाशित कीगई जिससे नसीराबादके अलावा और स्थानोंके भाइयोंको भी मामले की असलियतसे वाक़फ़ियत हो और वे चन्द्रसागर जीके बहकानेमें न आवें। इसके अलावा श्रीयुत ताराचन्दजी दोसीकी ओरसे "हठग्राही मुनि चंद्रसागरजीसे सावधान" शीर्षक पर्चा भी प्रकाशित हुवा था। चन्द्रसागरजी इन पर्चोंको देखकर बहुत भड़के और अंडबंड बकने लगे, यहाँ तक कि लेखक के प्रति चांडाल आदि अपशब्दोंका प्रयोग किया।

शान्तिसागरसंघ जब बीरसे ड्योढ़ि जारहा था तो नसीराबादके कुछ श्रावक शान्तिसागरजीके पास गये और उनसे नसीराबाद पधारनेके लिये आग्रह किया। शान्तिसागरजी बोले—"इससमय चन्द्रसागर के कारण तुम्हारे यहाँ वातावरण अत्यन्त कलुषित हो रहा है तथा परस्पर द्वेष फैल रहा है। इससमय हमारा वहाँ जाना योग्य नहीं।" लोहड़साजनोंसे उन्होंने कहा—"तुम्हें निडर हो सब कार्य सदाकी भाँति करते रहना चाहिये। धर्म सेवनमें पीछे मत रहना—यही हमारा कहना है।" चन्द्रसागरजीको जब यह बात मालूम हुई तो आपने उन्हें द्वीपायन मुनि बताते हुए उनका खूब मखौल उड़ाया।

मिती पौष कृष्णा १२ को रथयात्रा निकलने वाली थी। चन्द्रसागरजी चाहते थे कि रथयात्रा निकले किन्तु लोहड़साजनोंको न रथपर बैठने दिया जाय, न उन्हें चँवर छूने दिया जाय। इधर और लोग रथयात्रा निकालनेमें सहमत थे, किन्तु उन्हें लोहड़साजनोंके सम्बन्धमें किसी प्रकारका प्रतिबंध लगाना किसी तरह भी मंजूर नहीं था। इस मामले

में बहुत खींचातानी हुई परन्तु आपसमें कोई समझौता नहीं हो सका और फलस्वरूप रथयात्रा बन्द रही। चन्द्रसागरजी श्रावकोंको भड़कानेके लिये कहते थे—रथ निकलेगा और अवश्य निकलेगा। चाहे संरावगी मरें, चाहे मुनि मरे, लेकिन रथ निकलेगा! चन्द्रसागरजीकी उस दिन बहुत किरकिरी हुई। लोगों ने उनके मुँहपर ही धिक्कारा। लोग कहते थे—तुम अपने आप हमारे गुरु बनकर, हमें गुरुका (अपना) कहना माननेके लिये आग्रह करते हो, परन्तु तुम स्वयं तो गुरुविद्रोही हो तथा गुरुकी निन्दा करते हो! मुनि होकर झूठ बोलते तुम्हें शर्म नहीं आती!

नसीराबाद छोटासा क़स्बा है परन्तु चन्द्रसागरजी लोहड़साजनोंके खिलाफ़ प्रोपैगैण्डा करनेके लिये यहाँ लगातार १४ दिन तक ठहरे रहे। शायद वे कुछ दिन और ठहरते किन्तु पौष कृष्णा १२ वाली घटनासे वे अत्यन्त खिन्न होगये और पौष कृष्णा १३ को सायंकाल डेराँठू चलदिये।

श्रीमान माणिकचन्दजी वैनाड़ाके तारके उत्तरमें श्रीमान सेठ राजमलजी सेठीने ता० ९ दिसम्बरको तार द्वारा यहाँकी पूर्ण परिस्थिति सूचित करदी थी; साथ ही जिस प्रकार चन्द्रसागरजीने नसीराबादके प्रतिष्ठित व्यक्तियोंकी अवहेलनाकी थी तथा महासभा को गालियाँ दी थी, उसका भी उल्लेख कर दिया था। खेद है कि इस पर महामन्त्रीजीने कोई कार्यवाही नहीं की। चन्द्रसागरजी खंडेलवाल समाजमें भीषण कलहाग्नि प्रज्वलित करनेका सूत्रपात्र कर रहे हैं। लोहड़साजनोंका काफ़ी बड़ा समुदाय है तथा कई प्रतिष्ठित बड़साजनोंके वैवाहिकसम्बन्ध लोहड़साजनोंके साथ हुए हैं। दोनों समुदाय आपसमें गुँथे हुए हैं। अगर चन्द्रसागरजीके कथनानुसार लोहड़साजन वास्तवमें दस्सा हैं तो निःसंदेह लोहड़साजनोंसे सम्बन्धित सभी बड़साजन भी दस्सा समझे जाने चाहियें! चन्द्रसागरजीके आन्दोलन का यह आवश्यक निष्कर्ष है। इसका परिणाम कितना घातक होगा, यह सहजही अनुमान किया जा सकता है। खंडेलवाल समाजके नेताओंका कर्तव्य है कि वे शीघ्र इस सम्बन्धमें उचित कार्यवाही करें। चन्द्रसागरजी मुनिवेषी हैं तथा वे गुरु कहलाते हैं,—केवल इसीलिये उन्हें मनमानी करने व समाजमें कलह पैदा करनेका कोई अधिकार नहीं है। अगर कोई गुरु कहलाने वाला व्यक्ति अपने व्यक्तिगत विद्वेष की पूर्ति के लिये अथवा मूर्खतावश समाजकी शान्तिको खतरे में डालता है तो "दोगः वाच्या गुरोरपि" की नीतिके अनुसार श्रावकोंका कर्तव्य है कि वे उसका उचित इलाज करें।

मिती पौष कृष्णा १३ को भादवा निवासी श्रीमान पं० सत्यंधरकुमारजी सेठी यहाँ आये और उन्होंने चन्द्रसागरजीके समक्ष घोषित कियाकि जो व्यक्ति लोहड़साजनोंको दस्सा बताता है उसके साथ मैं विवाद करनेको तैयार हूँ। चंद्रसागरजी मुनिवेष धारण करते हुएभी जो इस आन्दोलनके सूत्रधार बने हुए हैं, और इस तरह मुनिपदको कलंकित कर रहे हैं, इसके लिये उन्होंने खरी आलोचनाकी। भक्त-मंडली झुँझला रहीथी लेकिन मुक़ाबिला करने का किसीका साहस नहीं हुआ।

चंद्रसागरजी शेखी बघारतेथे कि मैं जहाँ कहीं जाता हूँ, सर्वत्र मेरी विजयही होती है। यहाँ उनकी कैसी पराजय हुई, किस प्रकार उन्हें मुँहकी खानी पड़ी, यह उनका जी जानता होगा।

पंडित मंडलीने जैनजगतको मुनिनिंदक बताकर उसका बहिष्कार करानेकी चेष्टाकी थी। कहतेथे—जैनजगतको पढ़ना पाप है; उसको छूनेपर मिट्टीसे हाथ धोना चाहिये! आज मुनिवेषी चंद्रसागरजी स्वयं मुनिनिंदा तथा गुरु-निंदा कर रहे हैं। वे भरी सभामें शान्तिसागरजीको दस्सोंसे भी हीन बताते हैं, तथा उनके लिये कहते हैं कि—"शान्तिसागर मेरा गुरु नहीं है, वह तो लोहड़साजनोंका गुरु है"! पंडितमंडली क्यों चुप है? वह इनका बहिष्कार क्यों नहीं करती?

चंद्रसागरजी अजमेरमें लगातार पाँच महीने तक रहे परन्तु वहाँ वे निःसंकोच श्रीमान रायबहादुर सेठ टीकमचन्दजी, श्रीमान डॉक्टर गुलाबचंदजी पाटणी के यहाँ (जिनका लोहड़साजनोंसे सम्बन्धित व्यक्तियोंसे वैवाहिक व खानपान सम्बंध

है) आहार लेते रहे। वहाँ उन्होंने भूलकरभी लोहड़साजनोंके सम्बन्धमें कोई चर्चा नहींकी। नसीराबाद व आसपासके गाँवोंमें लोहड़साजनोंके काफी घर हैं। चन्द्रसागरजी समझे हुएथे कि नसीराबाद में विजय प्राप्त कर मैं सहजही समस्त खंडेलवाल समाज से लोहड़साजनोंका सम्बन्धविच्छेद करा दूँगा। लेकिन उनके हौंसले यहीं ठंडे होगये। वयोवृद्ध श्रीमान् लक्ष्मीचन्दजी सेठी, सेठ राजमलजी सेठी, सेठ ताराचन्दजी सेठी, सेठ चौथमलजी चाँदमलजी गदिया व अन्य महानुभावोंने जिस प्रकार धर्मज्ञता, न्यायतत्परता, विवेक व साहसका परिचय देकर बढ़ती हुई विद्वेषाग्निको प्रारम्भमें ही शान्त करदिया, इसके लिये वे केवल लोहड़साजनोंके ही नहीं किन्तु समस्त खंडेलवाल जैनसमाजके धन्यवादके पात्र हैं। अगर उन्होंने अंध-भक्तों की तरह चन्द्रसागरजीके सामने सिर झुकादिया होता तो इसका परिणाम समस्त खंडेलवाल समाजके लिये कितना घातक होता, यह अनुमान करना कठिन नहीं है। यहाँ दो शब्द अजमेर निवासी श्रीमान् रायबहादुर सेठ टीकमचन्दजीके विषयमें भी कहना अनुचित नहीं होगा। खंडेलवाल महासभाकी जिस सबकमेटीने लोहड़साजनोंके सम्बन्धमें यह निर्णय दियाथा कि—

"विचार करने और प्रमाण देखने से पता लगता है कि लोहड़साजन दस्सा नहीं हैं। इनके साथ बीसों का रोटीव्यवहार (कच्ची-पक्की दोनों का) शामिल है। पूजन प्रक्षाल मुनि आहारदानादिमें भी कुछ रुकावट नहीं है।"

उसके आप सदस्यथे। अलीगढ़ निवासी श्रीमान चन्दालालजी बैदके पुत्र ललितकुमारजीका विवाह कुंदरकी निवासी श्रीमान् चाँदबिहारीजी सोनी (लोहड़साजन) की पुत्रीसे हुवा है तथा इन्हीं श्रीमान चंदालालजी बैदकी पुत्रीके साथ आपके स्वर्गीय पुत्र श्रीमान दुलीचन्दजीका विवाह हुवा है। अतः यदि चन्द्रसागरजीके कथनानुसार लोहड़साजन दस्सा हैं, तो इस आँचसे आपभी तो नहीं बच सकते। उपरोक्त दोनों कारणोंसे श्रीमान् रायबहादुर सेठ टीकमचन्दजीका कर्त्तव्यथा कि वे चन्द्रसागरजीको समझाकर उन्हें सुमार्ग पर लाते। परन्तु वे अकर्मण्यताका अनुसरण करते हुए चुपचाप मुनिजीकी लीलाएँ देखते रहे। श्रीमानोंकी विवेकहीनताके कारण ही स्वार्थसाधुओंके हौंसले बढ़ रहे हैं और उन्होंने समाजमें अंधेर मचा रक्खा है। —संवाददाता।

(पृष्ठ २ से आगे)

प्रसंगवश कहना पड़ता है कि श्रीमान् बा० हेमचन्द्र जी सोगाणी बी० एससी० एलएल बी० वकील के घरके पाससे निकलते हुए इन्हीं कुन्थसागरजीने उन्हें आवाज देकर यह कहा था कि—आप हमारे पास आइये और हमारा कान पकड़कर हमें हमारी गलती बताइये। इन्हीं कुन्थसागरजीके मुँहसे जब पात्रतासम्बन्धी अड़ंगेकी बात सुनी तो बहुत आश्चर्य हुआ। खैर, इसपर मैंनेकहा—"जनाब, आप तो पानी पीकर जाति पूछनेकी कहावतको चरितार्थ कर रहे हैं। अगर उत्तर देनेके लिये प्रश्नकर्ताकी पात्रता देखना आवश्यक है, तो आपको इसके लिये प्रारम्भमें ही सावधान रहना चाहिये था। हम आपके प्रश्नोंका उत्तर अवश्य देंगे, किन्तु बादमें: हमारे प्रश्न समाप्त होजाने पर। अभी बीचमें इन प्रश्नोंको छेड़कर आपको बात टालने नहीं देंगे।"

पंडितमंडलीने शांतिसागरजीकी जातिको छुपाने के लिये उन्हें पाटील आदि बताकर जो मायाचार किया, उसका भंडाफोड़ होगया है। शांतिसागरजी अपनी जाति चतुर्थ स्वीकार करते हैं तथा उस जाति में विधवाविवाह व तलाक़का रिवाज भी स्वीकार करते हैं। उनका यह कहना कि, तलाक़ व विधवाविवाह करनेवाले व्यक्ति पूजा प्रक्षाल नहीं करते, मुनिको आहारदान नहीं देते आदि—साफ़ ही ग़लत मालूम होता है। जब विधवाविवाह करनेवाले व्यक्ति जातिसे बहिष्कृत नहीं किये जाते तथा उनसे परस्पर खानपान, बेटीव्यवहार आदि होते हैं, तब उनसे किसी प्रकारका भेदभाव कैसे सम्भव हो सकता है ? इसके अतिरिक्त स्वयं शांतिसागरजीने विधवाविवाह करनेवाले अमुक अमुक व्यक्तियोंके हाथसे आहार लिया, यह पहिले सप्रमाण प्रकाशित हो चुका है। (अपूर्ण) —फतहचंद सेठी।

Printed by Pt. Radhaballabh Sharma at the Ajmer Printing Works Ajmer.

तार का पता—"JAINJAGAT" Ajmer. Reg. No. N 352.

१ व १६ जनवरी सन् १९२६

वर्ष १ अंक ४,५

जैनसमाज का एकमात्र स्वतन्त्र पाक्षिकपत्र।

जैन जगत्

वार्षिक मूल्य ३) रुपया मात्र।

विद्यार्थियों व संस्थाओं से २॥) मात्र।

(प्रत्येक अंग्रेजी महीने की पहली और सोलहवीं तारीखको प्रकाशित होता है)

"पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनम् यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः"॥—श्रीहरिभद्रसूरि।

सम्पादक—सा०र० दरबारीलाल न्यायतीर्थ, जुबिलीबाग तारदेव, बम्बई।

प्रकाशक—फतहचंद सेठी, अजमेर।

प्राप्ति स्वीकार।

जैनजगत्के लिये निम्नलिखितप्रकार सहायता प्राप्त हुई है:—

१०) श्रीमान बा० पंचमलालजी रिटायर्ड तहसीलदार जबलपुर।
४) श्रीमान किस्तूरचन्दजी घीवाले जयपुर, (माता के स्वर्गवासके अवसर पर)।
५) श्रीमान गेंदीलालजी सोहनलालजी सोगाणी जयपुर (पुत्रीके विवाहोत्सव पर)।
१०) श्री. मुंतजिमबहादुर जौहरीलालजी मीतल इन्दौर।
७) श्री० रायबहादुर बा० बसंतलालजी एडवोकेट। मुरादाबाद (पुत्रके विवाहके उपलक्षमें)
५) श्री० बा० मोतीलालजी पहाड्या कुनाड़ी कोटा
४) श्री० सेठ पूनमचन्दजी बज कोटा।

संचालकगण इस उदारताके लिये उपरोक्त महानुभावोंके आभारी हैं। —प्रकाशक।

क्षमाप्रार्थना।

करीब दो हफ्ते अंकसमें रहने तथा बादमें अपने घरू काम व पारवारिक झंझटोंमें फँस जानेके कारण विवश होकर इस अंक को इस रूपमें प्रकाशित करना पड़ा है। पाठकोंको जो प्रतीक्षाजन्य कष्ट उठाना पड़ा है उसके लिये हम क्षमाप्रार्थी हैं। अत्यधिक देरी हो जानेके कारण पृष्ठसंख्यामें कमी कीगई है, किन्तु आगे यथावसर उसकी पूर्ति करदी जावेगी। —प्रकाशक।

चन्द्रसागर लीला—मुनिवेषी चन्द्रसागरजी ने लोहड़साजनोंके खिलाफ़ जो आन्दोलन उठाया है, वह नित्य नये रूप ग्रहण कर रहा है। अजमेर में लगातार पाँच महीने तक रहने पर भी उन्होंने वहाँ इस सम्बन्धमें एक शब्द भी मुँहसे नहीं निकाला और निःसंकोच लोहड़साजनोंके साथी व्यक्तियोंके यहाँ आहार लेते रहे। नसीराबादमें पहिले पहिल लोहड़साजनोंके यहाँ आहार लेनेसे इनकार किया, बादमें लोहड़साजनोंसे खानपान सम्बन्ध रखने वाले व्यक्तियों का विरोध शुरू हुवा। अर्थात जिसने लोहड़साजनोंसे खानपान करनेका त्याग नहीं किया, उसके यहाँ आहार नहीं लिया और दरवाजे परसे वापिस लौट आये। नसीराबादमें जब इनकी दाल न गली तो बीरमें आकर उन्होंने अब नया रुख पलटा है। अब आप लोहड़साजनोंके साथ साथ उनसे खानपान करने वाले व्यक्तियोंका भी

बहिष्कार कराते हैं। अब उनके भक्तोंको यह प्रतिज्ञा करनी पड़ती है कि मेरे लोहड़साजनोंके साथ खान पान करनेके त्याग हैं तथा लोहड़साजनोंके साथ खानपान करने वाले अमुक अमुक व्यक्तियोंके साथ खानपान करनेके भी त्याग हैं ! इसतरह इसप्रान्तमें खण्डेलवाल समाजमें भीषण कलहाग्नि प्रज्वलितकी जारही है। लोहड़साजनोंके साथ खानपान करने वाले व्यक्तियोंको जातिबहिष्कृत करानेके प्रयत्न किये जारहे हैं। खण्डेलवाल महासभा व उसके मुखपत्र खण्डेलवाल जैनहितेच्छुको इस ओर दृष्टिपात करनेका भी अवकाश नहीं है। कई तार व चिट्ठियाँ देनेपर भी अभी तक उनकी निद्रा भङ्ग नहीं हुई है। इधर खण्डेलवाल समाजके कर्णधार कहे जानेवाले श्रीमान् रायबहादुर सेठ टीकमचन्दजी, जिन्होंने यह लिखित सम्मति दे रखी है कि—"लोहड़साजन दस्सा नहीं हैं, उनके साथ कच्ची व पक्की रोटी व्यवहार तथा पूजा प्रक्षाल व मुनि आहारदानादि में कोई रुकावट नहीं है," तथा जो लोहड़साजनोंसे सम्बन्धित व्यक्तियोंसे सम्बन्धित हैं, कार्यरूपमें स्वयं अपने लिखनेके विरुद्ध प्रवर्तन कर रहे हैं तथा खुल्लमखुल्ला चन्द्रसागरजीको उक्त आन्दोलनमें सहायता देरहे हैं। ऐसे मुखियाओं (?) की बातका समाज क्या मूल्य करसकती है ?

ता० २८ दिसम्बरको नसीराबादमें लोहड़साजनविरोधी दलकी ओरसे रथयात्रा हुई। नसीराबादके प्रतिष्ठित व्यक्ति श्रीमान सेठ ताराचन्दजी सेठी, सेठ राजमलजी सेठी, बाबू हीरालालजी वकील, आदिके जमानत मुचलके करालियेगये थे। नसीराबादके इनेगिने श्रावक साथमें थे, अतः प्रयत्न कर अजमेर, डेराठू व बीरसे खास तौरसे चन्द्रसागर-भक्तोंको बुलवाया गया था। रथ मन्दिरसे कुछ ही दूर आगे बढ़ा था कि स्वयं प्रतिमाजी नीचे आगिरीं ! डेराठूके रतनलालजी बाकलीवाल रथमें बैठे थे। वे भी ज़मीन पर नीचे गिरगये ! इस दैविक दुर्घटनाका दुराग्रहियोंके चित्तपर कुछ असर नहीं हुवा और वे अपनी हठपर अड़े ही रहे। राहमें फिर कई बार पहिये रथसे अलग होगये। नसीराबादसे कुछ ही दूर चन्द्रसागरजी रथयात्रामें शरीक होनेकी आशामें बैठे थे किन्तु जब उन्हें इजाजत न मिली तो मुँह लटकाकर दूसरे गाँवको चलदिये। —संवाददाता।

मुनिकलंक मुनींद्रसागर—के सम्बंध में बाबई (होशंगाबाद) से श्रीमान् बाबूलालजी डेरिया लिखते हैं—"मुनींद्रसागर बैतूल, इटारसी होता हुआ चार मुनिवेषियों, दो स्त्रियों (इनमें एक अपनेको अर्जिका बताती है) तीन नौकरों व कई गाड़ियों सहित यहाँ आया। इनके पास सिगड़ी, लालटेन, घड़ी, तम्बू डेरे आदि इतना अधिक सामान था कि जिसमें बीस पच्चीस आदमी आसानी से गुजर कर सकें। प्रत्येक मुनि के लिये अलग अलग गाड़ी थी जिसमें वे खुदही सामान रखते थे और उतारते थे। ये लोग कभी सामायिक नहीं करते। पूछने पर कहते हैं कि यह तो बाहिरी दिखाऊ ढंग है। जहाँ इनकी सेविका जिनमती बाई पहुँच जाती है, मुनींद्रसागरजी उसी व्यक्तिके यहाँ आहार लेते हैं। आहारके उपलक्षमें श्रावक जो दान देता है, उसे आप स्वयं लेते हैं। आप भक्तोंको गंडा, तावीज़ आदि बनाकर देते हैं। मुनिलोग आपसमें माँ, बहिनकी गालियाँ तक देते हैं ! कहाँ तक लिखें ! कौन कौन गुण गावें प्रभुजीके ! एकभी बात मुनिक्रियाके अनुकूल नहीं है।"

इटारसीमें बैतूलके एक प्रतिष्ठित महानुभावने हमें कहा कि बैतूलमें मुनींद्रसागरने स्वयं अपने हाथसे अपने साथकी एक स्त्रीके ज़बर्दस्ती ज़ेवर उतारे और उसके ऐतराज़ करनेपर उसे इतनी निर्दयतापूर्वक मारा कि देखने वालों तकका दिल हिल गया। जैनी लोग नपुंसकोंकी तरह यह काण्ड देखते रहे और कुछ न बोले। मुनींद्रसागर कितना अधम व पतित है, यह जैनजगत्‌के पाठकोंसे छिपा नहीं है। जहाँ कहीं वह जाता है, लोग उसकी हरकतोंको देखकर कुढ़ते हैं परन्तु कायरतावश यह कहकर कि–हमही क्यों बदनामी लें ? यहाँसे इसे कालामुँह करने दो, यह जैसा करेगा वैसा भरेगा—अपनी आँखें मूँद लेते हैं और चुप हो रहते हैं। इसी मनोवृत्तिके कारण यह अभीतक समाजकी छातीपर मूँग दल रहा है और खूब गुलछर्रे उड़ारहा है। अगर समाजमें कुछभी जीवन होता तो आज यह धूर्त जेलखानेकी हवा खारहा होता।

—प्रकाशक।

जैनधर्म का मर्म ।

(३९)

परीक्षा का ढंग—प्रथमानुयोग इतिहास नहीं है, फिरभी उसमें इतिहासकी सामग्री कभी कभी मिलजाती है। उस सामग्रीको खोजनेके लिये पूर्ण निष्पक्षताकी जरूरत होती है। साथही कठोर परीक्षण करना पड़ता है।

वचनकी सत्यताकी जाँच करनेके लिये यह देखना पड़ता है कि वह आप्तका वचन है या नहीं? असत्यता के दो कारण हैं, अज्ञान और कषाय। जिसमें ये दो कारण न हों, वह आप्त कहलाता है। यह आवश्यक नहीं है कि उसमें अज्ञान और कषायका पूर्ण अभाव हो। सिर्फ इतना देखना चाहिये कि जो बात वह कहरहा है, उस विषय में वह अज्ञानी या कषायी तो नहीं है। यदि दो में से एकभी कारण वहाँ सिद्ध होजाय तो उस कथाको इतिहास नहीं कहसकते। जैसे समन्तभद्रके विषयमें यह प्रसिद्ध है कि वे आगामी उत्सर्पिणी कालमें तीर्थंकर* होंगे। जिसने यह बात कही है, उसमें अज्ञान दोष है। क्योंकि कौन मनुष्य मरनेके बाद क्या होगा, इस विषयका वक्तव्य ऐतिहासिक जगत में प्रामाणिक नहीं माना जासकता। इसके अतिरिक्त औरभी इसमें बाधाएँ हैं। जैन शास्त्रोंके अनुसार समन्तभद्रके बाद ऐसा एकभी आचार्य नहीं हुआ, जिसको परलोक आदिका प्रत्यक्ष ज्ञान हो। तब इस बातको कौन कहसकता है? इससे यह कविकल्पनाही सिद्ध हुई। हाँ, इससे समन्तभद्रका व्यक्तित्व बहुत महान था, यह बात अवश्य साबित होती है। यहाँ वक्ताकी अज्ञानता स्पष्ट है, इसलिये आगामितीर्थंकर होनेकी बात असत्य है।

कषायजन्य असत्यका उदाहरण दिगम्बर और श्वेताम्बर आदि सम्प्रदायोंके उत्पन्न होनेकी कथाएँ हैं, क्योंकि इन कथाओंके बनानेवाले साम्प्रदायिक दोषसे दूषित हैं, इसलिये एक दूसरेको नीचा दिखानेके लिये ये कथाएँ गढ़ीगई हैं। कहा जासकता है कि कथाकार तो मुनि या महाव्रती थे इसलिये वे मिथ्या कल्पना कैसे करसकते हैं? इसके उत्तरमें निम्नलिखित बातें कही जासकती हैं।

वे वीतराग थे, इसका कोई प्रमाण हमारे पास नहीं है। प्रमाणके आधारपर जो कुछ कहा जासकता है, वह इतनाही कि वे मुनिवेषमें रहते थे और विद्वान थे। परन्तु जैनशास्त्रोंके अनुसार शुक्ललेश्या वाला पूर्वपाठी मुनिभी द्रव्यलिंगी—मिथ्यादृष्टि हो सकता है, इसलिये विद्वत्ता और मुनिवेष सत्यवादिता से अविनाभाव सम्बन्ध नहीं रखते।

दूसरी बात यह कि महाव्रती होनेसे कोई व्यवहारमें असत्य नहीं बोलसकता, परन्तु धर्मरक्षा धर्मप्रभावनाके लिये महाव्रतीभी असत्य बोलजाते

---

*उक्तं च समंतभद्रेणोत्सर्पिणीकाले आगामिनि भविष्यत्तीर्थंकरपरमदेवेन। —षट् प्राभृतटीका।

* श्रीमूलसंघव्योमेन्दुर्भारते भावितीर्थकृत्।
देशे समन्तभद्राख्यो मुनिर्जीयात्पदर्द्धिक: ॥—विक्रांतकौरव

हैं, इसके उदाहरण प्रथमानुयोगमें भी बहुत मिलते हैं। व्यवहारमें जो असत्य बोला जाता है, उसका हिंसा और संक्लेशके साथ जितना निकट सम्बन्ध है, उतना धर्मप्रभावनाके लिये बोले गये असत्यमें नहीं समझा जाता। इसलिये साम्प्रदायिक मामलों में असत्यकी बहुत अधिक सम्भावना है।

तीसरी बात यह कि जब दोनों सम्प्रदायके व्यक्ति विद्वान और मुनिवेषी हो और परस्पर विरुद्ध लिखते हों तो निःपक्ष परीक्षक दोमें से एककी बातपर विश्वास नहीं रखसकता। उसके लिये दोनों समान हैं।

बुद्ध, वशिष्ठ आदिकी जो कथाएँ जैनशास्त्रोंमे पाई जाती है, वे भी इसी साम्प्रदायिक पक्षपातका फल है, इसलिये ऐतिहासिक दृष्टिसे उनका कुछभी मूल्य नहीं है। कथाकारोंमे निंदा करनेके भाव है, यह बात उन कथाओंको पढ़नेसे स्पष्ट मालूम होती है।

अस्वाभाविक होनेसे कथावस्तुकी कल्पितता सिद्ध होजाती है। जैसे आचार्य कुन्दकुन्दका सशरीर विदेह जाना। मूर्त्तिमें से दूधकी धारा छूटना, रत्नवर्षा, सुवर्णवर्षा, केशरवर्षा आदि अतिशयोंके आधार पर रचीगई कथाएँ अप्रामाणिक हैं। हाँ, देव-दानवोंका अर्थ मनुष्यविशेष करनेसे अगर कथाकी संगति बैठती हो तो इस तरह वह कथावस्तु प्रामाणिक होसकती है। परन्तु वास्तविक घटना कारणवश रूपान्तरित हुई है, इस बातके सूचक कारण अवश्य मिलना चाहिये।

घटनाओंकी समता कथावस्तुको संदेहकोटि में डालदेती है। जैसे हरिभद्रके शिष्योंकी कथा और अकलंक-निःकलंककी कथा आपसमें इतनी अधिक मिलती है कि यह कहना पड़ता है कि एकने दूसरेसे नक़ल अवश्य की है, अथवा दोनोंने किसी तीसरेसे नक़ल की है। अगर दूसरे और बालक कारण मिल जाँय तो संदेह निश्चयमें परिणत हो जाता है। जैसे अकलंककी कथामें अकलंक, निःकलंक मंत्रीके पुत्र माने जाते है, जबकि राजवार्तिकमें वे अपनेको लघुहव्व नृपतिके पुत्र कहते हैं, अपने लिये प्राण समर्पण करने परभी वे निःकलंकका कहीं नामभी नहीं लेते, इसके बाद तारादेवीके साथ शास्त्रार्थसे यह कथा इतिहासके बाहर चली जाती है। और कई कारण इस कथाकी अप्रामाणिकताको निश्चित करते हैं।

कभी कभी उपदेश देनेके लिये व्याख्याता कुछ कथाएँ कहजाता है; वहाँ यह देखना चाहिये कि वक्ता का मुख्य लक्ष्य क्या है? जैसे महात्मा बुद्ध बाह्य तप आदिकी निःसारता बतलानेके लिये कहते हैं कि मैंने पहिले जन्मोंमे सब प्रकारके बाह्य तप किये हैं आदि। यहाँ यह न समझना चाहिये कि म० बुद्धने सचमुच पहिले जन्मोंमें बाह्य तप किये हैं, इसलिये जिन जिन सम्प्रदायके तप किये है, वे सम्प्रदाय पुराने है। इससे सिर्फ इतनाही सिद्ध होता है कि महात्मा बुद्धके समय वे सम्प्रदाय प्रचलित थे और उनकी बाह्य तपस्याओं को महात्मा बुद्ध ठीक नहीं समझते थे।

कहीं कहीं आलंकारिक वर्णन कथाओंका रूप धारण करलेते है। जैसे वैदिक पुराणोंमे एक कथा है कि अग्निने अपनी माताको पैदा किया। यह असंभव वर्णन ऋग्वेद* के एक रूपकका रूपान्तर है। वैदिक शास्त्रोंके अनुसार यज्ञके धुएँसे मेघ बनते हैं इसलिये यह कहलाया कि अग्नि मेघोंको पैदा करते है। परन्तु मेघमाला स्वयं अग्निको पैदा करती है, उससे विद्युत् रूप अग्नि पैदा होती है। इसप्रकार अग्नि जिसको पैदा करते हैं, उससे पैदा भी होते हैं। किसीको आलंकारिक ठहराते समय बहुत सावधानीकी ज़रूरत है। अन्यथा अलंकारका क्षेत्र इतना विशाल है कि उसमे वास्तविक इतिहासभी विलीन होसकता है। जहाँ वास्तविक अर्थ न घट सकता हो वहाँ आलंकारिक अर्थ करना चाहिये।

जिसप्रकार हम कृत्रिम और अकृत्रिम वस्तुओं को देखतेही पहिचान लेते हैं, उसीप्रकार कथाओंकी भी पहिचान कीजाती है। चरित्र लेखककी भावनाएँ

* इमं वो निण्यमा चिकेतवत्सो मातृजनयत स्वधाभिः। बह्वीनां गर्भो अपसामुपस्थात् कविर्निश्चरति स्वधावान्। ऋग्वेद अ० १ सू० ९५ श्लोक ४।

चरित्रके ऊपर कुछ ऐसी छाप मारजाती हैं तथा घटनाक्रम कुछ ऐसा चलता है, जिससे उसकी कृत्रिमता मालूम होने लगती है। उदाहरणार्थ कोई राजा रतिकर्ममें अधिक लगा रहता है, इसलिये कथाकार उसका नाम 'सुरत' रखदेता है। इसप्रकार कथाकार अपने पात्रोंके नाम उनके चरित्रके अनुसार रखता है, इससे उस कथा वस्तुकी कल्पितता सिद्ध होती है। यद्यपि यह नियम नहीं है कि प्रत्येक कल्पित कथाके नाम इसप्रकार गुणानुसारही होते हैं, परन्तु जहाँ ऐसे नाम होते हैं, वहाँपर कथानक प्रायः कल्पित होते हैं। अपवाद नगण्य हैं।

इस विषयको औरभी बढ़ाकर लिखा जासकता है, परन्तु स्थानाभावसे बहुत संक्षेपमें लिखागया है। यद्यपि कथासाहित्यमें इतिहास इस तरह मिलगया है कि उसका विश्लेषण करना कठिन अवश्य है; फिर भी निःपक्षतासे जाँच कीजाय तो मालूम होजायगा कि श्रद्धालु लोग जिसे इतिहास समझते हैं, उसका ऐतिहासिक मूल्य आजकलके उपन्यासोंसे भी बहुत कम है। हाँ, वे धर्मशास्त्र अवश्य हैं। अनेक कथाओं का प्रभावभी बहुत अच्छा पड़ता है, इसलिये अनेक कथाकारोंकी प्रशंसा मुक्तकंठसे करना पड़ती है।

अन्तमें यह बात फिर कहना पड़ती है कि हमारा कथासाहित्य आखिर धर्मशास्त्र है, और उसे धर्मशास्त्रकी दृष्टिसे ही देखना चाहिये। ऐतिहासिक दृष्टिसे वह भलेही सत्य, असत्य या अर्धसत्य रहे, परन्तु इससे उसपर कुछभी प्रभाव नहीं पड़ता। हाँ, अगर किसी कथासे असत्य उपदेश मिलता हो तो उसे असत्य कहना चाहिये। अन्यथा इतिहासकी दृष्टिसे असत्य होनेपर भी वह सत्य है।

गणितानुयोग—यद्यपि यह प्रथमानुयोगका प्रकरण है, परन्तु जो बात प्रथमानुयोगके विषयमें कहीगई है वही गणितानुयोगके विषयमें भी कही जासकती है। इसलिये उसका उल्लेखभी यहाँ अनुचित नहीं है। जिसप्रकार प्रथमानुयोग इतिहास नहीं, धर्मशास्त्र है, उसीप्रकार गणितानुयोग भूगोल नहीं, धर्मशास्त्र है।

धर्मशास्त्रका काम प्राणीको सुखी बनानेके लिये सदाचारी बनाना है। सदाचारका फल सुख है और दुराचारका फल दुःख है, इस बातको अच्छी तरह से समझानेके लिये जिसप्रकार कथाओंकी आवश्यकता है, उसीप्रकार भूगोल अथवा विश्ववर्णन की आवश्यकता है। जो लोग मर्मज्ञ हैं, उनको कथा-साहित्य और विश्ववर्णनकी जराभी जरूरत नहीं हैं, परन्तु जो लोग सदाचारके सहजानन्दको प्राप्त नहीं करपाये, वे स्वर्गका प्रलोभन और नरकका भय चाहते हैं और चाहते हैं सीतारामकी विजय और रावणका सर्वनाश। ऐसे ही लोगोंके लिये स्वर्गोंके मनोहर वर्णन करना पड़ते हैं, नरकोंका वीभत्स और भयंकर चित्रण करना पड़ता है, भोगभूमिके अनुपम दाम्पत्य सुखका दर्शन कराना पड़ता है।

धर्मशास्त्रकार कोई तीर्थंकर या आचार्य, इस बातकी जरासी पर्वाह नहीं करता कि मेरा भौगोलिक वर्णन सत्य है या असत्य। वह तो यह देखता है कि मेरे युगके मनुष्योंके लिये यह वर्णन विश्वसनीय है या नहीं। यदि उसके युगमें वह विश्वसनीय है, और लोगोंको सदाचारी बनानेके लिये वह उपयुक्त है तो उसका काम सिद्ध हो जाता है; वह असत्य हो करके भी सत्य है।

भगवान महावीरके युगमें या उसके कुछ पीछे जबभी जैन भूगोल तैयार हुआ हो, उसका लक्ष्य यही था। इसकेलिये उन्हें जो सामग्री मिली, उसको कल्पनासे बढ़ाकर, सुन्दर बनाकर उनने जैनभूगोल की इमारत तैयार करदी। यह भौगोलिक वर्णन, कर्मतत्त्वज्ञानरूपी देवताका मन्दिर है। यदि आज भौगोलिक वर्णनरूपी मन्दिर जीर्णशीर्ण होगया है, वर्तमान वातावरणमें अगर उसका स्थिर रहना असम्भव होगया है, तो कोई हानि नहीं है। हमें दूसरा मन्दिर बनालेना चाहिये कर्मतत्त्वज्ञानरूपी देवता की मूर्ति उस नये मन्दिरमें स्थापित करना चाहिये।

धर्मशास्त्रमें जो भौगोलिक वर्णन है, उसका रेखाचित्र तो तर्कसिद्ध है, किन्तु उसमें जो रंग भरा गया है, वह कल्पित है। तीसरे अध्यायमें मैं आत्मा के अस्तित्व पर लिखचुका हूँ। जब आत्मा कोई स्वतन्त्र द्रव्य-तत्त्व-सिद्ध होजाता है, तब उसका परलोकमें जाना-इस शरीरको छोड़कर दूसरे शरीर में प्रवेश करना—अनिवार्य है। वह शरीर या वह जगत् वर्तमान शरीरसे या वर्तमान जगतसे अच्छा है तो स्वर्ग और बुरा है तो नरक है। बस, भौगोलिक वर्णनका यह रेखाचित्र तर्कसिद्ध है। बाकी कल्पित है। जब इस मौलिक अंशको धक्का नहीं लगता—और वर्तमान जैनभूगोल मिथ्या सिद्ध होजाने परभी अच्छे और बुरे परलोकका अभाव सिद्ध नहीं होता—तब जैनभूगोलसे चिपके रहनेकी ही क्या आवश्यकता है? उसके लिये किसीको विज्ञानकी नयीनयी खोजोंका बहिष्कार क्यों करना चाहिये?

जिसप्रकार सत्य, असत्य, अर्धसत्य कथाओंका उपयोग धार्मिक शिक्षाके काममें किया जाता है उसी प्रकार सत्य, असत्य, अर्धसत्य भूगोलका उपयोग भी धर्मशास्त्र करता है। धर्मशास्त्र सभी शास्त्रोंका उपयोग करता है। अगर कोई शास्त्र परिवर्तनीय है, तो उसका परिवर्तन होजानेपर उसके परिवर्तित रूप का धर्मशास्त्र उपयोग करने लगेगा। यह परिवर्तन उस शास्त्रका ही परिवर्तन है न कि धर्मशास्त्रका।

लोगोंकी बड़ीभारी भूल यह होती है कि धर्मशास्त्र जिन जिन शास्त्रोंका उपयोग करता है उन सबको भी वे धर्मशास्त्र समझने लगते हैं। एक ग्रन्थकार सतीत्वका और न्यायपक्षका सत्फल बतानेके लिये तथा अत्याचारका दुष्फल बतानेके लिये रामायण की कथा लिखता है और उसमें यह भी लिख जाता है कि अयोध्या बारह योजन लम्बी थी। मानलो किसी जबर्दस्त प्रमाणसे यह सिद्ध हो जाय कि अयोध्या उस समय बारह योजन लम्बी नहीं थी, तो क्या इससे न्यायपक्षकी सत्फलता और अन्यायपक्ष की असत्फलता नष्ट हो गई? धर्मशास्त्रके वर्णन धर्मशास्त्र रूपमें सत्य हैं। अन्य रूपमें अगर वे असत्य हैं तो इससे धर्मशास्त्र असत्य नहीं हो जाता।

दो और दो चार होते हैं, इस विषयमें कोई यह नहीं पूछता कि जैनधर्मके अनुसार दो और दो कितने होते हैं और बौद्धधर्मके अनुसार कितने होते हैं? बात यह है कि गणित गणित है, इसलिये वह जैनगणित, बौद्धगणित आदि भेदोंमें विभक्त नहीं होता। जैन, बौद्ध आदि धर्मशास्त्रके भेद हैं, और गणितशास्त्र धर्मशास्त्रसे स्वतन्त्र शास्त्र है। इसलिये धर्मशास्त्रके भेद गणितशास्त्रके साथ लगाना अनुचित है। जिस प्रकार गणितको हम जैन, बौद्ध आदि भेदोंमें विभक्त करना ठीक नहीं समझते, उसीप्रकार भूगोल, इतिहास आदिको भी इसप्रकार विभक्त न करना चाहिये। धर्मशास्त्रकी पूँछसे सभी शास्त्रोंको लटका देनेसे बेचारे धर्मशास्त्रकी तथा अन्य शास्त्रों की बड़ी दुर्दशा होजाती है। इससे धर्मशास्त्र सभी शास्त्रोंके विकासको रोकने लगता है तथा दूसरे शास्त्र जब नई खोजोंके सामने नहीं टिकपाते तो धर्मशास्त्रको भी ले डूबते हैं। धर्मशास्त्रके कैदसे सब शास्त्रोंको मुक्त करके तथा धर्मशास्त्रके सिरसे सब शास्त्रोंका बोझ हटादेने से हम सब शास्त्रोंसे पूरा लाभ उठा सकते हैं, तथा शास्त्रोंका विकास कर सकते हैं। इस विवेचनसे यह बात अच्छी तरह मालूम होजाती है कि गणितानुयोग और प्रथमानुयोगका क्या स्थान है?

चूलिका।

पूर्वसाहित्यका पाँचवाँ भेद चूलिका है। परिकर्म-सूत्र पूर्वगत और प्रथमानुयोगमें जो बातें कहनेसे रहगई हैं उनका कथन चूलिकामें* है। ग्रन्थमें जैसे परिशिष्ट भाग होता है, उसी प्रकार दृष्टिवादमें चूलिका है। कहा जाता है कि चौदह पूर्वोमें सिर्फ पहिले

---

* दिट्ठिवाए जं परिकम्म सुत्त पुव्वाणुयोगे न भणियं तं चूलासु भणियं। नंदी ५६।

चार पूर्वोंमें ही चूलिकाएँ हैं। पहिले पूर्वकी चार, दूसरेकी बारह, तीसरेकी आठ, चौथेकी दस चूलिकाएँ हैं। परिकर्मसूत्र और प्रथमानुयोगकी भी चूलिकाएँ होंगी परन्तु उनका पता नहीं है कि वे कितनी थीं।

दिगम्बर ग्रन्थोंमें किस पूर्वकी कितनी चूलिकाएँ हैं, इसका वर्णन नहीं है, परन्तु वहाँ चूलिकाके पाँच भेद किये गये हैं —

जलगता — इसमें जल अग्निमें प्रवेश करने, स्तम्भन करने आदिका वर्णन है।

स्थलगता — इसमें शीघ्र चलना, मेरु आदिकी चोटीपर पहुँचना आदिका वर्णन है।

मायागता — इन्द्रजाल आदिका वर्णन है।

[illegible] नानेका, चित्र आदि [illegible]।

[illegible] आकाशगमन आदिके मंत्रतंत्र हैं।

[illegible] जमानेमें इस [illegible] विज्ञान प्राप्त था उसका [illegible] वर्णन इन चूलिकाओंमें था। मालूम होता है कि इन भौतिक विषयोंका विशेष वर्णन मूलग्रंथमें उचित न मालूम हुआ, इसलिये परिशिष्ट बनाकर इनका वर्णन किया गया।

उस जमानेमें धर्माचार्योंको बहुत महत्त्व प्राप्त था। समाजके लिये आवश्यक और समाजमें प्रचलित प्रत्येक विद्याकी पूर्ति करनेका भार भी धर्मगुरुओंपर था। परन्तु यह सब कार्य [illegible] धर्मके गीतोंसे नहीं हो सकता था इसलिये [illegible] इस शास्त्रोंमें प्राय सभी शास्त्रोंका समावेश किया गया है। इस प्रकार धर्मशास्त्र [illegible] अनेक शास्त्रोंके अजायबघर बन गये हैं। उस जमानेपर विचार करते हुए यह बात न तो अनुचित है, न आश्चर्यजनक है।

हाँ, इतनी बात ध्यानमें रखना चाहिये कि धर्मशास्त्रोंमें धार्मिक बातोंका जितना महत्त्व है, उतना अन्य शास्त्रोंकी बातोंका नहीं है। धर्माचार्य धार्मिक विषयका वर्णन अनुभव करते थे परन्तु दूसरे विषयोंका वर्णन तो उस जमानेके अन्य विद्वानोंके वक्तव्यके आधारपर किया है। यह तो संभव नहीं है कि उस जमानेकी सारी भौतिक विद्याओंका अनुभव स्वयं तीर्थंकर करते हों। तीर्थंकर तो धर्मतीर्थके अनुभवी थे, धर्मतीर्थके संस्थापक थे। अन्य विषय तो उनके लियेभी परोक्षज्ञानसे—सुनकर—मालूम हुए थे। इसलिये धार्मिक मामलोंमें उनकी वाणी जितनी अभ्रान्त और पूर्ण था उतनी भौतिक विषयोंमें कदापि नहीं थी। इसलिये धर्मशास्त्रके भीतर आये हुए किसी भौतिक विषयका अगर आज कुछ निरुपयोगी मालूम हो, असत्य मालूम हो तो इससे धर्मशास्त्रका महत्त्व कम नहीं होता। इसलिये खींच तान कर निरुपयोगको उपयोगी, असत्यको सत्य, अनुन्नतको उन्नत सिद्ध करनेकी जराभी जरूरत नहीं है, और न धर्मशास्त्रोंके भीतर आये हुए अन्य शास्त्रोंको धर्मशास्त्र माननेकी जरूरत है।

अङ्गबाह्य।

अङ्गबाह्यका स्वरूप बतलाया गया है। गणधरोंके पीछे होनेवाले पीछे आचार्योंकी यह रचना है। यद्यपि भगवान महावीरके पीछे करीब ढाई हजार वर्षमें जितना जैनधर्मसाहित्य तैयार हुआ है, वह सब अङ्गबाह्य साहित्यही है, परन्तु आजकल अमुक प्राचीन ग्रंथोंके लिये यह शब्द रूढ़ होगया है। अंगप्रविष्टकी तरह अंगबाह्य साहित्य नियत नहीं है इसीलिये उमास्वाति आदि आचार्य इसके नियत भेद नहीं कहते हैं। वे अंगप्रविष्टके तो बारह भेद बतलाते हैं परन्तु अंगबाह्यके विषयमें सिर्फ इतनाही कहते हैं कि वह अनेक* प्रकारका है। अकलंक देव भी अंगबाह्यके भेदोंको नियत नहीं करते। वे भी

। ता एव चूला आइल्ल पुव्वाणं चउण्ह चुल्लवत्थूणि भणिता। चत्तारि दुवालस अट्ठ चेव दस चेव चूलवत्थूणि आइल्लाण च उण्हं सेसाणं चूलिया नत्थि। नंदी टीका ५६

* श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेक द्वादशभेदं। १-२०॥

'आदि'† शब्दसे कहजाते हैं। परन्तु इसके बाद गोम्मटसारमें चौदह भेद मिलते हैं।

१- सामायिक- आत्मामें लीनहोना, सामायिक है। इस शास्त्रमें सामायिककी विधि, समय आदिका वर्णनहै।

२—चतुर्विंशस्तव—इसमें चौबीस तीर्थंकरोंकी स्तुतियाँ हैं।

३—वंदना- इसमें चैत्य, चैत्यालय आदिकी स्तुतियाँ हैं।

४ प्रतिक्रमण इसमें दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक, सांवत्सरिक, ऐर्यापथिक (गमनका प्रतिक्रमण), उत्तमार्थ (सर्व पर्यायका प्रतिक्रमण) इस प्रकार सात प्रकारके प्रतिक्रमणका वर्णन है।

५-वैनयिक— इसमें ज्ञान, विनय, दर्शनविनय, चारित्रविनय, तपोविनय, उपचारविनय, इसप्रकार पाँच प्रकारके विनयका वर्णन है।

६ कृतिकर्म -इसमें विनय आदि बाह्य क्रियाओं (प्रदक्षिणा देना, नमस्कार करना आदि) का वर्णन है।

७—दशवैकालिक--मुनियोंके आचारका वर्णन है।

८—उत्तराध्ययन इसमें उपसर्ग परीषह सहनकरने वालोंका वर्णन है।

दशवैकालिक और उत्तराध्ययन श्वेताम्बर संप्रदायमें बहुत प्रसिद्ध और प्रचलित सूत्र हैं। दिगम्बर सम्प्रदायमें ये सूत्रभी उपलब्ध नहीं होते, यह अत्यंत आश्चर्य और खेदकी बात है। मूलसूत्र (अंगप्रविष्ट) विशाल होनेसे सुरक्षित नहीं रहसकता तो किसी तरह यह क्षन्तव्य है, परन्तु अंगबाह्य भी अगर नामशेष होगया तब तो हद ही होगई।

९—कल्प्यव्यवहार— इसमें साधुओंके योग्य अनुष्ठानका तथा अयोग्यके प्रायश्चित्तका वर्णन है।

१०—कल्प्याकल्प्य—कौनसा कार्य कब कहाँ उचित है और वही कब कहाँ अनुचित है, इस प्रकार द्रव्यक्षेत्रकालभावके अनुसार मुनियोंके योग्यायोग्य कार्यका निरूपण है।

११—महाकल्प्य—इसमें जिनकल्प और स्थविरकल्प साधुओंके आचार, रहनसहन आदिका वर्णन है।

१२—पुंडरीक—देवगतिमें उत्पन्न करने वाले दानपूजा, तपश्चरण आदिका वर्णन है।

१३—महापुंडरीक—इन्द्रादिपद प्राप्त करने योग्य तपश्चरण आदिका वर्णन है।

१४—निषिद्धिका—यह प्रायश्चित्त शास्त्र है। इसे निसी तका भी कहते हैं।

श्वेताम्बर सम्प्रदायमें अंगबाह्यके दो भेद किये गये हैं—आवश्यक और आवश्यकव्यतिरिक्त। जो क्रियायें अवश्य करना चाहिये, उनका जिसमें वर्णन है वह आवश्यक है। इससे भिन्न आवश्यक व्यतिरिक्त हैं। इसके छः भेद हैं—सामायिक, चतुर्विंशस्तव, वंदन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, प्रत्याख्यान। इनके विषय नामसे प्रगट हैं।

आवश्यकव्यतिरिक्त दो तरहका है—कालिक, उत्कालिक। जो नियत समय पर पढ़ा जाय वह कालिक और जो अन्य समय पर पढ़ा जाय वह उत्कालिक। उत्तराध्ययन आदि कालिक हैं। दशवैकालिक आ[illegible] हैं [illegible] श्वे[illegible]गोंमें जो बारह उपांग [illegible] ग्रंथ के अन्तर्गत हैं।

† तदनेकविधं कालिकोत्कालिकादिविकल्पात्।
—रा० वा० १-२०-१४॥

* [illegible] वर्णन यहाँ नहीं किया गया है। नंदी सूत्र ४३में विस्तृत वर्णन है। वहाँ कालिक श्रुतके ३६ ग्रंथोंके नाम लिखे हैं। फिर भी आदि कहकर छोड़दिया है। इसी प्रकार उत्कालिक श्रुतके भी २९ नाम लिखे हैं और आदि कहकर नामोंकी अपूर्णता बतलाई है।

सम्पादकीय टिप्पणियाँ ।

अति[illegible] ।

मनुष्य हृदयको अपने [illegible] प्रेम करता है और बुद्धिको [illegible] समझता है । हृदय कुलटा को, [illegible] मनुष्यका वात्सल्य ही उमड़ता है और बुद्धि अगर थोड़ीसी भी बात कहे तो मनुष्य उसे शासककी तरह फटकारता है कि "चुपरह ! घूँघट खुला मतकर ! तेरा यहाँ काम नहीं है" । मनुष्यके इस पक्षपाती व्यवहारसे हृदयमें एक सद्गृहस्थकी तरह गम्भीरता नहीं है, वह उच्छृंखल खेल खेलता रहता है और बुद्धिकी शक्तियाँ निरर्थक नष्ट होती रहती हैं ।

अन्य विषयों की अपेक्षा धर्मके विषयमें उपर्युक्त रूपक औरभी अधिक चरितार्थ होता है । इस क्षेत्रमें बुद्धिकी सबसे अधिक दुर्दशा होती है । हृदय यहाँ स्वतंत्रतासे शेखचिल्ली सरीखी कल्पनाएँ करता रहता है । कोईभी प्राकृतिक और स्वाभाविक घटनाका कारण वह नहीं खोजता, बल्कि आत्मसंतोषके लिये वह अन्य अप्राकृतिक कल्पनाएँ करता रहता है ।

सभी धर्मोंके साहित्यमें छोटी छोटी साधारण घटनाएँ भी दिव्यरूपमें चित्रित हुई हैं । इसका कारण हृदयकी यही उच्छृंखलता और बुद्धिका अपमान है । अभी ग्वालियर राज्यके एक गाँवके मन्दिरमें सर्प आगया । उसे एक साधु गीता सुनाने लगा । सर्प थोड़ी देर बैठा रहा, बादमें चला गया । लोग इसे गीताकी महिमा समझते हैं और सर्पको सम्भवतः कोई गीता-प्रेमी देवता । वे इस घटनाके विषयमें बुद्धिसे ज़राभी काम नहीं लेना चाहते हैं । वे हृदयसे यह नहीं पूछना चाहते कि गीताके आधार परतो सर्प बैठाही रहा सो भी थोड़ी देर, क्योंकि उसने अट्ठारह अध्यायमें से चार अध्यायही गीताके सुने फिर वह चला गया, परन्तु सँपेरेकी पुंगीके स्वरसे तो सर्प घन्टों नाचता रहता है तबतो सँपेरेकी पुंगीका माहात्म्य गीतासे कई गुणा कहलाया ! परन्तु हृदयको ऐसी बातें सुनाई नहीं देती । वह यह नहीं सोचता कि सर्प मनुष्य पर तबतक आक्रमण नहीं करता जबतक उसे कुछ नुकसान न पहुँचाया जाय या उसे मनुष्यकी घातकताका पता न लग जाय । और वह शब्दका तो इतना अधिक प्रेमी होता है कि उसके पीछे वह पागलसा नाचने लगता है, पीछे पीछे दौड़ने लगता है । कोई आदमी गीता पढ़े या कुरान, उसे कुरान, पुरान की पर्वाह नहीं होती; उसे पर्वाह होती है स्वरकी । परन्तु यह विचारधारा तो बुद्धिकी है जिसकी हृदयको ज़राभी पर्वाह नहीं है ।

जैनेतरोंमें ही यह मूढ़ता है, सो बात नहीं है । हमारे जैनबन्धु तो ऐसी मूढ़ताके विषयमें जैनेतरोंके भी कान काटते हैं । अगर किसी मन्दिरमें चिड़ियाँ लाल बीट करती हैं तो वे उसे केशरवर्षा समझकर दिव्य अतिशयका अनुभव करते हैं । अगर किसी मुनिवेषीके पाससे सर्प निकल जाता है तो वे उसका छत्र बना देते हैं । पहिले तो सर्पके छत्रकी घटनाही झूँठी होती है; अगर कदाचित सच भी हो तो इसमें कोई अतिशय नहीं है क्योंकि किसीभी लक्कड़के ऊपर चढ़कर सर्प फन उठाया करता है । इसमें अतिशय कैसा ?

मैं जैनजगतमें लिख चुका हूँ कि एकबार शाहपुरमें शास्त्र पढ़ते समय मेरीही गोदमें क़रीब दो घन्टे तक सर्प बैठा रहा था, और जब शास्त्र पूरा हुआ तो वह मेरे पेटपर रेंगने लगा । जब बिना घबराये मैंने उसे नीचे कर दिया तो एक खण्डहरमें चला गया-भक्तोंके शब्दोंमें अन्तर्धान होगया । परन्तु इसमें मेरा या शास्त्र बाँचनेका या शास्त्र का कुछ अतिशय है, यह समझना भोलापन है । मेरे द्वारा न सताया जाना तथा सर्पका स्वर प्रेमही इसका कारण है । बल्कि शाहपुरकी एक इससेभी पहिलेकी घटना यह है कि एक सर्प चक्कीके चारों तरफ लिपटा रहा और एक स्त्री अँधेरेमें उसी चक्कीसे गेहूँ पीसती रही और घन्टों पीसती रही । अब इसे उस स्त्रीका माहात्म्य समझा जाय या अज्ञदेवनाका माहात्म्य समझा जाय ? बात यह है कि ये सब बिलकुल स्वाभाविक और साधारण घटनाएँ हैं । मनुष्य इन साधारण घटनाओंके मर्मसे भी अपरिचित रहता है । रहताही नहीं, रहना चाहता है । जो मनोवृत्ति इन साधारण घटनाओंका मर्म नहीं समझ सकती, वह धर्मका मर्म समझे और आत्मदर्शन करसके यह असम्भव है । मनुष्य बुद्धिमान् प्राणी होकरके भी कैसा अबुद्धिभक्त है ! महामोहका यह अतिशय एक महान् अतिशय है ! बाकी सब अतिशय तो ठीक ही हैं ।

मेरी महान धृष्टता (?)

मेरे मित्र बाबू कामताप्रसादजीने वीरके पाँचवें-छट्टे अंकमें 'महान धृष्टता' 'कषायोद्रेकका दुष्परिणाम', 'अहम्मन्यताका प्रमाण', 'कर्तव्य और शिष्टतासे भटका हुआ', 'विद्वत्ताका घमण्डी' आदि कहकर मेरा सुन्दरतम वर्णन किया है। मेरा अपराध यह है कि मैं जैसेको तैसा उत्तर देता हूँ। बैरिस्टर साहिबको भी मैंने ऐसा ही उत्तर दिया बैरिस्टर साहिबने जो तर्क उपस्थित किया उसका मैंने तर्कसे उत्तर दिया। जो व्यक्तिगत आक्रमण किया उसका वैसा उत्तर दिया। अगर मैं बैरिस्टर साहिबको व्यक्तित्वहीन समझता तो अवश्य उपेक्षा कर जाता।

मेरे मित्रका यह भी विश्वास है कि लेखमाला लिखनेसे मैं घमण्डी होगया हूँ और उस घमण्डका परिचय मैं लेखमालासे देता हूँ। परन्तु लेखमाला पढ़नेसे मेरे घमण्डका परिचय मिलना तो कठिन है; परन्तु घमण्ड शब्दका अर्थ मेरे मित्रके कोषमें 'मतभिन्नता' है, यह अच्छी तरह मालूम हो जाता है।

विजातीयविवाह और विधवाविवाह आदिके आन्दोलनोंमें जिस उग्रभाषाका मैंने प्रयोग किया है उसका दर्शन भी लेखमालामें नहीं होता। यहाँ तक कि लेखमालामें किसी व्यक्तिके नामको लेकर कोई बात ही नहीं कही जाती। फिर घमण्ड तो किसके सामने दिखलाया जाय?

पहले आन्दोलनोंकी भाषा मेरे मित्रोंको नहीं खटकी क्योंकि उससमय वे मेरे पक्षमें थे और अब खटकी क्योंकि विपक्षमें हैं। इससे सिद्ध होता है कि मेरे मित्र पक्षमें होनेका नाम विनय और विपक्षमें होनेका नाम घमण्ड करते हैं। अन्यथा जब मैंने अपनी लेखनशैलीको पहिलेकी अपेक्षा कईगुणा कोमल बना दिया है तब उनको घमण्ड का दर्शन न होता।

बैरिस्टर साहिबकी महान सेवा और नास्तिक जगत्में उड़ायी हुई विजयवैजयन्तीके दर्शनके लिये जिन दिव्य नेत्रोंकी जरूरत है, दुर्भाग्यवश वे मुझे प्राप्त नहीं है। और मैंने जो समाज सुधार या क्रान्तिके लिये पन्द्रह वर्ष मजूरी की है, वह तो मजूरी ही है, उसका मूल्य ही क्या? खासकर मतभेदी मित्रोंकी दृष्टिमें। संभव है इस जाँचके लिये लम्बे भविष्यकी ज़रूरत हो। महाभारत में एक कथा है कि जब युधिष्ठिर स्वर्ग जाने लगे तो अन्य पांडवोंने भी साथ छोड़ दिया, या वे उनके साथ न जासके। उनके साथ एक कुत्ता ही गया। सम्भव है मैं अपने सब मित्रोंको खो दूँ। मेरी जिस बातको कल तक वे शाबासीकी चीज समझते थे मतभेद होजाने पर अब वे उसे मेरी नालायकी समझें। उन्हें ऐसा समझनेका अधिकार है। परन्तु मैं [illegible] वास्तव में क्रोधके वेशमें छुपा हुआ सत्य है, धृष्टताके वेषमें छुपी हुई सत्यप्रियता है।

शास्त्र और शस्त्र।

(व्याख्याता —पं० सुखलालजी संघवी)

भारतवर्षमें शास्त्रको उत्पन्न करने वाला, उसका संरक्षण करने वाला और उसके द्वारा सब सम्भव प्रवृत्तियां करने वाला वर्ग, मुख्य रूपसे 'ब्राह्मण' [illegible] इसी प्रकार शस्त्र [illegible] करने वाला वर्ग, क्षत्रिय [illegible] है। प्रारम्भ में ब्राह्मणवर्गका कार्य शास्त्र द्वारा लोकरक्षा अर्थात् [illegible] और क्षत्रिय वर्गका कार्य शस्त्रद्वारा समाजका [illegible] करना था। शास्त्रद्वारा समाजकी रक्षा और शस्त्रद्वारा समाजकी रक्षा, ये दोनों ही यद्यपि रक्षारूप हैं, फिर भी उनका स्वरूप मूलमें जुदा जुदा था। शास्त्रमूर्ति ब्राह्मण, जब किसीको बचाना चाहे तो उसके ऊपर शास्त्रका प्रयोग करे, अर्थात् उसे हितबुद्धिसे, उदारतासे और सच्चे प्रेमसे वस्तुस्थिति को समझावे। इसप्रकार वह उस कुमार्ग पर जाने वाले को कदाचित् बचा ही लेता। यदि वह ऐसा करनेमें—कुमार्गगामी को बचानेमें—सफल न होसके तो भी अपने आपको तो वह उन्नत अवस्थामें रखता ही। तात्पर्य यह कि शास्त्रका कार्य मुख्य रूपसे वक्ता को बचाना ही होता था, साथ ही साथ श्रोता को

भी बचानेका अवसर होता था। कदाचित् ऐसा न हो सकता तो भी श्रोताका अनिष्ट करनेका उद्देश्य तो होताही नहीं था। शस्त्रमूर्ति क्षत्रिय यदि किसी के आक्रमणसे आत्मरक्षा करे तो शस्त्रद्वारा पहले उस आक्रमणकारीका काम तमाम करके ही अपनी रक्षा कर सकता है। इसी प्रकार यदि किसी निर्बलकी रक्षा करने को तैयार हो तो भी उस बलवान् आक्रमणकारीको मारकर या हराकर ही निर्बलको बचा सकता है। तात्पर्य यह है कि शस्त्रद्वारा की जाने वाली रक्षामें एककी रक्षा करनेके लिए प्रायः दूसरेके नाशकी संभावना रहती है। अर्थात् विरोधीका भोग लेकर ही शस्त्र द्वारा आत्मरक्षा या पररक्षा हो सकती है।

इसी भेदके कारण शास्त्र और शस्त्रके अर्थ में भिन्नता पाई जाती है। शासन करके अर्थात् समझा बुझा कर किसी को बचानेकी शक्ति जिसमें विद्यमान हो, वह शास्त्र है: तथा एकका ध्वंस करके दूसरे को बचाने की शक्ति जिसमें हो, वह शस्त्र है। यह भेद सात्विक और राजस प्रकृतिके भेदका सूचक है। इतने भेदभावके होते हुए भी ब्राह्मण और क्षत्रिय प्रकृति जब तक अपने समाजरक्षाके ध्येयके प्रति वफ़ादार रहीं तब तक वे दोनों प्रकृतियां अपनी अपनी मर्यादाके अनुसार निस्स्वार्थ भावसे अपना काम बजाती रहीं तथा शस्त्र और शास्त्रका आधार सुरक्षित रहा।

समयने पलटा खाया। शास्त्र द्वारा प्राप्त हुए प्रतिष्ठाके फलोंको चखने-भोगनेकी लालसाने शास्त्रमूर्त्ति वर्गमें अपना अड्डा जमाया। इसीप्रकार शस्त्रमूर्त्ति वर्गमें भी, शस्त्रसेवा द्वारा प्राप्त हुई प्रतिष्ठाके फलोंको आस्वादन करनेकी क्षुद्र वृत्ति का जन्म हुआ। परिणाम यह आया कि सात्विक और राजस प्रकृतिका स्थान धीरे धीरे तामस प्रकृतिने ग्रहण कर लिया या उनमें तामसिकता का प्रवेश हो गया। शास्त्रमूर्ति वर्ग शास्त्रजीवी बन गया और शस्त्रमूर्ति वर्ग शस्त्रजीवी बन गया। अर्थात् दोनों वर्गों का मुख्य ध्येय जो रक्षण था वह मिटकर आजीविका बन गया। शास्त्र और शस्त्र द्वारा मुख्यरूपसे आजीविका चलाना, अपनी भोगवासना को तृप्त करना, इसप्रकारकी वृत्ति पैदा होते ही शास्त्रजीवी ब्राह्मण वर्गमें तड़ें पड़गईं—एक दूसरेसे ईर्षा करने लगे। भक्तों, अनुयायियों और शिष्योंको, जिन्हें अज्ञान और कुसंस्कारोंसे बचा लेनेका कार्य ब्राह्मणवर्गको सौंपा गया था, अज्ञान और कुसंस्कारोंसे बचानेके बदले इस वर्गने अपने हाथ लगे हुए अपढ़ और भोले लोगोंकी सेवा शक्तिका उपयोग जहाँतक बनसका अधिक से अधिक अपने लाभमें करनेकी प्रतिस्पर्द्धा मचाई। एक शास्त्रजीवी, शिकारीकी तरह यथा संभव अधिकसे अधिक अपने अनुयायियों को अपने शास्त्रजालमें फंसानेके लिए दूसरे शास्त्रजीवीके साथ कुश्तीमें उतरने लगा। अन्तमें यह दशा हुई, जैसा कि आचार्य सिद्धसेनने कहा है, कि एक मांस के टुकड़ेके लिए दो कुत्तों में कदाचित मैत्री हो सकती है, परन्तु शास्त्रजीवी सगे दो भाइयोंमें कदापि मैत्री नहीं होसकती। अन्तमें समाजमें यही अवस्था आ उपस्थित हुई।

दूसरी ओर शस्त्रमूर्त्ति वर्ग भी शस्त्रजीवी बन गया। अतएव उसमेंभी भोग वैभवकी होड़ मची और कर्त्तव्यच्युतताका प्रवेश होगया। इससे अनाथ और आश्रित प्रजावर्ग का पालन करनेमें अपनी शक्ति लगानेके बदले यह वर्ग अपनी सत्ता और महत्ताको बढ़ानेमें पागल होगया। फलतः एक-दूसरे शस्त्रजीवीमें अनाथ और निर्बलकी रक्षाके लिए नहीं बल्कि निजी द्वेष और वैरके कारण युद्ध शुरू हुए और उस युद्ध

अग्निमें, जिन लाखों और करोड़ों की रक्षाके लिए उन वर्गोंकी रचना हुईथी या जिनकी रक्षा की बदौलत उन्हें इतना गौरव प्राप्त हुआथा, उन्हीं लाखों-करोड़ों व्यक्तियोंका होम किया गया। इस प्रकार हमारे आर्यावर्त्तका इतिहास, शास्त्र और शस्त्र दोनोंके द्वारा विशेष कलुषित हुआ और अपनी पवित्रताको अखंडित न रख सका।

यही कारण है कि इस देशमें लाखों नहीं बल्कि करोड़ोंकी तादादमें शास्त्रजीवी वर्गके व्यक्तियोंके मौजूद होने हुएभी अज्ञान और विसंवाद का पार नहीं है। इतनाही नहीं, बल्कि इस वर्ग ने उलटा अज्ञान और विसंवादको बढ़ाने तथा पुष्ट करनेमें भी कुछ कम भाग नहीं लिया है! शूद्र और स्त्री वर्गको तो उस ज्ञानका अनधिकारी गिनकर इस वर्गने उनसे सिर्फ़ सेवाही कराई है, परन्तु क्षत्रिय और वैश्य वर्गको ज्ञानका अधिकारी मानते हुएभी उनमें से अज्ञानको हटानेका इस वर्गने कोई शक्य व्यवस्थित प्रयत्न व्यापक रूपसे नहीं किया। शस्त्रजीवी वर्गभी पारस्परिक ईर्षा, भोगविलास और क्लेशके फल स्वरूप अपने देशको, विदेशियोंके आक्रमणसे न बचा सका, और अन्तमें स्वयं गुलाम बन गया। पुरखाओंने अपने हाथमें शास्त्र या शस्त्र लेते समय जो ध्येय बनायाथा, उस ध्येयसे उनकी सन्तान ज्योंही च्युत हुई कि उसे और उसके द्वारा समाजको उसका अनिष्ट परिणाम भुगतना पड़ा। शास्त्रजीवी वर्ग इतना कमज़ोर और पेटू बना कि वह पैसे तथा सत्ताके लिए सत्यको बेचने लगा। शस्त्रजीवी राजा महाराजाओंकी खुशामद करना और उसीमें अपना बड़प्पन समझना, यह शास्त्रजीवियों का कर्त्तव्य होगया। शस्त्रजीवी वर्ग भी अपना कर्त्तव्य पालन करनेके बदले दान-दक्षिणा देकरही इस खुशामदी वर्गके द्वारा अपनी ख्यातिको क़ायम रखनेका प्रयत्न करने लगा। इस प्रकार इन दोनों वर्गोंकी बुद्धि और सत्ताके तेजमें अन्यान्य लोग कुचल दिये गये और अंत में सारा समाज निर्बल बन गया।

हम आजभी अक्सर देखते हैं कि एक उपनिषद् और गीताका पाठ करनेवाला, इन शास्त्रों का पाठ करनेके बाद यह हिसाब लगाता है कि आज दक्षिणामें कितनी कमाई हुई! सप्ताहमें भागवत बाँचनेवाले ब्राह्मणकी दृष्टि सिर्फ दक्षिणा की ओर रहती है। अभ्यासके बलपर वह भागवतके श्लोकोंको उगलता चला जाता है परंतु आँख यही देखा करती है कि किसने दक्षिणा चढ़ाई है और किसने नहीं? दुर्गासप्तशतीका पाठ प्रायः दक्षिणा देनेवाले के ही लिए किया जाता है। गायत्री पाठभी प्रायः दक्षिणा देनेवाले के ही लिये होता है। एक जजमानसे दक्षिणा लेने के लिए शास्त्रजीवी वर्गकी और एक यजमानके यहाँसे सीधा लेनेके लिए उस वर्गकी आपसमें जो मारामारी होती है, उसे एक रोटीके टुकड़े के लिए लड़ने वाले दो कुत्तोंकी उपमा दी जा सकती है। ज़मीनके एक निकम्मे टुकड़ेके लिए भी शास्त्रजीवी वर्ग अदालतमें अब इसी प्रकार लड़ते झगड़ते हैं। अधिक क्या? शास्त्रजीवी वर्गमें जिस स्वार्थ और संकुचितता रूप दोषों का प्रवेश हुआ उसका प्रभाव बौद्धों और जैनों के त्यागी कहे जाने वाले भिक्षुकवर्ग परभी हुआ। इन दो वर्गोंमें ही आपसी फूट और विरोध परिमित न रह सका और उनके अन्तर्गत भेदोंमें भी उसने अपने पैर फैला दिये। दिगम्बर जैन भिक्षु श्वेताम्बर भिक्षुको और श्वेताम्बर भिक्षु दिगम्बर भिक्षुको नीची निगाहसे निहारने लगा! उदारताके बदले दोनोंमें संकुचितता बढ़ने और पुष्ट होने लगी। अन्तमें श्वेताम्बर-भिक्षुवर्गमें भी शास्त्रोंके नाम पर खूब विरोध फैला और तड़ों (गच्छों-फ़िरक़ों) का जन्म हुआ। आध्यात्मिक गिने जाने वाले और आध्यात्मिक

रूपमें पूजे जानेवाले शास्त्रोंका उपयोग, प्रकारांतर से द्रव्योपार्जन करनेमें, विरोधके साथ कड़वास बढ़ानेमें और अपनी अपनी निजी दुकानें चलाने में होने लगा। इसप्रकार शास्त्रने शस्त्रका स्थान ग्रहण कर लिया: और वह भी वास्तवमें शुद्ध शस्त्रका नहीं, वरन ज़हरीले शस्त्रका। यही कारण है कि आज जो क्लेश-कदाग्रहके बीज अधिक दिखाई देते हों या अधिक व्यापकरूपमें क्लेश कदाग्रह फैलानेका सामर्थ्य नज़र आता हो तो वह त्यागी कहाने वाले शास्त्रजीवी वर्गमें ही है और उसका असर जहाँ तहाँ सारे समाज पर फैला हुआ है।

यह तो सब भूतकालकी बात हुई। अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि वर्तमानमें या भविष्यमें क्या करना चाहिए? शास्त्रके कारण फैला हुआ या शस्त्रद्वारा फैलाया हुआ विष क्या इन दोनों को विध्वंस करनेसे दूर हो सकता है? क्या इसके लिए कोई दूसरा मार्ग है? शास्त्र और शस्त्र इन दोनोंके नाशसे क्लेश विष कदापि नष्ट नहीं हो सकता। यूरोपमें शस्त्र घटाने और उन्हें नष्ट करदेनेकी बात चल रही है: परन्तु वृत्तिमें सुधार हुए बिना केवल शस्त्रों के नाशसे कभी शान्ति स्थापित नहीं होसकती। एक कहता है कि वेदका झंडा लहराने लगे तो सारे रगड़े झगड़े, जो पंथोंके संबंधमें होते हैं, न हों: कुरानभक्त भी यही बात कहता है। पर हमें भ्रममें न रहना चाहिए कि एक वेदके अनुयायियों और कुरानके मानने वालोंमें भी आपस में इतनी ही मारामारी होती है। जब एक झण्डे के नीचे दूसरे लोग अधिक संख्यामें आवेंगे तब वर्तमानकाल में जितनी मारामारी है उस की अपेक्षा वह और भी अधिक बढ़ेगी। तब ऐसा कौनसा उपाय है जिससे वैरका विष मटियामेट किया जा सकता है? एक ही उपाय है और वह यही कि उदारता एवं ज्ञानशक्तिकी यदि वृद्धि हुई तो, हम भलेही किसी शास्त्रको मानने वाले हों फिर भी दूसरेके साथ या आपसमें ही भिड़नेका कोई कारण उपस्थित न होगा। आज समाजकी ओरसे जो माँगकी जारही है वह शान्ति एवं एकता की माँग है। उदारता और ज्ञानवृद्धिके बिना ये तत्व प्राप्त नहीं हो सकते। भिन्न-भिन्न शास्त्रोंका अनुसरण करने वाले भिन्न भिन्न पंथ और वर्ग केवल उदारता एवं ज्ञानवृद्धिके बल पर आपसमें हिल-मिल कर संगठन से किये जाते कामों को कर सकते हैं। हम ऐसे बहुतसे पुरुषोंको देखते हैं जो एक पंथ या एक शास्त्रके अनुयायी नहीं हैं फिर भी एक दिलसे समाज और देशका कार्य करते हैं। और हम ऐसे भी बहुतेरे पुरुषोंको देखते हैं जो एकही संप्रदायके शास्त्रोंको समान रूपसे मानते हैं फिर भी हिलमिल कर काम करनेकी बात तो एक ओर रही, एक दूसरे का नाम भी सहन नहीं कर सकते। यह वस्तुस्थिति क्या सूचित करती है, यह कहने की शायदही आवश्यकता हो। जब तक मनमें मैल रहेगा, एक दूसरेके प्रति आदर या तटस्थता न होगी और लेश मात्र भी डाह रहेगी, तब तक भगवानकी साक्षीसे एक शास्त्रको मानने और अनुसरण करनेका व्रत अंगीकार करने परभी एकता कदापि नहीं हो सकेगी—शान्ति स्थापित न होगी। यदि यह सत्य किसीके गले नहीं उतरता तो कहना चाहिए कि वह मनुष्य इतिहास और मानस शास्त्रको समझही नहीं सकता।

अपना समाज और देश क्लेशके भँवरमें फँसा हुआ है। वह अपनसे अधिक नहीं तो इतनी आशा रखताही है कि हम क्लेशका अब अधिक पोषण न करें। यदि अपन उदारता और ज्ञानवृत्ति सीखलें तो ही समाज और देशकी माँगके प्रति हम वफ़ादार रह सकते हैं। जैन

तत्त्वज्ञानमें अनेकान्त और आचारमें अहिंसाको स्थान देनेका उद्देश यही है कि तुम बहैसियत जैनके आपसमें और दूसरोंके साथ उदारता और प्रेमसे वर्त्ताव करो। जहां भेद और विरोध होता है वहीं उदारता और प्रेम काम आता है और वहीं इस बातकी परीक्षा होती है कि वह अन्तःकरणमें है या नहीं? यदि है तो कितनी मात्रामें है? अतएव यदि हम जैनत्वको समझते हों तो सहज ही समझ सकते हैं कि उदारता और प्रेमवृत्ति द्वारा ही हम धर्मकी रक्षा कर सकते हैं, और किसी भी प्रकारसे नहीं। शास्त्र की उत्पत्ति और उसके उपयोगका यही उद्देश है। यदि शास्त्रसे यह उद्देश सिद्ध न किया जाए तो वह रक्षणके बदले विषैले शस्त्रकी नाई भक्षणका काम करेगा और 'शास्त्र' अपना मात्र-गौरव नष्ट करके 'शस्त्र' साबित होगा।

उदारता दो प्रकारकी है:- एक तो विरोधी या भिन्न ध्येय वालेके प्रति मध्यस्थताका अभ्यास करना और दूसरी आदर्शों को महान्-बनाना। जब आदर्श एकदम सँकड़ा होता है— केवल अपने या अपने पंथ तक ही परिमित रहता है तब, चूँकि मनुष्यका मन स्वभावतः विशाल तत्त्वका बना हुआ होता है, इसलिए वह उस सँकड़े आदर्शमें घबराने लगता है और बाहर निकलनेके लिए वैर-विरोधकी खिड़कियाँ खोजता है। मनके सामने यदि विशाल आदर्श रखा जावे तो उसे आवश्यकतानुसार विशाल क्षेत्र मिल जाय और उसकी शक्ति रगड़ों झगड़ों के लिए फ़ालतू न बच पाए। अतएव धर्मप्रेमी बनने की इच्छा रखने वाले प्रत्येक मनुष्यका यह कर्त्तव्य है कि वह अपना आदर्श विशाल बनावे और उसके लिए अपने मन को तैयार करे। दूसरी ओर ज्ञानवृद्धिका अर्थ क्या है? मनुष्य जातिमें स्वभावसे ही ज्ञानकी भूख रहती है। इस भूख को भिन्न-भिन्न पन्थोंके, धर्मोंके, और अन्य अनेक शाखाओंके शास्त्रोंका सहानुभूतिपूर्वक अभ्यास करके शान्त करना चाहिए। सहानुभूति होने पर ही दूसरे दृष्टिकोण-बाजू-को ठीक ठीक समझा जा सकता है। इसप्रकार आज हम अपने अन्दर उदारता और ज्ञानवृद्धि प्रगट होने की भावना उत्पन्न करें।

अनुवादकः—
शोभाचन्द्र भारिल्ल, न्यायतीर्थ।

(मुक्ता-माला)

[२]

होते हैं सन्यासी जग में,
नग्न दिगंबर भी होते।
और शुष्क वैराग्य भावसे,
भेष हुए नर भी होते॥
तर्क, व्याकरण, न्याय, काव्यके,
पंडित भी अनेक होते।
किन्तु बृहत् संसारालयके,
विरले ही सेवक होते॥

हे भाई! यदि तू समाजमें,
अपनी कीर्ति चाहता है।
व्यग्र हो रहा तेरा मानस,
यश को तू कराहता है॥
ठहर! अरे! समाजकी गतिका,
कर पहिले तू अवलोकन।
तब फिर आगे कलम बढ़ाना,
करना सत्य समालोचन॥
लिखने बैठे हो यदि कुछ तो,
ऐसा लिखो अरे प्रियवर।
दुःखी सुखाशासे भरजाए,
हो हताश साहसी प्रवर॥

अरे ! न ऐसा लिखो कि,
जिससे गिरता मानव गिरजाए।
आशा पर जीता मानव,
जगसे हताश होकर जाए॥
मनुज, जाति अथवा समाजका,
करना प्रिय यदि तुम्हें सुधार।
ठहरो ! प्रथम कार्य करने के,
करो हृदयमें पूर्ण विचार॥
सोचो ! कहीं असत् पथ पर तो,
नहीं चले तुम जातेहो।
अरे ! वहां पहिले से अधिक न,
भ्रांति तो तुम पहुँचाते हो॥
यदि परोपकार की टक्कर,
मारती इच्छाएँ उत्कट।
तो तुम अपने मे हे प्रियवर,
मनुष्यत्वको करो प्रकट॥
देख तुम्हारे मनुष्यत्वको,
मानव सृष्टिमध्य अतिश्रेष्ठ।
मनुष्यत्व जागृत होगा होगा,
जगका उपकार यथेष्ट॥
आए कोई निकट तुम्हारे,
यदि सहायता लेनेको।
तुमसे जो कुछ चाह रहा,
तुम हो यदि उत्सुक देनेको॥
तो ठहरो ! मत उसे वही दो,
जो वह माँगरहा, प्रियवर।
किन्तु वही दो जो उसको,
आवश्यक हो एवं हितकर॥
किसी व्यक्तिको अगर उठाना,
आप चाहते हैं ऊपर।
इस प्रकारहों आप खड़े,
हो कन्धा उसके पैरोंपर॥
पर यदि पतित व्यक्तिके सिरपर,
होकर खड़े और झुककर।
उसे उठाना चाहोगेतो,
स्वयं गिरोगे पृथ्वीपर॥
हे सुखवादी बंधु ! ओह तू !
क्या इस कर्म-भूमि जगको।
भोगभूमि चाहता बनाना,
है सुखकी चिंता तुझको॥
अरे क्षमा कर भाई ! इसको,
कर्म-भूमि ही रहने दे।
भोग-भूमि है और कहीं,
मत इसे भोगमें बहने दे॥
वाक्य-प्रहारोंके तूफानों मध्य,
नहीं जो धँस सकता।
घिरा हुआ प्रतिकूल परिस्थिति,
में जो कभी न हँस सकता॥
जग निन्दा, उपहास और अपवाद,
नहीं जो सह सकता।
उसे नहीं कोई नेता,
अथवा सेवक है कह सकता॥
अरे ! नहीं वह समाज सेवक,
जो न साम्हने आता है।
अनुत्साहकी घटा हटा जो,
आगे पद न बढ़ाता है॥
स्वयं नहीं जो आगे बढ़कर,
प्रथम मार्ग दर्शक बनता।
दृढ़ साहस, उत्साह ज्योति जो,
नहीं हृदयतल में भरता॥

जो कुछ हमें नित्य प्रिय लगता,
अन्य पुरुषको किसी प्रकार।
वह प्रिय लगे, उसेही चाहे,
बंधु न ऐसा करो विचार॥
किन्तु सत्यसे और युक्तिसे,
हो जो मनुजोंको प्रियकर।
उन्हें वही प्रियकर होनेदो,
कुढ़ो न तुम मनमें प्रियवर॥
कंदमूल फल, अथवा हरितकायका,
त्याग और! भक्षण।
अथवा भोजन त्याग, कष्ट सह,
करते जो तनका शोषण॥
वह तो त्यागी नहीं, बंधु!
वह तो, हैं सुखके अनुरागी।
प्राप्त सुखोंका जनहित करता
त्याग, वही सच्चा त्यागी॥
सेवाके निष्काम भावसे भरा,
हुआ यदि अन्तर्तम।
तब तो धर्मशास्त्रके पढ़े,
बिना ही सच्चे धार्मिक तुम॥
चाहे किसी देव मन्दिर में,
जाओ अथवा मत जाओ।
शुद्ध हृदय मन्दिर ही है,
उपासनालय, श्रद्धा लाओ॥

—"वत्सल" विशारद।
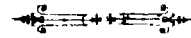
अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषदके दशवें अधिवेशनके सभापति श्री० जमनाप्रसादजी जैन, बैरिस्टर, सबजजके भाषणके कुछ अंश।

उन्नतिकी घुड़दौड़।

प्रिय बन्धुओ! यह युग सुधार और उन्नतिका है। संसार आज बड़े वेगसे आगे बढ़ रहा है। प्रति वर्ष, प्रायः प्रति मास, विज्ञान अपूर्व और विलक्षण खोजों द्वारा मनुष्यसमाजको चकित कररहा है और दूसरी ओर भिन्न भिन्न देशों और राष्ट्रोंकी राज और समाज व्यवस्थामें घोर विप्लव दिखाई देरहा है। उन्नति! उन्नति! हमारी उन्नति! यह दुनियाँकी पुकार है। कई जनसमूह इस उन्नतिकी दौड़में भाग ले रहे हैं; दूसरे. दौड़में प्रतिस्पर्धासे भाग न लेते हुए, इस बिकट परिस्थितिमें अपनी रक्षाके लिये समुचित उपायोंका अवलम्बन ले रहे हैं। इनके अतिरिक्त एक तीसरा भी दल है जो इस दौड़ादौड़को भौंचक्का हुआ देख रहा है, और अपने बचावका कोई उपाय नहीं कर रहा है। इस दलका भाग्य विपद्ग्रस्त दिखाई देता है। सम्भव है, वह उस दौड़में चकनाचूर हो जावे।

प्राचीनकालमें ऐसा हो भी चुका है। बड़े बड़े साम्राज्य और बड़ी बड़ी सभ्यताओंका, समय और परिस्थितिके अनुकूल उपायोंकी अवहेलनाके कारण सत्यानाश हो चुका है। वह पुरानी खाल्डिया और असीरियाकी सभ्यता-शिष्टता आज कहाँ है? गगन चुम्बी पिरैमिड बनानेवाले, और मृत शरीरोंको अपने अनुपम कौशलसे हजारों वर्ष तक सुरक्षित रख सकनेवाले, जादूटोनामें प्रसिद्ध, मिस्रकी राज्यश्री कहाँ विलुप्त हो गई? उत्तम कला और विज्ञानके जन्मदाता यूनानका वैभव अब किधर है? राज्य, समाज और धर्मकी व्यवस्थाके अच्छे अच्छे नियम बनानेवाले रोमके विशाल साम्राज्यको कौन खागया? बिलकुल कलकी ही बात है। परमेश्वरकी स्पर्धा करने वाले मुगल दिल्लीश्वर कहाँ चले गये? रूसके जार का भोगविलास अब कहाँ है? ये सब कालके गाल में विलीन होगये। कारण? कारण एक ही है। उ-

न्होंने समय और परिस्थितिमें परिवर्तनके अनुसार अपने ढंग नहीं बदले।

इस समय हमारे सम्मुख जैनधर्मको रक्षित रखने तथा जैनसमाजको सुदृढ़ और सुव्यवस्थित बनानेका कठिन प्रश्न उपस्थित है। जिनके आँखें हैं वे देख रहे हैं, जिनके कान हैं वे सुन रहे हैं, तथा जिनके बुद्धि है वे समझ रहे हैं कि समाजमें धार्मिक श्रद्धाकी पुरानी नींव डगमगा रही है, सामाजिक बन्धनोंकी ईंटें शिथिल होकर गिर रही हैं, और अन्धविश्वासों की कलई उड़ गई है। क्या अब सारे भवनको जर्जरित होकर गिर पड़ने तक हम इसी प्रकार सुस्त बैठे हुए अपने पूर्व यशके गीत गाते रहेंगे ? क्या उस उन्नतिकी घुड़दौड़में हम अपनेको कुचलवा लेंगे ? यदि नहीं तो, समाजके सम्मुख जो समस्यायें उपस्थित हैं, उन्हें उचित रूपसे शीघ्र हल करनेके उपायों पर विचार कीजिये।

जैन बोर्डिङ्गोंमें ऐक्यकी आवश्यकता।

जैन संस्थाओंमें एक भय यह बना रहता है कि वे बहुत संकीर्ण विचारोंकी पोषक होजाया करती हैं। मेरी समझमें हमें ऐसी शिक्षासंस्थाओंकी आवश्यकता बिलकुल नहीं है जो जैनसमाजमें जातिपाँति भेदकी संकीर्णता विद्यार्थियोंके हृदयमें उत्पन्न करे। मुझे दुःखके साथ कहना पड़ता है कि इस प्रान्तमें 'जैनबोर्डिङ्ग' नामधारी संस्थायें भी इस संकीर्णतासे मुक्त नहीं हैं। जो लोग इस प्रान्तके निवासी नहीं हैं वे कदाचित् समझते होंगे कि अछूत और दलित केवल हिन्दूसमाजमें हैं, जैनसमाजमें नहीं। पर यहाँ जैनियोंमें भी अछूत और दलित विद्यमान हैं उन्हें जैनबोर्डिङ्गमें नहीं रखा जासकता। उन्हें मन्दिरोंके दर्शन नहीं करने दिये जा सकते। हिन्दूसमाजके अछूत और दलितदलने घोर आन्दोलन खड़ा कर दिया है, किन्तु जैनसमाजके अछूतोंने अभी ऐसा नहीं किया। गूढ़ विचार करनेपर मुझे भय होता है कि यह शान्ति और सन्तोषका सूचक नहीं किन्तु समाजमें आगामी एक भयङ्कर तूफानका चिह्न है। इस दलके हृदयमें धीरे धीरे इस जाति अभिमानके प्रति ऐसी घृणा उत्पन्न होरही है जो किसी दिन समाजको बहुत हानिकर होगी। ऐसे बोर्डिङ्गोंको जैन बोर्डिंग नहीं किन्तु एक जाति विशेषके बोर्डिंग कहना चाहिये। जिस जैनमन्दिरमें एक जैनीका प्रवेश नहीं वहाँ कभी किसी तीर्थङ्करकी प्राणप्रतिष्ठा हो ही नहीं सकती। वह असलमें जैनमन्दिर है ही नहीं। ऐसी शिक्षासंस्थाओं और धर्मसंस्थाओंके होनेसे उनका न होना लाख दर्जे अच्छा है। इनसे जैनधर्म और समाजकी उन्नति तो हो ही नहीं सकती, बड़ी भारी अवनति होती है। हमें ऐसी संस्थाओंकी आवश्यकता है जहाँ समस्त जैनी अपनेको एक समझें, पूर्ण प्रेम और समानताका बर्ताव रखें।

जैन साहित्यका प्रकाशन।

एक भविष्यवाणी है कि पंचमकालमें जैनधर्म लुप्त होजायगा। मेरी भावना है कि यह वाणी असत्य सिद्ध हो। किन्तु यदि वह सत्य भी होजावे तो केवल वह जैनधर्मके अनुयायिओंके सम्बन्धमें ही सिद्ध होगी। जैनधर्मको उसके वर्तमान रूपमें माननेवालोंकी संख्या भले ही क्षीण होजावे, किन्तु मुझे दृढ़ विश्वास है कि जैन तीर्थंकरों और आचार्यों का जो शासन है वह कभी लुप्त नहीं हो सकता। वह शासन जिन ग्रन्थोंमें आरूढ़ है, जिन भाषाओं में ग्रंथित है, वे चिरकाल तक जीवित रहेंगे और संसारमें सदैव उनका आदर करनेवाले विद्वान होंगे। इस दृष्टिसे मैं प्राचीन जैनसाहित्यके प्रकाशनकार्य को विशेष महत्व देता हूँ। वह समय दूर नहीं गया जब हमारी समाजमें धार्मिक ग्रन्थोंके छपानेका एक ओरसे बहुत विरोध किया जाता था। हर्षकी बात है कि वह विरोध अब मृतप्राय होचुका है और हमारा बहुतसा धार्मिक साहित्य प्रकाशमें आगया है। इस क्षेत्रमें भारी साहित्यसेवा करनेवाले इस प्रान्तके एक उज्वलरत्न **श्रीयुत नाथूरामजी प्रेमी** का इस समय मुझे स्मरण आये बिना नहीं रहता। आपने जैनग्रन्थरत्नाकरकार्यालयद्वारा और फिर

माणिकचन्द्र ग्रंथमालाद्वारा अनेक ग्रन्थरत्नोंका उद्धार किया है। बहुत दिनोंसे आप अस्वस्थ हैं, तथापि अपने स्वास्थ्य और आरामका ध्यान न कर आप साहित्य-सेवामें संलग्न ही बने रहे हैं। हाल ही कुछ मास पूर्व इस वृद्धावस्थामें आपको पत्नीवियोगका कठिन दुःख सहना पड़ा है, इससे स्वास्थ्य और भी टूट गया है। इस समय भी आप इतने रोगग्रस्त हैं कि इस अधिवेशनमें हमें आपकी उपस्थिति और परिपक्व अनुभव का लाभ नहीं मिल सका। हमारी यह हार्दिक भावना है कि आपको शीघ्र ही आरोग्य लाभ हो ताकि आप पूर्ववत् और भी साहित्यसेवा कर सकें।

आरा निवासी श्रीयुक्त देवेन्द्रकुमारजीने Sacred Books of the Jainas सीरीज द्वारा जैन ग्रन्थोंको अंग्रेजी अनुवाद सहित प्रकट करनेका जो उपक्रम प्रारम्भ किया था वह जैनसाहित्य प्रकाशनके इतिहासमें चिरस्मरणीय रहेगा। अत्यन्त खेदकी बात है कि इस सीरीजके जन्मदाताका नई उम्रमें ही अकस्मात् परलोकवास होजानेसे वह सीरीज बन्द होगई थी। किन्तु हर्ष है कि नवयुवक समाजके प्रिय नेता तथा तीर्थरक्षाके सम्बन्धमें धर्मकी अनुपम सेवा करने वाले, पं० अजितप्रसादजी एडवोकेटके प्रयत्नसे वह अत्यन्त उपयोगी सीरीज अब फिर चालू होगई है। मुझे यह प्रकट करते हुए बहुत आनन्द होता है कि दो और बहुत महत्वपूर्ण ग्रन्थमाला हालही में इसी प्रान्तके एक भाग—बरारमें स्थापित हुई हैं। आपमेंसे बहुतसे सज्जन कदाचित् जानते ही होंगे कि अकोला जिलेके अन्तर्गत कारंजा नगरमें दिगम्बर सम्प्रदाय के तीन गणोंके यह चार पाँच सौ वर्षोंसे प्रतिष्ठित है। इन गणोंके अधिकारमें एक एक शास्त्रभण्डार भी हैं, जिनमें हजारों प्राचीन ग्रन्थ रक्षित हैं। जब सन् १९२४ में प्रान्तीय सरकारकी ओरसे इस प्रांत के संस्कृत प्राकृत ग्रंथोंकी सूची तैयार करनेका कार्य प्रारम्भ हुआ तब इन ग्रंथोंका परिशीलन हमारे बंधु श्रीयुक्त प्रोफेसर हीरालालजी ने किया। उस समय आप अलाहाबाद यूनिवर्सिटीमें खोजका काम और जैनसाहित्यके इतिहासका विशेषरूपसे अध्ययन कररहे थे। उक्तग्रन्थोंकी सूची इस प्रान्तके प्रकाण्ड विद्वान् रायबहादुर हीरालालजी के सम्पादकत्वमें सरकारकी ओरसे प्रकट हो चुकी है। एक ही हीरा या लाल बहुत मूल्यवान् होता है, फिर दो हीरालालों के सहयोगका पूछना ही क्या है? इन दोनों विद्वानों के प्रयत्नसे कारंजामें सैकड़ों वर्षोंसे छिपी हुई जैनियों की साहित्य-सम्पत्तिका ज्ञान संसारको होगया। इन भण्डारोंमें कुछ ग्रन्थ ऐसे मिले जो भाषाकी दृष्टिसे बड़ेही महत्वपूर्ण सिद्ध हुए। सन् १९२५ में श्रीयुक्त हीरालालजी, अमरावती कॉलेजमें प्रोफेसर नियुक्त होगये और आपने उक्त मूल्यवान् साहित्यको प्रकाशित करानेका प्रयत्न प्रारम्भ करदिया जिसके फलस्वरूप कारंजासे दो ग्रन्थमालायें निकलना प्रारम्भ हो गई हैं। इनमें से एक ग्रन्थमालाकी स्थापनाके लिये कारंजा निवासी श्रीयुक्त गोपाल अम्बादासजी चवरे ने अपने स्वर्गीय पूज्य पिताकी स्मृतिमें तीस हजार रुपयोंका ध्रुवफण्ड प्रदान किया है। ऐसे आर्थिकसंकट के समयमें इतना सुन्दर दान देनेके लिये समाज उक्त सेठजीका बहुत आभारी है। ऐसे ही दानाओंकी धर्म बुद्धिपर समाजोन्नतिकी आशायें की जासकती हैं। ऐसी लक्ष्मी सफल है जो चिरस्थायी धर्मसेवामें व्यय हो। इन ग्रन्थमालाओंमें अबतक पाँच ग्रन्थ छप चुके हैं।

इन ग्रन्थोंके तैयार करनेमें और छपानेमें हमारे बन्धु प्रोफेसर हीरालालजीने जो अनुपम परिश्रम किया है उसका अनुमान उन ग्रन्थोंके अवलोकनसे तथा उनपर पूर्व और पश्चिमके अनेक विद्वानों और पत्र पत्रिकाओं द्वारा प्रकाशित अभिप्रायोंको देखने से ही किया जासकता है। उनकी उत्तमता इसीसे सिद्ध है कि जहाँ जैन ग्रन्थोंको वर्षोंके प्रयत्नसे भी यूनिवर्सिटियोंके पठनक्रमोंमें भरती नहीं कराया जा सका, वहाँ ये ग्रन्थ सहज भिन्न भिन्न परीक्षाओंके लिये स्वीकृत हो चुके हैं। हीरालालजीने और भी अनेक भण्डारोंका अवलोकन करके जैनसाहित्यके अनेक उत्तमोत्तम ग्रन्थोंका पता लगाया है। आपने

इस समस्त साहित्यको सुन्दर और विद्वत्तापूर्ण रीतिसे प्रकाशित करानेके आयोजनकी जो स्कीम उपस्थित की है वह अवश्य कार्यमें परिणतकी जानी चाहिये। इस प्रकारके साहित्यप्रकाशनसे संसारको जैनधर्मका जो परिचय मिलता है और उससे जो यश होता है वह अन्य प्रकार लाखों रुपया खर्च करनेसे भी नहीं हो सकता। हीरालालजीकी विज्ञप्तिमें आये हुए निम्न शब्दोंपर विचारकोंको ध्यान देना चाहिये। प्राचीन प्रतिमायें खण्डित हो जाने पर नई प्रतिष्ठित होसकती हैं, पुराने मन्दिर जीर्ण होकर गिर जानेपर उनकी जगह नये खड़े किये जासकते हैं, धर्मके अनुयायियोंकी संख्या कम होजाने पर कदाचित् प्रचार द्वारा बढ़ाई जासकती है; किन्तु प्राचीन आचार्योंके जो शब्द ग्रन्थोंमें ग्रथित हैं उनके एक बार नष्ट हो जाने पर उनका पुनरुद्धार होना असम्भव है। जैनधर्मका इतिहास लिखा जाना अभी तक बाकी है; किन्तु जबतक हमारे पूर्वजोंकी कृतियाँ सात तालोंमें बन्द हैं तबतक उनकी कीर्तिमें कैसे कुछ प्रामाणिक रूपसे कहा जासकता है?

दिगम्बर मुनि।

यह तो हुई जैनशिक्षा, साहित्य, कला और विदेशमें प्रचारकी बात। अब हमें अपने परिवार संगठनके सम्बन्धमें भी विचार करना चाहिये क्योंकि आखिर सब उन्नतिका मूल तो उन्नतिकर्ताओंके सुसंगठन पर ही निर्भर है। हमारे तीर्थङ्करोंने चार संघकी रचना की थी। मुनि, अर्जिका, श्रावक और श्राविका। खेदकी बात है कि इन संघोंमें आज अनेक त्रुटियाँ दिखाई देरही हैं। कुछ ही वर्ष पूर्व कहनेको यह बात थी कि दिगम्बर मुनि अब आजकल नहीं रहे। यदि कोई पूछता था—क्यों? तो हम कह देते थे कि हमारी सम्प्रदाय के मुनि होने के लिये इतने उच्च संयम और ज्ञानकी आवश्यकता है कि वह साधारण व्यक्तियोंके लिये असाध्य है। अब कुछ वर्षोंसे दिगम्बर मुनियोंके दर्शन भी हमें सुलभ होगये हैं। किन्तु इन महापुरुषोंसे समाजकी शिष्टता और सद्विचारपर एक उन्नतिकारक प्रभाव पड़ना चाहिये था किन्तु खेदके साथ कहना पड़ता है कि परिणाम इससे विपरीत ही दृष्टिगोचर होरहा है। मैं इतना अन्धविश्वासी नहीं हूँ कि इस सम्बन्ध के जो समाचार प्रकट होते हैं उन सबपर विश्वास करलूँ। पर इतना अवश्य सिद्ध है कि मुनि महाराजोंका आचार और ज्ञान जिस दर्जेका चाहिये उस दर्जेका नहीं है। श्रावक समाजमें ऐक्य और समानताका उपदेश मुनियोंको उचित है, पर हमारे दुर्भाग्यसे हमारे मुनि स्वयं अपने संघके बीचमें शिष्टता नहीं रख सकते। और श्रावकसंघमें तो उनके द्वारा और अनैक्य ही फैल रहा है। सम्भव है यह दोष हमारे श्रावक भाइयोंका ही हो कि वे मुनियोंको अपने व्यक्तिगत झगड़ोंमें खींचकर उनके पदको धक्का पहुँचवाते हैं। पर हमें या तो अपने मुनिपदकी रक्षा के लिये उन्हें हमारे झगड़ों और दलबन्दियोंके परे रखना चाहिये, या फिर मुनियोंकी ही आवश्यकता न रखना चाहिये। उच्चपद तक न पहुँच पाना बुरा नहीं है, किन्तु उच्चपदको धारण करके या उसका स्वांग बनाकर उसे दूषित करना घोर पातक है। यह हमारी स्त्री समाजकी सद्बुद्धिका उदाहरण है कि उन्होंने अभीतक बहुसंख्यामें अर्जिका वेष बना बना कर उस पवित्र पदको दूषित नहीं किया।

अन्तर्जातीय विवाह।

हमारे श्रावक संघमें 'संघता' के स्थानपर असंघता ही हमें विशेष रूपसे दिखाई देती है। सारी समाज छोटी छोटी टुकड़ियोंमें छिन्नभिन्न है, जो अपनी अपनी ढपली और अपना अपना राग अलापती है। कहनेको सब एक धर्मके, एक आचार विचार के पालक हैं, पर सच्ची आपसी बातोंमें वे एक दूसरेसे उतने ही अलग हैं जितने भिन्नधर्मी व्यक्ति। उनके बीच अन्तर्विवाह तो नहीं होते पर सहभोजनमें भी उन्हें भारी संकोच होता है। ऐसे संकीर्ण हृदयोंको लेकर कहीं ठोस समाज निर्मित होसकता है? हममें इस भेद सहित कभी सच्चा

परस्पर प्रेम नहीं बढ़ सकता। अन्तर्जातीय विवाह की आवश्यकतापर मेरे पूर्व प्राय सभी सभापतियों ने जोर दिया है, अनेक बार प्रस्ताव भी पास होगये हैं, शास्त्रीय वादविवाद भी खूब हो चुका है और कितने ही समझदार 'पण्डित' भी अब इस सुधार के अनुकूल होगये हैं; किन्तु तो भी इसकी अमली कार्रवाई प्रायः नहीं के बराबर है। सज्जन मुझे क्षमा करेंगे यदि मैं इस विषय पर कुछ उत्तेजित हो कर कहूँ कि इस असफलताकी जिम्मेदारी सुधारक दलपर ही है। जो सज्जन इस विषयका जोरसे प्रतिपादन करते हैं और प्रस्ताव लाते हैं वे भी स्वयं अवसर पड़नेपर उसके अनुकूल कार्य नहीं करते। यह हमारी कमजोरी है, भीरुता है। ऐसे सुधारक कहलानेवालोंसे वे स्थितिपालक ही अच्छे हैं जो न कहते हैं न करते हैं। मैं अपने सहयोगी नवयुवकोंसे प्रेरणा करता हूँ कि यदि वे अन्तर्जातीय विवाहके सच्चे पक्षपाती हैं तो यह प्रण करें कि अपने कुटुम्बमें भी जहाँ उनकी जिम्मेदारी है अन्तर्जातीय विवाह ही करेंगे। छोटे मोटे व्यक्तियोंको पहले इस कार्यमें ढकेलना अन्याय है। उन्हें स्थितिपालक दल सहज ही कुचल डालता है और इस प्रकार उन उदाहरणों से इस आन्दोलनमें लाभके स्थानपर हानि होती है। पढ़े लिखे और धनी लोगोंका भी प्रथम इस दिशामें पैर बढ़ना चाहिये।

बालविवाह वृद्धविवाह और कन्याविक्रय।

हर्षकी बात है कि जिस कुप्रथाको रोकनेके लिये हम वर्षोंसे प्रयत्न कर रहे थे, उसके विरुद्ध अब हमें एक अच्छे राज क़ानूनका शस्त्र भी मिल गया है। हमें प्रत्येक नगर और ग्राममें ऐसी एक एक कमेटी बना देना चाहिये जो बालविवाहको रोकनेके लिये शारदा ऐक्टकी सहायता लेवे और उस दिशा में लोगोंको शिक्षित भी करती रहे। वृद्धविवाहको रोकनेके अभिप्रायसे हमारी प्रान्तीय लेजिस्लेटिव कौंसिलके सन्मुख, जैसा मैं ऊपर कह आया हूँ, हमारे स्वर्गीय सिंघई गोकुलचन्दजीका बिल उपस्थित है। प्रस्तावकर्ताके अभावमें सम्भवतः यह बिल अब रद्द समझा जावेगा, किन्तु किसी अन्य समाजहितैषी मेम्बरको यह कार्य अपने हाथमें लेना चाहिये। मैं तो यह चाहता हूँ कि इस प्रकारका कोई क़ानून शारदा ऐक्टके समान असेम्बलीमें पास हो। बालविवाह और वृद्धविवाहके रुकनेसे कन्याविक्रयकी जड़ भी बहुत कुछ कट जायगी। किन्तु इस दूषणकी मूलमें एक भारी समस्या है जिसके कारण इसकी बाहरी नियंत्रणों द्वारा, समुचित रोक होना असम्भव है। यह व्यापारी नियम है कि जहाँ ग्राहकोंकी संख्या ग्राह्य वस्तुसे अधिक है वहाँ उस वस्तुका मूल्य चढ़ जाता है। यह प्रकट सत्य है कि हमारे समाजकी प्रायः सभी जातियोंमें लड़कोंकी अपेक्षा लड़कियोंकी संख्या बहुत ही कम है। उदाहरणार्थ परवार जातिमें सन् १९२४ में छपी डायरेक्टरीके अनुसार विवाहयोग्य पुरुषोंकी संख्या १३३११ और कुमारियोंकी ६७०२ अर्थात् उम्मेदवारोंसे लगभग आधी थी। आजकी स्थिति भी इससे बहुत भिन्न न होगी। जो मा-बाप आर्थिक सङ्कटमें हैं वे इस परिस्थितिसे कुछ लाभ उठा लेवें तो इसमें आश्चर्य क्या है? बात बहुत बुरी है, पर उसको रोकनेका कोई सरल उपाय नहीं है। यदि इस प्रश्नकी जड़में बैठकर विचार करें तो ज्ञात होता है कि इस कठिन परिस्थितिको उत्पन्न करनेका बहुत कुछ उत्तरदायित्व स्वयं हमारे ही ऊपर है। सृष्टिमेंसब प्राणियोंमें उपजकी दृष्टिसे स्त्रीजातिकी संख्या ही अधिक दिखाई देती है। यूरोपके प्रायः सब राष्ट्रोंमें और इस देशकी भी कुछ समाजोंमें स्त्रियोंकी संख्याही अधिक रहती है। हमारी समाज अन्य मनुष्य समाजोंसेकुछ ऐसी विलक्षण नहीं है कि उसमें प्रकृतितः यह नियम बदल जाता हो। यथार्थतः स्वयं उपर्युक्त डायरेक्टरी से यह सिद्ध होता है कि बचपनमें लड़कियोंकी संख्या विशेष रहती है। पर लड़कियोंकी अकालमृत्यु लड़कोंसे अधिक होती है, जिसका कारण

लड़कियोंके प्रति हमारी उदासीनता और लापरवाही है। यह हमारा बड़ा अन्याय है। एक और कारण यह भी है कि जो स्त्रियाँ विधवा होजाती हैं, वे तो ब्रह्मचारिणी रखी जाती हैं. किन्तु जो पुरुष विधुर होजाते हैं वे फ़ौरन फिरसे कुमारियोंके उम्मेदवार बन जाते हैं। इसप्रकार हमने प्रकृतिके नियमको अपने नियमों द्वारा उलट-पुलट कर कन्याविक्रयकी बुरी प्रथाके लिये अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न करली है! और फिर उसे अस्वाभाविक बन्धनों द्वारा रोकनेका यत्न कर रहे हैं।

विधवाओंका प्रश्न उठाते ही हमारी समाजमें एक उथलपुथल मच जाती है और उस क्षोभमें, खेद है कि, इस भारी प्रश्नपर कोई समुचित विचार नहीं होपाता। इस विषय पर खूब लिखा पढ़ा जाचुका और वादविवाद भी होचुके। जिनका विधवाविवाह के पक्षमें दृढ़ सिद्धान्त है वे उसकी अमली कार्रवाई भी कर रहे हैं; जो उसके विरुद्ध दृढ़ श्रद्धानी हैं वे धर्म समझकर शायद अपने मतमें सुखी हैं। सबसे बुरी और शोचनीय अवस्था उन शिथिल बुद्धि वालों की है जिनका हृदय एक ओर है और हाथ दूसरी ओर। यह हमें ध्यानमें रखना चाहिये कि विधवा-विवाहका निषेध भारतवर्षके एक छोटे जनसमुदाय को छोड़, संसार भरमें और कहीं नहीं है। यह बात नहीं है कि विधवाविवाहनिषेधमें बुराइयाँ ही बुराइयाँ हैं और निर्बन्ध हटानेमें भलाइयाँ ही भलाइयाँ। किन्तु मेरी समझमें इस प्रश्न पर शास्त्रकी अपेक्षा प्राणी शास्त्रके नियमानुसार विचार करना उचित है। आज विद्वत्संसारके सन्मुख स्त्रीत्व और पुरुषत्व (Sex) का अध्ययन भी एक भारी विज्ञान है और इस विज्ञानका दर्जा आज अन्य विज्ञानोंसे ऊँचा उठ रहा है। अंग्रेजीमें इस विषयके वैज्ञानिक विवेचन पर सैकड़ों ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं। स्त्रीपुरुष सम्बन्धी नियमोंको समझनेके लिये हमारे स्थितिपालक और सुधारक दोनों दलोंके सज्जनोंको इस विषयका अध्ययन करना चाहिये। बिना स्त्री और पुरुषकी स्वाभाविक प्रवृत्तियोंको समझे, कोरे शास्त्र द्वारा इस महत्वपूर्ण प्रश्नपर विचार करनेवाले नीम-हकीमोंसे इस भीषण रोगका उपचार नहीं होसकता।
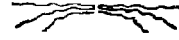
परिषद्के इटारसी अधिवेशनमें स्वीकृत मुख्य प्रस्ताव।

प्रस्ताव नं० २—श्री० गोपाल अम्बादास चवरे कारंजा ने २५०००) रुपयेका दान देकर दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला की स्थापनाकी है तथा उसकी सहायताके लिये श्रीमन्त सेठ लक्ष्मीचन्दजी भेलसाने ११०००) का दान देना निश्चित किया है। यह परिषद इन दोनों श्रीमानोंका अभिनन्दन करती है और आशा करती है कि और भी महानुभाव इन दोनोंका अनुकरण करेंगे।

प्र०—सभापति।

प्रस्ताव नं० ३—रीवां राज्यान्तरगत सतनामें विमानोत्सवकी इजाजत राज्यसे कुछ शर्तोंपर दीगई है, वह शर्तें हटाली जावें व पूर्ण स्वतंत्रता और धर्ममें समानता करदी जावे। नरेन्द्र मंडल और हिन्दू महासभाको बराबरीके अधिकारके लिये लिखा जावे।

प्र०—कन्छेदीलालजी वकील जबलपुर।
स०—बा० फूलचन्दजी वकील जबलपुर व सिंघई श्रीनन्दनलालजी बीना।

प्रस्ताव नं० ४—अन्तर्जातीयविवाह आन्दोलन को कार्यरूपमें परिणत करनेके लिये एक विवाहसंयोजक समिति नियत की जावे, जिसके संचालक बाबू चन्द्रसेनजी जैन वैद्य इटावा नियत किये जाँय। समिति संगठन करनेका अधिकार उक्त संचालकको दिया जाय।

प्र०—पं० बाबूरामजी बज़ाज़ आगरा।
स०—पं० क्षेमंकरजी खण्डवा।
पं० सुन्दरलालजी वैद्य इटारसी।

प्रस्ताव नं० ५—अहिंसा और प्राचीन ज्ञानके प्रचारार्थ जो कार्य निम्नप्रकार हुआ है उसके लिये परिषद् प्रबंधकर्ताओंको बधाई व धन्यवाद देती है।

(१) जर्मन सरकारने अपने राज्यमें संस्कृत शिक्षा को अनिवार्य कर दिया है, तथा

(२) जीते जानवारोंको निर्दयतासे काटना बंदकर दिया है।

(३) लन्दनकी रॉयल सोसायटी फ़ॉर दी प्रोटेक्शन ऑफ़ ऐनीमल्सने प्रत्येक प्रकारके प्राणीके वध व वधके लिये उनके विक्रयके विरुद्ध क़ानून पास करानेका प्रबन्ध किया है। प्र०—डॉ० लक्ष्मीचंदजी ऐम. ए. ऐलऐल. बी., डी. ऐम सी लाहौर। स०—ब्र० सीतलप्रसादजी। बा० उग्रसेनजी ऐडवोकेट रोहतक, पं० बाबूरामजी आगरा।

प्रस्ताव नं० ६—शिकागो (अमेरिका) की सर्वधर्म परिषद्में उपस्थित होकर व जैनधर्म पर भाषण देकर जो प्रभावनाकी है और लंदनमें फ्री ऋषभ जैनलायब्रेरी द्वारा जैनधर्मके प्रचारका जो उद्योग किया है उसके लिये यह परिषद् जैनदर्शनदिवाकर, विद्यावारिधि माननीय बैरिस्टर चम्पतरायजी को कोटिशः धन्यवाद देती है और आशा करती है कि वे पाश्चात्य देशोंमें जैनधर्म प्रचारका काम जारी रक्खेंगे। प्र०—प्रो० हीरालालजी अमरावती। स०—पं० बाबूरामजी बज़ाज़, आगरा।

प्रस्ताव नं० ७—परिषद् १८ वर्षसे कम उम्रकी कन्याओंका विवाह ४५ वर्षसे ऊपर वाले वृद्धोंके साथ होना समाजके लिये घातक समझती है और प्रस्ताव करती है कि व्यवस्थापक सभाके द्वारा एक क़ानून बनाकर ऐसे विवाहोंको बन्दकर दिया जावे। इसको कार्यरूपमें परिणत करनेके लिये किसी एक या अधिक असेम्बलीके मेम्बरकी मार्फत एक बिल असेम्बलीमें पेश कराया जावे। इस कार्यके संचालनके लिये बा० कस्तूरचन्दजी वकील जबलपुर नियत किये जाते हैं। प्र०—फ़तहचन्दजी सेठी। स०—भैयालालजी गाडरवाड़ा।

प्रस्ताव नं० ८—हिन्दी मध्यप्रान्त, मालवा बरार व मराठी मध्यप्रान्त बुन्देलखण्ड, खानदेशमें जैनधर्म प्रचार व जैनसमाजसे कुरीति और व्यर्थव्यय हटानेके लिये निम्नलिखित प्रकार प्रान्तोंमें समितियाँ नियत करती है। प्रत्येक समितिका कार्य होगा कि अपने अपने प्रान्तमें भिन्न भिन्न समाजोंमें अपनी बैठक किया करे और उसमें परिषद् द्वारा स्वीकृत कार्यका विशेष प्रचार किया जावे।

प्रस्ताव नं० १०—जैनसमाजमें साधारण गृहस्थों की स्थिति अनावश्यक खर्चोंके कारण बहुतही करुणाजनक है। उसे हटानेके लिये यह परिषद् नीचे लिखी बातोंकी सम्मति देती है और हर प्रान्तकी प्रचार समिति इस प्रस्तावका समर्थन पंचायतोंसे करावे।

१—कुछ जातियोंमें मरनेके बाद बिरादरीका जीमन या नुक्ता होता है। वह बन्द किया जावे और न कोई लान बाँटी जावे।

२—जन्म वा मुण्डन आदि क्रिया संस्कारमें पूजन पाठके सिवा बिरादरीका जीमन न किया जावे।

३—बारात कन्यावालेके यहाँ दो दिनसे अधिक न रहे।

४—स्वदेशी शुद्ध वस्त्रोंका लेनदेन धार्मिक व विवाह आदि कामोंमें किया जावे।

५—कन्या या पुत्रके बदलेमें कोई धन ठहराकर न लिया जावे। प्र०—कस्तूरचन्दजी वकील जबलपुर। स०—लक्ष्मीचन्दजी वकील ,,

प्रस्ताव नं० ११—जैन समाजमें ऐसे जैनकॉलेज की दीर्घकालसे आवश्यकता है जिसमें दो विभाग हों—एकमें उच्च लौकिक शिक्षा धार्मिक शिक्षाके साथ हो, दूसरेमें उच्च संस्कृत व धार्मिक शिक्षा लौकिक शिक्षाके साथमें हो। हर्षकी बात है कि श्रीयुत पं० गणेशप्रसादजी, भागीरथजी और दीपचन्दजी वर्णीत्रयने इस संस्थाकी स्थापनाके लिये बड़े आत्मबलके साथ उद्योग किया है। यह परिषद् उनके साथ पूर्ण सहानुभूति दिखलाती है और उद्योग करनेके लिये तत्पर है। यदि आवश्यक हो तो, नीचे लिखे सज्जनोंकी कमेटीसे मदद लेली जावे।

प्रो० हीरालालजी अमरावती संयोजक, बा० कन्छेदीलालजी वकील जबलपुर, बा० जमनाप्रसादजी कलरैया सबजज, डॉ० लक्ष्मीचन्दजी लाहौर।

प्र०—पं० तुलसीरामजी बड़ौत।

स०—पं० बंशीधरजी बीना, डॉ० लक्ष्मीचन्दजी, ब्र० सीतलप्रसादजी, बा० राजेन्द्रकुमारजी बिजनौर।

प्रस्ताव नं० १२—जो लड़के व लड़कियाँ सरकारी शालाओंमें लौकिक शिक्षार्थ जाते हैं उनको धार्मिक शिक्षा देना अत्यावश्यक है। परिषद् प्रस्ताव करती है कि स्कूल कॉलेजके अतिरिक्त ऐसी धर्मशिक्षाशालाएँ यत्रतत्र स्थापित होने चाहिये तथा ऐसी शालाओंकी परीक्षा परिषद्के परीक्षा बोर्डद्वारा कराई जावे।

प्र०—श्रीमती रामदेवी देहली।

स०—मास्टर चेतनदासजी।

प्रस्ताव नं० १३—भारतीय एवं प्रान्तीय सरकार

द्वारा महावीरजयन्ती व अनन्तचतुर्दशीकी गज़टेड छुट्टियाँ स्वीकार कराई जावें ।

प्र०—उग्रसेनजी एम० ए० ऐलऐल० बी० वकील ।

स०—रघुनन्दनप्रसादजी वकील ।

प्रस्ताव नं० १४—जैनध्वजाका रूप जैन धर्मानुसार होना चाहिये । उसका स्वरूप इस प्रकार रहे कि जो सर्व जैन आम्नायानुकूल हो और इसके लिये सर्व आम्नायके विद्वानोंकी राय निश्चित करनेके लिये एक नीचे लिखी कमेटी बनाई जावे जो ध्वजाके सम्बन्धमें आगामी अधिवेशन तक अपनी रिपोर्ट पेश करे ।

१—प्रोफ़ेसर हीरालालजी मन्त्री २—पं० तुलसीरामजी बड़ौत, ३—पं० जगमोहनलालजी कटनी ।

प्र०—पन्नालालजी नागपुर ।

स०—पं०बालचन्दजी दमोह ।

प्रस्ताव नं० १५—कहीं कहीं व कुछ संस्थाओंमें चौथेके पावार व विनैकावाल जातिके व्यक्तियोंको जैन मन्दिरके दर्शन पूजन करने व जैन बोर्डिंग और जैन शिक्षालयोंमें भर्ती होनेका प्राप्तित अधिकार रोका गया है। अतएव परिषद् प्रस्ताव करती है कि जैन मन्दिर व जैन शिक्षासंस्थाओंमें समस्त जैन मात्रको समान अधिकार दिये जाने चाहियें, और कोई भेदभाव नहीं रखा जाना चाहिये । प्र०—पं० लोकमणिजी गोटेगाँव ।

स०— चौधरी मुलामचन्दजी ,,

प्रस्ताव नं० १६—अत्यन्त खेदकी बात है कि कतिपय जैन त्यागी व पण्डितों द्वारा त्रिवर्णाचार, चर्चासागर, सूर्यप्रकाश, दानविचार जैसी भ्रष्ट और अप्रामाणिक, पुस्तकोंका जैन शास्त्रोंके नामपर प्रचार किया जारहा है । परिषद् उनकी इस कृतिको घृणाकी दृष्टिसे देखती है तथा जैन समाजसे अनुरोध करती है कि वह ऐसे साहित्यसे सावधान रहे । जिन विद्वानोंने सच्चे जैन साहित्यकी रक्षाके लिये उपर्युक्त पुस्तकोंकी समीक्षा प्रकाशितकी है उनका परिषद् अभिनन्दन करती है ।

प्र०—पं० लोकमणिजी गोटेगाँव ।

स०—पं० जगमोहनलालजी कटनी ।

प्रस्ताव नं० १७—यह देखा जाता है कि कहीं कहीं पर कोई अपराध होने पर किसी किसी स्त्री या पुरुषको समाज मन्दिरसे बन्द कर देती है तथा आजीवन के लिये जातिसे बहिष्कृत कर देती है । परिषदकी सम्मति में किसी व्यक्तिका मन्दिर बन्द कर देना सर्वथा अनुचित है । इसलिये यह परिषद् प्रस्ताव करती है कि मन्दिर जाना किसी स्त्री पुरुषका बन्द न किया जावे । यदि अपराधी अपना अपराध कबूल करले या जाति उसके विरुद्ध अपराध सिद्ध समझे तो उसी अपराधके अनुसार दण्ड देवे । यदि अपराधी दण्ड न लेवे और अपना आचरणको न सुधारे तो जाति को अधिकार होगा कि वह उसे जातिसे बहिष्कृत कर देवे ।

प्र०—भैयालालजी गाडरवारा ।

स०—पं० जगमोहनलालजी कटनी ।
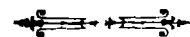
युवक से ।

युवक किंचित् हताश मत होना
बढ़ते जाना, जीवनका मत व्यर्थ एक क्षण खोना ॥
पड़ा तरंगोंमें है, नाविक का कुछ पता नहीं है ।
अंधकार ही अंधकार है किन्तु नहीं तुम रोना ॥१
चारों ओर मरुस्थल, हरियाली न कहीं दिखती है ।
बनकर के कर्मण्य तुम्हें है बीज इसी में बोना ॥२
आह ! तीक्ष्ण कंटक कितने हा ! इसमें बिछे हुए हैं।
हिचको मत ! ऐ तुम्हें ! तुम्हें हाँ इस पर ही है सोना ॥
तीव्र आँच लगने दो हाँ हाँ होने दो पीड़ा भी।
खेद न लाना बन जाने दो इसको सच्चा सोना ॥४

—"वत्सल" विशारद ।
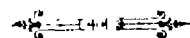
धर्मके ढोंगी ।

पूजन जिनेन्द्र भगवान की करेंगे रोज,
शास्त्र पढ़नेमें खूब मनको लगाएँगे ।
प्रातःकाल शामको जपेंगे मंत्र णमोकार,
बैठ दृढ़ आसन पै ध्यानी से कहाएँगे ।
दया धर्म की विशेष लम्बी लम्बी बातें करें,
अष्टमी चतुर्दशी को हरी भी न खाएँगे ।
किन्तु दया, सत्य, ऋजुता से रहें दूर "प्रेम"
ऐसे धर्मढोंगी कैसे धर्म पंथ पाएँगे ?

—ब्र० प्रेमसागर पञ्चरत्न रैपुरा ।

गुजरात दिगम्बर जैनसभा सूरतके सभापति श्री० सेठ ताराचन्द नवलचन्द जवेरी

के भाषणका मुख्य अंश।

सुधार और परिवर्तन।

जिस प्रकार मनुष्यको ऋतुपरिवर्तनके अनुसार वेष परिवर्तन करना पड़ता है, उसी प्रकार समाजोंको भी क्षेत्र कालके बदलनेपर परिवर्तनकी आवश्यकता होती है। इसी परिवर्तनका नाम सुधार है। जिस समय भोगभूमि थी उस समयका रहन सहन बिल्कुल जुदा था। कर्मभूमिके आनेपर युग बदला, तब समयानुसार सुधार करने वाले एक पर एक सुधारक आने लगे। जैनशास्त्रोंके अनुसार भगवान ऋषभदेवके पहिले चौदह सुधारक हो चुके थे, जिनको कुलकर कहते हैं। भगवान ऋषभदेव और उनके पुत्र सम्राट् भरत भी सुधारक थे, इसलिये उनको भी कुलकर कहते हैं। ये सुधारक युगके आदिमें हुए थे इसलिये उनके नाम अपने को मालूम हैं; परन्तु इसके पीछे असंख्य सुधारक होते रहे हैं, जिनके नाम याद रखना या लिखना असम्भव था इसलिये हम अज्ञातरूपमें ही उनको जानते हैं।

किसी भी समाजका इतिहास उसके सुधारों, परिवर्तनों और सुधारकोंका इतिहास होता है। ऐतिहासिक युगके इनेगिने तीन चार हज़ार वर्षोंमें सिर्फ़ भारतवर्षमें ही जितने धार्मिक और सामाजिक परिवर्तन हुए हैं, उन पर एक सरसरी नज़र डालनेसे हमें आश्चर्यचकित होना पड़ता है। चन्द्रगुप्तके समय हमारा जीवन क्या था और फिर अशोकके समय कैसा हुआ, फिर शङ्कराचार्यके बाद हम किस प्रवाहमें बहे, इन सब बातोंकी हम कठिनतासे कल्पना ही कर सकते हैं। आजकल बहुतसे लोग तो इस बातकी कल्पना भी नहीं कर सकते कि हमारे पूर्वज उस प्रकारका जीवन व्यतीत करते थे जिसका नाम सुननेसे हमारे पैरोंके नीचेसे ज़मीन खिसकने लगती है। बहुतसे लोग तो प्रत्येक रूढ़िको अनादि मानते हैं। परन्तु आजसे पचास वर्ष पहिले हमारा रहन सहन, आचार विचार कैसा था इसपर थोड़ासा भी ध्यान दिया जाय तो हम अच्छी तरहसे कल्पना कर सकते हैं कि हम दो चारसौ वर्ष पहिले कैसे होंगे। इन सैकड़ों वर्षोंमें हमने सैकड़ों रूढ़ियोंको छोड़ा है और सैकड़ोंको अपनाया है। अगर हमने ऐसा न किया होता तो दुनियाँमें आज हमारा अस्तित्व ही न होता।

मैं यह नहीं कहता कि हरएक पुरानी चीज़ छोड़ देना चाहिये, परन्तु यह भी नहीं कहता कि हरएक नयी चीज़ बुरी है। हमें नये—पुरानेका विचार ही छोड़ देना चाहिये; सिर्फ़ इसी बातका विचार करना चाहिये कि हमारा कल्याण किसमें है। हम जितने प्रयत्न करते हैं सब कल्याणके लिये करते हैं। समाजके बन्धन, धार्मिक बन्धन कल्याणके लिये हैं, जीवनको जकड़नेके लिये नहीं हैं।

जिस प्रकार हम समय समयपर कपड़े बदलते हैं उसी प्रकार हमें सामाजिक बन्धनोंको बदलनेकी ज़रूरत है। पाँच वर्षका बालक जो कपड़े पहिनता था उसे अगर बीस वर्षका हो जानेपर वे ही कपड़े पहिनायें जाँय तो वह नहीं पहिन सकता; शरीरके विस्तारके साथ उसके कपड़ोंका विस्तार भी होना आवश्यक है। आज विज्ञानने हमारे शरीरको बहुत विस्तृत बना दिया है। आज कलकत्ता और बम्बई एक ही शहरके दो मुहल्लेसे मालूम होते हैं। ऐसी हालतमें हमारी जातीयता और सामाजिकता एक छोटेसे संकुचितक्षेत्रमें कैसे निर्वाह कर सकती है?

अपनी जातीयता।

हम लोग जैन हैं और जैन शास्त्रोंके देखनेसे मालूम होता है कि जैनधर्मके अनुसार जातीयताकी सीमा बहुत विशाल है। जैनशास्त्रोंके शब्दोंमें 'मनुष्य' एक ही जाति है। यह उसका सिद्धान्त वाक्य ही नहीं है किन्तु उसका कथा साहित्य इसीप्रकार 'मनुष्यता' से भरा हुआ है। हम लोग किसी भी जाति या वर्णके हों परन्तु आखिर सब आर्य ही हैं। परन्तु हमारे पूर्वज जिन्हें कि हम पुण्य पुरुष, शलाका पुरुष आदि शब्दोंसे पुकारते हैं, आर्योंके

साथ ही नहीं, किन्तु म्लेच्छों तकसे सम्बन्ध करते थे और उन म्लेच्छ पत्नियोंकी सन्तान मुनि बनती थीं, मोक्ष जाती थी। मैं नहीं समझता कि मोक्ष प्राप्त करनेसे बड़ा अधिकार और कौनसा है, जो उनको प्राप्त न हो सके ?

हमारे शास्त्रोंमें स्वयंवरोंका उल्लेख आता है, परन्तु यह कहीं नहीं आता कि स्वम्बरके लिये सजातीय वर ही निमन्त्रित किये गये थे। बल्कि ऐसा ही उल्लेख मिलता है कि स्वयंवरमें वरण करनेके लिये ब्राह्मण क्षत्रिय आदि सभी जातियोंके लोग आते थे। इस प्रकार जैन शास्त्रोंकी उदारताका परिचय हमें पद पदपर मिलता है। परन्तु आज शास्त्रोंकी यहाँ चर्चा करनेकी विशेष ज़रूरत नहीं है। पिछले आठ नौ वर्षमें यह आन्दोलन खूब ज़ोरशोर से चल चुका है। विजातीय विवाहके समर्थक विद्वानोंकी संख्या और इनका व्यक्तित्व इतना विशाल है और जैन मित्र, जैनजगत, वीर आदि पत्रोंमें यह चर्चा इतने अच्छे ढंगसे चल चुकी है कि अब किसी भी विचारशील मनुष्य के हृदयमें अन्तर्जातीय विवाहकी धार्मिकतामें संदेह नहीं रह गया है। स्वर्गीय पं० गोपालदासजी बरैयासे लेकर आजके दर्जनों पंडितोंने इसका ज़ोरदार समर्थन किया है और कर रहे हैं। तदनुसार बीसों अन्तर्जातीय विवाह हो चुके हैं और नागपुर तरफ़ की तो अनेक जातियाँ पंचायती निर्णय करके बिलकुल मिल गई हैं।

अंतर्जातीय विवाह।

गुजरातके सामने अन्तर्जातीय विवाहकी धार्मिकता अधार्मिकताका विचार व्यर्थ ही है। यह पिसेको पीसना है। गुजरातकी जातियोंके पंच अन्तर्जातीय विवाहको धार्मिक ही समझते हैं, इतना ही नहीं किन्तु इसे यथाशक्ति कार्य रूपमें परिणत भी करते आरहे हैं। आज तो हमें सिर्फ़ यह विचार करना है कि विजातीय विवाहको संयममें रखकर हम उसे किस तरह विशेष कार्य रूपमें परिणत कर सकते हैं।

गुजरातमें आज बीसा हूमड, दशा हूमड, मेवाड़ा, नृसिंहपुरा और रायकवाल ये पाँच दिगम्बर जैन जातियाँ मुख्य हैं, जिनमें सम्भवतः आठ दस हज़ार मनुष्य होंगे! अल्पसंख्या होनेसे इनमें बेटी व्यवहारकी अनेक कठिनाइयाँ आरही हैं। अनेक जगह कन्याओंकी अधिकतासे उन्हें सुयोग्य वर नहीं मिलते। अनेक जगह अविवाहित युवकोंकी संख्या अधिक होनेसे कन्याएँ नहीं मिलतीं। इसके लिये बाहरसे कन्या लाने की छूट देनी पड़ती है, जिससे कन्याविक्रयको उत्तेजन मिलता है। कहीं कहीं कन्याविक्रयको रोकनेके लिये जो प्रयत्न किये गये उनसे कुलवान अकुलवानका भेद पैदा होगया। अकुलवानोंको कन्याका कष्ट होने लगा तब उनने आपसमें संगठन किया। इससे एक नयी दलबन्दी हुई। इसके अतिरिक्त ग्राम और नगरमें बेटीव्यवहार बन्द सरीखा हो गया है। इत्यादि बहुतसी समस्याएँ हैं जिन्हें सुलझानेके लिये हमें सहयोग और विश्वासपूर्वक प्रयत्न करना चाहिये। यहाँ मैं छोटी छोटी बातोंमें नहीं उतरता, यहाँ तो सिर्फ़ इतना ही कहता हूँ कि हमें अपने जातीयताके दायरेको विशाल से विशाल बनाना चाहिये। हमें सुव्यवस्था रखना ज़रूरी है, परन्तु साथ ही किसीकी स्वतन्त्रता नहीं छीनना है। समाजशास्त्रके नियमानुसार वह समाज उतना ही उन्नत कहलाता है जो सुव्यवस्था रखते हुए, व्यक्तिगत स्वतन्त्रतापर कमसे कम अंकुश रखता है।

अंतर्जातीय विवाहसे लाभ।

अन्तर्जातीय विवाहसे हम स्वतन्त्रता और सुव्यवस्था दोनोंको कायम रख सकेंगे। इसके लाभ बहुत हैं। विवाहका मुख्य उद्देश्य इससे पूरा होता है। वास्तवमें विवाह एक पुनर्जन्म है। अन्तर इतना ही है कि जन्मके विषयमें हमारी इच्छा कुछ भी काम नहीं कर सकती, जब कि विवाहरूपी पुनर्जन्मके विषयमें हम बहुत कुछ स्वतन्त्र हैं। इसलिये वर कन्याके चुनावमें खूबही सतर्कता रखनेकी ज़रूरत है।

मित्रता या प्रेम उन्हींमें होता है और स्थिर रहता है जिनमें समानता होती है। पतिपत्नीकी मैत्री अखंड मैत्री है। इसके लिये समानताकी आवश्यकता बहुत अधिक है। दोनोंकी शिक्षण सम्बन्धी, शारीरिक तथा सदाचार आदिकी योग्यता उचित न हो, दोनोंका स्वभाव एक दूसरेके अनुकूल न हो तो गार्हस्थजीवन नारकीय जीवन बन जाता है। छोटेसे क्षेत्रमें चुनाव करना बहुत कठिन है। परिस्थिति इतनी विषमतापूर्ण है कि उसमें समानता ढूंढनेके लिये जितना अधिक क्षेत्र मिले उतना ही अच्छा चुनाव होता है। गुजरातके लिये एक दूसरी सुविधा भी है। कल्पना कीजिये कि एक गाँवमें अविव

जातियोंके पाँच पाँच घर हैं। उन घरोंमें वर और कन्या की योग्य संख्या रहनेपर भी जातिभेद होनेसे परस्पर सम्बन्ध नहीं होने पाता। इसलिये लोग दूसरे ग्रामोंमें कन्याएँ देते हैं। और जब दूसरे ग्रामोंमें कन्या देना है तब नगरकी तरफ़का आकर्षण होनेसे गाँवों की कन्याएँ शहरोंमें बहुत आजाती हैं। अन्तर्जातीय विवाहसे जब क्षेत्र विशाल हो जायगा तब गाँवमें ही या आस पास योग्य चुनाव हो सकेगा।

दूसरी बात यह है कि अन्तर्जातीय विवाहसे वर कन्याओंकी कमी-बेशीकी समस्या भी अमुक अंशमें हल हो जायगी। मुझे मालूम हुआ है कि किसी किसी जाति में कन्याओंकी संख्या वरोंसे ज्यादः है और किसी किसी में वरोंकी संख्या ज्यादः है। अगर दोनोंका सम्बन्ध होने लगे तो दोनोंको सुभीता होगा।

तीसरी बात यह है कि अन्तर्जातीय विवाहसे प्रेम-वृद्धि होगी। जहाँ बेटीव्यवहार होने लगता है, वहाँ प्रेम बढ़ता ही है। इससे जातीय अभिमान कम होकर सामाजिक वात्सल्यका भाव प्रगट होता है। हम एक दूसरे को बहुत निकटका समझने लगते हैं।

अन्तर्जातीय विवाहकी प्रथा न होनेसे कभी कभी बड़ी बड़ी हानियाँ होती हैं। **विवाहका क्षेत्र न मिलनेसे लोग विधर्मी होजाते हैं। इस हानिका बड़ा भारी स्मारक इसी सूरत व अहमदाबाद वगैरह के मेवाड़ा भाइयोंके जैनमन्दिर हैं, जो बेटीव्यवहार न होनेसे ही वैष्णव होगये हैं।** उनने पंचों को पहिलेसे सूचनाभी दी, परन्तु कुछ इलाज न होसका। तब उन लोगोंने जैनधर्म छोड़कर वैष्णवोंके साथ सम्बन्ध जोड़ लिया। यदि अन्तर्जातीय विवाहकी प्रथा होतीतो ऐसा मौक़ा कभी न आता।

आज गुजरातमें जब किसीको जैनसमाजमें लड़की नहीं मिलती तब वह कहींसे भी लड़की ले आता है। यद्यपि यह प्रसन्नताकी बात है कि पंच लोग इस बातका विरोध नहीं करते; परन्तु क्या ऐसे विवाहोंसे दो कुटुम्बोंमें प्रेम बढ़ता है? क्या उसका सामाजिकप्रेम पहिलेकेही समान होता है? क्या उचित संस्कारवाली पत्नी मिलती है? इनका उत्तर निषेधमें ही है।

जिनको हम जाति कहते हैं, वास्तवमें वे जातिही नहीं हैं। वे तो एक कुटुम्ब या सम्बन्धी कुटुम्बोंका समूह हैं। इसलिये सच पूछा जायतो जातिके बाहर बेटी व्यवहार करनाही उचित है। हमारी जातियाँ किसी समयमें एक एक गाँवके कुटुम्बोंका समूह थीं। उनके नामभी ग्रामों पर हैं। इसलिये आज हम जिसे अन्तर्जातीय विवाह कहते हैं वह एकही जातिकी अनेक ज्ञातियोंमें होनेवाले विवाह हैं। इस प्रकार भी यह उचित है।

अगर हम अन्तर्जातीय विवाहकी प्रथाको न अपनायेंगे तो हमारी आगामी पीढ़ी हमारे साथ विद्रोह करेगी। तब यह विस्फोट इतना भयंकर और विशाल होगा कि वह मर्यादाका बंधन न रहने देगा। न जातिका बंधन रहेगा, न धर्मका बंधन रहेगा। और वह हमारे लिये एक बहुत बुरा दिन होगा। इसलिये हमें अन्तर्जातीय विवाहको अपनाकर जैनत्व तथा उदारताका परिचय देकर अपनी वैवाहिक समस्याओंको हल करना चाहिये।

अन्तर्जातीय विवाहसे अनेक वैवाहिक कठिनाइयाँ दूर होजायँगी, किन्तु इसके साथ समाज सुधारका काम पूरा नहीं होता। स्त्रीसमाजकी आधी दुनियाकी अनेक समस्याएँ अबभी हमारे सामने खड़ी रहती हैं। जैनधर्मने स्त्री पुरुषों को समान अधिकार दिये हैं। जैनधर्म समताका संदेश पहुँचाता है इसलिये अधिकारके नामपर हम स्त्रियोंको दबाये रखना चाहें तो यह अन्याय होगा। और देशकाल ऐसा है कि हम इस अन्यायमें सफल भी नहीं होसकते। इसलिये हमें निःपक्ष होकर सिर्फ़ समाजके कल्याणकी भावनासे समस्याओंको हल करना चाहिये। रूढ़ियोंकी दुहाई देना जैनियोंको शोभा नहीं देता।

विधवाओं की स्थिति।

हमारी समाजमें विधवाओंकी संख्या कम नहीं है। **दुर्भाग्य यह है कि विधवा होजाने पर भी उनके पास हृदय रहता है और उसमें वेदना भी होती है।** मानव जीवनके जितने मर्मस्थान हैं, वे उनमेंभी ज्योंके त्यों बने रहते हैं। **इस प्रकार वे जलती हुई पुतलियाँ जब समाजके भीतर रहेंगी तो क्या हमें उनकी आँच न लगेगी?** हम आँख बन्द करके बैठे रहें तो यह होसकता है कि आग दिखलाई न दे, परन्तु यह नहीं हो सकता कि वह जलाना बन्द करदे। इसलिये

लोहड़साजन व बड़साजनोंके परस्पर बेटीव्यवहार का विवरण ।

इस समय मुनि चन्द्रसागरजी की कृपासे लोहड़साजनोंके आन्दोलनोंने विकट रूप धारण कर रक्खा है। वे कहते हैं कि लोहड़साजन दस्सा हैं, इन्हें पूजा प्रक्षाल करनेका कोई अधिकार नहीं है, कच्चे पक्के भोजनव्यवहारमें भी इनको शामिल नहीं करना चाहिये, आदि। इनके द्वारा द्वेषवश फैलाई हुई इस गलत धारणाको दूर करनेके लिये हमने यहाँ लोहड़साजनोंके साथमें बड़साजनोंके वैवाहिक सम्बन्धका ब्यौरा खुलासारूपमें पाठकोंकी जानकारीके लिये बतलाया है। हमने अभी केवल मुरादाबाद प्रान्त दिल्ली आदि स्थानोंके वैवाहिक सम्बन्धका ब्यौरा और वहाँ से आई हुई कुछ सम्मतियें प्रकाशित की हैं, जिससे जनताको मालूम होजाय कि लोहड़साजनोंके साथ बड़साजनोंका न केवल कच्चे पक्के भोजन व्यवहारका ही सम्बन्ध है, अपितु बड़े बड़े घरानोंमें साक्षात या परम्परा किसी न किसी रूपमें बेटीव्यवहार भी चालू है। इस सम्बन्धमें हमने सैकड़ों सम्बन्धोंके साथ साथ बहुतसी सम्मतियोंका संग्रह किया है, जिन्हें अति शीघ्र एक बृहत् पुस्तकाकारमें प्रकाशित करने वाले हैं। इन थोड़ीसी सम्मतियों और सम्बन्धोंका ब्यौरा इसलिये अति शीघ्र प्रकाशित करना पड़ा कि मुनि चन्द्रसागरजी तीव्रवेगसे जनतामें गलत धारणा फैला रहे हैं और उत्पात मचा रहे हैं। हमें आशा है कि इन कुछ सम्बन्धों और सम्मतियोंको देखकर समाजका भ्रम दूर हो जायगा जिससे भोली जनता मुनि चन्द्रसागरजीके बहकावेमें न आवे।

समाजहितैषी—कन्हैयालाल शास्त्री।

(१)

मुरादाबाद प्रान्तके पंचोंकी सम्मति।

श्रीमान् पं० कन्हैयालालजी साहिब जयपुर। जोग लिखी मुरादाबाद प्रान्त से समस्त दिगम्बर जैन खंडेलवाल पंचान केन धर्मस्नेह जुहारु बंचना। आगे लोहड़साजन बड़साजन के विषयको लेकर इस समयमें जो समाजमें आन्दोलन चलरहा है इसमें इधर हमको पत्र वगैरा पढ़ने तथा सुननेसे मालूम अफ़सोस तथा खेद होता है। इस प्रकार विद्वानों तथा समाजके कार्यकर्ताओंको समाजमें फिजूल दलील खड़ी करना उचित नहीं है। लोहड़साजन बड़साजनमें कोई भेदभाव नहीं है। बड़साजनसे लोहड़साजनों को हीन मानना अथवा लोहड़साजनोंसे बड़साजनोंको हीन मानना बिलकुल भूल है। हमारे इधर तो लोहड़साजन बड़साजनमें परस्पर रोटी-बेटीव्यवहार चालू है कोई रुकावट नहीं है, तथा बड़े बड़े प्रतिष्ठित महानुभावोंसे लोहड़साजनोंका सम्बन्ध बड़साजनोंसे है अथवा बड़साजनोंका लोहड़साजनोंसे चला आरहा है। सिर्फ दस्साओंसे रोटीबेटीव्यवहार नहीं है। लोहड़साजन बड़साजनमें परस्पर विवाह सम्बन्ध हुये हैं जिसकी बृहत् सूची भूरामलजी जागा जयपुर निवासी जो इधर दस्तखतशुदा तैयार करके आपके पास लारहे हैं, वह आपकी तथा जैनसमाजकी सेवामें पेश करेंगे। वह सूची बिलकुल ठीक है। समस्त दिगम्बर जैन खंडेलवाल समाजसे भी निवेदन है कि फिजूलसी बातोंकी थोथी दलील खड़ी करके समाज में अशान्ति पैदा नहीं होने देंगे। आशा है हमारे निवेदन पर ध्यान देंगे। मिती आसोज सुदी ७ सम्वत् १९९० विक्रम ता० २५ सितम्बर सन् १९३३ ई०।

१ द० बसन्तलाल गोत्र बंब रायबहादुर ऐडवोकेट मुरादाबाद (खत अंग्रेजी)

२ द० वैद्य शंकरलाल वज मुरादाबाद
३ द० सुन्दरलाल जैन मोठिया वकील
४ द० प्यारेलाल कासलीवाल मुरादाबाद
५ द० मोतीलाल बैद जड़वार
६ द० पन्नालाल बैद ,,
७ द० खूबचन्द बैद
८ द० सिपाईलाल पाटनी राज थल
९ द० विहारीलाल सर्राफ उपमंत्री अहिक्षेत्र राम-
नगर । गोत्र बैद
१० द० दुर्गाप्रसाद बैद वहजोई
११ मुकटबिहारीलाल जैन बंब रामपुर स्टेट
१२ शिखरचंद्र जैन अजमेरा चंदौसी
१३ भानकुमार बंब रामपुर स्टेट
१४ माणकचन्द जैन लुहाड्या चन्दौसी
१५ सेठ कल्याणदास अजमेरा चंदौसी
१६ निर्मलचंद पदमचन्द पोटनीलाल चंदौसी
आगरे वाले
१७ शोभाराम श्रीराम व० गुलाबचन्द बड़जात्या
चंदौसी
१८ फकीरचन्द बैद कुन्दरखी स्टाम्पफरोश
१९ रतनलाल पहाड़िया कुन्दरखी (खत अंग्रेज़ी)
२० चांदबिहारीलाल सोनी मारफत कुंजबिहारीलाल
सोनी रईस नगरिया कुन्दरखी (खत अंग्रेज़ी)
२१ जगन्नाथराय जैन नरसीदास सोनी कुंदरखी
जिला मुरादाबाद (खत अंग्रेज़ी)
२२ बनवारीलाल जैन पाड्या कुन्दरखी
२३ केशोशरण लुहाड़िया हरियाना
२४ प्यारेलाल सोनी हरियाना
२५ त्रिलोकचन्द जैन (खत उर्दू)
२६ छोटेलाल सोनी हरियाना
२७ चांदबिहारीलाल लुहाड़िया हरियाना (खत उर्दू)
२८ मुकटलाल ,, ,,
२९ बृजलाल ,, ,,
३० कपूरचन्द लुहाड़िया हरियाना
३१ श्यामलाल ,, ,,
३२ बृजलाल पहाड़िया कुन्दरखी
३३ रामगोपाल पहाड़िया कुन्दरखी (खत उर्दू)
३४ बासीलाल बंब कुन्दरखी
३५ जुगलकिशोर बाकलीवाल मुरादाबाद
३६ प्रद्युम्नकुमार सेठी मुरादाबाद
३७ रामस्वरूप बृजलाल सेठी मुरादाबाद
३८ ज्वालाप्रसाद कासलीवाल ,,
३९ घासीराम बैद ,,
४० रामशरण सेठी ,,
४१ रामगुलाब चेत्रपाल (छाबड़ा) मुरादाबाद
४२ सिपाईलाल सेठी जसपुर
४३ बांकेलाल सेठी मुरादाबाद
४४ जिनदास जैन ,,
४५ बृजनन्दन मोठिया ,,
४६ नन्दकिशोर सेठी ,,
४७ रामशरण कासलीवाल ,,
४८ रतनलाल सेठी ,,
४९ पं० चुन्नीलाल बसन्तराय ,,
५० रामस्वरूप कासलीवाल ,,
५१ रामस्वरूप बंब बरेलिया
५२ बाबूराम लुहाड़िया मुरादाबाद
५३ फकीरचन्द लुहाड़िया (खत उर्दू) ,,
५४ अवधबिहारीलाल बोहरा ,,
५५ मुन्नालाल बोहरा ,,
५६ मुकटबिहारीलाल बोहरा ,,
५७ बिशनस्वरूप कासलीवाल ,,
५८ कल्लूमल कासलीवाल ,,
५९ भूषनशरण जैन ,,
६० नेमीचन्द सोनी ,,
६१ रामशरण कासलीवाल ,,
६२ नन्दकिशोर ,, ,,
६३ कालीचरण ऐडवोकेट जैन ,,

६४ रामस्वरूप जैन मुरादाबाद
६५ रोशनलाल बंब ,,
६६ भूषणशरण सेठी ड्योढी
६७ कल्लूमल जैन ड्योढी
६८ केशोशरण सेठी मुरादाबाद
६९ बुधसेन सोनी अमरोहा
७० रामस्वरूप सोनी अमरोहा (खत अंग्रेजी)
७१ जैकुमार सेठी मुरादाबाद
७२ केशरीमल [illegible] बड़जात्या मौजमाबाद जिला जयपुर, हाल मुरादाबाद
७३ मुकन्दी हरीलाल बाकलीवाल अमरोहा
७४ मोहनलाल जैन अमरोहा
७५ रामचन्द्र सोनी अमरोहा
७६ नेमचन्द सेत्रपाल (छाबड़ा) अमरोहा
७७ नन्हेलाल पहाड़िया ,,
७८ दुर्गादासमल सेठी ,,
७९ रामरतन दुर्गाप्रसाद ड्योढी (खत उर्दू)
८० भोलानाथ सोनी अमरोहा
८१ बाबूलाल सोनी ,,
८२ नन्दकिशोर सोनी ,,
८३ भूकनलाल सोनी ,,
८४ मुरलीबिहारीलाल पहाड़िया ,,
८५ मुकन्दीबिहारीलाल छत्रपाल (छाबड़ा) ,,
८६ मंगलसेन जैन सोनी ,,
८७ सिपाहीलाल सोनी ,,
८८ बृजलाल लुहाड़िया खिर्नी
८९ बनारसीदास बाकलीवाल अमरोहा
९० भूकनशरन बाकलीवाल मंत्री दिगम्बर जैन खंडेलवाल पंचायत २८-९-३३ ,,
९१ शिवचरणदास बाकलीवाल ,, ,,
९२ बुद्धसेन सोनी ,,
९३ चाँदबिहारीलाल पहाड़िया ,,
९४ जयकुमार बंब-रामपुर स्टेट यू० पी०

९५ भूकनलाल बड़जात्या रामपुर
९६ नन्द किशोर बंब रामपुर स्टेट
९७ पारसदास सेत्र पाल (छाबड़ा) रतनपुर
९८ फकीरचंद कासलीवाल मुरादाबाद
९९ निशानी अंगुश्त गोविंदराम लुहाड़िया "
१०० निशानी ,, नारायणदास पाटनी
१०१ साहु राम रतन कासलीवाल बिलारी।
१०२ बृज रतन पहाड़िया बिलारी।
१०३ नन्हे मल सेठी बिलारी।
१०४ डाक्टर पन्नालाल जैन कासलीवाल सम्भल (खत अंग्रेजी)
१०५ हजारीलाल लुहाड़िया खत अंग्रेजी "
१०६ बाबूराम बंब "
१०७ राज कुमार बंब "
१०८ बृजबासीलाल जैन बम्ब (खत अंग्रेजी) "
१०९ मन्नू लाल पहाड़िया "
११० चांद बिहारीलाल लुहाड़िया "
१११ हरी प्रसाद लुहाड़िया "
११२ सुखानंद जैन (खत अंग्रेजी) "
११३ मोहनलाल लुहाड़िया "
११४ भोलानाथ बड़जात्या किसरौली
११५ बिहारीलाल बड़जात्या "
११६ चंदालाल बैद अलीगढ़ खत अं० ता० १-२-३३
११७ रायसाहब कृष्णकुमार बैद ,, अलीगढ़ " (खत अंग्रेजी)
११८ दामोदर दास बाकलीवाल (खत अं०) "
११९ लिखमी चंद पांड्या ,, "
१२० किरोड़ीमल लुहाड़्या मामनी (खत अंग्रेजी)
१२१ इमरतलाल लुहाड़िया "
१२२ रामचन्द्र बाकलीवाल "
१२३ लिखमीचंद लुहाड़िया "

---

[२]

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

श्रीमान् पंडित कन्हैयालालजी महोदय, सादर जयजिनेन्द्र।

हम लोहड़साजन बड़साजन में कोई भेद नहीं समझते। हमारे यहाँ उक्त दोनोंमें बराबर रोटी बेटीका व्यवहार चालू है। लोहड़साजन और बड़साजनमें भेद मानना निरी भूल है। मेरा स्वयं भी लोहड़साजनों से सम्बन्ध है, और सुजानगढ़निवासी बड़साजन पंडित पन्नालालजी बाकलीवाल मेरे सम्बन्धी हैं। इसलिये यह विषय निर्विवाद है।

शंकरलाल वैद्य सम्पादक "वैद्य" गोत्र बज

पता:—"वैद्य" आफिस—मुरादाबाद २१-९-३३

[३]

॥ श्री ॥

श्रीमान पंडित कन्हैयालालजी को सुंदरलाल मोठिया की जयजिनेन्द्र बांचना—अपरंच हमारे यहाँ लोहडसाजन व बडसाजन में कोई किसी किस्म का फर्क नही है आपस में दोनों में रोटी बेटी व्यवहार हमेशा से चला आरहा है। मेरी रिश्तेदारी लोहड़साजनो मे है मेरी रिश्तेदारी पं० श्रीलालजी पाटणी अलीगढ़ वालो से और देहली वगैरह मे हैं। यहां दस्साओं से रोटी बेटी व्यवहार नहीं है।

सुंदरलाल जैन वकील मुरादाबाद (खत अंग्रेजी)

२८-९-३३

[४]

श्री

श्रीमान सेठजी साहब श्री गोपीलालजी सुन्दरलालजी ठोल्या जोग लिखी देहली सेतो चौधरी भगवानदास बैनाड़ाका जयजिनेन्द्र जुहार बंचना अपरंच आपने भूरामल जाणाके हाथ लोहड़साजन भाइयोंके बरताव के बाबत पुछाया सोई हमारे यहाँ रोटी बेटी व्यवहार शामिल है। किसी किस्मकी रुकावट नहीं है। और दिल्ली उपरांत मुरादाबाद बहजोई अमरोहा बहजोई अलीगढ सब जगह बराबर बेटी-व्यवहार जारी है। आप किसी किस्मका सन्देह न करें। आज मिती भादवा सुदी ११ संवत् १९९० ता० ३१ अगस्त। और सहारनपुरकी रिश्तेदारी भी हमारे यहाँ मौजूद है।

द० भगवानदास बैनाड़ा दिल्ली

द० सन्तलाल गोधा

प्रत्यक्ष उदाहरण

(१)

जसपुर निवासी माणकचन्दजी कासलीवाल के पुत्र जवाहरलालजी बड़साजन का विवाह १९०२ मे कस्तूरामजी पाटणी लोहडसाजन मस्तापुरवालों की पुत्री सुन्दरबाई के साथ हुआ। जवाहरलालजी के पुत्र परमेश्वरदासजी का विवाह सं० १९३६ में लोहडसाजन ढँढोलवालों की मानजी जनकियाबाई के साथ हुआ।

परमेश्वरदासजीके पुत्र पन्नालालजी, हीरालालजी, और नेमीचन्दजी हुए। इनमें हीरालालजी दानवीर तीर्थभक्तशिरोमणि राज्यभूषण रायबहादुर राव राजा सरसेठ हुकमचन्दजीके इन्दौर गोद (दत्तक) गये। बादमें कल्याणमलजी के दत्तकपुत्र हुए। पन्नालालजी, नेमाचन्दजी सम्भलमें मौजूद हैं।

(Sd.) Pannalal Jain (Doctor).

Son of B. Parmeshthidas Jain

Sambal Distt. Moradabad U. P.

नोट—उक्त सम्बन्ध से ज़ाहिर होता है कि हीरालालजी की दादी लोहड़साजनों की बेटी और इनकी माता लोहड़साजन ढँढोल वालों की भानजी थी। और इनकी दूसरी माता भासूलालजी पाटणी बड़साजन की पुत्री अजमेर में मौजूद है। श्रीमान रावराजा सर सेठ हुकमचन्दजी तथा कल्याणमलजी की खं० दि० जैन समाज में सैंकड़ों रिश्तेदारी हैं।

(२)

अलीगढ़ निवासी चन्दालालजी बैद के पुत्र ललितकुमारजी बड़साजन का विवाह सं० १९७६ में चाँदबिहारीजी सोना लोहड़ साजन कुन्दरखीवालों की पुत्री मुन्नीबाईके साथ हुआ। इन ललितकुमारजी की बहिन अशर्फीबाई का विवाह राय बहादुर दानवीर सेठ टीकमचन्दजी सोनी के पुत्र दुलीचन्दजी के साथ हुआ जो अब मौजूद है। श्रीमान् सेठ टीकमचन्दजी तथा श्रीमान् चन्दालालजी बैद की खण्डेलवाल जैन समाज में सैंकड़ों रिश्तेदारी हैं।

(Sd.) Chandalal
1-10-33

नोट—उक्त सम्बन्ध से ज़ाहिर होता है कि श्रीमान सेठ टीकमचन्दजी के स्व० पुत्र दुलीचन्दके सालेकी बहू यानी अशर्फीबाई की भोजाई लोहड़साजनों की बेटी मौजूद है।

(३)

सासनी निवासी श्री० रामलालजी लुहाड़िया के पुत्र श्री अमृतलालजी बड़साजनका विवाह सं० १९६० में श्री मगनलालजी बड़जात्या लोहड़ साजनत्योदनिवासी की पुत्री सोहनबाईके साथ हुआ जिसके दो लड़कियाँ व एक लड़का मौजूदहै इन्हीं के घरानेमें से इनके भाई सेवतीलालजीकी पुत्री प्यारीबाईका विवाह अजमेरनिवासी श्री० डॉक्टर गुलाबचन्दजी पाटनी के साथ हुआ सो मौजूद है।

द० पंच	द० घरधणी
अमृतलाल	अमृतलाल

नोट—उक्त सम्बन्ध से ज़ाहिर है कि श्री० डा० गुलाबचन्दजी पाटणीके ससुराल के कबीले में उनके काकी सास लोहड़साजनोंकी लड़की है।

श्री सेवतीलालजी के भाई लिखमीचन्दजी भी निम्नप्रकार लिखते हैं—

गुलाबचन्दजी पाटणी का हमारी भतीजी ब्याही है।

द० लिखमीचन्द

(४)

सासनी निवासी श्री० किरोड़ीलालजी लुहाड़िया के पुत्र श्री प्रकाशचन्द्रजी बड़साजनका विवाह सं० १९९० में बहजोई निवासी श्री० बिहारीलालजी बैद लोहड़साजनकी पुत्री केसरबाईके साथ हुआ। इन्हीं किरोड़ीलालजीके कबीलेमें भाई सेवतीलालजी की लड़की प्यारीबाईका विवाह अजमेरवाले डॉ० गुलाब चन्दजीसे हुआ है।

द० पंच	द० घरधणी
किरोड़ीलाल	किरोड़ीलाल
Sasni	1-10-33

Distt. Aligarh

नोट—सासनीवालों की खं० दि० जैन समाज में सैंकड़ों रिश्तेदारी मौजूद हैं।

(५)

मुरादाबादनिवासी भोलानाथजी मोठिया के पुत्र श्री मुकन्दरामजी बड़साजनका विवाह सं० १९३२ में श्री परमेश्वरीदासजी कासलीवाल जयपुर निवासीकी पुत्री हरदेवीसे हुआ। यह हरदेवी लोहड़साजनो की भानजी थी जिसके पेट से श्री सुन्दरलालजी, श्री० रामरत्नजी, श्रीमती हुरोंबाई श्री० लड़तियाबाईहुई, जिसमें श्री सुन्दरलालजी की पुत्री श्री मुन्नोबाई धर्मधीर श्री० पं० श्रीलालजी पाटनी अलीगढ़ निवासी के सुपुत्र श्री कमलकुकुमारजी को ब्याही। इन्हीं सुन्दरलालजी का भानजा श्री केशवशरण लुहाड़िया बड़साजन हरिवाना निवासी का विवाह छोटेलालजी बैद लोहड़

साजन अड़वाल निवासी की पुत्री सोनबाई के साथ सं० १९७२ में हुआ।

द० पंच — द० घर वाले

सुन्दरलाल जैन — ला० मुकन्दराम

वकील मुहल्ला दीनारपुरा मुरादाबाद — ब० सुन्दरलाल

नोट—उपरोक्त सम्बन्धों से ज़ाहिर है कि धर्मधीर पं० श्रीलालजी पाटणी भी सम्बन्धित हैं।

(६)

देहली निवासी सोहनलालजी अजमेराके पुत्र हीरालालजी पन्नू वाले बड़साजन का विवाह सं० १९६४ म हरदेवजी पहाड्या लोहड्साजन महरम नगरवालोंकी पुत्री रुकमाबाईके साथ हुआ। इन्हीं पन्नवालोंके घरानेमें से मथुरादासजी अजमेराकी पुत्री शरबतबाईका विवाह सेठ ताराचन्दजी सेठी नसीराबाद वालोंके पुत्र माणकचंदजीसे हुआ है। इन पन्नू वालोंका घराना इतना बड़ा है कि जिनकी सैंकड़ों रिश्तेदारी खण्डेलवाल दिगम्बर जैनसमाज में हैं।

द० पंच — द० घरधणी

द० भगवानदास बैनाडा दिल्ली वाले

द० सन्तलाल गोधा

Balmukand
Brother of Hiralal

(७)

देहली निवासी हटीमलजी पाटोदी को पुत्र कन्हैयालालजी बड़साजन का विवाह प्रहलादजी बहोरा लोहड्साजन न डांहरथा जिला (जयपुर) निवासी की पुत्री केसरबाई के साथ सं० १९५७ में हुआ।

द० पंच — द० घरधणी

द० जवरीमल सोनी — द० सुगनचन्द

(८)

बिलारी निवासी फकीरचन्दजी कासलीवाल के पुत्र बड़साजन का विवाह सं० १९६३ में जानकीदासजी बाकलीवाल लोहड्साजन मुरादाबाद निवासी की पुत्री चिरंजियाँबाईके साथ हुआ।

द० पंच — द० घरधणी

द० रामरतन कासलीवाल बिलारी — द० रामरतन कासलीवाल बिलारी

(९)

जडवालनिवासी गुमानीरामजी बैद के पुत्र गंगारामजी लोहड्साजन का विवाह सं० १९३३ में पं० चुन्नीलालजी सोनी बड़साजन मुरादाबाद निवासी की पुत्री सुखियाबाई के साथ हुआ इनके पुत्र दो बिहारीलालजी दुर्गाप्रसादजी, मौजूद हैं। गुमानीरामजी गंगारामजी की सैंकड़ों रिश्तेदारी मौजूद है बड़साजन में।

द० पंच — द० घरधणी

द० फर्म गंगाराम बिहारीलाल — गंगाराम बिहारीलाल

(१०)

मुरादाबाद निवासी भोजराजजी बज के पुत्र शंकरलालजी बड़साजन का विवाह सं० १९४० में फूलचन्दजी सेठी लोहड्साजन सम्भलनिवासीकी पुत्री गंगादेवी से हुआ। इनके पुत्र १ विष्णुकुमार बेटी १ पंतीबाई का विवाह सुजानगढ़निवासी पं० पन्नालालजी बाकलीवालके भतीजे नेमीचन्दसे हुआ।

द० पंच — द० घरधणी

द० शंकरलाल ब० विष्णुकुमार — शंकरलाल ब० विष्णुकुमार

से बने वैसे विधवाओंके कष्ट दूर करना चाहिये जिससे वे अपनेको अभागिनी न समझें।

इसके लिये हमें ऐसे आश्रमोंकी संख्या बढ़ाना चाहिये जहाँ वे शान्तिसे आत्मोन्नति करसकें। देखने जो सामग्री उनसे छीनली है, उससे भी महत्वपूर्ण वस्तुको वे देख सकें, सांसारिक सुखकी निःसारताको समझ सकें, और उससेभी उच्चतम आनन्दकी प्राप्ति कर सकें। उनका जीवन सूखा हुआ, मुरझाया हुआ बिलकुल नीरस न हो; उसमें कर्तव्यकी उमंगें लहराती रहें।

जो बहिनें घरमें रहसकती हों उनके साथभी हमारा ऐसा पूज्य व्यवहार होना चाहिये कि जिससे वे अपनी अवस्थामें संतुष्ट रह सकें। उनको यह न मालूम हो कि वैधव्यका कलंक उनके सिरपर सदाके लिये मढ़दिया गया है; और वह ज़बर्दस्ती मढ़ दिया गया है। व्रत और संयमकी क़ीमत तभीतक है जबतक वह स्वेच्छासे किया जाय। नरकोंके नारकी सब से ज्यादः कष्ट सहन करते हैं; परन्तु उनका यह कष्टसहन कायक्लेश, तप नहीं कहलाता, क्योंकि वह स्वेच्छापूर्वक नहीं है। जो भूखों मरते हैं, उनका भूखों मरना उपवास नहीं है। इसीप्रकार बलाद्वैधव्यभी व्रत नहीं कहला सकता इसलिये विधवाओंको आश्रमोंमें भेजकर उनके हृदयकी भावना विशुद्ध बनाना चाहिये जिससे उन्हें वैधव्यका कष्ट न रहे और वैधव्य संयममें परिणत होजाय। तब न तो भ्रूणहत्याएँ होंगी, न व्यभिचार होगा। विधवाओंको आश्रमोंमें न भेजनेसे उन्हें बलाद्वैधव्य पालना पड़ता है, जिसका परिणाम बहुत ख़राब होता है। इसलिये बलाद्वैधव्यकी प्रथा हमें हटाना चाहिये।

उदारताकी आवश्यकता।

स्त्रियाँ जब समाजका अंग हैं, तब उनके कष्टोंकी समस्यापर हमें सहानुभूतिसे विचार करना चाहिये। अगर हम उनसे पुरुषोंकी अपेक्षा अधिक संयम पालन करानेकी इच्छा रखते हैं तो हमको दूसरी दृष्टिसे कुछ अधिक उदार बनना पड़ेगा। जानबूझकर कोई अधःपतन के गर्तमें नहीं गिरना चाहता; परन्तु अगर वह गिर पड़ता है तो उसे ऊपरसे लात मारना दयाधर्मके प्रतिकूल है। हमें उसको सम्हालनेकी कोशिश करना चाहिये। हमारे शास्त्रोंमें उदारताके जैसे उदाहरण मिलते हैं, उनका अगर हम थोड़ा भी अनुकरण करें तो हमारी समस्या बहुत कुछ हल होसकती है।

ज्येष्ठा आर्यिका जब एक मुनिके साथ ब्रह्मचर्यभ्रष्ट हुई और उसे पुत्र पैदा हुआ तो महाराज श्रेणिकने उसे घरमें रख लिया और उसके पुत्रको अपना लिया। बादमें उसे फिर आर्यिकाकी दीक्षा दिला दी। जब आर्यिका जीवनके उच्च शिखरसे गिरकर कोई स्त्री फिर उतने उच्च शिखर पर चढ़ सकती है तब जो श्राविका जीवनसे गिरती है क्या वह श्राविका फिर नहीं बन सकती? चन्द्राभा रानीको राजा मधुने अपनी पत्नी बना लिया लेकिन फिर भी वह मुनिको आहार देती थी. और अन्तमें आर्यिका हो कर स्वर्ग गई। इस प्रकारके दर्जनों उदाहरण शास्त्रोंमें मिलते हैं। और हमारे आचार्योंने जो इन बातोंको लिखा है उनका कुछ अर्थ है। केवल जगह भरनेके लिये शास्त्रों में कथाएँ नहीं लिखी हैं। तब समझमें नहीं आता कि हम क्यों अपनी बहिनों और पुत्रियोंको विधर्मी होने देते हैं, उन्हें और भी अधिक भ्रष्ट होनेका अवसर देते हैं। हमें ऐसी बाइयोंको बहिष्कृत न करके उन्हें सदाचारी बनाने की कोशिश करना चाहिये। अगर हम असफल भी रहे तो भी हमारा क्या जाता है? 'जो करेगा वह भरेगा।' अपना काम उनको उन्नत बनानेका है, न कि भ्रष्ट करने का। इसलिये उन अवसरोंपर बहिष्कारकी प्रथाका हमें त्याग ही करना चाहिये।
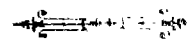
आवश्यकता।

जैनयुवकों से अपील।

युवकोंकी जो मुद्दतसे चाह थी, वह इटारसीमें भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषदके १० वें अधिवेशन के समय पूरी होगई, अर्थात् उक्त सुअवसर पर भारतवर्षीय जैन युवक संघ स्थापित होगया, जो निडर होकर धर्म तथा समाजकी सेवा करेगा। वर्तमानमें जहाँ जहाँ युवकमंडल क़ायम हैं, उन सबको एकत्रित होजानेकी बड़ी भारी ज़रूरत है। संसारमें यदि कुछ जागृति होसकी है, तो युवकही कर सके हैं, और युवकही करसकते हैं। इस विषय में विशेष कहनेकी आवश्यकता नहीं है। प्रत्येक जगहके युवकमंडलके मंत्रीसे प्रार्थना है कि वह अपने यहाँकी नियमावली और गत् वर्षोंकी की गई कार्रवाईकी संक्षिप्त रिपोर्ट भेजनेकी कृपा करें!

प्रचारके वास्ते जैन युवकसंघ की ओरसे "जैन युवकट्रेक्टमाला" प्रतिमाह प्रकाशित कीजायगी जो प्रत्येक मंडलको लागतमूल्य में वितरणकी जायगी। मालाके प्रतिवर्ष ठोस मैटरसे परिपूर्ण कमसे कम १२ ट्रेक्ट प्रकाशित होंगे। माला का प्रचार व प्रकाशित करनेका भार मेरे सुपुर्द किया गया है। अतएव प्रत्येक मंडल व सभाके मंत्रियोंसे प्रार्थना है कि वे मुझे सूचित करें कि मालाकी कितनी कितनी प्रतियाँ भेजदीजाया करें। वार्षिकमूल्य डाकव्यय सहित निम्नांकित तौरपर निश्चित हुआ है—

हरएकट्रेक्टकी २ प्रतियोंका		१)
,, ५ ,,	,,	२)
,, १० ,,	,,	३॥)
,, २५ ,,	,,	६)

क़ीमत पेशगी देना होगी। इसके अलावा संघके उद्देश्योंको लेकर नवीन नवीन मैटर भी लिखकर भेजनेकी कृपाकरें। यह "माला" प्रत्येक पाठशाला, जैन बोर्डिंग हाउसमें बहुतही उपयोगी सिद्ध होगी; संस्थाके कार्यकर्ता इस ओर ध्यान दें।

कुलवंतराय जैन, प्रकाशक
जैन युवक ट्रेक्टमाला, हरदा।

आठ मासके दो गर्भपात—ललितपुर 'झाँसी' में एक बालक जो आठमासके गर्भका है तालाबमें और एक आठमासका गर्भ पासके नालेमें पड़ा हुवा मिला। गर्भ गिरानेवाली विधवाओंका कोई पता नहीं चला। ऐसी घटनाएँ प्रायः होती ही रहती हैं। —सम्वाददाता

कन्याकी आवश्यकता।

एक गोलालारे जैन वरके लिये एक पढ़ी लिखी सुयोग्य सुन्दर कन्याकी आवश्यकता है। लड़केकी उम्र लगभग २०-२१ वर्षकी है और वह आजकल एम० ए० M.A. (Final) दर्जे में पढ़ रहा है। स्वास्थ्य अच्छा है, और गार्हस्थ आर्थिक दशा उत्तम है। लड़का सुधारक विचारोंका है, और अन्तर्जातीय विवाहके लिये भी तैयार है। कन्या सुयोग्य मिलना चाहिये, चाहे वह गोलालारे, गोलापूर्व, समैया, परवार, खण्डेलवाल या पद्मावती पोरवाल जातिमें क्यों न होवे। जो सज्जन सम्बन्ध करना चाहें, कृपया निम्नलिखित पतेपर पत्रव्यवहार करें।

—पन्नालाल जैन,
बी० ए० ऐलऐल० बी० वकील, झाँसी।

Printed by Pt. Radhaballabh Sharma at the Ajmer Printing Works, Ajmer.

तार का पता—"JAINJAGAT" Ajmer. Reg: No. N 352.

वर्ष ९ ता० १ व १६ फरवरी सन् १९३४ अंक ६,७

जैनसमाज का एकमात्र स्वतन्त्र पाक्षिकपत्र।

वार्षिक मूल्य ३) रुपया

विद्यार्थियों व संस्थाओं से २॥) मात्र।

जैन जगत्

(अंग्रेजी महीने की पहली और सोलहवीं तारीखको प्रकाशित होता है)

"पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनम् यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः"॥—श्रीहरिभद्रसूरि।

सम्पादक—सा०र० दरबारीलाल न्यायतीर्थ, जुबिलीबाग तारदेव, बम्बई।

प्रकाशक—फतहचंद सेठी, अजमेर।

प्राप्ति स्वीकार।

एक उत्साही युवकने, जो अपना नाम प्रकट कराना नहीं चाहते, अपनी आमदनीपर एक पैसा फी रुपया लगाकर २०) रु० जैनजगत्की सहायतार्थ प्रदान किये हैं। इसके अतिरिक्त जो और सहायता प्राप्त हुई है, वह इस प्रकार है—

५) श्रीमान सेठ मथुरादासजी पदमचन्दजी आगरा (स्वर्गीय श्रीमान् सेठ पदमचन्दजीकी स्मृतिमें)।

५) श्रीमान् भागचन्दजी पाँड्या राजनाँदगाँव (पुत्रीजन्मके उपलक्षमें)

४) श्रीमान् लाल कुंथदासजी बाराबंकी (नूतन-गृह प्रवेशके अवसर पर)।

उपरोक्त महानुभावोंको इस उदारताके लिये अनेकानेक धन्यवाद।

बधाई—हमें यह प्रकट करते हुए अत्यंत हर्ष होता है कि श्रीमान डॉ० निहालकरणजी सेठी डी० एससी० की द्वितीय पुत्री कुमारी सुभद्रा सेठीको, जो इस सैशनसे लेडी हार्डिंज मैडिकल कॉलेज देहली में डॉक्टरीका अध्ययन कररही है, यू० पी० गवर्नमैंटने पाँच वर्षके लिये मैकडोनल फंडकी ओरसे ३०) रु० प्रतिमासकी छात्रवृत्ति देना निश्चय किया है। इसके अतिरिक्त डाईरेक्टर ऑफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन यू० पी० ने २५) रु० का 'कृष्णाकुमारी पुरस्कार" प्रदान किया है। इसके उपलक्षमें हम सुभद्राकुमारीको बधाई देते हैं।

खण्डेलवाल जैनहितेच्छुके सम्पादक पं० इंद्रलालजी शास्त्रीका घोर अधःपतन

दिगम्बर जैन महासभा तथा खंडेलवाल जैन महासभा समयकी प्रगतिको देखते हुए बहुतही पिछड़ी हुई हैं, परन्तु उन्होंने भी कई बार बालविवाह, अनमेलविवाह, वेश्यानृत्य आदि कुप्रथाओं के विरुद्ध प्रस्ताव पास किये हैं तथा उन्हें रोकनेके लिये समाजको प्रेरणाकी है। खंडेलवाल सभाके सूत्रधार, हितेच्छु सम्पादक पं० इन्द्रलालजी शास्त्रीने भी इनके विरोधमें व्याख्यान दिये हैं, तथा लिखा है। अतः पाठकोंको यह जानकर कि इन्हीं पं० इन्द्रलालजी शास्त्री ने उपरोक्त महासभाओंके

सिरपर पादप्रहार कर गत मिती माघ सुदी १० को अपने पुत्र कैलाशचन्द्रका विवाह किया है, अवश्य ही आश्चर्य व क्षोभ होगा। कहा जाता है कि कैलाशचन्द्र अल्पवयस्क तो है ही, किन्तु अत्यन्त खेदकी बात यह है कि वह अपनी वधूसे भी छोटा है! विश्वस्त रूपसे मालूम हुआ है कि लड़की, लड़के से करीब तीन चार इंच लम्बी है! शास्त्रीजी धर्मके मर्मज्ञ, शूद्रजलत्यागी, व सोधकी रसोई जीमनेवाले हैं, तथा खण्डेलवाल जैन समाजके अग्रगण्य नेता माने जाते हैं, परन्तु आपने इस विवाहमें निकासी, तोरण, ग्वावका, पहिरावनी आदि अवसरों पर दो वेश्याओंको बुलाकर उनका नाच व गान कराया था! पहिरावणीके अवसर पर रसिक पंडितजी रात्रिभर मसनदके सहारे बैठे रहे और जीवनका आनंद लूटते रहे। देखना है कि पंडितजीका यह नग्नरूप खंडेलवाल जैनमहासभा को कितना मनोमोहक व रुचिकर प्रतीत होता है!

खण्डेलवाल जैनहितेच्छु, खण्डेलवाल दिगम्बरजैन महासभाका मुखपत्र है। जो व्यक्ति स्वयं खंडेलवाल महासभाके मंतव्योंको ठुकरावे, उसे महासभाके मुखपत्रके सम्पादकपद पर प्रतिष्ठित करना संचालकोंकी अकर्मण्यता व अविवेक प्रदर्शित करता है।

शास्त्रीजी खुलासा करें—हमें विश्वस्त सूत्रसे मालूम हुवा है कि करजन (बड़ौदा) के पंचों की ओरसे जयपुर दिगम्बर जैन मंदिर बड़ा पंचायतीके नाम एक पत्र आया है जिसका आशय यह है कि—"यहाँ से हमने तीस रुपयेका मनीऑर्डर पंडित इन्द्रलालजी शास्त्रीको प्रतिमा तैयार करानेके लिये भेजाथा, उसको चार बरस होगये। न तो हमको प्रतिमा मिली और न हमारे रुपये पीछे दिये। इससे आपको लिखतेहैं कि प्रतिमाकी तो अब हमको जरूरत नहींहै, मगर हमारे रुपये नीचे लिखे पते पर मनीआर्डरसे भिजवा देनेकी कृपा कीजियेगा, क्योंकि पंचायती रुपया है, इससे आपको लिखा जाता है।" शास्त्रीजीको इस सम्बन्धमें शीघ्र खुलासा करना चाहिये और यदि उपरोक्त पत्रमें उल्लिखित बात सत्यहो तो, पेश्तर इसकेकि जयपुर पंचायत इस सम्बन्धमें कुछ कार्यवाही करे, शास्त्रीजी को स्वयंही करजनके पंचोंका समाधान कर देना चाहिये। —प्रकाशक।
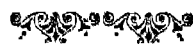
वैद्य से।

(रचयिता—श्रीमान् भगवन्त गणपति गोयलीय)

जो स्वस्थ है, उसीकी, नाड़ी टटोलता तू!
खिचड़ी खिलारहा है!
उसके लिए दवाएँ, सौवार घोलता तू!
फिर फिर पिलारहा है!
पर रुग्णजन अनेकों, दुखसे कराहते हैं;
उनको न देखता है!
वे पथ्य और औषधि, हे मित्र चाहते हैं;
तुझको न क्यों पता है?
कृपया प्रथम स्वयंका, भाई इलाज करले;
फिर बन हकीम आना।
कूड़ा निकाल सिरसे, मस्तिष्क नेक भरले;
कहलायगा सयाना॥
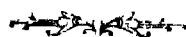
अंतर्जातीय विवाहके लिये वरों व कन्याओंकी आवश्यकता—मेरे दो भानजे एफ. ए. में पढ़ते हैं, और चार भानजियों और दो मामाकी लड़कियाँ हैं। वे सब भली प्रकार शिक्षित हैं। प्रचारकी दृष्टिसे मैं इनका अंतर्जातीय विवाह करना चाहता हूँ। इनके मातापिताओं व अन्यरिश्तेदारोंसे इस सम्बंधमें निश्चय कर लिया है। योग्य वर कन्याओं के विषयमें मुझसे पत्र व्यवहार किया जाय।

—जमनाप्रसाद जैन, बार ऐटलॉ
(सभापति दि० जैन परिषद्)
सबजज, बेमेत्रा (दुग—सी० पी०)

श्वेताम्बर सूत्र देखनेसे इस शंकाका समाधान होजाता है।

सूत्रसाहित्यमें, फिर चाहे वह जैनियोंका हो या बौद्धोंका हो उसमें हरएक बातके वर्णन रहते हैं, जोकि बारबार दुहराये जाते हैं। जैसे कहींपर एक रानीका वर्णन आया। कल्पना करो उस वर्णनमें एक हज़ार पद लगे। अब अगर किसीसूत्रमें सौ रानियोंके नाम आये तो सबके साथ एक एक हज़ार पदका वर्णन न तो लिखा जायगा, न बोला जायगा। परन्तु एक पद लिख कर 'इत्यादि' कहकर प्रत्येकके साथ एकएक हज़ार पद समझे जावेंगे। इसप्रकार सौ रानियोंके नाम लिखनेमें ही एक लाख पद बनजांयगे। इसी प्रकार राजा, राजकुमार, राजपुत्री, वन, नगर उपवन, मंदिर, नदी, तालाब, श्रावक, श्राविका, मुनि, आर्जिका, तीर्थंकर आदि सबके वर्णन हैं। इनमेंसे एक एक नामके आनेसे ही सैकड़ों पद बनजाते हैं। यही कारण है कि सूत्रके लाखोंपद कहेजाते हैं। परन्तु उनके ज्ञानके लिये लाखों पद नहीं पढ़ना पड़ते। इस ढंगसे दस पांच हज़ार पदोंकी पुस्तकके लाखों पद बताये जा-सकते हैं। जैनसूत्रोंकी पदगणना इसी आधार पर हुई है।

अब प्रश्न यही रह जाता है कि सोलह अर्ब से भी अधिक अक्षरोंका जो पद बताया गया है, और कुल अक्षर जो एकसौ चौरासी संख्य से अधिक कहेगये हैं, तथा दोनों ही सम्प्रदा-योंमें इस मान्यताके प्रमाण मिलते हैं, इसका कारण क्या है? अनेक स्वरोंको मिलाकर एक अक्षर माननाभी समझमें नहीं आता।

यद्यपि यह प्रश्न जटिल मालूम होता है, परन्तु थोड़ा सा ध्यान देनेसे यह समस्या हल होजाती है। वास्तवमें यहाँ जो अक्षर पद आदिका वर्णन है, वह शब्दात्मक नहीं है—'क' का ज्ञान एक अक्षरका ज्ञान है, 'ख' का ज्ञान दूसरे अक्षरका ज्ञान है, ऐसा न समझना चाहिये। ये अक्षर शब्दके टुकड़े नहीं, किन्तु ज्ञानके अंशोंकी संज्ञाएँ हैं।

यद्यपि गुणके टुकड़े नहीं होते, परन्तु शक्ति की न्यूनाधिकता से उसमें अंशोंकी कल्पना की जाती है। सब प्राणियोंको एक सरीखा ज्ञान नहीं होता, उनमें कुछ न्यूनाधिकता रहती है, इस तरतमता के लिये ज्ञानके अंशोंकी कल्पना कीजाती है। इन अंशोंको अविभाग प्रतिच्छेद कहते हैं। और बहुतसे अविभाग प्रतिच्छेदोंका एक अक्षर होता है। जैसे तौलका परिमाण खस खस से शुरू किया जाता है परन्तु बाज़ार में खस खस से तौल नहीं की जाती किन्तु रत्ती से शुरू की जाती है; उसीप्रकार ज्ञानके बाज़ारमें भी अक्षरसे ज्ञानकी माप तोल होती है न कि अविभाग प्रतिच्छेदोंसे। क्योंकि अविभाग प्रतिच्छेद बहुत सूक्ष्म हैं। इसका मतलब यह हुआ कि ज्ञानका एक परिमित अंश अक्षर है। वह स्वरव्यंजनरूप नहीं है। श्रुतज्ञानके भेदोंमें इसे अर्थाक्षर कहागया है। इसका परिचय इस तरहभी दियागया है कि श्रुतज्ञानको एकट्ठि से भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसे अर्थाक्षर* कहते हैं। अर्थात् यहांपर ज्ञानके अमुक परि-माणका नाम अक्षर है न कि स्वरव्यंजन आदि।

जैनाचार्योंने यह बतानेके लिये कि किस अंग पूर्व और शास्त्रको पढ़नेसे कितना ज्ञान होता है---सम्पूर्ण श्रुतज्ञानको एकसौ चौरासी संख्यसे भी अधिक" टुकड़ोंमें कल्पनासे विभक्त किया, और उस एकएक टुकड़ेको अक्षर कहा। जैसे हम एक देशको अनेक मीलों, योजनों आदिमें विभक्त करते हैं, परन्तु इससे उस देश के उतने टुकड़े नहीं होजाते किन्तु उस कल्पना से हम उसकी लघुता या महत्ता जानलेते हैं,

* अर्थाक्षरं रूपोनैकविभक्त श्रुतकेवलमात्रमेकाक्षर ज्ञानम्।

इसीप्रकार श्रुतज्ञानका अक्षरविभाग ज्ञानकी माप तौलके लिये उपयोगी है। उससे इतना मालूम होता है कि किस शास्त्रका, ज्ञानकी दृष्टि से कितना मूल्य है।

जिस प्रकार हम एक देशको जिलों तहसीलोंमें विभक्त करके उनके जुदे जुदे नाम रख देते हैं, उसीप्रकार जैनाचार्योंने श्रुतज्ञानके १८४ संखसे भी अधिक टुकड़े करके प्रत्येक टुकड़ेका अलग अलग नाम रखदिया है। किसीका नाम 'क' किसीका नाम 'ख' किसीका नाम 'ग' किसी का नाम 'गग', किसीका नाम 'खग', किसीका नाम 'खख' किसीका नाम 'कखग', इसप्रकार बहुतसे चौंसठ अक्षरोंवाला नामभी है। गणितसूत्र के अनुसार कुल नाम १८४ संखसे भी ऊपर होते हैं। इसप्रकार अनेक स्वर व्यञ्जनोंके संयोगवाले जो अक्षर बनाये गये हैं, वे वास्तवमें अक्षर नहीं हैं किन्तु श्रुतज्ञानके एक एक अंशके नाम हैं जिन अंशोंको यहाँ अक्षर कहागया है। जब हम कहते हैं कि एक पदमें १६३४८३०७८८८ अक्षर हैं तो इसका यह मतलब नहीं है कि पद ज्ञानीको क ख आदि इतने अक्षरोंका उच्चारण करना पड़ता है, या इतने अक्षरोंको जानना पड़ता है। उसका मतलब सिर्फ इतनाही है कि पदज्ञानीका ज्ञान अक्षरज्ञानीसे सोलह अर्ब चौंतीस करोड़ गुणा उच्च है। इस विवेचनसे अक्षरोंकी इतनी अधिक गणना और पदका विशाल परिमाण समझमें आजाता है।

एकसौ चौरासी संखसे भी अधिक अक्षर अपुनरुक्त कहेजाते हैं। परन्तु क्या किसी पुस्तकमें एक अक्षर दोबार नहीं आता? एक हज़ार शब्दोंके बारबार प्रयोगसे बड़ेसे बड़ा पोथा बनसकता है और उसमें ज्ञानका अक्षय भंडार रक्खा जासकता है और उससे अधिक अपुनरुक्त शब्दोंमें ज्ञानकी सामग्री कम रहसकती है। जैन सूत्रोंमें भी एकही शब्द सैकड़ों बार आता है, तब फिर अपुनरुक्त अक्षरोंका परिमाण बतानेकी आवश्यकता क्या है? और उसका व्यावहारिक उपयोगभी क्या है? इस प्रश्नका उत्तर भी इसीबातसे होजाता है कि उपर्युक्त अक्षर, अक्षर नहीं हैं किन्तु ज्ञानाक्षरोंके जुदे जुदे नाम हैं। नामोंको पुनरुक्त न होना चाहिये अन्यथा नाम रखनेका प्रयोजनही नष्ट होजाता है। इसलिये वे सब अक्षर अपुनरुक्त बनाये गये हैं।

अंगबाह्यका परिमाण जो एक पदसे कम बताया गया है इसका कारण यह नहीं है कि उसमें एकभी पद नहीं है, परन्तु अंगप्रविष्ट ज्ञान के सामने अंगबाह्यके ज्ञानका मूल्य बहुत थोड़ा है, यही बात बतानेके लिये यह बात कही जाती है। दूसरी बात यह है कि अंगबाह्य श्रुत बढ़ता गया है। प्रारम्भमें जो अंगबाह्यश्रुत था, वह बहुत थोड़ा था। उसमें कुछ स्तुतिस्तोत्र या महावीरका गुणानुवाद था। भगवान् महावीर या कोईभी महात्मा सब कुछ उपदेश देसकते हैं, परन्तु स्वयं अपना गुणानुवाद नहीं करसकते। यह काम भक्तोंका है। पहिले, भक्तोंकी वे रचनाएँही अंगबाह्य कहलाती थीं, परन्तु ज्ञानके क्षेत्रमें ऐसी स्तुतियोंका मूल्य बहुत थोड़ा है इसलिये अंगबाह्य एकपद ज्ञानसे भी कम बताया गया है। पीछे जब अंगबाह्य श्रुत बढ़गया और उसमें अंगप्रविष्टका भी बहुतसा हिस्सा आगया तब उसका मूल्य अवश्य बढ़ा। परन्तु एकबार जो मूल्य निश्चित होगया वह ब्रह्मवाक्य होगया, उसके मूल्यको बढ़ानेका किसीको हक़ न रहा। परम्पराकी गुलामीका यही फल होता है। यही कारण है कि अंगबाह्य ज्ञान बहुत विशाल होजाने परभी वह एकपद भी नहीं माना-जाता है। इस विवेचनसे श्रुतज्ञानके परिमाणका रहस्य समझमें आजाता है।

अवधिज्ञान ।

जैनशास्त्रोंमें बतलायेगये पाँच ज्ञानोंमें से मति और श्रुत दो ज्ञानही ऐसे हैं, जो अनुभव में आते हैं। बाकी तीन ज्ञान ऐसे हैं, जिनके विषयमें कल्पनाको दौड़ लगाना पड़ती है। केवलज्ञानका वास्तविक स्वरूप—जोकि चौथे अध्यायमें बतलादिया गया है—समझ लेनेपर वहभी विश्वसनीय होजाता है। परन्तु अवधि और मनःपर्ययकी समस्या औरभी जटिल है। इसकी जटिलता बिलकुल दूसरे ढंगकी है। ये दोनोंही भौतिक ज्ञान हैं। जैन शास्त्रोंके अनुसार अवधिज्ञानी मनुष्य हज़ारों लाखों कोसों केही नहीं, किन्तु सारे विश्वके पदार्थोंको इसी तरह देखसकता है जैसे हम आखोंके सामने की वस्तुको देखसकते हैं। बल्कि इसकी स्पष्टता इन्द्रिय ज्ञानसे भी अधिक बतलाई जाती है। साथही इसके द्वारा उन गुणोंका भी ज्ञान होता है जिनका हमें पता नहीं है। हमारे पास पाँच इन्द्रियां हैं, इसलिये हम पुद्गलके पाँच गुण या पाँच तरहकी अवस्थाएँ जानसकते हैं। परन्तु अवधिज्ञानसे अगणित भावोंका ज्ञान होता है।

प्राचीन समयसे ही भारतमें ऐसे अलौकिक ज्ञानोंका अस्तित्व स्वीकार किया जारहा है। यह योगज प्रत्यक्ष या योगियोंका ज्ञान कहलाता है, जिससे योगी लोग एक जगह बैठेबैठे सब जगहकी चीज़ें इच्छानुसार जान सकते हैं, दूसरेके मनकी बातोंको भी जानलेते हैं। इनसे कोई बात छुपाना असंभव है। देवोंके भी ऐसे अलौकिक ज्ञान मानेजाते हैं।

जैनधर्म अपने समयका वैज्ञानिक धर्म है इसलिये उसमें इन सब बातोंका एक नियमबद्ध रूप मिलता है। तीनों लोकोंमें कौन कहांकी कितनी बात जान सकता है, कौन किस किसके मानसिक भावोंको समझ सकता है, कितनी दूरका जाननेसे कितने भूत भविष्यका ज्ञान होता है, इनके असंख्य भेद किसप्रकार बनते हैं, किस गतिमें कितने भेद प्राप्त होसकते हैं; किस ढंगसे प्राप्त होसकते हैं और कितने दिन तक वह रहसकता है आदि बातोंका अच्छे ढंग से शृंखलाबद्ध सुन्दर तथा आश्चर्यजनक वर्णन है। पुराने समयमें जिन ऋद्धि सिद्धियोंका वर्णन किया जाता था और कथासाहित्यमें भी जिनने एक बड़ा स्थान बना रक्खा था, उन ऋद्धि आदिकोंका वर्गीकरणभी जैन साहित्यमें किया गया है। मतलब यह कि यह सारी चर्चा नियमबद्ध बनाकर वैज्ञानिकताका परिचय दिया गया है। आजसे ढाई तीन हज़ार वर्ष पहिले इससे अधिक वैज्ञानिकताका परिचय और क्या दिया जासकता था?

परन्तु 'विज्ञान' यह सापेक्ष शब्द है। वि + ज्ञानमें जो 'वि' है उसने यह सापेक्षता पैदाकी है। विशेष ज्ञानको विज्ञान कहते हैं। आजकल इसका अर्थ 'भौतिक पदार्थोंका विशेष ज्ञान' है। परन्तु आजका विशेषज्ञान कलका साधारण ज्ञान बनजाता है। एक समय जिन लोगोंने लकड़ी या पत्थर रगड़कर अग्नि पैदाकी होगी, रोटी बनानेकी विधि निकाली होगी, कृषिकर्मका आविष्कार किया होगा, वे लोग अवश्यही उस ज़मानेके महान वैज्ञानिक थे। परन्तु आज एक साधारण रसोइया या साधारण किसानभी ये काम करसकता है, परंतु वे वैज्ञानिक नहीं माने जाते। अब तो जो इस विषयमें औरभी अधिक उन्नति करके बतायेगा, वही वैज्ञानिक कहला सकता है, या कहलाता है। मतलब यह कि कोईभी विज्ञान कुछ समय तक विज्ञान कहलाता है।

जैनियोंका उपर्युक्त वर्गीकरण उस समयके लिये अवश्यही विज्ञान था, परन्तु आज उसे

विज्ञान नहीं कहसकते। इन तीन हज़ार वर्षोंमें प्रकृतिका घूँघट बहुत अधिक खुलगया है। उसके अनेक रहस्य प्रगट होगये हैं। इस समय अलौकिक घटनाओंका वर्गीकरणही विज्ञान नहीं कहला सकता, किन्तु अब तो उसके रहस्य जाननेकी ज़रूरत है या उसके रहस्यकी तरफ़ ठीकठीक संकेत करनेकी ज़रूरत है।

आजसे कुछ वर्ष पहिले जो बातें अलौकिक चमत्कार समझी जाती थीं, वे आज प्रकृतिके ज्ञात नियमों के भीतर आगई हैं। जिन घटनाओंके मूलमें भूत पिशाचोंकी या चमत्कारोंकी कल्पनाकी जाती है वे आज शारीरिक चिकित्सा—शास्त्रकी अंगरूप होगई हैं। यद्यपि आज मनोविज्ञान बिलकुल बाल्यावस्था में-शैशवावस्था में—है फिरभी इतना तो मालूम होने लगा हैकि अमुक घटना का सम्बन्ध अमुक विज्ञानसे है। जिस समय मनोविज्ञान युवावस्था में पहुँचेगा तथा अन्य विज्ञानभी प्रौढ़ बनेंगे, उस समय अलौकिक चमत्कारों या अलौकिक ज्ञानोंके लिये जगह न रह जायगी।

जैन शास्त्रोंमें अवधि और मनःपर्ययका जो वर्णन है वह भलेही अलौकिक हो परन्तु उसके मूलमें उसका लौकिक रूप क्या है, यह खोजने की चीज़ है। जब हम अँधेरेमें हाथ डालते हैं तब इच्छित वस्तुके ऊपरही हमारा हाथ नहीं पड़ता किन्तु बीसोंबार इधरउधर भटकता है। इसीप्रकार अज्ञात जगत् की खोजमें हमारी कल्पना बुद्धिकी भी यही दशा होती है। अवधि मनःपर्यय आदि अलौकिक विषयोंमें भी यही दशा हुई है।

आज अवधि मनःपर्ययका स्वरूप इतना विशाल बनादिया गया है कि उसपर विश्वास होना कठिन है। शास्त्रानुसार अवधिज्ञानके द्वारा हम स्वर्ग नरक तथा लाखों वर्ष पुरानी घटनाओंका तथा लाखोंवर्ष बाद होनेवाली घटनाओंका प्रत्यक्ष करसकते हैं। परन्तु मैं चौथे अध्यायमें सिद्ध करआया हूँ कि भूत भविष्य का प्रत्यक्ष असम्भव है, क्योंकि जो वस्तु है ही नहीं, उसका प्रत्यक्ष कैसा? आदि।

जैन शास्त्रोंके देखनेसे हमें इस बातका आभास मिलता है कि शास्त्रोंमें जो अवधिज्ञान मनःपर्यय ज्ञानका विशाल विषय बतलाया गया है वह ठीक नहीं है, बिलकुल कल्पित है। कल्पित कथाओंको छोड़कर ऐतिहासिक घटनाओंमें उसका ज़राभी परिचय नहीं मिलता; बल्कि इस ढंगका वर्णन मिलता है जिससे मालूम हो जाय कि अवधि मनःपर्ययकी उपयोगिता कुछ दूसरीही है। यहां मैं एक दो दृष्टान्त देता हूँ।

उवासगदसाके आनन्द अध्ययनका वर्णन है कि एकबार इन्द्रभूति गौतम आनन्द श्रावक की प्रोषधशालामें गये। उस समय आनन्दने समाधिमरणके लिये संथारा लिया था। आनंद ने गौतमको नमस्कार करके पूछा—

भगवन! क्या गृहस्थको घरमें रहते अवधि ज्ञान होसकता है?

गौतम—होसकता है।

आनन्द—मुझेभी अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ है। मैं पाँचसौ योजनतक लवणसमुद्रमें देख सकता हूँ और लोलुपच्चय नरक तक भी।

गौतम—आनन्द! इतनी उच्च श्रेणीका अवधिज्ञान गृहस्थको नहीं होसकता, इसलिये तुम्हें अपने इस वक्तव्यकी आलोचना करना चाहिये, प्रतिक्रमण करना चाहिये; अर्थात् अपने शब्द वापिस लेना चाहिये!

आनन्द—भगवन्! क्या सच्ची बात कीभी आलोचना कीजाती है? क्या सत्यवचन भी वापिस लिया जाता है?

गौतम—नहीं, असत्यकी ही आलोचना कीजाती है, वही वापिस लिया जाता है।

आनन्द—तबतो भगवन्, आपही अपने शब्दोंकी आलोचना कीजिये, आपही अपने शब्दोंको वापिस लीजिये !

आनन्दके शब्द सुनकर गौतम सन्देहमें पड़गये। उन्हें बड़ी ग्लानि हुई। उनने जाकर भगवान महावीरसे सब बात कही और पूछा कि—भगवन्, किसे अपने शब्द वापिस लेना चाहिये ? भगवानने कहा—गौतम ! इसमें तुम्हारीही भूल है। तुम अपने शब्द वापिस लो और जाकर आनन्दसे माफ़ी मांगो। तब गौतमने जाकर आनन्दसे माफ़ी माँगी अपने शब्द वापिस लिये।

यह कथन अन्य दृष्टियोंसे भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। परन्तु यहां तो सिर्फ गौतमके ज्ञानकी ही आलोचना करना है। गौतम चार ज्ञानधारी थे। उन्हें उच्च श्रेणीके अवधिज्ञान मनःपर्यय ज्ञान प्राप्त थे। फिरभी वे यह न समझसके कि आनन्द सच कहता है या मिथ्या। आनन्दके मनमें क्या था, यह बात उन्हें मनःपर्यय ज्ञानसे जानलेना चाहिये थी। अथवा गौतम आनन्दसे यह पूछसकते थे कि तुम्हें लवणसमुद्रके पाँचसौ योजनपर क्या दिखलाई देता है ? आनन्द जोकुछ उत्तर देता उसकी जाँच वे अपने अवधिज्ञानके सहारे करसकते थे क्योंकि वे भी अवधिज्ञानसे वहांतक की वस्तुएँ देखसकते थे। इसप्रकार निकट दूरके भूत भविष्यके दो चार प्रश्न पूछनेसे आनन्दके वक्तव्यकी सचाई जाँची जासकती थी। व्यर्थही आनन्दका अपमान कियागया, गौतमको दुखी होना पड़ा, और लौट कर माफ़ी माँगना पड़ी। निःसन्देह गौतम अगर ऐसा करसकते तो अवश्य करते, परन्तु वे ऐसा न करसके, इससे मालूम होता है कि अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञानमें आनन्दके मनकी बात जाननेकी शक्ति नहीं थी, न दूरदूर के विषय इससे जाने जासकते थे जैसे वर्तमान जैन शास्त्रोंमें बताये जाते हैं। यदि अवधि मनःपर्यय ज्ञान इतनी बात भी न जानसके तो इनके विषयकी विशालता पर कैसे विश्वास किया जासकता है ?

विपाकसूत्रके मृगापुत्र अध्ययनमें गौतम स्वामी मृगादेवीके घर जाते हैं और उसके पुत्र की दुर्दशा देखते हैं जो अनेक रोगोंका घर तथा वीभत्स था। उसे देखकर गौतम विचार करते हैं कि—"यह बालक न मालूम किन भयंकर पापोंका फल भोगरहा है ! मैंने न तो नरक देखे हैं न नारकी, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यह पुरुष नरकके समान वेदना भोगरहा है।"

गौतमके ये शब्द भक्तोंके लिये आश्चर्यजनक और खोज करनेवालोंके लिये महत्त्वपूर्ण हैं। यदि अवधिज्ञानसे स्वर्ग नरक दिखलाई देते तो गौतमके मुखसे ये उद्गार कभी न निकलते कि मैंने नरक और नारकी नहीं देखे। एक साधारण अवधिज्ञानी भी नरक देखसकता है। आनंद का कहना था कि मुझे नरक दिखलाई देरहा है। यह बात भगवान महावीरने भी स्वीकार की थी। तब गौतमका ज्ञान तो इन सबसे बहुत अधिक था ! फिरभी नरक स्वर्गके विषयमें गौतम इस प्रकार उद्गार निकालते हैं ! इससे मालूम होता है कि उस समय अवधि मनःपर्यय ज्ञानका विषय इतना विशाल नहीं मानाजाता था। इस प्रकार अवधि और मनःपर्यय का इतना विशाल विषय न तो तर्कसम्मत है, न इतिहास सम्मत है। फिरभी कुछ है तो अवश्य ! वह क्या है, इसीकी खोज करना चाहिये।

सम्पादकीय टिप्पणियाँ

बड़ौदा राज्य और समाजसुधार।

एक आदमी अन्याय से दूसरे को तमाचा मारता है, परन्तु दूसरा आदमी तमाचे से बचने के लिये

गाल हटा लेता है। यह देखकर पहला आदमी डाँटकर कहता है कि—'देखो ! तुम हमारे काम में हस्तक्षेप मत करो ! तुम्हें हस्तक्षेप करने का कोई हक़ नहीं है ! तमाचा मारना मेरा धर्म है, किन्तु तुम अपना गाल हटा कर मेरे धर्म पर आक्रमण कर रहे हो !'

इस उदाहरण में धर्मकी दुहाईका जो रूप बताया गया है, उसे कोई भी मनुष्य धृष्टतापूर्ण कहेगा और बात बात में धर्म की दुहाई देने वाले भी इसे धृष्टतापूर्ण कहे बिना न रहेंगे। परन्तु आश्चर्य है कि आज पुराणपंथी वर्ग धर्म के नाम पर इसी प्रकार की दुहाई देता है। शताब्दियों से धर्म के नाम पर जो अत्याचार होता आ रहा है उस अत्याचार को रोकने के लिये अगर कोई लोकबल या राजबल से प्रयत्न करना चाहता है तो धार्मिकम्मन्य लोग उस अत्याचार को रोकना भी धर्म पर अत्याचार समझते हैं।

यदि आज कोई विवाहक्षेत्र की सुविधाके लिये अपने बाड़े से बाहर कदम बढ़ाकर स्वच्छ वायु में श्वास लेता है, तो पुराणपंथियों के तमाचे बेचारे के गालों पर तड़ातड़ पड़ने लगते हैं। यदि कोई विधवा या विधुर व्यभिचार से बचने के लिये विवाहसंस्थाका सहारा लेते हैं तो भी उनपर तमाचों की वर्षा होने लगती है। अगर वह बेचारी यह कहे कि मैं भी मनुष्य हूँ, मैं भी उसी उदर से पैदा हुई हूँ जिसमें से पुरुष पैदा होते हैं, मुझमें भी हृदय है, बुद्धि है, ज़िम्मेदारी का ज्ञान है, इसलिये मुझे भी साम्पत्तिक अधिकार मिलना चाहिये, तो पुराणपन्थी वर्ग न तो उसे पुनर्विवाह की आज्ञा देना चाहता है, न किसी प्रकार का साम्पत्तिक अधिकार ! इस प्रकार शताब्दियों से स्त्रीसमाज और शूद्रसमाज, पुरुषों के और कुलीनम्मन्यों के तमाचे सहन करता आ रहा है। परन्तु जब ये लोग तमाचा खाने से इन्कार करते हैं या मनुष्यतापूर्ण मनुष्य इस अन्याय को रोकने के लिये प्रयत्न करते हैं तब ये लोग चिल्लाते हैं कि—हमारे धर्म में हस्तक्षेप किया जा रहा है ! इनकी यह दुहाई इसी प्रकार की है जैसी कि ऊपर के दृष्टान्त में बताई गई है।

सौभाग्य से आज जगत् की चेतनता इतनी जाग्रत हुई है कि आज लोग स्वार्थ को लात मारकर भी अन्याय और अत्याचारों से भिड़ने को तैयार हैं। एक दीन पशु जब बध के लिये लेजाया जाता है तब हमारा हृदय रो पड़ता है। तब आज स्त्रियों के ऊपर होने वाले अत्याचारों को देखकर निःस्वार्थी सुधारकों का हृदय रोपड़ता है तो इसमें क्या आश्चर्य है ? बध को लेजाया जाता पशु पहिले से इतने दुःख का अनुभव नहीं करता, जितना एक सहृदय दर्शक करता है। इसी तरह सुधारकों की करुणापूर्ण वेदना जड़तापूर्ण विधवाओं की, स्त्रियों की, अपनी बहिनोंकी वेदना से भी अधिक है।

अत्याचार फिर भले ही वह धर्म के नाम पर चलता हो, उसको रोकने का हरएक को अधिकार है, और इसके लिये किसी भी शक्तिका अवलम्बन लिया जासकता है। यही कारण है कि आज सुधारक इसके लिये राजबल का सहारा लेते हैं ! फिर जिस अत्याचार के समर्थन में राजबल की सहायता हो, उसके रोकने में तो राजबल ही उपयोगी हो सकता है। यदि क़ानून को धर्म में हस्तक्षेप करने का हक़ नहीं है तो धर्मके नामपर चलने वाले अत्याचारोंके समर्थन का हक़ उसे कैसे मिल सकता है ?

बृटिश भारत में जो भी क़ानून इस ढंगके बने हैं या बननेकी तैयारी में हैं, ये प्रायः हस्तक्षेप नहीं करते, किन्तु शताब्दियों से होते आये अनुचित हस्तक्षेप को रोकते हैं। खेद है कि इस प्रकार के क़ानून बृटिश भारत में बहुत कम बने हैं और सरकार की उपेक्षापूर्ण नीति से इनकी प्रगति मात्रा से अधिक मन्द है। इस विषय में बड़ौदा राज्य की प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जासकता। पिछले कुछ वर्षों में बड़ौदा राज्य ने अनेक ऐसे सुधार किये हैं जो बृटिश राज्यवालों के लिये ईर्ष्या की चीज़ कहे जा सकते हैं।

अनिवार्य शिक्षा के विषय में बड़ौदा राज्य ने जो कुछ प्रयत्न किया है, वह यद्यपि अर्धसफल है, फिर भी बृटिशराज्य के शिक्षाप्रचारसे कई गुणा अच्छा है। इधर अनुचित दीक्षा विरोध, विजातीय विवाह, विधवा विवाह, बहिष्कार विरोध आदि के विषय में जो क़ानून बनाये हैं उसकी भी मुक्तकंठ से प्रशंसा करनी पड़ती है।

इसके बाद स्त्रीसमानता के विषय में बड़ौदा राज्य ने जो प्रगति की है वह आश्चर्यजनक है। हिन्दू क़ानून का विषापहरण करके बड़ौदा राज्य ने हिन्दू महिलाओं का अनन्त आशीर्वाद प्राप्त किया है।

यद्यपि हिन्दू नारी आज शिक्षाके क्षेत्रमें आगे

बढ़ रही है, तथापि हिन्दू क़ानून ने जो विषमता पैदा कर रक्खी है उससे वह डोरीमें बँधे हुए पक्षीकी तरह उड़ने की शक्ति रखते हुए भी कुदक कुदक कर रह जाती है। उसकी आर्थिकगुलामी ने उसकी मनुष्यता का अपहरण कर लिया है। स्त्रियों के हाथ में धन नहीं है. उनको साम्पत्तिक अधिकार नहीं है, इसीलिये हिन्दुओं के यहाँ वे वेद नहीं पढ़ सकतीं, बौद्धों के यहाँ साधुओं को शिक्षा नहीं देसकतीं, श्वेताम्बर जैनों के यहाँ दृष्टिवाद का अध्ययन नहीं करसकतीं और दिगम्बर जैनों के यहाँ मोक्ष नहीं जा सकतीं। हाय रे पैसा! तू ईश्वर का भी ईश्वर है।

स्त्रियों के उत्तराधिकारित्व के नियम इतने अन्यायपूर्ण हैं कि इनके अनुकूल द्रव्यक्षेत्रकालभाव कब रहा होगा, इसकी कल्पना बड़ी मुश्किल से होती है। आज तो ये अत्यन्त हेय हैं। स्त्री को न तो पिता के घर की सम्पत्ति में कुछ अधिकार है, न पतिगृह की सम्पत्ति में कुछ अधिकार है। आज से पहले बड़ौदा राज्य में भी यही दुर्दशा थी। परन्तु नये क़ायदे के अनुसार विधवा का सम्पत्ति के ऊपर वैसा ही हक़ रहेगा जैसा कि उसके पति का था। विधवा होजाने पर भी वह अपने पति की पैतृक सम्पत्ति का भाग अलग कराके इच्छानुसार उसका प्रबन्ध करा सकेगी। दायभाग के इस परिवर्तन ने और भी छोटे छोटे परिवर्तन किये हैं। इससे स्त्रियों को मनुष्यत्व के अधिकार मिले हैं।

जैन क़ानून भी इस तरह के हक़ देता है परन्तु खेद है कि आज असंगठित जैनियों की कोई आवाज़ नहीं है। नज़ीरों के बलपर कभी कभी फ़ैसले का ऊँट इस करवट बैठ जाता है, परन्तु वह संदिग्ध ही है और उसके लिये अदालतों की देहरी पर महीनों या वर्षों नाक रगड़ना चाहिये, जोकि बेचारी स्त्रियों से नहीं हो सकता। व्यवहार में तो हिन्दू और जैन दोनों ही समाजें स्त्रियों को एक ही चक्की में पीसती हैं।

हर्ष है कि बड़ौदा राज्यने इस कार्यका श्रीगणेश किया है। बृटिशभारत के निवासियोंको इसके लिये शीघ्र प्रयत्न करना चाहिए।

हमारी अछूतता।

हम लोग कृत्रिम जातिकुलाभिमानसे उन्मत्त होकर अपनेही भाइयोंको बड़ी बेशरमीसे अछूत कहते हैं, परन्तु हमारा पाप हमारे साम्हने आरहा है; आज हमकोभी दूसरे लोग अछूत समझते हैं। और जो लोग अछूततामें ज़राभी विश्वास नहीं करते वे भी हमारे लिये अछूतताको मानने वाले बनजाते हैं, हमें अछूत समझकर पद पद पर हमारा अपमान करते हैं।

हिन्दुस्थानकी फुटबॉलटीमको आफ्रिकासे निमंत्रण मिला है। तदनुसार यहाँकी टीम गर्मीके दिनोंमें आफ्रिका जायेगी परन्तु आफ्रिकाके गोरोंने हिन्दुस्थानके काले लोगों के साथ खेलनेसे इनकार कर दिया है। इस तरह आज विदेशोंमें पदपद पर हमारा अपमान होता है-हम अछूतों की तरह दुरदुराये जाते हैं। फिरभी हम अपनेही भाइयोंको अछूत समझते हैं! एक गुलाम जब गुलामीसे नहीं छूट-पाता तो अपने साथी गुलामकी गुलामीकी ज़ंजीरें मज़बूत करनेकी चेष्टा करता है। यही दशा हमारी है। हिन्दुस्थान का ब्राह्मणभी आज विदेशी गोरोंके लिये अछूत है, और भंगीभी अछूत है; परन्तु हम यहाँ परस्परमें ही छूताछूतकी कल्पना करके अपनी अछूतताको नैतिक सहायता पहुँचा रहे हैं।

मनुष्यकी एक जाति दूसरी जातिसे घृणा करे, उसे अछूत समझे, उसके साथ मिलने जुलनेमें, खेलकूदमें अपना अपमान समझे, यह मनुष्य-जातिके लिये कलंक है, पाप है, एक अभिशाप है! परन्तु आज जब हम अपनेही भाइयों को अछूत कहकर मदोन्मत्तताका परिचय देरहे हैं, तब हमें आफ्रिकाके या अन्य देशोंके मदोन्मत्त गोरोंको उलहना देनेका, उनको मनुष्यताका पाठ पढ़ानेका क्या अधिकार है?

आज हम स्वयं पाप करते हैं और दुनियाँ के पापियों को भी पाप करनेके लिये मौन प्रेरणा करते हैं। इतनाही नहीं, किन्तु उस पापके स्वयं शिकार बनते हैं! इतने परभी हमारा नशा नहीं उतरता, हमारा विवेक जाग्रत नहीं होता!

आलोचना और निंदा।

जो विचार अपनेको पसन्द नहीं हैं, उनकी आलोचना करनेका हरएकको हक़ है। सत्यान्वेषण और सत्यप्रकाशन की दृष्टिसे यह अनुचित नहीं कहा जा सकता। परन्तु बहुतसे मनुष्य आलोचनाके बहाने निंदा करने लगते हैं। इतनाही नहीं, किन्तु आलोचनाके विषयको छोड़कर या उसे गौण करके निंदाके काम पर उतारू हो जाते हैं।

'जैनदर्शन' पत्रसे मुझे आशाथी कि वह जैनजगत्‌के अमुक विचारोंका विरोध करेगा किन्तु उसके सम्पादकको खूब निंदा करनेके सिवाय और किसी बात पर मालूम नहीं होता। अकलंकदेव आदिके व्यक्तित्वका बहाना लेकर उनने जो मुझे गालियाँ देनेकी कृपाकी है और जब उस विषयमें आलोचनात्मक चर्चा की गई तो जिस प्रकार मौन धारण किया है, उससे स्पष्ट मालूम होता है कि गाली देना और चर्चाके कार्यसे किनारा काटना जैनदर्शनने नहीं तो, जैनदर्शनके सम्पादकने अपना कर्तव्य समझ लिया है!

भाई हेमचन्द्रजीका सत्य-असत्य वाला लेख छापकर उसके ऊपर टिप्पणी लगाकर मैंने अपने वक्तव्यको स्पष्ट कर दियाथा और जो मुझे अनुचित मालूम हुआ उसका विरोधभी कियाथा, तथा इसमें क्या उपादेय सामग्री है यहभी बतायाथा। अगर चाहतेतो दर्शनके सम्पादक इस पर युक्तियुक्त विवेचन कर सकतेथे, परन्तु ऐसा न करके उनने निंदा करना शुरू किया। इतनाही नहीं किन्तु मैंने जो नोट दियाथा उसको साफ़ उड़ाकर निंदाकी सारी वर्षा मेरे ऊपरकी। यहाँतक कि मैंने जो नोट दियाथा उसका ज़िकर करने तकका सौजन्य न दिखलाया। इसके बाद दर्शन सम्पादकका ध्यान मैंने इस तरफ़ आकर्षित किया और विस्तारसे उस लेखकी हेयोपादेयताकी आलोचनाकी। तबभी आप उस आलोचनासे किनारा काटगये और कहने लगेकि 'पीछेसे जिस लेखपर असहमति प्रगट करना पड़े, उसे छापते क्यों हैं'? मैंने लेख क्यों छापा, इसकी भी आलोचना मैंने कीथी, परन्तु उसका उत्तर न देकर आप वही बात बारबार कहते हैं, और इस ढंगसे कहते हैं मानों आपका विरोध देखकर पीछेसे मैंने असहमति प्रगटकी है। मेरा असहमतिसूचक नोट लेखके साथमें था—यह बात फिरभी आप स्वीकार नहीं करते। इस प्रकार आलोचनासे किनारा काटकर, असली बातको छुपाकर जैनदर्शनके पाठकोंको धोखा देनेकी चेष्टा सिर्फ़ इसलिये की जाती है जिससे जैनजगत्‌की निंदा हो।

जैनजगत्‌ने तो ऐसेभी लेख छापे हैं जो खासकर उसी पर आक्रमणके लियेथे। ब्रह्मचारीजीने जो जैनजगत्‌के विरोधमें लिखाथा वहभी जैनजगत्‌ने छापाथा। जैनजगत् की यह उदारता है कि जिससे जैनजगत्‌के पाठकोंको कुछ लाभकी सम्भावना हो या उनका कुछ ज्ञान बढ़ताहो तो वह अपने विरोधी लेखोंकोभी छापता है। वह अपने पाठकोंको अँधेरेमें नहीं रखना चाहता, न उनकी आँखोंमें धूल झोंकना चाहता है। अगर कोई ठेकेदार जगत्‌की इस नीतिकी निंदा करना चाहता है तो भलेही करे, जैनजगत् इसकी पर्वाह नहीं करता। कोई भोला पाठक भ्रममें न पड़जाय इसलिये निंदकोंकी निंदकताका यह नङ्गारूप दिखा देता है। हाँ, आलोचकोंका वह स्वागत करता है, इतनाही नहीं किन्तु वह उन्हें निमंत्रण तक देता है।

साहित्य परिचय।

सूर्यप्रकाश परीक्षा-लेखक, श्रीमान पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार। प्रकाशक जौहरीमलजी सर्राफ़, दरीबा कलाँ देहली। मूल्य विचार और प्रचार।

खेतमें अनाजके पौधोंके साथ ऐसा घासभी पैदा होता है जो अनाजके पौधोंको नुकसान पहुँचाता है। फिरभी उसका होना प्रकृतिसे अनिवार्य है। उससे बचने का उपाय यही है कि मौका पाकर उसे उखाड़कर फेंक दिया जाय। यही दशा साहित्य-क्षेत्रकी भी है। इस क्षेत्रमें भी घासके समान साहित्य पैदा होता है, जिसे उखाड़कर फेंक देनेकी ज़रूरत होती है। अगर ऐसा न किया जायतो वह साहित्यके अन्य अंगोंको भी नष्ट कर डाले। सूर्य-प्रकाश भी ऐसाही घास है जिसे उखाड़ फेंकनेकी ज़रूरत है। पं० जुगलकिशोरजीने सूर्यप्रकाशपरीक्षा लिखकर यही कार्य किया है। इस विषयमें वे सिद्धहस्त हैं, इसलिये विशेष लिखनेकी ज़रूरत नहीं है। जो लोग सूर्यप्रकाश पढ़ें उन्हें यह सूर्यप्रकाशपरीक्षा अवश्य पढ़ना चाहिये। साथ ही जो जानना चाहतेहों कि भगवान् महावीरके नाम पर धर्मकी कैसी विडम्बना होती रही है, वे भी पढ़ें। जिनको यह भ्रमहो कि जैनधर्मके नामपर लिखा गया पुरानी भाषाओंका सभी साहित्य जिनवाणी है, वे अपने भ्रमको दूर करनेके लिये यह पुस्तक पढ़ें। यह पुस्तक लेखमाला के रूपमें जैनजगत्‌में निकल चुकी है। प्रारम्भमें श्रीयुत् दीपचन्दजी वर्णीका एक निवेदन और मेरी भूमिका भी है।

दिगम्बर जैन—विशेषाङ्क वी० सं० २४६०। संपादक और प्रकाशक मूलचन्द किसनदास कापड़िया सूरत। मूल्य ।॥)

अबकीबार कापड़ियाजीने विशेषाङ्कको समाज अंक बनाया है। इस विषयसे सम्बन्ध रखनेवाले बहुतसे लेख हैं। मुखपृष्ठ पर जैनसमाजका चित्र अच्छा है। व्यंग्य चित्रभी मार्मिक हैं।

सामाजिक नियम—लँबेचू जैनसमाजके सामाजिक नियमोंमें संशोधन करके अटेर (ग्वालियर) की पंचायतने नियम निर्धारित किये हैं, जोकि अपव्ययको रोकनेवाले हैं। इसके प्रकाशक पं० बटेश्वरदयालुजी बकेबरिया देवबन्द (सहारनपुर) हैं।

नर्मदा सुन्दरी--जैनसाहित्य सीरीज़का यह ६—७ अंक है। नर्मदासुन्दरीकी कथा है। इसके पाँच अंकोंका परिचय पहिले दिया जाचुका है। कथा लम्बी होजानेसे यह दो अंकोंका संग्रह है। मंत्री जैनधर्म प्रचारक-मण्डल अजमेरसे दोआनेमें मिल सकती है।

The Jaina Hostel Magazine—सम्पादक श्रीयुत मनमोहन वर्मा। यह दिसम्बर १९३३ का अंक है जिसमें मुख्यतः अंग्रेज़ीके तथा कुछ हिन्दीके भी सर्वोपयोगी लेख हैं। इलाहाबाद जैनबोर्डिंगकी तरफ़से यह पत्र निकलता है। खेद है कि यहाँ जैनविद्यार्थियोंकी संख्या बहुत थोड़ी है—चालीस सीट होने परभी सिर्फ़ ९ छात्रही जैन हैं। जैनछात्रोंको इसका उपयोग करना चाहिये। धर्मशिक्षककी कमीभी बहुत खटकती है; परन्तु जगह पूरी करनेके लिये जैसेतैसे धर्माध्यापकको नियुक्त करनाभी अनुचित है। जबतक सुयोग्य अध्यापक न मिले तबतक विचारशील तथा आधुनिक पद्धतिसे धार्मिक विषयों पर व्याख्यान देनेके लिये विद्वानोंको निमंत्रित करना चाहिये। जिस समय छात्रों पर कॉलेजकी पढ़ाईका भार कमहो, उस समय ऐसे सुयोग्य विद्वानको एकाध हफ्तेके लिये निमंत्रण देना चाहिये। इसमें खर्च भी कम होगा और सात आठ व्याख्यान तथा प्रश्नोत्तरोंसे विद्यार्थियोंको अच्छी जानकारीभी होगी। मतलब यहकि समयोचित धर्म शिक्षाका प्रबन्ध अवश्य होना चाहिये।
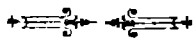
मुक्ता-माला।

किसी तत्वको केवल श्रद्धा द्वारा ही न करो स्वीकार।
उसके अन्तस्तलमें धँसकर करो मित्रवर गूढ़ विचार॥
कसो तर्ककी कठिन कसौटी पर तुम उसको विविध प्रकार।
मित्र कथितभी यदि असत्य है, करदो तब तुम अस्वीकार॥
किसी विरोधी तत्व कथनको सुनकरही न भड़क जाओ।
सुनो धैर्यसे, उसे तर्ककी तीक्ष्ण कसौटी पर लाओ॥
कसो और फिर करो परीक्षा यदि है सचमुच सत्य विचार।
है यदि कथन विरोधीका भी, करलो मित्र उसे स्वीकार॥
है जितना अधिकार तुम्हें, करनेका अपने प्रकट विचार।
अन्य व्यक्तिको भी विचार करनेका उतनाही अधिकार॥
किसी व्यक्तिको निज विचार कहनेसे अरे रोक देना।
मनुष्यत्वसे विमुख कार्य है, मानव स्वत्व हड़प लेना॥
शोक करो मत किसी तरहका हर्ष तुम्हें है प्राप्त नहीं।
मत न दुःखीहो, ऐश्वर्यसे भरा सदन पर्याप्त नहीं॥
कभी न मनमें बंधु विचारो जगमें एक दुखीहो तुम।
जगको देखो, अरे! अनेकों दुखी आपसेभी गुरुतम॥
नित्य सकामवृत्तिसे केवल संचयही करना धनका।
मेरे प्यारे! कभी नहीं है चरम लक्ष्य यह जीवनका॥
किन्तु सदा निष्कामवृत्तिसे जनहितमें होना तन्मय।
है मानव कर्तव्य, सदाके लिए सौख्य पाना अक्षय॥
ज्ञान रहित, इच्छाविरुद्ध, आज्ञाके वशीभूत होकर।
करना इन्द्रियदमन, न संयम कहलाता है, हे प्रियवर॥
किन्तु समझ कर्तव्य, ज्ञानमय, पूर्ण स्वतंत्रवृत्ति होकर।
इन्द्रिय, मनका निग्रह करना, कहलाता संयम सुखकर॥
अहंकार, आडंबर, मूढ़ क्रियाएँ दिखलाना क्षणक्षण।
रहना नित्य उद्दंड, निरंकुश, नहीं संयमीका लक्षण॥
बुद्धि, विवेक, नम्रता, क्षमता और उदारभाव रख मन।
रखते स्थिर, संयम मर्यादा सच्चे वही संयमीजन॥
सत्य त्यागको नहीं ज़रूरत आडंबर दिखलानेकी।
जनसमूहकी, संभ्रमोहकी, आत्मप्रशंसा करनेकी॥
वह स्वाभाविक त्याग नहीं, बाजे बजवाकर आता है।
पर अज्ञात अदृश्य रूपसे स्थिरगतिसे आता है॥
अरे! नहीं वैधव्यधर्म है, हाँ संयम है धर्म प्रधान।
दल प्रयोग, एवं संयम रखते अपनेमें भेद महान्॥
प्रथम जीवको पतित बनाकर, नित्य अधोगति पहुँचाता।
और द्वितीय सद्भाव रूपसे, उन्नतिपथ पर लेजाता॥
रूपवती रमणी विलोक जिसके मनमें होता अनुताप।
किन्तु नहीं भय, लज्जासे जो कर सकता शारीरिक पाप॥
उसे न पृथ्वीपर कोई कह सकता सत्य ब्रह्मचारी।
मनपर विजय प्राप्त करता जो वहही सत्य सदाचारी॥
धर्म शृंखला, शुष्क तपस्या शास्त्र विचारोंमें जो बद्ध।
रहता है, वह कभी नहीं कहला सकता है त्याग विशुद्ध॥
कर्ममार्गमें होकर निर्भय जनहितमें रखकर अनुराग।
अखिल विश्वमें फैलाहो जो, वह कहलाता सच्चा त्याग॥

किसी पुरुषके त्याग जाननेकी यदि इच्छा रखते आप।
सो उसके विशेष जीवनपर ध्यान न दो कुछभी, चुपचाप॥
उसके साधारण जीवन, दैनिक-जीवनको देखो मित्र।
उसमें जो कुछ तुम्हें मिलेगा, होगा उसका वही चरित्र॥

—"वत्सल" विशारद

मृतक-भोज बन्द।

कहावत है कि 'जो गरजते हैं सो बरसते नहीं' अर्थात् "जो कहते हैं वह करते नहीं"। परन्तु तारीफ़ उन महान् पुरुषोंकी है कि जो बात ज़बानसे कहते हैं वही कर दिखलाते हैं। ऐसेही सत्पुरुषोंमें महेन्द्रगढ़ (पटियाला स्टेट) के श्रीमान् जैनसमाजभूषण सेठ ज्वालाप्रसादजी जैन जौहरी हैं। आप सच्चे सुधारवादी हैं। आपने अबतक कितनी ही सभाओंके प्लेटफ़ार्मों पर सभापतिकी हैसियतसे भाषण देते हुये जिनसुधार सम्बन्धी भावोंको प्रगट किया है, और समाजको जिन कुरीतियोंके दूर करनेकी सम्मति दी है, आप उन सुधारों पर बड़ी दृढ़ताके साथ तत्पर रहते हैं।

कहते हुये दुःख होता है कि अभी पिछले दिनों आपकी पूज्य मातेश्वरीका देवलोक होगया है। आपने इस समय अपनी बिरादरीमें मृतक-भोजकी प्रथा होते हुयेभी मृतक-भोज नहीं किया, क्योंकि आप मृतक-भोजके इतने विरोधी हैं कि इस प्रथाका खाना तक नहीं खाते। आपने इस घृणित प्रथाको बन्द करनेमें बड़ी निर्भीकतासे काम लिया है; अन्यथा भोजप्रेमियोंको आपका यह सुधार बहुत ही खटका है, क्योंकि महेन्द्रगढ़में सबसे प्रथम अपनी अग्रवाल बिरादरीमें मृतक-भोजकी इस कुप्रथाको आपने ही बन्द किया है।

आपने इस समय पर लगभग पाँच हज़ार रुपया दान किया है, जिसमेंसे कुछ रुपयेका अन्न, मिठाई, घी आदि सामानतो नगरके ब्राह्मणों और ग़रीबोंको बाँट दिया है; कुछ रुपया सामाजिक और धार्मिक संस्थाओंमें देनेका विचार है। और शेष रुपया मातेश्वरीके स्मरणार्थ किसी शुभ कार्यमें लगाया जायगा।

आपकी पूज्य मातेश्वरी बड़ी धर्मज्ञ, देवगुरु शास्त्रकी उपासक, उदारचित्त, अनुभवशील, सरलस्वभाव और गृहकार्यमें बहुतही निपुण थीं। आप अपने सुपुत्रकी दान प्रणालीसे बहुतही संतुष्ट और खुशथी और दान देते हुये हर्ष मानतीथीं। सेठजीको आपके वियोगसे अत्यंत दुःख हुआ है। सेठजी स्वयंभी बहुत बीमार रहे। परन्तु धर्मके प्रसादसे अब आपका स्वास्थ बहुत अच्छा है।

आशा है कि मृतक-भोजके अनुयाई आपके त्यागका अनुकरण करते हुये इस कुप्रथाको बन्द करनेमें अग्रसर होंगे।

हमारी हार्दिक भावना है कि पूज्य मातेश्वरीकी आत्मा को सद्गति और सेठ साहबको धैर्य प्राप्त हो।

—ज्योतिप्रसाद जैन, देवबंद।

मंदिरप्रवेश बिलके सम्बंधमें सम्मति।

श्रीमान्‌जी !

सन् १९३३ वाले हिन्दूमन्दिरप्रवेश (सम्बन्धी) बाधा-निवारक क़ानूनके मसविदेकी प्रति मिली। उसके विषयमें निवेदन है कि जैनधर्मके पूज्य तीर्थंकरोंने किसीभी धार्मिक आत्माको अछूत नहीं माना। स्वयं उनकी व्याख्यान-सभाओंमें जिनको समोसरन कहा गया है, प्रत्येक जीव–देव, मनुष्य, पशु-पक्षी तक जाकर धर्मश्रवण करतेथे। मनुष्योंमें म्लेच्छऔर चाण्डाल तकभी जातेथे, जोकि जैनधर्मके श्रद्धानी बनकर पवित्र होतेथे। वर्तमान समयमेंभी चाँदनगाँव (राज्य जयपुर) के श्रीभगवान् महावीर स्वामी (जैनियों के अन्तिम तीर्थंकर) के विशाल जैनमन्दिरमें जैनियोंके अतिरिक्त गूजर, मीना, भील, चमारादि सब जाते हैं और श्रद्धानुसार चढ़ावा चढ़ाते हैं !

धार्मिक क्रियाके पालनमें छूत अछूतका कोई भेदभाव नहीं होना चाहिये। पतितात्मा तभी अपना उद्धार कर सकती है जबकि उसे धर्मसेवनका स्वतंत्रतापूर्वक अधिकार दिया जाय। अतः प्रत्येक आत्माको धर्माचरण आचरते हुये अपना वास्तविक कल्याण करनेका पूर्ण अधिकार जैनधर्मने दिया है।

इस विषयमें मेरी सम्मति जैनधर्मानुसार स्पष्ट है कि यदि कोई अछूत कहलानेवाला व्यक्तिभी जैनधर्मका श्रद्धानी होजाय तो उसको जैनमन्दिरोंमें दर्शनार्थ जानेका पूर्ण अधिकार है।

देवबन्द द० ज्योतिप्रसाद जैनाग्रवाल,
१०-१-३४ भूतपूर्व सम्पादक "जैनप्रदीप"।

"जैनधर्म का मर्म" पर सम्मतियाँ

(३२)

श्रीयुत जगदीशचंद्रजी जैन ऐम० ए० की सम्मति—

'जैनधर्मका मर्म' नामकी लेखमाला लगभग दो वर्षोंसे निकल रही है। इस मालाने कितना मौलिक तथा क्रांतिकारी साहित्य निर्माण किया है, इसके बतानेकी आवश्यकता नहीं। 'माला' के लेखक बहुश्रुत विद्वान पंडित दरबारीलालजी न्यायतीर्थ हैं। जन्मसे दिगम्बर सम्प्रदायके होते हुएभी, दिगम्बर साहित्यके अध्ययनके अतिरिक्त आपका श्वेताम्बर साहित्यका अवलोकनभी बहुत बढ़ाचढ़ा है। जैनोंके तीनों सम्प्रदायोंकी सामाजिक परिस्थितिका भी आपने अच्छा परिचय प्राप्त किया है। निस्सन्देह एक दिगम्बर पंडितका यह प्रयत्न प्रशंसाके योग्य है। साथही दिगम्बर विद्यालयोंके पंडितवर्गकी स्पर्धा के योग्य तो है ही।

लेखमालाके चार अध्याय समाप्त होचुके हैं, पाँचवाँ चालू है। इन अध्यायोंमें जैन तत्वज्ञानके बहुतसे महत्वपूर्ण प्रश्नों पर निर्भीक और निष्पक्ष रीतिसे विचार किया गया है। लेखकके कथनानुसार अभीतककी लेखमाला उनकी एक बृहती योजनाकी भूमिका मात्र है। अन्य भारतीय दर्शनशास्त्रोंकी तरह यहाँ भी प्रथम अध्याय 'धर्मकी आवश्यकता और खोज' से प्रारंभ होता है। इस विषय पर विशेष प्रकाश डालनेके लिये कर्त्तव्यशास्त्र (Ethics) के पाश्चिमात्य लेखकोंसे पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होसकती है। दोएक स्थलों पर लेखमालामें इसका उपयोग कियाभी गया है। दूसरा अध्याय जैनधर्मके इतिहास के संबंधमें है। यद्यपि पार्श्वनाथके पूर्व जैनधर्मके अस्तित्व पाये जानेमें आज सुनिश्चित साधक प्रमाण उपलब्ध न हों, फिरभी इस दिशामें विशेष खोजकी आवश्यकता है।* इसी अध्यायमें महावीर और बुद्धके जीवन पर तुलनात्मक विचार किया गया है। लेखकका झुकाव बुद्धकी अपेक्षा महावीरकी ओर अधिक दीख पड़ता है। लेकिन यह स्वाभाविक है, क्योंकि लेखकको महावीर और जैनधर्म सबसे अधिक प्रिय है। अतिशयसंबंधी प्रकरण खूब मनोरंजक और महत्वपूर्ण है।

तीसरे अध्यायका नाम 'कल्याण पथ' अथवा 'मोक्षमार्ग' है। इसमें सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानके विषय में एक नयी पद्धतिसे विचार किया गया है। सम्यग्दर्शनके आठ अंगोंका विस्तृत वर्णन लेखकके हृदयकी उदारता और व्यापकताको पद पद पर सूचित करता है। चतुर्थ अध्याय में 'सम्यग्ज्ञानकी सीमा' बताई गई है। यह अध्याय कई दृष्टियोंसे बहुत महत्वका है। सर्वज्ञत्वका इतिहास, उपयोग सम्बन्धी चर्चा, केवली और सर्वज्ञता आदि विवेचन लेखकके दिगम्बर, श्वेतांबर ग्रथोंके गहन अनुशीलन के साथ साथ उनकी तर्क और विचारकशक्तिकी प्रतिभाको द्योतित करते हैं। इतनाही नहीं, इस प्रकार के स्वतंत्र मौलिक विचार जैनरिसर्चमें एक नया युग स्थापित करने वाले कहे जासकते हैं। पाँचवें अध्याय में ज्ञान संबंधी चर्चा करते हुए कुछ शंकाओं की सूची दीगई है। जैन सिद्धांतके विद्यार्थियोंको इनपर गंभीरतासे विचार करना चाहिये।

जैन समाजकी स्थिति बहुत संकीर्ण है, साथही भयंकरभी है। इसलिये साम्प्रदायिक वातावरणमें पले हुए जैन समाजके विद्वानोंको इस क्रांतिकारक विचार मालाको पचानेमें कुछ समय लगेगा। इतने समय तक लेखकको धैर्य रखना होगा। जो कुछभी हो, लेखमाला के मनन करनेसे लेखकके श्रुतगाम्भीर्य, जैन तत्वोंका गहन अनुशीलन, विचारोंकी मौलिकता और उदारता, तार्किकता तथा लेखनकलाकी प्रांजलताकी छाप हृदय पर पड़े बिना नहीं रहती। इस विचार-मालाकी ओर मेरी पूर्ण सहानुभूति है।

* यदि समय मिला तो किसी अवसर पर जगत् के पाठकों को इस खोज की सामग्री उपस्थित की जायगी।

साहित्यसुधा

(३)

आचार्य हेमचन्द्रने अपने प्राकृत व्याकरण में अपभ्रंश व्याकरण का बहुत ही अच्छा परिचय दिया है। साथ ही नियमोंको समझाने के लिये जो उनने अनेक पद्य उद्धृत किये हैं, वे भी बड़े सुन्दर हैं। वे कहाँ के हैं, यह बात अभी ठीक ठीक नहीं मालूम होपायी है; परंतु ज्यों ज्यों अपभ्रंश साहित्य प्रकाश में आता जायगा त्यों त्यों पता लगता जायगा। अम्बादास चवरे दि० जैन ग्रन्थमाला से प्रकाशित पाहुड़ दोहामें अनेक पद्य ऐसे हैं जिनमें नाममात्र का परिवर्तन करके हेमचन्द्र आचार्य ने उनका उल्लेख किया है। इसमें सन्देह नहीं कि हेमचन्द्राचार्य की बहुश्रुतता आश्चर्यजनक है। इनमें अनेक उदाहरण बहुत ही रसपूर्ण हैं, श्रृंगाररस के भी हैं, परन्तु नग्न श्रृंगार को मैं यहाँ छोड़ दूँगा:—

१—श्रीमान् लोग चापलूस दुर्जन सेवकों को सिर पर चढ़ाते हैं और सज्जन सेवकों को पैरों के नीचे रखते हैं इसी को लक्ष्यमें लेकर कहा गया है कि:—

सायरु उप्परि तणु धरइ तलि घल्लइ रयणाइँ।
सामि सुभिच्चुवि परिहरइ सम्माणेइ खलाइँ॥

सागर घास फूस को तो ऊपर रखता है और रत्नों को नीचे डाले रहता है। इसी तरह श्रीमान् लोग सच्चे सेवक को दूर करके खलका सन्मान करते हैं।

२—साधारण मनुष्य स्वार्थी होता है। वह किसी के सुख में तो शामिल होता है परन्तु दुख से दूर भागता है। परन्तु सज्जन ऐसे नहीं होते। दुनियाँ जिसे छोड़ जाती है वे उसे भी छाती से लगाये रहते हैं। सज्जन की यह महत्ता वृक्ष में दिखाकर सज्जन को उपमान बनाया है जिससे उसकी महत्ता और बढ़ जाती है।

वच्छहे गिण्हइ फलइं जणु कडु पल्लव वज्जेइ।
तोवि महद्दुमु सुअणु जिवं ते उच्छंगि धरेइ॥

लोग वृक्ष से फल तोड़ लेते हैं और पत्तों को कड़ुआ समझकर छोड़ देते हैं, लेकिन वृक्ष तो सज्जन की तरह है जो उनको गोद में रखता है।

३—आत्म श्लाघा से बचना और दूसरों की सच्चे दिल से प्रशंसा करना बहुत कठिन है। जिसमें यह है, वह पूजनीय है। यही बात यहाँ बताई जाती है।

जो गुण गोवइ अप्पणा पयड़ा करइ परस्सु।
तसु हउँ कलि जुगि दुल्लहहो बलि किज्जउं सुअणस्सु॥

जो अपने गुण छुपाता है और दूसरों के प्रकट करता है, कलियुग में दुर्लभ ऐसे उस सुजन की मैं पूजा करता हूँ।

४—एक वीरांगना का पति युद्ध में मारा गया है, इस समाचार को सुनकर वह अपनी सखी से कहती है—

भल्ला हुआ जु मारिआ बहिणि महारा कन्तु।
लज्जेज्जं तु वयंसि अहु जइ भग्गा घरु एन्तु॥

बहिन! अच्छा हुआ जो मेरा प्रियतम मारा गया। अगर लड़ाई से भागकर वह घर आया होता तो सखियों के सामने मैं लज्जित होती।

५-जीविउ कासु न वल्लहउं धणु पुणु कासु न इट्ठु।
दोण्णिवि अवसर निवडिआइँ तिणसम गणइ विसिट्ठु॥

जीवन और धन किसको प्यारा नहीं है परन्तु अवसर आने पर विशिष्ट पुरुष (महापुरुष) दोनों को तिनके के समान समझते हैं।

६-जइ पुच्छह घर वड्डाइं तो वड्डा घर ओइ।
विहलिअ जण अब्भुद्धरणु कन्तु कुडीरइ जोइ॥

क्या तुम बड़ा घर पूछते हो? तो बड़ा घर वही है जिस झोंपड़ी में दुःखियों का उद्धार करने वाला प्रियतम रहता है।

७—जब कोई राजा या श्रीमान् सुयोग्य मनुष्यों का तिरस्कार करता है, उस समय पर यह सुन्दर अन्योक्ति कही गई है—

पइँ मुक्काहँवि वर तरु फिट्टइ पत्तत्तणं न पत्ताणं।
तुह पुण छाया जइ होज्ज कहवि ता तेहिं पत्तेहिं॥

हे महान् वृक्ष, तेरे छोड़ देने पर भी पत्रों का पत्रपन नष्ट न हो जायगा; (परन्तु याद रख) तेरी जो छाया होती है वह इन पत्रों के द्वारा ही होती है।

८—एक पत्नी अपने पति की व्याजस्तुति (निन्दात्मक प्रशंसा) करती है।

भल्ल कन्तहु बे दोसडा हेल्लि म झङ्खहि आलु।
देन्तहो हउं पर उव्वरिअ जुज्झन्त हो करवालु॥

हे सखी ! तुम मेरे प्रियतम की झूठी प्रशंसा मत करो। उसमें दो बड़े भारी दोष हैं। एक तो यह कि जब वह दान देने बैठता है तब सिर्फ़ मैं ही बच जाती हूँ (अर्थात् पत्नी को छोड़कर वह सब दे डालता है) और युद्ध में उसके सामने सिर्फ़ तलवार ही रह जाती है (अर्थात् वह तलवार को छोड़कर सबका नाश करदेता है।

९—जइ भग्गा पारक्कडा तो सहि मज्झु पियेण।
अह भग्गा अम्हहं तणा तो तें मारिअडेण॥

हे सखी ! शत्रु पक्ष के जितने योद्धा मरे हैं उन सब को मेरे प्रियतम ने मारा है और अपने पक्षके जो मरे हैं उनको उसने मारा है जिनको मेरे पति ने मारा। अर्थात् अपने पक्षके योद्धाओं को मारने वाले प्रत्येक शत्रु को मेरे पतिने मारा है।

१०—नारिमुई घर सम्पति नासी। मूँड मुँडाय भये सन्यासी॥ इस कहावत का भाव निम्नलिखित पद्य में बहुत सुन्दरता से आया है।

सन्ता भोग जु परिहरइ तसु कन्तहो बलि कीसु।
तसु दइवेण वि मुण्डियउं जसु खल्लिहडउं सीसु॥

मिले हुए भोगों को जो छोड़ता है, उसकी पूजा करूंगा। जिसका सर गंजा है वह क्या मुंडन करेगा? उसका मुंडन तो देव ने ही कर दिया है।

११—पुत्तें जाएं कवणु गुणु अवगुणु कवणु मुएण।
जा बप्पीकी भुंहडी चम्पिज्जइ अवरेण॥

यदि अपनी पैतृकभूमि (मातृभूमि) दूसरे ने हड़प ली है (फिर भी पुत्र कुछ नहीं करता) तो उस पुत्र के होने से क्या लाभ है, और उसके मरने से क्या हानि है ?
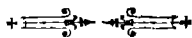
"पतितोद्धारक जैनधर्म"

१००) रु० पारितोषिक।

पतितोंके उद्धार विषयमें जैनधर्मका क्या सिद्धांत है, और इस धर्मके आश्रयको पाकर कैसे कैसे पतितोंका उद्धार हुआ है, यह सब अच्छे विशदरूपसे हृदयस्पर्शी शब्दोंमें बतलानेके लिये 'पतितोद्धारक जैनधर्म' नामकी एक उत्तम पुस्तक हिन्दीमें लिखे जानेकी ज़रूरत है, जो फुलस्केप साइज़के १२५ पृष्ठों अथवा बारह फ़ार्मसे कमकी न होनी चाहिये। पुस्तकके शुरूमें लगभग दो फार्मका एक निबन्ध रहना चाहिये, जिसमें पतितोंके उद्धार विषयक जैनधर्मकी उदारताको सैद्धांतिक और ऐतिहासिक दोनों दृष्टियोंसे खूब स्पष्ट करके बतलाया जाय। और साथमें उन मुख्य मुख्य प्रमाणोंका संग्रह भी किया जाय, जो दिगम्बर और श्वेतांबर दोनों सम्प्रदायोंके ग्रन्थोंमें प्रकृत विषयके समर्थनार्थ पाये जाते हैं। शेष भागमें उन खास पतित मनुष्योंकी संक्षिप्त कथाएँ रहनी चाहिये जिनका जैनधर्म के द्वारा उद्धार हुआ है और जो संक्षेप अथवा विस्तारसे किसी भी जैन सम्प्रदायके ग्रंथोंमें पाई जाती हैं। ये कथाएँ आधुनिक पद्धतिका अनुसरण करते हुए सरल भाषामें ऐसे अच्छे प्रभावशाली ढंगसे लिखी जानी चाहिये जिससे पढ़तेही पतितोंके उद्धार-विषयमें हृदयको काफ़ी उत्तेजना मिले। जो विद्वान महाशय लोक हितकी दृष्टिसे ऐसी पुस्तक लिखनेका परिश्रम करेंगे, उनमेंसे जिनकी पुस्तक सर्वोत्तम समझी जायगी उन्हें १००) सौ रुपये नक़द बतौर पारितोषिक अथवा सत्कारके भेंट किये जावेंगे।

पुस्तक लिखी जाकर ३० सितम्बर सन् १९३४ तक नीचे लिखे पतेपर पहुँच जानी चाहिये और जो जो सज्जन उसका लिखना प्रारम्भ करें उन्हें उसकी सूचना मुझे जरूर करदेनी चाहिये, जिससे यथावश्यकता उन्हें कोई उचित सूचनाएँ की जासकें। आगत पुस्तकोंकी जाँच कमसे कम तीन विद्वानोंकी एक कमेटी द्वारा होगी और उसके निर्णयानुसार ही अधिकारी व्यक्तिको पारितोषिक वितरण किया जायगा। पारितोषिकदाताको पुस्तकके छपानेका अधिकार रहेगा

नोट—यह पारितोषिक मेरी ओरसे है। मैं चाहता हूँ कि कोई दूसरे सज्जन भी इस पुस्तकपर द्वितीयादि पारितोषिक नियत करें जो दूसरे नम्बर की पुस्तक परभी दिया जासके और जिससे अनेक विद्वानोंको ऐसी उपयोगी पुस्तक लिखनेकी प्रेरणा होकर प्रकृत विषयका अच्छा साहित्य तैयार होसके। अतः जिनकी इच्छा हो, वे सूचित करें।

आशा है समाजके दूसरे पत्र सम्पादक भी इस विज्ञप्ति को अपने अपने पत्रोंमें प्रकाशित करने की कृपा करेंगे।

जुगलकिशोर मुख्तार, सरसावा जि० सहारनपुर।

जैनयुवक संघ इटावा की अपील

जैनियो ! तुम कहाँ हो और तुम्हारे होश कहाँ हैं ?

तुम्हें कुछ भी पता है ? संसार में कैसी उथलपुथल मची है ! कैसा भीषण संघर्ष हो रहा है ! कभी अखबार भी पढ़ते हो ? और अगर पढ़ते हो तो कभी अपनी सामाजिक और धार्मिक स्थिति पर ठंडे दिल से विचार भी करते हो ? देखो ! प्रतिकूल वातावरणों को बड़ी तेजी से तोड़ता, फोड़ता, उखाड़ता, पछाड़ता, नष्टभ्रष्ट करता हुआ, समयका तीक्ष्ण प्रवाह कैसी कठोरता और प्रबलता के साथ बढ़ता चला आ रहा है ! तुम्हारा वर्तमान, धार्मिक और सामाजिक आचरण समय के वर्तमान प्रवाह में अपनी रक्षा कर सकेगा भी या नहीं ? अरे ! रक्षा करना तो दूर रहा, जीवित भी बच सकेगा ? कभी इधर दृष्टिपात भी करोगे या नहीं ?

मन्दिरोंमें बैठकर मोक्ष से भी ऊँची और सूक्ष्म चर्चा करके वाह वाह के नारे बुलन्द किया करोगे ! और व्याख्यानों में कौमी तारीफों के पुल बाँधकर धुआँधार स्पीचें दिया करोगे !

इस तरह से असली जीवन को छुपाकर उसपर नक़ली, दिखावटी वातावरण चढ़ाने से काम न चलेगा।

जो जैनधर्म संसार की सभी उलझी समस्याओंको सुलझाने की शक्ति रखता है, क्या वह जैनधर्म तुम्हारी इन सामाजिक समस्याओंको नहीं सुलझा सकता ? लेकिन भाई, सुलझावे तो तब, जबकि तुम उसके निकट हो। और निकट होना तो दूर रहा, तुम तो उससे बिलकुल उलटे और विपरीत दिशा की तरफ़ चल रहे हो। फिर ये समस्याएँ कैसे सुलझें ? जिन बातों को जैनधर्म, मिथ्यात्व या अवनति मार्ग बतलाकर घोषित करता है, उन्हीं को आज तुम धर्म मानकर पकड़ बैठे हो। कैसे तुम्हारा उद्धार होगा ? पतनतो विदित है ही, जबतक तुम अपना रास्ता नहीं पलटते।

असलियत छिपाये से नहीं छिपती। वह तो अवश्य सामने आयेगी, और तुम्हारी बन्द आँखों में अँगली देकर अपनी तरफ़ आकर्षित करेगी। फिर भी अगर न चेतोगे, तो तुम्हें ठोकर मारकर गिरा देगी। इस दुनियाँ से तुम्हारे अस्तित्व को मिटा कर दम लेगी।

अगर तुम्हें इस जैनधर्म और जैनसमाजको जीवित रखना है तो असलियत को देखना पड़ेगा और उसके अनुसार अपने सामाजिक जीवन को परिवर्तित करना पड़ेगा।

देखो और सोचो ! तुम अपने वास्तविक सच्चे व्यावहारिक जैनधर्म से कितने विमुख होगये हो !

जो जैनधर्म परमात्मा की भी गुलामी नहीं स्वीकार करता, उस धर्म के धारक तुम जैनी आज रूढ़ियों और लोकप्रथाओं के कैसे दास बन रहे हो !

उदारता और सहनशीलताके आधार स्याद्वाद सिद्धान्तके मानने वाले तुम आज कैसे असहनशील, हठी और संकीर्ण हो रहे हो !

तुम्हारे मन्दिर क्या वाक़ई में जैनधर्म के मूललक्ष्य वीतराग, विज्ञानता के साधक हैं ?

तुम्हारे शास्त्र—जिनकी अभेद्यता और सार्वता पर तुम गर्व करते हो—उनके अन्दर देखोतो सही कितना नक़ली माल आकर के भर गया है !

तुम्हारा मुनिपद, जिसे तुम साधुत्व का सर्वोच्च शिखर बतलाते हो, उसके अन्दर अयोग्य व्यक्तियोंने घुसकर अन्धविश्वासियों से पूजित होकर जैनधर्म और जैनसमाजको कैसा कलंकित और उपहासास्पद बनाया है !

क्या तुम वाक़ई निःशंक दृढ़व्रती सम्यक्त्वी हो ? ज़रा ज़रा से लोकभय (बदनामी का डर) परलोकभय आदि भयों के पीछे, जाति बिरादरी आदि के डर के धर्म को छोड़ना तो दूर रहा, उसका विपरीत रूप करने तकसे नहीं हिचकते ?

तुम्हारे हरेक मेला, पूजा, तीर्थयात्रा, सभा सोसाइटी अखबार वगैरह हरेक कामों में ख्यातिलाभ आदि की चाह घुसी है। बिना स्वार्थ के कोई काम करने को तैयार नहीं। कैसा निःकांक्षित अंग है ! इसीलिये यह धूम धड़का और लाखोंके ख़र्च धर्म व समाजके वास्तविक हितू न होकर अपकारक और होजाते हैं, क्योंकि स्वार्थ विष ने इन्हें नष्ट कर दिया।

'सत्वेषुमैत्री' का पाठ पढ़ाने वाले जैनियों में आज छुआछूत-ऊँचनीच का भूत कैसा सवार है ! बाहिरी पतितोद्धार का कार्य तो दूर रहा, यह अपने जैनियोंको

भी पतित और नीच मानने नहीं लजाते। जिस पतितोद्धारकतामें जैनधर्म सर्व प्रथम रहा, उसीके धारण करने वाले जैनी उसे अधर्म मानते हैं ! कैसा निर्विचिकित्सित अंग है ! मिथ्यात्व की कैसी तीव्र वेदना है !

जैनधर्म हमेशा से परीक्षाप्रधानी और विवेकियोंका केन्द्र रहा है। वही जैनी आज रूढ़ियों और प्रथाओं में ही धर्म मानकर कैसी बुरी तरह भेषी साधुओं द्वारा ठगे और बर्बाद किये जा रहे हैं। यह है अमूढ़दृष्टि अंग की छीछालेदार।

उपगूहन का वास्तविक अर्थ निर्बल और कमज़ोर सहधर्मियोंके आचरणोंको परिमार्जित (स्वच्छ) करना है। परन्तु आजके जैनी दोषियोंके दोषोंको छुपा और झूठ बोल कर उन्हें दूधका धुला बतानेमें ज़मीन आसमानके कुलाबे मिलाते नहीं थकते। और दोषी भी ऐसी गुपचुपकी पोल पाकर खूब गुलछर्रे उड़ाते हैं।

वात्सल्य जैसे सुन्दर और पवित्र नामकी जैनियोंने कैसी दुर्गति की है ! घर घर गाँव गाँव और प्रत्येक नगर कस्बे में पार्टियों और दलबन्दियोंका दौर है। भारत के जैनियों में दिगम्बर, श्वेताम्बर, तेरह, बीस, पण्डितवाल कैसा दिल खोलकर लड़ते हैं ! उन्नतिकी खबर कौन ले? इनको लड़नेसे तो फुरसत है ही नहीं। हाय ! जो धन और विद्वत्ता लड़ाईमें बरबाद हुई वह अगर उन्नतिमें लगती तो कैसा काम होता !

स्थितिकरणका तो नाम ही जैनियोंने अपने सामाजिक कार्योंसे मिटा दिया। पतितपावन जैनधर्मके धारण करनेवाले जैनी अपने ही भाइयोंको पतित बनानेमें खूब अगाड़ी बढ़े हैं। आजकलकी पंचायतें और सभायें निकालो निकालो, जातिबहिष्कार करो, बस इसी मर्ज़की दवा रहगई है। याद रक्खो, ये कार्य सम्यक्त्वियोंके नहीं, किन्तु तीव्र मिथ्यात्वी और पापियोंके हैं।

प्रभावना; बसप्रभावना तो आजकलके जैनी या तो अपनी मालदारी और कमज़ोरीकी करते हैं, या अपनी मूर्खता की। यही वजह है कि गुण्डे इनको सोने की चिड़िया समझते हैं, (लड़ाई होती है हिन्दू-मुस्लिम, और लुटते हैं जैन मन्दिर और जैनी) और समस्त शिक्षित इनके कार्यों को मूर्खतापूर्ण समझकर उपेक्षा दृष्टिसे देखते हैं। यही कारण है कि हमारी प्रभावना खर्चीली होते हुए भी प्रभावनाहीन है—क्योंकि समयके प्रतिकूल है इसीलिये।

जैनियो ! अगर तुमको ज़िन्दा रहना है तो सच्चे जैनी बनो, साहसी बनो, संगठित बनो, बलवान और निर्भय बनो। परीक्षाप्रधानी बनो, स्वार्थत्यागी बनो ! समय (द्रव्य-क्षेत्र काल-भाव) को देखकर कार्य करो ! व्यर्थ की सजावट और दिखावट छोड़दो। ढोंगियों और भेषियों को निकालकर बाहर करो ! रूढ़िधर्मको उखाड़ फेंको ! तभी तुम इस संसारमें अपना अस्तित्व रख सकोगे।

विद्वानों और पंडितों, जो स्याद्वाद, संसारके सभी विरोधी वादोंका एकीकरण करता है, उसस्याद्वादका अध्ययन और मनन करके यदि तुम जैनियोंमें भी एकता न स्थापित करसके, तो तुम्हारी विद्वत्ता किस मर्ज़की दवा है ?

देखो, यदि तुम सच्चे जैनी और जैनधर्मके वास्तविक सेवक हो तो पहिले खुद हठवाद छोड़ो (क्योंकि यही मिथ्यात्व है)। बादमें आजकलके जैनियोंकी तरह—बीस बाबू पंडित पार्टी, और घड़ेबन्दीका नाम मिटाकर छोड़ो। दिगंबर श्वेतांबरको भी ज्यादासे ज्यादा मिलकर काम करने की कोशिश करो, और जहां न मिल सको वहां सहनशील और उदार बनो। अगर यह न किया तुमने, तो इस तो यही समझो कि तुम्हारे पांडित्य और परवरिशमें जो समाजकी शक्ति लगी है, वह व्यर्थ गई; और सारी इतिहास इस अनर्थका कलंक तुम्हारे नाम लिखेगा। अगर तुम सच्चे हो तो इस कलंकसे अपने को बचाओ, और सच्चा सेवक बनो। कट्टरता और स्वार्थ छोड़ो, दिखावट और नामकी ख्वाहिश छोड़ो। कुछ त्याग करो ! विधर्मियोंके प्रति सहनशील भी बनो। उनकी सेवा करके दिखाओ, नम्रता और अपनापन दिखा, छोड़कर सीधा परिचयसे अपना सम्बन्ध स्थापित करो ! उनकी नफरत मिटाकर सहानुभूति प्राप्त करो ! तभी तुम सच्चे सेवक बनसकोगे। याद रक्खो जैन समाजको अब वाचालोंकी जरूरत नहीं है; किन्तु सच्चे स्वार्थत्यागी कार्यकर्ताओंकी जरूरत है। क्या इस आशाको तुम पूरी करसकोगे ?

जैनी सेठों और श्रीमानों, नामके लोभसे व्यर्थके मूर्खता भरे कार्योंमें पैसा बर्बाद करना बंद करो। सच्ची प्रभावना और समाजसेवाके कार्योंमें दिलखोलकर द्रव्य लगाओ। नामभी होगा, और कामभी होगा। जैनसाहित्य को संसारकी सभी भाषाओं में प्रकाशित कराके विश्वव्यापी करदो। देखो कैसा नाम, और काम दोनों होते हैं !

जैनयुवकों, और वीरों, जैन समाजकी भावी उन्नति और आशाके केन्द्र तुम्हीं हो। तुम्हारेही कंधोंपर इससमाज और धर्मकी उन्नतिका भार है, इसलिये तुम विद्वान, बलवान, साहसी और वीर बनो। जैन समाजमें, आज विद्या की अपेक्षा बलकी बड़ी कमी है। इसलिये विद्वान बननेके साथ साथ कुश्तीबाज़ पहलवान और लाठी-आदिके खिलाड़ी भी बनो, जिससे समय पर अपने देश-धर्म-जाति माँबहिनों और अपनी इज्जत की रक्षाभी करसको। याद रक्खो, कायर और अकर्मण्य बातूनी विद्वान् किसी मर्ज़ की दवा नहीं होते। उद्धतपन और अनियमितता छोड़कर, विनयी और संयमी बनो। सबसे अंतिम और ज़रूरी बात यह कि संगठित बनो। याद रक्खो, तुममें वह शक्ति है कि यदि तुम सब युवक एकसाथ मिलजाओ तो क्षणभरमें समाजका कायापलट करदो।

माताओ और बहिनो, मूर्खा और अबला कहाना छोड़कर तुम विदुषी और सबला बनो। याद रक्खो, जैन धर्मके अनुसार विद्याकी सर्व प्रथम अधिकारिणी तुम ही हो। भगवान ऋषभदेवने पुत्रोंसे भी पहिले पुत्रियोंको विद्यादान दिया था। निकम्मी संतान पैदा करना छोड़ कर बलवान, साहसी, विद्वान् संतान पैदा करो। तभी तुम्हारा मातृत्व सार्थक है।

यह जैनधर्मकी बहुत छोटी और सामान्य परिभाषा है। यदि इसको जैन समाजने ठीक ठीक रूपसे अपनाया तो सिर्फ़ जैनी भारतही नहीं, संसारका नकशा पलटकर उसमें सुखशांति और समानताका राज्य स्थापित करसकते हैं। —चौधरी वसंतलाल जैन इटावा।

गुजरात प्रान्तिक दिगम्बर जैनसभा।

गुजरात प्रान्तिक दिगम्बर जैनसभाका शानदार अधिवेशन दिसम्बरकी छुट्टियोंमें सूरतमें हुआ था। सभाके कार्यवाहकों के तथा सभाके अध्यक्ष सेठ ताराचन्दजीके आग्रह से गुजराती न होने पर भी मुझे अधिवेशनमें शामिल होना पड़ा था। सभाके कार्यको देखकर मुझे प्रसन्नता हुई। सभा में सबसे बड़े महत्वकी बात जो थी वह यह कि उसमें प्रतिनिधित्व था। नहीं तो, आजकल जैन सभाएँ कहनेको तो भारतवर्षीय तक होती हैं, परन्तु उनमें एक भी संघका प्रतिनिधित्व नहीं होता। किसी मेले ठेले पर १०-२० मित्र एकत्रित होगये, मेले में आने वालों से प्रतिनिधिफॉर्म भरा लिये, किसी तरह कोरम पूरा किया और भारतवर्षीयके नामसे अधिवेशन कर डाला। यह आत्मवञ्चना और परप्रवञ्चना इतनी व्यापक होगई है कि अब ऐसी बातों से कोई लज्जित भी नहीं होता। ऐसी हालतमें जब मैंने गुजरात प्रान्तिक सभाको देखा तो मुझे आश्चर्य और हर्ष हुआ। गुजरातका न तो कोई ज़िला बाकी था, न कोई तहसील बाकी थी, न कोई जाति या उपजाति बाकी थी, जिसके विधिबद्ध चुनेहुए प्रतिनिधि वहाँ न आये हों। इस समय सभा के कामके सिवाय वहाँ कोई अन्य उत्सव भी नहीं था, इसलिये दिनरात सभा का कार्य ही होता था।

खास खास कार्यकर्ताओं ने छोटेसे प्रान्त को इसपार से उसपार तक कई बार जोत डाला था, इस प्रकार अच्छी भूमिका तैयार करली थी। गुजरात में जैनियोंकी संख्या बहुत थोड़ी है— आठ दस हजारसे अधिक संख्या न होगी। फिर भी करीब तीन सौ प्रतिनिधि आये थे। वे भी ठीक ढंग से चुने हुए। साथ ही दर्शकों की संख्या भी कम नहीं थी। भारतवर्षीयता का दावा करनेवाली सभाओं में २५—५० प्रतिनिधि भी नहीं आतेऔर ठीक ढंगसे चुने हुए तो आते ही नहीं हैं। इसप्रकार प्रतिनिधित्व वाली सभा को देखकर असाधारण प्रसन्नता होना ही चाहिये।

गुजरात प्रान्तके दिगम्बर जैनियोंकी उन्नतिके लिये सभा ने कई प्रस्ताव पास किये हैं। परन्तु उन सबमें महत्वपूर्ण प्रस्ताव अगर कोई है तो वह अन्तर्जातीय विवाहका प्रस्ताव है। अन्तर्जातीय विवाह को धर्मविरुद्ध कहनेका दम्भ करने वाले कितने भी चिल्लाएँ, परन्तु अब यह प्राणापहारी क्षुद्र जातीयताका बन्धन रह नहीं सकता। एक दिन वे लोग स्वयं इसके पक्ष में थे, इनके गुरु गोपालदासजी बरैया भी इसके समर्थक थे। हाँ, समाज इसके पक्षमें न थी क्योंकि वह भोली थी, अज्ञान थी। पं० गोपालदासजीके स्वर्गवासके बाद समाजके इन गुलामों ने मूढ़ समाजके गीत गाये और समाजके बल पर ताण्डव किया। उस समय इनने समझा कि इनको पाँचों घी में हैं। परन्तु सूर्य मेघों से सदा आवृत नहीं रहता। समय आने पर उसका तेज उन्हें फाड़ डालता है, उन्हें एक ही फूँक में उड़ा देता है। विजातीय विवाह

आन्दोलन का छोटासा इतिहास इसी उपमान का उपमेय है।

एकदिन विजातीय विवाहकी चर्चासे ये गुर्राने लगते थे। जब इन्हें चर्चाओं में पराजित किया गया तो कहने लगे कि एक चना क्या भाड़ फोड़सकता है! जब दर्जनों विद्वानों की सम्मतियाँ एकत्रितकी गईं तो कहने लगे—'ऊँह! पण्डितोंकी सम्मतियोंसे क्या होता है? समाजमें इन सम्मतियोंको कौन पूछता है?' जब पंचायतोंकी और साधारण जनताकी रायें एकत्रितकी गईं तो कहने लगे कि 'रायों से क्या होता है?' जब अनेक विजातीय विवाह हुए, तब कहने लगेकि ऐसे इक्के दुक्के विवाहोंसे क्या होता है? परन्तु अब तो अनेक प्रान्तों की अनेक जातियोंने अन्तर्जातीय विवाहकी तैयारियाँ करली हैं, अत्यधिक संख्यामें ऐसे विवाह भी होगये हैं, होरहे हैं; तब हमारे अनन्तमन्तोषी मित्र कहते हैं कि "सप्तधान्य जैसी एक नवीन चित्रल जाति बन जाने से अधिक और कोई भी फल प्राप्त होसके यह कभी भी संभव नहीं है।"

पिछले आठ वर्षोंमें इन मित्रोंने अपने आशा-वाक्योंको कितने बार किस तरह बदला है, उसपरसे यह अच्छी तरह कहा जासकता है कि यह वाक्य भी बदल जायगा। अन्तमें जब बिलकुल ही गिर जायँगे, तब इसी कहावतको चरितार्थ करेंगे कि—"मियाँजी गिरेतो क्या, टाँग तो ऊँचीही रही।"

इन मियाँ मिट्टुओं को अब भी ये स्वप्न आरहे हैं कि 'जिस तरह अन्य प्रान्त इस विषय में कट्टर हैं, उसी प्रकार गुजरात भी है।' सावनके अंधे को हरा हरा ही सूझता है। इसी प्रकार इनको यह पता ही नहीं है कि रंगमंच पर कितने पर्दे बदल गये हैं। गुजरातके सिवाय भी प्रायः सभी प्रान्तों में और मुख्य मुख्य जातियों में विजातीय विवाह होचुके हैं, इतना ही नहीं किन्तु इन विरोधियों की जातियोंमें भी होचुके हैं। बल्कि इससे भी बढ़कर बात यह है कि इनके निकटके नातेदारोंमें भी होचुके हैं। और गुजरातके विषयमें तो ये बिलकुल अँधेरे में हैं। गुजरातके दिगम्बर जैनोंमें तो अन्तर्जातीय विवाह बहुत दिनसे चालू है। एक गुजराती दिगम्बर जैन किसी भी जातिकी कन्याके साथ शादी करसकता है। स्वयं सेठ माणिकचंदजीके सुपुत्रका विजातीय विवाह हुआ है। और इस कुटुम्ब में दस्सोंकी ही नहीं किन्तु अन्य जातियोंकी भी कन्याएँ आई हैं। यह न समझना चाहिये कि ये लोग श्रीमान् हैं इस लिये मनमानी कर रहे हैं। बात यह है कि गुजरातका साधारण दिगम्बर जैनभी ऐसा कर सकता है। इतनाही नहीं किन्तु ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इनमें से किसीभी जातिकी कन्याके साथ शादीकी जासकती है। पंचायत तो सिर्फ इतना पूछती है कि 'कन्या मांडे-खपती है कि नहीं?' अर्थात् वह ऐसी जातिकी तो है कि जिसके हाथका हम पानी पीसकते हैं। बस! इसके बाद पंचायत संतुष्ट हो जाती है। इधर मामा बुआकी संतानमेंभी शादी होती है। इस प्रकार अगर इन बातों को पंडितों के शब्दोंमें कहाजाय तो कहना चाहिये कि विवाहके विषयमें गुजरात दिगम्बर जैन समाजमें चौथा काल बरत रहा है। दिनमेंभी मनमाने स्वप्नदेखने वाले देखें कि विजातीय विवाहके विषयमें गुजरात क्या है?

अधिवेशनमें विजातीय विवाहके विषयमें जो प्रस्ताव पास हुआ है वह विजातीयविवाहको धर्मानुकूल या समाजहितकर सिद्ध करनेके लिये नहीं है (यह बात तो स्वयं सिद्ध होगई है) किन्तु विजातीय कन्याके आदानकी प्रथाके साथ प्रदानकी प्रथाका प्रचार करके इस प्रथाको सर्वांगपूर्ण बनानेके लिये है। कोई कोई लोग कन्या तो जहाँ चाहेसे लेआते हैं परन्तु देनेमें हिचकिचाते हैं, इसलिये विजातीयविवाहकी प्रथासे पूरा लाभ नहीं उठाया जाता। इसलिये आदान प्रदानकी समतौलता करनेके लिये यह प्रस्ताव पास हुआ है। इससे मालूम होगा कि 'समस्त गुजरात (दिगम्बर जैन) अन्तर्जातीय विवाहको स्वीकार करता है' यह बात सोलह आने सत्य है।

सभाके अध्यक्ष सेठ ताराचन्दजी, बम्बईप्रान्तिक सभाके अध्यक्ष थे और हैं। बम्बईप्रान्त वास्तवमें एक प्रान्त नहीं है। गुजरात और महाराष्ट्र सरीखे विभिन्न प्रकृति और भाषावाले प्रान्तभी उसके भीतर हैं। इसलिये इनका सम्मिलित होकर किसी कार्यमें आगे बढ़ना तथा ठीक प्रतिनिधित्व लेकर एक जगह समय समयपर मिलना कठिन है। हाँ, दस पाँच दोस्तोंकी मंडली जमाकर दुनियाँ भरके प्रतिनिधित्वके ठेकेकी घोषणा हो सकती है परन्तु कोई ईमानदार आदमी इसप्रकारका दंभ नहीं कर सकता।

गुजरात प्रान्तिक सभा इस दंभसे मुक्त है। प्रान्तों की रचनाका मूल भाषा पर निर्भर है, इसलिये अगर प्रान्तिक सभाओंकी आवश्यकता स्वीकारकी जाय तो गुज-

रात प्रान्तिक सभाका होना अत्यावश्यक है। सेठजीने उस कार्यमें सहयोग करके उचित और आवश्यक कार्य किया है।

गुजरात प्रान्तिक सभाका मैंने पर्याप्त निरीक्षण किया है। उसके गुण और दोषोंको तथा कमजोरियोंको भी समझा है। परन्तु अभी उसकी नुक्ताचीनीकी ज़रूरत नहीं है। सभाका अभी जन्म हुआ है; उसे कुछ काम करने देना चाहिये। कुछ समय बाद आगे बढ़नेका तथा उसकी पूर्ण आलोचनाका कार्य ठीक होगा।

साधुसम्मेलन पर देवद्रव्य का खुलासा करो।

आजकल जैन समाजके साधु और श्रावकों की अधिकांश यह धारणा है कि देवद्रव्य श्रावक को नहीं खाना चाहिये, देवद्रव्य खानेवाले नर्क जावेंगे। मैं दावे के साथ कहता हूँ कि अपनी मेहनत करके देवद्रव्य जो भी खावे वह नर्क नहीं जावेगा। शास्त्रों में कई जगह प्रमाण मिलते हैं। क्या किसी नगर में सारे ही मनुष्य जैनधर्म पालते हों तो वहाँ मन्दिर ही नहीं बनें। अपनी मेहनत करके कोई श्रावक राजमजूरी का काम करे तो उसके देवद्रव्य लेने में कोई आपत्ति नहीं। इसी प्रकार मन्दिर के पुजारी और तीर्थों की पेढ़ी और मन्दिरों की पूजन वास्ते श्रावक लोग रहें और पगार देवद्रव्य से लेवें तो उसमें भी दोष नहीं है। अपने काम में गफ़लत करे और देव का पैसा मुफ्त लेवे तो ज़रूर देवद्रव्य खानेका पाप लगेगा; पर मेहनत करके भंडारसे पैसा लेवे उसमें, कोई हर्ज नहीं है। हमारे लोगोंकी इस धारणाके कारण हमारे तीर्थों के भंडारों पर मैनेजर गुमास्ते और अनेक मन्दिरोंपर पुजारी अजैन ब्राह्मणोंको रक्खा जाता है, जिसके कारण जैन मन्दिरों में महादेव आदि देवों की स्थापना होगई और होती जाती है। तीर्थ छिनगये और छिनते जाते हैं। दक्षिणमें पंढरपुर, विठोबा मन्दिर, कोल्हापुरका भवानी मन्दिर, कालिका मन्दिर, झालरापट्टणका पद्मप्रभु का मन्दिर, पंजाब में कोटकांगड़े का मन्दिर आदि अनेक मन्दिर जैनजातिके हाथसे छिन चुके हैं और छिनते जाते हैं। वर्तमान में भी केशरियाजीकी बारी है। क्या अभी देवद्रव्य की व्यवस्था साफ तौर से नहीं होगी? सबसे महत्व की बात यही है। इसका निर्णय करो। क्या वही पैसा जैनी खावेंतो नर्क जावें, और अन्य दर्शनी खावेंतो नहीं जावें, यह कहाँ का न्यायधर्म? पाप सब प्राणियों को समान होता है, इसमें भेद क्यों जैनसमाज मानता है? करना, कराना, करते को भला जानना तीनों एक लाइन में हैं, फिर अजैनों को भंडारका माल खिला कर नर्क भेजना, यह उचित कैसे हुआ? कृपा कर इसका खुलासा करें। — मुनि प्रियंकर विजय।

नोट—अहमदाबाद में श्वेताम्बर मुनियों का सम्मेलन होरहा है। अभी यह कहना कठिन है कि यह सम्मेलन वास्तवमें होरहा है या उसका अभिनय किया कराया जारहा है। जो कुछ भी हो, परन्तु इस अवसरपर अनेक प्रश्न विचार करनेके लिये आयेंगे या आना चाहिये। उसमें देवद्रव्य का भी एक प्रश्न है। मुनि प्रियंकर विजयजी ने अपने विचार प्रकट किये हैं। इस विषयमें मैं अपने विचार अनेक बार प्रकाशित कर चुका हूँ। जैनजगत वर्ष सात अंक १२ की "शास्त्रीय चर्चा" में भी ये विचार प्रकट कर चुका हूँ। उसका कुछ भाग यह है—

"............अभीतक साधारण लोग यही समझते हैं कि मन्दिर का द्रव्य निर्माल्य है इसलिये वह मन्दिर के ही काम में आना चाहिये, अगर किसी दूसरे सार्वजनिक कार्यमें लग जाय गा तो निर्माल्यभक्षणका पाप लगेगा। परन्तु यह विचार ठीक नहीं है। मन्दिरके धनका अर्थ ही है-सार्वजनिक धन। आजकल भी मन्दिरका धन सार्वजनिक कार्योंमें खर्च किया जाता है। आज मन्दिरमें जो संगमरमर लगवा दिया जाता है उसका उपभोग भगवान करते हैं या सभी लोग करते हैं? शास्त्र भगवान् पढ़ते हैं या सभी लोग पढ़ते हैं? यहाँतक कि मन्दिर भगवान की निराकुलता के लिये हैं, या हमारी निराकुलता के लिये हैं? मन्दिर की कौनसी वस्तु है जो भगवानके उपभोगके लिये कही जासके और हमारे उपभोगके लिये नहीं कही जा सके—अगर मन्दिर की पाई पाईका उपभोग हम ही करते हैं और उसमें निर्माल्यभक्षणका पाप नहीं लगता तो किसी दूसरे रूपमें अगर उसका सार्वजनिक उपयोग किया जाय तो उससे निर्माल्यभक्षणका पाप कैसे लग सकता है? निर्माल्यभक्षणका पाप तभी लगेगा जब सार्वजनिक सम्पत्ति का स्वामित्व एक व्यक्ति

को मिल जाय । इसीलिये सार्वजनिक कार्योंमें मन्दिरके धन का उपयोग होना किसी प्रकार अनुचित नहीं है । मन्दिरके धनसे पाठशाला चलाना, उपदेशक घुमाना साहित्यप्रचार कराना, ग्रन्थमाला चलाना या ग्रन्थमालाओंको सहायता देना आदि अनेक तरहके कार्य किये जासकते हैं।"

इस वक्तव्य से देवद्रव्यके उपयोग पर पूरा प्रकाश पड़ता है। मुनि श्रियंकरविजयजीकी सलाह उचित है।

—सम्पादक

स्त्रीजाति और जैन समाज।

(लेखक—श्रीयुत पं० लोकमणिजी जैन गोटेगाँव)

पुरुषोंकी जननी और प्रेमकी साक्षात मूर्ति स्त्री है। प्रकृतिने स्वभावसे ही स्त्रीजातिको सुन्दर, आकर्षक और प्रेममयी बनाया है। इतिहास इसका साक्षी है। स्त्रियोंके प्रेमको प्राप्त करने के लिये पुरुषजाति ने सब प्रकार के साधनोंसे काम लिया है। किसीने प्रेमके बदले प्रेम प्राप्त किया है तो कितनों ने छलसे, बलसे और किसी ने जीत कर, किसी से पराजित होकर प्रेम प्राप्त करने की पूर्ण कोशिश की है। दुनियाका कोई विरला अभागी या परम भाग्यवान, पुरुष होगा जिसने स्त्रीजातिके प्रेमके लिये भरसक प्रयत्न न किया हो। बहुत मनन करनेके बाद यह विचार सामने आते ठीक जँचता है कि बहुसंख्यक पुरुष जाति सारी भोग सामग्री पास रहने पर भी केवल स्त्रीजातिका प्रेम प्राप्त न कर सकनेके कारण घर, ग्राम, नगर, धन और राज्यादि को गाली देते हुए बाबाजीसे बाबाजी होगये और सब साधनों का केन्द्र, सकल सिद्धियों का प्रदायक संसार उनके लिये असार और त्याज्य नामसे संबोधित किया जाने लगा। संसार को असार और त्याज्य बतलानेके लिये मूलकारण स्त्रीजाति का प्रेम न पाना ही है। किसी किसीने जब प्रेमकी खानि स्त्रीको किसी तरह भी प्राप्त न कर पाया और स्त्री प्राप्त करने पर भी उसके प्रेमामृत को न चख पाया तब उसे विषबेल, नरक लेजानेवाली और अनेक कुत्सित शब्दोंमें दुत्कारा, उसे गालियाँ सुनाईं और उससे बचनेके लिये भोले लोगोंको खूब उकसाया और ढिंढोरा पीटा कि हम ऐसी स्त्रीका पता बताते हैं जो एक बार किसी को अपने अंगसे स्पर्श करदे तो वह सदाके लिये पूर्ण सुखी और संसारकी अनन्त स्त्रियोंके प्रेमपुंजसे अधिक प्रेममयी स्त्रीका स्वामी होजावे, वह स्त्री बहुत दूर है, उसका नाम शिवरमणी है। लोगोंने उसकी प्राप्तिके लियेही जल थल एक करडाला, सब स्वार्थों पर लात मारी, मनुष्य जाति से भी संसर्ग त्यागने पर कमर कसली। जंगल में नग्न कर धूप बरसात और जाड़ेको कुछ कष्टदायक न मान मुक्ति स्त्रीका प्रेम प्राप्त करनेके लिये मनुष्य तैयार होगया। यह तो वेही परमात्मा जान सकते हैं कि शिवरमणी उन्हें कितनी प्रेमप्रदायनी होसकी पर इससे यह अवश्य सिद्ध होता है कि अनन्त प्रेमका खज़ाना स्त्रीजातिके ही भाग्यमें सदासे चला आया है तभी तो मुक्ति जैसे शून्य स्थानको भी स्त्री नामसे (शिवरमणी) संबोधित कर उसकी अनन्त प्रतिष्ठा कायम रखी गई है।

इससे यह बात भलीभाँति सिद्ध होती है कि स्त्री प्रेममयी है। यदि पुरुष भी प्रेममय होता तो आज यह मर्त्यलोक स्वर्गसे दूर न होता, फिर कहीं अन्यत्र स्वर्ग की रचनाही न होती। किन्तु देखनेमें यह आता है कि आज स्वार्थीजाति ने प्रेम की मूर्ति को सब तरहसे कुचल डाला है, उसके प्रेमकी थाहभी प्राप्त न कर सकने के कारण उसे बुरी तरह सताने का नीचतम भाव धारण कर लिया है—स्त्रीजाति को गुलाम बनाने का ज़ोरों से प्रयत्न जारी है। उसके वास्तविक प्रेम को पुरुषजाति तृषित प्रेम में परिणत करने पर उतारू है। स्त्रीजातिको यद्यपि शास्त्रकारों ने देवी आदि उत्तम नामोंसे संबोधित किया है पर वर्तमानमें पुरुषजाति उन देवियों पर दानवी कृत्यों से अत्याचार कर रही है। प्रेमको प्रेमही आकर्षित कर सकता है। स्त्रीजातिका स्वाभाविक प्रेम प्राप्त करनेके लिये पुरुषजाति को प्रेमी बनने की आवश्यकता थी पर यह स्वार्थीजाति प्रेमपरीक्षा में जब अनुत्तीर्ण हुई तब स्त्रीजाति को ज़बर्दस्ती प्रेमप्रदान करने के लिये बाध्य करने लगी। आकर्ष और आकर्षण शक्ति की अवहेलना कर बलप्रयोग से प्रेम प्राप्त करना चाहा। पुरुषजाति ने प्रेमके बदले कलमरूपीकुल्हाड़ी उठाली और लगे अमृतबेल जगत्जननी स्त्रीजाति की गुणमाला को काटने। हृदय की रानी को चरणोंकी दासी लिखमारा, अजेय को अबला, तूती को नौकरानी, अमृतवल्लरीको विषबेल, आदि लिखकर उस पुस्तकको धर्मशास्त्रका जामा

पहना दिया। स्त्रीजाति की निंदा लिखे हुए शास्त्रोंको ईश्वरकृत शास्त्रों का रूपक देकर संसार से स्त्री जाति की गुणगरिमा को नष्ट किया जाने लगा। न्यायहीन और हृदयहीन वक्ताओं ने उन शास्त्रों को धर्मशास्त्र के नामसे पुकार कर लोगों को स्त्रीजाति पर घृणा और अत्याचार करने पर बाध्य किया। इस प्रथाका बहुत जोरोंसे बहुत समय तक प्रचार होने से स्त्रीजाति भी अपने स्वत्व को भूलगई, उसकी गुणगरिमा ने उसके प्रेमपुंज ने. बदला लेने की इच्छा नहीं की और इसीलिये पुरुषजाति पर कलम उठाकर मुकाबलेमें खड़ी नहीं हुई। यदि स्त्रीजाति भी कलम लेकर मुकाबलेमें खड़ी होजाती तो पुरुषजाति आज संसार में स्त्रीजाति के चरण चूमने को तरसती— स्त्रीजाति का एक एक चरणरजकण मस्तक पर रगड़ती तब अपने को धन्य समझती।

अस्तु, स्त्रीजाति ने प्रकृति प्रदत्तप्रेमपथ को बिलकुल नहीं भुलाया, इसीलिये आज वह फिर भी नरदानवोंके सामने देवीरूपसे उपस्थित हो सकती है—उसके गुणोंका समूल नाश नहीं होपाया है। लेखक के मत से स्त्रीजाति अबभी पुरुषजाति के अत्याचाररूपी पहाड़ों को छिन्नभिन्न करनेकी अद्भुत शक्ति रखती है। आजभी वह पुरुषजातिसे प्रत्येक बात में उच्च होनेका दावा रखती है। पुरुषजाति यदि सच्चे दिलसे हृदयपर हाथ रखकर विचार करे तो उसे मालूम होगा कि स्त्रीजातिको नष्ट भ्रष्ट करने वाले हम ही हैं, हमही उसे पतित करते हैं, हमही उससे सदा प्रेम की भीख माँगते हैं, हमही उसकी रूपराशि पर पतंग की नाईं मरते हैं, उसके प्राकृतिक अवयवों की बनावट पर हम जान भी न्योंछावर करदेते हैं। हम सदा उसको बुरी दृष्टि से देखने का प्रयत्न करते हैं, उसे अपने चंगुल में फँसाने के लिये अगणित नीच कृत्यों को करने में नहीं चूकते। लाखों स्त्रियों पर पुरुषों ने एकान्त में अत्याचार किये हैं, उनसे ज़बरन पाप किये हैं, सैकड़ों के गले घोटे हैं, हज़ारों के शील में बट्टा लगाया है। कितनों को पतिहीन घरहीन, धनहीन और कुलहीन बना डाला है और कितनी आज हमारे पापोंका प्रायश्चित्त भोग रही हैं। कितनी श्वसुर, जेठ, दादा, मामा देवर आदि से भ्रष्ट हो पुरुषों की क्षुद्रता पर जीवनके दिन पूरे कररही हैं! पाप किये पुरुषजातिने और पापका फल भोगने के लिये छोड़ दिया स्त्रीजाति को! यह पुरुषों के लोमहर्षक अत्याचारों की कहानी है। एक स्वर से सब धर्मों ने, सब मज़हबों ने, सब आचार्य नामधारी नैयायिकों ने, पुजारियों ने, पण्डितों ने, बाबू नामधारी जंतुओंने और धनवानोंने अपनी सारी शक्तियोंके बलसे स्त्रीजाति को कुचलने का एकसाथ धावा बोल दिया। जिसने जो अस्त्र पाया उससे ही श्रद्धेय रमणीजाति को श्मशान भूमि बना देनेके लिये जीतोड़ परिश्रम किया। पर असंभव को संभव न कर पाये, अजेयको न जीत सके और स्वयं पराजित होगये। अत्यन्त संघर्षसे आग पैदा होती है—स्त्रियोंके साथ अति संघर्ष होनेसे उनके अन्दर आग सुलगने लगी है। उस आगसे वे स्वयं अपने को तथा अत्याचारी जातिको भस्म किये बिना न रहेंगी। वह आग जिस समय अपना उग्ररूप धारण करेगी तो पुरुषों को अपने पापोंका प्रायश्चित्त करनेको बाध्य होना पड़ेगा। स्त्रीजाति पुरुषोंकी बराबरीकी हैसियतसे जीवन यापन करेगी, पुरुषजातिको पापमार्गसे हटानेके लिये स्त्री जातिको शिक्षक बनना होगा—पुरुषजातिको स्त्री निन्दक शास्त्रोंका अग्निसंस्कार करना होगा, उनके स्थानमें स्त्रियों का गौरव बढ़ानेवाले और उन्हें जीवनका एक आवश्यक अंग बतलानेवाले शास्त्रोंकी स्थापना करनी होगी।

पुरुषोंको अब पक्षपात छोड़कर अपने आधे अंगको सुधारना चाहिए। पुरुष अपनेको बहुत बलवान योद्धा और धर्मात्मा मानता हुआ भी जब घोर पाप कर बैठता है और पाप करने पर जब छिपाने से नहीं छिपता तब जातीय प्रायश्चित्त से अपने को पापापहारी बना लेता है, वह समाजमें फिर मुँह दिखानेके लायक होजाता है। तब स्त्रियोंके लिये भी वैसी ही स्थिति, वैसा ही न्याय, वैसा ही प्रायश्चित्त करने में क्यों आनाकानी की जाती है? गृहस्थीरूपी रथके दो पहिये जब स्त्री और पुरुष हैं तब दोनोंकी एकसी मज़बूती, एकसी मरम्मत और एकसी गति क्यों नहीं होना चाहिए? एक चक्र खराब होनेपर उसकी मरम्मत की जावे और दूसरे चक्र की ज़रासी खराबी पर अलग करदिया जावे, यह पक्षपात नहीं तो क्या है?

जैनशास्त्रों में घोर से घोर पापों काभी प्रायश्चित्त है। प्रायश्चित्त द्वारा मुनि, अर्जिका, श्रावक और श्राविकाएँ शुद्ध होनेका निर्देश है। पंचपापोंका प्रायश्चित्त स्त्री और पुरुषोंके लियेसमान है। तब हमें सच्चे जैनी बनकर जिस तरह से हम कई वर्षों के पतित पुरुषों को जातीय प्राय-

भिन्नों द्वारा शुद्ध करलेते हैं, स्त्रियोंको भी चाहे वे जितनी हमारी गलती से कुमार्ग पर चली गई हों, शुद्ध करलेना चाहिए। जब हम विधर्मियोंको भी अपने धर्ममें दीक्षित करलेनेका प्रयत्न कररहे हैं तबहमें सजातीय पतितबहिनों की गलती पर क्यों नहीं ध्यान देकर उन्हें फिर अपनाने की उदारता दिखानी चाहिए ? पतित बहिनों को अपने भाइयों से सविनय प्रार्थना करना चाहिए कि वे सच्चे भाई की तरह बहनों से बर्ताव करें—समान भूलों का समान प्रायश्चित्त देकर अपना सच्चा जैनत्व दिखावें। नवयुवकोंको इस कार्यमें जी तोड़ परिश्रम करना चाहिये। यदि नवयुवक अपनी पतित बहनों की अवस्था सुधारने में वृद्धपितादि का मोह छोड़ दत्तचित्त होजावें तो समाज का बहुतसा विकृत अंग सुधर कर नवजीवन प्राप्त करलेवे और संभव है स्त्रीजाति पापपंथ से विलग होकर हमेंभी पापपंथ में जानेसे रोकनेमें समर्थ होसके। आशा है समाजके विद्वान् इस विषयपर गंभीर विचारकर समाजको लाभ पहुँचावेंगे। शेष फिर कभी।
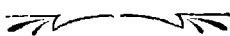
श्री शान्तिसागरजी से वार्तालाप।

(२)

(तीसरे अंकसे आगे)

इसके पश्चात् मैंने श्री शान्तिसागरजीसे शूद्रका लक्षण पूछा। शान्तिसागरजीने कुछ देर टालमटूल करनेके बाद उत्तर दिया—जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य नहीं, वह शूद्र ! इसपर मैंने कहा—जब आप अपने भक्तोंको आजन्म शूद्रजलत्याग करनेके लिये मजबूर करते हैं तो आपको शूद्रका ऐसा स्पष्ट लक्षण बताना उचित है कि जिससे शूद्रकी आसानी से पहिचान की जा सके तथा प्रतिज्ञा का पूरीतौर पर पालन किया जा सके। शान्तिसागरजी इसका कोई समुचित उत्तर न दे सके। एक मुनिजी बीच में बोले—जिसके जनेऊ नहीं है, वह शूद्र। पाठकों को मालूम होगा कि आजकल नाई, खाती, लुहार आदि कई जातियोंमें, जिन्हें जात्यभिमानी लोग शूद्र घोषित करते थे, जनेऊका आमरिवाज होगया है और वे अपने आपको ब्राह्मण बताते हैं। अभी दो हफ्ते पहिले सीकर (राजपूताना) में जाटोंकी ओरसे एक बृहत् यज्ञ हुआ था और उस अवसर पर कई हजार जाटोंने जनेऊ ली थी। पेश्तर इसके कि मैं उन्हें कुछ उत्तर देता, स्वयं शान्तिसागरजीने ही उन्हें रोकदिया और बोले कि यह लक्षण ठीकनहीं है। आखिर और कोई उत्तर बनता न देख शान्ति-सागरजीने कहा—जिन जातियों में कुलपरम्परासे मुनिधर्मका पालन न हुआ हो, वे शूद्र हैं। मैंने उनसे ऐसी जातियोंकी कोई एक सूची बतानेके लिये कहा तो कहने लगे—शास्त्रोंमें ऐसी सूची मौजूद है। लेकिन आपने बारबार पूछने परभी किसी शास्त्र का नाम व प्रकरण का उल्लेख नहीं किया।

तत्पश्चात् मैंने पूछा—केवल आजन्म शूद्रजल-त्यागी श्रावक ही मुनिको आहार देसकता है, ऐसा किस प्राचीनशास्त्रमें लिखा है ? इसपर पहिले आपने किसी आधुनिक श्रावकाचारका उल्लेख किया; लेकिन जब इसपर ऐतराज़ कियागया तथा किसी प्राचीन शास्त्रका प्रमाण बतानेके लिये आग्रह कियागया तो आप तपाकसे बोले—हाँ, मूलाचारजीमें ऐसा लिखा है। मैंने नम्रतापूर्वक उनसे कहा—कृपया बताइये कि मूलाचारजीमें क्या लिखा है ? इसपर आप बोले—हाँ, मूलाचारजीमें लिखा है कि मुनि शूद्रके घरका आहार नहीं लेसकता ! सवाल दीगर, जवाब दीगर ! मूलाचारजीका नाम सुनते ही उपस्थित भक्तोंके चेहरे खिल पड़े थे. लेकिन उपरोक्त उत्तरसे स्वतः मलीन होगये। मैंने स्पष्ट ही कहा—महाराज मुनि शूद्रके घर आहार लेसकता है या नहीं. यह प्रश्न नहीं है। प्रश्न यह है—क्या केवल आजन्म शूद्रजलत्यागीही मुनिको आहार देसकता है ? अपने पक्षके समर्थन में अगर कोई प्राचीन शास्त्रप्रमाण ज्ञात हो तो बतलाइये। इसपर बहुत देरतक वित-ण्डावाद होता रहा, आखिर शान्तिसागरजी ने कहा—हम कुछ त्याग ही तो कराते हैं, इसमें समाज की क्या हानि है ? मैंने पूछा-जो त्याग शास्त्रानुमोदित नहीं है, उसके लिये श्रावकों को

मजबूर करना तथा मनमाने तौरपर यह हठ करना कि अमुकप्रकार त्याग करनेवालेके हाथकाही आहार लेंगे, यह मुनिके लिये किस प्रकार उचित कहा जा सकता है ? शान्तिसागरजी बोले—वृत्ति परिसंख्यानतप के पालनके लिये मुनि ऐसी प्रतिज्ञा ले सकता है !

पाठकोंका भ्रमनिवारण करनेकेलिये यहाँ वृत्तिसंख्यानतपका कुछ संक्षिप्त परिचय कराना आवश्यक प्रतीत होता है। मुनिराज अन्तराय कर्मकी परीक्षार्थ नित्यप्रति आहारके लिये कुछ आखड़ी लिया करते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह आखड़ी पहिलेसे किसीको बताई नहीं जाती, मनमें गुप्तरक्खी जाती है। अगर आखड़ी पहिलेसे श्रावकों को बतादी जाय तो फिर अन्तराय कर्मकी परीक्षा ही क्या रही ? साथही आखड़ी, आहार के अर्थ जाते समय ली जाती है, तथा वह प्रतिदिन बदलती रहती है। इससे यह स्पष्ट है कि किसी मुनिका यह स्थायी नियम बना लेना कि मैं अमुक प्रकारका त्याग करनेवालेके हाथका ही आहार लूँगा, तथा लोगोंको मजबूर कर वैसी प्रतिज्ञाएँ दिलवाना, उसके लिये संगठित रूपसे प्रोपेगेण्डा करना, "अन्तराय कर्मकी परीक्षा" किसी तरह भी नहीं कही जा सकती, और इसलिये उनकी यह प्रवृत्ति "वृत्तिपरिसंख्यान तप" में गर्भित नहीं की जा सकती।

शान्तिसागरजीने वृत्तिपरिसंख्यान तपकी ओट ली तो सही, परन्तु वे स्वयं अपनी कमजोरी महसूस करनेलगे। बोले—कुछभी हो,हम त्यागही तो कराते हैं; यह निवृत्ति ही है। इसपर एक भाईने पूछा—अगर कोई मुनि यह प्रतिज्ञा लेले कि मैं स्त्रीस्पर्शितभोजनत्यागी के हाथ का ही आहार लूँगा, तथा तदनुसार वह लोगोंको स्त्रीस्पर्शितभोजनके त्याग का नियम दिलाने लगे तो क्या वह भी वृत्तिपरिसंख्यान तप कहलायगा ? शान्तिसागरजीने सकुचाते हुए इसेभी वृत्तिपरिसंख्यानतप स्वीकारकिया। बहुत देर तक इसी विषय पर चर्चा चलती रही और आखिर उन्हें यह स्वीकार करना पड़ा कि मुनिके लिये यह प्रतिज्ञालेना कि—मैं शूद्रजलत्यागीके हाथ का ही आहार लूँगा, आवश्यक नहीं है। जो मुनि ऐसी प्रतिज्ञा नहीं लेते, अर्थात शूद्रस्पर्शितजल पीने वाले के हाथका आहार लेते हैं, उनके मुनित्व में इसकारण कोई बाधा नहीं आती।

जो लोग शूद्रजलत्याग करते हैं, वे निःसंकोच नल का पानी पीते हैं। शान्तिसागरजी इसकी अनुमोदना करते हैं। इसका स्पष्ट अभिप्राय यही होता है कि शान्तिसागरजी की दृष्टि में शूद्रस्पर्शित जलकी अपेक्षा नलका पानी विशेष पवित्र व शुद्ध है। इसका हेतु पूछा गया तो शान्तिसागरजी व ज्ञानसागरजी (पं० नंदनलालजी) बड़ी विचित्र दलीलें करने लगे। श्रीमान् सेठ बछराजजी पाटनी ने इनका खूब निर्भीकता के साथ निराकरण किया। शास्त्रोंमें जलगालनके लिये खास विधि निर्दिष्ट है, तथा उसका पूर्णतया पालन करना श्रावकों का कर्तव्य बतलाया गया है। नलका पानी पीनेवाले उस विधिका पालन नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त नलका पानी, अपनी आँखोंके सामने न सही किन्तु टंकीपर, शूद्रस्पर्शित होता है, तथा चमस्पर्शित तो रहता ही है। ऐसी हालतमें शूद्रस्पर्शित जलकी अपेक्षा नलके पानी को पवित्र व शुद्ध बताना केवल दुराग्रहही कहा जायगा।

इसके बाद चर्चासागर, त्रिवर्णाचार, सूर्यप्रकाश आदिके विषयमें चर्चा छिड़ी। शान्तिसागरजीने स्वीकार किया कि चर्चासागरमें कई चर्चाएं आगमविरुद्ध प्रतिपादितकी गई हैं। कटनी चातुर्मासमें इसका स्वाध्याय किया गयाथा। प्रारम्भका कुछ अंश सुंदर देखकर इसको प्रकाशमें लाने के लिये अनुमोदना की—अनुमोदना करते समय तक पूरा ग्रन्थ नहीं नहीं पढ़ा गयाथा, आदि। ज्ञानसागरजी (पं० नंदनलालजी) चर्चासागरकी हिमायत लेकर उन चर्चाओं को जिन्हें शांतिसागरजी आगमविरुद्ध स्वीकार कर चुकेथे, आगमसम्मत बतानेका प्रयत्न करने लगे,

किन्तु चूँकि समय बहुत हो चुकाथा तथा शांतिसागरजीसे कई विषयोंपर चर्चा करना जरूरी था इसलिये यह कहकर कि आपसे चर्चा किसी और समय की जावेगी, अभी शांतिसागरजीसे चर्चा चलने दीजिये, ज्ञानसागरजीको वहीं रोक दिया।

प्रारम्भ में शांतिसागरजीने त्रिवर्णाचारके विषय में बिलकुल अनभिज्ञता प्रकटकी; किन्तु बादमें जब जिनसेन त्रिवर्णाचारमें वर्णित योनिपूजाप्रकरणका उल्लेख कियातो उन्होंने उसे आगमविरुद्ध स्वीकार किया। क्षुल्लक ज्ञानसागरजी योनिपूजा का भी समर्थन करने लगे किन्तु स्वयं शांतिसागरजीने ही उन्हें रोक दिया और बोले—"अरे, योनिमें देवताओंका निवास कैसे होगा ? वहाँ सूक्ष्म जीव तो अवश्य रहेंगे"। तत्पश्चात त्रिवर्णाचारमें प्रतिपादित श्राद्ध तर्पण आदिका जिकर किया गया तो शांतिसागरजी बोले—मैंने न तो त्रिवर्णाचारका स्वाध्याय किया है, न इन विषयोंका अध्ययन किया है, इसलिये बिना अध्ययन किये मैं इसपर अपनी सम्मति नहीं दे सकता।

इसके बाद जब 'सूर्यप्रकाश" ग्रंथका जिकर किया गया तो शांतिसागरजी उसके नामतक से अपनी अनभिज्ञता प्रकट क ने लगे। बोले— 'क्या सूर्यप्रकाश नामका भी कोई ग्रंथ है ?" सूर्यप्रकाशकी याद दिलानेके लिये, उसके विषय तथा कई प्रकरणों का जिकर किया गया, लेकिन शांतिसागरजीने बार बार यही कहाकि इस ग्रंथके विषयमें मैं कुछ नहीं जानता। मैंने इस ग्रंथका स्वाध्याय नहीं किया है और न इसके विषयमें कुछ सुना ही है। सूर्यप्रकाश ग्रन्थ के प्रारम्भमें श्रीमान सेठ रावजी सखारामजी दोशीकी ओर से "आदिके दो शब्द" शीर्षकसे एक एक निवेदन छपा है। उसका अंतिम पैराग्राफ़ इस प्रकार है:—

"गतवर्ष कटनी शहरमें आचार्यवर्य श्री १०८ शान्तिसागरजी महाराजने अपने संघके साथ चातुर्मास समाप्त कियाथा। संघमें ब्र० ज्ञानचंद्रजी महाराजभी थे। उन्होंने इस ग्रंथको हिन्दी व्याख्यान सहितवहाँ परलिख कर तैयार कियाथा और उसका वाचन संघमें किया जारहाथा। इसी समय वीर सं० २४५४ के श्रावण मासमें संघके दर्शनार्थ १ गाँधी नेमचंद मियाचंद, २ गाँधी खेमचन्द मियाचन्द व गाँधी उगरचंद मियाचन्द जाति त्रिसाहूमड़ उत्तरेश्वर गोत्र वाले दिगम्बर जैनधर्मानुयायी ये तीनों भाई अपने निवास स्थान नातेपुतेसे कटनी पहुँचे थे। उस समय इस ग्रंथकी नवीनता और विशेषताका वर्णन श्री आचार्य महाराजके मुखसे सुन कर इन तीनों भाइयों को इस ग्रंथको छपाकर प्रसिद्ध करने की स्फूर्ति हुई और तदनुसार यह ग्रंथ उक्त बंधुत्रयने छपाकर प्रसिद्ध किया है। यह भी एक पुण्य कार्य है। आशा है समाज इसके स्वाध्याय से धर्ममें सुदृढ़ बनेगा।—रावजी सखाराम दोशी"

श्रीमान सेठ रावजी सखारामजी दोशीके कथनानुसार जब संघमें सूर्यप्रकाशका वाचन होता था, और इन्हीं आचार्य महाराज द्वारा इसकी विशेषता आदिका ऐसा बखान किया गया जिससे उक्त बन्धुत्रयको इसे छपाकर प्रसिद्ध करने तक की स्फूर्ति हुई तब, शान्तिसागरजीका इस ग्रंथसे बिलकुल ही अनभिज्ञता प्रकट करना आश्चर्यजनक है ! इस वार्तालापके समय इस ग्रन्थके सम्पादक ब्र० ज्ञानचन्द्रजी महाराज (वर्तमान क्षुल्लक ज्ञानसागरजी तथा भूतपूर्व पं० नंदनलालजी) मौजूद थे। उन्होंने शांतिसागरजी के कथनका कोई प्रतिवाद नहीं किया। शान्तिसागरजी आचार्य तथा सत्यमहाव्रती कहे जाते हैं। अतः अगर उनका कथन सत्य मानाजाय तो कहना होगा कि कुछ लोगोंने एक गिरोह बना रखा है जो अपने वचनोंका कोई मूल्य न देख शांतिसागरजीके नाम से अनुचित लाभ उठानेके लिये इस प्रकारकी क्रियाएँ कर समाजको धोखेमें डाल रहा है।

उस समय सूर्यप्रकाश ग्रन्थ मेरे पास मोजूद न था। मेरी इच्छा हुई कि सूर्यप्रकाश ग्रंथ लाकर इन्हें दिखलाऊँ—खासकर श्रीमान सेठ रावजी सखा-रामजी दोशीके "आदिके दो शब्द"; लेकिन समय बहुत होचुकाथा—सायंकालके ५ बज चुके थे। शांतिसागरजीसे अभी और कई विषयोंपर चर्चा करनीथी। इसके अतिरिक्त संघके कई व्यक्ति शान्तिसागरजीसे बार बार अनुरोध कर रहे थे कि वे मुझसे विजातीय विवाह, विधवाविवाह आदिके विषयमें मेरी सम्मति पूछें। इसलिये इन लोगोंको प्रश्न करनेका मौका देनेके लिये मैंने अपना शेष कार्य दूसरे समयके लिये स्थगित कर दिया। शांतिसागरजीने मुझसे विजातीय विवाह के विषयमें मेरी सम्मति पूछी। मैंने कहा-मैं विजातीय विवाहको आगमानुकूल मानता हूँ। मह सभा के अधिवेशन के अवसर पर ब्यावरमें श्रीमान पं० देवकीनन्दनजी शास्त्री आदिके साथ इस विषयपर शास्त्रार्थ करनेके लिये जो चर्चा चलीथी, उसका उल्लेख करते हुए मैंने कहाकि अजमेर जैनियोंका केन्द्र है, अतः विजातीयविवाह विषयक शास्त्रार्थ यहाँ पर ही होना चाहिये। हमलोग उसके लिये समुचित प्रबन्ध करनेको तैयार हैं। शान्तिसागरजी बोले—हाँ, हमभी यही चाहते हैं। इस विषय पर शास्त्रार्थ होजाना ही अच्छा है। मालूम होता था कि ब्यावरवाली घटनाका उनके चित्त पर काफ़ी प्रभाव पड़ा है।

इसके बाद उन्होंने विधवाविवाहके विषयमें मुझसे सम्मति पूछी। मैंने कहा—मैं इस विषयका अभी अध्ययन कर रहा हूँ। इसपर शान्तिसागरजी एकदम उत्तेजित होगये और बोले—विधवाविवाह स्पष्टतया व्यभिचार है। तुम इतनी साधारण बातका अभीतक निर्णय नहीं कर पाये। मैंने इस विषय में और कुछ न कहकर केवल यही कहाकि—जब आचार्य तथा कलिकालसर्वज्ञ कहलाने वाले श्राद्ध व तर्पण सरीखे विषयोंका अभीतक निर्णय नहीं करपाये तो एक अल्पज्ञ गृहस्थका विधवाविवाह विषय पर निर्णय न कर सकना कोई आश्चर्यकी बात नहीं होनी चाहिये। शांतिसागरजी इस पर कुछ न बोले और चुप हो रहे। उपस्थित सज्जनोंमें से एक महाशयने कहा—महाराज! विधवाओंकी बड़ी कठिन समस्या है। विधवाओंकी संख्या बढ़ती जारही है। इधर बड़े बड़े धर्मात्मा, धर्मभक्तशिरोमणि (?) भ्रूण-हत्या व गर्भपात कराने पर भी धनके जोरसे समाज के नेता बने रहते हैं, यही नहीं बल्कि बड़े बड़े मुनि आचार्य भी ऐसे लोगोंकी प्रशंसा करते रहते हैं। यह देखकर चित्तमें अत्यन्त क्षोभ उत्पन्न होता है। इसपर भक्त मंडलीमें से एक भाईने कहा—ऐसे कुकर्म करने वाले धर्मात्मा नहीं हैं, किन्तु पापी हैं; वे अवश्य नर्क जावेंगे।

दूसरे रोज़ रविवार था और इसलिये उस दिन विशेष समय निकाल कर शान्तिसागरजीसे चर्चा करनेकी तैयारीकी गई। लेकिन संघने एकाएक यहाँसे विहार कर दिया। —फतहचन्द सेठी।
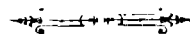
श्री सूर्यसागर संघ समाचार।

आचार्य श्री सूर्यसागरजीका संघ भिंडसे इटावा, जसवन्तनगर और करहल होता हुआ मैनपुरी पहुँचा। मैनपुरीमें पं० लालारामजी शास्त्रीसे आचार्य महाराजका वार्तालाप दस्साधर्माधिकार विषयपर कई रोजतक हुआथा, जिसमें आचार्य महाराजने दस्साही नहीं बल्कि प्राणीमात्रको धर्माधिकारी सिद्ध कियाथा। उक्त पं० महाशय आचार्य महाराजके इस स्पष्ट विवेचनसे बहुत चिढ़ गये कहे जाते हैं। लोग कहतेथे कि न जाने ये कैसे पंडित हैं जो मुनि महाराजको पड़गाहकर ठीकसे आहारभी न दे सके। मैनपुरीसे चलकर संघ भौगाँव, खेड़ा, नगरिया, सरायअगहत, अलीगंज होता हुआ श्री कम्पिल तीर्थक्षेत्र पहुँचा। वहाँसे चलकर संघ क़ायमगंज और अलीगंज होकर कुरावलीको गया है, जहाँ से शिकोहाबादकी ओर विहार होगा। संघमें आचार्य-

महाराजके अतिरिक्त मुनि अजितसागरजी, मुनि धर्मसागरजी, मुनि वीरसागरजी तथा ऐलक महेन्द्रसागरजी हैं ब्रह्मचारी लखमीचन्दजी और ब्रह्मचारी प्यारेलालजीभी संघके साथमें हैं अन्य मुनियों की अपेक्षा यह संघ अपने धर्मको विशेषरूपमें समझता है। इनको ख्यातिलाभका मोह नहीं है। यही कारण है कि नगरिया और अलीगंजमें मुनियों ने केशलोंच कर लिये और किसीको पताभी नहीं हुआ ! ऐलक वीरसागरने कम्पिलजीमें महाव्रत ग्रहण किये परन्तु इसकेलियेभी कोई खबर पहलेसे जनताको न हुई ! यदि ये बातें किसी अन्य मुनिसंघमें होतींतो पहलेसे खूब विज्ञापनबाजी होती और न जाने कितना आडम्बर रचा जाता, जिसमें व्यर्थही सावद्यकर्मका दूषण आता ! आचार्य सूर्यसागर महाराज स्वयं एक विवेकी साधु हैं—वे निरंतर इस बातका ध्यान रखते हैं कि किसी तरह उनके मूलगुणोंमें दूषण न लगे । उद्दिष्ट-भोजनका पूरा ध्यान रखते हैं। यही कारण है कि श्रावकोंको तरह तरहके कई भोजन नहीं बनाने पड़ते ! नमक, मीठा, दूध वे लेते नहीं ! स्वयं ज्ञानाभ्यासमें निरत रहते हैं और अपने शिष्योंकोभी ज्ञानदान देते हैं। प्रतिदिन डेढ़ बजेसे चार बजे तक महाराजसे कोईभी धर्मवार्ता कर सकता है। एक सच्चे योगीकी भाँति आचार्य-महाराजमें अमित दया है। जैन-अजैन, पशु पक्षी आदि सब पर उनकी समानदृष्टि है और जिज्ञासुको समझा कर सन्तोषित करनेका ढंगभी अच्छा है। अलीगंज में स्वयं वे अजैन, जो दिगम्बर मुनियोंको लेकर कटु-हास्य करतेथे महाराजके भक्त बन गए। ब्राह्मण, कायस्थ और मुसलमान महाराजके चरणोंमें नतमस्तक हुएथे। कई आर्यसमाजी महाशयोंने सृष्टिकर्तृत्व, मुनिधर्म और भूगोल विषयों पर महाराज से शंकासमाधान कियाथा। महाराज ऐसी मोटी दलीलें देकर समझातेथे कि उनकी बातें गाँवके लोगोंके भी गले उतर जातीथीं। अलीगंजमें ४–५ वर्ष पहले मुनिवेषी श्रुतसागर आयेथे और उनकी मौजूदगीमें यहाँ पंचायती टंटे हुएथे जिसके कारण लोगोंमें बुरा असर हुआथा; किन्तु इस संघके शुभागमनसे वह बुरा असर बहुत कुछ दूर होगया। जिस विजातीय विवाह करनेवाले जैनीभाईको मंदिरजीमें पूजनसे रोकनेका परामर्श श्रुतसागरजीने दियाथा और जिसके यहाँ उन्होंने आहारभी नहीं लियाथा, उसके यहाँ इस संघके दो मुनियोंका आहार हुआ था और उसे मंदिरजीमें पूजा करते रहने देनेका परामर्श इन्होंने दिया। अलीगंजकी पंचायतने प्रारम्भसे ही ऐसा निर्णय दे रक्खा है। केवल एक कुटुम्बके लोग इसके विरोधी हैं। वे अपना अलग मन्दिर बनाना चाहते हैं। आचार्य महाराजने उन्हें अलग मन्दिर नहीं बनानेको कहा; क्योंकि मन्दिरोंकी व्यवस्था ठीक ठीक रखना वर्तमानमें कठिन है। किन्तु खेद है कि उक्त लोगोंने पूजा न करनेका हठ न छोड़ा। श्रुतसागरजी सूखी द्रव्यसे पूजा करनेका भी मार्ग चला गयेथे। उस दूषितमार्गको भी आचार्य-महाराजने ठीक कराया। एक मजा और है। यहाँ पर श्रुतसागरजी पाठशालाके लिए चन्दा करा गयेथे परन्तु पाठशाला नहीं चली। इसपर उस रुपएको पंचोंने शास्त्र मँगाने के लिये माँगातो उनके भक्तने कहाकि—महाराज कह गये हैं कि जहाँ हम कहें वहाँपर यह रुपया खर्च किया जावे ! क्या श्रुतसागरजी महाराज इस विषय को स्पष्ट करेंगे ? एक मुनिको इस प्रकारका आग्रह शोभता नहीं है। आचार्य-महाराज अपने शिष्योंको ठीक ठीक साधु बनानेके लिये कभी कभी प्रशस्त-कषायसे प्रेरितहो वचनालाप करते हैं और आहार के बाद जब शिष्यजन उनसे जाकर हाल कहते और वंदना करते हैं तो उस समयके वचनालापको सुनकर लोग कहते हैं कि महाराज ! भाषासमितिका जरा अधिक ध्यान रक्खा करें ! किन्तु महाराजकी स्वाभाविक बोलचाल और उनके भावको न समझनेके कारण भलेही ऐसा कोई कहे—वरन् निःसन्देह महाराजको भाषासमितिका पूरा ध्यान रहता है। एक अजैन, आहारकी विधि बार बार पूछने लगा।

महाराजने वैसा कहनेमें किञ्चित् सावद्यदोष आता समझकर उसे टाला और थोड़ा बहुत बता दिया। उपरान्त कहाकि आरम्भका उपदेश देनेमें मुझे संकोच होता है। ऐसे विवेकशील महात्माके विषयमें भी लोग अनर्गल बातें करते हैं। पं० लालारामजी ने यह जाहिर किया है कि मुनि धर्मसागर गृहस्थ-दशामें दस्सा थे और एक पत्र लिखकर आचार्य-महाराजको विजातीय-विवाह और दस्सा धर्माधिकार को अशास्त्र-सम्मत माननेके लिए लिखा है। संघमें पहुँचनेके पहलेही उनके पत्रकी नकल मिलगई थी। खेद है कि ये पण्डित लोग विजातीय विवाह पर शास्त्रार्थ करनेसे तो पीछे हट जाते हैं और फिर चुपके चुपके उसका विरोध करते हैं। यदि पं० लालारामजी की खाज नहीं मिटी है तो उन्हें विजातीय-विवाह पर शास्त्रार्थ करलेना चाहिये। इसी तरह दस्साधर्माधिकार परभी उन्हें सोच समझकर कुछ लिखना चाहिये। उन्हें याद होगा कि स्वयं उनके गुरु प्रातःस्मरणीय स्वर्गीय पं० गोपालदासजीने दस्सों का धर्माधिकार सिद्ध कियाथा। मुनि धर्मसागरजी आज नहीं बल्कि ७-८ वर्षसे मुनिधर्म पाल रहे हैं और उन्होंने अपनेको उस योग्य प्रमाणित कर दिया है। फिर उनपर आक्षेप करना व्यर्थ है! विधवा-विवाह चतुर्थ-जातिमें होता है, उसपर भी जब शांतिसागर-जी आचार्यपद पर सुशोभित रह सकते है और पण्डितगण उनको पूज्य मानते हैं तब मुनि धर्मसागरजीके पूज्य व्यक्तित्व पर छींटे उछालना अति-साहस है! कई मुनि-ऐलक दस्सा-हूमड़ आदि हैं। शास्त्रोंमें भी कार्तिकेय, रुद्र आदि मुनिजन जन्मसे व्यभिचारजात कहेगए हैं। वस्तुतः जातिही धर्म-साधनके लिये एकमात्र गारन्टी नहीं है, मनुष्यमें योग्यता-गुण चाहिये। सुना जाता है कि कुरावली (मैनपुरी) में पं० लालारामजीसे इन्हीं विषयोंपर आचार्य-महाराजका वार्तालाप होगा। संघ ता० २६-१-३४ को कुरावली पहुँच गया है।

—संवाददाता।

नोट—इस समय जैनसमाजके मुनि, त्यागी, पंडित आदि समाजसेवाके बदले समाजकी गुलामी कर रहे हैं। ऐसे समयमें श्रीसूर्यसागरजीका इस प्रकार साहसका परिचय देना उनके अभ्युदयका सूचक मालूम होता है। उनसे तथा और भी अनेक त्यागी तथा पंडितोंसे मैं अनुरोध करना चाहता हूँ कि बिना सम्यक्त्वके कितनीभी तपस्या की जाय, वह सब व्यर्थ है; तथा अन्धश्रद्धा, साम्प्रदायिक अभिनिवेश आदि सम्यक्त्वके नाशक हैं। इसलिये विचारसे काम लेकर निष्पक्षताके साथ सत्यकी खोजमें ज़राभी शिथिलता न करना चाहिये, तथा भूलचूकसे भी सत्यका अपमान न करना चाहिये। स्याद्वादका मर्म समझकर उदार बनते रहना चाहिये। कषायको विजय करनेका नित्य प्रयत्न करना चाहिये। शुभाशयसे भी कषाय का प्रदर्शन न हो, यह अच्छा है। जनेऊ आदिका पंथ जैनधर्मके विरुद्ध तथा समयके भी प्रतिकूल है। मुनिश्री सूर्यसागरजीके विषयमें मुझे कई मित्रोंसे उनकी सुपात्रता के समाचार मिले हैं। आशा है वे उसका सदुपयोग करेंगे।

—सम्पादक।

११८०० की हानि

घटते घटते जैनियोंकी संख्या सिर्फ बारह लाख रहगई है। इस बातसे जितनी वेदना होती है उससे असंख्यगुणी वेदना घटतीके कारणोंसे होती है। ऐतिहासिकयुगमें तथा वर्तमानमें जैनसंख्या घटनेके तीनही कारण कहे जा सकते हैं:—

१—अत्याचारियों द्वारा जैनियोंपर अत्याचार किया जाना और जैनधर्म छोड़नेके लिये विवश किया जाना।

२—जन्मसंख्या कम और मृत्युसंख्याका अधिक होना।

३—जैनधर्म और जैनसमाजसे असन्तुष्ट होकर दूसरे धर्मको स्वीकार करलेना।

इन तीनों कारणोंमें से पहिला कारण वर्तमानमें नहीं है। दूसरा और तीसरा कारण है। दूसरेको दूर करनेका उपाय बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, अनमेल

विवाह आदिको बन्द कर विजातीय-विवाह, विधवा-विवाहका प्रचार करना है।

तीसरा कारण हमारे लिये लज्जाजनक है और हमारी मूर्खता तथा क्रूरताका सूचक है। जैनधर्म एक वैज्ञानिकधर्म है और वह दूसरे सम्प्रदायोंसे अधिक पूर्ण है। फिरभी अगर कोई असन्तुष्ट होकर चला जाता है तो समझना चाहिये कि जैनधर्म अवश्यही आज विकृत होगया है, वह आज विचारकताकी चोट नहीं सह सकता। जैनधर्मके मर्मके विरोधमें हाहल्ला मचानेसे या उसकी तरफ़ उपेक्षाकी दृष्टि डालनेसे, युक्तिवादको गालियाँ देनेसे और अपनेको धार्मिक कहलानेके लिये दाम्भिक आचरण करनेमें जैनधर्मकी रक्षा नहीं हो सकती। उसकी अगर रक्षा करना है तो उसे ऐसा बनाओ जो विज्ञानकी कसौटी पर कसा जासके, जो युक्तिवाद पर अवलम्बित हो, अन्धश्रद्धाके लिये जिसमें जरा भी गुंजाइश न हो, जो वर्तमानयुगमें लोगोंको सुखी शान्त बनाता हो।

असन्तुष्ट होकर जैनधर्म छोड़नेका दूसरा कारण समाजकी मूढ़ता और मदोन्मत्तता है। आपसी ईर्ष्या-द्वेषसे, या नाममात्रके अपराधसे, या पुरुषत्वके उन्मादसे हम अपने भाई और बहिनोंको सदाके लिये छोड़ देते हैं। हमारा निर्दय और क्रूर हृदय इसे धर्मरक्षा कहता है। पुराने समयमें जो लोग पशुवधको धर्म समझतेथे और आजभी समझते हैं, इसकेलिये नरमेध-यज्ञ तक करतेथे, उनकी मनोवृत्तिमें और हमारे पंचोंकी मनोवृत्तिमें कुछभी अन्तर नहीं है। सिर्फ़ बलिदानका, क्रूरताका प्रदर्शित करनेका, ढंग जुदा है। परन्तु इस तरह हम अपने पैरोंपर कुल्हाड़ी मार रहे हैं। अपना जनबल कम करके बिलकुल कमज़ोर होते जारहे हैं।

जैनधर्म छोड़नेका तीसरा कारण विजातीयविवाह व विधवाविवाहका न होना है। अनेक अल्पसंख्यक जातियों के लोग जातिमें विवाह न होनेसे विधर्मी बनकर कहींभी शादी कर लेते हैं। अग्रवाल जातिमें जैनियों की अपेक्षा जैनेतरोंकी संख्या कई गुणी है; इसलिये उस जातिके लोग अधिकतर जैनधर्म छोड़ते हैं। उनका विवाहसम्बन्ध जैनेतरोंके साथ होता है, इसलिये वे जैनेतर होजाते हैं। घटतीकी संख्या पर से भी यह बात मालूम होती है।

पिछले दशवर्षमें ११८०० मनुष्योंने जैनधर्म छोड़ा है, उसमें से ७६२३ मनुष्यतो सिर्फ़ पंजाबमें ही जैनधर्म छोडनेवाले हैं। पंजाबमें अग्रवाल जैनियों की संख्याही ज्याद: है, जो वैवाहिक सम्बन्धके कारण जैनेतर होजाते हैं, विशेषत: आर्यसमाजी बन जाते हैं। आर्यसमाजसे लड़ने-भिड़नेकी अपेक्षा यह अच्छा है कि हम उनके गुण सीखें और उनके समान पाचन शक्ति बढ़ावें तथा समाजसेवाकी सच्ची-भावना पैदा करें।

जैनधर्म त्यागनेमें दूसरा नम्बर मध्यप्रान्त और बरारका है। यहाँ पिछले १० वर्षोंमें ३८०० मनुष्योंने जैनधर्म छोड़ा है। इसका कारण इस प्रान्तके जैनियों की बहिष्कार कुप्रथा है।

विधवाविवाहका न होनाभी जैनधर्मके त्यागनेमें कारण है। सैकड़ों विधवाएँ प्रतिवर्ष जैनधर्म और जैनसमाजको तिलाञ्जलि देकर सदाके लिये राम राम कर जाती हैं। अगर जैनमत कोई धर्म है तो समाजको धारण करना उसका कर्तव्य होना चाहिये। अगर समाजको धारण करनेसे कोई धर्म डूबता है तो वह कल डूबता हो तो आज डूबजाना चाहिये। हमें उसके डूबनेपर लापर्वाही ही न दिखाना चाहिये किन्तु जल्दीसे जल्दी डुबानेकी कोशिशभी करना चाहिये।

ऊपर जो कारण बताये गये हैं, उनको हटाकर समाजका धारण करना हमारा कर्तव्य है।

संख्या घटनेके अनेक कारण हैं, परन्तु धर्म-परिवर्तन करनेसे जो संख्या घटती है वह किसीभी सम्प्रदायके लिये लज्जाकी बात है। जन्म मरणका अनुपात विषम होजानेसे अगर हमारी संख्या घटती

है तो इसकी इतनी चिन्ता नहीं है। आज दुनियाँमें मनुष्योंको बढ़ानेकी जरूरत नहीं है, क्योंकि एक दो देशोंको छोड़कर प्रायः सभी देशोंकी संख्या इतनी अधिक बढ़रही है कि अब उसको घटानेके उपाय सोचे जाने लगे हैं। इसलिये मनुष्यसंख्या न बढ़े तो भी हमें जैनसंख्या बढ़ाना चाहिये। जैनधर्ममें जो कल्याणकारकता है, उसका लाभ सबको पहुँचाना चाहिये। जैनत्वसे अगर आत्माका विकास होता है, पवित्रता आती है, विवेक जाग्रत होता है, संतोष और सुखकी वृद्धि होती है, तो जैनधर्मके प्रचारका अर्थ उपर्युक्त गुण वाले सुखी प्राणियोंकी वृद्धि करना है। मनुष्योंको बढ़ावें या न बढ़ावें, परन्तु उनको सुखी और गुणी बनाना अपना परम कर्तव्य है। अगर हम इस कर्तव्यसे विमुख होकर दसवर्षमें ११८०० भाइयोंको जैनधर्म छोड़नेके लिये अपनी काली करतूतोंसे विवश करते हैं तो कहना चाहिये कि हम जैनधर्मका तथा उसके साथ अपनाभी नाश कर रहे हैं।

जैनियों की ध्वजा।

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद्ने गत दशम वार्षिक अधिवेशनमें निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया है:—

"यह परिषद् प्रस्ताव करतीहै कि जैन ध्वजाका रूप जैनधर्मानुसार निश्चित किया जावे, और उसका स्वरूप इस प्रकार रहे जो सर्व आम्नायानुकूल हो। इस विषयपर सर्व आम्नायोंके विद्वानोंकी राय निश्चित करनेके लिये एक कमेटी बनाई जावे जो ध्वजाके सम्बन्धमें शास्त्रोक्त निर्णय देवे, और उसके अनुसार सर्व सामाजिक व धार्मिक कार्योंमें ध्वजा का व्यवहार किया जावे"।

इस प्रस्तावके अनुसार जैन ध्वजाके स्वरूपका निर्णय करनेके लिये निम्न प्रश्नावली प्रकाशितकी जाती है। इस विषयके जानकार समस्त विद्वानोंसे प्रार्थना है कि इन प्रश्नों पर विचार कर एकमास के भीतर उत्तर भेजनेकी कृपा करें, और इस महत्व-पूर्ण विषयके निर्णयमें सहायक हों।

प्रश्नावली

१. क्या शास्त्रोंमें जैन ध्वजाका स्वरूप कहीं बतलाया गया है? यदि हाँ, तो संस्कृत, प्राकृत या भाषाके किन ग्रंथोंमें कैसा स्वरूप मिलताहै? (उत्तर सप्रमाण, ग्रन्थोंके पूर्ण उल्लेख—परिच्छेद, पृष्ठ आदि की संख्या सहित देनेकी कृपा करें। यदि होसके तो अवतरण भी दें तथा उस स्वरूपका चित्रभी खींच दें।)

२. क्या प्रश्न नं० १ वाला ध्वजास्वरूप जैन समाजके सभी अर्थात् दिगम्बर, श्वेताम्बर व स्थानकवासी सम्प्रदायोंमें, या किसी एक सम्प्रदायके कोई जातीय या प्रान्तीय हिस्सेमें कभी प्रचलित रहा है? यदि हाँ, तो कब और कहाँ?

३ क्या प्राचीनकालमें जैनी लोग धार्मिक व सामाजिक अवसरों पर, या संस्थाओंमें, किसी विशेष ध्वजाका उपयोग करते थे? यदि हाँ, तो कहाँ, कब और कैसी? (चित्र दीजिये)।

४. क्या वर्तमानमें जैनियोंमें किसी विशेष ध्वजा का प्रचार है? यदि हाँ तो कहाँ और कैसा? यदि आपके देखनेमें अनेक प्रकारकी ध्वजाएं आईहों तो निम्न तालिकाके रूपमें विवरण देनेकी कृपा करें—

समाज—दिग०, श्वेता०, स्थानक. या जाति विशेष
स्थान—प्रान्त व नगर।
किस अवसर व स्थानपर ध्वजा देखी।
ध्वजाका स्वरूप वर्णन व चित्र।

५ क्या आपके विचारसे जैनियोंकी कोई विशेष ध्वजा होना चाहिये? यदि हाँ तो सब सम्प्रदायोंकी एकही या भिन्न? यदि एकही, तो उसका कैसा स्वरूप होना चाहिये जो सबको मान्य हो सके? (चित्र सहित दिखाने की कृपा करें)।

६ जैन ध्वजा सम्बन्धी औरभी जो बातें विदित हों और आप विचारणीय समझें उन्हें प्रकट करने की कृपा करें।

नोटः—कृपाकर आप स्वयं उत्तरदें, अपने यहाँके अन्य विद्वानोंसे दिलावें, तथा शास्त्रसभा आदि अवसर पर पंचायती राय भी लिखकर भेजें।

निवेदक—हीरालाल जैन,
प्रोफ़ेसर, किंग एडवर्ड कॉलेज, अमरावती (बरार)
(मंत्री, ध्वजाकमेटी दिगम्बर जैन परिषद्)

साम्प्रदायिकताका दिग्दर्शन*

भारतवर्षकी प्रजा यह मानती है और इस बातका दावा करती है कि संसारमें उसके समान दूसरी कोई प्रजा धार्मिक नहीं है तथा दूसरे किसी को उसके बराबर और उतना धर्मका वारसा (अधिकार) नहीं मिला है। यदि यह मान्यता ठीक है, और किसी अंशमें ठीक है ही, तो प्रश्न होता है कि जिससे अकल्याण की कोई भी संभावना नहीं, जो अपने पालने वालेकी रक्षा करता है—नीचे गिरते हुए को अवलम्बन देता है—ऐसे धर्मका वारसा मिलने परभी भारतकी प्रजा पामर क्यों है ? इस प्रश्नके साथही नीचेके प्रश्न पैदा होते हैं। धार्मिकपनेका वारसा मिलनेके सम्बन्धमें भारतकी प्रजाका दावा, क्या यह भ्रम ही है ? अथवा धर्मकी जो अमोघशक्ति मानीजाती है, क्या वह कल्पित है ? अथवा धर्मके साथ क्या किसी दूसरे ऐसे तत्वका मिश्रण होगया है, जिससे धर्म अपनी अमोघशक्तिके अनुसार काम करनेके बदले उलटा प्रजाके अधःपतनमें निमित्त बन गया है ?

उपनिषद्का अद्वैत तत्वज्ञान, जैनधर्मका तप और अहिंसा का अनुष्ठान, तथा बौद्धधर्म का साम्यवाद यह प्रजा को वारसे में मिला है, यह प्रामाणिकता ऐतिहासिक होनेके कारण प्रजाका धार्मिकपनके वारसे का दावा तो भ्रमपूर्ण हो ही नहीं सकता। कल्याण सिद्ध करनेकी, धर्मकी, अमोघशक्तिकी सत्यता का प्रमाण प्राचीन और अर्वाचीन अनेक महापुरुषों के पवित्र जीवन से मिलता है। यदि ये उत्तर के दो अंश वास्तविक हैं तो अन्तिम प्रश्नका हो उत्तर विचार करना बाक़ी रहता है। इसका विचार करने पर अनेक प्रमाणों परसे हमको यह माननेके कारण मिलते हैं कि किसी दूसरे ऐसे अनिष्ट तत्वके मिलनेसे ही धर्मकी वास्तविक शक्ति कुंठित हुई है, और इसीलिये इष्टसिद्धिकी जगह भयानक अनिष्ट सिद्धि दीख पड़ती है। यह दूसरा अनिष्ट तत्व कौनसा है तथा जिन प्रमाणोंसे ऊपरकी मान्यताकी पुष्टि होती है, वे प्रमाण कौनसे हैं, यह बताने का इस प्रस्तुत लेखका उद्देश्य है।

धर्मकी शक्तिको उसके वास्तविक रूपमें काम करने के लिये कुंठित बनाकर उसको अनिष्ट मार्ग में शक्ति प्रदान करने वाला दूसरा तत्व यह साम्प्रदायिकता है। यहाँ पहले साम्प्रदायिकताका अर्थ और उससे सम्बन्ध रखने वाले दूसरे ख़ास मुद्दों को बतादेना आवश्यक है।

व्याख्याः— सम्प्रदाय शब्द केवल रूढ़ अथवा केवल यौगिक नहीं परन्तु मिश्र (रूढ़-यौगिक) है। पातंजल मतका निरूपण करते समय कुसुमांजलि में तार्किकप्रवर उदयन ने सम्प्रदाय शब्दका अर्थ केवल वेद ही किया है*। कोश और व्यवहार दोनों देखने पर इस शब्दका केवल वेद अर्थ करना संकुचित मालूम होता है। अमरने सम्प्रदाय का

* यह लेख बहुश्रुत विद्वान् पं० सुखलालजी प्रज्ञाचक्षु के 'पुरातत्व' (पुस्तक चौथी, अङ्क ३-४) में प्रकाशित 'साम्प्रदायिकता अने तेना पुरावाओनुं दिग्दर्शन' नामक गुजराती लेख से अनुवाद किया गया है।

* क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टो निर्माण कायमधिष्ठाय।
सम्प्रदाय प्रद्योतकोऽनुग्राहकश्चेति पातंजलाः॥
प्रथमस्तवक कुसुमा० पृ० ४
"निर्माण कायमधिष्ठाय सर्व सम्प्रदाय
प्रद्योतक इति पातञ्जलाः"
कुसुमा० वाचस्पत्याभिधान पृ० ५२११

अर्थ 'गुरुपरम्परासे चला आनेवाला सदुपदेश' किया है।§ अमरकोषका यह अर्थ विस्तृत है तथा पहले अर्थसे अधिक वास्तविक है।

वैदिक सम्प्रदाय, बौद्ध सम्प्रदाय, चरक सम्प्रदाय, गोरख और मच्छन्दर सम्प्रदाय इत्यादि प्रामाणिक व्यवहारको लक्ष्यमें रखकर अमरकोषमें उल्लिखित अर्थका विशेष स्पष्टीकरण करना हो तो इस प्रकार कर सकते हैं—एक अथवा अनेक असाधारण मूलभूत व्यक्तियोंसे चला आनेवाला ज्ञान, आचार अथवा दोनों का विशिष्ट वारसा सम्प्रदाय है।

आम्नाय, तन्त्र, दर्शन और परम्परा ये सब दर्शनोंमें प्रसिद्ध शब्द, सम्प्रदाय शब्दके भावके सूचक हैं। इसके अतिरिक्त केवल जैन और बौद्ध साहित्यमें तीर्थ शब्द और जैन साहित्यमें समय शब्द भी इस अर्थमें विशेष रूढ़ है। सम्प्रदायके लिये सहज और घरेलू शब्द मत है।

साम्प्रदायिकता अर्थात् सम्प्रदायका अविचारी बन्धन अथवा मोह। जैनग्रन्थोंमें दृष्टिराग और बौद्ध ग्रन्थोंमें जो दृष्टि शब्द है वह इस मतमोह अथवा सम्प्रदायबन्धनका ही सूचक है।

केवल सम्प्रदायका स्वीकार करना ही साम्प्रदायिकता नहीं है। किसी एक साम्प्रदायको स्वीकार करने पर भी उसमें दृष्टि उदारताका तत्व हो तो उसमें साम्प्रदायिकता नहीं है। यह साम्प्रदायिकता तो संकुचित और एकपक्षीय अंधदृष्टिमें से ही उत्पन्न होती है। किसीभी सम्प्रदायके बन्धन को बिल्कुलही स्वीकार न करना अथवा स्वीकार करनेके बाद उसके मोहमें अंध होजाना, ये दोनों एक दूसरेके विरोधी दो अन्त हैं। और इसीलिये दोनों एकान्तरूप हैं। इनदोनों अंतोंके मध्यमें होकर निकलनेवाला प्रामाणिक मध्यम मार्ग दृष्टि उदारता का है। क्योंकि इसमें सम्प्रदाय स्वीकार करने पर भी मिथ्या अहंकारका तत्व नहीं है। किसी भी प्रकारके सम्प्रदायको न मानना, इसमें मनुष्यकी विशेषतारूप विचारशक्तिका अपमान है, तथा सम्प्रदाय स्वीकार करके उसमें अंधे होकर बँधजाना यह समभावका घात है। दृष्टि उदारतामें विचार और समभाव दोनों तत्वोंका समावेश होता है। जिस रागमें द्वेषका बीज हो, पीछे वह राग कितनी ही उत्तमोत्तम गणनाका विषय क्यों न हो तो भी व्यामोहरूप होनेसे त्याज्य है। जैसे अज्ञान, मनुष्य को सत्यसे दूर रखता है, वैसेही उसे व्यामोह भी सत्यके पास जानेसे रोक रखता है। दृष्टि उदारता में सत्यके पास लेजानेका गुण है।

दो उदाहरणोंसे इसे और अधिक स्पष्ट करते हैं। चिकित्सा की ऐलोपेथिक अथवा दूसरी कोई पद्धति स्वीकार करनेके बाद उसमें इतना अधिक जकड़ा जाना कि प्रत्येक व्यक्तिके लिये, प्रत्येक देश कालमें और प्रत्येक परिस्थितिमें उसी पद्धतिकी उपयोगिता स्वीकार करना तथा और दूसरी पद्धतियोंके विषयमें या तो द्वेषवृत्ति रखना, अथवा द्वेषमूलक उदासीनता दिखाना, यह सम्प्रदाय व्यामोह है। इसके विपरीत किसी भी एक पद्धतिका विशेषरूपसे आश्रय लेकर और दूसरी पद्धतियोंके वास्तविक अंशोंको भिन्नभिन्न पद्धतिकी दृष्टिसे मानना यह दृष्टिउदारता है। चश्मेकी सहायतासे देखने वाला यदि कहे कि चश्मेके सिवाय केवल आँख से वस्तुका यथार्थ ज्ञान संभव ही नहीं तो यह दृष्टिराग है। और चश्मेकी मददसे देखनेवाला यदि दूसरा कोई कहे कि चश्मेके बिना भी और लोग वस्तुका यथार्थ ज्ञान कर सकते हैं तो यह दृष्टि उदारता है। (क्रमशः)

---

§ अथाम्नायः सम्प्रदायः। अमरकोश संकीर्णवर्गः श्लो० ११६५

संप्रदायः—"गुरुपरम्परागते सदुपदेशे, उपचारात् सदुपदेशयुते अर्थे च। अमर० वाचस्पत्याभिधान पृ० ५१७१
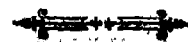
शोकसमाचार ।

पिछले दो तीन हफ्तोंमें जैनसमाज के लिये बड़ी शोकप्रद घटनाएँ हुई हैं। जैनसमाज में ऐसा कौन व्यक्तिहै जो अजमेर निवासी श्रीमान रायबहादुर सेठ टीकमचन्दजी तथा ब्यावरनिवासी रायबहादुर सेठ चम्पालालजीके नामसे परिचित नहीं है ? अपनी धनशीलता व दानशीलताके कारण उक्त महानुभावोंका नाम जैनसमाजके बाहिरभी प्रख्यातहै। दोनोंही अपनी मान्यतानुसार धर्मसेवन में दृढ़थे और इसकारण उनका नाम अपने दलके प्रमुख नेताओंमें लिया जाताथा। दोनो परिवार लोकप्रिय व राजप्रिय हैं। श्रीमान सेठ चम्पालालजी अपनी पौत्रीका विवाह करानेके लिये अपनी जन्म-भूमि खुर्जा गयेथे। विवाहकार्य पूर्णतया सम्पन्नभी नहीं हुवाथा कि गत माघ सुदी ८ ता० २३ जनवरी को ८५ वर्षकी अवस्थामें आपका वियोग होगया। श्रीमान सेठ टीकमचन्दजी साधारणतया स्वस्थ ही थे। ता० ३ फरवरीको उन्होंने नियमानुसार पूजा, पाठ आदि सब कार्य कियेथे। एकाएक मामूलीसी बाधा उठ खड़ी हुई और कुछही घंटे बाद आपकी आत्माने इस नश्वर देहको त्याग दिया। कुछ दिन पहिले श्रीमान भागचन्दजीसाहब व उनके बहनोई श्रीमान भँवरलालजीसेठी के साथ एक मोटरदुर्घटना हुईथी और इसकारण इन्हें गहरी चोट आई थी। उस व्यथासे आप अभीतक मुक्त नहीं हुएहैं। दुःख है कि श्रीमान भागचन्दजी पर शारीरिक आघातके साथ साथ हार्दिक आघातभी हुवा और उनके सिरपर पितृवियोगका महान कष्ट आपड़ा।

पाठक मथुरावाले स्वर्गीय सेठ राजा लक्ष्मणदासजी रईस सी० आई० ई० के नामसे परिचित होंगे। खेदहै कि आपके पौत्र श्रीमान सेठ मथुरादासजीका करीब बीसवर्षकी आयुमें ता० २३ जनवरीको स्वर्गवास होगया। केवलदो वर्ष पूर्व आपका विवाह श्रीमान रायबहादुर बा० नाँदमलजीकी पुत्री से हुवाथा। विवाहके प्रायः दो माह बादसे ही आप क्षयरोगसे ग्रसित होगये। इलाजमें हजारों रुपया पानीकी तरह बहाया गया, लेकिन कुछ लाभ न हुवा और सेठ मथुरादासजी एक अभागिनी बालिका, वृद्धा माता, वृद्ध श्वसुर व उनके परिवारके जीवनको श्मशानवत् बनाकर चल दिये।

हम व्यथित हृदयसे शोकार्त परिवारोंके प्रति समवेदना प्रकट करतेहैं। —प्रकाशक।

चंद्रसागरलीला—चातुर्मास समाप्त हुए करीब साढे तीन महीने होगये परन्तु चंद्रसागरजी अभीतक अजमेर प्रान्तमें ही डेराडाले पड़े हैं; जब कि श्री शान्तिसागर संघ परतापगढ़ जापहुँचा है। चंद्रसागरजीका छोटे छोटे गाँवों तक में तीन तीन चार चार हफ्तों तक पड़ाव रहता है। जहाँ जाते हैं वहाँके श्रावकोंको उलटा सीधा बहकाकर कोई उत्सव करानेके लिए बाध्य करते हैं और इस तरह समाजका हजारो रुपया व्यर्थ नष्ट कराया जारहा है। आजखंडेलवाल जातिके अनेकों युवक रोजगार के अभावमें मारे मारे फिरते हैं। जिस खंडेलवाल जातिका बालकभी धनशीलताके कारण सेठ कहलाताथा, आज उसके युवकोंका यहहाल होरहा है कि कोई खोमचेकी फेरी लगाकर पेट भरते हैं, तो कोई दूकानों पर साधारण वेतन पर भृत्यकी तरह काम करते हैं। देहातोंमें तो हालत औरभी अधिक शोचनीय है। परन्तु इसकी मुनिजी को क्या चिन्ता ? उन्हें तो किसी तरह अपनी हठ पूरी करना है। इनमेलोंमें लोहड़साजनोंके खिलाफ प्रोपेगैण्डा किया जाता है और समाजके द्रव्य व शक्तिका अपनी कषायपूर्तिके लिए अपहरण किया जाता है। एक गाँवमें मुनिजीने फरमाया—अमुक तिथिको मंदिरका कलशारोहण उत्सव कराओ। बड़ाअच्छा मुहूर्त है। नक्षत्रों का ऐसा योगर अबकी बार हीहुवा है। इसके प्रताप से

अदृष्ट धनकी प्राप्ति होगी। बेचारे भक्त लोग इस झाँसेमें आ गये और उत्सव करा डाला। उत्सव के कुछ दिन बाद ही एक प्रमुखपचका एकाएक देहांत होगया। मुनिजी बोले - उत्सव करानेमें तुमने दो रोजकी देरी करदी। मैंने पहिले ही कहाथा कि देरी करनेसे अनिष्टकी सम्भावना है! गत चातुर्मासमें इन्होंने अजमेरमे मानस्तम्भकी स्थापना कराई थी। क्रियाकांड स्वयं मुनिजीने अपने हाथो कराया था। खेद है कि अभी मानस्तम्भ बनना प्रारम्भभी नहीं हुवा और नीव रखनेवाले श्रीमान राय बहादुर सेठ टीकमचंदजीका एकाएक स्वर्गवास होगया। शायद इसकीभी कोई त्रुटि उनके ज्ञानमें झलक रही होगी।

चन्द्रसागरजी अपने भक्तोंसे लोहड़साजनोका बहिष्कार कराते हैं, परन्तु भक्त लोग लोहड़साजनो से सम्बन्ध छोड़नेके साथ दस्सोंसे सम्बध स्थापित करते जाते है। शायद मुनिजी या उनके भक्त लोहड़साजनोंको दस्सोंसे भी हीन समझते होंगे।

"लोहड़साजन निर्णय"—मुनिवेषी चंद्रसागरजीने लोहड़साजनोंके खिलाफ एक जबर्दस्त तूफान खड़ा कर रक्खा है। वे लोहड़साजनोंको दस्सा घोषित करते हैं और इसलिये जहाँ कहीं वे जाते है श्रावकोंको लोहड़साजनोंके साथ खानपान सम्बन्ध त्याग करने तथा उन्हें पूजा प्रक्षाल आदि धार्मिक कृत्योंसे रोकनेके लिये मजबूर करते हैं। हर्ष है कि श्रीमान व्याख्यानभूषण पं० कन्हैयालालजी जैनशास्त्री. स्वयं लोहड़साजन न होते हुए भी, केवल सत्यकी रक्षाके लिये, साहसपूर्वक उनका मुकाबिला कर रहे हैं। अभी हाल ही उन्होंने "लोहड़साजन निर्णय" नामकी ७० पृष्ठोंकी एक पुस्तक प्रकाशित की है जिसमे इस प्रश्न पर विशदरूपसे प्रकाश डाला गया है। पुस्तकमें करीब ७० विभिन्न पंचायतियोंकी तथा समाजके अनेक प्रतिष्ठित सेठ, पंडित व बाबुओं की सम्मतियाँ प्रकाशित की गई है तथा करीब डेढ़सौ लोहड़साजन-बड़साजन विवाह सम्बन्धोंका पूर्ण विवरण दिया गया है। इनमे संवत १८२४ से लेकर वर्तमान संवत् १९९० तकके विवाहोंका उल्लेख है। खण्डेलवाल-समाजके प्रायः सभी प्रतिष्ठित घरानोंका इनमें समावेश होजाता है। लोहड़साजन बड़साजन परस्पर मे इस प्रकार गुँथे हुए हैं कि, अगर चन्द्रसागरजीके कथनानुसार लोहड़साजनों को दस्सा समझा जाय, तो इस बातका पता लगाना कि खण्डेलवालसमाज भरमे कितने व्यक्ति ऐसे हैं जो दस्से नहीं हैं, अत्यंत कठिन है। लोहड़साजन प्रश्न बिलकुल स्पष्ट है। अगर लोहड़साजन दस्सा है तो प्रचलित प्रथाके अनुसार उनके साथ विवाह सम्बन्ध करनेवाले सभी व्यक्ति दस्सा समझे जाने चाहिये। और यदि ऐसा करना सम्भव न हो तो फिर लोहड़साजनोंके साथ सर्वत्र अबाधरूपसे बेटी व्यवहार जारी होना चाहिये। पुस्तक संग्रहणीय है। श्रीमान सेठ बनजीलालजी ठोलियाकी धर्मशाला घीवालोंका रास्ता जयपुरके पतेपर आठआना मूल्य मे मिल सकती है।

आर्यिकाकी तलाशी—श्रीयुत गुलाबचंदजी मुनीम गोटेगाँवने सूचित किया है कि सहपुरा मे आर्यिका वेषधारिणी विमलमतीकी तलाशी ली गई तो उसके पास क़रीब ४-५ तोला सोना, क़रीब १००) रु० नकद और कुछ बिक्रीकी पुस्तकें मिली। क्या वेषपूजकोंकी आँखे खुलेंगी?

अनुकरणीय दान—ता० २४ जनवरीको जैनमित्रके आफिशियेटिंग सम्पादक श्रीमान सेठ मूलचन्दजी किसनदासजी कापड़ियाके पिता श्रीमान सेठ किसनदासजी पूनमचन्दजीका ८२ वर्षकी आयु मे स्वर्गवास होगया। श्रीमान सेठ मूलचन्दजी किसनदासजीने अपने स्वर्गीय पिताकी स्मृतिमें ४२५१) रु० का दान दिया है। कापड़ियाजी व उनके परिवारके प्रति हम समवेदना प्रकट करते हैं।

"सूर्यप्रकाश परीक्षा" मुफ्त—क्षुल्लकवेषी ज्ञानसागरजी द्वारा उच्छृंखलतापूर्वक अनुवादित जाली-ग्रंथ "सूर्यप्रकाश" का अंतरंग मिथ्यौघकार बतानेवाली सूर्यप्रकाश परीक्षा नामक १७५ पृष्ठकी पुस्तक मात्र दो आने पोस्टेजके अर्थ भेजने पर मुफ्त मिल सकती है।

—जौहरीमल जैनी सर्राफ, बड़ा दरीबा, देहली।

Printed by Pt Radhaballabh Sharma at the Ajmer Printing Works Ajmer

नाथूलालजी गंगवाल, समीरमलजी अजमेरा, मानमलजी कासलीवाल इन्दौर, कल्याणमलजी गोधा, लूणकरणजी मदनमोहनजी उज्जैन, देवीचन्दजी बाकलीवाल मंदसौर, राजमलजी सेठी, ताराचंदजी सेठी नसीराबाद तथा फूलचंदजी अजमेरा बड़नगरके दस्तखतोंसे किशनगढ़के पंचोंके नाम चिट्ठी लिखी गई जिसका आशय यह था कि—आजतक लोहड़साजनोंकी मन्दिर पूजन प्रक्षाल वगैरह सब चालू थी, फिर अभी यह नई बात करनेकी क्या ज़रूरत हुई। जब तक इन लोगोंमें कोई खास ऐसी बात मालूम नहीं पड़े तब तक इनके साथ जैसा पहिलेसे व्यवहार चालू है उसी तरह चालू रखना चाहिये। इनका व्यवहार पहिले मुजिब चालू रखना चाहिये। इसके बाद ता० ९ मार्च को श्रीमान रावराजा सर सेठ हुकमचन्दजी स्वयं दाम्या गये और वहाँ जाकर चन्द्रसागर से अत्यन्त नम्रतापूर्वक कहा कि—आप लोहड़साजनोंके खिलाफ़ क्यों आन्दोलन कर रहे हैं? चन्द्रसागर बोला—तुमको इससे क्या मतलब? लोहड़साजन शूद्रकी संतान हैं! इस पर सेठ साहबने पूछा—इसका आपके पास क्या प्रमाण है? चन्द्रसागर उत्तेजित होकर बोला—मैं तुम्हारा गुरु हूँ। मेरे वचन ही तुमको प्रमाण मानने पड़ेंगे। मेरे पास कोई प्रमाण नहीं है। सेठ साहबने फिर नम्रता किन्तु साथही दृढ़तापूर्वक कहा कि—आप बिना किसी प्रमाण व आधार के लोहड़साजनोंको धर्मसाधन करनेसे रोकते हैं, लोहड़साजनोंके साथ खानपान करने का आजन्म त्याग कराते हैं, और इस तरह समाजमें व्यर्थ कलह फैलाकर समाज को छिन्न भिन्न करना चाहते हैं सो ठीक नहीं है। चन्द्रसागर बोला—हमारी खुशी है, हम चाहे जैसी प्रतिज्ञा लेंय दिलावें। इसमें तुम्हारा क्या दबाव है? सेठ साहबने कहा—जब सब जगह लोहड़साजनोंके साथ रोटी व्यवहार चालू है तथा वे हमेशासे पूजा प्रक्षाल करते आरहे हैं तब इनके खिलाफ़ ऐसा आन्दोलन करना आपका अनुचित हठ है। चन्द्रसागर बोला—अनुचित हठ हो सही; मैं अपनी प्रतिज्ञा नहीं छोड़ सकता। इस पर रावराजा साहबने निर्भीकतापूर्वक कहा—इस प्रकार मिथ्या प्रतिज्ञा लेने वाला हमारा गुरु नहीं हो सकता। चन्द्रसागर क्रोधावेशमें कॉपने लगा और अनाप शनाप बकने लगा। बोला—तुम मेरा क्या कर सकते हो? मैं मेरे मनमें आवेगी सो करूंगा। सेठ साहबने चन्द्रसागर को अत्यन्त दृढ़ता व साहसके साथ चेतावनी देते हुए कहा—तुम ऐसी मनमानी करोगेतो याद रक्खो जैन समाजसे तुम्हारा बहिष्कार करा दिया जावेगा और फिर तुमको रोटीका टुकड़ा मिलना बन्द हो जावेगा। चन्द्रसागरने अब बिलकुल बेहयाई अख्तियार करली और बेहूदेपनसे गालियाँ बकने लगा—तू क्या मेरे टुकड़े बन्द करावेगा? तेरे जैसे मैंने बहुत देखे हैं। तू खंडेलवालका बीज है तो मेरा कुछ कर लेना। मैं दो रोज़में इन्दौर आता हूँ, तुझेभी झख मार कर प्रतिज्ञा लेनी होगी। तुझे भी लोहड़साजनोंसे खानपान त्याग करनेकी प्रतिज्ञा दिलाऊँ तबतो मेरा नाम चन्द्रसागर, आदि। उस समय वहाँ अजमेर, नसीराबाद, किशनगढ़ आदि कई स्थानोंके व्यक्ति मौजूद थे। खुशालचन्दकी इस प्रकार उद्दण्डता उन्हें बर्दाश्त नहीं हुई और सब उसे धिक्कारने लगे। श्रीमान राजमलजी सेठी नसीराबाद उसे कुछ समझाने लगेतो वह उनसेभी उलझ पड़ा और बकने लगा—तू मुझे क्या कहता है? क्या तू भूल गया कि मैं नसीराबाद में तेरे मुचलके कराकर आया हूँ, आदि। नसीराबाद वालों ने कहा—तेरे उपद्रवोंके कारण सरकारकी ओरसे तेरे लिये यह हुक्म निकला कि तू रथयात्रामें नंगा नहीं जा सकता। तू पाखंडी है, मुनि नहीं, किन्तु मुनिकलंक है। तूने जैन मुनियोंका नाम लजाया। किशनगढ़ वालोंने कहा—इसने किशनगढ़में व्यर्थ झगड़ा खड़ा किया। पहिले हमारे यहाँ लोहड़साजन बड़साजनका कोई झगड़ा नहीं था, आदि। इस प्रकार चारों ओरसे लानत-मलामत पड़ने पर भी खुशालचन्द इसी प्रकार गालियाँ बकता रहा। रावराजा साहब आदिके जाने पर बोला—यह चली हुकमचन्दकी फौज।

जो व्यक्ति जातिके [illegible] के प्रति इस प्रकार उद्दण्ड व्यवहार करता है और [illegible] हीनाचरणोंसे मुनिधर्मको लजाता है, क्या वह [illegible] नंगा होजानेसे जैनियोंका गुरु कहला सकता है? क्या वेषपूजकोंकी अबभी आँखें खुलेंगी? श्रीमान् रावराजा साहबने धर्म व समाजकी रक्षाके लिये जो इतना कष्ट सहन किया वह अवश्यही सराहनीय है। आशा है वे इस पाखंडीको अक्ल ठिकाने लाने के लिये प्रयत्न जारी रखेंगे जिससे वह समाजमें आगे अशान्ति नहीं फैलासके।

—सम्वाददाता.

वर्ष ६

अंक ८

फाल्गुन शुक्ला १५

ता० १ मार्च

वीर संवत् २४६०

सन् १९३४ ई०

जैनजगत्

जैनधर्म का मर्म ।

(४१)

जैनशास्त्रोंमें अवधिज्ञानके विषयमें जो जो बातें कही गई हैं, उनपर गम्भीर विचार करनेसे अवधिज्ञान के विषयमें कुछ कुछ आभास मिलता है।

यह ज्ञान अतीन्द्रिय माना जाता है अर्थात् इसमें इन्द्रियोंकी आवश्यकता नहीं होती। दूसरे शब्दोंमें यह कहना चाहिये कि जहाँ इन्द्रियोंकी गति नहीं है, वहाँ इसकी गति है। यह इन्द्रियोंकी अपेक्षा कुछ दूरके विषयको जान सकता है, तथा जो गुण इन्द्रियों के विषय नहीं हैं उनकोभी जान सकता है। जिस प्रकार आँख, कान, नाकका स्थान नियत है, वहींसे हम देखते सुनते हैं, उसी प्रकार अवधिज्ञानका भी शरीरमें स्थान नियत है कोई कोई अवधिज्ञान सर्वांगसे विषय ग्रहण करता है, कोई कोई शरीरके अमुक[1] भागसे। कोई कोई अवधिज्ञान बाह्य होता है अर्थात् जहाँ वह होता है वहाँके पदार्थको नहीं जानता किन्तु दूरकी चीजोंको ही जानता है, अथवा एकही दिशाकी वस्तुओंको जानता[2] है। कोई कोई चारों तरफ अन्तररहित जानता है। कोई कोई अवधिज्ञान अनुगामी होता है अर्थात् जहाँभी कहीं अवधिज्ञानी जायगा वहीं वह अवधिज्ञान काम देगा। परन्तु कोई कोई अननुगामी होता है अर्थात् जिस जगह वह पैदा हुआ है, वहीं परतो वह पदार्थको जानेगा; और जगह न जानेगा। कोई कोई अवधिज्ञान (परमावधि) इतना विशुद्ध होता है कि उसके होनेसे अंतर्मुहूर्तमें (क़रीब पौने घंटेमें) नियमसे केवलज्ञान पैदा[3] होता है। अवधिज्ञानके पहिले दर्शन अवश्य होता है। परन्तु किसी किसी आचार्यके मतसे मिथ्यादृष्टियोंके जो अवधिज्ञान होता है, जिसे विभङ्ग कहते हैं, उसके पहिले अवधिदर्शन[4] नहीं होता।

अवधिज्ञानके स्वरूपवर्णनकी ये थोड़ीसी सूचनाएँ हैं। इससे मालूम होता है कि अवधिज्ञानभी कोई ऐसी इन्द्रिय है जो इन पाँचों इन्द्रियोंसे भिन्न है, तथा अदृश्य है। अभीतक हमको पाँच इन्द्रियों का ज्ञान है, इसलिये हम इन्द्रियोंके विषयभी पाँच प्रकारके—स्पर्श रस गन्ध वर्ण शब्द—मानते हैं। कल्पना करो कि मनुष्योंके चक्षु इन्द्रिय न होती और पशुओं के होती, तो यह निश्चित है कि हमारी भाषामें 'रूप' नामका कोई शब्दही न होता, न हम अन्य किसी प्रकारसे रूपकी कल्पना कर सकते। जिस समय कोई पशु दूरकी वस्तु देखकर ज्ञान कर लेता तो हम

---

१ भवपच्चइगो सुरणिरयाणं तित्थेवि सव्व अंगुत्थो। गुणपच्चइगोणरं तिरियाणं संखादि चिन्हभवो। गोम्मटसार जीव० ३७१।

२ बाहिरओ एगदिसो फड्डोही वाऽहवा असम्बद्धो। विशेषावश्यक ७४६।

३ परमोहिन्नाणविओ केवलमंतो मुहुत्तेणं। विशेषावश्यक ६८९।

४ अवधिदर्शने असंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनि क्षीण कषायान्तानि। सर्वार्थसिद्धि १–८।

यही सोचते कि यह पशु नाकसे सूँघकर दूरके पदार्थ को जान लेता है; उसके आँख नामकी एक स्वतंत्र इन्द्रिय है, यह बात हम कभी न सोचपाते। इसी तरह आजभी सम्भव है कि किसी किसी पशुके अन्य कोई इन्द्रिय हो, जिसे हम नहीं जानपाते। जब उनमें किसी असाधारण ज्ञानका सद्भाव मालूम होता है तब यही कल्पना कर लेते हैं कि वे पाँच इन्द्रियोंमे से किसी इन्द्रियसे ही यह असाधारण ज्ञान कर लेते हैं। हम उनके छट्ठी इन्द्रिय नहीं मानते। उदाहरणार्थ कई जानवर ऐसे होते हैं जिनको भूकम्पका ज्ञान महीनों पहिलेसे हो जाता है। चूहे वगैरह भी कई दिन पहिलेसे भूकम्पका ज्ञान करके जगह छोड़ देते हैं। माउंट पीर्गीका ज्वालामुखी जब फटाथा तब आसपास रहनेवाले पशुओंको महीनों पहिले ज्वालामुखीके फटनेका पता लग गयाथा और वह प्रदेश पशुओंसे उजाड़ होगया था। महीनों पहिलेसे उन्हें ज्वालामुखी फटनेका ज्ञान हुआ, यह ज्ञान किस इन्द्रियसे हुआ यह जानना कठिन है। फटनेके पहिले ज्वालामुखीमे वे कौनसे विकार होते हैं जिनका प्रभाव वातावरण आदि पर पड़ता है और जिस प्रभावका ज्ञान उन पशुओंको होता है? उन विकारोंको हमारी इन्द्रियाँ नहीं जानपाती, इसका कारण विषयकी सूक्ष्मता है, या उनके और कोई इन्द्रिय होती है जिसकी खोज हम नहीं करपाये हैं— अभीतक यह एक जटिल समस्या हो है। जैनधर्म ने पशुओंको भी अवधिज्ञान माना है, इससे मालूम होता है कि वहाँ पाँच इन्द्रियोंसे भिन्न किसी अज्ञात इन्द्रियके ज्ञानको अवधिज्ञान कहा है, जिस इन्द्रिय का स्थान किसी एक जगह नियत नहीं है। अवधि- ज्ञानका भी शरीरमें कोई स्थान होता है, इस बातसे अवधिज्ञान एक प्रकारकी विशेष इन्द्रियका ज्ञानहीं मालूम होता है। यहभी सम्भव है कि पांच इन्द्रियों से भिन्न एक नहीं अनेक इन्द्रियाँ हों, जिन्हें अवधि- ज्ञान कहा गया हो।

ऊपर जो ज्वालामुखीका उदाहरण देकर विषय समझाया गया है, सम्भव है उस तरहकी असाधारण इन्द्रिय या इन्द्रियाँ किसी किसी असाधारण मनुष्य को भी होतीहों। जैनशास्त्रोंके अनुसार पशुओंकी अपेक्षा मनुष्योंको अवधिज्ञान उच्च श्रेणीका हो सकता है। इस प्रकार उच्चश्रेणीकी इन्द्रिय रखकरके भी मनुष्य दूसरेको अवधिज्ञानका स्वरूप नहीं बता सकता। जिस प्रकार जन्मांधको रूपका स्वरूप सम- झाना असम्भव है, उसी प्रकार अवधिरहित पुरुषको अवधिका स्वरूप समझाना असम्भव है।

अवधिज्ञानको कोई असाधारण इन्द्रिय मानने से अवधिदर्शनका स्वरूपभी समझमें आने लगता है। सर्वज्ञके प्रकरणमें यह कहा गया है कि आत्मग्रहण दर्शन है और अर्थग्रहण ज्ञान है। व्यञ्जनावग्रहके प्रकरणमें भी यह बात समझायी गई है कि इन्द्रिय का (निर्वृतिका) ग्रहण दर्शन है, उपकरणका ग्रहण व्यञ्जनावग्रह है और अर्थका ग्रहण अर्थावग्रह (ज्ञान) है। अवधिज्ञानके जो इन्द्रियके समान शंखादि चिन्ह बतलाये गये हैं उनके ऊपर जो भौतिक पदार्थोंका प्रभाव पड़ता है उनसे हत जब उन चिन्हों का संवेदन होता है तब उसे अवधिदर्शन कहते हैं और उसके अनन्तर जो अर्थज्ञान होता है वह अवधिज्ञान है।

किसी मनुष्यकी आँख अच्छी होती इसीसे वह महात्मा नहीं कहा जाता और अन्धा या बहिरा होने से वह पापी नहीं कहलाता। मतलब यह कि इन्द्रियों के होने न होनेसे आत्माकी उन्नति अवनति निर्भर नहीं है। अवधिज्ञानके विषयमें भी यही बात है। अवधिज्ञान पशुओंको, मनुष्योंको, देवोंको और पापी नारकियोंको भी होता है; मुनियोंको, श्रावकोंको, असंयमियोंको और मिथ्यादृष्टियोंको भी होता है। मतलब यहकि अवधिज्ञान होनेसे आत्मोत्कर्षभी होना चाहिये, यह नियम नहीं है। इससेभी मालूम होता है कि उसका दर्जा एक तरह की इन्द्रियके समान है। अवधिज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान माना जाता है। इन्द्रियज्ञानके सिवाय और

किसी ज्ञानमें प्रत्यक्षता सिद्ध नहीं होती। इससेभी अवधिज्ञान एक प्रकारकी इन्द्रियका ज्ञान है।

'अवधिज्ञानमें भूत-भविष्यका ज्ञान होता है' इस कथनका कारण दूसरा है। ऊपर ज्वालामुखीके उदाहरणमें यह बात कही गई है कि पशुओंको महीनों पहिले ज्वालामुखी फटनेका ज्ञान होजाता है। परन्तु यह बाततो तर्कविरुद्ध है कि जो पदार्थ है ही नहीं, उसका प्रत्यक्ष होजाय। इसलिये इसका यही समाधान है कि फटनेके पहिले जो वातावरण आदिमें विकार पैदा होते हैं उनका उन्हें ज्ञान होता है, उससे वे शीघ्रही ज्वालामुखी फटनेका अनुमान करते हैं। यह अनुमान एक ऐसे प्रत्यक्ष पर अवलम्बित है जिसका हमें ज्ञान नहीं है। इसलिये हम उस प्रत्यक्षके आश्रित अनुमानको भी प्रत्यक्ष समझते हैं। इसी प्रकार अवधिज्ञान है तो वर्तमानमात्रको ग्रहण करनेवाला, किन्तु उससे जो अनुमान होता है वहभी अवधिज्ञानमें शामिल कर लिया गया है। इसलिये अवधिज्ञान त्रिकालग्राही कहा गया है।

अवधिज्ञान अतीन्द्रियज्ञान कहा जाता है, इसका कारण यह है कि वर्तमानमें जो पाँच इन्द्रियाँ मानी जाती हैं उनसे नहीं होता किन्तु उनसे भिन्न किसी अन्य इन्द्रियसे यह ज्ञान होता है। वह आत्ममात्रसे होता है—उसको अन्य किसी इन्द्रियकी भी आवश्यकता नहीं होती, यह समझना ठीक नहीं। यदि ऐसा हो तो शंखादि चिन्ह बतलानेका कोई मतलब नहीं रहता।

ऊपर अवधिज्ञानके स्वरूप वर्णनमें इस विषयमें जो विशेष बातें कही गई हैं वे सब अवधिज्ञानको इन्द्रियरूप माननेसे ठीक बैठजाती हैं, क्योंकि इन्द्रियोंमें वे विशेषताएँ पाई जाती हैं। जैसे, कोई अवधिज्ञान सर्वांगसे होता है, कोई चिन्ह विशेषसे। पहली बात स्पर्शन इन्द्रियमें पाई जाती है क्योंकि वह सर्वांगव्यापी है, दूसरी बात बाक़ी चार इन्द्रियोंमें है। कोई कोई अवधिज्ञान दूसरे क्षेत्रमें विषयग्रहण नहीं करता, इसका कारण यही मालूम होता है कि वहाँके किन्हीं ख़ास तरहके परमाणुओंसे उस अवधि इन्द्रियकी रचना हुई है, जिनपर दूसरे क्षेत्रके परमाणुओंका (विजातीय होनेसे) असर नहीं पड़ता।

कोई कोई अवधिज्ञान निकटके पदार्थको नहीं जानता और दूरके पदार्थको जान लेता है। यह बात आँखमें भी देखी जाती है। वह आँखसे लगे हुए पदार्थको नहीं देखपाती और दूरके पदार्थको देख लेती है। रेडियोयंत्र पर अमुक प्रकारके दूरके शब्दों का ही प्रभाव पड़ता है और साधारण बोलचालके शब्दोंका प्रभाव नहीं पड़ता, आदिके समान अवधि इन्द्रियमें भी विशेषताएँ हैं।

कोई कोई आचार्य सम्यग्दृष्टिके अवधिज्ञानमें अवधिदर्शन मानते हैं, मिथ्यादृष्टिको अवधिदर्शन नहीं मानते। परन्तु यह बात युक्तिसंगत नहीं मालूम होती, क्योंकि ज्ञानके पहिले दर्शन अवश्य होता है। अगर दर्शन न हो तो कोई दूसरा ज्ञान होता है। मिथ्यादृष्टिको जो विभङ्ग ज्ञान होता है, उसके पहिले अगर दर्शन न माना जायतो कोई दूसरा ज्ञान मानना पड़ेगा। ऐसी हालतमें अवधिज्ञान प्रत्यक्षज्ञान नहीं कहला सकता।

विशेषावश्यककार भी यह बात स्पष्ट शब्दोंमें कहते है कि अवधिज्ञान और विभङ्गज्ञान दोनोंके पहिले अवधिदर्शन[१] समान होते हैं। इसलिये मिथ्यादृष्टिके भी अवधिदर्शन मानना आवश्यक है।

अवधिज्ञानीकी एक विशेष बात और है कि परमावधिज्ञानी अन्तर्मुहूर्तमें केवलज्ञानी होजाता है। अवधिज्ञान एक भौतिकज्ञान है और परमावधिका अर्थ है उत्तमश्रेणीका अवधिज्ञान। इसका मतलब हुआकि परमावधिके द्वारा भौतिक जगत्का क़रीब क़रीब पूर्णज्ञान होजाता है। भौतिक जगत्का क़रीब

१-सविसेसं सागारं तं नाणं निव्विसेसमणगारं।
तं दंसणं ति ताइं ओहि विभंगाण तुल्लाइं। ७६४।

२-परमोहिन्नाणविओ केवलमंतो मुहुत्तमेत्तेणं।
विशेषावश्यक। ६८९।

पूर्णज्ञान होजाने से वह शीघ्रही केवली क्यों होजाता है, इसका समझना कठिन नहीं है।

यह जगत् आत्मा और जड़ पदार्थोंका सम्मिश्रण है। जो इस सम्मिश्रणका विवेक नहीं कर सकता वह आत्माको नहीं जान सकता, इससे वह मिथ्यादृष्टि रहता है। मिली हुई दो चीजों में से अगर हम किसी एक चीजको अच्छी तरह अलगसे जानलें तो दूसरी चीजके जाननेमें कुछ कठिनाई नहीं रहती। इसलिये जो मनुष्य भौतिक जगत्का ठीक ठीक पूर्ण ज्ञान करलेगा, उसको तुरन्त मालूम होजायगा कि इससे भिन्न आत्मा क्या पदार्थ है। भौतिकजगत्को ठीक ठीक जान लेनेसे उसकी आत्मभिन्नताभी पूर्ण रूपसे जानी जाती है। इसमें आत्माका शुद्ध स्वरूप समझमें आजाता है। इससे वह शुद्ध आत्मा और शुद्ध भूतका पूर्ण अनुभव करता है। शुद्ध आत्माका पूर्ण अनुभवही केवलज्ञान है। मतलब यह कि चेतनको जानकर जैसे हम जड़को अलग जान सकते हैं, उसी प्रकार जड़को जानकरभी हम चेतनको अलग जान सकते हैं। मिली हुई दो चीजोंमें से एकके अनुभव होजाने से दूसरेके अनुभव होनेमें देर नहीं लगती। यही कारण है कि पूर्ण भौतिकज्ञानी शीघ्रही पूर्ण आत्मज्ञानी अर्थात् केवली होजाता है। विश्वके रहस्यका वह प्रत्यक्षदर्शी हो जाता है।

अवधिज्ञानके विषयमें यही कहा जा सकता है कि वह भौतिक पदार्थोंका वह ज्ञान है जोकि पाँच इन्द्रियोंसे नहीं होता। वह छट्ठी सातवीं आदि अज्ञात इन्द्रियोंसे होता है, अथवा मनकी किसी असाधारण अवस्थासे होता है। जैनाचार्योंने जो इस विषयका खूब विस्तारसे वर्णन किया है तथा दर्जनों भेद प्रभेदों में जो उसे विभक्त किया है, सम्भव है वह कल्पना का विस्तार हो; परन्तु इसके मूलमें थोड़ी बहुत मात्रा में कुछ अनुभव अवश्य है। पशुओंके भूकम्पज्ञान सरीखे कुछ न कुछ असाधारण अनुभव इसके मूल हैं जिनपर इस विषयका कल्पनासे विस्तार किया गया है; और वह कल्पना अथसे इतितक असत्यही सिद्ध होगी, यह नहीं कहा जा सकता। इस विषयमें खोजकी जरूरत है। दुनियाँकी प्रत्येक खोज पहिले कल्पनाके रूपमें ही हमारे सामने आती है, पीछे उसके अनुसार क्रियात्मक प्रयोग किये जाते हैं। अवधिज्ञानके विषयमें भी यही बात कहना ठीक है। यह कहनाकि आजकल अवधिज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता. एक बेहूदी बात है। अगर अवधिज्ञान कोई असाधारण ज्ञान है तो वह आजभी प्राप्त हो सकता है और उसका वैज्ञानिक विवेचन ढ़ाईहजार वर्ष पहिलेके समयकी अपेक्षा अधिक हो सकता है।

मनःपर्यय ज्ञान।

अवधिज्ञानके समान मनःपर्ययज्ञान भी है। अवधिज्ञानकी अपेक्षा अगर इसमें कुछ विशेषताएँ हैं, तो ये हैं:—

१—यह सिर्फ मनकी हालतोंका ज्ञान है। अवधिज्ञानकी तरह यह प्रत्येक भौतिकज्ञानको नहीं जानता है।

२—मनःपर्ययज्ञान मुनियोंके ही होता है।

३—अवधिज्ञानका क्षेत्र सर्वलोक है, किन्तु इसका क्षेत्र सिर्फ मनुष्यलोक है।

४—अवधिज्ञानके पहिले अवधिदर्शन होता है परन्तु मनःपर्ययके पहिले मनःपर्ययदर्शन नहीं होता।

आकृति, चेष्टा आदिसे अनुमान लगाकर दूसरे के मानसिक भावोंका पता लगा लेना कठिन नहीं है। यह कार्य थोड़ी बहुत मात्रामें हरएक आदमी कर सकता है परन्तु इसे मनःपर्ययज्ञान नहीं कहते। मनः पर्ययज्ञानीतो सीधे मनका ज्ञान करता है। उसे आकृति वगैरहका विचार नहीं करना पड़ता।

मनःपर्ययका जो स्वरूप जैनशास्त्रोंमें बतलाया गया है, उसका वास्तविक रहस्य क्या है—यह चिंतनीय विषय है। अवधिज्ञानके विषयमें पाँच इन्द्रिय से भिन्न इन्द्रियका जैसा उल्लेख किया गया है, वैसा मनःपर्ययके विषयमें नहीं कहा जा सकता क्योंकि

इसमें एक बड़ी बाधा यह है कि मनःपर्यय दर्शनका उल्लेख नहीं मिलता। जो ज्ञान, ज्ञानपूर्वक होता है उसका दर्शन नहीं माना जाता। इसीसे श्रुतदर्शन नहीं माना गया। मनःपर्यय दर्शन नहीं माना गया, इसका कारण सिर्फ यही हो सकता है कि यह भी ज्ञानपूर्वक ज्ञान है।

शास्त्रोंमें ऐसा उल्लेखभी मिलता है कि मनःपर्ययज्ञानके पहिले ईहा[1] मतिज्ञान होता है। यद्यपि यह बात सिर्फ ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानके विषयमें कही गई है, तथापि इससे इतना तो सिद्ध होता है कि मनः पर्ययज्ञानके पहिले मतिज्ञानकी आवश्यकता होती है।

हाँ, यहाँ यह प्रश्न अवश्य उठता है कि जो ज्ञान ज्ञानपूर्वक होता है उसे प्रत्यक्ष कैसे कह सकते हैं? परन्तु प्रत्यक्ष शब्दका अर्थ 'स्पष्ट' है हम लोग जिस प्रकार दूसरेके मनकी बातोंको जानते हैं उससे अधिक सफाईके साथ मनःपर्ययज्ञानी मनकी बातों को जानता है इसीसे वह प्रत्यक्ष कहा जाता है। प्रत्यक्ष, यह आपेक्षिक शब्द है। एक ज्ञान अपेक्षा भेदसे प्रत्यक्ष और परोक्ष कहलाता है। अनुमानको हम श्रुतकी अपेक्षा प्रत्यक्ष और ऐन्द्रियकज्ञानकी अपेक्षा परोक्ष कह सकते हैं। फिरभी अनुमानको परोक्षके भेदोंमें शामिल करनेका कारण यह है कि हमारे सामने अनुमानसे भी स्पष्ट इन्द्रियज्ञान मौजूद है। अगर हमारे सामने कोई ऐसा ज्ञान होता जोकि मनःपर्ययकी अपेक्षा मानसिक भावोंको अधिक स्पष्टतासे जान सकता तो हम मनःपर्ययको भी परोक्ष कहते। मानसिक भावोंके ज्ञानकी अधिकसे अधिक स्पष्टता मनः पर्ययज्ञानमें पाई जाती है इसलिये उसे प्रत्यक्ष कहा है। मतलब यह कि कोई ज्ञान, ज्ञानपूर्वक हो या न हो इसपर उसकी प्रत्यक्षता परोक्षता निर्भर नहीं है किन्तु दूसरे ज्ञानोंकी अपेक्षा प्रत्यक्षता परोक्षता निर्भर है; इसलिये ईहामतिज्ञानपूर्वक होनेपर भी मनःपर्ययज्ञान प्रत्यक्ष कहा जाता है।

जब मनःपर्ययज्ञान ज्ञानपूर्वक सिद्ध होगया तब मनःपर्यय दर्शन माननेकी कोई जरूरत नहीं रहजाती इसीलिये वह जैनशास्त्रोंमें नहीं माना गया।

अवधिज्ञानके जैसे चिन्ह बताये जाते हैं मनःपर्ययके नहीं बताये जाते किन्तु मनः पर्ययज्ञान मनसे होता है यही बात कही[1] जाती है। इससे मालूम होता है कि मनः पर्ययज्ञान एक प्रकारका मानसिक ज्ञान है।

मनः पर्ययज्ञानके विषयमें एक बड़ा भारी प्रश्न यह है कि वह अवधिज्ञानसे ऊँचे दर्जेका तो कहा जाता है परन्तु न तो वह अवधिज्ञानकी तरह निर्मल होता है न उसका क्षेत्र विशाल है, न काल अधिक है, न द्रव्य अधिक है। इस तरह अवधिज्ञानसे अल्पशक्तिवाला होनेपर भी उसका महत्त्व अधिक कहा जाता है। अवधिज्ञानतो पशु-पक्षी नारकी आदि चारों गतियोंके प्राणियोंके माना जाता है परन्तु मनःपर्यय तो सिर्फ मुनियोंके माना जाता है और वहभी सच्चे मुनियोंके, उन्नतिशील मुनियोंके। मनःपर्यय ज्ञानको प्राप्त करनेकी यह शर्त मनःपर्यय ज्ञानके स्वरूप पर अद्भुत प्रकाश डालती है। इससे मालूम होता है कि मनःपर्ययज्ञान विशेष विचारणात्मक मानसिक ज्ञान है।

जिस प्रकार किसी मूर्ख और दुराचारी मनुष्य की आँख अच्छीहो तो वह खराब आँखवाले सदाचारी विद्वानकी अपेक्षा अधिक देखेगा किन्तु इसीसे उस मूर्ख दुराचारी मनुष्यका आसन ऊँचा नहीं हो जाता; ठीक यही बात अवधि और मनःपर्ययके विषयमें है। अवधिज्ञान आँखकी तरह भौतिक विषयको ग्रहण करनेवाला है, जबकि मनःपर्ययज्ञान आध्यात्मिक है; अथवा यों कहना चाहिये कि उसकी भौतिकता अवधिज्ञानकी अपेक्षा बहुत कम और आध्यात्मिकता अधिक है। मनःपर्ययज्ञानका स्थान अवधिज्ञानकी अपेक्षा जो उच्च है वह भौतिक विषय

१—परमणसिट्ठियमट्ठं ईहामदिणा उजुट्ठियं लहिय। पच्छा पच्चक्खेण य उजुमदिणा जाणदे णियमा। गोम्मटसार जीवकांड ४४८।

१—सव्वंग अंग संभव चिण्हादुप्पज्जदे जहा ओही। मणपज्जवं च दव्वमणादो उप्पज्जदे णियमा। गो. जी. ४४२।

की अपेक्षा से नहीं, किन्तु आध्यात्मिक विषयकी अपेक्षासे है।

वर्तमानमें मनःपर्ययज्ञानके विषयमें जो मान्यता प्रचलित है, उससे इसका स्पष्टीकरण नहीं होता। दूसरेके मनको जाननाही यदि मनः पर्ययहो तो यह काम अवधिज्ञान भी करता है। इसके लिये इतने बड़े संयमी तपस्वी और ऋद्धिधारी होनेकी कोई जरूरत नहीं है, जोकि मनः पर्ययकी प्राप्तिमें अनिवार्य शर्त बतलाई जाती है। इसलिये मनःपर्ययका विषय ऐसा होना चाहिये जिसका संयमके साथ अनिवार्य सम्बन्ध हो।

विचार करनेसे मालूम होता है कि मनःपर्ययज्ञान मानसभावोंके ज्ञानकोही कहते हैं किन्तु उसका मुख्य विषय दूसरेके मनोभावोंकी अपेक्षा अपनेही मनोभाव हैं।

प्रश्न—अपने मनोभावोंका ज्ञान तो हरएकको होता है। इसमें विशेषता क्या है, जिससे इसे मनःपर्यय कहा जाय ?

उत्तर—कलाईके ऊपर अँगुलियाँ जमाकर हर एक आदमी जान सकता है कि नाड़ी चल रही है परन्तु किस प्रकारकी नाड़ीगति किसरोगकी सूचना देती है इसका ठीक ठीक ज्ञान चतुर वैद्यही कर सकता है। यह परिज्ञान नाड़ीकी गतिका अनुभव करनेवाले रोगीको भी नहीं होता। भावोंके विषयमें भी यही बात है। अपनी समझसे कोईभी मनुष्य बुरा काम नहीं करता, फिरभी प्रायः प्रत्येक प्राणी सदा अगणित बुराइयाँ करताही रहता है। अगर वह मानता है कि यह कार्य बुरा है तोभी उसका असंयम, आवश्यकता आदिका बहाना निकालकर अपनेको भुलानेकी चेष्टा करता है। कभी कभी हम किसी घटनाका इस तरह वर्णन करते हैं, मानों विवरण सुनानेके सिवाय हमारा उस घटनासे कोई सम्बन्धही नहीं है; परन्तु उसके भीतर आत्मश्लाघा किस जगह छुपी बैठी है इसका हमें पताही नहीं लगता। अपने सूक्ष्मसे सूक्ष्म मानसिकभावोंका निरीक्षण कर सकना बहुत कठिन है। हाँ, कभी कभी हम किसीके उपदेशकी सूचनानुसार आत्मनिरीक्षणका नाटक कर सकते हैं, दंभको दूर हटाने का भी दंभ हो सकता है, परन्तु सच्चा आत्म निरीक्षण नहीं होता अत्यन्त उच्चश्रेणीके संयमके बिना सच्चा आत्मनिरीक्षण नहीं हो सकता। अथवा यों कहना चाहिये कि जो इस प्रकारका आत्मनिरीक्षण कर सकता है, वह उत्कृष्ट संयमी है, किसीभी वेषमें रहते हुए मुनि है।

जो मनुष्य इस प्रकार अपने मनोभावोंका निरीक्षण कर सकता है, उसे दूसरोंके ऐसेही मनोभावोंको समझनेमें कठिनता नहीं रहती। कौन मनुष्य किस तरह आत्मवञ्चना कर रहा है, वह इस बातको अच्छी तरह जानता है। आत्मवञ्चक की अपेक्षाभी उसका ज्ञान इतना स्पष्ट और दृढ़ होता है कि उसे प्रत्यक्ष कहा जाता है। ऐसा मनुष्य मनोविज्ञानका विद्वान् विशेष बुद्धिमान (शास्त्रीय शब्दोंमें बुद्धि ऋद्धिधारी) होता है।

प्रश्न—मनोविज्ञान और मनःपर्ययज्ञानमें क्या अन्तर है ?

उत्तर—अपने शरीरमें कौन कौन तत्त्व हैं और किस क्रियाका किस तत्त्वपर क्या प्रभाव पड़ता है; आदि बातोंका उत्तर एक रसायन शास्त्री chemist अच्छी तरह दे सकता है। फिरभी वह चतुरवैद्यका काम नहीं कर सकता। वैद्यका काम शरीरके तत्त्वोंका विश्लेषण नहीं, किन्तु स्वास्थ्य अस्वास्थ्यका विश्लेषण करना है। मनःपर्ययज्ञानी आत्महिताहितकी दृष्टि से मानसिक जगत्‌का विश्लेषण करता है। दूसरी बात यह है कि मनोविज्ञान एक शास्त्र है इसीसे वह परोक्ष है जबकि मनःपर्ययज्ञान अनुभवकी वह अवस्था है जो संयमी हुए बिना नहीं हो सकती। वह अनुभवात्मक होनेसे प्रत्यक्ष है। मनोविज्ञानका बड़ा से बड़ा पंडित बड़ासे बड़ा असंयमी हो सकता है किन्तु मनःपर्ययज्ञानी असंयमी नहीं हो सकता। इसलिये यह कहना चाहिये कि मनोविज्ञान

एक भौतिकविद्या है, जबकि मनःपर्ययज्ञान एक आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान या आत्माकी अशुद्ध परिणतियोंका सत्य प्रत्यक्ष है। हाँ, मनोविज्ञान मनःपर्ययके लिये बाहिरी भूमिकाका काम दे सकता है।

प्रश्न—थोड़ा बहुत आत्मनिरीक्षणतो सभी कर सकते हैं। खासकर जो सम्यग्दृष्टि हैं, सच्चे मुनि हैं वे आत्म-निरीक्षण करतेही हैं परन्तु इन सबको मनःपर्ययज्ञान नहीं माना जाता। किसी किसीको होता है, यह बात दूसरी है; परन्तु सबको क्यों न कहा जाय ?

उत्तर—भेदविज्ञान और मनोवृत्तियोंका स्पष्ट-ज्ञान, इनमें बहुत अन्तर है। सम्यग्दृष्टि जो आत्म-निरीक्षण करता है वह भेदविज्ञान है, जिससे वह जड़ पदार्थोंसे आत्माको भिन्न समझता है या भिन्न अनुभव करता है। फिरभी वह मनोवृत्तियोंकी वास्तविकताका साक्षात्कार नहीं कर सकता, क्योंकि अगर ऐसा करेतो वह असंयमी न रह सके। संयमी होजाने परभी मनोवृत्तियोंका साक्षात्कार अनिवार्य नहीं है। जैसे स्वास्थ्य-रक्षाके लिये पथ्यसे रहना एक बात है और वैद्य होजाना दूसरी बात। उसी प्रकार संयमी होना एक बात है और मनः पर्यय-ज्ञानी होना दूसरी बात है।

मनःपर्ययज्ञानी होनेके लिये संयमकी जो शर्त लगाई गई है उससे उसके वास्तविक स्वरूपका संकेत मिलता है। उपर्युक्त विवेचन उसी संकेतका फल है। उपर्युक्त विवेचनका पूरा मर्म अनुभवगम्य है।

अवधि और मनःपर्ययके भेद प्रभेदोंका बहुत ही विस्तृत वर्णन जैनशास्त्रोंमें पाया जाता है। उनमें परस्पर मतभेदभी बहुत हैं। परन्तु ज्ञानके प्रकरणमें अवधि और मनःपर्ययका स्थान इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, जिससे यहाँ उनकी विस्तारसे आलोचनाकी जाय। संक्षेपमें यहाँ इतनाही कहा जा सकता है कि उनके ऊपर अलौकिकताका जितना रंग चढ़ाया गया है वह कृत्रिम है और उनके वास्तविक रूपको छुपाने वाला है।

केवलज्ञान।

इसके विस्तृत वर्णनके लिये चौथा अध्याय लिखा गया है। यहाँ तो सिर्फ खानापूर्तिके लिये कुछ लिखा जाता है।

शुद्धात्मज्ञानकी पराकाष्ठा केवलज्ञान है। जीवन्मुक्त अवस्थामें जो आत्मानुभव होता है उसे केवलज्ञान कहते हैं। केवलज्ञानीको फिर कुछ जानने योग्य नहीं रहता, इसलिये उसे सर्वज्ञ भी कहते हैं।

श्रुतकेवली और केवलीमें सिर्फ इतना ही अन्तर है कि जिस बातको श्रुतकेवली शास्त्रसे जानता है, उसी बातको केवली अनुभवसे प्रत्यक्ष से जानता है। जैनशास्त्रोंमें निश्चयश्रुतकेवलीकी परिभाषा यही की जाती है कि जो शुद्धात्मा को जानता है वह निश्चय[1] श्रुतकेवली है। जब आत्मज्ञानसे श्रुतकेवली बनता है तब आत्माके ही प्रत्यक्ष से केवली होना चाहिये। जिसने आत्मा को जान लिया उसने सारा जिनशासन जान[2] लिया। इसलिये केवली को सर्वज्ञ कहते हैं।

उपनिषदोंमें जीवन्मुक्त अवस्थाका जो वर्णन है वह भी आत्माकी एक अविकृत निश्चल दशा को बताता है। आत्मज्ञानी[3] को ही जीवन्मुक्त

१—जोहि सुदेणभिगच्छादि अप्पाणमिणं तु केवलं सुद्धं। तं सुदकेवलि मिसिणोभणंति लोगप्पदीवयरा। समयप्राभृत ९। यो भावश्रुतरूपेण स्वसंवेदन ज्ञानेन शुद्धात्मानं जानाति स निश्चय श्रुतकेवली भवति यस्तुस्वशुद्धात्मानं नसंवेदयति न भावयति बहिर्विषयं द्रव्यश्रुतार्थं जानाति स व्यवहारश्रुतकेवली। तात्पर्य-वृत्तिः।

२—जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्ण मविसेसं। अपदेस सुत्तमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं। समयप्राभृत १७।

३—यस्मिन्काले स्वयात्मानं योगी जानाति केवलं।

कहता है। केवली, अर्हन्त, जीवन्मुक्त ये सब एक ही अवस्थाके जुदे जुदे नाम हैं।

त्रिकाल-त्रिलोकके सम्पूर्ण द्रव्यपर्यायोंके प्रत्यक्षको केवलज्ञान कहना अनुचित है।

ज्ञानकाण्डकी प्रत्येक बातकी चर्चा न करने पर भी यह अंश बहुत विस्तृत हो गया है। अच्छी तरह से दिग्निर्देश कराने के लिये यह आवश्यक था। फिर भी जैनन्यायसे सम्बन्ध रखने वाली चर्चा छोड़ देना पड़ी है। हो सका तो आगे विचार किया जायगा।

[पाँचवाँ अध्याय सम्पूर्ण।]
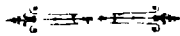
साहित्य परिचय।

वैधव्य—लेखक राय साहब कृष्णलालजी। प्रकाशक बाबू अक्षयसिंहजी डाँगी एम. ए एल. एल. बी, मन्त्री विधवाविवाहसहायक सभा अजमेर मू० =)

इस समय वैधव्यकी समस्या बड़ी जटिल है; विधवाविवाहके प्रचारके सिवाय यह हल नहीं हो सकती—इस विषयपर प्रकाश डालनेवाली यह छोटीसी नाटिका है। अच्छी है।

सत्यवादी—मुख्यसम्पादक बा० आ० पाटील स्त्रीविभाग सम्पादिका कु० मनोरमाबाई खाबड़े बी ए कोल्हापुर।

मराठी भाषाका यह प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र है। यह विशेषांक है जो दक्षिणमहाराष्ट्र जैन सभा अंक नाम से निकाला गया है। दक्षिण महाराष्ट्र सभा एक आदर्श संस्था है। इस अंकमें उसका इतिहास तथा वर्तमान परिस्थितिका परिचय दिया गया है। ४५ चित्र हैं, जोकि प्रायः सभाके नवीन प्राचीन कार्यकर्ताओंसे सम्बन्ध रखते हैं। सत्यवादी का यह प्रयत्न बहुत प्रशंसनीय है।

तरुण जैन—सम्पादक, चन्द्रकान्त बी. सूतरिया। यह जैनयूथ सिंडिकेटका गुजराती पाक्षिक मुखपत्र है जो अभी निकला है। पत्रका उद्देश्य जैनसमाजके अनुचित बन्धनोंको तोड़ कर उसे सुधारके मार्गपर आगे बढ़ाना है। पत्र को अच्छे अच्छे सज्जनोंका सहयोग है, इसलिये पूरी आशा है कि पत्र अच्छी उन्नति कर दिखायगा। हम सहयोगीका हार्दिक स्वागत करते हैं और आशा करते हैं कि सहयोगी क्रान्तिके मार्गमें अच्छी प्रगति करेगा।

पाहुड दोहा—सम्पादक, प्रोफेसर हीरालाल जैन एम० ए० एल एल० बी० किंग एड्वर्डकॉलेज अमरावती। प्रकाशक कारंजा जैन पब्लीकेशन सोसायटी कारंजा (बरार) मूल्य २॥)

मुनिरामसिंह विरचित अपभ्रंश भाषाका यह शिक्षाप्रद ग्रन्थ है। इसका सम्पादन आधुनिक पद्धतिसे बहुत सुन्दर हुआ है। ४६ पृष्ठ की विस्तृत भूमिकामें ग्रन्थके विषयमें गम्भीर विवेचन किया गया है। पद्योंका हिन्दी अनुवाद शब्दकोश तथा टिप्पणियोंके होने से यह सर्वोपयोगी होगया है। ऐसे ग्रन्थ यूनिवर्सिटीके कोर्समें रक्खे जाने लायक हैं। ग्रन्थकर्ताके विषयमें सचमुच एक जटिलसमस्या खड़ी होगई है। योगीन्द्रदेवकृत परमात्मप्रकाशके चालीस पद्य ज्योंके त्यों इस ग्रन्थमें पाये जाते हैं। यह एक विचित्र बात है सम्पादकजीका यह कहना कि "ग्रन्थकार ऐसे पुनरुक्ति दोषसे बचनेका सदा प्रयत्न करते हैं, दोसौबाईस दोहोंमें कोई चालीस दोहे अपने दूसरे ग्रन्थके प्रायः जैसेके तैसे रखना कवियोंमें सर्वथा अपूर्व और असाधारण है," विचारणीय है। पुराने समयमें एक ग्रन्थकार दूसरे ग्रन्थोंके श्लोकोंको भी हड़पते रहे हैं; साथही अपने

तस्मात्कालात्समारभ्य जीवन्मुक्तो भवेदसौ। वराहोपनिषत् २-४२। चेतसो यदकर्तृत्वं तत्समाधानमीरितम्। तदेवकेवलीभावं सा शुभानिर्वृतिः परा। महोपनिषत् ४-७।

ग्रंथके सैकड़ों श्लोक अपनी दूसरी कृतिमें रखते रहे हैं। 'आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्य' आदि श्लोक समन्तभद्र और सिद्धसेन सरीखे उद्भट आचार्योंकी कृतियोंमें पाये जाते हैं। पञ्चाध्यायीके तीन चारसौ श्लोक लाटी संहितामें पाये जाते हैं और ये दोनों राजमल्लजीकी रचनाएँ हैं। साधारणतः तो यही कहा जासकता है कि एक समर्थ लेखक अपनेही ग्रंथके पद्योंको अपने दूसरे ग्रन्थमें उद्धृत करेगा—वह चोरी न करेगा। परन्तु यहभी असंभव नहीं है। पुनरुक्तिसे बचनेकी बात व्यर्थ है। एकही ग्रंथमें कभी कभी प्रकरणके अनुसार एकही बात दो जगह कहना पड़ती है। फिर दो ग्रंथोंमें कहना पड़े, इसमें क्या आश्चर्य है? योगीन्द्र देव और रामसिंह दोनों एकही व्यक्ति तो नहीं है—यह प्रश्न विचारणीय अवश्य मालूम होता है। अभी इसके सिवाय कुछ नहीं कहा जासकता। ग्रंथकी छपाई आदि बहुत सुन्दर है, सम्पादन खूब परिश्रमके साथ हुआ है। ग्रंथ संग्रहणीय है।

लोहड़साजन निर्णय—प्रकाशक पं० कन्हैयालाल जैन शास्त्री किशनगढ़, मार्फत अजमेर। मूल्य ।)।

खंडेलवाल जातिमें लोहड़साजन और बड़साजन ऐसे दो तड़े हैं, परन्तु भाई खुशालचंदजी जो कि आज मुनिवेषमें घूमरहे हैं दोनोंमें फूटकी अग्नि फैलानेका धंधा लेबैठे हैं। वे लोहड़साजनोंको दस्सा कहते हैं, उनसे खानपान आदि सम्बन्ध न रखनेका दुराग्रह करते हैं। परन्तु इन दोनों तड़ोंमें सैकड़ोंकी संख्यामें परस्पर बेटी व्यवहार तक हुए हैं और प्रतिष्ठितसे प्रतिष्ठित लोग इसमें शामिल हैं। इस विषय पर प्रकाश डालनेके लिये यह पुस्तक प्रकाशित की गई है। इसमें दोनोंकी एकता सिद्ध करने वाले सैकड़ों पत्र हैं, जिनमें अच्छी अच्छी पंचायतोंके भी पत्र हैं। हम आशा करते हैं कि इस पुस्तकके प्रकाशनसे यह झगड़ा शान्त होजायगा, और मुनिवेषी भाई खुशालचंदजी अपना दुराग्रह दूर करके अपनी भूल का पश्चात्ताप करेंगे।

निम्नलिखित दो ट्रेक्ट भारतवर्षीय जैनयुवकसंघकी स्वतंत्र सीरीजके दूसरे और तीसरे ट्रेक्ट हैं। प्रत्येक का मूल्य एक आना है। प्रकाशक बाबू कुलवंत राय जैन ओवरसियर हरदा सी० पी० हैं।

धर्मप्रभावना—इसमें मुख्यतः पं० दीपचन्दजी वर्णीका एक लेख है, जिसमें बताया गया है कि आजकल प्रभावनाके नाम पर कैसे निरर्थक कार्य होते हैं और वास्तवमें क्या करनेकी ज़रूरत है।

परिवर्तन—यह प्रकाशकजीका ही लेख है, जिसमें समाजकी वर्तमान दुर्दशाका चित्र खींचा गया है।

मेरा इन्दौर प्रवास

करीब साढ़ेसात वर्ष पहिले विजातीयविवाह—आन्दोलन चलानेके अपराधमें मुझे इन्दौरके जैन महाविद्यालयसे सम्बन्ध तोड़ना पड़ा था। अधिकारी, विद्यार्थी, सहयोगी अध्यापक तथा इन्दौरका शिक्षितवर्ग नहीं चाहता था कि मैं विद्यालयसे सम्बन्ध तोड़ूँ, परन्तु विवश होकर तोड़ना पड़ा। विरोधी मित्रोंका षड्यन्त्र सफल हुआ, किन्तु उस समय मुझे मालूम नहीं था कि यह भावी भाग्योदयकी भूमिका मात्र है। इसके बाद जो कुछ मैं कर सका उसमें विद्यालयके बन्धनसे छूटने पर प्राप्त हुए स्वतन्त्र वातावरणका बहुत हाथ है।

तबसे अबतक समाजके वातावरणमें बहुत अंतर होगया है। उसका असर इन्दौर पर भी पड़ा है। अब तो विजातीयविवाहके कट्टर पक्षपाती पं० देवकीनन्दनजी पं० तनसुखरामजी आदि वहाँ खूब आदर प्राप्त करते हैं। पं० तनसुखरामजी तो विद्यालयके प्रधानाध्यापक हैं। इस प्रकार कोशिश करने पर भी सामाजिक वातावरणका असर रोका नहीं जासका है। इस प्रकार समझदारोंने समझ लिया है कि दमनचक्रसे सत्यकी हत्या नहीं की जासकती।

विजातीयविवाह—आन्दोलनकी विजय होजाने पर भी मैं तो समाजके लिये ज्योंका त्यों बना हुआ हूँ। क्योंकि एक आन्दोलनकी विजय या अर्धविजयके बाद

मैं अपने लक्ष्यपर पहुँचनेके लिये आगे बढ़ता रहता हूँ। आज मेरे लिये विजातीय विवाहका प्रश्न साधारण प्रश्न है। अबतो समाजसुधारके विधवाविवाह, अछूतोद्धार आदि आन्दोलनभी कुछ कमही मालूम होते हैं। अबतो समाजके साथ धर्म या सम्प्रदायमें आमूल क्रान्तिका प्रयत्न कर रहाहूँ। इस प्रकार विजातीयविवाह—आन्दोलनके विजयी होने पर भी मैं तो समाजके लिये ज्यों का त्यों भयंकर तथा निन्दास्तुतिका विषय बना हुआ हूँ।

महावीर विद्यालय (बम्बई) के न्यायतीर्थके विद्यार्थियोंको लेकर जब मैं इन्दौर पहुँचा तो वहाँ मालूम हुआ कि लेखमालाने यहाँभी खूब शोर मचा रक्खा है। मेरे तथा लेखमालाके विषयमें "मुंडेमुंडे मतिर्भिन्ना" है। सबसे अधिक चर्चा सर्वज्ञके विषयमेंथी। हमारे हृदयोंपर सर्वज्ञके विषयमें इतने ज़बर्दस्त संस्कार हैं कि सर्वज्ञाभाव का नाम लेतेही हृदय काँपने लगता है। जितने दिन मैं इन्दौर रहा, अनेकबार इसी एक समस्याका समाधान मुझे करना पड़ा। बारह बजे रात तक इस विषय में चर्चाएँ होतीथीं। दिगम्बर समाजके अतिरिक्त श्वेताम्बर समाजके भी सज्जन आतेथे। चर्चा सदा तत्त्वचर्चाके रूप में ही होतीथी—जय-विजयका भाव बिलकुल न आताथा। चर्चाका इतना फल ज़रूर होताथा कि मेरे जो विचार लोगोंको अभीतक नास्तिकतासे भरे हुए तथा बेहूदे मालूम होतेथे, वे युक्ति-युक्त मालूम होने लगतेथे। एकदिन नसियाँ की पण्डित मण्डली तथा विद्यार्थि-मण्डलके साथभी क़रीब तीनघंटे तक खूबही सप्रेम चर्चा हुई, जिससे सभीने एक दूसरेके विचार समझनेकी कोशिशकी। ऐसी वीतराग चर्चाएँ बहुत लाभप्रद होती हैं।

एकदिन मध्यभारत-हिन्दी-साहित्यसमितिके व्याख्यान-भवनमें मेरा 'मानव-धर्म' पर व्याख्यान रक्खा गया। व्याख्यान-भवन नगरके बाहर तुकूगंज में है; फिर भी शिक्षितवर्ग इतनी अधिक संख्यामें आया कि कोईभी कुर्सी खाली न बची—बहुतसे सज्जनोंको गैलरीमें बैठना पड़ा। इन्दौर-स्टेटके सर्जन डा० सरयूप्रसादजी अध्यक्ष थे। बिना किसी संकोचके मैंने अपने विचार विनोदपूर्ण भाषामें रक्खे। धर्मकी आवश्यकता क्यों हुई, वह सम्प्रदायोंके रूपमें कैसे परिणत हुआ, धर्मशास्त्रमें सब शास्त्र क्यों आये, सर्वज्ञ कैसे बना, स्वर्ग और नर्ककी चर्चा दार्शनिक क्षेत्रसे हटकर धार्मिकक्षेत्रमें कैसी विचित्र बनगई, सम्प्रदाय आपसमें कैसे लड़े, उनसे कितनी हानि हुई, आदि बातें मैंने बिलकुल खुले दिलसे कहीं। और आश्चर्य है कि जनताने इनबातोंको सुनकर बीच बीचमें तथा बाद भी खूब प्रसन्नता प्रकट की। डेरे पर आकरभी अनेक महानुभाव रात्रिके बारहबजे तक चर्चा करते रहे।

दूसरे दिन १½ बजेकी गाड़ीसे बम्बई आने वाला था। परन्तु प्रोफ़ेसर श्री श्रीनिवासजी एम. ए., बाबू सुखचंदजी हैडमास्टर आदिके अनुरोधसे तिलोकचंद जैन हाईस्कूलमें व्याख्यानके लिये रुकना पड़ा। दुपहरको ३½ बजेसे व्याख्यान हुआ। बादमें विद्यार्थियोंने विविध प्रश्न किये। व्याख्यानके बाद १½ घंटे तक प्रश्नोंका उत्तरही दिया। प्रश्न [illegible]नहीं अच्छेथे; विद्यार्थियोंकी विचारकताके सूचक थे। [illegible]ोंके कुछ नमूने ये हैं—

१—अंग्रेज़ीमें शिक्षणदेना क्या उचित है?

२—जैनशास्त्रोंमें कृष्णको चोर बताया है, क्या यह उचित है?

३—साम्प्रदायिक शिक्षासे क्या कुछ लाभ है?

४—बालक बालिकाओंको अलग अलग शिक्षा देना चाहिये या एकसाथ?

५—जैनधर्म अगर सब धर्मोंका समन्वय करता है तो इसका मतलब यह हुआ कि दुनियाँ भरकी [illegible]दगी जैनधर्ममें है।

इसके अतिरिक्त जातिपाँतिके विषयमें तथा अन्य अनेक सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक प्रश्न किये गये थे। और जहाँ तक मैं समझता हूँ, तुरन्तही दियेगये मेरे उत्तरोंसे उन्हें संतोष होताथा। थोड़ेसे प्रश्न जो मुझे याद रहे, ऊपर लिख दिये हैं। इनका संक्षिप्त उत्तरभी यहाँ लिखता हूँ। सब प्रश्न याद नहीं हैं।

१—चाहे अंग्रेज़ी हो या संस्कृत, किसीभी ऐसी भाषा द्वारा शिक्षा देना अनुचित है जो हमारे बोलचाल की भाषा नहीं है। अंग्रेज़ी विचारोंका मैं विरोधी नहीं हूँ परन्तु अंग्रेज़ीमाध्यम हमारी गुलामीकी निशानी है। जब तक यह गुलामी है तब तक आपद्धर्म समझकर हमें इससे काम लेना चाहिये। परन्तु इसे अभिमानकी चीज़ न समझना चाहिये।

२—जैनशास्त्रोंमें कृष्णको चोर नहीं किन्तु शलाका पुरुष माना है। यह करतूत भागवतकी है। कृष्णको

नरकगामी बताया है, परन्तु इसलिये नहीं कि उन्हें दूसरों ने ईश्वर माना है किन्तु इसलिये कि उनका जीवन अंतमें त्याग वैराग्यमें परिणत नहीं हुआ। रामको जैनशास्त्र मुक्तिगामी मानते हैं। राम और कृष्ण दोनों परमाराध्य होने परभी एकको मोक्षगामी और दूसरेको नरकगामी माननेसे साम्प्रदायिक द्वेषकी शंका दूर होजाती है। सिर्फ़ पिछले आचार्योंका दार्शनिक मतभेद ही रहजाता है।

३—धर्मरूपी बाज़ारमें एक एक सम्प्रदाय एक एक दूकान है। जब हम धर्मधन ख़रीदने जायेंगे तब हमें किसी न किसी दूकान पर जानाही पड़ेगा। अगर वर्तमानकी दूकानें ठीक नहीं हैं तो हम कोई अच्छी नई दूकान खुलवायेंगे। हमें सम्प्रदायसे दूर भागनेकी इतनी ज़रूरत नहीं है किन्तु सम्प्रदायमें जो यह बीमारी है कि वे दूसरे सम्प्रदायके विरोधके लिये सदा कुचेष्टा करते हैं, यह बुरी बात है। इस बुराईको हटाकर सम्प्रदायकी शिक्षा लेनेमें कोई हर्ज़ नहीं है।

४—बालक बालिकाओंको छोटी अवस्थामें साथ साथ शिक्षा देनेमें कोई हर्ज़ नहीं है। ज़रा बड़ी अवस्थामें कुछ बातें विचारणीय हैं। (क) इस अवस्थामें ऐसा प्रेम पैदा होसकता है जो आगे वैवाहिक जीवनकी भूमिकाका काम दे; ऐसी हालतमें जाति पाँतिके पचड़े इस प्रेमको तोड़नेकी कोशिश करेंगे तो दोनोंका जीवन एक दुःखान्त नाटक होगा। इसलिये जब तक ये पचड़े हट न जायँ तबतक संयुक्तशिक्षण चिन्तनीय है। (ख) अभी हमारे यहाँका वातावरण बहुत दूषित है। स्त्रीजातिके विषयमें हमारे शिक्षितवर्गमें तथा विद्यार्थिवर्गमें भी सन्मान नहीं है। पहिले इस कलुषित वातावरणको दूर करना चाहिये और संयुक्तशिक्षणके मार्गमें बहुत धीरे धीरे बढ़ना चाहिये। (ग) स्त्री और पुरुषके कार्यक्षेत्रमें थोड़ा बहुत अन्तर है इसलिये उनके शिक्षणमें भी थोड़ा बहुत अन्तर होना चाहिये। मतलब यह कि मैं संयुक्तशिक्षाका विरोधी नहीं हूँ किन्तु उसके मार्गमें जो कठिनाइयाँ हैं, उनकी उपेक्षा नहीं कर सकता।

५—सब धर्मोंका समन्वय करनेसे अगर जैनधर्म गंदगीका समूह कहाजाय तो दूसरे धर्मोंको गंदगी मानना होगा। परन्तु धर्मोंको गंदगी मानना ठीक नहीं। हाँ अधूरापन एक प्रकारकी गंदगी ही है। जैसे, हाथ पैर आदि अनेक अंगोंके योग्य सम्मेलनसे सुन्दर शरीर बना हुआ है। परन्तु किसी शरीरके यदि टुकड़े टुकड़े कर दिये जाँयतो वहाँ गंदगीके सिवाय क्या रह जायगा? इसी प्रकार धर्मरूपी शरीरके जुदे जुदे टुकड़े गंदगी हैं परन्तु उनका योग्य समन्वय सुन्दर और सजीव शरीर है।

और भी सुन्दर सुन्दर प्रश्नोत्तर हुएथे। खेद है, इस समय उनका स्मरण नहीं होरहा है।

एकदिन तुकोगंज भी गया था। मुझे दर्शनार्थ आया हुआ जानकर एक त्यागीजीको बड़ा आश्चर्य हुआ। जब मैं सर्वज्ञ नहीं मानता, अर्हन्तके बाहिरी अनेक अतिशयों पर विश्वास नहीं करता, तब जिनदर्शन क्यों करता हूँ—सम्भवतः यही उनके आश्चर्यका कारण था, जोकि उनकी विनीत भावभंगीसे प्रकट होरहा था। निःस्वार्थ समाजसेवा, आत्मज्ञान और सर्वभूतसमभावके कारण अर्हन्त वन्दनीय हैं, यह बात बहुतसे लोगोंको समझमें नहीं आती, या आती है तो मेरे विषयमें वे इसकी कल्पना नहीं कर सकते। वर्तमानके दूषित वातावरणमें ऐसा भ्रम होना स्वाभाविक है।

जबमैं पहुँचा तब भूरीबाईजी शास्त्र पढ़ रही थीं। श्री पन्नालालजी गोधा तथा अन्य त्यागीगण शास्त्र सुन रहेथे। चर्चाभी होती जातीथी। मुझसेभी कुछ शास्त्रीय शंकाएँ कीगई, जिनके उत्तर दिये गये। शास्त्र समाप्त होने पर भव्याभव्यकी चर्चा छिड़पड़ी। मैंने कहा कि ये भेद मैं नहीं मानता। जैनजगतमें मैं विस्तारसे लिख चुकाहूँ उसमेंसे एक युक्ति मैंने यहाँभी कही; परन्तु मुझसे यही कहा गया कि 'हम उसी युक्तिको मानते हैं जो शास्त्रके अनुकूल हो।' परन्तु जब मैंने यह कहा कि—'जहाँ शास्त्र-अशास्त्रका निर्णय करनाहो, शास्त्रकी परिभाषा (अदृष्टेविरोधकम्) अज़माना हो वहाँ क्या किया जाय? कोई शास्त्र अगर युक्तिविरुद्धहो इसलिये समन्तभद्रके शब्दोंमें कुशास्त्र ठहरानेका हमें हक़ है; उस समय अगर शास्त्रकी दुहाई देकर युक्तिको दूरकर दिया जाय तब दुनियाँका प्रत्येक कुशास्त्र बड़े मज़ेसे अपनी विजयवैजयन्ती उड़ायेगा। मैं नहीं समझता कि वैज्ञानिक जैनधर्म इतनी कमज़ोर नींव पर खड़ा हुआ है।' परन्तु मेरे इस वक्तव्यका कुछ उत्तर न था। इसका कारण यह है कि बहुतसे स्वाध्याय प्रेमी जैनशास्त्रोंकी सूक्ष्म बातोंका स्वाध्याय और तत्त्वचर्चा

करते करते बहुत अच्छी तरहसे समझने लगते हैं, परन्तु तार्किकशैलीसे उसका विचार नहीं कर सकते। यह त्रुटि मैंने यहाँ भी देखी। प्रचारकी दृष्टिसे यह बड़ी भारी त्रुटि है। फिरभी मुझे इस बातसे बड़ी प्रसन्नता हुई कि यहाँ का त्यागीमंडल और पं० भूरीबाईजी स्वाध्याय और तत्त्व-चर्चामें बहुत शान्तिसे जीवनयापन करती हैं। जैनसमाज के दूसरे त्यागी मंडलोंको देखते हुए यह बहुत कुछ संतोषकी बात कही जासकती है।

हाईस्कूल के व्याख्यान के बाद जैन महाविद्यालय के व्याख्यानभवनमें भी व्याख्यान देनेका आग्रह हुआ था। परन्तु एक गाड़ी मैं छोड़ चुका था। अब दूसरी गाड़ी छोड़नेकी गुंजाइश न थी। दूसरी बात यह है कि चार पाँच दिनतक तोस्वीके विद्वन्मण्डल तथा विद्यार्थी मंडल से इतनी अधिक चर्चा होचुकी थी कि अब उन्हीं के लिये व्याख्यान की जरूरत नहीं मालूम हुई।

इन्दौरमें मेरे सब नये पुराने मित्रोंने प्रेम और आदरपूर्ण व्यवहार किया। पं० बुधमलजी पाटनीने तो कुछ अस्वस्थ होतेहुए भी अहर्निश सेवाकी। करीब १२ वर्ष पहिले आपने अपना विवाह एक जैनेतर कन्या से किया था। तबसे खंडेलवाल जातिने अपना भोजन सम्बन्ध तोड़दिया है; परन्तु तबसे आप बराबर जैनधर्म पालन करतेहुए जैन जीवन बितारहे हैं। आपकी पत्नी साहिबा भी आपका हरतरह सहयोग करती हैं। आप दोनोंको जैनधर्मकी अच्छी जानकारी है। खंडेलवाल पञ्चायत अथवा अन्य जाति की पञ्चायतोंको आपके साथ खानपानका व्यवहार करनाचाहिये। ऐसे जैनधर्मीके साथ भी अगर इतना वात्सल्य न दिखलाया जायगा तो हम जैनधर्मकी उदारता का नाश तो करेंगे ही साथही जैन-धर्म के प्रचारके लियेभी बिलकुल अयोग्य साबित होंगे। इन्दौरमें आकर मैंने आपहीके यहाँ भोजन किया और इसे अपना कर्तव्य समझा। श्रीमान बाबू सूरजमलजी यहाँके सुप्रसिद्ध कार्यकर्ता हैं। आप उदार और निस्वार्थ समाजसेवी हैं। श्रीमान बाबू जौहरीलालजी मित्तल राज्य के उच्च पदाधिकारी तथा जैनयुवकोंके नेता हैं। आप लोगोंको इस दिशामें कुछ अधिक उद्योग करना चाहिये। यद्यपि आजभी आप लोगोंकी समाजसेवाएँ कुछ कम नहीं हैं फिर भी इस दिशामें बहुत कम काम हुआ है।

ता० ९ को चल कर खँडवा आया। शहरमें गया तो बहुत से बन्धुओंने व्याख्यानके लिये रोकलिया। यहाँ भी दिनमें कुछ बन्धु आये जोकि धार्मिक और सामाजिकविषयों पर चर्चा तथा मेरे विचारोंको जानने का प्रयत्न करते रहे। शामको 'कर्मवीर' सम्पादक पं० माखनलालजी चतुर्वेदीकी अध्यक्षतामें चौकके मैदानमें आम सभा हुई। यहाँभी मैंने धर्मके विषयमें तथा जाति-पाँतिविनाश अछूतोद्धार आदिके विषयमें स्पष्टविचार प्रकट किये। जैन जनताभी पर्याप्त संख्यामें उपस्थित थी। यहाँकी जैनजनता में यह विशेषता है कि वह हरएक तरहके विद्वानों के व्याख्यान बड़ी रुचिके साथ सुनती है। नये विचार सुनने से घृणाकरना या दलबन्दी करना इसे पसन्द नहीं है। जब मैं इन्दौरमें वास करता था उनदिनों इस नगरमें मेरे अनेकबार आम व्याख्यान हुए थे। आजभी यहाँके लोगोंका प्रेम वैसा ही बना हुआ है। इसप्रकार इस छोटेसे प्रवाससे विचारोंके आदान प्रदान का खूब अवसर मिला।

भूकम्प।

१५ जनवरीका भूकम्प—जिसने बिहार और नैपालको तबाह करदिया, तथा सारे भारतको दहला दिया—आज भी हमारे हृदयोंको भीषण स्वप्नकी तरह कँपारहा है। मिनिटोंमें ही नहीं सैकिन्डोंमें हजारों आदमी स्वाहा होगये, लाखों भिखारी होगये, आकाशका चुंबन करनेवाले प्रासाद राखके ढेर होगये। दुर्भाग्यसे जिनने उसे देखा है, उनके हृदयकी अवस्थातो वही जानें; परन्तु जिनने सुना है, उनके अगर हृदय है तो वह आजभी कंपित होरहा होगा। प्रकृतिके इस रुद्र रूपको देखकर मानना पड़ता है कि मनुष्यकी शक्ति प्रकृतिके सामने कुछ नहीं है। वह मनही मन अपनेको विश्वका राजा समझता है। वह कल्पनाओं द्वारा अपनेमें से कुछ व्यक्तिओंको चुनकर भगवान बनाता है, और ऐसी कथाएँ बनाता है मानो सारा जगत उसीके इशारे पर चलता है। परन्तु प्रकृति तो इन मनुष्योंकी बाललीला देखकर

मानो मुसकराती रहती है। जब उसकी एक अँगुली भी हिलजाती है तब मनुष्य किंकर्त्तव्य विमूढ होकर इधर उधर भागने लगता है।

भूकम्प क्यों होता है, इसके विषयमें वैज्ञानिकों के अनेक मत हैं। भूकम्पके बाह्य कारणभी अनेक हैं। धर्मशास्त्रोंने इस विषयके निर्णयके लियेभी फिजूल टांग अड़ाई है। किसीने शेषनागका फणकंपन इसका कारण माना है; किसीने देवताओंका कोप। जैनयोंने भी देवी देवताओंपर यह काम छोड़दिया है। प्रायः सभी धर्मोंमें सर्वज्ञ थे, परन्तु इसका ठीक उत्तर कोई न देसके।

इन्दौरके प्रवासमें मुझसे कई जगह यह प्रश्न पूछा गया कि भूकम्पके विषयमें जैन शास्त्रोंका क्या कहना है? मैंने कहा—भाई जैनधर्म एक धर्म है; उससे धर्मकी बात पूछो तो वह उत्तर देगा। उससे पुरातत्त्व या या भूगर्भविद्या की आशा क्यों करते हो? जैनधर्म ऐसी बातोंमें टांग नहीं अड़ाता। अगर किसी धर्मगुरुने धर्मशास्त्रमें अन्य शास्त्रोंका उल्लेख किया है तो उससे इतनाही समझना चाहिये कि उसने उस समयके श्रोताओंको धर्म समझानेके लिये उस समयकी लोकप्रचलित मान्यताओंका उपयोग किया है। एक प्रमाणशून्य सर्वज्ञको मान कर अन्धविश्वासके दलदलमें न फँसना चाहिये तथा ज्ञानकी उन्नतिका निरोध न करना चाहिये। भूगर्भ शास्त्रके अनुसार इसकी खोज करना चाहिये। जो सत्य सिद्ध हो उसे जैनधर्म समझो, क्योंकि जैनधर्म एक वैज्ञानिक रुचि वाला धर्म है, इसलिये कोई भी सत्य हो, वह निःसंकोच उसे अपनाता है।

भूगर्भ, शास्त्रका विद्यार्थी जानता है कि यह पृथ्वी एक समय अग्निसे भी अधिक गर्म थी। धीरे धीरे इसकी ऊपरी तह ठंडी होने लगी, जिसपर प्राणी पैदा हुए, परन्तु भीतर तो वह अभीभी ज्वालामालिनी है। अभी भी वह ज्वालामुखी पर्वतों या छिद्रोंसे तप्तरस उगला करती है। जब ठंडका दबाव पड़नेसे कोई टुकड़ा टूटता है अथवा अन्य किसी कारण से भीतर भाप पैदा होती है तब पृथ्वीकी ऊपरी तह टूटने या फटने लगती है। जिसप्रकार पानीमें लहरें पैदा होती हैं उसी प्रकार पृथ्वीमें लहरें पैदा होती हैं, और पृथ्वी की एक एक लहर मीलों लम्बी होती है। एक ठोस चीज़ जब पानीकी तरह लहराने लगे तब उसकी भयंकरता अतुल होजाती है। जब ये लहरें ऊर्ध्वमुख होती हैं तब बड़े बड़े अभ्रंकष प्रासाद गेंदकी तरह आकाशमें उछल पड़ते हैं और कुछही सैकिन्डोंमें भस्मराशि बनजाते हैं। जब तिर्यङ्मुख लहरें होती हैं तब दायें बायें हिलकर भवन गिर पड़ते हैं। भूकम्पसे कहीं कहीं पृथ्वी फट पड़ती है और मीलों फटजाती है जिसकी दरारोंमें हज़ारों आदमी समाजाते हैं। पानी, कीचड़ और धूलके फव्वारे छूटने लगते हैं। कहीं तालाब बनजाते हैं, कहीं छिपजाते हैं। ऊँची ज़मीन नीची और नीची ऊँची होजाती है। कभीकभी तो समुद्रमें भी ये उपद्रव होते हैं। समुद्रमें कोई पृथ्वी का नया टुकड़ा दिखाई देने लगता है और उसमेंसे भाप और लावा निकलने लगता है जिसका प्रवाह मीलों लम्बा होता है। लाखों मनुष्योंको समाधिस्थ करदेना और बड़ेबड़े नगरोंको भूगर्भस्थ बना देना भूकम्पके लिये कोई अँगुलीका खेल है। इससे बचनेका कोई उपाय नहीं है।

भूकम्प होनेके पहिले भूगर्भमें खूब आलोड़न होता है और कभीकभी उसका शब्दभी सुनाई पड़ता है। आवाज़ जुदी जुदी होती है। पशुओंको उसका ज्ञान बहुत पहिले होजाता है। इसका कारण उनकी इन्द्रियोंकी तीव्रशक्ति है, या सम्भव है कोई नई इन्द्रिय हो। भूकम्प होनेके पहिले ऐसी चेतावनी बहुत कम मिलती है जिससे मनुष्य आत्मरक्षा कर सके। १९२३ में जापानमें जो भयंकर भूकम्प हुआ था उस समय यन्त्रोंने कुछभी सहायता नहीं पहुँचाई थी। बिहारमें भी यही हुआ। दूसरी बात यह है कि यन्त्र कुछ सूचना दें भी तो मनुष्य भागकर कहाँ जाय? क्योंकि लाखों वर्गमीलमें भूकम्पका प्रभाव

पड़ता है। और उसका केन्द्र कहाँ है इसका शीघ्र पता नहीं लगसकता। यह एक ऐसी आपत्ति है जिसका अभीतक कोई इलाज नहीं होपाया है।

बिहारमें जो होगया, सो होगया। हजारों आदमी स्वाहा होगये सो होगये। परन्तु जो बचे हैं वे मृतकों से भी अधिक दयनीय हैं। घर द्वार नष्ट होगया है, सम्पत्ति स्वाहा होगई है कुटुम्बी मरगये हैं, खानेको नहीं है, रहनेको नहीं है, तन ढँकनेको नहीं है और कोढ़में खाजतो यह है कि कोई आँसू पोंछनेको नहीं है! इतने परभी भविष्यके लिये निश्चिन्तता नहीं है। प्रायः प्रतिदिन छोटामोटा भूकम्प अभीभी होता रहता है समाचार है कि किसीकिसी भागमें गंधककी गन्ध फैलरही है, जैसे पृथ्वीके भीतर गंधक जल रहा हो इससे सम्भावना है कि उत्तर बिहारमें कहीं ज्वालामुखी निकल पड़े। अगर यह हुवा तो कह नहीं सकते कि बिहारकी क्या दशा होगी! उस विराट अग्निकुंडमें कितने स्वाहा होंगे! और उसके आसपास लाखों वर्गमील जगहमें उसका क्या असर होगा!

सौभाग्यसे जो इस विपत्तिके प्रभावसे मुक्त हैं, उन्हें हरतरह सहायता करना चाहिये और इसमें जातिपाँति और सम्प्रदायभेदको हटाकर मनुष्य ब्रह्म की उपासना करना चाहिये। बिहारकी दुर्दशा देख कर या सुनकर आँखोंसे आँसू टपकते हैं। पर, उस समय तो वे आँसू खूनके बनजाते हैं जब हम देखते हैं कि इस घोर संकटके समयमें भी साम्प्रदायिकताका विष उगला जारहा है। दिल्लीके कुछ मुसलमानोंने मुसलमानोंकी सहायताके लियेही चन्दा दिया। और ऐसेभी कुछ समाचार मिले हैं कि बिहारमें कुछ मारवाड़ी मारवाड़ियोंकी, बिहारी बिहारियोंकी, बंगाली बंगालियोंकी ही सहायता करना चाहते हैं! हमारी यह क्षुद्रता हमारे देशके लिये लज्जाजनक है। दुर्भाग्य यह है कि हमारी इस मूढ़ मनोवृत्तिका विदेशी लोग राजनैतिक उपयोग भी करने लगे हैं। ब्रिटिश रेडक्रॉस सोसाइटीने कुछ सहायता भेजी है, किन्तु वह सिर्फ मुसलमानोंके लिये है। मुसलमानोंको फुसलानेकी इस जघन्य मनोवृत्तिकी जितनी निन्दा कीजाय थोड़ी है। भारत, आज नहीं तो कल निकट भविष्य में, जाति और सम्प्रदायके पचड़ोंसे मुक्त होगा ही परन्तु विदेशियोंकी ये काली करतूतें कभी न भूलेंगी प्रसन्नताकी बात इतनी ही है कि आजभी भारतमें तथा भारतके बाहर मनुष्यब्रह्मोपासकोंकी बहुत संख्या है। इसीलिये राजेन्द्र बाबूके फंडमें लाखों रुपया पहुँचा है जोकि जातिपाँति आदिके विचारसे रहित सबके काम आयगा। इधर फ्रांस और अमेरिकासे भी पचास हजारसेभी अधिक रुपयोंकी मदद आई है; और आ रही है। यह सब किसीखास वर्गके लिये नहीं है, किन्तु सबके लिये है। जिस दिन सभी देशोंके सभी मनुष्य 'उदार चरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्' का पाठ पढ़कर मनुष्यमात्रको अपना बन्धु समझने लगेंगे—उसदिन प्राकृतिक कष्ट बन्द होजायँगे, यह बात तो नहीं है, परन्तु उस कष्टमेंभी जब पीड़ित मनुष्यको यह आशा होगीकि संरक्षा के लिये पाँसे दो अरब मनुष्य हाथ फैलाए हुए हैं तब उसको जो अनन्तसान्त्वना मिलेगी वह प्राकृतिक विपत्तिके कष्टको विस्मृतप्रायः करदेगी।

बिहारमें जैनमन्दिरों और धर्मशालाओंकोभी हानि पहुँची है। उनके जीर्णोद्धारके लियेभी आवाज उठने लगी है और चन्देकी माँग होने लगी है। मेरी तुच्छ सम्मतिमें मन्दिरोंके जीर्णोद्धारकी अपेक्षा मनुष्यों के जीर्णोद्धारकी अधिक आवश्यकता है। दस बीस मंदिर गिरकर अगर फिर न बनसकें तो धर्मकी तथा समाज की जराभी हानि नहीं है। जो जीर्णोद्धारके लिये जो रुपया लगाना चाहते हैं उन्हें उससेभी बिहारके ग़रीबोंकी रक्षा करना चाहिये। बिहारके उद्धारके लिये कमसे कम १६ करोड़ रुपयोंकी आवश्यकता है परन्तु अभी तो उसका क़रीब शतांशही पहुँचा है। फिरभी जो लोग मकानातमेंही रुपया लगाना चाहते हों

उनको चाहिये कि वे टीनकी धर्मशालाएँ बनवायें जिनमें ग़रीब आदमियोंको स्थान तो मिलसके। इस प्रकार के जैनकैंप बनजाना चाहिये जिनमें जैनतरभी रहसकें। जो लोग जीर्णोद्धार ही कराना चाहते हों उन्हें इसी आशासे सलाह देसकताहूँ कि जीर्णोद्धार के बहाने ही सही बिहारके मजदूरोंको कुछ काम तो मिलेगा और किसी तरह वह रुपया बिहारमें पहुँचेगा। परन्तु मनुष्योंके जीवननिर्वाह योग्य कामों में पैसा लगानेसे कई गुणा लाभ है। जैन दानवीरों को इस अवसर पर अवश्यही दानवीरता दिखलाना चाहिये। और उसके भीतर विवेक तथा विश्वबन्धुत्वकी भावना रहेगी तो और भी अच्छा होगा।

कीट पतंगों की मननक्षमता

जैनशास्त्रोंकी—खासकर दिगम्बर जैनशास्त्रोंकी—यह मान्यता है कि कीड़ों मकोड़ोंके मन नहीं होता। परंतु मैं लेखमालामें यह सिद्ध कर चुकाहूँ कि उनकेभी मन होता है। अपने वक्तव्यके समर्थनमें श्वेताम्बर शास्त्रके प्रमाणभी दे चुका हूँ। साथही वर्तमान प्राणिशास्त्रका हवाला भी। वर्तमानमें प्राणिशास्त्रियोंने कीड़ों मकोड़ोंका जो सूक्ष्म निरीक्षण किया है, उससे मालूम होता है कि उनके काम केवल अन्धसंस्कारवशही नहीं होते, किन्तु उनकी औत्पत्तिकी पारिणामिकी बुद्धिके सूचक हैं। उदाहरणार्थ एक जातिकी चिंटिया खेती करती है। वे अपने बिलोंमें पत्तोंको एकत्रित करती हैं और उनपर छोटे छोटे कुकुरमुत्ते उगाती हैं। इस कामके लिये जब उन्हें खादकी आवश्यकता होती है तबवे अपनी विष्टासे काम लेती हैं। खाद देनेका यह काम भी एक चतुर मालीके समान विधिपूर्वक होता है।

मुधुमक्खी जो छत्ते बनाती है और उसमें जो गणितज्ञताका परिचय देती है, वह तो प्रायः सभी को मालूम है।

एक ऐसी बर्र होती है, जो कीड़ोंको जमीनके भीतर छुपाकर रखछोड़ती है। वह एक गड्ढा करके उसके मुँहको मिट्टीसे इस प्रकार ढँकती है कि पता लगाना अशक्य होजाता है। मिट्टीकी सतहको बराबर करनेके लिये उसे कूटना पड़ता है, जैसे हमारेयहाँ चना कूटा जाता है। बेचारी बर्रके पास लकड़ीया लोहके हथोड़े तो होते नहीं हैं वह अपने मुँहमें कंकड़ दबाकर मिट्टी कूटती है और कूट कर सतहको बिलकुल बराबर करदेती है। इस प्रकारके विचित्र काम बिना मनके नहीं होसकते। हमारी इस मान्यतामें संशोधन होना चाहिये कि जब तक पाँचों इन्द्रियाँ पूरी न होजावें, तबतक मन नहीं मिलसकता। पाँचों इन्द्रियाँ हों या न हों, परन्तु मन होसकता है। यह बात कीट पतंगों के सूक्ष्मनिरीक्षण से मालूम होती है। इसके अतिरिक्त इन्द्रियोंके विषयमेंभी बहुतसी बातें हैं। जैसे सर्पके तथा पक्षियोंके कान दिखलाई नहीं देते, फिरभी उनको सुन पड़ता है। उसीप्रकार सम्भव है कि कीट पतंगों के तथा वृक्षोंकेभी कुछ अधिक इन्द्रियाँ होती हैं जिनका बाह्याकार हमें नहीं दिखलाई देता।

स्त्रियोंपर अत्याचार।

हिन्दू समाज स्त्रियोंपर इतने अत्याचार कर-रहा है जिसे जानकर यह सन्देह होने लगता है कि हिन्दुओंके हृदय नामकी कोई चीज है या नहीं? और उस समय तो खून खौलने लगता है जब हम देखते हैं कि वह धर्मकी दुहाई देकर अत्याचारका प्रतिक्रमणभी नहीं करना चाहता—उसकी योग्य चिकित्सासे भी दूर भागता है!

अभी कुछ महीने हुए कानपुरमें रायबरेली ज़िलेकी एक लड़की चौराहेपर रोरही थी। पूछनेसे उसने कहा कि—'मेरा बहनोई मुझे फुसलाकर लेआया; विवाहके पहिलेही मुझे गर्भ रहगया। बद-नामीके डरसे वह मुझे नाना प्रकारके कष्ट देनेलगा

और आज मार पीटकर मुझे निकाल दिया है। मैं किसी अनाथालयमें जाना चाहती हूँ।" इसके बाद वह अनाथालयमें भेजीगई, परन्तु उसका बहनोई लड़ झगड़कर फिर उसे वापिस लेगया; लेकिन वह लड़की फिर अनाथालय आगई। उसके बहनोईने इसतरह उसका जीवन बरबाद करके उसको किसी प्रकारकी सहायता देनेसे इनकार करदिया!

ऐसी घटनाएं हिन्दू समाजके प्रत्येक भागमें होती रहती है। निःसन्देह अधिक भागमें विधवाएँ ही इस दुर्नीतिकी शिकार होती हैं, परन्तु सामूहिक रूपमें यही कहना चाहिये कि यह पुरुषोंका स्त्रियों पर अत्याचार है। और हिन्दू समाजका नीचता तो यह है कि वह ऐसे मामलोंमें अत्याचारी पुरुष समाजका ही पक्ष लेता है और अत्याचारपीड़ितको हरतरह पीस डालता है। ऐसे कांडोंमें अकेली स्त्री ही कुछ नहीं करसकती, किन्तु आक्रमणात्मक व्यवहार पुरुषकी तरफ़से ही होता है—यह सब जानते हुए भी न मालूम किस मूढ़तापूर्ण क्रूर मनोवृत्तिके आधारपर हिन्दूसमाज न्यायका ढोंग करता है, धर्मकी दुहाई देता जाता है!

आज वह अपने अत्याचारोंके कारण क्षीण होता जाता है और अगर अबभी न चेता तो उसे सर्वनाश के मुँहमें जाना पड़ेगा।

हमारी दशा।

[रचयिता — श्रीमान भगवन्त गणपति गोयलीय]

जब मेरे कि प्रिया तज प्रीतिकी रीति, ऐ कामिके! मेरी निठारी बनी;
गत जीवनकी सुख दानी कुटुम्बिनी मशानी भ्रमा सी बनी।
नित नूतन चंचलता चित की, सजनी सच जानो उदासी बनी;
वसुधा तो चिता सी बनी, प्रतिभा विधुरा वनिता की श्री काली बनी ॥१॥

तब से तुमने भी यों छोड़ दिया जैसे मेरा तुम्हारा ही नाता न था;
कर से तुम मेरे न आती कभी, तुम पे कर मेरा ही जाता न था।
सच है तब रोग तुम्हारा मुझे, इस आज की भाँति ही भाता न था,
जड़ कामिका से मैं ठठोली करूँ, इतना अवकाश ही पाता न था ॥२॥

पर भूलें ये भूत की बातें सभी, चलो बैठें औ थोड़ा विचार करें;
इस बाणी की जंग लगी करवाल पै, हे रणरंगिनि! धार करें।
कह दे यदि जैन हैं तो कृपया इस जैन समाज को प्यार करें;
यदि मानव हैं, तब मानव सा जग में सब से व्यवहार करें ॥३॥

जब जागते हैं जगती में सभी, तब जैनी विचारे हा! सो रहे हैं;
अर्घार्व से द्वादश लाख बचे, इसपै भी जुदे जुदे हो रहे हैं ॥

नित नूतन भेद बढ़ा रहे कर्णिक ! प्रेम रहा सहा खो रहे हैं;
निज नाश का बीज अनेक बहानों से, स्वीय करों ही ये बो रहे हैं ॥४॥
वह पूर्वजों की सी है शक्ति कहाँ ? पर ढोंग ज़रूर बना रहे हैं,
सब वस्त्र उतार कमण्डलु पिच्छि ले, श्री मुनिजी कहला रहे हैं ।
फट जाए जो पेट नहीं परवा, बढ़िया बनवा रह खा रहे हैं;
गुरु गौरव की अभिलाष भरे, कचलुंच का दृश्य दिखा रहे हैं ॥५॥
जिनके सुप्रभाव में साँप मयूर सदा संग खेलते खाते रहे,
जिनके उपकार दया तप त्याग को लोग अनोखा बताते रहे ।
जिनके ध्रुव सत्य सुशील को इन्द्र भी भक्ति से शीश झुकाते रहे;
उपमा जिनके स्थिर भाव की शत्रु हिमाद्रि से देते लजाते रहे ॥६॥
उन पूज्य पुनीत महर्षि मरालों की ये बगुले समता करेंगे !
संग आर्यिका और परिग्रह है, फिर भी मुनिजी तप आचरेंगे !
अपशब्द परस्पर बूकेंगे ये, फिर आपस में लड़ेंगे मरेंगे;
पर राग सदा करेंगे पै सदा, सच बात उचारने में डरेंगे ॥७॥
हिमकाल में बन्द मकानों में जाकर, प्याल मँगा बिछवायेंगे ये;
उसमें छिप, या कि अँगीठी जला कर शीत की भीति भगायेंगे ये ॥
हरताल औ चूना मिला छिपके, कचलुंच के आगे लगायेंगे ये;
इस भाँति परीषहों पै जय पाके अँगूठा जिनों को दिखायेंगे ये ॥८॥
फुड़वाते गए चुड़ियाँ विधवा की त्रिसूत्र सभी को पिन्हाते गये;
जल शूद्र के हाथ का त्याग करा 'सनियो' का सुशासन लाते गये ।
खल पंडित रूप मदारियों के बन बन्दर नाच दिखाते गये;
बलवानों का पक्ष ले, दे फ़तवे, इस जाति में फूट फैलाते गये ॥९॥
खुद दस्सों की जाति में जन्म लिया, यह बात आचार्य छिपायेंगे ही;
वनराज शृगाल सरीखे स्वजाति से, घोर घृणा दिखलायेंगे ही ।
नहीं दस्सों से प्रेम से बोलेंगे ही, नहीं दस्सों का भोजन पायेंगे ही;
विधवा के विवाह विरुद्ध ज़रूर, पै ये हुरदंग मचायेंगे ही ॥१०॥

(क्रमशः)

सोनेचाँदीके भगवानोंकी स्तुति।

(लेखक—श्रीमान चन्द्रसेनजी जैन वैद्य, इटावा)

१—बड़ेबड़े सेठ साहुकार लक्षपति, नामोंके लोलुपी, कुबेरदास धनाढ्योंके परम पूजनीक, उनके एकमात्र आराध्यदेव, तुम्हें प्रणाम।

२—अनुपम अद्वितीय परमोत्कृष्ट समोशरण विभूतिके धारक, जिसका वर्णन सुनकर सेठ साहुकारोंका मन हर्षोल्लासमें प्रफुल्लित होजाता है, इसही कारण प्रातःस्मरणीय, हे सोनेचाँदीके भगवानो, तुम्हें नमस्कार।

३—रंग बिरंगे सुनहरी रुपहरी और अनेक प्रकारके काँच प्रस्तरोंसे निर्मापित! उत्तुंग रमणीक चहुँ ओरसे सुशोभित, हृदयाकर्षक छत्र चमर सिंहासन भामंडल, कलाबत्तूके चंदोवोंसे शोभनीक। आसा बल्लम सोंटा आदिसे परिपूर्ण मन्दिरोंमें विराजमान होनेवाले हे भगवान तुम्हें नमोस्तु।

४—गुदगुदी गद्दियोंसे परिपूर्ण, चित्रोंसे चित्रित, झाड़ फानूस हाँडी गोले बिजलीकी बत्तियोंसे चकाचक, नोट, रुपये, अठन्नी, चवन्नी, दुअन्नी इकन्नी व सोनेचाँदीके बर्तनोंसे परिपूर्ण, हार मुकुट, कुण्डल कड़े आदि आभूषणोंसे भरीहुई लोहेकी तिजोरियों सहित, और चाँवल, गोले, चन्दन, केसर कपूर, बादाम, छुआरे, लोंग, पिस्ता आदि द्रव्योंके भंडारसे परिपूर्ण, तथा धोती दुपट्टे ढेरों उपलासनोंसे भंडार पूरित मन्दिरोंके स्वामी, तुम्हें बारबार नमस्कार।

५—'यो म्हारो मन्दिर छै; म्हाँका सेठ पंच कल्याणकमें लाखों रुपया लगाकर प्रतिष्ठा कराई, मन्दिर निर्मायो और बड़ो भारी जीमण कराकर नाम कर्यो"—इसप्रकार सेठानियोंके विरदावली गान रवाकुल मन्दिरमें विराजमान होनेवाले हे सोने चाँदीके भगवान, तुम्हारी जय हो।

६—दूर दूरसे दर्शनेच्छुक आनेवाले यात्रियोंके मनको हरण करनेवाले और प्रशंसासे न अघाने वाले यात्रियोंको अपनी ओर आकर्षित करनेवाले, इष्टदेवको केवल नमस्कार करनेवाले और मन्दिरों की सजावट घंटों देखनेवाले यात्रियोंसे परिपूर्ण वीतरागताको भुला देनेवाले परम सुशोभित मन्दिरों के अधिष्ठाता, जयवन्त होहु।

७—युवक मोतीलाल राँवकाको अनेक प्रकारके काय क्लेश तप तपाकर अंतमें सशरीर निर्वाण पदके दाता हे सोने चाँदीके भगवान, तुम्हे साष्टांग प्रणाम।

८—मेवाड़के केशरियाजी अतिशयक्षेत्र पर पं० गिरधारीलाल न्यायतीर्थके बलिदान करानेवाले और अपने भक्तोंमें परस्पर मारपीट कलह करानेवाले हे सोने चाँदीके भगवान, तुम्हें प्रणमामि।

९—बिना द्रव्य संसार के दुःखसे दुःखी तस्करोंको अपने सोने चाँदीके शरीर को अर्पण करने वाले, परम दयालु परम हितैषी, द्रव्याभिलाषियोंको द्रव्यार्पण कर उनके दुःखोंका नाश करने वाले हे सोने चाँदीके भगवान, तुम्हारी जय हो।

१०—भोले भाले, सहजमें देवाङ्गनाओं तथा अनेक सुखोंसे परिपूर्ण स्वर्गके अभिलाषी श्रावकोंके धनसे निर्मापित छत्र चमर हार मुकुट कुंडल बर्तन भाँडे आसा बल्लम आदि विभूतियोंको तस्करोंको देनेवाले और श्रावकोंको उनकी रक्षा भयसे मुक्त करनेवाले, परमत्यागी अभयदान दाता, हे सोने चाँदी के भगवान, तुम्हारी शरणं पव्वज्जामि।

११—इज्जारदार धनिकोंके परमाराध्य, उन्हींकी सेवापूजा आरतीसे प्रसन्न होनेवाले, जातिके अन्याय अत्याचारोंसे पीड़ित नर नारियोंको पूजा प्रक्षालतो दूर, अपने मंदिरोंमें घुसने तक न देनेवाले, उनकी छायासे दूर रहनेवाले, पतित पावनकी जगह धनिक

पावन कहानेवाले हे सोने चाँदीके भगवान, तुम्हें बार बार नमस्कार।

१२—झगड़ेकी झड़ और आपसके वैमनस्यकी कसर निकालनेके स्थान ऐसे भव्य मंदिरोंमें विराजमान और लक्ष्मीकी कृपासे शून्य अथवा इसी पृथ्वी तलपर स्वर्गोंके सुख भोगनेके अभिलाषी भव्य जीवोंको हज़ारों लाखोंकी देवद्रव्यके दातार परमउदार त्यागके अवतार निर्विकार सुख दातार हे सोने चाँदीके भगवान, कौन कौन गुण गाऊँ प्रभूके।

१३—सोने चाँदीके पत्तरोंसे लकदक, छत्रचमर भामंडल सिंहासन आदि विभूतियोंसे विभूषित, कलाबत्तू रचित मखमलके आवरणोंसे सुशोभित, कृत्रिम हाथी घोड़ोंके वाहनों पर स्थित, यंत्र संचालित, रथोंपर विराजमान, भव्य जीवोंकी भलभली प्रभावना करते हुये, गुंडोंकी लार टपकातेहुये विहार करने वाले हे सोने चाँदीके भगवान! जयजय स्वामी जय जय जय।

१४—'पूज्य घने अरु पूजक थोड़े' होते हुयेभी प्रतिवर्ष समयोचित कार्य न करनेवाले विवेकशून्य रूढ़िभक्त भोले भव्य जीवोंके न्यायान्याय रहित येन केन प्रकारेण उपार्जित द्रव्यसे केवल नामके लिये नाक बढ़ानेकी प्रतिष्ठायें होकर आपके कुटुम्बकी वृद्धि होती है। अतः वृद्धिगति प्राप्त हे सोने चाँदीके भगवान, जयवन्त प्रवर्तो।

१५—प्राचीन ध्वंसावशेषोंमें सैकड़ों हज़ारों मूर्तियोंकी अविनय होते हुयेभी नवीन नवीन प्रतिवर्ष अवतार लेने वाले अपनी जातिके संहारक और स्वोन्नतिकारक हे सोने चाँदीके भगवान, तुम्हारी जय जय कार।

नोट— वर्तमानमें प्रभावनाके नामपर जो कुछ किया जाता है उसमें इतना अधिक मात्राधिक्य होरहा है कि मूल अंश बिलकुल लुप्त होगया है। प्रभावनाके उपाय युग युगमें बदलते जाते हैं, इसकी तरफ़ लोगोंका ध्यान बिलकुल नहीं है। हमारे धर्मस्थान शताब्दियोंसे विकृत और निष्फल होते जाते हैं, उनमें सुधार करनेकी ज़रूरत है। औषधकी शक्ति भोजनकी अपेक्षा कुछ अधिक रहती है; इसीप्रकार यह लेखभी धर्मस्थानोंके सुधारकी आवश्यकता को ज़रा ज़ोरदार शब्दोंमें बतारहा है।

—सम्पादक

साम्प्रदायिकता का दिग्दर्शन।

(२)

[लेखक—श्रीमान पं० सुखलालजी प्रोफ़ेसर हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस]

[अनुवादक—श्रीमान जगदीशचन्द्रजी जैन एम० ए०]

कारण मीमांसा—धर्मको विकृत करने वाली मतांधता मनुष्यकी बुद्धिमें प्रवेश करती है, इसका क्या कारण है? इसके विचार करनेसे मालूम होगा कि जिसतरह अपरिपक्व मनुष्य अपने आसपासके वातावरणसे श्रद्धा और संयमरूप धर्म तत्वको ग्रहणकरता है, उसीतरह वह कुटुम्ब, समाज, धर्मस्थान और पंडित संस्थाके संकुचित वातावरण से मतांधताको ग्रहण करता है और पुष्ट बनाता है। अवस्था और बुद्धिकी प्रौढता होनेके बादभी यदि विवेकशक्ति द्वारा, बाल्यकालसे धीरेधीरे ज्ञात अज्ञातरूपमें संचित मतांधताके संस्कारका संशोधन न किया जाय तो, चाहे कितनीभी अवस्था होजाय और कितनाभी पुस्तकीय ज्ञान बढ़जाय, मनुष्य यही मानता रहता है कि उसका धर्मही सच्चा और सर्वश्रेष्ठ है, दूसरे धर्म या तो मिथ्या हैं, या उसके धर्म से नीचे हैं। वह अपने उपास्यदेव और उसकी

मूर्तिको ही आदर्श मानता है और दूसरोंको दूषित अथवा बिलकुल साधारण समझता है। वह समझता है कि उसीका तत्वज्ञान और धार्मिक साहित्य ही पूर्ण और सर्वोच्च है, तथा दूसरोंका उसमेंसे चुराया हुआ अथवा अनुकरण किया हुआ है। वह मनुष्य अपने धर्मगुरु और विद्वानोंको ही सच्चा त्यागी और प्रामाणिक मानता है तथा दूसरोंके धर्मगुरुओंको ढोंगी अथवा शिथिल और विद्वानोंको अप्रामाणिक समझता है। इसप्रकारकी मतांधताके इकट्ठे होनेसे धर्मकी शुद्ध और उदार शक्ति, अशुद्ध और संकीर्ण मार्गमें बहने लगती है, तथा किसी प्रकारका सांसारिक स्वार्थ न होनेपरभी यह मतांधता धर्मके जनून(कट्टरता)का रूप धारणकरती है। इसतरह से मनुष्यकी कर्तव्याकर्तव्यविषयक बुद्धि लँगड़ी होजाती है। वंशपरम्परा और दूसरे संसर्ग से प्राप्त होनेवाले संस्कारोंका विवेकबुद्धिसे संशोधन न होना और इसतरह चित्तकी अशुद्धताका बढ़ने देनाही इस स्थितिके आनेका कारण है।

प्रमाणोंकी मर्यादा और उद्देशका स्पष्टीकरण—यहाँ प्रमाणोंके दिग्दर्शन कराने का क्षेत्र मर्यादित है। इस लेखमें हमने केवल आर्य साहित्य और उसकेभी अमुक भागसे ही प्रमाण उपस्थित करनेका विचार किया है। परन्तु इस विषयमें अधिक खोज करनेवालोंको प्रत्येक प्रजाके किसीभी समयके साहित्यमें से प्रमाण उपलब्ध होसकते हैं। यह प्रयास उस दिशाका सूचन करनेके लिये स्थालीपुलाक न्याय जैसा है।

साम्प्रदायिकताके नमूने वैदिक, जैन, बौद्ध इन तीनों सम्प्रदायोंके साहित्यमें मिलते हैं। बहुतसी जगह तो ये नमूने ऐसे हैं कि जिस सम्प्रदायके साहित्यसे ये लिये जाँय उस सम्प्रदायके श्रद्धालु लोगोंको लज्जा और ग्लानि उत्पन्न करते हैं। उसी तरह ये नमूने जिस विरोधी सम्प्रदायकी टीका करते हों उस सम्प्रदायके अभिमानियोंको आवेश पैदा करते हैं। इतना होनेपर भी इस लेखमें जो इन नमूनोंका उल्लेख कियागया है, उससे किसीको आघात पहुँचानेका अथवा किसी सम्प्रदायको अपमानित करनेका ज़राभी उद्देश नहीं है। यहाँ केवल ऐतिहासिक दृष्टिसे ही निरूपण कियागया है और इस दृष्टिसे विचार करनेकी, अभ्यासियोंसे हमारी नम्र प्रार्थना है।

प्रमाणों का प्रकार—मतांधताके प्रमाणों के नमूने दो प्रकारके मिलते हैं। (१) शास्त्रोंसे और (२) व्यवहारिक जीवनसे। शास्त्र, जीवनका प्रतिबिम्ब है। जो भावना, जो विचार, जो वर्तन जीवनमें नहीं है वह शास्त्रमें कहाँसे आसकता है? जो भावना, विचार आदि शास्त्रमें हो वे आनेवाली पीढ़ीके जीवनमें प्रविष्ट होते हैं।

जनताके साम्प्रदायिक जीवनमें प्रवेश करके देखनेवाले के कानोंमें अविचारपूर्ण असहिष्णुताकी ध्वनि सुनाई देगी। काशी, बिहार और मिथिलाके ब्राह्मण जैन सम्प्रदायके विषयमें यह कहतेहुए सुनाई देंगे कि जैन नास्तिक हैं, क्योंकि वे वेदको मानते नहीं, ब्राह्मणोंके धर्मगुरुओंका सन्मान करते नहीं, उल्टा ब्राह्मणोंको अपमानित करने अथवा दुख पहुँचानेमें यथाशक्ति प्रयत्न करते हैं, तथा ब्राह्मणोंको अपने घर निमन्त्रित करके उन्हें खटमलों से भरी हुई खाट पर सुलाकर उनके रक्तसे खटमलों को तृप्त करके दयावृत्ति पालना जैन लोगोंका काम है। इसीतरह जैनत्वके अभिमानी गृहस्थ अथवा भिक्षु ब्राह्मणधर्मके विषयमें यह कहतेहुए सुनाई देंगे कि ये ब्राह्मण लोग मिथ्यात्वी हैं। उन्हें ज्ञान भलेही हो परन्तु तत्वको उन्होंने प्राप्त कियाही नहीं। वे द्वेषी और स्वार्थी हैं। इसीप्रकार बौद्ध उपासक अथवा भिक्षुके पास जानेसे भी दूसरे धर्मोंके संबंध में इसीतरह की कटुक बातें सुननेमें आवेंगी। इसीकारण भीतरभीतर चलनेवाले विरोधके अर्थमें संस्कृतके वैयाकरणोंने दूसरे उदाहरणोंके साथ आ-

ह्मणश्रमण ' उदाहरणभी दिया है। इसके अतिरिक्त एकही वैदिक सम्प्रदायके वैष्णव और शैव दो सम्प्रदायोंके बीचमें इतना अधिक विरोध दीख पड़ता है कि 'शिव' का नाम न लेनेके लिये वैष्णव लोग दरजीको 'कपड़ु शीव' (कपड़े सीओ) यहभी नहीं कहते। इसप्रकार भिन्नभिन्न सम्प्रदायके लोगोंके एकही देश और एकही समयमें साथ रहतेहुए तथा अनेक हिताहितके प्रश्नोंमें समान रूपसे भाग लेने परभी उनके जीवनमें साम्प्रदायिक कटुकता और विरोधकी भावना बहुत अधिक रूपमें मालूम पड़ेगी।

विरोध दो प्रकारका होता है – जाति विरोध और नैमित्तिकविरोध। जातिका विरोध जन्मवैर और दूसरा विरोध कारणवैर कहलाता है। सर्प और नकुलमें चूहे और बिल्लीमें परस्पर जन्मवैर है। देव और असुरके बीचमें पौराणिक युद्ध कारणवैर है; क्योंकि देव अकेले स्वयंही अमृत अथवा स्वर्गादि प्राप्त करें और दूसरा कोई न करसके, इस लोभमें से इस वैरकी उत्पत्ति हुई है।

इन दो प्रकार के विरोधोंमें ब्राह्मण और श्रमणके विरोधको वैयाकरणोंने पहिले विरोध में लिया है अर्थात यह विरोध जातिशत्रुतारूप है। ब्राह्मण अर्थात् सामान्य रूपसे वेदोंका प्रतिष्ठापकवर्ग और श्रमण अर्थात् वेद को न माननेवाला वेदविरोधीवर्ग। इन दोनोंका विरोध कारणिक मालूम होने परभी वैयाकरणोंने इसे जातिविरोध कहा है, इसमें कोई खास रहस्य है। जिस तरह चूहेको देखकर बिल्लीका चित्त उछलने लगता है, और सर्पको देखकर नकुल अपने काबू से बाहर होजाता है उसीतरह ब्राह्मण और श्रमण एक दूसरे को देखकर क्रोधाविष्ट होजाते हैं। वैयाकरणोंके जातिविरोधके कथनमें यही अभिप्राय है।

वास्तवमें ब्राह्मण और श्रमण एक दूसरेके पड़ौसमें रहते हैं; बहुतसे कामोंमें सम्मिलित होते हैं और बहुत बार तो उनमें गुरु शिष्यका भी सम्बन्ध रहता है। फिर ऐसी स्थिति में उन्हें सर्पनकुल की तरह जन्म शत्रु बताना यह खास अर्थ का सूचक है? एक बार धार्मिक मतभेदके कारण पैदा हुआ विरोध दोनोंमें इतना अधिक तीव्र होगया कि एकवर्ग दूसरे वर्गको देखकर स्वाभाविक रीतिसे हृदयमें चिढ़जाता है। इससे आजभी जिसे प्राचीन प्रकृतिके ब्राह्मण और श्रमणोंका कुछ परिचय है, वह इस यथार्थताको ज़रा भी निर्मूल नहीं कहेगा। बहुतसे व्यवहारोंमें सम्मिलित होने परभी प्रसंग आनेपर धर्माभिमानी वर्ग दोनों एक दूसरे पर आक्षेप करते ही हैं। इसलिये इस गहरी मतांधताका विरोध कारणिक विरोध होने पर भी वैयाकरणों ने इस विरोधको अधिक तीव्र बतानेके लिये जातिविरोधकी श्रेणीमें समावेश किया है। परन्तु वास्तव में यह जातिविरोध नहीं है।

वेदका विरोध करनेवाले श्रमण कई तरह के हैं। बौद्ध, आजीवक, जैन ये सब श्रमण ही कहलाते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थोंमें इन्हीं लोगोंके लिये नास्तिक शब्द प्रयुक्त किया गया है।

नास्तिको वेदनिन्दकः। मनुस्मृ० अ० २ श्लो० ११

इन दोनों वर्गोंके विरोधके इतिहासका मूल बहुत प्राचीन है और यह विरोध दोनों वर्गोंके प्राचीन साहित्य में दीख पड़ता है तोभी व्याकरण शास्त्रमें सबसे पहिले इस विरोधका उदाहरण जिनेन्द्रबुद्धि के न्याससे देखने में आता है। जिनेन्द्रबुद्धि एक बौद्ध विद्वान होगये हैं और उनका न्यास काशिकाके ऊपर है। काशिका वामन और जयादित्य दोनोंकी पाणिनीय सूत्रोंके ऊपर बनाईहुई बृहद् वृत्ति है। जिनेन्द्रबुद्धिका समय ईसा की ८वीं शताब्दि माना जाता है। इसके बाद कैयट के महाभाष्य के विवरणमें यह उदाहरण मिलता है। कैयट का समय ११ वीं शताब्दी है (देखो सिस्टम्स आफ़ संस्कृत ग्रामर— एस. के बल्वलकर परिशिष्ट २) इसके बाद हेमचन्द्रके स्वोपज्ञ शब्दानुशासन में यह उदाहरण मिलता है। महाभाष्य चान्द्र अथवा काशिक जैसे प्राचीन व्याकरण ग्रन्थों में यह उदाहरण नहीं है। परन्तु ७ वीं शताब्दी के पीछे के व्याकरण ग्रन्थोंमें यह उदाहरण है। यह बात भी खास ध्यान देने योग्य है। यह समय पौराणिक समय अर्थात् सम्प्रदायोंके विरोधका समय है। इसी लिये वैयाकरणभी इस विरोधके असरका उल्लेख किये बिना न रह सके।

ब्राह्मण नास्तिकम् यह उदाहरण है। एकाध दक्षिण की प्रति में श्रमण ब्राह्मणं यह भी पाठ है। देखो पृष्ठ ४४७ जिनेन्द्र बुद्धि का न्यास।

विरोधी मित्रोंसे

(१३)

"जैनधर्मका मर्म है या भर्म" इस शीर्षककी एक लेखमाला भाई भगवानदासजी मंदसौरने जैनमित्रमें प्रकाशित कराई थी। आपने लेखमालाके दूसरे अध्यायके कुछ भाग पर विरोधीभाव प्रकट किये थे। लेखमाला किस दृष्टिविन्दुसे लिखी जारही है, सम्भवतः यह बात आपके ध्यानमें नहीं आई थी। इस लिये एक श्रद्धालु भाईके जैसे उद्गार निकलसकते हैं, वैसे आपनेभी निकाले थे। लेखमालाका चौथा पाँचवा अध्याय समाप्त होगया है, उससेभी बहुतसी बातोंका समाधान होजाता है। श्रीयुत् भगवानदासजीने न मालूम किस कारणसे अपनी लेखमाला सहसा बन्द करदी। जैनमित्र ऑफिससेभी इसका कारण मालूम न होसका। क़रीब दस महीनेसे वह लेखमाला बन्द है इसलिये अब उसपर एक सरसरी नज़र डाल लेना उचित है। एक एक वाक्यकी आलोचना करनातो निरर्थक है, इसलिये स्थूलरूपमें ही भ्रमनिवारणकी कोशिशकी जायगी; और व्यक्तिगत आक्षेपों तथा निंदावाक्योंका कोई उत्तर न दिया जायगा।

आक्षेप (३४) अगर सर्वज्ञ न मानेंगे तो जैनधर्मकी जड़ही नष्ट होजायगी। स्वर्ग नरक आदि की परीक्षा युक्तियोंसे नहीं होसकती।

समाधान—सर्वज्ञकी चर्चा चतुर्थ अध्यायमें कर दीगई है। वहीं पर यह बतायागया है कि सर्वज्ञ कैसा होसकता है। वर्तमानमें जैसा सर्वज्ञ माना जाता है, वह असम्भव और निरर्थक है। धर्मका कार्य सुखी होनेका मार्ग बतलाना है। धर्म, कुछ इतिहास ज्योतिष और भूगोल नहीं है कि वह सब जगह टाँग अड़ाता फिरे। युक्तियोंके द्वारा हम सामान्य रूपसे स्वर्ग और नरक सिद्ध करसकते हैं (जैसाकि लेखमालाके तीसरे अध्यायमें किया गया है); विशेषरूपमें खोज करनेके लिये हमें (मनुष्य जातिको) प्रयत्न करना चाहिये। स्वर्ग नरक आदिके जाननेकी हमें आवश्यकता है, इसीलिये उसकी मनमानी कल्पना करके आत्मवञ्चना न करना चाहिये। जो विषय अज्ञात है, उसे अज्ञातरूपमें स्वीकार करनेमें ही हमारा कल्याण है। इस नग्न सत्यके कहनेकी हिम्मत न होनेसे प्रायः सभी सम्प्रदायोंने स्वर्ग नरक आदिके लिये मनमानी कल्पनाकी, जो एक दूसरे से विरुद्ध जाती है। जैनधर्मने अवक्तव्यभंगकी रचना करके यह संकेत किया था, किन्तु पीछेके लेखकोंने उसका अर्थही बदल डाला। ऋग्वेदमेंभी ऐसीही बातका उल्लेख मिलता है; परन्तु आजके वैदिक सम्प्रदाय इस बातको स्वीकार करना नहीं चाहते।

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत्कुत आ जाता कुत इयम् विसृष्टिः।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आ बभूव ॥
इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदिवा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥१॥

क्या मालूम अथवा कौन कह सकता है कि यह विविध सृष्टि कहाँसे पैदा हुई ? देवगण तो इसकी रचनाके बादके हैं। इसलिये कौन जानता है कि यह कहाँसे आई ? यह सृष्टि कहाँसे आई, यह स्थित है कि नहीं यह इसका अध्यक्ष—जो आकाशमें है—जानता होगा अथवा वहभी नहीं जानता।

इस प्रकारके निर्भीक उद्गार—भलेही वे संशयात्मक हों—मनमानी कल्पनासे पैदा होनेवाले

कैयटने 'श्रमणब्राह्मणं' और हेमचन्द ने 'ब्राह्मण श्रमणं' उदाहरण दिया है। देखो क्रमसे महाभाष्य प्रदीपोद्योत २-४-६ पृ.७८१ कलकत्ता आवृत्ति। हैम. ३-१-१४१

यह टिप्पणी लिखते समय शाकटायन की अमोघवृत्ति नहीं मिल सकी। लेकिन इसमें इस उदाहरण का मिलना संभव है, क्योंकि इसकी रचना भी पौराणिक विरोध के युग में ही हुई है।

अन्धविश्वाससे अनंतगुणे अच्छे हैं। टैनीसनका यह कहना बहुतही अच्छा है कि सच्चे संदेहमें अधिक विश्वास है*। इसी बातको जरा बदलकर मैं यह कह सकता हूँ कि सच्चा संदेह अन्धविश्वाससे कई गुणा अच्छा है। जिस जगह युक्तियाँ नहीं पहुँच सकतीं, उस जगहको खाली रखना अच्छा न कि अन्धविश्वाससे भरना। भोजन न मिलनेपर विष खानेकी अपेक्षा भूखा रहना उचित है।

यदि विश्वासके बलपर हमें अमुक व्यक्ति, शास्त्र और सम्प्रदायके आगे बिना किसी ननु नचके सिर झुकालेना चाहिये तो मुसलमान कुरानके आगे, कोई वेदके आगे कोई बाइबिलके आगे आदि अपने अपने विश्वासके अनुसार सिर झुकाते हैं और एक जैनविद्वान युक्तिसे उन्हें सत्य समझाता है परन्तु वे यही उत्तर देते हैं कि युक्तियोंसे किसी बातका निर्णय नहीं होता; तो उनका यह कहनाभी ठीकही कहलायगा। यदि दूसरोंकी आलोचनाके लिये हम युक्तिकी दुहाई देते हैं तो अपनी आलोचनाके समय हमें युक्तिका अपमान न करना चाहिये। यदि हमारी बात कच्ची उतरती है तो हमेंभी उसे त्यागनेकी हिम्मत दिखलाना चाहिये।

आक्षेप (२५)—'जब आप वर्तमान जैनग्रंथों को अप्रामाणिक, विकारयुक्त, मुलजिम करार देरहे हैं, फिर उन्हींके आधारपर अपना लेख शुरू किया जाय तो वो लेख कहाँ तक ग्राह्य हो सकेगा ?'

समाधान—जैनग्रन्थोंका स्थान गवाहके समान है। खोजके लिये हमें उनकी जरूरत है, परंतु उनकी बातपर जजकी बातकी तरह विश्वास नहीं किया जासकता। मेरी लेखमाला जैनग्रन्थोंके वचनों का संग्रह नहीं है, किन्तु उनको तर्कपूर्ण आलोचना है। जो तर्कसंगत होती है वह स्वीकार करली जाती है बाकी छोड़दी जाती है। दूसरी बात यह है कि जिसप्रकार एक मुसलमानको समझानेके लिये कुरानकी साक्षी दी जासकती है, भलेही हम कुरान को न मानें, उसीप्रकार जैनियोंको समझानेके लिये जैनशास्त्रोंकी दुहाई है।

आक्षेप (२६)—शास्त्रके विकारी होनेमें आप हेतु देते हैं कि ये अधिक पुराने होगये, इसलिये विकारी होगये। इस तरह तो एक अनुभवी विद्वान भी विकारी कहलायगा। शास्त्र महावीर स्वामीके बहुत दिन बाद बने इसलिये विकारी होगये अथवा इन ग्रन्थोंको बनाये हुए बहुत दिन होगये इसलिये विकारी होगये ? पहिली दृष्टि से आपकी लेखमाला बहुत विकारी कहलायी क्योंकि वह बहुत पीछे बन रही है। दूसरी दृष्टिसे कुछ समयके बाद आपकी लेखमाला विकारी कहलाने लगेगी; तब कुछ दिनोंके लिये इतना प्रयास करनेसे भी क्या नतीजा ?

समाधान—हेतु और कारणके अर्थमें अन्तर है। हेतु सूचक होता है और कारण उत्पादक। हेतुके होने पर साध्य अवश्य होता है, परन्तु कारणके होने पर कार्यके होने का नियम नहीं। हाँ, कभी कभी कारण भी हेतु बन जाता है। पुरानापन विकारका कारण है। किसी वस्तुकी सिद्धिके लिये हेतुके साथ उसके कारण भी मिलजायें तो उससे प्रामाण्यका निश्चय और भी अधिक बलवान हो जाता है। वर्तमानमें जैनशास्त्र अनेक सम्प्रदायोंमें बँटगये हैं और उनमें परस्पर विरोधभी पाया जाता है तथा वर्तमानके विज्ञानके आगे उनकी बहुतसी बातें कटरही हैं। इससे उनको विकारी मानना पड़ता है। इसके अतिरिक्त वे इस ढंगसे आये हैं जिससे विकार होनेकी पूरी सम्भावना है। अगर महावीर का उपदेश उसीसमय शिलालेखों पर लिखलिया गया होता और वह आजतक ज्योंका त्यों बना होता तो कह सकते थे कि उसमें विकार नहीं हुआ। परन्तु एक मुखसे दूसरे मुखमें होते हुए वे आये हैं।

---

* There is more faith in honest doubt.

(श्रुतज्ञानके प्रकरणमें इसका खुलासा किया गया है) इसीलिये मैंने लिखा है कि—

" हमारे मुँहसे निकली हुई बात जब दूसरेके द्वारा कही जाती है तो उसमें भी अनजानमें बहुत से परिवर्तन होजाया करते हैं; फिर सैकड़ों वर्षोंतक पीढ़ी दर पीढ़ी जो बातें उतरतीं रहीं उनके विकार का क्या ठिकाना ? "

इसप्रकार वर्तमान जैनग्रन्थोंमें विकारके सूचक भी हैं और विकारके कारण भी हैं। अनुभवी विद्वान भी उस दिनसे विकारी होने लगेगा जिस दिनसे वह अनुभवी होना बन्द करदेगा। किसीके पूरे बनजानेके बाद ही उसमें विकार होना शुरू होता है। मानलो कि कोई आम आठ दिनमें सड़-जाता है तो इसका यह मतलब नहीं है कि जिस दिन वह मौर की अवस्थामें था उस दिनसे आठ दिनमें सड़जाता है। उस दिनसे तो वह बढ़ता ही रहता है; किन्तु वृक्षसे टूटनेके बाद या पूर्ण पक होने के बाद सड़ना शुरू होता है। इसलिये भगवान महावीरके उपदेश भगवान् महावीरकी वृद्धावस्था तक तो परिपक्व होते रहे; उनके बाद और उनसे दूर वे विकृत होने लगे। जब विकारका अस्तित्व सिद्ध हो जाता है तब उसका त्रैराशिक लगाया जाने लगता है।

जितने ज्याद: दिन अपथ्य सेवन किया जायगा बीमारी उतनी ही बढ़ती जायगी। यहाँ पर कोई भोला आदमी यह कहे कि ज्याद: दिन चिकित्सा करनेसे भी बीमारी बढ़ेगी तो यह कहना हास्यास्पद ही होगा। क्योंकि वह अपथ्य और चिकित्साके भेद को भूलकर सिर्फ ज्याद: दिन पर ही जोर डालरहा है। यही बात यहाँ पर है मेरी लेखमाला जैन-ग्रन्थोंके विकारोंको ढूँढ ढूँढकर दूर करनेके लिये है इसलिये वह कितनी ही पीछेकी क्यों न हो, विकारी नहीं कहलासकती। वह अपथ्यकी तरह नहीं किन्तु औषधकी तरह है। कुछ दिनोंके बाद लेखमाला विकारी कहलाने लगेगी तो उसके सुधार के लिये दूसरी लेखमाला लिखी जायगी। शामको फिर भूख लगेगी इसलिये सुबहका खाना बन्द थोड़े ही किया जाता है। जब हम क्षुद्रसे क्षुद्र समयके निर्वाहके लिये सैकड़ों काम करते हैं तो लेखमाला तो कुछ अधिक समयके लिये ही है, इसलिये इसका परिश्रम व्यर्थ नहीं कहा जासकता।

श्रीसम्मेदशिखर तीर्थक्षेत्र पर खंडेल-वाल महासभाका अभिनय।

अबकी बार दिगम्बर जैनखंडेलवाल महासभा के सूत्रधारोंने श्री सम्मेदशिखर तीर्थक्षेत्रपर पंच कल्याणकमहोत्सवके अवसरपर खंडेलवाल महा-सभाका अभिनय किया। मदारीको लोगोंको इकट्ठा करनेके लिये पहिले कुछ करतब दिखलाने पड़ते हैं और तब कहीं वह दर्शकोंसे पैसे बटोर पाता है। यद्यपि संचालकों जनता इकट्ठी करनेके लिये इतनी तकलीफभी नहीं उठानी पड़ी—सिद्धक्षेत्र व पंच कल्याणक उत्सवके नामसे वैसेही हजारों आदमी इकट्ठे होगये लेकिन उनका मनोरथ कहाँ तकसफल हुवा, यह आगेके विवरणसे मालूम होगा।

जनताकी दृष्टिमें खंडेलवाल महासभाकी कि-तनी आबरू व इज्जत है, इसका इसीसे अंदाज लगाया जा सकता है कि महीनों पहिलेसे अनुनय विनय व खुशामद करने परभी ऐन वक्त तक कोई उसका 'पति' बननेको राजी नहीं हुवा। उसने कई अच्छे अच्छे धनसम्पन्न व्यक्तियोंके पास संदेशे भेजे किंतु सबने उसे दुरदुरा दिया। आखिर और कोई उपाय न देख ठीक मौक़ेपर लाडनूँ निवासी श्रीमान् मूलचंदजी बड़जात्याके गले मँढ़दी गई। बड़जा-त्याजीको यह सम्बंध कितना रुचिकर हुवा है, यह उनके प्रथम सम्भाषणसेही स्पष्ट ज्ञात होजाता है। आपने फ़रमाया कि— महासभा दिनों दिन क्षीण होती जाती है और इसके द्वारा कुछभी सुधार नहीं होता। अत: हजारों रुपया खर्च करके अधिवेशन कराना अपव्यय है। जब तक जातीय सुधार सम्बंधी कोई भी कार्य महासभा करनेके लिये तैयार न हो,

तब तक व्यर्थव्यय करके सभाओंके अधिवेशन करानेकी आवश्यकता नहीं। खैर।

नाटकका पहिला सीन मिती फाल्गुण सुदी २ की रात्रिको करीब डेढ़सौ आदमियोंकी उपस्थितिमें प्रारम्भ हुवा; जबकि बाहिरसे करीब ८—१० हजार यात्री आये हुए थे। स्वागत सभापति व सभापतिके भाषणोंकी तथा रिपोर्ट सुनानेकी रस्म अदा होनेके बाद सब्जेक्टस कमेटीके चुनावका नम्बर आया। महामंत्रीजीने मनमाने ५१ नाम अपनी ओरसे लिखकर पेश करदिये। इनमें कई नाम ऐसे व्यक्तियोंके भी थे जो अधिवेशनमें सम्मिलितही नहीं हुए थे। गयानिवासी श्रीमान लछमलजी सेठीने सेंसकरणजी सेठी तथा सत्यंधर कुमारजी सेठीके नाम पेश किये। लेकिन महामन्त्रीजीने इन्हें लेनेमे साफ इनकार करदिया। सेंसकरणजी सेठी लोहड़साजन हैं। वे खानदेश खंडेलवाल जैनसमाजकी ओरसे प्रतिनिधि चुनकर आये थे तथा पिछले कई अधिवेशनोंमें सब्जेक्ट्स कमेटीमें निर्वाचित होचुके थे। लेकिन अबकीबार केवल इसीकारण कि वे लोहड़साजन हैं, महामंत्रीजीने उनका नाम सब्जेक्ट्स कमेटीमें शामिल नहीं किया। सत्यंधर कुमारजी सेठीका नाम स्वीकार न करनेका कारण यह था कि वे बड़साजन होतेहुए लोहड़साजनोंकी माँगको न्यायोचित समझते हैं। महामंत्रीजीकी इस प्रकार नादिरशाही से उपस्थित व्यक्तियोंमें बड़ा असंतोष फैला। श्रीमान लल्लूमलजी सेठी गया, मगनमलजी बड़जात्या भागलपुर, गजराजजी गँगवाल (भूतपूर्व सभापति) कलकत्ता, व सत्यंधर कुमारजी सेठीने महामन्त्रीजीका तीव्र शब्दोंमें विरोध किया। आश्चर्य यह है कि जो महासभा समस्त भारतवर्षीय खंडेलवालों (बड़साजन व लोहड़साजन दोनों) की एकमात्र प्रतिनिधिसभा कहलाती है तथा जिसकी सबकमेटी लोहड़साजनोंको बड़साजनोंके समान शुद्ध व उच्च तथा दोनोंका परस्पर कच्चो व पक्कीका खानपान व दोनोंका समान रूपसे पूजा, प्रक्षाल व मुनि आहारदानादिका अधिकार स्वीकार करचुकी है, तथा इसकारण पिछले अधिवेशनोंमें लोहड़साजन, बड़साजनोंके समानही पूर्ण रूपसे भाग लेते रहे हैं, आज उसका महामन्त्री केवल अपने दुराग्रहवश एक लोहड़साजन सज्जनको सबजेक्ट्स कमेटीमें शामिल करने तकसे इनकार करता है, मानो अखिल खंडेलवाल महासभा अब केवल बड़साजन खंडेलवाल सभा रहगई है अथवा लोहड़साजन अब खंडेलवाल नहीं रहे। आखिर इनकी हठग्राहितासे खिन्न होकर कई लोग उठकर चलदिये और केवल २०-२५ व्यक्तियोंकी उपस्थितिमें मनमानी सबजेक्ट्स कमेटी नियत करलीगई। मिती फाल्गुण सुदी ३ को दिनमें सब्जेक्ट्स कमेटीकी बैठक हुई। बड़ा होहल्ला रहा। प्रायः जनताके मुँहसे यही शब्द निकलते थे कि—जब महासभा के संचालक कुछ काम नहीं करसकते तो रोली चोपड़ासे कागजोंकी पूजा कर उन्हें बसनेमें बंद क्यों नहीं करदिया जाता? सभाके कार्यकर्ताही जब जरूरत पड़नेपर प्रस्तावोंको ठुकरा देते हैं और सभा की परवाह नहीं करते तो ऐसी सभाओंसे समाजका क्या लाभ होसकता है? खंडेलवाल जैनहितेच्छुके सम्पादक पं० इन्द्रलालजी शास्त्रीने अपने पुत्रके विवाहके अवसरपर जो वेश्यानृत्य कराया था, उसके प्रति कई प्रतिष्ठित महानुभावोंने घृणा प्रकट की परन्तु, संचालकोंकी गुटबंदीके कारण उनकी कुछ न चलसकी। रात्रिको ७ बजे क़रीब ७० आदमियोंकी उपस्थितिमें परम्परापालनके लिये दो चार प्रस्ताव पास करलिये—कोई उपयोगी कार्य नहीं हुवा।

फाल्गुण शुक्ल ४ को दिनके समय सब्जेक्ट्स कमेटीकी दूसरी बैठक हुई। श्रीमान् तनसुखलालजी पांड्या कलकत्ता व सेठ गजराजजी गँगवाल लाडनूँ (सभापति दुर्ग अधिवेशन) ने प्रस्ताव रक्खा कि लोहड़साजनोंके सम्बन्धमें दुर्ग अधिवेशनमें निर्वाचित सब-कमेटीकी रिपोर्ट स्वीकार कीजाय महामन्त्रीजीने इसका विरोध किया परन्तु वहाँ उनकी कुछ न चलसकी और प्रस्ताव पास होगया। इसी प्रकार चार साक टालनेके बजाय केवल दो साक टालकर विवाह करनेका प्रस्तावभी सब्जेक्टस क-

तार का पता—"JAINJAGAT" Ajmer. Reg: No. N 352.

सन् १९३४

वर्ष ९ | अंक ७

जैनसमाज का एकमात्र स्वतन्त्र पाक्षिकपत्र।

वार्षिक मूल्य ३) रुपया मात्र।

जैन जगत्

विद्यार्थियों व संस्थाओं से २॥) मात्र।

(प्रत्येक अंग्रेजी महीने की पहली और सोलहवीं तारीखको प्रकाशित होता है)

"पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनम् यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः"॥—श्री हरिभद्रसूरि।

सम्पादक—सा०र० दरबारीलाल न्यायतीर्थ, जुबिलीबाग तारदेव, बम्बई। प्रकाशक—फतहचंद सेठी, अजमेर।

प्राप्ति स्वीकार।

जयपुर निवासी श्रीमान् सेठ रामचन्द्रजी खिन्दूका की पुत्री सौ० अन्नपूर्णादेवीका विवाह श्रीमान् बा० पद्मप्रसादजीके साथ हुवा था। इस अवसर पर वरपक्षकी ओरसे ५) तथा कन्या-पक्षकी ओरसे ११) जैन जगत्की सहायतार्थ प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त ५) श्रीमान् बा० सुखमलजी पाटनी इन्दौरसे तथा १०) एक जैन-बन्धुसे, जो अपना नाम प्रकट कराना नहीं चाहते, प्राप्त हुए हैं। उपरोक्त महानुभावोंको इस उदारताके लिये अनेकानेक धन्यवाद।

—प्रकाशक।

ग्रीष्मप्रवासकी सूचना।

जैन-जगतमें प्रकाशित अपने विचारोंके प्रचारके लिये, जैनधर्म या धर्मके विषयमें लोगोंकी विविध शंकाओंके यथाशक्ति समाधानके लिये, तथा भविष्यमें कुछ विशेष कार्य किया जासके इस विचारसे समाजका अनुभव प्राप्त करनेके लिये, गर्मीकी छुट्टियोंमें करीब डेढ़ मास तक मैंने भ्रमण करनेका विचार किया है। इसकी एक सामान्य सूचना पहिले भी निकल चुकी है। भ्रमणका प्रारम्भ अप्रेलके अन्तिम सप्ताहमें शुरू होकर करीब १० जूनको समाप्त होगा।

प्रोग्रामकी सूची अभी नहीं बनाई है, परन्तु इतना निर्णय कर लिया है कि बम्बईसे नागपुरके बीचमें तथा इसके आस पासकी ब्रांच लाइनों पर भ्रमण करना है। कुछ स्थानोंपर जाना निश्चित होगया है, कुछके लिये पत्रव्यवहार चल रहा है। इस क्षेत्रके बीचमें जहाँ जहाँ के भाई मेरी आवश्यकता समझें, वे मुझे २० अप्रेल तक सूचित करदें, जिससे प्रोग्राम बनाया जा सके। सूचना जितनी जल्दी आवे उतना ही अच्छा है।

जहाँ पर मेरे विचारोंसे सहानुभूति रखने वाले दस पाँच सज्जन हों, अथवा जिनको मेरे विचारोंको ठीक ठीक समझनेकी जिज्ञासा हो तथा विचारोंके प्रचारके लिये जो यथाशक्ति सहायता करने को तैयार हों, वे सज्जन सूचना भेजें। निमन्त्रण भेजनेके साथ यह भी लिखें कि साधारणतः वहाँ क्या क्या कार्य किस ढंगसे किया जासकेगा।

—सम्पादक।

पंचों के फौलादी पंजेका डर।

सागरमें एक और जैन विधवा-विवाह।

सागरके जैनसमाज मे पिछले कुछ सालों तक लगातार विधवाओंके विवाह होते रहे, परन्तु जबसे विधवा-विवाहोंका सिलसिला बन्द हुआ है, भ्रूणहत्याओं और विधवाओंके भागनेकी घटनाएँ बराबर सुनी जारही हैं। अभी इः महीनेभी न बीते होंगे कि मलथूराम नामक बनिएकी एक विधवा बहिन मुसलमानोंके यहाँ भाग गईथी और वहाँ से किसी तरह एक जैनआश्रममें पहुँचा दी गई। इस बाईके पुनर्विवाहके सम्बन्धमें बाई और उसके भाईको पहिलेही कहा जाचुकाथा, परन्तु उस समय वाले पवित्रताके ठेकेदारथे; पर जब वही विधवाबाई गुप्त व्यभिचारसे गर्भवती होगई और बहुत छिपाने परभी गर्भकी बात अप्रकट न रहसकी तो बाईने इसलामकी ओर पैर बढ़ा दिया।

अभी हालही में एक घटना फिर होगई। काशीराम नामक बनिएकी बहिन जो कुछ सालों पहिले जैन बालाश्रम आरासे पढ़कर लौटीथी और जिसकी युवावस्था देखकर सुधारप्रेमियोंने विधवाविवाहकी सलाह देकर बाई और भाई दोनोंसे हजारों गालियाँ खाई थीं, एक तेली जातिके बीड़ी बनाने वालेके प्रेममें फँसगई। महीनोंके सम्बन्धके बाद भाइयोंको पता पड़ा। उन्होंने उसे दूसरे गाँव भेजदिया परन्तु बीड़ीभोंज तेली महाशयका आदेश पहुँचतेही श्रीमतीजी फिर सागर आगई और अपने प्रेमीके साथ बाहर भाग जानेका मंसूबा बाँधने लगी। सौभाग्यसे इस बातकी खबर कुछ समाजसेवकोंको लग गई और उन्होंने बाहरसे एक जैन सज्जनको बुलाकर उनसे इसका इलाज करना चाहा। समाजसेवकोंका पूर्णतया यह विचारथा कि पुनर्विवाहकी विधिवत् कार्यवाही के बाद बाई आगन्तुक सज्जनको सौंपी जावे, पर बाई स्वयं, उसके भाई, और विधवा-रक्षाका यश बटोरनेवाले सज्जन 'विधवा विवाह' जैसी घृणित प्रथासे बहुत दूर रहनेका मंसूबा कदाचित पहिलेही बाँधचुके थे, अतः वैसा न होसका। बाईके भाइयोंके जरिए विधिवत पुनर्विवाहके हिमायतियोंका काफ़ी अपमान किया गया और यदि, इन विधवाविवाहमें अपनी लम्बी नाक बचानेवालोंको रोका न गया होता तो सुधारकों पर और खासकर श्रीयुत हरिश्चन्द्र भैयाजीपर बाईके भाई काशीराम वगैरह घातक हमला किए बगैर न रहते।

पर चूँकि आगन्तुक सज्जनके साथ विधवाका सम्बन्ध होजाना लाज़िमी और उनके साथ विधवाका अन्यत्र चला जाना अनिवार्य होगयाथा अतः वैसा किया गया। इसमें किसी सुधारकका विरोधी मत न था। इस तरह सागरकी जनता इसे जैनियोंका एक नया विधवाविवाह ही मानती है।

यह और ऐसीही अन्य घटनाएं इस बातका स्पष्ट प्रमाण हैं कि विधवाएँ भीतरही भीतर चाहती हैं कि उनका पुनर्लग्न कर दिया जावे। पर, पञ्चोंका फौलादी पंजा उन्हें ऐसी विभीषिका दिखलाता है कि पुनर्विवाहका नाम सुनते ही वे सिहर उठती हैं। वे काम चाहती हैं। विधवा-विवाहका नाम नहीं।

उनकी अशिक्षा, भीरुता और स्वाभाविक लज्जाका ये पापी पंच अनुचित लाभ उठाते हैं और तबतक उन्हें विधवाविवाह या धरेजे के लिए तैयार नहीं होने देते जबतक वे, उनके असिस्टेंट या कोई तीसरा उन्हें गर्भवती नहीं कर देता और गर्भ गिरानेके उपाय निष्फल नहीं हो जाते।

जैन विधवाएं इस फौलादी पंजेसे छूटकर, लज्जा और भीरुता पर लात मारकर पुनर्विवाहके लिए तैयारहों और अनन्त जन्म मरण देने वाले गुप्त पापों—भ्रूणहत्याओंसे बचें, ऐसी कोई अमलमें आने योग्य योजना यदि कोई सज्जन समाजके सामने रखनेमें समर्थ होसके, तो वे विधवाबहिनों और साथही जैनसमाजके धन्यवाद भाजन होंगे एवं अपार पुण्य लाभ करेंगे।

—भगवंत गणपति गोयलीय,

न्यायाधीश से—

तेरी आत्मा गूँगी, तेरा न्याय, बंधु! है नेत्रविहीन,
यशोलोलुप! तू बेच रहा है सत्य रत्न दमड़ीके तीन;
तू असत्यको सत्य समझकर और सत्य को समझ असत्य,
रूढ़ न्याय निष्ठा से अकड़ा फिरता रे स्वार्थों के भृत्य!
कर न सकी है नष्ट-कसौटी तेरी सोने की पहिचान!
न्याय माँगने आएगा तुझसे कोई बिरला अनजान!

—भगवंत गणपति गोयलीय।

वर्ष ६ — अंक १
चैत्र शुक्ला १ — ता० १६ मार्च
वीर संवत् २४६० — सन् १६३४ ई०

जैनधर्म का मर्म ।

(४२)

छठा अध्याय ।

सम्यक् चारित्र ।

सुखी होनेके लिये जो सच्चा प्रयत्न किया जाता है वह सम्यक् चारित्र है। प्रथम अध्यायमें सुखमार्गका विवेचन किया गया है। सुखकी प्राप्तिके लिये जो कर्तव्याकर्तव्यका विवेक है, वह सम्यग्दर्शन है। इसका विस्तृत विवेचन तीसरे अध्यायमें किया गया है। तत्त्वका ज्ञान सम्यग्ज्ञान है; और इसके बाद जो क्रिया, आचरण, आत्मशुद्धि आदि कीजाती है, वह सम्यक्चारित्र है।

शंका—जैनाचार्योंने रागद्वेषकी निवृत्तिको सम्यक् चारित्र * कहा है। रागद्वेषका अर्थ क्रोध मान, माया, लोभ है। इतनाही नहीं, किन्तु चारित्रकी पूर्णता के लिये वे यहभी आवश्यक समझते हैं कि मन वचन कायकी क्रियाओंका पूर्ण निरोध होना चाहिये। परन्तु आपने जो चारित्रका लक्षण किया है, वह तो प्रवृत्तिरूप मालूम होता है; जबकि सभी जैनाचार्य एक स्वरसे चारित्रको निवृत्ति रूपही स्वीकार करते हैं।

समाधान—आचार्योंने ऐसा लक्षण क्यों किया, इसकी जाँच करनेके लिये पहिले चारित्र शब्दके अर्थपर विचार करना चाहिये। चारित्र† शब्दका अर्थ है चलना, अर्थात् जिसके द्वारा चला जाये वह। किसीभी ध्येयके लिये जब हम आगे बढ़ते हैं, तब वह चारित्र कहलाता है। जबकि हमारा ध्येय सुख है, तब सुखके मार्गमें आगे बढ़ना अथवा आगे बढ़ानेवाला कार्य-प्रयत्न-क्रिया चारित्र कहलाया। यही कारण है कि मैंने चारित्रका लक्षण निवृत्तिप्रवृत्तिके झमेलेसे बचाकर लिखा है। उपर्युक्त जैनाचार्योंने चारित्रका सरल शुद्ध व्यापक लक्षण न करके उसे अपनी मान्यतारूपी साँचेमें ढालकर दिखलाया है। अर्थात सुख प्राप्तिके प्रयत्न को वे भी चारित्र स्वीकार करते हैं परन्तु उनका कहना यह है कि वह प्रयत्न निवृत्तिरूप ही पड़ता है इसलिये वे निवृत्तिकोही चारित्र कहदेते हैं। इसका फल यह हुआ है कि जैनाचार्योंकी दृष्टिमें संयमही चारित्र बनगया है। यही कारण है कि उमास्वातिने चारित्रके भेदोंको संयमका नाम दिया है। सामायिक ※

---

* बहिरब्भंतर किरिया रोहो भव कारणप्पणासट्ठं। णाणिस्स जं जिणुत्तं तं परमं सम्मचारित्तं—द्रव्यसंग्रह। भवहेतु प्रहाणाय बहिरभ्यन्तरक्रिया—विनिवृत्तिःपरं सम्यक् चारित्रम् ज्ञानिनो मतम्। त० श्लोकवार्त्तिक १-१-३। संसार कारण विनिवृत्तिम्प्रत्यागूर्णस्य ज्ञानवतो बाह्याभ्यन्तर क्रिया विशेषोपरमः सम्यक् चारित्रम्। त० राजवार्तिक। १-१-३।

† चरति चर्यते अनेन चरण मात्रं वा चारित्रम्—सर्वार्थसिद्धि। इत्रन् करणे प्रज्ञादिपाठात्स्वार्थे अण्।

※ सामायिक संयम, छेदोपस्थाप्य संयमः परिहार-विशुद्धिसंयमः सूक्ष्मसांपरायसंयमः यथाख्यातसंयमः

संयम आदिको वे चारित्रके भेद स्वीकार करते हैं। परन्तु वास्तवमें चारित्र और संयमके अर्थोंमें बहुत अन्तर है। चारित्रका अर्थ 'चलना या जिसके द्वारा चलाजाय' है, जब कि संयम शब्दका अर्थ रुकजाना है। इस प्रकार दोनोंका अर्थ एक दूसरेके विरुद्ध है। इसलिये चारित्रका लक्षण तो वही ठीक है जो मैंने लिखा है। जैनाचार्योंने जो चारित्रका लक्षण लिखा है वास्तवमें वह संयमका लक्षण है।

प्रश्न—चारित्र और संयममें जब इतना अन्तर है तब दोनोंको एकरूप कहनेका कारण क्या है? जैनाचार्योंने ऐसी भूल क्यों की?

उत्तर—संस्कृतमें बिजलीके विद्युत्, चपला आदि अनेक नाम हैं। परन्तु विद्युत और चपला दोनोंके अर्थमें बहुत अन्तर है। विद्युतका अर्थ है चमकनेवाली और चपलाका अर्थ है चपलता वाली। फिरभी दोनों एकही वस्तुके नाम कहेजाते हैं। इसका कारण यह है कि ये दोनों धर्म एकही वस्तुमें पाये जाते हैं। बिजली चपलभी है और चमकनी भी है। चारित्र और संयमके विषयमें भी यही बात है। सुखके लिये जो प्रयत्न किया जाता है वह एक दृष्टिसे चारित्र है, दूसरी दृष्टिसे संयम। अच्छी प्रवृत्तियाँ करनेसे वह चारित्र है, और बुरी प्रवृत्तियों को रोकनेसे संयम है। सम्यक्‌चारित्रके लक्षणमें दोनों बातोंका उल्लेख होता है। एकतो अशुभसे निवृत्ति, दूसरी शुभमें प्रवृत्ति। इस प्रकार अपेक्षा भेद से एकही वस्तुके ये दो नाम हैं। अब इनमें कुछ भेद नहीं माना जाता।

प्रश्न—यद्यपि जैनशास्त्रोंमें शुभ प्रवृत्तिको भी चारित्र कहा है; परन्तु जबतक थोड़ीभी प्रवृत्ति है, तबतक चारित्रकी अपूर्णताही मानी है। शुभ प्रवृत्ति को जहाँ चारित्र कहा है, वहाँभी व्यवहारदृष्टिसे कहा है। इससे मालूम होता है कि वह वास्तविक चारित्र नहीं है। वास्तविक चारित्र निवृत्ति रूपही है।

उत्तर—जीवन्मुक्त या अर्हन्त अवस्था तक जितना चारित्र है वह शुभ प्रवृत्तिरूप है। जैनधर्म कहता है कि तीर्थंकर भगवान्‌भी जीवनके अन्त तक प्रवृत्तिमय चारित्रवान होते हैं। जीवनके अंतिम समयमें कुछ सेकिन्डोंके लिये उनकी प्रवृत्तियाँ रुकजाती हैं। उस समय श्वास हृदय आदिकी क्रियाएँ तक रुकजाती हैं। ऐसी अवस्थामें दूसरी प्रवृत्ति तो हो ही कैसे सकती है? योग निरोधरूप इस अवस्थामें जो चारित्रकी पूर्णता बतलाई गई है, उसका कारण यह है कि वह मोक्षमार्गकी पूर्णता है। जैसे—मार्गको पूरा करनेके लिये चलना आवश्यक है, किन्तु जबतक चलना है, तबतक मार्गकी पूर्णता नहीं कही जासकती; उसी प्रकार कल्याणकी प्राप्तिके लिये प्रवृत्ति आवश्यक है, परन्तु कल्याण की पूर्ण प्राप्ति होजानेपर प्रवृत्तिको रुकनाही चाहिये। [illegible] प्रयत्न साध्यकी सिद्धि होजाने पर निश्चेष्ट होजाता है, तभी वह पूर्ण प्रयत्न कहलाता है। इसी प्रकार चारित्रभी जीवनके अन्तिम पलमें निश्चेष्ट होजाता है, और तभी वह पूर्ण कहलाता है। चारित्रकी पूर्ण अवस्थामें जो निश्चेष्टता पैदा होती है वह चारित्रके स्वरूपका फल नहीं है, किन्तु चारित्र की पूर्णताका फल है।

प्रवृत्तिरूप चारित्रको जो व्यवहार चारित्र कहा गया है, उसका अर्थ यह नहीं है कि वह अवास्तविक है, किन्तु उसका मतलब यह है कि चारित्रका वह व्यावहारिकरूप है। व्यवहारमें आनेवाला रूप मिथ्या नहीं होता, सिर्फ स्थूल होता है। जबतक आत्मा व्यवहारके भीतर है, तबतक उसे व्यवहारचारित्र का पालन करनाही पड़ता है। केवली, जीवन्मुक्त,

---

इति पञ्चविधं चारित्रम्। तत्त्वार्थभाष्य ९ – १८।

[illegible] यम उपरमे। (to check, to stop)

असुह किरियाण चाओ सुहासु किरियासु जो य अपमाओ। तं चारित्तं उत्तमगुणजुत्तं पालह निरुत्तं। सिरिसिरिवाल कहा ३१। असुहादो विणिवित्ती सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं। वद समिदि गुत्तिरूवं ववहार णयादु जिणभणियं। दव्वसंगह।

स्थितिप्रज्ञ, अर्हन, तीर्थंकर आदि शब्दोंसे जिनका उल्लेख किया जाता है, वे सब व्यवहारके भीतरही हैं, इसलिये उन्हें व्यवहारचारित्रका अर्थात् प्रवृत्तिमय चारित्रका पालन करनाही पड़ता है। जबतक प्रवृत्ति है अर्थात् मनसे, वचनसे या शरीरसे थोड़ी भी क्रिया होरही है, तबतक चारित्र प्रवृत्तिमय ही है। मतलब यह कि जीवनके अन्तिम समयको छोड़कर शेष समग्र जीवनमें चारित्र प्रवृत्तिमय रहताही है।

जबतक जीवन है, तभीतक चारित्र है; क्योंकि तभीतक प्रयत्न है। जीवनके अन्तिम समयमें (चतुर्दश गुणस्थानमें) जो चारित्र या संयम कहा जाता है, उसका कारण यही है कि उस समय जीवन है मन वचन कायको पूर्णरूपसे रोकनेका ही प्रयत्न है। जिस समय जीवन नहीं रहता, उस समय चारित्र नहीं माना जाता। यही कारण है कि मुक्तात्माओंमें संयम या चारित्र नहीं माना जाता। मुक्तात्माओंमें सिद्धगति ज्ञान दर्शन सम्यक्त्व और अनाहारको छोड़कर बाकी नव मार्गणाओंका अभाव माना गया * है, उनमें संयममार्गणाभी एक है। मुक्तात्माओंमें संयम या चारित्रका अभाव मानागया इसका कारण सिर्फ यही है कि वहाँ कोई प्रयत्न नहीं है।

प्रश्न—दर्शन ज्ञान आदिके समान चारित्रभी एक गुण है। गुणका कभी नाश नहीं होता। यदि मुक्तात्माओंमें चारित्र न माना जायगा तो इसका अर्थ होगा कि चारित्र गुणका नाश होगया। परन्तु गुणका नाश नहीं होता, इसलिये वहाँ चारित्र मानना चाहिये।

उत्तर—एक आदमीमें इतनी शक्ति है कि अगर कोई उसे साँकलसे जकड़दे तो वह साँकल को तोड़सकता है। परन्तु इस समय उसे कोई साँकलसे नहीं जकड़ता, इसलिये वह साँकल नहीं तोड़रहा है। तो क्या इसका यह अर्थ है कि उसमें साँकल तोड़नेकी शक्ति नहीं है? इसी प्रकार चारित्र का काम आत्माको सुख प्राप्त कराना है। आत्मा जब दुःखमें हो तो सुख प्राप्त कराता है। अगर दुःखमें न हो तो सुख प्राप्त करानेकी जरूरत न होनेसे वह नहीं कराता, इससे उसका अभाव नहीं होजाता किन्तु शक्तिरूपमें उसका सद्भाव रहता ही है। वैभाविक शक्ति योगशक्ति आदि अनेक शक्तियाँ आत्मा में मानी जाती हैं, परन्तु मुक्तावस्थामें उनका दर्शन नहीं होता वे शक्तिरूपमें रहती हैं। ज्योंही निमित्त मिले त्योंही वे अपना काम दिखलाने लगें। यही बात चारित्रके विषयमें भी समझना चाहिये।

मतलब यह है कि चारित्रका वर्णन ऐसे शब्दों में न करना चाहिये जिससे वह अभावरूप ही मालूम होता हो। उसका सद्भावरूप वर्णन करना चाहिये। जैन शास्त्रोंके अनुसार अभाव भावान्तर स्वरूप है। इसलिये निवृत्तिरूप चारित्र भावान्तर रूप या प्रवृत्तिरूप होना चाहिये। दूसरी बात यह कि चारित्रकी परीक्षा निवृत्ति प्रवृत्तिकी कसौटीपर कसकर न करना चाहिये किन्तु सुखप्रापकताकी कसौटी पर करना चाहिये। जो प्रवृत्ति सुखको प्राप्त करानेवाली हो और दुःखको दूर करनेवाली हो वह कितनीभी अधिक हो परन्तु वह चारित्र है; और जो निवृत्ति सुख प्राप्त न करे और दुःख दूर न करे वह अचारित्र है। तीर्थंकरके समान प्रवृत्तिशील कौन होगा? परन्तु उनके समान समुन्नत चारित्र किसका है? इसी प्रकार जो प्राणी जड़समान है (पृथ्वीकायिक आदि) या जो आलसी दीर्घसूत्री निद्रालु और कायर हैं, वे निवृत्तिपरायण होकरके भी चारित्रहीन हैं। इसलिये चारित्र, निवृत्ति प्रवृत्ति पर निर्भर नहीं है किन्तु सुखप्रापकता पर निर्भर है। यदि पूर्ण सुखकी प्राप्तिके लिये पूर्ण निवृत्ति आवश्यक हो तो पूर्ण निवृत्तिभी चारित्रके अंतर्गत होजायगी; परन्तु वह इसलिये नहीं कि वह निवृत्ति है किन्तु इसलिये कि वह सुखप्रापक है।

---

* सिद्धाणं सिद्धगई केवलणाणं च दंसणं खयियं। सम्मत्तमणाहारं उवजोगाणक्कमपउत्ती। गुणजीवठाण रहिया सण्णापज्जत्ति पाणपरिहीणा। सेसणवमग्गणूणा सिद्धा सुद्धा सदा होंति। गोम्मटसार जीवकांड ७३१।

यह बात दूसरी है कि चारित्रके वर्णनके लिये कहीं निवृत्तिपर जोर दिया जाय, कहीं प्रवृत्तिपर जोर दिया जाय; परन्तु किसी एक पक्षको पकड़के रह-जाना एकान्तवाद ही है। और एकान्तवाद तो जैन धर्मके विरुद्ध है; इसलिये चाहे निवृत्तिरूप हो या प्रवृत्तिरूप हो, जो सुखी होनेका सच्चा प्रयत्न, क्रिया-चर्या-आचरण है, वह सम्यक्चारित्र है। जैनशास्त्रों में अगर कहीं चारित्रके नाम पर निवृत्ति या प्रवृत्ति पर भार रक्खा गया हो तो समझना चाहिये कि वह शास्त्ररचनाके समयके देश कालका प्रभाव है, या उस समयकी आवश्यकताका फल है। वह सार्वकालिक और सार्वत्रिक स्वरूप नहीं है।

प्रथम अध्यायमें कल्याणमार्गकी मीमांसा कीगई है और अधिकतम मनुष्योंके अधिकतम सुखवाली नीतिका संशोधित रूप बतलाया गया है। वहाँ पर सुखकी प्राप्तिके लिये दो बातें आवश्यक बतलायीं गई हैं (१) संसारमें सुखकी वृद्धि करना और (२) सुखीरहनेकी कला सीखना। दुःखके जितने साधन दूर किये जासकें उनको दूर करनेका और सुखके जितने साधन जुटाये जासकें उनको जुटानेका प्रयत्न करना तथा अवाशिष्ट दुःखको समभावसे सहन करके अपने को सदा सुखी मानना, सुखका वास्तविक उपाय है।

इस प्रयत्नका बहुभाग मानसिक भावनापर अवलम्बित है। दुःखके साधन दूर करनेका और सुखके साधन जुटानेका कोई कितनाभी प्रयत्न क्यों न करे, फिरभी कुछ न कुछ त्रुटि रह जायगी जिसे संतोषसे पूरा करना पड़ेगा। जितना कुछ मिलता उसकी अपेक्षा न मिलनेका क्षेत्र बहुत ज्यादः है, इसलिये संतोषादिसे बहुत अधिक काम लेनेकी जरूरत है। इसलिये कहना चाहिये कि सुखका मार्ग आत्माकी भावनापर ही अधिक अवलम्बित है।

ऊपर जो बातें बताई गई हैं उनमें दूसरी बात (सुखी रहनेकी कला) तो परिणामों परही निर्भर है और पहिली बातका भी साक्षात् सम्बन्ध परिणामोंसे है। क्योंकि दुःख क्या है? एक तरहका परिणाम ही है। प्रतिकूल साधनोंके रहने परभी अगर हम बेचैनीको पैदा नहीं होने दें तो हमें दुःख न होगा। प्रतिकूल साधन बेचैनी पैदा करते हैं इसलिये उनको दूर करनेका उपाय सोचा जाता है। अगर हम उनपर विजय प्राप्त कर सकें तो दुःखसे बच-सकते हैं। मतलब यह है कि अपने परिणामोंके ऊपरही अधिकतर दुःखसुख अवलम्बित है, इसलिये कल्याणमार्गमें परिणामोंका बड़ा भारी महत्व है। अपने भावोंपर असर डाले बिना कोईभी दुःख सुख नहीं होता इसलिये कहना चाहिये कि दुःख सुखका साक्षात् सम्बन्ध परिणामोंसे–भावोंसे–है।

दूसरेके लिये जब हम कुछ काम करते हैं तबभी परिणामोंका विचार किया जाता है। इसके चार कारण हैं—

१—हमारी जैसी इच्छा होती है, हम वैसाही प्रयत्न करते हैं। जैसा प्रयत्न किया जाता है, वैसाही फल होता है। यह साधारण नियम है। कभी कभी प्रयत्नसे विपरीत भी फलहोता है, परन्तु यह कादा-चित्क है। अधिक सुखके लिये हमें उसी नीतिसे काम लेना पड़ेगा जो अधिक स्थलोंमें फलप्रद हो।

२—मनुष्य अच्छे कामके लिये अच्छी भावना की ही जिम्मेदारी ले सकता है, न कि अच्छे फल की। डाक्टर ईमानदारीसे काम करनेकी ही जिम्मे-दारी लेसकता है। वह रोगीको बचा ही लेगा, यह नहीं कहा जासकता। अच्छी भावनापूर्वक प्रयत्न करनेपर भी अगर कोई मरजाय, इसपर अगर डॉक्टरको खूनी कहा जाय तो कोईभी मनुष्य किसी को सहायता न देगा।

३—भावनाके साथ सुखदुःखका साक्षात्संबन्ध है। चोरी करते समय जो भय उद्वेग आदि पैदा होते हैं, वे चोरोंकी भावनापर ही निर्भर हैं। भूलसे अगर हम किसीकी चीज उठालें तो हमें चोरकी संक्लेशताका कष्ट न उठाना पड़ेगा। मतलब यह है कि आत्माका मालिन्य दुर्भावनापर निर्भर है। आत्माके साथ जो कर्म बधते हैं उनके ऊपर हमारे

परिणामोंका ही अच्छा या बुरा प्रभाव पड़ सकता है, न कि परिणामोंके द्वारा होनेवाले बाहिरी कार्योंका।

४—दूसरेके अभिप्रायोंका हमारे ऊपर प्रभाव अधिक पड़ता है। एक बालकको प्रेमपूर्वक बहुत जोरसे थपथपाने पर भी वह प्रसन्न होता है, परन्तु क्रोधके साथ उँगलीका स्पर्श भी वह सहन नहीं करता। जब हमारे विषयमें किसीके अच्छे भाव होते हैं, तो हम प्रसन्न होते हैं और बुरे भाव होते हैं तो अप्रसन्न होते हैं, इसलिये हमको भावनाकी शुद्धि करना चाहिये।

प्रश्न—यदि भावशुद्धिके ऊपरही कर्तव्याकर्तव्य, चारित्र अचारित्रका निर्णय करना है तो 'सार्वत्रिक और सार्वकालिक अधिकतम प्राणियोंको अधिकतम सुख देने वाली नीति' को कर्तव्यकी कसौटी क्यों बनाया? भावनाको ही कसौटी बनाना चाहिये।

उत्तर—भावनाकी मुख्यता होनेपर भी कर्तव्याकर्तव्यका निर्णय करनेके लिये किसी कसौटी की आवश्यकता बनीही रहती है। उदाहरणके लिये, कुरुक्षेत्र में अर्जुनकी भावना शुद्ध होनेपरभी वह यह नहीं समझसकताथा कि इस समय मेरा कर्तव्य क्या है? भावनाकी बड़ाभारी उपयोगिता यही है कि उपर्युक्त नीतिका ठीक ठीक पालन हो। हाथ पैर आदि सभी अंग ठीक ठीक काम करें, इसके लिये प्राणकी आवश्यकता है। अकेले प्राण कुछ नहीं कर सकते, साथही प्राणहीन शरीरभी व्यर्थ है। इसीप्रकार उपर्युक्त कसौटी न हो तो भाव शुद्धि होने पर भी चारित्रका पालन नहीं होसकता; और भावशुद्धि न होनेपर उपर्युक्त नीतिका पालन भी असंभव है। इसलिये भावपूर्वक उपर्युक्त नीतिका पालन करना चारित्र है।

इस चारित्रधर्मका पालन करनेके लिये अनेक नियमोपनियम बनाये जाते हैं। परन्तु उन नियमों को चारित्र न समझना चाहिये। वे सिर्फ चारित्रके उपाय हैं। उनको उपचारसे चारित्र कह सकते हैं। परन्तु जब वे वास्तविक चारित्रको उत्पन्न करें तभी उन्हें उपचारसे चारित्र कहा जासकता है, अन्यथा नहीं। एक नियम किसी परिस्थितिमें चारित्रका कार्य या चारित्रका कारण कहा जासकता है। वही नियम अवस्थाके बदलने पर अचारित्र या असंयम कहा जासकता है। प्रत्येक नियम और उसके कार्य के विषयमें हमें इसी तरह अपेक्षाभेदसे विचार करना चाहिये। उदाहरणार्थ, किसीको मारडालना पाप है; परन्तु न्यायकी रक्षाके लिये निस्वार्थता—समभाव—से खूनीको मृत्युदंड देना पाप नहीं है, क्योंकि प्राणियों की सुखरक्षाके लिये ऐसा करना आवश्यक है।

इस प्रकार जीवनमें ऐसे सैकड़ों प्रसंग आते हैं जब सामान्य नियमोंका भंग करना धर्मके लिये ही आवश्यक मालूम होता है। जब ऐसे अवसर कुछ अधिक संख्यामें आते हैं, तब हम उन्हें अपवाद नियम बनाते हैं। इस प्रकार उत्सर्ग और अपवाद विधियोंका भेद खड़ा होजाता है। परन्तु जीवन इतना जटिल है और उसमें अनेकबार ऐसे प्रसङ्ग आते हैं कि प्रचलित अपवाद नियमभी कुछ काम नहीं देसकते। उस समय नियमोंकी पर्वाह न करके हमें चारित्रकी रक्षा करना पड़ती है। इसलिये कहना पड़ता है कि पूर्ण संयमीके लिये नियमोंकी कोई आवश्यकता नहीं है। संयम या चारित्रमें जितनी अपूर्णता है उतनेही अधिक नियमोंके बन्धन रखना पड़ते हैं। हाँ, यह बात अवश्य है कि अपवाद अनुकरणीय नहीं होते। अपवाद प्रत्येक प्राणी की योग्यता और उसकी परिस्थितिके अनुसार होते हैं। तात्पर्य यह है कि कोई कार्य चाहे वह नियमके भीतर हो या नियमके बाहिर हो, अगर उससे कल्याणकी वृद्धि होती है तो वह चारित्र है अन्यथा अचारित्र है। किसी कार्यको नियमोंकी कसौटी पर कसकर उसकी जाँच न करना चाहिये, किन्तु कल्याणकारकता की कसौटी पर कसकर उसकी जाँच करना चाहिये। धर्माधर्मकी परीक्षा का यही सर्वोत्तम उपाय है।

इसका यह मतलब नहीं है कि नियम अनावश्यक है। साधक अवस्थामें नियमोंकी आवश्यकता अवश्य है। परन्तु जब मनुष्य संयमनिष्ठ होजाता है तब वह नियमोंको पालन करनेकी चेष्टा नहीं करता, किन्तु कल्याणकारकताको कसौटी बनाकर उसीके अनुसार कार्य करता है। उस प्रकार कार्य करनेमें नियमोंका पालन आपसे आप होजाता है। यदि कभी नहीं होता तो भी इससे चारित्रमें कुछ त्रुटि नहीं होती बल्कि कभी कभी वह नियमही संशोधनके योग्य हो जाता है।

नियम आवश्यक होने पर भी जो मैं यहाँ उन पर जोर नहीं देरहा हूँ, इसका कारण यह है कि नियमोंको सार्वकालिक या सार्वत्रिक रूप नहीं दिया जासकता। उनको परिस्थितिके अनुसार बदलनेकी आवश्यकता होती है। दूसरी बात यह है कि असंयमी भी संयमके नियमोंका अच्छी तरह पालन करते हैं, किन्तु उनके भीतर रहते हुए भी पाप करते हैं। तीसरी बात यह है कि नियम तो भय और लालचसे भी पाले जाते हैं, परन्तु इससे आत्मशुद्धि नहीं होती और न इससे स्वपर कल्याणकी वृद्धि होती है। भय और लालचके कारण दूर होने पर वह मनुष्य कल्याणका नाश करने लगता है। इस लिये ऐसे आदमी पर विश्वास नहीं रक्खा जा सकता। अगर भूलसे विश्वास कर लिया जाता है तो ठीक मौके पर धोखा खाना पड़ता है। इस प्रकार वह गोमुखव्याघ्रकी तरह व्याघ्रसे भी अधिक भयंकर सिद्ध होता है। नियमका गुलाम यह नहीं देखता कि इस कार्यसे स्वपर कल्याण होता है कि नहीं; वहतो मनमानी स्वार्थसिद्धि करनेके लिये दूसरोंकी बड़ीसे बड़ी हानि करते हुए भी यही देखेगा कि मैं नियमभंगके अपराधमें तो नहीं पकड़ा जाता। बस, इतनेमें ही वह संतुष्ट हो जाता है। परन्तु इस प्रकारकी आत्मवञ्चना कल्याणकी वृद्धि नहीं कर सकती। इसलिये नियमों पर जोर न देकर कल्याणकारकता पर जोर दिया जाता है।

फिरभी चारित्रके प्रतिपादनमें नियमोंका बड़ा भारी स्थान है। चारित्रके प्रतिपादनके लिये हमें उसका कोई न कोई रूपतो बतलानाही पड़ता है; और वह रूप नियमही है। हम जिस द्रव्यक्षेत्र कालभावमें हैं, उसीके अनुसार, चारित्रका रूप निर्मित होता है। योग्यतानुसार मनुष्यमें जो श्रेणी विभाग होता है, उसके अनुसार चारित्रमें भी श्रेणीविभाग होता है। महाव्रत, अणुव्रत तथा ग्यारह प्रतिमाएँ इसी श्रेणीविभाग का फल हैं। इस प्रकार चारित्रका विवेचन अनेक प्रकारके विधिविधानोंका समूह हो जाता है। उसकी निर्दोषताके लिये हमें स्याद्वादका उपयोग करना चाहिये।

वस्तुके पूर्णस्वरूपको हम कह नहीं सकते, इसलिये उसके किसी एक अंशका निरूपण करते हैं। यहाँपर स्याद्वाद का कर्तव्य यही है कि वह बतावे कि वस्तु अमुक अपेक्षासे अमुकरूप है। दूसरी अपेक्षाओंसे वस्तु कैसी है, इस विषयमें वह मौन रखता है अथवा साधारण संकेत करता है। इसी प्रकार चारित्रका प्रतिपादन करते समय हमें यही कहना चाहिये कि अमुकद्रव्य क्षेत्र कालभावमें अमुक विधि कल्याणकारी है। द्रव्यक्षेत्रकालभावके परिवर्तन होनेपर उस विधिमें परिवर्तनभी किया जा सकेगा। मतलब यहकि चारित्रके लिये कोई न कोई विधि-नियम-कर्तव्य तो रहेगा ही, परन्तु सदा सर्वत्र अमुकही रहना चाहिये, ऐसा बन्धन न रहेगा।

इसप्रकार विधिविधानोंके निर्णय होजाने पर भी पूरा काम न होजायगा। उनके पालन करनेका ढंग भी देखना पड़ेगा। जैनाचार्योंने इस विषयमें बहुत सतर्कता रक्खी है। व्रतके लिये उनकी यह शर्त है कि जो निःशल्य* होगा वही व्रती है। जिसप्रकार गाय होनेपर अगर उससे दूध न निकले तो उसका होना व्यर्थ है, उसीप्रकार जो निःशल्य नहीं है, उसका व्रत व्यर्थ है। शल्यवाला व्रत रखने परभी व्रती नहीं कहला सकता।

* निःशल्यो व्रती

शल्यें तीन हैं—माया, मिथ्यात्व और निदान। तीनमें से एकभी शल्य हो तो कोई व्रती नहीं हो सकता। जहाँ व्रतमें मायाचार है, वहाँ व्रत, व्रत नहीं है। जगत्का कल्याण करना उसका लक्ष्य नहीं होता, किन्तु 'हम कल्याण करनेवाले हैं' इस प्रकारका झूठा प्रदर्शन करके दुनियाँ को धोखा देने की भावना होती है। परन्तु ऐसा व्यक्ति जगत्में कल्याणकी वृद्धि नहीं करसकता।

मिथ्यात्वी भी व्रती नहीं होसकता, क्योंकि उसमें वह विवेक ही नहीं है जिससे कल्याणकी वृद्धि होती है। वह देखादेखी ज्योंत्यों करके बाह्य आचरण करता है। कल्याणके साथ इसका क्या सम्बन्ध है, यह बात वह नहीं समझता। इसलिये वह रूढ़िका ही पालन कर सकता है, किन्तु व्रती नहीं बनसकता। रूढ़िके विरुद्ध जानेमें अगर कल्याण होता है तो वह कल्याणका ही विरोध करने लगेगा। इस प्रकार न तो वह ठीक मार्ग पकड़ सकता है, न उससे उचित लाभ उठा सकता है।

किसी व्रतको कर्तव्यदृष्टि से न करके स्वार्थ दृष्टिसे करना निदान शल्य है। ऐसा मनुष्यभी व्रती नहीं है। क्योंकि ऐसा मनुष्य जगत् में कल्याणवृद्धि करना नहीं चाहता, जैसाकि प्रथम अध्याय में बताया गया है। व्रतको तो उसने स्वार्थसिद्धिका साधन बनाया है। जिस उद्देश्यसे चारित्र की आवश्यकता बताई गई है, उसकी इसको ज़राभी पर्वाह नहीं है। इसलिये यह अव्रती है।

इसप्रकार तीन शल्योंका विवेचन करके नियमों के दुरुपयोगको रोकनेका सुन्दर प्रयत्न कियागया है। फिर भी कौनसा नियम किस अवस्थामें कितना उपयोगी है, उसके अपवाद कब कैसे होते हैं, उनको किस अपेक्षासे कितने भागों में विभक्त करना चाहिये, कब किसपर कितना ज़ोर डालना चाहिये, पुराने नियम आजके लिये कितने उपयोगी हैं, और उनमें क्या क्या परिवर्तन आवश्यक हैं, इत्यादि विवेचन चारित्रको समझनेके लिये आवश्यक है। इस अध्यायमें उन्हींका वर्णन किया जायगा।

जैनशास्त्रोंमें तथा जैनेतर शास्त्रोंमें भी चारित्र या संयम पाँच भागोंमें विभक्त कियागया है—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। बाक़ी जितने विधिविधान हैं वे सब इनके अन्तर्गत हैं या इनके साधक हैं। इन पाँच व्रतोंमें भी कोईकोई एक दूसरे के भीतर आजाते हैं। इसका खुलासा आगे किया जायगा। यहाँपर इन पाँचोंके स्वरूप पर अलग अलग विवेचन कियाजाता है।

सम्पादकीय टिप्पणियाँ।

रूसी महिला।

बीस वर्ष पहिले हमारे यहाँ स्त्रियोंकी जो दशा थी और जिसमें आजभी विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है, उसकी अपेक्षा रूसी स्त्रियोंकी दशा उस समय और भी ख़राबथी। परन्तु आज वहाँकी स्त्रियोंकी जो उन्नति हुई है, जिस तरह उनकी मनुष्यताका विकास हुआ है उसे जानकर आश्चर्यचकित होजाना पड़ता है। वहाँ आज नवीन लड़कियाँ ही नहीं, किन्तु वयस्क स्त्रियाँभी शिक्षा प्राप्त करती हैं। सन् १९३२ में ऐसी अस्सीलाख स्त्रियोंने वहाँ शिक्षा पाईथी। एकलाख पचास हज़ार स्त्रियाँ राज्यके शासनविभागमें सदस्या रूपमें कार्य कर रही हैं। कम्यूनिस्ट पार्टीमें पाँचलाख स्त्री सदस्यायें हैं। व्यापार तथा राज्यसंचालनके ऊँचेसे ऊँचे पदों पर हज़ारों स्त्रियाँ नियुक्त हैं। हज़ारों स्कूल इसलिये खुले हुए हैं कि उनमें मज़दूर स्त्रियोंको शिक्षा दीजाय। और वहाँ स्त्रियाँ समरकी वीराङ्गनाएँ भी बनाई जाती हैं। उनको युद्धके सब अंगों की शिक्षा दीजाती है। केम्पमें रहकर उन्हें सैनिक जीवनकी सारी बातोंका अभ्यास करना पड़ता है।

निःसन्देह इसमें बहुतसी बातें ऐसी हैं जो सरकार के हाथमें हैं। किसी विदेशी सरकारसे ऐसी आशा करना व्यर्थही है। परन्तु बहुतसे सुधार अबभी हमारे हाथमें हैं।

यद्यपि स्त्री और पुरुषके कार्यक्षेत्रके विषयमें आज गम्भीर मतभेद है, परन्तु जो लोग कार्यक्षेत्रके विषयमें समानता और एकरूपताको मानते हैं, उन्हेंतो उसके अनुसार स्त्रियोंकी शक्ति बढ़ानाही चाहिये। साथही जो

लोग दोनोंके कार्यक्षेत्रको जुदा जुदा स्वीकार करते हैं उनकोभी बहुत काम करना उचित है। कुछ विचारशून्य पुराणपन्थियोंको छोड़कर बाकी सब लोग यह बात स्वीकार करते हैं कि स्त्रियोंकी इस हीन दशासे राष्ट्र निर्बल होता है। स्त्रियाँ अगर पुरुषोंके समान व्यापार या नौकरी के क्षेत्रमें न दौड़ें तोभी उनके हाथमें थोड़ा बहुत आर्थिक अधिकारतो रहना चाहिये। पतिकी मृत्युके बाद पतिकी जायदादपर उनका कानूनी हक तो रहना चाहिये तथा स्त्रीधनकी व्यवस्थाभी होना चाहिये जिसके ऊपर उनका सदैव हक रहे।

जिन कामोंमे आजीविकाका सम्बन्ध नहीं है उनमें स्त्रियोंको विशेष भाग लेनेकी सुविधा होनी चाहिये। सामाजिक संस्थाओंमें, राजनैतिक संस्थाओंमें उनका वैसा ही प्रवेश होना आवश्यक है जैसे पुरुषोंका। घूँघट वगैरह की प्रथा नष्ट करके उन्हें स्वच्छ वायुमें श्वास लेनेकी सुविधा मिलना चाहिये। स्त्रियोंका दर्जा नीचा न गिना जाय। वरपक्ष और कन्यापक्षमें उच्च नीचताकी भावना न रक्खी जाय, आदि अनेक ऐसी बातें हैं जिनमें विचारशील जनताका मतभेद न होना चाहिये। परन्तु खेद है कि जो लोग इस विषयमें सहमत हैं, वे भी इसे कार्य रूपमें परिणत करते हुए डरते हैं।

हमें यह बात न भूलना चाहिये कि जिन देशोंकी स्त्रियाँ हमारे यहाँकी स्त्रियोंसे समुन्नत होंगी, उन देशोंके साम्हने हम कदापि नहीं टिक सकते, न उनके ऊपर अपनी कुछ छाप मार सकते हैं। जब उनके साम्हने टिकना ही कठिन है, तब छाप मारनातो दूरकी बात है।

भाषाका जातिभेद।

मनुष्यने अनेक तरहकी जातियोंकी कल्पना की है। उनमेंसे एक कल्पना भाषाके द्वारा भी कीगई है या होगई है। जो लोग अनेक भाषाभाषी नगरोंमें रहते हैं, वे जानते हैं कि यह भाषाका जाति भेद कितना भयंकर है। विभिन्न प्रान्तोंके प्रवासमें भी इसकी कठिनाइयाँ मालूम होती हैं। मनुष्यका कंठस्वर एक सरीखा होकरके भी वह विचित्र विचित्र बोलियाँ बोलता है, यह अनिवार्यसमान होने परभी खेदकी बात है। इस अनुचित जातिभेदको तोड़ना भी मनुष्यजातिके सेवकोंका लक्ष्य रहा है। ऐतिहासिक युगमें महावीर और बुद्धने इस बातका अनुभव किया कि ज्ञानका भंडार सर्वसाधारणकी भाषामें होना चाहिये; जिसमें महात्मा महावीरने इसमें और एक विशेषता पैदा की। उन्हें राष्ट्र-भाषाकी आवश्यकताका अनुभव हुआ। इसलिये उनने एक नई भाषाकी सृष्टिकी। म० महावीर मगधके रहने वाले थे, इसलिये उनने मागधी भाषाकाही एक ऐसा रूप तैयार किया जिसे सब लोग समझ सकें। उनने मागधी भाषामें शौरसैनी, महाराष्ट्री आदि भाषाओं को मिलाकर अर्धमागधी भाषा तैयारकी जैसे कि महात्मा गान्धीने हिन्दी उर्दू आदिको मिलाकर हिन्दुस्थानी तैयारकी है। मेरे खयालसे राष्ट्रभाषानिर्माणका वह प्रयत्न ऐतिहासिक युगमें पहिला प्रयत्नथा; और अनेक अंशोंमें वह सफल भी हुआ था। इसके बाद अनेक धर्म-गुरुओंने, अकबर बादशाहने तथा स्वामी दयानन्दने भी इस दिशामें प्रयत्न किया। परन्तु सबसे ज्यादः जबर्दस्त प्रयत्न महात्मा गांधी का हुआ। आज हिन्दी राष्ट्रभाषा कहलाती है परन्तु अगर महात्मागांधीने इसको बल न दिया होता तो हिन्दीको वह स्थान मिलना असंभव था जो उसे आज मिला हुआ है। महात्मागाँधीके बलका अर्थ था सारे गुजरातका बल, तथा भारतके बादशाहकी आज्ञा।

परन्तु इससे उत्तरभारतमें ही हिन्दी पुज सकतीथी परन्तु दक्षिणभारत भाग— जो कि भारतका एक अविच्छेद्य अंग है—खालीही रह जाताथा। महात्मा गाँधीने इसके लिये ज़ोर दिया और अपने सबसे बड़े पुत्र श्रीदेवीदासजी गाँधीको इस कार्यके लिये लगा दिया। आज आन्ध्र, तामिल, केरल, कर्नाटक प्रान्तोंके ४५० केन्द्रोंमें हिन्दी पढ़ाई जाती है, ६०० प्रचारक काम कर रहे हैं, ६ लाख मनुष्योंने हिन्दी सीखना शुरू किया है। चालीस हज़ार विद्यार्थी हिन्दीका अध्ययन कर रहे हैं, ३५ हज़ार विद्यार्थी परीक्षाओं में बैठे हैं और इस वर्ष १० हज़ार बैठ रहे हैं।

दक्षिण भारतका अभी एक दल उत्तर भारतमें भ्रमण करने निकला है जोकि उत्तर भारतमें भाषा और संस्कृति का अभ्यास करेगा। दक्षिण भारतके इस प्रेमको देखकर हमारा हृदय विनयसे झुक जाता है। दक्षिण भारतकी भाषाएँ ऐसी नहीं हैं कि उनका साहित्य न हो। जिस भाषाने 'कुरल' सरीखा ग्रन्थरत्न दिया तथा जिसका जैन साहित्य संस्कृतज्ञोंके लिये अनुवाद करनेकी वस्तु हुई (गोम्मटसारकी संस्कृत टीका कनड़ी भाषा पर से बनाई

गई है) उस भाषाको बोलने वाले अगर आज हिन्दीके पास आते हैं तो इसका कारण राष्ट्रप्रेमके सिवाय कुछ नहीं है। हिन्दी भाषा भाषियोंको इस प्रकारके त्यागका अनुभव तो है ही नहीं, साथही अपने गीत गानेके सिवाय उनने क्या काम किया है, यह बताना भी कठिन है।

उस दिन पं० सत्यनारायणजीके नेतृत्वमें जो दल बम्बई आया उन लोगोंका उत्साह और सौजन्य देखकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। हिन्दीभाषा बहुत सरल समझी जाती है परन्तु उन सज्जनोंने जो कठिनाइयाँ बतलाईं वे ऐसी नहीं है जिन पर उपेक्षाकी जासके। 'इसका दाम क्या है', "इसकी कीमत क्या है" इन दोनों वाक्योंका एकही अर्थ है परन्तु 'दाम' पुल्लिङ्ग और 'कीमत' स्त्रीलिङ्ग है। दूसरी भाषा बोलनेवाला यह लिङ्ग ज्ञान कैसे करे? निःसन्देह अन्य भाषाओंमें भी यह कठिनाई है, परन्तु हिन्दीमें यह सबसे ज्यादा अव्यवस्थित है।

शब्दोंमें जो लिङ्गभेद होता है, उसका कोई कारण अवश्य रहता है। मनुष्यने अपने समाजपर से ही लिंग भेदका कल्पनाका विस्तार किया है। स्त्रियोंमें कोमलता होती है, सुन्दरता होती है, निर्बलता और लघुता मानी जाती है, इसलिये जिस शब्दका वाच्य इन धर्मोंसे संबन्ध रखता है वह शब्द स्त्रीलिंग माना जाता है। इसीप्रकार कठोरता, बलवत्ता, महत्ता आदिसे शब्द पुल्लिंग होजाता है। कालान्तरमें शब्दका यह मौलिक अर्थ विस्मृत हो जाता है, जिससे शब्दके लिंगमें गड़बड़ी होने लगती है।

'दार' शब्दका अर्थ यद्यपि स्त्री है, तथापि संस्कृत में यह शब्द पुल्लिंग ही है। इसका कारण यह है कि 'दार' शब्दका मौलिक अर्थ है—'फाड़नेवाला, विदारण करनेवाला'। एक अविभक्त कुटुम्ब तभीतक अविभक्त रहता है जबतक उसमें दुल्हिनका प्रवेश नहीं हुआ। आतेही दुल्हिनकी व्यक्त या अव्यक्त शब्दोंमें यही आज्ञा होता है कि—

इस घरमें अब दुइए रहि हैं मैं और मेरा दूल्हा।
डोले परसे तब उतरोंगी अलग धरोंगी चूल्हा॥

मतलब यह कि स्त्री, कुटुम्बका विदारण करदेती है, इसलिये उसे दार कहते हैं। विदारण करना शक्तिका काम होने से पुरुषोचित काम कहलाया, इसलिये दार शब्द पुल्लिंग होगया। प्रत्येक शब्दके मौलिक अर्थका इसी प्रकारका छोटासा इतिहास होता है। परन्तु आजतो विद्वान् लोगभी सबका मौलिक अर्थ नहीं जानते; फिर सर्वसाधारणसे आशा करनातो व्यर्थही है। इसलिये जिस अर्थका हमें ज्ञानही नहीं रहा है, उसके आधारपर लिंगव्यवस्था रखना कैसे उचित कहा जा सकता है? इसीप्रकार कारकोंके विषयमें भी कठिनाइयाँ हैं, जिससे दूसरी भाषा बोलने वाले को बड़ी कठिनता का अनुभव होता है। यद्यपि इनके सुधार के लिये क्रान्तिकी आवश्यकता है, परन्तु अगर हम ऐसा न करसकें तोभी कुछ न कुछ सुधार करनाही चाहिये। साथही हमें इन सूक्ष्म अर्थ और नियमोंको खोजना चाहिये जिससे यह अनियमितता नियमितता के रूपमें परिणित होजावे।

यह दल उत्तर भारतमें सिर्फ भाषासंस्कृतिके अभ्यास के लियेही नहीं आयाहै किन्तु जीवनकी संस्कृतिक अभ्यास के लिये भी आया है। प्रेमीजीके यहाँ जब हम सब लोग भोजन कर रहे थे तब मैंने देखाकि वे लोग प्रत्येक खाद्य-पदार्थका मानों अभ्यास कर रहे थे। इसीसमय भाषाके ऊपर विचारणीय चर्चाएँ हुई थीं। एक भाईने तो उत्साह से आकर यहाँ तक कहाकि हमलोग हिन्दीके लिये मार्ग-दर्शक बनेंगे। दूसरेने कहा—हम हिन्दीको औरभी सरल बनायेंगे फिर अवेही ब्रजभाषा, बुन्देलखंडी, मारवाड़ी आदि बोलीके समान दक्षिणीहिन्दीका एक भेद बन जाय। एक राष्ट्रभाषाके लिये ये लोग जो कुछ करते हैं वह स्वर्णाक्षरों में लिखने लायक है।

हीराबाग में इन लोगों के स्वागत तथा पारस्परिक परिचयके लिये एक सभा की गई। बम्बईमें हिन्दी-भाषियोंकी संख्या एक लाखसे ऊपरही होगी, फिरभी बहुत थोड़े आदमी आये। इसके साथ जो वक्ता बोले इससे भी यही सिद्ध हुआ कि यहाँ वक्ताओंका दारिद्र्य है। किस मौके पर क्या बोलना चाहिये इसका विचार करने के लिये किसीने ज़राभी कष्ट नहीं उठाया था। जो सबसे कम बोलनेकी प्रतिज्ञा करके उठा वही सबसे अधिक बोला और निरर्थक बोला। बोलनेके लिये कुछ विचार न सूझने पर भी बोलता गया। हिन्दी भाषा कैसी भी हो, परन्तु हिन्दीभाषी कैसे हैं, इसका एक बहुत खराब प्रदर्शन हुआ। एक महाशय तो अतिथियोंसे यहाँतक बोले कि आप लोग दिग्विजय के लिये निकले हैं, परन्तु याद रखिये, हिन्दीवाले कम नहीं हैं, आदि। अतिथियोंकी तरफ से बहुतही नम्र विरोध किया गया जोकि उनकी

शिष्टताकी सूचना देता था। एक महाशय तो हिन्दी की खूब प्रशंसा तथा दक्षिणी भाषाओंकी निन्दा करने लगे। वे इस बातको नहीं समझते थे कि एक चीज़का दूसरीसे अन्तर उतनाही होता जितना दूसरीका पहिली से है। अगर मैं आपसे इस गजकी दूरीपर बैठा हूँ तो आपभी मुझसे इस गजकी दूरी पर हैं यह निश्चित है। इसीप्रकार यदि हिन्दीभाषियों को कनड़ी आदिका एक शब्द समझना मुश्किल है, इसीलिये अगर वे भाषायें निन्दा या मज़ाककी चीज़ हैं तो इसीप्रकार कनड़ी आदि भाषा-भाषियोंको हिन्दीका एक शब्द समझनाभी मुश्किल है इसीलिये उनकी दृष्टिमें हिन्दीभी निन्दा या मज़ाक की चीज़ होसकती है। फिर यह कहाँ की बात है कि वे लोग तो भारतकी राष्ट्रीयताका निर्माण करनेके लिये भक्तिपूर्वक हिन्दीके अभ्यासके लिये कठिन तपस्या करें, और हम करना धरना तो दूर किन्तु उनका अपमान करें! किसी भी हिन्दी भाषाभाषी को इसका अभिमान न करना चाहिये कि हमारी भाषा राष्ट्रभाषा बनाईगई है। [illegible] इस बातसे प्रसन्नता प्रकट करना चाहिये कि भारतकी एक राष्ट्रभाषा है। हमारा अहंकार हमारी भाषाके प्रचारके मार्गमें बाधक है। महाराष्ट्र और बंगालमें जो हिन्दीका थोड़ाबहुत विरोध दिखलाई देता है उसका कारण यह अहंकार है। उन्हें अपनी भाषाका अहंकार है और शायद वे यह भी जानते हैं कि ये अशिक्षित हिन्दी भाषाभाषी हमारे सामने अहंकार बतलावें, यह ठीक नहीं। इसलिये हमें अधिक विनात बननेकी ही आवश्यकता है।

जब हिन्दी राष्ट्रभाषा मानलीगई है तब हिन्दीके गीतगाने की अपेक्षा हमें विनयका परिचय देना चाहिये। एक राष्ट्रभाषाके नाम पर अगर हम आन्ध्र तामिल केरल और कर्नाटक की जनता से हिन्दी सीखनेकी आशा करते हैं तब हमें यह भी नम्रतापूर्वक कहना चाहिये कि अगर कनड़ी आदि कोई भाषा राष्ट्रभाषा बनी होतीतो हमभी आप सरीखी तपस्या करने को तैयार होते। हमें राष्ट्र के जीवनमें अपनेको मिलाना चाहिये।

पं० सत्यनारायणजी ने हिन्दीवालों पर एक बोझ डाला है और वह उचित है। उनका कहना है, कि हिन्दीमें आज कैसाभी साहित्य तैयार होरहा हो, परन्तु हमारे लायक़ साहित्य नहीं है। अगर हिन्दीको हम अपनाते हैं तो उसमें ऐसा साहित्यभी अवश्य होना चाहिये जो हमारे जीवनकी प्रतिमूर्ति हो, जिसमें हमारी भावनाओंकी छापहो।

दक्षिणीबन्धु अगर देशप्रेमके लिये हमारी भाषा के सीखनेके लिये पहाड़ सी तपस्या करते हैं, और हमारी संस्कृतिके अभ्यासके लिये हजारों मीलोंकी सफ़र करते हैं तब हम अगर इतनाभी न करें तो यह लज्जाकी बात है।

जैनजगत् सरीखे धार्मिक पत्रमें जो मैंने इस सार्व-जनिक विषयकी चर्चा की है, उसके दो कारण हैं—

१—जैनजगतने जैनधर्मकी जो विशाल व्याख्या की है वह किसी एक सम्प्रदायमें क़ैद न रहकर सब धर्मोंमें फैल जाती है, इतनाही नहीं किन्तु उसकी दृष्टिमें अमुक क्रियाकलापही धर्म नहीं है किन्तु जीवनका प्रत्येक कर्तव्य—जोकि कल्याणकारी है धर्म है। यह चर्चा उस विशाल व्याख्याके भीतर आजाती है।

२ जैन समाज [illegible] दिगम्बर जैनसमाज, दक्षिण का बहुत ऋणी है। उत्तरभारतमें जब जैनधर्म टकेला [illegible] ही कारण थी। दिगम्बर जैनसमाज [illegible] आचार्य दक्षिणके थे। उन्हीं के प्रताप [illegible] जैनधर्मकी स्थापना हुई। इनका [illegible] आज मौलिक जैनसाहित्य है जिसे [illegible] जैनसाहित्य तैयार हुआ है और अभी बाकी भी है।

इन दोनों कारणोंसे जैनियोंके सिरपर भी जिम्मेदारी आती है, इसलिये इस दिशामें वे थोकुछ त्याग और सेवा करें, यह थोड़ा है। जैनधर्मने अनुचित जातिबन्धनों को सदा से तोड़ा है। भाषाका जातिबन्धन भी अनुचित जाति बन्धन है, इसलिये इसके तोड़नेमें भी उन्हें पूरी मदद करना चाहिये।

नारी जागरण।

किसी परिस्थितिमें सुविधाके लिये जो नियम बनाये जाते हैं वेही कालान्तरमें ऐसा रूप धारण करलेते हैं कि जिससे समाजका एक बहुत बड़ाभाग कुचला जाने लगता है। स्त्री समाजके विषयमें भी यही बात हुई है। आजके नियम उसे बुरीतरह कुचलरहे हैं। इस अन्यायका अनुभव अब स्त्रीसमाज को होरहा है और वह इसके प्रतीकारके लिये प्रयत्न करनेलगी है। अत्याचारोंके विविधरूप हैं और उनमेंसे एक बहुपत्नीत्वका रिवाज़ है।

पालनपुरके एक भाईने पहिली पत्नीके नीरोग और सन्तानवती होनेपरभी अपना दूसराविवाह किया। यहाँ के (बम्बईके) मांगरोलभवनमें जैनमहिलाओं की प्रचंड सभामें जो विरोध हुआ और महिलाओंने जो सात्विक रोष प्रगट किया, उसका कुछ नमूना यहाँ पेश किया जाता है:—

कु० चंद्राबेन ने कहा—

"...... सौत बनकर आनेवाली बहिनने समस्त स्त्रीजातिको नीचा दिखानेवाला कृत्य किया है। एकतो स्त्रीशिक्षाके विषयमें अपना समाज योंही पीछे है; जोकुछ [illegible] शिक्षा दीजाती है, उसको भी ऐसे कृत्योंसे धक्का पहुँचता है।

[illegible]

'विवाह किरानेकी दूकानका सौदा नहीं है कि माल पसन्द न आया तो बदल लिया। यहतो संसारनौका को पार लेजानेवाला पवित्र बंधन है। इसके ऊपर सारा जीवन अवलंबित है, इसीसे अपनी आर्यसंस्कृतिमें पति-पत्नी एक दूसरे के वफ़ादार रहते हैं। इसलिये एक स्त्रीपर दूसरी स्त्री लाना कर्तव्यसे भ्रष्ट होना है। यूरोपकी संस्कृति भारतीय संस्कृतिकी अपेक्षा हीन है, फिरभी यूरोपमें कोई एक स्त्री रहते दूसरी स्त्री नहीं लासकता। तलाक़ दे तो दूसरी बात है। परन्तु हमारे यहाँ तलाक़ का रिवाज़ न होनेसे पुरुषवर्ग स्त्रीवर्गके अन्यायोंको पचाते रहते हैं'।

"कोई बालविधवा बहिन अगर पुनर्विवाह करती तो पुरुषवर्ग की पंचायतें लाल पीली आँखें दिखाकर दौड़ धाम करती हैं; जब कि पुरुषोंके इतने अन्यायी होने पर स्त्रीजाति मौन ही है। इसीलिये इतना अन्याय होने परभी पुरुषवर्ग चुप बैठा है......।"

इसके बाद सरस्वती बेन ने कहा—

"...... पत्नी और पुत्र पुत्री होने परभी एक पुरुष की तुच्छ वृत्तियोंके लिये एक अबलाके जीवनको धूलमें मिलना पड़े, अपनी सन्तानके आनन्दका नाश करना पड़े, पतिके रहते पर भी विधवासे भी बुरी जिन्दगी बिताना पड़े इसके समान करुण प्रसङ्ग और क्या होगा? और प्रसंग लानेमें यदि एक स्त्रीका हाथ हो तो इसे निष्ठुरताकी परिसीमा ही मानना चाहिये।"

"पुरुष जातिके ऐसे निर्दय स्वभावका अपनेको परिचय है, परन्तु बहिन प्रभा सरीखी एक शिक्षित कन्या जातिद्रोह करे और इसकी माताके समान सुसंस्कृत बहिन ऐसे कार्यमें मुख्य भाग ले, यह वास्तवमें स्त्रीजातिका और [illegible] भयंकर अपमान है। मेरा तो निश्चय है कि [illegible] विवाहमें विवाहकी पवित्र भावना नहीं होती किन्तु [illegible] और वैभव [illegible] और बेचा जाता है। [illegible] का बलिदान [illegible] है, जब कि इस तरहसे [illegible] लिये [illegible] बर्बाद किया जाता है। अगर [illegible] सच्चा स्नेहथा तो उसे अपने प्रेमीको पत्नीका [illegible] के बदले परोपकारमें ही अपना जीवन बिताना था।"

"ऐसे विवाहका समर्थन करने वाले पुरुषोंकी एक [illegible] है कि हम शिक्षित [illegible] हम पद पद पर स्त्री [illegible] आवश्यकता है। जबकि स्त्री पुराने [illegible] और अशिक्षित होती है, [illegible]

[illegible]

[illegible] पतिके सुखमें सुख माना है। इसको सहानुभूति [illegible] और सहनशीलताके [illegible] बना कर मार्गदर्शक बनना [illegible] सुधार हो सकता है"।

"[illegible] कि इतने अत्याचार होने पर भी स्त्री जाति [illegible] रही है। यह असमर्थ उदारताही ऐसे अन्यायोंका मुख्य कारण है। न्यायकी रक्षाके लिये कठोर बनना चाहिये और [illegible]

शिष्टताकी सूचना देता था। एक महाशय तो हिन्दी की खूब प्रशंसा तथा दक्षिणी भाषाओंकी निन्दा करने लगे। वे इस बातको नहीं समझते थे कि एक चीज़का दूसरीसे अन्तर उतना ही होगा जितना दूसरीका पहिली से है। अगर मैं आपसे [illegible] दूरीपर बैठा हूँ तो आपभी मुझसे इस [illegible] दूरी पर [illegible] यह निश्चित है। इसीप्रकार यदि हिन्दीभाषियों को कनड़ी आदिका एक शब्द समझना मुश्किल है इसीलिये अगर वे भाषाकी निन्दा या मज़ाक़की चीज़ [illegible] तो इसीप्रकार कनड़ी आदि भाषा-भाषियोंको हिन्दीका एक शब्द समझनाभी मुश्किल है इसीलिये उनकी दृष्टिसे हिन्दीकी निन्दा या मज़ाक़ की चीज़ होसकती है। फिर यह कहां की बात है कि वे लोग तो भारतकी राष्ट्रीयताका निर्माण करनेके लिये [illegible] हिन्दीके अभ्यासके लिये कठिन तपस्या करें और हम [illegible] करना धरना तो दूर किन्तु उनका अपमान करें। [illegible] भी हिन्दी भाषाभाषी को इसका अभिमान न करना चाहिये कि हमारी भाषा राष्ट्रभाषा बनाई गई है। [illegible] इस बातसे प्रसन्नता प्रगट करना चाहिये कि भारतकी एक राष्ट्रभाषा है। हमारा अहंकार हमारी भाषाके प्रचार-मार्गमें बाधक है। महाराष्ट्र और बंगालमें जो हिन्दीका थोड़ाबहुत विरोध दिखलाई देता है उसका कारण यही अहंकार है। उन्हें अपनी भाषाका अहंकार है और शायद वे यह भी जानते हैं कि ये अशिक्षित हिन्दी भाषाभाषी हमारे सामने अहंकार बतलावें, यह [illegible] नहीं। इसलिये हमें अधिक विनीत बननेकी ही आवश्यकता है।

जब हिन्दी राष्ट्रभाषा मानलीगई है तब हिन्दीके गीतगाने की अपेक्षा हमें विनयका परिचय देना चाहिये। एक राष्ट्रभाषाके नाम पर अगर हम आन्ध्र तामिल केरल और कर्नाटक की जनता से हिन्दी सीखनेकी आशा करते हैं तब हमें यह भी नम्रतापूर्वक कहना चाहिये कि अगर कनड़ी आदि कोई भाषा राष्ट्रभाषा बनी होतीतो हमभी आप सरीखी तपस्या करने को तैयार होते। हमें राष्ट्र के जीवनमें अपनेको मिलाना चाहिये।

प० सत्यनारायण जी ने हिन्दीवालों पर एक बोझ डाला है और वह उचित है। उनका कहना है, कि हिन्दीमें आज कैसाभी साहित्य तैयार होरहा हो, परन्तु हमारे लायक साहित्य नहीं है। अगर हिन्दीको हम अपनाते हैं तो उसमें ऐसा साहित्यभी अवश्य होना चाहिये जो हमारे जीवनकी प्रतिमूर्ति हो, जिसमें हमारी भावनाओंकी छापहो।

दक्षिणीबन्धु अगर देशप्रेमके लिये हमारी भाषा के सीखनेके लिये पहाड़सी तपस्या करते हैं, और हमारी संस्कृतिके अभ्यासके लिये हजारों मीलोंकी सफ़र करते हैं तब हम अगर इतनाभी न करें तो यह लज्जाकी बात है।

जैनजगत सरीखे धार्मिक पत्रमें जो मैंने इस सार्वजनिक विषयकी चर्चा की है, उसके दो कारण हैं—

१—जैनजगतने जैनधर्मकी जो विशाल व्याख्या की है वह किसी एक सम्प्रदायमें कैद न रहकर सब धर्मोंमें फैल जाती है इतनाही नहीं किन्तु उसकी दृष्टिमें अमुक क्रियाकलापही धर्म नहीं है किन्तु जीवनका प्रत्येक कर्तव्य— जोकि कल्याणकारी है धर्म है। यह चर्चा उस विशाल व्याख्याके भीतर आजाती है।

२ जैन समाज खासकर दिगम्बर जैनसमाज, दक्षिण का बहुत ऋणी है। उत्तरभारतमें जब जैनधर्म डोलने लगा तब [illegible] का कारण था। दिगम्बर [illegible] के आचार्य दक्षिणके थे। उन्हीं [illegible] जैनधर्मकी स्थापना हुई। [illegible] आज मौलिक जैनसाहित्य है [illegible] जैनसाहित्य तैयार हुआ है और अभी बाकी भी है।

इन दोनों कारणोंसे जैनियोंके सिरपर भी जिम्मेदारी आती है इसलिये इस दिशामें वे आकर त्याग और सेवा करें, यह ठीक है। जैनधर्मने अनुचित जातिबन्धनों को सदा से तोड़ा है। भाषाका जातिभेद भी अनुचित जाति बन्धन है, इसलिये इसके तोड़नेमें भी उन्हें पूरी मदद करना चाहिये।

नारी जागरण।

किसी परिस्थितिमें सुविधाके लिये जो नियम बनाये जाते हैं वेही कालान्तरमें ऐसा रूप धारण करलेते हैं कि जिससे समाजका एक बहुत बड़ा भाग कुचला जाने लगता है। स्त्री समाजके विषयमें भी यही बात हुई है। आजके नियम उसे बुरीतरह कुचलरहे हैं। इस अन्यायका अनुभव अब स्त्रीसमाज भी कररहा है और वह इसके प्रतीकारके लिये प्रयत्न करनेलगी है। अत्याचारोंके विविधरूप हैं और उनमेंसे एक बहुपत्नीत्वका रिवाज़ है।

सीखना चाहिये। केवल पुरुषोंकी दयाके ऊपर जीवित रहना अब नहीं पुसाता। संयममें रहकर पुरुषोंको बता देना चाहिये कि आजतक तुम लोगोंने मनमाना विद्रोह किया और हमने सहा परन्तु अब तुम्हारी मिरजोरी सहन नहीं की जा सकती। अब हम विद्रोह करेंगी।"

इसके बाद ललिता बेन तथा बाला बेनके भी भाषण हुएथे, जिसमें युवकसमाज तथा श्रीमानोंपर न्यायोचित आक्रमण किया गया था।

नारी समाजका यह जागरण एक शुभचिन्ह है। अन्याचारको रोकनेके लिये केवल अन्याचारीका इलाज सफल नहीं होता, किन्तु अन्याचारपीड़ितको भी सहन न करनेके लिये तैयार होना पड़ता है। इस घटनाके भीतर क्रूरता, स्वार्थपरताके साथ धृष्टता भी है। अपनी प्रथम पत्नीको छोड़कर जो द्वितीय पत्नीको लेकर विदेश चला जाता है, उसमें लज्जाका चिन्ह भी बाकी नहीं रहा है। प्रभामें यदि प्रेम था तो उसे आजन्म ब्रह्मचारिणी रहना चाहिये था अथवा वह ऐसा न कर सकती थी तो अपने प्रेमीकी पत्नीके पैर पकड़ कर पतिकी भिक्षा माँगती और दासीके समान अपनेको मानकर उसके साम्हने उपस्थित होती। यदि जासूद बहिन प्रसन्नतासे प्रभाको सपत्नी बनाना पसन्द करती अथवा स्वेच्छासे अपने सौभाग्यके एक अंशका दान करती तो यह घटना अनुचित होनेपर भी क्षन्तव्य कही जा सकती थी। तभी प्रभाके स्नेहकी परीक्षा हो सकती थी। परन्तु ऐसी हालतमें वह पतिको लेकर विदेश नहीं जा सकती थी। यहाँतो उसने डाका ही नहीं डाला है, किन्तु गृहस्वामिनीको आगमें जलाया भी है।

पुरुषसमाजमें ऐसे पुरुष भी हैं जो स्त्रीसमाजके ऐसे कष्टोंके साथ सहानुभूति रखते हैं, जो एक स्त्री रख सकती है। वे विरोध भी करते हैं; परन्तु अभीतो 'मुद्दई सुस्त गवाह चुस्त' की कहावत चरितार्थ होरही है। हाँ, अब नारी जागरण दिखलाई देने लगा है, इसलिये आशा है ऐसे अन्याचार शीघ्र ही नामशेष होजावेंगे। हम, नारियों के इस प्रचंड सात्त्विक कोपका सादर स्वागत करते हैं।
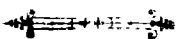
विरोधी मित्रोंसे।

(१४)

आक्षेप(३७)—श्वेताम्बर शास्त्रोंको प्राचीन मानकर के भी आप प्रमाण क्यों मानते हैं? आपकी दृष्टिमें तो नवीन प्रमाण हैं। श्वेताम्बर ग्रंथ विक्रम सं० ५१० में बने। दिगम्बर ग्रन्थ इससे पहिलेही बनने लगे हैं। और कथा ग्रन्थ तो आचार्यपरम्परा को ध्यानमें रखकर बनाये गये हैं। दिगम्बर ग्रन्थों में आपको क्या कमी मालूम होती है? अछूतोद्धार, स्त्री-पुरुष समानाधिकार, विधवाविवाह आदिकी कमी क्या कोई कमीसे कमी है? फिर दिगम्बर आचार्यों ने अछूतोंको कब ठुकराया है? स्त्रीपुरुष को विषमता श्वेताम्बर शास्त्रोंमें भी है। मल्लिकुमारीको तीर्थंकर मान करके भी वे अछेरा मानते हैं, और उनकी मूर्त्ति स्त्री सरीखी नहीं बनाते। यह लीपापोती नहीं तो क्या है? श्वेताम्बर ग्रन्थोंमें विधवाविवाह है, तो सधवाके भी पाँच पाँच शादी होनेका उल्लेख है। महावीर चरितमें ग्वालोंसे मारमार सेंट होना और बीमारी होना, घरघर उपदेश देते फिरना आदि बातोंके उल्लेख अनुल्लेखसे कोई शास्त्र प्रमाण अप्रमाण नहीं कहा जासकता। बल्कि ऐसी विशेषताएँ देनेसे कहींकहीं सत्यका गलाभी घोंटना पड़ा है। बिजोरा पाककी कल्पना करना पड़ी। खैर, सब साहित्य गलतही सही, लेकिन यह तो बताइये कि प्राचीन साहित्यमें भी मद्यमांसका सेवन उस समय प्रचलित था जो साधुओं तकको निवारण नहीं किया जासका? क्या साधु लकड़ीसे जानवर को मारडालें यह भी प्राचीन जैनसाहित्यकी महिमा है? इसे यदि श्वेताम्बर साहित्यका विकार समझा जाय तो दूसरी बातें प्रमाण कैसे मानी जायँ? त्रिवर्णाचार चर्चासागर आदिमें सब प्रकरण विकारी नहीं है, किन्तु समाजने उन सबको विषमिले भोजनकी तरह अमान्य ठहराया है।

समाधान—इस आक्षेपमें बहुतसे आक्षेप हैं, परन्तु उन सबका लक्ष्य एकही है कि श्वेताम्बर साहित्यको पूर्ण अप्रमाण और दिगम्बर साहित्यको पूर्ण प्रमाण मानलिया जाय। इसलिये एकही आक्षेप मानकर उन सबका समाधान किया जाता है। आक्षेपकको यहाँ बड़ा भारी भ्रम होगया है कि मैं श्वेताम्बर शास्त्रोंको प्रमाण मानता हूँ। यह बात मैं कईबार कहचुका हूँ कि श्वेताम्बर शास्त्रोंको भी मैं प्रमाण या अप्रमाण मानता हूँ और दिगम्बर शास्त्रों को भी मैं किसी शास्त्रको न्यायाधीश नहीं किन्तु साक्षी मानता हूँ मेरी लेखमालामें जिन मुख्यमुख्य बातोंका निरोध कियागया है, वे श्वेताम्बर ग्रन्थोंके भी उतनेही विरुद्ध हैं जितने कि दिगम्बर ग्रन्थोंके किसी बातको स्वीकार करनेके लिये मेरे सामने श्वेताम्बर ग्रन्थोंकी दुहाई देना उतनाही निरर्थक है जितना कि दिगम्बर ग्रन्थोंकी दुहाई देना।

दिगम्बर ग्रन्थ प्राचीन हैं और श्वेताम्बर ग्रन्थ ५१० में बने हैं यह कहना पक्षपात है वाचना होना एक बात है और निर्माण होना दूसरी बात है। वि० सं० ५१० में श्वेताम्बर सूत्रोंकी तीसरी वाचना हुई थी, परन्तु हैं तो ये इससे भी पुराने तथा प्राचीन अङ्ग साहित्यके भग्नावशेष हैं। यह मैं नहीं कहता कि ये विकृत नहीं हैं, परन्तु नयी रचनाओंकी अपेक्षा कुछ कम विकृत हैं। इस तीसरी वाचनाके पहिलेभी बहुतसा साहित्य तैयार होगया था। सिद्धसेन दिवाकर आदिकी रचनाएँ तीसरी वाचनासे भी पहिलेकी हैं। दिगम्बरोंने अङ्गपूर्वका रक्षण नहीं किया, परन्तु दशवैकालिक उत्तराध्ययन आदिका संग्रह क्यों न करसके? ये भी दिगम्बरों को मान्य हैं? और ये अंगबाह्य होने से विशालभी नहीं कहे जासकते खैर, मुझे तो दोनों एक सरीखे हैं। जहाँभी कहीं युक्ति अविरुद्ध कल्याणकारी तत्व मिलेगा, उसेही मैं प्रमाण समझूँगा। साम्प्रदायिक बुद्धिसे मुझे कुछ मतलब नहीं है। शास्त्रोंके विषयमें लेखमालामेंही श्रुतज्ञानके प्रकरणमें मैं बहुत कुछ लिखचुका हूँ।

दिगम्बर ग्रन्थोंमें शूद्र मुक्तिका स्पष्ट विवेचन न होना तथा स्त्रीमुक्तिका निषेध होना कुछ कम कमी नहीं है। श्वेताम्बरोंने भी स्त्रियोंको दबाया है, परन्तु वे दिगम्बरोंके समान स्त्रियोंपर नहीं टूटे! चक्रवर्ती आदिके पद लौकिक पद हैं जो लोकनीति पर अवलम्बित हैं, इस लिये दिगम्बरोंके समान श्वेताम्बर भी स्त्रियोंको ये पद नहीं देसके। परन्तु सर्वोत्तमपद मोक्ष दिया है और इसको अछेरा भी नहीं माना है। हाँ, स्त्रीके तीर्थंकरत्व को अछेरा माना है क्योंकि इसपदमें आत्मोन्नतिकी चरमसीमाके साथ लौकिक उन्नतिकी चरमसीमा भी है। अछेरा शब्दका अर्थ है आश्चर्यजनक। एक स्त्री लौकिक उन्नतिकी चरम सीमापर पहुँचे, यह आश्चर्यजनक तो है ही। इससे स्त्रियोंके अधिकार नहीं छिनते किन्तु लौकिक वातावरण स्त्रियोंके प्रतिकूल होनेसे उसमें आश्चर्यजनकता मालूम होती है। दिगम्बर साहित्यमें तो आश्चर्यके लियेभी ऐसी घटनाएँ नहीं मिलतीं और तीर्थंकरका पद तो दूर परन्तु सामान्य केवलीका पदभी नहीं मिलता। मल्लिकुमारीकी मूर्त्ति स्त्रीमूर्त्ति के समान नहीं बनाते, यह श्वेताम्बर समाजकी भूल है, न कि श्वेताम्बर शास्त्रोंकी। अगर श्वेताम्बर शास्त्रोंमें पाँच पतिकी घटनाका उल्लेख है तो इसमें आश्चर्य और लज्जा की बात क्या है? जब हम ९६ हजार पत्नियोंकी घटनासे लज्जित नहीं होते, तो पाँच पतिवाली घटना में लज्जाकी क्या बात है? यदि हजारों स्त्रियोंवाला भी स्वदारसंतोषी कहला सकता है, तो पाँच पति रखने वाली स्वपतिसंतुष्टा क्यों नहीं कही जासकती? तिब्बतमें आजभी स्त्रियाँ एक ही साथ अनेक पति रखती हैं। ये तो जुदे जुदे समयके लोकाचार हैं। भोग भूमिके समयमें सहोदर बहिनभाई पति पत्नी होजाते थे, जो कि आज महापाप है। अगर हम भोगभूमिके इस वर्णनसे लज्जित नहीं होते, ९६ हजार पत्नियोंके

वर्णनसे लज्जित नहीं होते तो पाँचपतिवाली बातसे श्वेताम्बर क्यों लज्जित होंगे ?

महावीर आखिर मनुष्य थे। बारह वर्ष तक उनने तप किया और ३० वर्ष तक प्रचार इन ४२ वर्षोंमें वे निरुद्दिष्ट मशीनकी तरह नहीं चलते रहे। उनके जीवनमें ऊँची नीची अनेक घटनाएँ हुई थीं। विरोधियोंने विरोधभी किया था। मूर्खोंने उपद्रवभी कियेथे। इन सबपर विजय प्राप्तकरनेसे ही वे महात्मा बन सके। जिनको आप छोटी घटना कहते हैं उन्हींसे वास्तविक महत्त्वका पता लगता है। उनको फौज लेकर राजा महाराजाओंसे लड़नेकी जरूरत तो थी नहीं कि आपकी दृष्टिमें बड़ी बड़ी घटनाएँ होतीं। परन्तु दिगम्बर साहित्यमें हमें छोटी और बड़ी घटनाएँ इतनीभी नहीं मिलतीं। हम यह नहीं कहते कि श्वेताम्बर शास्त्रोंकी घटनाओंको आँख बन्द कर प्रमाण मान लिया जाय परन्तु जो घटना सम्भव है और जिसका कोई बाधक नहीं है, वह सिर्फ इसी लिये न मानी जाय कि वह हमारे सम्प्रदायके ग्रंथकी नहीं है—इसको पक्षपातके सिवाय और क्या कह सकते हैं ? असम्भव और भक्तिकल्प्य घटनाएँभी श्वेताम्बर ग्रंथोंमें हैं, जिनको मैंने नहीं माना है या उनके वास्तविक रूपके खोजनेकी कोशिशकी है।

विशेषताएँ देनेसे सत्यका गला घोंटना पड़ा है तो इससे उन विशेषताओंकी सचाईही मालूम होती है। क्योंकि अगर वे विशेषताएँ असत्य होतीं तो उनको उड़ानेकी ही कोशिशकी जाती, न कि उनकी रक्षाके लिये सत्यका गला घोंटनेकी।

श्वेताम्बर साहित्यमें मद्यमांसका विधान है, यह बात बहुत कुछ विवादग्रस्त है पहिले मैं इसी विचारका था, परन्तु कुछ गहरी नजर डालनेसे यह बात विश्वसनीय नहीं मालूम हुई। इस दृष्टिसे विचार करनेका यह स्थल नहीं है। यहाँतो मैं ऐतिहासिक दृष्टिसे ही विचार करता हूँ। हम लोगों के सिरपर एक भूत सवार है जिससे हम समझते हैं कि पहिला जमाना हर एक दृष्टिसे उत्तम ही था। इसलिये हम समझते हैं कि हमारे पूर्वज मद्यमांससे ऐसा ही परहेजकरते थे जैसा कि आज हम करते हैं, यद्यपि हमारे कथाग्रंथों में बिलकुल उल्टी घटनाएँ मिलती हैं। उससमय जैन कुटुंबोंमें भी आमतौर पर शराब का उपयोग पीनेमें होता था। राम और लक्ष्मण सरीखे लोकोत्तर पुरुषभी शराबके बड़े प्रेमी थे। जिस समय लक्ष्मणका देहान्त होगया, उस समय उनके शवसे मोहित होकर रामचन्द्र उसे खिलाने पिलाने की चेष्टा करते हैं और लक्ष्मणसे कहते हैं—

> इयं श्रीधर ते नित्यं दयिता मदिरोत्तमा ।
> इमां तावत्पिबन्यस्तां चषके विकचोत्पले ।
> प० पु० ११८—५५ ।

लक्ष्मण ! यह अच्छी शराब तो तुझे सदासे बहुत प्यारी है फूले कमलके समान प्यालेमें रक्खी हुई यह शराब जरा पी तो सही !

ऐसा शायदही कोई काव्य और पुराण होगा जिसमें मद्यपानका वर्णन न हो। इससे उस समय के जैन जीवनका अंदाज लगाया जासकता है। और करीबकरीब यही बात मांसके विषयमें भी है। अच्छे अच्छे जैन कुटुम्बोंमें भी मांसभक्षी होते थे, यहाँतक कि अष्टाह्निकाकी चतुर्दशीको भी वे मांस खाना न छोड़तेथे। नरमांस तक खातेथे, और उसी भवसे मोक्ष जाते थे (देखो सौदासकी कथा)। संयम के नियम साधारण परिस्थितिके अनुसार बनते हैं। जहाँ लोग आम तौरपर मांस खाते हों वहाँ कभी कभी मांस खानेवाला अथवा सिर्फ अनिवार्य परिस्थितिमें ही मांस खानेवाला भी संयमी कहलाता है। हमको अपना दृष्टिबिंदु सुधारकर और द्रव्यक्षेत्रकालभावका विचार करकेही किसीकी निंदा करना चाहिये। यह तो आचारका विषय है। एक दो पेजमें इसका खुलासा नहीं किया जासकता। लेखमालामें इस विषयपर बहुत कुछ विचार किया जायगा। इसी प्रकार आत्मरक्षाके लिये या संघ-

रक्षाके लिये किसी आक्रमणकारी सिंहादि जानवरको मारनेमें संयमका कितना भंग है, यहभी विचारणीय है; न कि बिना विचारे निंदनीय।

श्वेताम्बर ग्रन्थोंमें पहिलेतो मांसका विधान सिद्ध करनाही कठिन है; फिर उपर्युक्त दृष्टिभी विचारणीय है। साथही यह बातभी ध्यानमें रखना चाहिये कि किसी बातका प्राचीनकालमें अस्तित्व सिद्ध होजायतो वह धर्म है वह अनुकरणीय है—यह न समझना चाहिये। कई बातोंमें हम अगर पहिलेसे अवनत हुए हैं तो कईमें उन्नत हुए हैं। जिनमें उन्नत हुए हैं उनके विषयमें प्राचीन घटनाएँ अनुकरणीय नहीं हैं। ऐतिहासिक सत्यके अनुरोधसे जो बात मुझे लिखना पड़े, उसका यह अर्थ कदापि नहीं होता कि कल्याणकी दृष्टिसे भी वह सत्य है। हाँ, अपनी उन्नति अवनतिकी तुलना करनेके लिये उसका जानना आवश्यक है, खैर, किसी शास्त्रमें पचास बातें असत्यहों और एक सत्य हो तोभी वह खोजके लिये उपयोगी है। हाँ, वह मजिस्ट्रेटके पद पर रखनेके लिये अयोग्य है। त्रिवर्णाचार आदि ग्रंथोंका बहिष्कार जो जैनसमाजने किया है वह इसलिये कि उसे आगम न माना जाय। परन्तु अगर किसी खोजीको यह जाननाहो कि जैनशास्त्रों पर दूसरे सम्प्रदायोंका क्या क्या प्रभाव पड़ा है तो ऐसी खोजके लिये त्रिवर्णाचार सरीखे ग्रन्थ बहुत उपयोगी हैं। यहाँ यह कहनेकी जरूरत नहीं कि मेरी लेखमाला एक खोजीके समान लिखी जारही है, जैन ग्रन्थोंको—फिर भलेही वे श्वेताम्बर हों या दिगम्बर—आगम मानकर नहीं लिखी जारही है। यही कारण है कि पार्श्वनाथके पहिलेका वर्णन दिगम्बर शास्त्रोंके समान श्वेताम्बर शास्त्रोंमें भी है, परन्तु मैं दोनोंको नहीं मानता।

इसके बाद आपने बाबू कामताप्रसादजीके लेखोंके आधारसे कुछ पुरातत्वकी बातें लिखकर जैनधर्मको भ० पार्श्वनाथके पहिले सिद्ध करना चाहा है। परन्तु बाबू कामताप्रसादजीने ही स्वयं इस विषयमें बहुत कुछ लिखाथा, जिसका सयुक्तिक और ऐतिहासिक प्रमाणोंके आधार पर खूब विस्तारसे उत्तर दिया जाचुका है। बाबू कामताप्रसादजी मेरे वक्तव्यका उत्तर देने वाले हैं और उसके बाद मैं भी उनके वक्तव्यकी आलोचना करनेवाला हूँ, इसलिये यहाँ कुछ लिखनेकी जरूरत नहीं है।

आक्षेपकने मुझे प्रतिज्ञाभंगका दोषी ठहराया है, क्योंकि मैंने सब धर्मोंको अनादि मानकरके भी उनकी ऐतिहासिक खोजकी है। आप मुझसे कहते हैं कि आप ऐतिहासिक दृष्टिसे धर्मोंको अनादि सिद्ध क्यों नहीं करते? शायद आक्षेपकको मालूम नहीं है कि इतिहासकी शक्ति इतनी जबर्दस्त नहीं है कि वह अनादितक पहुँच सके। किसी वस्तुको अनादि सिद्ध करना तर्कका विषय है। और तर्क दृष्टिसे यह विश्व अनादि सिद्ध होता है, इसलिये उसके साथ पुण्य पाप, धर्माधर्म, सम्यक्त्व मिथ्यात्व आदिभी अनादि सिद्ध होते हैं। यह बात मैंने लेखमालामें लिखी है।

बादमें जो ऐतिहासिक आलोचना हुई है, वह वर्तमान युग या कल्पकी दृष्टिसे हुई है। इस दृष्टिसे धर्मोंको नवीन, प्राचीन कहा जाता है।

मैंने पार्श्वनाथके पहिले वैदिकधर्मका अस्तित्व स्वीकार किया है, साथही यहभी कहाहै कि प्रचलित सम्प्रदायोंमें जैनधर्म सबसे प्राचीन है। इसमेंभी आपको प्रतिज्ञाभंगका दोष दिखलाई दिया है, परन्तु यह बातभी मैं लिख चुका हूँ कि वैदिकधर्म और आजकलका हिन्दूधर्म एक नहीं है। वैदिकधर्मका देव इन्द्र तथा पशुआदिका यज्ञ उसकी पूजा है; जबकि आजके देव विष्णु आदि हैं, उनकी पूजामें पशुयज्ञ आदिको कोई भी स्थान नहीं है। दुनियाँके कोई भी दो विभिन्नधर्मों से यह विभिन्नता कम नहीं है। इसलिये जो वैदिकधर्म जैनधर्मसे प्राचीन है वह अभी है नहीं, और जो हिन्दूधर्म अभी है वह

जैनधर्मसे प्राचीन नहीं है। हाँ, वर्तमानके हिन्दू धर्ममें वैदिकधर्मसे बहुतसी सामग्री लीगई है, परंतु सामग्री लेनेसे एकधर्म दूसरा धर्म नहीं बन जाता।

मोहनजोदड़ोंमें जो चिन्ह मिले हैं, वे न तो वर्तमान हिन्दूधर्मके हैं, न जैनधर्मके हैं। वे इन दोनों सेभी प्राचीन वैदिकधर्मके हैं, या द्राविड़ीधर्मके हैं। सुप्रसिद्ध ऐतिहासिकोंका बहुमत अभी उन्हें वैदिकधर्मके चिन्ह न मानकर द्राविड़ी धर्मके चिन्ह मानता है। मैं इस विषयमें कुछ विस्तारसे लिखनेवाला हूँ।
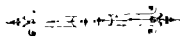
साम्प्रदायिकता का दिग्दर्शन।

[मूल लेखक श्रीमान् पं० सुखलालजी बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी]

अब साम्प्रदायिकताके विशेष प्रमाणोंकी खोज करते हुए पहिले वैदिकसाहित्य को लेते हैं। विक्रमके पूर्ववर्ती वैदिकसाहित्यमें साम्प्रदायिकता का अभाव ही है, यह तो नहीं कहा जासकता, परन्तु वह साम्प्रदायिकता उतनी उग्र और स्पष्ट नहीं है जितनी कि पीछेके साहित्यमें दीख पड़ती है। विक्रम के समयके और इसके बादके पुराण साहित्य में मतान्धताके उग्र विषका प्रथम नमूनारूप देखनेको मिलता है। यह पुराणका प्रभाव साधारणजनता में अपरिमितरूपसे प्रविष्ट होकर मतांधतासे विशालजनता के हृदयपट पर फैला है। एकबार जनताके हृदयमें गंभीर रूपमें प्रविष्ट होकर यह मतांधताका विष धीरेधीरे भावी पीढ़ीके वारसे में इतना प्रभावोत्पादक हुआकि आज उसका परिणाम साहित्यकी दूसरी शाखाओंमें भी नजर पड़ता है। नाटक, चम्पू और अलंकारके रसिक परिहासप्रिय और विलासी लेखक इस विषके असरसे मुक्त नहीं रहसके। यह तो किसी प्रकार समझमें आसकता है; परन्तु तत्वज्ञान और मोक्षपथके प्रतिनिधि होनेका विश्वास रखनेवाले महान आचार्य और विद्वान् तकभी इस विषके उग्र परिणामसे मुक्त नहीं रहसके, यह आज आर्यतत्व-ज्ञानके श्रेष्ठपनेका अभिमान रखनेवालोंको तो लज्जाका विषय है ही।

यहाँ प्रस्तुत नमूनोंके लिये तीन प्रकारके वैदिक साहित्य पसन्द किये गये हैं (१) पुराण, (२) नाटक और (३) दर्शनशास्त्र। इन नमूनोंको क्रमसे देखकर बादमें जैन और बौद्ध साहित्यमें से ऐसे नमूनोंको उपस्थित किया जायगा।

भारत और विदेशोंके सभी विद्वान प्रचलित पुराणों के पहिले भी पुराणसाहित्य का होना स्वीकार करते हैं। इस प्राचीन पुराणसाहित्यमें मतान्धताका अस्तित्व था या नहीं, यह आज निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। तोभी प्रचलित पुराणोंमें मतांधता विषयक नमूनोंको देखकर प्राचीन पुराणसाहित्यमें भी उन नमूनोंके किसी न किसी रूपमें होनेका सहज अनुमान होता है। अस्तु, शास्त्र और लोकमें प्रिय भाग्यसे ही कोई ऐसा विषय होगा जिसका वर्णन पुराणमें न किया गयाहो। धर्म अथवा तत्वज्ञान, आचार अथवा नीति, संगीत अथवा चित्र भूगोल या खगोल कुछ भी लो, इनका कुछ न कुछ वर्णन पुराणोंमें मिलताही है। इस कारण बहतीहुई नदी के तीर्थस्थानकी तरह पुराणसाहित्य सर्वग्राह्य होगया है। लोक हृदयरूपी जलके अच्छे और बुरे दोनों भाग पुराण साहित्यकी बहतीहुई नदीमें प्रविष्ट होगये हैं। तथ... नागों के एकबार प्रवेश होनेके बाद ... [illegible] प्रवेश करतेही जाते हैं।

उपपुराण अनेक हैं। परन्तु मुख्य पुराण अठारह ही कहे जाते हैं। यद्यपि इनकी रचनाका समय सर्वांशमें निश्चित नहीं है, फिरभी सामान्य रीतिसे इन सबकी रचना विक्रम सम्वत्के बादकी मानीजाती है। पुराणोंके पौर्वापर्यके विषयमें भी अनेक मत हैं, परन्तु विष्णुपुराण प्राचीन मानाजाता है। छह पुराणोंमें विष्णु, छहमें शिव और छहमें ब्रह्माकी प्रधानता है। इनमें संप्रदाय कुछभी

* पुराण के विषयमें यहां विस्तारसे लिखने का स्थान नहीं है, इसलिये इस विषयमें विशेष जानकारी की इच्छा रखने वालों को मराठीमें वैद्य त्र्यंबक गुरुनाथ कालेका "पुराण निरीक्षण" तथा प्रो० ई० जे० रेपसनका केम्ब्रिज हिस्टरी आफ इन्डियामें पुराणविषयक निबन्ध देखना चाहिये। औरभी देखो विन्सेन्ट स्मिथकी अरली हिस्टरी आफ इन्डियामें पुराणका समय नामक परिशिष्ट तथा पुराणोंके विशिष्ट अभ्यासी एफ. ई. पार्जिटर एम. ए. कृत 'दी पुराण टेक्स्ट आफ दी डायनेस्टीज़ आफ दी कलि एज' और 'एन्शन्ट इन्डियन हिस्टोरिकल ट्रेडिशन'।

हो परन्तु ये सब पुराण वैदिक हैं तथा वेद, स्मृति, यज्ञ. वर्णाश्रम धर्म, ब्राह्मण, देव श्राद्ध आदिको सर्वांश में माननेवालों के मतका पोषण करते हैं। इस कारण बहुतसे पुराणोंमें प्रसंग प्रसंगमें वैदिकेतर सम्प्रदायोंके संबंधमें खूब विरोध नज़र आताहै। बहुतसे स्थलोंपर तो इस विरोध में असहिष्णुता की ही प्रधानता है। वैदिकेतर संप्रदायोंमें मुख्यरूप से जैन, बौद्ध और कहीं कहीं चार्वाक सम्प्रदाय के विरोधमें ही पुराणकारोंने लिखा है। असहिष्णुता अथवा द्वेष यह एक ऐसी भयानक वस्तु है कि एकबार जीवनमें प्रवेश होनेपर उसका उपयोग कहाँ करना, कहाँ नहीं करना, यह विवेक ही नहीं रहता। इस कारण वैदिक, जैन और बौद्ध सभी सम्प्रदायोंके साहित्यमें जैसी असहिष्णुता दूसरे सम्प्रदायोंके प्रति दिखाई देती है, वैसीही असहिष्णुता इन सम्प्रदायोंके उपसम्प्रदायों में नज़र आती है। इसीलिये वैष्णव सम्प्रदायकी प्रधानतावाले पुराणों में शैव आदि सम्प्रदायोंके प्रति तथा शैवसम्प्रदाय की प्रधानतावाले पुराणोंमें वैष्णव आदि अन्य संप्रदायोंके प्रति असहिष्णुता दृष्टिगोचर होती है। शिवपुराणमें शिवसे विष्णुका स्थान नीचा सिद्ध करनेका प्रयत्न है, तो पद्मपुराणमें शैवसम्प्रदायकी लघुता बतानेका प्रयत्न कियागया है। आगेके थोड़े नमूनोंसे एक संप्रदायकी अपने उपसम्प्रदाय तथा इतर सम्प्रदायोंके प्रति असहिष्णुता ठीक लक्ष्य में आवेगी।

मुख्यरूपसे किसी भी एक अथवा अनेक विरोधी सम्प्रदायके विषयमें लिखनेकी या उसके गौरवको घटाने की पुराणकारोंकी पद्धति एकही कल्पनाके कारण हुई है। वह कल्पना यह है कि दो पक्षोंमें लड़ाई होती है और उनमें एक पक्ष पराजित होता है। पराजित पक्ष विष्णु आदिके पास सहायताके लिये जाता है। विष्णु आदि देव जीतने वाले पक्षको निर्बल बनाकर उसे मूल (वैदिक) धर्मसे भ्रष्ट कर अवैदिकधर्म स्वीकार कराने वाली माया प्रकट करते हैं। अन्तमें जीतने वाले पक्षको अवैदिक धर्म द्वारा निर्बल बनाकर लड़ाईमें दूसरे पक्षको जिता देते हैं। इस प्रकार अवैदिक धर्म पहले विजयी होकर भी बादमें पराजित पक्षकी निर्बलताके साधनरूप अस्तित्वमें आता है। इस कल्पनाका उत्पादक कुछ भी हो परन्तु इसका पुराणोंमें जुदे जुदे रूपमें उपयोग हुआ है। पुराणकारोंने प्रसंग बदल कर वक्ता, श्रोता और पात्रके नाममें परिवर्तन करके बहुत भागमें इसी कल्पनाका उपयोग जैन, बौद्ध आदि अवैदिक धर्मोंकी उत्पत्तिके विषयमें किया है।

अनुवादक—जगदीशचन्द्र जैन, एम. ए.

कलकत्तामें अन्तर्जातीय विवाह।

खण्डेलवाल--जैसवाल सम्बन्ध।

ता० ६ मार्च १९३४को कलकत्तामें दो विवाह बड़े महत्वके हुये हैं। एक श्वेताम्बर भाइयोंमें तेरहपंथी-मूर्तिपूजकमें, दूसरा दिगम्बर जैनोंमें खण्डेलवाल-जैसवालमें। प्रथम विवाहके सम्बन्धमें कुछ न लिखकर दूसरे विवाहका हाल ही पाठकोंके समक्ष रक्खा जाता है।

बाबू राजेन्द्र कुमारजी लुहाड़्या एक सदाचारी धर्मात्मा, उत्साही और शिक्षित खण्डेलवाल युवक हैं। कलकत्तामें आपकी दो दूकानें हैं और जो कुछ सम्पत्ति आपके पास है वह बड़े परिश्रमसे स्वयं उपार्जनकी है। ऐसे युवक अन्य युवकोंके लिए आदर्शही नहीं, बल्कि समाजके लिए गौरव-स्वरूप हैं। किन्तु स्थानीय खण्डेलवाल पंच-मन्योंको यह जाननेकी आज तक कोई आवश्यकता नहीं हुई कि इस जातिका एक होनहार व्यक्ति कलकत्तामें वर्षोंसे है और वह भी कुंवारा है। यह ज्ञान हो भी कहाँ से जबकि पंचायतोंका उद्देश्य और कार्य केवल मात्र इतनाही है कि धनवानोंकी हाँ में हाँ मिलाना और किसी होनहार व्यक्तिको जातिबहिष्कृत कर देना।

बाबू कमलाप्रसादजी भी एक धर्मात्मा, सरल-स्वभावी और सच्चरित्र जैसवाल युवक हैं। उनके पिताभी बड़ेही सज्जन और मिलनसार महानुभाव हैं। आप मुंगेर (बिहार) के रहने वाले हैं, पर अब १२-१३ वर्षोंसे कलकत्ता में ही रहने लगे हैं। बाबू कमलाप्रसादजी के दो सुपुत्रियाँ हैं। बड़ी लड़की जब विवाह योग्य हुई तो आपने उसके लिए

योग्य वरकी तलाशके लिये बहुत परिश्रम किया। परन्तु जब अपनी जाति में वर न मिला तब उन्होंने अन्तर्जातीय विवाहके लिए निश्चय कर लिया।

बाबू राजेन्द्रकुमारजी के मित्रोंने इसके लिये उनसे बात चलाई और लड़की को भी दिखा दिया। दोनों पक्षोंने लड़के लड़कीको देखकर अपनी स्वीकृति देदी। किन्तु दोनों पक्षोंके मित्रोंने कहा कि जल्दी करना ठीक नहीं है, आप पुनः विचार कर लेवें और जब हृदयमें पूर्ण दृढ़ता हो जाय तब विवाह करें। प्रायः एक वर्ष बीत गया। सैकड़ों लोगों ने वर-कन्याको देखा और उनसे बातेंचीतें भी कीं। जिनने भी देखा वे तुरन्त कहदेते थे कि वास्तव में बड़ा उत्तम सम्बन्ध है। अन्तमें सगाई मार्गशीर्ष कृष्णा ७ को हो गई।

कलकत्तामें दो तीन व्यक्ति ऐसे हैं जो स्वार्थवश कुछ न कुछ विरोध समाजमें बढ़ानेके लिए मौका देखते रहते हैं। तीन चार नये पैसे वाले यहाँ ऐसे हैं जिन्हें पाँचवें सवार बनने की प्रबल इच्छा रहती है। बस, झट वे इन स्वार्थियोंके शिकार बन जाते हैं। यहाँ अधिक संख्या ऐसे लोगों की है जिन्हें या तो अपने व्यापारके कारण फुरसत ही नहीं मिलती अथवा वे झगड़े टण्टेके काममें शामिलही नहीं होते। कितनेही लोग ऐसे हैं जिन्हें न तो अपने धर्मकी उन्नति अवनतिका खयाल है और न समाजके उत्थान और पतनका विचार है बस, ऐसी परिस्थिति में ये दो तीन स्वार्थी व्यक्ति उन सेठोंकी नेतागिरी की खुजली मिटाने के लिए उन्हें आगे कर और उनके खुशामदियों को शामिल कर हो हल्ला मचाने लगते हैं इस प्रकार की मनमानी कार्यवाही कर वे अपनेको धन्यभी मानने लगते हैं। कलकत्ता में इन्होंने अनेक उपद्रव किये हैं, जिससे सामाजिक शांति तो अवश्य भंग हुई है, परन्तु ये लोग सफल कदापि नहीं हुए हैं।

जब सगाई होचुकी तब यहाँकी मनमानी खण्डेल वाल पंचायत (जिसकी स्थापना एकडेढ़ वर्षसे हुई है) ने बाबू राजेन्द्रकुमारजीको एक पत्र लिखा। विशेषता यह कि अपनी पंचायतके एक सदस्यके गोत्रादिकाभी पता नहीं और न इन्हें कभी लावणा भाजी या निमंत्रण ही मिला है। इसीसे उनको केवल "जैन" लिख दिया। पाठक ज़रा विचारकरें कि इन पंचायतोंको अपने आत्मीयस्थ जातीय भाइयोंकी कितनी खोजखबर रहती है। एकअच्छे कमाने खाने वालेका ही जब इन्हें पता नहीं तो बेचारे दीन-दुखीकी बात ही न पूछिये। वास्तवमें है भी ऐसाही। यदि आवश्यकता हो तो उदाहरण भी उपस्थित किये जासकते हैं।

पत्र लिखनेके बाद कई दिन तक उस पंचायत के कई महाशय बाबू राजेन्द्रकुमारजीके पास समझानेको जाते रहे। जब यह उत्तर मिला कि मैं पूर्ण अवस्थाप्राप्त युवक हूँ और आजन्म ब्रह्मचारी रह नहीं सकता और व्यभिचार को मैं पाप समझता हूँ तथा विजातीय विवाहको मैं धर्मानुकूल समझता हूँ, इस परभी यदि आपके पास कोई सुयोग्य कन्या हो तो मैं उससे विवाह कर सकता हूँ। बस, इस उत्तरको पाकर लोग चुप हो कर और यही कह कर चले आये कि हाँ, धर्मविरुद्ध तो नहीं है परन्तु जातीय मर्यादा लोप होती है लोगोंका आना जाना बन्द हो गया और पंचायतभी चुप होकर बैठ गई। आज चार महीने व्यतीत हो गये और पंचायत किसी कन्याको न बता सकी तो विवाहकी तैयारी की गई। निमंत्रणपत्र भेजे गये। उन खण्डेलवाल भाइयों को भी निमंत्रणपत्र दिये गये जो इसके विरोधमें थे, ताकि यह कोई न कह सके कि यह कार्य गुपचुप किया गया है।

निमन्त्रणपत्र देखकर इन्हें पुनः जोश आया। बाबू राजेन्द्रकुमारजीके प्रश्नोंका उत्तर तो इनके पास पहलेही न था। इससे इन लोगोंने उनके पास जाना उचित न समझकर कुछ खण्डेलवाल लड़कीके पिताके पास विवाहके पहले दिन, सजधज कर गये और कहने लगे कि आप यह कार्य न करें;

हम आपको अन्य वर तलाश कर देंगे। आपके पाँच सातसौ रुपये जो खर्च हुए हैं, वह हमसे लेलो तब उनको वहाँ उत्तर दियागया कि आप लड़केको समझावें। बस, इसपर वे बिगड़गये और कहने लगे कि हम सारे कलकत्तेमें छापे बँटवा देंगे और सबसे कहदेंगे, सो आपके यहाँ कोई भी न आयेगा। हम पुलिसकी कार्यवाहीसे यह विवाह रुकवा देवेंगे। क्या आप देख नहीं रहे हैं कि हम करोड़पति हैं? आप हमारी बात नहीं मानते हैं! बड़ा घमण्ड है! इस प्रकार डरा धमकाकर चलेगये और साथही कहते गये कि आप सावधान रहें। बाबू कमला प्रसादजी भोले आदमी हैं; वे डरगये। तब उनके मित्रोंने उन्हें आश्वासन दिया कि आप निश्चिन्त रहें. आपका बालभी बाँका न होसकेगा। पाठक देखें कि ये लोग जब युक्तियोंसे बातें नहीं कर सकते तब डरा धमकाकर दबानेकी कुचेष्टा करते हैं।

तारीख ६ मार्चको दिनके दो बजे कन्या पक्षके लोग वरके यहाँ गये और तिलक वगैरह कर लौट आये। सन्ध्याको ठीक ४॥ बजे बारात निकली। आजके दिन कलकत्तामें तथा चन्द्रनगरमें बहुतसे विवाह थे, इससे बहुतसे लोग न आसके, तो भी बारात पहुँचते पहुँचते करीब १२५-१२० आदमी शामिल होगये थे, जिसमें खण्डेलवाल, अग्रवाल (मारवाड़ी और देशवाल) जैसवाल, परवार, पद्मावती पुरवाल, हूमड़, ओसवाल, लमेचू और गोलालारे आदि कई जातियोंके और दिगम्बर, श्वेतांबर और वैष्णव सम्प्रदायके लोग थे। संक्षेपमें यह समझिये कि इस विवाहमें बम्बई, राजपूताना, गुजरात, मध्यप्रदेश, संयुक्तप्रदेश, बिहार और पञ्जाब सभी प्रान्तोंके लोग थे। रास्तेमें जो भी व्यक्ति वर को देखते थे वे कहते थे, कि वास्तवमें वर ऐसाही सुयोग्य, स्वस्थ और विवाहके योग्य होना चाहिये।

पाठक आश्चर्य करेंगे कि इस मनमानी पंचायत ने आज प्रातःकाल सभी मन्दिरोंमें निम्नलिखित परचा जिसमें प्रेसका नाम नहीं था, वितरण किया था, तिसपर भी इतने आदमी आये थे।

परचा—

'समस्त दिगम्बर जैन खण्डेलवाल सज्जनोंको सूचित किया जाता है कि श्री घीसूलालजी (राजेन्द्र कुमारजी) लुहाड्याने अपना विवाह खण्डेलवाल जातिको छोड़कर अन्य जातिकी कन्यासे चैतबदी ६ को करनेके लिये पत्रिका निकाली है। यह विवाह जाति मर्यादाको तोड़नेवाला है। अतः कोईभी भाई विवाहमें एवं खानपान आदि किसीभी कार्यमें शामिल न होवे।'

इस परचेमें इस विवाहको धर्मविरुद्ध नहीं लिखा, इसमे सभी लोग यह कहते थे कि चलो अच्छा हुआ—'धर्मविरुद्ध, धर्मविरुद्ध, चिल्लाना तो बन्द हुआ।'

बारात पहुँचनेके आधा घण्टे बाद दो एक स्थितिपालक भाई बारात देखनेके लिये आये; किंतु तबतक अनेक भाई लौटगये थे। तो भी जो उपस्थित थे उन्हेंही देखकर कोईभी व्यक्ति इसकी सफलता को सराहे बिना न रहेगा। रात्रिको विवाह संस्कार प्रारम्भ होनेके पहले तीनचार स्थितिपालक युवक भीतर मण्डपमें पहुँच बड़ी देर खड़े रहे और बाद में प्रश्न किया कि फेरे कब होंगे? उन्हें उत्तर दिया गया कि रात्रिके ९॥ बजे। वे फिर 'आयेंगे' कहकर चलेगये और बादमें उनकी सूरतभी न दिखाईदी।

बाबू रतनलालजी झाँझरी और बाबू मिश्रीलालजी पद्मावती पुरवालने विवाह पूर्ण जैनविधिसे कराया। उनके शुद्ध और स्पष्ट उच्चारणसे इस समय जो ८०-८५ भाई उपस्थित थे, सभीको बड़ा आनंद मिला। वर कन्याकी प्रतिज्ञाके समय थोड़ासा व्याख्यानभी बाबू रतनलालजी झाँझरीने दिया। इससे लोगोंपर बड़ा प्रभाव पड़ा। श्रीजिनमन्दिरों और अन्तर्जातीय विवाह प्रचारके लिये वर पक्षने ४६) और कन्या पक्षने ११) प्रदान किये।

दूसरे दिन बढ़ार (भोज) हुई। प्राय: २०० भाइयोंने भोजनकर अपनी प्रीतिका परिचय दिया। समस्त वैवाहिक कार्य केवल दो दिनमें सुसम्पन्न होगया। दोनों पक्षकी स्थिति अच्छी होने परभी फिजूलखर्ची न कीगई। धमकी देनेवालोंकी पुलिस का कहीं पता न था, और विवाह सानन्द समाप्त होगया।

स्थानीय खण्डेलवाल पंचायत अभी इस सम्बन्धमें कुछ नहीं कररही है। इसका कारण यह सुना जाता है कि श्री० माणिकचन्द्रजी बैनाड़ा महामन्त्री खण्डेलवाल महासभा बाहर गये हुए हैं। उनके आनेसे कुछ उछल कूद मचाई जायगी।

—दामोदरप्रसाद शर्मा।
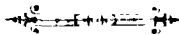
कलकत्तामें अंतर्जातिय विवाहसे हलचल।

ता० ६-३-१९३४ को कलकत्तामें एक खण्डेलवाल-जैसवाल अन्तर्जातीय विवाह हुआ था। उसका विचार करनेके लिये खण्डेलवालोंके धड़की पंचायत ता० १२-३-३४ को स्थानीय दिगम्बर जैन भवनमें हुई थी, जिसमें उपस्थिति चालीस पचास के क़रीब थी। इस पंचायतकी बैठकके पूर्वही दूसरे धड़ेवालोंने। विज्ञापनद्वारा निम्नलिखित सूचना दे दी थी:—

सूचना।

ता० १२-३-१९३४

श्रीमान् बाबू गजराजजी गँगवाल मन्त्री दिगम्बर जैन खण्डेलवाल पंचायतने श्रीजिन मन्दिरोंमें आजकी आम पंचायतके लिये नोटिस लगाया है। उसके सम्बन्धमें सूचित किया जाता है:—

१—दिगम्बर जैन खण्डेलवाल पंचायत जिसके नामसे नोटिस लगा है, वह संस्था कलकत्तेके सभी खण्डेलवालोंका प्रतिनिधित्व नहीं रखती है, और उसकी स्थापना और सम्बन्ध थोड़ेही भाइयोंसे हुआ है और है।

२—नियमानुसार जहाँ कमसे कम पाँच घर खण्डेलवाल भाइयोंके हों, उसका एक धड़ा समझा जाता है और ऐसे एक धड़ेका विचार करनेका दूसरे धड़को कोई अधिकार नहीं होता।

३—हम लोग उपरोक्त खण्डेलवाल दिगम्बर जैन पंचायतके आधीन नहीं हैं। इसलिये नियमानुसार इस संस्थाको हमारे सम्बन्धमें कोईभी विचार करनेका अधिकार नहीं है।

४—अन्तर्जातीय विवाह जैन सिद्धान्तमें माने गये पाँच पापोंमें से किसीभी पापमें नहीं है। इसलिये इसके करनेमें कोई दोष नहीं है।

५—जैन सिद्धान्तके अनुसार एक वैश्य किसी भी वैश्यकी कन्यासे विवाह कर सकता है। (देखो श्रीआदि पुराणजी, पर्व १६ श्लोक २४७) इसलिये अन्तर्जातीय विवाहमें धर्मानुसार कोई बाधा नहीं है।

६—जिस कार्यमें देव, गुरु और शास्त्रकी आज्ञा हो उस कार्यको करना हमारी पंचायत अपना कर्त्तव्य समझती है।

७—अप्रमाणिक जातीय रूढ़ियोंकी अपेक्षा धार्मिक आज्ञाओंको हमारी पंचायत विशेष माननीय समझती है।

प्रथमही पंचायतमें बाबू माणिकचन्द्जी बैनाड़ा ने मन्दिरोंमें लगाया हुआ नोटिस पढ़कर सुनाया और कहा कि आजकी पंचायत इन्हीं लोगोंका विचार करनेको इकट्ठा हुई है।

तदुपरान्त बाबू माणिकचन्दजी बैनाड़ाने कहा कि चार महीने पहिले जब इस सम्बन्धकी बात मालूम हुई थी तब बाबू राजेन्द्रकुमारजीको समझानेके लिये कई आदमियोंको भेजा था किन्तु उस समय वे अपनी पंचायतकी बात स्वीकार करनेसे इन्कार करगये थे। चार महीने तक इस सम्बन्ध के कोई और नई बात उठी नहीं, इससे शांति रही।

किन्तु जब विवाहकी कुंकुम-पत्रिका पहुँची तब हम लोगोंने परचा निकाला कि इस विवाहमें कोई शामिल न हो।

अब पंचायत इस सम्बन्धमें विचार करले! इसपर बाबू मोतीलालजीने पूछा कि यह कार्य जाति-मर्यादा विरुद्धही है या धर्मविरुद्ध भी है? इसका उत्तर बाबू हीरालालजी अजमेराने दिया कि पं० श्रीलालजी पाटनी अलीगढ़ने जो पुस्तक विजातीय विवाह खण्डन पर प्रकट की है, उसमें ४२ पण्डित और ३७ सेठोंकी सम्मति है और उसमें यह सिद्ध कियागया है कि यह कार्य जातिमर्यादाको तोड़ने वाला है; जो श्लोक 'शूद्रा शूद्रेण वोढव्या' आदि-पुराणमें है, उससे अन्य वर्णादिमें विवाह करने की आज्ञा मिलती है, किन्तु उसका अर्थ यह नहीं है कि अन्य जातिमें विवाह करे। जातिमर्यादा तोड़नेकी आज्ञा कहीं नहीं है, इसलिये यह कार्य जातिमर्यादासे विरुद्ध हुआ है। आप औरभी कुछ कहरहे थे कि पंचायतके मंत्री सेठ गजराजजी उठे और जो वक्तव्य बाबू माणिकचन्दजीने दिया था उसीको पुनः दोहराने लगे। इसपर बाबू कस्तूर चन्दजी बैनाड़ाने कहा कि जब वे लोग अपनी पंचायती सत्ताको स्वीकार ही नहीं करते हैं और अपना धड़ा आप लोगोंसे पृथक् घोषित करचुके हैं, ऐसी परिस्थितिमें अपनेको कुछभी विचार करनेकी कोई आवश्यकता मालूम नहीं देती। इसपर बहुतसे लोग बोल उठे–हाँ, यह बात तो बिलकुल ठीक है। जब वे लोग हमारी सत्ताही स्वीकार नहीं करते और स्वयं अपने आपही पृथक् होगये हैं, तब फिर कोईभी विचार करनेकी क्या आवश्यकता है?

परन्तु जो लोग कमर कसकर आये थे; वे कहने लगे कि जब इकट्ठे होगये हैं तब कुछ तो करनाही चाहिये। इसपर पुनः बाबू कस्तूरचन्दजीने पहली बात दुहराई और कहा–यदि आप उन्हें जातिबहिष्कृत करना चाहते हैं तो उन्हें यहाँ बुलाकर विचार करना होगा। इसपर बैठे हुए लोग आपसमें कानाफूसी करने लगे और कई लोग उठकर चले गये।

इसी बीचमें कई लोग यह कहते सुनेगये कि आप लोग कतिपय बड़े आदमियोंकी हाँमेंहाँ मिलाने के लिये और जोशमें आकर काम तो कर बैठते हैं और फिर उसपर लीपापोती करदेते हैं। इससे क्या लाभ होता है? पहले कई लोग पंचायतके विरुद्ध कई कार्य करचुके हैं किंतु पंचायत उनका कुछभी न करसकी। बाबू कपूरचन्दजीने कहा कि ऐसे कार्यके लिये आगराकी पंचायतने एक बार एक भाईका मन्दिर बन्द करदिया था। इसपर उनको उत्तर दियागया कि मन्दिर केवल अपनाही होता तो यह कार्य होसकता था। मन्दिर तो सभी जातियोंका है और यह कार्य धर्मविरुद्ध भी तो नहीं है।

इतनेमें प्रस्ताव तैयार करलिया गया और पढ़ कर सुनाया गया। प्रस्तावमें यही कहागया है कि अन्तर्जातीय विवाहमें शामिल होनेवाले पाँच व्यक्तियोंको (जिनके नाम दिये हैं) सर्वथा जाति बहिष्कृत किया जाय; और पंचायत अन्य दिगम्बर समाजको आदेश देती है कि वे भी इनके साथ खानपान न करें।

इसपर कई भाइयोंने यह कहा कि आप लोग पंचायती करने तो बैठे हैं किन्तु आपको क्या मालूम है कि कौनकौन खंडेलवाल वहाँ गये थे? आप तो केवल जिनके नाम कलकत्ता खंडेलवाल सरावगी पंचायतके पर्चेमें निकले हैं, उन्हींको जाति बहिष्कृत कररहे हैं। आपके पास क्या प्रमाण है कि इस पर्चे में जो पाँच नाम हैं वे पाँचोंही उस विवाहमें शामिल हुए थे? किन्तु ऐसी पंचायतोंमें कौन किसकी सुनता है? मनमानी कार्यवाही करली जाती है और यहाँभी ऐसाही हुआ।

—कपूरचन्द पाटणी।

चन्द्रसागर-चर्चा

खुशालचन्द्र पहाड्या उर्फ चन्द्रसागरने दाधिया ग्राममें श्रीमान रावराजा सर सेठ हुकमचन्दजी तथा अन्य प्रतिष्ठित व प्रमुख नेताओंके प्रति जो असभ्य व उद्दंडतापूर्ण व्यवहार किया था, उसके समाचार गतांकमें प्रकाशित हो चुके हैं। दाधियासे श्रीमान् राव राजा साहिब नाँवाँ किसी विवाहमें सम्मिलित होनेके लिये गये। आपने नाँवाँमें चन्द्रसागरके सम्बन्धमें एक विज्ञप्ति लिखी जिसकी पूरी नक़ल नीचे दीजाती है:—

"मुनि चन्द्रसागरजी का बहिष्कार"

धोखेसे सावधान, धोखेसे सावधान, धोखेसे सावधान !

श्री खंडेलवाल दिगम्बर जैन समाजको सूचना।

मैं सूचना करता हूँ कि अभी पंचकल्याणक महोत्सवके समय परतावगढ (मालवा) गया था, वहाँ मुझे चार दिन रहनेका मौक़ा मिला था। वहाँ पर परमपूज्य श्री १०८ आचार्य शान्तिसागरजी महाराज दक्षिण व परमपूज्य श्री १०८ आचार्य शान्तिसागरजी छाणी आदि युगलसंघसहित श्री मुनिराजोंके दर्शन करके परम आनन्दको प्राप्त हुआ। यह युगल संघस्थ सब श्री मुनिराज परम शान्ति मूरत हैं और मैं श्री जिनेन्द्रदेवसे प्रार्थना करता हूँ कि इस कालमें आचार्य शान्तिसागरजी महाराज जैसे आदर्श साधु इस कालमें होते रहेंगे और श्री जिन धर्मका उद्योत करते रहेंगे।

बहुत भारी दुःख है कि मुनि चन्द्रसागरजीके विषयमें अखबारोंके द्वारा तथा और कई सज्जनोंके कहनेसे सुना करता था कि मुनि चन्द्रसागरजी अपने पदके विरुद्ध खंडेलवाल दिगम्बर जैन लोहड-साजन भाइयोंके विरुद्ध आन्दोलन कर रहे हैं और उणाँको नीचा पटकने की सूरत कर रहे हैं। मैं सदा से देखता आया हूँ कि लोहड़साजन भाई सदासे बड़े साजनोंके साथ कच्चा पक्का भोजन तथा पूजन प्रक्षाल व मुनि अहारदानादि धार्मिक कार्योंमें सदासे शामिल हैं और किसी किसी प्रान्तमें तो बेटी-व्यवहार भी दोनों धड़ोंका परस्पर होता है। इसका काफ़ी सबूत यह भी है कि खंडेलवाल समाजमें सदासे यह आमरिवाज भी है और "लोहडसाजन निर्णय" नामकी पुस्तकमें प्रत्यक्ष प्रमाण भी मौजूद है। ऐसा होते हुये भी मुनि चन्द्रसागरजी खयाल नहीं करते हुये खाली अपनी असत्य हठको पूर्ण करनेके लिये इनके विरुद्ध आन्दोलन उठा रहे हैं।

मैं धार्मिक रक्षा और समाजकी शान्ति रखनेके लिये कि समाजमें किसी तरह अशान्ति न होजावे और समाजमें कलह पैदा न होजावे इसलिये मुनि चन्द्रसागरजीको समझानेके लिये मैं और डाक्टर साहिब गुलाबचन्दजी पाटनी अजमेरनिवासी और नसीराबादके मुखिया २ पंच राजमलजी सेठी व घीसालालजी गदिया आदि व किशनगढ मदनगंज के बहुतसे पंच महाशय किशनगढ स्टेशनसे कच्चे रस्ते चलकर १३ माइल दाधिया (किशनगढ) पहुँचे थे और पहुँचकर हम सब लोगोंने मुनि चन्द्रसागर-जीसे निवेदन रूपमें कहा था कि खंडेलवाल दिगम्बर जैन लोहडसाजन भाइयोंके साथ खानपान आदि न खाने की प्रतिज्ञा नहीं दिवावें और उनका पूजन प्रक्षाल वगैरह न रोकिये, नहीं तो समाजमें अशान्ति और फूट होजावेगी और जगह जगह कलह हो जावेगी और इससे बड़ा भारी समाजमें नाहक तोफ़ान खड़ा हो जावेगा। और आप इस विषयमें क्या सबूत रखते हैं? जब तक आप सबूत न बतावें तब तक आपको ऐसा करना उचित नहीं है। इस

पर मुनि चन्द्रसागरजी बहुत गरम होगये और कोई प्रमाण भी नहीं बता सके और अपनी ज़िद पर अड़े रहे और बहुत भारी क्रोध करके बहुत से अपशब्द और असत्य वचन बोलते हुये वे कहने लगे कि मैं तुम्हारा गुरू हूं, मैं कहूँगा सो मानना पड़ेगा। मेरे पास कोई प्रमाण नहीं है। इसलिये मुनिजीकी यह बहुत भारी कलहप्रिय हठग्राहिता है। इसलिए मैं धर्मरक्षाके खयालसे मुनि चन्द्रसागरजीके विषयमें समाजको सावधान करता हूँ कि, अब यह मुनि चन्द्रसागरजी मुनिपद के योग्य नहीं हैं और इनको मुनि मानना श्री महान दिगम्बर मुनिधर्म पर लान्छन लगाना है। इसलिये मुनि चन्द्रसागरजी का इस पद परसे बहिष्कार करता हुवा समाजको सावधान करता हूँ कि खंडेलवाल दिगम्बर जैनसमाज लोहड़साजन खंडेलवाल दिगम्बर जैन भाइयोंके खिलाफ कोई प्रतिज्ञा न लेवें। यह ऐलान मैं किसी द्वेष बुद्धिसे नहीं किन्तु धार्मिक भावोंसे प्रेरित होकर समाजमें शान्ति चाहता हुवा जारी करता हूं कि समाज मुनिचन्द्रसागरजी से सावधान रहे। ता० १२ मार्च सन १९३४ ईस्वी मिती चैत बदी १२ सोमवार संवत १९९० मुक़ाम नाँवाँ कुचामनरोड़से जारी किया गया।

द० सरूपचन्दजी हुकमचन्द इन्दोरवाला.

दानवीर, तीर्थभक्तशिरोमणि, राज्यभूषण, रायबहादुर, रावराजा, सर, सेठ सरूपचन्दजी हुकमचन्द नाइट, इन्दौर।

जब श्रीमान् रावराजा साहिब नाँवाँसे इंदौर लौट रहे थे तो अजमेर स्टेशन पर श्रीमान गुलाब चंदजी पाटणी प्रभृति कई व्यक्ति उनसे मिले थे। हमें विश्वस्त सूत्रसे मालूम हुवा है कि उन्होंने उस समय चंद्रसागर–बहिष्कार सम्बंधी उपरोक्त विज्ञप्ति का उनसे जिकर किया था। किसी भाईके एत-राज़ करने पर कि मुनि महाराजके विरुद्ध इसप्रकार आंदोलन उठाना ठीक नहीं, सर सेठ हुकमचंदजी साहबने स्पष्ट शब्दोंमें कहा—जो व्यक्ति इसप्रकार तीव्र कषाय रखता है, मिथ्या भाषण करता है, समाजमें भीषण विद्रोह फैलाता है, वह कैसा मुनि है ? ऐसे व्यक्तिका बहिष्कार किया ही जाना चाहिये। मैं तो विज्ञप्ति निकाल चुकाहूँ। आदि।

उपरोक्त विज्ञप्ति यहाँ इसके दूसरे रोज़ वित-रित हुई। देखतेही अंधभक्तोंके चेहरे फीके पड़ गये। इस विज्ञप्तिसे जैन जगतके गतांकमें प्रकाशित समा-चारोंका पूर्ण समर्थन होता है। चाहिये तो यह था कि भक्त मंडली अपने गुरुकथित व्यक्तिकी इन बेहूदी हरकतोंसे लज्जित होती, तथा चंद्रसागरको समझा बु-झाकर उसे अपने पदके अनुकूल आचरण करनेके लिये बाध्य करती, परन्तु हठग्राहिताके कारण वे खिसियाकर उलटा श्रीमान सर सेठ हुकमचंदजीको कोसनेलगे। कुछ आवारा व गैरज़िम्मेवार व्यक्ति-योंने रावराजा साहिब पर व्यक्तिगत व असभ्यता-पूर्ण आक्षेप करते हुए एक नोटिस बनाया और लोगोंसे दस्तख़त कराने के लिये निकले। बहुत कुछ दौड़ धूप की, कई व्यक्तियोंकी खुशामद की, उलटा सीधा बहकाया परन्तु उन जैसेही चार पाँच आ-दमियोंके अलावा किसी समझदार व्यक्तिने उस पर दस्तख़त नहीं किये। कुछ लोग श्रीमान सेठ भागचंदजी साहबके पासभी पहुँचे और उन्हें, लोहड़साजनोंके साथ कच्ची व पक्की रसोई खानपान तथा उनका पूजा–प्रक्षाल व मुनि–आहारदानादिका समान अधिकार स्वीकार कर किशनगढ़के पंचोंके नाम लिखी गई चिट्ठी पर दस्तख़त करनेपर उलहना दिया। सेठ साहबने इसके उत्तरमें कहा बताते हैं कि—मैंने इसमें नई बात क्या की है ? आजसे दस बरस पहिले स्वयं स्वर्गीय सेठ टीकमचंदजी साहब लोहड़साजनोंके इस अधिकार को लिखित रूपमें स्वीकार कर चुके हैं, आदि।

दुराग्रहियोंकी जब बिलकुल दाल न गलीतो उन्होंने एक दूसरी तरकीब सोची। निकट भविष्यमें श्रीमान स्वर्गीय सेठ टीकमचंदजी साहब आदि के मोसर होने वाले हैं। उन्होंने किसी तरह सेठ भागचंद जीके हृदय में यह बात जमादी कि अगर चंद्रसागर बहिष्कार तथा लोहड़साजन आंदोलन जोर पकड़ा तो सम्भव है कि मोसरका कार्य शान्तिपूर्वक न हो-सके। दो दिनतक घंटों इंदौर व अजमेरके बीच तार व टेलोफ़ोन चलते रहे। आखिर श्रीमान रावराजा साहब पर दबाव देकर ता० १९ मार्चको इंदौरसे एक तार मँगवाया। तारकी प्रतिलिपि हमें प्राप्त नहीं होसकी लेकिन उसी रोज श्रीमान गुलाबचंदजी पाटणीकी ओरसे "सर सेठ हुकमचंदजी साहब परम मुनि-भक्त हैं।" "मुनि चंद्रसागरजीका बहिष्कार शीर्षक पर्चा ग़लत है।" शीर्षक एक पर्चा निकला जिसमें उक्त तारका तर्जुमा इस प्रकार दिया है—

"मैं कल शामको यहाँ पहुँचा। सुनाकि नसी-राबाद व किशनगढ़के पंचोंने मुनिमहाराज चंद्र-सागरजीके बारेमें एक पर्चा जो नाँवाँमें लिखा गया था, छपवाया है। मैंने पंचोंसे वायदा ले लिया था कि इस पर्चेको भागचंदजी साहब, डाक्टर गुलाब-चंदजी, और गोपीलालजी ठोल्या को दिखा कर आप सबके दस्तखत करालें। आपकी पूर्ण स्वीका-रता और दस्तखत लेकर उस पर्चेको छपवाना था। उन पंचोंने वायदाखिलाफी की और बिना आप लोगोंकी स्वीकारता के पर्चा छपवा दिया। मुझे इस पर बड़ा दुःख है। मुझे मुनि महाराज चंद्रसागरजी में पूर्ण विश्वास और भक्ति है जैसा कि हर एक सच्चे धर्मात्मा दिगम्बर जैनको अपने गुरुके प्रति होती है। मैंने मुनि चंद्रसागरजी महाराजके विरुद्ध न तो पहिले कभी कुछ लिखा और न मुझे लिखना है। मेरा सिर्फ यही इरादा था और है कि समाज में कोई द्वेष और अशान्ति न हो और अपना धर्म छोटा न दीखे। कृपया आप प्रयत्न करें कि अपनी समाजमें कोई अशान्ति न हो।"

उपरोक्त तारसे यह स्पष्ट है कि श्रीमान रावराजा साहब नाँवाँमें 'मुनि चंद्रसागरजीका बहिष्कार" शीर्षक पर्चा लिखना स्वीकार करते हैं। उनका अब ऐतराज सिर्फ इतनाही है कि उस पर्चेको "भागचंद जी साहब डा० गुलाबचंदजी और गोपीलालजी ठोल्याको दिखाकर उनकी पूर्ण स्वीकारता और दस्तखत लेकर छपवाना था।" हमें मालूम हुवा है कि नाँवाँ में जब सेठ साहिबने उक्त विज्ञप्ति लिखी थी तब वहाँ किशनगढ़ व नसीराबादका कोई व्यक्ति मौजूद नहीं था तथा जिन व्यक्तियों को उनने विज्ञप्ति लिख कर दी थी उनसे किसी प्रकार की शर्त नहीं हुई थी। यहाँ पर प्रश्न यही है कि जब स्वयं श्रीमान सर सेठ हुकमचंदजी उक्त तारमें यह स्वीकार करते हैं कि उन्होंने नाँवाँ में "मुनि चंद्रसा-गरजीका बहिष्कार" शीर्षक पर्चा लिखा तथा उसे तीन और व्यक्तियोंको दिखा कर तथा उस पर उनके दस्तखत कराकर छपानेकी स्वीकृति देदी थी, तब श्रीमान गुलाबचंदजी पाटणीका यह घोषित करना कि "मुनि चंद्रसागरजीका बहिष्कार शीर्षक पर्चा ग़लत है", क्या मायाचार नहीं है? यहाँ एक बात और ध्यानमें रखनेकी है। पाठक कृपया एक बार फिर श्रीमान सेठ हुकमचंदजी साहबकी विज्ञ-प्तिको पढ़ें। शुरूसे आखिर तक उसका मजमून एकही शैलीपर है—"मैं सूचना करता हूँ कि श्री-भी पंच कल्याणक महोत्सवके समय परतापगढ़ गया था," "बहुत भारी दुःख है कि मुनि चंद्रसा-गरजी के विषयमें......सुनाकरताथा," "मैं सदासे देखताआया हूँ.....", "इसलिये मैं धर्मरक्षाके खयालसे मुनि चंद्रसागरजीके विषयमें समाज को सावधानकरता हूँ," "इस लिये मुनि चंद्रसागरजीका इसपद परसे बहिष्कार करता हुवा समाजको सावधान करता हूँ," "यह ऐलान मैं किसी द्वेष बुद्धिसे नहीं किन्तु धार्मिक भावों से प्रेरित हो कर समाजमें

卐-जयवीर-卐

भारतीय जैन युवकों के नाम-

अपील

प्रिय जैन युवको ! वर्तमान युग, प्रगति और क्रान्ति का युग है। प्रत्येक देश, राष्ट्र और जाति बड़ी तीव्रता से अपनी स्थितियों में इस विशाल विश्वव्यापी प्रगति में अपना अस्तित्व कायम रखने के लिये परिवर्तन कर रहे हैं।

जैन धर्म के अनुसार यह प्रगति या परिवर्तन कोई आश्चर्य-जनक या भयप्रद वस्तु नहीं है, कारण कि संसार का स्वभाव ही परिवर्तनशील है। इस विशाल विश्व का प्रत्येक अणु प्रतिक्षण परिवर्तन करता है। हां सावधानी से जो अपनी स्थिति में समयानुकूल परिवर्तन कर लेते हैं वे ही सिर्फ बचे रहते हैं और बाकी सब नष्ट होजाते हैं, इतिहास भी यही कहता है कि इस प्रगति को रोकने बांधने या इससे उपेक्षा रखने वाले बड़े २ शक्ति राष्ट्र और सम्राट् तथा विशाल जातियां नाम निःशेष होकर सिर्फ कहने सुनने की सामिग्री रह गई हैं। यह निश्चित और वास्तविक सत्य है कि परिवर्तन विरोधी या उससे उदासीन रहने वाला समाज, जाति या धर्म इस संसार में अपना अस्तित्व कायम नहीं रख सकते।

अगर हमको जैन-समाज को जीवित रखना है और भगवान महावीर के नाम पर शिर झुकाने वाले जैनधर्म के अनुयायियों के अस्तित्व को इस विशाल विश्व में बने रहना देना है तो इस नित्य प्रति क्षीण होती हुई बड़े वेग से मृत्यु-पथ की ओर जाने वाली जैन जाति की वर्तमान स्थिति और उसके अंधकारपूर्ण भविष्य की ओर भी निहारना पड़ेगा।

जिस देश राष्ट्र या जाति ने उन्नति की है वह सब युवकों के ही बल पर की है और जिस राष्ट्र देश या जाति का पतन हुआ है वह भी सब युवकों के ही पतन और निष्कर्मण्यता से ही हुआ है। युवक यदि कर्तव्य-शील और उन्नत हैं तो जाति भी उन्नत है। युवक यदि निष्कर्मण्य और पतित हैं तो जाति भी अवनत और गिरी दशा में रहेगी। सारांश यह कि जात्युन्नति का भार या जवाबदेही अगर किसी पर रखी जा सकती है तो वह सब युवकों पर ही है।

जैन समाज आज दिन ब दिन नष्ट हो रही है। इसका अर्थ ही यह है कि जैन समाज का युवकदल अपने कर्तव्यपथ से गिरा हुआ अकर्मण्य हो रहा है।

सरकारी जनसंख्या की रिपोर्ट में हमको गिरती और मरती हुई जातियों में लिखा जाता है। लोकमत और उसके नेता जैन समाज को मुर्दा समझ कर उसे उपेक्षा तथा

घृणा की दृष्टि से देखते हैं। जिसके हृदय में थोड़ा भी आत्म गौरव और धमनियों में किञ्चित् भी उष्ण रक्त प्रवाहित होता है उनके लिये इससे भी घोर आत्म प्रतारणा क्या हो सकती है।

वीर जैन युवको! गया हुआ समय फिर लौट कर नहीं आता। अगर तुमको भविष्य में अपनी सन्तति द्वारा लिखे जाने वाले इतिहास में कायर और अकर्मण्य लिखा जाना नहीं स्वीकार है, अगर तुम्हारे हृदय में वास्तविक जैनत्व का थोड़ा भी अंश विद्यमान है, तो आओ! आलस्य और अकर्मण्यता छोड़ कर मैदान में आओ!! वीर प्रभु के सामने मस्तक झुकाने वालो! आओ। एक वीर झंडे के नीचे एकत्रित और संगठित हो कर उन्नति का सिंहनाद कर दो। वीर युवको! तुम्हारे अन्दर वह शक्ति है कि अगर तुम सब संगठित हो कर सच्चे दिल से एक पथ के पथिक हो जाओ, तो विश्व का मान चित्र ही पलट डालो। तुम्हारे विरोध में यदि साक्षात् पर्वतराज हिमालय भी आजावे तो धूल क्षार होकर अपने अस्तित्व को ही मिटा बैठेगा।

हमारे रास्ते में यदि कोई सब से बड़ी कठिनाई है तो पारस्परिक असहिष्णुता, संकीर्णता, भेद, भाव और फूट की है? कोई भी समाजोन्नति का कार्य इसी असहिष्णुता और संकीर्णता के कारण नहीं पनप पाता। उत्थान का सबसे बड़ा घुन यही है।

जैन युवकों के सामने सबसे पहिला कार्य यही है कि जैन समाज के अन्दर से इस असहिष्णुता और संकीर्णताको मिटाकर उदारता और सहनशीलता का प्रवाह बहावें जो कि सच्चे और वास्तविक जैनत्व का मूल है।

भगवान् महावीर ने जिस समय जैन धर्म का उपदेश दिया था उस समय उसमें दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी, तेरह, बीस, पण्डित, बाबू सेठ आदि का कोई भेद न था। वह तो एक निर्मल अभेद विश्व के सर्वोत्कृष्ट उदार प्राणी मात्र के हितकारी विश्व बन्धुत्व के रूप में था। उसकी आधार शिला थी स्याद्वाद (मतसहिष्णुता) और साम्यवाद (जीव मात्र की बराबरी) यही कारण था कि परस्पर विरोधी विचार रखने वाले प्रकृति विरोधी जीव भी जैनधर्म की छाया में अलौकिक सुख और शान्ति प्राप्त करते थे, उस समय का जैनधर्म वास्तविक विश्वधर्म था और असली था।

जैसे जैसे जैन धर्म की वास्तविकता से दूर होते गये वैसे वैसे ही इस में भेद पड़ना शुरू हुये। एक दो तीन ही नहीं उनके अन्दर भी परस्परमें सैकड़ों हजारों उपभेद पड़ गये, सहिष्णुता के मूल आधार जैन धर्म को मानने वाले जैनी परस्पर में इतने असहिष्णु हो गये कि जहां पर मत भेद भी नहीं है, वहां पर भी मिलकर बैठकर कार्य करने की शक्ति नहीं रही जो समाज की शक्ति उत्थान और उन्नति में लगनी चाहिये थी, वह पारस्परिक विसंवाद और झगड़ों में पड़कर बर्बाद हुई जारही है।

इन्हीं कारणों से जैन समाज आज ठीक जीवन और मृत्यु की कड़ियों के बीच झूल रही है, अगर इस समय न चेते तो शीघ्रता से हमारी दशा मृत्यु और नाश के उस भयङ्कर स्थान को पहुँच रही है जहाँ से कि लौट सकना एक दम असम्भव है। सावधान होने का अन्तिम समय हमारे सामने उपस्थित है। अगर अब भी न चेते और वैसे ही असावधान रहे तो मृत्यु और नाश निश्चित है।

यह बात नहीं कि हमारे बहादुर युवकों के अन्दर इस परिस्थिति की चोट न लग रही हो, चोट ही नहीं लग रही है किन्तु इस सामाजिक व्यथा के मारे वह तिलमिला भी रहे हैं। इसका प्रमाण भारत भर में फैली हुई जैन युवक संस्थायें हैं। जहां कहीं भी दो चार ज़िन्दा दिल युवक हैं, उन्होंने अपने अन्य सहयोगियों को एकत्रित कर अवश्य कोई न कोई छोटी बड़ी युवक संस्था कायम करली है। संख्या के अनुपात से यदि देखा जाय तो भारत भर की सभी जैन संस्थाओं की सम्मिलित संख्या से ज्यादा संख्या जैन युवक संस्थाओं की है, लेकिन संगठन और कार्य शैली अलग अलग होने तथा परस्पर में एक दूसरेके साथ सम्बन्धित न होने कारण जैसा पर्याप्त और संतोष योग्य कार्य होना चाहिये था वैसा नहीं हो रहा है।

बात भी यह ठीक है—कोयले कभी अकेले नहीं दहकते, उनके दहकाने को एक अच्छी अंगीठीकी दरकार होती है। आज समाजोत्थान की अग्नि प्रज्वलित करने के लिये कोयलों की कमी नहीं है, कमी अगर है तो एक अच्छी अंगीठी की ?

इसी बात को गत ३० दिसम्बर सन् ३२ को इटारसी (सी० पी०) में जात्युद्धार के लिए छटपटाते हुये दिल रखने वाले कुछ युवकों ने अनुभव किया। फल स्वरूप उसी दिन श्रीमान् सेठ दीपचन्दजी बैतूल (भूतपूर्व मेम्बर लेजिस्लेटिव कौंसिल—मध्य प्रदेश) की अध्यक्षता में "भारतीय जैन युवक संघ" की स्थापना की गई। इसका उद्देश्य समस्त जैन समाज में जीवन और जागृति पैदा करना है। इसका कार्यक्षेत्र धार्मिक (मत-भिन्नता) न होकर केवल सामाजिक ही होगा। जिन कार्यों में किसी प्रकार का साम्प्रदायिक मत भेद न होकर सभी लोग प्रेम पूर्वक जैनत्व के नाते मिलकर एक रूप से समस्त जैन-समाज की सेवा कर सकें।

क्या दिगम्बर क्या श्वेताम्बर क्या स्थानक वासी और क्या इनके अवान्तर भेद, सामाजिक व्याधि करीब २ सर्वत्र एक सी ही है। इस लिये इनकी चिकित्सा भी करीब २ एक ही है। अतः सभी उन्नति प्रेमी कार्य कर्ताओं के बिना एक संगठन किये और प्रबल आन्दोलन किये बिना उत्थान का कार्य प्रायः असम्भव है। इस लिये मिलकर काम करने की बड़ी आवश्यकता है।

हम इस बात को पुनः स्पष्ट करना चाहते हैं कि किसी भी साम्प्रदायिक श्रद्धान

की हम बदलना या बिगाड़ना नहीं चाहते। केवल परस्पर मिल कर सेवा करने का एक मात्र उद्देश्य है !

हम जैन समाज के सच्चे उन्नति चाहने वाले कार्यकर्त्ताओं और संस्थाओं से आशा रखते हैं कि वह मैदानमें आवें और इस मरते हुये जैनत्वको बचाने के लिये सहयोग करें।

नोट:---इसी अपील के साथ भा० जैन युवक संघ की संक्षिप्त नियमावली और सभासदी फार्म हैं आशा है कि व्यक्तिगत फार्म व्यक्तिगत युवक और संस्था फार्म सभी जैन युवक संस्थायें भरकर शीघ्र भेजें ताकि शीघ्र संगठन होकर आगे कार्य बढ़ाया जावे।

पत्र व्यवहार का पताः—	निवेदकः—
चन्द्रसेन जैन वैद्य–मन्त्री.	**चौधरी बसन्तलाल जैन**
भा० जैन युवक संघ-इटावा यू० पी०	संचालक जैन युवक संघ-इटावा।

भा० जैन युवक संघ की नियमावली।

१—इसका नाम "भा० जैन युवक संघ" होगा।

२—जैन जाति मे जीवन व जागृति पैदा करना इसका मुख्योद्देश्य होगा।

३—जैन मात्र एक रु० प्रवेश फीस दे कर तथा सभासदी फार्म भर कर इसका सदस्य बन सकता है।

४—सदस्यों के साधारण निम्न कर्त्तव्य होना चाहिये।

(क) प्रत्येक सदस्य को स्वभाव से स्वावलम्बी होना उचित है।

(ख) नित्य व्यायाम व स्वाध्याय करना। कोई भी एक दैनिक पत्र नित्य पढ़ना।

(ग) संघ के नियम तथा आज्ञाओं का दृढ़ता पूर्वक पालन करना।

(घ) संघ के सभी सदस्यों से स्नेही बन्धु सरीखा प्रेम रखना।

(ङ) साम्प्रदायिता तथा पार्टी बन्दी के द्वेष-भाव को मिटा देना।

(च) समय का सदुपयोग करना।

५—संघ के कार्य संचालन के लिये तीन कमेटियां होंगीं:—

(१) संचालक समिति-जो कि आवश्यक प्रोग्राम नियत करेगी, इसके ७ सदस्य होंगे

(२) प्रबन्ध कारिणी समिति—जो कि संघ को आवश्यक सूचनायें दिया करेगी। इसके प्रत्येक प्रान्त के प्रचारक सदस्य होंगे। इनकी संख्या प्रान्तानुसार होगी।

(३) साधारण समिति—इसके सभी सदस्य, सदस्य समझे जावेंगे। जिनके मतानुसार अधिवेशनों में प्रस्ताव पास किये जाया करेंगे।

नोट—समयानुसार नियमों में न्यूनाधिकता भी हो सकती है।

पं० वेदनिधि मिश्र के प्रबन्ध से—वी. एन. प्रेस इटावा में छपा।

❀ जयवीर ❀

(व्यक्तिगत भरने का फार्म)

हमने भा० जैन युवक संघ की नियमावली भली भांति पढ़ ली है। हम इसके उद्देश्यों से पूर्ण सहमत हैं। इसके बताये कार्य क्रम को हम तन मन धन से पूर्ण करने को सदैव उद्यत रहेंगे। हम इस विषय में स्वतन्त्र हैं। इस फार्म को भरकर हम निश्चय पूर्वक दृढ़ विश्वास के साथ इसके सदस्य बनते हैं। एक रुपया प्रवेश फी भेजते हैं।

नाम .... जैन

आयु .... शाखा❀ ....

पूरा पता ....

तारीख .... द० ....

नोट–रजिस्टर में नाम दर्ज होजाने पर सूचना दी जायगी।

❀यहां पर परवार खंडेलवाल आदि लिखना चाहिये।

❀ जयवीर ❀

(संस्था के भरने का फार्म)

यह संस्था भा० जैन युवक संघ की शाखा बनने के लिये सहर्ष इस फार्म को भर कर भेजती है। यह संस्था भा० जैन युवक संघ की सदैव सहायता करेगी और उसके उद्देश्यों का प्रचार करेगी। दो रु० प्रवेश फी भेजते हैं।

संस्था का नाम ....

सभासदों की संख्या ....

कार्य शैली ....

मंत्री ....

पूरा पता ....

तारीख .... द: मंत्री ....

नोट:—रजिस्टर में नाम दर्ज हो जाने पर सूचना दी जायगी।

विशेष विवरण:—

शान्ति चाहता हुआ जारी करता हूँ," आदि, अर्थात् कुल मजमून इस तरहका है कि जिसके उसके नीचे केवल एक व्यक्तिके ही हस्ताक्षर होसकें। इसके अतिरिक्त, छाबियावाली घटनाके समय, जिसके कारण चंद्रसागरजीके बहिष्कारका प्रश्न सामने आया, श्रीमान सेठ भागचंदजी साहब व सेठ गोपीलालजी ठोल्या मौजूदही नहीं थे। ऐसी परिस्थितिमें, उक्त पर्चेको भागचंदजी साहब, डा० गुलाबचंदजी और गोपीलालजी ठोल्याको केवल दिखाकर नहीं, वरन उनके दस्तखत लेकर छपवाने की शर्त, बड़ी विचित्र मालूम होती है।

उपरोक्त तारमें सर सेठ हुकमचंदजीके ये शब्द कि—"मुझे मुनिमहाराज चंद्रसागरजीमें पूर्ण विश्वास और भक्ति है जैसा कि हरएक सच्चे धर्मात्मा दिगम्बर जैनको अपने गुरुके प्रति होती है, मैंने मुनि चंद्रसागरजी महाराज के विरुद्ध न तो पहिले कभी कुछ लिखा और न अब मुझे लिखना है", आदि, और भी अधिक विचित्र हैं। 'मुनि चंद्रसागरजीका बहिष्कार" शीर्षक पर्चेमें जिसे वे नीचेमें लिखना स्वीकार करते हैं तथा जिसके लिये वे इस तारके अनुसार भी "भागचंदजी साहब, डाक्टर गुलाबचंदजी और गोपीलालजी ठोल्याको दिखा कर तथा उनके दस्तखत लेकर" छपानेकी स्वीकृति दे चुके थे, चंद्रसागरके प्रति ऐसे शब्द हैं जो उनकी "मुनिमहाराज चंद्रसागरजीमें पूर्ण विश्वास और भक्ति"के बजाय साफतौर पर घृणा प्रदर्शित करते हैं।

बात यह है कि श्रीमान गुलाबचंदजी पाटणी साहब ने श्रीमान सेठ भागचंदजीको अपनी कल्पित संकटका भय दिखा कर उनके श्वसुर माननीय श्रीमान सर सेठ हुकमचंदजीसे मनमाना तार भेजवा लिया सही, परन्तु उससे मुनिजीको चंद्रसागर के आपकी किंचित् मात्र भी सहायता नहीं हुई, बल्कि उससे हर प्रकार 'मुनि चंद्रसागरजीका बहिष्कार" शीर्षक पर्चेकी पुष्टि ही हुई।

यह बात पाटणीजी भी समझ रहे थे। ता० १९ मार्चको उन्होंने घोषित तो कर दिया कि 'मुनि चंद्रसागरजीका बहिष्कार" शीर्षक पर्चा गलत है", परन्तु स्वयं उनका हृदय बार बार पूछता था कि इतने स्पष्ट प्रमाण होते हुए भी वह क्यों गलत है? अतः अपने हृदय को समझानेके लिये कि 'मुनि चंद्रसागरजीका बहिष्कार शीर्षक पर्चा यों गलत है', आपने ता० २१ मार्चको इन्दौरसे दूसरा तार मँगवाया जो उक्त पर्चेसे तर्जुमा सहित ज्यों का त्यों उद्धृत किया जाता है:—

"For printing pamphlet my in'tention was not so only for consideration Lohrasajan but when bring before me I signed without reading on trust owing not spare time I am very sorry for this.

Hukam Chand.

तर्जुमा—विज्ञप्ति छापने के लिये मेरे भाव ऐसे नहीं थे सिर्फ लोहड़ा साजनोंके विचारके लिये थे, लेकिन जब मेरे सामने लाई गई मैंने कम समय होनेके कारण विश्वास पर बिना पढ़े दस्तखत कर दिये मुझे इसके लिये बड़ा दुःख है। हुकमचंद।"

श्रीमान सेठ हुकमचंदजी साहब किसी बात को कहकर पलट जानेमें कितने पटु हैं, इसका समाजको काफी अनुभव है। लेकिन इसबार तो कहकर नहीं, किन्तु लिखकर पलट जानेका मामला है। क्या कोई भोलासे भोला व्यक्ति यह स्वीकार करसकता है कि रावराजा सर सेठ हुकमचन्दजी बिना पढ़े किसी कागजपर दस्तखत करसकते हैं?

हमें विश्वस्त सूत्रसे मालूम हुआ है कि "मुनि चन्द्रसागरजीका बहिष्कार" शीर्षक पर्चेका मजमून स्वयं सेठ हुकमचन्दजी साहबने बनाया था तथा बादमें उसकी साफ नकलें अपने गुमाश्ते उदयरामजीसे कराकर उनका अपनी प्रतिलिपिसे स्वयं मिलान कर हस्ताक्षर किये थे। आवश्यकता पड़नेपर

हम इसे प्रमाणित करनेको तैयार हैं। क्या श्रीमान पाटणीजी व सेठ भागचन्दजी साहब इसके प्रतिवादमें तार मँगवानेका प्रयत्न करेंगे ?

इस विषयपर बहुत कुछ लिखा जासकता है, परन्तु यह पता नहीं कि इस तारपर सेठ हुकमचन्दजी साहबने दस्तखत किये हैं या नहीं, अथवा यदि उन्होंने दस्तखत किये है तो कहीं "कम समय होने तथा विश्वासपर बिना पढ़े" तो नहीं करदिये है, अथवा अगर स्वयं पढ़कर किये हैं तो तार पर दस्तखत करते समय तारके मजमूनका तथा उनके हृदयका भाव एकही था या उससे भिन्न।

हम नहीं समझते कि चन्द्रसागर—बहिष्कार आन्दोलनसे स्वर्गीय श्रीमान सेठ टीकमचन्दजी आदि के सोसर्गमें किसीप्रकारका विघ्न आसकता है। अगर ऐसी कुछ आशंका हो तो भी एक प्रतिष्ठासम्पन्न व्यक्तिको, अपने दामादके खातिर, धर्म व समाज कोही नहीं किन्तु अपनी आबरू काभी जोखिममें डालकर इसप्रकार खिलवाड़ करना किसी प्रकार उचित नहीं कहा जासकता।

हमें मालूम हुआ है कि नाँवोंसे लौटते समय श्रीमान सेठ हुकमचन्दजी साहबने किशनगढ़ पर वहाँके पंचोंको बुलाकर उनके समक्ष लोहड़साजनो के सम्बन्धमें चर्चा करते हुए यहभी कहा था कि—चन्द्रसागरजीके बहिष्कारके लिये मैं विज्ञप्ति निकाल चुका हूँ इसी प्रकार जैसा कि प्रारम्भमें लिखागया है, अजमेर स्टेशन पर भी गुलाबचन्दजी पाटणी आदिसे "मुनि चन्द्रसागरजीका बहिष्कार" शीर्षक विज्ञप्तिकी चर्चाकी थी। अगर सेठ हुकमचन्दजी ने बिना पढ़े परचे पर हस्ताक्षर करदिये थे तथा उनका भाव चन्द्रसागरका बहिष्कार करनेका न था तो फिर किशनगढ़ व अजमेरमें "मुनि चन्द्रसागर जीका बहिष्कार" शीर्षक पर्चेके सम्बन्धमें चर्चा कैसे की थी ? क्या बिना पढ़े दस्तखत करनेके समान उनके मुखसे वचनभी बिना विचारे निकल पड़े थे ?

श्रीमान गुलाबचन्दजी पाटणी, सेठ हुकमचन्दजीको चन्द्रसागरभक्त प्रमाणित करनेका व्यर्थ प्रयास कररहे हैं। पाटणीजी स्वार्थवश कितनीभी लीपापोती करें, परन्तु दाधियावाली घटना पर वे किसी प्रकार पर्दा नही डाल सकते। स्वयं उनके मित्रगणही उस घटनाको लेकर "सर सेठ हुकम चन्दजी इन्दौरकी बुद्धिभ्रष्टका नमूना" बता रहे हैं।

बेहतर हो पाटणीजी दाधियावाली घटनाके सम्बन्धमेंभी इन्दौरसे तार मँगवावें क्योंकि उसकी स्मृतिको मिटाये बिना उनके मुनिजीके मानकी पूरी तरह पर मरम्मत नही होसकती।

यद्यपि यह सत्य है कि श्रीमान सरसेठ हुकमचन्दजी लोहड़साजनों व बड़साजनोंको समान रूप से धर्मसेवनका अधिकारी मानते हैं, उनमें परस्पर कच्चा व पक्का खानपान तथा बेटीव्यवहार भी स्वीकार करते हैं—उनके पुत्र श्रीमान् रायबहादुर सेठ हीरालालजी, जो स्वर्गीय श्रीमान सेठ कल्याणमलजीके गोद गये है, लोहड़साजनोंके भानजे हैं—और इसकारण लोहड़साजनोंको दस्सोंसे हीन बताने वाले मुनिवेषी चन्द्रसागरमें उनकी श्रद्धा व भक्ति किसी प्रकार नहीं होसकती, लेकिन अगर वे किसी कारणवश अभी और आगे फिसलकर चन्द्रसागर को गुरु मानने लगें तो भी प्रस्तुत विषयकी सत्यता में इससे कुछभी कमी नहीं पड़सकती।

"लोहड़साजन निर्णय" पुस्तक प्रकाशित हुए करीब दो महीने होगये, परन्तु अभीतक किसीने भी उसमें दियेगये अनेक प्रमाणोंमें से किसी एकका भी असत्य बतानेका साहस नहीं किया है। जो लोग लोहड़साजनोंको दस्सोंसे हीन समझते है उनका कर्त्तव्य है कि कायरतापूर्वक मुनिवेषकी अथवा रियासतकी ओटमें बैठकर तथा कल्पित नामसे छींटेबाजी करनेके बजाय प्रकट रूपमें आगे आवें।

—प्रकाशक।

तार का पता—"JAINJAGAT" Ajmer. Reg: No. N 352.

वर्ष ९ ता० १ अप्रेल ॐ सन् १९३४ अंक १०

जैनसमाज का एकमात्र स्वतन्त्र पाक्षिकपत्र।

वार्षिक मूल्य ३) रुपया

卐 जैन जगत् 卐

विद्यार्थियों व संस्थाओं से २॥) मात्र।

(प्रत्येक अंग्रेज़ी महीने की पहली और सोलहवीं तारीखको प्रकाशित होता है)

"पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनम् यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः"॥—श्री हरिभद्रसूरि।

सम्पादक—सा०र० दरबारीलाल न्यायतीर्थ, जुबिलीबाग तारदेव, बम्बई।
प्रकाशक—फतहचंद सेठी, अजमेर।

प्राप्तिस्वीकार—

श्रीमान आनन्दरामजी समदड़िया मंचरने अपनी पुत्रीके विवाहके अवसरपर ५) पाँच रुपये तथा ला० तारामलजी मुक्खामलजी जालंधरने अपने पौत्रके विवाहके उपलक्षमें २) दो रुपये जैन-जगत्की सहायतार्थ प्रदान किये हैं। धन्यवाद।

—प्रकाशक।

१००) की जगह २००) पारितोषिक।

"पतितोद्धारक जैनधर्म" नामक पुस्तकके लिये १००) पारितोषिककी जो विज्ञप्ति निकालीगई थी, उसे पढ़कर श्रीमान बा० छोटेलालजी जैन रईस कलकत्ताने उसका हृदयसे अभिनन्दन किया है, साथही ऐसी पुस्तकके निर्माण और प्रचारकी विशेष आवश्यकताका उल्लेख करते हुए उसके लिये अपनी ओर से भी १००) पारितोषिककी स्वीकारता प्रदान की है, जिसके लिये आपको हार्दिक धन्यवाद है। आपकी इस रकममें से कुछ रुपये प्रथम पारितोषिक पर और बढ़ाये जावेंगे और शेष द्वितीय पारितोषिकके रूपमें रखे जावेंगे। तदनुसार संशोधित विज्ञप्ति भी शीघ्र प्रकाशित की जावेगी।

अतः विद्वानोंको लोकहितकी दृष्टिसे अब ऐसी उपयोगी पुस्तकके लिखनेमें शीघ्रही प्रवृत्त होना चाहिये और उसकी सूचना नीचे लिखे पतेपर देना चाहिये। अभीतक सिर्फ एक विद्वानकी ओरसे ही इस कार्यमें प्रवृत्त होने की सूचना प्राप्त हुई है।

—जुगलकिशोर मुख्तार.
सरसावा जिला सहारनपुर।

लमेचू जैनसमाजमें पहला विधवाविवाह।

ता० १०-३-३४ शुक्रवारको मैनपुरीमें ला० सोनेलाल जैन लमेचू कुरावली (मैनपुरी) निवासीका विवाह श्रीमती सरस्वतीबाई बालविधवा कुरावलीके साथ बड़ी धूमधामसे होगया। वरकी उम्र ३० साल और कन्या की उमर २० सालकी है। विवाह जैन पद्धतिसे हुआ। कुरावली, भोगाँव, मैनपुरी, इटावा के बहुतसे सज्जन उपस्थित थे। गायन, व्याख्यान भी हुये, और आगत सज्जनोंका फूलमाला पान इलायची और मिठाईसे सत्कार किया गया। विवाह समय करीब दो ढाई सौ आदमी उपस्थित थे।

—सम्वाददाता।

चन्द्रसागर चर्चा।

श्रीमान सर सेठ हुकमचन्द जीने नाँवाँ मे "मुनि चन्द्रसागरजीका बहिष्कार" शीर्षक जो विज्ञप्ति प्रकाशित की थी, उसमे अंधभक्त लोग अत्यंत विचलित होगये हैं। श्रीमान प० मक्खनलालजी, इन्द्रलालजी, खूबचन्दजी शास्त्री आदि इसे सेठ साहब की निरधिकार चेष्टा बताते हैं। जब सेठ साहबने धार्मिक मामलोंमे इनकी हाँ में हाँ मिलाकर फतवे दिये तब उन्हें अधिकारकी याद नहीं आई। खैर! पं० मक्खनलालजी स्वीकार करते हैं कि "यदि मुनि चन्द्रसागरजी लोहड़साजनोंके विषयमे विरुद्ध आंदोलन उठाते हैं, और उसके लिये कोई प्रमाण उपस्थित नहीं करते तो उनका यह आग्रह उचित नहीं है।" साथही आपने सलाह दी है कि "खंडेलवाल समाजके कतिपय विद्वानों और श्रीमानोंकी एक ऐसी कमेटी स्थापित करदेवें जो कि अनेक ऐतिहासिक प्रमाणोंसे और देशकी प्रचलित रिवाजों से लोहड़साजनोंकी सबमान्यताको सिद्धकर अपना मत प्रसिद्ध करदे। मैं समझता हूं कि मुनिचन्द्रसागरजी महाराज बहुत विवेकी हैं। वे कमेटीकी खोजपूर्ण बातको भी नहीं टालेंगे, ऐसी उनसे संभावना नहीं है। फिरभी न मानने पर आचार्य महाराजके समक्ष यह बात रखना चाहिये।" आश्चर्य है कि पं० मक्खनलालजीको अभी यह भी पता नहीं है कि आजसे दो बरस पहिलेही स्वर्गीय श्रीमान रा० ब० सेठ टीकमचन्दजी अजमेर, सेठ चैनसुखजी पांड्या कलकत्ता, पं० श्रीलालजी पाटणी अलीगढ़, प० इन्द्रलालजी शास्त्री जयपुर आदि ९ महानुभावों की एक सबकमेटी लोहड़साजनोंके प्रश्नके निर्णयके लिये नियत करदी गई थी तथा उस सबकमेटीने करीब डेढ़ वर्ष पहिले अपनी रिपोर्ट प्रकाशित करदी जिसमे सबने एकमतसे यह स्वीकार किया है कि "लोहड़साजन दस्सा नहीं है, इनके साथ बीसोका रोटीव्यवहार (कच्चा पक्की दोनोका) शामिल है, पूजन प्रक्षाल मुनि आहारदानादिमे भी कुछ रुकावट नहीं है।" पं० मक्खनलालजीको मालूम होना चाहिये कि उक्त रिपोर्टके प्रकाशित होनेके बादसे श्री शांतिसागरजीकी अनुमतिसे उस संघके सदस्य लोहड़साजनोंके यहाँ आहार लेने लगे हैं। इसी बातसे खिसियाकर चंद्रसागर अपने गुरुसे विद्रोहकर अलग विचरण कर रहा है। चन्द्रसागर शान्तिसागरजीको अपना गुरु नहीं मानता, यही नहीं बल्कि वह खुल्लमखुल्ला शान्तिसागरजीकी निन्दा करता है।

पं० इन्द्रलालजीने जनताको भ्रममे डालनेके लिये चन्द्रसागरसम्बन्धी मामलेको दबानेकी बहुत कोशिशकी परन्तु आखिर जब बात इतनी बढ़गई कि सत्य छिपाया नहीं जासका तो १७ मार्चके खंडेलवाल जैनहितेच्छुमे उन्हें स्वीकार करना पड़ा कि लोहड़साजन के प्रश्नके कारण "गुरु शिष्यमे मन मुटाव होगया और तभीसे संघभेद होगया।" इन्द्रलालजी यह भी स्वीकार करते हैं कि चन्द्रसागरजी लोहड़साजनोंके साथ खानपान न करने आदिकी जो प्रतिज्ञा दिला रहे हैं उसके सम्बन्धमें उनके पास किशनगढ जाकर हमने कहा—"महाराज, जब तक इसका पुष्ट प्रमाण सामने न आवे तब तक सबको एक स्वरमें मानना टेढ़ी खीर है, इसलिये जब तक पुष्ट प्रमाण सामने न आवे तब तक ऐसी प्रतिज्ञा न लिवावें तो ठीक है।" "महाराज, पुष्ट प्रमाण न मिलने तक तो ऐसी प्रतिज्ञा नहीं लिवानी चाहिये क्योंकि जगह जगह कलहका साम्राज्य बढ़ जायगा, आपसमे तनातनी हो जायगी और पुष्ट प्रमाण न होने से फिलहाल यह बात फीकी रहेगी। इसतरह जनतामें धर्म प्रचार की बजाय कलह बढ़ जावेगा सो आप विचार करें।" "तब महाराजने कहा कि तुम्हारा कहना ठीक है, मैं सोचता हूँ।" परन्तु अफसोस है कि इन्द्रलालजी को उपरोक्त प्रकार आश्वासन देनेके पश्चात भी चन्द्रसागर अभीतक उसही प्रकार उद्दंडतापूर्वक श्रावकोंको लोहड़साजनों

(शेष पृष्ठ २७ कालम २ पर देखो)

जैनधर्म का मर्म ।

(४२)

अहिंसा ।

व्यापकता, उन्नता और अग्रजताकी दृष्टिसे चारित्र में प्रथम स्थान अहिंसाको प्राप्त है। जब पापोंमें हिंसा प्रधान और व्यापक है, तब धर्ममें अहिंसा प्रधान और व्यापक हो तो इसमें क्या आश्चर्य है? यही कारण है कि 'अहिंसा परम धर्म है'—यह वाक्य प्रायः सभी धर्मोंमें माना गया है।

जो प्राणी इतना अविकसित है कि वह अर्थसंचयकी उपयोगिता नहीं समझता, इसलिये चोरी भी नहीं जानता; जिसमें कामक्रिया ही नहीं है, अथवा वह इच्छापूर्वक नहीं होती, जिसमें बोलने की शक्ति नहीं है अथवा है तो उसकी भाषा अनुभय (न सत्य, न असत्य) है, इस प्रकार चार पापोंके करनेकी जिसमें योग्यता नहीं है, वहभी हिंसा अवश्य करता है। हिंसाका क्षेत्र ऐसाही व्यापक है। इसी प्रकार चारित्रमें अहिंसाका क्षेत्र व्यापक है।

सबसे पहिले प्राणी जीवित रहना चाहता है, इसलिये अहिंसाकी आवश्यकता सबसे पहिले हुई। सबसे पहिले जब कभी धर्मकी उत्पत्ति हुई होगी, तब उसका रूप यही रहा होगा कि 'मतमारो!' धीरे धीरे इसकी सूक्ष्म व्याख्या होने लगी। प्राणी मरने से डरता है, इसका कारण यही है कि मरनेमे उसे कष्ट होता है। इसलिये 'मतमारो' इसका अर्थ यही हुआ कि 'किसीको कष्ट मत दो'। इस प्रकार किसी भी प्रकारका कष्ट देना हिंसा और कष्ट न देना या कष्टसे बचाना अहिंसा कहलाने लगा।

परन्तु ऐसेभी बहुतसे कार्य होते हैं जिनमें पहिले कष्ट और पीछे आनन्द होता है तथा कभी कभी सुखके लिये कोई प्रयत्न किया जाता है और बहुत सतर्कतासे किया जाता है, फिरभी उसका फल अच्छा नहीं होता। ऐसी अवस्थामें अगर उसके बाह्य फलपर दृष्टि रखकर किसीको अपराधी मानें और निर्णय करें तो कोई अच्छा प्रयत्न ही न करेगा। इन सब कारणोंसे हिंसा, अहिंसा बाह्यक्रिया न रह गई किन्तु वह हमारे भावोंपर अवलम्बित होगई। इसीलिये जैनशास्त्र कहते हैं कि—

यह सम्भव है कि कोई किसीको मारडाले फिरभी उसे हिंसाका पाप न लगे*। कोई जीव मरे या न मरे, परन्तु जो मनुष्य प्राणिरक्षाका ठीक ठीक प्रयत्न नहीं करता, वह हिंसक है और प्राणिरक्षाका उचित प्रयत्न करनेपर केवल प्राणिवधसे कोई हिंसक नहीं कहलाता§।

अमृतचन्द्रसूरिने पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें इसका और भी सुन्दर विवेचन किया है। वे कहते हैं—

एक मनुष्य हिंसा (प्राणिवध) न करके भी हिंसक हो जाता है अर्थात् हिंसाका फल प्राप्त

* वियोजयति चासुभिर्न वधेन संयुज्यते ।

§ मरदुव जियदुव जीवो अयदाचारस्स णिच्छिदाहिंसा ।
पयदस्स णत्थिबंधो हिंसामेत्तेण समिदस्स ।

करता है । दूसरा मनुष्य हिंसा (प्राणिवध) करके भी हिंसक नहीं होता । एककी थोड़ीसी हिंसाभी बहुत फल देती है और एककी बड़ीभारी हिंसाभी थोड़ा फल देती है । किसीकी हिंसा, हिंसाका फल देता है और किसी की वही हिंसा अहिंसाका फल देती है । किसीको अहिंसा हिंसाका फल देती है और किसीकी हिंसा अहिंसाका फल देती है ॥ हिंस्य (जिसकी हिंसाकी जाय) क्या है ? हिंसक कौन है ? हिंसा क्या है ? और हिंसाका फल क्या है ? इन बातों पर अच्छी तरह विचार करके हिंसा का त्याग करना चाहिये ।※

इस प्रकार अहिंसा बहुरूपिणी है, इसलिये उसे प्राप्त करना, उसकी परीक्षा करना कठिन है । किसी के द्वारा केवल प्राणिवधको देखकर यह कहदेना कि वह हिंसक है, ठीक नहीं है । संसारमें सब जगह इतने प्राणी भरे हुए हैं कि उनकी हिंसा किये बिना हम एक क्षणभरभी जीवित नहीं रह सकते । तब पूर्ण अहिंसाका पालन कैसे किया जासकता है ? जैनियोंकी अहिंसाका जो मज़ाक़ उड़ाते हैं, वे भी यही दुहाई दिया करते हैं कि श्वास लेनेमें भी जीव मरते हैं, फिर तुम पूर्ण अहिंसक बननेका पागलपन क्यों करते हो ? इसका उचित उत्तर पं० आशाधरजीने दिया है—

"यदि बन्ध और मोक्ष भावोंके ऊपर अवलम्बित न होते तो कहाँ रहकर प्राणी मोक्ष प्राप्त‖ करता ?

भट्टाकलंकदेवने भी तत्त्वार्थराजवार्त्तिकमें इस प्रश्नको उठाया है कि—'जलमें जन्तु हैं, स्थलमें जन्तु हैं, आकाशमें जन्तु हैं, इसप्रकार सारा लोक जन्तुओं से भरा हुआ है तब कोई मुनि अहिंसक कैसे हो सकता * है' ? इसका उत्तर यों दिया गया है—

'सूक्ष्म जीव (जो अदृश्य होते हैं और इतने सूक्ष्म होते हैं कि न तो वे किसीसे रुकते हैं, न किसी को रोकते हैं) तो पीड़ित नहीं किये जासकते और स्थूल जीवों (बहुतसे स्थूल जीव अदृश्य भी होते हैं) में जिनकी रक्षा की जासकती है, उनकी रक्षा की जाती है; इसलिये जो मनुष्य हिंसाको बचानेमें प्रयत्नशील है, वह हिंसक कैसे हो सकता † है ?

केवल जैनशास्त्रोंमें ही इस सूक्ष्म हिंसाका विचार नहीं किया गया है, किन्तु महाभारतमें भी यह प्रश्न उठा है । वहाँ अर्जुन कहते हैं:—

इस जगत् में ऐसे ऐसे सूक्ष्म जीव हैं जो कि आँखोंसे तो नहीं दिखाई देते किन्तु तर्कसे सिद्ध हैं—वे जीव पलक हिलानेसे भी मर ‡ जाते हैं । इस प्रश्न के समाधानमें वहाँभी 'द्रव्यहिंसा से ही हिंसा नहीं होती' इत्यादि कथन किया गया है । इस वक्तव्यका सार यही है कि प्राणिवध देखकर ही किसीको हिंसक न कहना चाहिये । परन्तु इसके साथही प्रश्न यह होता है कि तब हिंसक किसे कहना

※ अविधायापि हि हिंसां हिंसाफलभाजनं भवत्येकः ।
कृत्वाप्यपरो हिंसां हिंसाफलभाजनं न स्यात् ॥
एकस्याल्पा हिंसा ददाति काले फलमनल्पम् ।
अन्यस्य महाहिंसा स्वल्पफला भवति परिपाके ॥
कस्यापि दिशति हिंसा हिंसाफलमेकमेव फलकाले ।
अन्यस्य सैव हिंसा दिशत्यहिंसाफलं विपुलम् ॥
हिंसाफलमपरस्य तु ददात्यहिंसा तु परिणामे ।
इतरस्य पुनर्हिंसा दिशत्यहिंसाफलं नान्यत् ॥
अवबुध्य हिंस्यहिंसकहिंसाहिंसाफलानि तत्त्वेन ।
नित्यमवगूहमानैः निजशक्त्या त्यज्यतां हिंसा ॥

‖ विष्वग्जीवचिते लोके क्व चरन् कोऽप्यमोक्ष्यत ।
भावैकसाधनौ बन्धमोक्षौ चेन्नाभविष्यताम् ।

* जले जंतुः स्थले जंतुराकाशे जंतुरेव च ।
जंतुमालाकुले लोके कथं भिक्षुरहिंसकः ।

† सूक्ष्मा न प्रतिपीड्यन्ते प्राणिनः स्थूलमूर्तयः ।
ये शक्यास्ते विवर्ज्यन्ते का हिंसा संयतात्मनः ।

‡ सूक्ष्मयोनीनि भूतानि तर्कगम्यानि कानिचित् ।
पक्ष्मणोऽपि निपातेन येषाम् स्यात् स्कन्धपर्ययः ।
महाभारत शान्तिपर्व १५–२१ ।

चाहिये ? वास्तवमें हिंसा क्या है, जिसका मनुष्य त्याग करे ?

इस प्रश्नके उत्तरके लिये भी हमें इसी बात पर विचार करना चाहिये कि वास्तवमें हमें धर्मकी—चारित्रकी—अहिंसाकी—ज़रूरत क्यों हुई ? यह पहिले कहा जाचुका है कि कल्याणके लिये—सुखके लिये—इनकी ज़रूरत है। बस यहीं इसका उत्तर है कि प्रथम अध्यायमें बताये हुए कल्याण-मार्गके अनुसार कल्याणके लिये जो कार्य किया जाय, वह अहिंसा है; उसके विरुद्ध हिंसा है। इसलिये प्राणिवध करते हुएभी प्राणी अहिंसक है और स्वार्थवश, कायरतावश अत्याचारीकी रक्षा करनाभी हिंसा है। हिंसा-अहिंसा और पाप-पुण्य की परीक्षा हमें इसी कसौटीपर करना उचित है।

इतने परभी हिंसा, अहिंसाकी जटिलता बनीही रहती है। जबतक जीवन है तबतक उससे हिंसा होगी ही, इसलिये कहाँतककी हिंसाको क्षन्तव्य कहा जाय और वह कौनसी मर्यादा बाँधी जाय कि जिसके बाहर जानेसे हम हिंसक कहलाने लगें ? यह एक ऐसा प्रश्न है कि जिसने दुनियाँके सम्प्रदायोंको चक्करमें डाल दिया है। एक सम्प्रदाय शिकार और युद्ध (दिग्विजय) को भी धर्म कहता है और दूसरा, श्वास लेनेसे भी जीवहिंसा होती है इस लिये उससे बचनेके लिये मुँह पर कपड़ेकी पट्टी बँधवाता है ! मजा यह कि ये दोनोंही अहिंसाको परम-धर्म मानते हैं। फिरभी ये दोनों हिंसाको रोक नहीं सकते, क्योंकि कपड़ेकी पट्टी बाँधने परभी हिंसा बिलकुल दूर नहीं होजाती।

इसप्रकार यदि अहिंसाका पालन असंभव कहकर छोड़ दिया जाय तो धर्मही उठजायगा, फिर उसका कोई पालन क्यों करेगा ? इसलिये स्पष्ट या अस्पष्ट शब्दोंमें सभी धर्मोंने यह अपवाद बनाया कि—

जीवन निर्वाहके लिये जो क्रियाएँ अनिवार्य हैं उनके द्वारा यदि प्राणिहिंसा हो तो उसे हिंसा न माना जाय। इसलिये श्वासोच्छ्वास आदिमें होने वाली हिंसा, हिंसा (अधर्म) नहीं कही जासकती।

परन्तु इस अपवादको स्वीकार करकेभी सब समस्याएँ पूरी न हुईं; साथही इस अपवादके पालन में भी नाना मत होगये। उदाहरणार्थ—

शरीरमें कीड़े पड़गये हैं या कोई बीमारी हो गई है, उसकी चिकित्सा करना चाहिये कि न करना चाहिये ? पूर्वमें और पश्चिममें ऐसे लोग हुए हैं जो चिकित्सा करना ठीक नहीं समझते थे। सुकरातके भी पहिले यूनानमें जेनो' (Zeno) नामका एक तार्किक था, उसके अनुयायी शरीरमें कीड़े पड़जाने परभी उनका हटाना अच्छा नहीं समझते थे, बल्कि कारणवश कोई कीड़ा गिर पड़ताथा तो वे उसे फिर उसी जगह (अपने शरीरपर) उठाकर रखदेते थे जिससे वह भूखों न मरजाय। जैनशास्त्रोंमें इतने तो नहीं, परन्तु इसी ढंगके कुछ चरित्र चित्रण मिलते हैं जिनमें चिकित्सा न कराना बहुत प्रशंसा की बात कही गई है। सम्भवतः ऐसे लोगोंकी तरफ से यह तर्कभी किया जासकता है कि "रोगकी चिकित्सा की जायगी तो रोगके कीटाणु अवश्य मरेंगे। हम नीरोगी रहकर अधिक दिन जीवित रहे इसकी अपेक्षा रोगी रहकर थोड़े दिन जीवित रहे तो क्या हानि है ? चिकित्सा कुछ श्वासोच्छ्वासकी तरह जीवनके लिये अनिवार्य नहीं है। इत्यादि।

सिर्फ यही एक प्रश्न नहीं है, किन्तु और भी अनेक प्रश्न हैं, जैसे—एक आदमी श्रीमान है फिर भी वह पैसेके लिये खून तक कराता है, परस्त्री हरण करता है, इसी नीच वृत्तिसे प्रेरित होकर वह हमारे ऊपर या हमारी पत्नी या बहिनके ऊपर आक्रमण करता है उस समय उसका विरोध करना और विरोध करनेमें उसका वध करना अनिवार्य हो तो उसका वह वध करे या न करे ? यदि वह अत्याचारी हमारा धन लेजाय या पत्नी या बहिन

पर अत्याचार कर जाय तो भी हम सब जीवित तो रहेंगे इसलिये स्वासोच्छ्वासके समान उसका विरोध करना अनिवार्य तो नहीं कहा जासकता, किन्तु यह भी ठीक है कि यदि उसका वध न किया जाय तो वह पापकी सफलतासे उन्मत्त होकर सैकड़ों जीवनोंको बर्बाद करेगा।

मतलब यह कि ऐसे बहुतसे कार्य हैं, जिनको हमें जगत्कल्याणकी दृष्टिसे करना चाहिये, भलेही वे स्वासोच्छ्वासके समान अनिवार्य न हों। इसलिए यह प्रश्न फिर खड़ा होजाता है कि जो कार्य अनिवार्य नहीं हैं, उन कामोंमें से किसको उचित और किस को अनुचित कहाजाय?

यदि यह कहाजाय कि स्वासोच्छ्वास आदिही नहीं किन्तु जिस किसी हिंसाकी हमें आवश्यकता हो वह सब हिंसा विधेय है, अगर उसके बिना हमारी प्राणरक्षा न हो सकती हो; परन्तु इस नियम के अनुसार घोरसे घोर हिंसकभी अहिंसक सिद्ध किया जासकेगा। सिंहादिक हिंसक पशु अपने जीवनकी रक्षाके लियेही गाय आदि पशुओंकी हिंसा करते हैं, इसलिये वे भी अहिंसकही कहलायें। इतना ही नहीं, दुर्भिक्ष आदिके समय यदि मनुष्यके पास कुछभी खानेको न रहे तो ऐसी हालतमें उसे दूसरे प्राणीको ही नहीं किन्तु मनुष्यकोभी खाजानेका हक़ प्राप्त होजायगा। दुर्भिक्ष आदिके समय ऐसी घटनाएँ होजाया करती हैं। इस प्रकार अहिंसाके विषयमें यह एक महान प्रश्न खड़ा होता है कि कितनी हिंसाको हिंसा न कहा जाय? इस बातको समझनेके लिये यहाँ कुछ नियम बनाये जाते हैं।

१—बिना किसी विशेष प्रयत्नके जो क्रियाएँ शरीरसे होती रहती हैं, उनके द्वारा होनेवाली हिंसा, हिंसा नहीं है। जैसे, श्वासोच्छ्वास आदिमें होने वाली हिंसा।

२—शरीरको स्थिर रखनेके लिये आहार और पान आवश्यक है। इनकी सामग्री जुटानेमें जो हिंसा अनिवार्य हो, वहभी हिंसा नहीं है। परन्तु इस विषय में आगामी तीसरे और सातवें नियमोंका ख़याल रखना चाहिये।

३—अपने निर्वाहके लिये किसी ऐसे प्राणीका वध न होना चाहिये जिसकी चैतन्यकी मात्रा क़रीब क़रीब अपने समान हो।

४—अपनेसे हीन चैतन्यवाले प्राणीकी हिंसा भी निरर्थक न होना चाहिये।

५—सूक्ष्म प्राणियोंकी हिंसा रोकनेके लिये ऐसा प्रयत्न न करना चाहिये जिससे दूसरे ढंगसे वैसीही हिंसा होने लगे; साथही प्रमाद वगैरहकी वृद्धि हो।

६—जीवनके विकासके लिये या परोपकारके लिये अगर सूक्ष्म प्राणियोंकी हिंसा करना पड़े तो भी वह क्षन्तव्य है।

७—दो प्राणियोंमें जहाँ मौतका चुनाव करना है वहाँ उसकी रक्षा करना चाहिये जो परोपकारी हो। अगर इस दृष्टिसे निर्णय न होसके तो जिससे भविष्यमें परोपकारकी ज्यादः आशा हो।

८—अत्याचारीके अनिवार्य वध करनेमें भी हिंसाका पाप नहीं है। शर्त यह है कि वह अत्याचार को रोकनेके लिये किया जाय।

९—यदि जीवित रहनेकी अपेक्षा मरनेमें कल्याणकी मात्रा अधिक हो तो यथायोग्य साम्यभाव से जीवनका त्याग करना या कराना हिंसा नहीं है।

उदाहरणपूर्वक विवेचन किये बिना इनका स्पष्टीकरण न होगा इसलिये इन नौ सूत्रोंका यहाँ क्रम से भाष्य किया जाता है।

१—श्वासोच्छ्वास, पलक बन्द करना, निद्रामें हाथ पाँव आदिका चलजाना, अङ्ग अकड़ न जाय इसलिये अङ्गसञ्चालन आदिमें होनेवाली हिंसा, हिंसा नहीं है।

प्रश्न—यदि जीवित रहनेमें हिंसा अनिवार्य है तो प्राणत्याग करदेना क्या बुरा है? एककी मौत

होनेपर अनन्त जीवोंकी रक्षा होगी। जिससे सुखवृद्धि हो, वही तो धर्म है। एकके मरने पर अनन्त जीवोंकी रक्षा होनेसे संसारमें एकका दुःख और अनन्तका सुख बढ़ता है, इसलिये यही धर्म कहलाया।

उत्तर—अगर सब जीवोंका सुख बराबर होता तब यह बात उचित कही जासकती थी। परन्तु जिसके आत्मगुण (चैतन्य) जितने विकसित होते हैं उसमें सुखकी शक्तिभी उतनी अधिक होती है। पृथ्वी आदिकी अपेक्षा वनस्पतिमें चैतन्यकी मात्रा अनन्तगुणी है। उसमेंभी साधारण वनस्पति की अपेक्षा प्रत्येक वनस्पतिमें अनन्त गुणी है। उससे अनन्तगुणी संख जोंक आदिमें है। उससे असंख्य गुणी तइन्द्रिय चिउँटी आदिमें। उससे असंख्य गुणी भ्रमर वगैरहमें उससे असंख्यगुणी असंज्ञी पंचेन्द्रियमें। उससे असंख्यगुणी संज्ञीपंचेन्द्रियमें। उससेभी संख्यगुणी मनुष्यमें। उसमेंभी असंयमीकी अपेक्षा संयमीमें संख्यगुणी है। यहाँ संयमीसे मतलब वेषधारी बाबालोगोंसे नहीं है, किन्तु भावसंयमियोंसे है। इसलिये मनुष्यको जीवित रहनेके लिये अगर अनन्त स्थावर प्राणियोंका तथा असंख्य कृमि आदि त्रस प्राणियोंका वध करना अनिवार्य हो तो भी करसकता है। क्योंकि ऐसा करने परभी सुखका पलड़ा भारीही रहेगा। इसीलिये इसे हिंसा नहीं कहसकते।

२—शरीरकी स्थिरताके लिये आहार पानकी हिंसाभी हिंसा नहीं है। शरीरमें स्थित जो कृमि आदि हैं उनका विनाश तो हिंसा है ही नहीं, साथ ही किसी बीमारी आदिसे कृमि आदि पड़गये हों तो चिकित्सा द्वारा उनका विनाश करनाभी हिंसा नहीं है।

शंका—यदि स्वास्थ्यरक्षाके लिये कृमि आदि का नाश करना हिंसा नहीं है तो कृमि आदि का नाश करके तैयार की हुई दवाइयाँ लेनाभी हिंसा न कहलाया।

उत्तर—शरीरमें स्थित प्राणियोंका वध करना स्वास्थ्यके लिये जैसा और जितना अनिवार्य है वैसा और उतना दूसरे प्राणियोंका वध करना अनिवार्य नहीं है। अनिवार्यताकी मात्रा पर्याप्त न होने से इसे अहिंसा नहीं कहसकते। अनिवार्यताकी मात्रा जितनी कम होगी, हिंसाकी मात्रा उतनीही अधिक होगी। "डॉक्टरने यही दवाई बतलाई है इसलिये यह अनिवार्य है"—अनिवार्यताका यह ठीक रूप नहीं है किन्तु इसके लिये प्रत्येक सम्भव उपाय की खोज करलेना चाहिये।

दूसरी बात यह है कि प्राणियोंकी द्रव्यहिंसा चार तरहकी होती है—संकल्पी, आरम्भी, उद्योगी और विरोधी।

किसी निरपराध प्राणीकी जान बूझकर हिंसा करना, या अनिच्छापूर्वक भी इस तरह कार्य करना जिससे हिंसा न होनेकी जगहभी हिंसा होजाय तो यह संकल्पी हिंसा कहलायगी। कसाई या शिकारी के द्वारा होनेवाला पशुवध साधारणतः संकल्पी हिंसा कहा जायगा।

सफाई करने भोजन बनाने आदि कार्योंमें जो यथायोग्य यत्नाचार करनेपरभी हिंसा होती है, वह आरम्भी हिंसा है।

अर्थोपार्जनमें जो हिंसा होती है, वह उद्योगी हिंसा है।

कोई दूसरा प्राणी अपने ऊपर आक्रमण करे तो आत्मरक्षाके लिये उसका वध करना विरोधी हिंसा है। जैसे, रामने रावणका वध किया।

इन चार प्रकारकी हिंसाओंमें संकल्पी हिंसाही वास्तवमें हिंसा है। बाकी तीन प्रकारकी हिंसाएँ तो तभी हिंसा कही जासकती हैं जब वे अपनी मात्रा का उल्लंघन करजाँय, उसमें प्रमाद और कषायकी तीव्रता होजाय, वे अनिवार्य न रहें।

औषधके लिये दूसरे प्राणीको मारनेमें संकल्पी हिंसा है जबकि अपने शरीरमें पड़े हुए कीड़ोंको मारनेमें विरोधी हिंसा है। इसलिये पहिलीको हम

हिंसा कहते हैं, दूसरोंको नहीं। उदाहरणार्थ, किसी मनुष्यको प्लेगकी बीमारी होगई। प्लेगके कीटाणु किसी सन्धिस्थलपर गिल्टीके रूपमें जमा होगये उन कीड़ोंका हमारे ऊपर यह आक्रमण है—भलेही उनका यह आक्रमण इच्छापूर्वक न हो, परन्तु है वह आक्रमण। इस समय हम कितनीभी निर्दोष औषधका उपयोग करें, परन्तु उन कीड़ोंका मारना अनिवार्य है। इसलिये इसे संकल्पी हिंसा न कहकर अनिवार्य विरोधी हिंसा ही कहना चाहिये।

प्रश्न—जीवनको टिकाये रहनेके लिये यदि खेती करना, रोटी बनाना आवश्यक मालूम हो तो इसमेंभी आप हिंसा न मानेंगे। जब हिंसा नहीं है तब संयमी मुनिभी ये काम करें तो क्या दोष है? यदि कुछ दोष नहीं है तो जैन शास्त्रोंमें मुनिके लिये इन कार्योंका निषेध क्यों किया है?

उत्तर—कृषि आदि कार्यभी यथासाध्य यत्नाचारसे किये जाँय तो उनमें हिंसा नहीं है, और एक संयमी मुनि भी ये कार्य करसकता है जैन शास्त्रोंमें मुनिके लिये इन कार्योंकी जो मनाई की गई है, वह हिंसासे बचनेके लिये नहीं किन्तु परिग्रहसे बचनेके लिये है। वहभी उस समयकी दृष्टि से है, न कि सार्वकालिक। यदि जैन धर्मने कृषि या पाकके कार्यमें हिंसा मानी होती तो मुनिको भोजन करनेकी मनाई की होती; क्योंकि मुनिके भोजनके लिये मुनिको नहीं तो दूसरेको रसोई बनाना पड़ती है, कृषि करना पड़ती है।

प्रश्न—मुनि तो उद्दिष्टत्यागी होता है, इसलिये गृहस्थ लोग जो कृषि आदिमें हिंसा करते हैं, उसका पाप उसे नहीं लगता, क्योंकि मुनि अपने निमित्त कुछभी नहीं कराता।

उत्तर—'अपने उद्देश्यसे नहीं बना'. सिर्फ इसीलिये उसके पापसे कोई नहीं छूट जाता, अन्यथा बाजारमें जो चीजें तैयार मिलती हैं वे सब निरुद्दिष्ट कहलायेंगी। तबतो मांसभक्षीको भी पशुवधका दोष न लगेगा। यदि कहा जाय कि जो लोग मांस-भक्षण करते हैं उन सबका उद्देश करके पशुवध किया जाता है इसलिये पशुवधका दोष उन सबको लगता है, तो इसी तरह जो लोग अन्न खाते हैं उन सबके ऊपर खेती करनेका दोष लगता है, भलेही फिर वह अन्न भिक्षा द्वारा प्राप्त किया जाय प्राणधारणके लिये अन्न खाना अनिवार्य है, इसलिये खेती करनाभी अनिवार्य है। जो अन्न खाता है वह खेतीकी जिम्मेदारीसे कैसे बच सकता है? यदि अन्न खाना पाप नहीं है तो खेती करनाभी पाप नहीं है हाँ, उसमें यथाशक्ति यत्नाचार करना चाहिये। इसलिये अगर आवश्यकता हो तो मुनिभी कृषि करे तो इसमें मुनित्वका भंग नहीं हो सकता। (इसका विशेष विवेचन इसी अध्यायमें अन्यत्र होगा)

३—प्रत्येक प्राणीको जीवित रहनेका अधिकार है। अगर हम दूसरेके प्राण लें तो यह अन्याय होगा। परन्तु प्रकृति की गति ऐसी है कि एक जीव के वध हुए बिना दूसरा रह नहीं सकता। इसलिये कुछ हिंसाओंको अहिंसारूप मानना पड़ता है। प्रकृति बलवानकी रक्षाके लिये निर्बलोंकी बलि लेती है। धर्ममें भी कुछ परिवर्तनके साथ इस नियमका पालन करना पड़ता है। प्रकृतिकी नीतिमें बल शब्द का अर्थ पशुबल या जीवनोपयोगी बल है जबकि धार्मिक नीतिमें बल-शब्दका अर्थ चैतन्यबल, ज्ञानबल है, जिससे सुखका संवेदन अधिक किया जा सके। इसलिये अधिक चैतन्य वालेकी रक्षाके लिये अगर हीन चैतन्यवालेका वध अनिवार्य हो तो करना पड़ता है। परन्तु यदि दो प्राणी ऐसे हों जिनमें समान चैतन्य हो तब उनमें से किसीको भी यह अधिकार नहीं रह जाता कि वह दूसरेकी हिन्सा करे क्योंकि इससे कल्याणकी वृद्धि नहीं है—लाभ और हानि बराबर रहता है।

प्रश्न—यदि दोनों बराबर हैं तो अपने बचानेके लिये दूसरेका वध करना उचित कहलाया, अथवा अनुचित तो न कहलाया।

उत्तर—इस दृष्टिसे बराबर कहलाने परभी अन्य दृष्टिसे कल्याणका नाश हो जाता है। कल्पना करो कि दो मित्र ऐसी जगह पहुँच गये जहाँ न खाने के लिये कुछ है, न पीनेके लिये कुछ है। ऐसी हालत में एक मित्र अगर दूसरे मित्रको मारकर खाजाय तो सम्भवतः एककी जान बच सकती है परन्तु अगर हम इस कार्यको कर्तव्य मान लें तो इसका फल यह होगा कि-(क) दोनोंही एक दूसरेको मारकर स्वयं बचनेकी कोशिश करेंगे, इससे सम्भवतः दोनोंही लड़कर मर जाँयगे। अथवा मरनेवाला मारनेवाले को मृतकप्राय जरूर कर जायगा। (ख) संकटका आभास होतेही दोनों मित्र मनही मन एक दूसरेके शत्रु बन जाँयगे। और जल्दी से जल्दी एक दूसरेको मार डालनेके षड्यंत्रमें लग जांयगे। इससे जो कष्ट और अशान्ति होगी वह अवर्णनीय नहीं कही जा सकती। (ग) इस उतावलीमें कभी कभी अनावश्यक हत्यायेंभी हो जाया करेंगी, क्योंकि सम्भव है कि वह विपत्ति इतनी बड़ी न हो जितनी कि उनने उतावलीसे समझली। (घ) इससे जो मानसिक अधःपतन होगा, विश्वासघात आदिकी वृद्धि होगी और समाजकी मनोवृत्ति में जो बुरा परिवर्तन होगा, वह बहुत अधिक होगा। इस प्रकार इससे लाभ तो कुछ न होगा, साथही इतने स्थायी और अस्थायी नुकसान होंगे।

प्रश्न—ऊपरके उदाहरणमें हम दो मित्रोंको न लेकर दम्पत्तिको लें तो आत्म-रक्षाके लिये पुरुषके द्वारा स्त्रीका बध होना उचित है या नहीं? दूसरी बात यह है कि पुरुषकी अपेक्षा स्त्रीकी योग्यता कम होती है।

उत्तर—इससे परिस्थितिमें कुछभी अन्तर नहीं होता। स्त्री भी मित्र है, बल्कि उसकी रक्षाका भार पुरुषके ऊपर होनेसे पुरुषकी जिम्मेदारी और बढ़ जाती है। इसलिये मित्रकी अपेक्षा पतिका विश्वासघात और अधिक हानिप्रद है। इसके अतिरिक्त ऊपर जो मैंने क, ख, ग, घ, नम्बर देकर आपत्तियाँ बतलाई हैं वे यहाँभी ज्योंकी त्यों लागू हैं। योग्यताकी दृष्टिसे भी इसका निर्णय नहीं होता, क्योंकि यहाँ पशुबल आदिकी योग्यतासे निर्णय नहीं करना है, किन्तु चैतन्यसे निर्णय करना है। सुखानुभव करने की जो शक्ति पुरुषमें है, उससे स्त्रीमें कम नहीं है। समाजके लिये पुरुष जितना आवश्यक है स्त्री उससे कम आवश्यक नहीं है। परिस्थितिके अन्तरसे दोनों का कार्यक्षेत्र जुदा जुदा है, परन्तु नैसर्गिक योग्यता तथा समाज-हितकी दृष्टिसे दोनों समान हैं। इसलिये स्त्री-पुरुष, नीच ऊँच, विद्वान अविद्वान्, श्रीमान् गरीब आदिका भेद यहाँ नहीं लगाया जा सकता। अन्यथा क, ख, ग, घ वाले उपर्युक्त दोष बहुत भयंकर रूप धारण कर लेंगे।

प्रश्न—ऐसे अवसरपर अगर स्त्री पुत्र दास आदि कोई व्यक्ति स्वेच्छासे आत्मसमर्पण करे तब तो उपर्युक्त दोष निकल जावेंगे।

उत्तर—परन्तु ऐसी अवस्थामें वे स्त्री, पुत्र, या दास इतने महान उच्च और पूज्य हो जाँयगे कि कोई भी व्यक्ति, जो उनके बलिदानपर जीवित रहना चाहता है, उनसे अधिक योग्य न रह सकेगा। ऐसी हालतमें उनका बलि लेना देवदारुकी लकड़ीकी रक्षाके लिये चन्दन जलानेके समान होगा।

प्रश्न—एक मनुष्य ऐसा है, जिसपर सैकड़ोंका जीवन या उनकी उन्नति अवलम्बित है। वह अगर अपनी रक्षाके लिये किसी साधारण मनुष्यका अनिवार्य परिस्थितिमें बध करे तो उसका यह कार्य निर्दोष कहा जा सकता है या नहीं?

उत्तर—इसके लिये चार बातोंका विचार करना चाहिये। (अ) मैं हजारोंका अवलम्बन हूँ, इसका निर्णय वह स्वयं न करे किन्तु वह करे, जिसे अपने जीवनका बलिदान करना है। (आ) बलिदान स्वेच्छापूर्वक होना चाहिये। (इ) इस कार्यमें आत्मरक्षा का भाव नहीं परन्तु समाज-रक्षाका भाव होना

चाहिये। (ई) 'मेरा यह कार्य आत्मरक्षाके लिये है या समाज-रक्षाके लिये' इस प्रकारका संदेहका विषय बनानेसे तथा दूसरेकी बलिके ऊपर अपनी जीवनरक्षा होनेसे उसे हार्दिक पश्चात्ताप होना चाहिये। ये शर्तें बहुत कड़ी शर्तें हैं, सूक्ष्म होनेसे भी इनका पालन बहुत कठिन है। साथही ये अपवादके निर्णयके लिये हैं इसलिये अपने अधःपतन तथा धर्मनीतिपर आघात होनेकी बहुत सम्भावना है। इसलिये बहुत सतर्कताके साथ इस अपवादका पालन होना चाहिये।

प्रश्न—प्रकृति जैसे पशुबलके आधार पर चुनाव कराती है तथा इसी मार्गसे विकास होता है, धर्ममें भी उसी नीतिका अवलम्बन क्यों न किया जाय ?

उत्तर—प्रकृति और धर्मके लक्ष्यमें बहुत अंतर है। विकास सुखरूप ही नहीं होता, दुःखरूप भी होता है। प्रकृतिकी दृष्टिमें सुख और दुःखमें कोई अन्तर नहीं है। उसके लिये तो स्वर्गभी विकास है, नरकभी विकास है। परन्तु धर्मका सम्बन्ध सुखसे है, वह स्वर्गको उन्नति और नरकको अवनति कहता है। प्रकृतिकी कसौटीको अगर धर्मभी अपना ले तो धर्म की कोई जरूरत नहीं रहजाती है। क्योंकि प्रकृति तो अपना काम अपने आप कर रही है, उसकी भूल-सुधार अगर धर्म नहीं करना चाहता तो उसकी जरूरत क्या है। विकासका अर्थ है बढ़ना; धर्म प्रकृतिके बढ़नेको नहीं रोकता किन्तु प्रकृतिकी जो शक्ति नरककी तरफ़ बढ़नेमें खर्च होती है उसे वह स्वर्गकी तरफ़ लेजाता है, सुखकी तरफ़ लेजाता है। इसलिये प्रकृतिकी और धर्मकी कसौटीमें थोड़ा फरक है।

साम्प्रदायिकता का दिग्दर्शन।

(४)

[लेखक—श्रीमान् पं० सुखलालजी बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी।]
(अनुवादक—श्रीमान् जगदीशचन्द्रजी जैन एम० ए०, बम्बई)

१—पहले विष्णुपुराणको लेते हैं। यहाँ मैत्रेय और पराशरके संवादमें जैन और बौद्ध धर्मकी उत्पत्ति बताई गई है। मैत्रेय पराशरसे नग्नका अर्थ पूछते हैं। इसके उत्तरमें पराशर, देवासुर युद्धके प्रसंगको लेकर नग्नकी व्याख्या करते हैं। पराशर कहते हैं कि देवोंकी हार और असुरोंकी जय होनेपर विष्णु भगवान्ने असुरोंको बलहीन बनाकर और उनके वेद धर्मरूप कवच छीनकर, एक मायामोह पुरुषको उत्पन्न करके उस पुरुष द्वारा जैन और बौद्ध आदि वेदबाह्य धर्मोंको असुरोंमें प्रवेश कराया। ये वेदसे भ्रष्ट हुए असुर ही नग्न हैं। नग्नके स्पर्शमात्रसे दोष बताते हुए आगे जाकर उसके साथ बातचीत करने में भी कितना महान् दोष लगता है, यह बतानेके लिये पराशर एक शतधनु राजा और शैब्या रानीकी पुरातन आख्यायिकाका उल्लेख करते हैं।

२—मत्स्यपुराणमें रजिराजाकी एक कहानी आती है। इसमें भी देवासुर युद्धका प्रसंग आता है। इस प्रसंगमें रजिकी सेवासे प्रसन्न होकर इन्द्र स्वयं रजिका कृत्रिम पुत्र बनता है और रजिके राज्यका अधिकार प्राप्त करता है। रजिके वास्तविक सौ पुत्र इन्द्रको हराकर उसका सर्वस्व हरण करलेते हैं। अब इन्द्रकी प्रार्थनासे बृहस्पति रजिके सौ पुत्रोंको बलहीन बनाकर उनमें जैन धर्मका प्रवेश करते हैं तथा उन्हें मूलवेदधर्मसे भ्रष्ट करदेते हैं। इस प्रकार इन्द्र इन रजिके पुत्रोंको मारकर अपने अधिकारको फिरसे प्राप्त करता है।

३—अग्निपुराणमें इसी देवासुर युद्धके प्रसंगको लेकर कहागया है कि विजयी असुरोंको अधार्मिक और निर्बल बनाकर ईश्वरने बुद्धका अवतार लेकर उन्हें बौद्ध बनाया और बादमें आर्हत अवतार लेकर इन्हीं असुरों को जैन बनाया। इस प्रकार वेदबाह्य पाखण्ड धर्मोंका प्रादुर्भाव हुआ।

४—वायुपुराणमें बृहस्पति और शंयुका संवाद है। बृहस्पति कहते हैं कि श्राद्धकी कोई वस्तु यदि नग्नकी

नज़र पड़जावे तो वह पूर्वजोंको नहीं पहुँचती। यह सुन कर शंपु नग्नका अर्थ पूछते हैं। उत्तरमें बृहस्पति कहते हैं कि वेदत्रयीको छोड़ने वालेको नग्न कहते हैं। आगे देवासुर युद्धकी सारी कथाका उल्लेख करके युद्धमें पराजित असुरोंके द्वारा चार वर्णोंकी पाखण्डसृष्टि रचे जानेका कथन है।

५—शिवपुराणमें जैन धर्मकी उत्पत्तिका वर्णन करते समय विष्णुके ही मुँहसे अपनी तथा ब्रह्माकी अपेक्षा शिवका महत्व स्थापित कराया गया है। तथा वेदधर्मसे बलशाली त्रिपुरवासियोंको अधर्म प्राप्ति द्वारा निर्बल बनाकर विष्णुद्वारा ही जैन धर्मके एक उपदेशक पुरुषका निर्माण करके इस पुरुषके द्वारा अनेक पाखण्ड फैलाये जानेका कथन किया गया है। अन्तमें इस पाखण्ड धर्मके स्वीकार और वेदधर्मके त्याग करनेके कारण बलहीन दैत्योंके त्रिपुर नामक निवासस्थानको शिवके हाथसे जलवाकर विष्णुद्वारा इस कार्यकी प्रशंसा कीगई है।

६—पद्मपुराणमेंसे यहाँ चार प्रसंग लिये जाते हैं। पहले प्रसंगमें वेनका संवाद, दूसरेमें दैत्य और बनावटी शुकका संवाद, तीसरेमें 'ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर तीनों में सबसे बड़ा देव कौन'—इस विषयमें ऋषियों का विवाद और चौथेमें शिव और पार्वतीके गुप्त वार्तालापका वर्णन है।

पहले प्रसंगमें, केवल जैन उपदेशकके पाससे जैन धर्मके स्वरूपको जानकर वेनके वैदिक धर्मके छोड़नेका वर्णन है।

दूसरे प्रसंगमें, इन्द्रको स्वर्गमें निर्भयतापूर्वक रहने देनेके लिये दैत्योंको मृत्युलोकमें लानेवाली कथा है। इसके लिये यहाँ दैत्योंको जैनधर्मी बनाकर उनके इच्छापूर्वक मृत्युलोकमें निवास करनेकी स्वीकारता का कथन किया गया है।

तीसरे प्रसंगमें, ब्रह्मा और रुद्रका स्वरूप क्यों निन्दित हुआ है और विष्णुका स्वरूप क्यों पूज्य है, यह बतानेके वास्ते एक वीभत्स कथा कही गई है।

जैन और बौद्ध धर्मकी उत्पत्ति और प्रचारके संबन्ध में जो युक्तियाँ अनेक पुराणोंमें बारबार अनेक तरहसे काम में लीगई हैं उन्हीं युक्तियोंका चौथे प्रसंगमें आश्रय लिया गया है। इसलिये यहाँ वैष्णव धर्मसे बलवान दैत्योंको निर्बल बनाकर विष्णुके आदेशसे रुद्रद्वारा शैव धर्मके पाखण्ड चलानेका और अनेक तामस पुराण स्मृति और दर्शनोंके रचे जानेका वर्णन है।

पद्मपुराणमें अन्तके दो प्रसंगोंमें विष्णुके सिवाय ब्रह्मा, रुद्र आदि देवोंके निकृष्टपनेका, तथा वैष्णव उपासनाके अतिरिक्त दूसरे वैदिक संप्रदायोंके पाखण्डीपनेका स्पष्ट रीतिसे कथन कियागया है। इसी तरह यहाँ वैष्णव न होनेपर ब्राह्मण तकके साथ संभाषण या दर्शन करनेकी स्पष्ट मनाई है।

७—स्कंदपुराणमें मोढ़, त्रिवेदी और चतुर्वेदीका इतिहास बतानेके प्रसंगमें कान्यकुब्जके नरपति आम तथा मोढेरके स्वामी कुमारपालका सम्बन्ध स्थापित किया गया है। तथा इन दोनों राजाओंको जैनधर्मके पक्षपाती और ब्राह्मण धर्मके द्वेषी रूपमें चित्रित किया गया है। इस चित्रणको ठीक बैठानेके लिये पूर्वापरविरुद्ध अनेक कल्पित घटनाओंका उल्लेख किया गया है।

८—भागवतमें कोंक, वेंक और कुटक देशके राजाओंके अर्हन् पाखण्डधर्म स्वीकार करनेकी और कलियुगमें अघोरकृत्य करनेकी भविष्यद्वाणी कीगई है।

९—कूर्म पुराणमें बौद्ध, जैन पाँचरात्र,[1] पाशुपत आदि अनेक सम्प्रदायोंके पाखण्डी होनेका तथा उनको पानी तक न पिलानेका कठोर विधान है।

पुराणोंके नमूनोंकी थोड़ीसी रूपरेखा जान लेनेके बाद इन नमूनोंको विशेष स्पष्ट जाननेके वास्ते पुराणोंके प्रत्येक स्थलका भावात्मक सार नीचे दिखाया गया है।*

[1] भागवत सम्प्रदाय या भक्तिमार्गका एक प्राचीन नाम पाँचरात्र भी है। पाशुपत यह शैव सम्प्रदायका एक प्राचीन नाम है। पाँचरात्र और पाशुपतके संबन्धमें विशेष जानकारी प्राप्त करनेके लिये दुर्गाशंकर केवलराम शास्त्री लिखित वैष्णव धर्मका संक्षिप्त इतिहास और शैवधर्मका संक्षिप्त इतिहास तथा नर्मदाशंकर देवशंकर मेहता कृत हिन्द तत्वज्ञानका इतिहास भाग दूसरा देखना चाहिये।

* देखो परिशिष्ट १।

विरोधी मित्रों से—

[१५]

आक्षेप (३८)—केशीगौतम संवाद एक कल्पित घटना है, क्योंकि जिनग्रंथोंमें इसका वर्णन है, वह भगवान महावीरके ९०० वर्ष बाद बने हैं। (२) शंकाओं के पहिले कुछ वार्तालाप नहीं है (३) गौतम अधिक ज्ञानी थे इसलिये केशिको ही गौतमके पास आना चाहिये था (४) इकदम प्रश्न पूछना कायदेकी बात नहीं है।

उत्तर—दिगम्बर जैन ग्रंथोंमें उत्तराध्ययनका नाम आता है, और उनके अनुसार भी यह श्रुतकेवलियोंके समयका है। फिर, भगवान महावीरके ९०० वर्ष बादका कहना ठीक नहीं। नवसौ वर्षबाद उनका संकलन हुआ है। उस समय वे व्यवस्थितरूपमें लिपिबद्ध किये गये हैं। इसके पहिलेभी श्वेताम्बर ग्रंथथे। सिद्धसेन दिवाकर आदि आचार्य इस सूत्रसंकलनके (बलभीवाचना) के पहिले होगये हैं, और उनके ग्रन्थोंमें इन्हीं सूत्रोंके आधार पर खूब चर्चाएँ हैं। इससे सिद्ध होता है कि इन आचार्योंके समयमें भी ये सूत्र उपलब्ध थे। अगर कहाजाय कि संकलनके समय नयी नयी बातें मिलादी गई हैं तो इस आरोपसे दिगम्बरभी कैसे बच सकते हैं। अगर श्वेताम्बर मिलासकते हैं तो दिगम्बरतो नये रचयिता कहलाये; उननेतो प्राचीन सूत्रोंका एकपदभी नहीं रक्खा इसलिये उननेतो औरभी मनमाने परिवर्त्तन किये होंगे। असली बात तो यह है कि दोनोंही सम्प्रदायके ग्रन्थ विकृत हैं। फिरभी जो परीक्षा पर ठीक जँचे और जो सम्भव या आवश्यक मालूम हो उसे मान लेना चाहिये। जब जैनधर्मका प्रारम्भ महावीरसे नहीं हुआ, उनके पहिले भी वह था, तो उसमें सुधार करते समय नये और पुराने दलका थोड़ा बहुत संघर्ष अवश्य ही हुआ होगा। अगर केशीगौतम संवाद न मिले तो न तो हम जैनधर्मको महावीरके पहिलेका मान सकते हैं, न पार्श्वनाथका अस्तित्व ही स्वीकार कर सकतेहैं। इसलिये केशीगौतम सरीखा कोई न कोई संवाद होनाही चाहिये। अगर दिगम्बरोंमें कोई संवाद उपलब्ध होता या यही संवाद कुछ दूसरे रूपमें उपलब्ध होता तो मैं दोनोंकी तुलना करता। जब दिगम्बर साहित्यमें यह सामग्री है ही नहीं—जोकि अवश्य होना चाहिये थी—तब उत्तराध्ययनका ही यह संवाद प्रामाणिक मानना पड़ता है। हाँ, उसमें कुछ विकृति होना सम्भव है, सो उसकी आलोचनाकी गई है।

गौतम या केशीने इकदम प्रश्न पूछना शुरू नहीं किया किन्तु शिष्टाचार होनेके बाद उनने प्रश्न पूछनेकी अनुमति माँगी। फिर प्रश्नोत्तर हुए। अगर कोई कहे कि मैं उसके घर गया और उससे अमुक प्रश्नका उत्तर पूछ आया, तो उसका यह कथन सिर्फ़ यह कहनेसे मिथ्या नहीं होजायगा कि प्रत्येक कार्यका सिलसिलेवार वर्णन क्यों न किया? जैसे मैंने द्वार खटखटाया, फिर अमुकने द्वार खोला और कहाकि बैठिये, तबमैं बैठा, कुछ देरतक दोनों चुप रहे, फिर उनने कहा—कहिये किसलिये कृपा की इत्यादि। आवश्यकतावश कभी ऐसा सूक्ष्म वर्णनभी किया जाता है परन्तु सभी जगह ऐसा वर्णन करने लगें तो इसीमें सारा समय निकल जावे। ऐसी छोटी छोटी बातें रहें चाहे न रहें, इससे कुछ बनता बिगड़ता नहीं है।

गौतम अधिक ज्ञानी थे परन्तु केशीकी दीक्षापर्याय अधिक थी इसलिये जैसे छोटे भाईके द्वारा बड़ाभाई सन्मानपात्र होता है उसी प्रकार गौतमका कर्तव्य था कि वे उनके पास जावें। इसके बाद यहभी एक बात है कि केशीकी परम्परा पुरानी थी और गौतमतो एक सुधारक पक्षके थे। सुधारकको ही अपने विचारोंके प्रचारके लिये तथा लोकसंग्रहके लिये अधिक और प्रथम प्रयत्न करना पड़ता है। इसलिये गौतमका ही केशीके पास जाना उचित था।

आक्षेप (३९)—महावीरके पहिले लोग सरल प्रकृतिके थे, पीछे वक्र होगये, यह कहना ठीक नहीं। पहिले सीता और द्रौपदीका हरण हुआ है आदि। ये शास्त्रीय दृष्टान्त इसलिये लिखे गये हैं कि जगह जगह आपभी दूसरोंके लिये ऐसे दृष्टान्तोंका प्रयोग करते हैं।

समाधान—किस युगमें कैसे मनुष्य थे, इसका उत्तर व्यक्तिविशेषकी अपेक्षा नहीं किया जाता किन्तु समष्टिकी अपेक्षा किया जाता है। जैसे चौथे कालकी अपेक्षा पाँचवें कालके मनुष्य अधिक पापी कहे जाते हैं, यद्यपि वे तीसरे नरकके आगे नहीं जाते, जबकि चौथेकाल के मनुष्य सातवें नरक तक जातेथे। इसी तरहसे पार्श्वतीर्थ और महावीर तीर्थके लोगोंकी बात है। आश्चर्य है

कि आक्षेपकने उस बातकाभी विरोध किया जिसका वर्णन मूलाचार में भी पाया जाता है।

आदीए दुव्विसोधण णिहणे तह सुट्ठु दुरणुपाले य।
पुरिमा य पच्छिमा वि हु कप्पाकप्पं ण जाणंति ॥ ५३५।

अर्थात् प्रथम तीर्थमें लोग मुश्किलसे शुद्ध किये जाते थे और अंतिमतीर्थ में मुश्किलसे पालन करते हैं, इस प्रकार प्रथम और अंतिम तीर्थंकरके साधु योग्यायोग्य नहीं जानते। मतलब यह कि ऋषभतीर्थके लोग भोले होनेसे ठीक ठीक कहे बिना पालन न कर सकतेथे और वीरतीर्थके बदमाश थे, इसलिये स्पष्ट और अधिक नियमों से जकड़े बिना वे पालन न कर सकते थे।

आक्षेपकने शास्त्रीय दृष्टान्त दिये सो ठीक, परन्तु उनका यह कहना ठीक नहीं है कि मैं शास्त्रीय दृष्टान्तों का प्रयोग करता हूँ इसलिये मेरे लिये दूसरे भी करें। दृष्टान्तका प्रयोग ऐसा होना चाहिये जो सुननेवाले को मान्यहो। हम अगर एक मुसलमानको समझानेके लिये कुरान का उपयोग करें तो इसका यह अर्थ नहीं है कि हम भी कुरानको उसी तरह मानते हैं। यदि आज मैं जैनशास्त्रोंमें से रामका या विष्णुकुमारका दृष्टान्त देता हूँ तो उसका यह मतलब नहीं हैं कि मैं उन्हें मानता हूं या इससे मेरी दृष्टिसे जैनधर्म पार्श्वनाथके पहिलेका सिद्ध हो जाता है। ये सब दृष्टान्ततो उनलोगोंको समझानेके लिये हैं जो इनको मानते हैं।

आक्षेप (४०)—मूलाचारसे पार्श्वनाथ और महावीरमें मतभेद नहीं होता। छेदोपस्थापनाका वर्णनतो आदिनाथही कर चुकेथे। फिर महावीरने जो इसका वर्णन किया वह नया नहीं कहा जासकता।

समाधान—मतभेद पार्श्वनाथ और महावीरमें बताया जाता है न कि ऋषभदेव और महावीरमें, और मतभेद बताया जाता है न कि नयापन। दो व्यक्तियोंमें मतभेद है, इसका यह अर्थ नहीं है कि उनके विचार अभूतपूर्व हैं। दूसरी बात यह है कि अनादिकाल पर नज़र कीजाय तो कोईभी विचार नया नहीं कहा जासकता। नया पुराना व्यवहार अमुक समयकी अपेक्षा किया जाता है। मूलाचारमें कमसे कम इतना लिखा है कि पार्श्वनाथके समय में चार संयमथे और महावीरके समयमें पाँच। इससे दोनोंका मतभेद सिद्ध होता है। बौद्धग्रंथोंमें भी अनेक जगह चातुर्याम व्रत जैन श्रमणोंका बतलाया गया है।

आक्षेप (४१)—ब्रह्मचर्यको अगर अपरिग्रहमें शामिल किया जायगा तो अपरिग्रहको अहिंसामें शामिल करलेंगे। इस प्रकार घटते घटते एकही संयम रह जायगा।

उत्तर—वास्तवमें संयम एकही है। व्यावहारिक दृष्टि से उसके असंख्यभेद हैं, परन्तु असंख्यका ध्यानमें रखना मुश्किल है, इसलिये मध्यममार्ग निकाला जाता है। मध्यममार्ग पाँचका भी है और चारका भी। पार्श्वनाथने चारका रक्खा। महावीरने पाँचका।

चार यमकी बात दिगम्बर साहित्य, श्वेताम्बर साहित्य, और बौद्धसाहित्यसे इतनी स्पष्ट है कि उसके लिये यह कल्पना करनेकी कोई ज़रूरत नहीं कि ये कोई दूसरे होंगे। केशीको जैन साहित्यमें से निकाल देना, जैन इतिहास में से पार्श्वनाथको निकाल देना है। टी० एल वस्वानीने जो गोशालाके विषयमें लिखा है, उससे केशीका कोई सम्बन्ध नहीं है। गोशाला एक नीतिभ्रष्ट साधु था, इसलिये वह या उसका कोई अनुयायी ही केशी था, यह कैसी हास्यास्पद तर्कणा है। श्वेताम्बर शास्त्रोंमें गोशालाकी इतनी अधिक निंदा है कि उसे प्राचीन मानकर उससे सुलह करनेकी बात सम्भव ही नहीं है।

टी० एल वस्वानीने गोशालाका अर्थ गो = इन्द्रिय की शाला किया है। यह वस्वानीजीका आलंकारिक अर्थ है। इंग्लिशमें इसके लिये Logical Method शब्दका उपयोग किया जाता है जिसका अर्थ है विचारानुकूलता से अर्थ करना परन्तु वस्तुस्थितिका निर्णय इस Method (ढंग) से नहीं किया जाता। उसके लिये Historical Method (ऐतिहासिक ढंग) से विचार करना चाहिये। आलङ्कारिक वर्णन हृदयको अच्छा मालूम होता है लेकिन इससे वस्तुतत्वका निर्णय नहीं होता। भोजनकी थाली में हीरे परोस देनेसे थाली चमकने तो लगेगी, परन्तु इससे पेट नहीं भरेगा। वस्वानीजी का वक्तव्य हीरे के समान हो सकता है, परन्तु ऐतिहासिक निर्णयके लिये बेकाम है। साथही उसका सम्बन्ध गोशाला से है, केशी से ज़रा भी नहीं।
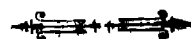
वीर जयन्ति के उपलक्ष में।

(१)

विश्वकी अनेक जातियों ने मेल-जोल किया,
किन्तु जैन अभीतक फूट फल खाते हैं।
एकता को तान सुन कान निज मूँद लेते,
लड़ने को ताल ठोंक-ठोंक आगे आते हैं।
वीर के उपासकों में कहाँ है अहिंसा धर्म,
ज़रा ज़रा बातों पै जो कलह मचाते हैं?
जपते सहनशीलता का मन्त्र नहीं "प्रेम"
वीर की जयन्ति फिर कैसे ये मनाते हैं?

(२)

अपने को वीर के अनुयायी आप कहते हैं,
प्रातःकाल शाम उनके ही गुण गाते हैं।
पूजन रचाते भक्ति भाव को बढ़ाते खूब,
किन्तु क्षमा शान्ति को न नेक अपनाते हैं।
बनते अहिंसा के ईजारदार खूब "प्रेम"
पानी छान पीते * निशि भोजन बचाते हैं।
लेकिन उदारता दिखाते नहीं मिलने की,
वीर की जयन्ति फिर कैसे ये मनाते हैं?

(३)

सुनना विचार दूसरों के, पाप मान बैठे,
अपने विचार आप्त वाक्य ठहराते हैं।
धनियों की पीठ ठोंक-ठोंक करें स्वार्थ सिद्धि,
सत्य के छिपाने में न ज़रा भय खाते हैं।
भोली-भाली जनता को उलटा पढ़ाते पाठ,
मिथ्या शास्त्र रच 'प्रेम' उसे भरमाते हैं।
दूर हैं सुधार से, सुधार का गुमान करें,
वीर की जयन्ति फिर कैसे ये मनाते हैं?

(४)

कतिपय कहते हैं विद्या का प्रकाश हुआ,
कितने ही आज विद्या-आलय दिखाते हैं।
कितने ही पाठशाला खुले, खुलते हैं जाते,
पण्डित प्रवीण उनसे ही बन आते हैं।
किन्तु नहीं सोचते हैं ऐसी बात कभी "प्रेम"
धर्म ग्रन्थ और संस्कृत जो रटाते हैं।
व्यवहार शिक्षा से रहित, भए पर तन्त्र"
वीर की जयन्ति फिर कैसे ये मनाते हैं?

(५)

व्यवहार, धर्म दोनों शिक्षा जब प्राप्त होवे,
तब ही स्वतन्त्रता से रोटियाँ कमाते हैं।
अथवा उसीके साथ धर्म का प्रचार करें,
और अपने को धर्म-पंथ पै चलाते हैं।
किन्तु एक शिक्षा ही जो करते ग्रहण "प्रेम"
वे कैसे धर्म, जाति उन्नति बनाते हैं।
इस पै न देते ध्यान, कहते हैं खूब ज्ञान,
वीर की जयन्ति फिर कैसे ये मनाते हैं?

(६)

जहाँ होस्टलों की है ज़रूरत अत्यन्त "प्रेम"
वहाँ की दशा को देख आँसू बह आते हैं।
धर्म-ज्ञान शून्य छात्र होते जाते दिन-दिन,
असन अशुद्ध को विवेक बिन खाते हैं।
इस ओर ध्यान नहीं देते व दिलाते बन्धु,
रथ-मेलों माँही द्रव्य खूब ही लुटाते हैं।
धर्म शिक्षा से विहीन जैन धर्म छोड़ देते,
वीर की जयन्ति फिर कैसे ये मनाते हैं?

(७)

बाल ब्याह वृद्ध ब्याह और अनमेल ब्याह,
यही तीनों ब्याह जैन जाति को नशाते हैं।
इनके ही द्वारा बल वीर्य सब क्षीण भया,
वृद्धि विधवाओं की इन्हीं से आज पाते हैं।
अनाचार अत्याचार और व्यभिचार पाप,
इन्हीं रूढ़ियों के द्वारा बढ़ते ही जाते हैं।
किन्तु नहीं कोई पंच इनको हटाते "प्रेम"
वीर की जयन्ति फिर कैसे ये मनाते हैं?

---

* यह क्रिया भी शास्त्रोक्त नहीं है।

(८)

धनियों के पुत्र छोटे-छोटे ही विवाहे जाते,
उनके लिए ही सब पुत्रियाँ दिखाते हैं।
लेकिन ग़रीबों को न पूछता है कोई "प्रेम"
इसी से बेचारे बिन ब्याहे रह जाते हैं।
दो बीसी, पचास, साठ, सत्तर के बूढ़े बाबा,
पुत्रियाँ खरीदते विवाह रचवाते हैं।
किन्तु कोई मुखिया न उनका विरोध करे,
वीर की जयन्ति फिर कैसे ये मनाते हैं?

(९)

पुत्रियों की बिक्री का व्यापार है गरम खूब,
बेचते बाजार भाव शर्म नहीं लाते हैं।
करते सगाई दो हजार में फरोक्त कर,
"प्रेम" दूसरे से पाँच दूने[†] गिनवाते हैं।
इस नष्ट प्रथा का न नाश किया आजतक,
बालिकाएँ छोटी-छोटी विधवा बनाते हैं।
मुखिया प्रधान ही खरीदते हैं पुत्रियों को,
वीर की जयन्ति फिर कैसे ये मनाते हैं?

(१०)

अबतक मृत्यु भोज जारी रक्खा मुखियों ने,
धर्म मान उसके रिवाज को बढ़ाते हैं।
पूड़ियाँ, कचोड़ियाँ मिठाइयाँ अनेक भाँति,
लड्डुओं के लिए लार अपनी गिराते हैं?
रोती महिलाएँ उस वक्त अति दीन होके,
तो भी मीठी, मृत्यु की मिठाइयाँ उड़ाते हैं।
लाते न विवेक जरा, रोकने में रिस आते,
वीर की जयन्ति फिर कैसे ये मनाते हैं?

(११)

कितना अनिष्ट और कष्टप्रद खाना वह,
किन्तु इष्ट मान उसे योग्य ही बताते हैं।
एकही नमूना हो, गरीब व अमीर होवे,
उसके खिलाफ नहीं उसे अपनाते हैं।
अगर गरीब कोई देता नहीं मृत्युभोज,
तब तो जनाब "प्रेम" उसे धमकाते हैं।
जाति से कुजाति कर, मन्दिर से बन्द करें,
वीर की जयन्ति फिर कैसे ये मनाते हैं?

(१२)

मन्दिर की रोकड़ में नाम ठीक लिख लेते,
दूसरी ही साल फिर उसे उसकाते हैं।
पंचों को खिलाता है अगर वह मृत्यु भोज,
होता है बहाल पँच खुशियाँ मनाते हैं।
भोज के विरुद्ध यदि उसने पुकार करी,
तबतो सयाने पंच फैसला सुनाते हैं।
"मंदिर न आना अरु जाति में न खाना, "प्रेम"
वीर की जयन्ति फिर कैसे ये मनाते हैं?

(१३)

मन्दिर प्राचीन जीर्ण होते जाते आज "प्रेम"
उनके उद्धार में न द्रव्य को लगाते हैं।
नामके कमाने को वा और के दिखाने को भी,
नित्य नए और और मन्दिर बनाते हैं।
जैनियों की संख्या से अधिक होंगी प्रतिमाएँ,
किन्तु और प्रतिमाएँ नई पधराते हैं।
पूजन प्रक्षाल करवाते हैं पुजारियों से,
वीर की जयन्ति फिर कैसे ये मनाते हैं?

(१४)

मन्दिरों के द्रव्य का हिसाब नहीं आज कोई,
मुखिया महानुभाव उसको दबाते हैं।
लेते जो व्यापार को उधार, फिर नहीं देते,
माँगने पै लड़ते व गालियाँ सुनाते हैं।
कहीं जावें आप नहीं एकता मिलेगी "प्रेम"
मन्दिर भण्डार द्वारा फूट फल खाते हैं।
पार्टियों ने लिया जन्म लाठियाँ चलावें खूब,
वीर की जयन्ति फिर कैसे ये मनाते हैं?

(१५)

ठेकेदार मन्दिरों के, मुखिया बने हैं आज,
दस्सा भाइयों को अति पतित बताते हैं।

[†] दशहज़ार।

रोकते जिनेन्द्र दर्शनों को और पूजन को,
मंदिर के आँगन में बैठ भी न पाते हैं।
माली मोचियों से भी पतित भए इससे आज,
उन पर हरवक्त कड़ी दृष्टि डाते हैं।
धर्म के ईजारादार जानत न धर्म "प्रेम"
वीर की जयन्ति फिर कैसे ये मनाते हैं?

(१६)

ऐसी जैन जाति की दशा को देख-देख 'प्रेम'
सच है हितैषियों के आँसू बहे आते हैं।
चाहते सुधार किन्तु हार जाते मुखियों से,
कर्मवीर बनके न कोई आगे आते हैं।
आते देख उपसर्ग डर जाते, भाग जाते,
साहस व धैर्य का न भाव दर्शाते हैं।
होकर अधीर कार्यक्षेत्र में न आते वीर,
कहते हैं वीर की जयन्ति को मनाते हैं!

रचयिता—

ब्र० प्रेमसागर पंचरत्न, बहराइच।

पत्रोंकी प्रतिध्वनि।

एक और महान त्याग।

त्रिवेंद्रममें उस दिन १७ वर्षकी लड़की गाँधीजीका दर्शन करने आई थी। वह गाँधीजीके सामने आकर जब खड़ी होगई, तो उन्होंने उससे पूछा—

"तुम कौन हो?"

'एक छोटीसी लड़की'—उसने जवाब दिया।

'पर एक छोटीसी लड़कीका इन गहनोंसे क्या प्रयोजन है?' —गाँधीजी उसके शरीर पर बहुतसे ज़ेवर देखचुके थे।

'क्योंकि मैं चाहती हूँ कि ऐसीही छोटीसी लड़की बनी रहूँ'—मीनाक्षीने जवाब दिया।

'तब तो तुम्हें गहने नहीं पहनने चाहिये' —फिर गांधीजीने कौमुदीके आभूषण-संन्यासकी कहानी कह सुनाई—'देखो, वह बेचारी कौमुदी तो १६ ही वर्षकी है। तुमतो उससे एक बरस बड़ी हो। तो भी उसने तमाम गहने उतारकर मुझे देदिये।'

मीनाक्षीकी आँखें चमक उठीं। उसने कहा—तो मैं भी अपने सारे आभूषण उतारकर देदेना चाहती हूँ।

'तुमने अपने माता-पिता की आज्ञा लेली है न?'

'आज्ञा तो मिलही जायगी।'

'मैं जानता हूँ, कि मलाबारकी लड़कियाँ स्वतन्त्र प्रकृतिकी तो होती ही हैं।'

'तो क्या ये गहने मैं आपको देदूँ।'

'हाँ, हरिजनोंको देदो।'

'मेराभी यही मतलब है।'

'अगर तुम मुझे एक सच्चा हरिजन समझती हो, तो लाओ, मुझे ये गहने देदो और अगर मैं तुम्हारी दृष्टिसे एक पाखण्डी हूँ, तो फिर मुझे ये गहने मत दो। मैं तो सभी लड़कियोंको गहने उतार देनेके लिये ललचाया करता हूँ। मैं जानता हूँ, कि लड़कियोंके लिये यह त्याग कितना कठिन है। हमारे समाजमें आज अनेक प्रकारके टीमटाम के फ़ैशन देखनेमें आते हैं, पर मैं तो उसीको सुन्दर कहता हूँ, जो सुन्दर काम करता है।'

'और अगर मैं अपने आपको ही देदूँ तो?'

'हाँ, हाँ, तुम्हारी बहन तो है ही, अब तुमभी मेरे पास रहसकती हो।'

'तो तय रहा?'

'तबभी मैं तुम्हें सोचने-समझनेके लिये एक रात का समय देता हूँ।'

दूसरे दिन सबेरे जब मैंने मीनाक्षी बहनको देखा, तो मैं उसे आसानीसे नहीं पहचान सका। उसके शरीर पर एकभी गहना न था। मैंने उससे पूछा—'आख़िर, तुम्हारे उन सब गहनोंका क्या हुआ?'

'मैंने सारे आभूषण देदिये हैं।'

'क्या गांधीजी को?'

'नहीं, यह तो मैं नहीं करसकी। मेरे पिता पर बहुतसा ऋण है, और इसीसे मैं अपने ज़ेवर न देसकी; पर मैंने यह निश्चय करलिया है, कि अब कभी ज़ेवर न पहनूँगी।'

'तुम्हारे इस निश्चयपर तुम्हारे माता पिताको तो कुछ आपत्ति नहीं है? वे सहमत हैं न?'

'हाँ, पिताजी तो सहमत हैं; पर माँ को राज़ी करना कठिन मालूम देता है।'

इसके बाद मीनाक्षी अपने मातापिताके साथ गाँधीजीके पास आई और हरिजन कार्यके लिये उन्हें अपनी एक सोनेकी चूड़ी और गलेका हार ये दो चीज़ें उतारकर देदीं। गाँधीजीको कर्ज़की बात मालूम होचुकी थी, उन्होंने उसके पितासे कहा—आप मुझे ये चीज़ें न दें। मीनाक्षीके गहनोंसे जितना कर्ज़ चुक सके आप चुकादें। मेरी मीनाक्षी लड़की फिर कभी आपसे ज़ेवर न माँगेगी।

मीनाक्षीके गालोंपर आँसुओंकी धार बहने लगी। उसके अनुपम भावोद्रेकका वर्णन करूँ तो किन शब्दोंमें करूँ? मीनाक्षी आजीवन आभूषण न छूनेकी प्रतिज्ञा करचुकी थी। उस समय वहाँ जैसे कांचन बरसरहा था।

गाँधीजीने अब उसकी मातासे पूछा—अपनी बेटीके इस अद्‌भुत त्यागपर आशीर्वाद देनेमें आपको क्या आपत्ति है?

'अभी इसका विवाह करना है न?'—माँने जवाब दिया—'और हमारे लिये ऐसे वरका तलाश करना बड़ा कठिन होजायगा, जो इसे बिना आभूषणोंके ही अंगीकार करले।'

'खैर, इसकी आप लोग चिंता न करें।'

—गाँधीजीने मीनाक्षीके आँसू पोंछते हुए कहा—'जब समय आयेगा, तब एक नहीं ऐसे पचास वर मैं मीनाक्षीका पाणिग्रहण करनेके लिये ढूंढ दूँगा।

—फिर उनमेंसे आप चाहे जिसको चुनलेना।'

माँने अब मीनाक्षीको आशीर्वाद देदिया। उस समय का वह बड़ाही हृदयस्पर्शी दृश्य था। ईश्वर करे, कौमुदी और मीनाक्षीका वह आदर्श त्याग प्रकाशरूप होकर उस अज्ञानांधकारको हटानेमें हमारा सहायक हो, जो अस्पृश्यता जैसे महान् पापका अस्तित्व बनाये हुए है। —'हरिजन सेवक।'

कन्याविक्रय या रोज़गार।

इस उन्नतिके युगमें एक ओर तो विदेशोंमें स्त्री-जागरणकी चहलपहल है, दूसरी ओर हमारा समाज स्त्रियोंको निर्जीव मूर्ति समझकर जिस तरह बने अपनी स्वार्थमय पापवासनाको तृप्त करनेमें लगा हुआ है। अपनी छोटी छोटी कन्याओंके ऊपर एक-एक बार नहीं, दो-दो बार रुपये लेकर उन्हें बूढ़ोंके हाथ सुपुर्द करने वालोंकी तथा वृद्धावस्थामें भी कामवासना शान्त करनेकी इच्छासे तीन तीन चार चार बार विवाह करने वालोंकी आज भी कमी नहीं है।

वैसे तो कन्याविक्रयकी प्रथा हिंदुस्तानमें प्रायः सभी जगह प्रचलित है, परन्तु राजपूताना, गुजरात और पश्चिमी संयुक्तप्रान्तकी वैश्य जातियोंमें इसका अधिक ज़ोर है। इसका परिणाम यह होता है कि धनिक लोग वृद्धावस्थामें भी अपने रुपयेके बलसे विवाह करतेही चले जाते हैं, जब कि बेचारे ग़रीबोंको या तो अविवाहित ही रहना पड़ता है अथवा अपने जीवनकी गाढ़ी कमाईको ही लगाकर उन्हें वैवाहिक सुख नसीब होसकता है। हमारे देशमें जो विधवाओंकी संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जारही है, उसका भी प्रधान कारण कन्याओंसे रोज़गार चलाना ही है।

अभी हालमें 'विचित्र रोज़गार' शीर्षक एक पत्र मऊ छावनीसे एक देवीने सहयोगी 'चाँद' के सम्पादकजीको लिखा है, उसे हम ज्योंका त्यों यहाँ उद्धृत करते हैं—

सम्पादकजी नमस्ते!

आपने कन्या विक्रयकी प्रथाका हाल तो सुना होगा, परन्तु मैं जो कथा आपको सुनाने चली हूँ, वैसी कथा शायद आपने कभी न सुनी होगी। घटना इसप्रकार है—

एक जैन जातिका अनाथ युवक, जिसकी शिक्षा इन्दौरमें हुई थी, शिक्षा प्राप्त करके उसने इसी प्रान्तके एक शहरमें नौकरी करली। उसकी उम्र तीस वर्षकी है। वह है तो सुशील, सुन्दर, कार्यदक्ष और उपार्जनशील, परन्तु अकेला है। उसका कोई अभिभावक आदि नहीं है। इसलिये ऐसे युवकको भला कोई अपनी लड़की कैसे व्याह देता? परन्तु जिस शहरमें वह नौकरी करता है, वहाँके जैन समाजमें कन्या विक्रय व्यापार बड़े ज़ोरशोरसे चलता है। इसलिये उपायान्तर न देखकर इस युवकने भी इस प्रथाका आश्रय लेकर अपना घर बसानेका इरादा किया और किसी तरह दो हज़ार रुपये एकत्र करके लड़कीके पितासे सौदा पटाया। 'मालधनी' ने नियमानुसार मूल्य पेशगी वसूल करलिया और सालभर बाद विवाहका दिन निश्चित हुआ। बेचारे युवकने भावी गार्हस्थ सुखकी आशामें बड़ी उत्सुकताके साथ बारह महीने बिताये। परन्तु जब विवाहका समय आया तो

लड़कीके पिताजीने साफ़ इन्कार करदिया और कहा कि मैं तो तुम्हें जानता भी नहीं। मैंने कब अपनी कन्याका 'सगपन' किया था? मामला पंच पटेलोंके सामने पेश हुआ, परन्तु चतुर व्यापारीने उन्हें टरका दिया। अब सुननेमें आया है, कि उनने किसी दूसरे विवाह-प्रार्थीसे तीन हज़ार रुपये लेकर अपनी कन्याका ब्याह भी करदिया है।

इधर उस अनाथ युवककी वही दशा है कि 'चौबे जी चले छब्बे बनने और रहगये दुबे ही।'

सम्पादकजी, यह 'अहिंसा परमोधर्मः'के अनुयायी जैन समाजकी दशा है, जो चींटी, मच्छड़ और मत्कुण तक पर तो दया करता है, परन्तु वह अपनी कन्याओं को दो-दो बार नीलाम पर चढ़ानेमें ज़राभी संकोच नहीं करता। कैसी घृणित प्रथा है!!

सम्पादकजी, क्या आप उस अनाथको जिसने पेट काटकर दो हज़ार रुपये एकत्र किये थे और भावी सुखाशाकी अग्निमें उन्हें होम करदिये, कुछ सान्त्वनाकी बातें बता सकते हैं?

आपकी ××× देवी.

[कन्या विक्रय घोर सामाजिक अपराध है। न्यायतः क्रेता और विक्रेता दोनोंही उस अपराधके अपराधी हैं। युवकको समझना चाहिये कि वह जो अपराध करने जारहा था, उसीके दण्डस्वरूप उसे दो हज़ार खोने पड़े। अब उसे चाहिये कि जो समाज ऐसे अपराधको प्रश्रय देता है, उसे साहसपूर्वक ठुकराकर उससे अलग होजाय और जातिपाँतिके निरर्थक बंधनोंको तोड़कर किसीभी सुशील कन्या अथवा विधवासे विवाह करनेकी चेष्टा करे। साथही उसका यह भी कर्तव्य है कि अपने अन्य युवक साथियोंको भी ऐसे समाजसे अलग रहने की सलाह दे। —चाँद सम्पादक।]

गृह-युद्ध।

धर्मके मतवालोंमें मतभेद होना तो स्वाभाविक है किन्तु साम्प्रदायिक विरोध होना नीच वृत्ति है। जैन आम्नायके मूल सिद्धान्त पूर्वज आचार्यों द्वारा देश कालकी अपेक्षासे दिगम्बर और श्वेताम्बर नामकी दो आम्नायों में विभक्त होगये और फिर सम्भवतः पारस्परिक विरोधके कारण इनमें भी स्थानकवासी तारनपंथी, तेरहपंथी, बीसपंथी, शुद्धाम्नायी, गोबरपंथी आदि अनेक मत उत्पन्न होगये। किन्तु श्रीजिनदेवके उपासक होनेके कारण ये संसारकी दृष्टिमें संगठित रूपसे एक जैन समाजके ही अंग प्रत्यंग माने जाते रहे। पिछले दिनों हमारे श्रीमानों और धर्मगुरुओंके सिर पर धार्मिक विरोधका भूत चढ़ा तो उन्होंने तीर्थों पर लड़ाई झगड़े मुक़द्दमेबाज़ी आदिके झमेले पैदा करदिये। हमारी बुद्धि, शक्ति और सम्पत्तिका इन झगड़ोंमें कितना दुरुपयोग हुआ, इसके बतानेकी आवश्यकता नहीं। किन्तु इसके द्वारा हमारे सामाजिक संगठनके ढीला हो जानेसे राजकर्मचारियों तथा साधारण जनताकी दृष्टिमें हमारा जो अपमान होरहा है, उसे देख कर हम सभीको हार्दिक दुःख होता है। बयानामें रथयात्राका रुक जाना, निज़ाम राज्यमें मुनि विहारपर अनुचित आक्षेप होना, केशरियाजी पर जैनेतर पंडोंका आधिपत्य जमना, तीर्थयात्रा पर टैक्स लगना आदि दुर्घटनायें हमारे गृहयुद्धके ही परिणाम हैं।

इस संगठन युगमें तो अच्छा यह होता कि जैन समाजके ये सभी अंग सुसंगठित हो कर अपने धर्म और समाजका गौरव संसार के हृदयपर अंकित करते, परन्तु खेद है कि हमारे विद्वन्मण्डलको सदा औंधी ही सूझती है।

मुलताननिवासी पं० अजितकुमार जी शास्त्री और उन के सहयोगी धर्मोन्मत्त होकर अब इस धुनमें लगे हैं कि जैन समाजरूपी शरीरमें जो इसके अंग प्रत्यंग थोड़े बहुत उलझे रह गये हैं वे भी अब सब छिन्न भिन्न होजायें। श्वेताम्बरमतसमीक्षा लिख कर जो उक्त पण्डितजीने आन्तरिक कलह और वैमनस्यका बीजारोपण किया है, न जाने वे इस

प्रकारका बेसुरा राग अलाप कर किसको अपना नंगा नाच दिखा रहे हैं! अच्छा होता यदि वे पहिले अपनी आँख का तीर निकाल लेते और फिर दूसरेकी आँखके तिनके पर दृष्टि डालते। क्या वे नहीं जानते कि उनके पण्डित और मुनि, शिथिलाचारी हो कर किधर बहे जारहे हैं और धर्मकी आड़में क्या क्या कौतुक कर रहे हैं?

हमें आशा है कि पंडित जी और उनके सहयोगी, समाज में किसी प्रकार की अशान्ति उत्पन्न न करेंगे।

—"दरखशां"
["सनातनजैन"]
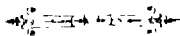
भूकम्प का इतिहास।

प्रलयका भूत और भविष्य अनंत है। इस अपरिमित विश्वमें इस मिट्टीकी गेंद (पृथ्वी) का स्थान इतना छोटा है कि इसके लिये हम कोई उपमानभी नहीं ढूँढ सकते। हमारे आगे अणुका जो स्थान है, इस विश्वके आगे पृथ्वीका स्थान उससे भी अधिक छोटा है। पृथ्वीसे लाखों और करोड़ों गुणे तारे इस विश्वमें नष्ट होते रहते हैं, और पैदा होते रहते हैं। जिन तारोंको हम बिलकुल नहीं जान पाये, उनकी बात तो दूर है परन्तु जाने हुए तारोंमें ऐसे बहुतसे तारे हैं, जिनका प्रकाश यहाँ तक पाँच करोड़ वर्षमें आपाता है। अगर वे तारे आज नष्ट होजाँय तो उनका नाश होना हमें पाँच-करोड़ वर्षबाद मालूम होगा। प्रकाशकी गति एक मिनिटमें क़रीब पौने दोलाख (एकलाख सत्यासी हजार) मील है। इससे हम उनकी दूरीका अंदाज लगा सकते हैं। अनंत काल और अनंतक्षेत्रव्यापी प्रलयके महान् चरित्रमें बेचारी पृथ्वीके भूकम्पोंकी क्या गिनती है?

एक दिन यह पृथ्वी आगके समान गर्म और पानीकी तरह पिघली हुई थी। एकबार इस पृथ्वी में इतना बड़ा भूकम्प हुआ कि इस महान पृथ्वी के दो टुकड़े होगये। एक टुकड़ेका नाम हमने पृथ्वी रख लिया, दूसरेका नाम मंगल है। मंगल ग्रह भूकम्पसे अलग हुआ, पृथ्वीका ही एक टुकड़ा है। इसीलिये इसके नाम भौम, भूमिसुत आदि रक्खे गये हैं। इसी प्रकार यह चन्द्रमा भी पृथ्वीसे अलग हुआथा। इन महान भूकम्पों की हम कल्पना भी नहीं कर सकते कि ये कितने भयंकर होंगे।

एक दिन उत्तरीय भारत, तिब्बत और हिमालय, समुद्रमें था और दक्षिण भारतसे आफ्रिका तक एक महान भूखण्ड था। बीचमें एक ऐसा भूकम्प आया कि यह महान भूखण्ड समुद्रके भीतर गड़प होगया। एकदिन आफ्रिका और दक्षिण भारत एकही भूखंडमें शामिल थे। यही कारण है कि दक्षिण भारतके मूलनिवासियोंसे आफ्रिकाके हब्शियोंका शरीर मिलता जुलता है। यह महाद्वीप कितना बड़ाथा, इसका पता लगाना मुश्किल है, परंतु यह चीन, भारत और आफ्रिकासे मिलताथा। आजकल इसका नाम 'लंगूरिया' रख लिया गया है। इसमें इस जातिके मनुष्य रहतेथे। इनकी कुछ मूर्त्तियाँ मिली हैं, इससे इनके विचित्र रूपका कुछ अन्दाजा लगाया जाता है। विशेष बात यह है कि इनके सिरमें भी एक आँख होतीथी, और ये गंजे होते थे।

अटलान्टिक महासमुद्रके बीचमें भी एक महान द्वीप था जिसका नाम आजकल अटलान्टिस रख लिया गया है। यह महान् भूखण्ड यूरोपसे अमेरिका तक फैला हुआ था। एक दिन भूकम्पसे, हिन्दुस्थानसे कई गुणे इस महाद्वीप को समुद्र देवने अपने पेटमें रख लिया। साहित्यमें इसका कुछ सूक्ष्मसा वर्णन मिलता है। इन दोनों महाद्वीपोंके भग्नावशेष कुछ कुछ अभी बचे हुए हैं।

इसके बाद पृथ्वीके हरएक भूखण्डमें भूकम्पों का तांडव हुआ है। करीब साढ़े अठारहसौ वर्ष पहिले ईसाकी कृपासे योरोपका पॉम्पिआइ नगर जमींदोज होगया था। उस समय यह नगर सभ्यता और विलासिताकी चरमसीमा पर पहुँचाथा। सन् ६३ में वहाँ एक बड़ासा भूकम्प हुआ था। इसके १६ वर्ष बाद वेस्युवियस पर्वतके शिखर परसे धुँआँ निकलने लगा। पृथ्वी बहुत जोरसे कम्पित हुई। गिरिश्रृङ्गसे इतना धुँआँ निकला कि बिलकुल अँधेरा होगया। उसमेंसे इतने पत्थर, राख तथा लावा निकला कि केवल पॉम्पिआइ नगरही नहीं किन्तु उसके अनेक नगर बिलकुल पुर गये और क़बरमें गाड़े हुए मुर्देकी तरह ज़मीनमें मिलगये। आज जब उसकी खुदाई हुई तो वह साराका सारा नगर ज़मीनमें से निकल आया।

सन १८८३ में क्रकातोआ पर्वतने जो सर्वनाश के भयंकर दृश्य दिखाये, ज्ञात इतिहासमें शायद उनकी तुलना न मिलेगी। अकस्मात गर्मीके दिनों में भी एकदिन आकाश अंधकारमय होगया। बादल छागये। अंधकारमें पानीके कण मालूम होने लगे। पृथ्वी बार बार हिलने लगी, और तोपोंके समान इतनी जोर जोर की आवाज़ हुई जैसी मनुष्योंने कभी न सुनी होगी। क़रीब तीन हज़ार मीलतक इसकी आवाज़ सुनी गईथी। मनुष्य बहरे होगयेथे। महीनों यह गड़गड़ाहट रही थी। इस पर्वतसे जो राख उड़ी वह पचास मीलकी ऊँचाई तक पहुँचीथी। हिमालय पर्वतकी सबसे ऊँची चोटी सिर्फ साढ़े पाँच मील ऊँची है। यह राख महीनोंतक आकाश में उड़ती रही। सुमात्रा और जावाकी नीची भूमियाँ डूबगईं। नगर मिट्टीमें मिलगये। क़िलेकी दीवालों के समान ऊँची ऊँची लहरें समुद्रमें उठीं और उनने आसपासकी पृथ्वीपर आक्रमण करके नगरों और मनुष्योंका स्वाहा कर दिया। एकही लहरमें यक्ष उखड़कर मीलोंतक बहगये। ये लहरें कितनी जोरदारथीं इसका अंदाज़ इसीसे लगसकता है कि जावाके किनारे समुद्रतटसे तीनमील दूर कुछ चट्टानें पड़ींथी। एक एक चट्टानका वजन डेढहज़ार मन तक था। ये सब बह गयीं। पानी उस समय प्रतिघंटे चारसौ मीलकी गतिसे दौड़रहाथा अर्थात डाक गाड़ीसे दसगुने वेगसे वह दौड़ता था।

अब यह स्थान फिर बसगया है। परन्तु अभी १९२७ में यह पर्वत फिर गरजने लगा था। फिर १९३० में इससे राख और पत्थर निकले जो १४०० गज ऊँचे तक गये। १९३१ में जो लावा निकली वह २४०० गज ऊँची गई, तथा मई १९३३ में ७५०० गज ऊँचाई तक गई। न मालूम यहाँ कब क्या होजाय?

सन् १७५५ में स्पेनमें एक भूकम्प आया जिससे वहाँका लिस्बन नगर ध्वंस होगया। जो लोग किसी तरह बचे, वे नदीकी तरफ भागे। वहाँ फिर भूकम्प हुआ, जिससे पहिले तो नदी सूखगई, फिर पानी इकदम पचास फुट ऊँचे तक आया और सब नगरवासियोंको बहाकर लेगया। जहाज़ और बन्दरगाह इस प्रकार डूबे कि उनका नामोनिशान तक न मिला।

सन १९०६ में अमेरिकाके सान्फ्रान्सिस्को नगरमें एक भूकम्प हुआ। उससे सारा नगर नष्ट होगया। वहाँ पृथ्वीके नीचे गैसके नल थे जो फूट गये, जिससे बचाखुचा नगरभी जलकर खाक होगया।

जापान तो भूकम्पोंके लिये प्रसिद्ध ही है। सन् १८९६ के भूकम्पमें क़रीब तेरह हजार मकान नष्ट होगये थे और क़रीब तीस हज़ार आदमी मरगये थे। सबसे पिछला भूकम्प १९२३ में हुआ था; कई लाख आदमी मरगये थे। बड़ेबड़े भवन पत्तोंकी तरह आकाशमें उड़गये थे और गिरकर राखके ढेर होगये थे।

भारतमें भी भूकम्प होते रहते हैं सन् १८९७ में जो भूकम्प हुआ था, वह बहुत बड़ा था। यह आसाममें हुआ था। इससे छोटेबड़े ग्राम और नगर जड़मूलसे ध्वंस होगये थे। पृथ्वी एक मिनिटमें दोसौ बार ऊँचीनीची हुई थी। कहींकहीं पृथ्वी २५ फुट तक ऊँची होगई थी, और अनेक झीलें बनगईं थीं। इसके बाद दूसरा भूकम्प काँगड़ाकी घाटी में हुआ था। इससे बीस हजार आदमी मरे थे। १९१७ और १९३० के भूकम्प साधारण थे। अब यह १९ ४ में बिहारमें हुआ है।

मनुष्य अपनेको जगतका राजा मानता है। वह अपनेमें से किसी मनुष्यको भगवान् सिद्ध करता है, किसीको सर्वज्ञ सिद्ध करता है; परन्तु प्रकृति की अनन्त शक्तिके आगे इसकी शक्ति एक छोटेसे छोटे कीड़के बराबरभी नहीं है। प्रकृतिके घूंघट खोलनेमें तो क्या, परन्तु उसके हिलानेमें भी वह असमर्थ है। वह सर्वज्ञ तो क्या, परन्तु उसके एक कणको भी नहीं जान सकता। प्रकृति इसके दम्भको बार बार चूरचूर करदेती है परन्तु यह अभिमानी कीड़ा बराबर बारबार सिर उठाता है।

बिहारका उदाहरण ताजा है। एकही मिनिट में लखपति भिखारी होगये; अभिमानसे सिर उठाने वाले मिट्टीमें मिलगये। इतिहास बताता है कि बड़ेबड़े देश भी इनेगिने मिनिटोंमें जलमग्न होगये। फिरभी मनुष्य धनपर इतराता है, अन्याय और अत्याचार करता है, दूसरोंको गुलाम बनाता है, गुलाम देशोंकी सृष्टि करता है। प्रकृतिका प्रताड़न मानों बहुतही थोड़ा है, यह समझकर वह अनन्त प्रताड़नोंकी वर्षा करता है। प्रकृतिके अनन्त ताण्डवसे मानों इसका पेट नहीं भरता, इसलिये यह अत्याचारोंका ताण्डव करता है।

भूकम्प और प्रलयका इतिहास यदि आज मनुष्यको अपने स्वरूपका भान करादे, उसके अन्धविश्वास और अहंकारका मर्दन करदे, अत्याचारों के फलोंकी निःसारता समझादे तो बिहारसे दसगुने भूकम्पके कष्ट सहनेमें भी टोटा नहीं है। इन दुर्गुणों के कारण अगणित भूकम्पोंके कष्ट मनुष्यने स्वयं बनालिये हैं। प्रकृतिप्रदत्त कष्टोंकी अपेक्षा मनुष्य प्रदत्त कष्टोंकी मात्रा कई गुणी है।

झगड़ालू साहित्य।

साहित्यभी झगड़ालू होता है। किसी बातकी सत्यके लिहाजसे खोज करना, या समाजको सत्पथ दिखलानेके लिये किसीके विचारोंकी आलोचना करना बुरा नहीं है, न इसे झगड़ालू साहित्य कहते हैं। किन्तु जो लोग अनावश्यक झगड़े उठाया करते हैं और जिनका उद्देश्य सत्यका निर्णय नहीं, किन्तु परनिंदा होता है, वह झगड़ालू साहित्य है। और इस युगमें ऐसा साहित्य प्रकाशित करना या तैयार करना बड़ा भारी भूल है।

अभी पण्डित अजितकुमारजीने श्वेताम्बरमत-परीक्षा नामक एक पुस्तक लिखी है। इसके विरोधमें श्वेताम्बर सम्प्रदायमें बहुत कोलाहल मचरहा है। हमारे पासभी इस प्रकारका पर्चा आया है जो कलकत्तेके नौबतराय बदलियाका छपवाया हुआ है। पर्चे के आशयसे सहमत होने परभी हम उसकी भाषा से सहमत नहीं हैं और न ऐसे पर्चोंकी उपयोगिता ही हमारी समझमें आती है। आवश्यकता इस बातकी है कि इस पुस्तकके विरोधमें कोई सयुक्तिक लेखमाला निकाली जाय।

परन्तु इसके साथही हम दिगम्बर-समाजके एक भागके इस प्रयत्नको भी अनुचित समझते हैं। आखिर क्या समझकर ऐसा साहित्य निर्माण होता है? महावीर स्वामीको श्वेताम्बर लोग मांसभक्षी मानते हैं–पहिलेतो इस बातको सिद्ध करनाही कठिन है। पहिले मेराभी यह विचारथा, जोकि अब नहीं है। अगर यह बात सत्यभी होती तो भी इसमें आश्चर्य और लज्जाकी बात कुछ नहीं है। हमारे सभी

पूर्वज एक न एक दिन आखिर मांसभक्षी थे। अच्छे अच्छे जैन कुटुम्बोंमें भी मद्य-मांसका दौर-दौरा था। भगवान् महावीरने मांस भक्षणका निषेध किया, किन्तु वह शीघ्र न हट गया। उसके लिये सैकड़ों वर्ष लगे। ऐसी हालतमें मांस-भक्षणकी अगर आपवादिक घटनाएँ मिलतीं भी तो भी कोई आश्चर्य नहीं था। परन्तु खेद इस बातका है कि ऐसी बातोंकी ऐतिहासिक दृष्टिसे निःपक्ष आलोचना नहीं की जाती; किन्तु निन्दाकी दृष्टिसे स्वपरघात किया जाता है।

आज श्वेताम्बरसमाज मांसभक्षणका जराभी पोषण नहीं करता। उनके हेमचन्द्र आदि बड़े बड़े आचार्योंने भी उन वाक्योंका अर्थ मांसभक्षण रूप सिद्ध नहीं किया है। श्वेताम्बर आचार शास्त्रोंके नियमोंमें मांस-भक्षणका कहीं उल्लेख नहीं मिलता, तथा अस्थि शिरा, त्वक, मांस आदि शब्दोंके प्रयोग, फलोंके विषयमें भी आमतौर पर मिलते हैं। इससे यही मालूम होता है कि वहाँ पर मांसभक्षणका विधान न होना चाहिये। फिर जबर्दस्ती श्वेताम्बर-समाजके मत्थे पर मांसभक्षणका विधान मढ़ देनेका क्या अर्थ है?

थोड़ी देरको मानलो कि यह बात सिद्ध होगई परन्तु क्या यह बात मांसभक्षणको उत्तेजन देनेवाली नहीं है? आज दुनियाँमें सभी दिगम्बर जैन नहीं हैं कि श्वेताम्बरमत समीक्षा पढ़कर श्वेताम्बरोंके निन्दक बन जायँगे और दिगम्बर शास्त्रोंको आँख बन्द कर मानने लगेंगे। आज मांसभक्षियोंकी संख्या शाक भोजियोंसे कईगुणी है और बहुतसे तो उच्च-कुली—जैनीभी—ऐसे हैं जो मांसभक्षण करते हैं या करना चाहते हैं। उनको जब यह मालूम होगा कि श्वेताम्बर शास्त्रोंके अनुसार महावीर तथा जैन मुनि मांसभक्षी थे तब वे मांसभक्षणसे क्यों चूकने लगे? हम अपने घरमें बैठे बैठे भलेही कहते रहें कि यह बात श्वेताम्बरोंकी है, दिगम्बरोंकी नहीं; किन्तु जैनेतर जनता दिगम्बर—श्वेताम्बरके इस विश्लेषणके झगड़ेमें न पड़ेगी। वहतो सामान्यरूप से यही कहेगी कि जैनशास्त्रोंमें मांसका विधान है—महावीर भी मांस खातेथे। अगर दिगम्बर उत्तर देंगे भी कि यह हमारी मान्यता नहीं है, तो पहिले तो यह उत्तर इतना अधिक नहीं फैल सकता जितनी कि मांस-भक्षणकी बात फैल सकती है, दूसरे जैनेतर जनता यही कहेगी कि भाई, तुम लोगों ने (दिगम्बरोंने) यह बात अपने शास्त्रमें से निकालदी है। श्वेताम्बर लोग और श्वेताम्बराचार्य जबकि मांसभक्षणको बिलकुल पसन्द नहीं करते तबभी अगर उनके शास्त्रोंमें यह बात लिखी है, तब तो कहना चाहिये कि उनको सत्यके अनुरोधसे ही यह बात रखना पड़ी है, अन्यथा वे इसको अलग क्यों न कर देते? दूसरी बात इससे यहभी सिद्ध होगी कि श्वेताम्बरोंने सूत्रको ज्योंका त्यों सुरक्षित रखनेकी चेष्टाकी है, जानबूझ कर उनमें कोई परिवर्तन नहीं किया। अन्यथा मांस-भक्षण वाली ये पंक्तियाँ वे जरूर निकाल देते, उसके अर्थ बदलनेकी चेष्टाके झगड़ेमें क्यों पड़ते?

इस प्रकार ऐसी पुस्तकोंसे समग्र जैनधर्मकी बदनामी है, दिगम्बरोंको कुछ लाभ नहीं है, किन्तु इससे श्वेताम्बर सूत्रोंकी प्रामाणिकता पर छाप लगती है, साथही असंयमी लोगोंको मांसभक्षणका उत्तेजन मिलता है।

अगर निःपक्ष ऐतिहासिक दृष्टिसे ऐसी बातें लिखी जातीं तो कुछ हर्ज नहीं था। क्योंकि इस दृष्टिसे कदाचित् ऐसी बातें सिद्ध हो जातीं तो हम यही कहते कि उस समय जैनसमाज प्रारम्भिक अवस्थामें था, इसलिये उसमें पुराने असंयमके चिन्ह दिखलाई देतेथे। ज्यों ज्यों विकास होता गया त्यों त्यों ये दोष निकलते गये। परन्तु ऐसे लेखक विकासके इस क्रमको नहीं मानते; वे पहिले जमानेको बाह्याचारकी दृष्टिसे भी आजकलकी अपेक्षा अधिक शुद्ध मानते हैं। ऐसी हालतमें अगर लोग सोचें कि उस पवित्रयुगमें जब तीर्थंकर तक मांस खातेथे, तब इस अपवित्रयुगमें हम लोग मांस खावें तो क्या हानि

है, तो क्या आश्चर्य ? इस प्रकार ऐसी पुस्तकें हर तरह सभीको हानिप्रद हैं, साथही दिगम्बर श्वेताम्बरों में मनोमालिन्य बढ़ानेके लिये भी काफी हैं। इसलिये मैंने इसे झगड़ालू साहित्य कहा है। ऐसे साहित्यसे बचे रहनेमेंही अपना और दूसरोंका कल्याण है।

सेठ हुकमचन्द जी।

श्रीमान् सेठ हुकमचन्दजी इन्दौर उन श्रीमानों में से हैं जिनकी गिनती राजाओंमें की जाती है। दिगम्बर जैनसमाजके तो वे सर्वश्रेष्ठ श्रीमान् और नेता हैं। इसलिये उन्हें प्रायः प्रत्येक दलके व्यक्तिओंसे काम पड़ता है। आप हृदयके उदार, समझदार तथा विद्याव्यसनी हैं, इसलिये मतभेद के नामपर आप भड़कते नहीं हैं, किन्तु सहिष्णु हैं। इतनाही नहीं, किन्तु जहाँतक मैं समझता हूँ आप विचारके क्षेत्रमें अच्छे से अच्छे सुधारक हैं। यही कारण है कि आप सुधारकोंकी भी प्रशंसा किया करते हैं, यहाँतक कि एकबार आप सभामें मुझ सरीखे उग्र सुधारककी प्रशंसा भी कर गयेथे। परन्तु आप साधारण जनताका साथ नहीं छोड़ना चाहते। मेरी समझमें यह कार्यभी आपकी परिस्थितिके अनुकूलही है। इसलिये साधारण जैनजनताकी प्रायः प्रत्येक बातमें आप आगे रहते हैं। मतलब यह कि आप यथाशक्ति सभी विचारोंके लोगोंका साथ देने की कोशिश करते हैं।

अगर मैं यह कहूँ कि "आप सरीखे तेजस्वी श्रीमान खुले दिलसे हृदयकी आवाजका अनुकरण करते तो इससे समाजका बहुत कल्याण हुआ होता और आपको हाँ हजूरिया यशकी अपेक्षा अक्षययश मिला होता" तो ठीक न होगा। क्योंकि मैं एक ग़रीब आदमी एक करोड़पतिकी परिस्थितिको समझनेमें या अनुभव करनेमें असमर्थ हूँ। फिरभी जहाँतक मेरे ज्ञानकी पहुँच है, उसके आधार पर मैं कह सकता हूँ कि सेठजी जिस मार्ग पर चलते हैं उससेभी अच्छा मार्ग है। मैं यह नहीं कहता कि वे दोनों दलोंका साथ न दें, किन्तु इसके लिये वे वैनयिक मिथ्यात्वकी नीतिका अनुकरण न करके सर्वधर्मसमभावकी नीतिसे काम लें।

सेठजीकी नीति है कि जहाँ जाना वहाँ पर वहाँ के लोगोंकी प्रशंसा करना तथा उनकी हाँ में हाँ मिलाना। अगर यही बात रहती तो कुछ हानि नहीं थी। परन्तु जिसकी वे एक जगह प्रशंसा करते हैं उसीकी दूसरी जगह घोर निन्दा और बहिष्कार करनेसे भी नहीं चूकते। जनताके भयसे वे अपने हृदयको जिस निर्दयतासे मसलते हैं, वह दृश्य अत्यंत दयनीय होता है। इतने बड़े श्रीमान् महर्द्धिक और प्रभावशाली व्यक्ति परभी एकबार दया आजाती है। इसका आज इतना खराब असर हुआ है कि प्रत्येक दल आज उनका परोक्षनिन्दक है। कोईभी उन्हें अपना नहीं समझता, कोईभी उनकी बातका भरोसा नहीं करता, मूल्य नहीं करता। जबकि होना चाहिये था यह कि, सभी उन्हें अपना समझते, सभी उनपर भरोसा रखते, कोई उनसे अनुचित लाभ उठानेकी चेष्टा न करता, उनकी बातका मूल्य होता। इतने बड़े व्यक्तिके वचनोंका, दृढ़ता और सत्यकी दृष्टिसे इतनाभी मूल्य न हो जितना एक मामूली रास्तागीरका होता है तो यह सेठजीका तथा दिगम्बर जैनसमाजका बहुत बड़ा दुर्भाग्य है।

अभी मुनिवेषी चन्द्रसागरके विषयमें सेठजी का एक पर्चा निकलाथा। उससे तथा अन्य समाचारोंसे भी यही मालूम हुआकि सेठजीने चन्द्रसागरको खूब आड़े हाथों लिया और ऐसी सुनाई जैसी किसी मुनिवेषीको सुननेका सौभाग्य न मिला होगा। इधर चित्तौड़ स्टेशन पर लोहड़साजनोंके विषयमें जो उनने एक चिट्ठा लिखी है या उसपर हस्ताक्षर किये हैं, उससेभी मालूम होता है कि वे लोहड़साजनोंके पक्षके समर्थक हैं और चन्द्रसागर को वे इस विषयमें पथभ्रष्ट समझते हैं। किन्तु इधर दूसरा पर्चा अजमेरका छपा हुआ मिला है, जिसमें प्रकट किया गया है कि सेठजी चन्द्रसागरजीमें [illegible]

भवके मोक्ष जावेंगे क्योंकि विद्यार्थीजीको श्रद्धाविहीनों को आर्यसमाजी, कुजात, जिनके माँ बापका ठिकाना नहीं है आदि विशेषण लगाते हैं और अध्यापिकाजी कहती हैं — ऐसाजी होता है, फाड़के चार कर दूँ।

बीच में अजैन लोगोंने इन्हें शहरमें न निकलने देने की दरख्वास्तें की थीं परन्तु उस समय सभी जैनियोंने उन दरख्वास्तोंके खिलाफ़ भयंकर प्रोपैगेण्डा उठाने की बात कहकर उन्हें दाखिल दफ़्तर करा दिया था।

लिखनेकी बातें तो बहुत हैं, पर कहाँ तक लिखी जावें? खुलासा यह है कि बहुत से लोग इन सबको लंगोटी पहना देने फेपश में हैं। —संवाददाता।

कलकत्ता खण्डेलवाल जैन पंचायत को करारी फटकार।

जैसाकि पहिले अनुमान किया गयाथा बाबू माणिकचन्दजी बैनाड़ाके आते ही स्थानीय दिगम्बर जैन खंडेलवाल पंचायतने अपना नाटक ता० १२-३-३४ की रात्रिको दिखाया। यद्यपि कलकत्तामें बहुत पहिलेसे ही इस मनमानी पंचायतसे पृथक कलकत्ता खंडेलवाल सरावगी पंचायत दूसरे दलने स्थापित कर रक्खीथी, इसीलिये उन लोगोंने पंचायत बुलानेके पहिले एक नोटिस स्थानीय जिन मन्दिरोंमें लगा दिया था कि हमारा धड़ाही अलग है, इसलिये मनमानी पंचायतको हम नहीं मानते, न इसे हम लोगों का विचार करने का अधिकार है; परन्तु यदि इतनी न्यायानुमोदित बातको ही यह पंचायत स्वीकार करलेती तो फिर इसका 'मनमानी' नाम सार्थक कैसे होता? अस्तु, इन पंच नामधारी लोगोंने जनताके विरोध करने परभी मनमानी कार्यवाही करही डाली जिसे जनताने बड़ी घृणाकी दृष्टिसे देखा। उसीका यह परिणाम हुआ कि उस मनमानी पंचायतके कुछ सदस्योंमें से पाँच भाइयोंने नीचे लिखा नोटिस श्री जिन मन्दिरों में लगा दिया।

कलकत्ता, १६-३-१९३४।

सूचना।

सर्व दिगम्बर जैन समाजको विदित हो कि अभी हालमें खण्डेवाल दि०जैन पंचायतके नामसे एक नोटिस श्रीजिन मन्दिरोंमें लगा था, जिसमें पाँच भाइयोंको जातिच्युत किया गया, ऐसा लिखा था। इसके विषयमें निवेदन है कि यह फ़ैसला मुद्दई यानी पंचायतने मुद्दायलोंकी अनुपस्थितिमें कर डाला है। सभी न्यायालयों एवं पंचायतोंमें अभियुक्तोंको अपनी सफ़ाई पेश करनेका मौक़ा दिया जाता है, परन्तु उक्त पञ्चायतके कर्णधारोंने इस बातकी ओर ज़रा भी ध्यान न दिया। पञ्चायतका कामथा कि उन लोगोंको बुलाती और तब विचार करती। यदि बुलाने पर भी वे लोग न आते तो भी विचार कर डालना कुछ युक्तिसंगत होता, परन्तु पञ्चायतने उन भाइयोंको बुलानेका नाम भी न लिया। इसलिये यह फ़ैसला एक तरफ़ा होनेसे नाज़ायज़ है।

उन पाँच भाइयोंने यद्यपि पहिले ही यह सूचना देदीथी कि हमारा धड़ा ही अलग है। ऐसी हालतमें उक्त पञ्चायतको विचार करनेका ही नैतिक अधिकार न था; फिर भी यदि वह उन्हें अपनी पञ्चायतके आधीन व्यक्तिही समझती थी तो फिर उन्हें बुलाना और भी आवश्यकथा। ऐसा न कर उक्त पञ्चायत अपने कर्तव्यसे च्युत हुई है। इसलिये ऐसे एकतर्फ़ा फ़ैसलेको हमलोग अनुचित समझते हैं।

अतएव यह फ़ैसला सभी दृष्टियोंसे अनुचित हुआ है। इसलिये समस्त दि० जैन समाजसे प्रार्थना है कि इस फ़ैसलेको समस्त दि० जैन खण्डेलवाल पंचायतका फ़ैसला न समझ केवल कुछ भाइयोंके एक धड़ेका फ़ैसला समझें।

विनीतः—

बाबूलाल बाकलीवाल । देवकुमार बोहरा
सन्तीलाल गंगवाल कपूरचन्द पाटनी
हीरालाल भूंच ।

इसका कोई उत्तर आज तक मनमानी पंचायत नहीं देसकी, और वास्तवमें दे भी क्या सकती थी ? इन अदूरदर्शी पंचमन्योंकी करतूतों के कारण लोग इसकी आलोचना प्रत्यालोचना करते सुनाई देते हैं ।

इधर कलकत्ता खण्डेलवाल सरावगी पंचायत की बैठक ता० १८-३-३५ को हुई, जिसमें नीचे लिखे प्रस्ताव पास हुए:—

प्रस्ताव नं० १—यह पंचायत बाबू राजेन्द्रकुमारजी लुहाड्या को एक जैसवाल जैन कन्या के साथ विवाह करने पर बधाई देती है और उनके इस शास्त्रानुमोदित विवाह का ज़ोरों से समर्थन करती है ।

प्रस्ताव नं० २—यह पंचायत प्रस्ताव करती है कि अब समय आगया है जब इस प्राचीन आचार्यप्रणीत शास्त्रानुमोदित अन्तर्जातीय विवाहपद्धतिको कार्यरूपमें परिणत करनेकी समाजके नवयुवकोंसे प्रेरणा की जाय और प्रत्येक [illegible]से प्रार्थना की जाय कि वह अपने अपने गाँवके योग्य लड़कों और लड़कियोंकी एक सूची तैयार कर लोगोंको अन्तर्जातीय विवाहके लिये उत्साहित करे ताकि नवयुवक भ्रष्ट होने एवं विधर्मी होनेसे बचकर जैनधर्मको संसारसे नष्ट होनेसे बचा सकें ।

विजातीयविवाहके समर्थनमें शास्त्रोंमें स्पष्ट उल्लेख मिलनेपर भी ये लोग शास्त्रोंकी आज्ञाओं पर पानी फेरना चाहते हैं । आश्चर्य है ! वाहरे कलियुगके जैनियो ! आजकल इन पंचायतोंका काम साधारण भाइयोंके तुच्छ तुच्छ अपराधों पर भारी भारी दण्ड देना और बड़े बड़े आदमियों के बड़े बड़े अपराधोंपर परदा डालना मात्र रह गया है । यदि इन्हीं बातोंको संग्रहीत किया जाय तो केवल कलकत्ताके दो चार पंचोंकी ही करतूतों से एक पोथा तैयार होजाय । अस्तु । इन खंडेलवाल पंचमन्योंने स्थानीय चार पाँच जैसवाल भाइयों द्वारा एक नोटिस लगवाया था कि बाबू कुंवरप्रसादजी जैसवाल ही नहीं हैं । परन्तु बाबू अशर्फीलालजी जैन, बाबू मुरारीलालजी बी० ए० तथा पाँच दूसरे जैसवाल भाइयोंने वह मुँहतोड़ उत्तर दिया कि बेचारोंकी बोलती ही बन्द हो गई । उन्होंने लिखा था कि "हम जानते हैं ये एक सच्चे जैसवाल हैं । क्या तुम्हारे साथ जिनका रोटीबेटीका व्यवहार नहीं है, वे जैसवाल नहीं हैं ? हमारा भी रोटीबेटीका व्यवहार आप लोगोंके साथ नहीं है तो क्या हम जैसवाल ही नहीं हैं ।" आदि । क्योंकि जैसवालोंमें दो तीन शाखाएँ हैं और उनमें परस्पर रोटीबेटीका व्यवहार नहीं होता है । इस तरहसे खण्डेलवाल पंचायत यहाँ कई टुकड़ोंमें विभक्त होगई है । देखें, आगे क्या होता है ।

हाँ, एक बात तो रहही गई जिसपर खंडेलवाल भाईही नहीं बल्कि अग्रवाल, परवार आदि सभी पंचायतके भाई इन पंचमन्योंकी अन्यायपूर्ण करतूतोंपर धिक्कारते थे । वह यह कि बाबू गजेन्द्रकुंवरजी बोहरा जो इस विवाहके किसी भी कार्यमें शामिल नहीं हुए थे, तो भी उन्हें जातिबहिष्कृत कर दिया गया है । इसके अतिरिक्त बीसों खंडेलवाल भाई जो विवाहमें सम्मिलित हुए थे, उनका कुछ विचारही नहीं किया गया । इसे कहते हैं "अन्धेर नगरी बेबूझ राजा, टकेसेर भाजी टकेसेर खाजा" । —संवाददाता ।

(पृष्ठ २ से आगे)

के साथ खानपान न करनेकी प्रतिज्ञा दिला रहा है, लोहड़साजनोंको जबरन पूजन प्रक्षाल करनेसे रुकवा रहा है !

परिस्थिति बिलकुल स्पष्ट है । चन्द्रसागर अपने दुराग्रह पर इतना अड़ा हुआ है कि उसने उसके

लिये अपने गुरु श्री शान्तिसागरजी तकसे विद्रोह कर अपना संघ अलग बनाडाला है और स्वयं आचार्य बनजानेकी चेष्टामें है। वह खंडेलवाल महासभा की व समाजके प्रतिष्ठित नेताओंकी सम्मतिको उद्दंडतापूर्वक ठुकराकर मनमाना तांडव कररहा है। उसके कृत्योंसे समाजमें शान्ति बढ़ती है या कलह, इसकी वह जरा भी पर्वाह नहीं करता। पूछनेपर वह अपने पक्षके समर्थनमें कोई प्रमाण नहीं बताता; श्रावकोंको केवल यह कहकर कि—मैं तुम्हारा गुरु हूँ, मैं जो कुछ कहूँ तुम्हें मानना पड़ेगा—अपनी बात मनवाना चाहता है, परन्तु स्वयं अपने गुरु श्री शान्तिसागरजीकी निन्दा करता है और उनकी आज्ञा नहीं मानता। इतना तीव्र कषायी व उद्दंड है कि श्रीमान रावराजा सर सेठ हुकमचन्दजी तकको यह कहते नहीं लजाता कि—तू खंडेलवालका बीज है तो मेरा कुछ करलेना; नसीराबादके वयोवृद्ध व प्रतिष्ठित पंच श्रीमान सेठ राजमलजी सेठीसे कहता है कि—क्या तुझे याद नहीं है कि मैं वही हूँ जो नसीराबादमें तेरे मुचलके कराकर आया हूँ? प्रश्न यह है कि क्या इसप्रकारकी क्रियाओंसे चन्द्रसागरके मुनित्वमें कोई लांछन नहीं लगता? क्या इनसे उसके महाव्रतोंमें कोई दूषण नहीं लगता? यदि इनसे उसका मुनित्व दूषित होता है तो क्या शास्त्री महोदय बतलावेंगे कि मुनिधर्मकी रक्षाके लिये ऐसे मुनिकलंककी अक़ल ठिकाने लानेके लिये, सिवाय इसके कि उसका बहिष्कार किया जाय, क्या उपाय है?

चन्द्रसागरके विषयमें दाधियासे एक अद्भुत समाचार मिला है। वहाँ दो श्रावकोंमें जायदादके सम्बन्धमें कुछ अर्सेसे मुक़द्दमेबाजी चल रही है। मुनि महाशयने उनसे कहाकि तुम लोग मुझे पंच बनाकर मेरे सुपुर्द यह मामला करदो तो मैं झगड़ा निपटा दूँगा। तदनुसार उन्हें पंच बना दिया गया। मुनिजी मौक़ा देखनेके लिये गये और जिस दीवार के विषयमें झगड़ा था, उसे देखकर आपने वहीं फ़ैसला सुना दिया कि—यह दीवार दोनों फ़रीकके सामेकी है। इस फ़ैसलेसे एक भक्त तो संतुष्ट होगया लेकिन दूसरा अकड़गया। वापिस लौटते हुए रास्तेमें ही उसने मुनिवेषी पंचराजके समक्ष नजरसानी पेशकी, जिसका फल यह हुवा कि अपने स्थानपर आकर उन्होंने अपना पिछला फ़ैसला उलट दिया और नया फ़ैसला सुनाया कि यह दीवार अमुक फ़रीककी है किन्तु दूसरा फ़रीक अगर उस पर कुछ इमारत बनवाना चाहता है तो पहिले फ़रीकको यह दस्तावेज़ लिखदे कि तुम्हारी इजाजतसे इस दीवार पर इमारत बनवा रहा हूँ।

बेचारे चंद्रसागरकी अभीतक गृहस्थोचित वासनाएँ व कषायें तृप्त नहीं हुई हैं। मुनिधर्मकी रक्षाके लिये समाजमें शांति स्थापित करनेके लिये तथा स्वयं उसके हितके लिये फिर भी यह आवश्यक है कि उसे इसके लिये एकबार फिर अवसर दिया जाय।

पं० इन्द्रलालजी शास्त्री लिखते हैं—"हमारी तो इस विषयमें यही सम्मति है कि जबतक कोई पुष्ट-प्रमाण किसीभी पक्षके अनुकूल प्रतिकूल न मिल जाय, तबतक नई बात कोई न छेड़ी जाय। जैसी जहाँ प्रवृत्ति है, वैसीही रक्खी जावे"। क्या शास्त्रीजी कृपाकर इस सम्मतिके अनुसार अपने मुनिराजको अनुरोध करेंगे कि वे लोहड़साजनोंके साथ खानपान त्याग कराने व लोहड़साजनोंको पूजा प्रक्षालसे रोकने के आन्दोलनसे हाथ खींचलें।

इस अंकके साथ नसीराबाद व किशनगढ़के कतिपय पंचोंकी ओरसे प्रकाशित "सत्य घटना" शीर्षक पर्चा वितरित किया जाता है। दाधियामें जिस समय चंद्रसागर व सेठ हुकमचन्दजी आदि में परस्पर तू तू मैं मैं हुई थी, उस समय वे वहाँ मौजूद थे। इससे पाठकोंको दाधियावाली घटनाकी सत्यता मालूम होगी। साथही यहभी मालूम होगा कि सेठ हुकमचंदजी का यह कहना कि मैंने नौंवों वाली विज्ञप्तिपर बिनापढ़े दस्तख़त करदिये थे, बिलकुल मिथ्या है। क्या पाटनीजी इसके सम्बन्ध में भी इन्दौरसे तार मँगवावेंगे। —प्रकाशक।

Printed by Pt. Radhaballabh Sharma, at the Ajmer Printing Works, Ajmer.

तार का पता—"JAINJAGAT" Ajmer. Reg: No. N 352.

वर्ष ९ ता० १६ अप्रैल सन् १९३४ अंक ११

जैनसमाज का एकमात्र स्वतन्त्र पाक्षिकपत्र।

वार्षिक मूल्य ३) रुपया मात्र।

विद्यार्थियों व संस्थाओं से २॥) मात्र।

जैन जगत्

(प्रत्येक अंग्रेज़ी महीने की पहली और सोलहवीं तारीखको प्रकाशित होता है)

"पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनम् यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः"॥—श्री हरिभद्रसूरि।

सम्पादक—सा०र० दरबारीलाल न्यायतीर्थ, जुबिलीबाग तारदेव, बम्बई।

प्रकाशक—फतहचंद सेठी, अजमेर।

प्राप्ति स्वीकार।

श्रीमान् पं० दरबारीलालजी जैन न्यायतीर्थ सम्पादक "जैनजगत्" को हैदराबाद जैनसमाजने गत महावीर जयन्ति उत्सव पर आमंत्रन कर १०१) भेंट स्वरूप प्रदान किये थे, जिसे उन्होंने स्वयं स्वीकार न कर केवल मार्गव्ययके २०) रु० काटकर शेष ८१) रु० जैनजगत्की सहायतार्थ प्रदान कर दिये हैं।

श्री० गुलाबचन्दजी सोगाणी अजमेरने अपने पिता स्वर्गीय श्री पूनमचन्दजी सोगाणीकी स्मृतिमें ५) जैनजगत् की सहायतार्थ प्रदान किये हैं। धन्यवाद। —प्रकाशक।

आवश्यक सूचना।

ता० २५ अप्रेल से ता० १० जून तक करीब डेढ़ महीने जैनजगत् सम्पादक श्रीमान् साहित्यरत्न पं० दरबारीलालजी न्यायतीर्थ भ्रमण में रहेंगे। अतः इस अवधि में उनकी डाक C/o फतहचन्द सेठी प्रकाशक जैनजगत् अजमेर, के पते पर भेजी जानी चाहिये। —प्रकाशक

धोखे से सावधान।

जैनगज़ट अङ्क २९ ता० ११–४–३४ में "दिगम्बर जैन खंडेलवाल सभा जयपुर" के नामसे "विजातीय विवाहके विरोधमें प्रस्ताव" शीर्षक नोट प्रकाशित हुआ है। उसके विषयमें निवेदन है कि जयपुरमें दिगम्बर जैन खण्डेलवाल सभा नामकी कोई संस्था नहीं है। यह सब कारस्तानी पं० इन्द्रलालजी शास्त्री व उनके मित्रोंकी है जिनको कि श्रीमान् सेठ सर्वसुखदासजी खज़ाञ्ची और उनके दलवालोंने जयपुर दिगम्बर जैन महापाठशालासे निकाल बाहर कर दिया था। बदला लेनेके लिये यह सब फर्जी कार्रवाई की गई है।

प्रत्येक समझदार व्यक्ति समझ सकता है कि क्या जयपुर जैसी जैनपुरीमें येही ४–५ साधारण व्यक्ति, जिन्हें कोई जानता तक नहीं, पंच रहगये हैं? परन्तु कहीं पंचायत हुई हो तब न? बेचारे इन्द्रलालजी भी क्या करें? कलकत्तेके कतिपय पैसेवाले व्यक्तियोंकी आज्ञा पालन न करें तो सम्पादकी कैसे चले? कलकत्तासे हुक्मनामा आया और झट प्रस्ताव पास होकर जैनगज़टमें छप गया! किसीको कानोंकान खबर भी नहीं हुई।

कोई कैसी भी चालाकी क्यों न करे, उसमें कुछ न कुछ कसर रहही जाती है। कलकत्तेकी मनमानी पंचायत बाबू गजेन्द्रकुमारजी बोहराको बहिष्कृत करती है, तो शास्त्रीजी की फर्ज़ी सभा बाबू देवकुमारजी बोहराको और साथ ही सेठ सर्वसुखदासजी खज़ाञ्चीको बहिष्कृत करती है। ठीक ही है; ऐसा किये बिना पुराना बदला चुकताभी क्योंकर? इसलिये हम समस्त जैनसमाजको सूचितकर देते हैं कि यहाँ ऐसी कोई सभा नहीं हुई, और न इसको कोई भाई जयपुर पंचायतका निर्णयही समझें।—मोतीलाल काला जयपुर।

नियम बनाया गया हो, और पीछे कारणवश इसेभी ऐकान्तिक रूप देना पड़ाहो, या ऐकान्तिकरूप प्राप्त होगया हो। अथवा यहभी सम्भव है कि स्वच्छताके नामपर मुनियोंमें शृंगारप्रियता बढ़ने लगी हो और शृङ्गारप्रियताको रोकनेके लिये तथा मुनियोंको परिषहविजयी बनानेके लिये ये नियम बनाये गये हों। मतलब यह कि अ हिंसाके लिये ये नियम निरुपयोगी हैं। दूसरी दृष्टिसे उस समय इनके बनानेकी आवश्यकता हुई होगी, परन्तु आजकी परिस्थितिमें ये निरर्थक हैं।

मुँहपत्तिके विषयमें भी यही बात है। वह वायुकायके जीवोंकी रक्षाके लिये बाँधी जाती है, परन्तु निरर्थक है, क्योंकि मुँहपत्तिसे मुँहकी वायु रुककर साम्हने न जायगी, नीचेको जायगी; परन्तु वायुतो वहाँपर भी है। इसलिये वहाँ भी जीव मरेंगे। इसके अतिरिक्त कपड़ेमें जो गर्मी पैदा हो जाती है, उससे पीछे भी जीव मरते रहते हैं। इसके अतिरिक्त थूक वगैरहसे मुँहपत्ति कृमिपूर्ण होजाती है। इसप्रकार उससे उतना लाभ नहीं है, जितनी हानि है। फिरभी हिंसा नहीं रुकती, नासिकाकी वायुसे तथा शरीरके सम्पर्कसे जीव-हिंसा होतीही रहती है। इसके लिये नासिकापत्ति नहीं लगाई जा सकती, न सारा शरीर आवृत किया जा सकता है।

कई लोग कीड़ियोंको शक्कर डालकर असंख्य कीड़ियोंको एकत्रित करके हिंसाके साधन एकत्रित करते हैं। एकबार मैंने देखाकि सड़कके एक किनारे असंख्य चींटे मरे पड़े हैं। मैं समझ नहीं सका कि ऐसी स्वच्छ सड़कपर असंख्य चींटे मरनेके लिये कहाँ से आगये? इस प्रकारकी घटना जब मैंने बीसों बार देखी तब मुझे और भी आश्चर्य हुआ। परन्तु, एक दिन मेरी नज़र एक पासके वृक्षके नीचे पड़गई; वहाँ किसी धर्मात्मा जीवने बहुतसी शक्कर डाली थी। उसकी दयालुताका ही यह फल था कि असंख्य चींटे शक्करके लोभसे वहाँ आते थे और राहगीरोंके पैरों से कुचलकर मौतके मुँहमें जाते थे। कीड़ों मकोड़ोंको दया इसमें नहीं है कि उन्हें मरनेके लिये निमंत्रण दिया जाय, किन्तु इसमेंहै कि स्वच्छता रखकर उन्हें पैदा होने न दिया जाय। स्वच्छता न रखना कीड़ों की हिंसा करना है।

कई लोग पैसा देकर कसाइयोंसे जीव छुड़ाते हैं। ऐसे भाइयोंका अविवेक अत्यन्त दयनीय है। वे वास्तवमें प्राणिवधको उत्तेजना देते हैं। एक कसाई पशु खरीदता है, इसलिये कि वह उसे मारकर उसके शरीरसे अधिक पैसा पैदा करे। परन्तु एक जैनी भाई उसको पूरे दाम देकर उसके परिश्रमको बचाता है और इस तरह और भी जल्दी अधिक पशु मारनेके लिये उत्तेजित करता है। अगर ऐसा नियम होता कि जिसने पैसा लेकर पशु छोड़ दिया वह अब पशुवध न करेगा तो यह ठीक था; किन्तु जब वह अच्छी तरह पशुवध करता रहता है तब उसे पैसा देकर पशु छुड़ाना पशुवधके लिये आर्थिक उत्तेजन देना है। पशुवधके रोकनेका इलाज तो यह है कि उनके मनमें अहिंसाका भाव पैदा किया जाय। पशुओंका इस तरह पालन किया जाय, जिससे उनकी उपयोगिता बढ़े. आदि। मैंने देखा है कि पर्युषणके अवसरपर जब जैनी लोग मन्दिर आदिके लिये जाते हैं और रास्ते में अगर कोई तालाब पड़ता है तो उस दिन ...सों मछलीमार सिर्फ इसलिये मछली मारने लगते हैं कि जैन लोग पैसे देकर मछलियाँ छुड़ायेंगे। अगर जैनी लोग इस प्रकार प्रलोभन उनके सामने न रखें तो वे इस प्रकार मछलियाँ मारनेके लिये उत्तेजित न हों। यह याद रखना चाहिये कि धर्मका पालन केवल हृदयकी कोमलतासे नहीं होता, उसके लिये विवेक और विचारशक्तिकी भी खास जरूरत है, अन्यथा मिथ्यादृष्टिके तपकी तरह वह निरर्थकही होता है।

६—कभी कभी मनुष्य अपनी महत्ताका प्रदर्शनकरनेके लिये अथवा कायरतावश या द्वेषवश सूक्ष्म हिंसा बचानेके बहानेसे कर्तव्यच्युत होता है। हितोपदेशमें एक कथा आती है कि एक गीदड़ने अपने मित्र हरिणको इसलिये जालसे न छुड़ायाथा कि जाल तांतका बना था। मांसभक्षी गीदड़का यह

बहाना जैसा दंभथा, इसी प्रकारका दंभ सैकड़ों मनुष्य करते हैं। 'अमुक आदमी दवाखानेमें ऑपरेशन कराने गया है, न मालूम क्या खायगा: इसलिये मैं उसकी सेवा नहीं कर सकता।' 'अगर मैं उसको उपदेश दूँगा तो वायुकायके जीव मरेंगे, इसलिये उसे सचाई पर लगानेके लिये उपदेश नहीं दे सकता, इस प्रकार बीसों बहाने बनाकर मनुष्य कर्तव्यच्युत होता है। कोई कोई लोग तो सिर्फ इसलिये परोपकार नहीं करते—उसे मरनेसे भी बचानेकी चेष्टा नहीं करते—कि अगर वह जीवित रहेगा तो न मालूम क्या क्या पाप करेगा, इसलिये मैं उसे नहीं बचाऊँगा। वास्तवमें यह अज्ञान है। क्योंकि इस सिद्धान्तके अनुसार ऐसे मनुष्योंको बच्चेभी पैदा न करना चाहिये: अगर पैदा होजाँय तो उनका पालन भी न करना चाहिये क्योंकि न मालूम वह बच्चा युवा होकर क्या क्या पाप करेगा? इस प्रकार इस सिद्धान्तके अनुसार समाजका नाश ही हो जावेगा, कल्याणका मार्ग ही नष्ट हो जायगा। प्रथम अध्यायमें बताये हुए कल्याणमार्गके अनुसार कल्याणवृद्धिके लिये जीवन को परोपकारमय बनानेकी आवश्यकता है। अगर अपनेको मालूम होजाय कि अमुक प्राणीके जीवित रहनेसे उसीके समान या उससे महान् अन्य अनेक प्राणियोंका वध अवश्यम्भावी है तो इस दृष्टिसे उसका न बचानाही नहीं, किन्तु वध करना तक कर्तव्य होगा। किन्तु, जो प्राणी इस श्रेणीमें नहीं आते उनकी रक्षा न करना और रक्षा न करनेको धर्म समझना ठीक नहीं है।

७—दो प्राणियोंमें से एकका मरना अनिवार्य हो और एकके मारनेसे दूसरा बच सकता हो तो परोपकारीको बचाना उचित है। जैसे, माताके उदर में बच्चा इस तरह फँस गया है कि किसी भी तरह नहीं निकलता। सिर्फ दो ही उपाय हैं कि या तो बच्चेको काटकर माताको बचाया जाय या माताका पेट चीरकर बच्चा निकाल लिया जाय तो ऐसी हालत में माताका बचानाही श्रेयस्कर है, क्योंकि बच्चेका उपकार माताके द्वारा हुआ है, न कि बच्चेके द्वारा माताका उपकार। ऐसी हालतमें बच्चेका वध करना भी कर्तव्य है। यदि इस प्रकार निर्णय न हो सके अर्थात् उनमें उपकार्य उपकारक भाव न हो तो जो अधिक संयमी (संयमवेषी नहीं) तथा समाज हितकारी हो उसका रक्षण करना चाहिये। मतलब यह कि अहिंसा—दयालुता—के नामपर दोनोंको मरने देना, प्राणिरक्षाके लिये की जाने वाली अनिवार्य हिंसाको भी पाप समझना भूल है।

८—अत्याचार रोकनेके लिये अत्याचारीका अनिवार्य वधभी हिंसा नहीं है। जैसे रामने सीता के ऊपर होनेवाले अन्यायको रोकनेके लिये रावण का वध किया। अथवा कल्पना करो कि कोई मुनिसंघ जंगलमें बैठाहो और कोई जानवर उनपर आक्रमण करे और उसके रोकनेके लिये अगर उसका वध करना पड़े तो भी वह क्षन्तव्य है, भलेही यह काम मुनि ही क्यों न करे। जब सामान्यरूपमें उसका वध करना उचित है, तब वह श्रावक करे या मुनि, एकही बात है। योग्यता, अयोग्यताकी बात दूसरी है, परन्तु धर्माधर्मकी दृष्टिसे उसमें कुछ अन्तर नहीं पड़ता।

प्रश्न—क्या जो श्रावकका कर्तव्य है, वह मुनिका भी अवश्य है? दोनोंका कर्तव्य-क्षेत्र क्या बिलकुल एक है? यदि हाँ, तो दोनोंमें अन्तर क्या है?

उत्तर—श्रावक और मुनिका भेद, कार्यका भेद नहीं है किन्तु आसक्ति अनासक्तिका भेद है। जो अनासक्त रहकर कार्य करता है वह मुनि है। जिसकी आसक्ति मर्यादित है, वह श्रावक है। जिसकी आसक्ति अमर्याद है वह असंयमी है। जो कर्तव्य सामान्यतः कर्तव्यरूपमें निश्चित हुआ हो, वह सभीके लिये कर्तव्य है। और जो अमुक व्यक्ति या व्यक्ति समुदायकी अपेक्षा कर्तव्य माना गयाहो वह उसी व्यक्ति या समष्टिके लिये कर्तव्य है। जैसे मन्दिरमें जाकर देवकी पूजा करना उसीके लिये कर्तव्य है, जिसको उसकी जरूरत हो, महात्माओंके लिये नहीं।

मतलब यह कि कर्तव्यका भेद मुनि–श्रावकका भेद नहीं है, किन्तु भावनाका भेद है। यह बात दूसरी है कि अनासक्त जीवन बितानेके लिये द्रव्यक्षेत्र काल-भावके अनुसार मुनिजीवनके बाह्यरूप अनेक प्रकार के हों। (अणुव्रती और महाव्रतीका भेद आगे कुछ अधिक स्पष्ट किया जायगा)।

९–धर्मका लक्ष्य कल्याण है। कभी कभी जीवन कल्याणका विरोधी होजाता है, उस समय कल्याण के लिये जीवनका भी त्याग करना पड़ता है। परन्तु उसे आत्महत्या नहीं कहते। उदाहरणार्थ, सल्लेखना या समाधिमरणकी क्रिया ऐसीही है। जब कोई मुनि या गृहस्थ देखता है कि वह ऐसे उपद्रव बीमारी आदिमें फँस गया है या जरावस्थाके कारण वह अपनेको और दूसरोंको दुःखका कारण बन रहा है, और इसका प्रतीकार कुछ नहीं रहा है, तब वह किसी सौम्यविधिसे प्राणत्याग करता है। यदि किसीको इस प्रकार मरनेमें कष्ट मालूम होता हो तो उसका प्राणत्याग करना निरर्थक है। जब प्राणत्याग जीवनकी अपेक्षा श्रेयस्कर मालूम हो, तभी करना चाहिये। ऐसे प्राणत्यागमें सहायक होनाभी अनुचित नहीं है। परन्तु यह कार्य होना चाहिये प्राणत्याग करनेवालेकी इच्छाके अनुसार। अपने आप तो इस प्रकारका प्रस्ताव रखनाभी अनुचित है। बल्कि अगर वह स्वयं इच्छा प्रदर्शित करे, तो एक दो बार मना भी करना चाहिये। फिर जब यह अच्छी तरह निर्णय होजाय कि वास्तवमें इसकी इच्छा है, यह लोकलज्जा आदिसे ऐसा नहीं कह रहा है, और इसकी अवस्थाभी प्राणत्याग करनेके लायक है तब उसके इस कार्यमें सहयोग करना चाहिये। समाधि-मरणके विषयमें आगे कुछ विस्तारसे विवेचन किया जायगा।

समाधिमरणकी इस प्रक्रियाके लिये ही इस नियमकी उपयोगिता नहीं है, किन्तु और भी ऐसे अवसर आ सकते है जब स्वेच्छापूर्वक प्राणत्याग करने परभी आत्म हत्याका दोष नहीं लगता। जैसे, किसी सतीके ऊपर बलात्कार करनेके लिये कोई उसका हरण करले और वह सती, सतीत्वकी रक्षा के लिये नहीं–क्योंकि यदि सतीकी इच्छा न हो तो बलात्कार होने परभी सतीत्व नष्ट नहीं होता–किन्तु अत्याचारीके अत्याचारको निष्फल बनानेके लिये जिससे कि भविष्यमें अत्याचारी लोग अत्याचारसे विरत हों, अगर प्राणत्याग करे तो उसे आत्महत्या का पाप न लगेगा। इसी प्रकार धर्मरक्षा, नीतिरक्षा, देशरक्षा आदिके लिये प्राणत्याग करना अनुचित नहीं कहा सकता। यदि किसीको यह विश्वास हो जाय कि मेरे जीवित रहनेसे असह्य यन्त्रणाएँ देकर मेरे जीवनका दुरुपयोग किया जायगा, रहस्योद्-घाटन करके अनेक न्यायमार्गियोंको सताया जायगा, तो इसके लिये भी प्राणत्याग करना अनुचित नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार औरभी बहुतसे अव-सर हो सकते हैं, जबकि आत्मकल्याण और समाजहितकी दृष्टिसे प्राणत्याग करना पड़े परन्तु उसे आत्महत्याका पाप न लगे।

हाँ, यह बात अवश्य है कि जो काम किया जाय समभावसे किया जाय। उसमें अगर व्यक्तिगत द्वेष पैदा होजाय, कर्तव्यबुद्धि न रहे या गौण होजाय, तो वहाँ असंयम हो जायगा। वह उतने अंशमें हिंसा कहा जायगा।

अहिंसाके ऊपर–खासकर जैनधर्मकी अहिंसाके ऊपर–यह दोषारोप किया गया है कि इससे मनुष्य कायर होजाता है, देशरक्षा आदिका कार्य नहीं किया जा सकता, भारतकी पराधीनताका कारण यह अहिंसाही है।

परन्तु मेरी समझमें इस दोषारोपमें कुछ दम नहीं है। यों तो प्रत्येक गुणकी ओटमें दोष छुपा करता है, या बहुतसे दुर्गुण गुणोंके रूपमें दिखलाये जाते है, परन्तु इसीलिये गुणोंकी अवहेलना नहीं की जा सकती। क्षमाकी ओटमें निर्बलता, विनय की ओटमें चापलूसी, अमायिकताकी ओटमें चुगल-खोरी, मितव्ययिताकी ओटमें कंजूसी आदि छुपायी

जाती है। इसीप्रकार अगर किसीने अहिंसाकी ओटमें कायरताको छुपाया हो तो इसमें न तो कोई आश्चर्यकी बात है, न इससे अहिंसाकी निन्दाकी जा सकती है। संसारमें ऐसा कोई गुण नहीं है जिसके नामका दुरुपयोग नहीं किया जाता हो।

जैनधर्मने अहिंसापालनकी ऐसी कड़ी शर्त कहीं नहीं लगायी जिससे एक राजाको या क्षत्रिय को या किसी को अपने लौकिक कर्तव्यसे च्युत होना पड़े। अगर कोई राजा जैन होजाय और वह गृहस्थोचित अहिंसाव्रत (अणुव्रत) का पालन करने लगे तो वह प्रजाको दंड न दे सकेगा, या प्रजा की रक्षाके लिये युद्ध न कर सकेगा—यह बात न तो जैनधर्मके आचारशास्त्रसे सिद्ध होती है, न जैन कथाग्रंथोंके चरित्रचित्रणोंसे मालूम होती है।

गृहस्थ, विरोधीहिंसाका त्यागी नहीं है, इसलिये वह युद्ध कर सकता है—यह बात तो प्रायः सब जगह मिलती है, और जैनाचार्योंने जहाँ युद्धादिका वर्णन किया वहाँ यह बातभी दिखलाई है कि अणुव्रती लोग भी सैनिक जीवन व्यतीत करतेथे।

रविषेणकृत पद्मचरितमें जहाँ सैनिकोंका वर्णन है वहाँ स्पष्ट कहा है कि कोई सैनिक सम्यग्दृष्टि है, कोई अणुव्रती* है।

जैनपुराणोंमें युद्ध और दिग्विजयके खूबही सुन्दर और विस्तृत वर्णन आते हैं, और ऐसा कहीं नहीं लिखा कि युद्धोंसे किसीका जैनत्व नष्ट होगया, या वह अणुव्रती नहीं रहा। जैनियोंने जितने महापुरुषोंको माना है वे सब प्रायः क्षत्रिय हैं और प्रायः उन सबके साथ युद्धोंकी परम्परा लगी हुई है। अहिंसा और धर्मके पूर्णावतारस्वरूप तीर्थंकरोंके जीवन भी युद्धसे खाली नहीं हैं।

हरिवंशपुराणमें नेमिनाथ तीर्थंकरका महाभारत युद्धमें भाग लेना बतलाया है। दोनों तरफके वीरोंकी लिस्टमें नेमिनाथका नाम* आता है। इन्द्रके द्वारा भेजे हुए रथपर चढ़कर नेमिनाथ युद्धमें जाते हैं। नेमीश्वर शाक्र नामक शंख बजाते हैं और दक्षिण दिशासे चक्रव्यूहका भेदन करते हैं। अरिष्ट नेमिके रथके घोड़े हरे रँगके थे और जब जरासिन्धने कृष्ण के ऊपर चक्र छोड़ा तब वे कृष्णके साथही खड़ेथे। चक्रने नेमिनाथकी और कृष्णकी प्रदक्षिणा की।

शान्तिनाथ, कुंथनाथ और अरनाथ तो तीर्थंकर होनेके साथ चक्रवर्ती भी थे, इसलिये उनने छः खंड की विजय भी की थी। जब तीर्थंकर सरीखे सर्वश्रेष्ठ धर्माधिकारी युद्ध करते हैं और जैनशास्त्र इसका सुन्दर विस्तृत और प्रशंसापूर्ण शब्दोंमें वर्णन करते हैं, तब यह नहीं कहा जासकता कि जैन होनेसे कोई युद्धके कामका नहीं रहता। जैनशास्त्रोंमें आये हुए जैन महापुरुषोंकी अगर गिनती लगायी जाय तो सौ में निन्यानवेंसे अधिक महापुरुष तो क्षत्रिय वर्णके ही मिलेंगे। इससे कहा जासकता है कि जैनधर्म सार्वधर्म होनेपर भी विशेषतः क्षत्रियोंका धर्म है, अथवा यों कहना चाहिये कि क्षत्रियोंने इस धर्मसे विशेष लाभ उठाया है; और क्षत्रिय-वर्ण तो एक युद्धजीवी वर्ण रहा है। इससे कोई कहे कि जैधनर्मकी अहिंसा ने भारतीयोंको युद्धविमुख बना दिया और इससे वे पराधीन होगये तो उसका यह कहना अहिंसा और खासकर जैनधर्मकी अहिंसासे नासमझी प्रगट करना है, साथही उसपर अन्याय करना है।

---

* सम्यग्दर्शनसम्पन्नः शूरः कश्चिदणुव्रती।
पृष्ठतो वीक्ष्यते पत्न्या पुरस्त्रिदशकन्यया ॥ ७२-१६८ ॥

* यदुष्वतिरथा नेमिस्तथैव बलकेशवौ। अतिकम्य- स्थितान् सर्वान् भारतेऽतिरथांस्तुते। ५०—७७। मातल्यधिष्ठितं सास्त्रं सुत्रामप्रहितं रथं। नेमीश्वरः समारूढो यदुनामर्थसिद्धये। ५१—११। दध्मौ नेमीश्वरः शंखं शाक्रं शत्रुभयावहम्। ५१—२०। मध्यं बिभेद सेनानां नेमि दक्षिणतः क्षणात्। ५१-२२। शुकवर्णसमैरश्वैर्युक्तोऽयं स्वर्ण शृङ्खलैः। अरिष्टनेमिर्वीरस्य वृषभकेतुर्महारथः। ५२-६। गर्भागस्त्यधिज्ञात भाविकार्यगतिस्थितिः चक्रस्याभिमुखश्चक्रे विष्णुनैव सहस्थितिं। ५२—६४। सहपद क्षिणीकृत्य भगवन्नेमिना हरिं। तत्करेदक्षिणे तस्थौ शंखचक्रांकुशाङ्किते। ५२—६६।

शंका—आप पार्श्वनाथके पहिले जैनधर्मका अस्तित्व अँधेरेमें मानते हैं, फिर यहाँ अरिष्टनेमि, शान्तिनाथ, कुन्थनाथ, राम, रावण आदिके नामोंका उपयोग क्यों करते हैं ? ये सब पार्श्वनाथके पहिलेके हैं इसलिये, जैनी अहिंसाको समझानेके काममें ये नहीं आ सकते।

समाधान— कोई चरित्र कल्पित हो तथ्यपूर्ण, परन्तु उसके चित्रणमें चरित्रनिर्माताका हृदय रहता है। मानलो राम रावण आदिकी कथाएँ बिलकुल कल्पित हैं, परन्तु उससे इतना तो मालूम होता है कि कथाकार राम और सीताको पुरुष और स्त्रीका आदर्श मानता है। इसीप्रकार जैन ग्रन्थकारोंकी कथावस्तु कल्पित भले ही हो, परन्तु उससे उन ग्रंथकारोंका हृदय मालूम होता है। इसप्रकार इतिहासकी अपेक्षा भी इन कल्पित कथाओंका महत्त्व तथा उपयोगिता बढ़जाती है, क्योंकि इतिहाससे तो हमें इतनाही मालूम होता है कि 'क्या हुआ,' परन्तु कल्पित कथासे या इच्छानुसार परिवर्तित कथासे हम यह जान सकते हैं कि 'क्या होना चाहिये'। मैंने जो उपर्युक्त उदाहरण लिये, वे ऐतिहासिक दृष्टिसे नहीं, किन्तु जैनदृष्टिको समझानेकी दृष्टिसे। इस दृष्टिसे तो तथ्यपूर्ण चरित्रोंकी अपेक्षा कल्पित चरित्र अधिक उपयोगी होते हैं।

शंका—जैनधर्मकी अहिंसा भलेही मनुष्यको कायर न बनाती हो और जैनचार्योंने भलेही अपने शुभ स्वप्नोंका चित्रण चरित्रग्रन्थोंमें किया हो, और सम्भव है महावीरके समयके आसपास उसका ऐसाही रूप रहा हो, परन्तु पीछेसे जैनसमाज अवश्य ही एक कायर समाज बनगया; इतनाही नहीं, किन्तु उसने समाजपर एक ऐसी छापमारी कि सभी लोग कायर होगये। यही कारण है कि भारतवर्षको गुलामी की जंजीरें पहिनना पड़ी हैं।

समाधान—पिछले सवादो हजार वर्षके इतिहास पर अगर नजर डालीजाय तो हमें सम्भवतः एकभी उदाहरण न मिलेगा कि जैनी अहिंसाने देश को गुलाम बनाया हो। सिकन्दरसे लेकर अंग्रेजी लड़ाइयों तक जितने युद्ध हुए हैं, और उनमें जहाँ जहाँ भी भारतीयोंका पराजय हुआ है, वहाँ वहाँ मुख्यतः फूटने तथा राष्ट्रीयभावनाके अभावने काम किया है। कहीं कहीं अन्धविश्वास या चौकापन्थी मूढ़ताने भी पराजित होने में सहायता पहुँचायी है। सिकंदरकी पोरसपर जो विजय हुई थी उसका कारण तो हाथियोंका बिगड़ना आदि था, परन्तु उसके पहिले जो सफलता हुई थी उसका कारण फूट ही था। इस्लामधर्मवालोंके संघर्षमें भी हमें हर जगह फूट या राजनैतिक मूर्खता ही दिखाई देती है और ऐसे ही कारण अंग्रेजी संघर्षके समयमें भी रहे हैं। "मैं अहिंसक हूँ इसलिये युद्ध नहीं करूँगा" ऐसा विचारकर किसीने देशको विदेशियोंके ताबे कर दिया हो, ऐसी कोई घटना नहीं मिलती। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक युगमें जैन नरेशोंके युद्ध और विजयका इतिहास मिलता है। सम्राट खारवेलका नाम तो प्रसिद्ध ही है, परन्तु कुछ शताब्दी पहिले तक जैनराजा होते रहे हैं। आज जैनियोंके हाथमें राज्यश्री नहीं है, इसका कारण अहिंसा नहीं है, किन्तु प्रकृतिका नियम है। बड़े बड़े साम्राज्य डूबे, सभ्यताएँ डूबीं, इसतरह परिवर्तन होते ही रहते हैं, उसी नियमानुसार जैन युगभी चलागया।

ऐतिहासिक घटनाओंका निरीक्षण करनेसे भारतकी पराजयके कुछ कारण स्पष्ट दिखाई देने लगते हैं। जैसे—

१ फूट—पृथ्वीराज, जयचन्द्र, आदि इसके उदाहरण हैं।

२ ईर्ष्या—मराठा साम्राज्यके अधःपतनके समय सिंधिया हुलकर आदिमें।

३ विश्वासघात—सिक्ख सेनापति, मीरजाफर आदि।

४ राजनैतिक—पृथ्वीराजकी अनुचित क्षमा,

राणा प्रतापके भाइयोंको विद्रोही बनालेना । वीरता होने परभी नीतिसे काम न लेना ।

५ चौकापन्थी मूढ़ता—हिन्दू सिपाहियोंकी रसोईमें मुसलमान सिपाहियोंके आनेसे रसोईको अपवित्र मानलेना । इससे हिन्दू सिपाहियोंका भूखे रहना और तैयार रसोई विरोधियोंके हाथ लगना आदि ।

६-अन्धविश्वास-शत्रुदलने अगर तीर मारकर झंडा गिरा दिया तो सिर्फ इसी बातसे हिन्दू सेनाका भाग उठाना ।

७—अराष्ट्रीयता-एक हिन्दूराजाके अधःपतन को दूसरे हिन्दूराजाका चुपचाप देखते रहना । राष्ट्रीयताके नाते उसे अपनी क्षति न समझना ।

८—वर्णव्यवस्था-राज्यका कारबार क्षत्रियोंके हाथमें ही होनेसे अन्य तीनवर्णोंका इस तरफसे उदासीन होकर 'कोउ नृप होय हमें का हानी' वाली नीतिका पालन करना । इसलिये विदेशी राजाओं का भी स्वदेशी राजाओंकी तरह स्वागत करना ।

९ कोईभी देश जब अपने समयमें समृद्धिकी चरमसीमा पर पहुँच जाता है तो उसमें विलासिता आदिकी मात्रा बढ़जाती है, धर्म और अर्थ लुप्तप्राय हो जाते हैं और कामका राज्य बढ़जाता है। इससे अनेक दुर्गुण पैदा होनेके साथ वीरता और त्यागका अभाव होजाता है । भारतमें भी ऐसाही हुआ ।

उपर्युक्त कारण जितने जबर्दस्त हैं उतनेही स्पष्ट हैं। सम्भव है कोई हलकी पतली ऐसीभी घटना हुई हो जहाँ किसी धर्माभासी राजाने अहिंसा धर्मकी ओटमें अपनी कायरताको छुपाकर शत्रुओंको घुसने दियाहो, परन्तु ऐसी घटनाएँ इतनी बड़ी नहीं हैं जिनका देशव्यापी प्रभाव पड़ाहो, और इतिहासमें जिनके लिये कोई स्थान हो ।

यहभी सम्भव है कि कुछ जैनाचार्योंने अहिंसाके संकुचित रूपका प्रचार किया हो, परन्तु इससे देशको कुछ हानि हुई हो , ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता । हाँ, इससे अनेक राजाओंने जैनधर्म छोड़ दिया और सम्भवतः अनेक क्षत्रिय जातियाँ वैश्य बनगईं परन्तु ये परिवर्तन देशके पतनमें कारण नहीं हुए । हाँ, इससे जैनधर्मके प्रचारमें बाधा पड़ी; उसके पालनेवालों की संख्या घटगई । परन्तु इससे राष्ट्रको कोई क्षति नहीं उठानी पड़ी ।

आज जैनधर्म वैश्योंके हाथमें है, इसलिये उसका रूप कुछ दूसराही दिखलाई देता है । जैनपुराणोंमें वर्णित और आचारशास्त्रमें कथितरूप नहीं दिखलाई देता । वह दिखलाई देता तब, जब उसके पालन करने वाले क्षत्रिय भी बचे होते । इसके कारण तो अनेक हैं परन्तु पिछले समयकेधर्मगुरुओंका अहिंसाके विषय में अव्यवहारिक दुराग्रहभी कारण है, जिसका दुष्फल जैनसमाजको भोगना पड़ा है । फिरभी देशकी राजनीति पर उसका कोई उल्लेखनीय प्रभाव नहीं पड़ा है ।

सार यह है कि जैनधर्मकी अहिंसाका क्षत्रियत्वके साथ जराभी विरोध नहीं है । हाँ, जैनधर्म इतना जरूर कहता है कि निरर्थक रक्तपात न होना चाहिये । रक्तपात जितना कम हो, उतनाही अच्छा । यह बात जैनपुराणोंके चरित्रचित्रणसे भी स्पष्ट होती है । उदाहरणार्थ-वाल्मीकि रामायणके अनुसार सीता चुरानेके कारण सिर्फ रावणही नहीं मारा गया किन्तु कुम्भकर्ण इन्द्रजित वगैरहभी मारे गये । जैनपुराण इतनी हिंसा निरर्थक समझते हैं, इसलिये वे रावण का तो वध कराते हैं-क्योंकि उसका अपराध प्राण दंडके ही योग्य है—परन्तु इन्द्रजित् कुम्भकर्ण वगैरह को क़ैद कराते हैं और युद्धके अंतमें वे छोड़ दिये जाते हैं, जिसमें वे श्रमणदीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त करते हैं । इसीप्रकार जैनमहाभारतमें भी दुर्योधन आदि मारे नहीं जाते, किन्तु क़ैद होते हैं और अंत में श्रमण बनते हैं । यही हाल कीचकका भी होता है । वहभी मारा नहीं जाता । इस चरित्रचित्रणका सार इतनाही है कि आवश्यकतावश मनुष्यवध करना पड़े तो जरूर किया जाय, परन्तु जहाँतक हो वह कम किया जाय । शत्रु अगर गुड़से मरताहो

तो विषसे न मारा जाय। वह सुधर सकता हो तो उसे सुधरनेका मौका दिया जाय। मैं नहीं समझता कि इस नीतिको कोई अनुचित कहेगा। किसी समयकी बात दूसरी है परन्तु धर्मका समय राजनैतिक परिस्थितियोंके समयसे कुछ बड़ा होता है। धर्म इन परिस्थितियोंके अनुसार कार्य करनेका निषेध नहीं करता, फिरभी उसकी दृष्टि मनुष्यता तथा सर्वभूतहित पर रहती है। जीवनमें उत्सर्ग और अपवाद दोनोंकी आवश्यकता होती है। उत्सर्गके स्थानपर अपवादका प्रयोग जिस प्रकार अनुचित है, उसी प्रकार अपवादके स्थानपर उत्सर्गका प्रयोग करनाभी अनुचित है। मनुष्य इनके प्रयोगोंमें भूलता है परन्तु उसके फलको भूलका फल नहीं मानता किन्तु नियम नीति या धर्मका दुष्फल मानता है। यह ठीक नहीं है।

मैं पहिले कह चुका हूँ कि प्रत्येक गुणका दुरुपयोग किया जा सकता है, किन्तु इसीलिये गुण निंदनीय नहीं होते। इसी प्रकार अहिंसाका भी दुरुपयोग हो सकता है और अनेक जगह हुआभी है, परन्तु इसीसे वह निंदनीय नहीं हो सकती। जैनधर्मकी अहिंसा हो या अन्य किसी धर्मकी अहिंसा हो; सबके विषयमें यही बात कही जा सकती है। किसी वस्तुकी परीक्षा करते समय सिर्फ उसके दुरुपयोग पर ही नजर न रखना चाहिये। किन्तु उसके वास्तविक रूप पर दृष्टि डालना चाहिये, इस दृष्टिसे जैनी अहिंसापर विचार किया जाय त वह अनुचित न मालूम होगी, किन्तु अनेक दृष्टियोंसे उसमें उपयोगी विशेषताएँ मालूम होंगी।
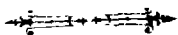
सम्पादकीय टिप्पणियाँ।

हैदराबाद यात्रा।

महावीर जयंतिके उत्सवपर इस वर्ष हैदराबाद (दक्षिण) की जैन जनताने मुझे बुलाया था। हैदराबादमें आठ वर्षसे यह उत्सव मनाया जाता है। इस वर्ष उत्सवके अध्यक्ष खामगाँव (बरार) के प्रसिद्ध जमींदार और बैंकर श्रीमान सेठ सुगनचन्दजी थे। पहिले तो एक दिनका ही उत्सव मनाया जाता था, परन्तु इस वर्ष पीछेसे दो दिन उत्सव करनेका निर्णय किया गया, और तार देकर मुझे एक दिन पहिले आनेकी सूचना दी गयी। मैं रविवारकी रात्रिको रवाना होकर सोमवारको ३॥ बजे दिनको हैदराबाद पहुँचा। स्टेशनपर श्रीमान् सेठ इन्द्रमलजी लूणिया और सेठ सुगनचन्दजी लूणावत आदि उपस्थित थे।

बाड़ी स्टेशनपर हैदराबाद जानेके लिये जब मैंने गाड़ी बदली तो गाड़ीमें एक श्वेताम्बर सज्जन मिले जो व्यापारिक कार्यसे कहीं जारहे थे। जब उन्हें मालूम हुआ मैं दिगम्बर जैन हूँ तो उन्हें बहुत प्रसन्नता हुई, और बोले कि–दिगम्बर श्वेताम्बर आदि भेद व्यर्थ हैं, आखिर हैं तो एकही। इस विषयमें मैंनेभी अपने विचार सुनाये। इस वार्तालापसे मेरे इस विचारका फिर समर्थन हुआ कि साधारण जनता लड़ती नहीं है लड़ाई जाती है। उसे एक नशा चढ़ाया जाता है जिससे उसका अहंकार बुरी दिशामें उमड़ पड़ता है। कुछ चालाक लोग यह दुष्कार्य अपना नेतृत्व बनाये रखनेके लिये, अथवा अपनी आर्थिक समस्या हल करनेके लिये किया करते हैं। अगर ये लोग, लोगोंको न लड़ावें तो इसमें सन्देह नहीं कि समाजोंमें एकता होनेमें ज़राभी देर न लगे।

हैदराबाद शहर समृद्ध शहर है। बड़ेबड़े तालाब और बारह महीने किसी न किसी मोहल्लेमें प्लेग रहनाभी सम्भवतः इस नगरकी विशेषताएँ हैं। आजकल बेगमगंजमें प्लेग है। निज़ामसागर हैदराबादसे दूर, झीलके बराबर तालाब है। कहा जाता है कि हिन्दुस्थानमें इतना बड़ा तालाब अन्यत्र नहीं है। उस्मानसागर, हुसैनसागर, मीरआलम तालाब आदि भी बहुत बड़े बड़े मीलों लम्बे चौड़े तालाब हैं। आजकल यहाँ जर्मनीके ढंगके मकानात बन रहे हैं। एक मकान मैंने ऐसा देखा जो जहाज़के ढंगपर बनाया गया है।

शहरके बाहर मीलोंतक जिस तरफ़ नज़र डालो उसी तरफ भीमकाय और गोल लम्बगोल पत्थरोंके ढेर दिखाई देते हैं। एक गोल या लम्बगोल पत्थरके ऊपर उसी तरहका एक पत्थर रक्खा, उसके ऊपरभी पत्थर रक्खा है। पत्थर बिलकुल जुड़े हुए नहीं मालूम होते, फिरभी ये एकके

ऊपर एक कैसे रक्खे हुए हैं और वर्षा वगैरहकी चोटोंको सहते हुएभी अभीतक धराशायी नहीं हुए, यह भूस्तर या भूगर्भविद्याका एक प्रश्नसा मालूम होता है।

नगरके बाहर एक पुराना क़िला है। क़िलेसे आगे चलकर दो खंडहर दिखाई देते हैं। इसमें दो गायिकाएँ रहतीथीं जो यहीं बैठकर क़िलेके बादशाहको गाना सुनाया करतीथीं। किसी विशेष सम्बन्धसे गायिकाओंकी सुरीली आवाज़ क़िलेतक पहुँचतीथी। बादशाह सलामत इतनी नाज़ुक तबियतके आदमी थे कि पाससे गाना सुननेमें उनके कानोंमें दर्द होने लगता था। कहते हैं कि जब उनकी सेना हार गई और कुछ उपाय न देखकर उनने आत्महत्याका विचार किया तो उनके पाससे खट्टा दही निकाला गया और उसकी दुर्गंधसे बादशाह सलामत बहिश्त या दोज़ख को तशरीफ़ लेगये। बहुत दिन हुए नज़ाकतके विषयमें मैंने एक शेर सुनाथा—

नाज़ की ख़त्म है उन पे जो यह फ़र्माते हैं।
फ़र्शे मख़मलसे मेरे पैर छिले जाते हैं॥

मगर अब मालूम हुआ कि नज़ाकतका ख़त्म होना बहुत दूर है। फ़र्शे मख़मलसे पैरका छिलना नज़ाकत का कोई चिन्ह नहीं है। सम्भवतः इस कथामें कुछ अतिशयोक्ति भी होगी परन्तु कुछ न कुछ सत्यांश ज़रूर है। उससे यह अच्छी तरह सिद्ध होता है कि प्रजासेवक के स्थानपर बैठनेवाले 'राजा' आदि नामधारी जीवोंमें कैसी हरामख़ोरी आचुकी थी, और अभी भी है।

हैदराबाद एक मुसलमानी रियासत है। सुनते हैं कि वर्तमान नवाबके पिताजी बहुत निःपक्ष थे किन्तु वर्तमान नवाबमें यह बात नहीं है। वे सम्भवतः कुछ कट्टर मुसलमान हैं। इसलिये आपके ज़मानेमें शहरके सौन्दर्यमें बहुत उन्नति होनेपर भी आपके पिताजी का नाम अभभी लोगोंको याद आता है। हृदयके प्रेमका स्थान भौतिक चाकचिक्यको कोटिजन्म तप तपने पर भी नहीं मिल सकता।

राजनैतिकताकी बूसे यहाँके कर्मचारी बहुत घबराते हैं, यहाँ तक कि अभी जब महात्मा गाँधीजी आये थे तब खादीभंडारका उद्घाटन करनेमें भी बाधाएँ उपस्थितकी गई थीं। जबकि भोपालके नवाब महात्माजीका स्वागत करने आते हैं, तब निज़ाम राज्यका यह रुख है। जितना डर अंग्रेज़ोंको अंग्रेज़ी राज्य जानेका नहीं है, उतना हमारे देशीराज्योंको है। एकदिन मैंने एक मकान देखकर अँगुली से इशारा करके अपने एक मित्रसे पूछा कि यह किसका मकान है तो पहरेदार सिपाहीने मेरी मोटरका नम्बर लिख लिया। खादी टोपीधारीको इशारा करते देखकर बेचारेको किसी भयंकरकांडकी शंका होगई होगी।

यहाँकी जैनसमाजमें बहुतसे श्रीमन्त हैं। श्री० रघुनाथमलजीने एक विशाल बैंक स्थापित किया है, जिसकी सोलहआना मालिकी उन्हींकी है। किसीभी अच्छे बैंकके समान उस बैंकका प्रबन्ध मालूम हुआ। आपने मेरा ख़ूब आदर किया।

हैदराबाद राज्यके नोट, रुपये, पैसे, पोस्ट आदि स्वतन्त्र हैं। अंग्रेज़ी रुपयेकी क़ीमत हाली रुपयेसे =)॥ ज्यादः है। इसलिये सौदा करते समय हालीमें या कल्दारमें, ऐसा साफ़ बोलना चाहिये।

ता० २७ मार्चको शामको ६॥ बजेसे 'हमारी सामाजिक परिस्थिति' पर मेरा व्याख्यान रक्खा गया, जिसमें सबसे पहिले मैंने यह बात कही कि अवसर्पिणीकी या कलियुगकी भावना निकालदो। हम पुरुष हैं, पुरुषार्थ करना हमारा काम है, इसलिये युग कैसा भी हो, हमें यह भावना रखना चाहिये कि हम उन्नत होसकते हैं। अवसर्पिणी केवल हमारे लिये नहीं है, किन्तु सभीके लिये है। किन्तु जब दुनियाँके अन्य देश आगे बढ़ रहे हैं तब अवसर्पिणी या कलिकालके नामपर हमही क्यों सिर पीटते रहें?

स्त्रियोंके विषयमें स्त्रीपुरुषकी समानताका समर्थन किया। कार्यक्षेत्रमें भेद रहने पर भी उसके जन्मसिद्ध अधिकारोंमें कोई अन्तर न होना चाहिये। स्त्रीशिक्षाका प्रचार व पर्दाप्रथाको दूर करनेके विषयमें भी कहा। कन्या विक्रयकी प्रथाके विषयमें कहा कि वरपक्षसे पैसा भलेही लिया जाय परन्तु वह कन्याके पिताको न मिलना चाहिये, स्त्रीधनके रूपमें कन्याको ही मिलना चाहिये। उसके ऊपर न तो कन्याके पिताका अधिकार रहे, न उसके पतिका।

मौसरपर बोलते हुए उसका इतिहास बताया कि किस प्रकार ब्राह्मण वर्णकी आवश्यकता हुई और उनके निर्वाहके लिये कैसे विधिविधान बने, बादमें उसका कैसा रूप बनगया, और धीरेधीरे परलोकमें डाक भेजनेके लिये ब्राह्मणोंके पेट किस प्रकार लैटरबक्स बन गये और आज उसका कैसा निरर्थक और मिथ्यात्वपूर्ण रूप बनगया है। इस प्रकार १। घंटे व्याख्यान हुआ।

दूसरे दिन एक वृद्ध मारवाड़ी सज्जन मुझसे पर्दा प्रथाकी बुराईके विषयमें कहने लगे। उनकोभी यह बात खटकतीथी कि निम्न श्रेणीके लोगोंसे तो पर्दा नहीं किया जाता किन्तु सासससुर से पर्दा किया जाता है। साधारणतः वृद्धलोग प्रगतिके विरोधी होते हैं, परन्तु उनकी बातें सुनकर मुझे साश्चर्य आनन्द हुआ। बात यह है कि युवकदल स्वयं इतना कायर है कि वह वृद्धोंके भयसे निरर्थकही डरता है तथा साधारण विरोधका भी सामना नहीं कर सकता है। कहीं कहीं तो अपनी कायरताको छुपानेके लिये वृद्धोंका बहाना बनाया जाता है।

ता० २८ को महावीर जयन्ति पर व्याख्यान हुआ, जिसमें मैंने महावीरका जीवन एक महात्माके रूपमें चित्रित किया, और कहाकि—अगर हम उन्हें जन्मसे भगवान मानलें तो वे हमारे किसी कामके नहीं रहते, हम उनके जीवनसे नरसे नारायण बननेका मार्ग नहीं सीख सकते। उनकी लोकहितैषिता, सहनशीलता आदि का वर्णन कर अहिंसाका स्वरूप बतलाया। क्रियात्मक अहिंसाका रूप बतलाते हुए, कभी कभी अहिंसाके लिये हिंसाभी आवश्यक होजाती है, यह कहा। बादमें स्याद्वाद का विवेचन करते हुए साम्प्रदायिक व्यामोह दूर करनेका आग्रह किया। दिगम्बर, श्वेताम्बर आदि भेदोंको दूर करनेकी आवश्यकता बतलाई, तथा यह भी कहाकि ढाई हज़ार वर्ष पहिलेजो नियम बनाये गयेथे, वे सब आजके लिये लागू नहीं हैं, नयी नयी परिस्थितियों और नये नये शास्त्रोंने बहुत कुछ सामग्री दी है। उससे लाभ उठाकर हमें निष्पक्ष होकर सत्यकी उपासना करना चाहिये। इस प्रकार आज पौनेदो घंटे तक व्याख्यान दिया।

दूसरे दिन एक श्रीमानूजी मुझसे कहने लगे कि मुनिलोग बात बातमें शास्त्रकी दुहाई देने लगते हैं, परन्तु इससे संतोष नहीं होता। शास्त्रमें कुछ सभी बातें सच्ची नहीं होतीं। विचारकी ज़रूरत सब जगह है।

इससे मुझे बहुत संतोष हुआ। वास्तवमें लोग कुछ विचारना तो चाहते हैं, परन्तु धर्मके ठेकेदार स्वार्थवश उनकी विचारशक्तिको वन्ध्या कर देते हैं, फूलने और फलनेवाली जैनत्वकी लताको निर्दयतासे मसलडालते हैं।

जिस दिन मैं आने लगा उस दिन मैंने इच्छा प्रकट की कि मैं यहाँके कुछ मंदिरोंको देखना चाहता हूँ। हम तीन आदमी दर्शनोंको निकले। मैं दिगम्बर था, एक सेठजी श्वेताम्बर थे और दूसरे सेठजी स्थानकवासी। हम लोग बिना किसी साम्प्रदायिक भेदभावके श्वेताम्बर दिगम्बर धर्मस्थानोंमें गये। हमारे धर्मस्थानोंमें जैसी विकृति हो गई है उससे यह तो कठिन था कि वे चित्ताकर्षण करते परन्तु हम लोग साम्प्रदायिकताका व्यामोह छोड़कर जो दर्शन कर रहे थे, यह बहुत संतोषकी बात थी।

श्री० सेठ इन्द्रमलजी लूणियाके यहाँ मैं ठहरा था। यहींपर जयन्ति उत्सवके अध्यक्ष श्री० सेठ सुगनचन्दजी लूणावत भी ठहरे थे। आप लोगोंने मुझे हर तरह आराम पहुँचानेकी कोशिश की। सुगनचन्दजी साहिब तो मुझे बड़ा भाई मानते हैं। इसलिये भी मेरी इच्छाका तथा शिष्टाचारका पूरा ख़याल रखते हैं। आपके विचार बहुत उदार तथा स्वभाव बहुत नम्र है। आप जैनजगत्‌के भी प्रेमी हैं। आशा है कि आप भविष्यमें सम्प्रदायातीत धर्म के प्रचारमें बहुत कुछ त्याग करेंगे। श्री० सेठ इन्द्रमलजी भी उत्साही और समझदार तथा श्रीमान नवयुवक हैं। उत्सव कमेटीके आप मन्त्री थे। कुछ समय बाद हैदराबादके आप अच्छे कार्यकर्त्ता होजावेंगे। श्री जवाहिरलालजी रामावतने उत्सवके कार्यमें तनतोड़ परिश्रम किया था।

आप सब लोगोंकी, श्रीमान् सेठ रघुनाथमलजी तथा अन्य बन्धुओंकी खास इच्छा थी कि मैं दो दिन और ठहरूँ तथा यहाँसे ४५ मीलपर एक जैनतीर्थ है, वहाँ के मेलेपर लेक्चर दूँ। मैं ऐसा करता भी, परन्तु पत्नीकी बीमारीकी चिन्तासे ऐसा न करसका।

आते समय मुझे १०१) रु० की भेंट की गई, परन्तु मैंने कह दिया था कि मैं अब कई वर्षसे भेंट नहीं लेता। फिरभी श्रीमान् सेठ इन्द्रमलजीके आग्रहसे मैंने यह सोच कर भेंट लेली कि जो कुछ मेरा खर्च हुआ है उसे काटकर बाक़ी रुपये जैनजगत्‌को दे दूँगा। जैनजगत्‌के दो ग्राहक भी बने। इसप्रकार मेरा आना यहाँ हरतरह सार्थक रहा।

जातिपाँति को अंतिम प्रणाम।

श्रीयुत् परमानन्दभाई मुम्बई जैनसमाजके प्रतिष्ठित नेता हैं। आप बी. ए. एल एल. बी. हैं। सत्याग्रह आन्दोलनमें भागले चुके हैं तथा गणनीय श्रीमान हैं। अभी कुछ दिन हुए आपने अपनी जातिको त्यागपत्र देदिया है। इस प्रकार आपने स्वेच्छासे जातिपाँतिको अंतिम प्रणाम कर लिया है।

दिगम्बर जैनसमाजमें तो यह आन्दोलन बहुत चल चुका है और इसको पर्याप्त सफलता भी मिल रही है। अनेक जातियोंने तो सामूहिकरूपमें दूसरी जातियोंसे सम्बन्ध स्थापित करके जातिबंधनको तोड़ डाला है। इसके अतिरिक्त प्रायः प्रत्येक प्रसिद्ध जातिमें अन्तर्जातीय विवाह हो चुके हैं। परन्तु, श्वेताम्बर समाजमें सुधारकोंकी पर्याप्त संख्या होनेपर भी इस दिशामें बहुत कम काम हुआ है। श्वेताम्बर सुधारकोंकी सारी शक्ति दीक्षा प्रकरण आदिके बहुत छोटे छोटे सुधारोंमें लगी हुई है ऐसे समयमें श्रीयुत् परमानन्दभाई सरीखे महान् व्यक्तित्व वाले महानुभावका जातिपाँतिको अंतिम प्रणाम करना आश्चर्यजनक होनेके साथ अत्यन्त श्लाघनीय है।

जातिपाँतिके इस पचड़ेने जहाँ हमारी वैवाहिक समस्याओंको जटिल बना दिया है और पारस्परिक प्रेम को रोका है, वहाँ धर्मप्रचारमें भी बड़ीभारी बाधा डाली है। इस प्रकार जैनधर्मका गलाघोंट दिया है। हम जितनी जल्दी इन बन्धनोंको तोड़ें उतनाही अच्छा है। श्रीयुत परमानन्दभाई सरीखे विद्वान, श्रीमान्, सुधारक से ऐसी आशा की जासकती थी और वह आशा पूरी हुई। हम इस सत्साहसके लिये आपको बधाई देते हैं।

आपके इस कार्यका श्वेताम्बर समाज भी अनुमोदन कर रहा है। ता० १-४-३४ के "तरुण जैन" ने इस बात पर अग्रलेख लिखकर आपके इसकार्यका खूब समर्थन किया है। हम आशा करते हैं कि श्वेताम्बर समाजके अनेक युवकसंघ इस कार्यमें सक्रिय भाग लेंगे।

स्वतन्त्रताके मार्गमें।

भाई परमानंददासजीने तो जातिपाँतिको अंतिम प्रणाम करके स्वतन्त्रताको प्राप्त कर लिया है; परन्तु गुजरातमें जातियोंके भीतर भी घोड़ होते हैं, तथा एक ही जातिमें परस्पर सम्बन्ध करनेमें अनेक बाधाएँ होती हैं। अमुक शहरकी कन्या अमुक शहरमें ही जासकती है, इसीप्रकार अमुक प्रान्तकी कन्या अमुक प्रान्तमें ही जासकती है, और ये बन्धन इतने कठोर हैं कि इनको तोड़नेसे जातिसे बहिष्कृत होना पड़ता है। ऐसे लोगोंमें अन्तर्जातीय विवाहकी तो शायद कल्पना भी न होसकेगी। परन्तु प्रसन्नताकी बात है कि इधरभी अब धीरेधीरे बन्धन टूटने लगे हैं, और लोग स्वतन्त्रताके मार्गमें जाने लगे हैं। अभी गोंडल काठियावाड़ निवासी श्रीयुत रसिकलाल महेताका विवाह सूरतके श्रीमान सेठ चुन्नीलाल पार्वतीशंकरकी पुत्री कु० प्रभावती बहेनके साथ हुआ है। सेठ चुन्नीलालजी बहुत प्रतिष्ठित और दानवीर श्रीमान् हैं। आपने लाखों रुपये दान किये हैं।

एक दूसरा विवाह बम्बईमें दस्सा बीसामें हुआ है। मुम्बई जैनसमाजके नेता श्रीमान् मोहनलाल भगवानदासजी जवेरी सॉलीसीटरका विवाह जामनगरकी कुमारी लाभकुँवरिके साथ हुआ है। वर महोदय दस्सा श्रीमाली हैं और कन्या बीसा श्रीमाली है। यद्यपि ये अन्तर्जातीय विवाहतो नहीं कहे जासकते फिरभी इन विवाहोंमें जाति के भीतरी बन्धन तोड़े गये हैं। वर महाशय श्वेताम्बर जैन कान्फ़रेंसके जनरल सैक्रेटरी हैं, और कान्फरेंसके मुखपत्र जैनयुगने ऐसे विवाहोंका अनुमोदन किया है। इससे मालूम होता है कि श्वेताम्बर जैनसमाज इस मार्ग में बहुत कुछ शीघ्रतासे आगे बढ़ेगा।

पुरस्कार।

अन्तर्जातीय विवाह जैनधर्मकी सभी दृष्टियोंसे युक्तियुक्त है, परन्तु जैनियोंके कुछ पण्डितोंकी धींगाधींगी और कुछ लोगोंकी स्वार्थपरतासे अभीतक यह जैनियोंमें आमरिवाज नहीं हो पाया है। यत्रतत्र ये लोगोंको इस विषयमें पथभ्रष्ट करतेही रहते हैं। बेचारी भोलीजनता इन लोगोंके बड़े बड़े नामोंके धोखे में पड़ ही जाती है।

ऐसी दशामें एक 'अन्तर्जातीयविवाह मीमांसा' नामक पुस्तककी आवश्यकता है, जिससे जनतामें फैलाया हुआ भ्रम दूर होसके। इसलिए यह पंचायत विद्वानोंसे प्रार्थना करती है कि कृपाकर वे एक ट्रैक्ट लिखकर आषाढ़ मासके अन्त तक हमारे पास भेज देवें जिसमें धार्मिक, सामाजिक, ऐतिहासिक और प्राकृतिक सभी दृष्टियोंसे विवेचन हो और साथही पौराणिक और ऐतिहासिक बहुसंख्यक उदाहरण भी होने चाहिए।

जिसका लेख सर्वोत्तम होगा उन्हें सादर ५१) भेंट या पुरस्कारस्वरूप दिये जाँयगे। लेखको प्रकाशित करनेका अधिकार हमारी पंचायतको होगा।

विनीत—कस्तूरचन्द गंगवाल,
मन्त्री—कलकत्ता खण्डेलवाल सरावगी पंचायत
१९५। १ हैरिसनरोड, कलकत्ता।

साम्प्रदायिकता का दिग्दर्शन।

(५)

(लेखक—श्रीमान् पं० सुखलालजी।)

(अनुवादक—श्रीमान् बा० जगदीशचन्द्रजी ऐम० ए०)

नाटक साहित्यकी रचना दो प्रकारकी है। पहली रचनामें रचयिताका मुख्य हेतु अपने संप्रदायके सिवाय दूसरे विरोधी संप्रदायोंके प्रति मतांधतापूर्वक आक्षेप करनेका है। दूसरी रचनामें यह हेतु मुख्य नहीं है। इस रचनामें किसीभी संप्रदायकी रूढ़िगत अतिशयताको लेकर उसके निमित्तरूप हास्यरस उत्पन्न करनेका अथवा किसीभी सम्प्रदायके धर्मगुरु को अमुक पात्ररूपमें चित्रित कर कोई नाटकीय वस्तु सिद्ध करनेका मुख्य प्रयत्न रहता है। पहली रचनाका उदाहरण प्रबोधचंद्रोदय है। दूसरी रचनाके उदाहरण चतुर्भाणी, मृच्छकटिक, मुद्राराक्षस, मत्तविलास प्रहसन* लटकमेलक आदि नाटक और प्रहसन हैं।

प्रबोधचन्द्रोदय के रचयिता वैष्णव होनेसे उन्होंने वैष्णवधर्मके अतिरिक्त संपूर्ण धर्मोंको तामस अथवा राजस चित्रित करनेका और वैष्णव सिद्धान्तको सात्विक तथा सर्वोत्कृष्ट बतानेका प्रयत्न किया है। इस प्रयत्नमें उन्होंने जैन, बौद्ध, पाशुपत आदि सम्प्रदायोंको यथाशक्य बीभत्स रीतिसे वर्णन करनेका प्रयास किया है। इसे ठीक तरहसे समझनेके लिये संपूर्ण प्रबोधचन्द्रोदय नाटक पढ़ना चाहिये। यहाँतो केवल मतांधताके मुद्दोंको समझने में उपयोगी बनानेके लिये, तीसरे अंकके अमुक भागका अनुवाद किया गया है। यह अनुवाद पढ़नेसे प्रबोधचंद्रोदयके रचयिताका सांप्रदायिक अभिनिवेश स्पष्टरूपसे ध्यानमें आसकेगा॥ वैदिक दर्शनसाहित्यमेंसे मतांधताके नमूने दिखलानेके लिये यहाँ केवल तीन ग्रन्थोंमेंसे उद्धरण लिये गये हैं। पहला ग्रंथ तन्त्रवार्तिक, दूसरा शांकरभाष्य और तीसरा सांख्यतत्वकौमुदी। तन्त्रवार्तिक, जैमिनीय सूत्रके ऊपर शाबर भाष्यकी, प्रसिद्ध विद्वान् कुमारिल कृत टीकाका एक भाग है। शांकरभाष्य, अद्वैतवेदान्तके प्रतिभासंपन्न सूत्रधार आदि शंकराचार्यकी बादरायण सूत्रोंके ऊपर व्याख्या है, तथा सांख्यतत्व कौमुदी, ईश्वरकृष्णकृत सांख्यकारिकाके ऊपर वाचस्पति मिश्रकी व्याख्या है। कुमारिलने वैदिक कर्मकाण्डके विरोधी प्रत्येक संप्रदाय (चाहे वह वेद विरोधी हो या अविरोधी) के प्रति उग्ररोष प्रगट करके उन संप्रदायोंको यज्ञीय हिंसा स्वीकार न करनेके कारणही अप्रामाणिक बतानेकी चेष्टाकी है। तथा बौद्धधर्मके प्रवर्तक गौतमके विषयमें तो यहाँतक कहागया है कि उसने क्षत्रिय होनेपर भी उपदेश देनेका और भिक्षा माँगनेका ब्राह्मणकृत्य स्वीकार किया है, इसलिये ऐसे स्वधर्मत्यागीके साँचेपनेमें विश्वासही कैसे किया जासकता है?

कुमारिलकी तरह शंकराचार्यभी गौतमबुद्धके ऊपर एक आरोप लगाते हैं। वह आरोप प्रजाद्वेषका है। उनका कथन है कि बुद्धके धर्ममें संपूर्ण प्रजाको प्रतिकूल मार्गमें प्रेरित करनेका दुर्हेतुथा। अलग अलग बारह दर्शनोंके ऊपर टीका लिखकर ख्याति प्राप्त करनेवाले तथा दार्शनिक विचार और भाषापर असाधारण अधिकार रखनेवाले वाचस्पति मिश्र वेद

* लगभग १४ वीं शताब्दिमें होनेवाले श्री शृंगभूपालकृत रसार्णव सुधाकरके प्रहसनविषयक प्रकरण देखने चाहियें। इसमें प्रहसनोंका प्रकार और लक्षण वर्णन करते समय जो उदाहरण पसंद करके दिये गयेहैं, उन्हें देखनेसे दूसरी प्रकारकी रचनाके ऊपर बनाये हुए हेतु स्पष्टरूपसे ध्यानमें आसकेंगे। इसके लिये देखो रसार्णवसुधाकर पृ० २६० से आगे।

॥ देखो परिशिष्ट २।

के सिवाय सभी आगमोंको मिथ्या आगम कहते हैं। इस कथनकी पुष्टिमें वे एक यह दलील भी देतेहैं कि म्लेच्छ वगैरह किसी किसी ने ही तथा पशु की तरह नीच पुरुषोंने ही वेद-भिन्न आगमोंको स्वीकार किया है, इसलिये वे आगम मिथ्या आगम हैं *।

ऊपर जो तीन प्रकारके वैदिक साहित्यसे मतांधताविषयक नमूनोंका संक्षिप्त परिचय दियागया है, उसको सविशेष और स्पष्ट समझनेके लिये प्रत्येक स्थलसे उन उन भागोंका भावात्मक संक्षिप्त सार अथवा अनुवाद नीचे दिया जाता है।

लेखके अंतमें इन उद्धरणोंकी समालोचना करना बाक़ी रखकर, प्रत्येक प्रमाणको ध्यान पूर्वक पढ़कर उनके औचित्य अनौचित्यके संबंध में स्वयं विचार करनेके लिये हम पाठकोंका ध्यान आकर्षित करते हैं।

(पुराण विषयक) परिशिष्ट १—विष्णुपुराण।

'नग्न किसे कहना चाहिये'—मैत्रेयके इस प्रश्नका उत्तर देते हुए पराशर कहते हैं कि जो वेदको नहीं मानता, वह नग्न है। नग्नके स्वरूपके संबन्धमें विशेष खुलासा करनेके लिये पराशर एक स्वयं सुनी हुई बातको मैत्रेयको सुनाते हैं। वह इस प्रकार है:-पहले देव और असुरों में युद्ध हुआ। इस युद्धमें वैदिककर्ममें रत असुरोंने देवोंको हराया। हारे हुए देवोंने विष्णुके पास जाकर उसकी स्तुतिकी। विष्णु भगवानने प्रसन्न होकर अपने शरीरमें से एक मायामोहपुरुष उत्पन्न करके देवोंको सहायता के लिये सौंपा। यह मायामोह देवोंके साथ असुरोंके तपस्याके स्थान नर्मदा तटपर आया। वहाँ इसने सिर मुँडाकर, नग्नरूप धारण करके, हाथमें मयूरपिच्छ लेकर, तपस्या करते हुए असुरोंको उपदेश देना शुरू किया। उसने असुरोंको संबोधन करके कहा—"यदि तुम पारलौकिक फलकी इच्छासे तप करतेहो तो मैं कहता हूँ कि यही मार्ग योग्य है, और तुम्हीं उसके अधिकारी हो"। यह कहकर उसने असुरों को वेदमार्गसे भ्रष्ट किया और संशयात्मक स्याद्वादका उपदेश दिया। मायामोह द्वारा उपदिष्ट नये धर्मके प्राप्त करने योग्य (अर्ह) होनेसे अपने धर्मसे भ्रष्ट ये असुर आर्हत कहे जाने लगे। एकसे दूसरा और दूसरेसे तीसरा, इस क्रमसे अनेक असुर अपने धर्मको छोड़कर नये आर्हतमतमें आये। इसके बाद मायामोहने लाल कपड़े पहनकर आँखमें अंजन डालकर दूसरे असुरोंको मधुर उपदेश दिया। उसने कहा—'महानुभावो! तुम याज्ञिक पशुहिंसा छोड़ो। इससे स्वर्ग नहीं मिलता। सम्पूर्ण जगत् विज्ञानमय है और दुखके प्रवाहमें डूबा हुआ है'। इस उपदेशसे क्रमसे अनेक दैत्योंने अपने धर्मको छोड़कर नये मार्गका अवलम्बन किया। इसके बाद मायामोहने नये नये स्वांग रचकर अनेक तरहके उपदेशोंसे दूसरेभी दानवोंको वेदसे विमुख किया। वेदसे भ्रष्ट होकर इन असुरोंने वेद, देव, यज्ञ, और ब्राह्मणोंकी निंदा करना शुरू कर दिया और वे कहने लगे कि-'यज्ञसे स्वर्ग नहीं मिलता, जिसमें हिंसा है वह कर्म धर्म नहीं हो सकता, अग्निमें घी होम करनेसे स्वर्ग मिलता है, यह कथन एक बालककी तरह है। अनेक यज्ञ करके इंद्रपद को प्राप्त करनेके बाद यदि समिध काष्ठ वगैरह खानाहो तो पशु होकर हरा हरा घास चरना ही सबसे श्रेष्ठ है। यदि यज्ञमें होम किये जानेवाले पशु स्वर्गमें जातेहैं तो स्वर्ग प्राप्त कराने के वास्ते अपने मा बापका क्यों होम न किया जाय? श्राद्धमें यदि एकको (ब्राह्मण को) जिमानेसे दूसरे (पितर) की तृप्ति होतीहो तो परदेश जाते समय कलेवा

* देखो परिशिष्ट ३।

(पाथेय) लेनेकी क्या आवश्यकता है ? एक आदमी घर बैठकर जीमे और वह प्रवासी (मुसाफिरीमें जाने वाला) को कैसे पहुँच सकता है ?' ऐसी ऐसी निन्दाएँ करनेसे जब सब असुर कुपथगामी होगये, उस समय उन्हें अपने धर्मसे भ्रष्ट देखकर देवोंने तैयारीपूर्वक फिरसे युद्ध किया। इस युद्धमें पहले वेदधर्म रूप कवचके बिना असुरलोग नाशको प्राप्त हुए। पराशर ऋषि मैत्रेयको कहते हैं-कि 'उस समयसे मायामोहके इस उपदेशको माननेवाले नग्न कहे जाते हैं; तथा इन पाखंडियोंका स्पर्श हो जायतो वस्त्रसहित स्नान करना चाहिये। वेद यज्ञ, देव, ऋषि और ब्राह्मणका आदर न करनेवाले पाखंडियोंके साथ कुशल प्रश्न अथवा वार्तालाप तक न करना योग्य है। उनका संसर्ग सर्वांशमें त्याज्य है। ये नग्न इतने अधिक पापी हैं कि यदि कोई श्रद्धावान श्राद्ध करताहो और उस ओर इन नंगोंकी नज़र पड़जायतो उस श्राद्धसे पितरोंकी तृप्ति नहीं होती।'

पाखंडियोंके साथ केवल संभाषण करनेसे क्या अनिष्ट होता है, इसे समझानेके लिये पराशर मैत्रेयको एक स्वयं सुने हुए प्राचीन आख्यान को कहते हैं। वह आख्यान इस प्रकार है:—

शतधनु राजा और शैव्यानामक उसकी पत्नी दोनों वेदमार्गमें रत थे। एक समय गंगा स्नान करनेके बाद राजाने अपने शिक्षागुरुके मित्र एक पाखंडीके साथ केवल अपने गुरुकी विद्वत्ता बतानेके वास्ते संभाषण किया। इसी कारण मरनेके बाद वह राजा कुत्तेकी योनिमें उत्पन्न हुआ, तथा शैव्या मौन रहनेके कारण मरनेके बाद काशी राजाकी पुत्री हुई। वह बेचारी पतिव्रता होनेके कारण अपने पतिकी दुर्दशा को ज्ञानदृष्टिसे देखकर कुंवारी रही। राजा, सियाल, भेड़िया आदि अनेक नीच योनियोंमें भटकता हुआ अन्तमें मोर योनिमें आया। यहाँसे वह जनक राजाके अवभृथ स्नान (यज्ञके अन्तमें यज्ञकी समाप्तिसूचक स्नान) से पापमुक्त होकर जनकका पुत्र हुआ। इसके बाद इसने काशीराजाकी पुत्रीसे परिणयन किया। केवल गुरुकी विद्वत्ता बतानेके वास्ते संभाषण करनेसे शतधनु इस प्रकार नीच योनिमें पड़ा, तथा पाखंडीके साथ बात करनेमें मौन रहनेके कारण शैव्या राजाकी पुत्री हुई। वेदनिन्दक पाखंडियोंका विशेष परिचयतो दूर रहा, परन्तु इनके साथ संभाषण हुआ हो तो तज्जन्य पापनिवारणके लिये सूर्यदर्शन करना चाहिये। (बंगाली आवृत्ति अंश ३ अ० १७-१८)।

धर्म अथवा मत।

(ले०-श्री० जवाहिरलालजी जैन ऐम.ए. विशारद जयपुर)

जन्म और मृत्युके आश्चर्यजनक चक्र तथा इस सृष्टि के रहस्यको समझनेकी इच्छा मनुष्यके स्वभावमें अन्तर्हित है। मनुष्य अपने चारों ओर आश्चर्यान्वित हो देखता रहा है। प्राणधारी जन्म लेता है और मृत्युको प्राप्त होता है, इस विश्वका सुचारूरूप से संचालन होता है, इन सर्वकालिक तथा सर्वदेशी सत्योंके कारण की खोज सदा से होती आई है और अपनी अपनी समझके अनुसार प्रत्येक देशविशेष तथा समयविशेषमें उत्पन्न होनेवाले असाधारण बुद्धिमान् मनुष्योंने इन प्रश्नोंपर विचार किया है, तथा उत्तर दिया है। इस विचारधाराका ही नाम दर्शन है।

मनुष्य अपने देश तथा समयका प्रतिनिधि होता है। देशकी विचार-सम्पत्ति तथा संस्कृतिका और समयके बंधनोंका प्रभाव मनुष्य पर पड़े बिना नहीं रह सकता। देश तथा समयके प्रतिबन्ध इतने कठिन होते हैं कि शायदही कोई मनुष्य इनसे अपने आपको बचा सकता है।

इन कारणोंसे प्रत्येक देशकी विचारधारापर उक्त देश तथा समयका प्रभाव स्पष्टरूप से ज़ाहिर होता है। बौद्ध और जैनधर्मके अन्तर्गत अहिंसाका यह प्रबल प्रतिपादन आजसे २५०० वर्ष पहलेके भारतवर्षकी उस सामाजिक अवस्थाकी ओर संकेत करता है, जब ब्राह्मणों

के द्वारा की गई यज्ञकी हिंसा चरमसीमा पर पहुँच गई थी। इस्लाममें दीक्षित लोगोंमें अद्भुत भ्रातृत्वका भाव तथा धर्ममें अन्धविश्वास मुहम्मदके ज़मानेके अरबिस्तान की सामाजिक दशाको बतलाता है, जब अरबके लोगोंमें फूट और बदलेकी भावना इतनी प्रबलथी कि अगर एक वंशके मनुष्य द्वारा दूसरे वंशका कोई मनुष्य मारडाला जाता था तो खूनके बदले खूनका सिद्धान्त १०-१० पीढ़ियों तक चलता जाता था और उन दोनों वंशोंका सर्वनाश करके ही छोड़ता था। इस्लामकी धार्मिक पुस्तकोंमें वर्णित 'स्वर्ग' में छुहारेके बड़े बड़े पेड़ोंका होना इस सत्यको पुष्ट करता है कि धर्मपर उसके उत्पादक देशका कितना प्रभाव पड़ता है। हिन्दुओंके स्वर्गमें मंदाकिनी तथा नंदनकाननकी कल्पना उनके गङ्गा तटके हरेभरे मैदानोंके निवासकी ओर सङ्केत करती है। इस प्रकारसे प्रत्येक धर्मपर किसी देशविशेष तथा समय-विशेषकी अमिट छाप है।

जिन महान् आत्माओंने धर्मका प्रतिपादन किया है उनकी प्रबल-भावना यही रही है कि देशमें सुख तथा शान्ति फैले, लोग स्वयं आनन्दसे रहें तथा दूसरोंको रहने दें। निर्बल बलवानों द्वारा पीड़ित न किये जाँय। समान बलवाले आपसमें लड़कर नष्ट न हो जाँय। इस जीवनको लोग शान्तिपूर्वक व्यतीत करें। उक्त भावनासे प्रेरित होकर प्रत्येक धर्ममें नैतिक आचरणके नियम बनाए गए हैं, जो धर्मका मुख्य लक्ष्य है। 'समाजमें व्यवस्था करना' Live and let live का सिद्धान्त प्रत्येक धर्मका उद्देश्य रहा है। झूँठ न बोलना, चोरी न करना, और पर-स्त्रीगमन न करना, इस प्रकारकी शिक्षाएँ प्रत्येक धर्मने दी हैं और झूँठ बोलने आदिको पाप ठहराया है। ये पाप हों चाहे न हों, यह प्रश्न गौण है। पर यदि मनुष्य एक दूसरे की चीज़ोंको बिना विचारे उठा लेजाया करें, एक दूसरेकी स्त्रियोंका विचार न करें, और कहें कुछ और करें उसके विरुद्ध तो समाजमें कैसी अव्यवस्था और गड़बड़ी फैल जायगी इसके विचारमात्रसे ही हृदय काँप उठता है। अतः यह स्पष्ट है कि धर्मका मूल सामाजिक व्यवस्था और शान्ति है। स्वर्ग और नरककी कल्पनाएँ जिन धर्मोंमें की गई हैं उनका मूल उद्देश्य यही है कि लोग बुरे कामोंसे, जिनसे समाजमें अव्यवस्था फैलनेका डर है, बचें और अपनी तथा दूसरोंकी शान्ति क़ायम रहे, ऐसे मार्गपर चलें। जिन धर्मोंमें पुनर्जन्म नहीं माना गया उनका यह कथन है कि केवल यही जीवन मनुष्य के पास है, जो भलाई उसे करनी है करले, बुरे कामसे बचे, पीछे कुछ नहीं है। इस प्रकार विरोधी सिद्धान्तों की भिन्न भिन्न धर्मोंमें मान्यता होनेपर भी उद्देश्य वही एक है—समाजकी सामूहिक तथा व्यक्तिगत सुख शान्तिमें बाधा न पड़ना। अतः इन बातोंपर झगड़ना कि उक्त सिद्धांत ही सत्य है, और उक्त नहीं, अपनी अज्ञानताका परिचय देना है और मुख्यतः एक जैनके लिये तो यह बड़ीही लज्जाकी बात है। क्यों?

जैनधर्म एक ऐसी विचारधारा है जो संसारके प्रश्नों और नैतिक आचरणपर स्वतंत्र दृष्टिकोण प्रकट करते हुए भी संसारके विभिन्न दृष्टिकोणोंका समन्वय करनेकी रीति बतलाती है। यह नयवाद अथवा स्याद्वादका सिद्धान्त जैनधर्मकी अमूल्य भेंट है जो इसने संसारको प्रदान की है। यह स्याद्वादका सिद्धान्त मनुष्यके ज्ञानभण्डारमें एक अतुलनीयनिधि है जिसके मूल्यका अनुमान मनुष्यकी बुद्धिसे परे है।

प्रत्येक धर्मके आरम्भमें विशुद्ध विचारधारा होती है जो चारों ओरके दूषित तथा घृणित वातावरणके मलको दूर करनेके लिएही प्रस्फुटित होती है। पर, संसारकी विचित्रताओंमें से एक यहभी है कि जिस बुराईको दूर करनेके लिये किसी धर्म विशेषकी उत्पत्ति होती है, समय पाकर वही बुराई उस धर्ममें भी प्रविष्ट होकर उसे विकृत कर देती है। अन्य धर्मोंमें ऐसा हो तो कोई विशेषता नहीं क्योंकि उनमें तो ऐसा होना प्राकृतिक ही है। नदी का जल स्रोतके पास कितना पवित्र तथा उत्तम होता है पर ज्यों ज्यों नदी आगे बढ़ती है, आसपासकी मिट्टी उसमें मिलती जाती है और उसे मलिन करती जाती है, पर जिस नदीके आसपास की मिट्टीको हमेशा यंत्रोंसे निकाल देनेका प्रयत्न होता रहा है उसके जलका मलिन होजाना अधिक आश्चर्यजनक है। इसका उत्तर केवल यही है कि जैनधर्म केवल जैनधर्म नहीं रहा है, यह जैनमत होगया है और इस मतके आडम्बरने जैनधर्मके धर्मत्वको बहुत कुछ छिपा दिया है।

कर्मकाण्ड और पुराणके आडम्बरने ही धर्मको मतमें परिवर्तन कर दिया है। इसके कारण संसारमें जो अत्याचार और पाप हुए हैं उनका वर्णन करना असंभव है। धर्मके

नामपर जितना निर्दोषरक्त संसारमें बहाया गया है, उसका अनुमान कल्पनासे परे है। जैनधर्ममें भी यह विकार आया है और पूर्ण रूपसे आया है। मतकी मरीचिकाने–पुराण और क्रियाकाण्डके जालने-धर्मको विकृत कर दिया। दिगम्बर, श्वेताम्बर, तेरापंथी और ढूँढिया इस सर्वनाशिनी विकृतिके ही रूप हैं। इस मत अथवा संप्रदायकी बुद्धि ने लोगोंका ध्यान मनुष्य जीवनके चरमध्येय—स्वकल्याण तथा परोपकारसे हटा दिया और लोगोंकी प्रवृत्ति इस ओर बढ़ी कि हमारा धर्मही संसारमें सबसे पुराना है, और इस प्रवृत्तिको शांत करनेके लिए पुराणोंके अतिरंजित वर्णन तैयार किए गए। हमारा धर्मही सर्वश्रेष्ठ है, इस धर्मके माननेवाले ही स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं, और अन्य सब धर्मवाले अवश्यमेव नर्कमेंही जायँगे–इस प्रकारकी मलिन मनोवृत्ति विचारशक्तिकी पतितावस्थाकी ओर संकेत करती है। स्वर्ग १६ हैं, २२ हैं, ७ हैं या १ है? इनकी रचना वैसी है जैसी दिगम्बरोंने, श्वेताम्बरोंने, हिन्दुओंने या ईसाइयोंने की है? जैनियोंने मोक्षका एक प्रकारका वर्णन किया है, हिन्दुओंने बैकुण्ठका दूसरे प्रकारसे, मुसलमानोंने बहिश्तका तीसरे प्रकारसे और धर्मवालों ने और और प्रकारोंसे। इन विभिन्न वर्णनोंके विचार करनेसे तो दोही बातें निकलती हैं कि या तो ये सब स्वर्ग भिन्न भिन्न स्थानों पर स्थित हैं, जहाँ हिन्दुओं के स्वर्गमें ब्रह्मा-विष्णु आदि हैं, मुसलमानोंके स्वर्गमें अल्लामियाँ तशरीफ़ रखते हैं और ईसाइयोंके स्वर्गमें ईसामसीह और उनके पिता God महोदय विराजमान हैं; अथवा ये सब केवल कल्पनामात्र हैं। मृत्युके पश्चात् कुछ स्थिति है अवश्य, लेकिन वह क्या है, इसका ठीक ठीक ज्ञान अभीतक नहीं है। हाँ, उसके अस्तित्वमें सन्देह नहीं। अगर पहली बात ठीक मानी जाय तो यहभी मानना पड़ेगा कि मान लीजिए आज कोई नया धर्म निकलता है, वह स्वर्ग मोक्ष आदिका वर्णन औरही नवीन प्रकारसे करता है तो अवश्यही इस विश्वमें उस धर्मके अनुसार वर्णित स्वर्ग-मोक्षकी भी सृष्टि होगी और उसके अधिष्ठाता ईश्वर आदिकी भी–जो हास्यास्पद है। अतः यह मान लेना अनुचित न होगा कि सभी धर्मोंके पौराणिक वर्णन कल्पनाएँ हैं, इनका उद्देश्य मनुष्योंको ऐसे मार्गपर लगाना है जिससे समाजकी सुव्यवस्था न बिगड़े। इनका असर उन्हीं मनुष्योंपर होता है, जिनपर परम्परा और अन्धविश्वासने ऐसा परदा डाल दिया है कि उनकी स्वतंत्र बुद्धि बिलकुलही कुंठित होगई है।

यहतो हुई पुराणोंकी बात। यही बात क्रिया-काण्डों की है। सामायिक पूर्वाभिमुख होकरही करना चाहिए, नमाज़ मक्काकी ओर मुख करकेही पढ़ना योग्य है, मुनिके लिए खास तरहके खास नापके और खास शक्लके उपकरण होनाही योग्य है। पूजाके लिये किसी विशेष प्रकारसे ही खड़ा होना चाहिए, विशेष प्रकारसे ही बोलना उचित है, भगवान् को एक निश्चित रूपसे ही प्रणाम करना चाहिए इत्यादि बाह्य बातोंने इतना सर्वग्रासी रूप धारण कर लिया है कि इनकी मूलभावनाही नष्ट होगई है। धर्मके शरीरको सुन्दर बनानेके लिए उसपर इतने आभूषण लादेगये हैं कि मारे बोझ और बंधनके धर्मका गला घुट गया है और धर्मकी आत्माका पता लगाना भी मुश्किल होगया है। और अबभी लोग इस मृतप्राय शरीरपर प्रभावनाके नाम पर नये नये शृङ्गार करतेही जाते हैं। जैनधर्म आत्माका धर्म है। मूर्ति केवल इसीलिए है कि इसकी ध्यानमुद्रासे हमारा भी ध्यान संसारकी कुभावनाओं से हटकर स्वकल्याण तथा परोपकारकी ओर लगे। पर अब प्रयत्न क्या होता है? मंदिरोंकी संख्या, पहिलेही आवश्यकतासे कहीं अधिक होने पर भी, बढ़ाई ही जाती है। मूर्ति वीतराग भावनाकी प्रकाशक होनी चाहिए, पर मूर्ति बनाते हैं चाँदी सोने और जवाहिरातकी; और जितने अधिक मूल्यकी प्रतिमा होती है, उतनेही उसके दर्शनसे अपनेको कृतकृत्य मानते हैं। यह बाह्याडम्बर और कर्मकाण्डकी ओर प्रवृत्तिही धर्मका विकार है। पुराण और कर्मकाण्डके आवरणके भीतर जो जैनधर्म का सत्यस्वरूप छिपा है, उसमें श्वेताम्बर—दिगम्बरका भेद नहीं है, मूर्तिकी पूजा करने न करनेका विवाद नहीं है, उसमें साम्प्रदायिकताका विष नहीं है। उसमें संसारके उन गम्भीर प्रश्नोंका जिनकी ओर मैंने आरम्भमें निर्देश किया है, समुचित उत्तर है। समाज और मनुष्यके ऐसे नैतिक आचरणका जिससे सामूहिक तथा व्यक्तिगत सुखशांति और उन्नति सुरक्षित रहे, वर्णन है। वही धर्म स्वपरकल्याणकारी है। आजकल जो साम्प्रदायिकताके विषसेपूर्ण तथा सदियोंके पौराणिक और कर्मकाण्डीय आडम्बरसे युक्त मत, जो आज धर्मके पवित्र नामसे संबोधित किया जारहा है, युवकोंकी इस नवीन पीढ़ीके

उपयुक्त नहीं है, जिनमें विचारपूर्ण विवेचनकी शक्ति साम्प्रदायिकताके भारसे अभी कुचल नहीं गई है, जो ज्ञानकी प्रगतिमें औरोंसे पीछे नहीं रहना चाहते जिनके मस्तिष्कमें बल है और हृदयमें महत्त्वाकांक्षाकी भावना। नयवादकी अमोघ शक्तिके सामने कोई विरोध नहीं ठहर सकता। भगवान महावीरके पवित्रजन्मदिवसपर इससे अच्छी भावना क्या होसकती है कि हमलोग जैन धर्मके पावन स्वरूपको समझें; और यह तभी संभव है जब हम 'मत' की कालिमाको पहले धोकर बहादें।
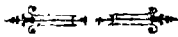
विरोधी मित्रोंसे।

(१६)

आक्षेप ४२—महावीरने दिगम्बरवेष क्यों चलाया, इसके उत्तरमें गौतमने जो उत्तर दिये हैं, उससे साफ़ मालूम होता है कि यह संवाद कल्पित है। इसमें अन्य तीर्थङ्करोंको सवस्त्र सिद्ध किया गया है, दर्शनके पहिले ज्ञान लिखकर श्वेताम्बर मान्यता का समर्थन किया गया है। सम्यक शब्द न लगाकर संशयादिसे भी मोक्ष होता है, यह भी शायद स्याद्वाद का नमूना है। महावीरतो प्रारम्भसे ही दिगम्बर रहे थे, फिर केवलज्ञानकी दुहाई क्यों?

समाधान—पक्षपातका आरोप करते समय अपनी परिस्थितिको न भूलना चाहिये। अगर किसी वक्तव्यसे श्वेताम्बरमतका समर्थन होता है इसलिये वह पक्षपात पूर्ण कहा जाय, तो जिससे दिगम्बरमत का समर्थन होता है ऐसे दिगम्बरोंके भी सब शास्त्र पक्षपातपूर्ण कहलायेंगे। बल्कि श्वेताम्बरोंको इस विषयमें पक्षही करना होता तो वे महावीरको ही वस्त्रधारी लिख देते। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान दोनों साथ होते हैं, इसलिये किसीको भी पहिले कहा जाय इसमें हानि क्या है? अपेक्षाभेद से दोनों पाठ ठीक हैं। श्वेताम्बर सम्प्रदायमें दोनों क्रम मिलते हैं। कहीं कहीं सम्यग्दर्शनको सम्यग्ज्ञानके अन्तर्गत कर लिया जाता है, इसलिये दोनोंका ही नाम लिया जाता है। इस विषयको साम्प्रदायिक मतभेद समझना भूल है विद्यार्थियोंको समझानेके लिये सम्यक शब्दका प्रयोग आवश्यक है, परन्तु साधारण बोलचालमें वह बिना कहे ही समझ लिया जाता है। 'चारित्ररथ चढ़ भये दूलह' आदिमें चारित्रका अर्थ सम्यक्चारित्र है न कि मिथ्याचारित्र। अमुक मनुष्य ज्ञानी है, चारित्रवान है, आदिमें सम्यक शब्दके बिना भी सम्यक लिया जाता है। महावीर प्रारम्भ से दिगम्बर अवश्य थे, परन्तु उस समयका उनका वेष प्रामाणिक नहीं था क्योंकि वह साधक अवस्था का था। महावीरने साधक अवस्थाके अनेक नियमों को बदल डालाथा। वेषका चलाना तभी कहला सकता था जब वे केवली होगये थे। और कौन किसवेषको धारण करे, यह बात तो वे केवली होनेपर ही निर्णय कर सकते थे। तभी उनने किया भी।

ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी तथा बाबू कामताप्रसादजी को उत्तर देते हुए वेषके विषयमें बहुत कुछ लिखा गया है, इसलिये यहां पिष्टपेषण करनेकी जरूरत नहीं है। जो मनुष्य वेषके अवलम्बनके बिना काम चला सकता है, उसे वेषकी कोई जरूरत नहीं। ऐसे साधु पहिले भी हुए हैं। लेखमालामें आगेभी इसका विवेचन किया जायगा।

केशीगौतम संवादके विषयमें बड़ा भारी आक्षेप यह किया जाता है कि ये लोग ऐसे ऐसे साधारण प्रश्नोत्तर क्यों करतेथे? इसका समुचित उत्तर जैनजगत् वर्ष ७ अंक १३ पृष्ठ ४ और ५ में दिया गया है। इसलिये इस आक्षेपका यहाँ उत्तर नहीं दिया जाता।

केशीगौतम संवाद मतभेदके निवारणके लिये था, इसलिये जिन प्रश्नोंमें मतभेद नहीं मालूम होता उनके विषयमें इतनी खोज अवश्य करना चाहिये जिससे प्रकरण संगत होजावे। मैंने पिछले १० प्रश्नों के लिये ऐसीही खोजकी है और प्रश्नोंका वास्तविक रूप क्या होना चाहिये, यह बतलाया है। इसलिये यह शंका करना ठीक नहीं कि इन शब्दोंका यह अर्थ नहीं होता या इनसे यह बात नहीं निकलती, आदि।

आक्षेप ४३–जैनशास्त्रोंमें मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कषाय योग यह क्रम पाया जाता है न कि मिथ्यात्व कषाय और इन्द्रिय।

समाधान—क्रम अनेक हैं। कहीं पाँच कहीं चार (प्रमाद छोड़कर) कहीं तीन और कहीं सिर्फ दो (कषाययोग) मिलते हैं। संवरके निरूपण में अनेक प्रतिद्वन्द्वियोंका क्रम होना चाहिये, लेकिन न करके गुप्ति समिति धर्म अनुप्रेक्षा आदि रूपसे वर्णन किया है। जिस क्रमसे भी लोगोंको समझाया जा सके, वही अच्छा है। इसलिये मिथ्यात्व कषाय और इन्द्रियका क्रमभी ठीक है।

आक्षेप ४४–क्या पार्श्वापत्योंके पास स्त्रियाँ थीं जिससे उनके सांसारिक बन्धन बढ़गये? क्या वे अपरिग्रहमें ब्रह्मचर्य नहीं रखते थे?

समाधान–जिस प्रकार अपरिग्रह व्रतका पालन करनेपर भी मनुष्य भोजनादि करता है, उसी प्रकार स्त्रीसेवनभी क्यों न करे? इस प्रकारकी शंका केवल पार्श्वापत्योंको नहीं किन्तु अन्य श्रमणोंको भी होतीथी और अनेक शिथिल साधु ऐसा करते भी थे। यह बात इतिहास तथा सभ्यता और आचारके विकासशास्त्रका विद्यार्थी जानता है। पार्श्वापत्य चरित्रभ्रष्ट होगये हों, इसमें कोई आश्चर्य नहीं। समाजका जब अधःपतन होता है तभी तीर्थंकर होते हैं। अन्धश्रद्धावश हम पुरानेकालके हरएक व्यक्तिको दूधका धोया समझते रहें, परन्तु जैनशास्त्रों के निःपक्ष अध्ययनसे ही इसका खंडन हो सकता है। उत्थान पतनतो लगाही रहता है, इसमें शरमिन्दा होनेकी कोई बात नहीं है।

इसके आगेका एक लेखांक मेरे पास नहीं है। अगर उसमें कोई महत्त्वपूर्ण शंकाहो तो सूचना मिलने पर उसका भी उत्तर दिया जायगा।

आक्षेप ४५–क्या महावीरके पहिले मोक्षका स्थान नियत नहीं था? दोनों सम्प्रदायके आचार्य स्थान नियत मानते हैं। आप दोनोंको असत्य कहिये। मतभेद तो सदा होता है परन्तु वे सब जैनेतरही कहलाते हैं।

समाधान–मैं एकबार नहीं कईबार कह चुका हूँ कि मैं दोनों सम्प्रदायके ग्रंथोंको समालोच्य मानता हूँ। अगर दोनोंमें लिखी हुई बात न जँचे तो दोनोंको असत्य कहनेमें ज़राभी बाधा नहीं है। मतभेद होनेसे ही अगर जैनेतरता आजाय तो दिगम्बरोंके लिये श्वेताम्बर और श्वेताम्बरोंके लिये दिगम्बर जैनेतर हो जाँयगे; इतनाही नहीं किन्तु ज्ञानचर्चामें मैं दिगम्बर आचार्योंमें भी मतभेद सिद्ध कर चुका हूँ तब वे भी जैनेतर कहलाने लगेंगे।

आक्षेप ४६–यह कहना ठीक नहीं कि केशीगौतम संवाद न माना जावेगा तो पार्श्वनाथका अस्तित्व सिद्ध न होगा। अगर वर्तमानका आन्दोलन बन्द हो जाय और फिर इसकी चर्चा भी न चले तो इसका यह अर्थ नहीं है कि यह आन्दोलन हुआ ही नहीं।

समाधान–इस आक्षेपमें यह कहना चाहिये था कि अगर केशीगौतम संवाद न रहेगा तो भी क्या हुआ? अमुक प्रमाणसे पार्श्वनाथका अस्तित्व सिद्ध होगा। खैर, यदि आन्दोलनका एकभी चिन्ह बाकी न रहे तो भविष्यमें कौन कह सकेगा कि यह आन्दोलन हुआथा। मैं यह नहीं कहता कि भगवान पार्श्वनाथ नहीं हुए। मेरा कहना यह है कि केशीगौतम संवाद न माननेसे उनके अस्तित्वका सूचक कोई हेतु न रहेगा। खासकर जब सभी धर्म वाले अपनी प्राचीनताके गीत गाते हैं और सभी पुराने तीर्थंकरोंकी कल्पना करते हैं तब पार्श्वनाथभी इसी तरह कल्पित क्यों न कहे जाने लगेंगे? कोई श्रद्धा से कुछभी माने परन्तु निःपक्ष विद्वानोंके सामने श्रद्धासे और अपने सम्प्रदायके पक्षपातसे काम नहीं चल सकता।

चौबीस तीर्थंकरोंकी संख्या कैसी कृत्रिम है, इस विषयके विस्तृत विवेचन के लिये "विरोधी मित्रोंसे" शीर्षक लेखमाला के पाँचवें लेखमें

आक्षेप १५-१६-१७ देखना चाहिये। जैनजगत् वर्ष ८ अंक ३। यहाँ पिष्टपेषण नहीं किया जाता।

आक्षेप ४७-जैनधर्म जैसे प्राचीनताको महत्त्व नहीं देता वैसेही नवीनताको महत्त्व नहीं देता। संसार, कर्म आदि सर्वथा अनादि मानना जैनधर्मकी मान्यतासे बाह्य है।

समाधान-इसीलियेतो मैं कहता हूँ कि नवीनता प्राचीनताके फेरमें न पड़कर सत्यकी उपासना करना चाहिये। जैनधर्म अगर सत्य है तो भलेही वह कलका सिद्ध हो, वह उपास्य है। अगर असत्य है तो भलेही अनादि हो, वह हेय है। इसलिये अगर पार्श्वनाथसे ही जैनधर्म माना जाय तो इससे जैनधर्मके मूल्यमें कुछ कमी नहीं होती।

सर्वथा अनादिकी बात कोई नहीं कहता। अध्यायके प्रारम्भमें ही मैंने कह दिया था कि केवल जैनधर्मही नहीं, किन्तु सभी धर्म अनादि हैं। अनेकान्तकी दुहाई देते समय बहुत सतर्कतासे काम लेना चाहिये। आपकी उमर क्या है, ऐसा कोई पूछे तो उस समय यह उत्तर देनाकि मैं कथंचित् अनादि हूँ और कथंचित् क्षणिक हूँ, अनेकान्तका मजाक उड़ाना और उसे अव्यवहार्य सिद्ध करना है। उस समय हमें अमुक व्यञ्जन पर्यायकी अपेक्षा उत्तर देना चाहिये। जैनधर्म कबसे चला, इसकी खोज करते समय अनादि सादिका उत्तर अनुचित और हास्यास्पद है; क्योंकि ऐसी हालतमें खोजकी जरूरतही नहीं रहजाती। बल्कि इस दृष्टिसे जैन धर्म और दूसरे धर्मकी कोई विशेषताही नहीं बताई जा सकती।

सत्य कब पैदा हुआ? क्या सत्य नवीन है? यह कहनाभी प्रकरणको न समझना है। सत्यभी अनादि है और मिथ्या भी अनादि है; परन्तु हमारा कल्याण सत्यसे है अनादितासे नहीं। इसलिये हमें सत्यकी दुहाई देना चाहिये, न कि अनादिता की।
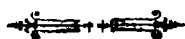
दो पत्र।

ता० ६-४-३४ को एकही साथ मुझे दो पत्र मिले। एक पत्र श्रीयुत जवाहिरलालजी जैन ऐम० ए० विशारदका था जिसमें उनने लिखा था—

"मान्यवर महोदय! आपकी क्रान्तिकारी लेखनीसे लिखी हुई 'जैनधर्मका मर्म' शीर्षक लेखमालाको मैं प्रारम्भसे ही बड़ी रुचिसे पढ़ रहा हूँ। वास्तवमें आपके लेखोंसे प्रकट है कि आपके शब्दों में ओज है। आत्मामें बल है, हृदयमें महत्त्वाकांक्षाएँ हैं और मस्तिष्कमें अध्ययनशीलता और विचार गंभीरता है। 'जैनधर्मका मर्म' पर अपने विचार आपके पास लिख भेजनेका इरादा बहुत दिनोंसे था, पर उसे बराबर स्थगित करता आरहा हूँ कि कुछ अध्ययनके पीछे लिखूँगा......"

दूसरे एक हास्यास्पद और विचित्र पत्रका नमूना देखिये—

"श्रीमान् पं० दरबारीलालजी न्यायतीर्थ सं० जैनजगत बम्बई

सप्रेम वन्दे!

निवेदन है कि मैं आपकी लेखमालाका कभी कभी अध्ययन करता रहता हूँ। मैं उन उन विषयों को केवल तर्कशक्तिकी युक्तिसे नहीं, बल्के भाव प्राबल्य धार्मिक शक्तिका ओरकी महराईसे विश्वस्त करना चाहता हूँ। एतदर्थ उत्तर आत्मसाक्षीसे पूर्ण यही ध्यान रहे......लिखनेके मुआफिक उत्तरदें। अंटसंट लिखना ठीक नहीं...... कृपया इन प्रश्नोंका उत्तर बहुत शीघ्र देवें, नहीं तो आपके प्रश्न खुली चिट्ठी नामसे सब समाचारपत्रोंमें प्रकाशित करा दिये जाँयगे। ....पंचमकालीन हवाके झकोरोंमें बहनेवाले मदोन्मत्त! सुनो! ये पाँच प्रश्न तो अभी किये हैं; इसके बाद अगर इनका उत्तर ठीक दिया तो ३ तीन प्रश्न आपसे किये जाँयगे। अगर वे भी ठीक जँचे तो एकही प्रश्नमें आपको अपनी-महावीरके उत्कृष्ट और न्यायप्रिय सिद्धान्तों

को मनचाहे प्रमाणोंसे खण्डन करनेकी–उत्साह-शक्तिको नेस्तनाबूद करना होगा। ये वाक्यही नहीं; परन्तु इनको तुम्हारे सब पंडिताईके ढकोसलों रूप प्रमदको उखाड़ फेंकनेवाली बूटी समझे; ऐसा ख्याल रहे।”

इस भाईके हृदयको कितनी चोट पहुँची है और इससे उसका शक्तिशून्य अहंकार कितना जाग्रत हुआ है, यह उसकी सभ्यताशून्य अस्तव्यस्त लेख-शैलीसे मालूम होता है। बेचारा अपने हास्यास्पद प्रश्नोंको रामबाण समझ रहा है। पाठकोंके विनोद के लिये मैं उसके प्रश्न अपने उत्तर सहित प्रकाशित करता हूँ—

१ प्रश्न—क्या आपका 'जैनधर्मका मर्म' दिमागी है या हृदयका? केवल तर्कप्राधान्य है या श्रद्धानु-यायी भी?

उत्तर—मैं दिमागको ताकमें रखकर कभी कुछ नहीं लिखता, न हार्दिक अनुभवकी उपेक्षा करता हूँ। दोनोंका समन्वय करके तर्कप्रधान लेख लिखता हूँ। उसमें श्रद्धा तो है, परन्तु अन्धश्रद्धा–तर्कविरुद्ध श्रद्धा–नहीं होती।

२ प्रश्न—जिन और आत्मा (साधारण आत्मा साधारणजीव) तथा आत्मा और आपमें कितना भेद समझते हैं और वह कैसे? आनुभविक शक्ति से या विचार वैकल्यसे?

उत्तर—आध्यात्मिक दृष्टिसे उन्नत आत्माही जिन है। मैं भी आत्मा हूँ, जो कि जिन होनेकी दिशामें धीरे धीरे बढ़नेका प्रयत्न कर रहा हूँ। यह बात मैं अनुभवसे समझता हूँ, और विचारके विविधरूपोंसे भी मैं यही बात जानता हूँ।

३ प्रश्न—सर्वज्ञ और तत्त्वज्ञ तथा तत्त्वज्ञ और आपमें कितना अन्तर है? वह कैसे? आनुभाविक ······आदिसे?

उत्तर—सर्वज्ञ और पूर्ण तत्त्वज्ञमें कुछ अन्तर नहीं है। मैं तत्त्वज्ञ हूँ, परन्तु पूर्ण नहीं। पूर्ण तत्त्व-ज्ञता सिर्फ विद्या और विचारसे नहीं आती, उसके लिये यथाख्यात संयम भी चाहिये। वह संयम मेरे पास नहीं है, इसलिये मैं अपनेको पूर्ण तत्त्वज्ञ या सर्वज्ञ नहीं मानता। यह बातभी अनुभव और विचारसे जानता हूँ।

४ प्रश्न–(क) आपके पास तत्त्वोंका मर्म समझाने के लिये आत्मिक शोध शक्ति या साक्षि क्या है?

(ख) ज्ञान और चारित्रका आपमें कौनसा अंग किस रूपमें पाया जाता है?

उत्तर—अपने विचारोंको स्याद्वादमय बनानेकी, तथा प्रत्येक बातपर विवेकपूर्वक निःपक्ष विचार करनेकी शक्ति, साक्षी, शोध मेरे पास है। यही मेरी मुख्य पूँजी है। चारित्र, बाह्याचार या ढोंगसे जुदी वस्तु है, इसलिये वह बतलाया नहीं जा सकता। सर्वभूतसमता, यथाशक्ति कर्तव्यका पालन करना, तथा मिथ्यात्वग्रस्त लोगोंको सम्यक्त्वी बनानेकी सतत चिन्ता आदिसे चारित्रका किञ्चित् परिचय दिया जा सकता है।

५ प्रश्न—क्या आप स्पष्ट कर सकते हैं कि आपकी आत्मशक्तिसे ही आपकी लेखनशक्तिका असर पड़ता है या अधिकांश परिस्थितियाँ भी मजबूर करती हैं?

उत्तर—समाजकी मूढ़तापूर्ण दुर्दशा देखकर हृदयमें जो अनन्त वेदना होती है, उसके सिवाय और कोई ऐसी परिस्थिति नहीं है जो इस कार्यके लिये मजबूर करती हो। मैं ऐसा भाग्यशाली नहीं हूँ, न जैनियोंके किसी सम्प्रदायमें या जैनेतर जगत्में कोई ऐसा आदमी मुझे मिला है जो पैसेका प्रलोभन देकर मुझे ऐसे कार्यके लिये मजबूर करे। हाँ, लेखनशक्ति पर तो नहीं, पर लेखन पर परिस्थितियों का प्रभाव अवश्य पड़ता है। बड़े बड़े तीर्थंकर आदि महापुरुषों परभी परिस्थितिका प्रभाव पड़ता है; फिर मैं तो एक छोटासा प्राणी हूँ। वैद्य कितनाभी होशियार हो, परन्तु उसकी चिकित्सा रोगीकी दशाके अनुसार ही होगी। इसीप्रकार प्रत्येक महात्माकी समाज-सेवा समाजकी परिस्थितिके अनुसार होती है। यह

स्वाभाविक ही नहीं है, अनिवार्य है। इतनाही नहीं किन्तु परिस्थितिका विचार न करना ऊँट वैद्यके समान मूढ़ता प्रदर्शन करना है।

एक तो ये प्रश्नही रहा हैं, दूसरे इनके उत्तरोंमें आत्मश्लाघाका प्रदर्शन अनिवार्य होजाता है, इसलिये उत्तर देनेकी इच्छा नहीं थी परन्तु इस भाईने अपने प्रश्नोंको योरोपीय महायुद्धकी तोप समझ रक्खा था, इसलिये उनका उत्तर देना पड़ा। जैनजगत्में कुछ हास्यरसकी सामग्री नहीं रहती। सम्भव है ये प्रश्न पाठकोंको हँसाकर विदूषकीय दार्शनिकताका अनुभव करावें!

शास्त्रीजीकी दुरंगी चाल।

पाठकोंको अच्छी तरह मालूम है कि मुनिवेषी चन्द्रसागरजीने एक—डेढ़वर्षसे लोहड़साजनोंके आन्दोलनको बहुत अधिक बढ़ा दिया है। आपने इनको शूद्र कहने तककी और इसलिये इनको पूजा-प्रक्षाल करनेका अधिकार नहीं है, यह कहने तककी धृष्टताकी है। श्रीमान् पं० कन्हैयालालजी शास्त्रीने "लोहड़साजन निर्णय" नामक पुस्तक प्रकाशित कर यह अच्छी तरह सिद्ध कर दिया है कि लोहड़साजन बड़साजनोंके समानही बीसा और शुद्ध हैं। पर, मुनिवेषी चन्द्रसागरजीने अपने दुराग्रहको न छोड़ा, बल्कि लोहड़साजनोंको नीचा दिखानेके लिये जगह जगह अपने अन्धभक्तों द्वारा इनके धार्मिक और लौकिक अधिकारोंको छीननेकी व्यर्थ चेष्टा करने लगे। अभी हालहीमें किशनगढ़में इनकी पूजाप्रक्षाल बन्द करवानेकी इनने चेष्टाकी, तब लोहड़साजन भाई श्रीमान् सरसेठ हुकमचन्दजीके पास पहुँचे। इसपर उक्त सेठजीने किशनगढ़के पास दाधिया जाकर उक्त मुनिजीको समझाया, पर आपने एक न सुनी और दोनोंके परस्पर बहुत खींचातानी की बातें हुई। तब सेठजीने स्वरूपचंदजी हुकमचंदके नामसे एक पर्चा छपाकर मुनि चन्द्रसागरजीका बहिष्कार कर दिया। वह पर्चा पाठकोंने अवश्य पढ़ा होगा। उस पर्चेके सम्बन्धमें लोहड़साजनोंके बाबत जवाब देते हुए पं० इन्द्रलालजी शास्त्रीने जो परस्पर विरुद्ध बातें लिखी हैं उनको पढ़कर किस समझदारको हँसी आये बिना न रहेगी। आपने खण्डेलवाल जैन-हितेच्छुके अंक १० वर्ष १४ में जो यह लिखा है कि लोहड़ शब्द लघुताका अर्थात् नीचताका वाचक है सो आप बतलानेकी कृपा करें कि लघुताका अर्थ नीचता किस कोषमें लिखा है? मुनियोंने तो रेवाड़ीमें लघुताका अर्थ नीचता कभी नहीं किया। यहतो आपही की बे सिर पैरकी कल्पना है। अपनेको शास्त्री माननेवाले व्यक्तिके लिये यह एक लज्जाकी बात है कि वह लघुता शब्दका अर्थ नहीं समझता। यह बात ठीक है कि लोहड़ शब्द लघुताका अपभ्रंश है, और साजन शब्द सज्जनका। तब लघुसज्जनका अर्थ छोटा बड़ा होना है। अगर लघुका अर्थ नीच हो तो आपका लघुपुत्र, नीच पुत्र कहलावेगा। पंडित बनारसीदासजीने समयसारमें सम्यग्दृष्टियोंको 'जग-माँहि जिनेश्वरके लघुनंदन" लिखा है। क्या आपकी विचित्र बुद्धिके अनुसार सम्यग्दृष्टि भगवान्के नीच पुत्र कहलाये? इस अक्कके अजीर्ण पर किसको दया न आवेगी!

खण्डेलवाल महासभाके रैणवाल अधिवेशनमें लोहड़साजनोंका विरोधी प्रस्ताव किस प्रकार वापिस लेलिया गया था, यह बात कईबार समाजके सामने आ चुकी है। यह शास्त्रीजीका असम्बद्ध प्रलाप है कि महासभाने अभी कोई फैसला नहीं दिया है।

खण्डेलवाल हितेच्छुके अंक १७ वर्ष १३ ता० ७–८–३३ ई० में आपने एकबार लिखा था कि मुनि चन्द्रसागरजी, शान्तिसागरजीके संघसे धर्मप्रचारार्थ उनकी आज्ञा लेकर अलग हुए हैं, और कोई कारण नहीं है। उस समय लोगोंकी आँखोंमें धूल झोंकनेके लिये आपने यह असत्य प्रलाप कियाथा, पर सत्य कभी छिपा नहीं रहता। आखिर वह कभी न कभी प्रकट होही जाता है। अब हितेच्छुके इस अंकमें जैनजगत्के वक्तव्यका समर्थन करते हुए आप इस बात

को स्वीकार करते हैं कि "लोहड़साजनोंके बाबत गुरु शिष्यमें (चन्द्रसागर शान्तिसागरजीमें) मनमुटाव होगया, तभीसे संघभेद होगया।" शास्त्रीजीको इन पूर्वापर विरुद्ध बातोंको पढ़कर उनकी स्वार्थमय मनोवृत्तियोंका पता लग जाता है।

चन्द्रसागरजीसे जो आपको लोहड़साजनोंके सम्बन्धमें पूछनेपर उत्तर मिला कि लोहड़साजन शूद्रस्त्री से उत्पन्न संतति है, सो कृपया अपने गुरुजीसे पूछ कर इस विषयके प्रमाण प्रकट करिये। बिना प्रमाण किसी जातिको शूद्र कह डालना बड़ा भारी साहस का काम है! और इस प्रकार तो आपको भी कोई शूद्रसंतति कह सकता है। ऐसी उत्तरदायित्वहीन बातें लिखने या बकनेका क्या मूल्य हो सकता है? जब उन्होंने आपको लोहड़साजनोंके विरुद्ध कोई प्रमाण नहीं बताया था तो आपको चन्द्रसागरजीसे कहना चाहिये था कि आप ऐसी विरोध बढ़ानेवाली प्रतिज्ञायें दिलाकर क्यों समाजमें फूटका बीज बो रहे हैं?

'लोहड़साजन निर्णय' नामक पुस्तकके सम्बन्धमें जो आपने अंटसंट बातें लिखी हैं सो यह सब आप की स्वार्थपरताका नमूना है। कुछ दिन पहिले आप जिस बातका समर्थन करतेथे, अब उसीके ख़िलाफ़ क्यों हो रहे हैं, यह समझमें नहीं आता। एकबार फिर आँखें खोलकर देखिये कि लोहड़साजनोंके सम्बन्धमें पहिले आप क्या लिख गये हैं, और अब क्या लिख रहे हैं। इस पुस्तकमें श्रीमान् पंडित कन्हैयालालजी शास्त्री ने छानबीनपूर्वक जो कुछ लिखा है वह अक्षरशः सत्य है। उसमें लिखी गई बातोंका खण्डन होना तो बिल्कुल ही असंभव है। यदि आपमें साहस है तो आप खुले रूपमें मैदानमें आइये और उसको मिथ्या प्रमाणित करिये। आपने जो यह लिखा है कि "लोहड़साजन निर्णय" में जो नौंदगाँवकी पंचायतकी सम्मति लिखी है उसके बाबत हमने प्रतापगढ़में नौंदगाँववालोंसे पूछा था तो उन्होंने जवाब दिया कि हमारी पंचायतोंकी सम्मति नहीं है, यह तीन आदमियोंकी व्यक्तिगत सम्मति है; सो ठीक है। पं० कन्हैयालालजी शास्त्रीने भी इस सम्मतिको पंचायती सम्मतियोंकी लिस्टमें नहीं किन्तु व्यक्तिगत सम्मतियोंमें ही लिखा है। वे भी इसे उनकी व्यक्तिगत सम्मति ही बताते हैं। बताइये, आपने उनकी क्या ग़लती पकड़ी?

हमारी समझमें नहीं आया कि आपने बेटीव्यवहारके उदाहरणोंको निःसार कैसे लिख मारा? अगर वहाँ लोहड़साजनोंका भेद प्रचलित नहीं है तो वहाँ (मुरादाबाद वग़ैरह प्रान्तोंमें) के लोग अपनेको लोहड़साजन क्यों कहते हैं? यह नहीं होसकता कि वहाँ अन्य कारणसे लोहड़साजन हुये हों और यहाँ अन्य कारणसे! यदि ऐसा है तो कृपया इसका प्रमाण दीजिये। साथही कृपया यह न भूल जाइये कि इधरके लोहड़साजनोंमें तथा मुरादाबाद आदि प्रान्तोंके लोहड़साजनोंमें भी परस्पर बेटीव्यवहार है। फिर इन दोनोंमें परस्पर क्या फ़र्क रह गया? किसी बातके खण्डनके लिये ऊँटपटाँग लिख मारना दूसरी बात है और उसका खंडन करना दूसरी बात है। हमें लिखते हुये अफ़सोस होता है कि अपनेको शास्त्री माननेवाला व्यक्ति इस प्रकार बेसिर पैरकी बातें लिखकर वृथा समाजमें भ्रम फैलाता है।

आपने इसी अंकमें रीतिरिवाज़का जिकर करते हुये लिखा है कि "अलीगढ़ मुरादाबादकी तरफ़ न मालूम किस कारणसे होता होगा मगर राजपूताना मालवामें यह रिवाज़ जारी नहीं है। इसीतरह खान पान है। कहीं कच्चीपक्की दोनोंमें ये शामिल किये जाते हैं, कहीं पक्कीमें ही किये जाते हैं। कई ऐसेभी हैं जो १०-५ वर्ष पहिलेही दस्साके नामसे मशहूर थे, मगर अब दस्सा कहतेही चिढ़ने लग गये हैं, आदि।" शास्त्रीजी समाजको वृथा भुलावेमें डालना ठीक नहीं। कृपया ज़रा स्पष्ट करनेका कष्ट करें कि ऐसे कौन कौनसे ग्राम और शहर हैं जिनमें लोहड़साजनोंके घर होते हुये उनकोकेवल पक्कीमें ही शामिल किया जाता है, और कच्चीमें नहीं। उन लोहड़साजन और बड़साजनोंके

नामभी लिखें जिनका ऐसा व्यवहार चालू है। साथ में यह भी लिखें कि ऐसे कौन कौन लोहड़साजन कहाँ कहाँ हैं कि जो १०-५ वर्ष पहले दस्सेके नामसे मशहूर थे और अब क्यों नहीं रहे। आपने आजतक किस किस लोहड़साजनको दस्सोंके नामसे मशहूर देखकर दस्सा कहा और वे चिढ़े, उनका भी नाम गाँव आदि लिखें। यदि इन तमाम बातोंका मय नाम व गाँवके आपने शीघ्र स्पष्ट नहीं किया तो आपका और आप के चन्द्रसागरके असत्य प्रलापोंका समाजको पता लग जायगा और उनकी कोई क़ीमत न रहेगी।

हमारा इन्द्रलालजीसे कोई द्वेष नहीं है पर सत्य के अनुरोधसे हमें ऐसा लिखना पड़ा है। हमारी शास्त्रीजी महाराजसे यही प्रार्थना है कि वे अपने गुरु चन्द्रसागरजीको समझावें और खुद भी निःपक्षबुद्धि से सोच विचार कर लिखा करें, जिससे समाजमें अशान्ति न फैले। —एक समाज हितैषी।

हमारी दशा।

(अंक ८ से आगे)

"पट फेंकते, लिंग लला बनते, बनियों में पुजापा लगे चढ़ने";
जबसे यह गुप्त रहस्य, प्रकाश में आया, मुनीश लगे बढ़ने।
तज बोरी का ढोना हमालजी भी, अब नाम मुनीन्द्र लगे गढ़ने,
अपने अनुरक्त सुभक्त हितार्थ, वे मूठ का मंत्र लगे पढ़ने ॥११॥
शिशु चाहिए तो भरवालो तावीज़, जो चाहिए वित्त, तो जंतर लो;
भय भूत पिशाच का मेटने को, मुनि से बढ़िया कोई मंतर लो।
शत दो शत चाँदी के चन्द्र चुका, छिपे दान के ब्याज भला करलो;
अरे पापियो, मोक्ष के दूत हैं ये, पलमें भवसागर को तर लो ॥१२॥
हरएक ही सोएगा तम्बुओं में, यह तम्बु कृपेश के साथ चलें;
निशि में कुछ सेविका सेवा करें, मल दूर धरें, पर हाथ मलें।
कुछ सेवक वेतन पा करके सदा साथ रहें जनता को छलें;
कुछ स्वार्थ सनेहियों के बल पै, मुर्गी वक्ष पै ये मुनि दाल दलें ॥१३॥
महिलाएं जो सुन्दर दीख पड़ें, बुलवाके एकान्त में बात करें;
कुरसी पर बैठें पसार के पाँव, मनोज सताए सी घात करें।
'सतधर्मी हैं आप विराजें' कहें, गृहियों को भी मान में मात करें;
गिरि शापका टूट पड़े उनके सिर, जो न इन्हें प्रणिपात करें ॥१४॥
तुझे कोढ़ कढ़े, तुझे नारक हो, थम दुष्टता का फल, पेखता जा;
खुफियागिरी तू करता हम पै बस काकसी आँख सरेखता जा।
मुझे मांत्रिक तांत्रिक पत्र कलाविद तार्किक लेखक लेखता जा;
तुझ जैसे हैं मैंने लखे सहसों मुझसा मुनि एक तू देखता जा ॥१५॥

जब भोजन लेन लगें मुनि तो 'यह दो' 'वह दो' के इशारे चलें;
ठहरें जहाँ दर्शक नारियों से पकवानों के पुरुष पँवारे चलें।
रस ईख का सेर से न्यून न हो घृत दुग्ध के खूब पनारे चलें;
इतने पै भी अन्तर हो यदि तो उपालंभ के पैने दुधारे चलें ॥१६॥
बणजारे के बैल से श्रावक श्राविका खाँड भरे भुस खाने लगे;
मणि हीरकों के यह पारखी पागल काँच को रत्न बताने लगे।
यह वैतरिणी इन्हें गंगा बनी ये नहाने तृषा को बुझाने लगे;
भगवान! दशा अनुगामियों की लखलो तुम भी क्या ऊँघाने लगे ॥१७॥
मुनि निन्दक का ये प्रलाप कड़ा महाश्रावक कोई सहे तो सहे;
अनजान औ, आर्य समाजी नहीं फिर भी 'गुरु' कोई गहे तो गहे।
इनसे इनके अनुयायियों से शिव स्यात ही रिक्त रहे तो रहे;
इनकी उपमा बस ये ही बनें गुण भारती ही है कहे तो कहे॥१८॥

[क्रमशः] —भगवन्त गणपति गोयलीय।

कवि से।

कवि! कलनादिनि की कल कलसी मीठी लोरी एक बनाओ;
फिर पंचम-अवरोही-स्थायी की गति में तुम उसको गाओ।
जिससे सो जाए समाज-शिशु गहरा-निद्रित हो जाए हाँ;
चिहुँक चिहुँक कर उठे न ऐसा और न यों रोए गाए हाँ।
कब ऊषाएँ द्विज कलरव के व्याज बुलातीं, उसे जगातीं?
कब ताराएँ शशि को सँग ले उसके साथ खेलने आतीं?
जान न जाए इसे कभी वह, जागृति की न पवन लग पाए;
ऐसी नींद भरो नयनों में, जो न नींद से लाल अघाए।
हाँ, सपने में स्वर्ण-स्वर्ग शशि-कन्दुक सुर वनिताएँ देखे;
किन्तु न भूलो जागृति को, यम से भी अधिक भयंकर लेखे।
कवि! ए कवि! क्या सोच रहे हो? ऐसी लोरी एक बनाओ।
फिर सुषुप्ति के गायक बनकर, जागृति की ऊषा में गाओ॥

—भगवन्त गणपति गोयलीय.

जैनसमाज और स्त्रीशुद्धि ।

(लेखक—श्रीयुत पं० लोकमणिजी जैन गोंदेगाँव)

प्रत्येक समाजका जीवन उसके संकोच और बृहत् विचारोंके आधीन हुआ करता है। जिस समाजको बहुत समय अपना अस्तित्व बनाए रखना है, उसे अपने विचारोंको बहुत विस्तीर्ण बनाना होगा, सदाचारके रास्ते बंद न करना होंगे, सब प्रकारकी संकीर्णताका परित्याग करना होगा। जैनसमाज यदि अपना जीवन आवश्यक समझता है, तो उसे अपनी भयंकर भूलोंकी आलोचना करना होगी, जिनसे आज वह अपनी संख्या दिनोंदिन घटाता जारहा है। जबतक वह अपनी संख्याके घटनेका पूर्ण ज्ञान न करलेगा, उसे घटनेसे न रोक सकेगा। यद्यपि जैनसमाजके क्षयके कई कारण हैं और उनपर विचार करना आवश्यक है; परन्तु लेखकके मतमें 'स्त्रीजातिकी अवहेलना' इसमें प्रधान कारण है और इसीलिये इस विषय पर विशेष विचार करनेकी आवश्यकता है।

जिस तरह विचारोंकी संकीर्णता बुद्धिको खराब कर देती है उसी तरह समाजके आचार विचारोंकी संकीर्णता समाजको खराब करदेती है। बुद्धिहीन राजीसे मनुष्य पतित होकर जीवनके दिन गिनने लगता है। समाजभी खराब होनेपर अपने जीवनके दिन गिनता हुआ क्षयकी ओर मुँह फेरलेता है। समाज जब मूर्ख, पंडित, स्त्री, पुरुष, बाल, वृद्ध और रोगी निरोगियोंके समुदायसे बना हुआ है, तब उनके जीवनके पोषक समस्त नियमोंका उसमें समावेश होना आवश्यक है। उसके नियम जितने सीधे और सरल तथा पक्षपातरहित होंगे उतनेही समाजको बलदायक होंगे। पानीके वेगको जितना संकुचित स्थान मिलेगा उतनाही वह मार करेगा। कपड़ा जितना ही तंग होगा उतनाही जल्दी फटेगा; स्वास्थ्यको भी बहुत हानिकर होगा। शहरोंमें नालियाँ जितनी संकीर्ण बनाई जायँगी, उतनीही अधिक उनसे बदबू निकलेगी, उनका कूड़ा करकट साफ करनेमें उतनी ही अधिक मिहनत होगी। संकुचित रास्तेमें ही मनुष्य डाकुओंसे लूटे जासकते हैं और अपनी पूँजी खाकर रोते फिरते हैं। समाजका भी यही हाल है। हमारा जैनसमाज आज बहुत ही संकुचित विचारोंका शिकार होरहा है। इसीलिये आज वह भारी तादादसे लुटा जारहा है। उसकी संख्या घटरही है। उसके अन्दर न तो क़ीमती ज्ञान है, न बल है और न अधिक दिन जीनेके लिये अवकाश है। ज्ञानकी हड्डियाँ दीखने लगी हैं, बुद्धिका दिवाला निकल गया है, बल मरने और पिसनेके काम आरहा है, धन बगुलाभक्ति और अदालतोंकी ओर भागा जारहा है। सद्भाव ध्वंस हो गये हैं फूट और कलहसे समाजका फेंफड़ा सड़रहा है। ज़िन्दसे मुरदेका वज़न अधिक होता है। जैनसमाजका बोझभी अब भूमिको वज़नदार मालूम होने लगा है। इसलिये अब हमें अपना क्षेत्र बढ़ाना होगा, संख्या बढ़ानी होगी, और यह तब होगा जब हम अपनेको हानिकर बंधनोंसे आबद्ध न होने देंगे और समाजको जीवनप्रद सामग्री पहुँचानेमें विलम्ब न करेंगे।

समाजके स्त्री और पुरुष दो आवश्यक अंग हैं। जननी और जनक इनका पद है। इनका जीवनही समाजका जीवन और इनका मरणही समाजका मरण है। जिस अंग में खराबी होगी वह अंग समाजका घातक है। समाजका जीवन सदाचार है। सदाचारका नाशही समाजका नाश है। आज हमारा समाज सदाचारसे खाली होता जारहा है। क्षय रोगीको जिस तरह कामेच्छा अधिक हुआ करती है उसी तरह हमारा समाजभी कामेच्छा के प्राबल्यका अनुभव कर रहा है। साठ साठ वर्षके वृद्धभी द्वादशवर्षीय बालिकाओंसे शादियाँ करते हैं और धर्मशास्त्रको साक्षीमें पेशकर बहुविवाहका समर्थन कराते हैं। यद्यपि इनकी कामेच्छा क्षय रोगीकी ही तरह मृत्युका कारण है, तथापि यह कृत्य उनसे छूटता नहीं है।

परिणाम इसका यह होता है कि बुड्ढे लुढ़ककर मृत्युके समीप जागिरते हैं और बेचारी १२ वर्षकी उनकी पत्नी कदाचारके समीप जा पड़ती है। समाजमें यह नियम नहीं कि वह अपनी प्रकृतिप्रदत्त कामेच्छाको शान्त कर सके। लाचार हो उसे कुछ समयके बादही समाजसे या दुनियाँ से कूच करना पड़ता है। समाजने यदि पक्षपात छोड़ पुरुषोंकी तरह स्त्रियोंके लियेभी सुविधाजनक नियम बनाए होते तो स्त्रियोंको आज नरकतुल्य जीवन व्यतीत न करना पड़ता। नियम बनाने वालोंने यदि मानसशास्त्रका अध्ययन कर नियम बनाए होते तो या तो पुरुषोंको भी एक पत्नीके बाद जीवन ब्रह्मचर्यसे व्यतीत करनेकी आज्ञा दी होती, या फिर स्त्रियोंको भी इच्छित वर ग्रहण करनेकी अनुमति प्रदान की होती,

क्योंकि कामेच्छा दोनोंमें समान रूपसे रहती है; समान रोगका समान इलाज युक्तिसंगत है।

अस्तु, भूल सबसे होती है, और आगे भी होती रहेगी, भूलही आगेके लिये अच्छा रास्ता बतलाती है, यह भूल हमें रास्ता बतलाती है, कहती है कि भूलका सुधार है प्रायश्चित—जिसका अर्थ होता है भूल पर खेद। भूल पर खेद करने से भूल भूलकर भी नहीं होने पाती। पुरुष भूल करते हैं, समाज उन्हें प्रायश्चित देती है। समाज उसे पारे को पारे की तरह, मिला लेती है क्योंकि वह समाज का एक अंग है। एक एक अँगुली धीरे धीरे शरीरसे विलग कर दी जावे तो कुछ समय में शरीर आत्मा के रहने के योग्य ही न रहेगा। इस प्रायश्चित को कहते हैं पुरुष शुद्धि। पुरुषशुद्धि वही अर्थ रखती है जो अर्थ स्त्री—शुद्धिसे निकलता है। स्त्रीशुद्धिकी समाजको उतनीही आवश्यकता है जितनी कि पुरुषशुद्धि की। जिस शास्त्र के आधारपर समाज पुरुषको शुद्ध करलेती है, स्त्रीशुद्धि के लियेभी किसी दूसरे शास्त्रकी ज़रूरत नहीं पड़ेगी। जहाँ पर पुरुषशुद्धिके मंत्र हैं वहीं पर स्त्रीशुद्धिके मंत्रभी बड़े बड़े अक्षरोंमें लिखे मिलेंगे।

पुरुषशुद्धिसे जितना समाजको लाभ हुआ है, स्त्री—शुद्धिसेभी उतनाही लाभ होना निश्चित है। शुद्धि शब्दकी आवश्यकता जिस तरह पुरुषोंको है ठीक उसी तरह स्त्रियों को है। अशुद्धिके लियेही शुद्धिकी आवश्यकता है न कि पुरुष और स्त्रीके लिये। शुद्धिकी ज़रूरत वहाँ नहीं है जहाँ अशुद्धिका सद्भाव नहीं है। पंचपापोंका सद्भाव पुरुष और स्त्री दोनोंमें समान रूपसे रह सकता है। चार पापों का प्रायश्चित हर समाजमें पुरुष और स्त्रियोंको समानतासे कराया जाता है, पर कुशीलका प्रायश्चित पुरुषकाही होता है, यह कैसा न्याय ?

स्त्रियोंकी शुद्धि होनेसे स्त्रियाँ अधिक पाप करने लगेंगी, यह बात असंगत है। स्त्रियाँ स्वभावसेही लज्जाशील होती हैं; पुरुषों जैसी स्वानवृत्ति उनमें नहीं होती। यह मैं प्रथम लेखमें बतलाचुका हूँ कि स्त्री में कामेच्छाका दुगना पुरुषोंसे अधिक है। उनकी शुद्धिसे हानि न होकर लाभही होगा। सबसेबड़ा लाभ उनके साथ न्याय करना होगा। पुरुषसमाज अन्याय तथा पक्षपातके दोषसे रहित होगा। स्त्री, प्रायश्चितसे आगेके लिये पुरुषोंसे सचेत रहेगी और मुसलमान, ईसाई न होकर समाजको क्षति न पहुँचा सकेगी। यदि कहा जाय कि कुशील स्त्रियोंसे समाजकी शोभा नहीं है तो यही बात कुशील पुरुषोंके लियेभी कही जासकती है। समाज तो बड़े से बड़े कुशील पुरुषोंको मुखिया बनाकर अपनी शान बनाये हुए है, घोर से घोर व्यभिचारी समाजमें अपनी प्रतिष्ठा क़ायम रखे हुए हैं तब बेचारी स्त्रीआतिसेही क्यों अनर्थकी शंका करनी चाहिये। उसका वास्तविक हक़ उसे क्यों नहीं मिलना चाहिये ? समाज अपना न्यायोचित संगठन करे तो गुप्त पापों का प्राबल्य न होने पावेगा। यदि स्त्रीशुद्धिको पुरुषशुद्धि की तरह स्थान न मिलेगा तो समाजमें गंदगी बढ़ती जावेगी, समाज भीतरसे गुप्त पापोंसे सड़ जावेगा और अन्त में जैनसमाजको अन्य समाजें हज़म कर जावेंगी। इसलिये स्त्रीशुद्धिकी अत्यन्त आवश्यकता है। (शेष फिर कभी)

शूद्रजलत्याग का ढकोसला।

यह प्रकट होचुका है कि कतिपय मुनिवेषी शूद्र स्पर्शित जलसेवनके आजन्म त्यागका जो पचड़ा लगाते हैं, वह उनके दुराग्रहके सिवाय कुछ नहीं है। शास्त्रोंमे किसी प्रकारभी उनके इस कार्यका अनुमोदन नहीं होता। जनताभी इस बातको भलाप्रकार समझती है, परन्तु लोकलिहाज़के कारण—यह ख़याल करकि यदि प्रतिज्ञा न ली तो मुनिजीको इस गाँवसे भूखा जाना पड़ेगा और इसमें हमारी बदनामी होगी—लोगोंको जानते बूझते हुए अपने श्रद्धानसे विचलितहो शूद्रजलत्यागकी प्रतिज्ञा लेनी पड़ती है। यही कारण है कि आजन्म शूद्रजलत्याग करनेवालों में से अधिकांश, गाँवकी सरहदसे मुनिजीके, बाहर होते ही प्रतिज्ञा तोड़कर पूर्ववत् आचरण करने लगते हैं। जो लोग झेंपके कारण दुराग्रहपर अड़े हुए हैं, उन्होंने विचित्र "उपरचादियाँ" निकाल रखी हैं। अभी उस दिन एक पेटार्थू पंडितजीको, जो जनेऊधारी व शूद्रजलत्यागी होनेके अतिरिक्त जैनधर्मके विशिष्ट ज्ञाता व वक्ता माने जाते हैं, एक तेली जातीय तम्बोलीकी दूकानसे पान लेकर खाते देखा तो कुछ आश्चर्य हुआ। मैंने शास्त्रीजीसे पूछा—महाराज, आप इ के हाथका तथा इनके घरके गीले कत्थे चूनका लगा हुआ पान कैसे खाते हैं ? शास्त्रीजी बोले—"मैंने शूद्रके हाथका केवल जल पीनेका त्याग किया है; कत्था चूना गीला है, परन्तु उसमें जलकी पर्याय बदल गई है।" क्या यही मुनिभक्तियोंकी दिग्विजय है ?

—एक जैन।

तार का पता—"JAINJAGAT" Ajmer.   Reg: No. N 352.

ता० १ मई   सन् १९३४   अंक १२

जैनसमाज का एकमात्र स्वतंत्र पाक्षिकपत्र।

वार्षिक मूल्य १) रुपया मात्र।

जैन जगत्

विद्यार्थियों व संस्थाओं से ॥) मात्र।

(प्रत्येक अंग्रेज़ी महीने की पहली और सोलहवीं तारीखको प्रकाशित होता है)

"पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनम् यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः"॥—श्री हरिभद्रसूरि।

सम्पादक—सा०र० दरबारीलाल न्यायतीर्थ, जुबिलीबाग तारदेव, बम्बई।
प्रकाशक—फ़तहचंद सेठी, अजमेर।

बम्बई हाईकोर्टका एक फ़ैसला।

जैनसमाजके पंचों सावधान!

जैनसमाजमें पंचायतोंकी मनमानी घरजानीकी अन्यायपूर्ण नीति चरमसीमाको पहुँच चुकी है। जहाँ कहीं ज़रासी बात पंचोंके मनके विरुद्ध हुई या आपसी द्वेष हुआ कि झटसे जातिबहिष्कारका अस्त्र प्रयोग कर दिया जाता है। अभी हालमें कलकत्तेकी खण्डेलवाल पंचायतने तो उससे भी बढ़कर हाथ मारा। अन्तर्जातीय विवाह जैनशास्त्रानुकूल है, ऐसे हज़ारों प्रमाणोंसे शास्त्र भरे पड़े हैं। इतनेपर भी न केवल विवाहकरनेवाले व्यक्तिके ही बल्कि अन्य चार नवयुवकोंके भी, बिना उन्हे बुलाये, बिना उनसे कुछ पूछे, बिना उन्हें कुछ सफ़ाई देनेका मौक़ा दिये, जाति बहिष्कारकी घोषणा करदी है। क्या इस अन्यायकी भी कोई सीमा है?

गत अप्रेल मासके पिछले सप्ताहमें बम्बई हाईकोर्ट से एक महत्वपूर्ण फ़ैसला जातिबहिष्कारके विषयमें हुआ है। श्री रामजी मोतीचंद नामके एक व्यक्तिको कुछ दिन हुए जातिबहिष्कृत कर दिया था। उन्होंने जातिबहिष्कृत करनेवाले पंचों श्री नारायणजी पुरुषोत्तम आदि ६ व्यक्तियोंके ख़िलाफ़ बम्बई हाईकोर्टमें मामला दायर किया था कि उनकी जातिबहिष्कारकी घोषणा क़ानूनन नाजायज़ है।

विचारशील जज महोदयने दोनों पक्षोंकी बहस सुननेके बाद फ़ैसला सुनाया कि किसी व्यक्तिको जाति से बहिष्कृत करनेके पहिले उसके साथ उचित न्याय का आचरण करना चाहिये, उसके विरुद्ध जो अभियोग हो उसकी सूचना काफ़ी समय रहते उसे दी जाना चाहिये और यह भी सूचितकर देना चाहिये कि यदि अपराध सत्य निकला तो उसका क्या परिणाम या फल होगा। उसको अपना बचाव करनेके लिये काफ़ी समय और सुविधायें देनी चाहिये। जातिबहिष्कारका निर्णय करनेवाली सभा या पंचायतमें उस जगहकी उस जातिके प्रत्येक व्यक्तिको यह ख़बर दीजानी चाहिये और उसमें मूलबातका उल्लेख होना आवश्यक है कि अभियुक्तके विरुद्ध यह अपराध लगाया गया है। मामलेकी उचित कार्यवाहीकी जानी चाहिये और किसी तरहका पक्षपात नहीं होना चाहिये। इस मामलेमें जातिकी ओरसे उचित कार्यवाही नहीं की गई। इसलिये यह जातिबहिष्कारकी आज्ञा क़ानूनी दृष्टिसे नाजायज़ है, अतः रद्द की जाती है।

यद्यपि कलकत्ताके युवकमंडलने पंचायतके अन्याय-पूर्ण निर्णयको ठुकरा दिया है तोभी हम कलकत्ताके श्री० महानुभावोंसे प्रार्थना करेंगे कि वे इस मामले को अवश्य हाईकोर्टमें लेजावें। साधारण स्थानोंके भाई अपनी साधारण स्थितिके कारण ऐसा नहीं कर सकते। ऐसा करनेसे फ़ैसला तो अवश्य उनके पक्षमें होगा ही जैसा कि ऊपरके उदाहरणसे स्पष्ट है; साथही आगामीके लिये जैनसमाजमें एक उदाहरण उपस्थित होजायगा। —नन्दलाल जैन, बल्लभगढ़।

नोट—बम्बई हाईकोर्टने जातिबहिष्कारको नाजायज़ क़रार देनेके अतिरिक्त उक्त पंच के ख़िलाफ़ इस आशयका हुक्म भी निकाला है कि वे श्रीरामजी मोतीचन्द को उसके जातिसम्बंधी अधिकारोंका उपभोग करनेसे किसी प्रकार नहीं रोक सकते। —प्रकाशक

एक जैन महिलाका सराहनीय साहस।

इन्दौर—तारीख २४-४-३४ को प्रातःकाल श्री घेवरमलजी जैनकी धर्मपत्नी अपने घरसे—पीपली बाज़ार गलीमें से दर्शनार्थ मन्दिरको जा रही थी। रास्तेमें निर्जन स्थान समझ तथा मारवाड़ी देखकर एक मुसलमान गुण्डेने उक्त महिलासे छेड़ करनेका दुस्साहस किया। गुंडेने ज्योंही इस महिलापर हाथ डाला त्योंही बाईने उसके दोनों हाथ फुर्तीके साथ बड़े ज़ोरसे पकड़ लिये और चिल्लाना शुरू किया। अपनेको गुंडेने छुड़ाकर भाग जानेका बहुत प्रयत्न किया, परन्तु वीर महिलाके पंजेसे वह भाग न सका। आवाज सुनकर कई आदमी वहाँ एकत्रित होगये। कई कायर हिन्दुओंने उसे यह कहकर कि—गुण्डों और बदमाशोंके मुँह लगकर अपनेको हैरान करना है, साथ ही बेइज्जती भी होती है, पुलिस वगैरामें जाना पड़ेगा, आदि—गुंडेको योंही कह सुनकर छोड़ देनेको कहा। परन्तु वीरमहिला दृढ़ रही और उसे पुलिस कोतवाली पहुँचवाया। महिलाका यह साहस वास्तवमें सराहनीय है। प्रत्येक विदुषी महिलाको कायरता छोड़ निडर होकर बहादुरीके साथ इसी प्रकार अपने शीलकी रक्षाके लिये सदैव तत्पर रहना चाहिये। तभी गुण्डोंकी अक़्ल ठिकाने लाई जा सकेगी। —संवाददाता।

वरोंकी आवश्यकता।

१—दस दिगम्बर जैन कन्याओंके लिये वरों की आवश्यकता है। वर साधारणतः पढ़े लिखे हों, सुधारक विचारोंके हों, तथा आमदनी कमसे कम ५०) रु० मासिक हो। पत्रव्यवहार निम्नलिखित पते पर किया जाय— जुगमन्दिरदास जैन,
मन्त्री जैन अंतर्जातीयविवाह सहायक समिति
३३, बड़तल्ला स्ट्रीट कलकत्ता।

२—एक कुलीन, सनातन जैन, गृहकार्य कुशल चौदह वर्षीया कुमारीके लिये योग्य जैन वरकी आवश्यकता है। वरकी आयु २१-२२ वर्ष तथा मासिक आय कमसे कम ७५) हो। —कस्तूरचन्द जैन मन्त्री
भारतीय जैन विधवारक्षा विभाग, आकोला।

सिं० पन्नालालजी अमरावतीसे निवेदन—

आपके सुपुत्रका विवाह सिं० नन्दनलालजी बीनावालोंकी सुपुत्रीके साथ मईके अन्तमें होने वाला है। आपने सामाजिक सुधारमें तन मन धन अर्पण किया है। व्यर्थ व्यय और अनावश्यक रिवाजोंको मिटानेके लिये आपने अनेक भाषण भी दिये हैं। आप परिषद् तथा परवार सभाके भू० सभापति हैं। आपके ऊपर सारी ज़िम्मेवारी है। इसलिये आपसे सानुरोध निवेदन है कि आप किसी भी प्रकारका भय न रखकर बरार सी०पी० परिषद् प्रचार कमेटीके प्रस्तावानुसार ही कार्य करेंगे। यह निवेदन आपकी धर्मपत्नी तथा उत्साही युवक श्री० नन्दनलालजी बीनासे भी है। आपके इस आदर्शकार्यका समाज अनुकरण करेगी। इस आदर्शविवाहमें न्योत देन जानेकी प्रथा बंद करके मात्र चिट्ठियोंसे ही सूचना दी जावे। दो दिनमें ही बारात लौटकर आजावे। १० आदमीसे अधिक बाराती अपने खर्चेसे नहीं लेजावें। शुद्ध स्वदेशी वस्त्रों का ही व्यवहार हो। जैनविधिसे विवाह हो। फिजूल के नेगन्वार नहीं हों। आपके पुत्रके विवाहपर समाज के भावी सुधारका आधार है।

—(बैरिस्टर) जमनाप्रसाद जैन, सभापति परिषद्।

अन्धश्रद्धा और पक्षपात।

सत्यके मार्गमें अन्धश्रद्धा और पक्षपात भयंकर दैत्यदम्पतिकी तरह पड़े हुए हैं। जो इनसे नहीं बचपाता, वह सत्यको पाना तो दूर, उसके दर्शनभी नहीं कर सकता। जैनधर्मने इन दैत्योंको माराथा, परन्तु आजकलके जैनियोंने उन्हें फिर जिलाया है। वे सत्यसे इतने घबराते हैं कि उसकी तरफ़ आँख उठा कर भी नहीं देख सकते। वे सत्यके नाम पर इन्हीं दैत्यों की पूजा करते हैं। इसका एक नमूना ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीने उपस्थित किया है।

जैनजगतके ९ वें अंकमें विरोधी मित्रोंको उत्तर देते हुए मैंने लिखाथा कि श्वेताम्बर शास्त्रोंके सिर मांसभक्षणका विधान न मढ़ना चाहिये; यों तो एक दिन जैनकुटुम्बोंमें भी मद्यमांसका दौरदौरा था, आदि। इसके बाद कुछ उदाहरण देकर मैंने अपने वक्तव्यको स्पष्ट किया था।

इस पर १२ अप्रेलके जैनमित्रमें ब्रह्मचारीजी ने एक लेख लिखा है जोकि मायाचार, धोखेबाजी, अन्धश्रद्धा, पक्षपात और अहंकारसे भरा हुआ है।

आपने लिखा है—"१६ मार्चमें जैनधर्मके मर्ममें छट्ठा अध्याय सम्यकचारित्रपर प्रारम्भ हुआ है, उसी अंकमें पृष्ठ १६ पर ऐसे वाक्य लिखे हैं जिनसे पाठकों के चित्तपर चारित्रकी उच्चताके स्थानपर चारित्र-हीनताका प्रभाव पड़ता है।" यहाँ जैनधर्मके मर्मका उल्लेख अनावश्यक था क्योंकि यह चर्चा जैनधर्मके मर्ममें नहीं है; परन्तु इसका उल्लेख सिर्फ इसीलिये किया गया है जिससे लोगोंको यह भ्रम हो कि लेखमालामें चारित्रके नामपर मद्यमांसका प्रचार किया जाता है! यह तो हुआ आपका मायाचार!

प्राचीनकालका चित्रण करके, पाठकों पर उसका बुरा प्रभाव न पड़े इसके लिये मैंने लिखाथा कि "किसी बातका प्राचीनकालमें अस्तित्व सिद्ध होजाय तो वह धर्म है, अनुकरणीय है—यह न समझना चाहिये। कई बातोंमें हम अगर पहिलेसे अवनत हुए हैं तो कईमें उन्नत हुए हैं। जिनमें उन्नत हुए हैं उनके विषयमें प्राचीन घटनाएँ अनुकरणीय नहीं हैं। ऐतिहासिक सत्यके अनुरोधसे जो बात मुझे लिखना पड़े; उसका यह अर्थ कदापि नहीं होता कि कल्याण की दृष्टिसे भी वह सत्य है।" आपने मेरे इस आवश्यक वक्तव्यको जानबूझकर ऐसा छुपाया कि उसका ज़राभी उल्लेख न किया; नहीं तो आपके लेखकी पोलही खुलही जाती। यह हुई आपकी धोखेबाज़ी!

पुराना ज़माना हर तरह अच्छा था; आचरण आदिके विषयमें भी हमारी ज़राभी उन्नति नहीं हुई है; हमारे पूर्वजोंमें जितनी बातें थीं वे हमारे लिये अनुकरणीयही होंगी—इस प्रकारके अंधविश्वाससे आप पूर्वजोंमें कोई कुरीति माननेको तैयार नहीं हैं, यद्यपि बहिन भाईमें विवाह आदि अनेक रिवाज़ उस समय थे जो आज अनुकरणीय नहीं हैं, इतनाही नहीं किन्तु जो बहुत अनुचित माने जाते हैं। यह हुई आपकी अन्धश्रद्धा!

श्वेताम्बर शास्त्रोंमें जो लोग मांस-भक्षणका विधान बतलाकर साम्प्रदायिक द्वेष फैलाते हैं तथा अहंकारकी पूजा करते हैं, उनको उत्तर देनेके लिये यह प्रकरण मैंने लिखाथा। किन्तु मेरे लिखनेमें तो

आप कहते हैं कि इससे मद्यमांसका प्रचार होगा–यद्यपि मैंने इस प्रचारको रोकनेके लिये समझाकर लिख दियाथा कि पूर्वजोंकी हरएक रीति कुछ अच्छी नहीं है, परन्तु आपने मेरे इस वक्तव्यको छुपा दिया–किन्तु जो लोग श्वेताम्बर शास्त्रोंमें मांसविधानके लिये एड़ीसे चोटी तक पसीना बहाते हैं, साथही किसीभी तरह उसका समन्वय नहीं करते, उनकी तरफ़ आँख बन्द कर लेते हैं ! यह हुआ आपका घोर पक्षपात !

मैं कितने विचार और परिश्रमसे लिखता हूँ, इस बातको आप बहुत दिनसे जानते हैं। मेरी इस शक्तिसे आपने लाभभी उठाया है। पीछे विरोध करके इसका उत्तर पाकर आपने उसकी आजमाइशभी करली है। यहभी आप समझ सकते हैं कि मुझे कर्तव्याकर्तव्यका स्मरण करानेकी क्षमता आपमें नहीं है। फिरभी वेषादिकी ओटमें आप मुझे उपदेश देनेकी अयाचित कृपा करनेका कष्ट उठाते हैं। यह हुआ आपका अहंकार !

खैर, आपके इन गुणोंका परिचय देनेके बाद अब मैं आपके वक्तव्य परभी विचार करता हूँ। मद्यपानके विषयमें आपने तीन बातें कहीं हैं:—

१—रामचन्द्रजीने लक्ष्मणको शराब पिलानेकी बात पागल समान अवस्थामें कही थी।

२—मदिरोत्तमा अर्थ ऐसी मदिरा करना चाहिये जिसमें जीवहिंसा न होती हो। दौलतरामजीने इसका अर्थ दुग्धादि पीने योग्य वस्तु किया है।

३-एक दो दृष्टान्तोंसे कोई रिवाज सिद्ध नहीं होता। इन तीनों बातोंपर मैं यहाँ क्रमक्रमसे विचार करता हूँ।

१—रामचन्द्रजीने लक्ष्मणको शराब पिलानेकी बात वियोगविह्वल अवस्थामें कही थी। इसीसे वह रिवाज सिद्ध होता है, क्योंकि विह्वल या पागल अवस्थामें बुद्धिका अर्गला लुप्त हो जाती है। इसलिये वह मानसिकभाव बिना किसी अर्गलाके प्रकट करने लगता है। जिसके मनमें शराब पीनेके भाव न आते हों या जो शराब न पीता हो वह विह्वल अवस्थामें भीशराब पीनेकी बात नहीं कह सकता।

रामचन्द्रके घरमें अनेक तरहकी शराब थीं, शराब पीनेके सुन्दर सुन्दर प्याले थे। अगर शराब न पीते होते तो यह सब तैयारी न होती।

रामचन्द्रने जब नौकरोंको शराब लानेकी आज्ञा दी तो सेवकोंको न तो कोई आश्चर्य हुआ न संकोच। जो आदमी कभी भी न तो शराब पीता हो, न पिलाता हो वह अगर शराब माँगे तो उसके परिजनवर्गको आश्चर्य व संकोच हुए बिना न रहे। परन्तु उस समय कविने इस भावका जराभी वर्णन न किया जोकि अत्यन्त आवश्यक था, जबकि छोटी छोटी बातोंका वर्णन किया गया है।

रामचन्द्र पागल होंगे, परन्तु पद्मचरित बनाने वाले रविषेणाचार्य तो पागल न थे। उनने इस बात का उल्लेख क्यों किया ? दौलतरामजीने जैसे दूध वगैरह लिखा है उसी प्रकार रविषेणाचार्यने क्यों न लिखा ? अथवा कमसे कम इतनातो लिखते कि— 'देखो तो मोहकी महिमा ! जो रामचन्द्र कभीभी शराब न पीते थे, वे एक शराबीकी तरह शराबका उपयोग करने लगे' ! रविषेणने तो शराबका वर्णन इतने निःसंकोच भाव से किया है जैसे कोई दूधका ही कर रहा हो। इससे मालूम होता है कि रविषेण के जमाने तक मद्यपानका जैनसमाजमें दौरदौरा था। अष्ट मूलगुणोंमें मद्यत्याग आजाने परभी हजार में कोई एकाध ही उसका त्यागी होताथा। अगर इतनी बहुलता न होती तो रविषेणकी इतनी हिम्मत न होती कि वे इस प्रकार निःसंकोचभाव से मद्यपान का वर्णन करते।

२—पं० दौलतरामजीने पद्मपुराणका शब्दशः अनुवाद नहीं किया है, किन्तु स्वाध्यायप्रेमियोंके लिये पद्मकथा लिखी है। दौलतरामजीके समयमें शराबका प्रचार नहीं रहाथा इसलिये उनने शराबका उल्लेख दूर कर दिया। ये अनुवाद ऐतिहासिक खोजकी दृष्टिसे किसी कामके नहीं। दौलतरामजीने मदिरा शब्दका अर्थ नहीं बदला है किन्तु उसका अर्थ करनेसे किनारा काट लिया हैं। खैर, मुझे इससे

कुछ मतलब नहीं। दौलतरामजीका अर्थ बिलकुल बेबुनियाद है। मदिरा शब्दका यह अर्थ भूलचूक से भी किसी कोषमें नहीं मिलता है। वहाँपर कविने केवल मदिरा-शब्दका ही उपयोग नहीं किया है किन्तु कादंबरी आदि शब्दोंका उपयोग किया है और वह वर्णन इतना स्वाभाविक है कि उसमें ननुनचकी गुंजाइशही नहीं है।

> समुपाह्रियतामच्छा बाढं कादम्बरी बरा।
> विचित्रमवदंशश्च रसबोधन कारणम्।११।
> एवमाज्ञां समासाद्य परिवर्गेण सादरम्।
> तथाविधं कृतं सर्वं नाथबुद्ध्यनुवर्त्तिना।१२।
> लक्ष्मणस्यान्तरास्यस्य राघव पिहमादधे।
> न त्वविशज्जिनेन्द्रोक्तमभव्य श्रवणे यथा।१३।
> ततोऽगदद्यदिक्रोधोमयिदेवकृतस्त्वया।
> ततोऽस्यात्रकिमायातममृतस्वादिनोऽधसः।१४।
> इयं श्रीधर ते नित्यं दयिता मदिरोत्तमा।
> इमां तावत्पिबन्यस्तां चषके विकचोत्पले।१५।
> इत्युक्त्वा तां मुखेन्यस्य चकार सुमहादरः।
> कथं विशतु सा तत्र चार्वी संक्रान्त लोचने १६
> —पद्मचरित ११० वाँ सर्ग।

रामचन्द्रने नौकरोंको आज्ञा दी कि—जाओ स्वच्छ और उत्तम बहुतसी कादम्बरी (शराब) लाओ! साथ अवदंशभी लाना जिससे शराब पीनेकी रुचि बढ़जावे। (अवदंश एक प्रकारका मसाला है जिसके खानेसे शराब पीनेकी रुचि बढ़जाती है, या रुचि न हो तो पैदा होजाती है—'पान रुचि जननार्थं यद्द्व्यञ्जनं भक्ष्यते सोऽवदंशः' अमरकोश टीका) ११। इस प्रकार आज्ञा पाकर स्वामी की आज्ञाके अनुसार काम करनेवाले नौकरोंने वैसा ही किया जैसा रामचन्द्रने कहा था। १२। तब रामचन्द्रने लक्ष्मणके मुखमें कौर दिया परन्तु जिस प्रकार अभव्यके कानमें जिनवाणी नहीं जाती उसी प्रकार लक्ष्मणके मुखमें कौर न गया। १३। तब रामचन्द्र बोले—देव! यदि तुमने मुझपर क्रोध किया है तो अमृतके समान स्वादिष्ट भोजनने क्या बिगाड़ा है? (दसवें श्लोक में उनने अन्नभी मँगाया है—अन्नं चानीयताम्पधम्)।१४। और लक्ष्मण! यह अच्छी मदिरा (शराब) तो तुम्हे सदासे बहुत प्यारी है। फूले कमलके समान चषक (शराब पीनेका प्याला) में रक्खी हुई यह शराब जरा पी तो सही! १५।

यहाँ 'चषक' शब्द ध्यान देने योग्य है। चषकः पानपात्रम् द्वेमद्यपात्रस्य। चषकोऽस्त्री सुरापात्रे मधुमद्यप्रभेदयोः—चषक शराब पीनेके बर्तनका खास नाम है। यह दूध पीनेके काममें नहीं लाया जाता। रामचन्द्र इतने कंगाल नहीं थे कि उनके पास दूध पिलानेके लिये दूसरा बर्तन भी न हो। अगर वे इतने कंगाल होतेभी, तो भी इससे यही सिद्ध होता कि वे दूधकी अपेक्षा शराबही ज्यादः पीते थे क्योंकि शराबके बर्तन उनके पास थे परन्तु दूधके लिये उसीसे काम चलाते थे।

इसप्रकार रामचंद्रने बड़े आदरके साथ लक्ष्मणके मुखमें शराब डाली, परन्तु जड़ शरीरमें वह कैसे जाय?

ताड़ी आदि आजभी आती है, जिसमें जीवहिंसा नहीं होती। क्या इसीलिये वह निर्दोष होगई? क्या ब्रह्मचारीजी इतना नहीं जानते कि मद्यका निषेध हिंसाकी दृष्टिसे नहीं, मादकताकी दृष्टिसे किया गया है? इसके अतिरिक्त कादम्बरी मदिरा आदि ऐसी मदिराके नाम नहीं हैं जो बिना सड़ाये पैदा होती हो। मदिराके साथ उत्तम शब्दका प्रयोग मदिरापनकी दृष्टिसे ही होता है, न कि प्रासुकता—अप्रासुकताकी दृष्टिसे।

३—शास्त्रोंमें तो एकही दो दृष्टान्त मिलते हैं। शास्त्र कुछ मर्दुमशुमारीकी रिपोर्ट नहीं हैं कि उनमें हर एक बातके आँकड़े दिये जाँय। क्या किसी बातको दस बीस जगह दिखाये बिना उसमें प्रामाणिकता नहीं आती? तबतो आप शास्त्रोंकी इज्जत बहुत ज्यादः (?) कर रहे हैं। मामूली आदमीके बचनोंकी इज्जतभी इससे ज्यादः होती है। खैर, आपके सन्तोषके लिये मैं और भी प्रमाण उद्धृत

किये देता हूँ। मैं इतने प्रमाण देदेता हूँ कि जिनके पढ़ने से आप घबरा जाँय।

मालूम होता है कि सौन्दर्य और वैभवके लिये जैनाचार्य मदिराको बहुत आवश्यक समझते थे। राजगृह नगरके वर्णनमें रविषेण कहते हैं—

मदिरामत्त वनिता भूषणस्वन सम्भृतम्।
कुवेद नगरस्येव द्वितीयं सन्निवेशनम्॥
—पद्मचरित २—३८

शराब पीकर मस्त हुई स्त्रियों के आभूषणोंकी आवाजसे भरा हुआ वह नगर दूसरी कुबेरपुरी सा मालूम होता था।

जब देशभूषण कुलभूषण मुनिका उपसर्ग टलगया तब वंशस्थलपुरका राजा राम लक्ष्मणको अपने नगरमें लेगया। वहाँ नगर सजाया गया। उस समय का वर्णन है—

कचिन्ना शेखरी भाति मदिरामत्त लोचनः।
कचित्सीमंतिनी मत्ता बकुला मोदवाहिनी।
—पद्म० ४०—२१।

शराबके नशेसे जिसकी आँखें मस्त होगई हैं ऐसा पुरुष कहीं शोभित होरहा है और कहीं मौलसिरीके फूलोंकी सुगन्ध लेनेवाली स्त्री नशेमें मस्त पड़ी है।

युद्धकी पहिली रात्रिमें लंका नगरीका वर्णन इस प्रकार किया गया है —

ताम्बूलगन्धमाल्याद्यैरुपभोगैः सुगोपमैः।
पिबंतो **मदिरा**मन्ये रमन्ते दयितान्विताः१३६
काचिन्स्ववदनं दृष्ट्वा चषक प्रतिबिम्बितम्।
ईर्ष्ययेन्दीवरेणाशं प्राप्ता मदमताड़यत्॥१३७॥
मदिरायां परिन्यस्तं नारिभिर्मुखसौरभम्।
लोचनेषु निजोरागः तासांमदिरयाकृतः १३८।
तदेव वस्तुसंसर्गाद्धत्ते परमचारुताम्।
तथाहि दयितापीतम शेषं स्वादुभवन्मधु १३९
मदिरापतितां काचिदात्मीयां लोचनद्युतिम्।
गृह्णन्तीन्दीवर प्रीत्या कान्तेन हसिता चिरम्१४०
अप्रौढाऽपि सती काचित् शनकै पायिता सराम
लज्जा सखीमपाकृत्य तासामत्यन्तमीप्सितम्।
कृतं कादम्बरीसख्या प्रियेषु क्रीडितं परम् १४२
घूर्णमानेक्षणं भूयः कलं स्खलित जल्पितम्।
चेष्टितं विकटं स्त्रीणाम् पुंसां जातं मनोहरम्१४३
दम्पती मधु वाञ्छन्तौ पीतशेषं परम्परम्।
चक्रतुः प्रसृतोल्लापौ चषकस्य गतागतम् १४४।
चषकेऽपि गतप्रीतिः कान्तामालिङ्ग्य सुन्दरः।
गण्डूषमदिरां कश्चित्पपौ मुकुलितेक्षणः १४५।
आसीद्विभ्रमकल्पानां किञ्चित्स्फुरण सेविनाम्।
मधुक्षालित रागामधराणां पराद्युतिः १४६
दन्ताधरेक्षणच्छाया संसर्गिचषकेमधु।
शुक्लारुणासिताम्भोज युक्तंसर इवाभवत्१४७।
गोपनीयमदर्शन्त प्रवेशान सुरया स्त्रियः।
वाक्यान्यभाषणीयान्यभाषन्त च गतत्रयाः१४८॥

कोईकोई लोग देवोंके समान ताम्बूल गन्धमाला आदिके साथ मदिरा पीते हुए सपत्नीक मौज करते हैं। १३६। किसी स्त्रीने शराबके प्यालेमें अपने मुखका प्रतिबिम्ब देखा। अपने मुख का प्रतिबिम्ब देखकर ही उसे सौतकी तरह ईर्ष्या हुई तथा नशाभी आया इससे वह अपने पतिको कमलसे मारने लगी॥१३७॥ नारियोंने अपने मुख का सुगन्धित द्रव्य या मद्य शराबमें डालदिया। शराबने उनकी आँखोंको अपने रङ्गसे रङ्गदिया। अर्थात् जिस प्रकार शराब लाल थी उसी प्रकार उनकी आँखें भी लाल होगई। १३८। वहीकी वही वस्तु संसर्गसे बहुत सुन्दर होजाती है। देखो महुवा की शराब (मध्वासकः माधवकः मधु माध्वीकम् चत्वारि मधूक पुष्पोद्भवस्य=ये चार महुवाकी शराबके नाम हैं—अमरकोष) जब प्यारीने पी ली तब उससे बचीहुई वह जूँठी शराब औरभी स्वादिष्ट मालूम होने लगी। १३९।

किसी स्त्रीकी आँखोंकी छाया मदिरामें पड़ी। आँखें नील कमलके समानथीं। इसलिये वह आँखों की छायाको नीलकमल समझकर उठाने लगी। यह

कोई नयी दुलहिन थी इसलिये उसे धीरे धीरे शराब (सुरा) पिलादी गई, तब वह कामक्रीड़ाकी बातों में खूब चतुर होगई । १४१ । उसने लज्जारूपी सहेलीको दूर करके शराबको सहेली बनाया । फिर उस शराबकी सखीने खूब मौजकी । १४२ । स्त्री और पुरुषोंकी आँखें नशेसे घूमने लगीं। उनकी सुन्दर आवाज लड़खड़ाने लगी उनकी चेष्टाएँ बड़ी विकट होगईं । १४३ । पति पत्नी चाहतेथे कि एक दूसरेकी जूँठी शराब पियें । इसलिये खूब बात-चीत करते हुए शराबका प्याला एक दूसरेको देने लगे । १४४ । किसी किसी की शराबके प्यालेसे रुचि हटगई इसलिये वह स्त्रीका आलिंगन करके आनन्दसे आँखें बन्द किये हुए पत्नीके मुखमें की शराब (शराबका गंडूश-कुल्ला) पीगया । १४५ । फड़कते हुए और मूंगेके समान लाल लाल ओंठ महुवेकी शराबसे कुछ धुलगये । तब वे खूब चमकने लगे । १४६ । शराबके प्यालेमें दाँतोंकी, ओंठोंकी और आँखोंकी छाया पड़तीथी । शराब सहित वह प्याला ऐसा मालूम होताथा मानों सफेद लाल और नीले कमलवाला तालाब ही हो । मद्यका प्याला—तालाब, शराब-जल, दाँतकी छाया-सफेद कमल, ओंठकी छाया-लालकमल, आँखोंकी छाया-नील कमल । १४७ । स्त्रियां शराबके नशेसे गुह्य अंगोंको दिखलाने लगीं और जो न बोलना चाहिये वह बोलने लगीं । १४८ ।

अबतो शायद ब्रह्मचारीजी को संदेह न होगा कि यह सब शराबका वर्णन है । इसमें महुएकी तथा अन्य तरहकी शराबें हैं, इससे नशा चढ़ता है, आँखें लाल होती हैं । इसे स्त्रियाँभी पीती थीं, पुरुष भी पीते थे । और एक दो आदमी नहीं, सारी प्रजा पीती थी । यहाँतक कि कुलभूषण देशभूषणके केवल-ज्ञानका उत्सव मनाया गया और रामका स्वागत किया गया तो जहाँ तहाँ शराब पीनेवाले लोगही दिखलाई देने लगे । यद्यपि ये वर्णन अनेक जगह शायद ब्रह्मचारीजी कहने लगेंकि यहतो एकही पुस्तक का वर्णन है, इसलिये अब मैं दूसरे ग्रंथका नमूना भी पेश करता हूँ ।

विदर्भराजने अपनी पुत्रीका स्वयंवर किया है जिसके लिये धर्मनाथ स्वामी सेना लेकर जाते हैं । रास्तेमें रात्रि पड़जाती है तब उनकी सेनामें स्त्री पुरुषों के बीचमें खूब लीलाएँ होती हैं । उसमेंसे यहाँ सिर्फ मद्यपानका भाग उद्धृत किया* जाता है । यह वर्णन धर्मशर्माभ्युदयके पंद्रहवें सर्गका है ।

शीतदीधितिविकासि सुगन्धं पत्रवद्दशन केसरकान्तम् ।
स्त्रीमुखं कुमुदवन्मधुपानां पातुमत्र मधुभाजन मासीत्
॥ २ ॥

जैसे भौंरे कुमुदमें से मधु पीते हैं उसी प्रकार स्त्रियोंका मुख शराबका प्याला बनगया । अर्थात् स्त्रियाँ अपने मुँहमें शराब भरती थीं और फिर वही शराब अपने पतिके मुँहमें डाल देतीथी । इस तरह स्त्रियोंका मुँह शराबके प्यालेका काम देताथा । यहाँ स्त्रियोंके मुखको कुमुदके समान कहा गया है । कुमुद में जो चार विशेषण बताये गये हैं, वे मुखमें भी पाये जाते हैं । कुमुद चन्द्रमासे खिलता है, स्त्रियोंका मुख चन्द्रमाके समान प्रफुल्लित-आह्लादकारी था । कुमुद

* इस प्रकरणमें मद्यपानविषयक २९ पद्य हैं । स्थानाभावसे बहुतसे छोड़ दिये जाते हैं, सिर्फ उनके पद्यांश यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—कल्पतरुमध्वमृतं तत्पातुमार-भत ।१। परिश्रुसिपात्रे ... ।३। तन्मधूनिललनाकरपात्रे ५। चषकसीधुपिबन्ती ६ । कापिशायन (मद्य)छियाऽऽसु-पिबन्ती ।७। कोकनदकान्तिनिशीधुर्नेत्रयुग्ममधुना मधुपा-नात् ।९। सीधुपानविधिनाकिलकालक्षेप मेवकलपन् ।११। मधूनिपिबन्त्याम् ... निपीतचषके ।१२। मद्यमन्य पुरुषेणनि-पीतं ।१३। स्त्रीमुखानि मधूनिचपीत्वा ।१६। कामहेतुरुदितो मधुपाने ।१८। कामिनीभिरसकृन्मधुवाः ।१९। तेनमद्यम-धिकं रुरुदेस्म ।२०। क्षालितोऽपिमधुना ।२१। आलवाल इव सीधुरसेन ।२४। आपतोषमबलामधुपानात् ।२५। सीधुनाप्रकटितो विषमेषुः ।२७। रसं प्रपिबन्ती ।२९। इनके अर्थ करनेकी जरूरत नहीं है । थोड़ेसे नमूने ही काफ़ी हैं ।

सुगन्धित होता है, स्त्रियोंका मुखभी सुगन्धित था। कुमुदमें पत्ते होते हैं, स्त्रियोंके मुखमें भी चूर्ण–पाउडर से पत्रके चित्र बने हुएथे। कुमुदमें केसर होती है, स्त्रियोंके मुखमें दाँतरूपी केसर थी।

दन्तकान्तिशबलं सविलासाः साभिलाषमपिबन्मधुपात्रे
श्लिष्यमाणमिव सोदर भावादुद्व्यक्तरागममृतेन तरुण्यः
॥ ४ ॥

दाँतोंकी किरणें पड़नेसे प्यालेमें रक्खी हुई शराब अनेक रंगकी हो गई (दाँतोंकी किरणें सफेद और शराब लाल) मानों अमृतकी बहिन होनेसे वह अमृत के साथ मिल रही है (अमृत सफेद होनेसे दाँतोंकी किरणोंको अमृत कहा; तथा समुद्र मंथनमें शराबभी समुद्रसे निकली थी और अमृत भी इसलिये दोनों सहोदर कहलाये)। ऐसी शराब स्त्रियाँ पीने लगीं।

यौवनेन मदनेन मदेनत्वं कृशोदरि सदाप्यसिमत्ता।
तद्वृथायमधुनामधुधारापान केलि कलनास्त्वभियोगः॥

हे कृशोदरि! जवानीके, कामदेवके और अभिमानके नशेमें तो सदैव मत्त रहतीहो, फिर शराबका यह आयोजन क्यों कर रही हो ?

किं न पश्यति पतिं तव पार्श्वेधृष्ट एषमखि शीतमयूखः।
आसवान्तरवर्तीर्य मुदुखैः पातुमाननमुपैति पुरस्तात्॥१४
त्वत्प्रदृष्टमथवाकथमप्रेदर्शयिष्यति मुखं स्ववधूनाम्
इत्युदीक्ष्यचषके शशिबिम्बं काप्यगाद्यतसनर्म सखीभिः
॥ १५ ॥

शराबके प्यालेमें चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब देखकर किसी की सखियोंने मजाक किया कि सखि! यह चन्द्रमा तो बड़ा ढीठ है, क्या पासमें बैठे हुए पतिदेव को यह नहीं देखता जो उन्हींके साम्हने शराबके भीतर घुसकर तुम्हारा मुख चूमनेको चला आरहा है। अथवा जब यह चन्द्रमा तुम्हारे चुम्बनका चिन्ह अपने मुखपर लगा लेगा तब अपनी पत्नियोंको कैसे मुख दिखलायगा ?

बिम्बितेन शशिनासहनूनं पीवरोरुभिरपीयत मद्यम्।
यत्तदीय हृदयान्तरलीनैर्निर्गतं सपदि मन्युतमोभिः॥१७

वह शराब बड़ी बड़ी जंघावाली स्त्रियोंने पी ली जिससे उनके हृदयका मानरूपी अन्धकार नष्ट होगया। शराबके साथ चन्द्रका प्रतिबिम्ब भी भीतर पहुँचा इसलिये अंधकारका दूर होना ठीकही है।

त्यज्यतां पिपिपिपिपिप्रिय! पात्रं दीयतां मुमुमुखासव एव।
इत्यमन्थरपदस्खलितोक्तिः प्रेयसी मुदमदाद्दयितस्य
॥ २२ ॥

प...प...प...प...प... प्यारे! अब यह प्याला फेंकदो! अबतो मुँ...मुँ...मुँ...मुँहकी शराबही पिलाओ! इस प्रकार लड़खड़ाती बोलनेवाली प्यारी, प्यारेको प्रसन्न करने लगी।

कापिशायनरसैरभिषिच्य प्रायशः सरलतां हृदिनीते।
भ्रूलतासु रचनासु च वाचां सुभ्रुवां घनमभूत्कुटिलत्वम्
॥ २३ ॥

मद्यरससे सींचनेसे जब हृदय सरल होगया तब हृदयकी कुटिलता भौंहोंमें और वचनोंमें आगई। इस प्रकार उनकी कुटिलता और बढ़गई।

भ्रूलताललितलास्यमकस्मात्स्मेरमास्यमवशानि वचांसि
सुभ्रुवां चरणयोः स्खलितानि व्यावतां भृशमनन्तरमूचुः
॥ २६ ॥

भौंहोंका मटकाना, बिना किसी कारणके मुसकराना, निर्गल बकवाद करना और पैरोंका लड़खड़ाना, इन चेष्टाओंने बिना बोलेही बतला दिया कि खूब नशा चढ़ा है।

अब एक उदाहरण हरिवंशपुराणका भी लीजिये–श्रीकृष्णकी आज्ञासे कृष्णकी रानियाँ नेमिनाथ के साथ वनक्रीड़ा करती हैं। एक रानीकी चेष्टा देखिये।

वनलता कुसुमस्तवकोच्चये मधुमदालसमानसलोचना।
मुखसुगंधितयामुखरालिभिर्वलयिताऽभूत काचन देवरं
५५—४५।

जंगली लताके पुष्पगुच्छके ढेरमें, जिसके मुखकी सुगंधसे गुनगुनाते हुए भौरोंने जिसे घेर लिया है, और शराबके नशेसे जिसका मन और आँखें अलसा गयीं हैं, ऐसी किसी रानी ने देवर

बस, इतना शराबपुराण ब्रह्मचारीजीके लिये पर्याप्त होगा। पुराने समय में शराबका कितना दौरदौरा था इसका एक नमूना यह भी है कि जैनियोंने जब भोगभूमिकी कल्पना की तब उन्हें वहाँ मद्यांग जातिके कल्पवृक्ष रखना पड़े, जिनसे मनमानी शराब मिलती थी।

मांसके विषयमें इतने प्रमाणतो नहीं मिल सकते क्योंकि मांस एक साधारण भोजन था। रागरंगमें उसका स्थान मद्यके समान नहीं है कि जहाँ तहाँ उसका वर्णन मिल जाय। फिर भी उदाहरण मिलही जाते है। तद्भवमोक्षगामी राजा सौदासका वर्णनतो मिलता ही है। दूसरा उल्लेख नेमि बनाड़का है। नेमिनाथके विवाहमें पाहुनों को खिलानेके लिये बहुतसे पशुओंका संग्रह किया गया था। कहा जाता है कि यह श्रीकृष्णका षड्यन्त्र था, परन्तु यह बिलकुल कल्पना है। अगर षड्यन्त्र भी हो तो भी इससे यह सिद्ध होता है कि उस समय मांसभक्षण का रिवाज था तभीतो षड्यन्त्रके लिये उस रिवाजका उपयोग किया जा सका। हरिवंश पुराण ५५ वाँ सर्ग।

राजकुमार मृगध्वज मांस खाता था। एक दिन उसने खुलआम एक भैंसेका पैर तुड़वाकर खालिया। भोजनकर्ता राजकुमारको राजाने दंड दिया नहीं था, परन्तु आज इस प्रकार खुलेआम निर्दयताका व्यवहार करनेसे राजकुमारको दंड देना पड़ा। योरोप में आज अधिकांश जनता मांस खाती है, फिर भी कोई खुलेआम ऐसी क्रूरता नहीं दिखला सकता। और तो और, पशुओं पर अधिक बोझ लादना भी जुर्म समझा जाता है। इसलिये राजाने यदि दंड देनेका विचार किया तो इससे मांसभक्षणका निषेध सिद्ध नहीं होता। खैर, मृगध्वज दंडसे बचनेके लिये मुनिके पास दीक्षित होगया और उसी भवसे मोक्ष चला गया। (आराधना कथाकोष)

यमपाल चांडालकी कथामें है कि बनारसके पाकशासन राजाने अष्टान्हिका पर्वमें अमारिकी घोषणा की थी। इससे एक सेठके लड़केको मांस न मिला तब उसने बागमें जाकर राजाका मेढ़ाही चोरीसे मारकर खालिया। राजाने दंड दिया। यह दंड मांसभक्षणका नहीं था, किन्तु अमारिकी आज्ञा भंग करनेका तथा राजाके मेढेकी चोरी करने का था। अन्यथा इसके पहिलेभी दंड दिया जाता।

इस प्रकार और भी उदाहरण मिल सकते हैं। मालूम होता है कि भगवान् महावीरके बाद मांसका प्रचार रुकना शुरू हुआ और कई शताब्दियोंमें वह बहुत कुछ रुक गया। मद्यके प्रचार रोकनेमें इससे अधिक समय लगा, तथा मद्यपान मांसभक्षणके समान घृणित भी नहीं समझा जाता था। जब मांसका प्रचार रुक गया किन्तु मद्यका प्रचार चालू रहा तब किसी किसी जैन लेखकने मद्यमें मांससे भी अधिक दोष बतलाया और युक्तियाँ लगाना पड़ीं कि मद्यपायी तो नशेमें मांस भी खा सकता है इसलिये मद्यपान मांसभक्षणसे भी खराब है। तब कहीं बड़ी मुश्किलसे यह प्रचार रुका। ऐतिहासिक क्रमसे जो लोग जैनशास्त्रोंका निरीक्षण करेंगे उन्हें यह बात अच्छी तरहसे मालूम हो जायगी।

यद्यपि आजकल हमारे जीवनमें शुद्धि अशुद्धिके नाम पर छूआछूत आदिका ढोंग प्रचलित होगया है, फिर भी बहुतसी बातोंमें बाहिरी दृष्टिसे हमने अच्छी उन्नतिकी है। मांस और मद्यका त्याग इनमें मुख्य है। इस त्यागमय सुधारकी जितनी प्रशंसाकी जाय थोड़ी है। परस्त्रीसेवन तो नहीं, परन्तु वेश्यासेवन के विषयमें भी हमने बहुत कुछ नैतिकबल प्राप्त किया है। हमारे पूर्वजोंमें अगर दोष थे तो कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है, हमें उनसे कुछ आगे बढ़ना ही चाहिये था। पिछले हजार डेढ़ हजार वर्षमें आखिर हमने किया ही क्या? कुछ भाड़ही नहीं झोंकते रहे! कुछ न कुछ सीखतेही रहे हैं। हाँ, यह बात अवश्य है कि हमें जितनी उन्नति करना चाहिये थी उतनी नहीं की।

सुगन्धित होता है, स्त्रियोंका मुखभी सुगन्धित था। कुमुदमें पत्ते होते हैं, स्त्रियोंके मुखमें भी चूर्ण-पाउडर से पत्रके चित्र बने हुएथे। कुमुदमें केसर होती है, स्त्रियोंके मुखमें दाँतरूपी केसर थी।

दन्तकान्तशबलं सविलासाः साभिलाषमपिबन्मधुपात्रे
श्लिष्यमाणमिव सोदर भावादुद्व्यक्तरागममृतेन तरुण्यः
॥ ४ ॥

दाँतोंकी किरणें पड़नेसे प्यालेमें रक्खी हुई शराब अनेक रंगकी हो गई (दाँतोंकी किरणें सफेद और शराब लाल) मानों अमृतकी बहिन होनेसे वह अमृत के साथ मिल रही है (अमृत सफेद होनेसे दाँतोंकी किरणोंको अमृत कहा; तथा समुद्र मंथनमें शराबभी समुद्रसे निकली थी और अमृत भी इसलिये दोनों सहोदर कहलाये)। ऐसी शराब स्त्रियाँ पीने लगीं।

यौवनेन मदनेन मदेनत्वं कृशोदरि सदाप्यसिमत्ता।
तद्वृथायमधुनामधुधारापान केलि कलनाखभियोगः॥

हे कृशोदरि ! जवानीके, कामदेवके और अभिमानके नशेमें तो सदैव मत्त रहतीहो, फिर शराबका यह आयोजन क्यों कर रही हो ?

किं न पश्यति पतिं तव पार्श्वेधृष्ट एषसखि शीतमयूखः।
प्रासबान्तरवर्तीयन्दुखैः पातुमाननमुपैति पुरस्तात्॥१४
त्वत्प्रसृष्टमथवा कथमपेदर्शयिष्यति मुखं स्ववधूनाम्
त्युर्दीक्ष्यचषके शशिबिम्बं काप्यगद्यतसनर्म सखीभिः
॥ १५ ॥

शराबके प्यालेमें चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब देखकर किसी की सखियोंने मजाक किया कि सखि ! यह चन्द्रमा तो बड़ा ढीठ है क्या पासमें बैठे हुए पतिदेव को यह नहीं देखता जो उन्हींके साम्हने शराबके भीतर घुसकर तुम्हारा मुख चूमनेको चला आरहा है। अथवा जब यह चन्द्रमा तुम्हारे चुम्बनका चिन्ह अपने मुखपर लगा लेगा तब अपनी पत्नियोंको कैसे मुख दिखलायगा ?

बिम्बितेन शशिनासहनूनं पीवरोरुभिरपीयत मद्यम्।
तद्धीय हृदयान्तरलीनैर्निर्गतं सपदि मन्युतमोभिः॥१७

जिस शराबमें चन्द्रमा प्रतिबिम्बित होरहा है वह शराब बड़ी बड़ी जंघावाली स्त्रियोंने पी ली जिससे उनके हृदयका मानरूपी अन्धकार नष्ट होगया। शराबके साथ चन्द्रका प्रतिबिम्ब भी भीतर पहुँचा इसलिये अंधकारका दूर होना ठीकही है।

त्यज्यतां पिपिपिपिपिप्रिय ! पात्रं दीयतां मुमुमुखासव एव।
इत्यमन्थरपदस्खलितोक्तिः प्रेयसी मुदमदाद्दयितस्य
॥ २२ ॥

प...प...प..प..प.. प्यारे ! अब यह प्याला फेंकदो ! अबतो मुँ..मुँ..मुँ..मुँहकी शराबही पिलाओ ! इस प्रकार लड़खड़ाती बोलनेवाली प्यारी, प्यारेको प्रसन्न करने लगी।

कापिशायनरसैरभिषिच्य प्रायशः सरलतां हृदिनीते।
भ्रूलतासु रचनासु च वाचां सुभ्रुवां घनमभूत्कुटिलत्वम्
॥ २३ ॥

मद्यरससे सींचनेसे जब हृदय सरल होगया तब हृदयकी कुटिलता भौंहोंमें और वचनोंमें आगई। इस प्रकार उनकी कुटिलता और बढ़गई।

भ्रूलताललितलास्यमकस्मात्स्मेरमास्यमवशानि वचांसि
सुभ्रुवां चरणयोः स्खलितानि व्यञ्जतां मधुरामनतरमूचुः
॥ २६ ॥

भौंहोंका मटकाना, बिना किसी कारणके मुसकराना, निरर्गल बकवाद करना और पैरोंका लड़खड़ाना, इन चेष्टाओंने बिना बोलेही बतला दिया कि खूब नशा चढ़ा है।

अब एक उदाहरण हरिवंशपुराणका भी लीजिये—श्रीकृष्णकी आज्ञासे कृष्णकी रानियाँ नेमिनाथ के साथ बनक्रीड़ा करती हैं। एक रानीकी चेष्टा देखिये।

बनलता कुसुमस्तवकोच्चये मधुमदालसमानसलोचना।
मुखसुगंधितयामुखरालिभिर्वलयिताऽधृत काचन देवरं
५५—४५।

जंगली लताके पुष्पगुच्छके ढेरमें, जिसके मुखकी सुगंधसे गुनगुनाते हुए भौंरोंने जिसे घेर लिया है, और शराबके नशेसे जिसका मन और आँखें अलसा गयीं हैं, ऐसी किसी रानी ने देवर (नेमिनाथ) को पकड़ लिया।

बस, इतना शराबपुराण ब्रह्मचारीजीके लिये पर्याप्त होगा। पुराने समय में शराबका कितना दौरदौरा था इसका एक नमूना यह भी है कि जैनियोंने जब भोगभूमिकी कल्पना की तब उन्हें वहाँ मद्यांग जातिके कल्पवृक्ष रखना पड़े, जिनसे मनमानी शराब मिलती थी।

मांसके विषयमें इतने प्रमाणतो नहीं मिल सकते क्योंकि मांस एक साधारण भोजन था। रागरंगमें उसका स्थान मद्यके समान नहीं है कि जहाँ तहाँ उसका वर्णन मिल जाय। फिर भी उदाहरण मिलही जाते हैं। तद्भवमोक्षगामी राजा सौदासका वर्णनतो मिलता ही है। दूसरा उल्लेख नेमि नाथका है। नेमिनाथके विवाहमें पाहुनों को खिलानेके लिये बहुतसे पशुओंका संग्रह किया गया था। कहा जाता है कि यह श्रीकृष्णका षड्यन्त्र था, परन्तु यह बिलकुल कल्पना है। अगर षडयन्त्र भी हो तो भी इससे यह सिद्ध होता है कि उस समय मांसभक्षण का रिवाज था तभीतो षडयन्त्रके लिये उस रिवाजका उपयोग किया जा सका। हरिवंश पुराण ५५ वाँ सर्ग।

राजकुमार मृगध्वज मांस खाता था। एक दिन उसने खुलआम एक भैंसका पैर तुड़वाकर खालिया। आजतकतो राजकमारको राजाने दंड दिया नहीं था, परन्तु आज इस प्रकार खुलेआम निर्दयताका व्यवहार करनेसे राजकुमारको दंड देना पड़ा। योरोप में आज अधिकांश जनता मांस खाती है, फिर भी कोई खुलेआम ऐसी क्रूरता नहीं दिखला सकता। और तो और, पशुओं पर अधिक बोझ लादना भी जुर्म समझा जाता है। इसलिये राजाने यदि दंड देनेका विचार किया तो इससे मांसभक्षणका निषेध सिद्ध नहीं होता। खैर, मृगध्वज दंडसे बचनेके लिये मुनिके पास दीक्षित होगया और उसी भवसे मोक्ष चला गया। (आराधना कथाकोष)

यमपाल चांडालकी कथामें है कि बनारसके पाकशासन राजाने अष्टान्हिका पर्वमें अमारिकी घोषणा की थी। इससे एक सेठके लड़केको मांस न मिला तब उसने बागमें जाकर राजाका मेढ़ाही चोरीसे मारकर खालिया। राजाने दंड दिया। यह दंड मांसभक्षणका नहीं था, किन्तु अमारिकी आज्ञा भंग करनेका तथा राजाके मेढेकी चोरी करने का था। अन्यथा इसके पहिलेभी दंड दिया जाता।

इस प्रकार और भी उदाहरण मिल सकते हैं। मालूम होता है कि भगवान् महावीरके बाद मांसका प्रचार रुकना शुरू हुआ और कई शताब्दियोंमें वह बहुत कुछ रुक गया। मद्यके प्रचार रोकनेमें इससे अधिक समय लगा, तथा मद्यपान मांसभक्षणके समान घृणित भी नहीं समझा जाता था। जब मांसका प्रचार रुक गया किन्तु मद्यका प्रचार चालू रहा तब किसी किसी जैन लेखकने मद्यमें मांससे भी अधिक दोष बतलाया और युक्तियाँ लगाना पड़ीं कि मद्यपायी तो नशेमें मांस भी खा सकता है इसलिये मद्यपान मांसभक्षणसे भी खराब है। तब कहीं बड़ी मुश्किलसे यह प्रचार रुका। ऐतिहासिक क्रमसे जो लोग जैनशास्त्रोंका निरीक्षण करेंगे उन्हें यह बात अच्छी तरहसे मालूम हो जायगी।

यद्यपि आजकल हमारे जीवनमें शुद्धि अशुद्धिके नाम पर छूआछूत आदिका ढोंग प्रचलित होगया है, फिरभी बहुतसी बातोंमें बाहिरी दृष्टिसे हमने अच्छी उन्नतिकी है। मांस और मद्यका त्याग इनमें मुख्य है। इस त्यागमय सुधारकी जितनी प्रशंसाकी जाय थोड़ी है। परस्त्रीसेवन तो नहीं, परन्तु वेश्यासेवन के विषयमें भी हमने बहुत कुछ नैतिकबल प्राप्त किया है। हमारे पूर्वजोंमें अगर दोष थे तो कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है, हमें उनसे कुछ आगे बढ़ना ही चाहिये था। पिछले हजार डेढ़ हजार वर्षमें आखिर हमने किया ही क्या? कुछ भाड़ही नहीं झींकते रहे! कुछ न कुछ सीखतेही रहे हैं। हाँ, यह बात अवश्य है कि हमें जितनी उन्नति करना चाहिये थी उतनी नहीं की।

सुगन्धित होना है, स्त्रियोंका मुखभी सुगन्धित था। कुमुदमें पत्ते होते हैं, स्त्रियोंके मुखमें भी चूर्ण—पाउडर से पत्रके चित्र बने हुएथे। कुमुदमें केसर होती है, स्त्रियोंके मुखमें दाँतरूपी केसर थी।

दन्तकान्तशबलं सविलासाः साभिलाषमपिबन्मधुपात्रे
श्लिष्यमाणमिव सोदर भावाद्व्यक्तरागममृतेन तरुण्यः
॥ ४ ॥

दाँतोंकी किरणें पड़नेसे प्यालेमें रक्खी हुई शराब अनेक रंगकी हो गई (दाँतोंकी किरणें सफेद और शराब लाल) मानों अमृतकी बहिन होनेसे वह अमृत के साथ मिल रही है (अमृत सफेद होनेसे दाँतोंकी किरणोंको अमृत कहा; तथा समुद्र मंथनमें शराबभी समुद्रसे निकली थी और अमृत भी इसलिये दोनों सहोदर कहलाये)। ऐसी शराब स्त्रियाँ पीने लगीं।

यौवनेन मदनेन मदेनत्वं कृशोदरि सदाप्यसिमत्ता।
तद्वृथायमधुनामधुधारापान केलि कलनास्वभियोगः॥

हे कृशोदरि! जवानीके, कामदेवके और अभिमानके नशेमें तो सदैव मस्त रहतीहो. फिर शराबका यह आयोजन क्यों कर रही हो?

किं न पश्यति पतिं तव पार्श्वेधृष्ट एषमखि शीतमयूखः।
आसवान्तरवतीर्य मदुखेः पातुमाननमुपैति पुरस्तात्॥१४
त्वत्प्रवृष्टमथवाकथमप्येदर्शयिष्यति मुखं स्ववधूनाम्
इत्युदीक्ष्यचषके शशिबिम्बं काप्यगद्यतसनर्म सखीभिः
॥ १५ ॥

शराबके प्यालेमें चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब देखकर किसी को सखियोंने मजाक किया कि सखि! यह चन्द्रमा तो बड़ा ढीठ है। क्या पासमें बैठे हुए पतिदेव को यह नहीं देखता जो उन्हींके साम्हने शराबके भीतर घुसकर तुम्हारा मुख चूमनेको चला आरहा है। अथवा जब यह चन्द्रमा तुम्हारे चुम्बनका चिन्ह अपने मुखपर लगा लेगा तब अपनी पत्नियोंको कैसे मुख दिखलायगा?

बिम्बितेन शशिनासहनूनं पीवरोरुभिरपीयत मद्यम्।
यत्तदीय हृदयान्तरलीनैर्निर्गतं सपदि मन्युतमोभिः॥१७

जिस शराबमें चन्द्रमा प्रतिबिम्बित होरहा है वह शराब बड़ी बड़ी जंघावाली स्त्रियोंने पी ली जिससे उनके हृदयका मानरूपी अन्धकार नष्ट होगया। शराबके साथ चन्द्रका प्रतिबिम्ब भी भीतर पहुँचा इसलिये अंधकारका दूर होना ठीकही है।

त्यज्यतां पिपिपिपिप्रिय! पात्रं दीयतां मुमुमुखासव एव।
इत्यमन्थरपदस्खलितोक्तिः प्रेयसी मुदमदाद्दयितस्य
॥ २२ ॥

प...प...प ..प.. प'' प्यारे! अब यह प्याला फेंकदो! अबतो मुँ''मुँ''मुँ''मुँहकी शराबही पिलाओ! इस प्रकार लड़खड़ाती बोलनेवाली प्यारी, प्यारेको प्रसन्न करने लगी।

कापिशायनरसैरभिषिच्य प्रायशः सरलतां हृदिनीते।
भ्रूलतासु रचनासु च वाचां सुभ्रुवां घनमभूत्कुटिलत्वम्
॥ २३ ॥

मद्यरससे सींचनेसे जब हृदय सरल होगया तब हृदयकी कुटिलता भौंहोंमें और वचनोंमें आगई। इस प्रकार उनकी कुटिलता और बढ़गई।

भ्रूलताललितलास्यमकस्मात्स्मेरमास्यमवशानि वचांसि
सुभ्रुवां चरणयोः स्खलितानि त्वावतां भृशमनन्तरमूचुः
॥ २६ ॥

भौंहोंका मटकाना, बिना किसी कारणके मुसकराना, निरर्गल बकवाद करना और पैरोंका लड़खड़ाना, इन चेष्टाओंने बिना बोलेही बतला दिया कि खूब नशा चढ़ा है।

अब एक उदाहरण हरिवंशपुराणका भी लीजिये—श्रीकृष्णकी आज्ञासे कृष्णकी रानियाँ नेमिनाथ के साथ बनक्रीड़ा करती हैं। एक रानीकी चेष्टा देखिये।

वनलता कुसुमस्तवकोच्चये मधुमदालसमानसलोचना।
मुखसुगंधितयामुखरालिभिर्वलयिताऽधृत काचन देवरं
५५—४५।

जंगली लताके पुष्पगुच्छके ढेरमें, जिसके मुखकी सुगंधसे गुनगुनाते हुए भौरोंने जिसे घेर लिया है, और शराबके नशेसे जिसका मन और आँखें अलसा गयीं हैं, ऐसी किसी रानी ने देवर (नेमिनाथ) को पकड़ लिया।

बस, इतना शराबपुराण ब्रह्मचारीजीके लिये पर्याप्त होगा। पुराने समय में शराबका कितना दौरदौरा था इसका एक नमूना यह भी है कि जैनियोंने जब भोगभूमिकी कल्पना की तब उन्हें वहाँ मद्यांग जातिके कल्पवृक्ष रखना पड़े, जिनसे मनमानी शराब मिलती थी।

मांसके विषयमें इतने प्रमाणतो नहीं मिल सकते क्योंकि मांस एक साधारण भोजन था। रागरंगमें उसका स्थान मद्यके समान नहीं है कि जहाँ तहाँ उसका वर्णन मिल जाय। फिर भी उदाहरण मिलही जाते हैं। तद्भवमोक्षगामी राजा सौदासका वर्णनतो मिलता ही है। दूसरा उल्लेख नेमि वनाड़का है। नेमिनाथके विवाहमें पाहुनों को खिलानेके लिये बहुतसे पशुओंका संग्रह किया गया था। कहा जाता है कि यह श्रीकृष्णका षड्यन्त्र था, परन्तु यह बिलकुल कल्पना है। अगर षडयन्त्र भी हो तो भी इससे यह सिद्ध होता है कि उस समय मांसभक्षण का रिवाज था तभीतो षड्यन्त्रके लिये उस रिवाजका उपयोग किया जा सका। हरिवंश पुराण ५५ वाँ सर्ग।

राजकुमार मृगध्वज मांस खाता था। एक दिन उसने खुलआम एक भैंसेका पैर तुड़वाकर खालिया। आजतकतो राजकमारको राजाने दंड दिया नहीं था, परन्तु आज इस प्रकार खुलेआम निर्दयताका व्यवहार करनेसे राजकुमारको दंड देना पड़ा। योरोप में आज अधिकांश जनता मांस खाती है, फिर भी कोई खुलेआम ऐसी क्रूरता नहीं दिखला सकता। और तो और, पशुओं पर अधिक बोझ लादना भी जुर्म समझा जाता है। इसलिये राजाने यदि दंड देनेका विचार किया तो इससे मांसभक्षणका निषेध सिद्ध नहीं होता। खैर, मृगध्वज दंडसे बचनेके लिये मुनिके पास दीक्षित होगया और उसी भवसे मोक्ष चला गया। (आराधना कथाकोष)

यमपाल चांडालकी कथामें है कि बनारसके पाकशासन राजाने अष्टान्हिका पर्वमें अमारिकी घोषणा की थी। इससे एक सेठके लड़केको मांस न मिला तब उसने बागमें जाकर राजाका मेढाही चोरीसे मारकर खालिया। राजाने दंड दिया। यह दंड मांसभक्षणका नहीं था, किन्तु अमारिकी आज्ञा भंग करनेका तथा राजाके मेढेकी चोरी करने का था। अन्यथा इसके पहिलेभी दंड दिया जाता।

इस प्रकार और भी उदाहरण मिल सकते हैं। मालूम होता है कि भगवान् महावीरके बाद मांसका प्रचार रुकना शुरू हुआ और कई शताब्दियोंमें वह बहुत कुछ रुक गया। मद्यके प्रचार रोकनेमें इससे अधिक समय लगा, तथा मद्यपान मांसभक्षणके समान घृणित भी नहीं समझा जाता था। जब मांसका प्रचार रुक गया किन्तु मद्यका प्रचार चालू रहा तब किसी किसी जैन लेखकने मद्यमें मांससे भी अधिक दोष बतलाया और युक्तियाँ लगाना पड़ीं कि मद्यपायी तो नशेमें मांस भी खा सकता है इसलिये मद्यपान मांसभक्षणसे भी खराब है। तब कहीं बड़ी मुश्किलसे यह प्रचार रुका। ऐतिहासिक क्रमसे जो लोग जैनशास्त्रोंका निरीक्षण करेंगे उन्हें यह बात अच्छी तरहसे मालूम हो जायगी।

यद्यपि आजकल हमारे जीवनमें शुद्धि अशुद्धिके नाम पर छूआछूत आदिका ढोंग प्रचलित होगया है, फिरभी बहुतसी बातोंमें बाहिरी दृष्टिसे हमने अच्छी उन्नतिकी है। मांस और मद्यका त्याग इसमें मुख्य है। इस त्यागमय सुधारकी जितनी प्रशंसाकी जाय थोड़ी है। परस्त्रीसेवन तो नहीं, परन्तु वेश्यासेवन के विषयमें भी हमने बहुत कुछ नैतिकबल प्राप्त किया है। हमारे पूर्वजोंमें अगर दोष थे तो कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है, हमें उनसे कुछ आगे बढ़ना ही चाहिये था। पिछले हजार डेढ़ हजार वर्षमें आखिर हमने किया ही क्या? कुछ भाड़ही नहीं झोंकते रहे! कुछ न कुछ सीखतेही रहे हैं। हाँ, यह बात अवश्य है कि हमें जितनी उन्नति करना चाहिये थी उतनी नहीं की।

मद्यपानके विषयमें जो उद्धरण दिये गये हैं उससे भी अधिक वेश्याओंके विषयमें दिये जासकते हैं। ब्रह्मचारीजीने जिस प्रकार मद्यके विषयमें बाध्य किया, उसीप्रकार अगर वेश्याके विषयमें बाध्य करेंगे तो वह सामग्री भी उपस्थित करदी जायगी। परन्तु इन सबका मतलब यही है कि हम उन्नतिशील बनें। अवसर्पिणीकी निरर्थक—और आजकलके समयमें अत्यन्त हानिप्रद—कल्पना छोड़दें।

हमारे पूर्वज जैसे थे वैसे थे—डार्विनके कथनानुसार सुदूरभूतमें वे बन्दर भी हो सकते हैं—परन्तु इससे क्या? क्या कर्त्तव्य है, और क्या अकर्त्तव्य है, इसका विचार हमें तर्क और अनुभवसे करना है, पूर्वजों का मुँह ताककर नहीं। जबकि मद्यमांस हेय हैं, तो भलेही हमारे पूर्वज उनका सेवन करते हों हम उन्हें छोड़ देंगे; और जो कार्य अच्छा है वह भलेही हमारे पूर्वजोंके जीवनमें न मिलता हो, वह हम करेंगे।

शास्त्र भी एक समयका लोकाचार है। अगर उसमें सुधारकता हुई तो भी वह अपने समयके लोकाचारसे बहुत ऊँचा नहीं उठ सकता। जिस जमाने में मद्यमांसका सेवन शाकभाजीकी तरह समझा जाता था, उस युगमें जैनधर्मका पालन करके भी लोग उसके सर्वथा त्यागी नहीं होजाते थे। हाँ, दूसरोंकी अपेक्षा कुछ कमी हो सकती है। ज्यों ज्यों माध्यम उन्नत होता गया त्योंत्यों मद्यमांस का बहिष्कार भी बढ़ता गया।

पूर्वजोंके विषयमें जबतक हम इस प्रकारकी निःपक्ष सत्य विचारधाराको स्वीकार न करलें तब तक हमारी गुजर नहीं है। 'ऐसी बातें प्रकट मत करो' आदि कायरतापूर्ण बातोंसे हम खतरेको मोल लेते हैं। आखिर हम ऐसी बातोंको कबतक छुपायँगे? जबभी कोई दूसरा देखेगा, तभी वह हमारे ऊपर आक्रमण करेगा। उस समय क्या हो-सकेगा? अभी तो हम अपने मुँहसे अपनी असलियत दिखा देते हैं, इससे किसीको कुछ कहनेकी गुंजाइश नहीं रहती क्योंकि अभी हम इसका समन्वय भी करते हैं। परन्तु जब कोई दूसरा इन पोलोंको खोलेगा, तब फिर अगर हम ऐसी बातें कहेंगे तो वह हमारी बहानेबाजीही कहलायगी। उस समय उसमें सौन्दर्य न रहेगा; इतनाही नहीं किन्तु हम धोखेबाज़ तथा मूर्खभी कहलायेंगे।

मैं जैन समाजके पण्डितोंसे, सेठोंसे तथा सम्प्रदायमदकी मूर्त्तियोंसे कहदेना चाहता हूँ कि स्वयं काचके घरमें बैठकर दूसरोंपर पत्थर मत फेंको। दिगम्बर हो या श्वेताम्बर, जैन हो या वैदिक, हिन्दू हो या मुसलमान, सभी मनुष्य हैं। सभीने अपनी अपनी परिस्थितिके अनुसार सुधार किये हैं और सभी सम्प्रदायोंकी साधारण जनता अपने मूल उद्देशको भूलकर अभिमान और मूढ़ताका शिकार बनरही है। इसे अब परधर्मनिन्दाकी शराब पिलाकर बिलकुल पागल मत बनाइये। यदि आपको नेता बनना है या नेतृत्व सुरक्षित रखना है तो उसके लिये भी उपाय हैं और ऐसे उपाय हैं जिनमें ईमानदारी की रक्षा है, विवेककी रक्षा है, आत्मामें शान्ति है। आप लोग अब सम्प्रदायमदकी शराब न पिलाकर सर्वधर्मसमभावका अमृत पिलाइये।

दिगम्बर श्वेताम्बरोंको मांसभक्षी कहें और श्वेताम्बर दिगम्बरोंके शास्त्रोंमें मांसभक्षण खोजनेमें शक्ति बर्बाद करें। जैनी वेदोंकी निन्दा करें और दयानन्दको गालियाँ दें और आर्यसमाजी, जैनियों को मूर्ख नास्तक अश्रद्धालु आदि कहें, यह सब भयङ्कर और असह्य पागलपन है! और वे सबके सब दिन दहाड़े सत्यकी हत्या करें, अन्धश्रद्धाको धर्मके सिंहासन पर बिठलाकर धर्मका आसन तथा नाम कलंकित करें, पक्षपातको निःपक्षताके ऊपर बलात्कार करनेको विवश करें, यह सब क्या है? इन पापोंसे हम अपनी और मनुष्य समाजकी क्या भलाई करसकते हैं?

इनसे अपने धर्मका प्रचारभी नहीं होता। इतने शास्त्रार्थ होते हैं, परन्तु इससे न तो दिगम्बर श्वेता-

म्बर होगये, न श्वेताम्बर दिगम्बर, न आर्यसमाजी जैन, न जैनी आर्यसमाजी। अगर होभी जाँय तो फ़ायदा क्या है? क्योंकि जब सभी एकान्तवादी हैं, तब उससे नाशके सिवाय रक्षाकी कोई आशा नहीं है। अगर धर्मका प्रचारही करना है तो उसके लिये प्रेम और सेवाकी जरूरत है। हाँ, जिज्ञासुओंके लिये वीतराग चर्चा कीजानी चाहिये और उसमें अन्धश्रद्धा और पक्षपातको जगह न रहना चाहिये। हम ब्रह्मचारीजीसे तथा उनके मित्रमंडल से निवेदन करना चाहते हैं कि वे सत्यको छुपानेकी, एकान्तवादके गीत गानेकी, परनिन्दा और आत्मप्रशंसाकी नीतिका त्याग करें; अन्धश्रद्धा और पक्षपातको छोड़कर सत्यकी खोज करें; उसकी खोजमें सहायता करें और सत्यके सामने सिर झुकावें।
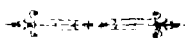
सम्पादकीय टिप्पणियाँ।

सूरतकी एक बालविधवा।

"सूरतमें हरीपरामें रहनेवाले स्व० जैन········ की पुत्री········जो बालविधवा थी, वह पिछले तीन चार दिनसे रहस्यपूर्ण रीतिसे गुम होगई है।········की उमर १२ वर्ष की है। उसकी इच्छा पुनर्विवाह कराने की थी लेकिन सगेसम्बन्धियोंके अनुचित दबावसे उसकी इच्छा पूरी न होसकी। इसलिये पहिले तो उसने आत्महत्या करनेकी कोशिश की थी। पीछे इसतरह गुम होगई। बलाद्वैधव्यकी कुप्रथाके समर्थकोंकी सेवामें समर्पण।"

उपर्युक्त समाचार ता० १३-४-१९३४ के 'तरुण जैन' में प्रकाशित हुआ है। जो लोग कहते हैं कि स्त्रियाँ तो नहीं चाहतीं किन्तु सुधारक योंही चिल्लाया करते हैं, उनके लिये यह समाचार उत्तररूप है। स्त्रियाँ लज्जाशील होती हैं। कुमारियोंका विवाह तो निर्विवाद रूपसे विधेय है; फिर भी वे अपने विवाहका प्रस्ताव नहीं करतीं, तब बेचारी विधवाएँ तो कैसे करेंगी? इसके लिये तो यही उचित है कि जैसे हम कुमारियोंकी शादीका आयोजन करते हैं, उसीप्रकार बालविधवाओंकी शादीका भी आयोजन करना चाहिये।

इस मामलेमें तो लड़कीके अभिभावकोंने बहुतही क्रूरताका परिचय दिया है। जब लड़कीने इच्छा प्रकटकी थी तब तो उन क्रूर जीवोंको अपना कर्तव्य पालन करना चाहिये था। परन्तु उस समय तो इन धर्मढोंगियोंको नाक कटनेका डर लगा होगा; अब जब कि वह लड़की इस तरह भागगई तब शायद इन धर्मंडियोंकी नाक कई हाथ लम्बी होगई होगी!

यदि इन लोगोंने उसका विवाह कर दिया होता तो वह जातिमें रहती, धर्ममें रहती और सुखी बनती तथा कुटुम्बियोंके साम्हने जीवनभर कृतज्ञ रहती। कौन जाने मालूम वह किसके साथ गई होगी और जाते समय उसके हृदयमें कैसी अनन्त वेदना हुई होगी। जिस घरमें, जिस समाजमें, जिस धर्ममें पलकर वह इतनी बड़ी हुई, जिसके बाहर श्वास लेनेका भी जिसे अभ्यास नहीं, उसको सदैवके लिये तिलाञ्जलि देते समय उस भोली बालिकाकी आँखोंसे कितने आँसू बरसे होंगे और उनमें खूनका कितना मिश्रण होगा, इसका पता किसे है? विधवाविवाह के विरोधियोंका जड़ हृदय तो इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता।

यदि उनने लड़कीकी इच्छा पूरी की होती तो उसका आत्मा शान्त और सुखी तो रहा ही होता, साथ ही वह समाजका अंग होती, शक्ति होती। हम अहिंसाके गीत गाने वाले जब इतने भ्रष्ट और क्रूर होगये हैं, तब हमें अपने अस्तित्वको इतिहासकी वस्तु बनाना पड़े, इसमें क्या सन्देह है?

एक दानवीर जैन बन्धु।

ता० २३-१-३४ के हरिजन बन्धुमें महात्मा गाँधीजी के प्रवासका वर्णन छपा है जिसमें एक जैनबन्धुके दानकी चर्चाका उल्लेख है।

"गुरुवायूरसे गाँधीजी कालीकट होकर उत्तर मलाबारमें गये और वहाँ से कालीकट आकर एक दिन कुलपटा हो आये। कुलपटा कालीकटसे पचासमील दूर है और सुन्दर है। इस तालुके में पर्वतप्रदेशके अछूतोंकी संख्या ४२ हज़ार है जबकि उच्चवर्णी कहलाने वाले २८ हज़ार हैं। इन अछूतोंमें १२ उपजातियाँ हैं और इनमें भी न्यूनाधिक अछूतताके भाव पाये जाते हैं। ये लोग खेतों और काफ़ीके बागीचोंमें तीन पैसे दिन पर मजूरी करते हैं।

सभामें ये लोग सबके साथ बैठे थे, परन्तु मुझे कहना चाहिये कि इन लोगोंके पास बैठना साहसका काम है। इनके कपड़े मैलसे काले होगये थे और शरीरमें से भयानक दुर्गंध छूटती थी। इनका मैला शरीर, बिखरे हुए लम्बे लम्बे बाल इस बातकी अच्छी तरह सूचना देते थे कि हमने इन्हें अछूत बनाकर कैसा जंगली बना दिया है। जब तक कपड़े के चिथड़े चिथड़े न हो जाँय तब तक ये लोग उसे पहिनते रहते हैं। इसे धोनेका कामही नहीं। इस गरम प्रदेशमें भी साधारणतः ये पन्द्रह दिनमें स्नान करते हैं। जो छः दिनमें स्नान करते हैं, वे बड़े वैभवशाली समझे जाते हैं। अब कुछ युवकोंने इन लोगोंकी हीनदशा सुधारनेके लिये कमर कसी है।

" इसी गाँवमें एक सुबैया गौंडन नामके जैन ज़मींदार रहते थे। जब तक वे जीवित रहे तब तक इन गरीबोंकी खूब सेवा करते रहे और मरते समय उनने अपनी १६५ एकड़ ज़मीन (१०० एकड़ खेत और ६५ एकड़का बाग) हरिजन सेवाके लिए दे दी। गाँधीजीने कहा—यह कोई ऐसा वैसा दान नहीं है। यह तो महादान है, नहीं तो ऐसे जंगली प्रदेशमें इन लोगोंकी ख़बर कौन लेता ?

"इस ज़मीन पर उस दिन गाँधीजीके हाथसे आश्रम खोले जानेकी क्रिया हुई। वहाँ कुछ हरिजन आकर रहेंगे, परन्तु आश्रम अकेले हरिजनोंका न होगा। कुछ सवर्ण युवकोंने भी उनके साथ रहकर संस्कृत जीवनका पाठ पढ़ाना मंज़ूर किया है।"

आज अछूतोंमें जैनधर्म नहीं है, या यों कहना चाहिये कि जिन अछूतोंने जैनधर्मका पालन किया था वे अछूत न रह कर वैश्य हो गये है, सेठ कहलाने लगे हैं। परन्तु जैनधर्मकी जिस विशेषताकी सहायतासे इनने अछूतताके कलंकको नष्ट किया उसी विशेषताकी ये हत्या कररहे हैं। जगतप्रसिद्ध अछूतोद्धारक महात्मा महावीरके अनुयायी होकर भी उसी महात्माके नामको बट्टा लगा रहे हैं।

आज मंदिरप्रवेशका आन्दोलन चल रहा है। आज कोई अछूत जैन नहीं है, फिर भी कुछ जैन पंडित इसके विरोधमें कोलाहल मचा रहे हैं, और ऐसा नाट्य कर रहे हैं मानो सचमुच ये अछूतोंके मंदिरप्रवेशको धर्मविरुद्ध समझ रहे हों और आशा रखते हों कि अछूत लोग जैनी होकर मंदिर में न घुस आवें।

कोई आदमी अछूतता को मानता है तो माना करे परन्तु कोई अगर नहीं मानना चाहता तो उसको क़ानून से बाध्य करने का किसी को क्या अधिकार है? मंदिरप्रवेश बिल क़ानून के इसी अन्याय को दूर करना चाहता है। वह यह नहीं कहता कि अछूतोंको मंदिरमें ज़बर्दस्ती घुसनेका अधिकार दिया जाय। इस बिलकी तो सिर्फ यही मंशा है कि जो सार्वजनिक हिन्दू मंदिर हैं उनको पूजने वालोंका बहुभाग अगर उनको आने देना चाहे तो इसमें क़ानून बाधा न डाले। सौ आदमियों में से ९९ आदमी चाहते हों कि उन्हें आने दिया जाय, सिर्फ एक आदमी ही उसका विरोध करे तो यह कहाँ का न्याय है कि एक आदमीकी इच्छाके लिये ९९ आदमियोंके अधिकार पर डाँका डाला जाय। इस प्रकार इस न्यायोचित बिलका विरोधकरने वाले अक्षन्तव्य हृदयहीनता का परिचय दे रहे हैं। और जब कुछ जैन पंडित भी इसके लिये शोर मचाते हैं तब हँसी आती है। जब जैनियों में अछूत वर्ग है ही नहीं तब इनको चिल्लाने का क्या हक़ है? इन लोगों की क्रूर मनोवृत्ति का समझना मुश्किल है। इन लोगों की करतूतें देखकर एक जैन के नाते लज्जा से सिर झुका लेना पड़ता है। ख़ैर, इतनी प्रसन्नता अवश्य है कि श्रीमान् सुबैया गौंडन जैन ने १६५ एकड़ ज़मीन अछूतों की सेवा के लिये देकर जैनत्व को चमकाया है। हमारे पंडितों के पापों का प्रायश्चित्त ऐसे ऐसे दानवीर कर रहे हैं इससे जैनसमाज के जीवित रहने की तथा सिर ऊँचा किये रहने की आशा होती है। इन पंडितों को जितना नंगा नाच करना हो भले ही करलें, किन्तु इस तांडव के दिन बहुत थोड़े हैं।

तत्त्वज्ञ और धर्मान्ध।

नर्मदाशंकर देवशंकर महेता गुजरात के इनेगिने विद्वानोंमें से हैं। "हिंद तत्त्वज्ञान नो इतिहास" लिखकर उनने अक्षय कीर्ति प्राप्तकी है। उनकी उदारदृष्टि विद्वानों के लिये भूषण है। उसका एक नमूना देखिये—

" तत्त्वज्ञानकी भिन्न प्रधान श्रेणियाँ गंगा यमुना और सरस्वतीसे उत्पन्न त्रिवेणी के समान हैं। जिसतरह सुंदर स्त्रीकी वेणी जब बलसे गुँथी रहती है, तब उसके मस्तकको शोभा देती है और छूटी छूटी लटें सौंदर्यको लज्जित करती हैं, उसीप्रकार ब्राह्मणोंके बौद्धोंके और जैनों के विचारोंका जो समन्वय नहीं कर सकते उनको मेरी

अल्पमति तत्त्वज्ञ नहीं कहसकती, किन्तु धर्मांध कहती है।"

महेताजीके इन विचारोंको मैं स्याद्वाद, अनेकान्त आदि शब्दोंसे कहता हूँ। जो मनुष्य सच्चे दिलसे सत्य की खोज करेगा वह किसी खास शब्दका उपयोग करे या न करे, परन्तु जो कुछ वह खोजेगा उसमें अर्थभेद न होगा। विद्वानोंका काम मूर्ख जनताको तीतुर और मेढ़ों की तरह लड़ानेका न होना चाहिये, न उनकी तरह स्वयं लड़कर जनताको तमाशा दिखाना चाहिये। विद्वानोंका काम धर्मकी भिन्नताका विषापहरण करके उससे जनता का भला करना है, शान्ति और प्रेमका विस्तार करना है। दिगम्बर जैन समाजके पण्डित अपनी विवेकशक्ति को जगानेका क्या थोड़ा बहुत परिश्रम करेंगे? क्या वे धर्मान्धताको दूर करके तत्त्वज्ञ या सच्चे जैन बनेंगे?
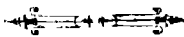
पत्रोंकी प्रतिध्वनि।

परदाप्रथा की भीषणता।

परदेकी प्रथाने हमारे देशकी स्त्रियोंकी जैसी शारीरिक और मानसिक अवनति की है, तथा उनको जैसा डरपोक बनादिया है वह तो सभी जानते हैं, पर बिहार के भूकम्पने इसकी एक और भयंकरताकी तरफ़ हमारा ध्यान आकर्षित किया है। इस भूकम्पमें जिन बीस पच्चीस हज़ार प्राणियोंकी इहलीला समाप्त हुई है, उनमें अधिक संख्या स्त्रियों और बच्चोंकी ही है। कारण यह हुआ कि भूकम्पका धक्का लगने पर पुरुष तो फुर्तीसे बाहर निकल गये, पर स्त्रियाँ परदेकी रक्षाके ख़यालसे सोचतीही रह गईं कि घरसे बाहर पैर रक्खें या नहीं। इतनाही नहीं; ऐसीभी घटनायें सुननेमें आई हैं जिनमें भागती हुई स्त्रियों को बाहर निकलनेसे रोककर जान-बूझकर मृत्युके मुखमें प्रवेश करनेको विवश किया गया। ऐसी एक अभागिनी नारीकी कथा, जो बादमें संयोगवश जीती निकल आई, कलकत्तेके 'राष्ट्रबन्धु' ने प्रकाशितकी है, जिसका एक अंश हम नीचे देते हैं। घटना मुंगेरकी है—

"......तुरन्तही चारों ओर कुहराम मच गया। 'निकलो, निकलो, भूकम्प आया' का गगनभेदी हाहाकार सुनपड़ा। बुढ़िया सास, ननद और बच्चोंको घसीटती हुई बाहर भागी जारही थी। मुझे अपने पीछे भागती देख आँखें तरेरती हुई बोली—'चुपचाप आँगन ही में किसी ओर खड़ी क्यों नहीं रहती? बाहर सर्वत्र पुरुषही पुरुष खड़े हैं। शर्म-हयाभी रखनी चाहिये।' मैं अपने प्राणोंकी आशा छोड़ भारतवर्षमें प्रचलित परदा प्रथाको कोसती हुई वहीं ठिठुक कर प्रकृति देवीका प्रलयंकर नाट्य देखने लगी। मैं उस समय पश्चिमकी ओर खड़ी मौतकी घड़ियाँ गिनती हुई सामनेवाली गगनचुम्बी अट्टालिकाको भयातुर नेत्रोंसे निहार रही थी। आकाश बिल्कुल धूलिधूसरित होगया था। चारों ओरके गिरनेवाले महलोंकी आवाज़ सुनकर प्राण सूख रहे थे। इस समय सामने वाली अट्टालिकाका एक हिस्सा मेरे पूरब वाले बरामदे पर झुका और उसे चूर्णविचूर्ण करता हुआ मुझसे केवल तीन हाथकी दूरी पर आ धराशायी हुआ। मुझे अपने प्राण बचानेका एक उपाय सूझा। तत्क्षण ही मैं उस गिरी हुई दीवारसे सटकर खड़ी होगई, क्योंकि अब उधरसे किसी दीवारके गिरनेका भय न था। अब मेरी आँखें पश्चिम वाले दोमंज़िले शिखर पर थीं। ———पल भरमें ही वह हिस्साभी पूरबवाली गिरी दिवारके सिरसे आटकराया। इसी समय उत्तर दक्षिण वाली चहारदीवारोंने भी गिर कर शेष दोनों भागोंको भली भाँति ढँकलिया। अब मैं एक त्रिभुजाकार खोखले स्थानमें बैठकर आस पासवाले व्यक्तियोंके कराहने और 'मैं जीवित हूँ' 'मैं जीवित हूँ' की हृदयविदारक चिल्लाहट सुनरही थी और बीच बीचमें मैं भीउन्हींके सदृश चिल्लाकर निकाले जानेकी प्रार्थना कररही थी। इन हाय हायका पुकारोंमें अधिकांश पुकार मुझ सरीखी परदानशीन महिलाओंकी ही थी। उस वक्त मैंने जानाकि इस परदेकी कुप्रथाकी चपेटमें पड़कर आज हमारी हज़ारों बहिनोंने घुटघुटकर अपनी जानें गँवाई हैं।"

इसके आठ दिन पश्चात यह महिला किसी प्रकार जीवित निकाली गई और केवल अपने पतिको बचा हुआ देख सकी।

इस घटना पर टीका-टिप्पणी करना निरर्थक है। यह परदेकी भीषणताको स्वयंवही पुकार-पुकार कर कहरही है। समाजसुधारक तो बहुत समय से इसको मिटानेकी चेष्टा कररहे हैं, पर इस बार स्वयं प्रकृतिने हमको चेतावनी दी है। क्या हम इतने जड़ होगये हैं कि इस चेतावनी परभी ध्यान न देंगे और इसकी उपेक्षा करेंगे? —चाँद

अन्तर्जातीय विवाह ।

यदि उलूक सूर्यको बुरा समझे, चोर पुलिस को कोसे और वेश्या धर्मोपदेशकों की निन्दा करे तो यह क्षम्य हो सकता है । मगर विद्वान, शास्त्रज्ञ और पण्डितमन्य पुरुष विजातीय या अन्तर्जातीय विवाहका निषेध करें, यह कितनी अक्षम्य धृष्टता है ! विद्वानों द्वारा, शास्त्रों द्वारा और सामाजिक माँग द्वारा डंकेकी चोट यह सिद्ध हो चुका है कि अन्तर्जातीयविवाह योग्य है, शास्त्रसम्मत है और आवश्यक है; फिर भी हठ, पक्षपात, दुराग्रह या विद्वेषवश उसे कोई निराधार ही ख़राब बताता रहे, यह पहले दर्जेका दयनीय अज्ञान नहीं तो और क्या है ?

विरोधियोंके पास न तो कोई प्रमाण है और न कोई युक्तियाँ, न शास्त्राधार है, न लोकाधार; फिर भी जगह बजगह तालियाँ ठोकते फिरना कहाँकी बुद्धिमानी है ! यह बात सत्य है कि विरोधी जीव भी अन्तरंगसे तो अन्तर्जातीय विवाहको पाप नहीं मानते हैं, मगर बाह्यमें दुराग्रहवश ही विरोध करते हैं; अथवा उनकी आँखोंके सामने यह भूत नाचने लगता है कि 'हम तो पण्डित-पार्टीके हैं, अतः हमारा कर्तव्य तो अन्तर्जातीय विवाह का विरोध ही है !' बस ये निराधार ही गाल बजाया करते हैं या कभी कभी अपनी थोथी कलमसे भी कागज़ काला करते हैं । यह दयनीय हालत देखकर उन विरोधियों पर भी दया आजाना स्वाभाविक है ।

[illegible] दिनकी बात है कि जैन गज़टके अंक २३ में उसके सहसम्पादक पं० किशोरीलालजी शास्त्रीने 'विजातीय [illegible]' नामक एक लेख लिखा है । उसमें बिना आधार और बिना युक्तियोंके विजातीयविवाहका विरोध किया गया है । शास्त्रीजीने संभवतः यह लेख इसी लिये लिखा है कि वे जैन गजटके सहसंपादक हैं; अन्यथा क्या आवश्यक्ता थी ऐसे थोथे लेख लिखनेकी ? आप लिखते हैं कि—

"भविष्यमें भी हमारी समाज इस धर्मविध्वंसक (!) कुप्रथाको अनादरकी दृष्टिसे देखती रहेगी !" मगर लेखकको यह खबर नहीं है कि समाज जब आज विजातीय विवाहको धर्मसंगत स्वीकार कररही है और उसका प्रतिदिन प्रचार बढ़ता जाता है तब आपका भविष्यज्ञान न जाने कहाँ चक्कर लगायगा ! आपके विद्यागुरु न्यायालंकार पं० वंशीधरजी सिद्धान्तशास्त्री इन्दौर और व्याख्यान वाचस्पति पं० देवकीनन्दनजी शास्त्री आदि जिस विजातीय विवाह को डंकेकी चोट शास्त्रीय, धर्मसंगत और समाजोपयोगी सिद्ध कर रहे हैं, तथा आपकी महासभाके प्लेटफार्मपर खुले आम सिंहगर्जना करके शास्त्रार्थके लिये चैलेंज भी देचुके हैं, उसे आप किस बूतेपर बुरा बता रहे हैं ? आप लिखते हैं कि 'ब्यावरकी महासभामें सभी विद्वानोंने विजातीय विवाह को अनुपयोगी और अधार्मिक स्वीकार किया था ।' मगर आप यह क्यों भूलजाते हैं कि पं० अजितकुमारजी शास्त्री, पं० शोभाचन्द्रजी भारिल्ल आदि प्रौढ़ विद्वानोंने बड़ी ही समर्थताके साथ विजातीय विवाहका समर्थन किया था, और ताल ठोककर महासभाकी स्टेजपर खड़े होकर सिंहगर्जना की थी, जब आपके मान्य सभी (!) पण्डितोंका हृदय काँपने लगा था और कुलियामें गुड़ फोड़नेको तैयार हुये थे ! अस्तु ।

इसे जाने दो । हमारे कहनेका तो तात्पर्य यही है कि समाजके स्वीकार करनेपर भी और विद्वानोंके द्वारा घोषित किये जानेपर भी कुछ दुराग्रही लोग अपने पक्षको क़ायम रखनेके लिये अच्छे बुरे प्रयत्न किया ही करते हैं ! अभी कुछ ही समयकी बात है कि कलकत्तामें एक खण्डेलवाल नवयुवकने जैसवाल जैन कन्याके साथ धर्मानुकूल विवाह किया है । उसमें अनेक विवेकी जातीय सज्जन सम्मिलित थे । मगर खेद है कि एकपक्षी खण्डेलवाल पंचायतने उस वीर युवकके बहिष्कारका फ़तवा निकाल दिया है ! उधर दूसरी खंडेलवाल पंचायतने उस वीर युवकको धन्यवाद देकर प्रोत्साहन दिया है । विरोधी पंचायतके अनुगामी फ़ैसलेसे नाराज़ होकर उसके ५ मेम्बरोंने अपनी ही पंचायतके विरोधमें पर्चे निकाले हैं । तात्पर्य यह है कि कुछविरोधी लोग अन्तर्जातीय विवाहके शास्त्रीय मार्गको दबाना चाहते हैं, तब उत्साही वर्ग उसे अमलमें लारहा है । बा० राजेन्द्रकुमारजी को सत्साहस के लिये बधाई है ।

—दिगम्बर जैन।

अछूतोंकी शिकायतें

महात्मा गाँधी जब मद्रासका दौरा कररहे थे तो कुन्नूर नामक स्थानमें तामिल प्रान्तके 'आदि हिन्दुओं' (अछूतों) ने उनकी सेवामें एक मैमोरेण्डम पेश किया था, जिसमें बतलाया गया था कि ऊँची जातिवाले हिन्दू उनके

साथ कैसे-कैसे अन्याय करते हैं। इस मैमोरैण्डम पर ३६ आदिहिन्दू प्रतिनिधियोंके दस्तखत हैं, जिनमेंसे कुछ म्युनिसिपैलिटियों और तालुका बोर्डोंके सदस्य भी हैं। इस मैमोरेण्डमकी १८ शिकायतोंका सार महात्माजीने 'हरिजन' में छापा है जिनमेंसे नमूनेके तौर पर कुछ बातें हम नीचे देते हैं:—

(१) कुछ स्थानोंमें अगर हम छाता लगाकर चलें, चप्पल पहनें, या घुटनोंसे नीची धोती बाँधें तो यह एक बड़ा अपराध समझा जाता है। हमारी स्त्रियाँ यदि ज़ेवर या साफ़ कपड़ा पहिनती हैं तो इससेभी ऊँची जातिवाले बड़ा बुरा समझते हैं।

(२) कुछ यूनियन बोर्डोंमें हमलोगोंको मुर्दा लेकर सड़कपर नहीं चलने दिया जाता, सिर्फ इसलिये कि सड़क पर किसी देवताका मंदिर होता है। इसलिये खेतोंमें होकर जाना पड़ता है। बरसातके मौसिममें जब खेतोंमें घुटनों तक कीचड़ होती है तबभी ऐसाही किया जाता है।

(३) कितनेही यूनियन बोर्डोंमें अछूत जातिके मुखिया जब किसी मामलेकी जाँच—पड़तालको जाते हैं, घोड़े पर चढ़कर सड़कके ऊपर नहीं चलसकते।

(४) अगर हमारे नवयुवक कभी बाइसिकल पर चढ़ते हैं तो यहभी ऊँची जाति वालोंको बड़ा बुरा जान पड़ता है और वे बहुत नाखुश होते हैं। दूरके गाँवोंमें हमको किरायेकी घोड़ागाड़ियों और मोटर लारियोंमें नहीं बैठने दिया जाता।

(५) कितनोही म्युनिसिपैलटियोंने आम लोगोंके लिये जो पाखाने बनवाये हैं उनमें जानेसे हमको ज़बर्दस्ती रोका जाता है। बहुत कुछ कहने-सुनने पर हम लोगोंके लिये अलग पाखाने बनाये गये हैं।

(६) अगर कोई आदि हिन्दु अपने घरके सामने चौकीपर बैठा होता है और कोई ऊँची जातिका हिन्दू सामनेसे निकलता है तो उसे उठकर उसके सामने मस्तक नवाना पड़ता है; अगर कोई आदिहिंदु ऐसा नहीं करता तो उसे बहुत तंग किया जाता है।

(७) कितनेही स्थानोंमें डाकखाने ऐसी जगहोंमें बने हैं जहाँ हमको जानेकी आज्ञा नहीं है। ऐसी दशामें हमको चिट्ठियाँ डालने टिकट-पोस्ट-कार्ड खरीदने या किसी अन्य कामके लिये दूर खड़े रहकर किसी ऊँची जातिवालेसे उस कामको करदेनेकी प्रार्थना करनी पड़ती है।

ये चंद मिसालें दक्षिण भारतके उच्चजातिवालोंकी हृदयहीनता दिखलानेको काफी हैं। यह सच है कि अब ऐसा सब स्थानोंमें नहीं होता, पर जहाँ ऐसा होता है वहाँके उच्चजातिवालोंके लिये यह बड़े शर्मकी बात है। ये सब बातें ऐसी हैं जिनका मनुष्यमात्रको स्वाभाविक अधिकार है। इनसे किसी व्यक्तिको जातिके कारण वंचित रखना घोर अन्याय ही नहीं, मनुष्यताके विपरीत है। हमको विश्वास है कि अब ये बातें ज्यादा दिन तक क़ायम नहीं रहसकतीं। अगर ऊँची जातिवाले राज़ीसे इनको नहीं बदलते तो ज़माना उनको लाचार करके ठीक रास्ते पर लायेगा। —चाँद।

धर्म।

कवि और तत्वज्ञ दोनोंका समन्वय करके धर्मने ज्ञानकी साधनाके लिये जीवनकी शुद्धि रूपी जीवन-साधनाकी आवश्यकता स्वीकार की है। जीवनही ज्ञानकी प्राप्ति करनेका उत्कृष्ट साधन है, तथा ज्ञानकी प्राप्ति होनेके बाद जीवनका उपयोग भी जीवनके विकासके लिये ही है। इतना समझनेके पश्चात्, कविके आत्मदर्शनका स्फुरण तथा तत्वज्ञानीका पृथक्करण इन दोनों तरहसे साक्षात् करनेका मार्ग धर्मने ही अख़्तियार किया है।

इसमें जीवनकी शुद्धिकी स्पष्ट कल्पना पहले पहल नहीं हुई। शुद्धिके नाम पर जीवनको शून्य रूप—रहस्य रहित बतानेवाले बहुतेसे पंथोंका आविर्भाव हुआ। जीवनमें संयमकी आवश्यकता है, तपकी आवश्यकता है और वीर्यकी आवश्यकता है। संयम, तप और वीर्यको स्थान देनेके बदले कुछ लोगोंने जीवनको जीवनसे विमुख करनेका प्रयत्न किया। आपने साधुओंमें इसके बहुतसे उदाहरण मिलते हैं। कीमिया, जड़ीबूटी, ज्योतिष और मंत्रसाधना ऐसी ऐसी विचित्र प्रवृत्तियाँ साधुओंमें दृष्टिगोचर होती हैं अवश्य, परन्तु साधुओंके शून्य आदर्शके साथ इनका मेल नहीं खाता। जिस ईश्वरने मनुष्यका वृक्षवनस्पतिसे पृथक्करण किया है उसी जीवनको फिरसे स्वीकार करना ईश्वरका

पराजय करना है। इसमें धार्मिकता नहीं है, फिर धर्मकी विजय तो कहाँसे हो ?

धर्मकी सच्ची प्रवृत्ति मनुष्य जीवनके क्षुद्र प्रवाहोंको या तो गंभीर बनानेके लिये या उनको मोड़कर बलवान और वेगवान बनानेके लिये है।

तत्वज्ञानमें अनेक वाद उत्पन्न होते हैं। धर्म एक सजीव वस्तु होनेसे इसमें अनेक पंथ और साधनाओंका प्रादुर्भाव होता है। जब तक ये पंथ और साधनक्रम सजीव लोगोंके अधिकारमें रहते हैं तब तक ये सब प्रयोगरूप ही हैं यह बात भूलनी नहीं चाहिये। परन्तु पीछेसे जड़ लोग इन प्रयोगोंको एक आदर्शरूप दे देते हैं, तथा नवीन और अधिक अनुभवका लाभ उठानेसे इन्कार करते हैं। पंथों की वृद्धिहो, इसमें कुछ हानि नहीं है परन्तु इन प्रयोगोंके परिणामोंके विनिमय करनेकी तैयारी न्यायबुद्धिपुरस्सर होनी चाहिये। बुद्ध भगवानने एकांतिक तपस्याके मार्गका अनुभव करके इसकी व्यर्थता प्रगट की। बहुतसे लोगोंने इस प्रयोगके इस निचोडको ही अंतिम समझा तथा बहुतोंने इसका बिलकुल ही विरोध किया। जिस प्रकार भौतिक शास्त्री तटस्थ भावसे पहले किसी सिद्धांतकी स्थापना करते हैं, बाद में उसे छोड़ देते हैं, फिर खोज करके उसमें सुधार करते हैं तथा अपने अनुभवको ही मार्गदर्शक समझते हैं, उसी प्रकारकी पद्धति धर्मके मार्गमें भी स्वीकारकी जानी चाहिये। परन्तु यह मार्ग तो व्यक्तिनिष्ठा, मताग्रह, गुट्ट और पक्षाभिमानसे व्याप्त है और इसमें सत्ताका लोभ आ जानेसे सभी धर्म सड़ गये हैं। धर्म यदि जीता न रहे तो वह समाज जीवनको नष्ट कर डालता है। धर्म जैसी उग्र वस्तुकी विकृति नाशक ही है।

—दत्तात्रय बालकृष्ण कालेलकर
("प्रस्थान" से अनुवादित)
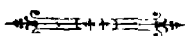
साम्प्रदायिकता का दिग्दर्शन।

(लेखक—श्रीमान् पं० सुखलालजी)
(अनुवादक—श्रीयुत जगदीशचंद्रजी एम० ए०)

मत्स्य पुराण।

सूत—सोमपुत्र बुधका पुत्र पुरुरवा था। पुरुरवाके सौंदर्यसे आकर्षित होकर उर्वशीने उसे वरण किया। धर्म, अर्थ, काम इन तीनोंने अपने अपने अनुरूप पुरुरवाको वर और शाप दिया। पुरुरवासे उर्वशीके आठ पुत्र हुए। उनमें दीर्घ आयुके पांच वीर पुत्र हुए। इनमेंसे तीसरे पुत्र रजिके सौ पुत्र हुए। रजिने नारायणकी आराधनाकी। आराधनासे प्रसन्न होकर नारायण ने उसे वर दिया और रजि विजयी हुआ। तीन सौ वर्षतक देवासुर संग्राम चलता रहा। प्रहलाद और शक्रके इसभयानक युद्धमें किसीकीहारजीत नहीं हुई। उस समय देव और असुर ब्रह्माके पास गये और उन्होंने पूछाकि 'विजयी कौन होगा'? ब्रह्माने जवाब दिया कि—जिस पक्ष में रजि होगा, वह पक्ष जीतेगा। अन्तमें देवोंने रजि को अपनी ओर मिला लिया। रजिने देवोंकी सहायताकी जिससे इन्द्र प्रसन्न होकर स्वयंही रजिका पुत्र बन गया। बादमें इन्द्रको राज्य सौंप कर रजि तप केलिये चला गया। पीछेसे रजिके पहले सौ पुत्रोंने इन्द्रका वैभव, यज्ञभाग, और राज्य यह सब छीन लिया। इससे इन्द्रने दुखी होकर बाचस्पति केपास जाकर रजिके पुत्रों की शिकायतकी और उसकी सहायता माँगी।

बृहस्पतिने ग्रहशांति और पौष्टिक कर्मद्वारा इन्द्रको बलिष्ट बनाकर वेदबाह्य जैनधर्मके आश्रयसे उन रजिके पुत्रोंको मोहित किया। उसने सब राजपुत्रों को वेदत्रयसे भ्रष्ट किया तथा इन्द्रने वेदबाह्य और हेतुवादी रजिपुत्रोंको वज्रसे मार दिया (आनन्दाश्रम० अ. २४, श्लोक २८—४८)

अग्नि पुराण।

अग्नि कहती है—अब पढ़ने वालों और सुनने वालोंको लाभ पहुँचाने वाले बुद्धावतार को कहूँगी। पहले देव और असुरोंमें युद्ध हुआ जिसमें देवोंकी हार हुई। रक्षाके लिये देवलोग ईश्वरके पास गये। ईश्वर स्वयं मायामोह रूपी शुद्धोदन पुत्र बना।

इस शुद्धोदन पुत्रने दैत्योंको वेदधर्म छुड़ाकर मोहित किया। वेदधर्मको छोड़नेवाले ये सब दैत्यही बौद्ध बने। बौद्धोंके कारण दूसरे भी वेदबाह्य होगये। उसी माया मोहने शुद्धोदन पुत्रका रूप छोड़कर आर्हतका रूप धारण किया और दूसरोंको आर्हत् बनाया इस प्रकार सब वेदसे विमुख पाखंडी होगये और वे नरकके योग्य काम करने लगे। (आनंदाश्रम० अ० १६ श्लोक १-४)

वायु पुराण।

बृहस्पति—व्यवस्थित श्राद्धको नग्नादि नहीं देख सकते हैं, कारण कि पदार्थोंपर उनकी दृष्टि पड़नेसे वे पिता अथवा पितामहके पास नहीं पहुँचते।

शंयु—हे द्विजवर, नग्नादिका क्या अर्थ है? यह मुझे यथार्थ और निश्चित रूपसे कहो। बृहस्पति कहते हैं कि सब प्राणियोंकी रक्षा करने वाली वेदत्रयीको छोड़नेवाले द्विज नग्न हैं।

पहिले देवासुरके युद्धमें हारे हुए असुरोंने ब्राह्मण आदि चार वर्णोंको पाखंडी बनाया। यह पाखंडसृष्टि ब्रह्माने नहीं की थी।

दो श्राद्धोंमें भोजन करनेवाले, निर्ग्रंथ, शाक्य पुष्टिको कलुषित करनेवाले ऐसे जो लोग धर्म का अनुकरण नहीं करते हैं, वे ही नग्नादि हैं। (बड़ौदा देशी शिक्षाखाता तरफ़से प्रकाशित वायु पु० पृ० ६९४—६९५)

शिवपुराण।

कार्तिकेयने तारकासुरको मारा। उसकेबाद तारकासुरके पुत्रने दारुण तप किया। इस तपोनुष्ठानसे प्रसन्न होकर जब ब्रह्माने तारकपुत्रसे वर माँगनेको कहा, उस समय तारकपुत्रने कहा कि मैं तीन पुरोंका आश्रय लेकर पृथ्वी के ऊपर विचरूँ तथा जो एकही बाणसे इन तीनों पुरों का नाश करसके, वही मेरा अंत करनेवालाहो। दूसरा कोई मुझे न मार सके। इस वरको ब्रह्माने स्वीकार किया, तथा मयदानवसे तीन उत्तम पुर तैयार कराके इसे दिये। यह तारकपुत्र इनमें जाकर रहनेलगा और इन पुरोंके आश्रयसे तथा वरदानसे बहुत बलिष्ठ होगया। उसके तेजसे इन्द्रादि सब देव फीके पड़ गये। वे दुखी होकर ब्रह्माके पास गये और अपने दुखका वर्णन किया।

ब्रह्माने कहा कि—मेरे द्वारा ही अभ्युदयको प्राप्त करने वाले त्रिपुरराज का मेरे हाथसे ही नाश कैसे किया जासकता है? इसलिये तुम शिवके पास जाओ। देव शिवके पास गये। शिव ने भी ब्रह्माकी तरह उत्तर दिया और कहा कि-यह त्रिपुरपति पुण्यशाली है, इस कारण उसका नाश नहीं होसकता। इस उत्तर से दुखी होकर देव लोग विष्णुके पास गये। विष्णुने भी शिव की तरह उत्तर दिया। परन्तु जब देव बहुत खिन्न होगये, उस समय विष्णुने फिर विचार किया और अन्तमें यज्ञोंका स्मरण किया। यज्ञ आये और विष्णुकी स्तुति करने लगे। भगवान् विष्णुने इन्द्रादि देवोंको कहा कि इस उपसद् यज्ञसे परमेश्वर (शिव) की पूजा करो। उसीसे त्रिपुर जय होगा। विशेष विचार करके फिर विष्णुने देवोंसे कहा कि—यह असुर निष्पाप है, निष्पाप को मारना शक्य नहीं। कदाचित् यह पापी भी हो तो भी उसे मारना अशक्य है। कारण कि वह ब्रह्माके वरसे बलिष्ट हुआ है। वह केवल रुद्रके प्रभावसे मारा जासकता है। ब्रह्मा, देव, दैत्य अथवा दूसरे भी ऋषि मुनि शिवकी कृपा बिना इसे नहीं मार सकते। एक

शंकरही लीलामात्रमें यह काम कर सकते हैं। इस शंकरके एक अंश मात्रके पूजनसे ब्रह्माने ब्रह्मत्व देवोंने देवत्व और मैंने विष्णुत्व प्राप्त किया है। इसलिये हमी शिव के पूजनसे, लिंगार्चन विधिसे और रुद्रयागसे हम त्रिपुर को जीतेंगे। बादमें विष्णु और देवोंने मिलकर उपसद यज्ञसे शिवकी आराधना की। उस समय हज़ारों भूतगण अनेक प्रकारके शस्त्रास्त्रों से सज्जित होकर सामने आखड़े हुए और उन्होंने नमस्कार किया। इन प्रणत भूतगणों को हरि (विष्णु) ने कहा कि - दैत्योंके तीन पुर तोड़ फोड़कर जलानेके बाद तुम जासकते हो। विष्णु शिवको प्रणाम करके गणोंको सामने देखकर विचारमें पड़े कि क्या करूं? उन दैत्यों का बल नष्ट करके देवों का कार्य किस तरह सिद्ध करूं? कारण कि अभिचार कर्मसे धार्मिक का नाश नहीं हो सकता। ये त्रिपुरवासी सब दैत्य तो धार्मिष्ठ ही हैं और तप धर्म के बल से ही अवध्य बने हैं। कितना ही महान् पाप किया हो, शिवके पूजनसे उसकी निवृत्ति होजाती है। शिव पूजासे महान् भोग सम्पत्ति की प्राप्ति होती है। ये सब दैत्य लिंगपूजा परायण होनेसे वैभवशाली बने हैं। इसलिये मैं अपनी मायासे उनके धर्म में विघ्न करके उनके विनाशके लिये त्रिपुरका ध्वंस करूंगा। इस प्रकार विचार कर भगवान् विष्णुने दैत्योंके धर्ममें विघ्न उपस्थित करने के लिये निश्चय किया। जबतक वेदधर्म, लिंगपूजा, श्रुतिविहित स्नान, दान आदि धर्मकृत्य रहेंगे, तबतक उनका नाश होने वाला नहीं है। यह निश्चय करके विष्णुने देवोंको अपने अपने स्थानको जाने की आज्ञा दी, तथा स्वयं सर्वपापोंके नाश करने वाले इस देवोंके कार्यके लिये उपाय आरंभ किया। यह उपाय कौनसा है, वह सुनो।

सूत—महातेजस्वी मायावी विष्णुने दैत्यों के धर्ममें विघ्न करनेके लिये अपने शरीरसे एक मायामय पुरुषकी रचनाकी। यह मायामय सिर मुँडाकर, मलिन वस्त्र धारण कर, कुण्डीपात्र युक्त होकर हाथमें माला धारण कर पगपग पर माला जपता हुआ, वस्त्रयुक्त हाथको निरंतर मुँहके ऊपर रखकर धर्म (धर्मलाभ) बोलता हुआ विष्णुको नमस्कार करके खड़ा होगया। उक्त रूपवाले मायामय पुरुषने हाथ जोड़कर विष्णुको कहा कि हे अरिहन्! हे पूज्य! कहिये मेरा क्या कर्तव्य है? यह सुनकर विष्णुने कहा कि हे पुरुष! जिस कामके लिये मैंने तुझे उत्पन्न किया है, वह कहता हूं। तू ठीक ठीक समझले। तू मेरेही शरीरसे उत्पन्न हुआ है, इसलिये तुझे मेराही काम करना योग्य है। तू मेराही है। इस कारण हमेशा पूजा जावेगा। हे मायामय पुरुष! इस मायावी शास्त्रको ले। यह शास्त्र १६००० प्रमाण है। यह श्रौतस्मार्त विरुद्ध और वर्णाश्रम व्यवस्थासे रहित है: आज लोकमें ही (परलोक में नहीं) स्वर्ग और नरक होनेका विश्वास करानेवाला है और वेदभ्रष्ट और कर्मवादयुक्त है। इस शास्त्रका तेरे द्वारा विस्तार होगा। मैं तुझे सामर्थ्य देता हूं, इससे तू नये शास्त्रकी भी रचना कर सकेगा। वश्य और अवश्य करने वाली अनेक माया, रोधन, अरोधन (आविर्भाव तिरोभाव), इष्टानिष्ट प्रदर्शन, अनेक प्रकार की पिशुन कल्पना और दूसरे विचित्र कार्य, ये सब तू कर सकेगा। विष्णुके इस कथनको सुन कर मायामय पुरुषने हरिको प्रणाम करके कहा कि—जो आज्ञा हो कहिये। उसके बाद विष्णुने इस पुरुषको मायामय सूत्र (शास्त्र) का उपदेश देकर उसे पढ़ाया और कहाकि तू इस शास्त्रको त्रिपुरवासी दैत्योंको पढ़ाना। विशेष रूपसे विष्णुने कहाकि इस लोकमें श्रौतस्मार्त धर्म प्रचलित है। परन्तु तू इस शास्त्र द्वारा उसका

नाश करना, कारण कि उसीसे दैत्योंका विनाश शक्य है।

हे मायामय पुरुष ! इस प्रकार तू नये धर्म से त्रिपुरोंका नाश करके कलियुग के आने तक मरुदेशमें जाकर रहना। कलि आने पर तुरंत ही अपने धर्मका प्रचार करना। मेरी आज्ञा है कि यह तेरा धर्म शिष्य, प्रशिष्य आदि परिवार द्वारा बहुत विस्तारको प्राप्त होगा। उसके बाद उस मुण्डीने विष्णुकी आज्ञानुसार चार शिष्य बनाये और उन्हें मायामय शास्त्र पढ़ाया। मुण्डी की तरह उसके शिष्य भी विष्णुको नमस्कार करके खड़े हुए। इसपर विष्णुने उनपर प्रसन्न होकर कहा कि तुम धन्य हो। मेरे आदेशसे जैसे तुम्हारे गुरु हैं वैसे ही तुम लोगभी होगे। हाथमें पात्र और मुँहपर कपड़ा (मुँहपत्ति) रखनेवाले मलिन कपड़ा पहरने वाले, अपभाषी, धर्मलाभ परमतत्व है इस प्रकार बोलनेवाले, वस्त्र के टुकड़ेसे बनी हुई मार्जनी (झाड़ू) को धारण करनेवाले, ऐसे इस पाखंड धर्मके आश्रित हुए चार मुण्डी पुरुषोंको विष्णुने हाथमें लेकर उनके गुरु मायामय पुरुषको सौंपा और कहाकि ये चारोंभी तेरे जैसे हैं। तुम सब मेरेही हो। पूज्य, ऋषि, यति, आचार्य, उपाध्याय ये तुम्हारे आदि नाम होंगे। तुम लोग मुझे अरिहन् नामसे कहना और इस नामका ध्यान करना। उसके बाद शिष्यों समेत इस मायामयने त्रिपुरमें प्रवेश करके माया प्रगट की और पासके बनमें शिष्यों सहित जाकर मायावियोंको भी मोह उत्पन्न करनेवाली माया उत्पन्नकी। जो लोग उस बन में दर्शन अथवा समागमके लिये गये वे सब मायामयके पास दीक्षित होगये। विष्णुकी आज्ञा से नारदने भी उस मुण्डीके पास दीक्षा ली, तथा त्रिपुरमें प्रवेश करके त्रिपुर स्वामी दैत्यराज से नारदने निवेदन किया कि यहाँ कोई यति आये हैं। मैंने बहुतसे धर्म देखे हैं परन्तु उसके जैसा कोई दूसरा धर्म नहीं है। इसके सनातनधर्म को देखकर मैंने उसकी दीक्षा लेली है। तेरी इच्छा हो तो तू भी दीक्षा लेले। नारदके इस कथनको सुनकर त्रिपुरपति विद्युन्माली मुण्डीके पास गया। उसने सोचा कि जि के पास नारदने दीक्षा ली है, उसके पास मुझे भी लेना चाहिये। उस राजाने मुण्डीकी मायामें फँसकर कहाकि मुझे दीक्षा दो। यह सुनकर मुण्डीने कहाकि-हे राजन! मैं तुझसे जो माँगता हूँ उसे स्वीकार कर और वह यह कि तू मेरे वचन अन्यथा नहीं करना। राजा मुण्डीके जाल में फँसगया और उसने स्वीकृति देदी। अब मुण्डीने विद्युन्मालीको बुलाकर कहाकि-हे राजन! तू मेरे पास आ और इस मंत्रको सुन। यह कहकर मुँहपर से वस्त्र हटाकर मुण्डी अपने सिद्धांत राजाको इस प्रकार सुनाने लगा कि जिससे उसके धर्मका नाश हो। मुण्डीने राजा को दीक्षा लेनेके वास्ते कहा। फौरनही उसने तथा क्रम क्रमसे सब त्रिपुरवासियोंने मुण्डी के पास दीक्षा ली, तथा इस मुनिके शिष्य, प्रशिष्योंसे सारा त्रिपुर भरगया।

विष्णुकी आज्ञा से मायामोहने स्त्री-धर्मका और श्राद्धधर्मका खंडन किया तथा शिवपूजा और विष्णुके यज्ञभागोंका खंडन किया। स्नान, दान, तीर्थ आदि सब वेद धर्म उसने दूर किये। त्रिपुरमें अलक्ष्मी (अवनति) बढ़ने लगी, तथा ब्रह्माकी कृपासे जो लक्ष्मी आईथी वह चली गई। नारदने विष्णुकी मायासे दैत्योंकी बुद्धिव्यामोह उत्पन्न किया। इस मायामोह पुरुष जैसाही नारद था। इस कारण श्रौतस्मार्त धर्मका नाश हुआ और विष्णुने पाखंड धर्मकी स्थापनाकी।

दैत्योंमें शिवकी पूजाका त्याग हुआ, लिंग पूजा नष्ट हो गई, स्त्री-धर्मका नाश हुआ और दुराचारकी स्थिरता हुई। अब विष्णु अपनेको

कृतकृत्य समझते हुए देवोंको साथ लेकर शिव के पास गये और उसकी स्तुतिकी। देवोंने भी शिवकी स्तुतिकी और कहा कि विष्णुकी माया से दैत्य लोग मोहको प्राप्त हुए हैं। हे शिव! अब उनका नाश करो और हमारी रक्षा करो। शिवने कहा कि मैंने देवोंका कार्य तथा विष्णु और नारदका महाबल जान लिया है। मैं दैत्योंका नाश करूँगा। क्रम क्रमसे शिवने त्रिपुर को जला दिया। इसमें जो देव रुद्रकी पूजा करते थे, वे गणपति होगये। अन्तमें पहला मुण्डी आया और ब्रह्मा, विष्णु आदि देवोंको नमस्कार करके बोला कि मैं क्या करूँ? उन्होंने उत्तरमें कहा कि-जाओ, कलियुग पूरे होने के समय तक तुम मरुदेशमें रहो। उनके आदेशके अनुसार मुण्डी मरुदेशमें गया तथा दूसरे देव अपने अपने स्थानको गये। (बंगाली आवृत्ति ज्ञान संहिता, अ० १९-२०-२१-२२)

विरोधी मित्रोंसे।

(१७)

आक्षेप ४८—यदि नवीन परिस्थितिके अधिक अनुकूल होने निरोगताके बाद पैदा होनेवाली बीमारी अधिक अनुकूल कहलायी। नयेनये धर्म अनुकूल कहलायेंगे। प्राचीन होनेसे कोई चीज विकृत होती हो तो सिद्धोंमें भी विकार होना चाहिये, तथा इससे नवीनता विकृत कहलाई। प्राचीनकर्तासे अगर नवीनकर्ताका अनुभव अधिक हो तब तो यही कहना चाहिये कि आप भगवान महावीरसे भी बड़े कहलाये। यदि यह ठीक है तो आज कलके कर्ता बतावें कि हज़ार वर्ष बाद क्या होगा और पार्श्वनाथके पहिले क्या था?

समाधान—यहाँ आक्षेपकने मेरे आधे वक्तव्यको छुपाकर जो अनर्थ किया है, वह अक्षन्तव्य है। जो शब्द छुपाये गये हैं उनको सामने रखदेनेसे आक्षेपका बहुत कुछ समाधान होजाता है। वे शब्द ये हैं—

"जहाँ सत्यता असत्यताका निर्णय न होता हो वहाँ प्राचीनताकी अपेक्षा नवीनताको अधिक महत्त्व देना चाहिये।"

"मेरा यह कहना नहीं है कि जितना नवीन है वह सब अच्छा है परन्तु प्राचीनकी अपेक्षा नवीनको अच्छा होनेका अवसर अधिक है। होसकता है कि किसी नवीन में अधिक अवसरका ठीकठीक पूरा उपयोग न हो और किसी प्राचीनमें कम अवसरका भी उचित उपयोग हो; इसलिये कोई प्राचीन किसी नवीनकी अपेक्षा अच्छा हो जाय, परन्तु व्याप्ति नहीं बनसकती। प्राचीनताके मोह ने अनेक असत्यताओं और अनर्थोंको जन्म दिया है इसलिये इस विषयका पक्षपात सर्वथा हेय है।"

इस वक्तव्यसे स्पष्ट है कि मैंने व्याप्ति नहीं बनाई है किन्तु इतना कहा है कि नवीनमें अधिक अवसर है। इसलिये व्याप्तिका व्यभिचार बतलाना व्यर्थ है। वह तो मैंने भी बतलाया है। ऊपर मैंने यह भी कहा है कि जहाँपर चुनावके दूसरे साधन न हों वहाँपर नवीन प्राचीनमें नवीनका चुनाव करना चाहिये। आक्षेपकने जो बीमारीका उदाहरण दिया है, उसमें अच्छा बुरापन जानने के साधन स्पष्ट हैं। इसके अतिरिक्त जहाँ विभावरूप परिणतियाँ हों अर्थात विकार होता हो, वहाँ नवीन प्राचीनताका विचार किया जाता है। सिद्धोंमें विभाव परिणतिही नहीं, इसलिये वे नवीनता प्राचीनताके विचारके बाहर हैं। मेरा अनुभव भगवान महावीरसे ज्यादः नहीं है, इसका कारण यह है कि मैं उतना त्याग और परिश्रम नहीं करसका हूँ। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि भगवान महावीरने जितना त्याग और परिश्रम उस युगमें किया था उतना अभी करते तो उससे अधिक योग्य होते, क्योंकि उस युगकी अपेक्षा आज साधन बहुत हैं।

हज़ार वर्ष बाद क्या होगा और कल क्या होगा आदि ज्योतिषके नामपर चलती धोखेबाज़ियोंकी कसौटी पर अनुभवकी परीक्षा नहीं होती। पहिलेके भोले लोगों को भुलानेके लिये ये चालें थीं। आजकल न तो इनकी ज़रूरत है और न इन्हें उतनी सफलता मिलती है। अनुभव की उपयोगिता लोगोंकी आँखोंमें धूल झोंकनेमें नहीं है, किन्तु कल्याणकारी सत्यकी खोज करनेमें है।

आक्षेप ४९—एक जगह आप लिखते हैं कि "जैनधर्मके सबसे महान् जीर्णोद्धारक भगवान महावीर थे"।

दूसरी जगह लिखते हैं कि "मालूम होता है कि उनके पास किसी दिन कुछ पुरुष आये और उनने समाजकी दुर्दशा की बात कही और कहा कि आप किसी ऐसे तीर्थकी स्थापना कीजिये जिनसे इन अत्याचारोंका नाश होजाय।" इस प्रकार एक जगह जीर्णोद्धारक कहना दूसरी जगह स्थापक कहना, क्या परस्परविरुद्ध नहीं है ?

समाधान—मालूम होता है कि आक्षेपकको 'धर्म' और 'तीर्थ' का भेद नहीं मालूम है। तीर्थ तो धर्मका शरीर है। विद्यालयकी संस्थापना करना जैसे विद्याकी संस्थापना नहीं है उसी प्रकार तीर्थकी स्थापना धर्मकी स्थापना नहीं है। महावीर तीर्थंकर थे, धर्मंकर नहीं। इसलिये दोनोंमें कुछ विरोध नहीं है।

आक्षेप ५०—जैनधर्म हरएक प्राणीका स्वभाव है, वह अनादि है, ऐसी हालतमें जीर्ण होनेकी सम्भावनाही मिथ्या है फिर उसका उद्धार कैसा ?

समाधान—जैनधर्म यदि प्राणीका स्वभाव है तब तो इसके प्रचारके लिये कोशिश न करना चाहिये, न ग्रंथ बनाना चाहिये, न विद्यालय। जिन तीर्थंकर और आचार्योंने इसके प्रचारके लिये उद्योग किया, वह व्यर्थही किया है। यदि कहाजाय कि है तो यह स्वभाव, परन्तु यह स्वभाव कर्म आदिने विकृत करदिया है, तब यह जैन धर्मकी जीर्णता कहलाई जिसके उद्धार करनेकी ज़रूरत है। ऋषभ अजित आदि तीर्थंकरोंके समयमें एक समय ऐसा आता था जब जैनधर्मका विच्छेद हो जाता था-ऐसा जैन शास्त्रोंमें ही उल्लेख है। परन्तु आक्षेपकके मतानुसार यह उल्लेख झूठा कहलाया क्योंकि स्वभावका विच्छेद नहीं होसकता। इस दृष्टिसे भारतमें, यारोपमें, अमेरिकामें आर्योंमें, म्लेच्छोंमें, पशुओंमें, निगोदियोंमें, एकभी प्राणी ऐसा न होगा जो जैनी न हो, क्योंकि स्वभावरहित वस्तु नहीं होती, और जैनधर्म तो स्वभाव है। आक्षेपक या तो व्यावहारिक भाषा नहीं समझते अथवा किसीभी तरह विरोध करनेके लिये नकली नासमझीका परिचय देते हैं। असत् का उत्पाद नहीं होसकता आदि बातेंभी हास्यास्पद हैं, क्योंकि यह सिद्धान्त द्रव्यदृष्टिसे है नकि पर्यायदृष्टिसे। जैनधर्म कोई द्रव्य नहीं, परिणति विशेष है।

आक्षेप ५१—आपने, भगवानके जन्म समय जो देवगणोंका आना शास्त्रोंमें लिखा है, उसपर सीधे कुल्हाड़ी का प्रहार किया और इतना तक लिखडाला कि—'भक्त लोगोंने भगवानके जीवनपर इतने आवरण डाल दिये कि अगर दूसरे प्रमाण उनके अस्तित्वके साधक न होते तो भगवानका व्यक्तित्व ही लुप्त होजाता' परन्तु ईसा और मुहम्मद परभी ये आवरण थे, फिर उनका व्यक्तित्व क्यों लुप्त न हुआ ?

समाधान—अगर अतिशयोंके सिवाय और कोई ज़बर्दस्त प्रमाण न होता तो इनका व्यक्तित्वभी लुप्त होजाता। इन लोगोंने अपने समयमें समाजका बहुत हित किया और वे एक सम्प्रदायके निर्विवाद संस्थापक थे इसलिये उनका व्यक्तित्व बचा रहा। इन लोगोंकी अपेक्षा महावीरके व्यक्तित्व लोपकी सम्भावना कुछ अधिक भी थी। इसके तीन कारण और हैं। (१) ये ईसा और मुहम्मदसे बहुत पुराने हैं, उस समयका इतिहास बहुत धुँधला और अल्प उपलब्ध होता है (२) जैन लोग महावीरको जैनधर्मका संस्थापक नहीं मानते इसलिये जैनधर्मको देखकर महावीरका अनुमान करना कठिन होता है (३) महावीरके समयमें और उसी प्रान्तमें और छः श्रमण तीर्थंकर प्रचार करते थे, इससे इतिहासखोजियों को भ्रम होजाता है। यह तो सौभाग्य समझिये कि अतिशयोंके हटादेने परभी इतनी सामग्री बची रहती है जिससे महावीरका व्यक्तित्व बचा हुआ है।

आक्षेप ५२—सब लोग देवागम मानते थे इसलिये जैनियोंका देवागम आप मिथ्या मानते हैं। तब सब लोग तीर्थंकर मानते थे तो जैनियोंका तीर्थंकरभी आप न मानिये। दस आदमियोंके झूठे रत्न देखकर एकके सच्चे रत्नको भी उन्हींकी तरह झूठा बतला देना क्या पारखियोंका काम है ?

समाधान—नकली मालकी दूकानमें असलीमाल पर तब तक विश्वास नहीं किया जासकता जब तक कोई असाधारण प्रमाण न मिले। देवागमके विषयमें सिर्फ यही प्रमाण है कि शास्त्रोंमें लिखा है; परन्तु यह प्रमाण सभीके यहाँ है। इसके अतिरिक्त और कोई प्रमाण न दूसरेके पास है, जैनियोंके पास तीर्थङ्करके अस्तित्वमें अनुमान प्रमाण ज़बर्दस्त प्रमाण है। तीर्थंकरका अर्थ आक्षेपक कुछ अद्भुत ही समझते हैं। जो किसी धर्मसंस्थाकी स्थापना करते हैं वे तीर्थंकर हैं। महावीर, बुद्ध, गोशाल, ईसा मुहम्मद, राममोहनराय, दयानन्द आदि तीर्थंकर ही थे। जब इनके सम्प्रदायको हम तीर्थ कहते हैं तब उन्हें तीर्थंकर कहनेमें

लजा किस बातकी ? तीर्थङ्कर कोई देवागमके समान अद्भुत और अप्रामाणिक वस्तु नहीं है तथा तीर्थरूप हेतु से तीर्थङ्कर रूप साध्यकी सिद्धि होती है।

आक्षेप ५३—आपने अनंत तीर्थंकर मानकर जैन धर्मको अनादि मान लिया, तथा जीवमोक्ष जाते जाते एक दिन समाप्त होजांयगे, इस शङ्काका भी समाधान कर लिया।

समाधान—दूसरे अध्यायके प्रारम्भमें ही मैंने जैन धर्मको स्पष्ट शब्दोंमें अनादि स्वीकार किया था, इतनाही नहीं किन्तु प्रत्येक धर्मको अनादि माना था। परन्तु जल तत्वको अनादि मानलेनेसे तालाब और कूप अनादि नहीं होजाते। धर्म संस्था—तीर्थ—सम्प्रदाय आदि तालाब कूपके समान सादि सान्त हैं। धर्म, जलकेसमान अनादि है। अनंत तीर्थंकरोंसे मोक्षका कुछ सम्बन्ध नहीं है। तीर्थंकरका काम तीर्थकी स्थापना करना है, मोक्षजाना नहीं। यदि अनंतकाल तककी स्थिरता देनेवाला मोक्ष सिद्ध नहीं होसके—जैसाकि नहीं होरहा है—तो तीर्थ-ङ्करभी कहाँसे मोक्ष प्राप्त कर सकेंगे ? किसी तरहके मोक्षके अभाव होजानेसे तीर्थ या तीर्थंकरका अभाव सिद्ध नहीं होता।

पं० इन्द्रलालजी का प्रलाप !

हमारे दुर्भाग्यसे जैनसमाजमें कुछ ऐसे पत्रों का जन्म होगया है जिनका उद्देश्य केवल किसी न किसी प्रकार समाजमें कलहाग्नि पैदाकर अपना स्वार्थ साधन करना है। ऐसे पत्रोंमें प्रथम नं० [illegible] खण्डेलवालजैन हितेच्छु का है। समाजके [illegible] अपना उदर पूर्ति करनेवाला यह पत्र किस [illegible] विद्वेषके बीज बो, अशान्ति पैदा करता है, किसीसे छिपा नहीं है। जबसे यह पत्र पं० [illegible] चाँदवाड़के हाथमें आया है, तबसे तो [illegible] और भी दिनोंदिन दुर्दशा होरही है। इनके सम्पादकत्वमें एकभी ऐसा लेख इस पत्रमें प्रकाशित नहीं हुआ है जो पढ़ने योग्य भी कहा जासके। बेचारे पंडितजी महाराजतो यह भी नहीं जानते कि संपा-दनकला किस चिड़ियाका नाम है। समाजमें जितने भी झगड़े पैदा होते हैं, उन सबके प्रधान कारण चाँदवाड़जी महोदयही हैं। जो खंडेलवाल महा-सभा सर्वमान्य बनी हुई थी, उसका नामशेषभी इन्हींकी कृपासे हुआ है। हम पंडितजी महाराज को मित्रताके नाते कहते हैं कि आप इस प्रकार समाजमें विद्वेषका बीज बोकर अपनी स्वार्थसाधना की बुरी आदतको छोड़दें। अस्तु।

समाचारपत्रोंके पाठकोंसे अब यह बात अवि-दित नहीं है कि लोहड़साजनोंके मामलेने विकट रूप धारण कर लिया है। इस सम्बन्धमें धर्मालं-कार व्याख्यानभूषण पं० कन्हैयालालजी शास्त्रीने "लोहड़साजन निर्णय" को प्रकाशित करजो समाज का महान उपकार किया है, उसके लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं।

इस "लोहड़साजन निर्णय" की किसीभी बातके खण्डन करनेका किसीभी विरोधीने आजतक साहस नहीं किया पर हितेच्छुके गताङ्कमें पं० इन्द्र-लालजीने फिर अपनी विपरीत वृत्तिका परिचय दिया है। लोहड़साजननिर्णयकी समालोचनाके बहाने उसको गलत सिद्ध करनेके लिये जो कुछ अंटसंट बातें आपने लिख डाली हैं, उससे लोहड़-साजन निर्णयका खण्डन होनातो दरकिनार रहा बल्कि उन्हींकी कलमसे लोहड़साजन निर्णयका पूरा समर्थन हो जाता है। लोहड़साजन और बड़सा-जनोंकी एकता सिद्ध करनेके लिये जो पं० कन्हैया-लालजी शास्त्रीने १६ अकाट्य हेतु दिये हैं उनमें, १० वें ११ वें और १ ले हेतुको खण्डन करनेका निष्फल प्रयत्न किया गया है। अवशिष्ट १३ हेतुओं को तो पंडितजी महाराजनेभी ज्योंका त्यों अकाट्यही मानलिया। यदि उनमें साहस था तो अवशिष्ट १३ हेतुओंके खंडन करनेका भी प्रयत्न करते, पर ऐसा होसकना तो आपके लिये असंभव है। १० वें हेतु के सम्बन्धमें टीका टिप्पणी करते हुए जो आप लिखते हैं "फिर यह नामभेद क्यों हुआ ? लोहड़ शब्द जो छोटेपनका द्योतक है, यह कैसे साजनके

आगे जुड़गया आदि" सो महाराज नामभेदका कारणतो लोहड़साजन निर्णयमें अच्छी तरह स्पष्ट कर दिया गया है। अगर कोई किसीके नामभेदका कारण न भी बता सकेतो इससे यह प्रमाणित नहीं हो सकता कि वह हीन है। नहीं तो आप ही बताइये कि आपके गोत्रका नाम चाँदवाड क्यों पड़ा? पं० कन्हैयालालजी शास्त्रीद्वारा उल्लिखित सम्मतियोंसे यह बात अवश्य सिद्ध होती है कि कुछ स्थानों को छोड़कर सब जगह लोहड़साजनों के साथ रोटी बेटीव्यवहार अबाधरूपसे चलता आरहा है, इसलिये आपका यह लिखना बिलकुल गलत है कि "सम्मतियोंसे यह बात सिद्ध होती है कि इनके साथ बेटी व्यवहार सर्वथा नहीं; और कहीं कहींतो रोटीव्यवहारभी नहीं है"। हमें विश्वस्त रूपसे मालूम हुआ है कि सैकड़ोंबार लोहड़साजनोंके साथ शामिल बैठकर आपने कच्चा भोजन खाया है। बल्कि हमनेतो यहाँतक भी सुना है कि आप अपने लड़केकी सगाईभी लोहड़साजनोंके यहाँ करनेको तैयार थे पर लोहड़साजनोंने कहाकि जयपुरके बड़साजन पहले हमें लड़की दें तब हम हमारे यहाँ आपके लड़केका सम्बन्ध कर सकते हैं। अगर लोहड़साजनोंके सम्बन्धमें आपके पहले ऐसे उत्तम विचार नहीं होनेतो ९ मैम्बरोंकी कमेटीमें अथवा उससे पहले हितेच्छुके लेखमें लोहड़साजनों को बीसा व शुद्ध कभी न लिखते, और न रैणवाल अधिवेशनमें लोहड़साजनोंके पक्षमें होते, और न उनका जोरदार समर्थन करते। अब आपके विचार क्यों बदले हैं, इसका कारण हम जानते हैं। समाज में ऐसे स्वार्थान्ध लोगोंकी बातों और लेखोंका कोई मूल्य नहीं होसकता जो कल कुछ कहते थे और आज कुछ। पंडितजी को लज्जित होना चाहिये कि वे अपनीही लेखनीसे अपना खंडन कररहे हैं। ११ वें हेतुकी समालोचना करते हुए जो आप यह लिखतेहैं कि इसका अर्थ समझमें नहीं आयासो महाशय अगर आप सिद्धान्त शास्त्र पढ़े हैं तो आप जानते होंगे कि पवित्र भावनाओंसे ज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम होता है। मेरे मतसे तो शास्त्रोंमें ऊँच नीचका भेद अवश्यही वर्णित है। शास्त्रोंमें जो उच्च है उसको उच्च और नीचको नीच बतलाया है, पर शास्त्रोंमें किसी जगह बड़साजनोंको उच्चऔर लोहड़साजनोंको नीच नहीं बतलाया। हाँ, दस्सोंको जरूर हीन बतलाया है।

पहले हेतुके सम्बन्धमें समालोचना करते हुए जो आप यह लिखते हैं कि "धड़ोंमें बेटी व्यवहार बन्द हुआ न देखा है न सुना है" सो आपतो महाराज अपने मतलबकी बात देखते हैं और सुनते हैं। सत्य घटनाओंको आप न देखना जानते हैं न सुनना। धड़ोंके कारण बेटीव्यवहार बन्द होजाने के तो अनेक ताजा दृष्टान्त भी मौजूद हैं। हमें मालूम हुआ है कि आपकी कृपासे जयपुरमें भी बाबू और पंडित पार्टीमें वैवाहिक सम्बन्ध बन्द करानेका प्रयत्न किया जारहा है,पर जयपुर जैसे स्थानोंमें आप जैनोंकी क्या वक्त है, जो आप जैसोंकी इन तुच्छ बातोंको मानें, वरना आपने तो एक मर्तबा ऐलान भी कराना चाहाथा।

सम्मतियोंके सम्बन्धमें आपने जो यह लिखा है कि विरुद्ध सम्मतियोंको स्थान नहीं दिया है सो महाशयजी, पं० कन्हैयालालजीके पास विरुद्ध सम्मतियाँ किसने भेजीथी? क्या आप एकका भी ऐसा दृष्टान्त पेश कर सकते हैं जो विरुद्ध सम्मति आई हो और उसको स्थान नहीं दिया गया हो? सुना गया है कि अब (लोहड़साजनोंसे खिलाफ होजानेके बाद) आप जगह जगहसे दबाव डालकर विरुद्ध सम्मतियोंको मँगानेकी जी जानसे चेष्टा कर रहे हैं। हम इसके लिये आपको हार्दिक धन्यवाद देते हैं। आप कृपया ऐसी सम्मतियोंका अवश्य संग्रह कीजिये और लोहड़साजन समाजके दफ्तरमें अथवा पं० कन्हैयालालजी शास्त्रीके पास भेज दीजिये;उन्हें सहर्ष स्थान मिलेगा। हम भी यही चाहते हैं कि अनुकूल और प्रतिकूल वातावरणमें प्रतिकूल शक्तिकी भी जाँच होे।

भँवरलालजी बाकलीवाल डेराठू (अजमेर) की "भूल सुधार" का उल्लेख करके तो पंडितजीने अपने ही पैरोंपर कुल्हाडी मारी है, क्योंकि भँवरलालजी स्वीकार करते हैं कि लोहड़साजनोंको दस्सा बतलाना मेरी नासमझी है। बेचारे भँवरलालजी को चन्द्रसागरजीके अन्धभक्त होनेके कारण उनके अत्यधिक दबावसे मजबूर होकर यह भी लिखना पड़ा कि हमारा कच्चीरोटी व बेटीव्यवहार नहीं है। उन्होंने लोहड़साजनोंको दस्सा चन्द्रसागरजीके दबावसे टोडा (मालपुरा) में लिख दिया था, पर फौजदारीके भयंकर भूतने उनको भयभीत कर दिया, तब बेचारेको अपनी सम्मति बदलनी पड़ी; पर चन्द्रसागरजीको रुष्ट करना भी उनके लिये नामुमकिन था अतः दोनों तरफकी बातको बनाये रखनेके लिये इस विवेकहीन युवकको दुरंगी चाल चलनी पड़ी। यदि आप इसकी सत्यताका अनुभव करना चाहें तो स्वयं भँवरलालजीसे ही पूछिये कि इस सम्मति पर उसकी क्या दुर्गति हुई थी। जिन चन्द्रसागरजीने टोडेमें पहले उनसे लोहड़साजनोंके खिलाफ सम्मति लिखाई थी, उन्होंने ही भोले शिष्यको विपत्तिसे बचानेके लिये अजमेरमें पहुँचकर "भूलसुधार" शीर्षक नोट छपा दिया। अतः "कच्ची रोटीव्यवहार नहीं है" यह शब्द आपके महाराज चन्द्रसागरजीकी करामात हैं, न कि बेचारे भँवरलालजी की वे तो बेचारे इन दोनों अवस्थाओंमें केवल ग्रामाफोन रेकार्डमात्र थे, इसलिये आपको सिर्फ एक व्यक्तिके लिखे हुए इन पाँच सात अक्षरोंपर इतना उन्मत्त न होना चाहिये। चाँदवाडजी महाराज, आपको इन भँवरलालजीकी बात तो इतनी याद रह गई, पर नसीराबादके माननीय व प्रतिष्ठित उन १५ सज्जनोंकी (सेठ ताराचंदजी सेठी, राजमलजी सेठी, लिखमीचंदजी सेठी, घीसालालजी गदिया आदि) वजनदार सम्मतिका उल्लेख करना आप क्यों भूल गये, जिन्होंने भँवरलालजीकी सम्मतिको घृणाकी दृष्टिसे देखते हुए और उसका जोरदार विरोध करते हुए जो यह लिखा था—

लोहड़साजनोंके विरुद्ध सम्मतियोंका विरोध।

"हम नीचे सही करनेवाले जैनगजट अंक ३२ ता० ७–६–३३ में प्रकाशित लोहड़साजनोंके विरुद्ध सम्मतियोंका जोरदार विरोध करते हैं। जैनगजट अंक ३२ में 'लोहड़साजनोंको दस्सा कहते हैं व कच्चीरोटी व्यवहार नहीं है'—ऐसी सम्मति भँवरलालजी देराठू वालोंने प्रकाशित कराई है। वह बिल्कुल गलत है। देराठू गाँव हमारे पास है और लोहड़साजनोंके हमारे गाँवमें (नसीराबाद) ७ घर हैं। उनके साथ बड़साजनोंका कच्चीरोटी व मंदिरव्यवहार सब सारखा (समान) है। किसी तरहका भेदभाव नहीं है। न वे दस्सा हैं। लोहड़ व बड़े ऐसी दो पार्टीका बैंक जमानेसे पड़ा हुआ है। ये सम्मतियें इस वास्ते प्रकाशित कराई जाती हैं कि जिससे किसी प्रकारका भ्रम न फैल सके। मिती अषाढ़ वदी १५ सं० १९९० ता० १९ जून सन १९३३ ई०।

नसीराबादमें लोहड़साजन और बड़साजनोंके साथ पक्की और कच्ची रसोईमें समानता है, कोई तरह का हमारे साथमें फर्क नहीं है। बेटीव्यवहार नहीं है। यह मामला खण्डेलवाल महासभामें भी पास होगया है। अब नाहक झगड़ा करना वाजिब नहीं है।

द० चौथमल चाँदवाड़ द० लखमीचन्द सेठी नसीराबाद द० मदनलाल सेठी नसीराबाद द० रिखबदास अजमेरा द० राजमल सेठी द० ताराचन्द सेठी द० राजमल चाँदमल छाबड़ा द० छीतरमल सोनी, द० मूलचन्द चाँदमल बड़जात्या, द० माँगीलाल लुहाड्या नसीराबाद, द० जेठमल सेठी भट्याणी, द० धाकूलाल, द० छीतरमल कासलीवाल, द० ताराचन्द दोसी, द० बोदूलाल सेठी।"

आपने भारतवर्षीय दिगम्बर जैन खण्डेलवाल महासभाकी निर्वाचित कमेटीके निर्णयके सम्बन्धमें जो यह लिखा है कि उस कमेटीने जो लिखा है वह राय है, नकि फैसला; राय व फैसलेमें बड़ाभारी अन्तर है आदि। सो महाराज यहतो हमभी जानते हैं कि

राय और फैसलेका एक अर्थ नहीं होता किन्तु निर्वाचित और सिलेक्ट कमेटियोंकी रायही फैसला कहलाता है। निर्वाचित कमेटीका फैसला अकारण योंही नहीं ठुकराया जासकता; वह खास महत्व रखता है। नहीं तो सिलेक्ट कमेटीमें चुने हुए मेम्बरोंका कोई मूल्य न होगा। सभा सोसाइटियोंके साधारण नियमोंको जाननेवाला व्यक्तिभी राय और फैसलेके इस कथंचित भेदको जानता है, पर हमें दुःख है कि अपनेको पंडित और शास्त्री माननेवाला एक व्यक्ति इस साधारण बातको भी नहीं जानता। निर्वाचित कमेटीकी रायको हमही फैसला नहीं कहते किन्तु आपकी खण्डेलवाल दिगम्बर जैनमहासभाके महामंत्री माणकचन्दजी बैनाडाने भी अपने कई तारों व पत्रोंमें फैसला स्वीकार किया है। आवश्यकतानुसार उनकी नकलें समाजके सामने पेश करेंगे। निर्वाचित कमेटीके फैसलेका इस प्रकार तुच्छ अर्थ करते हुए पंडितजीने जिस प्रकार अपने गौरवको गिराया है, उसको जानकर किसको हंसी आये बिना न रहेगी। आपने जो यह लिखा है कि हमारी राय को समाज माने या न माने, हमको इस बातपर जरा साभी रंज नहीं है, सो यहतो लिखना आपका बिलकुल ठीकही है क्योंकि जो व्यक्ति पक्षपातके दलदल में फँसा हुआ है और स्वार्थकी आँधी समय समय पर जिसके विचारोंको बदल डालती है, अविवेकियोंके सिवाय उनकी रायको और कौन मानेगा? पहले आपने श्रीमान् सेठ जमनालालजी साह और स्वर्गीय वक्ता पं० चिमनलालजीकी रायके अनुसार लोहड़साजनोंके सम्बन्धमें अपनी राय बनाली थी, तो अब राय बदलनेका क्या कारण है? अच्छा होता, यहाँ भी किसीका नामोल्लेख करके स्पष्ट कर देते कि अमुक आदमीके कहनेसे हमने अपनी राय बदली। जब श्रीमान् स्वर्गीय सेठ साहब टीकमचन्दजीने पूछने पर आपको यह कहाथा कि हमतो ऐसे मामलोंमें जयपुरकी रायको ही बड़ी समझते हैं, क्योंकि अपनी बिरादरीके घर वहीं अधिक हैं; सो जनाब जब जयपुरकी सर्वमान्य चारों पंचायतियोंने लोहड़साजनोंके सम्बन्धमें अपनी निष्पक्ष बहुमूल्य राय संवत १९८१ में ही दे दी थी तब इस सम्बन्धमें आपको गड़बड़ करनेकी क्या आवश्यकता है? जिस जयपुरकी सर्वमान्य रायको सेठ टीकमचन्दजी साहब सर झुकातेथे तो आप जैसे नगण्य व्यक्तियोंको उसके खिलाफ लिखनेका क्या अधिकार है? पर आपको तो इस प्रकारके मामलोंमें अशान्ति फैलानेके लिये पाँचवें सवार बननेकी पुरानी आदत है।

आपने भूरामलजी जागाके सम्बन्धमें जो यह लिखा है कि हमने तो इनकी शकलभी नहीं देखी सो जनाब आपके शकल न देखनेसे क्या होता है? क्या यह व्याप्ति बनगई है कि जिस जिसकी आप शकल देखें वह ही आदमी है,और अन्य नहीं? हमने भी आजतक आपकी शकल नहीं देखी है, इसलिये क्या आपके लेखानुसार आपभी कोई आदमी नहीं हैं? क्या आपने अपने पड़दादेकी शकल देखी है? यह कितने आश्चर्यकी बात है कि एक शास्त्रीका पुछल्ला लगानेवाला पंडित यह लिखनेका साहस कर सकता है कि जिसकी शकल हमने नहीं देखी, वह आदमी नहीं है! अगर पंडितजीने वास्तवमें ही जागाजीकी शकल नहीं देखी है तो चाँदपोल दरवाजा चौकड़ी तोपखाना देश रास्ता सरकीगरान जयपुरमें जाकर उनकी हवेली पर उनकी शकल देख सकते हैं। यह जागाजी वे ही हैं जो आपके अनन्य फूलचन्दजी गोमतीलालजी भौंसासे हर कभी मिला करते हैं। इतनाही नहीं जिस मकानमें आप रहते हैं, वहाँही श्रीमान् सेठ केशरलालजी पंसारीके यहाँतो ये जागाजी अनेकबार आया जाया करते हैं। जान पड़ता है किजब ये जागाजी आते जाते होंगे तब आप इनको न देखनेकी इच्छासे अपनी आँखें मूंद लेते होंगे। होसकता है कि लोहड़साजनोंके समान इनके साथभी आपका कोई वैमनस्य हो। प्रायः जयपुरके

बहुतसे प्रतिष्ठित घरानोंमें इनका आनाजाना होता है, इसलिये आपका यह लिखना बिलकुल ग़लत है कि जयपुरमें इनको कोई नहीं जानता।

आगे चलकर आपने जो यह लिखा है कि समानगोत्र आदिसे भी लोहड़साजन बड़साजनोंका बेटीव्यवहार हो सकता है, सो जनाब इससे तो आपने अपनेही वक्तव्यका खण्डन किया है। अगर लोहड़साजनोंके साथ भूलसे सम्बन्ध होगया था तो बड़साजनोंको दण्ड क्यों नहीं दिया गया? और इस प्रकारकी उत्पन्न सन्तानको जायज़ क्यों समझा गया? अबतो भूरामलजी जागा द्वारा संग्रहीत नामावलीसे आपको यह बात अच्छी तरह मालूम भी हो गई है इसलिये कमसे कम १४५ और इनके सारे भारतवर्षमें फैले हुए हज़ारों सम्बन्धियोंको तो अवश्यही आप जातिच्युत कर दीजिये। और इस प्रकार करने पर आपभी जातिच्युत हुए बिना न रहेंगे क्योंकि दीर्घ पराम्परासे आपमें भी लोहड़साजनोंका रक्त (खून) अवश्यही संचार कर रहा होगा। आपके उदाहरणानुसार धोबीकी चटपटी मिठाई खा लेनेके बाद खाने वालोंका अवश्यही भण्डाफोड़ हुआ था, और खाने वालोंको पश्चात्ताप करना पड़ा था। इसी प्रकार लोहड़साजनोंके साथ बेटीव्यवहार करते रहने पर भी भण्डाफोड़ क्यों नहीं किया गया? और उनको प्रायश्चित्त क्यों नहीं दिया गया? अगर आपमें कुछभी साहस है तो कमसे कम दस पाँचतो ऐसे दृष्टान्त पेश कीजिये कि अमुक बड़साजनको लोहड़साजनके साथ वैवाहिक सम्बन्ध कर लेनेपर यह दण्ड दिया गया। इसलिये धोबी हलवाईका दृष्टान्तभी हमारे ही पक्षका समर्थन करता है। ऐसे लेखकोंको परमेश्वर सद्बुद्धि दे जो अपनेही वक्तव्यसे अपना खण्डन कर प्रसन्न होते हैं। अनजान अवस्थामें किये गये कामको नज़ीर और आदर्श हम नहीं मानते। ऐसी ग़लती तो आप जैसोंसे ही होती है। लोहड़साजनों के साथ जानबूझकर वैवाहिक सम्बन्ध हुए हैं और हो रहे हैं। इसलिये इनको नज़ीर और आदर्श आपको भी माननाही पड़ेगा।

अगर कोई राजपण्डित अपनेको सैतवाल या बरैया बतलाता है तो इससे लोहड़साजनोंका खंडन नहीं होजाता। हमारी समझमें नहीं आता कि यह राजपण्डित वाली बेसिरपैरकी बात चाँदवाडजीने किनको लक्ष करके लिखी है? पंडितजीमें साहस की कमी है जो इस प्रकार असम्बद्ध बात बिना नामोल्लेख के अंटसंट लिख देते हैं। क्या बरैया या सैतवालोंमें कोई राजपण्डित नहीं हो सकता? अगर पंडितजी साफ़ साफ़ लिखते तो हम उन्हें साफ़ साफ़ जवाब देते।

दो मिनट संस्कृत भाषणकी योग्यता नहीं रखते हुए भी शास्त्री पदका पुछल्ला किसने लगाया है यह हमारी समझमें नहीं आया। अगर कोई शास्त्री दो मिनट संस्कृत न बोल सके तो क्या इससे लोहड़साजनोंका पक्ष गिर जाता है? यदि हाँ तो हमेंभी यह कहनेका भी अधिकार है कि आप एक सैकिण्डभी फ्रेंच, जर्मन आदि भाषायें नहीं बोल सकते, इसलिये लोहड़साजनोंकी विजय होगई। हमनेभी बहुतसे ऐसे शास्त्री देखे है जो तत्त्वार्थसूत्र के प्रथम सूत्रका भी ठीक ठीक अर्थ नहीं करसकते, फिरभी अपनेको शास्त्री लिखते हैं। अत: किसी पुरुष पर अकारण कटाक्ष करना बिलकुल मूर्खता है।

स्वर्गीय सेठ टीकमचन्दजी व सरसेठ हुकमचन्दजी आदि पुरुषोंका जिसप्रकार लोहड़साजनोंसे सम्बन्ध हैं, उसको आपने बादरायण सम्बन्ध बतलाया है सो जान पड़ता है कि आपने आजतक भी बादरायण शब्द अर्थ नहीं समझा है। आप किसी गुरुसे पहले इसका अर्थ समझकर इसका प्रयोग करते तो उचित होता। सेठ टीकमचन्दजी आदिके सम्बन्धमें श्रीमान् पं० कन्हैयालालजी शास्त्रीने जो लोहड़साजनोंके साथ परम्परासम्बन्ध बतलाया है, वह अक्षरश: सत्य है। अगर कोई उसको असत्य साबित करनेका बीड़ा उठावें तो हम उसको बड़ासे

बड़ा इनाम देनेको तैयार हैं पंडितजी महाराज, आपको ऐसा मौका हाथसे नहीं जाने देना चाहिए हमने तो आपको जीवननिर्वाहका एक उपाय बतलाया है।

अगर कोई लोहड़साजन किसी बड़साजनके गोद बैठना चाहता था मगर पीछे उसके न जँचने पर मामला स्थगित होगया तो इससे लोहड़साजनोंकी हीनता किस प्रकार सिद्ध हुई? अगर कुछ दिनोंतक आपको सेठ टीकमचन्दजीने नौकर रख लिया और फिर किसी कारणसे छोड़ दिया तो क्या इससे आप अपनी हीनता समझते हैं? अगर सेठ गोपीचन्दजी ठोल्याभी आपको अपने यहाँसे अलग करदें तो आप क्या इससे अपनी हीनता मानेंगे? दरअसल गोद बैठना सगाई आदि करना और नौकर रखना आदि तो परस्परकी इच्छा पर है, इसलिये आपके इन व्यर्थके उदाहरणोंसे आपका अभिमत सिद्ध नहीं होता।

आपने सम्मतियोंके सम्बन्धमें जो यह लिखा है कि वर्तमान समयमें ऐसी सम्मतियोंका संग्रह करलेना कोई असाधारण बात नहीं, सो आपका यह लिखना बिलकुल गलत है क्योंकि निष्पक्ष और विद्वत्तापूर्ण सम्मतियोंका हर जमानेमें महत्त्व होता है। हाँ, आप जैसे पक्षपाती लोगोंकी सम्मतिका अवश्यही कोई मूल्य नहीं है। अगर आप सम्मतियोंका मूल्य नहीं समझते हैं तो फिर क्यों लोहड़साजनोंके खिलाफ सम्मति संग्रह कर रहे हैं?

आगे चलकर आपने दक्षिणमें यज्ञोपवीत आदिके सम्बन्धमें जो प्रकरणविरुद्ध बातें लिखी हैं, उसका इस विषयसे कोई सम्बन्ध नहीं है। बिछुड़े भाइयों को गले लगाना तो आपके नसीबमें ही नहीं लिखा। आपतो केवल गले लगे हुओंको शतयोजन दूर फैंकने का प्रयत्न करते हैं। गले लगानेकी सच्ची भावना तो महावीरके सच्चे भक्तोंमें ही होसकती है, आप जैसे ढोंगियोंमें नहीं। जिसके हृदयमें विश्वप्रेमका समुद्र उमड़ रहा हो, वही बिछुड़े हुओंको गले लगा सकता है। भगवान् महावीरने सभीको गले लगाया था, पर आपतो पिताके समान पूज्य अपने बड़े भाई से भी दिनमें तीनबार लड़ते हैं। यह है आपके आदर्श प्रेमका नमूना!

अन्तमें जाकर आपने जो यह लिखा है कि सबसे पहले ऐतिहासिक प्रमाणों द्वारा यह बात जाननी चाहिये कि लोहड़साजन कैसे हुए आदि। इसके उत्तरमें हमारा यही कहना है कि लोहड़साजनोंके सम्बन्धमें जो ऐतिहासिक प्रमाण मिला है वह विश्वास करने योग्य है। आप किसी तरह यह सिद्ध नहीं कर सकते कि आपही के द्वारा हितेच्छुमें लिखित और लोहड़साजन निर्णयमें उद्धृत लोहड़साजनों वाला प्रमाण असत्य है। आपको ऐतिहासिक प्रमाणोंके सम्बन्धमें डींग मारनेका कोई अधिकार नहीं है। कृपा करके आप बतलाये कि खण्डेलवाल जातिका वास्तविक ऐतिहासिक प्रमाण क्या है? अगर यहभी नहीं बतला सकते तो कमसे कम अपने गोत्र चाँदवाड़का तो ऐतिहासिक प्रमाण बतलाइये, या केवल दूसरोंसे ही प्रमाण पूछना जानते हैं? आश्चर्य है कि आप अभीतक पिण्डशुद्धिही की रायको अलाप रहे हैं। जो लोहड़साजन शताब्दियोंसे भगवान्‌की पूजनप्रक्षाल करते आरहे हैं, उनकी पिण्ड-शुद्धिमें भी अगर आपको संदेह है तो आपकी पिण्डशुद्धिमें हमें भी संदेह हो सकता है। लोहड़साजनोंको प्रायश्चित्त देकर शुद्ध करनेवाली छोटे मुँह बड़ी बातको कौन सुनना पसंद करेगा? श्रीमान् धर्मालंकार पं० कन्हैयालालजी शास्त्रीने जो निर्णय लिखा है वह वास्तविक बातपर प्रकाश डालता है। लोहड़साजन समाजको आपने जो शिक्षा दी है उसको रखनेके लिये लोहड़साजनोंके वीरतापूर्ण हृदयोंमें स्थान नहीं है। अच्छा होता ऐसी हितकी शिक्षा अपने आदरणीय देवता चन्द्रसागर को देते जिससे कि उसका कल्याण होता। महासभा को भी आपकी शिक्षा देना व्यर्थ है, क्योंकि उसकी निर्वाचित कमेटीने उनका फैसला पहलेही देदिया है।

काव्यतीर्थजीकी बकवाद।

विद्वान खुलासा करें।

कलकत्तामें हालही में जो अन्तर्जातीय विवाह (खण्डेलवाल—जैसवाल सम्बन्ध) हुआ है, उसकी सफलताने इसके विरोधियोंकी आँखोंमें ऐसी चकाचौंध उत्पन्न कर दी है कि बेचारोंकी बुरी दशा है। खंडेलवाल पंचायतके नामपर कुछ मनचले व्यक्ति अन्तर्जातीयविवाह-समर्थकोंको जातिबहिष्कृत करने गये थे परन्तु उक्त पंचायतके ही कुछ उत्साही धार्मिक सदस्य ने उसका ऐसा विरोध किया कि स्वयं बहिष्कारकर्त्ता ही आपसमें भिड़ गये हैं। उधर विवेकी जैसवाल समाज अब तक मौन साधे बैठी है। 'मौनं सम्मति लक्षणं' के अनुसार वह इसकी पूरी समर्थक है।

इस विषयमें एक पर्चा 'विजातीयविवाह धर्मशास्त्रोंकी आज्ञाके विरुद्ध है'। शीर्षक पं० श्रीलालजी काव्यतीर्थ कलकत्ताने छपाया है। उसमें आपने 'शूद्रा शूद्रेण वोढव्या' आदिपुराणजीके १६वें पर्वके २४७वें श्लोकका विचित्रही अर्थ किया है। आप लिखते हैं कि—शूद्रा शूद्रेण वोढव्या, नान्या स्वां तां च नैगमः ॥ वहेत् स्वां तां च राजन्यः स्वां द्विजन्मा कचिच्चता २४७ का अर्थ इसप्रकार है—"शूद्र (सेवा करनेवाले) शूद्र सेवावृत्ति ही रखें। वैश्य वणिकवृत्ति और सेवावृत्ति दोनों कर सकता है। क्षत्रिय शस्त्रधारण वणिकवृत्ति और सेवावृत्ति तीनों कर सकता है। ब्राह्मण, यजन याजनादि स्ववृत्ति, शस्त्र धारण' क्षत्रिय वृत्ति, व्यापार व वणिकवृत्ति और सेवा शूद्रवृत्ति सब कर सकता है।" आपका यह मनमाना अर्थ किस आधारपर है सो तो वेही जानें, परन्तु यह विचित्र अर्थ यदि ठीक हो तो कहना होगा कि लोग सुधारकोंको योंही कोसते हैं। काव्यतीर्थजी तो उनसे भी दो क़दम क्या, कोसों आगे बढ़ गये हैं। आप तो आदिपुराणजी में न होते हुए भी वैश्योंको शूद्रवृत्ति—हजामत बनाना, कपड़े धोना, कपड़े सीना, झाडू देना, कपड़े रँगना, भाड़ झोंकना आदि आदि. करनेका आदेश कर रहे हैं। सबसे अधिक कृपा तो आपने ब्राह्मणों पर की है। उनको चारों वर्णोंकी वृत्ति करनेका नियम बना डाला है। और चाहे जो हो, पर काव्यतीर्थजी की बात है समयानुकूल, क्योंकि प्रत्यक्षही आजकल ब्राह्मणोंके लिए कहावत प्रसिद्ध है कि 'रानी बाँदी ऐसा नर, पीर बबर्ची भिश्ती खर।' अर्थात्-रानी बाँदीसे कहती है कि ऐसा मनुष्य ले आ जो पीर (पूज्य) बबर्ची (रसोइया) भिश्ती पानी भरनेवाला कहार, खर (बोझा ढोनेके लिये—गधा) हो। वही बात हमारे काव्यतीर्थजीने ब्राह्मणोंके प्रति करडाली है। मालूम नहीं काव्यतीर्थजीने ऐसा ऊटपटाँग अर्थ अपने सहयोगियों, जैसे पं० खूबचन्दजी शास्त्री सम्पादक जैनगजट आदिसे पूछकर या सलाह कर किया है या योंही! क्योंकि वर्ष २४५९ के जैनगजट अंक ४ में इन्दौर विद्यालयमें औद्योगिक (दर्जी आदिकी पढ़ाई) शिक्षाका विरोध करते हुए उन्होंने लिखाथा कि 'दर्जीका धन्धा शूद्रवृत्ति है, वर्णानुकूल आजीविका सिखानेकी ही शास्त्रोंकी आज्ञा है। यदि वर्ण व्यवस्थाके पक्षपाती हैं तो शूद्रोंका धन्धा कभी न अख्तयार करना चाहिए' आदि। जब कि काव्यतीर्थजी शूद्रवृत्ति वैश्योंको ही नहीं किन्तु क्षत्रिय और ब्राह्मणों तकको करनेका विधान कररहे हैं, वहाँ इन्दौर वाले शास्त्रीजी शूद्रवृत्ति करनेका नहीं बल्कि सिखाने का भी विरोध करते हैं! आज इन्हें अन्तर्जातीय विवाहका विरोध करनेके लिए 'शूद्राशूद्रेण वोढव्या' वाले श्लोकका अर्थ बदलनेकी आवश्यकता आपड़ी है, इसलिये इच्छानुकूल अर्थ गढ़ लिया है। संस्कृत श्लोकोंका अर्थ बदलनेमें पण्डितलोग कितने निपुण हैं यही बताना इस लेखका उद्देश्य है।

पं० मक्खनलालजीके बड़े भाई पं० लालाराम जी शास्त्रीने इसी श्लोकका विवाह सम्बन्धवाला अर्थ किया है, जिससे विजातीयविवाहका समर्थन होता है। इधर पं० लालारामजीके सम्बन्धी पं० श्रीलाल जी काव्यतीर्थ उसका उपरोक्त प्रकार वृत्तिवाला अर्थ करते हैं। दोनोंमें कौन विद्वान है और कौन मूर्ख, पंडितलोग इसका खुलासा करनेकी कृपा करें।

—प्रभातचन्द्र जैन, कलकत्ता।

Printed by Pt. Radhaballabh Sharma at the Ajmer Printing Works, Ajmer.

तार का पता—"JAINJAGAT" Ajmer Reg: No. N 382.
वर्ष १ ता० १६ मई सन् १९२४ अंक १३

जैनसमाज का एकमात्र स्वतन्त्र पाक्षिकपत्र।

वार्षिक मूल्य ३) रुपया मात्र।

जैन जगत्

विद्यार्थियों व संस्थाओं से २॥) मात्र।

(प्रत्येक अंग्रेज़ी महीने की पहली और सोलहवीं तारीखको प्रकाशित होता है)

"पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनम् यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः"॥—श्री हरिभद्रसूरि।

सम्पादक—सा०र० दरबारीलाल न्यायतीर्थ, जुबिलीबाग तारदेव, बम्बई।
प्रकाशक—फतहचंद सेठी, अजमेर।

चन्द्रसागर लीलाका एक दृश्य।

खुशालचन्दजी पहाड्या उर्फ मुनिवेषी चंद्रसागरजी गाँवोंकी भोली जनता पर अपने कल्पित गुरुत्वका प्रभाव जमाकर तथा गाँवसे भूखे चले जानेकी धमकी देकर लोहड़साजनोंका खानपान व मंदिरव्यवहार, जो सैकड़ों वर्षोंसे अबाध रूपसे चला आरहा है, बंद करा रहे हैं। स्थितिपालक दलके कई प्रमुख नेता पं० खूबचन्दजी शास्त्री सम्पादक जैनगजट व पं० इन्द्रलालजी शास्त्री सम्पादक खण्डेलवाल जैनहितेच्छु तथा समाजके अनेक प्रतिष्ठित श्रीमान् धीमान उन्हें समझाकर थक चुके परन्तु वे अपने दुराग्रह पर अड़े हुए हैं। कुछ महानुभावोंकी राय है कि लोहड़साजन प्रश्न अभी विचाराधीन है, खण्डेलवाल महासभाने अभी उसपर अपना निर्णय नहीं दिया है आदि। अगर उनकी यह बात मानली जाय तो भी चन्द्रसागरजीकी उपरोक्त प्रवृत्ति बिलकुल अनुचित ठहरती है, कारण विचाराधीन प्रश्नके सम्बन्धमें किसीभी पक्षको कोई नई कार्यवाही करनेका अधिकार नहीं होता है। इस तरह चन्द्रसागरजी अपने गुरु श्री शांतिसागरजीके प्रति विद्रोह कर मुनिपदको तो लजाही रहे हैं, साथ ही समाजके प्रतिष्ठित पुरुषोंकी सलाह व महासभाकी सत्ताको ठुकराकर समाजमें अकारण द्वेषकी वृद्धि कररहे हैं! आश्चर्य है कि समाजके नेतागण कायरतापूर्वक चन्द्रसागर-तांडव देख रहे हैं और उनसे चन्द्रसागरजीको सुमार्ग पर लानेके लिये कुछ भी करते धरते नहीं बनता। चन्द्रसागरजीके इस दुराग्रहके कारण समाज व धर्मकी कितनी हँसी हो रही है व आगे और होनेकी सम्भावना है, इसके बतानेके लिये सिणोदका उदाहरण काफी होगा।

नसीराबादसे ६ मील दूरीपर सिणोद एक छोटासा गाँव है। वहाँपर बैसाख सुदी १ से ५ तक वेदी-प्रतिष्ठा उत्सवथा। करीब सालभर पहिले सिणोद पंचायतकी ओरसे एक पत्र श्रीमान् गैंदीलालजी साह जयपुरके नाम भेजा गयाथा जिसमें सिणोद पंचायतने यह स्वीकार कियाथा कि—"हमारे यहाँ लोहड़साजन छावणी वा भवानीखेड़ा, पाँच या ६ घर छै। सो हमारे जिलेमें बड़ेसाजनोंके साथ कच्ची पक्की रसोईमें शामिल छै और श्रीजीको पूजनप्रक्षालन सब करै छै। कोई तरहकी मनाई नहीं। जो बड़ासाजनको राह रसम छै वैसी लोहड़साजनकी राहरसम छै। बेटीव्यवहार छै नहीं। और नेक जोग सब बराबर है, किसी तरहका भेदभाव नहीं।"

उत्सवकी निमंत्रण-पत्रिकामें भी सब जैनबन्धुओंको उत्सवमें सम्मिलित होकर धर्मसेवन करनेके लिये अनुरोध किया गया था—उसमें लोहड़साजनोंके लिये किसी प्रकारकी मनाई नहींथी। किन्तु बीरके कुछ धर्मके ठेकेदारोंको, जो समाजमें झगड़े कराने के लिये काफ़ी प्रसिद्धि पा चुके हैं, इससे कैसे चैन पड़ती ? उन्होंने सिणोदके पंचोंपर दबाव दिया कि वे लोहड़साजनोंको उत्सवमें न आने दें। झगड़ेकी आशंका देखकर पुलिस थानेदार साहबने सिणोद के बड़साजन पंचों व नसीराबाद के लोहड़साजन भाइयोंको बुलाकर आपसमें तय कर लेनेके लिये कहा। सिणोदवालोंने कहा—हमें तो लोहड़साजनोंके पूजा-प्रक्षाल करनेमें कोई ऐतराज़ नहीं है, किन्तु और गाँववाले ऐतराज़ करते हैं सो हम लोग चोखले के गाँवोंकी पंचायत बुलाकर यह मामला उसमें तय कर लेवेंगे। तदनुसार बैसाख (दूसरा) बद १३ को दोपहरके तीन बजे पंचायत बुलाना निश्चय हुवा। निश्चित समय पर नसीराबादके कई प्रतिष्ठित व्यक्ति वहाँ पहुँचे। थानेदार साहबभी मौजूदथे, किन्तु रातके आठबजे तक वहाँ कोई कार्यवाही नहीं हुई और न यह सूचनादी कि पंचायत कब शुरू होगी। अत: थानेदारसाहब तथा नसीराबाद व अन्य स्थानोंके कई व्यक्ति वापिस लौट गये। आपसमें कुछ तय न होने पर पुलिसने बड़साजनोंमें से ९ तथा लोहड़साजनोंमें से ५ व्यक्तियोंके जमानत मुचलके करा दिये ताकि आपसमें किसी प्रकारका दंगा फ़साद न हो। एक जैन उत्सवमें जैनधर्मोपासकोंके जमानत मुचलके लिये जाँय, यह अत्यंत परितापका विषय है। खैर।

मिती बैसाख सुद १ को श्रीजीकी सवारी निकली। यह आमरिवाज़ है कि खवासीकी बोली बोली जाती है तथा सबसे ज्यादा रुपये देनेवालेको खवासी के लिये रथपर बैठाया जाता है। किन्तु वहाँ इस आशङ्कासे कि कहीं लोहड़साजन लोग रथ पर न बैठ जायं, बोली नहीं बोली गई और यों ही अपनेमें से एकको रथपर बैठा दिया गया। रथ कुछ ही आगे बढ़ा था कि प्रतिमाजी रथमें बैठे हुए व्यक्तिके साथ नीचे आ गिरीं। आगे चलकर रथका शिखर बिलकुल अलग होगया तथा मंडप तक पहुँचते पहुँचते तो रथ बिलकुल ढेर होगया। आँधी, अकड़ आदि के रूपमें भी प्राकृतिक प्रकोप हुआ।

दो रोज़ तक पुलिसकी सहायतासे लोहड़साजनोंको मंदिरमें दर्शन करनेके लिये जाने तकसे रोका गया! जैनमंदिरोंमें शूद्र कहे जानेवाले व्यक्ति तथा अजैन बिना रोकटोक प्रवेश करसकें, लेकिन जैनी भाइयोंको दर्शन करने तकसे रोका जाय, यह घोर अन्याय व अत्याचार था। श्री० छोटीलालजी सेठी व बखतावरलालजी बड़जात्या भवानीखेड़ा, गुलाबचन्दजी बैद नसीराबाद तथा तेजमलजी पहाड्या हरमाड़ा मंदिरके दरवाजेपर अनशन कर बैठ गये। इधर पुलिस द्वारा मंदिरप्रवेशमें जो रोकटोक की जा रही थी उसके लिये कमिश्नर साहब व पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट साहबको दरख्वास्त देकर उसे रुकवाया गया। इसपर लोहड़साजनोंको मंदिरमें जाने तो दिया गया किन्तु अन्दर जाते ही उद्दंड व्यक्ति हुल्लड़बाजी करने लगते तथा उन्हें धर्मसेवन करनेमें बाधा डालते। क्या इसी धर्मप्रभावनाके लिये सैंकड़ों रुपया व्यय कर उत्सवका आयोजन किया गया था?

इसी अवसरपर अजमेरमें श्री० स्वर्गीय रायबहादुर सेठ टीकमचन्दजी साहबका नुकता था जिसके लिये बाहिरसे कई प्रमुख व प्रतिष्ठित जैन श्रीमान आये हुए थे। सिणोदके पञ्चोंकी अकर्मण्यता तथा बीर वालोंकी उद्दण्डता पर सबने घृणा प्रकट की। मिती बैसाख सुदी ४ को प्रातःकाल कई प्रतिष्ठित व्यक्ति श्री० रावराजा सरसेठ हुकमचन्दजीके स्थान पर गये और उन्हें आग्रह किया कि वे सिणोद जाकर वहाँके पञ्चोंको समझावें जिससे वे लोहड़साजनोंको पूजाप्रक्षाल करने दें और धर्मसेवनमें बाधा न डालें। समय अधिक होजानेके कारण दोपहरको सिणोद जाना निश्चय हुवा और श्री० रावराजा साहब, श्री० सेठ गोपीचन्दजी ठोलिया जयपुर, फ़तहचन्द सेठी (सेठ परसरामजी दुलीचन्दजी), माथूलालजी,

(शेषांश पृष्ठ २८ पर देखिये)

जैनधर्म का मर्म ।

(४५)

सत्य ।

भगवती अहिंसा और भगवान् सत्य—इनमें कौन महान् है, कौन मुख्य है, इस विषयमें कुछ कहना कठिन है । यद्यपि 'अहिंसा परमोधर्मः' का मन्त्र सभीने एकस्वरसे जपा है, फिर भी सत्यको प्रशंसा कुछ कम नहीं है । 'सत्यमें जगत् स्थिर है', 'सत्यसे बढ़कर कोई धर्म नहीं' आदि वाक्य सत्यकी महत्ता के सूचक हैं । परन्तु मैंने यहाँ अहिंसाको भगवती और सत्यको भगवान कहा है । इस रूपकमें जो लिंग-निर्देश किया गया है, वह कुछ मतलब रखता है । सचमुच अहिंसा भगवती है, माता है; और सत्य भगवान् है, पिता है । पिताकी अपेक्षा माताका स्थान बहुत ऊँचा है । शास्त्रोंमें हजार पिताओंसे भी माता का गौरव* अधिक बतलाया गया है । इसलिये भगवान सत्यसे भगवती अहिंसाका स्थान ऊँचा है ।

व्यापकताकी दृष्टिसे भी अहिंसाका स्थान ऊँचा है; क्योंकि जितने पाप हैं वे सब अन्तमें हिंसारूप सिद्ध होते हैं । झूठ बोलना भी हिंसा है, इसलिये सत्य बोलना अहिंसा है । जैनाचार्योंने असत्यादि चारों पापों को हिंसारूप कहा है । उनका कहना है कि—

"आत्मपरिणामोंकी हिंसा करनेसे सभी पाप हिंसा हैं । असत्य, चौर्य आदि शब्दोंका व्यवहार केवल शिष्योंको समझानेके लिये है ।"

धर्मकी उत्पत्तिका प्रयोजन 'जियो और जीनेदो' है । इसका सम्बन्धभी अहिंसासे है इसलिये भी अहिंसाका स्थान व्यापक सिद्ध होता है ।

इस प्रकार अनेक तरहसे अहिंसाका स्थान सत्य से उच्च है । फिरभी एक दृष्टि ऐसी है जिससे सत्यकी महत्ताका ठीक ठीक माप किया जासकता है । वह दृष्टि उपर्युक्त रूपकमें भी है । ऊपर मैंने अहिंसाको माता और सत्यको पिता कहा है । मातृत्वकी दृष्टिसे माता हजार पिताओंसे अधिक है, परन्तु स्त्रीत्वकी दृष्टिसे वह हजार पुरुषोंसे अधिक नहीं है । जिस प्रकार स्त्रीकी रक्षाके लिये साधारणतः पुरुषकी जरूरत होती है, उसी प्रकार अहिंसाकी रक्षाके लिये सत्यकी जरूरत है ।

सत्येनोत्तभिताभूमिः, ऋग्वेद १०—८५—१ ।
नास्तिसत्यात्परोधर्मः—महाभारत शांतिपर्व १६२-२४

सत्य शब्द संस्कृतमें नपुंसकलिंग होने पर भी यहाँ सत्यको पिता बताया गया है क्योंकि हिन्दीमें नपुंसकलिंग नहीं है इसलिये यहाँ सत्य शब्द पुल्लिंग है । लेखमाला हिन्दीमें लिखी गई है इसलिये हिन्दी लिंग-निर्देशकी ही यहाँ मुख्यता है ।

* उपाध्यायान् दशाचार्यः आचार्याणां शतं पिता । सहस्रं तु पितॄन् माता गौरवेणातिरिच्यते । मनु० २-१४५

दश उपाध्यायोंसे आचार्यका, सौ आचार्योंसे पिता का और हज़ार पिताओंसे माताका गौरव अधिक है ।

आत्म परिणाम हिंसन हेतुत्वात्सर्वमेव हिंसैव । अनृतवचनादि केवल मुदाहृतं शिष्य बोधाय ।
—पुरुषार्थ सिद्धयुपाय ।

अहिंसाके गीत गानेपर भी मनुष्य जगत्में आज हिंसाका अखंड तांडव होरहा है, प्रयत्न करनेपरभी हिंसा रोकी नहीं जासकती। इसका कारण सत्यका अभाव है। अगर भगवान् सत्य विराजमान हों तो भगवती अहिंसाकी रक्षा अच्छी तरह हो सकती है। आजभी साधारण सरकारी क़ानून और समाज के नैतिक नियम इतने बुरे नहीं हैं कि उनसे अहिंसा भगवतीका शासन न चल सके। परन्तु सत्यके अभावमें वे क़ानून और नियम निष्फल जाते हैं। क़ानून हिंसाका निषेधक है, फिर भी हिंसा होती है क्योंकि हिंसकको मालूम है कि मैं झूठ बोलकर धोखा देसकता हूँ। अगर मनुष्य झूठ न बोले तो न्यायालयोंकी जरूरतही न रहे, और अगर रहे भी तो उनका काम सिर्फ इतनाही रहे जितनाकि प्रायश्चित्त बतानेवाले पंडितका होता है। झूठ न बोलने वाला चोरी, व्यभिचार आदि पाप भी नहीं कर सकता। मायाचार, विश्वासघात आदिभी असत्यके आश्रित हैं। जहाँ सत्य है, वहाँ इन सब पापोंका प्रवेश नहीं हो सकता। इसलिये सत्यका स्थान बहुत उच्च है।

एक बात और है आचारके क्षेत्रमें अहिंसाका स्थान सर्वोच्च है, जबकि विचारके क्षेत्रमें सत्यका स्थान सर्वोच्च है। अहिंसाकी मुख्यता चारित्रमें है: सत्यकी मुख्यता ज्ञानमें है। चारित्र जगत्में अहिंसा सम्राज्ञी है और सत्य मंत्री है। वहाँ अहिंसा सम्राज्ञी सत्य रूपी मंत्रीसे सलाह लेकर शासन करती है। जबकि ज्ञान जगतमें सत्य पति है और अहिंसा पत्नी है। पति कमाई करता है, पत्नीको सौंपता है, पत्नी उसका ऐसा उपयोग करती है जिससे दोनों आनन्दित होते हैं। इसीप्रकार सत्य कमाई करता है और अहिंसा को सौंपता है, अहिंसा उसका ऐसा उपयोग करती है जिससे दोनोंकी रक्षा होती है। इस प्रकार ये दोनों, धर्मके ऐसे अविच्छेद्य अंग हैं जिनको अलग अलग बतलाया तो जासकता है, परन्तु किया नहीं जा सकता। एकके बिना दूसरे की गुजर नहीं है।

इसप्रकार सत्य महान है; परन्तु अहिंसाका पूर्ण पालन जैसा असम्भव है, उसीप्रकार सत्यके पालन में भी अगणित कठिनाइयाँ हैं। अहिंसाके विषयमें जैसे कहा था कि कभी अहिंसा भी हिंसा होती है और हिंसा भी अहिंसा होती है, उसीप्रकार सत्यके विषयमें भी कहा जासकता है कि कभी कभी सत्य भी असत्य होता है और कभी असत्यभी सत्य होता है। इसप्रकार अहिंसाके समान सत्यकी समस्या भी कम जटिल नहीं है।

जैसेको तैसा कहना सत्य है। परन्तु यह सत्य ज्ञानके क्षेत्रका सत्य है। धर्मके क्षेत्रका सत्य इससे भिन्न है। धर्मतो जगत्-कल्याणके लिये है इसलिये धर्मके क्षेत्रमें वही वचन सत्य कहा जा सकता है जो कल्याणकर हो। इसलिये दोनों सत्योंका भेद समझनेके लिये मैं जुदे जुदे शब्द रख लेता हूँ। जैसे को तैसा कहना तथ्य है, और कल्याणकारी वचन सत्य है। यद्यपि अनेक स्थलोंपर तथ्य और सत्य मे विरोध नहीं होता, फिरभी अनेक मौके ऐसे आते हैं, जब तथ्य और सत्यमें विरोध पैदा होता है। इस विरोधको समझना ही मुश्किल है। एक चोर कह सकता है कि अगर मैं तथ्य बोलूँगा तो चोरी न कर सकूँगा, इससे दुखी होना पड़ेगा, इसलिये मेरा अतथ्य बोलनाभी सत्य कहलाया। इस प्रकार तथ्य और सत्यके विरोध माननेसे सत्यकी हत्याही हो जायगी। इसलिये किस जगह अतथ्य भी सत्य है, किस जगह तथ्यभी असत्य है, इस विषयमें गंभीर सतर्कताकी जरूरत है।

जिस प्रकार पहिले हिंसाके संकल्पी आदि चार भेद किये गये थे, उसी प्रकार हमें असत्य अर्थात् अतथ्यके भी चार भेद करना चाहिये।

संकल्पी अतथ्य—स्वार्थवश दूसरेके हिताहित का विचार न करके किसी निरपराध प्राणीके साथ असत्य बोलना या किसी दूसरे ढंगसे असत्यभाव प्रगट करना संकल्पी असत्य (अतथ्य) है।

आरम्भी—पागलोंकी, बच्चोंकी, रोगी इत्यादिकी रक्षाके लिये जो हमें अतथ्य बोलना पड़े वह आ-

रम्भी अतथ्य है । या अनजानमें हमारे मुँहसे अतथ्य निकले, वहभी आरम्भी अतथ्य है ।

उद्योगी—अर्थोपार्जन आदिमें अपने रहस्य छुपानेकी जरूरत हो, और उसका छुपाना नैतिक नियमों या क़ानूनके विरुद्ध न हो तो उसके लिये अतथ्य बोलना उद्योगी अतथ्य है ।

विरोधी—अन्यायके प्रतीकारके लिये तथा नैतिक आत्मरक्षाके लिये अतथ्य बोलना विरोधी अतथ्य है ।

इनमें से संकल्पी हिंसाके समान संकल्पी अतथ्य का त्याग अवश्य करना चाहिये। विरोधीके त्यागकी जरूरत नहीं । हाँ, अगर दूसरे किसी मार्गसे आत्म रक्षा या अत्याचार निवृत्ति की जा सकती हो और वह मार्ग अपन पकड़ सकते हों तो विरोधी असत्य भी न बोला जाय, यह अच्छा है । बाक़ी दो के विषयमें भी यत्नाचार करना चाहिये, तथा अनिवार्य परिस्थितिमें ही उनका उपयोग करना चाहिये । यह याद रखना चाहिये कि जीवनमें हिंसा जिस प्रकार अनिवार्य है, उस प्रकार असत्य अनिवार्य नहीं है । इसलिये हिंसाके लिये जितनी छूट दी जासकती है, उतनी असत्य या अतथ्यके लिये नहीं दी जासकती । फिर भी इतनी बात तो ठीक है कि अगर दुरुपयोग न किया जाय तो अतथ्यभी सत्य होता है और तथ्य भी असत्य होता है ।

जैनाचार्योंने जो सत्यकी व्याख्या की है उससेभी यही सिद्ध होता है । सर्वार्थसिद्धिकार कहते हैं—

"असत् शब्द प्रशंसावाची है, असत् अर्थात् अप्रशस्त । जो प्राणियोंको दुःख देनेवाला है वह अप्रशस्त है, भलेही वस्तुस्थितिकी दृष्टिसे वह ठीक हो या न हो । क्योंकि अहिंसाके पालनके लिये बाक़ी व्रत हैं, इसलिये हिंसा करनेवाले, दुःख देनेवाले वचन अनृत हैं ।" *

महाभारतकार भी कहते हैं—

सत्य (तथ्यपूर्ण) का बोलना अच्छा है परन्तु सत्यकी अपेक्षा हितकारी बोलना अच्छा है । जो प्राणियोंके लिये हितकारी है, वही मेरे मतसे सत्य है ।*

इसके समर्थनमें जैनशास्त्रोंकी गुणस्थानचर्चा—जो कि एक महत्त्वपूर्ण असाधारण चर्चा है—भी सहायक है । आत्मिक विकासके क्रमके अनुसार जैनियोंने प्राणियोंकी चौदह श्रेणियाँ की हैं । पाँचवीं श्रेणीमें प्राणी असत्यका आंशिक त्यागी होता है, और छट्ठी श्रेणी (प्रमत्तविरत) में पूर्णत्यागी । छट्ठी श्रेणीमें पहुँचा हुआ मनुष्य सत्य महाव्रतका पूर्ण पालक होता है, फिरभी जैनशास्त्रोंके अनुसार असत्य वचन योग बारहवीं श्रेणी तक रहता है । इसका मतलब यह हुआ कि छट्ठीसे बारहवीं श्रेणी तकके मनुष्य असत्य या अतथ्य भाषण तो करते हैं, परन्तु इससे उनका सत्य महाव्रत भंग नहीं होता । इससे यह बात स्पष्ट होती है कि जैनशास्त्रोंके अनुसार अतथ्य होकरके भी सत्य होता है और तथ्यपूर्ण होकरके भी असत्य होता है । सत्यासत्यका निर्णय अर्थको देखकर नहीं, किन्तु कल्याणको देखकर किया जाना चाहिये । जैनशास्त्रोंमें ऐसाही कथन है ।

कुछ योरोपियन ग्रंथकार सत्यकी इस व्याख्यापर आक्षेप करते हैं परन्तु योरोपियन नीतिशास्त्रज्ञों में ऐसे बहुतसे हैं जो उपर्युक्त व्याख्याका समर्थन करते हैं । लेस्ली स्टीफनका कहना है—

"किसी कार्यके परिणामकी ओर ध्यान देनेके बादही उसकी नीतिमत्ता निश्चितकी जानी चाहिये । यदि मेरा यह विश्वास हो कि झूठ बोलने ही से कल्याण होगा तो मैं सत्य बोलनेके लिये कभी तैयार नहीं रहूँगा । मेरे इस विश्वासमें यह भाव भी होसकता है कि, इस समय झूठ बोलना ही मेरा कर्तव्य है"।

---

* सच्छब्दः प्रशंसावाची न सदसदप्रशस्तमितियावत् । प्राणि पीड़ाकरं यत्तदप्रशस्तम् । विद्यमानार्थविषयम्वा अविद्यमानार्थ विषयम्वा । उक्तं च प्रागेव-अहिंसाप्रतिपालनार्थमितरद्व्रतमिति महिंसा कर्मवचोऽनृतमिति निश्चेयम्

* सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यादपि हितं वदेत् ।
यद्भूतहितमत्यन्तम् एतत्सत्यं मतं मम ॥
—शान्तिपर्व ३२९,—१३: २८७-१९ ।

अथवा—'यद्भूतहितमत्यन्तं तत्सत्यमितिधारणा ।
—वनपर्व २०८-४ ।

मिस्टर मेकेंज़ीका कहना है—"नीतिशास्त्र यह नहीं कहता कि किसी साधारण नियमके अनुसार सिर्फ यह समझकर कि वह है, हमेशा चलनेमें कुछ विशेष महत्त्व है; किन्तु उसका कथन सिर्फ यही है कि सामान्यतः उस नियमके अनुसार चलना हमारे लिये श्रेयस्कर है। इसका कारण यह है कि ऐसे समय हम लोग केवल नीतिके लिये अपनी लोभमूलक नीच-मनोवृत्तियोंको त्यागनेकी शिक्षा पाया करते हैं।"

नीतिशास्त्रके ग्रन्थलेखक बेन, बेवेल आदि अन्य अंग्रेज पंडितोंका भी यही मत है। †

तथ्यको असत्य और अतथ्यको सत्य सिद्ध कर देनेपर भी सत्यासत्यकी समस्या हल नहीं होसकती। व्यवहारमें इससे बहुत अड़चनें आती हैं बल्कि इस बहानेसे भी लोग मनमाना झूठ बोलेंगे, फिरभी कहेंगे कि हम सत्यवादी हैं, हमने भलाईके लिये या आत्मरक्षाके लिये झूठ बोला, इसलिये वह झूठ भी सत्य है। इस उच्छृंखलताको रोकनेके लिये यह कह देना आवश्यक है कि स्वार्थसिद्धिका नाम कल्याण या आत्मरक्षा नहीं है, इसके लिये अधिकतम प्राणियों का सार्वत्रिक और सार्वकालिक अधिकतम सुखका विचार करना चाहिये। स्पष्टीकरणके लिये इस विषय में भी यहाँ कुछ सूचनाएँ करना आवश्यक मालूम होता है। निम्नलिखित सात सूचनाएँ विशेष उपयोगी मालूम होती हैं:—

१ – न्यायकी रक्षाके लिये असत्य भाषण करना चाहिये, स्वार्थकी रक्षाके लिये नहीं। जैसे—

एक महिलाके पीछे गुंडे पड़े हुए हैं और तुमसे उसका पता पूछते हैं कि वह क्या इस दिशामें गई है? तुम अगर चुप रह जाते हो या 'नहीं मालूम' कहते हो तो वे 'मौनं सम्मति लक्षणम्' की नीतिके अनुसार समझलेते हैं कि वह इसी तरफ गई है। अगर तुम विरोध करते हो तो तुम्हें गोलीका निशाना बनाते हैं और इस बातका दृढ़ निश्चय करते हैं कि वह इसी दिशामें गई है। ऐसी हालतमें अगर तुम झूठ बोलकर उनको उल्टे रास्ते लगा देते हो तो उसकी रक्षा होजाती है। इसप्रकार उस महिलापर अत्याचार नहीं होपाता। ऐसी परिस्थितिमें असत्य बोलना ठीक है।

शङ्का–कल्पना करो कि डाँकुओंने हमारे ऊपर आक्रमण किया। उस समय हम सत्य बोलकर लुटजायँ या उनके पूछनेपर असत्य बोलकर धनकी रक्षा करें।

समाधान—असत्य बोलकर धनकी रक्षा कर सकते हो।

शङ्का—आपने कहा है कि स्वार्थके लिये असत्य न बोलना चाहिये। तब अपने धनकी रक्षाके लिये झूठ बोलना कैसे उचित कहा जासकता है? क्योंकि यहाँ तो स्वार्थके लिये झूठ बोला गया है।

समाधान-डाँकुओंसे धनकी रक्षा करना स्वार्थ की ही रक्षा नहीं है किन्तु न्यायकी भी रक्षा है। डाँकुओंके द्वारा जो कुकृत्य होरहा है वह अन्याय है। उसके विरोध करनेके लिये हम झूठ बोलते हैं; उसके साथ स्वार्थरक्षा हो गई, यह दूसरी बात है, परन्तु उसका असली लक्ष्य न्यायरक्षा है, इसलिये उसके लिये वह झूठ बोल सकता है।

शंका–एक आदमीपर खूनका मुकद्दमा चल रहा है। यदि हम झूठी गवाही दे दें तो वह बच सकता है। ऐसी हालतमें हम झूठी गवाही दें या न दें! झूठी गवाही देनेसे उसका कल्याण है और जिस आदमी का खून हुआ है वह तो कुछ वापिस आ नहीं सकता।

समाधान–वह आदमी तो वापिस न आजायगा किन्तु खूनीको मिलनेवाली फाँसी हज़ारों खूनियोंके हौंसले ठंडे किये रहेगी। भविष्यके इन खूनियोंको खूनके पापसे बचाये रखनेके लिये उसको फाँसी मिलना उचित है। इसलिये ऐसी ही गवाही देना चाहिये जिससे उसका अपराध साबित हो। हाँ, अगर उसका कृत्य अन्यायको रोकनेके लिये हुआ है तो हम झूठी गवाही भी दे सकते हैं। जैसे—मान लो कुछ राहगीर व्यापारियोंपर डाँकुओंने आक्रमण किया। राहगीरोंमें से एकने पिस्तोल चलाकर एक डाँकूको मारडाला। इसलिये डाँकू गोली चलानेवाले व्यक्तिको ढूँढते हैं। उनका विचार है कि गोली चलाने

† [illegible]

वालेको हम मार डालेंगे और और बाकी पथिकोंका धन लूटकर उन्हें जानेदेंगे ऐसी अवस्थामें डाँकुओंके साथ झूठ बोलकर उस पथिककी रक्षा करना उचित है। मतलब यह कि अन्यायके प्रतिकारके लिये अगर किसीने खून किया हो तो झूठ बोलकर भी उसकी रक्षा करना चाहिये। जैनशास्त्रोंमें इस प्रकार न्यायरक्षाके लिये झूठ बोलनेके बहुतसे उदाहरण मिलते हैं। झूठ बोलकरके भी विष्णुकुमार मुनिने सात सौ मुनियों की रक्षा की थी। भारतके ऊपर आक्रमण करनेवाले अनिवार्य राजाको धोखा देकर क़ैद करनेके लिये राम लक्ष्मणने नटवेष बनाकर उसकी वंचना की थी। लक्ष्मणने तो नटीका वेष बनाया था। भट्टाकलंकने बौद्ध विद्यालयमें अपने जैनत्वको छुपाये रखनेके लिये झूठ बोला था। इस प्रकारके बहुतसे उदाहरण जैन शास्त्रोंमें मिल सकेंगे। कथाएँ कल्पित होनेपर भी कथाकार जैनाचार्योंके विचारोंका प्रदर्शन अच्छी तरह करती हैं।

२ रोगी पागल आदिके साथ उन्हींके हितके लिये झूठ बोलना अनुचित नहीं है। परन्तु झूठ बोलनेसे रोगी आदिको लाभ है, इस बातका पक्का निश्चय कर लेना चाहिये। इसपर उपेक्षा करना या स्वार्थवश झूठ बोलजाना पूर्ण असत्य है।

रोगीका जीवन संशयापन्न है। अगर उससे यह कह दिया जाय कि तुम्हारा बचना असंभव है तो रोगी और भी जल्दी घबराकर मर जायगा ऐसी हालतमें उससे झूठ बोलना चाहिये। 'परन्तु यह रोगी है इसलिये झूठ बोलनेमें कुछ हर्ज नहीं' सिर्फ इतना विचार करके झूठ बोल जाना घोर प्रमाद है क्योंकि इससे अधिकतर अकल्याण होनेकी सम्भावना है। अगर रोगी ऐसा हो जिस पर समाज का या कुटुम्बका भार हो, मरनेके पहिले वह कुछ गुप्त रहस्य प्रकट करना चाहता हो, या कुटुम्बकी आर्थिक आदि व्यवस्था कर जाना चाहता हो तो ऐसी हालतमें भी उसको मिथ्या बोलकर भ्रममें डाले रहना उसका और समाजका घोर अपराध करना है। अथवा यह सम्भव है कि रोगकी असली अवस्था मालूम हो जानेसे वह दूसरा उपाय निकालना चाहता हो जिसमें वह सफल हो सके। ऐसी अवस्थामें असली हालत छुपाये रखना अनुचित है। इस असत्यका भुक्तभोगी तो मैं ही हूँ। मेरी पत्नीको अस्थिक्षय था—जो कि अमुक अंशमें अब भी कहा जासकता है—परन्तु प्रमादी और अज्ञानी डॉक्टरोंने मुझसे जराभी जिकर न किया और बार बार ऑपरेशन करके कंधेके नीचेकी हड्डी काटते रहे। मुझे रोगजगत् अनुभव तो नहीं था किन्तु कुछ घटनाओंके सुननेसे मुझे यह अच्छी तरह मालूम था कि अस्थिक्षय ऑपरेशनोंसे कभी नहीं जाता। अगर मुझे पहिले ही रोगका परिचय करा दिया होता तो मैं कभी ऑपरेशन न करवाता। परन्तु बड़ी मुश्किलसे यह बात मुझे एक साल बाद मालूम हुई। लेकिन उस समय तक शिकारी डॉक्टरोंने रोगीका कई बार शिकार कर लिया था, फिर भी मैंने हिम्मत न हारी और डॉक्टरी जगतको लम्बासा प्रणाम करके जलचिकित्साका अध्ययन किया और उससे रोगीको इस हालतमें ले आया जिसमें कोई डॉक्टर न ला सकता। मेरे एक चिकित्सक और अनुभवी डॉक्टर ने मेरी पत्नीको देखकर हँसते हँसते कहा कि अब तुम भी डॉक्टर हो गये हो। ऑपरेशनने जो क्षति पहुँचा दी थी उसकी पूर्ति न होपाई। इस प्रकार डॉक्टरकी एक छोटीसी झूठने जीवन की आधी शक्ति बर्बाद कर दी। इसलिये मैं कहता हूँ कि रोगी से या रोगीके अभिभावकसे झूठ बोलनेका नियम बड़ी सतर्कतासे पालना चाहिये।

सच बोलनेसे यह रोगी किसी दूसरे डॉक्टरके पास चला जायगा, इस अभिप्रायसे झूठ बोलना तो औरभी बड़ा अपराध है। इस अभिप्रायसे झूठ बोलनेवाले लोग तो कसाईकी कक्षामें चले जाते हैं। उन लोगोंके लिये रोगीसे झूठ बोलनेका नियम नहीं है। मतलब यह कि रोगीके कल्याणकी दृष्टिसे झूठ

बोलनेका विचार करना चाहिये और उसमें प्रमाद न करना चाहिये।

जो बात शरीरके रोगीके लिये कही गई है, वही बात आध्यात्मिक रोगीके विषयमें भी समझना चाहिये। समझदार आदमीको धर्मके गुण अवगुण बता देनेसे वह धर्मको ग्रहण करता है और उसमें स्थिर रहता है। परन्तु कोई मनुष्य या व्यक्ति जब धर्मके इस स्वाभाविक सत्य विवेचनसे आकर्षित नहीं होता, बल्कि भड़कानेवाली मिथ्या बातोंसे वह ढोंगियोंकी तरफ आकर्षित होता है, तब धर्मगुरुको भी मिथ्याभाषणकी जरूरत पड़ जाती है। वह उन्हें सदाचारी बनानेके लिये स्वर्ग और नरकके कल्पित चित्र बताता है। विश्वास पैदा करनेके लिये सर्वज्ञ की कल्पना करता है, पूर्व जन्मकी कल्पित कथाएँ सुनाता है, मनके ऊपर असर डालकर पूर्व जन्मका स्मरण कराता है। इस प्रकार धर्मप्रचारके लिये वह मिथ्याभाषण करता है। परन्तु इस मिथ्याभाषणसे लोगोंका कल्याण ही होता है, इसलिये इस मिथ्याभाषणसे सत्यव्रतमें कोई धक्का नहीं लगता। इसका एक सुन्दर उदाहरण णायधम्मकहामें मिलता है। उसका संक्षिप्तसार यहाँ दिया जाता है।

राजा श्रेणिकका पुत्र मेघकुमार जोशमें आकर महात्मा महावीरके पास दीक्षित हो गया। साधु तो हो गया परन्तु राजकुमारपनकी गंध न गई। वह चाहता था कि साधु हो जानेपर भी मैं राजा-साधु कहलाऊँ और दूसरे साधु मेरा आदर करें। परन्तु महात्मा महावीरके संघमें श्रीमानों और गरीबोंमें भेद न था। इसलिये मेघकुमारकी इच्छा पूरी न हुई; बल्कि नया साधु होनेसे उसकी बैठक सबके अंतमें थी इसलिये आते जाते समय साधुओंके पैरोंकी धूलि उसके ऊपर पड़ती, इससे उसे कष्ट तो होता था सो ठीक है किन्तु उसका हृदय अपमानका अनुभव करता था। वह महात्मा महावीरके पास आया। महात्माजीने सब बातें शीघ्र ही समझ लीं और मेघकुमारसे कहा:—

"कुमार! तुम भूल गये हो परन्तु मुझे सब बातें याद हैं। आजसे तीसरे भवमें तुम गंगा तट के जंगलमें हाथी थे। दावानलसे मरकर तुम फिर हाथी हुए। फिर आग लगी, परन्तु इस बार तुम बचे तब तुमने अपने झुंडको लेकर वृक्ष उखाड़ कर एक मैदान बनाया जिससे जब आग लगे तब तुम उसमें जाकर रक्षा कर सको। एक बार फिर आग लगी परन्तु तुम्हारे पहुँचनेके पहिले वह मैदान अन्य जानवरोंसे भर गया था। बड़ी मुश्किलसे तुम्हें खड़े होनेको जगह मिली। परन्तु थोड़ी देर बाद अङ्ग खुजानेके लिये तुमने पैर उठाया ही था कि उस जगह पर एक खरगोश आ बैठा। तुमने सोचा कि अगर मैं पैर रक्खूँगा तो बेचारा खरगोश मर जायगा इसलिये तुम ढाई दिन तक तीन पैरसे खड़े रहे। जब आग बुझ गई, सब जानवर चले गये तब तुमने भी चलनेकी कोशिश की। परन्तु अंग अकड़ जानेसे गिर पड़े, और कुछ दिन समभावसे कष्ट सहकर श्रेणिक पुत्र मेघकुमार हो गये। एक पशुके भवमें तुममें इतनी दया, सहनशक्ति और विवेक था, परन्तु यह कितने आश्चर्यकी बात है कि मनुष्यभव प्राप्त करके इतनी अच्छी सत्संगतिमें रहकरके भी तुममें आज राजमद और असहिष्णुता है।"

म० महावीरको मेघकुमारके पुरानेभव याद आये कि नहीं, यह तो वेही जानें, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि मेघकुमारका उद्धार होगया। उसका राजमद आँसू बनकर बहगया। वह पवित्र मनुष्य बनगया।

इस प्रकार अतथ्यभाषणसे सत्यव्रत भंग तो क्या दूषितभी नहीं होता। महात्मा ईसाके शिष्य 'पाल' कहते हैं—

"यदि मेरे असत्यभाषणसे प्रभुके सत्यकी महिमा और बढ़ती है तो इससे मैं पापी कैसे होसकता हूँ?"

परन्तु जैसे मैंने शारीरिक रोगीके विषयमें कहा है कि इस नियमका उपयोग बड़ी सतर्कतासे करना चाहिये, उसीप्रकार मैं यहाँभी कहता हूँ कि धार्मिक मामलोंमें भी इस प्रकारके असत्यका प्रयोग बहुत

सतर्कतासे करना चाहिये। अगर इससे जिज्ञासु लाभ उठासके, उसका कल्याण हो, तो ठीक है, नहीं तो इसका प्रयोग खतरेसे खाली नहीं है। उदाहरणार्थ-हजार दो हजार वर्ष पहिले लोग जैसी कल्पनाओं पर विश्वास कर लेते थे उन कल्पनाओंको आज अगर वैज्ञानिक सत्यका रूप दिया जाय, उनको ऐतिहासिक सत्य समझा जाय तो इसका फल यह होगा कि अनाजके साथ घुन भी पिस जायगा। एकके पीछे सभी बातें असत्य मानी जाँयगी। इससे हम कल्याणके स्थानमें अकल्याण ही करेंगे। अगर कल्याण अकल्याण पर दृष्टि न रखकर अहंकारवश अपने मतकी, असत्य होने परभी पुष्टि करते जाँयगे और सत्यके आगे सिर न झुकायँगे तो पूर्ण असत्यवादी होजाँयगे।

एक बात और है कि इस नियमके अनुसार पर कल्याणके लिये ही असत्य बोलना चाहिये, न कि अपने सम्प्रदाय या अपने मत विचार-की विजय वैजयन्ती उड़ानेके लिये। अपने सम्प्रदायमें जो अपनापन होता है, वह अहंकार है, स्वार्थ है। उसके लिये असत्य बोलना वास्तवमें असत्य बोलना है। जैसे—दिगम्बर श्वेताम्बर आपसमें लड़ते हैं; अब इनमेंसे दिगम्बर या श्वेताम्बर अपनेको प्राचीन सिद्ध करनेके लिये या किसी तीर्थको अपना सिद्ध करनेके लिये मनमाना झूठ बोलते हैं! अब यदि वे यह कहें कि 'हमने यह झूठ धर्मके लिये बोला है इसलिये क्षन्तव्य है' तो यह बहाना ठीक नहीं। इस प्रकार झूठ बोलनेवाला उतनाही झूठा और बेईमान है जितना कि दुनियाँदारीमें झूठ बोलने वाला होसकता है; क्योंकि ऐसा करना असंयमसे संयममें लेजाना नहीं है किन्तु दूसरेके नैतिक अधिकारोंका हड़पना है। इसी प्रकार एक आदमी व्यभिचारजात या दस्सा है और मुनि बन गया है परन्तु कहता फिरता है कि व्यभिचारजात या दस्सा को मुनि बननेका अधिकार नहीं है, जब उससे कोई पूछता है, तुमभी ऐसे हो तो कहता है कि 'मैं ऐसा नहीं हूँ', इस प्रकार झूठ बोलकर वह यह सोचे कि मैंने धर्मरक्षाके लिये यह झूठ बोला है तो उसका यह समझना भारी भ्रम है; क्योंकि ऐसा करके वह धर्मके स्वरूपपर वास्तविक विचार करनेकी सामग्री छीनता है। कहनेका मतलब यह है कि असंयमसे संयममें ले जानेके लिये या संयममें स्थिर रखनेके लिये, दूसरेके नैतिक अधिकारोंपर आक्रमण किये बिना निस्वार्थभावसे झूठ बोलना क्षन्तव्य है। अन्यथा धर्मके नाम पर होनेपर भी वह पूरी बेईमानी है।
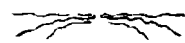
ग्रीष्मप्रवास।

जैनजगत्‌में ग्रीष्मप्रवासकी सूचनाएँ पढ़कर अनेक मित्रोंके निमन्त्रण आये थे, परन्तु मुझ सरीखे उग्र क्रान्तिकारक विचारकके लिये इतनी सुविधा कैसे मिल सकती है कि मैं तारीखवार प्रोग्राम बना सकता। अमुक अमुक जगह जाना है, बस, इतनाही निर्णय था। प्रवासकेलिये एकतो दिन खराब, फिर खानदेश और बरारका भ्रमण! यहाँ गर्मी काफ़ी पड़ती है। स्नेहियोंने कहाभी कि समय और स्थान अच्छा नहीं चुना, वहाँकी गर्मी आप सह नहीं सकेंगे। परन्तु दूसरा उपायही क्या था? सेवा और आरामका मेल कैसे होसकता था? पत्नी की चिकित्सा करते रहनेके लिये सपत्नीक प्रवास करना था। इसमें असुविधा तो थी परन्तु सन्तोषके लिये कुछ सुविधाभी मानली। इस प्रकार विविध विचार करते हुए ता० २५ को बम्बईसे रवाना होकर ता० २६ को जामनेर आया। यहाँ कुछ सैतवाल जैनोंकी बस्ती है जो हिन्दी नाम मात्रको समझते हैं। कुछ ओसवाल हैं। ये सब प्रायः खेती करते हैं। यहाँके सबसे बड़े श्रीमान राजमलजी ललवानी हैं। आप मुंबई कौंसिलके मेंबर रहचुके हैं। मिलनसार, विनोदी, वक्ता और विचारक हैं। दो दिन आपसे जैनधर्मके विषयमें खुलकर बातचीत हुई। आप उदार हैं, आपमें साम्प्रदायिकता नहीं है, इसलिये मेरे

विचारोंसे आप बहुत प्रसन्न हुए और नयीनयी बातोंकी मुक्तकंठसे प्रशंसा की।

ता० २६ के शामको मैं और राजमलजी बाहिर बैठे थे कि दो मुसलमान सज्जन आये। दोनोंही वृद्ध थे, तथा धार्मिक विषयमें अपनेअपने कुछ विचार रखते थे। एकका नाम था श्री यूसुफ मियाँ काज़ी। आप लखपति हैं खेती करते हैं सच्चे मुसलमान हैं। दूसरे सज्जनका नाम याद नहीं रहा। आप कट्टर मुसलमान हैं। दूसरे शब्दोंमें यों कहना चाहिये कि काज़ीजी तो स्याद्वादी मुसलमान हैं, और दूसरे सज्जन एकान्ती मुसलमान।

सेठ राजमलजीने मेरे विचारोंकी बहुत प्रशंसा की इससे काज़ीजीकी इच्छा हुई कि मैं कुछ कहूँ। मैंने धर्मका उद्देश्य बताते हुए स्याद्वाद तथा सर्वधर्म समभावकी व्याख्या की। काज़ीजी तो इससे प्रसन्न हुए परन्तु दूसरे सज्जन बोले कि सभी धर्म तो सच्चे हो नहीं सकते, सच्चा तो कोई एक ही होगा।

मैंने कहा—सचाई तो सभी धर्मोंमें है। उनने अपनेअपने समय पर और अपनी जगह पर बहुत के लोगोंको फायदा पहुँचाया है। हाँ, जैसे अच्छीसे अच्छी दवाई सब समय सब रोगियोंके लिये लागू नहीं होसकती—एकके लिये वह दवाई और दूसरे के लिये वह विष होसकती है; परन्तु इसीलिये हम उसकी निंदा करें यह ठीक नहीं। इसी प्रकार धर्म अर्थात् मज़हब-सम्प्रदायभी अपनेअपने समयके लिये अच्छे होते हैं।

परन्तु उक्त सज्जनको यह बात न जँची। वे बोले—वाह, ऐसा कैसे होसकता है? मनुष्यकी चीज़ोंमें दोष होता है परन्तु खुदाकी बनाई हुई चीज़में दोष नहीं होता।

मैंने कहा—तबतो इन्सानमें दोष न होना चाहिये क्योंकि इन्सानको भी खुदाने बनाया है। परंतु खुदाके बनाये हुए इस इन्सानमें जितने दोष हैं उतने और किसमें हैं?

परन्तु उक्त सज्जन क्रमबद्धताका कुछ खयाल न रखते थे इसलिये इस बातका कुछभी जवाब न देकर बोले—खुदाने तो एकही दूत भेजा है, और वही सच्चा है। इस बातको हम अपनी अक्लसे जानसकते हैं। देखिये, जो लोग कहते हैं कि गायके मूतसे शुद्धि होती है, उनका धर्म कैसे खुदाई धर्म होसकता है?

मैंने कहा—आप कहते हैं कि खुदाने दूत भेजा है और उसने संदेश कहा है जब कि कोई कहते हैं किस्वयं ईश्वरने अवतार लेकर संदेश कहा है। अब ईश्वरके दूतकी बात मानें कि ईश्वरकी; बात यह है कि सभीने अपनी अपनी बातको सत्य सिद्ध करने के लिये ईश्वरकी, उसके दूतकी या सर्वज्ञकी छाप लगाई है। रही दोषकी बात, सो ऐसा कौनसा धर्म है जिसमें दोष न हों, बेहूदी बातें न हों? मुसलमान धर्ममें क्या ऐसी बातें कम हैं? मैं सब धर्मोंका समन्वय करना चाहता हूँ, न कि खण्डन; इसलिये किसी धर्मके दोष बतलाना मुझे पसन्द नहीं, परन्तु यदि आपकी इच्छा हो तो मुसलमान धर्मके जितने चाहे दोष बतानेको मैं तैयार हूँ। इतनाही नहीं, किन्तु किसीभी धर्मका आप नाम लीजिये, मैं उसमें दोष बताऊँगा।

मेरी बात सुनकर वे चुप होगये, परन्तु थोड़ी देरमें बोले—खुदाके मजहबमें हजारों बातें हैं और वे सदासच्ची हैं। इन्सानका मजहब उन्हें नहीं पा सकता।

मैंने कहा—अच्छा आप खुदाके मजहबकी एकाध बात तो बताइये।

वे बोले—क्या बताऊँ? हजारों हैं।

मैंने कहा—कमसे कम एक तो बताइये।

परन्तु बार बार वे 'हज़ारों हैं' ही कहते रहे और मैं भी उनसे एकका नाम माँगता रहा। अन्त में उनने कहा—अच्छा, जैसे सच बोलना।

मैंने कहा—सच बोलना तो इन्सानकी बात है। इन्सानने अनुभवसे जाना कि सच बोलनेसे हमाराभी भला है और दूसरेकाभी भला है, इससे सच बोलनेको उसने धर्म मानलिया। यह बात सभी

मजहबोंमें मानीगई है। इसमें खुदाकी करामात क्या होगई और वह किसी एकही मजहबमें कैसे कहलाई ? इसीलिये मैं कहता हूँ कि सभी मजहब मनुष्यके बनाये हुए हैं, सभीने कुछ न कुछ भलाई की है, सभीमें कमी है, और सभी विकृत होगये हैं।

वे सज्जन बोले—क्या आपने सब मजहबोंको जानलिया है, जो उनमें कमी बताते हैं ?

मैंने कहा—जितने धर्मोंको जाना है उनमें कमी अवश्य है और उसमें हिन्दू, इस्लाम, जैन, बौद्ध आदि सभी मुख्य मुख्य धर्म आजाते हैं।

वे बोले—फिरभी आप सबके बारे में कैसे कह सकते हैं ?

मैंने पूछा—आप यह बात मानते हैं कि नहीं कि हरएकके पेटमें मल होता है ?

वे बोले—इसमें क्या शक ? इनसानके पेटमें मल होताही है।

मैंने कहा—क्या आपने संसारके सब इन्सानोंको देख लिया है ? फिर बिना देखे आप कैसे कहते हैं ?

वे बोले—इसके क्या माने ? जब हजारों आदमियोंको देखा है और सबमें यही बात पाई है तब सभी आदमियोंके बारेमें यही बात कही जासकती है।

मैंने कहा—जब हजारों मनुष्योंको देखकर आप करोड़ों और अर्बोंके विषयमें कुछ कहसकते हैं तब मैंने मुख्य मुख्य धर्मोंको देखकर सब धर्मोंके विषय में कहा तो क्या बुरा किया ?

इसके बाद यह चर्चा खलास होगई तथा शिष्टाचार की बातें होने लगी।

दूसरे दिन सुबह काजीजी फिर आये। कलके कट्टर सज्जन आज नहीं थे। आज आप दो टोकनी खरबूजे भी लाये थे। आपने बहुत प्रेमपूर्ण वार्तालाप किया। ललवानीजीके अनुरोधसे मैंने लेखमाला के प्रथम अध्यायका कुछ भाग सुनाया। अन्तमें वे बोले—आपका कहना बिलकुल ठीक है परन्तु गुजरके लिये कोई न कोई जगह बनानाही पड़ेगी। जैसे आप यहाँ आये और राजमलजीके यहाँ ठहरे तो आपको आराम रहा; अगर कहीं न ठहरे होते तो कष्ट होता।

मैंने कहा—एक जगह ठहरना एक बात है, और दूसरी जगह ठहरने वालोंको नास्तिक, मिथ्यादृष्टि, काफिर, म्लेच्छ आदि कहना बिलकुल दूसरी बात। आप जहाँ चाहे ठहरिये—परन्तु आपही सबसे अच्छी जगह ठहरते हैं, और सबको वहीं ठहरना चाहिये—यह भ्रम न रखिये। और जिस जगह आप सदा ठहरते हैं, उससे अच्छी जगह ठहरनेको मिले तो वहाँ ठहरने लगिये, पुरानी जगह बदल डालिये, अथवा ठहरनेके लिये नया स्थान बनानेकी आवश्यकता हो तो जरूर बनाइये !

काजीजी बोले—आपका फ़र्माना ठीक है, वाक़ई हमको दूसरे मजहबकी बुराई करनेका कोई हक़ नहीं है। अगर हम अपना प्रचार करना चाहें तो हमें सिर्फ़ इतनाही कहना चाहिये कि हमें इतनी सुविधाएँ हैं।

मैंने कहा—बस यही स्याद्वाद है, सर्वधर्म समभाव है, सच्चा धर्म है।

इसके बाद काजीजी बोले—सचमुच आप बहुत अच्छी बातें फर्माते हैं। मैं तो कुछ समझता नहीं हूँ।

मैंने कहा—तबतो आप बहुत अधिक समझते हैं, क्योंकि जो इतना समझता है कि "मैं कुछ नहीं समझता" वह बहुत अधिक समझता है। सुकरात का नाम तो आपने सुना होगा ?

काजीजीने कहा—हाँ, सुना है। वे बहुत बड़े महात्मा हुए हैं।

मैं—हाँ, वे यूनानके बड़े भारी दार्शनिक विद्वान् और सम्राट सिकन्दरके दादा गुरु थे। एक बार देववाणी हुई कि सुकरात सबसे बड़ा ज्ञानी है। तब सुकरातको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे सोचने लगे, मैं तो कुछ नहीं समझता, फिर यह देववाणी कैसे हुई ? क्या देशमें मुझसे बड़ा विद्वान नहीं है ? यहाँ तो एकसे एक बढ़कर विद्वान हैं। देखूँ क्या बात है ? उनने सब विद्वानोंसे मिलना शुरू किया। तब उन्हें मालूम हुआ कि ये विद्वान भी कुछ नहीं समझते।

अंतमें सुकरातने निर्णय किया कि ये भी कुछ नहीं समझते, और मैं भी कुछ नहीं समझता परन्तु मैं इतना समझता हूँ कि 'मैं कुछ नहीं समझता', जब कि ये विद्वान इतनाभी नहीं समझते। इसलिये मैं ज्ञानी हूँ, क्योंकि अपने अज्ञानको तो जानता हूँ।

मेरी बात सुनकर राजमलजी काज़ीजीसे जोर से बोले—समझे! समझे!!

काज़ीजीने कहा—समझा, खूब समझा!!

काज़ीजी मुसकराने लगे और राजमलजी तो मुसकरानेकी अपेक्षा अट्टहास्य करना अधिक पसंद करते हैं। सचमुच आप विनोद और आनन्दके पुतले हैं।

चर्चाके बादमें कहा गया कि मैं खरबूजे खाऊँ, परन्तु मैंने कहदिया कि खरबूजे न तो मुझे स्वादकी दृष्टिसे पसन्द हैं, न स्वास्थ्यकी दृष्टिसे। परन्तु दोनों ने कहा—आप चिन्ता न कीजिये। बीमार न होंगे। बस, खरबूजों पर धावा बोल दिया गया। साथही काज़ीजीकी मीठी मीठी बातें भी चलीं। एक बार में इतने खरबूजे मैंने अपने जीवनमें कभी नहीं खाये थे। खरबूजेकी कलियाँ बिना मेरी इच्छाके मेरे हाथ पर आजाती थीं और मेरा विद्रोही हाथभी बिना मेरी इच्छाके उन्हें मुँहमें डाल देता था और यह चटट्ट जीभभी मेरी पर्वाह किये बिना उसे अपनी जड़के नीचे उतारती जाती थी। यह सब काम मेरी इच्छाके बिनाही होरहा था। ठीक उसी तरह जैसे बिना इच्छाके तीर्थंकरके मुँहसे दिव्यध्वनि खिरती है। दिव्यध्वनिमें भव्योंका पुण्य कारण होता है, यहाँ कारण यह था कि खरबूजे खूब ठंडे थे, उस से भी ज्यादः स्वादिष्ट थे और काज़ीके स्नेहने और राजमलजीकी बातोंने उन्हें और भी अधिक सरस बनादिया था।

इसी दिन शामको मेरा व्याख्यान हुआ। गाँवके प्रायः सभी जैन पुरुष तथा अधिकांश स्त्रियाँ उपस्थित थीं।

जो वस्तु जितनी सूक्ष्म होती है वह उतनी ही अधिक आवश्यक होती है। धर्म वायुसे पतला है। इसलिये वायुसे भी अधिक प्रति समय आवश्यक है। धर्म सुखके लिये है। सुखही उसकी कसौटी है। शास्त्रोंसे लाभ उठाओ, परन्तु उनको कसौटी मत बनाओ। उनकी दुहाई मत दो। धर्म लड़नेके लिये नहीं है। सम्प्रदायके लिये धर्मकी हत्या मत करो! धर्म पानीकी तरह है, उसे कोई नहीं बनाता। हाँ उसका तीर्थ (घाट) बनाता है। इसीलिये हम महावीरको तीर्थंकर कहते हैं न कि धर्म कर। तीर्थको सुधारना चाहिये। उसके जीर्णोद्धारकी सदा आवश्यकता है। इसमें पूर्वपुरुषोंका अपमान नहीं है। बाप दादोंसे बढ़नेकी कोशिश करो, जैसे धनमें बढ़नेकी कोशिश करते हो, आदि बातें व्याख्यान का सार थीं।

आते समय सेठ राजमलजीने ५०) जैनजगत् की सहायतार्थ दिये। इसके लिये मुझे याचनाका कष्ट या संकोच नहीं सहना पड़ा। इसलिये आपने अपने दानको दूना पुण्यमय बनालिया है। ता० २८ को यहाँसे भुसावलके लिये रवाना हुआ।

विरोधी मित्रोंसे।

(१८)

आक्षेप (५४) 'बाह्य अतिशयोंको महत्व देनेकी ज़रूरत नहीं'—यह एकान्त कथन है। श्रेष्ठ पुरुषोंसे नमस्कृत होनेसे अज्ञानीको पहिचान हो जाती है। इन्द्रादिसे नमस्कृत होनेमें कल्पितता क्या है? जो विभूतियाँ साधारण पुरुषमें पाई जाती हैं, क्या वे असाधारणमें नहीं होसकतीं? यह तो जीवनचरित्र है। आपनेभी विवाह आदिकी बातें लिखी हैं।

समाधान— जैन दर्शन कुछ सर्वथा अनेकान्तवादी नहीं है, वह एकान्तवादी भी है। जो एकान्त, एकान्तवादका खण्डन करके अनेकान्तका पोषक हो, वह सदेकान्त है और वह

ग्रहण करने योग्य है। जैनाचार्य जब क्षणिक-वादके खण्डनके लिये नित्यवादी बनजाते हैं तब भी वे स्याद्वादी रहते हैं। यही बात यहाँ है। बाह्य अतिशयों को मैं नहीं मानता, यह समझना भूल है। मैंनेभी उन्हें माना है। परन्तु जो लोग बाह्य अतिशयोंके नामपर असत्यसे असत्य बातोंकी कल्पना करने लगते हैं और बाह्य अतिशयोंके बिना तीर्थंकरत्वकी कल्पनाभी नहीं करसकते, उनके इस एकान्त आग्रहको छुड़ानेके लिये बाह्य अतिशयोंकी निःसारता बतलाई गई है। जो विभूतियाँ साधारण मनुष्योंमें होती हैं वे असाधारण मनुष्योंमें भी होसकती हैं। परन्तु होसकती हैं, होना ही चाहिये—यह बात नहीं है। स्वर्ग नर्कके होनेपर भी उनकी वर्तमान कल्पना, कल्पना ही है, अप्रामाणिक है। इससेभी कोई भिन्न जगत् है और वहाँ प्राणी भी होंगे: परन्तु वे यहा आते हैं और यहाँके तीर्थंकरोंकी उन्हें ज़रूरत है आदि बातें बिलकुल असत्य हैं। इसलिये महावीरके जीवनचरित्र में उन्हें स्थान नहीं मिलसकता। जो घटनाएँ सम्भव और प्रामाणिक मालूम होती हैं, वेही यहाँ लीगई हैं।

आक्षेप (४५)—देवागम नभोयान आदि श्लोकोंसे आचार्य समन्तभद्रने बाह्य अतिशयों को साधारण माना है, आप सरीखे उनने लोप नहीं किया। दूसरी जगह इनने वर्णनभी किया है।

समाधान—मैंने यह कहीं नहीं लिखा कि ये आचार्य इन अतिशयोंको नहीं मानते। मैंने तो सिर्फ़ इतना कहा है कि ये आचार्य इन अतिशयों को प्रत्यक्ष अनुमानसिद्ध नहीं मानते तथा साधारण और अनावश्यक मानते हैं। परस्पर जुदी जुदी बातोंको एक समझनेकी ग़लती आक्षेपकने अनेक जगह की है। मेरी जिस बातका समर्थन इन दोनों आचार्योंसे हुआ है, उसीका मैंने उल्लेख किया है। मेरा यह कहना नहीं है कि ये आचार्य हर तरह मेरे समान विचार रखते थे।

यद्यपि इस आक्षेप का समाधान होचुका है इसलिये इसके समाधानके लिये नहीं, किन्तु पाठकोंकी जानकारीके लिये यहाँ एक बात लिखदेना उचित समझता हूँ। मनुष्य जन्मसे ही सुधारक विचारक आदि नहीं होता; धीरेधीरेही उसका विकास होता है। सम्प्रदायकी मान्यताओंके जालसे वह धीरे धीरे छूटता है। समन्तभद्र आदि आचार्योंके विषयमें भी यही बात है। प्रारम्भमें उनने भगवानकी दार्शनिक महत्ता बताई परन्तु जन्मसेही भक्तिकल्प घटनाओं का जो प्रभाव पड़ा था, वह छूट न सका। इसप्रकार स्वयम्भूस्तोत्रमें दोनोंकी खिचड़ी दिखाई देती है। जब समन्तभद्र धीरे धीरे विचारकताके मार्गमें और बढ़े तब उनने इनको महत्वशून्य कहकर बिलकुल छोड़ दिया। समन्तभद्रकी इस विकसित अवस्थाके दर्शन हमें आप्तमीमांसामें होते हैं। आजभी हम इस प्रकारके क्रमविकासके उदाहरण देखते हैं। आजसे १० वर्ष पहिलेके मेरे लेखों और कविताओंको कोई देखे तो उसे विचारभेद मालूम पड़े या न पड़े परन्तु उससमय साम्प्रदायिक मान्यताओं से मैं जितना जकड़ा था, उतना अब नहीं जकड़ाहूँ, यह ज़रूर समझेगा। समन्तभद्रके जीवन मेंभी यह क्रमविकास हुआ था।

दूसरी बात यह है कि कुछ अपवादोंको छोड़कर साधारणतः मनुष्य अपनी परिस्थितिसे बहुत ऊँचा नहीं हो सकता। समन्तभद्र सुधारक और विचारक थे परन्तु उनका समय वैसा नहीं था, न उन्हें पहिलेके किसी आचार्यकी इतनी सामग्री मिली थी कि वे बहुत ऊँचे उठते। अगर उनके विचार होंगे भी तो भी खुलेदिलसे नहीं कहसके। उनने जो कुछ लिखा वही बहुत था। समन्तभद्रकी इस निर्भीकताका बल पाकर

विद्यानंद कुछ आगे बढ़ सके। उनने स्पष्ट कह दिया कि मैं इन अतिशयोंको नहीं मानता; मैं परीक्षाप्रधानी हूँ। आगममें ये अतिशय लिखेभी हों तो क्या? उसकी सत्यतामें प्रमाणही क्या है? (नाप्यसिद्ध प्रामाण्यादागमात् त्वतिपत्ति तिप्रसङ्गात) आदि। समन्तभद्रकी इतनी पूँजी न मिली होती तो विद्यानन्दमें विचारकतारूपी धन समन्तभद्रसे भी कुछ अधिक न हुआ होता। फिरभी आखिर ये लोग विद्वान थे, म० महावीर आदिकी तरह क्रान्तिकारी सुधारक नहीं थे, इसलिये साम्प्रदायिकताके चंगुलसे कहांतक निकलसकते थे। आजकल के समान उससमय इतने साधन भी तो नहीं थे।

आक्षेप ९६—देवशब्दका अर्थ अगर दिव्य-गुण युक्त, जाति विशेष या देशविशेषके मनुष्य करेंगे तोभी यही दोष होगा क्योंकि दिव्यगुण युक्त मनुष्य महावीरके पास तथा दूसरोंके पास कैसे जायगे? देवशब्दका अर्थ अगर चतुर्णिकायके देव किया जाय तो यहदूषण नहीं रहता क्यों कि नीचीश्रेणीकेदेव दूसरोंके पास जाते थे और इन्द्रादि उच्च श्रेणीके देव भगवानके पास आते थे।

समाधान—यह मैं पहिले कहचुका हूँ कि देवादि दूसरे जगतके प्राणी यहां नहीं आते। इसलिये या तो यह कहना चाहिये कि देवागमन की बात बिलकुल झूठी है, इसकल्पनाका कोई उचित आधारही नहीं है, या विशेष मनुष्योंको इसकल्पनाका आधार मानना चाहिये। मुझे इनदोनोंमें कोई विशेष आपत्ति नहीं है, फिरभी निराधार कल्पनाकी अपेक्षा साधार कल्पना मानना उचित है, इसीलिये देवका अर्थ मनुष्य किया है। दूसरीबात यह है कि माननीय या असाधारण कामकरने वाले पुरुष स्त्रियोंका हम व्यवहारमें भी देव देवी शब्दसे उल्लेख करते हैं। शास्त्रोंमेंभी पाँचप्रकारके देवोंका उल्लेख है, जिसमें मुनियोंको, राजाओं कोभी देव कहा है। भव्य देव, नरदेव, धर्मदेव, देवाधिदेव, भावदेव इनमें भावदेवको छोड़कर बाकी चार प्रकारके देव मनुष्यही कहेजाते हैं। हाँ, भव्यदेव तिर्यंच भी होसकता है। इसलिये मैंने जो देवशब्दका मनुष्यविशेष अर्थ किया है वह शास्त्रानुकूल, व्यवहारानुकूल और प्रकरणसंगत है। इस प्रकारके देव (राजा वगैरः) महावीरके पासभी आते थे और दूसरोंके पासभी जाते थे। बुद्ध आदिके जीवनचरितसे यह बात स्पष्ट है।

अगर देवोंका अर्थ चतुर्णिकायके देव किया जाय तो यह बात नहीं बनसकती क्योंकि प्रत्येक मनुष्यके पास इतने साधन नहीं हैं कि वह सच्चे और मिथ्यागुरुकी परीक्षा कर सके। बुद्धि और विवेक होने परभी बाहिरी साधनोंकी कमीसे वह भटक ही जाता है। परन्तु चतुर्णिकायके देवोंके विषयमें यह बात नहीं कही जासकती; क्योंकि छोटेसे छोटे देवके पास इतनी ज्ञान शक्ति और गमनशक्ति अवश्य मानी जाती है कि जिससे वह सुदेव, कुदेवकी परीक्षा कर सके। जैनशास्त्रोंके अनुसार जम्बूद्वीप धातुकी खंड पुष्करार्द्ध आदिके भरत ऐरावत विदेह क्षेत्रोंमें सब जगह जैनतीर्थंकरही विराजमान हैं, उन्हींके कल्याणक मनाये जाते हैं, इन्द्रादि देवभी उन्हींकी उपासना करते हैं। सब विमानोंमें, भवनोंमें तथा अन्य अकृत्रिम चैत्यालयोंमें जैनमूर्तियाही हैं। इन सब बातोंको प्रत्येक देव जानता है, तब वह जैनतीर्थंकरोंको छोड़कर दूसरा किसके पास जायगा और क्यों जायगा? हमें नतो स्वर्ग दिखलाई देता है, न नरक, न विदेह, न ऐरावत, न परलोक, न अकृत्रिम चैत्यालय। इसलिये इन सबके नामपर मनुष्यको धोखा दिया जासकता है, परन्तुदेवोंको कैसे दियाजासकता है? इसलिये यह बात असंभव है कि कोई देव महावीर आदि तीर्थंकरके रहते

दूसरे किसीके पास जाते। परन्तु जाते तो अवश्य थे इससे मालूम होता है कि देव एक जातिके मनुष्य थे।

इस प्रकार व्यन्तरादिकोंका दूसरोंके यहां जाना असंभव है, यह बात सिद्ध होगई। साथ ही यह कहना जैन शास्त्रोंके भी विरुद्ध है कि 'देवोंका जाना दोनोंके समीप होता हुआ भी फर्क है।' अष्टसहस्रीका हिंदी अनुवाद सहित उद्धरण देकर मैंने वहीं पर यह बात सिद्ध कर दी थी कि देवागमन आदिकी दृष्टिसे महावीर और मस्करीमें कुछ अन्तर नहीं है। खेद है कि इस बातको आक्षेपकने साफ उड़ा दिया। न उसका खण्डन किया, न उसकी आलोचना।

आक्षेप ५७—नभोयानका पालकी आदि अर्थ करके आपने अपना ढांचा बदल डाला। क्या भगवान् केवलज्ञान अवस्थामें पालकीमें बैठते थे? क्या यह राजस घटना नहीं है? फिर भगवान इस घटनासे कैसे पूज्य होसकते हैं? जो प्रातिहार्योंकी विभूति इनके शरीरसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखती उनसे तो आपने इनकी महत्ता और व्यक्तित्व नष्ट होना बतलाया और अब उनको पालकी तकमें बैठा दिया! शायद यह विभूति आत्मिक वैराग्यकी साधक होगी। नया विज्ञान जो कुछ करे सो सब थोड़ा है।

समाधान— आक्षेपकने यह समझने की ज़रा भी कोशिश न की कि कैसी घटनाओंसे व्यक्तित्व लुप्त होता है। राजस विभूतियाँ निःसार हैं परन्तु उनके अस्तित्वके निषेधमें राजसता नहीं, असंभवता या असंगतता कारण है। नभोयान असंभव या असंगत होनेसे निषिद्ध किया गया है; पालकी में बैठना ऐसा असंभव नहीं है। राजस विभूतियोंके विषयमें मेरा कोई विरोध नहीं है। वे असंभव न होना चाहिये, न उन्हें मुख्यता देना चाहिये। केवली खाते हैं, पीते हैं, चलते हैं, पालकी पर बैठते हैं, गाड़ीमें बैठते हैं आदि मनुष्योचित सभी क्रियायें करते हैं। मनुष्य अगर मनुष्योचित निष्पाप क्रियाएँ करे तो इसमें कुछ हानि नहीं है।

साम्प्रदायिकताका दिग्दर्शन।

(मूल लेखक—श्रीमान् पं० सुखलालजी)

(अनुवादक—श्रीमान जगदीशचन्द्रजी एम० ए०)

पद्मपुराण।

अंग नामका एक श्रेष्ठ तपस्वी ब्राह्मण था। उसका विवाह यमपुत्री सुनीताके साथ हुआ था। सुनीताके एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम वेन रक्खा गया। वेन धार्मिक और प्रतापी था।

ऋषिगण-हे सूत! प्रजाके पालनमें परायण श्रेष्ठ धार्मिक ब्राह्मण वेनकी पापबुद्धि कैसे हुई सो कहो।

सूत—हे विप्रो! सुशंखका दिया हुआ शाप कैसे टल सकता है? इस शापके कारण वेनने जो पापाचारका सेवन किया है वह मैं कहता हूँ सुनो। वेन धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करता था। उसके पास एक मायावेषधारी पुरुष जो कद्दावर, नग्नरूपधारी, सितमुंड (मुँडे हुए सिरवाला) मयूरपिच्छको मार्जनी बगलमें रक्खे हुए, नारियलका पानपात्र धारण किये हुए, वेद शास्त्रको दूषित कहकर मरुतशास्त्र (?) का पाठ करता था आया। शीघ्र ही इस पापी पुरुषने वेनकी सभामें प्रवेश किया। उसे देखकर वेनने कहा—इस रूपको धारण करनेवाला तू कौन है और मेरी सभामें क्यों आया है? यह तेरा वेश किस प्रकारका है? तेरा क्या नाम है? तेरा धर्म और कर्म क्या है? तेरा कौन वेद है? क्या आचार है, क्या जाति है, क्या ज्ञान है, क्या प्रभाव है, और धर्मरूप सत्य क्या है? यह सब मेरे सामने यथार्थ रीतिसे कहो! इस प्रकार वेनके वचन सुनकर उस पाप पुरुषने कहा—वेन! तू सर्वथा व्यर्थ राज्य करता है। मैं धर्मका सर्वस्व हूँ, मैं देवका विशेष पूज्य हूँ। मैं ज्ञान हूँ, मैं सत्य हूँ, मैं सनातनधाता हूँ, मैं धर्म हूँ, मैं मोक्ष

हूँ, मैं सर्वदेवमय हूँ और ब्रह्मदेहसे उत्पन्न होनेके कारण मैं सत्य प्रतिज्ञ हूँ। इसमें कुछ भी मिथ्या नहीं है। यह मेरा रूप जिनका स्वरूप है और सत्य धर्मका कलेवर है। इसका ध्यान ज्ञानतत्पर योगी करते हैं।

वेन—तेरा धर्म किस प्रकार है ? कैसा दर्शन और कैसा आचार है, सब कहो।

पाप पुरुष—मेरे धर्ममें अर्हन्त देवता, निर्ग्रन्थ गुरु, और दया परमधर्म है। इसीसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। अब मैं आचार कहता हूँ। इसमें यजन याजन अथवा वेदाध्ययन नहीं है, संध्या तप नहीं है दानमें स्वधा स्वाहा मंत्र नहीं है। हव्य हव्यादिक नहीं हैं, यज्ञादिक क्रियायें नहीं हैं, पितृतर्पण अर्थात श्राद्ध नहीं है। अतिथि वैश्वदेव कर्म नहीं है। कृष्ण पूजा नहीं है। इसमें केवल अर्हंतका ध्यानही उत्तम माना जाता है। यह सब मैंने तुझे जैनधर्मका स्वरूप कहा है।

वेन—जहाँ वेदकथित धर्म, यज्ञादिक क्रिया, अथवा पितृतर्पण, वैश्वदेविककर्म, दान, तप, वगैरह नहीं है, वहाँ धर्मका क्या लक्षण है ? दया धर्म कैसा है ? यह सब मुझे स्पष्ट कहो।

पाप—पाँच भौतिक देह ही आत्मा है और वह पानीके बुदबुदेके समान उपजती और नाश होती है। अन्त समयमें आत्मा नष्ट हो जाता है। पाँच दैहिक तत्व पाँच भूतोंमें मिल जाते हैं। मनुष्य परस्पर मोहमुग्ध होकर प्रवृत्ति करता है। मोहसे श्राद्ध करता है। मोहसे ही मरण तिथिमें पितृतर्पण करता है। मृतमनुष्य कहाँ रहता है ? और किस प्रकार खाता है ? हे नृप ! उसका ज्ञान और कार्य किस प्रकारका है और उसे किसने देखा है ? यह सब तू मुझे कह। श्राद्ध किसका मानना चाहिये ? मिष्टभोजन तो केवल ब्राह्मणोंको पहुँचता है। उसीप्रकार वैदिक यज्ञोंमें अनेक प्रकारकी पशुहिंसा की जाती है, उससे क्या लाभ है ? दयाके बिना प्रत्येक धर्मकृत्य निष्फल है। दयाके बिना यह वेद अवेद है। चाण्डाल हो अथवा शूद्र हो, यदि वह दयालु है तो ब्राह्मण है, और यदि ब्राह्मण भी निर्दय है तो वह निकृष्ट है। एक जिनदेवकी हृदयसे आराधना करना चाहिये और उन्हें ही नमस्कार करना चाहिये। दूसरेकी तो क्या बात, अपने मातापिता तकको नमस्कार न करना चाहिये।

वेन—ब्राह्मण आचार्य गंगा आदि नदियोंका तीर्थरूप वर्णन करते हैं, क्या यह ठीक है ? यदि तू इन तीर्थोंमें धर्म समझता है तो कह।

पाप—आकाशसे पानी गिरता है। यही पानी सब जलाशयोंमें एक सरीखा है। फिर इसमें तीर्थपना क्या है ? पहाड़ भी पत्थरके ढेर हैं। इनमें तीर्थपना क्या है ? यदि स्नान करनेसे सिद्धि होती हो तो मछलियोंको सबसे पहले सिद्धि होनी चाहिये। एक जिनका ध्यानही श्रेष्ठ है, दूसरे सम्पूर्ण वेदोक्त श्राद्ध और यज्ञादिक कर्म व्यर्थ हैं।

सूत—उस पापपुरुषके उपदेशसे वेन भ्रममें पड़ गया और उसने पापमें पड़कर उसका धर्म स्वीकार किया। इस कारण यज्ञादिक वैदिकधर्म लुप्त हुआ और सब लोग पापमें पड़ गये। अंग और सुनीताने वेनको बहुत समझाया, परन्तु उसने कोई ध्यान नहीं दिया और वह तीर्थस्नान, दानादि सब कुछ छोड़ बैठा। अंगके पूछनेपर सुनीताने अपनी बाल्यावस्थामें सुशंख तपस्वीका जो कशाघातरूप अपराध किया था और उसके परिणामस्वरूप तपस्वीने दुष्ट पुत्र उत्पन्न होनेका जो शाप दिया था, वह सब कह सुनाया। उसके बाद सात ऋषियोंने आश्वासनपूर्वक वेनसे इस प्रकार कहा—हे वेन ! पापकर्म छोड़कर धर्माचरण कर। यह सुनकर हँसते हँसते वेनने कहा—मैं ही पवित्र हूँ। सनातन जैनधर्म महाधर्म है। हे विप्रो, तुम धर्मात्मा समझकर मेरी सेवा करो।

ऋषिलोग—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये तीनों द्विज हैं। सबलोग वेदाचार पालन करनेसे ही जीते हैं। तू ब्राह्मणका पुत्र होनेसे ब्राह्मण है, तथा पीछेसे पृथ्वी ऊपर पराक्रमी राजा हुआ है। प्रजा राजाके पुण्यसे सुखी और पापसे दुखी होती है। इस कारण तू अधर्म छोड़कर सत्यधर्मका आचरण कर।

तूने जो धर्म स्वीकार किया है वह त्रेता अथवा द्वापरका नहीं बल्कि कलियुगका धर्म है । कलिमें प्रजा जैनधर्मका आश्रय लेकर पापमुग्ध होगी और प्रत्येक मनुष्य वेदाचार छोड़कर पापमें पड़ेगा । जैन धर्म पापका मूल है । जैनधर्मके कारण जो लोग पाप में पड़े हैं, उन्हें स्वयं गोविंद म्लेछरूप धारण करके पापसे मुक्त करेंगे, तथा म्लेच्छोंके नाशके लिये ये गोविंद कलिरूप होंगे । तू कलिका व्यवहार छोड़कर पुण्यका आचरण कर ।

इस प्रकार कहनेसे जब वेन नहीं माना तो ये सातों ब्रह्म पुत्र गुस्सा हो गये । यह देखकर उनके शापके भयसे वेन वमी (वल्मीक) में घुसकर बैठ गया । कुपित ऋषि लोगोंने उस दुष्टको खोज निकाला और उसके बायें हाथका मथन किया । उसमेंसे महाह्रस्व, नीलवर्ण, रक्तनेत्र एक बर्बर उत्पन्न हुआ जिसने संपूर्ण म्लेच्छों का पालन किया । उसके पश्चात् ऋषियोंने वेनके दाहिने हाथ का मथन किया उसमें से पृथु प्रगट हुए जिसने इस पृथ्वीका दोहन किया । उसके पुण्य प्रभावसे वेन धार्मिक हुआ और अंतमें विष्णुधाममें पहुँचा (आनंदाश्रम अ० ३६ भा० १)

दानव—हे गुरो ! इस असार संसारमें मुझे कोई ऐसा ज्ञान दो जिससे मोक्ष की प्राप्ति हो ।

शुक्ररूपधारी बृहस्पति- हे दैत्यो ! मैं मोक्ष पहुँचानेवाला ज्ञान कहता हूँ, सुनो वेदत्रयीरूप जो श्रुति है वह वैश्वानर के प्रमादसे दुख देनेवाली है । यज्ञ और श्राद्ध यह स्वार्थियों की कल्पना है । वैष्णव और शैवधर्म कुधर्म हैं, जो हिंसक और स्त्री युक्तपुरुषों द्वारा प्रचलित किये गये हैं । रुद्र अर्धनारीश्वर हैं, भूतगणसे वेष्टित हैं, अस्थि और भस्म धारण करते हैं । वे फिर मोक्ष कैसे प्राप्त कर सकते हैं ? स्वर्ग और मोक्ष कुछ नहीं है । लोग वृथा क्लेश सहन करते हैं । विष्णु हिंसामें स्थित हैं, राजस प्रकृति ब्रह्मा अपनी प्रजा (पुत्री उषा) का भोग करते हैं । दूसरे भी वैदिक देव और वैदिक ऋषि मांस भक्षक हैं । ये ब्राह्मण भी मांसभक्षक हैं । ऐसे धर्मसे कौन स्वर्ग अथवा मोक्ष प्राप्त कर सकता है ? जो यज्ञादिक वैदिक कर्म और श्राद्धादि स्मार्त कर्म हैं, उसके विषय में श्रुति कहती है कि-यूपदारुको छेदकर, पशुओं को मारकर, खूनकी कीचड़ करके यदि स्वर्ग की प्राप्ति होसकती है तो फिर नरक किसके लिये है ? यदि एक के खाने से दूसरे की तृप्ति होती हो तो परदेशमें जाते समय भोजन ले जाने की आवश्यकता नहीं । वह भोजन घर पर रहनेवालों को जिमादेना पर्याप्त होगा । गुरु का यह वचन सुनकर सब दानव संसारसे विरक्त होकर कहने लगे—हे गुरु ! हम लोगों को दीक्षा दो । इस प्रकार जब दैत्यों ने छद्म (कपटरूपधारी) गुरु से कहा तो वह दैत्यों को किसी प्रकार पापी और नरकगामी तथा श्रुतिबाह्य और लोकमें उपहासास्पद बनाने के विचारमें पड़ा यह विचार कर बृहस्पति ने केशव का स्मरण किया इस स्मरण से विष्णुने महामोह उत्पन्न करके बृहस्पति को दिया और कहा कि यह महामोह तुम्हारे साथ मिलकर सब दैत्योंको वेद मार्ग से बहिष्कृत करके मोहित करेगा । यह कहकर विष्णु अंतर्धान होगये । मायामोह दैत्यों के पास आकर बृहस्पतिको कहने लगा ।

महामोह—हे शुक्र ! यहाँ आओ मैं तुम्हारी भक्तिसे आकर्षित होकर तुम्हारे अनुग्रह के लिये यहाँ आया हूँ । उसके बाद मायामोह दिगम्बर मुण्डी, मयूरपिच्छधारी बनकर कहने लगा ।

दिगम्बर—हे दैत्य राजा, तुम तप करतेहो परन्तु यह तो बताओ कि यह तप ऐहिक फलके लिये है या पारलौकिक फलके लिये ?

दैत्य—हमने पारलौकिक फलके लिये तप ग्रहण किया है । इस विषयमें तुम क्या कहना चाहते हो ?

दानव—हे प्रभो ! हम लोग तेरे तत्व मार्गमें प्रविष्ट हुए हैं । यदि तू प्रसन्न हो तो अनुग्रह कर । हमने दीक्षाके योग्य सम्पूर्ण सामग्री प्राप्तकी है, जिससे तेरी कृपासे मोक्ष जल्दी मिलसके । उसके बाद

मायामोहने सब दैत्यों से कहा। रक्तांबर—यह श्रेष्ठ बुद्धिवाला गुरु (शुक्ररूपधारी बृहस्पति) मेरी आज्ञासे तुम सबको मेरे शासनमें दीक्षित करेगा। हे ब्रह्मन्, इन सब मेरे पुत्रों को दीक्षा दो। यह कहकर मायामोह अपने इष्ट स्थान को चलागया। उसके जानेके बाद दैत्योंने भार्गव (शुक्र) से कहा—हे महाभाग, हमें संसार से छूटनेकी दीक्षा दो। शुक्र ने 'तथास्तु' कहकर नर्मदाके किनारे जाकर सब दैत्योंको दिगम्बर बनाया। उन सबको मयूरपिच्छ की ध्वज चौंटली की माला देकर शिर का लोंच (केशलोंच) किया और शुक्रने कहा कि "धनके ईश्वर धनदेव ने केशलुंचन और वेषधारण से परम सिद्धि प्राप्तकी है। इसी रीति से मुनित्व प्राप्त होता है, ऐसा अर्हन्तने कहा है। केशोत्पाटन से मनुष्य देवत्वको प्राप्त करता है, तो फिर तुम केशोत्पाटन क्यों नहीं करते ?

देवोंके भी मनुष्य लोकके संबंधमें ऐसी इच्छा है कि भारतवर्षमें श्रावक कुलमें जन्म कब होगा ? तथा केशोत्पाटनपूर्वक तपोयुक्त आत्मा कब होगी ? चौबीस तीर्थङ्कर वगैरहकी प्राप्ति कब होगी ? तथा ऋषि होकर पंचाग्नि तप कब करूँगा ? अथवा तप करते करते मृत्यु प्राप्त करके पाषाणसे मस्तक कब फूटेगा ? निजन वनमें कब निवास होगा ? इत्यादि अनेक प्रकार उपदेश दिये। उसके बाद दानवोंने कहा—हे शुक्र ! हमें दीक्षा दो। 'तथास्तु' कहकर शुक्र बोले। "दूसरे देवोंको प्रणाम न करना, एक बार हस्तपात्रमे भोजन करना, केश कीट रहित खड़े खड़े पानी पीना, दूसरेकी नजर बचाकर प्रिय अप्रिय वस्तुको समान समझकर उपयोग करना। इसप्रकार शुक्रने नियम समझाकर दीक्षा दी। शुक्र स्वर्ग चला गया। वहाँ जाकर उसने सब बातें देवोंसे कहीं। देव नर्मदाके तटपर आये। प्रल्हादके बिना दैत्योंको देख संतुष्ट होकर इन्द्रने नमुचि आदि दैत्योंसे कहा—हे दैत्यो ! पहले तुमने स्वर्गमें राज्य किया। अब यह नग्नमुण्डी, कमंडलयुक्त, वेदलोपक व्रत क्यों स्वीकार किया है ? दैत्योंने कहा—अब हमने असुरपना छोड़कर ऋषिधर्म स्वीकार किया है। प्रत्येक प्राणी को धर्म वृद्धिकारक तत्वका उपदेश देते हैं। जा तू निर्भय होकर स्वर्गमें राज्य कर। यह सुनकर इन्द्र स्वर्गमें चलागया (आनंदाश्रम भा० २ अ० १३ पृ० ८२७)

(क्रमशः)
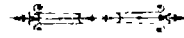
पत्रोंकी प्रतिध्वनि।

विश्वव्यापी अन्धश्रद्धा !

पुराने ज़मानेमें रोममें ज्वरको भगानेके लिये रोगी के नख काटकर सूर्योदयसे पूर्व किसी पड़ौसीके द्वारपर फेंक देतेथे। वे विश्वास करतेथे कि अब ज्वर पड़ौसी के यहाँ चला जायगा। ओर्कनी टापूके लोग आज-कलभी बीमार व्यक्तिका स्नान करानेके पश्चात पानी बाहर फेंकदेते है। उनका विश्वासहै कि ऐसा करनेसे जो कोई उधरसे निकलेगा, उसका पैर पड़तेही ज्वर उसीके पास चला जायगा। जर्मनीके थोर्वारिया प्रांतमें ज्वर आने पर ज्वरग्रस्त, कागज़ पर यह लिखकर कि "हे ज्वर तू यहाँ खड़ा रह मैं घर पर नहीं हूँ" चुपके से किसीकी जेबमें डाल देताहै, जिससे उसका ज्वर उसीसे लिपट जाय। कुछ लोग वृक्षकी टहनी तोड़कर लातेहैं और बिना बोले खड़ी गाड़ देते हैं। ज्वर उसपर आएगा और जो कोई उस टहनी को उखाड़ेगा उससे चिपट जायगा - ऐसा उनका विश्वास है। आस्ट्रियाके बहेमिया प्रान्तमें ज्वर आनेपर लोग एक बर्तन लेकर गाँवके मैदानमें रख आते हैं। उनका विश्वासहै कि जिसके पैरसे वह टुकराएगा ज्वर उसीको पकड़ लेगा। ओल्डनवर्ग निवासियों का विश्वास है कि ज्वरग्रस्तको जब पसीना आये वह अपने पसीनेमें एक पैसा भिगोकर बाहर फेंकदें, जोकोई उसे उठाएगा ज्वर उसीपर सवार हो जायगा।

असभ्य और जंगली जातियोंकी तरह यूरोपवासियों की भी यह धारणा है कि बिच्छूके काटने पर उसे गधेकी पूँछकी ओर बैठाने अथवा उसके कानमें यह कहनेसे कि "मुझे बिच्छूने काटा है" ज़हर उसपर न चढ़कर गधेपर चढ़जाएगा। इंगलैंडमें छोटे बालकोंको भेड़का मुँह सुँ-

घाते हैं जिससे उनकी खाँसी भेड़पर चली जाती है— ऐसी उनकी धारणा है। एक पुराने योरोपियन लेखक ने दमा-श्वास रोगका इलाज इस प्रकार बताया था कि बीमार व्यक्ति यदि टट्टूके मुख परका भाग साफ़ कर के उसे गरम पानी में मिलाकर पीजाय, तो रोग तुरन्त अच्छा हो जायगा और टट्टू मर जायगा। डेवनशायर नामक प्रदेशके लोग खाँसी भगानेके लिये यह तरकीब काममें लाते हैं। रोगीके सिरसे एक बाल उखाड़कर मक्खनमें चुपड़ी हुई रोटीमें मिलाकर कुत्तेको खिलादेते हैं। ओल्डनवर्गके निवासी बीमार होने पर एक कटोरीमें दूध डालकर कुत्तेके सामने रखते हैं, और उससे कहते हैं 'कुत्ते जी, खुशीसे इसे पीजाओ। क्या तुम बीमार हो जाओगे, और मैं अच्छा हो जाऊँगा ? कुत्तेके दूध चाटनेपर बीमार भी उसमें से एक घूँट पीलेता है। इस प्रकार तीन बार करनेसे वे सोचते हैं, कि रोग कुत्तेके पास चला गया।

फ्रांसके पर्के नामक स्थानपर किसानोंमें यह धारणा है कि जब किसीको खूब कै होती है तो एक कुम्हार को बुलाया जाता है। वह कुम्हार बीमारसे उसकी दशा पूछकर तुरन्त ज़मीन पर लेटजाता है और भयंकर रूपसे तड़फने और बकने लगता है। इससे रोगीको आराम मिलता है। इस कार्यकी फ़ीस तीन रुपया होती है। यदि कोई भयकर रूपमें बीमारी हो तो कुम्हार मुर्दा बनकर रोगीके सम्मुख लेटजाता है। फिर उसे मुर्दों की तरह कब्रस्तान लेजाया जाता है। एक घन्टेके पश्चात दूसरा कुम्हार उसके बन्धन काटकर उसे बिठाता है। उसके बैठने पर रोगीभी निरोग हो जायगा-ऐसा अनुमान वे किसान करते हैं।

यूरोप के कई भागोंमें दाँतका दर्द दूर करनेके लिये द्वारपर या छतपर कील गाड़ देतेहैं। ऐसे करनेसे उनका विश्वास है कि जबतक वह कील गड़ी रहेगी, दर्द बन्द रहेगा। इसेज नामक स्थानमें एक पहाड़ी भाग है। वहाँ के लोगोंका विश्वास है कि जो कोई उस पहाड़ीमें कील गाड़ेगा, उसका दाँतका दर्द रफूचक्कर होजायगा।

वर्षाऋतुमें पानी न बरसने पर हमारे देशमें यज्ञ किये जाते हैं, शिवालयमें पानी भरा जाता है, शिवकी प्रतिमा डुबाई जाती है, अनशन किये जाते हैं, स्त्रियाँ पुरुष वेशमें हल चलाती हैं, लड़के मेंढक लेकर पानी की भीख माँगते हैं; लोग ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं और रोटी पकानेका तवा औंधा रखते हैं। इसी तरह चीनमें भी प्रार्थना कीजाती है। वहाँ इन्द्रको अजगरके रूपमें मानते हैं। अजगरही पानी बरसानेवाला इन्द्र है, उनकी ऐसी धारणा है। इसलिये चीनी लोग कागज़का अजगर बना कर पानी बरसानेके लिये उससे प्रार्थना करते हैं। पानी नहीं बरसता है, तो उसके टुकड़े टुकड़े कर देते हैं, और उसे अपमानित करते हैं। कदाचित् पानी बरसगया, तो राजा द्वारा उसका सम्मान होता है।

कहते हैं मंचुवंशके कियांकिंग नामके राज्यकालमें बहुत समय तक पानी नहीं बरसा और अकाल पड़गया। लोग भूखों मरने लगे। अजगरके बहुत जुलूस निकाले गये; किन्तु पानी न बरसा। उसने क्रोधित होकर देवों को सर्वदाके लिये देश निकाला देदिया और टेआर प्रांत में इली नदीके तटपर बसनेकी आज्ञा देदी।

ई० सन् १७१० में सांगमिंग नामके टापूमें वर्षा न हुई, अकाल पड़ा, प्रार्थना कीगई; पर एक बूँद न गिरी। तब शासनकर्त्ताने पूजापर प्रतिबंध लगादिया और मंदिरों में ताले लगवा दिये। कितनेही दिनोंके पश्चात् वर्षा हुई; तब फिर उस देवकी पूजा करने लगे।

केन्टन प्रांतमें पानी न बरसनेसे वहाँके गवर्नरने देवोंको पाँच दिन तक कैदमें रक्खा। जब बादल आकाश में छाये, तब देवमूर्तियोंको बेड़ियोंके साथ बन्दी अवस्था में मन्दिरके आँगनमें बैठाया गया—इस आशय से कि देव गर्मीसे दुखी होकर पानी बरसायेंगे।

चीनवासी दीर्घजीवी बननेके लिये ऐसे उपाय करते हैं, जिनसे आप बिलकुल अजान हैं। वहाँ के बहुतसे व्यक्ति अपना कफ़न अपने जीवन-काल मेंही तैयार करते हैं और किसी कुमारी कन्यासे उसे सिलवाते हैं। सीने वाली बहुत समय तक जियेगी और उसका प्रभाव अवश्यही कफ़न पर पड़ेगा और परिणामस्वरूप कफ़न सिलाने वालेकी आयुभी बढ़ेगी। यह कफ़न ऐसे वर्षमें तय्यार करवाया जाता है, जब कि वह वर्ष बड़ा होता है और दिन बड़े होते हैं। इस मतानुसार जीवनके वर्ष और दिन भी लम्बे होंगे। चीनी लोग नीले रंगका एक वस्त्र पहनते हैं, उसपर दीर्घ जीवन शब्द हज़ारों लिखे रहते हैं। युवक अपने माता-पिताको यह वस्त्र बड़े प्रेम

और श्रद्धाके साथ भेंट करते हैं। ऐसे वस्त्र त्यौहारों और शुभ दिनों पर पहने जाते हैं। उनका विश्वास है कि उन लिखे हुए अक्षरों द्वारा पहनने वालोंके आयुष्यकी वृद्धि होगी। जन्मदिवस पर तो यह वस्त्र अवश्यही पहना जाता है।

हमारे देशमें हिन्दू लोग वृक्षों पर देवोंका निवास-स्थान मानते हैं। आसाममें रहनेवाले मुंदारिस जातिके जंगली लोग यह विश्वास रखते हैं कि यदि कोईभी पवित्र वृक्ष काटडाला जायगा, तो अवश्यही अकाल पड़ेगा। वर्मामें एक भागके लोग इसलीके पुरानेसे पुराने वृक्षके नीचे जाकर प्रार्थना करते हैं और उसमें निवास करने वाले देवको रोटी, नारियल, केले चढ़ाते हैं और मुर्गियों का बलिदान करते हैं।

कई भागोंमें वर्षाके लिये किसी खास वृक्षकी टहनी तोड़कर पानीमें डुबाते हैं। वे समझते हैं कि डालीमें देवताका वास है और उसे पानीका स्पर्श करानेसे पानी अवश्य बरसेगा।

बवेरियामें नवविवाहित दम्पती एक छोटा पौधा आँगनमें लगाता है। ऐसा करनेसे उनका विश्वास है कि स्त्री शीघ्रही संतानवती होती है। विशेष कर बन्ध्या स्त्रियाँ यह क्रिया अधिक करती हैं। दक्षिण यूरोपकी कितनीही जातियोंकी बन्ध्या स्त्रियाँ सेंटजोर्जके दिवस अपना एक नवीन वस्त्र फलदार वृक्षपर रखती हैं दूसरे दिन प्रातःकाल वृक्ष परसे वह वस्त्र उठाती हैं, और यह देखती हैं कि कोई जीवित कीड़ी उसपर चढ़ी है या नहीं। यदि कोई कीड़ी उसपर चढ़ी होती है, तो पुत्रेच्छुका को विश्वास होजाता है, कि आजसे एक वर्ष पश्चात् वह पुत्र वती होजायगी।

हिन्दुओंकी तरह यूरोपके लोगभी वृक्षोंकी पूजा करते हैं। उनमें सबसे अधिक महत्व 'ओक' का है। यह वृक्ष बहुत विशाल होता है। प्राचीन कालमें इसकी गणना देवोंमें थी। अबभी वह पूज्य समझा जाता है। फ्रांसके पादरी ईसाई संतोंके चित्र 'ओक' पर लटकाते हैं। जर्मनीमें बीमार व्यक्ति स्वस्थ होनेके लिये 'ओक' के नीचेसे निकलते हैं।

इन अंध विश्वासोंके स्वरूप कितने विचित्र हैं! विश्वव्यापी यह अंधश्रद्धा कितनी अनोखी और अज्ञान-पूर्ण है। कितनी भयंकर और विकराल है! —'जागरण'

कामान्ध वृद्धों का पापाचार।

समाजमें इधर वृद्ध-विवाहोंकी बाढ़सी आगई है। अर्थके बलपर निरपराध कन्याओंका सारा जीवन नष्टभ्रष्ट करते हुए जिन कामुक वृद्धोंका कलेजा बिलकुलभी नहीं धड़कता, उनकी अमानुषिकता ऐसी अद्भुत है कि मानवी बुद्धि उसका यथार्थ मर्म समझनेमें असमर्थ है। इन कामान्धोंको न तो जनताके व्यंग बाणोंकी कुछ परवा है, न अपने पापाचारका कुछ भय है। अपनी पाशविक वासना की तात्कालिक तुष्टिही उनका चरम उद्देश्य रहता है। इसके परिणाम-स्वरूप जो अनर्थ बादमें घटित होते हैं उनके प्रति वे अपनी दोनों आँखें एकदम बन्द किये रहते हैं। ऐसे अन्यायाचारी वृद्धोंके लिये किसी समुचित दण्ड का उपाय अभीतक समाज नहीं ढूँढसका है और न गवर्नमेंटसे ही किसी ऐसे कानूनके निर्माण की आशा की जाती है जिससे कुमारी कन्याओंके साथ बूढ़े खूसटोंके विवाहमें कोई प्रतिबन्ध लगसके। इन सब कारणोंसे बूढ़ोंके लिये यथेच्छाचारका रास्ता बिलकुल साफ है और नपुंसक समाजसुधारकों के लम्बे लिलान परभी कोई विशेष फल दिखायी नहीं देता।

वृद्ध-विवाह न्यूनाधिक रूपमें संसारमें सर्वत्र होते रहते हैं। यूरोप जैसे उन्नतिशील देशमें इनकी संख्या कुछ कम नहीं पाई जाती। पर वहाँ स्त्रियोंको बहुतसे ऐसे सामाजिक तथा कानूनी अधिकार प्राप्त हैं कि वृद्ध-विवाहसे उन्हें विशेष हानि होनेकी संभावना नहीं रहती। उदाहरणके लिये, यदि वहाँ किसी युवती भार्याका वृद्ध पति मरजाय तो वह स्त्री अपने पतिकी सम्पत्तिके बहु-लांश अधिकारिणी होनेके अतिरिक्त किसी दूसरे पुरुषसे मनचाहा विवाह करसकती है। पर हमारे यहाँ क्या हाल होता है? वृद्ध पतिकी मृत्युके बाद तरुणी भार्या न तो दूसरा विवाहही करसकती है, और न सम्पत्तिकी उत्तराधिकारिणी होसकती है। अत्यन्त दीन-हीन, संकुचित, मृत अवस्थामें अपना निरानन्दमय जीवन अन्त समय तक रोतेरोते व्यतीत करती है। यूरोपकी बहुतसी तरुण स्त्रियाँ स्वेच्छापूर्वक आँखके अन्धे गाँठके पूरे वृद्धों से विवाह करती हैं। उनका उद्देश्य यही रहता है कि बूढ़ेका जीवन विषमय बनाकर उसे शीघ्रातिशीघ्र यमपुर भेजकर शेषजीवन वैभव-विलासमें बितायें। वहाँ कोई

पिता भारतीयोंकी तरह कुटिल सामाजिक प्रथाओंके घातक पेषणसे बाध्य होकर अपनी लड़कियोंको बूढ़ोंके गले बाँधनेके लिये तत्पर नहीं होता। वहाँ दोनों पक्ष अपने अपने स्वार्थकी भावनासे प्रेरित होकर वैवाहिक समझौता करते हैं। पर अधिकांशतः वहाँके विधुर वृद्ध अपनी आयुके अनुकूल अधेड़ विधवाओंसे विवाह करना पसंद करते हैं। भारतमें विधवाविवाह निषिद्ध होनेसे वृद्धोंको किसी विधवासे विवाह करनेका साहस नहीं होता। उन्हें 'धर्म' का भय रहता है, समाजका नहीं। 'धर्मानुसार' यदि अस्सी वर्षका पति किसी बारह वर्षकी लड़कीके साथ विवाह करे तो वह दोषी नहीं ठहराया जासकता। इसलिये हम धर्मप्राण देशमें सनातन-धर्मके जय-जयकार को सदा जीवित रखनेके लिये बूढ़े वर कन्याओंका हनन करके यथेष्ट पुण्य लूटरहे हैं।

इस सनातन-धर्म सम्मत विवाहका प्रचलन मारवाड़ियोंमें अधिक पाया जाता है। इधर दो-एक महीनेके भीतरही कलकत्तेके मारवाड़ी समाजमें बहुतसे ऐसे विवाहोंके लिये उद्योग होचुका है। खबर है कि बड़नगरके एक वयोवृद्ध ओसवाल सज्जनने १० ११ वर्षकी एक कुमारी कन्यासे विवाह-सम्बन्ध स्थापित करनेका निश्चय करलिया था। कुछ समाजसेवकोंको जब इस बातका पता लगा तो उन्होंने जाकर तुरंत लड़कीकी रक्षा करली। एक दूसरे वृद्ध महाशय बेहालाके जंगलमें जाकर एक अबोध बालिकाके साथ विवाह करनेकी चेष्टा में थे। कुछ युवकोंने वहाँ पहुँचकर उसकी रक्षा करली। लड़की रो रही थी। युवकोंके पहुँच जानेपर उसकी जानमें जान आई। एक मारवाड़ी वैश्य महाशय एक ब्राह्मण कन्याको उड़ाकर दमदम लाये और वहाँ उसके साथ विवाह करलिया। बड़ा बाज़ारके एक धनी व्यवसायीके यहाँ एक मारवाड़ी अग्रवाल कर्मचारी हैं। उन्हें अपने सालेकी विधुर अवस्थापर बड़ी दया आई और फलतः उन्होंने अपना जाल फैलाना शुरू करदिया। एक अल्पवयस्क लड़की किसी प्रकार ठीक करली गई। विवाहकी तैयारी होगई। पर बीचही में बूढ़े महाशयकी आशा पर पानी फिरगया। लड़कीके निकट सम्बन्धी जब विवाहमें शामिल होनेके लिये कलकत्ते आये तो उन्हें वर महाशयके दर्शनकी बड़ी प्रबल इच्छा हुई। वरका मुख देखतेही वे चकित रहगये। उन्होंने आपत्तिकी और किसी तरह विवाह न होनेदिया। कहा जाता है कि लड़कीने भी वरको देखकर उसके साथ विवाह करनेसे क़तई इनकार करदिया। मधुपुरकी ख़बर है कि वहाँके एक मारवाड़ी अग्रवालने अपनी सहोदर बहनका विवाह उसकी इच्छा न रहने और बारबार विरोध करने परभी ज़बर्दस्ती एक बूढ़ेके साथ करदिया।

पूर्व-वर्णित सभी हृदय-विदारक समाचारोंमें अन्तिम समाचार तो अत्यन्त अनर्थकर तथा आतंकोत्पादक है। ऐसे अमानुषिक हत्याओंके लिये जबतक कोई दुर्धर्ष सामाजिक तथा राजकीय दण्ड निर्दिष्ट नहीं होजाता तबतक इस जघन्य पापाचारका कोई उपचार नहीं होसकता।

दहेज़ प्रथाकी घातकता।

समाजमें अर्थलोलुपता इस क़दर बढ़रही है कि देखकर आश्चर्य होता है। अधिकांश सामाजिक कुप्रथाएँ सुधारवादियोंके इतने विरोधपर भी जो हटने नहीं पाती, उसके मूलमें यह अर्थलोलुपता ही है। यही कारण है कि हम अर्थ-पिशाच पिताओंको कामांध बूढ़ोंके हाथ अपनी अबोध बालिकाओंको बेचते देखते हैं। स्त्री-व्यापार प्रथाभी इसी कारण ज़ोर पकड़रही है। दहेजकी कुप्रथाका प्रकोपतो इस भीषणतासे बढ़रहा है कि देखकर आतंक छाजाता है।

सिंधमें 'आमिल' जातीय हिन्दुओंमें यह नियमसा बनगया है कि साधारणसे साधारण वरके लिये दस-पन्द्रह हज़ारसे कम ठहरौनी नहीं की जाती। हालमें खबर आयी है कि ठहरौनीकी दर उन लोगोंमें अब और भी अधिक बढ़गयी है। निर्धनोंका अपहरण करनेवाली इस रक्तशोषी प्रथाके विरोधमें कुछ आमिल लड़कियोंने कुछ समय पहले अपना यह मत प्रकट किया था कि यदि इस कुप्रथाका शीघ्रही अंत न करदिया जायगातो वे या तो मुसलमान बनजायँगी या आत्महत्या कर लेंगी। इससे स्थितिकी गंभीरताकी कल्पना भली भाँतिकी जा सकती है। पाठकोंको मालूम होगा कि बहुतसी हिन्दु आमिल लड़कियाँ मुसलमान बनभी चुकी हैं और बनती जारही हैं। इस अंधेरको प्रत्यक्ष देखते हुएभी वरों के अभिभावक कन्यापक्षियोंके प्रति लेन देनके संबंधमें कुछभी रियायत करनेपर राज़ी नहीं हैं। मज़ा यह है कि जो लोग सिंधमें दहेज़ प्रथाके विरुद्ध आन्दोलन मचारहे हैं, हालमें

उन्हींके सगे-संबंधियोंके विवाहमें उनलोगोंने खूब कसकर दहेज़ लिया था। जाति जहन्नुममें जाय, इन ढोंगियोंकी बलासे! लड़कियाँ अविवाहिता रहनेके कारण भलेही मुसल्मान बनें अथवा अपने अभिभावकोंकी दुर्दशा देखकर आत्म-हत्या करें, उन्हें इस बातकी खाक़ परवा नहीं है। मौखिक सुधारवादियोंकी देशमें कमी नहीं है। कमी है जातिकी दुर्दशा देखकर आन्तरिक वेदना अनुभव करने वालोंकी।

दहेज़ प्रथाके अनेक कुपरिणामों से एक मर्मघाती बात यह दृष्टिगोचर होती है कि इधर देशमें प्रायः सर्वत्र बहू बेटियोंके ऊपर अनर्थ मूलक, लोमहर्षक अत्याचारोंकी मात्रा बढ़ती जारही है। धन लोलुप हृदयहीन कुत्ते एक बार लड़केके विवाहमें बहुत सी नक़दी पाकर जब निन्या नवेके फेरमें पड़जाते हैं तो इस बीभत्स चेष्टामें रहते हैं कि किसी तरह बहू मरे और लड़केके दूसरे विवाहमें फिर आर्थिक प्राप्ति हो! इस घोर नीच मनोवृत्तिके परिणाम स्वरूप जिस प्रकारकी अमानुषिकताएँ देखनेमें आती हैं वे वर्णनातीत हैं। सास ससुर, देवर-जेठ तथा पतिके पाशविक व्यवहारोंसे तंग आकर कितनी स्त्रियाँ आत्म हत्या करती हैं, इसका ठिकाना नहीं रहता। प्रायः प्रतिदिन इस आशय का एक न-एक समाचार अवश्यही संवादपत्रोंमें छपा हुआ पाया जाता है कि अमुक स्त्रीने ससुरालवालोंके दुर्व्यवहार से तंग आकर आत्महत्या करडाली। बहुतसी विवाहिता युवतियाँ अपने बच्चोंको साथ लेकर कुओंमें कूद पड़ती हैं, बहुतसी ज़हर खालेती हैं और बहुतसी फाँसी लगाकर मर जाती हैं। पर कुछ अभागिनियाँ ऐसीभी हैं कि प्रतिदिन रोमांचकारी अत्याचारोंको सहन करते हुएभी मरती नहीं। ऐसी स्त्रियोंकी दशा सबसे अधिक कारुणिक होती है। ऐसीही एक स्त्री की मर्मभेदी कथा कुछ समय पूर्व हिन्दीके दैनिक पत्रमें छपी थी, जिसका सार इसप्रकार है:—

युक्त प्रांतके एक प्रख्यात नगर में एक लाला रहते हैं। आपके पुत्र साहित्य-सेवी, सुधारक तथा कवि हैं। उनकी धर्मपत्नी एक सम्पन्न घरानेकी पुत्री है। उसपर जो अत्याचार किया जाता है, वह अत्यन्त आतंकजनक है। उसके विवाहमें उसके पिताने कई हज़ार रुपये दहेज़ में दिये थे। अब साहित्य-सेवी महाशय तथा उनके घर वाले इस युक्तिमें हैं कि किसी भाँति वह दुर्भागिनी इस संसारसे कूच करजाय तो दूसरे विवाहमें फिर कहींसे खासी रक़म ऐंठीजाय! फलस्वरूप उन लोगोंने उस अबला पर कुछ निर्मूल दोषारोपण करके पाशविक उपायों से उसे कष्ट देना प्रारम्भ करदिया है। उसे ऐसे अमानुषिक रूपसे पीटा जाता है कि वह मूर्छित होजाती है और उसके शरीरसे खून निकलने लगता है। एक दिन उसे जीवित जलानेकी व्यवस्था की गई। उसके मुँहमें कपड़ा ठूँसकर उसकी जेठानीसे उसमें आग लगानेको कहागया; परन्तु वह इस पाशविकताके लिये राज़ी न हुई। जब यह उपाय सफल न हुआ तो पति महाशयने सिरसे खून निकालकर, हाथ में मल भरकर उसे घरके दरवाज़े पर बैठादिया ताकि लोग उसकी यह दुर्दशा देखें।

ऊपर जो मर्मान्तक दृष्टान्त वर्णित हुआ है, उसे पाठक एक असाधारण घटना न समझें। दहेजके लोभसे समाजमें ऐसी पैशाचिक हृदयहीनता छागई है कि घर-घर ऐसी—बल्कि इससेभी हृदयविदारक—घटनायें रात दिन देखी जाती हैं।

—'मासिक विश्वमित्र' कलकत्ता।
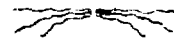
विविध विषय।

[ले०—श्रीमान् जगदीशचन्द्रजी जैन एम० ए०]

अमेरिकामें स्त्रियोंका सन्मान।

अभी अमेरिकाकी एक युनिवर्सिटीने मिसेज़ एलीअस क्रोम्पटन नामकी एक ८० वर्षकी अमेरिकन महिलाको डाक्टर (LL. D) की उपाधिसे विभूषित किया है। इन महिलाके पतिदेव प्रो० क्रोम्पटन अमेरिका युनिवर्सिटीके एक कॉलेजमें ४५ वर्षतक अध्यापक रहे हैं और पिछले २० वर्षोंमें आप वहाँ प्रिंसीपलके पदपर नियुक्त थे। इस दम्पतिके बड़े पुत्र प्रो० कार्ल मासाच्युसेटके प्रख्यात उद्योग मंदिरके प्रमुख हैं। इनकी पुत्रीका विवाह अलाहाबाद कॉलेजके एक अध्यापकके साथ हुआ है। इनके दूसरे पुत्र विल्सन अर्थशास्त्री, वकील और एक बड़ेभारी व्यापारी हैं, तथा तीसरे पुत्र आर्थर, शिकागो युनिवर्सिटी में पदार्थशास्त्र (Physics) के अध्यापक हैं जिन्हें

अभी एक खोजके उपलक्ष्यमें जगतमान्य नोबलप्राइज़ मिला है। ये तीनों पुत्र प्रिंसटन युनिवर्सिटीके डॉक्टर हैं।

मिसेज़ क्राम्पटनको सुप्रजाको जन्म देनेके उपलक्ष्य में ही अमेरिका युनिवर्सिटीने माननीय उपाधिसे सत्कृत किया है। उपाधि वितरण करते समय कुलपतिने कहा था कि "आपने देशको विद्वान् और उपयोगी प्रजाको जन्म दिया है, इसलिये आपको यह सन्मान प्रदान किया जाता है। आपने पत्नी रूपसे और माता रूपसे उत्तम सेवा की है, और उत्तम गुणोंकी वृद्धि की है। इस जगत में सुन्दर गाय बैल, घोड़ी और भेड पालनेके लिये प्रदर्शनोंमें इनाम दिया जाता है। आपने उत्तम मनुष्यों की वृद्धि की है, अतएव हम आपके ऋणी हैं और आपको प्रणाम करते हैं। जगत् सुन्दर प्रजाको जन्म देने और पालनेकी कीमत समझ सके इसलिये आपको यह युनिवर्सिटी बड़ीसे बड़ी उपाधि अर्पण करती है।"

धन्य है ऐसे देशको जहाँ मिसेज़ क्राम्पटन जैसी आदरणीय महिलाएं जन्म धारण करके संसारके जगमगाते हुए रत्नोंको उत्पन्न करती हैं। हमारे देश और समाजमें तो आजभी स्त्रियोंके उग्र निन्दकोंकी कमी नहीं है। निन्दक ही नहीं बल्कि इस युगमें भी बालिकाओंके जन्मको अपशकुन समझनेवाले अनेक परिवार मौजूद हैं। स्त्री केवल भोग विलासकी ही वस्तु नहीं है, वह त्याग और दयाकी मूर्ति है। स्त्रीके अन्दर वह अद्भुत शक्ति है जो महावीर, बुद्ध, राम, कृष्ण और गाँधी जैसे नर पुंगवों को जन्म देकर संसारका कल्याण करसकती है। न जाने अमेरिकाकी तरह हमारी समाज भी स्त्रियोंका सम्मान करना कब सीखेगी ?

अंधश्रद्धा।

इस विज्ञानके युगमें भी हमारा देश नाना कुरीतियों और अंधविश्वासोंका अड्डा बना हुआ है। किसी बात पर बिना विचारे इसलिये विश्वास करना कि उस बातको हमारे पुरखे लोग मानते आये हैं, सबसे बड़ी जड़ता और अहमकपनेकी निशानी है। अपठित और असभ्य लोग यदि अन्धश्रद्धाके शिकार बनें तो कोई आश्चर्य नहीं। परन्तु यहाँ तो शिक्षित कहे जानेवाला समाजभी ऊपर से नीचे तक इसी दासताकी बेड़ियोंमें जकड़ा हुआ दिखाई देता है।

इस अंधश्रद्धाके नामपर हमारे देशमें बड़े बड़े भयानक अत्याचार हुए हैं तथा आजभी ऐसे अत्याचारोंकी कमी नहीं है। अभी हाल में एक ज्योतिषीजी महाराजके वचनों पर अंधविश्वास करनेके कारण एक स्त्री अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठी। घटना इस प्रकार बताई जाती है कि राजलक्ष्मी नामकीएक स्त्रीका पति बहुत समयसे बीमार था। बहुतसे उपचार करनेके बादभी जब उसे कोई आराम नहीं हुआ तो राजलक्ष्मीने एक ज्योतिषीकी सलाह ली। महाराज बोले कि "तुम्हारे पतिके ग्रह बहुत ख़राब हैं, बचनेकी कोई आशा नहीं है। इससमय ठीक मृत्युयोग चलरहा है।" महाराजकी बातें सुनकर बेचारी राजलक्ष्मी बहुत भयभीत हुई। वह चाहती थी कि पति के जीवित रहतेही बहुत आनन्दके साथ उसकी मृत्यु हो परन्तु ज्योतिषीके कहनेके अनुसार तो उसका पति उसे विधवा बनाकर जल्दीही परलोक सिधारनेवाला था। बस राजलक्ष्मी रातको पासके मन्दिरमें कीर्तन सुननेका बहाना लेकर घरसे निकल पड़ी। रात बहुत व्यतीत होजाने पर भी जब वह घर नहीं आई तो घरके लोगोंको बहुत चिंता हुई। प्रातःकाल लोगोंने देखा कि राजलक्ष्मी का शव नदीमें तैर रहा है।

यह है हमारे देशमें ज्योतिषियोंके ऊपर अन्धश्रद्धा रखनेका एक नमूना।

जापान का बैंकर।

जापान एक स्वतन्त्र देश है। वहाँकी प्रजामें एकता और संगठनकी भावना है, वहाँके नवयुवकोंमें बल और ओज है। वहाँके लोगोंने एक दिवालिया बैंकरको धमकी देकर किस तरह रुपया वसूल किया, यह घटना 'बॉम्बे सैन्टिनल' में प्रकाशित हुई है, जो यहाँ दीजाती है।

कुछ दिनोंकी बात है कि जापानके ओसका नामक नगरमें एक बैंकका दिवाला निकलगया। दूसरेही दिन इस सम्बन्धका एक विज्ञापन बैंकके दरवाज़े पर लोगोंने देखा। विज्ञापन पढ़तेही नगरकी समस्त प्रजामें एक कुहरामसा मचगया। बेचारे निर्धन मज़दूर, अनाथ विधवायें, औरभी लोग, जिन्होंने गाढ़ परिश्रम करके रुपया एकत्रित किया था, निराश होकर अपने अपने भाग्यको कोसने लगे। इस ख़बरके शहरमें पहुँचतेही नरनारियों का झुण्ड बैंकके पास इकट्ठा होने लगा।

इस भीड़में एक दीवालके कोनेसे लगीहुई एक युवती भी थी। वह युवती बारबार अपने विस्फारित नेत्रोंसे बैंककी उस इमारत पर दृष्टि डालती और एक ठंडी आह भरकर रहजाती।

इस युवतीका नाम था क्योटा। क्योटा १९ बरस की एक अविवाहित लड़की थी। इसके माता पिता इसे ११ बरसकी अवस्थामें छोड़कर परलोक सिधारगये थे। क्योटा चतुर और परिश्रमी थी। जब इसने देखा कि अब संसारमें उसका कोई नहीं है, उसने अपनेही पैरोंपर खड़ा होना सीखा।

जापानकी प्रथाके अनुसार क्योटाको भी अपना विवाह करते समय एक अच्छा दहेज देना चाहिये थी। और फिर उससमय जब कि क्योटाको कहींसे भी किसी प्रकारकी आर्थिक सहायताकी आशा नहीं थी। क्योटाको स्वयंही अपने विवाहके लिये कुल द्रव्यका प्रबन्ध करना था। परिणामस्वरूप, क्योटाने बड़ी मेहनतके बाद कुछ थोड़ासा रुपया बैंकमें इकट्ठा किया था। इस रुपयेका विचार करके वह तरह तरहके हवाई क़िले बनाया करती थी और अपनेको बहुत धन्य समझती थी।

परन्तु आज तो उसके सिरपर अकस्मात् वज्रपात हुआ। उसकी सब आशाओं पर पानी फिरगया। अब वह अपने विवाहकी पोशाक कहाँसे खरीदेगी, अपने दूल्हेको किसप्रकार संतुष्ट करेगी आदि नाना चित्रविचित्र कल्पनायें उसके मस्तिष्कमें चक्कर काटने लगीं। वह खड़ी खड़ी बारबार विज्ञापनकी ओर नज़र डालती और हताश होकर, अपने दिलको मसोस कर रहजाती।

अन्तमें सब भीड़ वहाँसे खिसकी। सब लोगोंने नाना तरहकी बातें बनाते हुए अपने अपने घरका रास्ता लिया। अब वहाँपर एकही बालिका रहगई थी। वह थी क्योटा। क्योटाने अपने घरकी ओर न जाकर एक जंगल का रास्ता लिया और उस जंगलकी ऊँची पहाड़ीसे गिर कर अपने प्राण निछावर करके इस संसारसे अंतिम विदा माँगी।

पहाड़ीके नीचे एक तालाब था जिसमें मछुए मछली मार रहे थे। मछुओंने क्योटाके शवको एक छोटे संदूकमें रक्खा और बैंकके पास आये।

आज फिर बैंकके पास भीड़ जमा थी। परन्तु आज सब लोग बैंकके मैनेजरकी खोजमें लगे हुए थे। अन्तमें पता चला कि मैनेजर गाँवकी एक सरायमें छिपे बैठे हैं। बस, भीड़ उस ओर बढ़ चली।

इस समय चारों ओर स्तब्धता थी। सब लोग चुप चाप जुलूस बनाकर गाँवकी ओर बढ़े जारहे थे। आगे आगे क्योटाका शव चलता था। नियत स्थानपर सब लोग ठहरगये। मैनेजरके पास एक डेप्युटेशन भेजागया।

बैंकका मैनेजर उस नगरका सबसे बड़ा धनी आदमी था। जब डेप्युटेशनके लोगोंने दिवाला निकलनेका कारण पूछातो मैनेजरने मुँह बनाते हुए गंभीरतासे कहा कि क्या किया जाय, समय बहुत नाजुक है। सब देशोंका यही हाल है, इसमें मेरा क्या दोष है?

डेप्युटेशनके लोगोंने कहा कि ख़ैर, जो कुछ हुआ; अब हम प्रस्ताव करते हैं कि आपके पास जितना धन है वह सब बैंकमें रुपया डिपॉज़िट करानेवालों में बाँट दिया जाय। मैनेजर हँसा और कहने लगा कि अजी, यहभी कोई क़ानून है?

कमेटीके एक आदमीने सीटी बजाई कि एक दूसरे दलने सरायमें प्रवेश किया। इस दलके साथ एक छोटा सन्दूकभी था जिसमें क्योटाका शव रक्खा हुआ था। बैंकर शवको देखकर कुछ भयभीत हुआ। कमेटीने फिर बैंकरके धनको बँटवारा करनेकी बात कही। इसबार फिर बैंकरने उसी तरह इस प्रस्तावकी हँसकर उपेक्षाकी।

फिर एक सीटी बजी और एक दलने ख़ाली संदूक लिये सरायमें प्रवेश किया। बैंकरने पूछा—'यह क्या?' उत्तर मिला, 'यह आपके लिये है।'

बैंकर ताड़गया। उसका चेहरा फीका पड़गया। उसने धनके बँटवारा करनेकी बात स्वीकार करली।

बैंक खुला। सबसे पहले पैसा चुकाये जानेवालोंकी लिस्टमें क्योटा का नाम था। जो द्रव्य क्योटाने अपनी पोशाक बनाने और विवाहोत्सव मनानेके लिये बचाया था आज वह उसके कफ़न और अन्त्येष्टि क्रिया मनानेके लिये ख़र्च होरहा था!

कन्याविक्रय निषेधक बिल।

श्री० कुँ० रघुवीरसिंहजी (आगरा) ने कन्या-विक्रय तथा इस कारण समाजमें जो विधवाओंकी वृद्धि होरही है व दुराचार फैल रहा है, उसको रोकने के लिये लैजिस्लेटिव असैम्बलीमें एक बिल पेश

किया है जिसका आशय यह है कि कन्याके अभिभावकोंको, उसके बेचनेपर दो सालकी सजा या दो सौ रुपया जुर्माना अथवा दोनों सजाएं दी जावें। –प्र०

इंद्रलालजी शास्त्रीके नाम खुली चिट्ठी।

प्रिय इन्द्रजी! आशीर्वाद। दिगम्बर जैन महा पाठशाला जयपुरका प्रबन्ध नानूलालजी शास्त्रीके हाथमेंसे निकल जानेके पश्चात् तुम चाहे जब हितेच्छुके द्वारा महा पाठशाला व मेरे विषयमें अंड बंड प्रलाप कर रहे हो। तुम्हारे अवस्थाकृत औद्धत्य पर ध्यान न देकर मैं अब तक चुप रहा, परन्तु प्रतिवाद किये बिना सूना मैदान जान तुम अपनी मिथ्या कल्पनाका घोड़ा दौड़ाना न छोड़ोगे और उससे अपरिचित सज्जन भ्रममें न पड़ जावें यही विचार कर विवश होकर कुछ लिख रहा हूं। पाठशालाकी श्रेणियोंमें अठारह वर्षसे अंग्रेजी शिक्षाके लिये एक घंटी लगी हुई है। सं० १९८१ की कमेटीके "उपाध्याय परीक्षा उत्तीर्ण होनेके बाद विद्यार्थीसे बोर्डके नियमानुसार केवल अंग्रेजी साहित्यमें मैट्रिक परीक्षाभी दिलाई जा सकेगी और इन्हीं परीक्षाओंके योग्यही प्रारंभसे पठनक्रम रहेगा" इस प्रस्ताव पर तुम्हारे हस्ताक्षर मौजूद हैं। नानूलालजीने तो अपने मंत्रित्वमें गतवर्ष छात्रोंसे अंग्रेजीमें मिडिल परीक्षाभी दिलाई थी और संस्कृतके छात्रोंको केवल अंग्रेजीमें एफ० ए तक परीक्षा लेनेका नियम बनाने पर जयपुर व राजपूताना शिक्षा बोर्डकी प्रशंसाभी की है। इसवर्ष जो पठनक्रम जारी है उसमेंभी पहलेसे अधिक अंग्रेजी किसी श्रेणीमें नहीं लगाई गई है। ऐसी दशामें हितेच्छुके गत १७वें अंकमें जो तुमने लिखा है कि "सुधारक पाठशालाका उद्देश्य मिटा कर अंग्रेजी फैलाना चाहते थे, परन्तु धार्मिक दलकी संगठित शक्तिसे सफलीभूत नहीं हुए, अब धार्मिक दलके कुछ लोग सुधारक पक्षमें चले गये इसलिये सफलीभूत हुए"—यह सफेद झूठ नहीं तो क्या है? मेरी संतान पाठशाला छोड़ अन्यत्र पढ़ने नहीं गई, परन्तु तुमने नानूलालजीके मंत्रित्वमें भी अपने पुत्रोंको सुधारक स्कूलमें अंग्रेजी पढ़ने भेजे सो कहां तक उचित है?

स्वर्गस्थ पूज्य श्री पं० भोलेलालजी सेठी अंत समय में जिन जिनको पाठशालाकी रक्षाका भार सौंप गये थे उनमेंसे तुम्हारे लेखानुसार जब नानूलालजीको छोड़कर सभी पाठशालीय नूतन प्रबन्धकारिणीमें सम्मिलित हैं तब तुम उद्देश्य रक्षाके लिये उछलकूद मचाकर "बैल न कूदे कूदे गौन, यह तमाशा देखे कौन" की कहावतके अनुसार अनधिकार चेष्टा कर हास्यास्पद क्यों बनरहे हो?

हितेच्छुके चैत्रसुदी २ के अंकमें महा पाठशालाकी प्राप्तिस्वीकारता छपजाने पर जो तुमने वैशाख सुद २के अंकमें भूल संशोधन द्वारा प्रकाशकजीको डॉटडपट बतलाई सो लेख राजद्रोही था? या हितेच्छु घरका था? हितेच्छुके खंडेलवाल विशेषणसे विशेष सम्बन्ध होनेके कारणही प्राप्तिस्वीकारता भेजीगई थी न कि मंत्रित्वकी रजिस्ट्रीके लिये। फिरभी ऐडीटरजी टरटर कररहे हैं तो और अन्य पत्रोंद्वारा खबर ली दी जावेगी। मैंने तो पाँच पैसेका ही व्यर्थ व्यय किया, परंतु तुम जो कषाय पुष्टिके लिये हितेच्छुके प्रत्येक अंकके एक फार्ममें इधर उधर बम के गोले फैंककर सामाजिक द्रव्य का व्यर्थव्यय और विरोध वर्धन कररहे हो, इसकाभी कुछ खयाल है? "कभी सौ चोट सुनार की और एक चोट लुहारकी होजायगी"। यों तो तुम १ मईके अंकमें सुधारकोंकी हिंसकतावाले लेखमें ही रोपड़े हो।

सन् १९२० के अन्तमें सबसे पहले पाठशालाका मंत्रित्व मुझेही प्राप्त हुआ था। दो वर्षके पश्चात् अवकाशाभावसे मैं पद छोड़ने लगा तब भी प्रबन्धकारिणीने नानूलालजीको मन्त्री बनाकर मुझे आग्रहके साथ सहायक मंत्रित्वका पद देदिया। हितेच्छुके गत १७वें अंक में जो तुमने नानूलालजी शास्त्रीके विषयमें लिखा है कि वे "अपने सम विचारवालोंकी दृष्टिभी पाठशालापर नहीं पड़ने देना चाहते थे। यदि वे खुदभी देखरेखके साथ पाठशालाका संचालन करते तोभी कोई बात न थी परन्तु वे पाठशालाके लिये प्रतिदिन आधा घंटाभी न देकर केवल मन्त्रीपद बना रखना चाहते थे। किसीका भी पाँव न जमने दिया, अपनाही एकाधिपत्य रखना चाहा। और तो क्या, पाठशालाकी नियमावली बनानेमें भी रोड़ा अटका दिया। मुंशी नारायणसहायजी व मैंने भरसक प्रयत्न किये मगर कोई बात नहीं चलने दी। अपनीही धांधलबाज़ी चलाते रहे तब हमने भी पाठशालासे सम्बन्ध छोड़दिया इत्यादि" सो ठीकही है, ऐसी दशामें तुम तो पृथक् होगये परन्तु मैं फिरभी यथाशक्ति और निःस्वार्थभावसे

युक्तिके साथ कार्य करता रहा। मेरी कार्य प्रणालीको देख करही मेरे इनकार करने पर भी हालमें नवीन कमेटीने भी मुझे प्रबन्धकारिणीका मन्त्री नियत किया है। इसलिये जब कि मैं १३ वर्षसे मन्त्री हूँ तब मेरे मन्त्रित्वपर तो छाप लगीही हुई है। हितेच्छुकी छाप तुम अपनी कमज़ोरीकी तिजोरीमें ही बन्द रक्खो। मुझे ज़रूरत नहीं है।

ता० १ मईके हितेच्छुमें 'जिसके विचार धर्मानुकूल हैं हम उसके सहयोगी रहे और रहेंगे, चाहे हमारा सांसारिक कार्योंमें शत्रुही क्यों न हो" इत्यादि द्वारा जो तुमने नानूलालजीके साथ पहले शत्रुता और मेरे व पं० जवाहरलालजीके साथ परम स्नेह दिखलाकर अब नानूलालजी के साथ सहयोग और हमारे साथ असहयोग प्रदर्शित कर अपनी धर्मनिष्ठताका डंका बजाया है सो क्या यह धर्मनिष्ठता पहले कषायके पड़देमें छिप गईथी जो उद्देश्य समान होनेपर भी तुम नानूलालजी और हमारे साथ मिलकर न रहे? पहले तो दो वर्ष तक पाठशालीय प्रबंध संबन्धमें अपनी ऊँची टाँग रखनेके लिये विवाद करते रहे और अन्तमें विद्याजननी पाठशाला माताकी सेवा से मुँह मोड़ तीन वर्ष तक यथाशक्ति पाठशालाको हानि पहुँचा कृतघ्नता व क्रूरता दिखलाई। नानूलालजीने और तुमने अपनी प्रकृति और प्रवृत्तिका सुधार न किया, तभी तो हम पाठशालाकी परिस्थिति सुधारनेके लिये नई योजनामें सम्मिलित हुए। यदि तुम पाठशालाको समाज की समझ, समझसे काम लेते तो आज यह दिन नहीं आता और "हाथ कमाये करमड़े, दई न दीजे दोष" की कहावत चरितार्थ न होती।

मेरे और पण्डित जवाहरलालजी शास्त्री आदिके विषयमें जो तुमने लिखा है कि सुधारकोंमें शामिल हो गये सो तुम्हारी अनुचित प्रवृत्तियोंमें सहयोग न देनेसे ही क्या! धर्मविरुद्ध विचार हमारे न कभी हुए और न होंगे। हाँ, पाठशालाकी परिस्थितिके सुधारक हम अवश्य बन गये हैं क्योंकि पाठशाला समस्त स्थानीय जैनसमाजकी है। संस्थाके प्रति सहानुभूति समाजके मुख्य मुख्य सज्जनोंके सहयोगसे होती है। अतएव संकुचित विचारोंको छोड़कर स्थानीय समस्त दिगम्बर जैनसमाज द्वारा ३७ सज्जनोंकी प्रबन्धकारिणी और १८१ की जनरल कमेटी चुनी गई है। तुम जैसे कुछ व्यक्ति कषायवश शामिल न हैं तो इसमें दोषी कौन?

सत्यकी कायाका चूर्ण कर चतुर्थीके पाठोत्सवको मायापूर्ण बतानेवाले गोलमालके हालके भरे लेखोंसे समाज का खयाल बदलनेके लिये जो तुमने कमाल किया है। न मालूम तुमने सत्यसे सफा खाली सफेद झूँठ लिखनेवाली काली शिक्षा कहाँसे पाली? यदि हमारी कमेटीने अन्यायपूर्ण आक्रमण कर लिया और १ मईके हितेच्छुके लेखानुसार सुधारकभी इनेगिने ही हैं तो तुमने अपनी प्रबल शक्तिसे अबतक कब्ज़ा क्यों नहीं उठाया? जिसके द्वारा पाठशालाका समस्त कार्य सुचारु रूपसे संचालित होरहा है जिसके हाथमें सारा प्रबन्ध है, जो समस्त समाजकी सहानुभूति से ४००) रु० मासिकका खर्च चला रही है, जिसे राज्यसे ५०) रु० मासिककी सहायता और डिगरियोंका रुपया भी मिल रहा है, उस डंकेकी चोट अपना अस्तित्व रखनेवाली कमेटीको कल्पित बताना गजनीमिलिका नहीं तो क्या है?

इस नई योजनासे प्रसन्न हो जिन सज्जनोंने हर्षसे विवाहोत्सवमें सहायतादी उसे देखकर जो तुम लिखते हो कि "विवाह शादी वालोंसे जो रुपये एकत्रित किये हैं वे सब पारस्परिक व्यवहारसे दबादबू कर खुशामद मिन्नतें करके किये हैं" सो यदि इसी तरह समाजसे रुपये मिल जाते हैं तो तुम लोगोंने पिछले तीन वर्षोंमें ध्रौव्य फण्डमेंसे पाँच हज़ार खर्च कर सदाके लिये पाठशालाको २५) रु० मासिक ब्याजकी आमदनीका घाटा क्यों पहुँचाया? क्या तुम लोग इन उपायोंसे द्रव्य संचय नहीं कर सकते थे? परन्तु समाजकी सहानुभूति ही तब न! यह समस्त समाजकी सहानुभूतिका ही फल है कि जहाँ गतवर्ष १५००) के लगभग घाटा रहा था वहा इस वर्ष आषाढ़ से चैत्र शुक्ला दोज तक साढ़े नौ मासमें सेठ साहबकी दूकानसे ब्याज न लेने और तुम्हारे भरसक विरोध करने व दाताओंको बहकाने परभी खर्चके बाद बचत हो रही है।

रही श्रीमान् मान्यवर सेठ भागचन्दजी साहब अजमेर की जयपुर दुकानसे रुपया न मिलनेकी बात सो इससे कमेटी कल्पित नहीं ठहराई जा सकती, क्योंकि जब नानूलालजी शास्त्रीने तुमपर सच्ची नालिशकी तबभी तुमने द्वेषभाव व अधिकार प्राप्तिकी इच्छासे स्वर्गस्थ सेठ साहब को कह सुनकर कई मास तक पाठशालाका रुपया रुकवा

छिपाया परन्तु अब तुम्हारी कुटिलता प्रगट होगई तो रुपया देना जारी कर दिया गया। तुम हाथ मलते रह गये और अंतमें तुम्हें अस्तीफ़ाभी देना पड़ा। सेठ साहब तुम्हारी उछल कूदका तमाशा देख रहे हैं और खर्चके लिये पर्याप्त सहायता आजानेसे कमेटीको अभी रुपया मँगानेकी ज़रूरतभी नहीं है। समाजका अमानत रुपया देनेमें सेठ साहबको उज़र ही क्या है? फिर वे तो पाठशालाके सदा सहायक व रक्षक रहे हैं और रहेंगे। तुम्हारे माया बाण उनकी दृढ़ सहानुभूतिका भेदन नहीं कर सकते।

अन्तमें यही शिक्षा दी जाती है कि सबकुछ जानते हुए भी तुम केवल अपनी कषाय पुष्टिके लिये सामाजिक पत्रको काला कर समय व द्रव्यका दुरुपयोग कर रहे हो और अपरिचित सज्जनोंको भ्रममें डाल रहेहो, सो ठीक नहीं। अतएव बोधके बलसे दिलके छलबलको निकाल, अधिकार प्राप्तिकी आशाको छोड़कर, विरोधका निरोध कर कष्ट समाजको संतुष्ट करनेका पुष्ट विचार करो। इसीमें तुम्हारा मंगल है। इत्यलम् हितैषी—

कस्तूरचन्द साह मंत्री—दिगम्बर जैन महापाठशालीय,
प्रबंधकारिणी कमेटी जयपुर।

'पतितोद्धारक जैनधर्म'।

२००) रु० पारितोषिक।

पतितोंके उद्धार विषयमें जैनधर्मका क्या सिद्धान्त है, और इस धर्मके आश्रयको पाकर कैसे कैसे पतितोंका उद्धार हुआ है, यह सब अच्छे विशद रूपसे हृदयस्पर्शी शब्दोंमें बतलाने के लिए 'पतितोद्धारक जैनधर्म' नामकी एक उत्तम पुस्तक हिन्दीमें लिखे जानेकी ज़रूरत है, जो फुलस्केप साइज़के १२५ पृष्ठों अथवा बारह फ़ॉर्म से कमकी न होनी चाहिए। पुस्तकके शुरूमें लगभग तीन फ़ॉर्मका एक निबन्ध रहना चाहिए, जिसमें पतितोंके उद्धारविषयक जैनधर्मकी उदारताको सैद्धान्तिक और ऐतिहासिक दोनों दृष्टियोंसे खूब स्पष्ट करके बतलाया जाय—उसका औचित्य सिद्ध करनेके लिये आधुनिक युक्तिवादसे भी काम लिया जाय और साथमें उन मुख्य मुख्य प्रमाणोंका संग्रहभी किया जाय जो दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायोंके ग्रन्थोंमें प्रकृत विषयके सम्पोषणार्थ पाये जाते हैं। शेष भागमें सबसे पहले उन खास खास पतित मनुष्योंकी संक्षिप्त कथायें रहनी चाहिएँ जिनका जैनधर्मके द्वारा उद्धार हुआ है और जो संक्षेप अथवा विस्तारसे किसीभी जैनसम्प्रदायके ग्रन्थोंमें पाई जाती हैं। साथही देश-विदेशके कुछ थोड़ेसे ऐसे चुने हुए प्रसिद्ध ऐतिहासिक उदाहरणोंका भी संक्षेपमें उल्लेख रहना चाहिये जिनसे यह स्पष्ट होता हो कि पतितों को अपने उद्धारका अवसर दिया जाने पर उनका कैसा कुछ उत्थान और विकास आजकलके समयमें हुआ है। कथायें सब आधुनिक पद्धतिका अनुसरण करते हुए सरल भाषामें ऐसे अच्छे प्रभावशाली ढंगसे लिखी जानी चाहिएँ जिससे पढ़तेही पतितोंके उद्धार विषयमें हृदयको काफ़ी उत्तेजना मिले। जो विद्वान् महाशय लोकहितकी दृष्टिसे ऐसी पुस्तक लिखनेका परिश्रम करेंगे, उनमें जिनकी पुस्तक सर्वोत्तम समझी जावेगी उन्हें १२५) रु० और दूसरे नम्बरकी पुस्तकके लेखक महाशय को ७५) रु० नक़द बतौर पारितोषिक अथवा सत्कारके भेंट किये जावेंगे।

पुस्तक लिखी जाकर ३१ अक्टूबर सन् १९३४ तक नीचे लिखे पते पर पहुँच जानी चाहिये, और जो जो सज्जन उसका लिखना प्रारंभ करें, उन्हें उसकी सूचना मुझे ज़रूर कर देनी चाहिये, जिससे यथावश्यकता उन्हें कोई उचित सूचनायें की जा सकें। आगत पुस्तकों की जाँच कमसे कम तीन विद्वानोंकी एक कमेटी द्वारा होगी और उसके निर्णयानुसार ही अधिकारी व्यक्तिको पारितोषिक वितरण किया जावेगा। यदि आगत पुस्तकोंमें से एक ही पुस्तक पसंद की जाय—पारितोषिकके योग्य समझी जाय और वह प्रत्येक दृष्टिसे सर्वांग पूर्ण हो तो कमेटीकी राय होने पर उस एक पुस्तकके लेखक महोदयको पूरा २००) रु०का पारितोषिक भी दिया जासकेगा। पारितोषिकदाताको पुस्तकके छपाने का अधिकार रहेगा। —जुगलकिशोर मुख्तार
सरसावा, ज़िला सहारनपुर।

(पृष्ठ दो से आगे)

गँगवाल, चाहूलालजी टोंग्या, मिश्रीलालजी गँगवाल पन्नालालजी टोंग्या इन्दौर, देवीचन्दजी बाकलीवाल मंदसौर, गुलाबचन्दजी गँगवाल धूलिया, राजमलजी सेठी नसीराबाद, हेमचन्द्रजी सोगाणी ऐडवोकेट, मिलापचन्दजी छाबड़ा ऐडवोकेट, रूपचंदजी पाटणी अजमेर, पं० कन्हैयालालजी शास्त्री किशनगढ़ आदिको साथ लेकर सिणोद गये। इन लोगोंके पहुँचतेही उद्दंड व्यक्तियोंने मूर्खतावश मंदिरके ताला लगाकर व्यासको इधर उधर कर दिया तथा सिणोदके पंच कहीं छुपकर बैठ गये। करीब पंद्रह मिनिट तक सब लोग मंदिरके दरवाजेपर खड़े रहे। ताला खुलता न देख रावराजा साहबने छोटीलालजी सेठी आदि चारों व्यक्तियोंको यह समझाकर कि—यहाँ लोग जब इतने मूढ़ हैं कि ऐसे ऐसे प्रतिष्ठित बड़साजनोंको भी मंदिरमें नहीं जाने देना चाहते, तब आप लोग इनसे न्यायकी क्या आशा रखते हैं? हिन्दुस्तानके सब जैनमंदिर आपके लिये खुले हुए हैं। आप कहीं जाकर पूजाप्रक्षाल कर धर्मसेवन कर सकते हैं। आप यहाँपर क्यों अपनी शक्ति बरबाद कर रहे हैं? आदि—उन्हें अनुरोध कर अपने साथ ले आये। उन्होंने नसीराबादके पंचायती मंदिरमें प्रक्षाल पूजा कर भोजन किया। गाँवके सभी निष्पक्ष जैन व अजैन मंदिरपर ताला लगा देनेकी इस अनुचित कार्यवाहीपर उन्हें धिक्कार रहे थे। जब पार्टी मोटर में बैठकर रवाना होने लगी तब बीरके धोंकलचंदजी गदिया आदि कुछ व्यक्ति रावराजा साहबके पास आये। रावराजा साहबने मालवाके रिवाजका जिकर करते हुए कहा कि वहाँ लोहड़साजनोंके डेढ़सौ वर्ष तकके पुराने मंदिर हैं; वे सभी जैनमंदिरोंमें बड़साजनों के समान पूजाप्रक्षाल करते हैं तथा उनके साथ बड़साजनोंका खानपान व्यवहार है। उन्होंने यह भी कहा कि जब सब जैनमंदिरोंमें वे लोग पूजाप्रक्षाल कर सकते हैं तब यहाँके मंदिरमें क्या विशेषता है जो यहाँ उन्हें पूजाप्रक्षालसे रोककर नाहक द्वेष फैलाया जारहा है? एक भाईके यह कहने पर कि—चन्द्रसागर महाराजकी ऐसी आज्ञा है, उन्होंने तत्काल उत्तर दिया—मुनि महाराजको हमारी बिरादरीके झगड़ोंसे क्या मतलब?

चंद्रसागरजीकी लीलाके कारण आज गाँव गाँवमें तथा घर घरमें जो द्वेषाग्नि फैल रही है, उसका यह एक दृश्य है। समाजने समय रहते अगर इस अग्निको बुझानेका प्रयत्न नहीं किया तो इसका परिणाम धर्म व समाजके लिये बड़ा घातक होगा।

इतनी रोक थाम होते हुए भी डिग्गी व पचार की गादीके पुजारी श्रीमान् किशनलालजी बड़जात्या लोहड़साजनने सिणोदके मंदिरमें अन्तिम दो रोज तक पूजा व प्रक्षाल की। —संवाददाता।

Under Section 30 of the Provincial Insolvency Act, V of 1920, notice to all the creditors concerned is hereby given that the following persons have been adjudged insolvents on the dates shown against them and the period within which the debtors shall apply for their dischaige is also mentioned against their names:—

No. of Insolvency Case.	Name, address and description of Insolvents.	Date of Adjudication.	The period within which the debter shall apply for his discharge	Case fixed for.
In the Court of First Subordinate Judge 2nd Class. Amraoti.				
29 of 1933.	Ram Presad S/o Baij Nath Pardeshi Brahman age 50 labourer of Dubekapurwa Police Station Tg. Prathiwigon Distt. Partabgarh.	20-4-1934.	Six months.	For proof of debt case for 27-7-34.

3-5-1934. (Sd.) J. P. Jain, *I S. J. II Class Amraoti.*

तार का पता—"JAINJAGAT" Ajmer Reg: No. N 352.

ता० १ जून ॐ सन् १९३४

वर्ष ९ अंक १४

जैनसमाज का एकमात्र स्वतन्त्र पाक्षिकपत्र।

वार्षिक मूल्य १) रुपया मात्र।

जैन जगत्

विद्यार्थियों व संस्थाओं से २॥) मात्र।

(प्रत्येक अंग्रेज़ी महीने की पहली और सोलहवीं तारीखको प्रकाशित होता है)

"पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनम् यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः"॥—श्री हरिभद्रसूरि।

सम्पादक—सा०र० दरबारीलाल न्यायतीर्थ, जुबिलीबाग तारदेव, बम्बई। प्रकाशक—फ़तहचंद सेठी, अजमेर।

सोनीजीके सत्य-प्रेमका नमूना।

खण्डेलवाल जैनहितेच्छुके १४वें वर्षके १६वें अंक में सत्यप्रेमी (?) भाई पन्नालालजी सोनीने लोहड़-साजन समाजके सम्बन्धमें 'धोकेसे बचिये' नामक एक लेख प्रकाशित करनेकी कृपाकी है। इस लेखका प्रत्येक वाक्य पुकार पुकारकर आपके विचित्र प्रेमकी घोषणा कररहा है। हमें दुःख है कि लेखमें प्रकृत विषय पर रंच मात्रभी प्रकाश न डालकर जनताको भारी भ्रममें डालनेकी व्यर्थ चेष्टा कीगई है। सोनीजीका कर्त्तव्य था कि निष्पक्ष दृष्टिसे प्रकृत विषयपर युक्ति-युक्त विचार कर कुछ लिखनेकी कृपा करते। व्यर्थ हितेच्छुके कॉलमोंको काला कर सत्यप्रेमी बननेका डंका बजाना सोनीजीको शोभा नहीं देता। पं० कन्हैया-लालजी शास्त्री द्वारा प्रकाशित लोहड़साजननिर्णयके सम्बन्धमें समालोचनाके बहाने पं० इन्द्रलालजी शास्त्री द्वारा लिखित दो तीन लेखोंका सयुक्तिक उत्तर जैन-जगत्में प्रकाशित हुआ है। सोनीजीके लेखमें ऐसी कोई बात नहीं है कि जिसका जवाब देनेके लिये एक पृथक् लेख लिखनेकी आवश्यकता समझी जाय क्योंकि भाई चम्पालालजी देहलीवालोंके लेख द्वारा उक्त पु-स्तकके सम्बन्धमें समस्त शङ्काओंका समाधान अच्छी तरहसे करदिया गया है। सोनीजीको वह लेख अ-वश्य पढ़ना चाहिये जिससे उन्हें यह मालूम होजाय कि लोहड़साजन, बड़साजनोंके समान ही शुद्ध बीसा हैं। बार बार उन्हीं बातोंको दोहरा कर हम पत्रोंके कॉलम काले करना उचित नहीं समझते।

सोनीजीने उन लोगों पर आक्षेप कर सौजन्य दिखलाया है जो सत्यप्रेमसे प्रेरित होकर लोहड़साजनों के न्यायानुकूल पक्षका समर्थन करते हैं। किसी वि-षयका खण्डन करना एक बात है, और आक्षेप क-रना दूसरी बात। आक्षेपोंसे किसी विषयका खंडन नहीं होजाता। जो लोहड़साजन शताब्दियोंसे बड़-साजनोंके समानही पूजन प्रक्षाल आदि धार्मिककृत्य करते आरहे हैं और कई जगह कच्चेपक्के भोजनव्यव-हारके अलावः जिनका बड़साजनोंके साथ बेटीव्यव-हार सम्बन्धभी जारी है, उन्हें समाजमें नवीन कल-हाग्नि प्रज्वलित करनेके लिये सदोष सिद्ध करनेकी चेष्टा करना कितना हास्यास्पद और निन्दनीय है, यह बात लोहड़साजनोंके विरोधियोंको क्षणभर अपने हृदय पर हाथ रखकर सोचनी चाहिये। ऐसी कोई युक्ति और ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है जिससे लोहड़साजन सदोष सिद्ध होसकें। इस पारस्परिक भेदका कारण तो केवल आपसका मनोमालिन्य है जो किसी अ-

त्यन्त साधारण घटनापर पैदा हो गया था। आज-कल भी कई जगह दो गोठोंमें परस्पर बेटीव्यवहार खानपान आदि बन्द हो जाते हैं। जो परस्पर फिर मिलजाते हैं, उनमें स्थायी भेद नहीं पड़ता; पर जिन्हें फिर मिलजानेका सौभाग्य प्राप्त नहीं होता उनमें स्थायी भेद पड़जाता है, जो कालान्तरमें भिन्न जातिका सा मालूम होने लगता है। लोहड़साजनों (लघुसाजनों) की गोठ अलग होनेका कारण वही है जो लोहड़-साजननिर्णयमें हितेच्छुसे उद्धृत किया गया है। शास्त्रि परिषद्के मंत्री पं० इन्द्रलालजी शास्त्रीने भी उसी लेखका समर्थन किया है। महासभाकी निर्वाचित कमेटीने भी उसी संवत् १९५२ वाले लेख और प्रचलित रीति रिवाजके आधारपर लोहड़साजनोंके सम्बन्धमें फ़ैसला दिया है। फिर भी हमारे सोनीजी लोहड़साजनोंको सदोष सिद्ध करनेकी रागही आलाप रहे हैं, यह कैसी विचित्र बात है! आपको रैणवाल अधिवेशनमें लोहड़साजनविरोधी प्रस्तावको युक्ति-पूर्ण न होनेके कारण किस प्रकार वापिस लेना पड़ा था, यह आप न भूले होंगे। अगर आपके प्रस्तावके समर्थनमें कोई युक्ति होती तो वह उसी समय पास होसकता था। हम अभीतक नहीं समझ सके कि सोनीजी महोदय इनकी सदोषता सिद्ध करनेके लिये कोईभी युक्ति न रखते हुए क्यों इनके पीछे पड़े हुए हैं! पाठक सोनीजीकी इन तर्कहीन पंक्तियोंपर अवश्य ग़ौर करें—

१—"मालूम नहीं बड़साजनोंमें इनका कौनसा कार्य अटक गया जिससे वे लोहड़साजनोंको मिलाकरही अपने कार्यको सिद्ध करना चाहते हैं! आज लोहड़-साजनोंके मिलानेकी चेष्टाकी जारही है। कलको दस्साओंको भी मिलानेकी नई धुन सवार होगी"।

२—......"वे तो उनकी निर्दोषताका प्रमाण-नहीं देते और मुनियोंसे प्रमाण माँगते हैं। चोरको चोरीकी सजा मिली। यदि वह सजासे छुटकारा पाना चाहता है तो वह अपनी सफ़ाई पेश करे न कि वह जज जो जिसे सरासर चोर समझरहा है, वही उसकी बरियत पेश करे" आदि।

३—'खयाल रहे, उस गटकेमेंकी वे पंक्तियाँ संशया स्पद हैं। वक्ताकी प्रमाणतासे वचनोंकी प्रमाणता होती है।'

४—"लोहड़साजन बड़साजनकी बराबरीका अंग नहीं है। जैन खंडेलवाल होनेमें कोई बाधा नहीं है। बाधा है एकत्वमें। दोनोंका खंडेलवाल यह नाम एक है, पर दोनोंका वर्ण एक होनेमें संशय है। जैसे खं-डेलवाल ब्राह्मण और खंडेलवाल वैश्य।"

५—"पूज्य १०८ श्री चन्द्रसागरजी महाराजका बहि-ष्कार कर उन्हें रोटियाँ देना बंद करदें, उनकी ऐहिक यात्रा समाप्त होजाय तो इनका कलेजा ठंडा होजाय।"

६—"पीनो देवदत्तो दिवा न भुंक्ते......एवं ह-मारी कुलपरम्परासे रोटीबेटीव्यवहार इनके साथ बंद है इससे साबित होता है कि या तो ये सदोष हैं या हमारी जाति इनकी जातिसे भिन्न है।"

सोनीजीकी उपरिलिखित तर्कहीन मुख्य यु-क्तियोंका सयुक्तिक उत्तर क्रमशः निम्न प्रकार समझें।

१—जो बड़साजन सत्यके पुजारी और भगवान् महावीरके सच्चे उपासक हैं उन्हें कभी भी किसी सत्य बातके कहनेमें भय नहीं होता। वे स्वार्थान्ध होकर किसी पक्षका समर्थन व खंडन नहीं करते किन्तु जो उनके सद्विवेकके अनुसार उन्हें उचित जँचता है उसका समर्थन और जो अनुचित मालूम होता है उसका खंडन करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। लोहड़सा-जनोंके पक्षका समर्थन करने वाले इन सत्यप्रेमियों का इनके बिना कोई भी काम नहीं अटक रहा है, फिरभी वे अपना कर्त्तव्य समझ कर इनके पक्षका समर्थन कर रहे हैं। ऐसे व्यक्ति तो निम्न श्रेणीके प्राणी हैं जो किसी अपने कार्यके अटक जानेपर निज स्वार्थकी सिद्धिके लिये किसी पक्षका समर्थन कररहे हों। लोहड़साजनोंको मिलानेकी चेष्टा करनेकी किसी को क्या ज़रूरत है? वे तो पहलेसे ही बड़साजनोंमें दूधमें पानीके समान मिले हुए हैं। लोहड़साजन निर्णयके १४७ सम्बन्धोंको आँख खोलकर देखिये। लोहड़साजन भाइयोंको भी किसीमें मिलनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। जो आज लोहड़साजनोंको मिलानेकी चेष्टा करते हैं कल वे दस्सोंको भी मिलानें

(शेष पृष्ठ २० में देखिये)

वर्ष ६

अंक १४

ज्येष्ठ कृष्णा ४

वीर संवत् २४६०

ता० १ जून

सन् १९३४ ई०

जैनधर्म का मर्म ।

(४६)

३—अपना कोई रहस्य छुपाना न्यायसंगत हो तो उसे छुपानेके लिये झूठ बोलना अनुचित नहीं है।

पहिले तो यथाशक्ति मौन रक्खे। यदि कुछ बोलनाही आवश्यक हो तो यह कह दे कि 'मैं कुछ नहीं कहना चाहता।' यदि इतना स्पष्ट उत्तर देनेकी परिस्थिति न हो तो कहदे कि 'मुझे नहीं मालूम'। परन्तु कुछ न कुछ कहनेसे ही अगर रहस्यभंग होने की सम्भावना हो तो झूठ बोल दे। जैसे बहुत दिन पहिले एकबार मुझसे एक पण्डितजीने पूछा कि—'आप सर्वज्ञ मानते हैं कि नहीं'? मैंने हँसकर कहा कि—इस विषयमें कुछ न पूछिये। उनने कहा—बस, समझ गया अब पूछनेकी जरूरत नहीं है। मुझे अपने मनोभाव छुपानेकी उस समयभी जरूरत नहींथी इसलिये बात प्रगट होनेपर भी चिन्ता न हुई परन्तु जीवनमें ऐसे अवसर आते हैं कि झिझकके साथ उत्तर देनेसे ही असली बात प्रगट हो जाती है। जैसे समाचार-पत्रोंके संवाददाता चेहरे परसे राजनैतिक नेताओंके मनोभाव समझा करते हैं। अब अगर कोई राजनीतिकी किसी गुप्त मंत्रणामें शामिल हो और उससे शर्त कराली जाय कि उसके द्वारा यह मंत्रणा प्रगट न की जायगी तो उसे छुपाने के लिये अगर उसे झूठ बोलना पड़े तो अनुचित नहीं है। परन्तु इस बातका खयाल रहे कि रहस्य छुपाना न्यायसंगत हो। न्यायसंगतता न होनेसे वह पूर्ण असत्यकी कक्षामें आ जायगा।

एक विद्यार्थी आकर पूछता है कि क्या आपने अमुक प्रश्न निकाला है? मैं जानता हूँ कि निकाला है परन्तु अगर उत्तर देनेमें ज़राभी झिझकता हूँ तो विद्यार्थी समझ जाता है। इस तरह परीक्षाका उद्देशही मारा जाता है तथा मैं भी विश्वासघाती परीक्षक ठहरता हूँ। इसलिये उस समय दृढ़ताके साथ झूठ बोलना मेरा कर्तव्य होता है क्योंकि इस जगह रहस्य छुपाना न्यायसंगत है। इसी प्रकार एक आदमीने कोई आविष्कार किया है जिससे वह आजीविका करेगा; परन्तु पूछने पर अगर वह अपना रहस्य प्रगट करदे तो उसकी न्यायसंगत आजीविकाही मारी जाय, इसलिये उसे अपना रहस्य छुपानेका अधिकार है, भले ही उसे इसके लिये मिथ्या बोलना पड़े।

प्रश्न—स्पष्ट शब्दोंमें इस प्रकार झूठ बोलनेका भी विधान क्यों किया जाता है? वह चुप रहे, हूँ हूँ करके रहजाय या और किसी तरहसे टाल टूल करदे तो ठीक है। असत्य भाषणसे तो बचनाही चाहिये।

उत्तर—स्पष्ट बोलनेमें और अस्पष्ट बोलनेमें थोड़ा अन्तर अवश्य है, फिरभी असत्यभाषण दोनों हैं। क्योंकि जो मनुष्य हूँहूँ करके टालदेता है उसका भी अभिप्राय तो यही है कि पूछने वालेसे असली बात छुपी रहे। इसलिये वह जो कुछ बोला है, धोखा देनेके भावसेही बोला है। हूँहूँ करनाभी असत्य भाषण है। वञ्चनाके अभिप्रायसे मौन रखनाभी असत्य भाषण है। हाँ, अभिप्राय दोनोंमें एक सरीखा

होने परभी बाह्य दृष्टिसे उसमें अन्तर है, इसलिये होसके तो मौन रखकर या हूँहूँ करके काम चलाना चाहिये परन्तु इससे काम न चले तो न्यायसंगत रहस्यकी रक्षाके लिये असत्यभाषण करनाभी अनुचित नहीं है।

अगर रहस्य न्यायसंगत न हो तो छुपानेके लिये झूठ बोलना अनुचित है। जैसे एक मुनिवेषी दुराचारी है, वह अपने दुराचारको छुपाता है या उसके भक्त दुराचारको छुपाते हैं, तो यह पूरा असत्य है, क्योंकि दुराचार न्यायसंगत नहीं है। ऐसे समाचार कब कितने, कैसे छुपाना चाहिये—इस विषयका विस्तृत और स्पष्ट विवेचन सम्यग्दर्शनके प्रकरणमें उपगूहन या उपबृंहणका कथन करते हुए किया गया है। वहाँ से समझ लेना चाहिये।

इसी प्रकार जो दूकानदार ग्राहकको कुछका कुछ माल देते हैं, वे अगर इसे औद्योगिक असत्य कहकर असत्यके पापसे बचना चाहें तो नहीं बच सकते, क्योंकि उनका यह रहस्य न्यायसंगत नहीं है।

इसी प्रकार जो स्त्री या पुरुष अपने दुराचारको छुपाते हैं, वे आत्मरक्षाके नामपर असत्यके पापसे बचना चाहें तो नहीं बच सकते क्योंकि समाजके साथ उनने यह प्रतिज्ञा करली है कि हम अमुक जातिका दुराचार न करेंगे। अब अगर वे दुराचार करते हैं और आत्मरक्षाके नामपर उसे छुपाते हैं तो वे घोर असत्यवादी हैं, क्योंकि उनका इस प्रकार पाप छुपाना न्यायसंगत नहीं है। हाँ, जो दुराचार नहीं है परन्तु समाजने उसे दुराचार कह दिया हो तो हमें स्पष्ट घोषणा करना चाहिये कि हम इसे दुराचार नहीं मानते। ऐसा असत्य कदाचित् विरोधी असत्य की श्रेणीमें भी जासकता है, परन्तु इसकी कसौटी न्यायसंगतता है। उसपर ध्यान पूरा रखना चाहिये।

४—अन्याय्य या अनुचित प्रतिज्ञा तोड़ना असत्य नहीं है।

अज्ञानवश या भ्रमवश मनुष्य अनुचित प्रतिज्ञाएँ कर जाता है। उन प्रतिज्ञाओंको पूरा किया जाय तो अनर्थ या अन्याय होता है, इसलिये उन प्रतिज्ञाओंको प्रतिज्ञाही न मानना चाहिये। क़ानूनभी इस प्रकारका विचार करता है; वह अनेक प्रतिज्ञाओंको अनुचित ठहरा देता है।

मान लीजिये किसी आदमीने यह प्रतिज्ञाकी कि अगर मेरा पुत्र स्वस्थ हो जायगा तो मैं देवीके आगे बकरोंका बध करूँगा। परन्तु किसी आदमी ने उसे समझाया कि 'देवी तो जगन्माता है इसलिये वह बकरोंकी भी माता है। जब कोई अपनी मौतसे मर जाता है तब मातापिता उसको जलानेभी नहीं जाते, फिर माता अपने बच्चेको कैसे मरवा सकती है? कैसे उसके खूनमांसका भोगकर सकती है?' इस प्रकार समझानेसे वह समझ गया कि पशुबलि करना घोर पाप है। ऐसी अवस्थामें वह पहलेकी हुई प्रतिज्ञाको तोड़दे तो इसमें असत्य-भाषणका पाप नहीं लगेगा क्योंकि उसकी पहिली प्रतिज्ञा अन्याय्य और अनुचित थी।

अर्जुनके विषयमें कहा जाता है कि उसने प्रतिज्ञा की थी कि जो मुझसे होगा कि तू अपना गांडीव धनुष छोड़दे, मैं उसका सिर काटलूँगा। इसके बाद जब युधिष्ठिर कर्णसे पराजित हुए तब उनने अर्जुन से कहा—'तेरा गांडीव हमारे किस कामका? तू इसे छोड़दे'। बस, अर्जुनतो तलवार उठाकर युधिष्ठिरका सिर काटनेको तैयार होगया! श्रीकृष्ण वहीं खड़े थे उनने अर्जुनसे कहा—तू मूर्ख है, तुझे अभीतक धर्म का मर्म नहीं मालूम हुआ। तुझे अभी समझदारोंसे कुछ सीखना चाहिये। यदि तू प्रतिज्ञाकी रक्षा करना ही चाहता है तो तू युधिष्ठिरकी निर्भर्त्सना कर, क्योंकि सभ्यजनोंकी निर्भर्त्सना मृत्युके समान है। श्रीकृष्णने अर्जुनसे इस प्रकार प्रतिज्ञा भंग कराके धर्मकी रक्षाकी। इतनाही नहीं, महाभारतका इतिहासही बदल दिया।

इस अनुचित प्रतिज्ञाको तुड़वाकर श्रीकृष्णने अच्छाही किया। इसके लिये उनकी युक्तिभी एक प्रकारसे ठीकही है. परन्तु इससे भी अच्छी युक्ति

यह मालूम होती है कि अर्जुनसे यह कहा जाता कि-'मूर्ख, तेरी यह प्रतिज्ञाही पाप है। तुझसे कोई कुछ भी कहे, परन्तु उसे मारडालनेका तुझे क्या हक़ है ? अगर तू उसे दण्ड देनेका अपनेको अधिकारी समझता है तो अपराधके अनुकूलही दंड देना चाहिये। परन्तु इस प्रकार बोलनेका अपराध इतना बड़ा नहीं है कि किसीको मृत्युदंड दिया जाय।' यहाँ तो युधिष्ठिर थे जिनके लिये भर्त्सनाभी मृत्युके समान है परन्तु यदि कोई साधारण मनुष्य होता तो क्या उसका वध करना उचित कहलाता ? सच पूछा जाय तो यहाँपर अर्जुनने युधिष्ठिरकी भर्त्सना करके भी अनुचित किया, क्योंकि युधिष्ठिरने जो कुछ कहा उसे कहनेका बड़े भाईके नाते उन्हें हक़ था; परन्तु अर्जुनको बड़े भाईका अपमान करनेका हक़ न था। बल्कि उसने ऐसी अनुचित प्रतिज्ञा करके केवल युधिष्ठिरका नहीं, किन्तु मनुष्यमात्रका अपराध किया था।

इसीप्रकार आज कोई किसी मिथ्यात्वीके चक्कर में पड़कर यह प्रतिज्ञा करले कि मैं अमुक वर्गको अछूत समझूँगा, हरिजनोंका स्पर्श न करूँगा; पीछे उसे अपनी भूल मालूम हो कि मनुष्यको पशुओंसे भी नीच समझना घोर पाप है, ऐसी अवस्थामें मिथ्यात्वीके द्वारा दी हुई इस पापमय प्रतिज्ञाका नष्ट कर देनाही सत्यकी रक्षा करना है।

एक आदमीने जनेऊ पहिरनेकी प्रतिज्ञा यह समझकर ली है कि जिससे मैं शूद्र न कहलाऊँ। पीछे उसे मालूम हुआ कि शूद्रको, हमारे समान सदाचारी होनेपर भी अगर जनेऊ पहिरनेका हक़ नहीं है तो जनेऊ पहिरना पाप है क्योंकि इससे मनुष्य, मनुष्यका अपमान करता है, अहंकारकी पूजा करता है। ऐसी अवस्थामें जनेऊकी प्रतिज्ञाको और जनेऊको तोड़ डालना ही सत्य की रक्षा करना है। इस प्रकार और भी अनेक उदाहरण दिये जासकते हैं।

इसी श्रेणीमें नासमझीमें कीगई या करादी गई प्रतिज्ञाएँभी शामिल हैं। जैसे किसी अबोध बालिका का किसीके साथ विवाह कर दिया गया, विवाहके समय सप्तपदी उससे पढ़ा दीगई; परन्तु होश सम्हालने पर वह देखती है कि जिसके साथ विवाह हुआ है वह वृद्ध है, इसके साथ मेरा दाम्पत्य जीवन निभ नहीं सकता, तब वह उस सम्बन्धको तोड़ डालेतो इसमें उसे प्रतिज्ञाभंगका दोष नहीं लग सकता। इसी नियमके अनुसार बालविधवा भी वास्तवमें विधवा नहीं कही जा सकती, क्योंकि उसकी प्रतिज्ञाएँ नाजायज़ हैं।

जिस बातको मानकर प्रतिज्ञा कीगई है, वह अगर भ्रमरूप निकले तो भी प्रतिज्ञाको तोड़ना पाप नहीं है। जैसे कोई विद्यार्थी परीक्षामें प्रथम आया इसलिये मैंने उससे कहा कि मैं तुझे अमुक पारितोषिक दूँगा। परन्तु पीछे यह सिद्ध हुआ कि उसने चोरी की थी इसलिये प्रथम आगया है। ऐसी हालतमें अगर मैं उसे पारितोषिक न दूँ तो प्रतिज्ञाभंगका दोष न लगेगा।

शंका-इस प्रकार अगर आप प्रतिज्ञाओंके तोड़नेका विधान बना देंगे तो दुनियाँमें प्रतिज्ञाका कुछ मूल्य न रहेगा, क्योंकि कोई न कोई बहाना हरएकको मिलही जायगा। कल कोई स्त्री पतिसे कहेगी कि तुम्हें भला आदमी समझकर मैंने तुम्हारे साथ शादी की थी, परन्तु तुम भले आदमी नहीं हो इसलिये मैं सम्बन्ध तोड़ती हूँ। कल कोई किसीसे महीनेभर काम करायगा और अंतमें कुछभी पारिश्रमिक न देकर कहेगा कि तुमको सदाचारी समझ कर मैंने काम करायाथा, परन्तु तुमतो सदाचारी या योग्य नहीं हो इसलिये मैं कुछ नहीं देता। इस प्रकार जगत्‌में अंधेर हो जायगा।

समाधान-इस नियममें मनचाहा बहाना निकाल कर प्रतिज्ञा तोड़नेकी आज्ञा नहीं है, किन्तु प्रतिज्ञाके पालनसे जगत्कल्याणमें बाधा पहुँचतीहो तब प्रतिज्ञा तोड़ना चाहिये। प्रतिज्ञा यदि अन्याय्य या अनुचित न हो तो उसे तोड़ना विश्वासघात है। ऊपरके उदाहरणमें अगर स्त्रीने यह शर्त करालीहो

कि 'जबतक तुम भले आदमी रहोगे, तभीतक मेरा तुम्हारा सम्बन्ध रहेगा और तुम्हारी भलमनसाहत का निर्णयभी मैं ही करूँगी' तो इस बहानेसे वह सम्बन्ध तोड़ सकती है। जिस आदमीने महीनेभर काम कराया है उसे सदाचारका बहाना निकालकर पारिश्रमिक रोकनेका हक़ नहीं है क्योंकि पारिश्रमिक परिश्रमका दिया जाता है न कि आचारका। दूसरी बात यह है कि ऐसे मामलोंमें मात्राका विचार करना चाहिये। जितने अंशकी कमीहो उतनेही अंशमें हमें अपनी प्रतिज्ञाको भंग करना चाहिये।'ककरीके चोर को कटार मारिये नहीं' की कहावत यहाँभी चरितार्थ होती है। दुरुपयोग करनेवाले तो हरएक नियमका दुरुपयोग करते हैं, परन्तु नियमके आशय पर विचार करके निःपक्षतासे उसका पालन किया जाय और कराया जायतो दुरुपयोगकी संभावना नहीं है।

५—शब्दका अर्थ करते समय उसके आशयपर ध्यान देना चाहिये। आशयको ही वास्तविक अर्थ समझना चाहिये। आशयको गौण करके प्रतिज्ञासे बचना या दूसरे पर असत्यताका आरोप करना ठीक नहीं।

यह कार्यभी बहुत कठिन है परन्तु इसके बिना छुटकाराभी नहीं है। सत्य और असत्य कुछ शब्दों का धर्म नहीं, आत्माका धर्म है इसलिये भावोंके ऊपरही अवलम्बित है। व्यवहारमें भी हमें अभिप्रायके अनुसार अर्थनिर्णय करना पड़ता है। शास्त्रकारोंने भी कुछ भेद प्रभेदोंके साथ इस विषय का विवेचन किया है। गोम्मटसार जीवकांडमें दस प्रकारके सत्य वचनोंका उल्लेख किया गया है। जनपद, सम्मति, स्थापना, नाम, रूप, प्रतीत्य, व्यवहार, संभावना, भाव और उपमा।

जनपद—ऐसे अनेक शब्द हैं, जिनका एक भाषामें या एक देशमें एक अर्थ होता है और दूसरे में दूसरा। जैसे दस्तका अर्थ हिन्दीमें 'विष्ठा' और उर्दूमें 'हाथ' है। पादका अर्थ हिन्दीमें अपानवायु[†] और संस्कृतमें 'पैर' है। ऐसे प्रयोग होनेपर अर्थका निर्णय देशके अनुसार करना चाहिये। जिस देशमें हम बोल रहे हों, वहाँपर उसका जो अर्थ होता हो वही मानना चाहिये। अथवा बोलनेवाला जिस भाषामें बोल रहाहो, उसीके अनुसार अर्थ समझना चाहिये। तथा बोलनेवालेकी योग्यता आदिका विचार करकेभी अर्थ करना चाहिये। बोलनेवालेके आशय को बदलकर उसे असत्यवादी ठहराना ठीक नहीं।

जुदी जुदी भाषाओंमें एकही अर्थको कहनेवाले जुदे जुदे शब्द होते हैं। हिन्दीमें जिसे प्याज़ बोलते हैं, मराठीमें उसे काँदा कहते हैं। एकबार दिल्लीके कुछ आदमी महाराष्ट्रमें गये और उनने एक दूकान से भजिये खरीदते हुए दूकानदारसे पूछा कि इसमें प्याज़तो नहींहै? दूकानदार प्याज़का अर्थ न समझ कर बोला 'नहीं जी! इसमें प्याज़ नहीं, काँदा है।' ग्राहकोंने जब भजिये खाये तब बिगड़ कर बोलेकि इसमें तो प्याज़ है, तुमने हमें धर्मभ्रष्ट करदिया। उनका धर्मभ्रष्टतासे कैसे उद्धार हुआ, यहतो नहीं मालूम, परन्तु इसमें संदेह नहीं कि दूकानदार सत्यवादीथा, वह देश-सत्य बोलाथा।

सम्मति—बहुतजन आदर आदि भावसे सहमत होकर जिस शब्दका प्रयोग करें उसके अनुसार बोलना सम्मति सत्य है। जैसे स्त्रियोंको देवी और पुरुषोंको देव कहना। आदर होनेपर ऐसे शब्दोंका§ प्रयोग किया जाता है। जैसे देवोंने महावीर निर्वाण का कल्याणक किया। यहाँ देव शब्दका अर्थ श्रेष्ठ मनुष्य करना चाहिये। मनुष्योंमें देव देवी शब्दका प्रयोग करनेवालेको कोई मिथ्यावादी कहे तो यह ठीक नहीं।

स्थापना—मूर्त्ति आदिमें किसी की स्थापना करके हम मूर्त्तिको भी उसी नामसे कहने लगे। जैसे कुण्डलपुर जाकर मैंने महावीर भगवान्की वन्दनाकी। इस वाक्यमें महावीरका अर्थ महावीर

[†] मरुदादीनामधो नयनादपानः।

§ देव देवैरपिज्ञातं विज्ञाप्यं श्रूयतामिदम्। क्षत्र चूड़ामणि। लोके न मुञ्चंति समयमपि देव देवी॥—चन्द्रप्रभचरित

प्रतिमा है, इस लिये इस प्रकार बोलनेवाला असत्यवादी नहीं कहला सकता। यह स्थापना सत्य है।

नाम—अर्थका अर्थात गुणागुणका विचार न करके व्यक्तिको अलग पहिचाननेके लिये जो संज्ञा रक्खी जाती है उसके अनुसार बोलना नामसत्य है। जैसे यह देवदत्त है, ऐसा कहनेपर कोई कहे कि तुम झूठ क्यों बोलते हो? क्या यह देव-दत्त है? क्या इसे देवने दिया है? यह आरोप व्यर्थ है, क्योंकि यह नाम सत्य है।

रूप-रूपादिगुणकी अपेक्षा किसीका वर्णन करना रूप सत्य है। जैसे अमुक मनुष्य बहुत सुन्दर है। इसपर कोई कहे कि हाड़मांसका ढेर कैसे सुन्दर हो सकता है? तो यह ठीक नहीं, यहाँ सिर्फ रूपका विचार है। इसी प्रकार रस गंधस्पर्श परभी विचार करना चाहिये। रूपतो यहाँ गुणका उपलक्षण है।

अथवा बहुभागकी अपेक्षा कुछ वर्णन किया जाय तो वह भी रूप सत्य है। जैसे अमुक मनुष्य बहुत गौर है। बाल आदि काले होनेपर भी बहुभागकी अपेक्षा गौर कहा गया।

प्रतीत्य—आपेक्षिक कथनको प्रतीत्य सत्य कहते हैं। जैसे यह आम बहुत बड़ा है। यद्यपि सैकड़ों चीजें आमसे बड़ी हैं, परन्तु यहाँ आमकी अपेक्षा से ही उसकी लघुता महत्ताका विचार किया जाता है, न कि समस्त पदार्थोंकी अपेक्षासे।

व्यवहार—सङ्कल्प आदिकी अपेक्षासे व्यवहारके अनुसार बोलना व्यवहार सत्य है। जैसे देहली कौन जारहा है? इसके उत्तरमें कोई कहे कि मैं जा रहा हूँ। यद्यपि वह खड़ा हुआ है, फिरभी व्यवहार में ऐसा बोला जाता है, इसलिये व्यवहार सत्य है।

सम्भावना—असंभव अर्थको छोड़कर उसी भावको लिये हुए सम्भव अर्थको लेना सम्भावना सत्य है। जैसे, युवक अगर संगठित होकर कार्य करें तो मेरुको हिलादें। यहाँ मेरुका हिलाना असंभव है परन्तु इसका अर्थ यह है कि संगठित युवक मनुष्यसाध्य सबकुछ काम कर सकते हैं। महावीर ने तीनों लोकोंको क्षुब्ध कर दिया। तीनों लोकोंको अर्थात् समस्त विश्वको क्षुब्ध करना मनुष्यकी शक्ति के परे है, परन्तु उसका यही अर्थ है कि जिस समाज में महावीर क्रान्ति मचारहे थे, वह समाज महावीर के आन्दोलनसे क्षुब्ध होगया।

भाव—भावके अनुसार किसी वस्तुका वर्णन करना, जैसे मैं कल उसके यहाँ अवश्य जाऊँगा। यहाँपर इसका अर्थ सिर्फ यही है कि मैं जानेका प्रयत्न करूँगा, यह बात मैं सच्चे दिलसे कह रहा हूँ। बाक़ी होना न होना मनुष्यके वशकी बात नहीं है। दो मिनिट बाद क्या होगा, यह कौन कह सकता है? इसीप्रकार यह वस्तु शुद्ध है—यह वाक्य भी भाव-शुद्धि के अनुसार है, अर्थात् मेरी समझसे शुद्ध है। वास्तव में क्या है, यह कौन कह सकता है? इत्यादि।

उपमा—समानता बतलाकर किसी अपरिमित वस्तुका परिमाण बताना। जैसे पल्योपमकाल, सागरोपमकाल। दो हजार कोसके गड्ढेमें कोई छोटे छोटे रोम भरकर सौसौ वर्षमें निकालने नहीं बैठता। परन्तु असंख्य वर्षोंके समझानेका यह तरीक़ा है। असंख्य और अनंतकी संख्याके प्रयोग प्रायः इसी प्रकार किये जाते हैं।

इसप्रकार दस प्रकारसे शब्दोंका सत्य अर्थ निर्णीत किया जाता है। नय प्रकरणमें भी इस विषयमें कुछ कहा जायगा। यह सत्य अपने अपने स्थान पर सत्य हैं। स्थानका ख़याल न किया जाय तो असत्य होजायँगे। इसलिये प्रकरण आदिके अनुसार आशयका विचार करना चाहिये। इन दस भेदोंके समझनेसे आशयके निकालनेमें कुछ सुभीता होजाता है।

शब्दोंकी अर्थसूचन शक्ति सिर्फ इतनेमें ही समाप्त नहीं होजाती। कभीकभी प्रचलित अर्थको छोड़कर बिलकुल जुदाही अर्थ लिया जाता है। और कभी कभी सुननेवालोंके भावोंपर शब्दका अर्थ निश्चित रहता है। इस प्रकार शब्दोंके अर्थ तीन प्रकारके हैं। अभिधा, लक्षणा, व्यञ्जना। जिसमें

अभिधा तो साधारण अर्थ है। लक्षणा और व्यञ्जना में विचार रहता है। जहाँ मुख्य अर्थ सम्भव न हो वहाँ उससे सम्बद्ध दूसरा अर्थ लेना लक्षणा है। जैसे सारा देश शिक्षित होगया। यहाँपर देश शब्दका अर्थ देशवासी है। व्यञ्जनामें प्रकरण आदिके अनुसार इच्छित अर्थ किया जाता है। जैसे 'सन्ध्या होगई' इस वाक्यके अर्थ, सामायिक करना चाहिये, नमाज पढ़ना चाहिये, प्रार्थना करना चाहिये, घूमने चलना चाहिये, भोजन करना चाहिये, घर चलना चाहिये आदि अनेक हैं। जैसा प्रकरण, वैसा अर्थ।

रूपक आदि अलंकारमय भाषामें भी शब्दका अर्थ बदल जाता है इसलिये सत्यासत्यके विचारमें केवल सीधे अभिधेय अर्थकाही विचार नहीं किया जा सकता किन्तु यह देखना चाहिये कि बोलनेवाले का अभिप्राय क्या है? अभिप्रायके ऊपरही सत्यासत्यका निर्णय किया जाना चाहिये।

अभिधेय अर्थका त्याग तभी करना चाहिये जब वह असंगत मालूम होताहो। वैदिकयुगमें अग्नि की पूजाकी जातीथी। इस वाक्यमें अग्निका आलंकारिक अर्थ नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह बात ऐतिहासिक दृष्टिसे संगत है। परन्तु 'मेरे हृदय में आग जलरही है' इस वाक्यमें आगका भौतिक अर्थ असंगत है इसलिये क्रोध शोक दुःख आदि अर्थ किये जाते हैं। इसलिये सत्यासत्यके निर्णयमें विवेक और निःपक्षतासे उसके अभिप्रायको जानने की कोशिश करना चाहिये। साथही अपने शब्दों का अपने अभिप्रायके अनुसारही पालन करना चाहिये। अभिधेय अर्थकी दुहाई देकर अभिप्राय का लोप करनाभी असत्य है।

६—यद्यपि सत्यके लिये अतथ्य भाषण क्षन्तव्य कहा गया है फिरभी अतथ्यमें कुछ न कुछ हानिकारकता है ही; इसलिये जहाँतक बने उसका कम प्रयोग किया जाय और भविष्यमें ऐसा मौक़ा न आवे इसकेलिये प्रायश्चित्तभी करे।

धर्मका फल सुख है और अधर्मका फल दुःख है। अतथ्य-भाषणसे कुछ न कुछ दुःख पैदा होता है इसलिये उसको दूर करनेकी जरूरत है। अतथ्य का फल अविश्वास है। एक डाकूके साम्हने आत्मरक्षाके लियेभी झूठ क्यों न बोला जाय किन्तु इसका फल यह अवश्य होगा कि वह विश्वास करना छोड़ देगा। आज हम झूठ बोलकर भलेही आत्मरक्षा करलें परन्तु जब वह वञ्चित होगातो भविष्यमें कोई झूठ भी बोलेगा तो वह विश्वास न करेगा, इसलिये झूठ बोलकरके भी आत्मरक्षा कठिन हो जायगी। एक रोगीको झूठा आश्वासन दिया जा सकता है परंतु जब रोगीके साथ झूठ बोलनेका नियमसा बन जायगा, तब रोगीका विश्वास उड़जायगा। फिर आश्वासन देनेपर भी वह विश्वास न करेगा, क्योंकि जब वह नीरोगथा तभी जानताथा कि रोगीके साथ लोग झूठ बोलते हैं। इसलिये कभीकभी सच्चे आश्वासन पर भी वह विश्वास न करेगा। इसी प्रकार अन्य अतथ्य भाषणोंके विषयमें भी समझना चाहिये।

प्रश्न—जब अतथ्यभाषण निरर्थक और दुःखप्रद है तब अपवादके रूपमें भी उसका विधान क्यों किया गया?

उत्तर—बिलकुल निरर्थक तो नहीं कहा जासकता, क्योंकि बिलकुल निरर्थक होता तो झूठ बोलनेका कष्ट ही कोई क्यों उठाता? जबतक लोग सत्यभाषण करते हैं तबतक उसकी ओटमें छुपकर असत्य अपना काम करता है। असत्य वचनोंपर अविश्वास करनेवालोंकी अपेक्षा सन्देहमें पड़नेवालों और विश्वास करनेवालोंकी संख्या कई गुणी है। इसलिये निरर्थक तो नहीं कहा जासकता; हाँ दुःखप्रद अवश्य है। परन्तु आपवादिक मिथ्याभाषण, जिसका विधान ऊपर किया गया है, जितना दुःखप्रद है उससेभी अधिक सुखप्रद है। इसलिये उसका विधान किया गया है। धर्मफलका विचार करते समय अधिकतम† सुखका ही विचार किया गया है।

† सुखाधिक दुःख जनकत्वं धर्मसामान्यलक्षणम्।

अभिधा तो साधारण अर्थ है। लक्षणा और व्यञ्जना में विचार रहता है। जहाँ मुख्य अर्थ सम्भव न हो वहाँ उससे सम्बद्ध दूसरा अर्थ लेना लक्षणा है। जैसे सारा देश शिक्षित होगया। यहाँपर देश शब्दका अर्थ देशवासी है। व्यञ्जनामें प्रकरण आदिके अनुसार इच्छित अर्थ किया जाता है। जैसे 'सन्ध्या होगई' इस वाक्यके अर्थ, सामायिक करना चाहिये, नमाज पढ़ना चाहिये, प्रार्थना करना चाहिये, घूमने चलना चाहिये, भोजन करना चाहिये, घर चलना चाहिये आदि अनेक हैं। जैसा प्रकरण, वैसा अर्थ।

रूपक आदि अलंकारमय भाषामें भी शब्दका अर्थ बदल जाता है इसलिये सत्यासत्यके विचारमें केवल सीधे अभिधेय अर्थकाही विचार नहीं किया जा सकता किन्तु यह देखना चाहिये कि बोलनेवाले का अभिप्राय क्या है? अभिप्रायके ऊपरही सत्यासत्यका निर्णय किया जाना चाहिये।

अभिधेय अर्थका त्याग तभी करना चाहिये जब वह असंगत मालूम होताहो। वैदिकयुगमें अग्नि की पूजाकी जातीथी। इस वाक्यमें अग्निका आलंकारिक अर्थ नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह बात ऐतिहासिक दृष्टिसे संगत है। परन्तु 'मेरे हृदय में आग जलरही है' इस वाक्यमें आगका भौतिक अर्थ असंगत है इसलिये क्रोध शोक दुःख आदि अर्थ किये जाते हैं। इसलिये सत्यासत्यके निर्णयमें विवेक और निःपक्षतासे उसके अभिप्रायको जानने की कोशिश करना चाहिये। साथही अपने शब्दों का अपने अभिप्रायके अनुसारही पालन करना चाहिये। अभिधेय अर्थकी दुहाई देकर अभिप्राय का लोप करनाभी असत्य है।

६—यद्यपि सत्यके लिये अतथ्य भाषण क्षन्तव्य कहा गया है फिरभी अतथ्यमें कुछ न कुछ हानिकारकता है ही; इसलिये जहाँतक बने उसका कम प्रयोग किया जाय और भविष्यमें ऐसा मौका न आवे इसकेलिये प्रायश्चित्तभी करे।

धर्मका फल सुख है और अधर्मका फल दुःख है।† अतथ्य-भाषणसे कुछ न कुछ दुःख पैदा होता है इसलिये उसको दूर करनेकी जरूरत है। अतथ्य का फल अविश्वास है। एक डाकूके साम्हने आत्मरक्षाके लियेभी झूठ क्यों न बोला जाय किन्तु इसका फल यह अवश्य होगा कि वह विश्वास करना छोड़ देगा। आज हम झूठ बोलकर भलेही आत्मरक्षा करलें परन्तु जब वह वञ्चित होगातो भविष्यमें कोई झूठ भी बोलेगा तो वह विश्वास न करेगा, इसलिये झूठ बोलकरके भी आत्मरक्षा कठिन हो जायगी। एक रोगीको झूठा आश्वासन दिया जा सकता है,परंतु जब रोगीके साथ झूठ बोलनेका नियमसा बन जायगा, तब रोगीका विश्वास उड़जायगा। फिर आश्वासन देनेपर भी वह विश्वास न करेगा, क्योंकि जब वह नीरोगथा तभी जानताथा कि रोगीके साथ लोग झूठ बोलते हैं। इसलिये कभीकभी सच्चे आश्वासन पर भी वह विश्वास न करेगा। इसी प्रकार अन्य अतथ्य भाषणोंके विषयमें भी समझना चाहिये।

प्रश्न—जब अतथ्यभाषण निरर्थक और दुःखप्रद है तब अपवादके रूपमें भी उसका विधान क्यों किया गया?

उत्तर—बिलकुल निरर्थक तो नहीं कहा जासकता, क्योंकि बिलकुल निरर्थक होता तो झूठ बोलनेका कष्ट ही कोई क्यों उठाता? जबतक लोग सत्यभाषण करते हैं तबतक उसकी ओटमें छुपकर असत्य अपना काम करता है। असत्य बचनोंपर अविश्वास करनेवालोंकी अपेक्षा सन्देहमें पड़नेवालों और विश्वास करनेवालोंकी संख्या कई गुणी है। इसलिये निरर्थक तो नहीं कहा जासकता; हाँ दुःखप्रद अवश्य है। परन्तु आपवादिक मिथ्याभाषण, जिसका विधान ऊपर किया गया है, जितना दुःखप्रद है उससेभी अधिक सुखप्रद है। इसलिये उसका विधान किया गया है। धर्मफलका विचार करते समय अधिकतम सुखका ही विचार किया गया है।

† सुखाधिक दुःख जनकत्वं धर्मसामान्यलक्षणम्।

प्रश्न—जब आपवादिक मिथ्या-भाषण कर्तव्य ही है तब प्रायश्चित्तकी क्या जरूरत ?

उत्तर—इसके लिये अन्य किसी प्रायश्चित्तकी जरूरत नहीं है, सिर्फ आलोचनाकी जरूरत है। यह भी एक प्रायश्चित्त है। अर्थात् मैं अमुक कारणसे असत्य बोला, इस प्रकार प्रगट करनेकी जरूरत है। इसका फल यह होगा कि लोग मिथ्यावादी न समझेंगे। मैं दूसरेके हितके लिये झूठ बोला या अपने लिये झूठ बोला, लोग इसपर विचार न करके अपने को मिथ्यावादी समझने लगते हैं। इससे ऐसी जगह भी वे अपना विश्वास न करेंगे, जहाँ आपवादिक मिथ्याका प्रकरण नहीं है। इस अविश्वासको दूर करने के लिये प्रायश्चित्त—आलोचना—असत्यताकी स्वीकारताकी आवश्यता है। इससे आपवादिक मिथ्या-भाषणभी जहाँतक होगा कम बोला जायगा। अपवादों का उपयोग आपद्धर्म समझकर करना चाहिये।

प्रश्न—आलोचना करदेने पर अतथ्यभाषणकी उपयोगिताही नष्ट होजायगी। महात्मा महावीर अगर मेघकुमारसे कहदेते कि 'मुझे तुम्हारे पूर्वभवों का स्मरणतो नहीं आयाथा परन्तु उस समय तुम्हें समझानेके लिये मैंने पूर्वभवकी बात कहीथी' तो मेघकुमारके ऊपर जो प्रभाव पड़ाथा, वहभी नष्ट हो जाता और इस तरह वह असंयमकी तरफ फिर झुक जाता; इतनाही नहीं किन्तु दूसरे लोगों परभी इसका बुरा प्रभाव पड़ता।

उत्तर—जहाँ आलोचना करनेसे आपवादिक असत्य-भाषणका उद्देश—परकल्याण आदि—मारा जाय वहाँ उन लोगोंके साम्हने आलोचना न करना चाहिये। अगर कोईभी आदमी ऐसा न हो जिसपर रहस्य प्रगट किया जाय तो मानसिक आलोचना ही करना चाहिये।

प्रायश्चित्तका यह सारा विधान इसीलिये है जिससे कोई अपवादोंका अधिक उपयोग न करे, तथा लोगों पर उसका बुरा प्रभाव न पड़े, वे अविश्वासी न हो जावें। इसलिये मूल उद्देश्यकी रक्षा करते हुए जितनी बन सके—उतनी आलोचना करना चाहिये।

प्रश्न—अहिंसाव्रतमें भी आपने बहुतसे अपवाद बतायेथे किन्तु वहाँपर प्रायश्चित्तका आपने जिकर नहीं किया। इसका क्या कारण है ?

उत्तर—यह पहिलेही कहा जा चुका है कि हिंसा जीवनके लिये जितनी अनिवार्य है, उतना असत्य नहीं। इसलिये अहिंसाके लिये जितनी ढीलदी जा सकती है उतनी सत्यके लिये नहीं। इसके अतिरिक्त आपवादिक हिंसाके प्रायश्चित्तकी उपयोगिता प्रायः कुछ नहीं है जबकि आपवादिक असत्यका प्रायश्चित्त अविश्वासको दूर करके सत्यके उद्देश्यमें सहायक होता है। इसलिये यहाँपर प्रायश्चित्तका उल्लेख किया गया है।

७—सत्य वचनभी अगर दूसरेको दुःखी करनेके लिये बोला जाय अथवा शब्दोंकी पकड़में न आने पर भी दूसरेको धोखा देनेके लिये आड़ी टेढ़ी शब्द रचना की जाय तो वह असत्य ही कहलायगा।

अंधेका तिरस्कार करनेके लिये उसे अन्धा कहना, मूर्खको मूर्ख कहनाभी असत्य है। गाली देना आदि भी इसी असत्यमें शामिल हैं, क्योंकि इससे दूसरे को अनुचित पीड़ा पहुँचती है। यह हिंसात्मक होने से असत्य है। हाँ, कभी कभी ऐसे वचन विरोधी हिंसामें भी शामिल होते हैं। जैसे कोई आदमी अपना अनुचित तिरस्कार करताहो, उससे बचनेका सबसे अच्छा उपाय यहीहो कि उसकाभी कटु शब्दों से सत्कार किया जाय तो यह विरोधी हिंसाके समान क्षन्तव्य होगा। हाँ, इसमें मर्यादाका और आवश्यकताका विचार तो करनाही पड़ेगा।

अपना कोई शिष्य या पुत्रादि आलसीहो, उसको उद्योगी बनानेके लिये कभी कुछ कठोर बोलना पड़े तो यह असत्य न समझना चाहिये; परन्तु शर्त यह है कि ऐसे समय कषायका आवेश न हो, सिर्फ दूसरे के सुधारकी भावनाहो। साथही मर्यादाका उल्लंघन न किया जाय, आवश्यकतासे अधिक प्रयोग न किया जाय। प्रतिक्रिया—उल्टा असर—न होने लगे, इसकाभी

विचार किया जाय। मतलब यह कि दूसरेको दुःखी करनेका भाव ज़रा भी न होना चाहिये। फिरभी इसमें छट्ठे नियमके उपयोगकी ज़रूरत है।

छल कपटसे आड़ी टेढ़ी रचनाभी असत्य है। जैसे महाभारतके समय युधिष्ठिरने 'अश्वत्थामा हतः नरो वा कुंजरो वा' अर्थात् अश्वत्थामा मारा गया परन्तु कह नहीं सकते कि वह मनुष्यथा या हाथी– कहकर द्रोणाचार्यको धोखा दिया था। युधिष्ठिरने अपने बचावके लिये 'नरो वा कुंजरो वा' कहदिया था परन्तु वह जानबूझकर इतने धीरेसे कहाथा कि जिससे द्रोणाचार्य धोखा खाजाँय। हुआभी यही। परन्तु इससे युधिष्ठिरका रथ ज़मीन पर चलने लगा जोकि चार अंगुल ऊँचा चलताथा। युधिष्ठिरका रथ चार अंगुल ऊँचा चलताथा, इसपर विश्वास करनेका काम अगर भोले भक्तोंपर छोड़ दिया जाय तोभी इसमें संदेह नहीं कि सत्यवादितामें युधिष्ठिरका स्थान पृथ्वीतासे अर्थात् पृथ्वीपर रहनेवाले प्राणियोंसे अर्थात् साधारण समाजसे चार अंगुल ऊँचा था। परन्तु द्रोणाचार्यकी वञ्चना करनेके बाद वे पृथ्वीपर आ गये अर्थात् साधारण लोगोंकी तरह हो गये।

यहतो हुई बोलनेकी बात। ऐसीही लिखनेकी कुटिलता होती है। असली बातको खराब अक्षरोंमें लिख जाना, ऐसी जगह लिख जाना जहाँ पाठकका ध्यानही न पहुँचे, अथवा आगे पीछे ऐसी बातें लिख देना जिससे उसका ध्यान दूसरी तरफ़ चला जाय और मौक़े पर साफ़ निकल जावे आदि भी असत्य की कक्षामें हैं, क्योंकि इन सब क्रियाओंमें वञ्चनाके परिणाम होते हैं तथा इसका फल भी वञ्चना है।

सत्यासत्यके निर्णयके लिये ये थोड़ेसे नियम हैं। सच्चा संयम होनेपर इनका पालन अपने आप होने लगता है और असंयमी जीव इन नियमोंके पंजेसे बचकर भी सम्भवतः झूठ बोल सके। हाँ, निःपक्ष होकर इन नियमोंकी कसौटी पर कसकर अपने व्यवहारकी जाँच की जाय तो अवश्यही हम सत्यके बहुत समीप पहुँचेंगे।

यद्यपि हम कितनीभी कोशिश करें, हमारे अज्ञानसे हम दूसरोंको कष्ट देते रहते हैं। इसलिये अहिंसाकी दृष्टिसे भी पूर्ण सत्यका पालन नहीं हो सकता। इसलिये हम अपना प्रयत्नही कर सकते हैं। जो इस प्रयत्नमें पूर्ण तत्पर है, वही पूर्ण सत्यवादी है।
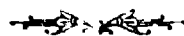
विरोधी मित्रोंसे।

(१९)

आक्षेप (५८)–आपभीतो अपनेको भगवान् महावीरके भक्त मानते हैं। फिर आप जो लिख रहे हैं वह भक्तिकल्प्य क्यों न होगा?

समाधान–सच्चे भक्तके द्वारा कभी भक्तिकल्प्य घटनाएँ नहीं लिखी जातीं; वे लिखी जाती हैं अन्धभक्तके द्वारा। जो आदमी सभी भक्तिकल्प्य घटनाओंका बड़ी निर्भयतासे आपरेशन कर रहा है वह स्वयं भक्तिकल्प्य घटनाओंको लिखनेकी कोशिश क्यों करेगा? अगर मेरे द्वारा कोई भक्तिकल्प्य घटना लिखी जाय, असत्यरूपी मवाद कहीं मिलेतो तीक्ष्ण से तीक्ष्ण नश्तर लगाकर उसका आपरेशन करनेकी, कठोरसे कठोर वचनोंसे उसका खंडन करनेकी मनुष्य जातिसे प्रार्थना करता हूँ। इसे मैं अपना विरोध नहीं, चिकित्सा समझता हूँ, सौभाग्य समझता हूँ।

इसके बाद आक्षेपकने फिर दिगम्बर श्वेताम्बर शास्त्रोंकी प्राचीनता अप्राचीनता पर लिखा है। परन्तु ३७ वें आक्षेपके उत्तरमें इस विषयमें एक लेखही लिख चुका हूँ, तथा इसके पहिलेभी लिखा है, इसलिये इस चर्चापर यहाँ कुछ नहीं लिखा जाता।

आक्षेप (५९)–श्वेताम्बर सूत्रोंमें आखिर आपको मिला क्या? सिर्फ़ यहीकि भगवान्के बड़े भाई नन्दिवर्धनथे और भगवान् ८२ दिनतक देवानंदाके गर्भमें रहेथे। पहिली बात असिद्ध है और महत्त्व की नहीं है। दूसरी बेढंगी और मनगढ़ंत है जिसकी

पुष्टिमें आपनेभी बहुत कुछ गुन्ताड़ा लगाया लेकिन एकभी कामयाब नहीं हुआ और अन्तमें यही लिखना पड़ाकि यह कल्पना असंभव है। दिगम्बर ग्रन्थोंमें असंभव कुछ नहीं है, इसलिये यदि वह संक्षिप्त है तो क्या बुराई है ? दिगम्बरोंने यदि सार सार लेलियातो क्या बुरा किया ?

समाधान—श्वेताम्बर शास्त्रमें महावीर जीवन सम्बन्धी दो बातेंही नहीं मिली हैं, किन्तु कई दर्जन मिली हैं। महावीर बारह वर्षतक कहाँ कहाँ घूमे, कहाँ कहाँ उनके चौमासे हुए, कौन मुख्य श्रावक किस घटनासे इनकी तरफ आकर्षित हुआ, कौन कौनने किसकिस तरह विरोध किया, इनकी शंका समाधानकी शैली, गोशाल और जमालिका विद्रोह, आदि दर्जनों बातोंका इतना स्वाभाविक वर्णन है जिसका होना एक सुधारकके जीवनमें आवश्यक है। मानो तीर्थंकर ढालनेकी कोई मशीनहो और उसमें एक सरीखी तीर्थंकररूपी पुतलियाँ ढाली जातीहों, इसी तरहका जीवन दिगम्बर साहित्यमें महावीरका भी बना दिया गया है। दिगम्बरोंने अनावश्यक वर्णनको जानबूझ कर छोड़ा हो, सो बातभी नहीं मालूम होती क्योंकि सात्यकि के उपसर्गका वर्णन उननेभी किया है। किस तीर्थंकरको किस वृक्षके नीचे केवलज्ञान पैदा हुआ, ऐसी ऐसी रद्दी बातोंको याद रखनेकी तो दिगम्बरोंको फुरसतथी और वे उन्हें आवश्यक जँचीं किन्तु तीर्थंकर महावीरको ४२ वर्षतक किनकिन कष्टोंका साम्हना करना पड़ा, कितना प्रयत्न करना पड़ा और किस तरह वे इन सब परीक्षाओंमें पास हुए, जिससे वे इतनी बड़ी धर्म-संस्था खड़ी करसके और तीर्थंकर बनसके, इस महत्त्वपूर्ण अनुकरणीय आदरणीय विषयमें दिगम्बर शास्त्र प्रायः कोरे कागजकी तरह विराजमान हैं। यह कहना कि दिगम्बर शास्त्रोंमें असंभव घटनाएँ नहीं हैं अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना है। दिगम्बर शास्त्रभी उतनेही असंभव और बेहूदी घटनाओंसे भरे हुए हैं जितनेकि श्वेताम्बर शास्त्र। ९९ हजार योजन ऊँचे पहाड़पर तीर्थंकरको लेजाना (जबकि तीन चार मील ऊपर जानेपर ही श्वास लेनेके लिये ऑक्सिजनकी थैली बाँधना पड़ती है, ऊपर मनुष्यका जीवित रहनाही मुश्किल है) सोलह सोलह कोस के घड़ोंसे अभिषेक करना, टट्टी और पेशाब जीवन भर न होना, तीस तीस वर्षतक बिना खाये पिये देश विदेशमें लेक्चर देते हुए विहार करना आदि अनेक असंभव बातोंसे दिगम्बर शास्त्रभी भरे पड़े हैं। इसलिये यह अभिमानतो वृथा है। ऐसी निःसार बातें जब भरी पड़ी हैं तब कैसे कहा जासकता है कि दिगम्बरोंने सारसार लेलिया।

नन्दिवर्धनकी घटना महत्त्वपूर्ण नहीं है। साथही वह महावीरका गुणगान करनेवाली भी नहीं है जिससे मैं उसे भक्तिकल्प्य कहूँ। इस घटनाके लिखने का और भी कोई कारण नहीं है, जिससे मैं इसे श्वेताम्बरोंकी कल्पना कहूँ और ऐतिहासिक न मानूँ। इधर दिगम्बरोंने कैवल्य और साधनाके समयकी अनेक अनिवार्य घटनाओंको भी भुला दिया है, तब गृहस्थाश्रम सम्बन्धी घटनाको भुला दिया हो, इसमें आश्चर्य जराभी नहीं। इसप्रकार श्वेताम्बर-पक्षमें नंदिवर्धनकी घटनाके कल्पित होनेका कारण न मिलना और दिगम्बरोंकी तरफ उसके भूलनेके कारण मिलना, नन्दिवर्धनके ऐतिहासिक अस्तित्वके सूचक हैं।

देवानंदावाली घटनाके विषयमें तो आक्षेपकने बिलकुल मिथ्या दोषारोपण किया है। मैंने प्रारम्भ में ही यह कह दिया है कि यह घटना नहीं मानी जासकती। फिरभी मेरे ऊपर यह दोषारोपण किया ही जाता है कि मैंने इसका समर्थन किया है। इस मिथ्यापनका कारण साम्प्रदायिक अभिनिवेशही है। एक आदमी मिथ्याभाषण कर गया है। उसके विषयमें कोई खोज करता है कि यह आदमी झूठ क्यों बोला, झूठ बोलनेका इसका प्रयोजन क्या होगा आदि, तो क्या इस प्रकारकी खोज करनेवालेसे यह कहा जायगा कि वह झूठका समर्थन करता है ?

आक्षेप (५८)—आप कहते हैं—'इस कल्पना

का कोई न कोई बीज होना चाहिये जिसका यह पल्लवित रूप हो'। एक तरफ़ तो आप इस घटनाको असम्भव कहें, फिर उसीका बीज ढूँढ़ें, यह कितनी उल्टी बात है ! क्या असम्भवका भी दुनियाँ में कहीं बीज हो सकता है ?

समाधान—कुछका कुछ समझनेमें और भिन्न भिन्न बातोंके भेद न समझनेमें आक्षेपक बहुत होशियार मालूम होते हैं। मैंने देवानन्दाकी घटनाको असम्भव कहा है नकि कल्पनाको। और कल्पना का बीज ढूँढ़नेकी कोशिश की है न कि घटना की। दोनोंको एक समझना बड़ी भारी भूल है। जैसे मिथ्या ज्ञानका विषय असत् है, स्वयं मिथ्याज्ञान असत् नहीं है, उसीतरह यह घटना असत् है, घटना की कल्पना नहीं। एक बालक आकर मुझसे यह कहे कि मैंने गधेका सींग देखा है, तब मैं गधेके सींग को न मानते हुए भी यह खोज करनेकी कोशिश अवश्य करूँगा कि इस बालकको गधेके सींगकी कल्पना क्यों हुई ? क्या किसीने गधेके सिरपर नकली सींग लगाकर इसे दिखाया था या किसीने किसी दूसरे जानवरको गधा कहकर इसे धोखा दिया है ? इस प्रकार बालककी कल्पनाके बीजको ढूँढ़ना गधेके सींगको मान लेना नहीं है।

अगर इस घटनासे महावीरका कुछ महत्त्व बढ़ता होता तो इस असम्भव घटनाको मैं भक्तिकल्प्य कहकर छुट्टी पाजाता, जैसे कि इन्द्रादि देवोंका आना, मेरुपर अभिषेक आदिके विषयमें पाई है। परन्तु इससे ऐसा कुछ महत्त्व तो मालूम नहीं होता तब मुझे इस बेहूदी घटनाका कोई दूसरा बीज ढूँढ़ना पड़ा।

सांप्रदायिकताका दिग्दर्शन।

(क्रमागत)

(ले०—श्री० पं० सुखलालजी।)

[अनु०—श्रीमान् जगदीशचंद्रजी जैन ऐम. ए.]

जिसप्रकार लोग चांडालकी ओर नहीं देखते हैं उसी प्रकार अवैष्णव ब्राह्मणकी तरफ़ नहीं देखना चाहिये। वैष्णव यदि वर्णबाह्यभी है तोभी उससे संसार पवित्र होता है (अ. २४५ श्लोक १४ तथा अ. २५२ श्लोक ५२)

जिस ब्राह्मणके पास चक्रकी छाप नहीं है उसका साथ दूरसे ही छोड़ना चाहिये (अ. २५२ श्लो. ५१)

दिलीप—आपने जो जीव और परका स्वरूप बताया तथा स्वर्ग और मोक्षका स्वरूप और उनके साधन कहे वे सब मैं समझगया हूँ। परन्तु हे गुरो ! मेरे मनमें एक शंका यह है कि ब्रह्मा और रुद्रके महाभागवत होने परभी उन्होंने ऐसा गर्हित रूप क्यों धारण किया ?

वसिष्ठ—राजन् ! तुम्हारी शंकाका निराकरण इस प्रकार है। मंदर पर्वतके ऊपर स्वायंभुव मनुके दीर्घ सत्रके प्रसंग पर शास्त्रपंडित अनेक ऋषि लोग एकत्रित हुए। उससमय देवतत्त्वके स्वरूपके संबंधमें चर्चा करते हुए उन ऋषियोंने यह प्रश्न पूछा कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन तीनोंमें कौन अव्यय, परमात्मा और सनातन है ? इनमें बहुतसे ऋषियोंने रुद्रको महान्से महान् देव बताया। बहुतसोंने ब्रह्माको ही पूज्य कहा। किसीने सूर्यको पूज्य और किसीने श्रीपतिको सनातन बताया।

इसप्रकार इन ऋषियोंमें बड़ा विवाद हुआ और अंत में निर्णय करनेके लिये भृगुऋषिको कहागया कि हे मुनिसत्तम ! तुम इन तीनों देवोंके पास जाओ और इन लोगोंको निश्चय करके कहो कि इन देवोंमें कौनसा देव उत्तम है।

इसके बाद भृगुऋषि सबसे पहले कैलाश पर रहने वाले महादेवजीके घर गये। वहाँ पर द्वारपालका काम करने वाले महारौद्र नंदिसे भृगुऋषिने कहा कि तू घरमें जाकर महादेव (शंकर) को खबर दे कि भृगुऋषि आपसे मिलने आये हैं।

नंदिने भृगुऋषिको कहा कि अभी शंकर देवीके साथ क्रीडा करते हैं इसलिये तू उनसे नहीं मिलसकता। तुझे यदि जीवित रहना है तो यहाँसे तू पिछले पाँवों लौट जा।

इसप्रकार नंदिके मना करने परभी यह तपस्वी ऋषि शंकरके दरवाज़े पर बहुत दिनों तक बैठा रहा। परन्तु शंकर तो बाहर आयेही नहीं। अतमें शंकरको नारीसंगममग्न जान कर भृगुने शाप दिया कि शंकरका स्वरूप योनि लिंगके समान हो। इसलिये शंकरने अब्रह्मण्यको प्राप्त किया है और ब्राह्मणों द्वारा अपूज्य है। जो लोग रुद्रके भक्त होंगे वे भस्म, लिंग, और हड्डियोंके धारण करने वाले होंगे और वेदसे बाह्य पाखंडी गिने जावेंगे।

वहाँसे चलकर भृगु ब्रह्माके पास गया। उस समय ब्रह्मा देवोंके साथ बैठे थे। ब्रह्माको प्रणाम करके भृगु बैठ गया। भृगुके ब्रह्माको प्रणाम करनेपर उत्तरमें ब्रह्माने भृगु को प्रणाम तो किया ही नहीं परन्तु उसकी कुशल प्रश्नभी नहीं पूछी। इसकारण भृगुने ब्रह्माको शाप दिया कि भृगु का अपमान करने वाला राजसप्रकृति वाला ब्रह्मा सब लोकमें अपूज्य हो।

तत्पश्चात् अन्तमें भृगु विष्णुलोकमें गया। वहाँ कमला-पति नागशय्या पर शयन करते थे और लक्ष्मीजी इनके चरण दबारही थी। यह देखकर भृगुको क्रोध आगया और उसने अपना बाँयाँ पैर विष्णुकी छातीपर रक्खा। बादमें भगवान् फौरन ही उठे, अपने हाथोंसे भृगुके चरणोंको स्पर्श किया और बोले कि आजही मैं धन्य हुआ हूँ कि मुझे आपके चरणका स्पर्श हुआ। तत्पश्चात् विष्णुने स-पत्नीक भृगुकी पूजा करी।

इसप्रकार तीनों देवोंको मिलकर भृगुने उन ऋषियों को कहा कि तीनों देवोंमें यदि कोई उत्तम है तो वह एक विष्णुही है।

जो कोई विष्णुके सिवाय किसी दूसरे देवकी पूजा करेगा वह पाखंडी समझा जावेगा तथा लोक निन्दाका पात्र होगा (आनन्दाश्रम अ. २८२ भा. ४ श्लोक १–५६)

ब्राह्मणोंको विष्णुके सिवाय दूसरे देवोंके सामने न देखना चाहिये, दूसरे देवोंकी पूजा न करनी चाहिये दूसरे देवोंका प्रसाद न लेना चाहिये, और दूसरे देवके मंदिरमें भी जाना चाहिये। (श्लोक ६३ अ. २८२)

'पाखंड किसे कहते हैं' इस संबंधमें शिव और पार्वतीका संवादः—

पार्वती—महेश! आपने कहा कि पाखंडोंका साथ नहीं करना चाहिये सो वे पाखंड क्या हैं? इनको जाननेकी क्या क्या निशानी है आदि सब बातें बताइये।

रुद्र—जो लोग जगन्नाथ नारायणके सिवाय दूसरे देवोंको मानते हैं वे पाखंडी हैं। वे लोग कपाल, भस्म, और अस्थिके धारण करने वाले और अवैदिक रीतिसे रहने वाले हैं।

शंख, चक्र आदि जो हरिको अधिकसे अधिक प्रिय हैं उन्हें जो लोग धारण नहीं करते हैं, वे पाखंडी हैं। अधिक क्या, जो कोई ब्रह्मा और रुद्रके साथ विष्णुकी तुलना करते हैं वेपाखंडी हैं। जो ब्राह्मण होने परभी अवैष्णव हैं, वे अस्पृश्य हैं, उनसे संभाषण नहीं करना चाहिये, और वे देखने योग्यभी नहीं हैं।

पार्वती—महेश! आपने जो कहा वह मैं समझी। परन्तु आपसे एक बहुत गुप्त बात पूछती हूँ। वह यह है कि आपने कहा कि पाखंडी लोग कपाल, भस्म, और अस्थि धारण करने वाले होते हैं, तो हे महाराज! आप स्वयं इन वस्तुओंको किस लिये धारण करते हैं?

महेश—उमे! तू मेरी अर्धांगना है, इसीलिये तुझे इस गुप्त बातका भी खुलासा करदेता हूँ। परन्तु तू इस बातको कहींभी कहना मत। सुव्रते! सुन। पहले समयमें बड़े बड़े वैष्णवभक्त नमुचि वगैरह महादैत्योंने इन्द्रवगैरह देवोंको हराया। इन सब देवोंने दैत्योंसे त्रास पाकर विष्णुकी शरण लेकर विष्णुसे दैत्योंको हरानेकी प्रार्थनाकी। विष्णुने इसकामको मुझे सौंपा और कहा कि "हे रुद्र, ये दैत्य अवध्य हैं, परन्तु यदि किसी प्रकार ये लोग अपना धर्म छोड़ दें तभी इनका नाश होसकता है। रुद्र! पाखंड धर्मका आचरण करके, मोहकशास्त्र और तामस पुराणोंकी रचना कराके तुम इस कामको कर सकते हो। कणाद, गौतम, शक्ति, उपमन्यु, जैमिनि, कपिल, दुर्वासस, मृकंडु, बृहस्पति और जमदग्नि भार्गव ये दस ऋषि मेरे भक्त हैं। उन सबमें तुम अपनी तामस शक्तिका आविर्भाव करो, जिससे वे लोग तामस शास्त्रोंकी रचना करें और तुमभी कपाल, भस्म और चर्म वगैरह चिन्होंको धारण करो और पाशुपत धर्मका प्रचार करो, जिससे कि इन शास्त्रोंको और तुम्हें देखकर ये लोग तुम्हारे जैसे आचरण करें और पाखंडी बनें।" हे देवी! इस प्रकार विष्णुके आग्रहसे मैंने अपना पाखंड वेष बनाया है तथा गौतम, कणाद आदि ऋषियों द्वारा तामस शास्त्रोंकी रचना कराई है।

पार्वती—आपने जिन तामस शास्त्रोंकी रचना कराई है वे कौन कौनसे हैं?

रुद्र—जिसके स्मरण मात्रसे ज्ञानियोंका भी अधः पात होसकता है उन तामस शास्त्रोंका नाम निम्न प्रकार है। पाशुपत वगैरह शैव शास्त्र, कणाद रचित वैशेषिक शास्त्र, गौतम रचित न्याय शास्त्र, कपिलका सांख्य शास्त्र, बृहस्पति रचित चार्वाक शास्त्र, बुद्ध प्रणीत बौद्ध शास्त्र, नग्नमत, नीलपटमत, मायावाद, तथा जैमिनीय शास्त्र। हे गिरिजे! ये सब तामस शास्त्र हैं। तामस पुराणभी हैं उनके नाम नीचे प्रकार हैं:—

मत्स्यपुराण, कूर्मपुराण, लिंगपुराण, शिवपुराण, स्कंदपुराण और अग्नि पुराण—ये छह तामस पुराण हैं। नारदीय पुराण, भागवत, गरुड़पुराण, पद्मपुराण, वराह पुराण ये छह सात्विक पुराण हैं। ब्रह्मांड ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्यत् पुराण, वामन तथा ब्राह्मण पुराण ये छह राजस पुराण हैं। इसी प्रकार स्मृतियाँभी तीन प्रकारकी हैं। वसिष्ठस्मृति, हारितस्मृति, व्यासस्मृति, पराशरस्मृति, भारद्वाजस्मृति, और काश्यप स्मृति, ये छह सात्विक स्मृतियाँ हैं। याज्ञवल्क्य, आत्रेय, तैत्तिर, दाक्ष, कात्यायन और वैष्णव ये छह राजस स्मृतियाँ हैं। गौतम, बृहस्पति संवर्त, यम, शंख, और उशनस ये छह तामस स्मृतियाँ हैं (आनंदाश्रम अ० २६३ भा० ४ श्लोक १—९१)
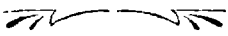
ब्रह्मचर्याणुव्रतमें विकट उलझन।

(ले०—श्री० पं० लोकमणिजी जैन, गोटेगाँव)

जैनधर्म आत्माका उत्कर्ष चाहनेवाला है तथा वैज्ञानिक है। वैज्ञानिकधर्म कभी विकृत नहीं होता। आत्मगुण विकाश करनेमें वह पूर्णरूपेण सहायक होता है। यों तो समस्त प्राणियोंको इससे लाभ पहुँच सकता है पर जैसे जैसे प्राणीका ज्ञान विकसित होता जाता है, वैसे वैसेही जैनधर्मसे उसे सुख प्राप्त होता जाता है। जो जितना ज्ञानी और सदाचारी होगा उसे उतनाही प्रिय जैनधर्म मालूम पड़ेगा। जैनधर्म प्राणीको प्रकृतिकी ओर बढ़ाता है स्वावलम्बी और सदाचारी बनाता है। जैनधर्म प्राणीको पूर्णरूपेण स्वावलम्बी देखना चाहता है। वह कभी नीची श्रेणीमें रहनेके लिये आदेश नहीं देता। जैनगुरु किसीकोभी श्रावक रहनेके लिये उपदेश नहीं देता। वह मुनि बननेके लियेही उपदेश करता है। मनुष्यका आदर्श ऊँचा रहनेसे ऊँचे बढ़नेकी ही मनुष्य कोशिश करता है और शनैः शनैः उसे प्राप्तकर लेता है। जैनधर्म पापोंका सर्वथा त्याग करनेका ही आदेश देता है। सर्वथा पापोंका त्याग न कर सकनेमें श्रावक अवस्थामें अणुव्रत धारण करनेकी सलाह देता है। पर अणुव्रत जीवन यापन करनेके लिये नहीं धारण किये जाते किन्तु महाव्रतोंकी ओर जानेके लिये मार्ग रूपमें ग्राह्य कहे हैं रास्ता। लक्ष्य-स्थान नहीं है; लक्ष्यस्थान पर पहुँचाने में सहायक है।

व्रत शब्दका अर्थ पाप विरति है अर्थात् हिंसादि पापोंसे दूर रहना व्रत है। हिंसादि पापोंसे डरते रहना, उनको बुरा समझकर उनको अपनानेकी कोशिश नहीं करना, व्रत है। पंच पापोंका सर्वथा त्याग महाव्रत और थोड़ा त्याग अणुव्रत है। व्रतकी ओर वही मनुष्य बढ़ता है जिसे पापोंसे घृणा होगई है, जो व्रतको बन्धन न समझ अपना स्वभाव समझ लेता है। जैसे वही मनुष्य अचौर्याणुव्रतकी ओर अग्रसर होता है जिसे दूसरे के तथा बुरे तरीकोंसे कमाये हुए द्रव्यसे विरक्ति पैदा होजाती है, न्यायोपात्त धनमें जिसे परमानन्द और अन्यायोपार्जित द्रव्यसे जिसे असह्य दुःख प्रतीत होने लगता है। यदि दो पैसा कमानेवाला आदमी चार पैसा दान देनेकी इच्छा करेतो दो पैसा चुरानेकी तरह दोषका भागी होसकता है। दो पैसा कमानेवालेको अपनी इच्छा इतनी परिमित बनाना पड़ेगी जिससे दो पैसासे अधिक खर्च करनेकी भावनाही न पैदा होसके। यदि त्यागमें आनन्दका अनुभव न हो तो वह त्याग नहीं कहला सकता। उपवासमें भूख और प्यासकी वेदनाका प्राबल्य हो और उपवासजन्य आनन्द न हो तो वह उपवास नहीं; अन्न जलसे उस दिन विरक्ति नहीं हुई उनके अभावकी शल्य लगी हुई है तो अन्नजल ग्रहण न करनेपर भी उपवास न कहा जायगा।

इसी तरह ब्रह्मचर्याणुव्रती भी यदि वीर्यकी होरे से बढ़कर क़दर न करे, कामेच्छाको बिलकुल संकुचित न करे, तथा कामेच्छाको नाश करनेके प्रयत्न न करे तो वह किसीभी व्रतकी सीमामें नहीं आ सकता। ब्रह्मचर्याणुव्रती परस्त्री-रमणकी आकांक्षा करना तो दूर रहा, सन्तानोत्पत्तिकी कामनाके सिवाय स्वस्त्रीमें रमण करनेकी इच्छा करे तो व्रतभंग करता है। उसे मैथुनसे विरक्ति कहाँ हुई ? मैथुन आनन्द

मनानेके लिये नहीं, किन्तु दुःखदायक अनुभव होने लगे, दवाके समान उसमें विरक्ति हो तब अणुव्रतोंमें गर्भित हो सकता है। हिंसादि कर्म करना तो इसलिये भी प्रतिदिन अणुव्रतीको अनिवार्य होजाते हैं कि जीवनको उत्तम बनाये रखनेके लिये उनको करना पड़ता है; जीवन नाश न हो, शरीर स्वस्थ बना रहे, बाल, बच्चोंका उदर पोषण होता जावे, इसलियेभी उसे हिंसा, चोरी, झूठ और परिग्रहका कार्य रोज़ करना पड़ता है। यदि घरमें काफी धन हो, शरीर टंच हो तो क्यों मनुष्य (अणुव्रती) हिंसादि पापोंके बिना रहा जाता है; उसी तरह यदि ब्रह्मचर्याणुव्रती भी घरमें सन्तानका अभाव न हो तो मैथुनसे विरक्त रहकर बाक़ी सब कामकाज गृहस्थीके करता रहे तब वह ब्रह्मचर्याणुव्रती कहला सकता है। मैथुन कर्मको बुरा समझने वाला, बाल-बच्चोंको भी मैथुन कर्म करानेमें सहयोग नहीं देता, वह उस कर्मसे बचने के लिये उन्हें आदेश देता है, पर देशकालकी परिस्थिति अनुकूल न होनेसे उसे बच्चोंको इस पापमें फँसनेके लिये अपने हाथसे फंदा डालना पड़ता है। पर उससे डरता अवश्य है, लोकापवादके कारण उसे ऐसा करना पड़ता है और तभीतक वह ब्रह्मचर्याणुव्रती है। इस व्रतके अतीचार यदि खींचतान कर बनाये जावें तो दो बन सकते हैं। एक, दूसरेका विवाह करना, दूसरा सन्तानोत्पत्तिके अतिरिक्त स्वस्त्रीसे विषय करना। तीसरेकी सम्भावनाही नहीं। पर जब इस व्रतको मुलायम करनेकी किसी किसी के मनमें धुन सवार हुईतो इसका एक उपनाम गढ़ डाला; इसका दूसरा नाम परदारनिवृत्ति (परस्त्रीका त्याग) रख दिया। बस, जहाँ इसका नाम दूसरा रक्खा गया वहाँ फंदा कुछ ढीला पड़ा और व्रतीको बाहर निकलनेके कई मार्ग दिखने लगे। जहाँ उसे स्वपत्नीसे भी रमणमें व्रतभंग नज़र आताथा, वह उसमेंभी पापका अनुभव करता था, वहाँ अब घोरसे घोर व्यभिचार में व्रतभंगकी शंकाका भय दूर होगया। इस उपनाम ने स्व और परके पैने हथियारसे ब्रह्मचर्यका दिन दहाड़े खून करडाला, उसके गलेपर तीक्ष्ण प्रहार कर दिया, ब्रह्मचर्यके भवनमें व्यभिचारको निमंत्रित कर बिठला दिया। स्वदारसंतोषीको अपनी स्त्रीके सिवाय किसीभी स्त्रीकी वांछा ही क्यों हो सकती थी? क्योंकि वहतो अपनीके स्त्रीके सहवासको ही दुःखदायक समझताथा, पर अब परदारनिवृत्ति उपनामसे इसका त्याग इस रूपमें हुआ कि मुझे परस्त्रीरमणका त्याग है। नामतो रखदिया पर जब देखाकि अपनी स्त्रीको छोड़कर बाक़ी स्त्रियाँ परस्त्री नहीं कहला सकतीं तब न्यायशास्त्रकी शरण ली और उससे दो तीन किस्मकी स्त्रियोंसे रमण कर लेनेकी अनुमति माँगी और यहभी उससे स्वीकार करा लिया कि इस बदमाशीको तुम अनाचार या व्यभिचार न कहदेना, इसको तुम अतीचार कहकर हमें ब्रह्मचर्याणुव्रतीकी लिस्टसे बाहर न करदेना। न्यायशास्त्रकी मरम्मत की गई; तब वेश्यारमण, परस्त्रीरमणमें गर्भित न होसका, कारण कि वेश्याने किसी एकको पति रूपमें नहीं ग्रहण किया है (आजकल व्यर्थही वेश्याका रमणतो दूर रहा, नाच और गाना सुननाभी महापाप कहा जाता है!!!) न्यायकी बुद्धि वेश्याओंसे भी आगे बढ़ी और उसने कन्याओं को भी परस्त्रीत्यागीके सामने उपस्थित किया, कहा—सरकार देखिये, कैसा ताजा माल आपके सामने हाज़िर है; ये भी परस्त्री नहीं हैं। इन्हें अभी किसीने भी पत्नीरूपसे ग्रहण नहीं किया है। इनका रमणभी आपके व्रतको नाश नहीं कर सकता। बस, क्या था, जीभसे लार टपकने लगी। कहा—धन्य है न्यायशास्त्र जी आपको तथा आपके जनक आचार्य महाराजोंको जिनकी कृपासे मुझे ऐसी निधि मिल रही है तबभी मेरा व्रत खंडित नहीं होता; अतीचार लगता है सो वह तो लगताही रहता है, व्रत खण्डित नहीं होना चाहिए। न्यायशास्त्रने न जाने अनंगक्रीड़ाको क्यों अतीचार कहदिया? (हस्थमैथुनादि) अनंगक्रीड़ामें तो स्व और पर दोनों दोषोंका अभाव है, फिरभी निरुपयोगी शुक्रपातका दोष होनेसे शायद अतीचार हो सकता हो!

अस्तु, यह व्रत स्त्री और पुरुष दोनों समान रूप से धारण कर सकते हैं, ऐसी जिनाज्ञा है। तब स्त्रीके लिये इस व्रतका नाम स्वपतिसन्तोषी होगा। स्वपति सन्तोषव्रतमें दो अतीचारोंकी ही संभावना है-पर विवाहकरण और स्वपतिसे अनावश्यक रतिकर्म। तीसरेकी सम्भावनाही नहीं है, कारण कि यह व्रत पूर्ण विचारके साथ लिया जाता है, विषय-वासनाकी कमी होने परही, उससे घृणा होनेसे ही मनुष्य व्रती होनेकी कामना करता है। पर इस व्रतका जब दूसरा नाम 'परपति त्याग' (परस्त्रीत्यागकी तरह) होगा तो पुरुषकी तरह पाँचों अतीचारोंकी घुड़दौड़ शुरू हो जावेगी। उसके अतीचार फिर ये होंगे—

१ परविवाह करण, २ भाँड रमण (भाँड वे हैं जिनका पेशा रण्डियोंकी तरह नाचने गाने और कुकर्म करानेका है, जिन्होंने किसी एकको पत्नीरूपमें ग्रहण नहीं किया है) ३ कुँआरेके साथ रतिकर्म (क्योंकि वे भी किसी स्त्रीके पति नहीं हैं—इसलिये परपति नहीं कहला सकते) ४ अनंगक्रीड़ा, ५ स्वपतिसे अनावश्यक रमण।

उपरोक्त पाँच अतीचार पुरुषोंमें अतीचार रहें पर क्या आप स्त्रियोंमें अतीचार रूपमें इन्हें सहनेको तैयार हैं? फिर ये दोषतो व्रतीके लिये दोष हैं, साधारण जनताके लिये तो ये मामूली दोष समझना चाहिये जैसाकि हरएक व्रती और अव्रतीमें, और पापोंका सद्भाव गिना जाता है।

पाठकगण, व्रती स्त्री पुरुषोंके लिये ये अतीचार व्रतभंग न कर सकें, यहतो आचार्य महाराजोंकी परम उदारता समझना चाहिए, पर अव्रती स्त्री, पुरुष आजकल इन अतीचारोंके प्रभावसे जाति और धर्म तक खो बैठते हैं, समाजमें मुँह दिखलानेको जगह नहीं रहती, राजदण्ड और पञ्चपेटीमें नैवेद्य समर्पण करनेकी नौबत आती है, देवदर्शन पूजन बंद कर दिये जाते हैं। और अगर इन अतीचारोंकी शिकार कोई बेचारी स्त्री होगई तबतो घर द्वारसे, जातिपाँतिसे सदाके लिये त्याग करदेना पड़ती है, फिरतो मुसलमान, ईसाई जैसी दयालु जातियाँही उसे गोदमें धारण करती हैं, बाक़ीतो उसके स्पर्शसे भस्म होजानेका अनुभव करती हैं—पुरुषोंके पास द्रव्य है, वे अपनेको सौटंचका सोना मानते हैं, पंचोंके उदरदेवको बलि देकर पापापहारी हो सकते है, पञ्च उनकी शुद्धि कर सकते हैं, उनका पाप नैवेद्यमें मिलाकर भीमकाय, अनंतपापध्वंसक महापेटमें पहुँचाकर फिर उसे सौटंचका सोना बनादेते हैं। पर बेचारी स्त्री जिसके पास धन नहीं है, पञ्चपेटीमें नैवेद्य चढ़ानेकी सामग्री नहीं है, वह प्रायश्चित्तसे वंचित रहजाती है। गुप्त पाप करती रहे, भ्रूणहत्या करती रहे, जेठ, स्वसुर आदिकी शय्या शोभित करती रहे, इससे समाजको हानि नहीं पहुँचती, समाजमें इससे नीचता नहीं आती, पर पापोंका प्रायश्चित्त उसका हो तो जाति रसातलको चली जावे, मुखियोंकी मूँछ मुण्ड जावे, मुखियोंकी शानमें बट्टा लगजावे।

उपसंहार।

मैं चाहता हूँ कि विद्वान् इस अणुव्रतको स्त्री और पुरुषमें मय अतीचारोंके प्रकाशित करनेकी कृपा करें। अगर पुरुषोंके अतीचार क्षम्यहों तो स्त्रियोंके भी क्षम्य समझें, या दोनोंके लिये प्रायश्चित्तका मार्ग बतलावें और यहभी बतलावेंकि व्रतीके लिये इनका सद्भाव कितना क्षम्य है और अव्रतीके लिये यह कितना असर रखता है। यह लेख सिर्फ विचारार्थ रक्खा गया है। विद्वानोंको पूर्ण विचार कर इस विषयको समझाना चाहिए।

पत्रोंकी प्रतिध्वनि।

मानसिक दुर्बलता।

मध्यप्रान्तसे एक बहिनने लिखा है—

सम्पादकजी,

मैं सी० पी० के एक प्रसिद्ध ज़िलेकी निवासिनी जैन बालविधवा हूँ। इस समय मेरी आयु २७ वर्ष की है।

जैन संस्थाओंकी उदारताकी कृपासे मैंने जो चार अक्षर का ज्ञान प्राप्त करलिया है, उसीके बल-बूतेपर परमपिता परमात्माकी साक्षीसे आजतक अपने शील धर्मकी रक्षा करती रही। इधर उसदिन जब मैंने डॉक्टरोंसे अपने बिगड़े स्वास्थ्यकी परीक्षा कराई तब उन्होंने बताया कि पतिके अभावमें तुम्हें हिस्टीरिया और ऐसीही अन्य शिकायतें हुई हैं। एक मुँहफट लेडी डॉक्टरने तो यहाँतक कहडाला कि यदि मैं नीरोग होना चाहती हूँ, तो मुझे जल्दी पुनर्विवाह करलेना चाहिये।

योंतो हमारे समाजमें वर्षोंसे पुनर्विवाहका आन्दोलन चलरहा है। कुछ पुनर्विवाह हुएभी हैं, पर उनका ज़ोरशोर इतना अधिक नहीं कि थूकके तालाबमें तैरे बग़ैर कोई जैन-विधवा अपना पुनर्विवाह करासके।

मैं अपनी वासनाओंसे लड़ते लड़ते सचमुच थकचुकी हूँ, तोभी यह नहीं चाहती कि अपनी अन्य अनेक जैन-विधवा बहिनों जैसी गुप्त पापमयी भ्रूण हत्यायें करूँ।

सौभाग्यसे समाजके सब तरहसे सुयोग्य एक सज्जन, जो एक समाज सुधारक पत्रके सम्पादकभी रहचुके हैं, मेरे प्रेमप्रार्थी हैं, क्योंकि उनकी धर्मपत्नीका स्वर्गवास होचुका है। मुझे पूरा विश्वास है कि यदि मैं उन्हें पासकी तो मेरी जीवन-तरी मज़ेमें उसपार लगजायगी। परन्तु मैं खूब जानती हूँ कि क्या मैकेवाले और क्या सासुरेवाले, कोई पुनर्विवाहकी आज्ञा मुझे नहीं देसकते! मैंने खूब कोशिश करके देखी, पर मेरी हिम्मत पुनर्विवाह करानेकी नहीं होती। "लोग क्या कहेंगे? लोग क्या सोचेंगे? लोग कितना थूकेंगे? भाईका जी कैसा होगा? देवर क्या विचारेंगे?" यही सवाल 'भारव्योपन्यास' के भयंकर दैत्यकी तरह मुझे निगलनेको जैसे इकट्ठे होजाते हैं। पैरोंके नीचेकी भूमि जैसे पातालको पैठने लगती है। हृदय जैसे शान्तिकी स्वास लेने और दुनियाँकी घृणा-भरी आँखोंसे बचनेके लिये किसी एकान्तकी खोजमें छटपटा उठता है। यह है मेरी निर्बलता—परवशता, जिसके कारण आवश्यकता अनुभव करते हुएभी मैं अभीतक पुनर्विवाह नहीं करसकी। मैं किंकर्तव्य-विमूढ़ हूँ, नहीं जानती आप मेरी इस विवशता, निर्बलता या लज्जाको क्या समझेंगे! पर मैं आपसे पुनः पुनः प्रार्थना करती हूँ कि मैंने जो लिखा है, बिलकुल वास्तविक है। आपने नारी जातिकी ऐसी विपदके समय अपनी अमूल्य सम्मतियोंसे उपयुक्त सहायता की है। अपने अमूल्य समय की कुछ घड़ियाँ मेरे प्रश्नको सोचने-विचारनेके लिये दीजियेगा।

आपका 'चाँद' जो सम्मति या आदेश देगा, आशा है उसके लिये कारणभी बताएगा, जिससे यह भयाकुल हृदय ढाढस रखसके।

'चाँद' के अगले अंकमें ही आपका उत्तर पढ़कर मैं जीवनका फ़ैसला कर डालना चाहती हूँ।

आशा है, प्रार्थना स्वीकार होगी।

विनीत

×××

[इस पत्रकी लेखिका एक शिक्षिता स्त्री हैं। इन्होंने अपने पत्रमें जिस द्विविधाका ज़िक्र किया है, वह उनकी कुसंस्कारजनित मानसिक दुर्बलता मात्र है। उन्हें इस दुर्बलताको दूर करके फ़ौरन विवाह करलेना चाहिये। मूर्ख और स्वार्थी समाज, जिसने पुरुषोंके लिये तो एक स्त्रीके रहतेही दूसरा विवाह करलेनेकी व्यवस्था देरक्खी है और बेचारी विधवाओंके विवाहका नाम सुनतेही वह घबरा उठता है, ऐसा पतित समाज क्या कहेगा, इसकी चिंता व्यर्थ है। समाजको विधवा-विवाहकी आवश्यकता है। यह बहिन अपना पुनर्विवाह करके अपनाही भला नहीं करेंगी, वरन् समाजके सामनेभी एक अनुकरणीय आदर्श रक्खेंगी। इसलिये उन्हें चाहिये कि द्विविधाको मनसे निकाल डालें और फ़ौरन विवाह करलें।

—'चाँद' सम्पादक]

जीवन चर्चा।

(लेखकः—काका कालेलकर)

जीवन चर्चामें यह बात ध्यानमें रखना चाहिये कि जो वस्तु तर्ककी कसौटीसे सिद्ध नहीं होती है वह हमें स्वीकार नहीं करना है। परन्तु जिन सवालोंके सामने स्वयं तर्क ही काम नहीं करती, वहाँ तर्कसे अगम्य सवालोंको हमें उड़ा नहीं देना है। मनुष्य जीवन तर्कबुद्धि जैसा सहज नहीं है। असंख्य विरोधी वस्तुओंका समन्वय करके जीवन बनता और प्रवृत्त होता है। इसकी सरल मीमांसा करनेपर अन्तमें वह ब्याजके साथ वैर लेता है। अतएव तर्कका पूरा पूरा लाभ लेनेपर भी इसका निर्णय सचेत होकरही करना चाहिये।

दूसरी ध्यानमें रखनेकी बात यह है कि जीवन मीमांसामें अनुभवसे विरुद्ध कोई बात न आनी चाहिये तथा मानवी जीवनकी अमर श्रद्धाओंका द्रोह भी न होना चाहिये। मैं मानता हूँ कि प्राचीन विचारकोंने इस प्रकार का खयाल रक्खा था। केवल उनका अधूरा अनुभव पर विचारके प्रकाश पड़नेकी स्थूल शक्ति, तथा निश्चित किये हुए निर्णयोंको फिरसे खोजनेकी न्यून प्रयोगवृत्ति होनेके कारण उस समयका प्राचीन तत्वज्ञान गम्भीर होने पर भी आज दिशादर्शक नहीं होसकता।

परन्तु संसारमें जितने महान् धर्म हैं वे सब जीवन मीमांसाही हैं। इसके पीछे प्रयोगवीरोंका गंभीर अनुभव होनेसे उन सिद्धान्तोंको हम आदरसे देखें, यह स्वाभाविक है। उनपर हम विचार करही नहीं सकते यह मानना पुरानी भूल है। तर्कके एक झोंकेमें उन्हें उड़ादेना यह आजकी भूल है। अनेक अधकचरे सिद्धान्तोंको चक्करमें रखकर हम उनके चारों ओर फिर सकते हैं, परन्तु प्रगति नहीं करसकते।

आज कलके ज़मानेकी विशेषता तो अर्धसत्योंको लेकर भाग आनेकी है। अर्धसत्योंमें हमेशा बहुत जोश होता है। परिणामके विषयमें इतनीही बेफ़िकर बेजवाबदारी होती है। अर्धसत्य हमेशा हमला करनेमें सफलता मानते हैं। यह स्वभाव केवल दोषरूपही है, यह नहीं कहसकते। जो चारों ओर देखसकता है, और चारों तरफ की सुन्दरता की ओर झुकता है, उसमें कार्य करनेका उत्साह कम रहता है। वह तो दोनों तरफ़की दलीलोंका विचार करताही पड़ा रहेगा।

चारों तरफ़से विचार करनेके बाद अन्तमें एक आचरणकी निश्चित दिशा निश्चय होनाही चाहिये और इस दिशामें सारी शक्ति लगाना ही चाहिये। जहाँतक परिस्थिति न बदले वहाँतक इसी दिशा और इसी उपाय को पूर्ण दृढ़तासे पकड़े रहनेकी ताक़त होनी चाहिये। यह शक्ति आध्यात्मिक चारित्र बिना नहीं आती है। पहला युग अपरिवर्तनशील माना जाता है तो आजका युग केवल इसी बातसे परिवर्तनमें विश्वास करता है कि वस्तु का स्वभाव परिवर्तनशील है। 'नवं नवं प्रीतिकरं नराणां' यह मनुष्यका स्वभाव है, परन्तु धर्म नहीं। परन्तु आज इसीके वश होकर जनसमुदाय प्रवृत्त होता है। इसमें चारित्रकी दृढ़ताकी आवश्यकता है। जहाँ सुकान (नौकावाहक) के ऊपर मज़बूत हाथ रखकर एकही दिशामें जहाज़को चलाना है, वहाँ इस निष्ठाकी एकाग्रता बहुत थोड़ी मालूम होती है। लोग प्रतिज्ञादुर्बल और क्षीणनिष्ठ होगये हैं। आज जीवनमीमांसा और जीवनचर्चा जितनी चाहे चलती हो, फिरभी विचारपूर्वक और कष्टपूर्वक जीवन साधना करनेके दृष्टान्त जितने चाहियें उतने नहीं हैं। —'प्रस्थान' से

श्रद्धा

(ले॰—काका कालेलकर)

कवि तत्वज्ञ और धर्मज्ञ तीनोंनेही देखा कि कल्पना से जुदा, अनुभवसे परे और साधनाकी प्रेरक ऐसी कितनीही अमर श्रद्धायें होती हैं। यह श्रद्धा कहाँ से आती है, किस प्रकार सम्बद्ध होती है, इसकी शक्ति कहाँ रहती है, यह कहना कठिन है। ये श्रद्धायें सबके साथ एक सरीखी संबद्ध नहीं होतीं। प्रत्येक ज़मानेमें इसका स्वरूप बदलता है। इसके नये नये अवतार होते हैं: और इस कारण प्रत्येक ज़मानेको इसकी विशिष्टता प्राप्त होती है।

सभी बुद्धिका प्रयोग करते हैं परन्तु बुद्धिमें अज्ञात रूपसे श्रद्धाका सम्मिश्रण होनेके कारण दर्शन और पन्थ की विविधता उत्पन्न होती है। अहिंसा यह इसी प्रकार की एक स्वयंभू श्रद्धा है। गाँधीजीने इसे सत्यमेंसे घटाने का प्रयत्न किया है। परन्तु ऐसा करनेके लिये सत्यके स्वरूपको ही गूढ़ करना पड़ता है और अन्तमें हम जहाँ थे वहींके वहीं रहजाते हैं। अहिंसा यह एक स्वयंभू अमर श्रद्धा है और यह जीवनके ध्येय, जीवनके तत्वज्ञान, जीवनकी साधना और साक्षात्कार सबमें प्रवेश करती है।

आज हमारे यहाँ जो जीवनचर्चा चलती है, इस सारी चर्चाके पीछे ज्ञात, अज्ञात रूपसे यह अहिंसाका तत्व रहता है, यह मानकरही अपनी चर्चा विशद होसकती है—फलप्रद होसकती है।

प्राचीन समयमें समाजतंत्र एक प्रवाहमें चलता था। इसके बहुतसे बाह्य नियमोंमें भलेही सामान्य फेरफार हो, परन्तु समाजकी जड़ कैसी है, समाज कौनसे तत्वों के आधारसे चलती है, इस सम्बन्धमें कोई गहरा विचार नहीं करता था। और यदि कोई करता था तो समाज रचनाकी कोई काव्यमय पौराणिक उपपत्ति देकरही करता था। उस समय समाज यह कोई अगम्य गूढ़ वस्तु है,

यह स्वयंगतिक है, हम इसे स्पर्श करनेमें डरते हैं, इस प्रकारकी वृत्ति लोगोंमें थी। आज इस अगम्यताके तोड़ने का प्रयत्न चलरहा है। अमुक वस्तु गूढ है,—अगम्य है इसलिये पवित्र है, इसप्रकारकी मनोवृत्ति कोई सहन नहीं करसकता। समाज जीवनका मूल हम जितना समझते थे. उतना गूढ और दुर्ज्ञेय नहीं है, इस प्रकारकी मनोवृत्ति अधिकसे अधिक बढ़ती जाती है। गायका जबड़ा बड़ा हो तो वह अधिक घास खावेगी, नाक चौड़ी हो तो अधिक साँस लेगी, थन बड़े हों तो उनमें अधिक दूध आवेगा, इसके ऊपरसे श्रेष्ठ गायके लक्षणका निश्चय कर लो; इससे अधिक इसमें कुछ गूढ है ही नहीं, इस प्रकार कहनेकी आजके गोपालन शास्त्रकी वृत्ति है। गुणभेदके पृथक्करणकी अपेक्षा यह वृत्ति परिणामभेदके ऊपर आ-जाती है। इसलिये इसमें रहस्य जैसी वस्तु नहीं है, ऐसा सिद्ध किया जासकता है, यह आजकी मान्यता है।

गूढवाद जितना ह्रासके उतना अच्छा। अज्ञान और आलस्यमें से गूढभाव उत्पन्न करना यह मनुष्यको शोभा नहीं देता। यह हमें जानना चाहिये कि प्रत्येक वस्तु अमीमांस्य है, यह कह बैठनेमें श्रद्धा नहीं, जड़ता है। साथ साथ हमें यहभी जानना चाहिये कि शीघ्रतामें की हुई मीमांसा महत्त्वके तत्वोंको विस्मरण करदेती है और अन्तमें हम जहाँ के तहाँ रहते हैं। —('प्रस्थान' के सौजन्यसे)
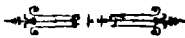
विविध विषय।

[ले०—श्रीमान् जगदीशचन्द्रजी जैन ऐम० ए०]

धर्मों की परिषद्।

अभी ता० २९-४-३४ को बम्बईमें सर गोविंदराव के सभापतित्वमें संसारके धर्मोंकी एक परिषद् हुई थी। परिषद् में ब्राह्मण, यहूदी, पारसी, बौद्ध, ईसाई, इसलाम और सिक्ख धर्मोंके प्रतिनिधि उपस्थित हुए थे। जैन धर्मकी ओरसे श्रीमान् पं० दरबारीलालजी न्यायतीर्थको प्रतिनिधि चुनागया था, परन्तु इस अवसर पर बम्बईमें उपस्थित न रह सकनेके कारण उक्त परिषद्में पण्डितजी भाग न लेसके।

एक दो को छोड़कर प्रायः सभी लोगोंने अंग्रेज़ीमें भाषण दिये। कुछ लोग घरसे भी लिखकर लाये थे। सब व्याख्यान साधारणतः ठीक थे। भिन्न भिन्न व्याख्याताओंके विवेचनसे मालूम होता था कि सभी धर्मोंमें अहिंसा, सत्य, उदारताको विविध रूपमें प्रधान स्थान दिया गया है। मैं बैठा बैठा सोचता था कि वास्तवमें यदि यह बात सच है तो भारतमें धर्म जैसी पवित्र वस्तु के नाम पर रातदिन क्यों सिर फुटौवल होते हैं और क्यों एक दूसरेको काफ़िर, नास्तिक, मिथ्यादृष्टि आदि शब्दों से पुकारा जाकर अपमानित किया जाता है? मुझे उस समय एकही उत्तर मिला। वह यह कि इसमें धर्मका कुछ दोष नहीं। धर्मका मूल तत्व सब धर्मोंमें बराबर है। दोष है तो उन्हीं लोगोंका जो धर्मके नामपर अपनी स्वार्थलोलुपता की भित्ति खड़ी करना चाहते हैं।

वास्तवमें यदि अन्तर्मुखी दृष्टिसे विचार किया जाय तो मालूम होगा कि प्रत्येक धर्मके मूलकी भावना बहुत उच्च और व्यापक रही है। यही कारण है कि प्रत्येक धर्म के संस्थापकोंमें देश कालकी भिन्नभिन्न परिस्थितिके अनुसार अलगअलग विशेषताएँ पाई जाती हैं। राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद, दयानन्द आदि जितने भी महान् पुरुष हुए, सबका समाजका हित करनाही एक मात्र उद्देश्य था।

बात इतनीही है कि जिस समय विविध संस्कृति और सभ्यताओंमें संघर्ष होता है, अथवा धर्मगुरुओंमें अहम्मन्यता और स्वार्थवासना प्रवेश करती है, उसी समयसे धर्म की मूल भावनाओंमें परिवर्तन होने लगता है। बढ़ते बढ़ते यह परिवर्तन इतना बढ़जाता है कि कुछ समय बाद धर्म का मूलरूप पहचानना भी कठिन होजाता है। यही दशा आज हमारे देशके सम्पूर्ण धर्मोंकी है। जैन, ब्राह्मण, बौद्ध आदि धर्मोंका जो हम आधुनिक रूप देखते हैं, वह बिलकुल रँगा हुआ है। इन धर्मोंके मूलमें जो समन्वयात्मक भावना थी, आज इन धर्मोंके अनुयायी उनसे कोसों दूर हैं। आज तो सभी धर्मवाले स्वार्थकी सिद्धिके लिये अपने अपने धर्मोंकी दुहाई देरहे हैं।

वास्तवमें इस युगमें भारत जैसे नाना धर्मोंवाले देश में 'सर्वधर्मसमभाव' अथवा 'अनेकान्तात्मक' विचारोंका प्रचार होनेकी अधिकसे अधिक आवश्यकता है। भगवान महावीरने नाना भेदोंको मिटाकर 'नयवाद' और 'अनेकान्तवाद' जैसे विशाल और व्यापक सिद्धान्तोंका प्रचार करनेमें कठोर परिश्रम किया था। आजतो महावीरके अनुयायी धर्मके नामपर अकाण्ड ताण्डव कररहे हैं। 'संसार

के धर्मोंकी परिषद्' को हम विश्वास दिलाते हैं कि जैनधर्म में उदारताके लिये अधिकसे अधिक विशाल स्थान है, यहाँ तक कि जैनधर्मके सभी सिद्धान्त 'उदारता' अथवा 'अनेकान्त' की ही भित्ति पर खड़े हुए हैं। हमें पूर्ण आशा है कि अबकी बार सन् १९३५ में होनेवाली 'परिषद्' में जैनधर्मके प्रतिनिधियोंका पूर्ण सहयोग रहेगा।

भावी युद्ध।

मि० सी० राजर्स नामक एक अंग्रेज़ने भावीयुद्ध कौन से वर्षमें होगा यह जाननेकी एक नई शोध निकाली है।

अन्तिम युद्ध जिस वर्षमें पूरा हुआ हो वह वर्ष लिखो और उसके सब अंक जोड़कर उस वर्षमें मिलादो। जो फलित आवे उसी वर्षमें नया युद्ध आरम्भ होगा। इस गणितके सच्चे होनेके नीचे लिखे प्रमाण मिलते हैं।

भारतमें सन् सत्तावनका गदर १८५८ में समाप्त हुआ। इस वर्षके ४ अंकोंको जोड़कर १८५८ में मिलाने से १८८० फलित होता है। नियमानुसार सन् १८८० में अंग्रेज़ोंका ईजिप्टमें युद्ध हुआ था। इसी प्रकारः—

ईजिप्टकी लड़ाई समाप्त होनेका समय १८८१
१ + ८ + ८ + १ = १८

बोअर का युद्ध आरम्भ हुआ—	१८९९
बोअरका युद्ध समाप्त होनेका समय	१९०२
१ + ९ + २ =	१२
महायुद्ध प्रारम्भ हुआ—	१९१४
महायुद्धके समाप्त होनेका काल	१९१८
१ + ९ + १ + ८ =	१९
भावी युद्ध का समय	१९३७

—"कुमार"

बाल विवाह।

मनुष्य समाजने स्त्रियोंके ऊपर क्या क्या अत्याचार नहीं किये? नन्हीं नन्हीं कन्याओंका विवाह करना, एक एक दो दो वर्ष की दुधमुँही बालिकाओंको वैधव्य पालन करनेके लिये बाध्य करना, पतिके मरजाने पर स्त्रीको कोई उत्तराधिकार नहीं देना, उन्हें हरतरहसे भोगविलास की सामग्री बनाकर पर्देमें बन्द रखना, पशुकी तरह ताड़न किये जानेकी अधिकारिणी समझना, अमुकअमुक शास्त्रोंके पढ़नेका अधिकार न देना, यह सब मनुष्यकी उच्छृंखलता और स्वार्थ लिप्साकी भावनाका स्पष्ट प्रमाण है।

एक बाल लग्नको ही लीजिये। स्वार्थसे अंधे माता पिता एक बिचारी अबोध बालिकाको विवाहके बन्धनमें जकड़कर एक खिलती हुई कलीको तोड़ मरोड़कर नष्टकर डालते हैं—उसके जीवन धनको सदाके लिये अपहरण करलेते हैं!

ब्रिटिश सरकारने बाल विवाहको रोकनेके लिये सन् १९२९ में 'शारदा ऐक्ट' जारी किया था। हमारे दुर्भाग्य से सरकारकी शिथिलताके कारण क़ानूनके नियमोंमें सख्त पाबन्दी न की गई। फल यह हुआ कि पहले पहले शारदा ऐक्टके भंग करनेवालेको कोई उचित दण्ड न मिला। बस फिर क्या था? वैसे तो पहलेसे ही 'धर्मरक्षक' लोग इस क़ानूनका विरोध कररहे थे, अबतो ये औरभी शेर होगये। जगह जगह क़ानून तोड़ेगये, अपराधियोंको कोई सज़ा न मिली।

बालविवाहको अच्छा बतानेके लिये धर्मग्रन्थोंकी दुहाई देनेवाले कट्टरपन्थी हमेशा अपना उल्लू सीधा करनेके लिये एक न एक तरकीब निकालाही करते हैं। अभी जब इन लोगोंने देखा कि शारदा ऐक्टके भंग करने वालोंको सज़ा मिलने लगी है तो इन्होंने चन्दरनगर और गोआ जैसे विदेशीय स्थानोंमें जाकर विवाह करना आरम्भ करदिये। अभी पुर्तगीज़ोंके अधीनस्थ गोआमें जाकर विवाह सम्पन्न करने वालोंको जो बम्बई हाईकोर्ट की ओरसे दण्डित किया गया है, वास्तवमें वह अभिनन्दनीय और साथही अनुकरणीय भी है।

भारतमें ४८ फ़ीसदी हिन्दू और ३७ फ़ीसदी मुसलमान ऐसी लड़कियाँ हैं जिनका विवाह १४ वर्षसे कम उमरमें होता है। डॉक्टरोंका कथन है कि इस संख्यामें २० प्रतिशत लड़कियाँ ऐसी रहती हैं जो सन्तानोत्पत्ति के समय असह्य और दारुण वेदना भोगकर इस संसार से सदाके लिये कूच करजाती हैं। इस हिसाबसे १२ और १४ वर्षके बीचमें एक सालमें ३५ लाख लड़कियाँ प्रजनन करते समय मृत्युको प्राप्त होती हैं।

कितनी दारुण दर्दभरी कहानी है! योरुपमें लड़कियोंका यह काल आमोद प्रमोद करनेका और विविध साहित्य, कला सीखनेका होता है, परन्तु हमारे देशमें इस अवस्थामें तो जीवनकी ही इतिश्री होजाती है।

वास्तवमें यदि नारी जागरणकी संसारव्यापी क्रांति

धर्मवीर महावीर और कर्मवीर कृष्ण।

दैवीपूजामें से मनुष्यपूजाका क्रमिक विकास।

(ले०—पं० श्री सुखलालजी) (अनु०—श्री० पं० शोभाचन्द्रजी भारिल्ल)

अन्य देशों और अन्य प्रजाकी भाँति इस देश में और आर्यप्रजामें भी प्राचीनकालसे क्रियाकाण्ड और वहमोंके राज्यके साथही साथ थोड़ा बहुत आध्यात्मिक भाव मौजूद था। वैदिक मंत्र-युग और ब्राह्मणयुगके विस्तृत और जटिल क्रियाकाण्ड जब यहाँ होते थे तबभी आध्यात्मिक चिन्तन, तपका अनुष्ठान और भूत-दयाकी भावना, ये तत्त्व मौजूद थे, यद्यपि थे वे अल्प मात्रामें। धीरे धीरे सद्गुणोंका महत्व बढ़ता गया और क्रियाकाण्ड तथा वहमोंका राज्य घटता गया। प्रजाके मानसमें, ज्यों ज्यों सद्गुणोंकी प्रतिष्ठा स्थान प्राप्त करती गई, त्यों-त्यों उसके मानससे क्रियाकाण्ड और वहम हटते गये। क्रियाकाण्ड और वहमोंकी प्रतिष्ठाके साथ, हमेशा अदृश्य शक्तिका सम्बन्ध जुड़ा रहता है। जबतक कोई अदृश्य शक्ति मानी या मनाई न जावे (फिर भलेही वह देव, दानव, दैत्य, भूत, पिशाच या किसी भी नामसे कही जाय) तबतक क्रियाकाण्ड और वहम न चल सकते हैं और न जीवितही रह सकते हैं। अतएव क्रियाकाण्ड और वहमोंके साम्राज्यके समय, उनके साथ देवपूजा अनिवार्य रूपसे जुड़ी हुईहो, यह स्वाभाविक है। इसके विपरीत सद्गुणों की उपासना और प्रतिष्ठाके साथ किसी अदृश्य शक्तिका नहीं वरन् प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाली मनुष्य-व्यक्तिका सम्बन्ध होता है। सद्गुणोंकी उपासना करनेवाला या दूसरोंके समक्ष उस आदर्शको उपस्थित करनेवाला व्यक्ति, किसी विशिष्ट मनुष्यको ही अपना आदर्श मानकर उसका अनुकरण करने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार सद्गुणोंकी प्रतिष्ठा की वृद्धिके साथही साथ अदृश्य देवपूजाका स्थान दृश्य मनुष्यपूजाको प्राप्त होता है।

मनुष्य पूजाकी प्रतिष्ठा।

यद्यपि सद्गुणोंकी उपासना और मनुष्यपूजाका पहलेसे ही विकास होता जारहा था, तथापि भगवान् महावीर और बुद्ध इन दोनोंके समयमें इस विकास को असाधारण विशेषता प्राप्त हुई, जिसके कारण क्रियाकाण्ड और वहमोंके क़िलोंके साथ साथ उसके अधिष्ठायक अदृश्य देवोंकी पूजाको भी तीव्र आघात पहुँचा। भगवान महावीर और बुद्ध का युग अर्थात् सचमुच मनुष्य पूजाका युग। इस युगमें सैकड़ों हजारों स्त्री पुरुष क्षमा, सन्तोष, तप, ध्यान आदि सद्गुणोंके संस्कार प्राप्त करनेके लिये अपने जीवन को अर्पण करते हैं और इन गुणोंकी पराकाष्ठाको पहुँचे हुए अपने श्रद्धास्पद महावीर और बुद्ध जैसे मनुष्य-व्यक्तियोंकी ध्यान या मूर्त्ति द्वारा पूजा करते हैं। इस प्रकार मानव पूजाके भावकी बढ़तीके साथ ही देवमूर्त्तिका स्थान विशेषतः मनुष्यमूर्त्तिको प्राप्त होता है।

महावीर और बुद्ध जैसे तपस्वी, त्यागी और ज्ञानी पुरुषों द्वारा सद्गुणोंकी उपासनाको वेग मिला और उसका स्पष्ट प्रभाव क्रियाकाण्डप्रधान ब्राह्मण संस्कृति पर पड़ा। वह यहकि जो ब्राह्मणसंस्कृति

के इस युगमें भी हिन्दूसंस्कृति का अर्थ 'परदा' और मुसलमान संस्कृतिका अर्थ 'हरम' है तो आज हमें ऐसी संस्कृतिकी कोई आवश्यकता नहीं है। यदि वर्णव्यवस्था क़ायम रखना, पुरुषको बहुतसी शादियाँ करनेका अधिकार होना और परिपक्वावस्थासे पूर्व स्त्रीपुरुषको विवाह बन्धनमें जकड़ देनेका नामही धर्म है तो हम चाहते हैं कि ऐसे धर्मका शीघ्रही सत्यानाश हो।

एकबार देवदानव और दैत्योंकी भावना एवं उपासनामें मुख्य रूपसे मशगूल थी, उसनेभी मनुष्य-पूजाको स्थान दिया। अब जनता अदृश्य देवके बदले किसी महान् विभूति रूप मनुष्यको पूजने, मानने और उसका आदर्श अपने जीवनमें उतारने के लिए तत्पर हुई। इस तत्परताका उपशमन करने के लिए ब्राह्मण संस्कृतिने भी राम और कृष्णके मानवीय आदर्शकी कल्पना की और एक मनुष्यके रूपमें उनकी पूजा प्रचलित होगई। महावीर–बुद्ध युगसे पहले राम और कृष्णकी, आदर्श मनुष्यके रूपमें पूजा होनेका कोईभी चिह्न शास्त्रोंमें नहीं दिखाई देता। इसके विपरीत महावीर–बुद्ध युगके पश्चात् या उस युगके साथही साथ राम और कृष्ण की मनुष्यके रूपमें पूजा होनेके हमें स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं। इससे तथा अन्य साधनोंसे यह मानने के लिये पर्याप्त कारण है कि मानवीय पूजाकी मज़बूत नींव महावीर–बुद्धमें युग डाली गई और देव-पूजकवर्गमें भी मनुष्यपूजाके विविध प्रकार और सम्प्रदाय इसी युगमें प्रारम्भ हुए हैं।

मनुष्यपूजामें दैवीभावका मिश्रण।

लाखों करोड़ों मनुष्योंके मनमें सैकड़ों और हजारों वर्षोंसे जो संस्कार रूढ़ हो चुके हों, उन्हें एकाध प्रयत्नसे, थोड़ेसे समयमें बदल देना संभव नहीं। इस प्रकार अलौकिक देवमहिमा, दैवी चमत्कार और देवपूजाकी भावनाके संस्कार प्रजाके मानसमें से एकदम न निकल सके थे। इसी संस्कार के कारण ब्राह्मण संस्कृतिने यद्यपि राम और कृष्ण जैसे मनुष्योंको आदर्शके रूपमें उपस्थित करके उनकी पूजा प्रतिष्ठा शुरूकी, तथापि प्रजाकी मनोवृत्ति ऐसी न बन सकीथी कि वह दैवीभावके सिवाय और कहीं संतुष्ट होसके। इस कारण ब्राह्मण संस्कृति के तत्कालीन अगुवा विद्वानोंने, यद्यपि राम और कृष्णको एक मनुष्यके रूपमें चित्रित किया, वर्णित किया, तो भी उनके आन्तरिक और बाह्य जीवनके साथ अदृश्य दैवी अंश और अदृश्य दैवी कार्यका सम्बन्ध भी जोड़ दिया। इसी प्रकार महावीर और बुद्ध आदिके उपासकोंने उन्हें शुद्ध मनुष्यके स्वरूप में ही चित्रित किया, फिरभी उनके जीवनके किसी न किसी भागके साथ अलौकिक दैवी सम्बन्धभी जोड़ दिया। ब्राह्मण-संस्कृति आत्मतत्त्वको एक और अखण्ड मानती है अतः उसने राम और कृष्णके जीवनका ऐसा चित्रण किया जो अपने मन्तव्यसे मेल रखनेवाला और साथही स्थूल लोगोंकी दैवी पूजाकी भावनाको भी सन्तुष्ट करनेवाला हो। उसने परमात्मा विष्णुके ही राम और कृष्णके रूपमें अवतार लेनेका वर्णन किया। परन्तु श्रमण संस्कृति आत्मभेदको स्वीकार करती है और कर्मवादी है, अतः उसने अपने तत्त्वज्ञानके अनुरूप ही अपने उपास्य देवोंका वर्णन किया और जनताकी दैवी-पूजाकी हवस मिटाने के लिए अनुचर और भक्तों के रूपमें देवोंका सम्बन्ध महावीर और बुद्ध आदि के साथ जोड़ दिया। इस प्रकार दोनों संस्कृतियों का अन्तर स्पष्ट है। एकमें मनुष्यपूजाका प्रवेश हो जाने परभी उसके अनुसार दिव्य अंशही मनुष्यके रूपमें अवतरित होता है अर्थात् आदर्श मनुष्य अलौकिक दिव्य शक्तिका प्रतिनिधि बनता है और दूसरी संस्कृतिमें मनुष्य अपने सद्‌गुण प्राप्तिके लिए किए गये प्रयत्नसे स्वयमेव देव बनता है और जनता में माने जाने वाले देव उस आदर्श मनुष्यके सेवक मात्र हैं, और उसके भक्त या अनुचर बनकर उसके पीछे पीछे फिरते हैं।

चार महान् आर्य-पुरुष।

महावीर और बुद्धकी ऐतिहासिकता निर्विवाद है–उसमें सन्देहको ज़राभी अवकाश नहीं है, जबकि राम और कृष्णके विषयमें इससे उलटीही बात है। इनकी ऐतिहासिकताके विषयमें जैसे प्रमाणोंकी आवश्यकता है वैसे प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। अतः इनके सम्बन्धमें परस्पर विरोधी अनेक कल्पनाएँ फैलरही हैं। इतना होनेपर भी प्रजाके मानसमें राम और

कृष्णका व्यक्तित्व इतना अधिक व्यापक और गहरा अंकित है कि प्रजाके विचारसे तो ये दोनों महान् पुरुष सच्चे ऐतिहासिक ही हैं। विद्वान् और संशोधक लोग उनकी ऐतिहासिकताके विषयमें भलेही वाद-विवाद और ऊहापोह किया करें, उसका परिणाम भलेही कुछ भी हो, फिरभी जनताके हृदय पर इनके व्यक्तित्वकी जो छाप बैठी हुई है, उसे देखते हुए तो यह कहनाही पड़ता है कि ये दोनों महापुरुष जनता के हृदयके हार हैं। इस प्रकार विचार करनेसे प्रतीत होता है कि आर्य-प्रजामें मनुष्यके रूपमें पुजने वाले चारही पुरुष हमारे सामने उपस्थित होते हैं और आर्यधर्मकी वैदिक, जैन और बौद्ध तीनों शाखाओंके पूज्य पुरुष उक्त चारही हैं। यही चारों पुरुष भिन्नभिन्न प्रान्तोंमें, भिन्नभिन्न जातियोंमें, भिन्नभिन्न रूपसे पूजे जाते हैं।

चारोंकी संक्षिप्त तुलना।

राम और कृष्ण एवं महावीर और बुद्ध ये दोनों युगल कहिए या चारों महान् पुरुष कहिए, क्षत्रिय जातीय हैं। चारोंके जन्म स्थान उत्तर-भारतमें हैं और सिवाय रामचन्द्रजीके, किसीका भी प्रवृत्ति-क्षेत्र दक्षिण भारत नहीं बना।

राम और कृष्णका आदर्श एक प्रकारका है, और महावीर तथा बुद्धका दूसरे प्रकारका। वैदिक-सूत्र और स्मृतियोंमें वर्णित वर्णाश्रम धर्मके अनुसार राज्य-शासन करना, गो ब्राह्मणका प्रतिपालन करना उसीके अनुसार न्याय अन्यायका निर्णय करना और इसी प्रकार न्यायका राज्य स्थापित करना यह राम और कृष्णके उपलब्ध जीवन-वृत्तान्तोंका आदर्श है। इसमें भोग है, युद्ध है और तमाम दुनियावी प्रवृत्तियाँ हैं। परन्तु यह प्रवृत्ति-चक्र जन-साधारणको नित्यके जीवन-क्रममें पदार्थपाठ देने के लिए है। महावीर और बुद्धके जीवन-वृत्तान्त इससे बिलकुल भिन्न प्रकारके हैं। इनमें न भोगकी धमाचौकड़ी है और न युद्धकी तैयारी ही। इनमें तो सबसे पहले अपने जीवनके शोधनका ही प्रश्न उपस्थित होता है और उनके अपने जीवनकी शुद्धि होनेके पश्चात्‌ही, उसके फलस्वरूप प्रजाको उपयोगी होनेकी बात है। राम और कृष्णके जीवनमें सत्व-संशुद्धि होनेपर भी रजोगुण मुख्यरूप से काम करता है और महावीर तथा बुद्धके जीवनमें राजस-अंश होनेपर भी मुख्य रूपसे सत्व-संशुद्धि काम करती है। अतएव पहले आदर्शमें अन्तर्मुखता होनेपर भी मुख्यरूपसे बहिर्मुखता प्रतीत होती है और दूसरे में बहिर्मुखता होनेपर भी मुख्यरूपसे अन्तर्मुखताका प्रतिभास होता है। इसी बातको यदि दूसरे शब्दों में कहें तो यह कह सकते हैं कि एक आदर्श कर्म-चक्रका है और दूसरा धर्मचक्रका है। इन दोनों विभिन्न आदर्शोंके अनुसारही इन महापुरुषोंके संप्रदाय स्थापित हुए हैं। उनका साहित्यभी उसी प्रकार निर्मित हुआ है, पुष्ट हुआ है और प्रचारमें आया है। उनके अनुयायी वर्गकी भावनाएँभी इस आदर्श के अनुसार गढ़ी गई हैं और उनके अपने तत्त्वज्ञान में तथा उनके मत्थे मढ़े हुए तत्त्वज्ञानमें इसी प्रवृत्ति-निवृत्तिके चक्रको लक्ष्य करके सारा तंत्र सगठित किया गया है। उक्त चारोंही महान् पुरुषोंकी मूर्त्तियाँ देखिए, उनकी पूजाके प्रकारों पर नजर डालिए या उनके मंदिरोंकी रचना तथा स्थापत्यका विचार कीजिए, तो भी उनमें इस प्रवृत्तिचक्र और निवृत्ति-चक्रकी भिन्नता साफ दिखाई देगी। उक्त चार महान पुरुषोंमेंसे यदि बुद्धको अलग करदें तो सामान्यतया यह कह सकते हैं कि बाक़ीके तीनों पुरुषोंकी पूजा, उनके सम्प्रदाय तथा उनका अनुयायीवर्ग भारतवर्ष में ही विद्यमान है; जबकि बुद्धकी पूजा, सम्प्रदाय तथा उनका अनुयायीवर्ग एशिया-व्यापी बना है। राम और कृष्णके आदर्शोंका प्रचारकवर्ग पुरोहित होनेके कारण गृहस्थ है जबकि महावीर और बुद्धके आदर्शों का प्रचारकवर्ग गृहस्थ नहीं, त्यागी है। राम और कृष्णके उपासकोंमें हजारों सन्यासी हैं, फिर भी वह संस्था महावीर एवं बुद्धके भिक्षु-संघकी भाँति तन्त्रबद्ध या व्यवस्थित नहीं है। गुरु पदवीको

धारण करनेवाली हजारों स्त्रियाँ आजभी महावीर और बुद्धके भिक्षुसंघमें मौजूद हैं, जबकि राम और कृष्णके उपासक सन्यासीवर्गमें वह वस्तु नहीं है। राम और कृष्णके मुखसे साक्षात् उपदेश किये हुए किसी शास्त्रके होनेके प्रमाण नहीं हैं जबकि महावीर और बुद्धके मुखसे साक्षात् उपदिष्ट थोड़े बहुत अंश अबभी निर्विवाद रूपसे मौजूद हैं। राम और कृष्णके मत्थे मढ़े हुए शास्त्र संस्कृत भाषामें हैं, जब कि महावीर और बुद्धके उपदेश तत्कालीन प्रचलित लोकभाषामें हैं।

तुलनाकी मर्यादा और उसके दृष्टिबिन्दु।

हिन्दुस्थानमें सार्वजनिक पूजा पाये हुए ऊपरके चार महापुरुषोंमें से किसीभी एकके जीवनके विषयमें विचार करनाहो या उनके सम्प्रदाय, तत्त्वज्ञान अथवा कार्यक्षेत्रका विचार करना हो तो अवशेष तीनोंके साथ सम्बन्ध रखनेवाली उस उस वस्तुका विचारभी साथही करना चाहिए। क्योंकि इस समग्र भारतमें एकही जाति और एकही कुटुम्बमें अक्सर चारों पुरुषोंकी या उनमें से अनेक पुरुषोंकी पूजा या मान्यता प्रचलितथी और अबभी है। अतएव इन पूज्य पुरुषोंके आदर्श मूलतः भिन्न भिन्न होनेपर भी बादमें उनमें आपसमें बहुतसा लेनदेन हुआ है और एक दूसरेका एक दूसरेपर बहुत प्रभाव पड़ा है। वस्तुस्थिति इस प्रकारकी होनेपर भी यहाँपर तो सिर्फ धर्मवीर महावीरके जीवनके साथ कर्मवीर कृष्णके जीवनकी तुलना करनेका ही विचार किया गया है। और इन दोनों महान् पुरुषोंके जीवन-प्रसंगोंकी तुलनाभी उपयुक्त मर्यादाके भीतर रहकर ही करनेका विचार है। समग्र जीवन-व्यापी तुलना एवं और चारों पुरुषोंकी एक साथ विस्तृत तुलना करनेके लिये जिस समय और स्वास्थ्यकी आवश्यकता है, उसका इस समय अभाव है। अतएव यहाँ बहुतही संक्षेपमें तुलना की जायगी। महावीरके जन्म-क्षणसे लेकर केवलज्ञानकी प्राप्ति तकके प्रसंगों को कृष्णके जन्मसे लेकर कंसवध तककी कुछ घटनाओंके साथ मिलान किया जायगा।

यह तुलना मुख्य रूपसे तीन दृष्टि-बिन्दुओं को लक्ष्य करके की जायगी—

(१) प्रथमतो यह फलित करना कि दोनोंके जीवनकी घटनाओंमें क्या संस्कृतिभेद है ?

(२) दूसरे, इस बातकी परीक्षा करना कि इस घटनावर्णनका एक दूसरे पर कुछ प्रभाव पड़ा है या नहीं ? और इसमें कितना परिवर्तन और विकास सिद्ध हुआ है ?

(३) तीसरे यह कि जनतामें धर्मभावना जागृत रखने और सम्प्रदायका आधार सुदृढ़ बनानेके लिए कथाग्रंथों एवं जीवन वृत्तान्तोंमें प्रधान रूपसे किन साधनोंका उपयोग किया जाताथा, इसका पृथक्करण करना और उसके औचित्यका विचार करना।

पर सम्प्रदायोंके शास्त्रोंमें उपलब्ध निर्देश एवं वर्णन।

ऊपर कहे हुए दृष्टिबिन्दुओंसे कतिपय घटनाओं का उल्लेख करनेसे पूर्व एक बात यहाँ खास उल्लेखनीय है। वह विचारकोंके लिये कौतूहलवर्द्धक है, इतनाही नहीं वरन् अनेक ऐतिहासिक रहस्योंके उद्घाटन और विश्लेषणके लिए उनसे सतत् और अवलोकनपूर्ण मध्यस्थ प्रयत्नकी अपेक्षा भी रखती है। वह यह है–बौद्धपिटकोंमें ज्ञातपुत्रके रूपमें भगवान महावीरका अनेकोंबार स्पष्ट निर्देश पाया जाता है परन्तु राम और कृष्णमें से किसीका भी निर्देश नहीं है। पीछेकी बौद्ध जातकोंमें (देखिए दशरथ जातक नं० ४६१) राम और सीताकी कुछ कथा आई है परन्तु वह वाल्मीकिके वर्णनसे एकदम भिन्न प्रकारकी है। उसमें सीताको रामकी बहिन कहा गया है। कृष्णकी कथातो किसीभी बौद्धग्रन्थमें आज तक मेरे देखनेमें नहीं आई। किन्तु जैनशास्त्रोंमें राम और कृष्ण-इन दोनोंकी जीवन कथाओंने क़ाफी स्थान घेरा है। आगम माने जाने और अन्य आगम ग्रंथोंकी अपेक्षा प्राचीन गिने जानेवाले अंग साहित्यमें,

रामचन्द्रजीकी कथा तो नहीं है फिर भी कृष्णकी कथा दो अंगों—ज्ञाता और अंतगड—में स्पष्ट और विस्तृत रूपसे आती है। आगम ग्रंथोंमें स्थान न पानेवाली रामचन्द्रजीकी कथाभी पिछले श्वेताम्बर, दिगम्बर दोनोंके प्राकृत संस्कृतके कथासाहित्यमें विशिष्ट स्थान प्राप्त करती है। जैनसाहित्यमें वाल्मीकि-रामायण की जगह जैनरामायण तक बनजाती है। यहतो स्पष्ट है कि श्वेताम्बर, दिगम्बर—दोनोंके साहित्यमें राम और कृष्णकी कथा ब्राह्मण-साहित्य जैसी हो ही नहीं सकती, फिरभी इन कथाओं और इनके वर्णनकी जैनशैलीको देखते हुए यह स्पष्ट प्रतीत हो जाता है कि ये कथाएँ मूलतः ब्राह्मण साहित्यकी हो होनी चाहिए और लोकप्रिय होनेपर उन्हें जैन-साहित्यमें जैनदृष्टिसे स्थान दिया गया होना चाहिए। इस विषयको हम आगे चलकर स्पष्ट करेंगे। आश्चर्यकी बात तो यह है कि जैनसंस्कृतिसे अपेक्षाकृत अधिक भिन्न ब्राह्मण संस्कृतिके माननीय राम और कृष्णने जैनसाहित्यमें जितना स्थान रोका है, उससे हजारवें भागभी स्थान भगवान् महावीरके समकालीन और उनकी संस्कृतिसे अपेक्षाकृत अधिक नजदीक तथागत बुद्धके वर्णनको प्राप्त नहीं हुआ! बुद्धका स्पष्ट या अस्पष्ट नामनिर्देश केवल आगम ग्रन्थोंमें एकाध जगह आता है (यद्यपि उनके तत्त्वज्ञानकी सूचनाएँ विशेष प्रमाणमें मिलती हैं)। यह तो हुआ बौद्ध और जैनकथाग्रन्थोंमें राम और कृष्णकी कथाके विषयमें; अब हमें यहभी देखना चाहिए कि ब्राह्मण-शास्त्रमें महावीर और बुद्धका निर्देश कैसा क्या है? पुराणोंसे पहलेके किसी ब्राह्मण ग्रन्थमें तथा विशेष प्राचीन माने जानेवाले पुराणोंमें यहाँतक कि महाभारतमें भी, ऐसा कोई निर्देश या अन्य वर्णन नहीं है जो ध्यान आकर्षित करे। फिर भी इसी ब्राह्मण-संस्कृतिके अत्यंत प्रसिद्ध और अतिशय माननीय भागवतमें बुद्ध, विष्णुके एक अवतारके रूपमें ब्राह्मणमान्य स्थान प्राप्त करते हैं, ठीक इसी प्रकार जैसे जैनग्रन्थोंमें कृष्ण एक भावी तीर्थंकरके रूपमें स्थान पाते हैं। इस प्रकार पहलेके ब्राह्मणसाहित्यमें स्थान प्राप्त न कर सकनेवाले बुद्ध धीमे धीमे इस साहित्यमें एक अवतारके रूपमें प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं, जब कि स्वयं बुद्ध भगवानके समकालीन और बुद्धके साथ ही साथ ब्राह्मण-संस्कृतिके प्रतिस्पर्द्धी, तेजस्वी पुरुषके रूपमें एक विशिष्ट सम्प्रदायके नायक पदको धारण करनेवाले, इतिहास प्रसिद्ध भगवान महावीरको किसीभी प्राचीन या अर्वाचीन ब्राह्मण ग्रन्थमें स्थान प्राप्त नहीं होता। यहाँ विशेषरूपसे ध्यान आकर्षित करनेवाली बात तो यह है कि महावीरके नाम या जीवनवृत्तान्त का कुछ भी निर्देश ब्राह्मणसाहित्यमें नहीं है, फिर भी भागवत जैसे लोकप्रिय ग्रन्थमें जैनसम्प्रदायके पूज्य और अति प्राचीन माने जानेवाले प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेवकी कथाने संक्षिप्त होनेपर भी मार्मिक और आदरणीय स्थान पाया है।

तुलना।

(इस तुलनामें, जिन शब्दोंको मोटे टाइपमें दिया गया है, उनपर भाषा और भावकी समानता देखनेके लिये पाठकोंको खास लक्ष्य देना चाहिये। ऐसा करनेसे आगेका विवेचन स्पष्ट रूपमें समझा जा सकेगा।)

(१)

गर्भहरण-घटना* ।

महावीर।

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में ब्राह्मणकुण्ड नामक ग्राम

कृष्ण।

असुरोंका उपद्रव मिटानेके लिये देवोंकी प्रा-

* किसी भी दिगम्बर सम्प्रदायके ग्रंथमें, महावीरके जीवनमें इस घटनाका उल्लेख नहीं है।

था। उसमें बसने वाले ऋषभदत्त नामक ब्राह्मणकी देवानन्दा नामकी स्त्रीके गर्भमें नन्दन मुनिका जीव दशवें देवलोकसे च्युत होकर अवतरित हुआ। तेरासीवें दिन इन्द्रकी आज्ञासे उसके सेनापति नैगमेषी देव ने इस गर्भ को क्षत्रिय-कुण्ड नामक ग्राम के निवासी सिद्धार्थ क्षत्रिय की धर्मपत्नी त्रिशला रानीके गर्भ में बदल कर उस रानी के पुत्रीरूप गर्भको देवानन्दाकी कोखमें रखदिया। उस समय उस देवने इन दोनों माताओंको अपनी शक्तिसे खास निद्रावश करके बेभान-सी बना दिया था। नौ मास पूर्ण होनेपर त्रिशलाकी कोख से जन्म पानेवाला, वही जीव, भगवान् महावीर हुआ। गर्भहरण करानेसे पूर्व इसकी सूचना इन्द्रको आसन के काँपनेसे मिली थी। इन्द्रने आसनके काँपनेके कारण का विचार किया तो उसे मालूम हुआ कि तीर्थंकर सिर्फ उच्च और शुद्ध क्षत्रिय कुलमें ही जन्म लेसकते हैं, अतः तुच्छ, भिखारी और नीच इस ब्राह्मणकुलमें महावीरके जीव का अवतरित होना योग्य नहीं है। ऐसा विचार कर इन्द्रने अपने कल्पके अनुसार, अपने अनुचर देवों के द्वारा योग्य गर्भ-परिवर्त्तन कराकर कर्त्तव्य पालन किया। महावीरके जीवने पूर्व भवमें बहुत दीर्घकाल पूर्व कुल मद करके जो नीच गोत्र उपार्जन किया था, उसके अनिवार्य फल के रूप में नीच या तुच्छ गिने जाने वाले ब्राह्मण कुलमें थोड़े समयके लिये ही सही, परन्तु जन्म लेना ही पड़ा। भगवान् के जन्म-समय विविध देवदेवियोंने अमृत, गन्ध, पुष्प, सुवर्ण, चाँदी आदि की वर्षा की। जन्म के पश्चात् स्नात्र के लिये इन्द्र जब मेरु पर लेगया तब उसने त्रिशला माता को अवस्वापनी निद्रा से बेभान करदिया।

—त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग २, पृ० १६-१९।

थैनासे विष्णुने अवतार लेनेका निश्चय करके योग माया नामक अपनी शक्तिको बुलाया। उसको संबोधन करके विष्णुने कहा—तू जा और देवकी गर्भमें मेरा जो शेष अंश आया हुआ है, उसे वहाँ से संकर्षण (हरण) करके वसुदेवकी ही दूसरी स्त्री रोहिणीके गर्भमें प्रवेशकर, जो बलभद्ररामके रूपमें अवतार लेगा और तू नन्दपत्नी यशोदाके घर पुत्री रूपमें अवतार पायेगी। जब मैं देवकीके आठवें गर्भके रूपमें जन्मूंगा तब तेरा भी यशोदाके घर जन्म होगा। एक साथ जन्मे हुए हम दोनों का, एक दूसरेके यहाँ परिवर्त्तन होगा। विष्णुकी आज्ञा शिरोधार्य करके उस योगमाया शक्तिने देवकीको योग निद्रावश करके सातवें महीने उसकी कोखमें से शेष गर्भका रोहिणीकी कुक्षिमें संहरण किया। इस गर्भसंहरण करनेका विष्णुका हेतु यह था कि कंसको, जो देवकीसे जन्मे हुए बालकोंकी गिनती करता था और आठवें बालकको अपना पूर्ण शत्रु मानकर उसका नाश करनेके लिए तत्पर था, गिनती करनेमें शिकस्त देना। जब कृष्णका जन्महुआ तब देवता आदि सबने पुष्प आदिकी वृष्टि करके उत्सव मनाया। जन्म होतेही वसुदेव तत्काल जन्मे हुए बालक कृष्णको उठाकर यशोदाके यहाँ पहुँचानेले गये। तब द्वारपाल तथा अन्य रक्षक लोग योगमायाकी शक्तिसे निद्रावश हो अचेत हो गए।

—भागवत दशमस्कन्ध अ० २, १-१३ तथा अ० ३ श्लो० ४६-५०

(२)

पर्वत—कम्पन

जब देव देवियाँ महावीरका जन्माभिषेक करने के लिये लेगए तब उन्हें अपनी शक्तिका परिचय देने के लिए और उनकी शंकाका निवारण करने के लिये इस तत्काल प्रसूत बालकने केवल अपने पैरके अँगूठे

इन्द्रके द्वारा किये हुए उपद्रवोंसे रक्षण करनेके लिए तरुण कृष्णने योजन प्रमाण गोवर्धन पर्वतको सात दिन तक ऊपर उठाए रखा।

—भागवत, दशमस्कन्ध, अ० ४३ श्लो० २६-२७

से दबाकर एक लाख योजनके सुमेरु पर्वत्को कँपा दिया।

—त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग २, पृ० १९

(२)

बाल—क्रीड़ा

(१) करीब आठ वर्षकी उम्रमें वीर जब बालक राजपुत्रोंके साथ खेल रहे थे, तब स्वर्गमें इन्द्रके द्वारा की हुई उनकी प्रशंसा सुनकर, वहाँका एक मत्सरी देव भगवानके पराक्रमकी परीक्षा करने आया। पहले उसने एक विकराल सर्पका रूप धारण किया। यह देख कर दूसरे राजकुमार तो डरकर भाग गये, परन्तु कुमार महावीरने ज़राभी भयभीत न होते हुए उस साँपको रस्सी की भाँति उठाकर दूर फेंक दिया।

—त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग २ पृष्ठ २१

(२) फिर इसी देवने महावीरको विचलित करनेके लिए दूसरा मार्ग लिया। जब सब बालक आपसमें घोड़ा बनकर, एक दूसरेको वहन करनेका खेल खेल रहे थे तब वह देव बालकका रूप धरकर महावीरका घोड़ा बन गया। उसने दैवी शक्तिसे पहाड़जैसा विकराल रूप बनाया, फिर भी महावीर इससे तनिक भी न डरे और घोड़ा बनकर खेलनेके लिए आए हुए उस देवको सिर्फ़ एक मुट्ठी मार कर झुका दिया। अन्तमें यह परीक्षक मत्सरी देव भगवानके पराक्रमसे प्रसन्न होकर, उन्हें प्रणाम करके अपने रास्ते चला गया।

—त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग २, पृ० २१-२२

(१) कृष्ण जब अन्य ग्वाल-बालकोंके साथ खेल रहे थे, तब उनके शत्रु कंस द्वारा मारनेके लिए भेजे हुए अघ नामक असुरने एक योजन जितना लम्बा सर्प रूप धारण किया और बीच रास्तेमें पड़ रहा। वह कृष्णके साथ समस्त बालकोंको निगल गया। यह देखकर कृष्णने इस सर्पका गला इस तरह दबा लिया कि जिससे उस सर्प अघासुरका मस्तक फट गया, उसका दम निकल गया और वह मर गया। सब बालक उसके मुख में से सकुशल बाहर निकल आये। यह वृत्तान्त सुनकर कंस निराश हुआ और देवता तथा ग्वाल प्रसन्न हुए।

—भागवत दशमस्कन्ध, अ० १२, श्लो० १२-३५ पृष्ठ ८३८

(२) आपसमें एक दूसरेको घोड़ा बनाकर उसपर चढ़नेका खेल कृष्ण और बलभद्र ग्वाल बालकोंके साथ खेल रहे थे। उस समय कंस द्वारा भेजा हुआ प्रलम्ब नामक असुर उस खेलमें सम्मिलित हो गया। वह कृष्ण और बलभद्रको उठाले जाना चाहता था। वह बलभद्रका घोड़ा बनकर उन्हें दूर ले गया और एक प्रचंड व विकराल रूप उसने प्रगट किया। अन्तमें बलभद्रने भयभीत न होते हुए सख्त मुष्टिप्रहार किया जिससे उसके मुँहसे खून गिरने लगा और उसे मार डाला। अन्तमें सब सकुशल वापिस लौटे।

—भागवत दशम स्कन्ध, अ० २०, श्लो० १८-३०, पृ० ८६८

(क्रमशः)

(दूसरे पृष्ठ से आगे)

की चेष्टा करेंगे, यह आपने कैसे समझ लिया? दस्से और लोहड़साजनोंमें ज़मीन आसमानका अन्तर है। दस्सोंका नाम लेकर समाजको भड़कानेकी आपने बड़ी सुन्दर चाल सोचीहै!

२—अगर आपके मुनि चन्द्रसागरजी लोहड़साजन समाजको सदोष सिद्ध करना चाहते हैं तो उन्हें अवश्य इसके लिये प्रमाण देना पड़ेगा। यदि उनके पास लोहड़साजनोंको सदोष सिद्ध करनेके लिये कोई प्रमाण नहीं है तो क्यों वे जगह जगह अनशन का भय दिखलाकर लोहड़साजनोंकी पूजा प्रक्षाल छुड़ाने और भोजनव्यवहारके त्यागकी प्राणपणसे चेष्टा कर रहे हैं? जज तब तक किसीको चोरीकी सज़ा नहीं देसकता जबतक उसकी चोरीको सोलहों आना साबित न करदे। आपके लेखानुसार चन्द्रसागरजी अपनेको जज और लोहड़साजनोंको चोर समझते हैं तो इन जज साहबका कर्तव्य है कि (जो वीतरागके महान् और उन्नतासनसे उतरकर जजके

राज्यासन पर बैठना चाहते हैं) वे उन्हें चोर साबित करदें। लोहड्साजनोंकी तरफ़से तो अनेकों बार बरियत करदी गई है अथवा उन्हें बरियत करनेकी आवश्यकता भी नहीं है क्योंकि इनका सनातन व्यवहार ही इनकी बरियत है। इस चोर और जजवाली आपकी विचित्र सूझ और उपमानोपमेय भावको पढ़कर हमें और हमारे साथियोंको बड़ी हँसी आ रही है।

३—किस गुटकेकी कौनसी पंक्तियें आपको संशयास्पद मालूम होरही हैं, स्पष्ट नामोल्लेख करदेते तो अच्छा होता। तर्कशास्त्रके अनुसार दो समानधर्मोंके देखने और विशेष धर्मोंके याद आनेसे अथवा विशेष धर्मों की अप्रत्यक्षतासे संशयकी उत्पत्ति होती है। यहाँ कौन से समान धर्म और विशेष धर्म हैं, लिखनेकी कृपा कीजिये। केवल साध्य वाक्य कह देनेसे काम नहीं चल सकता। हेतुकी भी आवश्यकता है। यदि उस गुटकेकी पंक्तियाँ संशयास्पद हैं तो किस गुटकेकी निश्चयास्पद हैं, यहभी आपको लिखना था। वक्ताकी प्रमाणतासे वचनोंकी प्रमाणता होती है, यह तो हम भी मानते हैं किन्तु वक्ताको अप्रमाण माननेका कारण बताये बिना काम नहीं चलसकता।

४—कौन कहता है कि लोहड्साजन बड़साजनोंकी बराबरीका अंग नहीं है? क्या केवल आपके लिखनेमें ही? दोनोंका अलग अलग वर्ग मानना वर्गकी परिभाषामें अनभिज्ञता प्रगट करना है। खण्डेलवाल वैश्य और खण्डेलवाल ब्राह्मणों का दृष्टान्त बिल्कुल असंगत है क्योंकि प्रकृत विषय को बिल्कुल सिद्ध नहीं करता। बड़साजन और लोहड्साजनोंके जो ८४ गोत्र हैं, वे खण्डेलवाल वैश्य और ब्राह्मणोंमें नहीं पाये जाते। इसलिये गोत्र समान होनेसे लोहड्साजन बड़साजनोंमें कोई भेद नहीं है। आपके चन्द्रसागरजी महाराज का जिनने बहिष्कार किया है उन्हींसे पूछना चाहिये कि उनने रोटियाँ बन्द करनेके लिये बहिष्कार किया था या अन्य किसी कारण से? चन्द्रसागरजीसे किसीको कोई जाति द्वेष नहीं है, किन्तु जब वे अपने पदके विरुद्ध कार्य कररहे हैं तब उन्हें कोई मुनि कैसे मान सकता है? यदि ये कषायें छोड़कर अपने पदके अनुकूल कार्य करने लगें तो हम उन्हें परमपूज्य माननेके लिये तैयार हैं और तबही उनके द्वारा संसारका हित होसकता है। पर, आज तो वे लोहड्साजन आन्दोलनके सर्वेसर्वा बने हुए हैं। चाहे ऊपरसे चन्द्रसागरजी के भक्त उन्हें कुछभी न कहें, तोभी उनका हृदय तो अवश्य उनका बहिष्कार करता होगा। ऐसा कौन दयाहीन होगा जो उनकी ऐहिक यात्रा समाप्त होजाने पर अपना कलेजा ठंडा करे? यह तो केवल सोनीजीकी दूषित वृत्तिका प्रतिबिम्ब मात्र है।

६ "पीनो देवदत्तो दिवा न भुंक्ते" यह प्रसिद्ध अर्थापत्ति लेखकके पक्षका समर्थन न कर उसे छिन्न भिन्न करडालती है। जैसे दिनमें नहीं खाने परभी देवदत्तका मोटापन रात्रिभोजनको सिद्ध करता है, इसीप्रकार लोहड्साजनोंका अविच्छिन्न परम्परागत धार्मिक व लौकिक व्यवहार इनकी सर्वथा निर्दोषता को सिद्ध करता है। अतः न ये सदोष हैं और न भिन्न-जातीय हैं।

अन्तमें हम लेखक महोदयसे सविनय और सस्नेह नम्र निवेदन करते हैं कि वे समाजमें सारहीन व्यर्थके झगड़ोंको बढ़ाकर इसकी शांतिको भंग न करें। पहलेसे ही समाजमें दुर्भाग्यसे अनेक झगड़े मौजूद हैं। आये दिन इन नये झगड़ोंके पैदा करनेकी क्या आवश्यकता है? चन्द्रसागरजी महाराजका तो यह कर्त्तव्य था कि वे संसारमें शान्ति स्थापनकी चेष्टा करते, पर जब उनके भक्तही उन्हें ऐसे कामोंके लिये उत्साहित करते हैं तब वे शान्ति का मूल्य कैसे समझ सकते हैं? हम सब लोग एक ही जातिके अंग हैं, एकही शरीरके हिस्से हैं अतः हमें आपसमें इस प्रकार द्वेषवर्द्धनके काम कभी न करने चाहिये। हम तो 'सत्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं' के सिद्धान्तको माननेवाले हैं। भगवान् महावीरके भक्तोंमें इस प्रकार परस्पर झगड़े हों, यह हमारे लिये शर्मकी बात है। आशा है मेरे माननीय मित्र लेखक महोदय और चन्द्रसागरजी महाराज मेरी इन पंक्तियोंसे अवश्य लाभ उठावेंगे। इति शम्।

—कैलाशचन्द्र जैन शास्त्री।

Printed by Pt. Radhaballabh Sharma, at the Ajmer Printing Works, Ajmer.

उत्तर देते–अपनासा मुँह लेकर वापिस लौट गये।

मिती जेठसुदी ७ को रातके १२ बजेतक पचायती होती रही। अंतमें बारात लेजाना निश्चय होने पर स्वयं श्रीमान् सेठ मूलचन्दजी बड़जात्या (सभापति खंडेलवाल महासभा) ने वर महोदयको समस्त पंचोंके समक्ष पगड़ी बँधवाई तथा आशीर्वाद दिया। जेठसुदी ८ के प्रातःकाल ७ बजे बारात रवाना हुई। स्टेशन पर लाडनूके करीब १५० प्रतिष्ठित महानुभाव उपस्थित थे। जेठसुदी ८ की रातको ९ बजे बारात जब किशनगढ़ पहुँची तो वहाँपर भी कई प्रतिष्ठित बड़साजनोंने उनका स्वागत किया।

पाणिग्रहणसंस्कार जैनविवाह पद्धतिके अनुसार "लोहड़साजन निर्णय" पुस्तकके लेखक श्रीमान् पं० कन्हैयालालजी शास्त्रीने कराया था। पंचायती दस्तूर त्योद व रूपनगढ़के पंचोंने मिलकर कराये। मिती जेठसुदी १२ को बारात त्योदसे जब वापिस किशनगढ़ आई तो अजमेर निवासी श्रीमान सेठ मोहरीलालजी गणेशीलालजी सोगाणीने अपनी पुत्रियोंके भात (बढार) में उनको सत्कारपूर्वक निमंत्रित कर जिमाया। सोगाणियोंका अजमेरमें प्रतिष्ठित घराना है। उनके यहाँ विवाहमें इस समय अजमेर, नसीराबाद, बीर, डेराठू, भिणाद, जयपुर, इन्दौर, पाडली, हरमूली, दातिया, किशनगढ़ आदि विभिन्न स्थानोंके ५००–६०० मेहमान आये हुए थे और उन सबने लाडनूवालों तथा लोहड़साजनोंके साथ और उनके हाथसे परोसा हुवा भोजन जीमा; किसीने भी कुछ एतराज नहीं किया। इसके पहिले दिनभी कुछ बारातियोंको, जो सैर के लिये अजमेर जा रहे थे, श्रीमान मोहरीलालजीने गणेशीलालजी साग्रह आमंत्रित कर जिमाया था।

इस विवाहकी सफलताका सारा श्रेय लाडनूकी पंचायतीको है, जो तारों व टेलीफोनोंके तूफानमें अपनी गतिको स्थिर रखते हुए न्यायमार्ग पर डटी रही। लोहड़साजन आंदोलन लाडनूमें ही उठाथा, अतः यह आवश्यक था कि इस झगड़ेका खातमा भी वहीं किया जाय। श्री० सेठ गजराजजी गँगवाल (मालिक फर्म सेठ तोलारामजी नथमलजी) भूतपूर्व सभापति खंडेलवाल महासभा, व मंत्री दिगम्बर जैन खंडेलवाल पचायत कलकत्ता, श्री० सेठ दुलीचन्दजी सेठी (मालिक फर्म सेठ पदमचन्दजी पन्नालालजी) मंत्री बंगबिहार अहिंसा धर्म परिषद् कलकत्ता, श्री० सेठ तनसुखलालजी पांड्या आदिके नाम खासतौरसे उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने कलकत्तामें विरोधियोंकी एक न चलने दी तथा वर व कन्या-पक्ष को हर तरह प्रोत्साहन देकर इस कार्यको सफलतापूर्वक सम्पन्न कराया।

हमे यह जानकर कि श्रीमान सेठ भागचन्दजी साहबने भी श्रीमान सेठ गम्भीरमलजी पाँड्याके लिहाजमें आकर इस विवाहको रुकवानेके लिये प्रयत्न किया था, बड़ा अफसोस हुवा। लोहड़साजनों को बड़साजनोंके समान पूजा प्रक्षाल करने तथा मुनिको आहार देनेका अधिकार है–यह उनके पिता स्वर्गीय श्रीमान रायबहादुर सेठ टीकमचंदजीने अनेकबार स्वीकार कियाथा तथा वे स्वयंभी चित्तौड़गढ़ से किशनगढ़के पंचोंके नाम लिखी गई इस आशय की चिट्ठी पर हस्ताक्षर कर चुके हैं। इसके अतिरिक्त आपके स्वर्गीय पिताजीके नुक़तेके अवसर पर जब विरोधियोंने बहुत चाहा कि तेरहपंथी धड़ेकी पंचायत लोहड़साजनोंके सम्बन्धमें प्रतिबंध लगा दे जिससे आप नुक़ते पर लोहड़साजनोंको अथवा उनसे सम्बन्धित व्यक्तियोंको आमंत्रित न कर सकें, तो आपने इसका विरोध कर पंचायती नहीं होने दी थी तथा नुक़ते पर सभी लोगोंको समानरूपसे निमंत्रण दिया था। रही लोहड़साजनों—बड़साजनोंके परस्पर विवाहसम्बन्धकी बात, सो इससे भी आप असहमत नहीं होसकते, करण, आप लोहड़साजनोंसे सम्बन्धित व्यक्तियोंसे स्वयं सम्बन्धित हैं। इस विषय पर "लोहड़साजन निर्णय" में काफी प्रकाश डाला जा चुका है। अतः जबतक कि आप लोहड़साजनों

(देखो पृष्ठ ४४ कालम १)

अंक १५-१६
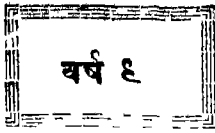
ज्ये.कृ.४, आषाढ शु.५

वीर संवत् २४६०
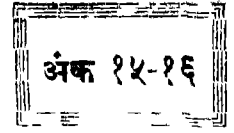
ता० १६ जून, १ जुलाई

सन् १९३४ ई०

जैनधर्म का मर्म ।

(४७)

अचौर्य ।

दूसरेकी वस्तुको उसकी अनुमतिके विना अपनी बनालेना चोरी है और इसका त्याग अचौर्य है। चोरीभी दुःखप्रद होनेसे हिंसा है तथा सत्यका नाशक होनेसे या यों कहना चाहिये कि सत्यका घात किये विना चोरी हो नहीं सकती इसलिये चोरीभी असत्य है। व्यवहारमें किसीको मारनेमें ही हिंसा शब्दका व्यवहार होता है इसलिये स्पष्टताके लिये चोरीको अलग पाप और अचौर्यको एक स्वतन्त्र व्रत रूपमें स्वीकार करना पड़ा है।

अहिंसा और सत्यके विषयमें कहा था कि अहिंसा हिंसा, और हिंसा अहिंसा होजाती है; सत्य असत्य, और असत्य सत्य होजाता है, इसी प्रकार चौर्य अचौर्य और अचौर्य चौर्य होजाता है। बहुत से कार्य ऐसे हैं जो स्थूल दृष्टिसे देखने पर चोरी मालूम होते हैं फिरभी वे चोरी नहीं होते; और बहुतसे काम ऐसे हैं जो चोरी नहीं मालूम होते, फिर भी वे चोरी ही हैं। इसप्रकार अहिंसा और सत्यके समान यह व्रतभी सूक्ष्म है तथा निरपवाद नहीं है। कुछ उपनियमों तथा उदाहरणोंसे यह बात स्पष्ट होजायगी।

१—कोई वस्तु अगर अपनी हो परन्तु यह बात अपनेको मालूम न हो, फिरभी उसे लेलेना चोरी है, क्योंकि लेनेवालेने उसे अपनी समझकर नहीं लिया है। यह तो आकस्मिक बात हुई कि वह अपनी निकली परन्तु अगर वह दूसरेकी होती तो उसे ग्रहण करनेमें इसे कुछ एतराज़ नहीं था। इसलिये ऐसा मनुष्य चोर ही है। यह अपनी है या नहीं, इस प्रकारके संदेहमें पड़करभी ग्रहण कर लेना* चोरी है।

२—अपने कुटुम्बियोंसे छुपाकर अपनी वस्तु का ग्रहण करना चोरी है। कुटुम्बकी सम्पत्ति पर प्रत्येक कुटुम्बीका न्यूनाधिक अधिकार है। इसलिये जब हम कोई चीज़ ग्रहण करते हैं तब अन्य कुटुम्बियों का अधिकार हड़प करते हैं। भलें कि हमें कोई रोकनेवाला नहीं है, या अनुमति माँगने भरकी देर है, सूचना देने पर तुरंत मिल जायगी; तो भी अनुमति न लेकर किसी चीज़ का उपयोग करलेना चोरीही है। अनुमति लेनेका समय न हो तो पीछेसे सूचना देना चाहिये, अथवा उसके छुपाने का भाव तो कदापि न होना चाहिये। कल्पना करो हम बाज़ारसे दसआम लाये। घरमें पाँच आदमी हैं परन्तु दूसरोंने यह सोचकर कि इनका परिश्रम उच्च श्रेणीका है इसलिये मुझे दो के बदले चार आम दिये और मैं खागया। यद्यपि यहाँ कुछ कहने सुनने की आवश्यकता नहीं हुई फिरभी सबने मौनभाषामें यह कह दिया कि हमने तुम्हारा हिस्सा तुम्हारी योग्यता और परिश्रमके अनुसार चुका

*—स्वमपि स्वं मम स्याद्वान वेति द्वापरास्पदम्।
यदात्तदाऽऽ दीयमानम् व्रतभङ्गाय जायते।

सागार धर्मामृत ४—४९

दिया है, अब हमारे ऊपर ऋण न रहा आदि: परन्तु यदि दो आम चोरीसे खाता हूँ और प्रगट रूपमें उतनाही हिस्सा खाता हूँ जितना दूसरोंको मिला है तो इसका अर्थ यह हुआ कि मैं मौनभाषा में कह रहा हूँ कि मैंने अपनी योग्यताका अधिक भाग नहीं लिया इसलिये वह ऋण तुम लोगों पर चढ़ा हुआ है। आसामीसे रुपये लेकरभी यह कहना कि मैंने नहीं लिया, कुछ न देकर के भी यह कहना कि मैं दान दिया है, जैसे यह चोरी है, उसी प्रकार इस आमके दृष्टान्तमें भी चोरी है। इसी प्रकार बच्चों वगैरहसे छुपाकर खाना भी चोरी है, क्योंकि इसमें कुछ न देकर भी दूसरोंको ऋणी बनाये रहने की दुर्वासना है।

३—मैं अर्थोपार्जन करता हूँ, इसलिये सम्पत्तिपर मेरा ही पूर्ण अधिकार है, यह समझनाभी चोरीहै। समाजने सबकी सुविधाके लिये काम का बटवारा कर दिया है। कुछ काम पुरुषके हाथमें सौंपा, कुछ स्त्रीके हाथमें। वृद्धावस्थामें शरीर शिथिल होजाने पर या अपना गृहस्थोचित कर्तव्य कर जाने पर माता पिताको पेंशन दी। समाजके दो प्रतिनिधियों (माता पिता) ने तुम्हें पाला, इसलिये तुम्हें अपनी सन्तानका पालन करना चाहिये, इस प्रकार मैं कर्तव्यमें बँधा हूँ। माता पिता तथा सन्तान हमारे साहुकार या साहुकारके प्रतिनिधि हैं। मैं जो कुछ देता हूँ वह अपना ऋण चुकाता हूँ। ऋण चुकानेको मैं दान समझूँ इसका मतलब यह हुआ कि मैं ऋण को अस्वीकार करता हूँ। इसप्रकार परधनको जबर्दस्ती अपनाता हूँ, यह चोरपन ही नहीं है किन्तु जबर्दस्तीका भाव आजानेसे डाँकूपन भी है। और स्त्री तो स्पष्ट रूपमें ही साझेदार है। हमारे अमुक परिश्रमका उपयोग वह करती है और उसके अमुक परिश्रमका उपयोग हम करते हैं, इस प्रकार वह हिस्सेदार है। अब अगर मैं उपार्जित सम्पत्तिपर अपना पूर्णाधिकार समझता हूँ तो मैं अपने हिस्सेदार का तथा साहुकारका हिस्सा हड़प जाता हूँ इस प्रकार मैं चोर हूँ। घरमें अगर कुटुम्ब विभक्त न हुआ हो तो पुत्रवधू भ्रातृवधू, या भौजाई विधवा हो उसका सम्पत्तिमें उचित हिस्सा न मानना तथा उसका हिस्सा उसकी इच्छा होने पर भी न देना भी चोरी है।

४—अविभक्त कुटुम्ब होनेपर भी जो सम्पत्ति किसी व्यक्तिके लिये नियत करदी गई हो, उसे उसकी इच्छाके बिना ग्रहण करनाभी चोरी है। जैसे—अविभक्त कुटुम्बके भीतर स्त्रीधन अर्थात् विवाह अवसरके पर दोनो पक्ष (वरपक्ष और कन्यापक्ष) से मिली हुई सम्पत्ति पर अधिकार करलेना चोरी ही है। इसका चौर्यपन स्पष्ट है।

५—कन्याविक्रय और वरविक्रय भी चोरी है। वरपक्षसे अमुक धन लेकर कन्याका विवाह करना कन्याविक्रय है, और कन्यापक्षसे अमुक धन लेकर वरका विवाह करना वरविक्रय है। ये दोनोंही चोरी हैं। कन्याको अधिकार है कि वह अपनी इच्छाके अनुसार योग्य वर से शादी करे और वर को अधिकार है कि वह अपनी इच्छाके अनुसार योग्य कन्याके साथ शादी करे। कन्याविक्रय और वरविक्रयमें दोनोंका यह जन्म सिद्ध अधिकार छीन लिया जाता है।

शंका—कन्याशुल्क लेनेका रिवाज तो बहुत पुराना है। और यह उचितभी मालूम होता है; क्योंकि जब माता पिताने कन्याका पालन किया है, तब उसका मिहनताना उन्हें मिलनाही चाहिये।

समाधान—कन्याशुल्कका रिवाज समाजकी अविकसित अवस्थामें था, किन्तु वह बुरा था। ज्यों ज्यों विकास होता गया त्यों त्यों उस कुरीतिका त्याग भी होता गया। पुराना होनेसे कोई पाप पुण्य नहीं बनजाता। इसके अतिरिक्त वरविक्रयका रिवाज तो पुरानाभी नहीं है और न कन्याशुल्कके समान थोड़ासा भी नैतिक सहारा रखता है। वरपक्षको किस हैसियतसे कन्यापक्षसे कुछ लेनेका अधिकार मिलसकता है? कन्याके मातापिताने

कन्याका पालन करदिया, इतनाही उचित है। अब वह कन्याको सम्पत्ति क्यों दे? कन्याविक्रयके रिवाजसे कन्याशुल्कका रिवाज कम खराब है। क्योंकि कन्याशुल्कके रिवाजमें तो वर कन्याको पारस्परिक चुनाव करनेका पूर्ण अधिकार होता था। दोनोंका सम्बन्ध जब तय होजाता था तब वर, कन्या के पितासे शुल्कका परिमाण पूछता था। वह शुल्क कन्याके पालनपोषणके खर्चके अनुसार नियत रहता था, न कि वरके अनुसार घटता बढ़ता था। कन्याविक्रयमें तो जितनाही अधिक बूढ़ा और अयोग्य वर होगा, कन्याका पिता उतनाही अधिक धन लेगा। एक तरहसे वह वरकी योग्यताका विचार न करके कन्याको नीलाम पर रखदेगा। जो सबसे अधिक धनदे, वही कन्याको प्राप्त करे। इसपर इसमें कन्याका अधिकार हड़प लिया जाता है। कन्याशुल्कके रिवाजमें यद्यपि इतनी बुराई नहीं है, फिरभी बुराई है, क्योंकि इससे चुनावमें बाधा पड़सकती है। किसीके पास धन न हो और कन्या उसे पसन्द करे तो उसकी यह पसन्दगी कन्याशुल्क न चुका सकने के कारण व्यर्थ जायगी। हाँ, कन्या शुल्कके रिवाजमें शुल्क चुकानेका एक तरीक़ा और था कि जो शुल्क न चुकासके वह अमुक समय तक श्वसुरके घरमें रहकर काम करे, इसप्रकार उसका ऋण चुक जायगा। इस तरह इस प्रथाका बहुत कुछ विषापहरण होगया था, फिरभी व्यवहारमें यह बहुत कठिन होनेसे इससे हानि ही थी, इससे उठगया।

इसके अतिरिक्त इन दोनों—कन्या विक्रय और कन्याशुल्क-के विषयमें एक विचारणीय बात और है। मातापिता का यह समझना कि हमने पुत्रीका पालन किया है इसलिये उसके बदलेमें कुछ लेनेका हमें अधिकार है, अनुचित है। पहले कहा जाचुका है कि सन्तानका पालन समाजका ऋण चुकाना है। पुत्रको तो इसलिये पिताकी सेवा करना चाहिये कि वह सम्पत्तिका उत्तराधिकारी है। कन्या पिताके इस उत्तराधिकारसे मुक्त है इसलिये सेवासे मुक्त है। हाँ, दूसरे घरमें रहते हुएभी जितनी सेवा की जासकती हो, उतनी करना चाहिये। परन्तु पिता इसके लिये नैतिक दबाव नहीं डाल सकता। इसलिये उसे कन्याशुल्क लेनेका क्या हक़ है? ऋण चुकाना कुछ साहुकारी नहीं है कि वह वापिस माँगी जाय। इसलिये कन्याशुल्क चोरी है, और कन्याविक्रय तथा वरविक्रय तो इससे भी कईगुणी चोरी तथा डाँकूपन है।

६—अन्याय्य उपायोंसे तथा बदलेमें कुछभी न देकर धनोपार्जन करनाभी चोरी है। किसी जगह जूआ या सट्टेकी मनाई हो तब इनसे धन कमाना तो चोरी है ही, परन्तु यदि इनकी क़ानूनसे मनाई न भी हो तो भी इन मार्गोंसे धन कमाना चोरी है। क्योंकि धनोपार्जनके अधिकारका नैतिक मूल यही है कि हम समाजसेवाका बदला प्राप्त करें। हमने ज्ञानसे, शब्दसे, कलासे, शारीरिक श्रमसे कुछ सेवा की, उसके बदलेमें धन लेनेका हमें अधिकार मिलता है; अगर हमने कोई भी सेवा न की तो धन लेना चोरी है। जूए और सट्टेमें हम समाजकी कोई सेवा नहीं करते इसलिये हमें उससे धन प्राप्त करनेका कोई अधिकार नहीं है। फिर भी हम धन लेते हैं, इसलिये वह चोरी है।

७—जिस मालका वायदा किया है उसके बदले में दूसरा खराब माल देदेना भी चोरी है। इसका चोरीपन स्पष्ट ही है।

८—भ्रमसे, अनिच्छापूर्वक वा छलसे अनुमति प्राप्त करलेना भी चोरी है। जैसे कोई आदमी हमारे पास रुपये रखगया परन्तु भूलसे उसने थोड़े माँगे तो जानते हुए भी उसके बाक़ी रुपये न देनाभी चोरी है। कोई आदमी देना तो नहीं चाहता किन्तु अगर न देगा तो हम यह नुकसान करदेंगे या अमुक काम ठीक तरहसे न करेंगे—ऐसे दबावसे धन लेना चोरी है। लाँच लेना इसी श्रेणीकी चोरी है। लाँच लेना और इनाम लेना, इन दोनोंमें अन्तर है। इनाम प्रसन्नताका फल है और लाँच विवशताका फल है। इसलिये इनाममें जराभी चोरी नहीं है और लाँच पूरी चोरी है।

९—जनसाधारणकी सम्पत्तिका न्यायानुसार उपयोग करना चोरी नहीं है। इसमें व्यक्तिकी अनुमति नहीं माँगना पड़ती, जैसे सड़कपर चलनेके लिये, तालाबसे पानी लेनेके लिये अनुमति नहीं लीजाती; फिरभी यह चोरी नहीं है। परन्तु यदि स्वच्छताके लिये यह नियम बनादिया गया हो कि अमुक घाट पर स्नान न किया जाय, अमुक बगीचेमें अमुक समयसे अधिक समय तक न बैठा जाय, तब इन नियमोंका भंग करना भी चोरी है। अगर हमें इन नियमोंके बाहर काम करनेकी जरूरत हो तो अनुमति लेना चाहिये। हाँ, अगर हमें यह मालूम हो कि अमुक प्रतिबन्ध अधिकारियोंने पक्षपातवश अन्यायपूर्वक बनाया है तो उसे हम तोड़ सकते हैं। परन्तु उसमें सत्याग्रहके नियमोंका पालन होना चाहिये।

१०—अनुमतिके बिना किसीकी चीज़ लेना ही चोरी नहीं है किन्तु उसीके पास रहने पर भी दूसरे उसका उपयोग कर लेनाभी चोरी है। जैसे छुपकर कोई ऐसा खेल देख लेना जिसपर टिकिट हो या छुप कर गाना सुन लेना चोरी है। समाचार पत्र वालेकी दूकानपर जाकर समाचार पढ़ लेना और फिर पेपर न खरीदना चोरी है। हाँ, जितना हिस्सा उसने विज्ञापनके लिये पढ़नेको छोड़ रक्खा हो उतना पढ़नेमें कोई हानि नहीं है, क्योंकि उतना पढ़नेके लिये उसने सभीको अनुमति देरक्खी है, इसलिये हमें भी वह अनुमति प्राप्त है।

अभी तक जो चोरियाँ बताई गईं उनका सम्बन्ध धनसे है परन्तु धनकीही चोरी नहीं होती किन्तु धनसे भिन्न वस्तुकीभी चोरी होती है। जैसे—

११—यशकी चोरी एक बड़ी भारी चोरी है। जैसे दूसरेकी रचनाओंको अपना बताना चोरी है। रचनाकी मुख्य वस्तु हड़पकर उसको छुपानेके लिये कुछ दूसरा रंग चढ़ाना भी चोरी है। आवश्यकतावश अगर हमें ऐसा करना पड़े तो कृतज्ञता प्रगट करना चाहिये।

शंका – मनुष्यके पास अपना तो कुछभी नहीं है। मनुष्य अगर पैदा होनेके साथ समाजसे अलग कर दिया जाय तो वह जीवित ही न रह सकेगा। अगर वह जीवित भी रहा तो पशुसे भी बुरा होगा। वह मनुष्यके समान बोल भी न सकेगा। जब भाषा तक अपनी नहीं है तब और तो अपना क्या होगा? इसलिये वह अपनी किसी रचनाको कभी अपना नहीं कह सकेगा। कहेगा तो आप उसे चोर कहेंगे।

समाधान—जो ज्ञानधन जनसाधारणकी सम्पत्ति रूपमें प्रसिद्ध हो गया है, उसे लेनेमें चोरी नहीं है, न उसके लिये कृतज्ञता प्रगट करनेकी जरूरत है। मिट्टी जनसाधारणकी हो सकती है, परन्तु मिट्टीको लेकर जो कोई रचनाविशेष (घर आदि) बनाता है, वह उसीकी चीज कहलाती है। ज्ञानादि जो सम्पत्ति जनसाधारणकी चीज़ बन गई है उसके विषयमें व्यक्तिविशेषको व्यक्तिविशेषकी कृतज्ञता प्रगट करनेकी जरूरत नहीं है। करे तो अच्छा, न करे तो भी कोई बुराई नहीं है। परन्तु किसीका जो विचार जब तक जनसाधारणकी सम्पत्ति न बन जावे तबतक कृतज्ञतापूर्वक ही हमें उसका उल्लेख करना चाहिये।

शंका—अमुक विचार जनसाधारणकी सम्पत्ति बन गया है, इसको कैसे समझा जाय?

समाधान—जब लोगोंमें यह खूब प्रसिद्ध होजाय कि यह विचार अमुकका है तो वह जनसाधारणकी सम्पत्ति है। महावीर, बुद्ध, रामायण, महाभारत आदि के उपदेश जनसाधारणकी सम्पत्ति कहे जासकते हैं।

इस विषयमें असली बात तो यह है कि जो बातें हमने अपने विचारसे खोजी हों, जो हमारे अनुभवका फल हों, वे हमारी हैं, भलेही वे अन्यत्र भी पाई जाती हों। दार्शनिक जगतमें ऐसे विचारों की समानता बहुत होती है। वैज्ञानिक खोजके विषय में समानताकी बात इतनी नहीं कही जा सकती; तथा कहानियों तथा कविताओंके विषयमें तो समानता अशक्यही समझना चाहिये। मौलिक क्या है, और अमौलिक क्या है, इस विषयमें कदाचित् दुनियाँको धोखा दिया जासके, परन्तु अपना अन्त-

त्मा इस बातको अच्छी तरह जानता है कि मेरा क्या है और चोरीका क्या है।

१२—आवश्यकता होनेपर और मौका आनेपरभी कृतज्ञता प्रकाशित न करना भी चोरी है। जैसे किसीके उपदेशसे या सहायतासे कोई विद्वान ज्ञानी बना, या उसके मिथ्या विचार बदले। अब यदि वह कहे कि इसमें तुम्हारा क्या, वह तो ऐसा होनाही था इसलिये अपनेही आप मेरे विचार बदले हैं, तुममें मेरे विचारोंके बदलनेकी क्या ताक़त है? इस प्रकार उपकार न मानना उसके यशकी चोरी है।

१३—स्वार्थवश, द्वेषवश एकका यश दूसरेको देनाभी चोरी है।

जैसे कोई ब्राह्मण जातिका पुजारी कहे कि धर्मका प्रचार तो ब्राह्मणही कर सकते हैं, क्षत्रिय और वैश्य ब्राह्मणोंकी बराबरी कदापि नहीं कर सकते; महावीर का तो नाम है, काम तो उनके ब्राह्मण शिष्योंका है। यहभी जातिमदके कारण की जानेवाली यशकी चोरी है। इसी प्रकार किसी आदमीसे द्वेष होगया हो तो उसकी सफलताओंका श्रेय दूसरोंको देना, उसकी सफलताकी चर्चा में उसका नाम भी न लेना या दबेछुपे शब्दोंमें गौण बनाकर लेना आदि भी चोरी है, क्योंकि इसमें विपक्षीका यश चुराकर वह चोरीका माल अपने पक्षवालोंको दिया जाता है।

१४—दुनियाँको यह बताना कि हमने इस चीज़का त्याग किया है परन्तु छुपकर, या इस ढंगसे जिससे लोगोंको यह पता न लगे कि हम इसका सेवन करते हैं, सेवन करना चोरी है। रात्रिभोजन त्यागी समाजसे छुपाकर—उससमाजसे छुपाकर कि जिसके सामने उसे प्रगट करना है कि मैं अमुकका त्यागी हूँ—रात्रिभोजन करना चोरी है। इसी प्रकार अन्य सब त्यागोंकी बात है।

इस प्रकार यशकी चोरी भी चोरी है।

१५—दूसरेके नैतिक अधिकारोंकी भी चोरी होती है। स्टेशन पर टिकिट खरीदनेके लिये या और किसी जगहपर बहुतसे आदमी एकत्रित हैं। उनको क्रमशः टिकिट आदि लेना चाहिये परन्तु क्रम भंग करके अपनेसे पहिले वालोंकी पर्वाह न करके शक्तिसे, चञ्चलतासे, धृष्टतासे पहिले टिकिट लेलेनाभी चोरी है। रेलमें हम चार आदमियोंकी जगह रोके हुए हैं। जगह यदि खाली पड़ी हो तो उसका उपयोग भलेही किया जाय परन्तु जब दूसरोंको बैठनेको भी जगह न मिले, फिर भी अधिक जगहको रोके रहना चोरी है। जगह होने परभी दूसरे यात्रियोंको न आने देना चोरी है। टिकटके दृष्टान्तमें हम दूसरेके अधिकार—समय—आराम आदिकी चोरी करते हैं। रेलमें बैठनेकी जगहके दृष्टान्तमें इन सब की चोरी स्पष्ट है।

इसप्रकार हम जीवनमें पद पद पर चोरी करते हैं। इनमेंसे बहुतसी चोरियाँ केवल हमारे पापकी ही सूचना नहीं देती किन्तु वे हमारी असभ्यताकी भी सूचना देती हैं। ये क्रियात्मक चोरियाँ जब हमारे मनमें भी स्थान जमा लेती हैं तबभी वे चोरी ही कहलाती हैं। इन उदाहरणोंसे चोरीका स्वरूप समझमें आजाता है। चोरियोंकी सूची बनाना तो असम्भवही है परन्तु उसका श्रेणीविभाग करना भी कम कठिन नहीं है।

जब अहिंसाके अपवाद थे, सत्यके अपवाद थे, तब इस व्रतके अपवाद न हों यह कैसे हो सकता है? बाहिरी अहिंसा और बाहिरी सत्य कभी कभी कल्याणके विरोधी होजाते हैं, इसलिये कल्याणकी रक्षाके लिये बाह्य हिंसा और बाह्य असत्यका उपयोग करना पड़ता है। कल्याणकर होनेसे हिंसाको अहिंसा तथा असत्यको सत्य कहा जाता है। कभी कभी अशक्यानुष्ठान होनेसे ही हिंसाको हिंसा नहीं माना जाता। ये सब बातें अचौर्य व्रतके सम्बन्धमें भी हैं। इसलिये इसके भी बहुतसे अपवाद हैं। उदाहरणके तौरपर पाँच अपवाद यहाँ बताये जाते हैं।

१—किसीकी प्राणरक्षा, स्वास्थ्यरक्षा आदि के लिये उसके हितकी दृष्टिसे चोरीकरना अनुचित नहीं है।

वाग्रूपता चेदुत्क्रामेदवबोधस्य शाश्वती ।
न प्रकाशः प्रकाशेत सा हि प्रत्यवमर्शिनी ॥

भर्तृहरिके इसी सिद्धान्तकी श्वेताम्बर ग्रंथकार हरिभद्रसूरिने अपनी 'अनेकान्तजयपताका' के निम्न वाक्यमें तीव्र आलोचना की है और उसमें समन्तभद्रको 'वादिमुख्य' नाम देते हुए प्रमाणरूपसे उनका वचन उद्धृत किया है—

"एतेन यदुक्तमाह च शब्दार्थवित्, वाग्रूपता चेदुत्क्रामेत् इत्यादि कारिकाद्वयं तदपि प्रत्युक्तम् । तुल्ययोगक्षेमत्वादिति आह च वादिमुख्यः

बोधात्मा चेच्छब्दस्य न स्यादन्यत्र तच्छ्रुतिः ।
यद् बोद्धारं परित्यज्य न बोधोऽन्यत्र गच्छति ॥
न च स्यात्प्रत्ययो लोके यः श्रोत्रा न प्रतीयते ।
शब्दाभेदेन सत्येवं सर्वः स्यात्पर चित्तवत्॥ इत्यादि"

इस तरह पर यह स्पष्ट है कि समन्तभद्रके मत में शब्दाद्वैतका सिद्धान्त सुनिश्चित रूपसे असत्य है। समन्तभद्रके शब्दों "न च स्यात्प्रत्ययो लोके यःश्रोत्रा न प्रतीयते" की तुलना भर्तृहरिके शब्दों "न सोस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते" के साथ करने पर मालूम होता है कि समन्त न्तभद्रने भर्तृहरिके मतका खण्डन यथासंभव प्रायः उसीके शब्दोंको उद्धृत करके किया है, जो कि मध्यकालीन ग्रन्थकारोंकी विशेषताओंमें से एक खास विशेषता है, (लेखमें नमूनेके तौरपर इस विशेषताके कुछ उदाहरणभी दियेगये हैं।) और इसलिये समन्तभद्र भर्तृहरिके बाद हुए हैं।

(५) समन्तभद्रके शिष्य लक्ष्मीधरने अपने 'एकान्त खण्डन' में लिखा है –

अनेकांत लक्ष्मीविलासावासाः सिद्धसेमार्याः असिद्धिं प्रति(त्य) पादयन् षड्दर्शनरहस्यसंवेदनसंपादितनिस्सीम पाण्डित्यमण्डिताः पूज्यपादस्वामिनस्तु विरोधं साधयन्ति स्म । सकलतार्किकचक्रचूडामणिमरीचिमेचकितचरणनखमयूखा भगवन्तः श्रीस्वामिसमन्तभद्राचार्या असिद्धिविरोधावब्रुवन् । तदुक्तं ।

असिद्धिं सिद्धसेनस्य विरुद्धंदेवनन्दिनः ।
द्वयं समन्तभद्रस्य सर्वथैकान्तसाधनमिति ॥
नित्याद्येकान्तहेतौ कुंथतति(?)महितः सिद्धसेनो ह्यसिद्धं ।
प्रते श्रीदेवनन्दी विदितजिमतः सन् विरोधं व्यनक्ति ।"

इन अवतरणोंसे, जो कि एकान्तखण्डनके प्रारम्भिक भागसे उद्धृत किये गये हैं, स्पष्ट है कि पूज्यपाद समन्तभद्रसे पहले जीवित थे—अर्थात् समन्तभद्र पूज्यपादके बाद हुए हैं। और इसलिये पूज्यपादके जैनेन्द्र व्याकरणमें "चतुष्टयं समन्तभद्रस्य" यह समन्तभद्रके नामोल्लेख वाला जो सूत्र (अ० ५ पा० ४ सू० १६८) पाया जाता है, वह प्रक्षिप्त है। इसीसे जैन शाकटायनने, जिसने जैनेन्द्रव्याकरणके बहुतसे सूत्रोंकी नक़ल की है, उसका अनुसरणभी नहीं किया है, किन्तु "वा" शब्दका प्रयोग करके ही सन्तोष धारण किया है—अपना काम निकाल लिया है।

(६) उक्त एकान्तखण्डनमें लक्ष्मीधरने भट्टाचार्यका एक वाक्य निम्न प्रकारसे उद्धृत किया है:—

वर्णात्मकाश्च ये शब्दा: नित्याः सर्वगतास्तथा ।
पृथक् द्रव्यतया ते तु न गुणाः कस्यचिन्मताः ॥
—इति भट्टाचार्याः (ईवचमाख)

ये भट्टाचार्य स्वयं कुमारिल हैं, जो प्रायः इस नामसे उल्लेखित पाये जाते हैं, जैसा कि निम्न दो अवतरणोंसे प्रकट है:—

तदुक्तं भट्टाचार्यैर्मीमांसाश्लोकवार्तिके ।

यस्या न ग्रयत: स्फोटो, व्यज्यते वर्णबुद्धिभिः ।
सोपि पर्यनुयोगेन नैकेनापि विमुच्यते ॥ इति ।

तदुक्तं भट्टाचार्यैः

प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोपि प्रवर्तते ।
जगच्च सृजतस्तस्य किं नाम न कृतं भवेत ॥ इति ।
—सर्वदर्शनसंग्रह

अतः खुद समन्तभद्रके शिष्यद्वारा कुमारिलका उल्लेख होनेसे समन्तभद्र कुमारिलसे अधिक पहले के विद्वान् नहीं ठहरते—वे या तो कुमारिलके प्रायः समसामयिक हैं अथवा कुमारिलसे थोड़ेही समय पहले हुए हैं।

(५) "दिगम्बर जैन साहित्यमें कुमारिलका स्थान" नामक मेरे लेखमें यह सिद्ध किया जा चुका है कि समन्तभद्रकी 'आप्तमीमांसा' और उसकी अकलंकदेवकृत 'अष्टशती' नामकी पहली टीका दोनों कुमारिलके द्वारा तीव्रालोचित हुई हैं—खंडित की गई हैं और अकलंकदेवके दो अवर (Junior) समकालीन विद्वानों विद्यानन्द पात्रकेसरी तथा प्रभाचन्द्रके द्वारा मण्डित (सुरक्षित) कीगई हैं। अकलंकदेव राष्ट्रकूट राजा साहसतुंग-दन्तिदुर्गके राज्यकालमें हुए हैं, और प्रभाचन्द्र अमोघवर्ष प्रथमके राज्यतक जीवित रहे हैं, क्योंकि उन्होंने गुणभद्रके आत्मानुशासनका उल्लेख किया है। अकलंकदेव और उनके छिद्रान्वेषी कुमारिलके साहित्यिक व्यापारोंको ईसाकी आठवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें रक्खा जाना चाहिये। और चूँकि समन्तभद्रने धर्मकीर्ति तथा भर्तृहरिके मतोंका खण्डन किया है और उनके शिष्य लक्ष्मीधर कुमारिलका उल्लेख करते हैं, अतः हम समन्तभद्रको ईसाकी आठवीं शताब्दीके पूर्वार्धमें स्थापित करनेके लिये मजबूर हैं—हमें बलात् ऐसा निर्णय देनेके लिये बाध्य होना पड़ता है।

हेतुओंकी जाँच।

समन्तभद्रका धर्मकीर्तिके बाद होना सिद्ध करनेके लिये जो पहले तीन हेतु दियेगये हैं उनमेंसे कोई भी समीचीन नहीं है। प्रथमहेतु रूपसे जो बात कही गई है वह युक्त्यनुशासनके उस वाक्य परसे उपलब्ध ही नहीं होती जो वहाँपर उद्धृत किया गया है; क्योंकि उसमें न तो धर्मकीर्तिका नामोल्लेख है, न न्यायबिन्दुका और न धर्मकीर्तिका प्रत्यक्ष लक्षणही उद्धृत पाया जाता है, जिसका रूप है—"प्रत्यक्षं कल्पनापोढमभ्रान्तम्।" यदि यह कहाजाय कि उक्त वाक्यमें 'अकल्पकं' पदका जो प्रयोग है वह 'निर्विकल्पक' तथा 'कल्पनापोढ' का वाचक है और इसलिये धर्मकीर्तिके प्रत्यक्ष लक्षणको लक्ष्य करकेही लिखा गया है, तो इसके लिये सबसे पहले यह सिद्ध करना होगा कि प्रत्यक्षको अकल्पक अथवा कल्पनापोढ निर्दिष्ट करना एकमात्र धर्मकीर्तिकी ही ईजाद है—उससे पहलेके किसीभी विद्वानने प्रत्यक्षका ऐसा स्वरूप नहीं बतलाया है। परन्तु यह सिद्ध नहीं है—धर्मकीर्तिसे पहले दिग्नाग नामके एक बहुत बड़े बौद्ध तार्किक होगये हैं, जिन्होंने न्यायशास्त्र पर प्रमाणसमुच्चय आदि कितनेही ग्रन्थ लिखे हैं और जिनका समय ई० सन् ३४५ से ४२५ तक बतलाया जाता है *। उन्होंनेभी 'प्रत्यक्षं कल्पनापोढम्' इत्यादि वाक्य † के द्वारा प्रत्यक्षका स्वरूप 'कल्पनापोढ' बतलाया है। ब्राह्मण तार्किक उद्योतकरने अपने न्यायवार्तिक (१-१-४) में 'प्रत्यक्षं कल्पनापोढम्' इस वाक्यको उद्धृत करते हुए दिग्नागके प्रत्यक्ष विषयक सिद्धान्तकी तीव्र आलोचनाकी है। और यह उद्योतकरभी धर्मकीर्तिसे पहले हुए हैं; क्योंकि धर्मकीर्तिने उनपर आपत्ति की है, जिसका उल्लेख खुद पाठक महाशयने अपने 'भर्तृहरि और कुमारिल' नामके लेखमें किया है ‡। इसके सिवाय तत्त्वार्थराजवार्तिकमें अकलंकदेवने जो निम्न श्लोक 'तथा चोक्तं' शब्दोंके साथ उद्धृत किया है उसे पाठकजीने, उक्त एन्नलसकी उसी संख्यामें प्रकाशित अपने दूसरे लेख (पृ० १५५) में दिग्नागका बतलाया है—

> प्रत्यक्षं कल्पनापोढं नामजात्यादियोजना।
> असाधारणहेतुत्वादक्षैस्तद्व्यपदिश्यते॥

* देखो, गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज़ बड़ौदामें प्रकाशित 'तत्त्वसंग्रह' ग्रन्थ की भूमिकादिक।

† यह वाक्य दिग्नागके 'प्रमाणसमुच्चय' में तथा 'न्यायप्रवेश' में भी पाया जाता है और वाचस्पति मिश्रने न्यायवार्तिककी टीकामें इसे साफ़ तौर पर दिग्नागके नामसे उल्लेखित किया है।

‡ देखो, डा० सतीशचन्द्रकी हिस्टरी आफ़ दि मिडियावल स्कूल ऑफ़ इंडियन लॉजिक पृ० १०५ तथा J. B. B. R. A. S. Vol. XVIII P. 229.

ऐसी हालतमें यह स्पष्ट है कि प्रत्यक्षका 'कल्पनापोढ' स्वरूप एकमात्र धर्मकीर्तिके द्वारा निर्दिष्ट नहीं हुआ है। यदि सबसे पहले उसीके द्वारा निर्दिष्ट होना माना जायगा तो दिग्नागको भी धर्मकीर्तिके बादका विद्वान् कहना होगा, जो पाठक महाशयको भी इष्ट नहीं होसकता और न इतिहाससे किसी तरह पर सिद्धही किया जासकता है; क्योंकि धर्मकीर्तिने दिग्नागके 'प्रमाणसमुच्चय' ग्रंथपर वार्तिक लिखा है। वस्तुतः धर्मकीर्ति दिग्नागके बाद न्यायशास्त्रमें विशेष उन्नति करनेवाला हुआ है, जिसका स्पष्टीकरण ई-त्सिंग नामक चीनी यात्री (सन ६७१-६९५) ने अपने यात्राविवरणमें भी दिया है[1]। उसने दिग्नागप्रतिपादित प्रत्यक्षके 'कल्पनापोढ' लक्षणमें 'अभ्रान्त' पदकी वृद्धिकर उसका सुधार किया है। और यह 'अभ्रान्त' शब्द अथवा इसी आशयका कोई दूसरा शब्द समन्तभद्रके उक्त वाक्य में नहीं पाया जाता, और इसलिये यह नहीं कहा जासकता कि समन्तभद्रने धर्मकीर्तिके प्रत्यक्ष लक्षण को सामने रखकर उसपर आपत्तिकी है। यह दूसरी बात है कि समन्तभद्रने प्रत्यक्षके जिस 'निर्विकल्पक' लक्षण पर आपत्तिकी है उससे धर्मकीर्तिका लक्षण भी आपन्न एवं बाधित ठहरता है; क्योंकि उसनेभी अपने लक्षणमें प्रत्यक्षके निर्विकल्पक स्वरूपको अपनाया है। और इसीसे टीकामें टीकाकार विद्यानन्द आचार्यने, जिन्हें गलतीसे लेखमें 'पात्रकेसरी' नाम से भी उल्लेखित किया गया है, "कल्पनापोढमभ्रान्तं प्रत्यक्षमिति लक्षणमस्यार्थः प्रत्यक्षप्रत्यायनं" इस वाक्यके द्वारा उदाहरणके तौरपर अपने समयमें खास प्रसिद्धिको प्राप्त धर्मकीर्तिके प्रत्यक्ष लक्षणको लक्षणार्थ बतलाया है। अन्यथा, "प्रत्यक्षं कल्पनापोढम्" यह लक्षणभी लक्षणार्थ कहा जासकता है। इसी तरह धर्मकीर्तिके बाद होनेवाले जिनजिन विद्वानोंने प्रत्यक्षको निर्विकल्पक माना है, उन सबका मतभी आपन्न तथा बाधित होजाता है, और इससे समन्तभद्र इतने परसे ही जिस प्रकार उन अनुकरणशील विद्वानोंके बादके विद्वान नहीं कहे जासकते उसी प्रकार वे धर्मकीर्तिके बादके भी विद्वान् नहीं कहे जासकते। अतः यह हेतु असिद्धादि दोषोंसे दूषित होनेके कारण अपने साध्यकी सिद्धि करनेमें समर्थ नहीं है।

यहाँपर मैं इतना औरभी बतला देना उचित समझताहूँ कि प्रत्यक्षको निर्विकल्पक माननेके विषय में दिग्नागकी भी गणना अनुकरणशील विद्वानोंमें ही है, क्योंकि उनके पूर्ववर्ती आचार्य वसुबन्धुने भी सम्यक् ज्ञानरूप प्रत्यक्षको 'निर्विकल्प' माना है, और यह बात उनके 'विज्ञप्तिमात्रता सिद्धि' तथा 'त्रिंशिका विज्ञप्तिकारिका' जैसे प्रकरण ग्रन्थों * पर से साफ ध्वनित है। इसके सिवाय वसुबन्धुसे भी पहलेके प्राचीन बौद्ध साहित्यमें इस बातके प्रमाण पाये जाते हैं कि बौद्ध सम्प्रदायमें उस सम्यक्ज्ञान को 'निर्विकल्प' माना है जिसके १ प्रत्यक्ष, २ अनुमान ऐसे दो भेद कियेगये हैं और जिन्हें धर्मकीर्ति ने भी, न्यायविन्दुमें, "द्विविधं सम्यग्ज्ञानं प्रत्यक्षमनुमानं च" इस वाक्यके द्वारा अपनाया है; जैसा कि 'लङ्कावतारसूत्र' में दियेहुए 'सम्यक्ज्ञान' के स्वरूपप्रतिपादक निम्न बुद्ध वाक्यसे प्रकट है:...

"मयान्यैश्च तथागतैरनुगम्य यथावद्देशित प्रज्ञप्त विवृतमुत्तानीकृत यत्रानुगम्य सम्यगवबोधानुच्छेदाशाश्वततो विकल्पस्याप्रवृत्तिः स्वप्रत्यात्मार्यज्ञानानुकूलं तीर्थकरपक्ष परपक्षश्रावकप्रत्येक बुद्धागतिलक्षणं तत्सम्यग्ज्ञानम्।" पृ० २२८

जब 'सम्यग्ज्ञान'ही बौद्धोंके यहाँ बहुत प्राचीन कालसे विकल्पकी प्रवृत्तिसे रहित मानागया है, तब

---

[1] देखो, उक्त हिस्टरी (H. M. S. I. L.) पृ० १०५ या हिस्टरी आफ़ इण्डियन लॉजिक पृ० ३०६।

* ये दोनों ग्रन्थ संस्कृतवृत्तिसहित सिलवेन लेवीस द्वारा संपादित होकर पेरिसमें मुद्रित हुए हैं। पहलेकी वृत्ति स्वोपज्ञ जान पड़ती है, और दूसरेकी वृत्ति आचार्य स्थिरमतिकी कृति है।

उसके अंगभूत प्रत्यक्षका निर्विकल्प माना जाना स्वतः सिद्ध है। बहुत सम्भव है कि आर्य नागार्जुन के किसी ग्रंथमें—संभवतः उनकी 'युक्तिषष्ठिकाकारिका'* में—प्रत्यक्षका अकल्पक अथवा निर्विकल्पक रूपसे निर्देश किया गया हो और उसे लक्ष्य में रखकरही समन्तभद्रने अपने युक्त्यनुशासनमें उसका निरसन किया हो। आर्य नागार्जुनका समय ईसवी सन १८१ बतलाया जाता है ❀ और समन्तभद्रभी दूसरी शताब्दीके विद्वान् माने जाते हैं। दोनों ग्रन्थोंके नामोंमें भी बहुत कुछ साम्य है और दोनोंकी कारिकासंख्या भी प्रायः मिलती जुलती है। युक्त्यनुशासनमें ६४ कारिकाएँ हैं—मुख्यतः ६० ही हैं—और इससे उसेभी 'युक्तिषष्ठिका' अथवा 'युक्त्यनुशासनषष्ठिका' कहसकते हैं। ये सब बातें उक्त संभावनाकी पुष्टि करती हैं। यदि वह ठीक हो—और उसको ठीक माननेके लिये और भी कुछ सहायक सामग्री पाई जाती है, जिसका उल्लेख आगे किया जायगा—,तो समन्तभद्र प्रायः नागार्जुनके समकालीन विद्वान् ठहरते हैं। धर्मकीर्तिके बादके विद्वान तो वे किसी तरहभी सिद्ध नहीं किये जासकते।

दूसरे हेतु रूपसे जो बात कहीगई है वहभी असिद्ध है अर्थात् आप्तमीमांसाकी उस ८० नम्बरकी कारिकासे उपलब्ध ही नहीं होती, जो इसप्रकार है—

> साध्यसाधनविज्ञप्तेर्यदि विज्ञप्तिमात्रता।
> न साध्यं न च हेतुश्च प्रतिज्ञाहेतुदोषतः॥

इसमें न तो धर्मकीर्तिका नामोल्लेख है और न "सहोपलम्भनियमादभेदो नीलतद्धियोः" वाक्य का। फिर समन्तभद्रकी ओरसे यह कहना कैसे बन सकता है कि 'धर्मकीर्ति अपना विरोध खुद करता है जब कि वह सहोपलम्भनियमात् इत्यादि वाक्य कहता है?' मालूम होता है अष्टसहस्री जैसी टीका में 'सहोपलम्भनियमात' इत्यादि वाक्यको देखकर और उसे धर्मकीर्तिके प्रमाणविनिश्चय ग्रन्थोंमें भी पाकर पाठक महाशयने यह सब कल्पना करडाली है! परन्तु अष्टसहस्रीमें यह वाक्य उदाहरणके तौरपर दिये हुए कथनका एक अंग है, इसके पूर्व 'तथाहि' शब्दका भी प्रयोग किया गया है जो उदाहरणका वाचक है और साथमें धर्मकीर्तिका कोई नाम नहीं दिया गया है; जैसा कि टीकाके निम्न प्रारम्भिक अंशसे प्रकट है—

> 'प्रतिज्ञादोषस्तावत्स्ववचनविरोधः साध्यसाधनविज्ञानस्य विज्ञप्तिमात्रमभिलपतः प्रसज्यते। तथाहि। सहोपलम्भनियमादभेदो नीलतद्धियोर्द्विचन्द्रदर्शनवदित्यत्रार्थसंविदो सहदर्शनमुपेत्यैकत्वैकान्तं साधयन् कथमबध्याभिलापः?" पृ० २४२

ऐसी हालतमें टीकाकारके द्वारा उदाहरणरूप से प्रस्तुत किये हुए कथनको मूल ग्रन्थकारका बतला देना अति साहसका कार्य है! मूलमें तो विज्ञप्ति मात्रताका सिद्धान्त मानने वालों (बौद्धों) पर आपत्ति कीगई है और इस सिद्धान्तके माननेवाले समन्तभद्रके पूर्ववर्ती और उत्तरवर्ती दोनोंही हुए हैं। अतः इस आपत्तिसे जिस प्रकार पूर्ववर्ती विद्वानोंकी मान्यताका निरसन होता है वैसेही उत्तरवर्ती विद्वानोंकी मान्यताका भी निरसन होजाता है। इसीसे टीकाकारोंको उनमेंसे जिसके मतका निरसन करना इष्ट होता है वे उसीके वाक्यको लेकर मूलके आधार पर उसका खण्डन करडालते हैं और इसीसे टीकाओंमें अक्सर 'एतेन एतदपि निरस्तं भवति-प्रत्युक्तंभवति', 'एतेन यदुक्तं भट्टेन ... तन्निरस्तं (अष्टसहस्री)' जैसे वाक्योंका भी प्रयोग पायाजाता है। और इसलिये यदि टीकाकार ने उत्तरवर्ती किसी विद्वानके वाक्यको लेकर उसका निरसन किया है तो इससे वह विद्वान मूलकारका

---

* नागार्जुनके इस ग्रन्थका उल्लेख डाक्टर सतीशचन्द्रने अपनी पूर्वोल्लेखित हिस्टरी आफ इण्डियन लॉजिक में किया है, देखो, उसका पृ० ७०।

❀ देखो, पूर्वोल्लेखित 'तत्वसंग्रह' ग्रन्थकी भूमिकादिक

पूर्ववर्ती नहीं होजाता—टीकाकारका पूर्ववर्ती जरूर होता है। मूलकारको तब उसके बादका विद्वान् मानना भारी भूल होगा और ऐसी भूलोंसे ऐतिहासिक क्षेत्रमें भारी अनर्थोंकी संभावना है; क्योंकि प्रायः सभी सम्प्रदायोंके टीकाग्रंथ यथावश्यकता उत्तरवर्ती विद्वानोंके मतोंके खण्डनसे भरे हुए हैं। टीकाकारोंकी दृष्टि प्रायः ऐतिहासिक नहीं होती किंतु सैद्धान्तिक होती है। यदि ऐतिहासिक हो तो वे मूलवाक्यों परसे उन पूर्ववर्ती विद्वानोंके मतोंका ही निरसन करके बतलाएँ जो मूलकारके लक्ष्यमें थे।

इसके सिवाय, विज्ञप्तिमात्रताका सिद्धान्त धर्मकीर्तिके बहुत पहलेसे माना जाता था, वसुबन्धु जैसे प्राचीन आचार्योंने उसपर 'विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि' और 'त्रिंशिका विज्ञप्तिकारिका' जैसे प्रकरण ग्रन्थों तककी रचना की है, जिनका उल्लेख पहले किया जाचुका है। यह बौद्धोंकी विज्ञानाद्वैतवादिनी योगाचार शाखाका मत है और आचार्य वसुबन्धुके भी बहुत पहलेसे प्रचलित था। इसीसे उन्होंने लिखा है कि 'यह विज्ञप्तिमात्रताकी सिद्धि मैंने अपनी शक्तिके अनुसारकी है, पूर्ण रूपसे यह मुझ जैसोंके द्वारा चिन्तनीय नहीं है, बुद्धगोचर है'—

"विज्ञप्तिमात्रतासिद्धिः स्वशक्तिसदृशी मया।
कृतेयं सर्वथा सा तु न चिन्त्या बुद्धगोचरः॥"

'लंकावतार सूत्र' नामके प्राचीन बौद्ध ग्रंथमें, जो वसुबन्धुसे भी बहुत पहले निर्मित हो चुका है और जिसका उल्लेख नागार्जुनके प्रधान शिष्य आर्यदेव तक ने किया है*, महामति द्वारा बुद्ध भगवान् से जो १०८ प्रश्न किये गये हैं, उनमें भी विज्ञप्तिमात्रता का प्रश्न निम्न प्रकारसे पाया जाता है—

"प्रज्ञप्तिमात्रं च कथं ब्रूहि मे वदतांवर। २-३७।"

* देखो पूर्वोल्लेखित हिस्टरी आफ मिडियावल स्कूल आफ इण्डियन लॉजिक पृ० ७२, (या हिस्टरी आफ इण्डियन लॉजिक पृ० २४३, २६१)

और आगे ग्रंथके तीसरे परिवर्तमें विज्ञप्तिमात्रताके स्वरूप सम्बन्धमें लिखा है—

"यदा त्वालम्बयमर्थं नोपलभते ज्ञानं तदा विज्ञप्तिमात्रव्यवस्थानं भवति विज्ञप्तेर्ग्राह्याभावाद् ग्राहकस्याप्य ग्रहणं भवति। तदग्रहणान्न प्रवर्तते ज्ञानं विकल्पसंशब्दितं।"

इससे बौद्धोंका यह सिद्धान्त बहुत प्राचीन मालूम होता है। आश्चर्य नहीं जो "सहोपलम्भानियमादभेदो नीलतद्धियोः" यह वाक्य भी पुराना ही हो और उसे धर्मकीर्तिने अपनाया हो। अतः आप्तमीमांसाके उक्त वाक्य परसे समन्तभद्रको धर्मकीर्तिके बादका विद्वान क़रार देना नितान्त भ्रमात्मक है। यदि धर्मकीर्तिको ही विज्ञप्तिमात्रता सिद्धान्तका ईजाद करनेवाला माना जायगा तो वसुबन्धु आदि पुरातन आचार्योंको भी धर्मकीर्तिके बादका विद्वान् मानना होगा, जो पाठक महाशयको भी इष्ट नहीं होसकता और न इतिहाससे ही किसी तरहपर सिद्ध किया जासकता है। और इसलिये यह दूसरा हेतु भी असिद्धादि दोषोंसे दूषित होनेके कारण साध्य की सिद्धि करने—समन्तभद्रको धर्मकीर्तिके बादका विद्वान् क़रार देने—के लिये समर्थ नहीं है।

तीसरे हेतुमें आप्तमीमांसा की जिस कारिका नं० १०६ का उल्लेख कियागया है, वह इस प्रकार है—

सधर्मणैव साध्यस्य साधर्म्यादविरोधतः।
स्याद्वादप्रविभक्तार्थ विशेष व्यंजको नयः॥

इसमें नयका स्वरूप बतलाते हुए स्पष्ट रूपसे बौद्धों त्रैरूप्य अथवा त्रिलक्षण हेतुका कोई नामोल्लेख नहीं कियागया है,—जो "पक्षधर्मत्वं सपक्षे सत्वं विपक्षे चासत्वं" इन तीन रूप है‡ और न उसपर सीधी कोई आपत्ति ही कीगई है, बल्कि इतनाही कहागया है कि स्याद्वाद (श्रुतज्ञान) के द्वारा प्रविभक्त अर्थविशेषका जो साध्यके सधर्मा रूपसे, साधर्म्य

‡ देखो, 'न्यायप्रवेश' आदि प्राचीन बौद्ध ग्रंथ।

रूपसे और अविरोध रूपसे व्यंजक है—प्रतिपादक है—वह 'नय' है। इसीसे आप्तमीमांसा (देवागम) को सुनकर पात्रकेसरी स्वामी जब जैनधर्मके श्रद्धालु हुए थे तब उन्हें अनुमान-विषयक हेतुके स्वरूपमें सन्देह रहगया था—उक्त ग्रन्थपर से यह स्पष्ट नहीं हो पाया था कि जैनधर्म सम्मत उसका क्या स्वरूप है और उससे बौद्धोंका त्रिलक्षण हेतु कैसे असमीचीन ठहरता है। और वह सन्देह बादको "अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किं। नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्" इस वाक्यकी उपलब्धि पर दूर होसका था, और इसके आधार परही वे बौद्धोंके त्रिलक्षण हेतुका कदर्थन करनेमें समर्थ हुए थे। परन्तु अकलंकदेव जैसे टीकाकारोंने, जो पात्रकेसरीके बाद हुए हैं, अपने बुद्धि वैभवसे यह स्वतियान करके बतलाया है कि उक्त कारिकामें 'सपक्षेणैव (सधर्मणैव) साध्यस्य साधर्म्यात्' इन शब्दोंके द्वारा हेतुके त्रैलक्षण्य रूपको और 'अविरोधात्' पदसे हेतुके अन्यथानुपपत्ति स्वरूप को दर्शाते हुए यह प्रतिपादित किया गया है कि केवल त्रिलक्षणके अहेतुपना है, तत्पुत्रत्वादिकी तरह *। यदि यह मानलिया जाय कि समन्तभद्र के सामने ऐसीही परिस्थिति थी और इस वाक्यसे उनका वही लक्ष्य था जो अकलंकदेव द्वारा प्रतिपादित हुआ है, तो भी इससे यह सिद्ध नहीं होता कि यह त्रिलक्षणहेतु, धर्मकीर्तिका ही था, क्योंकि धर्मकीर्तिसे पहलेभी बौद्ध सम्प्रदायमें हेतुको त्रिलक्षणात्मक मानागया है; जैसाकि दिग्नागके 'प्रमाणसमुच्चय' तथा 'हेतुचक्रडमरु' आदि ग्रन्थोंपर से प्रकट है—प्रमाणसमुच्चयमें 'त्रिरूपहेतु' नामका एक अध्यायही अलग है ||||। नागार्जुनने अपने 'प्रमाणविहेतना' ग्रन्थमें नैय्यायिकोंके पंचांगी अनुमानकी जगह त्र्यंगी अनुमान स्थापित किया है * और इस से ऐसा मालूम होता है कि जिस प्रकार नैय्यायिकों ने पंचांगी अनुमानके साथ हेतुको पंचलक्षण माना है उसीप्रकार नागार्जुननेभी त्र्यंगी अनुमानका विधान करके हेतुको त्रिलक्षण रूपसे प्रतिपादित किया है। इस तरह त्रिलक्षण अथवा त्रैरूप्य हेतुका अनुसन्धान नागार्जुन तक पहुँच जाता है।

इसके सिवाय, प्रशस्तपादने काश्यपके नामसे जो निम्न दो श्लोक उद्धृत किये हैं उनके आशयसे यह स्पष्ट जाना जाता है कि वैशेषिक दर्शनमें भी बहुत प्राचीन कालसे त्रैरूप्य हेतुकी मान्यता प्रचलित † थी—

> यदनुमेयेन संबद्धं प्रसिद्धं च तदन्विते।
> तदभावे च नास्त्येव तल्लिङ्गमनुमापकम्॥
> विपरीतमतो यत्स्यादेकेन द्वितयेन वा।
> विरुद्धासिद्धसन्दिग्धमलिंगं काश्यपोऽब्रवीत्॥

यदि महज इस त्रिलक्षण हेतुके उल्लेखके कारण जो स्पष्टभी नहीं है, समन्तभद्रको धर्मकीर्तिके बाद का विद्वान माना जायगा तो दिग्नागको और दिग्नागके पूर्ववर्ती उन आचार्योंको भी धर्मकीर्तिके बादका विद्वान मानना पड़ेगा जिन्होंने त्रिरूपहेतुको स्वीकार किया है, और यह मान्यता किसी तरह भी संगत नहीं ठहर सकेगी, किन्तु विरुद्ध पड़ेगी। अतः यह तीसरा हेतुभी असिद्धादि दोषोंसे दूषित होनेके कारण साध्यकी सिद्धि करनेके लिये समर्थ नहीं है।

इस तरह पर जब यह सिद्धही नहीं है कि समन्तभद्रने अपने दोनों ग्रन्थोंके उक्त वाक्योंमेंसे किसीमें भी धर्मकीर्तिका, धर्मकीर्तिके किसी ग्रन्थ

---

* 'सपक्षेणैव साध्यस्य साधर्म्यादित्यनेन हेतोस्त्रैलक्षण्य मविरोधात् इत्यन्यथानुपपत्तिं च दर्शयता केवलस्य त्रिलक्षणस्यासाधनत्वमुक्तं तत्पुत्रत्वादिवत्।' —अष्टशती

|||| देखो, डा० सतीशचन्द्र की उक्त हिस्टरी आफ इंडियन लॉजिक पृ० ८५—९९,

* देखो, श्रीनर्मदाशंकर मेहताशंकर बी० ए० कृत 'हिन्द तत्त्वज्ञाननो इतिहास' पृष्ठ १८२।

† देखो, गायकवाड़सिरीज़में प्रकाशित 'न्यायप्रवेश' की प्रस्तावना (Introduction) पृ० २३ (XXIII) आदि।

विशेषका या वाक्यविशेषका अथवा उसके किसी ऐसे अ र्ववर्ती सिद्धान्त-विशेषका उल्लेख तथा प्रतिवाद किया है जिसका आविष्कार एकमात्र उसीके द्वारा हुआ हो, तब स्पष्ट है कि ये हेतु खुद असिद्ध होनेसे तीनों मिलकरभी साध्यकी सिद्धि करनेमें समर्थ नहीं होसकते--अर्थात् इनके आधार पर किसी तरह भी यह साबित नहीं किया जासकता कि स्वामी समन्तभद्र धर्मकीर्तिके बाद हुए हैं।

चौथा हेतुभी समीचीन नहीं है; क्योंकि इस हेतुद्वारा जो यह बात कही गई है कि समन्तभद्रने भर्तृहरिके मतका खण्डन यथासंभव प्रायः उसीके शब्दोंको उद्धृत करके किया है, वह सुनिश्चित नहीं है। इस हेतुकी निश्चयपथप्राप्तिके लिये अथवा इसे सिद्ध करार देनेके लिये कमसे कम दो बातोंको साबित करनेकी खास जरूरत है, जो लेखपरसे साबित नहीं हैं—एक तो यह कि "बोधात्मा चेच्छब्दस्य' इत्यादि दोनों श्लोक वस्तुतः समन्तभद्रकी कृति हैं, और दूसरी यह कि भर्तृहरिसे पहले शब्दाद्वैत सिद्धान्तका प्रतिपादन करने वाला दूसरा कोई नहीं हुआ है-भर्तृहरि ही उसका आद्य विधायक है-और यदि हुआ है तो उसके द्वारा 'न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके' इत्यादि श्लोकसे मिलता जुलता या ऐसे आशयका कोई वाक्य नहीं कहा गया है अथवा एकही विषय पर एकही भाषामें दो विद्वानोंके लिखने बैठने पर परस्पर कुछभी शब्द सादृश्य नहीं हो सकता है।

लेखमें यह नहीं बतलाया गया है कि उक्त दोनों श्लोक समन्तभद्रके कौनसे ग्रंथके वाक्य हैं। समन्तभद्रके उपलब्ध ग्रंथोंमेंसे किसीमें भी वे पाये नहीं जाते और न विद्यानन्द तथा प्रभाचंद्र जैसे आचार्योंके ग्रंथोंमें ही वे उल्लेखित मिलते हैं, जो समन्तभद्रके वाक्योंका बहुत कुछ अनुसरण करने वाले हुए हैं। विद्यानन्दके श्लोकवार्तिकमें इस शब्दाद्वैतके सिद्धान्तका खण्डन अकलंक देवके आधार पर किया है—समन्तभद्रके आधार पर नहीं। इस कथनका प्रस्तावना-वाक्य इस प्रकार है:—

"...सर्वथैकान्तानां तदसंभवं भगवत्समन्तभद्राचार्यन्यायाद्बाह्यैकान्तनिराकरणप्रवणाद्विद्य वक्ष्यमाणाच्च न्यायात्संक्षेपतः प्रवचनप्रामाण्यदार्ढ्यमवधार्य तत्र निश्चितं नामात्मसात्कृत्य सप्रति श्रुतस्वरूपप्रतिपादकमकलंकग्रंथ मनुवाद पुरस्सर विचारयति।" (पृ० २३९)

इस परसे ऐसा खयाल होता है कि यदि शब्दाद्वैतके खण्डनमें समन्तभद्रके उक्त दोनों श्लोक होते तो विद्यानन्द उन्हें यहाँ पर—इस प्रकरणमें—उद्धृत किये बिना न रहते। और इसलिये इन श्लोकोंको समन्तभद्रके बतलाना संदेहसे खाली नहीं है। इन श्लोकोंके साथ हरिभद्र सूरिके जिन पूर्ववर्ती वाक्योंको पाठकजीने उद्धृत किया है वे 'अनेकान्त जय पताका' की उस वृत्तिके ही वाक्य जान पड़ते हैं जिसे स्वोपज्ञ कहा जाता है और उनमें "आह च वादिमुख्यः" इस वाक्यके द्वारा इन श्लोकोंको वादिमुख्यकी कृति बतलाया गया है—समन्तभद्र की नहीं। वादिमुख्यको यहाँ समन्तभद्र नाम देना किसी टिप्पणीकारका कार्य मालूम होता है, और शायद इसीसे उस टिप्पणीको पाठकजीने उद्धृत नहीं किया। होसकता है कि जिस ग्रंथके ये श्लोक हों उसे अथवा इन श्लोकोंको ही समन्तभद्रके समझनेमें टिप्पणीकारको, चाहे वे खुद हरिभद्रही क्यों न हों—भ्रम हुआ हो। ऐसे भ्रमके बहुत कुछ उदाहरण पाये जाते हैं—कितनेही ग्रन्थ तथा वाक्य ऐसे देखनेमें आते हैं जो कृति तो है किसीकी, और समझ लिये गये किसी दूसरेके। नमूनेके तौरपर 'तत्त्वानुशासन' को लीजिये, जो रामसेनाचार्यकी कृति है परन्तु माणिकचन्द्रग्रंथमालामें वह गलतीसे उनके गुरु नागसेनके नामसे मुद्रित होगई है * और तबसे हस्तलिखित प्रतियोंसे अपरिचित विद्वान् लोगभी देखादेखी नागसेनके नामसेही उसका उल्लेख करने लगे हैं। इसी तरह प्रमेयकमलमार्तण्डके निम्न वाक्यको लीजिये, जो गलतीसे उक्त ग्रन्थमें

* देखो, जैन हितैषी भाग, १४ पृ० ३१३

अपनी टीकासहित मुद्रित होगया है और उसपरसे कुछ विद्वानोंने यह समझ लिया है कि वह मूलकार माणिक्यनन्दीका वाक्य है, जिनके 'परीक्षामुख' शास्त्रका उक्त प्रमेयकमलमार्तण्ड भाष्य है और जिस भाष्यपर भी फिर अन्यद्वारा टीका लिखीगई है, और इसीलिये वे यह कहने लगे हैं कि माणिक्यनन्दीने विद्यानन्दका नामोल्लेख किया है:—

> सिद्धं सर्वजनप्रबोधजननं सद्योऽकलंकाश्रयं।
> विद्यानन्द समन्तभद्रगुणतो नित्यं मनोनन्दनम्।
> निर्दोषं परमागमार्थविषयं प्रोक्तं प्रमालक्षणम्।
> युक्त्या चेतसि चिन्तयन्तु सुधियः श्रीवर्धमानं जिनम्॥

खुद पाठक महाशयने भी कहा है कि माणिक्य नन्दीने विद्यानन्दका नामोल्लेख किया है, और वह इसी वाक्यको माणिक्यनन्दीका वाक्य समझने की ग़लती पर आधार रखता हुआ जान पड़ता है। इसीसे डाक्टर सतीशचन्द्र विद्याभूषणको अपनी मध्यकालीन भारतीय न्याय शास्त्रकी हिस्टरीमें (पृ० २८ पर) यह लिखना पड़ा है कि 'मिस्टर पाठक कहते हैं कि माणिक्यनन्दीने विद्यानंदका नामोल्लेख किया है, परन्तु खुद परीक्षामुख शास्त्रके मूलमें ऐसा उल्लेख मेरे देखनेमें नहीं आया।'

ऐसी हालतमें उक्त दोनों श्लोकोंकी स्थिति बहुत कुछ सन्देहजनक है—बिना किसी विशेष समर्थन तथा प्रमाणके उन्हें सुनिश्चित रूपसे समन्तभद्रका नहीं कहा जासकता और इसलिये उनके आधार पर जो अनुमान बाँधा गया है वह निर्दोष नहीं कहला सकता। यदि किसी तरह पर यह सिद्ध करदिया जाय कि वे दोनों श्लोक समन्तभद्रके ही हैं तो फिर दूसरी बातको सिद्ध करना होगा और उसमें यह तो सिद्ध नहीं किया जासकता कि भर्तृहरिसे पहले शब्दाद्वैत सिद्धान्तका माननेवाला दूसरा कोई हुआ ही नहीं; क्योंकि पाणिनि आदि दूसरे विद्वान् भी शब्दाद्वैतके माननेवाले शब्द ब्रह्मवादी हुए हैं—खुद भर्तृहरिने अपने 'वाक्यपदीय' ग्रंथमें उनमें से कितनोंही का नामोल्लेख तथा सूचन किया है। और न तब यही सिद्ध किया जासकता है कि उनमेंसे किसीके द्वारा 'न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके' जैसा कोई वाक्य न कहा गया हो। स्वतंत्र रूपसे एकही विषय पर लिखने बैठनेवाले विद्वानोंके साहित्यमें कितना ही शब्दसादृश्य स्वतः होजाया करता है, फिर उस विषयके अपने पूर्ववर्ती विद्वानोंके कथनोंको पढ़कर तथा स्मरण कर लिखने वालोंकी तो बातही जुदी है—उनकी रचनाओंमें शब्दसादृश्यका होना और भी अधिक स्वाभाविक है। जैसा कि पूज्यपाद, अकलंक और विद्यानन्दकी कृतियोंके क्रमिक अध्ययन से जाना जाता है अथवा दिग्नाग और धर्मकीर्ति की रचनाओंकी तुलनासे पाया जाता है। दिग्नाग ने प्रत्यक्षका लक्षण कल्पनापोढं और हेतुका लक्षण "ग्राह्यधर्मस्तदंशेन व्याप्तो हेतुः" किया तब धर्मकीर्तिने प्रत्यक्षका लक्षण 'कल्पनापोढमभ्रान्तं' और हेतुका लक्षण "पक्षधर्मस्तदंशेन व्याप्तो हेतुः" किया है *। दोनोंमें कितना अधिक शब्दसादृश्य है, इसे बतलानेकी जरूरत नहीं। इसी तरह भर्तृहरिका 'न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके' नाम का श्लोकभी अपने पूर्ववर्ती किसी विद्वानके वाक्य का अनुसरण जान पड़ता है। बहुत संभव है कि वह निम्न वाक्यका ही अनुसरण हो, जो विद्यानंद के श्लोकवार्तिक और प्रभाचंद्रके प्रमेयकमलमार्तंड में समान रूपसे उद्धृत पाया जाता है और अपने उत्तरार्धमें थोड़ेसे शब्दभेदको लिये हुए है, और यहभी सम्भव है कि उसेही लक्ष्यमें रखकर 'न चास्ति प्रत्ययो लोके' नामक उस श्लोककी रचना हुई हो जिसे हरिभद्रने उद्धृत किया है:—

> न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
> अनुविद्धमिवाभाति सर्वं शब्दे प्रतिष्ठितम्॥

प्रमेयकमलमार्तण्डमें यह श्लोक और साथमें दो श्लोक और भी, ऐसे तीन श्लोक 'तदुक्तं' शब्दके

* हेतुके ये दोनों लक्षण पाठकजीने एन्नलसके उसी नम्बरमें प्रकाशित अपने दूसरे लेखमें उद्धृत किये हैं।

साथ एकही जगह पर उद्धृत किये गये हैं, और इससे ऐसा जान पड़ता है कि वे किसी ऐसे ग्रंथसे उद्धृत किये गये हैं, जिसमें वे इसी क्रमको लिये हुए होंगे। भर्तृहरिके 'वाक्यपदीय' ग्रन्थमें वे इस क्रमको लिये हुए नहीं हैं; बल्कि "अनादिनिधनं शब्दब्रह्मतत्त्वं यदक्षरं" नामका तीसरा श्लोक जरा से पाठभेदके साथ वाक्यपदीयके प्रथम काण्डका पहला श्लोक है और शेष दो श्लोक (पहला उपर्युक्त शब्द भेदको लिये हुए) उसमें क्रमशः नम्बर १२४, १२५ पर पाये जाते हैं। इससे भी किसी दूसरे ऐसे प्राचीन ग्रंथकी सम्भावना दृढ़ होती है जिसका भर्तृहरिने अनुकरण किया हो। इसके सिवाय भर्तृहरि खुद अपने वाक्यपदीय ग्रन्थको एक संग्रहग्रन्थ बतलाते हैं—

> न्यायप्रस्थानमार्गास्तानभ्यस्य स्वं च दर्शनम्।
> प्रणीतो गुरुणाऽस्माकमयमागमसंग्रहः॥२—४९०।

उन्होंने पूर्वमें एक बहुत बड़े संग्रहकी भी सूचना की है, जिसके अल्पज्ञानियों द्वारा लुप्तप्राय होजाने पर पतञ्जलि ऋषि द्वारा उसका पुनः कुछ उद्धार किया गया। इसीसे टीकाकार पुण्यराजने "एतेन संग्रहानुसारेण भगवता पतञ्जलिना संग्रहसंक्षेपभूतमेव प्रायशो भाष्यमुपनिबद्धमित्युक्तं वेदितव्यम्" इस वाक्यके द्वारा पतञ्जलिके महाभाष्यको उस संग्रहका प्रायः 'संक्षेपभूत' बतलाया है। और भर्तृहरिने इस ग्रन्थके प्रथम कांडमें यहाँ तकभी प्रतिपादित किया है कि पूर्व ऋषियोंके स्मृति शास्त्रोंका आश्रय लेकर ही शिष्यों द्वारा शब्दानुशासनकी रचना कीजाती है—

> तस्मादकृतकं शास्त्रं स्मृतिं वा सनिबन्धनाम्।
> आश्रित्यारभ्यते शिष्टैः शब्दानामनुशासनम्॥४१॥

ऐसी हालतमें 'न च स्यात् प्रत्ययो लोके' इन शब्दोंका किसी दूसरे पूर्ववर्ती ग्रन्थमें पाया जाना कुछ भी अस्वाभाविक नहीं है। अस्तु।

यदि धर्मकीर्तिके पूर्ववर्ती किसी विद्वानने दिग्नाग प्रतिपादित प्रत्यक्ष-लक्षण अथवा हेतु लक्षण को बिना नामधामके उद्धृत करके उसका खण्डन किया हो और बादको दिग्नागके ग्रन्थोंकी अनुपलब्धिके कारण कोई शख्स धर्मकीर्तिके वाक्यों के साथ सादृश्य देखकर उसे धर्मकीर्ति पर आपत्ति करनेवाला और इसलिये धर्मकीर्तिके बादका विद्वान समझ बैठे, तो उसका वह समझना जिस प्रकार मिथ्या तथा भ्रममूलक होगा उसी प्रकार भर्तृहरिके पूर्ववर्ती किसी विद्वानको उसके सहज किसी ऐसे पूर्ववर्ती वाक्यके उल्लेखके कारण जो भर्तृहरिके उक्त वाक्यके साथ कुछ मिलताजुलता हो, भर्तृहरिके बादका विद्वान् क़रार देनाभी मिथ्या तथा भ्रममूलक होगा।

अतः यह चौथा हेतु दोनों बातोंकी दृष्टिसे असिद्ध है और इसलिये इसके आधार पर समन्तभद्रको भर्तृहरिके बादका विद्वान क़रार नहीं दिया जासकता।

पाँचवें हेतुमें एकान्तखण्डनके जिन अवतरणों की तरफ़ इशारा किया गया है, उनपर से यह कैसे स्पष्ट है कि पूज्यपाद समन्तभद्रसे पहले जीवित थे अर्थात् समन्तभद्र पूज्यपादके बाद हुए हैं—यह कुछ समझमें नहीं आता! क्योंकि यह तो कहा नहीं जासकता कि सिद्धसेनने असिद्धहेत्वाभासका और पूज्यपाद (देवनन्दी) ने विरुद्धहेत्वाभासका आविर्भाव किया है और समन्तभद्रने एकान्त साधन को दूषित करनेके लिये, चूँकि इन दोनोंका प्रयोग किया है, इसलिये वे इनके आविष्कर्ता सिद्धसेन और पूज्यपादके बाद हुए हैं। ऐसा कहना हेत्वाभासोंके इतिहासकी अनभिज्ञताको सूचित करेगा; क्योंकि ये हेत्वाभास न्यायशास्त्रमें बहुत प्राचीनकाल से प्रचलित हैं। जब असिद्धादि हेत्वाभास पहलेसे प्रचलित थे तब एकान्त साधनको दूषित करनेके लिये किसीने उनमेंसे एकका, किसीने दूसरेका और किसीने एकसे अधिक हेत्वाभासोंका यदि

प्रयोग किया है तो ये एक प्रकारकी घटनाएँ अथवा किसी किसी विषयमें किसी किसीकी प्रसिद्धि-कथाएँ हुईं, उनके मात्र उल्लेखक्रमको देखकर उसपर से उनके अस्तित्व-क्रमका अनुमान करलेना निर्हेतुक है। उदाहरणके तौरपर नीचे लिखे श्लोकको लीजिये, जिसमें तीन विद्वानोंकी एक एक विषयमें खास प्रसिद्धिका उल्लेख है—

> प्रमाणमकलंकस्य पूज्यपादस्य लक्षणम्।
> धनञ्जयकवेः काव्यं रत्नत्रयमकण्टकम्॥

यदि उल्लेखक्रमसे इन विद्वानोंके अस्तित्वक्रम का अनुमान किया जाय तो अकलंकदेवको पूज्यपादसे पूर्वका विद्वान मानना होगा। परन्तु ऐसा नहीं है—पूज्यपाद ईसाकी पाँचवीं शताब्दीके विद्वान हैं और अकलंकदेवने उनकी सर्वार्थसिद्धिको साथ में लेकर 'राजवार्तिक' की रचनाकी है। अतः मात्र उल्लेखक्रमकी दृष्टिसे अस्तित्वक्रमका अनुमान करलेना ठीक नहीं है। यदि पाठकजीका ऐसाही अनुमान हो तो सिद्धसेनका नाम पहले उल्लेखित होनेके कारण उन्हें सिद्धसेनको पूज्यपादसे पहले का विद्वान मानना होगा, और ऐसा मानना उनके पहले हेतुके विरुद्ध पड़ेगा; क्योंकि सिद्धसेनने अपने 'न्यायावतार' में प्रत्यक्षको 'अभ्रान्त' के अतिरिक्त 'ग्राहक' भी बतलाया है जो निर्णायक, व्यवसायात्मक अथवा सविकल्पकका वाचक है और उससे धर्मकीर्तिके प्रत्यक्ष लक्षण पर आपत्ति होती है। इसीसे उसकी टीकामें कहा गया है—"तेन यत् ताथागतैः प्रत्यपादि 'प्रत्यक्षं कल्पनापोढमभ्रान्तमिति' तदपास्तं भवति।" और इसलिये अपने प्रथम हेतुके अनुसार उन्हें सिद्धसेनको धर्मकीर्तिके बादका विद्वान कहना होगा। सिद्धसेनका धर्मकीर्ति के बाद होना और पूज्यपादके पहले होना ये दोनों कथन परस्परमें विरुद्ध हैं, क्योंकि पूज्यपादका अस्तित्वसमय धर्मकीर्तिसे कोई दो शताब्दी पहलेका है।

अतः महज उक्त अवतरणोंपर से न तो हेत्वाभासोंके आविष्कारकी दृष्टिसे और न उल्लेखक्रमकी दृष्टिसे ही समन्तभद्रको पूज्यपादके बादका विद्वान् कहा जासकता है। तब एक सूरत अनुमानकी और भी रहजाती है—यद्यपि पाठकजीके शब्दों पर से उसका भी स्पष्टीकरण नहीं होता‡ और वह यह है कि, चूँकि समन्तभद्रके शिष्यने उक्त अवतरणों में पूज्यपाद (देवनन्दी) का नामोल्लेख किया है इसलिये पूज्यपाद समन्तभद्रसे पहले हुए हैं—यद्यपि इसपर से वे समन्तभद्रके समकालीन भी कहे जासकते हैं। परन्तु यह अनुमान तभी बन सकता है जबकि यह सिद्ध करदिया जाय कि एकान्तखंडन के कर्ता लक्ष्मीधर समन्तभद्रके साक्षात् शिष्य थे। उक्त अवतरणोंपर से इस गुरुशिष्य सम्बन्धका कोई पता नहीं चलता, और इसलिये मुझे 'एकान्तखंडन' की उस प्रतिको देखनेकी जरूरत पैदा हुई, जिसका पाठकजीने अपने लेखमें उल्लेख किया है और जो कोल्हापुरके लक्ष्मीसेन-मठमें ताड़पत्रों पर पुरानी कनड़ीलिपिमें मौजूद है। श्रीयुत ए० एन० उपाध्येजी एम० ए० प्रोफेसर राजाराम कालिज कोल्हापुरके सौजन्य तथा अनुग्रहसे मुझे उक्त ग्रंथ की एक विश्वस्त प्रति (Fair copy) खुद प्रोफेसर साहबके द्वारा जाँच होकर प्राप्त हुई, और इसके लिये मैं प्रोफेसर साहबका बहुतही आभारी हूँ।

ग्रन्थप्रतिको देखनेसे मालूम हुआ कि यह ग्रंथ अधूरा है—किसी कारणवश पूरा नहीं हो सका—और इसलिये इसमें ग्रंथकर्ताकी कोई प्रशस्ति नहीं है, न दुर्भाग्यसे ऐसी कोई संधियाँ हीहैं जिनमें ग्रंथकारने गुरुके नामोल्लेखपूर्वक अपना नाम दिया हो और न अन्यत्र ही कहीं ग्रन्थकारने अपनेको स्पष्टरूपसे समन्तभद्रका दीक्षित या समन्तभद्रशिष्य लिखा

‡ पाठकजीके शब्द इस प्रकार हैं— From the passages cited above from the Ekanta-khandana, it is clear that Pujyapada lived prior to Samantabhadra.

है। साथही, यह भी मालूम हुआ कि उक्त अवतरणोंमें पाठकजीने 'तदुक्तं' रूपसे जो दो श्लोक दिये हैं वहाँ एक पहलाही श्लोक है और उसके बाद निम्न वाक्य देकर ग्रंथविषयका प्रारंभ किया गया है—

'तदीयचरणाराधनाराधितसंवेदनविशेषः नित्याद्येकान्तवादविवादप्रथमवचनखण्डनप्रचण्डरचनाडम्बरो लक्ष्मीधरो धीरः पुनरसिद्धादिषट्कमाह।"

दूसरा श्लोक वस्तुतः ग्रंथके मंगलाचरणपद्य 'जिनदेवं जगद्वन्द्यं' इत्यादिके अनन्तरवर्ती पद्य नं० २ का पूर्वार्ध है और जिसका उत्तरार्ध निम्न प्रकार है। इसलिये यह ग्रंथकारका अपना पद्य है, उसे भिन्न स्थानपर 'तदुक्तं' रूपसे देना पाठक महाशयकी किसी गलतीका परिणाम है:—

"नौ ऽौ व्रते वरेण्यः पटुतरधिषणः श्रीसमन्तादि भद्रः। तच्छिष्यो लक्ष्मणस्तु प्रथित नयपथो वक्त्यसिद्धधादिषट्क

इस उत्तरार्धके बाद और 'तदुक्तं' से पहले कुछ गद्य है, जिसका उत्तरांश पाठकजीने उद्धृत किया है और पूर्वांश जिसमें ग्रंथके विषयका कुछ दिग्दर्शन होता है, इस प्रकार है:—

"नित्याद्येकान्तसाधनानामंकुरादिकं सकर्तृकं कार्यत्वाद् यत्कार्यं तत् सकर्तृकं यथा घटः। कार्यं च इद तस्मात्सकर्तृकमेवेत्यादीनाम्॥"

इस तरहपर यह ग्रंथकी स्थिति है और इस परसे ग्रंथकारका नाम 'लक्ष्मीधर' के साथ 'लक्ष्मण' भी उपलब्ध होता है, जो लक्ष्मीधरका पर्यायनाम भी हो सकता है। जान पड़ता है ग्रंथके प्रारंभमें उक्त प्रकारसे प्रयुक्त हुए 'तच्छिष्यः' और "तदीय चरणाराधनाराधितसंवेदन विशेषः" इन दो विशेषणों परसेही पाठकजीने लक्ष्मीधरके विषयमें समन्तभद्रका साक्षात् शिष्य होनेकी कल्पना कर डाली है! परन्तु वास्तवमें इन विशेषणों परसे लक्ष्मीधरको समन्तभद्रका साक्षात् शिष्य समझना भूल है; क्योंकि लक्ष्मीधरने एकान्तसाधनके विषयमें भिन्न कालीन तीन आचार्यों—सिद्धसेन, देवनन्दी (पूज्यपाद) और समन्तभद्रके मतोंका उल्लेख करके जो 'तच्छिष्यः' और 'तदीय चरणाराधनाराधितसंवेदन विशेष.' ऐसे अपने दो विशेषण दिये हैं उनके द्वारा उसने अपने को उक्त तीनों आचार्योंका शिष्य (उपदेश्य) सूचित किया है. जिसका फलितार्थ है परम्परा शिष्य (उपदेश्य)। और यह बात 'तदुक्तं' रूपसे दिये हुए श्लोकको 'इति' शब्दसे पृथक् करके उसके बाद प्रयुक्त किये गये तदीयादि द्वितीय विशेषण पद से और भी स्पष्टताके साथ झलकती है। 'तच्छिष्यः' का अर्थ 'तस्य समन्तभद्रस्य शिष्यः' नहीं किन्तु 'तेषां सिद्धसेनादीनां शिष्यः' ऐसा होना चाहिये। और उसपर से किसीको यह भ्रम भी न होना चाहिये कि 'उनके चरणोंकी आराधना सेवासे प्राप्त हुआ है ज्ञान विशेष जिसको' पदके इस आशयसे तो वह साक्षात् शिष्य मालूम होता है; क्योंकि आराधना प्रत्यक्ष ही नहीं किन्तु परोक्षभी होती है, बल्कि अधिकतर परोक्ष ही होती है। और चरणाराधनाका अभिप्राय शरीरके अंगरूप पैरोंकी पूजा नहीं, किन्तु उनके पदोंकी—वाक्यों की—सेवा—उपासना है, जिससे ज्ञान-विशेषकी प्राप्ति होती है। ऐसे बहुतसे उदाहरण देखनेमें आते हैं जिनमें शताब्दियों पहलेके विद्वानोंको गुरु रूपसे अथवा अपनेको उनका शिष्य रूपसे उल्लेखित किया गया है, और वे सब परम्परीण गुरुशिष्यके उल्लेख हैं—साक्षात् के नहीं। नमूनेके तौरपर 'नीतिसार' के निम्न प्रशस्ति वाक्यको लीजिये, जिसमें ग्रंथकार इन्द्रनन्दीने हजार वर्षसे भी अधिक पहलेके आचार्य कुन्दकुन्द स्वामीको अपनेको शिष्य (विनेय) सूचित किया है—

"—सः श्रीमानिन्द्रनन्दी जगति विजयतां भूरिभावानुभावी दैवज्ञः कुन्दकुन्दप्रभुपदविनयः स्वागमाचार चचुः॥"

इसी तरह एकान्तखंडनके उक्त विशेषणपद भी परम्परीण शिष्यताके उल्लेखको लिये हुए हैं—साक्षात् शिष्यताके नहीं। यदि लक्ष्मीधर समन्तभद्र

का साक्षात् शिष्य होता तो वह 'तदुक्तं' रूपसे उस श्लोकको न देता, जिसमें सिद्धसेनादिकी तरह समन्तभद्रकी भी एकान्तसाधनके विषयमें एक खास प्रसिद्धिका उल्लेख कियागया है और वह उल्लेख-वाक्य किसी दूसरे विद्वानका है, जिससे ग्रंथकार समन्तभद्रसे बहुत पीछे का—इतने पीछेका जब कि वह प्रसिद्धि एक लोकोक्तिका रूप बनगई थी—विद्वान जान पड़ता है। यह प्रसिद्धिका श्लोक सिद्धिविनिश्चयटीका और न्यायविनिश्चय-विवरणमें निम्न रूपसे पाया जाता है: -

> असिद्धः सिद्धसेनस्य विरुद्धो देवनन्दिनः।
> द्वेधा समन्तभद्रस्य हेतुरेकान्तसाधने ॥

न्यायविनिश्चय-विवरणमें वादिराजने इसे 'तदुक्तं' पदके साथ दिया है और सिद्धिविनिश्चय-टीकामें अनन्तवीर्य आचार्यने, जोकि अकलंकदेव के ग्रन्थोंके प्रधान व्याख्याकार हैं और अपने बादके व्याख्याकारों प्रभाचन्द्र-वादिराजादि द्वारा अतीव पूज्यभाव तथा कृतज्ञताके व्यक्तीकरणपूर्वक स्मृत किये गये हैं इस श्लोकको एक बार पाँचवें प्रस्तावमें "यद्वद्यन्यसिद्धः सिद्धसेनस्य" इत्यादि रूपसे उद्धृत किया है, फिर छठे प्रस्तावमें इसे पुनः पूरा दिया है और वहाँपर इसके पदोंकी व्याख्या भी की है। इससे यह श्लोक अकलंकदेवके सिद्धिविनिश्चय ग्रंथके 'हेतुलक्षणसिद्धि' नामक छठे प्रस्तावका है। और इसलिये लक्ष्मीधर अकलंकदेवके बादका विद्वान् मालूम होता है। वह वस्तुतः उन विद्यानन्दके भी बाद हुआ है जिन्होंने अकलंकदेवकी 'अष्टशती' के प्रतिवादी कुमारिलके मतका अपने तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक आदि ग्रंथोंमें तीव्र खण्डन किया है; क्योंकि उसने एकान्तखण्डनमें "तथा चोक्तं विद्यानन्द स्वामिभिः" इस वाक्यके साथ 'आप्तपरीक्षा' का निम्न वाक्य उद्धृत किया है, जो कि विद्यानन्दकी उनके तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक और अष्टसहस्री आदि कई ग्रंथोंके बादकी कृति है:—

> सति धर्मविशेषे हि तीर्थकृत्त्वसमाह्वये।
> बूयाज्जिनेश्वरो मार्गं न ज्ञानादेव केवलात् ॥

ऐसी हालतमें यह स्पष्ट है कि लक्ष्मीधर समन्तभद्रका साक्षात् शिष्य नहीं था—समन्तभद्रके साक्षात् शिष्योंमें शिवकोटि और शिवायन नामके दो आचार्योंका ही नामोल्लेख मिलता है [*]—वह विद्यानन्दका उक्त प्रकारसे उल्लेख करनेके कारण वास्तवमें समन्तभद्रसे कई शताब्दी पीछेका विद्वान मालूम होता है और यह बात आगे चलकर और भी स्पष्ट होजायगी। यहाँ पर सिर्फ इतनाही जान लेना चाहिये कि जब लक्ष्मीधर समन्तभद्रका साक्षात् शिष्य नहीं था, तब उसके द्वारा पूज्यपादका नामोल्लेख होना इस बातके लिये कोई नियामक नहीं होसकता कि पूज्यपाद समन्तभद्रसे पहले हुए हैं। यदि लक्ष्मीधरके द्वारा उल्लेखित होने मात्रसे ही उन्हें समन्तभद्रसे पहलेका विद्वान् माना जायगा तो विद्यानंदकोभी समन्तभद्रसे पहिलेका विद्वान मानना होगा, और यह स्पष्टही पाठकजीके, इतिहासके तथा विद्यानन्दके उस उपलब्ध साहित्यके विरुद्ध पड़ेगा, जिसमें जगह जगहपर समन्तभद्रका और उनके बहुत पीछे होनेवाले अकलंकदेवका तथा दोनोंके वाक्योंका भी उल्लेख किया गया है।

यहाँपर मैं इतना और भी बतला देना चाहता हूँ कि उपलब्ध जैनसाहित्यमें पूज्यपाद समन्तभद्रसे बादके विद्वान् माने गये हैं। पट्टावलियोंको छोड़कर श्रवणबेलगोलके शिलालेखोंसे भी ऐसा ही प्रतिपादित होता है। शिलालेख नं० ४० (६४) में समन्तभद्रके परिचय-पद्यके बाद 'ततः' शब्द लिखकर 'यो देवनन्दि प्रथमाभिधानः' इत्यादि पद्योंके द्वारा पूज्यपादका परिचय दिया है, और नं० १०८(२५८) के शिलालेखमें समन्तभद्रके बाद पूज्यपादके परिचय का जो प्रथम पद्य दिया है उसीमें 'ततः' शब्दका

[*] देखो, विक्रान्तकौरव, जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय, अथवा स्वामी समन्तभद्र (इतिहास) पृ० ९५ आदि।

प्रयोग किया है, और इस तरह पर पूज्यपादको समन्तभद्रके बादका विद्वान सूचित किया है। इसके सिवाय खुद पूज्यपादके जैनेंद्रव्याकरणमें समन्तभद्रका नामोल्लेख करनेवाला एक सूत्र निम्न प्रकार से पाया जाता है:—

चतुष्टयं समन्तभद्रस्य । ५-४-१६८ ॥

इस सूत्रकी मौजूदगीमें यह नहीं कहा जासकता कि समन्तभद्र पूज्यपादके बाद हुए हैं, और इसलिये पाठकजीको इस सूत्रकी चिन्ता पैदा हुई, जिसने उनके उक्त निर्णयके मार्गमें एक भारी कठिनाई (difficulty) उपस्थित करदी। इस कठिनाईसे सहजहीमें पार पानेके लिये पाठकजीने इस सूत्रको—तथा इसी प्रकारके दूसरे नामोल्लेख वाले सूत्रोंको भी—क्षेपक क़रार देनेकी जो चेष्टा की है वह व्यर्थ की कल्पना तथा खींचातानीके सिवाय और कुछ प्रतीत नहीं होती। आपकी इस कल्पनाका एकमात्र आधार शाकटायन व्याकरणमें, जिसे आपने जैनेंद्र व्याकरणके बहुतसे सूत्रोंकी नकल (copy) करने वाला बतलाया है, उक्त सूत्रका अथवा उसी आशय के दूसरे समान सूत्रका न होना है। और इससे आपका ऐसा आशय तथा अनुमान जान पड़ता है कि चूँकि जैन शाकटायनने जैनेंद्र व्याकरणके बहुतसे सूत्रोंकी नक़ल (कॉपी) की है इसलिये यह सूत्र यदि जैनेंद्र व्याकरणका होता तो शाकटायन इसकी भी नक़ल जरूर करता। परन्तु यह अनुमान ठीक नहीं है, क्योंकि एक तो 'बहुत' में 'सब' का समावेश नहीं किया जासकता है। यदि ऐसा समावेश माना जायगा तो पूज्यपादके 'जैनेन्द्र' में पाणिनीय व्याकरणके बहुतसे सूत्रोंका अनुसरण होनेसे और साथही पाणिनि द्वारा उल्लेखित शाकटायनादि विद्वानोंका नामोल्लेख न होनेसे पाणिनीय व्याकरण के उन नामोल्लेख वाले सूत्रोंको भी संक्षिप्त कहना होगा, जो इष्ट नहीं होसकता। दूसरे जैन शाकटायन ने सर्वथा 'जैनेंद्र' का अनुसरण किया है, ऐसा न तो पाठकजी द्वारा उद्धृत सूत्रों परसे और न दूसरे सूत्रों परसेही प्रतीत होता है। प्रत्युत इसके, कितने ही अंशोंमें वह स्वतन्त्र रहा है और कितनेही अंशों में उसने दूसरोंके सूत्रोंका, जिनमें पाणिनिके सूत्र भी शामिल हैं, अनुसरण किया है। खुद पाठकजीने अपने प्रकृत लेखमें शाकटायनके "जरायाङसिन्दुस्याचि" (१-२-३७) सूत्रके विषयमें लिखा है कि वह बिलकुल पाणिनिके "जराया जरसन्यतरस्याम्" (७-२-१०१) सूत्रके आधार पर रचा गया है (is entirely based on)। साथही यहभी लिखा है कि जैन शाकटायनके इस सूत्रमें "इन्द्र" का नामोल्लेख होनेसे ही कुछ विद्वानोंको यह विभ्रम करनेमें गलती हुई है कि 'इन्द्र' नामकाभी वास्तवमें कोई वैय्याकरणी हुआ है*। ऐसी हालतमें यदि उसने जैनेंद्रके कुछ सूत्रोंको नहीं लिया अथवा उनका या उनके नामवाले अंशका काम 'वा' शब्दके प्रयोग से निकाल लिया और कुछ ऐसे सूत्रोंमें स्वयं पूर्वाचार्योंके नामोंका निर्देश किया जिनमें पूज्यपादने 'वा' शब्दका प्रयोग करकेही संतोष धारण करलिया था, तो इससे कोई बाधा नहीं आती और न जैनेंद्र तथा शाकटायनके वे वे (पूर्वाचार्योंके नामोल्लेख वाले) सूत्र प्रक्षिप्त ही ठहरते हैं। उन्हें प्रक्षिप्त सिद्ध करनेके लिये विशेष प्रमाणोंको उपस्थित करनेकी ज़रूरत है, जो उपस्थित नहीं किये गये। अस्तु।

जब एकान्तखण्डनके कर्ता लक्ष्मीधर समन्तभद्रके साक्षात् शिष्यही सिद्ध नहीं होते और न उनके द्वारा उल्लेखित होनेमात्रसे पूज्यपाद समन्तभद्र के पहलेके विद्वान ठहरते हैं तब यहां पर इन सूत्रों के विषयमें कोई विशेष विचार करनेकी जरूरत नहीं रहती; क्योंकि उक्त सूत्र (५-४-१६८) की

* पाठकजीका यह कथन भी कुछ ठीक मालूम नहीं होता; क्योंकि लंकावतार सूत्र जैसे प्राचीन ग्रंथमेंभी इन्द्र को शब्द शास्त्रका प्रणेता लिखा है: —

"इन्द्रोऽपि महामते अनेक शास्त्र विदग्ध बुद्धिः स्वशब्द शास्त्र प्रणेता" पृ० १७४

प्रक्षिप्तताके आधार पर ही समन्तभद्रको पूज्यपादके बादका विद्वान नहीं बतलाया गया है बल्कि एकांत-खण्डनके उक्त अवतरणोंके आधार पर वैसा प्रतिपादित करके जैनेंद्रके इस सूत्रविषयमें प्रक्षिप्तताकी कल्पना कीगई है, और इस कल्पनाके कारण दूसरे नामोल्लेख वाले सूत्रोंको भी प्रक्षिप्त कहनेके लिये बाध्य होना पड़ा है। परन्तु फिरभी जैनेंद्रके "कृवृषिमृजां यशोभद्रस्य" (२-१-९९) इस नामोल्लेख वाले सूत्रको प्रक्षिप्त नहीं बतलाया गया। नहीं मालूम इसका क्या कारण है।

छठा हेतु भी समीचीन नहीं है क्योंकि जब लक्ष्मीधर समन्तभद्रका साक्षात शिष्य ही नहीं था और उसने कुमारिलके मतका खंडन करनेवाले विद्यानन्द स्वामी तकका अपने ग्रंथमें उल्लेख किया है, तो उसके द्वारा भट्टाचार्यके रूपमें कुमारिलका उल्लेख होनेसे यह नतीजा नहीं निकाला जासकता कि समन्तभद्र कुमारिलके प्रायः समसामयिक थे अथवा कुमारिलसे कुछ थोड़े ही समय पहले हुए हैं।

अब रहा सातवां हेतु, जो कि प्रायः सब हेतुओंके समुच्चयके साथ साथ समयके निर्देशको लिये हुए है। इसमेंकी कुछ बातें—जैसे समन्तभद्र का धर्मकीर्ति तथा भर्तृहरिको लक्ष्य करके उनके मतोंका खण्डन करना और लक्ष्मीधरकी साक्षात् शिष्यता—तो पहलेही असिद्ध सिद्ध की जाचुकी हैं, जिनकी असिद्धिके कारण इस हेतुमें प्रायः कुछभी बल तथा सार नहीं रहता। बाकी विद्यानन्द व पात्रकेसरीको जो यहां एक बतलाया गया है—पहले भी विद्यानन्दको 'पात्रकेसरी' तथा 'विद्यानन्दपात्रकेसरी' नामसे उल्लेखित किया गया है—और उन्हें तथा प्रभाचन्द्रको अकलंकदेवके अवर (Junior) समकालीन विद्वान् ठहराया गया है और साथही अकलंकदेवको ईसाकी आठवीं शताब्दीके उत्तरार्ध का विद्वान् क़रार दिया गया है, वह सबभी असिद्ध और बाधित है। पात्रकेसरी विद्यानन्दका कोई नामान्तर नहीं था, न वे तथा प्रभाचन्द्र अकलंकदेव के शिष्य थे और न उनके समकालीन विद्वान्; बल्कि पात्रकेसरी तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिकादि के कर्ता विद्यानन्दसे भिन्न एक जुदे ही आचार्य हुए हैं तथा अकलंकदेवके भी बहुत पहले होगये हैं, और अकलंकदेव ईसाकी सातवीं शताब्दीके प्रायः पूर्वार्ध के विद्वान हैं। आगेके विवेचन द्वारा इन सब बातों का भले प्रकार स्पष्टीकरण किया जायगा।

ग्रीष्मप्रवास

(२)

भुसावल—ता० २९-४-३४ को भुसावल आया। पूनमचन्दजी नाहटा के यहाँ ठहरा। आप स्थानकवासी समाजके प्रसिद्ध व्यक्ति तथा अच्छे व्याख्याता हैं। आपके तथा अन्य युवकोंके प्रयत्नसे शामको मेरे व्याख्यानका प्रबन्ध हुआ। करीब सवा घंटे तक मैंने व्याख्यान दिया, जिसमें तीनों सम्प्रदायोंकी एकता, रूढ़ियोंके बन्धन तथा जातिपाँतिके बन्धन तोड़ना, धर्ममें निःपक्षतासे काम लेकर वैज्ञानिक जैनधर्म का स्वागत करना आदि पर विवेचन किया।

व्याख्यानके बाद जब मैं नाहटाजीके यहां बैठा था तब वहाँ पर एक वयोवृद्ध खंडेलवाल श्रीमान आये। आप पुराने ख़यालके सज्जन थे परन्तु आप सभी तरहके पंडितोंसे नाखुश थे। आपने अनेक विषयोंपर चर्चाकी जिसका समुचित उत्तर दिया गया। विधवाविवाह आदि पर चर्चा होनेके बाद अछूतोद्धारपर जब चर्चा हुई तब मैंने कहा कि आप लोग मंदिरप्रवेशबिलके विरोधी क्यों हैं? जब आज अछूत जैनी नहीं हैं, तब वे अपने मंदिरमें क्यों आवेंगे? और आवेंगे तो जैन समाजकी बहुसम्मति से आयेंगे। इसके अतिरिक्त एक बात और है कि जब वे अहिंसादि व्रतों का पालन कर सकते हैं तब पूजा आदि अधिकारोंमें क्या बाधा है? पूजा आदिकी अपेक्षा अहिंसादि व्रतोंका स्थान तो कई गुणा उच्च है। पहिली बात पर तो उनने कुछ नहीं कहा, परन्तु दूसरी बातके उत्तर में उनने स्वीकार किया कि अछूतोंको भी जिनपूजा आदिका अधिकार है, परन्तु मंदिर आदि हमारी सम्पत्ति है इसलिये

अब हम उन्हें आने देना नहीं चाहते तो उन्हें आनेका हक नहीं है। तब मैंने कहा कि—अगर कोई भंगी जिन मंदिर बनवावे और वह पर अभिषेक पूजादि करे तब तो आपका कोई विरोध नहीं है? वे बोले—नहीं, इसमें मेरा विरोध नहीं है। मैंने कहा कि तब तो मंदिरप्रवेश और जिनपूजाधिकारका प्रश्न धार्मिक न रहा, आर्थिक रहा! इसलिये धर्म डूबनेका शोर मचाना वृथा है। उनने मेरे इस वक्तव्यका समर्थन किया। मालूम नहीं कि उनका यह समर्थन उनका स्थायी विचार था या मेरी युक्तियोंके कारण उनको ये विचार प्रकट करना पड़े थे। कुछ भी हो, परन्तु मैं तो उनके इन विचारोंको स्थायी विचार माने लेता हूँ।

इससे मालूम होता है कि स्थितिपालक पंडितदल रूढ़ियोंका जिस प्रकार विचारहीन समर्थक है उस प्रकार पुराने विचारके लोगभी नहीं हैं। समाजका वृद्धदल मौके पर कुछ विचार भी करता है। अगर पंडितदलने समाजकी गुलामी न की होती तो समाजने अवश्यही सुधार पर कई गुणा लक्ष्य दिया होता। इससे पंडितोंकी इज्जत भी रही होती और समाजका कल्याण भी हुआ होता।

दूसरे दिन मेरी तबियत खराब होगई और ऐसा मालूम होने लगा कि प्रवासका कार्य अधूरा छोड़कर भागना पड़ेगा। परन्तु श्रीयुत पूनमचंदजी नाहटाने अच्छी तरह सेवा की। मैंने भी धैर्य रक्खा। इसी दिन धरणगाँव आनेकी सूचना मैं देचुका था, इसीलिये कमजोरीकी हालत रहने पर भी ट्रेनमें आकर लेटगया और धरणगाँव आ पहुँचा।

धरणगाँव—मेरे आनेपर रात्रिमें ही बहुतसे जैन बन्धुओंने बैठकर चर्चा की, परन्तु कमजोर होनेसे चर्चा शीघ्र बन्द कर देना पड़ी।

धरणगाँवमें ओसवाल दिगम्बर जैनोंकी बस्ती है। चालीस पचास घर हैं और इनका सम्बन्ध जैसवाल आदि अनेक जातियोंसे होचुका है। बहुत वर्षोंसे इनमें अनेक जातियोंका मिश्रण हुआ है। यहांके लोगोंने अपनी मर्दुमशुमारी की है जिसे देखकर हृदयपर बड़ा आघात हुआ। इनमें १० वर्षसे ऊपरकी कुमारियाँ सिर्फ सात हैं जबकि इनके साथ विवाह करनेके लिये १२ वर्षसे ऊपरके कुमार ४६ हैं। इसलिये अनेक सुयोग्य युवक अविवाहित पड़े हैं। सब कुमारियोंकी गिनती लगायी जाय तो सिर्फ ३४ है जबकि कुमारोंकी संख्या ७४ है। विधुर भी दूसरा विवाह करते हैं। वे भी १६ हैं। इसप्रकार विवाहयोग्य पुरुषोंसे विवाहयोग्य स्त्रियोंकी संख्या आधीसे कम ही है। स्त्रियों में आधी विधवाएँ हैं। विवाहित स्त्रियाँ अगर ४७ हैं तो विधवाएँ भी ४६ हैं। विधवाविवाहको गाली देनेवाले गाली देसकते हैं परन्तु इन जलतीहुई पुतलियोंकी आग नहीं बुझासकते। यहाँकी समाज सुधारक है, विजातीय विवाहको कार्य रूपमें परिणत कररही है, परन्तु विधवाविवाहका प्रचार किये बिना यह समस्या हल नहीं हो सकती।

ता० १५-३४ को प्रातःकाल जैन मंदिरमें शास्त्र बाँचा। जैन धर्मके मर्मका प्रथम अध्यायका अंश बाँचागया और इसपर करीब डेढ़घंटा विवेचन हुआ। इसी दिन शामको मेरा व्याख्यान हुआ। व्याख्यानका विषय था—समाजस्थिति और युवकोंका कर्तव्य। सवाघंटे तक भाषण हुआ।

ता० १-५-३४ को सुबह अमलनेर गया। अमलनेर में एक तत्त्वज्ञान मंदिर है, जिसमें कई लाख रुपया लगा है। यह अपने ढंगकी एकही दार्शनिक संस्था है। यहाँ पर विद्यार्थियोंको एक वर्षके लिये अच्छी स्कालर्शिप दी जाती है। प्रताप शेठ कैपरोहिद और उनके मित्र शेठ बलभदासजीके धनसे इस संस्थाका ध्रुवफंड पौने तीन लाख रुपये है। इसके अतिरिक्त प्रतापमिलसे धर्मादा आता है, तथा प्रतापशेठ प्रतिवर्ष इसके लिये ३५ हजार रुपये खर्च करते हैं। इसप्रकार इस संस्थाकी आर्थिक स्थिति उत्तमसे उत्तम है। जो विद्यार्थी फिलासफीमें ऐम० ए० पास करते हैं उन्हें १००) माहवार फैलोशिप दी जाती है। बी० ए० पासको ६०) से ७५) रुपये माहवार जूनियर फैलोशिप दी जाती है तथा योग्य विद्यार्थियोंको ३०) मासिक स्कालर्शिप दी जाती है। पंद्रह हजार रुपयेकी पुस्तकें हैं; और बढ़ती जाती हैं। मुख्य चालकका वेतन २००) से ५००) रु० मासिक तक है। और अध्यापकोंको भी १००) से ऊपर अच्छा वेतन मिलता है। इस प्रकार आर्थिक स्थिति अच्छीसे अच्छी होनेपर भी मुझे सन्तोष नहीं हुआ। जितना पैसा खर्च होता है उसकी अपेक्षा काम इतना कम होता है कि

हृदय कुछ खिन्न होजाता है। किसी विद्यार्थीको एकसाल का वेतन देकर एकाध निबन्ध लिखवा लेनेसे धर्म या देश की उन्नतिमें कुछ सहायता नहीं मिलती। मालूम होता है कि अभीतक बहुत कम निबन्ध लिखे गये हैं। निबन्धोंमें भी इधर उधरका संग्रह मालूम होता है, मौलिक विचार नहीं। संस्थाका उद्देश शांकर अद्वैतका प्रचार करना है। निबन्धोंमें अद्वैतकी मीमांसा की जाती है। वे निबन्ध जब इस अद्वैतके समर्थनमें होते हैं तभी छपवाये जाते हैं। इस प्रकार यह संस्था लाखों रुपये खर्च करती है, फिरभी इससे मनुष्यनिर्माण, समाजनिर्माणका कुछ काम नहीं होता और ग्रंथनिर्माण भी विशेष उपयोगी नहीं मालूम हुआ।

जिस समय मैं गया उस समय छुट्टियाँ थीं, इसलिये किसी अध्यापक या विद्यार्थीसे भेंट न होसकी। हाँ, एक सज्जनने अच्छी तरह सब बातें बताईं। लाइब्रेरी विशाल होनेपर भी जैन बौद्ध साहित्य क़रीब क़रीब नहीं था। यह असाधारण कमी थी। जिस संस्थाके पास इतना धन और इतनी आमदनी हो, वह तो इस दिशा में बहुतही अधिक काम कर सकती है। फिर भी प्रताप सेठकी उदारता की तारीफ़ तो करना पड़ती है; और दार्शनिक संस्थाकी स्कीम भी बहुत अच्छी है। जैनसमाज में ऐसी संस्थाकी अत्यन्त आवश्यकता है जिसके विषय में मैं पिछले दो वर्षोंसे बहुत कुछ विचार किया करता हूँ।

अभी तक जैनसमाजमें जितनी संस्थाएँ हैं वे बहुत संकुचित और एकांगी हैं। सभीमें स्वतन्त्र विचारबुद्धि को ताकमें रखकर हज़ारों वर्ष पुरानी बातें पढ़ाई जाती हैं। न उनमें समयोचितता है, न सत्यकी पूजा, न विकास है न स्वतन्त्रता, न उत्साह है न जीवन। उनका उपयोग भी सभी वर्गके लोग नहीं कर पाते। गृहस्थोंको तो उनसे प्रायः कुछ लाभ नहीं होता।

इसके लिये एक ऐसी संस्थाकी आवश्यकता है जिसमें जैन धर्मकी शिक्षा वैज्ञानिक ढंगसे दीजाय। जैन धर्मके मर्ममें जैनधर्मका जैसा रूप बतलाया गया है, उसी प्रकारका व्यापक जैनधर्म वहाँ पढ़ाया जाय। आधुनिक ढंगसे हिन्दीमें न्यायशास्त्र, समाज शास्त्र, अर्थशास्त्र आदि का शिक्षण दिया जाय। एक विभागमें लड़के हों, दूसरेमें लड़कियाँ और विधवाएँ हों, तीसरा ऐसा विभाग हो जहाँ गृहस्थ लोग सकुटुंब अपने खर्चसे रहसकें। जो वानप्रस्थाश्रमी होकर रहना चाहते हों वे और जो लोग अस्थायी रूपमें महीने पन्द्रह दिनके लिये रहना चाहते हों वे भी संस्था से लाभ उठासकें। इन्हीं तीनों विभागों में से सच्चे कार्यकर्त्ताओं का निर्माण भी किया जाय। साथही एक प्रकाशन विभाग हो जिससे एक पत्र निकला करे तथा इसी लक्ष्यको सिद्ध करनेके लिये नयी नयी पुस्तकें भी प्रकाशित हों। इस प्रकार अच्छा साहित्य निर्माण हो।

खेद इतना है कि जहाँ पैसा है, वहाँ कार्यकर्ता नहीं हैं; जहाँ कार्यकर्ता है वहाँ पैसा नहीं है। साम्प्रदायिकता के पोषणके लिये पैसा सरलतासे मिलजाता है, जैसा कि अमलनेरमें हुआ, परन्तु सम्प्रदायातीत कार्य करनेके लिये मनों पसीना बहानेपर भी तोलों धन नहीं मिलता। यदि जैनसमाजके कुछ सम्प्रदायातीत श्रीमान् तथा इसी ढंग के कुछ उत्साही युवक इसके लिये कमर कसलें तो इसमें संदेह नहीं कि यहाँ एक अभूतपूर्व आश्रम खड़ा हो सकता है।

यदि किसी दिन यह स्वप्न सफल हुआ तो मेरी इच्छा है कि उसके लिये अपनी सारी शक्ति लगाऊँ। अपनी कमाईसे मैं अपना खर्च उठाते हुए सब काम छोड़ कर ऐसीही संस्थाको चलाऊँ। मेरे द्वारा यह कार्य हो या न हो, परन्तु मुझे आशा है कि एक न एक दिन इसकी पूर्ति होगी। वह जल्दीसे जल्दी हो इसके लिये यह मार्ग सूचन किया गया है।

इसी दिन शामको मैं फिर धरणगाँव आया। शाम को सर्वधर्म समभावपर मंदिरमें मेरा लेक्चर हुआ, जिसमें सब धर्मोंका समन्वय करके वैनयिक मिथ्यात्व और सर्वधर्मसमभावमें क्या अन्तर है, समझाया। वैनयिक मिथ्यात्वमें विवेक बिलकुल नहीं होता जबकि सर्व धर्म-समभाव तो विवेकके बिना एक क़दम भी नहीं चल-सकता, इत्यादि १॥ घंटे तक भाषण हुआ।

ता० ३-५-३४ को मैं बिदा होनेवाला था। यहाँके डॉक्टर श्रीयुत नर्मदाशंकरजीकी तीव्र इच्छा थी कि मैं उनके यहाँ हास्पिटलके कम्पाउण्डमें भाषण करूँ। मुझे उनका अनुरोध मानना पड़ा। यहाँ १॥ घंटे तक प्रश्नोत्तर हुए। मनुष्यका सुधार कैसे हो, सुख क्या है, कहाँ

है, आदि प्रश्नोंके उत्तरके साथ मैंने बतलाया था कि धर्मशास्त्र और दर्शनशास्त्र बिल्कुल जुदेजुदे शास्त्र हैं। दर्शन की भूलको धर्मकी भूल न मानना चाहिये। सुखी बनने का मार्ग बतलाना धर्मशास्त्रका काम है। बाकी शास्त्र उसके सहायक हैं। यदि आज वे धर्मशास्त्रको ठीक ठीक सहायता नहीं पहुँचा पाते तो उनको बदलनेमें तथा धर्मशास्त्रके साथ उनका सम्बन्ध तोड़नेमें कुछ हानि नहीं है। आदि।

धरणगाँव सुधारकोंका केन्द्र है। यहाँ उत्साही युवक भी हैं। दो जैनेतर बन्धु तो इतने जिज्ञासु थे कि वे दुपहर के समयपर प्रतिदिन अपनी विविध शंकाओंके समाधान के लिये आते थे। भाई उदयलालजी जैनजगत्के परम भक्त और उग्र प्रचारक हैं। ये दिन भर जैनजगत बगल में दबाये हुए उसके लेख श्रोताओंको सुनाते रहते हैं और मन्दिरमें भी बाँचते हैं। उग्रसुधारक होनेसे कुछ लोगोंने इन्हें दो साल पहिले गुंडोंसे पिटवाया था, उससे इन्हें [illegible] सहना पड़ी थी परन्तु यह वीर युवक आज भी वैसाही उत्साही है। ११॥) जैनजगत्की सहायताके लिये यहाँकी जनताकी तरफसे मिले। ३ तारीखको रवाना होकर ४ के सुबह मैं भामनगाँव आया।

" ३६वाँ प्रश्न "

(लेखक—श्रीयुत चरणदासजी जैन M. S. S. मन्त्री यङ्गमेन्स असोसियेशन ऑफ इण्डिया।)

दिगम्बर जैन समाजके अमूल्य रत्न तथा संगठनप्रेमी पं० दरबारीलालजी न्यायतीर्थ, बा० भोलानाथजी दरख्शाँ तथा बा० कामताप्रसादजी M. R. A. S. आदिने पंडित अजितकुमारजी लिखित श्वेताम्बरमतसमीक्षा द्वारा उत्पन्न हुई अशान्तिको देखकर उससे होनेवाले दुष्परिणामको महसूस किया, तथा इस अग्निको शान्त करनेके लिये शुद्ध हृदयसे उन्होंने संगठन और प्रेमपर एक लेख लिखा। ये लेखक बड़े अनुभवी तथा जैनसमाजकी नब्ज़ अच्छी तरहसे जानने वाले हैं। इसमें कोई संदेह नहीं। इसलिये ही उन्होंने जैनसमाज के भविष्यको अशान्ति, द्वेष और कलहाग्निसे बचानेके लिये बड़ी दूरदर्शितासे काम लिया।

परन्तु जिन पण्डितोंका आधार ही द्वेष व अग्नि फैलाना हो, उन पण्डितोंको संगठन और प्रेम की बातें कहां अच्छी लगती थीं, उन्होंने फिरसे दुराग्रह तथा जैनसमाजमें विषरूप श्वेताम्बर समीक्षा के समर्थनमें लेखनी चलाते हुवे शुद्ध हृदय, संगठनप्रेमी, निष्पक्ष लेखकोंके व्यक्तित्वपर आक्रमण प्रारम्भ किया।

किसीको तो लिखा कि आप दिगम्बरी हैं, दिगम्बर समाजका दूध पीते हैं, इसलिये आप को शान्ति करानेके लिये सत्य बात भी न कहनी चाहिये, किसी को लिखा कि आप काला पक्ष पात कर रहे हैं, अन्धी घुड़दौड़ में शामिल हो रहे हैं, इत्यादि असभ्य शब्दोंसे उन संगठनप्रेमियोंका सत्कार (?) किया।

भविष्यमें कोई भी विद्वान निष्पक्ष लेखनी न उठाये, इसके लिये उन्हें कई प्रकार से दबाव देने लगे। मुझे पूर्ण विश्वास है कि वे विद्वान लेखक कभी पंडितजीकी [illegible] वाले नहीं हैं। वे अशान्ति [illegible] पुस्तक को देखेंगे और [illegible] मार्ग के [illegible]।

जिस प्रकार इन विद्वान [illegible] देने का प्रयत्न किया जा रहा है, उस [illegible] को चूर्ण कर देने से सब भेद खुल जाता है।

पं० दरबारीलालजी को उत्तर देते हुवे लिखा कि आप 'आर्यसमाजके एकसौ प्रश्नोंके उत्तर' नामक ट्रैक्ट में ३६ वाँ प्रश्न व उत्तर देखिये। १९ वें अङ्क में बा० भोलानाथजी दरख्शाँ को उत्तर देते हुवे लिखा कि श्वेताम्बर समाजके प्रति लेखक की मनोवृत्ति जाननेके लिये आर्यसमाज के एक सौ प्रश्नोंके उत्तरमें ३६ वें प्रश्नके उत्तरको देखिये २२ वें अङ्क में बा० कामताप्रसादजी पर नुक्ता-

चीनी करते हुवे उत्तर दिया कि श्वे० ग्रन्थों का अपमान करनेकी हमारी मनोवृत्ति कैसी है, यह जाननेके लिये एकसौ प्रश्नों के उत्तर में ३६ वाँ प्रश्न देखिये। पं० जी के भक्त वल्लभदासजीने जैनमित्र में एक लेख लिखा। उसमें भी उन्होंने यही लिखा है कि पंडितजी की मनोवृत्ति जानने के लिये आर्यसमाज के सौ प्रश्नों के उत्तर में ३६ वाँ प्रश्न देखिये। अर्थात् पं० अजितकुमार-जी के कुल झगड़ालू साहित्य में उदारता का नमूना ३६ वाँ प्रश्न ही रहगया।

इसमें कुछ संदेह नहीं कि पंडितजी ने ३६ वें प्रश्न का उत्तर देते हुवे बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया है, और खूब गोलमाल उत्तर दिया है, लेकिन पंडितजी इस समय तक कई पुस्तकें लिख चुके हैं, जैनगजट का सम्पादन भी कर चुके हैं और इस समय जैनदर्शन का सम्पादन कर रहे हैं। उनके जीवन भरके कुल लेखों और पुस्तकोंमें से केवल ३६ वां प्रश्न ही ऐसा लिखा गया है, जिसे उठा उठाकर पंडितजी व उनके भक्त लेखक उनकी सद्भावना का नमूना बतला रहे हैं। वैसे 'आर्यसमाज के एकसौ प्रश्नोंके उत्तर' नामक ट्रैक्टमें अन्य प्रश्नोंके उत्तर देखे जायं तो उन्हींमें ही पंडितजी की दुर्भावना सद्भावनाकी कलई खुल जाती है। क्या पंडित-जी को ३८-४०-४५ वें प्रश्नोंका उल्लेख करते हुवे लज्जा आती है? ज़रा पाठकोंसे यही कहदें कि आप इन प्रश्नोत्तरोंको भी देखिये, तो पंडित-जी की अनर्गल मनोवृत्ति हरएक भलिभांति जान ले। मैं इन प्रश्नोंको अक्षरशः अपने पिछले लेख 'श्वेताम्बर मतसमीक्षा ही अशान्ति का कारण है," में उद्धृत कर चुका हूँ।

रहा ३६ वां प्रश्न, सो पंडितजी, आपने समाज में अशान्ति फैलाने के लिये प्रारम्भसे पूर्ण जो कुछ आज तक लिखा है, तथा अभीतक अपने पत्र में जो निरन्तर लिखते चले आरहे हैं, उन सबका प्रायश्चित यह ३६ वां प्रश्न नहीं हो सकता।

जिस गौरव से आप ३६ वें प्रश्न को ही लिये फिरते हैं, केवल उससे श्वेताम्बरमतसमीक्षा की कालिमा दूर नहीं हो सकती।

मेरी सद्भावना यह है कि ३६ वें प्रश्नका उत्तर लिखते समय आपको जैसी सद्बुद्धि प्राप्त हो गई थी वैसी सद्बुद्धि कुछ देर के लिये न रहकर, सदा के लिये बनी रहे।

आपको श्वेताम्बरमत समीक्षा, तथा आर्य-समाज के एक सौ प्रश्नोंके उत्तर पर यह गौरव है कि यह सद्भावना व सहानुभूति तथा श्वेताम्बर-दिगम्बर खाई को पूरा करने के लिये लिखी गई है तो क्या आप उन्हीं दो पुस्तकोंको श्वेताम्बर दिगम्बर पत्रसम्पादकोंके पास समालोचनार्थ शीघ्र भेज दीजिये जिससे आपभलीभांति जान सकें कि यह पुस्तक श्वेताम्बर दिगम्बर की खाई को पूरा करनेवाली है कि अधिक खोदने-वाली है?

विविध विषय।

(ले०—प्रो० जगदीशचंद्रजी जैन एम० ए०)

पुरुषोंका अत्याचार

पुरुष जातिका हृदय कितना कठोर है! इन पुरुषों ने स्त्रियोंके प्रति कितनी हृदयहीनताका परिचय नहीं दिया? स्त्रियाँ नरककी खान हैं, विषकी बेल हैं, महान् अपवित्र हैं, निन्द्य हैं, उन्हें स्वतंत्र रहनेका कोई अधिकार नहीं, समय समयपर उन्हें ताड़ना दीजाने की भी आव-श्यकता है, आदि गंदे और पापमय विचारोंने हमारी समाजके वातावरणको इतना कलुषित बनादिया है कि आज अधिकांश महिलायें सामाजिक कुरीतियोंका शिकार बनकर घोर यातनामय जीवन बिता रही हैं। इतना ही नहीं, इन महिलाओंका अन्तःकरण इतना दीन और पा-मर बनगया है कि ये लोग अपने आपको पुरुषोंकी दासी

और उनके पैरोंकी जूतियाँ समझनेमें ही अपना अहो-भाग्य मानती हैं।

पुरुषोंने भी स्त्रीकी इस सरलता और भोलेपनका खूब लाभ उठाया—उन्हें दिल खोलकर अपमानित किया और सबलासे अबला बनाकर, परदेकी चौखटमें मढ़कर एक दर्शनीय वस्तुका स्थान बना लिया। बड़े बड़े दिग्गज विद्वानोंने तो स्त्रियोंको पापका पिटारा बताकर उनसे पुरुषोंको अलग रखनेके लिये आकाश पाताल एक कर-दिया, यहाँतक कि एकको घी की, तो दूसरेको अग्नि की उपमा दीगई। परन्तु पुरुषकी लम्पटता और कामाग्नि का उद्वेग इस तरह फूँस डाल डालकर कबतक दबाया जासकता था? बड़े बड़े साहित्यकारों और कलाकारोंका जन्म हुआ। इन लोगोंने स्त्रियोंके अंगप्रत्यंगका सूक्ष्म अ-भ्यास किया और उनका सुन्दर और आकर्षक वर्णन करके अपने नामको सदाके लिये अजर अमर कर दिखाया।

अभी पटनेकी एक घटना है कि एक १६ वर्षकी विधवा लड़की अपने पतिके घर रहती थी। उसी घरमें उस लड़कीका देवर भी रहता था। बस, लड़कीके नवयौ-वनकी छटाको देखकर देवर महाशय अपनेको न सँभाल सके। फलस्वरूप दोनोंका अनुचित सम्बन्ध स्थापित होगया। संयोगवश विधवा लड़की गर्भवती होगई। छः महीने बाद जब देवरजीको इसका पता लगा तो वे बहुत छटपटाये और अपनी लाज बचानेके लिये रास्ता खोजने लगे। अन्तमें वही हुआ जो हमारी समाजमें दिनरात होता है। नरपिशाच देवरने लड़कीको गर्भ गिरानेके लिये बाध्य करनेका प्रयत्न किया। जब लड़की इस नृशंस कर्म करनेके लिये राज़ी न हुई तो देवरने तरह तरहके कष्ट देना प्रारम्भ करदिया। आखिर तंग आकर लड़की अपने माता पिताके घर चलीगई। अब लड़कीने देवर महाशयके ऊपर इण्डियन पीनल कोडकी ३७९वीं धाराके अनुसार कोर्टमें मुकदमा दायर किया है। यह है पुरुषों के अत्याचारका एक संक्षिप्त परिचय।

अबलाओंकी निर्बलता।

वैसे तो हमारे देशमें स्त्रियोंको भगाकर लेजानेकी प्रथा बहुत समयसे प्रचलित है, परन्तु अभी तीन चार वर्षोंसे इस प्रथाने जो भयंकर रूप धारण किया है, वह असह्य होता जारहा है। किसी भी समाचारपत्रको उठा कर पढ़िये, प्रतिदिन कहीं न कहीं एक दो केस होजाना आजकल बहुत साधारणसी बात होरही है।

अभी शिमलामें एक अच्छे घरानेकी लड़की जो अपने गाँवसे किसी कामसे अपने सगे सम्बन्धियोंके यहाँ आई थी, गायब करदी गई। पुलिसकी बहुत छानबीन करने पर कईदिन बाद लड़की गुण्डोंके घरसे बरामद हुई। दूसरी घटना कलकत्तेकी है। रोबिया बीबी नामकी अठारह वर्षकी एक स्त्री अपने पतिके साथ कलकत्तेमें रहती थी। गुंडोंने एक औरतको रोबियाबीबीके पास भेजा और उसे बाज़ार लिवा लेजानेके बहाने अपने घर बुलवा मँगाया। यह औरत एक महीने तक इन गुंडोंके पंजेमें रही। बाद में पता लगा और गुण्डोंको सज़ा दीगई। अभी दूसरी घटना कानपुरमें हुई है। घटना इस प्रकार है कि दर्शन सिंह और छेदा नामके दो आदमी एक १५ वर्षकी लड़की के साथ कानपुर स्टेशन पर उतरे। एक पण्डेको इन आदमियोंपर सन्देह हुआ और उसने झट पुलिसके एक सिपाहीको खबर दी। पुलिसके आनेपर छेदा तो नौ दो ग्यारह हुआ। पुलिस दर्शनसिंह और लड़की दोनोंको पकड़कर पुलिस थानेमें लाई। लड़कीने बयान देते हुए कहा कि लगभग एक महीना हुआ आधीरातको कई आदमी मेरे मकानमें घुसआये और मुझे ज़बर्दस्ती उठाकर लेगये। इन लोगोंने मेरे सतीत्वको भ्रष्ट किया है और अब मुझे जगह जगह लिये फिर रहे हैं।

एक नहीं, ऐसी न जाने कितनी हृदयद्रावक रोमांच-कारी घटनायें हमारे देशमें रोज़ाना होती हैं। परन्तु हमारा महिलासमाज घोर कुंभकर्णकी निद्रा लेरहा है। इस नारीजागरणकी अभूतपूर्व क्रांतिके समयभी जब कि पश्चिमकी महिलायें आशातीत उन्नति कररही हैं, ह-मारी महिलायें परदेमें घुटती हुई क्षयरोगसे पीड़ित होती हुई, पुरुषोंके भोगविलास और आमोदप्रमोदकी सामग्री बनकर उनके हाथमें कठपुतलीकी तरह नाचरही हैं। न जाने इस पराधीनताका अंत कब होगा?

अभी इन्दौरमें एक जैनमहिलाने एक गुंडेको पकड़ कर अपने साहसका परिचय दिया है। अभी कुछ दिन हुए एक जाटकी १७ वर्षकी लड़कीने भयंकर हत्याकारी डाकुओंसे कुश्ती ली थी। क्या हमारी समाजकी महि-लायें पुरुषोंके पंजेसे मुक्त होकर, समाजका नाश करने वाली घातक कुरीतियोंको अंतिम प्रणाम करके, स्वतंत्रता

के मैदानमें आकर अपनी अपार छिपी हुई शक्तियोंका परिचय देकर अपनी निर्बलता दूर न करेंगी ?

कच्चा और पक्का।

अभी एक मित्र बम्बई तशरीफ़ लाये थे। उनसे अचानक मुलाकात होगई।

आदाबर्ज़ है जनाब,

तस्लीम आदाब।

मिज़ाज़े शरीफ़ ?

इनायत है आपकी।

मिज़ाज़े लतीफ़,

नवाज़िश है आपकी।

दुआसलामके बाद मैंने कहा—कहिये और सब ख़ैरियत तो है ? इधर कैसे भूलपड़े ? बड़ी खुशक़िस्मती है जो आपका दीदार हुआ।

मेरे मित्रने कहा—भूला तो नहीं, एक कामसे आया था। लेकिन यह तो कहो, यार, यहाँ तो औरतें बड़ीही आज़ाद हैं।

मेरे मित्र पिछली रातको गुजरातका गर्बानृत्य देख-चुके थे। मैं समझ गया कि औरतोंको आज़ाद कहनेसे इनका क्या मतलब है। मैंने बात काटकर कहा—आख़िर तुम कौनसे कामसे आये हो ? क्या किसी सर्विसकी तालाशमें हो ?

मित्रने कहा—नहीं तो, सर्विस तो आपकी मेहरबानी से "सनातनधर्म अख़बारमें मिलगई है। अब मैं इसी अख़बारका परचार करनेके लिये यहाँ आया हूँ।

तो फिर ?

फिर क्या ? कोई ज्यादह उम्मीद तो है नहीं, लेकिन कोशिश करना इन्सानका फ़र्ज़ है।

बेहतर है, और सुनाओ यार, बहुत दिनों बाद मुलाकात हुई है। कहो कैसी गुज़र रही है ?

मित्र बोले—भई, क्या बताऊँ ? बम्बई क्या आगया हूँ, आफ़त मोल लेली है। उधर घरपर बीबीकी तबियत ज़रा नरम है, और इधर'······

मैंने कहा—फिर ऐसी हालतमें आपने यहाँ आनेकी तकलीफ़ क्यों गवारा की ? और हाँ, 'इधर' क्या ?

वे बोले—बस इधरकी क्या पूछते हैं ? पाँच दिन से बराबर पक्का खाना खारहा हूँ। दस्त नहीं होता, पेट में कब्ज़ रहने लगा है।

मैंने कहा,—यह तो बम्बईके पानीका कुसूर है, इसमें आपका क्या क़सूर ? लेकिन, आख़िर आप कहीं कच्चे खानेका इन्तज़ाम क्यों नहीं करलेते ?

वाक़ई, दाल चावल और फुलकेको तो बहुत तबि-यत चाह रही है।

एक मेरे परिचित सज्जन पासही बैठे थे। उन्होंने कहा कि यदि आप आज्ञा दें तो मैं कल सुबह अपने घर कच्चा खाना बनवा दूँ। परन्तु पंडितजीसे पूछ लीजिये कि ये जैनी लोगोंके घर कच्ची रसोई जीमनेमें कोई ऐत-राज़ तो नहीं करेंगे।

मैं यह सुनकर ज़रा ठठका। मैंने कहा—पंडितजी तो ग्रेजुएट हैं—बिलकुल नये विचारोंके हैं······

मेरे मित्र बीचही में बोल उठे—नहीं साहब, मुआफ़ फ़रमाइये। मैंने अंग्रेज़ीकी तालीम हासिल की है तो क्या, पर मुझे अफ़सोस है कि कच्चा खाना तो मैं इनके यहाँ न जीम सकूँगा। इस मेहरबानीके लिये मैं बहुत मशकूर हूँ।

मैंने कहा—आख़िर आपको घाटियोंके हाथकी बनाई हुई पूरी कचौरियोंसे तो कोई नफ़रत नहीं है, मगर आप एक साफ़ सुथरे शरीफ़ आदमीके घर दालरोटी खानेमें ऐतराज़ करते हैं ?

आप कुछही कहें। ये बहुत पुराने संस्कार हैं। इनको छोड़ना आसान नहीं।

मैंने कच्चे और पक्केका विश्लेषण करते हुए अपने मित्रसे दूसरे विषयपर चर्चा चलाई।
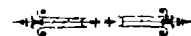
मुक्ता माला।

(४)

आप विज्ञ हैं ! अरे ! आपका है अध्ययन महत गंभीर।
किन्तु न आप खड़े होते हैं, कभी मर्क सागर के तीर॥
तो न आपको बन्धु ! दिखेगा महत्वताका सुन्दर चित्र।
कारणमें न, कार्यमें होती सर्वश्रेष्ठता मेरे मित्र॥
भोले बंधु ! अरे ! ग्रन्थों के अक्षर ही न चाट जाओ।
अनुभवसे, विचारसे, उन्नत सत्य ज्ञानको उपजाओ॥
सत्यज्ञानमें भरी हुई है, अब भी वही अलौकिक शान।
लात मार दे दौलतके सिर, चूर चूर करदे अभिमान॥
हे भाई ! मत करो बहाना, भरी आपमें शक्ति महान।
किन्तु नहीं इच्छा प्रस्फुट है, नहीं हृदयमें कुछ अरमान॥

है विवेक, पर उद्यम ऊपर नहीं आपकी दृष्टि यथेष्ट।
नहीं अन्यथा तुम्हें सफलता होती प्राप्त विश्वमें श्रेष्ठ॥
न्याययुक्त इच्छा है एवं उन्नत रूप आपका ध्येय।
किन्तु नहीं कर्तव्यक्षेत्र में बढ़ना बन्धु! आपको प्रेय॥
योग्य साधनोंको न जुटाते, थँमते होकर नहीं अचल।
बन्धु! न केवल सत इच्छासे होता कोई कार्य सफल॥
हे भाई! यदि पूर्ण सफलताकी इच्छा मनमें रखता।
सब पहिले निश्चित विचारसे कर स्वलक्ष्यकी स्थिरता॥
पुनः पूर्ण निश्चयसे सत कर्तव्य क्षेत्रमें उतर पड़ो।
लक्ष्य प्राप्तिके लिये हृदयसे दृढ़ संकल्प समेत अड़ो॥
इच्छित लक्ष्य प्राप्तिके खातिर खोजो पहिले स्थान उचित।
और प्रकृति अनुकूल कार्यकी करो व्यवस्थाएँ समुचित॥
तन्मयतासे सत्य हृदयसे करो पुनः उद्यम पर्याप्त।
उसी समय हे बन्धु, तुम्हें परिपूर्ण सफलता होगी प्राप्त॥
प्रिय, हैं सेवामग्न आप करते समाजका अति उपकार।
फिर भी नहिं सराहना, आदर करता नहीं अरे! संसार॥
समझो, अभी विश्वसेवा की है तुमसे अतिशय आशा।
रखता तुमसे अभी अधिक सेवा की जग है अभिलाषा॥
क्यों डरते हो जनसेवाहित प्राण समर्पण करने में?
देश प्रेम पर हो मतवाले जनसेवा हित मरने में॥
जिसके निकट प्राण हैं वह ही प्राणों को दे सकता है।
मरा हुआ क्या देकर जगसे सच्चा यश लेसकता है?
स्वेच्छापूर्वक निर्भयता से प्राण दान दे देने की।
हँसते हुए सदैव मृत्यु के आलिंगन कर लेने की॥
जबतक इच्छा नहीं जगी है, भरा न जब तक ऐसा प्यार।
स्वप्नमात्र है अरे देखना तबतक इस जग का उद्धार॥
है शरीर से जीव पृथक् यह गाते हैं सदैवही गीत।
किन्तु नहीं जागृत है किंचित् बंधु हृदयमें सत्य प्रतीत॥
नहीं देश कल्याण हेतु निज देह समर्पण कर सकते।
आत्मा अमर मानने वाले नित्य मृत्युसे हैं डरते॥
अमर आत्मा है यह केवल है सिद्धान्त पुराणोंमें।
है शरीर जड़, यह उनका है केवल तर्क प्रमाणों में॥
रहती नित्य प्राण भयसे भयभीत निरंतर देह अनित्य।
प्राणोंकी रक्षा करनाही चरम लक्ष्य रहता है नित्य॥
राजा, राणा और क्षत्रपति सबको नित्य सताता काल।
पढ़ते और पढ़ाते हैं यह मंत्र निरंतर प्रातः काल॥
कहते हैं जो सुखसे मुँहसे है यह जीवन अरे अनित्य।
अधम कृत्य करते हैं वे ही जीवनकी रक्षा हित नित्य॥

—"वत्सल" विद्यारत्न।

पत्रों की प्रतिध्वनि।

भारत की नारी

एशियामें नारीकी जो दुर्गति है, वह अन्यत्र कम पायी जाती है। भारतमें आज भी नारी अपनी पराधीनताकी शृंखलायें नहीं तोड़ सक रही हैं। वह पुरुषोंकी दासी है और वे उसे मारनेमें किसी प्रकारकी कसर नहीं कर रहे हैं। हमारी पर्दा प्रथा, नारियोंकी शिक्षाहीनता, बालविवाह आदिसे स्त्री जाति जल्दीसे मृत्यु-पथकी ओर दौड़ रही है। इस पर हम स्वयं पर्दा डालना ही अच्छा समझते हैं, पर विदेशी हमारी आंखोंके सामने इस विषयके आँकड़े रख कर हमें जगानेकी चेष्टा कर रहे हैं। पेरिसके 'ल्यू' पत्रमें इस बारेमें कुछ आँकड़े एकत्रित किये गये हैं। पाठक उन्हें पढ़ें और पाठिकायें उसे पढ़कर अपनी जातिकी दुर्दशापर दो आंसू बहायें:—

१९३४ के 'बुलेटीन ऑफ हाइजीन' की प्रथम संख्यामें भारतीय नारीके सम्बन्ध में कई विचित्र बातें छपी हैं। १९३३ में भारत सरकारने देहात में रहने वाले डॉक्टरोंसे कई प्रश्न पूछे। इनमें उनके रोग, भोजन, नशा आदिके सम्बन्धमें खुलासा हाल माँगा गया था। इसमें और भी सवाल थे जो उनकी गर्भावस्था, बच्चोंकी मृत्यु-संख्या आदि पर थे। उन्होंने जो उत्तर भेजे उनसे निम्नलिखित आंकड़े लिये गये हैं।

भारतकी जनसंख्या का ४१ फी सैकड़ा भाग उपयुक्त और उचित परिमाणमें भोजन न मिलनेके कारण अधमरी अवस्थामें रहता है। बीस सैंकड़ा मनुष्य तो केवल इतना भोजन करते हैं कि उनमें सिर्फ प्राणधारण करनेकी शक्ति रह गयी है।

भारतकी मृत्युसंख्या प्रति हज़ार २४.५ है। संसारके कमदेशोंमें इतने आदमी मरते हैं।

भारतमें एक करोड़ तीस लाख मनुष्योंको गरमी और सुज़ाककी बीमारी है। शिमलेके गवर्नमेण्ट ऑफ़ इन्डिया प्रेससे जो रिपोर्ट इस विषय पर निकली है, उसने यह घटी हुई संख्या देखकर हर्ष प्रकट किया है।

३६६०००० मनुष्य रातको बेचैन और उन्निद्र रहते हैं। इनको वह रोग सताता है जो वाइटामीन 'अ' के अभाव से पैदा होता है।

शिशुओं की मृत्युसंख्या १८ सैकड़ा है, जो किसी भी देशके लिये भयंकर है।

इसी 'बुलेटीन ऑफ़ हाइजीन' में मारगरेट जे० बालफ़रने उन मजदूरनियोंपर एक प्रबंध छपाया है जो आसामके चाय-बगीचोंमें काम करती हैं।

यहां एक हज़ार माताओंमें ४२ गर्भावस्था में मर जाती हैं। कभी कभी और कुछ बगीचों में यह संख्या और भी बढ़जाती है। वहाँ के एक चाय-बागान में गतवर्ष हज़ार माताओं में २०६ की मृत्यु होगयी। इसका प्रधान कारण इन मजदूरनियोंकी दुर्बलता है जो उचित भोजन न मिलने से होती है। इनकी मज़दूरी ही इतनी है कि वे अपना पेट नहीं भर सकतीं। ९ चाय-बागानोंसे जो आंकड़े एकत्र किये गये हैं उनसे ज्ञात होता है: -

चालीस सैकड़ा मृत्यु रक्तहीनताके कारण होती है। तैंतीस सैकड़ा मृत्यु हृदयकी दुर्बलता के कारण। केवल दस सैकड़ा मृत्यु गर्भावस्थामें ज्वर आनेके कारण होती है।

यह रक्तहीनता दो कारणोंसे होती है— (१) भोजनकी कमी, (२) पेट में कीड़े पैदा हो जाने से।

'न्यूओर्लियन्स मैडिकल एण्ड सर्जन जर्नल' में डाक्टर एच. डब्लू. नाइटने छपाया है कि भारतकी अधिकांश गर्भिणी नारियां इसलिये असमय में कूच कर जाती हैं कि हिन्दुस्तानी दाइयाँ अभीतक उनकी सेवा-सुश्रूषा करने में बाबाआदम के समयके उपाय काम में लाती हैं। ये उपाय ऐसे क्रूर हैं कि देखकर प्राण काँपने लगते हैं। यदि पास-पड़ोसमें कोई पुरुष डाक्टर हो तो वह भी मरती हुई गर्भिणी स्त्री की रक्षा नहीं करपाता, क्योंकि हिन्दू और मुसलमान समाज ऐसा नहीं होने देता। इस दशामें उनका रखवाला भगवान् ही रहजाता है। मैंने अपनी आँखोंसे देखा है कि ऐसी अज्ञ दाइयोंने अपनी मूर्खताके कारण बच्चा निकालते समय उसे मारडाला है। कभी कभी बच्चा निकालनेमें इनकी स्वाभाविक असावधानी के कारण माता के योनि-प्रदेशमें नासूर हो जाता है।

भारतीय समाजमें ये सब अनर्थ तो होते रहते हैं, पर यहाँ सन्तानवृद्धिका रोग महामारी की भांति फैला हुआ है। फल यह हुआ है कि जहाँ सन १९२१ में भारतकी जनसंख्या केवल ३१८९४२४८० थी, १९३१ में वह बढ़कर ३५२८-३७७७८ हो गयी है, याने दसवर्ष में वहाँ ४ करोड़ २० लाख आदमी बढ़े।

हरिजन और इसलाम।

अत्याचारपीड़ित हरिजन प्रतिवर्ष कितनी बड़ी संख्यामें विधर्मी बनते चले जा रहे हैं, इसकी खोज यदि कोई करे तो आतंकसे उसका दिल दहल उठेगा। हमारे सनातनी नेताओंको हरिजन भाइयोंका मुसलमान या ईसाई बनना नहीं खटकता। जातिका एक बृहत् अंश भले ही पूर्णरूप से खंडित हो जाय, उनकी बलासे! पर किसी भी हालतमें वे दलितोंको मनुष्यत्व के अधिकार देना नहीं चाहते। यह आत्मघाती मनोवृत्ति धीरे धीरे किस सर्वनाशी परिणाम की ओर लुढ़कती चली जाती है, इस बात पर ध्यानपूर्वक विचार करनेसे वे क़तई इनकार करते हैं। उनकी धारणा है कि हिन्दुत्वका नाम चाहे

भले ही डूब जाय, पर सनातनधर्म का झण्डा बराबर फहराता रहे!

हरिजन यदि मुसलमान बनना चाहें तो उन्हें तनिक दोष नहीं दिया जा सकता। जिस प्रकार के अमानुषिक व्यवहारों को सहन करके उन्हें अपना जीवन बिताना पड़ता है, वह पशु के लिये भी असहनीय है, और यदि उनमें ज़रासा भी आत्मवेदनाका भाव वर्तमान होगा तो उन्हें विद्रोहकी घोषणा करनी ही पड़ेगी। यह समाज के नेताओंका कर्तव्य है कि उनकी वर्तमान परिस्थितिमें गौरवका भाव लाकर उन्हें समाजके समान स्तरमें लाने की चेष्टा करें। अन्यथा परिणामकी भीषणताके लिये उन्हें तैयार रहना होगा।

हालमें मेरठके अन्तर्गत पिलखुवा नामक स्थानके प्रायः ५५० चमारोंने यह अल्टीमेटम समाजपतियोंको देदिया कि यदि उन्हें न्यायतः प्राप्य पूरे सामाजिक अधिकार न दिये जायंगे तो वे शीघ्र ही मुसलमान हो जायंगे। अपने आवेदन-पत्रमें जो जो मांगे उन चमारोंने पेश की हैं, वे संक्षिप्त रूपसे इस प्रकार हैं-(१) हमें कुएपर चढ़ने और मन्दिरमें प्रवेश करनेका अधिकार दिया जाय। (२) बाज़ारोंमें जो प्याऊ लगाये गये हैं उनमें हमें बांसकी नलकीसे जल पिलाया जाता है। इस अपमान जनक तथा घृणास्पद व्यवहार को हम सहन नहीं कर सकते, इसलिये नलकी हटा दी जाय। (३) जबकि मुसलमान भी साग-सब्ज़ी, परचून इत्यादि की दूकानें बाज़ारमें खोल सकते हैं, क्या कारण है कि हम हिन्दू होते हुए भी इस अधिकारसे वंचित रक्खे जायं? (४) छूतछात का घृणित व्यवहार जो हमारे साथमें हिन्दुओं द्वारा किया जाता है, वह हमेशाके लिये बन्द किया जाय।

पाठक देख सकते हैं कि चमारोंकी पूर्वोक्त मांगे एकदम औचित्यपूर्ण और उपयुक्त हैं। हरिजनोंमें भी अब जागृति फैलने लगी है और आत्म-चेतनाका भाव उदित होने लगा है। फलस्वरूप वे इसप्रकारके मनुष्यत्वहीन अपमानसे मर्मपीड़ित होंगे, इसमें आश्चर्यकी कौन सी बात है? धार्मिक दमनकी भी एक हद होती है। साग-सब्ज़ी, परचून इत्यादिकी दूकान खोलनेका अधिकार भी चमारोंको प्राप्त नहीं है। जब वे देखते हैं कि मुसलमान इन चीज़ोंकी दुकानें खोल बैठे हैं और सवर्ण हिन्दूभी उनसे खरीदनेमें कोई दोष नहीं मानते, तो मुसलमानों की सामाजिक स्थितिकी उच्चतापर विश्वास होना उनके लिये स्वाभाविक है। इसके अलावा और भी बहुतसी बातोंमें हरिजन देखते हैं कि मुसलमानोंको सवर्ण हिन्दू उनकी अपेक्षा इज़्ज़त की निगाहसे देखते हैं। ऐसी हालतमें वे मुसलमान बनना चाहेंगे, इसमें आश्चर्य क्या है?

सुना जाता है कि कुछ सुधारवादी नेताओं ने पिलखुवेके चमारोंको समझाकर उनकी शर्तें स्वीकृत करानेका वचन देकर उन्हें मुसलमान बननेसे रोका है। यह प्रसन्नताकी बात है।

—"मासिक विश्वमित्र"

आसरो तिहारो है।

बीतो है अनादिकाल भव में भ्रमण किये,
कभी सुर, नर, कभी पशु तन धारो है।
नरक में जाय कभी नरक के दुःख सहे,
जन्म मरण करकर नित हारो है॥
पाई है न टुक चैन हुआ हूबे चैन अति,
सुन नाम तेरा अब दुख सब टारो है।
आन के पुकारो नाथ, हाथ गह उबारो नाथ,
सच तो है यह मुझे आसरो तिहारो है॥
काम ने सतायो, क्रोध मानने दबायो आय,
लोभ ने लुभायो, छल छल कर डारो है।
मोह ने भ्रमायो द्वेष द्रोह ने गिरायो मन,
भायो दुराचार जाने तुमसे विसारो है॥

—ज्योतिप्रसाद जैन

सांप्रदायिकताका दिग्दर्शन।

(ले०—श्री० पं० सुखलालजी ।)

[अनु०—श्रीमान् जगदीशचन्द्रजी जैन ऐम० ए०]

(क्रमागत)

स्कंद पुराण ।

नारद—वह धर्मारण्य तीर्थक्षेत्र कितने समय तक किसकी देखरेख में रहा है ? तथा वहाँ किसकी आज्ञा चलती है ?

ब्रह्मा—त्रेतासे द्वापरके अंत तक अर्थात कलि आने के समय तक रामकी आज्ञासे एक हनुमानही उसकी रक्षाके लिये नियुक्त हुए हैं । वहाँ द्विजकी तथा श्रीमाता की आज्ञा चलती है । वहाँ वेदका पठनपाठन, अनेक उत्सव और यज्ञ होते हैं ।

युधिष्ठिर—क्या कभी उस स्थानका भंग हुआ है या नहीं ? तथा दैत्योंने अथवा दुष्ट राक्षसोंने उस स्थानको कब जीता ?

व्यास—कलि आने के बाद पहले पहल जो कुछ हुआ, उसे सुन । कलि आने पर 'आम' नामका राजा हुआ जो कान्यकुब्ज का स्वामी था । यह राजा नीतिज्ञ और धर्मतत्पर था ।

द्वापरका अंत था, कलि आने को था । इतने में कलि के भयसे और अधर्म के भयसे सम्पूर्ण देव पृथ्वी छोड़कर नैमिषारण्यमें चले गये । राम भी अपने साथियोंके साथ सेतुबन्ध गये ।

युधिष्ठिर—कलि में ऐसा कौनसा भय है कि जिस कारण देवोंने रत्नगर्भा पृथ्वीको छोड़ा ?

व्यास—कलियुगमें सब लोग अधर्मपरायण, ब्राह्मण-द्वेषी, श्राद्धविमुख और असुराचार हो जाते हैं ।

जिस समय पृथ्वीपर कान्यकुब्जाधिप आम राज्य करता था, उस समय प्रजाकी बुद्धि पापसे मलिन होगई । इस कारण आमने वैष्णव धर्म छोड़ कर बौद्ध धर्म स्वीकार किया तथा क्षपणों द्वारा प्रतिबोधित होकर यह प्रजा आम का अनुसरण करने लगी । यही कलियुग का भय है ।

उस आमके मामा नामकी अति प्रसिद्ध रानी थी, उसके रत्नगंगा नामक एक पुत्री हुई । एक समय दैवयोग से इस कान्यकुब्ज देशमें देशांतर से इन्द्रसूरि आये । उस समय यह राजकन्या सोलहवर्षकी होकर भी अविवाहित थी । इन्द्रसूरि, दासीकी मारफ़त इस कन्यासे मिले, तथा उसे शाबरी मंत्रविद्या कही । इससे वह कन्या शूलसे पीड़ित होगई तथा सूरिके वाक्योंमें लीन होकर मोहको प्राप्त हुई ।

क्षपणों द्वारा प्रतिबोधित होकर वह कन्या जैनधर्म-परायण होगई । उसके बाद वह ब्रह्मावर्त के राजा कुंभी-पाल को दी गई और उस कुंभीपाल को विवाहमें मोहेरक (मोढेरागाम) दिया गया । कुंभीपाल ने उस समय धर्मारण्य में आकर राजधानी बनायी और जैनधर्मके प्रवर्तक देवोंकी स्थापनाकी । इसतरह सब वर्ण जैनधर्म-परायण होगये, ब्राह्मणोंकी पूजा बन्द हुई तथा शांतिक अथवा पौष्टिक कर्म और दान बन्द होगये । इस प्रकार समय व्यतीत होनेपर रामचन्द्रजी की आज्ञा प्राप्त करके अपना स्वामित्व चले जाने से ब्राह्मण लोग रात दिन चिंता में व्यग्र होकर कान्यकुब्जमें आमके पास पहुँचे । कान्य-कुब्जपति पाखंडियोंसे घिरा हुआ था । ये सब मोढ ब्राह्मण कान्यकुब्जमें आकर पहले गंगातट पर रहे ।

चर दूतद्वारा मालूम होनेसे राजाने इन लोगोंको बुलाया । ये सब प्रातःकाल राजसभामें आये ।

राजाने नमस्कार आदि कोई प्रत्युत्थान स्वागत नहीं किया तथा ऐसेही खड़े हुए ब्राह्मणोंसे पूछा कि तुम किस लिये आये हो, क्या काम है ? सो कहो ।

विप्र लोग—हे राजन् ! हमलोग धर्मारण्य से तेरे पास आये हैं । तेरे जमाई कुमारपाल ने ब्राह्मणों के शासनका लोप कर दिया है । यह कुमारपाल जैनधर्मी है तथा इन्द्रसूरिके कहे अनुसार चलता है ।

राजा—हे विप्रो, मोहेरकपुर में तुमने किसकी स्थापना की है ? यह सब यथार्थ कहो ।

विप्र—हमने पहले ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरकी स्थापना की है । धर्मराज रामचन्द्रने इस शुभस्थानमें नगरी बसाई है, तथा वहाँ ब्राह्मणों को नियुक्त करके उन्हें शासन दिया है । रामचन्द्र का शासन देखकर दूसरे राजाओंने तो इस शासनका यथेष्ट सन्मान किया परन्तु अब तेरा जमाई इस शासनके अनुकूल ब्राह्मणोंका पालन नहीं करता । यह सुनकर राजाने कहा—हे विप्रो, जल्दी जाओ और मेरी आज्ञा प्रमाण कुमारपाल को कहो कि तू ब्राह्मणों को आश्रय दे । आम राजाके यह वाक्य सुनकर

ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुए और कुमारपालके पास जाकर उसके श्वसुरके वचन कह सुनाये।

कुमारपाल—हे विप्रो! मैं रामकी आज्ञाका पालन नहीं करता हूँ। मैं यज्ञमें पशुहिंसापरायण ब्राह्मणोंका त्याग करता हूँ। हे द्विजो! हिंसकोंके ऊपर मेरी भक्ति नहीं होती।

ब्राह्मण—हे राजन्! तू पाखण्डधर्मसे हमारे शासन को लुप्त करता है। परन्तु ऐसा क्यों करता है? हमारा पालन क्यों नहीं करता? पापबुद्धि मत हो।

राजा—अहिंसा परम धर्म, परम तप, परम ज्ञान, और परमफल है। सूक्ष्म और स्थूल सब कीट, पतंग आदि प्राणियोंमें जीव समान ही है। हे विप्रो, तुम हिंसक प्रवृत्ति क्यों करते हो? ये वचन सुनकर ब्राह्मण लोग गुस्से हुए और आँखें लाल करके बोले हे नृप! अहिंसा परमधर्म है, यह तो तू सच कहता है। परन्तु वेदविहित हिंसा हिंसा नहीं है--ऐसा निश्चित है। जो हिंसा शस्त्रसे होती है वही जंतुओंको पीड़ाकारी है। इस कारण वह हिंसा और अधर्म कहा जाता है। परन्तु जब शस्त्रबिना, वेदमन्त्रोंसे प्राणियोंका घात किया जाता है, उस समय वह सुखदायी होनेसे अधर्म नहीं है। वैदिक हिंसा करनेसे पाप नहीं लगता है।

राजा—ब्रह्मादि देवोंका यह अनुपम धर्मक्षेत्र है, परन्तु इस समय ये देव यहाँ नहीं हैं। तुम्हें प्रतिपादित किया हुआ धर्म भी यहाँ नहीं है। जिस रामको देव कहते हो, वह तो मनुष्य था। जो तुम्हारी रक्षाके लिये नियुक्त किया गया है, वह लम्बपुच्छ (हनुमान) कहाँ है? यदि तुम्हें दिया हुआ शासन मेरे देखनेमें नहीं आता है तो मैं उसे पालन नहीं कर सकता। ब्राह्मण गुस्से होकर बोले—"हे मूढ़! तू उन्मत्त होकर यह क्या बोलता है? दैत्यों के विनाश और धर्मकी रक्षाके लिये रामने चतुर्भुज मनुष्यरूप धारण किया था।'

राजा—वे राम और हनुमान कहाँ हैं? यदि कहीं हों तो तुम्हारी सहायता करें। राम, लक्ष्मण अथवा हनुमानको बताओ, उनके होनेका कोई प्रमाण दो।

ब्राह्मण बोले—हे नृप! अंजनीसुतको दूत बनाकर रामदेवने १४४ गाँव दिये। फिर इस स्थान पर आकर १३ गाँव दिये और १६ महादान दिये तथा दूसरे ५६ गाँवोंका भी संकल्प किया। ३६००० गोभुज हुए। सवा लाख वैश्य हुए जिनकी मांडलिय संज्ञा थी।

राजाने कहा—"मुझे वह हनुमान बताओ जिस की निशानीसे मैं तुम्हें पूर्वस्थितिमें रख सकूँ। यदि हनुमानका निश्चय कराओगे तो वेदधर्ममें रह सकते हो, अन्यथा जैनधर्मी होना पड़ेगा।" यह सुनकर सम्पूर्ण ब्राह्मण खिन्नमन होकर घर आये तथा उन्होंने एक सभा बुलाई जिसमें बाल, युवा, और वृद्ध सब उपस्थित हुए। उनमें से एक वृद्धने कहा कि—अपने सब वर्गोंमें से एक एक मुखिया मिलकर निराहार व्रत करके रामेश्वर सेतुबन्ध जावें; वहाँ हनुमान हैं वहाँ जाकर जप करने पर रामचन्द्र कृपा करके हम ब्राह्मणोंको अचल शासन देंगे। जिस वर्गके मुखिया सम्मिलित न हों उसको वृत्तिसे बहिष्कार किया जाय। एक दक्ष ब्राह्मणने इस वृद्धके कथनको सभा में तीनबार उच्च-स्वर से तलापूर्वक सबको कहकर सुनाया तथा सबने कहाकि जो रामेश्वर जानेसे पराङ्मुख होगा उसे असत्य आदि सब पाप लगेंगे। सब लोगोंको जाता देखकर कुमारपालने उन्हें बुलाकर कहाकि—भिन्न भिन्न गोत्रवाले सब ब्राह्मणों को कृषिकर्म और भिक्षाटन अवश्य कराऊँगा। यह सुनकर सब व्यथित हुए, परन्तु तीन हजार ब्राह्मणोंने यह निश्चय किया कि हमें रामेश्वर जाना ही है। इस निश्चय के लिये भीतर भीतर हरेकने हस्ताक्षर किये। यहाँ वेदत्रयी नाशको प्राप्त होती है और त्रिमूर्ति कुपित होते हैं। इसलिये अठारह हजार लोग रामेश्वर जायँ, यह ठहराव सुनकर कुमारपालने गोभुज वैश्यों को बुलाकर ब्राह्मणोंको रोकनेके लिये कहा।

व्यास कहते हैं कि जो गोभुज श्रेष्ठ वैश्य जैनधर्ममें लिप्त नहीं थे, वे आजीविका नष्ट होनेके भयसे मौन रहे और राजाको बोले—हे नृप! इन कुपित ब्राह्मणोंको किस प्रकार रोका जाय? ये तो शापसे जला डालेंगे। कुमारपालने अड्डालप (अड्डालपज) में शूद्रोंको बुलाकर कहा कि तुम ब्राह्मणोंको रोको। इन अड्डालपज शूद्रोंमें बहुतसे जैन थे। इसकारण उन्होंने रामेश्वर जानेमें तत्पर ब्राह्मणोंको बुला करके कहा कि वर्तमान समयमें राम कहाँ हैं? लक्ष्मण कहाँ हैं? हनुमान कहाँ है? अरे ब्राह्मणों, ऐसे भयानक जंगलमें घरबार, बालबच्चे छोड़कर दुष्ट शासन वाले राज्यमें किस लिये जाते हो? यह सुनकर बहुतसे ब्राह्मण राजभय और लालचसे विचलित होकर

अलग हुए और कहने लगे कि दूसरे लोग भले ही जावें परन्तु हम कुमारपालका विरोध नहीं करेंगे. खेती करेंगे और भिक्षाटनभी करेंगे। इस तरह पंद्रह हज़ार ब्राह्मण अलग होगये। बाकीके तीन हज़ार त्रिवेदी अर्थात् त्रैविद्य-रूपसे प्रसिद्ध हुए। दूसरे पंद्रह हज़ार ब्राह्मणोंको राजका चौथा भाग और थोड़ी पृथ्वी दीगई। इसलिये वे चातुर्विद्यरूपसे विख्यात हुए। फिर राजाने कहा कि तुम्हें च्यवन लोग कन्या देते हैं, तुम स्वीकार करो। पहले तीन हज़ार त्रिवेदियोंको राजाने कहा कि तुम मुझे मानते नहीं हो इसलिये तुम्हारी वृत्ति अथवा संबंध कुछभी नहीं होगा। यह सुनकर वे कट्टर त्रैविद्य अपने स्थानको चले गये। चातुर्विद्योंने त्रिवेदियोंको समझाया कि तुम मत जावो अथवा यदि जाते हो तो जल्दी वापिस आजाना जिससे रामद्वारा दिये हुए शासनका जल्दी उपयोग कर-सको। यह सुनकर त्रैविद्योंने कहा कि हमें तुमसे कुछ नहीं कहना है। रामचन्द्रने जो वृत्ति बाँधी है उसे जप, होम, अर्चनद्वारा प्राप्त करनेके लिये हम वहाँ जा-वेंगे। चातुर्विद्योंने कहा कि हम यहाँ का काम सँभालते हैं और तुम लोग सबकी कार्यसिद्धिके लिये वहाँ जाओ। यदि भीतर भीतर हमसब मिलकर एकदूसरेके सहायक होंगे तो अपनी वृत्ति अवश्य प्राप्त करेंगे। यह निश्चय करके ये त्रैविद्यलोग रामेश्वर गये तथा चातुर्विद्य यहीं रहे। त्रैविद्योंके उत्कट तपसे रामने उद्विग्न होकर हनुमानसे कहा कि तू जल्दी जा। ये सब धर्मारण्यवासी ब्राह्मण हैरान होरहे हैं। इन ब्राह्मणों को दुख देने वाले को ठीक ठिकाने लाना चाहिये। यह सुनकर ब्राह्मणरूप धारण करके, हनुमानने प्रकट होकर आये हुए ब्राह्मणोंकी परीक्षा की और पूछा कि तुम किस लिये आये हो? उन्होंने कहा कि सृष्टिकी आदिमें ब्रह्मा आदि देवोंने त्रिमूर्तिके लिये हमें रखा था तथा पीछेसे रामने जीर्णोद्धार करते समय फिर से हमारी स्थापनाकी थी और हमें हनुमानने वेतनरूप ४४४ गाँव दिये थे। सीतापुरको मिलाकर १२ गाँव पूजाके लिये दिये गये। गोभुज नामके ३६ हज़ार वैश्य ब्राह्मणोंका पालन करनेके लिये नियुक्त हुए। उसमें से सवालाख शूद्र होगये जिनके गोभुज अडालज और मांडलिय ये तीन भाग हुए। अब दुष्ट आमराजा रामका शासन नहीं मानता। उसका जमाई कुमारपाल दुष्ट है, क्योंकि वह पाखंडियोंसे—विशेषकर बौद्धधर्मी, और जैन इन्द्रसूरिसे प्रेरित होकर रामका शासन स्वीकार करता नहीं और उसका लोप करता है। बहुतसे वैश्य भी उसकी तरह दुर्बुद्धि होकर राम और हनुमानके शासनका लोप करते हैं। अब हम हनुमानके पास जाते हैं। यदि वह हमारे इष्टकी सिद्धि नहीं करेगा तो हम अनाहार व्रत ले-कर मर जावेंगे। ब्राह्मणरूपधारी हनुमानने कहा कि—हे द्विजो! कलियुगमें देव कहाँ हैं? लौट जाओ। परन्तु ब्राह्मणोंने उससे पूछा कि तू कौन है? अपना यथार्थ रूप प्रकट कर कि राम है या हनुमान?

व्यास—हनुमानने अपना रूप प्रगट किया। हनुमान का दर्शन करके सब लोग प्रसन्न हुए। हनुमानने कहा कि इस कलियुगमें रामेश्वर सेतुबंध छोड़कर कहीं भी नहीं जाते। मैं निशानी देता हूँ, उसे तुम राजाको बताना। वह इसे अवश्य सच्ची मानेगा। यह कहकर हनुमानने अपनी दोनों बाहु उठाकर भुजाके बाल इकट्ठे करके भोजपत्रमें दो पुड़िया बाँधकर दीं और ब्राह्मणकी कोखमें रखकर अपनी बाईं कोखके बालकी पुड़िया ब्राह्मणोंकी बाईं कोख में और दाँई कोखकी दाँई कोखमें रक्खी। यह पुड़िया रामके भक्तको सुखदेनेवाली और दूसरोंके लिये क्षयका-रिणी थी। हनुमानने कहा कि जिस समय राजा निशानी माँगे उस समय बाईं तरफ़की पुड़िया देना, अथवा इसे राज द्वारमें रखदेना। इससे उसका सैन्य, खज़ाना, स्त्री-पुत्रादि सब जलने लगेंगे। जब वह राजा श्रीराम द्वारा पहले बाँधी हुई सम्पूर्ण वृत्ति और रामकी आज्ञा पहलेकी तरह मानने लगे और हाथ जोड़कर नमस्कार करे, उस समय दाँई पुड़िया निकाल कर रखना। उससे सैन्य, खज़ाना वगैरह जैसे पहले था उसी प्रकार हो जावेगा। हनुमानके इस वचनको सुनकर सब ब्राह्मण खुश हुए और उन्होंने जयध्वनिकी। वापिस लौटनेके लिये उत्सुक ब्राह्मणोंको हनुमानने एक बड़ी शिलाके ऊपर सोनेके लिये कहा। ब्राह्मण सोगये। इतनेमें हनुमानकी प्रेरणासे उसके पिता वायु ने उस शिलाको, छः मासमें काटेजाने वाले लम्बे रास्तेको तीन मुहूर्तमें तय करके धर्मारण्य तीर्थमें पहुँचा दिया। इस चमत्कारको देखकर ये ब्राह्मण और गाँवके सब लोग बहुत विस्मित हुए। उसके बाद ये सब ब्रा-ह्मण नगरमें पहुँचे। जब वहाँ राजाको मालूम हुआ उस समय उसने ब्राह्मणोंको बुलाकर कहा कि क्या राम और हनुमानके पास होआये? यह कहकर राजा मौन

रहा और उपस्थित सब ब्राह्मण क्रम क्रमसे बैठगये और उन्होंने राजासे कुटुंब तथा संपत्ति सैन्यके संबंधमें कुशल समाचार पूछे। राजाने कहा कि अरिहंतके प्रसादसे सब कुशल हैं। यथार्थ जिह्वा वही है जो जिनेश्वरकी स्तुति करती है, हाथ वही है जिससे 'जिन' की पूजा होती है, दृष्टि वही है जो जिनदर्शनमें लीन होती है, मन वही है जो जिनेन्द्रमें रत है। सब जगह दया करनी चाहिये। उपाश्रयमें जाना और गुरुवंदन करना चाहिये। नमस्कार मंत्रका जाप और पर्युषणपर्व करना चाहिये और श्रमणों (मुनियों) को दान देना चाहिये। राजाके इस कथनको सुनकर सब ब्राह्मणोंने दाँत पीसे और अंतमें राजासे कहा कि राम और हनुमानने कहलाया है कि तू ब्राह्मणोंकी वृत्ति पहले जैसी करदे। हे राजन्! रामके इस कथनका पालन कर और सुखी हो। राजाने जवाबमें कहा कि जहाँ राम और हनुमान हों, वहाँ जाओ। जिस गाँव अथवा जिस वृत्तिकी आवश्यकता है, वह उन्हींके पास मिलेगी। मैं तो तुम्हें एक कौड़ी भी देनेवाला नहीं हूँ। यह वचन सुनकर ब्राह्मण गुस्से हुए और हनुमान द्वारा दी हुई थोड़ी पुड़िया राजद्वारमें फेंककर चलेगये। पुड़ियाके कारण सब कुछ जल उठा, हाहाकार मचगया। उस समय नग्न क्षपणक हाथमें पात्र लेकर, दंड उठाकर लाल कम्बल हाथमें लिये हुए, काँपते काँपते जैसे तैसेही चारों तरफ भागे। हे वीतराग! हे वीतराग! इसप्रकार बोलते हुए भागने लगे। किसीका बर्तन छूटगया, किसीका दण्ड टूटगया और किसीके कपड़े खिसक गये। यह देखकर राजा घबड़ाया और रोता रोता ब्राह्मणोंकी शरण ढूँढने लगा। वह ब्राह्मणोंके पैर पकड़कर भूमिपर लोटकर रामका नाम लेता हुआ बोला कि रामका ही नाम सच्चा है। रामके सिवाय जो दूसरे देवोंको मानते हैं उन्हें आग जला डालती है। विप्र, भागीरथी, और हरि ये ही श्रेष्ठ हैं। हे विप्रो! मैं रामका और तुम्हारा दास हूं। आग को शान्त करो। मैं तुम्हारा वृत्ति और शासन फिरसे स्थिर किये देता हूँ। मेरा वचन अन्यथा नहीं होगा, यदि हो तो मैं ब्रह्महत्या आदिके महा पापका भागी होऊं। राम और ब्राह्मणोंके विषयमें मेरी भक्ति स्थिर है। उस समय ब्राह्मणोंने दया करके दूसरी पुड़िया डालदी और सब ज्वाला शांत हुई, तथा जली हुई सम्पूर्ण वस्तु पहलेकी तरह होगई। इससे राजा और प्रजा प्रसन्न हुए। प्रत्येकने वैष्णवधर्म अंगीकार किया। राजाने ब्राह्मणोंको नयी आज्ञायें दीं, कृत्रिम शास्त्रके प्रवर्तक वेदबाह्य पाखंडियोंको निकाल बाहर किया। पहिले जो ३६००० गोभुज होगये थे उनमेंसे अट्ठाईस वैश्य होगये। इन सबको राजाने देव ब्राह्मणकी सेवाके लिये नियुक्त किया। वे पाखण्डधर्म छोड़कर पवित्र वैष्णव बने। पीछे क्रमसे त्रैविद्य और चातुर्विद्य जातिका भेद राजाने निश्चित करके प्रत्येक से अलग अलग नियमोंको स्वीकृत कराया। जो गोभुज शूद्र जैन नहीं हुए थे और ब्राह्मणोंके भक्त थे वे उत्तम समझे गये और जिन्होंने जैन होकर रामके शासनका लोप किया था वे द्विज समाजमें बहिष्कृत समझे गये।

जो १५००० ब्राह्मण रामेश्वर नहीं गये थे उन्हें राजा कुमारपालने वृत्तिहीन करके गाँवके बाहर रहनेकी आज्ञा दी। राजाने कहा कि पाखण्डियोंके संसर्गसे उत्पन्न मेरा पाप तुम्हारे प्रणामसे नाश हो। हे विप्रो! तुम प्रसन्न होओ। यह सुनकर वे विप्र बिगड़े और बोले— जो होना होता है, अवश्य होता है। नीलकंठमें नष्ट हुआ। गोभुजजात त्रैविद्य और चातुर्विद्य हुए। चातुर्विद्य सुखासनक गाँवमें रहे।

(स्कन्द पुराण ३ ब्रह्मखण्ड अ० ३६-३७-३८ बंगाली आवृत्ति) [क्रमशः]
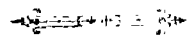
विहार की।

नखियाथा साल, माघ मास, काला पखवाड़ा,
तिथि भी अमावस को वो भी सोमवार की।
समय दो पहर का था बजे होंगे सवा दो,
भूमि लगी डगमग डोलने विहार की॥
धड़ा धड़ भड़ाभड़ गिरे महल मन्दिर हा,
रही न निशानी शेष घर अरु द्वार की।
दब गये, मरगये, मनुष हज़ारों लाखों,
जनताने भयभीत होय हा हा कार की॥ १॥
धनवान धनहीन हुये एक क्षण मांहि,
आर्थिक हानि हुई लाखन हज़ार की।
मरे हैं कुटुम्बी जन रहे हैं अकेले एक,
रोय रहे कर कर याद परिवार की॥

फला फूला देश सब हुआ बरबाद अब,
अहो भाई देखो दशा जगत् असार की।
दम के दमामे सब दम में ही बज उठे,
दम में पलट गई सूरत विहार की ॥२॥
मित्र से विश्वासघात, भाई से विरोध वैर,
करत अन्याय नित चाह तकरार की।
तज लोकलाज भय, करत अकाज रहे,
काल की न सुध, सुध सम्पत अपार की॥
तृष्णा के वशीभूत होय परपंच रचें,
हार की न थाह, राह चलें दुराचार की।
ऐसे भूसिभार टुक चित में निहार देखें,
एकदम गई काया पलट विहार की ॥३॥
क्रोध के अवतार चढ़े मानके शिखर पर,
बढ़ बढ़ बातें नित करें अहंकार की।
लोभ के हो वश नित करत कपट छल,
झूठ बोल जमा जोड़ें लाखन हज़ार की॥
करत अनीत्ति नित हरत परायो धन,
पाप से न भय खायँ बने पूरे नारकी।
ऐसे दुराचारी नर भली भाँति आंखें खोल,
सीखें कुछ सीख दशा देख कर विहार की ॥४॥

—ज्योति प्रसाद जैन

धर्मवीर महावीर और कर्मवीर कृष्ण।

[लेखक—श्रीमान पं० सुखलालजी] (क्रमागत) [अनु०—श्रीमान पं० शोभाचन्द्रजी न्यायतीर्थ]

(४)

साधक-अवस्था

(१) एकबार दीर्घ तपस्वी वर्द्धमान ध्यानमें लीन थे। उस समय शूलपाणि नामक यक्षने पहले-पहल तो इन तपस्वीको हाथीका रूप धारण करके कष्ट पहुँचाया, परन्तु जब इस कार्यमें वह सफल न हुआ तो उसने एक विचित्र सर्पका रूप धारण करके भगवानको डंक मारा तथा मर्मस्थानोंमें असह्य वेदना उत्पन्न की। यह सब होने पर भी जब वे अचल तपस्वी ज़रा भी क्षुब्ध न हुए तो उस यक्ष का रोष शान्त हो गया। उसने अपने दुष्कर्मके लिए पश्चाताप किया और अन्तमें भगवान्से क्षमा माँग कर उनका भक्त बनगया।

—त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग ३, पृ० ३२-३३

(१) कालिय नामक नाग यमुनाके जलको ज़हरीला कर डालता था। इस उपद्रवको मिटानेके लिए कृष्णने, जहाँ कालिय नाग रहता था वहाँ जा कर उसे मारा। कालिय नागने इस साहसी तथा पराक्रमी बालकका सामना किया। उसने डंक मारा। मर्मस्थानों में डंक मारा और अपने अनेक फणोंसे कृष्णको सताने का प्रयत्न किया। परन्तु इस दुर्दान्त चपल बालकने नागको हाथ तोबाह कराया और अन्तमें उसके फणों पर नृत्य किया। नाग अपने रोषको शान्त करके तेजस्वी कृष्णकी आज्ञाके अनुसार वहाँ से चला गया और समुद्रमें जा बसा।

—भागवत, दशम स्कन्ध, अ० १६, श्लोक ३-३०, पृ० ८५८-५९

(२) दीर्घ तपस्वी एकबार विचरते विचरते मार्गमें ग्वाल-बालकोंके मना करने पर भी जानबूझ कर एक ऐसे स्थानमें ध्यान धरकर खड़े हो गए जहाँ पूर्व जन्म के मुनिपद के समय क्रोध करके मरजाने के

(२) एकबार किसी वनमें नदीके किनारे नन्द वग़ैरह गोप सो रहे थे। उस समय एक प्रचण्ड अजगर आया जो विद्याधरके पूर्व जन्ममें अपने रूपका अभिमान करनेके कारण मुनिका शाप मिलनेसे अभिमानके फल

कारण सर्प रूपमें जन्म लेकर एक दृष्टिविष चण्डकौशिक साँप रहता था और अपने विषसे सबको भस्मसात् कर देता था। इस साँप ने इन तपस्वीको भी अपने दृष्टिविष से भस्म करनेका प्रयत्न किया। इस प्रयत्नमें निष्फल होने पर उसने अनेक डंक मारे। जब डंक मारने में भी उसे सफलता न मिली तो § चण्डकौशिक सर्पका क्रोध कुछ शान्त हुआ। इन तपस्वीका सौम्यरूप देखकर, चित्तवृत्ति शान्त होने पर उसे जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त हुआ। अन्तमें धर्मकी आराधना करके वह देवलोकमें गया।

—त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग ३, पृ० ३८-४०

(३) दीर्घ तपस्वी एक बार गंगा पार करनेके लिये नावमें बैठकर परले पार आरहे थे। उस समय इन तपस्वीको नावमें बैठा जानकर पूर्वभवके बैरी सुदंष्ट्र नामक देवने उस नावको उलट देनेके लिये प्रबल पवन की सृष्टिकी और गंगा तथा नावको हचमचा डाला। यह तपस्वी तो शान्त और ध्यानस्थ थे परन्तु दूसरे दो सेवक देवोंने इस घटनाका पता लगतेही आकर उस उपसर्गकारक देवको हराकर भगादिया। इसप्रकार प्रचंड पवनका उपसर्ग शान्त होजाने पर उस नावमें भगवानके साथ बैठे हुए अन्य यात्रीभी सकुशल अपनी अपनी जगह पहुँचे।

—त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, स० ३, पृ० ४१-४२

(४) एकबार दीर्घ तपस्वी एक वृक्षके नीचे ध्यानस्थ थे। वहीं पासमें वनमें किसीके द्वारा सुलगाई हुई अग्नि फैलते फैलते इन तपस्वीके पैरमें आकर छुई। सहचरके रूपमें जो गोशालक था वह तो अग्निका उपद्रव देखकर भाग छूटा परन्तु ये दीर्घ तपस्वी तो ध्यानस्थ एवं स्थिर ही बने रहे। अग्निका उपद्रव स्वयं शान्त होगया।

स्वरूप सर्पकी इस नीच योनिमें जन्मा था। उसने नन्द का पैर ग्रस लिया। जब दूसरे ग्वाल बालक नन्दका पैर छुड़ानेमें असफल हुए तो अन्तमें कृष्णने आकर अपने पैरसे साँपका स्पर्श किया। स्पर्श होनेके साथ ही सर्प अपना रूप छोड़कर मूल विद्याधरके सुन्दर रूपमें पलट गया। भक्तवत्सल कृष्णके चरणस्पर्शसे उद्धार पाया हुआ वह सुदर्शन नामक विद्याधर कृष्णकी स्तुति करके विद्याधर लोकमें अपनी जगह चला गया।

—भागवत दशम स्कन्ध, अ० ३४, श्लो० ५-१५, पृ० ९१७-१८

(३) एकबार कृष्णका वध करनेके लिये कंसने तृणावर्तसुर नामक असुरको व्रजमें भेजा। वह प्रचंड आँधी और पवनके रूपमें आया। कृष्णको उड़ाकर ऊपर ले-गया परन्तु इस पराक्रमी बालकने उस असुरका गला ऐसा दबाया कि उसकी आँखें निकल पड़ीं और अन्तमें प्राणहीन होकर मरगया। कुमार कृष्ण सकुशल व्रजमें उतर आए।

भागवत, दशम स्कन्ध, अ० ११, श्लो० २४-३०

(४) एकबार यमुनाके किनारे व्रजमें आग लग गई। उस भयंकर अग्निसे तमाम व्रजवासी घबरा उठे परन्तु कुमार कृष्णने उससे न घबराकर अग्निपान कर उसे शान्त करदिया।

—भागवत, स्क० १०, अ० १७, श्लो० २१-२५ पृ० ८६६-६७

§ जातकनिदान में बुद्धके विषयमें भी एक ऐसी ही बात लिखी है। उलुवेलामें बुद्धने एकबार उलुवेलकाश्यप नामक पाँच सौ शिष्यवाले जटिलकी अग्निशालामें रात्रिवास किया। वहाँ एक उग्र आशीविष प्रचंड सर्प रहता था। बुद्धने उस सर्प को जरा भी चोट पहुँचाये बिना ही निस्तेज कर डालने के लिए ध्यान समाधि की। सर्पने भी अपना तेज प्रकट किया। अन्तमें बुद्धके तेजने सर्पके तेजका पराभव कर दिया। प्रातःकाल बुद्धने जटिल को निस्तेज किया हुआ सर्प बताया। यह देखकर जटिल अपने शिष्योंके साथ बुद्धका शिष्य बन गया। यह ऋद्धिपाद या बुद्धका प्रातिहार्य अतिशय कहा गया है।

—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग ३, पृ० ५३।

(५) एक बार दीर्घ तपस्वी ध्यानमें थे। उस समय किसी पूर्व जन्मकी अपमानित उनकी पत्नी और इस समय व्यन्तरीके रूपमें मौजूद कटपूतना (दिग्बराचार्य जिनसेनकृत हरिवंश पुराणके अनुसार कुपूतना-सर्ग ३५ श्लो.४२ पृ० ३६७) आई। अत्यन्त ठण्ड होने परभी इस वैरिणी व्यन्तरीने दीर्घ तपस्वी पर खूब ही जलके बूँद उछाले और कष्ट देनेका प्रयत्न किया। कटपूतना के उग्र परिषहसे यह तपस्वी जब ध्यानसे विचलित न हुए तब अन्तमें वह शान्त हुई, पैरोंमें गिरी और तपस्वी की पूजा करके चली गई।

—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १० सर्ग ३, पृ० ५८

(६) दीर्घ तपस्वीके उग्र तपकी इन्द्र द्वाराकी हुई प्रशंसा सुनकर उसे सहन न करने वाला संगम नामक देव परीक्षा करने आया। तपस्वीको उसने अनेक परिषह दिये। उसने एक बार उन्मत्त हाथी और हथिनी का रूप धरकर तपस्वीको दन्तशूलसे ऊपर उछाल कर नीचे पटक दिया। इसमें असफल होने पर उसने भयंकर बवण्डर रचकर इन तपस्वीको उड़ाया! इन प्रतिकूल परिषहों से तपस्वी जब ध्यानचलित न हुए तब संगमने अनेक सुन्दरी स्त्रियाँ रचीं। उन्होंने अपने हावभाव, गीत नृत्य, वादन, द्वारा तपस्वीको चलित करने का प्रयत्न किया पन्तु जब इसमें भी उसे सफलता न मिली तो अन्तमें उसने तपस्वीको नमन किया और भक्त होकर उनकी पूजन करके चलता बना।

—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग ४, पृ० ६७—७२

(५) कृष्णके नाश के लिये कंसद्वारा भेजी हुई पूतना राक्षसी व्रजमें आई। इसने बाल कृष्णको विषमय स्तनपान कराया परन्तु कृष्णने इस षड्यंत्रको ताड़लिया और उसके स्तनका ऐसी उग्रता से पान किया कि जिससे वह पूतना पीड़ित होकर फटपड़ी और मरगई।

—भागवत दशम स्कन्ध, अ० ६, श्लो० १—९ पृ० ८१४

(६) एकबार मथुरामें मल्लक्रीड़ाके प्रसंग की योजना कर कंसने तरुण कृष्णको आमंत्रण दिया और कुवलयापीड हाथीके द्वारा कृष्णको कुचलवानेकी योजना की परन्तु चकोर कृष्णने कंस द्वारा नियुक्त कुवलयापीड़को मर्दन करके मारडाला।

—भागवत दशम स्कन्ध, अ० ४३, श्लो० १—२५ पृ० १४७—४८

जब कोई अवसर आता है तो आसपास बसनेवाली गोपियां इकट्ठी होजाती हैं, रास खेलती हैं और रसिक कृष्णके साथ क्रीड़ा करती हैं। यह रसियाभी तन्मय होकर पूरा भाग लेता है और भक्त गोपी जनोंकी रसवृत्तिको विशेष उद्दीप्त करता है।

—भागवत, दशम स्कन्ध, अ० ३०, श्लो० १—४०, पृ० ९०४—७

दृष्टि विन्दु।

(१) संस्कृति भेद—

ऊपर नमूनेके तौरपर जो थोड़ीसी घटनाएँ दी गई हैं, वे आर्यावर्तकी संस्कृतिके दो प्रसिद्ध अवतारी पुरुषोंके जीवनमें की हैं। उनमेंसे एक तो जैनसम्प्रदायके प्राणस्वरूप दीर्घतपस्वी महावीर हैं और दूसरे वैदिक सम्प्रदायके तेजोरूप योगीश्वर कृष्ण हैं। ये घटनाएँ सचमुच घटित हुई हैं, अर्धकल्पित हैं या एकदम कल्पित हैं, इस विचारको थोड़ी देरके लिए एक ओर रखकर यहाँ यह विचार करना है कि उक्त दोनों महापुरुषोंकी जीवन घटनाओंका ऊपरी ढाँचा

एक सरीखा होनेपर भी उनके अन्तरंगमें जो अत्यंत भेद दिखाई दे रहा है, वह किस तत्त्वपर, किस सिद्धान्त पर और किस दृष्टि-विन्दु पर अवलम्बित है?

उक्त घटनाओंकी साधारणरूपसे किन्तु ध्यानपूर्वक जाँच करनेवाले पाठकपर तुरन्तही यह छाप पड़ेगी कि एक प्रकारकी घटनाओंमें तप, सहिष्णुता और अहिंसाधर्म झलक रहा है, जबकि दूसरी प्रकार की घटनाओंमें शत्रुशासन, युद्धकौशल और दुष्टदमन-कर्मका कौशल झलक रहा है। यह भेद जैन और वैदिक संस्कृतिके तात्त्विक भेद पर अवलम्बित है। जैन संस्कृतिका मूल तत्त्व या मूल सिद्धान्त अहिंसा है। जो अहिंसाकी पूर्णरूपसे साधना करे या उसकी पराकाष्ठाको प्राप्त होगया हो, वही जैनसंस्कृतिमें अवतार बनता है। उसीकी अवतारके रूपमें पूजा होती है। वैदिक संस्कृतिमें यह बात नहीं। उसमें तो जो पूर्णरूपसे लोकसंग्रह करे, सामाजिक नियमकी रक्षाके लिये जो स्वमान्य सामाजिक नियमोंके अनुसार सर्वस्व अर्पण करके भी शिष्टका पालन और दुष्टका दमन करे, वही अवतार बनता है और अवतारके रूपमें उसीकी पूजा होती है। तत्त्वका यह भेद कोई मामूली भेद नहीं है। क्योंकि एकमें उत्तेजनाके चाहे जैसे प्रबल कारण विद्यमान हों, हिंसाके प्रसंग मौजूद हों, तो भी पूर्णरूपसे अहिंसक रहना पड़ता है; जबकि दूसरी संस्कृतिमें अन्तःकरणकी वृत्ति तटस्थ और सम होनेपर भी, विकट प्रसंग उपस्थित होनेपर प्राणोंकी बाजी लगाकर अन्यायकर्त्ताको प्राणदण्ड तक देकर, हिंसाके द्वाराभी अन्यायका प्रतीकार करना पड़ता है। जब इन दोनों संस्कृतियोंमें मूलतत्त्व और मूलभावनामें ही भिन्नता है तो दोनों संस्कृतियोंके प्रतिनिधि माने जानेवाले अवतारी पुरुषोंकी जीवन-घटनाएँ इस तत्त्व-भेदके अनुसार योजित की जाएँ, यह जैसे स्वाभाविक है उसीप्रकार मानसशास्त्रकी दृष्टिसे भी उचित है। यही कारण है कि हम एकही प्रकारकी घटनाओंको उक्त दोनों महापुरुषोंके जीवनमें भिन्न भिन्न रूपमें योजित हुई देखते हैं।

अधर्म या अन्यायका प्रतीकार करना और धर्म या न्यायकी प्रतिष्ठा करना, यह तो प्रत्येक महापुरुष का लक्षण होता ही है। इसके बिना कोई महापुरुष नहीं बन सकता। महान् पुरुषके रूपमें उसकी पूजा भी नहीं हो सकती। फिरभी उसकी पद्धतिमें भेद होता है। एक महान् पुरुष किसी भी प्रकारके, किसी भी अन्याय या अधर्मको अपनी सारी शक्ति लगा कर बुद्धिपूर्वक तथा उदारतापूर्वक सहन करके उस अधर्म या अन्यायको करनेवाले व्यक्तिका अन्तःकरण अपने तप द्वारा पलटकर उसमें धर्म एवं न्याय के राज्यकी स्थापना करनेका प्रयत्न करता है। दूसरे महापुरुषको व्यक्तिगत रूपसे धर्म स्थापनकी यह पद्धति यद्यपि इष्ट होती है, तो भी वह लोकसमूहकी दृष्टिसे इस पद्धतिको विशेष फलप्रद न समझकर किसी और ही पद्धतिको स्वीकार करता है। वह अन्यायी या अधर्मीका अन्तःकरण समता या सहिष्णुताके द्वारा नहीं पलटता। वह तो 'विषकी दवा विष' इस नीतिको स्वीकार कर अथवा 'शठके प्रति शठ' होनेवाली नीतिको स्वीकार कर उस अन्यायी या अधर्मीको मटियामेट करके ही लोकमें धर्म और नीतिकी स्थापना करनेमें विश्वास करता है। विचारसरणीका यह भेद हम इस युगमें भी स्पष्ट रूपसे गाँधीजी तथा लोकमान्यके विचार एवं कार्यशैली में देख सकते हैं।

किसी प्रकारकी गलतफहमी न हो, इस उद्देश्य से यहाँ दोनों संस्कृतियोंके सम्बन्धमें कुछ विशेष जता देना उचित है। कोई यह न समझ ले कि इन दोनों संस्कृतियोंमें प्रारम्भसे ही मौलिक भेद है और दोनों एक दूसरीसे अलग रहकर ही पली-पुसी हैं। सचाई तो यह है कि एक अखंड आर्य संस्कृतिके दोनों अंश प्राचीन हैं। अहिंसा या आध्यात्मिक संस्कृतिका विकास होते होते एक ऐसा समय आया जब कुछ पुरुषोंने उसे अपने जीवनमें पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया। इस कारण इन महापुरुषोंके सिद्धान्त और जीवन-महिमाकी ओर अमुक लोकसमूह झुका

जो धीरे धीरे एक समाजके रूपमें संगठित हो गया। सम्प्रदायकी भावना तथा अन्य कई कारणोंसे यह अहिंसक समाज अपने आपको ऐसा समझने लगा मानो वह एकदम अलग ही है! दूसरी ओर सामान्य प्रजामें जो समाजनियामक या लोकसंग्राहिका संस्कृति पहलेसे ही मौजूद थी, वह चालू रही और अपना काम करती चली गई। जब जब किसीने अहिंसाके सिद्धान्त पर अत्यन्त जोर दिया तब तब इस लोकसंग्रहवाली संस्कृतिने उसे प्रायः अपना तो लिया किन्तु उसकी आत्यन्तिकताके कारण उसका विरोध जारी रहा। इस प्रकार इस संस्कृतिका अनुयायीवर्ग यह समझने और दूसरोंको समझाने लगा मानो वह आरम्भसे ही जुदा था। जैन संस्कृतिमें अहिंसाका जो स्थान है, वही स्थान वैदिक संस्कृतिमें भी है। भेद है तो इतना ही कि वैदिक-संस्कृति अहिंसाके सिद्धान्तको व्यक्तिगत रूपसे पूर्ण आध्यात्मिकताका लक्षण मानकर उसका उपयोग व्यक्तिगत ही प्रतिपादन करती है और समष्टिकी दृष्टिसे अहिंसा सिद्धान्तको सीमित कर देती है। इस सिद्धान्त को स्वीकार करके भी समष्टिमें जीवन-व्यवहार तथा आपत्तिके प्रसंगोंमें हिंसाको अपवाद रूप न मानकर अनिवार्य उत्सर्गरूप मानती है एवं वर्णन करती है। यही कारण है कि वैदिक-साहित्यमें जहाँ हम उपनिषद् तथा योगदर्शन जैसे अत्यन्त तप और अहिंसा के समर्थक ग्रंथ देखते हैं वहाँ साथही साथ 'शाठ्यं कुर्यात् शठं प्रति' की भावनाके समर्थक तथा जीवनव्यवहार किस प्रकार चलाना चाहिए, यह बताने वाले पौराणिक एवं स्मृति-ग्रन्थोंको भी प्रतिष्ठाप्राप्त देखते हैं। अहिंसा संस्कृतिकी उपासना करनेवाला एक वर्ग जुदा स्थापित होगया और समाजके रूपमें उसका संगठन भी हो गया, पर कुछ अन्शोंमें हिंसात्मक प्रवृत्तिके विना जीवित रहना तथा अपना तन्त्र चलाना तो उसके लिए भी सम्भव न था। क्योंकि किसी भी छोटे या बड़े समग्र समाजमें पूर्ण अहिंसा की पालना होना असम्भव है। इसीसे जैनसमाजके इतिहासमें भी हमें प्रवृत्तिके विधान तथा विशेष प्रसंग उपस्थित होनेपर त्यागी भिक्षुके हाथसे हुए हिंसाप्रधान युद्ध देखनेको मिलते हैं। इतना सब कुछ होनेपर भी जैनसंस्कृतिका वैदिक संस्कृतिसे भिन्न स्वरूप स्थिर ही रहा है और वह यह कि जैनसंस्कृति प्रत्येक प्रकारकी व्यक्तिगत या समष्टिगत हिंसाको निर्बलताका चिह्न मानती है और इसलिए इस प्रकारकी प्रवृत्तिको अन्तमें वह प्रायश्चित्तके योग्य समझता है। वैदिक-संस्कृति ऐसा नहीं मानती। व्यक्तिगतरूपसे अहिंसातत्त्वके विषयमें उसकी मान्यता जैनसंस्कृतिके समान ही है, परन्तु समष्टिकी दृष्टिसे वह स्पष्ट घोषणा करती है कि हिंसा निर्बलता का ही चिह्न है, यह ठीक नहीं, बल्कि विशेष अवस्थामें तो वह बलवानका चिह्न है, आवश्यक है, विधेय है, अतएव विशेष प्रसंग पर वह प्रायश्चित्तके योग्य नहीं है। लोकसंग्रहकी यही वैदिक-भावना सर्वत्र पुराणोंके अवतारोंमें और स्मृति ग्रन्थोंके लोकशासनमें हमें दिखलाई देती है।

इसी भेदके कारण ऊपर वर्णन किये हुए दोनों महापुरुषोंके जीवनकी घटनाओंका ढाँचा एक होने पर भी उसका रूप और झुकाव भिन्न भिन्न है। जैनसमाजमें गृहस्थोंकी अपेक्षा त्यागीवर्गकी संख्या बहुत कम है। फिर भी समस्त समाज पर (योग्य या अयोग्य, विकृत या अविकृत) अहिंसा की जो छाप लगी हुई है, और वैदिक समाजमें परिव्राजक वर्ग अच्छी संख्यामें होने पर भी उस समाज पर पुरोहित गृहस्थवर्गकी चातुर्वर्णिक लोकसंग्रह वाली वृत्तिका जो प्रबल और गहरा असर है, उसका स्पष्टीकरण उपर्युक्त संस्कृतिभेदमें से आसानी के साथ प्राप्त किया जा सकता है। [क्रमशः]
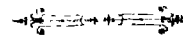
एक भ्रमका निराकरण।

अबसे शांतिसागर पार्टीका उत्तर हिन्दुस्तानकी ओर आना सुना, मेरे एक माननीय संबंधी उनके दर्शनोंके लिये बहुतही लालायित थे। आखिर यह

पार्टी एक दिन सदल बल हस्तिनापुर आ पहुँची। मैं गर्मियोंकी छुट्टियोंमें आया हुआ था। पार्टीके दर्शनार्थ चलनेके लिये मुझसे भी अनुरोध किया गया। मैंने इन मुनियोंके सम्बन्धमें बहुतसी बातें सुन रखी थीं इसलिये हस्तिनापुर जानेका मेरा उत्साह तो नहीं था, फिरभी मुझे अपने सम्बन्धीकी आज्ञाको शिरोधार्य तो करना ही था। फिर वहभी सोचा कि चलो हस्तिनापुर जैसी रमणीय भूमिके दर्शन हो जावेंगे।

हम सब लोगोंने एक बैलगाड़ी किराये की और चलपड़े। हम लोगोंने दो दिनके लम्बे सफ़रके बाद हस्तिनापुर क्षेत्रमें प्रवेश किया। वहाँकी भूमि पर पैर रखते ही "हथनापुर नगरी प्यारी लगे" और "बोल तेरह चौका बावन चैत्यालयोंकी जय"आदि जयध्वनियाँ चारों ओर सुन पड़ने लगीं। मैं मन ही मन आनन्दकी तरंगोंमें बहता हुआ कुछ सोच रहा था।

इतनेमें एकने कहा—"देखो, वे खड़े मुनि महाराज"।"बोल शांतिसागर महाराज की जय" की ध्वनिसे जंगल गूंज उठा। मेरा स्वप्न भंग हुआ। "ओह, मुनि महाराजका कितना कठोर तप है! वैशाख-ज्येष्ठकी गर्मीमें भी तपती हुई भूमिपर महाराज एक आसनसे ध्यानमुद्रा लगाये हुए हैं"—मेरे सम्बन्धीने कहा। मैं चुप था।

संध्याको महाराजका व्याख्यान होनेवाला था। मुझसे भी चलनेको कहागया। हम सब लोग तैयार होकर मंदिरके मंडपमें जा बैठे। वेदीपर एक ऐलकजी विराजमान थे। जनेऊ पहरानेके लिये चेले मूँडे जारहे थे। मैं समझ गया कि अब खैर नहीं है। आखिर जो सोच रहा था, वही हुआ। मुझसे कहा गया "आपका क्या विचार है?" मैंने कहा—"किस विषय में?"

"अभी आपको यही मालूम नहीं होसका"—महाराज जरा जोरसे बोले।

मैंने कहा "आपका शायद जनेऊ से मतलब होगा।" इस समय मैं मंडपके सब श्रद्धालुभाइयोंकी कुदृष्टिका शिकार बनरहा था। "जनेऊमें मैं विश्वास नहीं करता" - मैंने फिर कहा।

महाराज बोले—"इस प्रांतके लोग कैसे पापी हैं! अरे भाई, इतनी दूर से चलकर मुनिमहाराज तुम्हारे बड़े पुण्यके प्रतापसे यहाँ आये हैं! कुछ तो ले लो!"

मैंने देखा कि महाराजका टैम्परेचर बराबर चढ़ता जारहा है। मैं सम्भलकर बोला "महाराज, जरा शान्त रहिये। आप तो त्यागी हैं। मैं अभी आपकी सब बातोंका जवाब दिये देता हूँ।" मेरा इतना कहना था कि महाराज आग बबूला हो उठे और बोले—"क्या कहना चाहते हो?"

मैंने कहा—"मेरी यही नम्र विनति है कि आप जनेऊ धारण करनेका उपदेश देनेकी अपेक्षा यदि विदेशी वस्त्रोंका त्याग करावें तो प्रजाका बहुत कल्याण हो और अहिंसा धर्मका प्रचार हो, क्योंकि विलायती कपड़ोंके लिये लाखों पशुओंकी चर्बी काममें लीजाती है।"

मेरी बातोंका महाराजसे कोई उत्तर तो नहीं बना; उन्होंने एकदम पूछा—"तुम्हारे पेटमें क्या भरा है? वह चर्बी नहीं तो और क्या है?"

मैंने छुटतेही जवाब दिया—"माना, हमारे पेटमें चर्बी है, पर इसका मतलब यह नहीं है कि हम बाहरसे भी चर्बी लपेट लें।" इतनेमें व्याख्यानदाता महोदय आगये और मेरा 'जनेऊ महाराज' से पिण्ड छुटा।

इस घटनाको हुए लगभग तीन वर्ष होगये। मेरे श्रद्धास्पद संबंधीकी मुनियोंके प्रति अभी भी वैसीही श्रद्धा बनी हुई थी।

अचानक घरसे एक पत्र आया जिसमें लिखा था कि यहाँ आर्जिकाजी पधारी हैं, उन्हें आहार देने का विचार है। मैं तो इन लोगों की लीला देख ही चुका था। मैंने स्पष्ट लिख दिया कि मुझे आजकल के छद्मवेषी त्यागियों पर बिलकुल विश्वास नहीं है।

आप भलेही चाहें तो आहार दीजिये, लेकिन शूद्र-जल छोड़नेसे पहले अर्जिकाजीसे शूद्रकी परिभाषा जान लेनी चाहिये।

मैंने लिख तो दिया पर डर था कि कहीं घरवालोंकी डाँट न पड़े। आखिर मेरे पत्रका उत्तर आया। मैंने डरते डरते लिफाफा खोला। जब मुझे मालूम हुआ कि अर्जिकाजी के बर्तावसे मेरे संबंधीकी श्रद्धा भी उनके प्रति कम हो गई है, तो मेरे हर्ष और दुःखका ठिकाना नहीं था। हर्ष तो मुझे होना चाहिये ही था क्योंकि मेरे संबंधीका भ्रमोन्माद दूर हुआ। दुःखका अतिरेक इसलिये था कि ये साधुवेषी लोग, धर्म और त्यागके नामपर दंभ और कषायोंका पोषण करनेमें जराभी शर्म नहीं खाते--यह समाजकी कितनी जड़तापूर्ण अंधश्रद्धाको सूचित करता है।

—"जे"

समाचार संकलन।

—भारतवर्ष कृषिप्रधान देश है। फिरभी यहाँ लगभग दो करोड़ रुपयेके फल बाहरसे आते हैं।

—एलोर (मद्रास) में शीतला माताको प्रसन्न करनेके लिये एक हजार पशु पक्षियोंका बलिदान किया गया है। योरुप और अमेरिकाके बड़े बड़े शहरोंके कसाईखानोंमें भी प्रतिदिन उक्त संख्यासे बहुत अधिक पशुओंका बध किया जाता है। अंतर केवल इतना ही है कि वहाँ पशुबध मनुष्योंके पेटकी तृप्तिके लिये होता है और यहाँ काली, भवानी, शीतला, चण्डी आदि देवियोंकी तृप्तिके लिये।

—भयंकर डाकुओंपर आक्रमण करनेवाली हरनामकुँवर नामकी सिक्ख लड़कीको उसकी बहादुरी के उपलक्ष्यमें पंजाब गवर्नरकी ओरसे कुछ जमीन और एक हजार रुपयेका पुरस्कार मिला है। हरनामकुँवरके तीन भाइयोंको भी एक हजार रुपयेका पारितोषिक दिया गया है। शिमलाके आर्यसमाज के कॉलेज भवनमें स्त्रियोंने एक सभा करके हरनाम कुँवरको सोनेकी जंजीर भेंट की।

—कलकत्तेकी खबर है कि महात्मा गाँधीके अस्पृश्यता निवारक आन्दोलनके विरोधमें राजपूतानेसे आया हुआ एक मारवाड़ी ब्राह्मण एक वट वृक्षके नीचे पिछले पचीस दिनोंसे उपवास कररहा है। उसके कार्यकी सफलताके लिये स्थानीय सनातनी लोग प्रार्थना कररहे हैं।

—वैज्ञानिकोंका कहना है कि सूर्य धीरे धीरे ठंडा होरहा है। यदि सूर्य एकदम लोप होजाय तो आठ मिनिट तक तो उसका कोई असर ही न हो, क्योंकि सूर्य और हम लोगोंके बीचमें नौ करोड़ दस लाख मीलका फासला है। सूर्यके प्रकाशको इस लम्बे रास्तेको तय करनेमें आठ मिनिट लगते हैं। इसके बाद इतने जोरकी ठंड पड़े कि सब समुद्रोंका पानी बरफके रूपमें परिणत होजाय। और थोड़ीही देर बाद हवा बहनेवाली हो, बादमें वह घनरूपमें बदल जाय। तीसरे दिन तक पृथ्वीके सम्पूर्ण पशुपक्षी मृत्युको प्राप्त हों और मनुष्य जाति भी आठ दस दिनके भीतर नष्ट होजाय।

—डाक्टर हुटनकी अंतिम रिपोर्टके अनुसार हिंदुस्तानकी जनसंख्या साढ़े पैंतीस करोड़ है। भारतकी आबादी रशियाके सिवाय सम्पूर्ण योरुप से अधिक है। केवल संयुक्त प्रांतकी आबादी ब्रिटेन जितनी है। बङ्गालकी आबादी भी इतनी ही है। बिहार और उड़ीसाकी आबादी फ्रांसके बराबर है। बम्बई इलाकेकी आबादी आस्ट्रियाके बराबर और पञ्जाबकी स्पेन और पोर्चुगालके बराबर है।

—भारतमें भिखमंगोंकी संख्या ७५ लाख है। लाहौर म्युनिसिपैलिटी भिखमंगोंको औद्योगिक शिक्षण देनेका प्रबन्ध कररही है।

—मुसोलिनी हिटलर आदि ने स्त्रियोंको नौकरीसे हटाकर पुरुषोंको काम देना शुरू करदिया है। इसका अभिप्राय केवल मर्दोंकी बेकारी हटानेका था। परन्तु इसका परिणाम यह हुआ कि स्त्रियाँ गुलाम बनने लगी हैं।

—भारतमें प्रायः पन्द्रह हजार स्त्रियाँ जमीनके नीचे खानोंमें काम करती हैं। योरुप और अमेरिका में स्त्रियोंसे यह काम नहीं लिया जाता।

—डेनमार्ककी गायें हिन्दुस्तानकी गायोंसे तीन गुना अधिक दूध, घी और मक्खन देती हैं। इसका कारण यही है कि वहाँ पशुओंके आहार, विहार, जल आदिकी स्वच्छताके ऊपर ध्यान रक्खा जाता है, हिन्दुस्तानमें नहीं।

—केवल एकही मिनिटमें—पृथ्वीपर ९० बालक जन्म लेते हैं, ७६ मरते हैं; बृटिश टापुओं, मुहल्लों और सड़कों पर दुर्घटना होनेसे एक मनुष्य आहत होता है, दुनियाँमें २० पुरुषोंका विवाहसम्बन्ध होता है, एकका सम्बन्धविच्छेद होता है; एकही मिनिटमें चूहे ५७, पौंडकी हानि करते हैं, ८३३३३३ प्याले काफीका उपयोग होता है; ६०,००० आलू खाये जाते हैं, तथा एकही मिनिटके भीतर ब्रिटेनके कोयलका एक बन्दर १७ टनसे अधिक कोयले जहाजमें भर डालता है। (जागरण)

(शेष पृष्ठ २ से आगे)

से सम्बन्धित व्यक्तियोंका बहिष्कार न करें, उनसे सम्बन्धविच्छेद न करें तथा अबतकके पारस्परिक व्यवहारके लिये प्रायश्चित्त न लें तबतक लोहड़साजन बड़साजन विवाहोंको रुकवानेका प्रयत्न करना हिमाकत ही कहा जायगा। बात यह है कि श्रीमान सेठ भागचन्दजी साहबमें विवेक तो है, किन्तु दुर्भाग्यवश नैतिकसाहसका प्रायः सर्वथा अभाव है, जिसके कारण उनका विवेक वंध्यावत् रह जाता है; यही नहीं बल्कि कईबार उलटा दुष्फल दे जाता है। 'मुनि चन्द्रसागरजीका बहिष्कार' शीर्षक पर्चेके सम्बंध में आपके श्वसुर श्रीमान रावराजा सरसेठ हुकमचन्दजी साहबकी जिस प्रकार उपहासजनक स्थिति होगई थी, वह पाठकोंको भली प्रकार याद होगा। उसकी तहमें भी आपकी नैतिक दुर्बलता ही थी। खैर।

पाडलोंमें चन्द्रसागर भक्तोंकी बड़ी दुर्दशा हुई व होरही है। जात्यभिमानी शूद्रजलत्यागी तथा अपने भाइयों (लोहड़साजनों) को शूद्र समझने वाले लोग खुद शूद्र बने हुए हैं और कुछ गाँव वालोंने उनका बहिष्कार कर रक्खा है। कलहकारी चन्द्रसागरको लोग अपने गाँवमें बुलाते हिचकते हैं, यही नहीं बल्कि उसको गाँवमें आनेसे रोका तक जाने लगा है। खेद है कि एक उन्मार्गी तथा उसके कुछ अंधभक्तोंके कारण जैनमुनिपद इस तरह अपमानित व तिरस्कृत हो रहा है। प्र०

वैवाहिक प्रथाओंमें सुधार—गत २० जूनको श्रीमान् बा० मिलापचन्दजी छाबड़ा बी. ऐ.सी. ऐलऐल. बी. ऐडवोकेट अजमेर तथा श्रीमती सुलोचना कुमारी (श्रीमान बा० चिरंजीलालजी बड़जात्या बी. ए. मुंसिफ व मजिस्ट्रेट फ़र्स्ट क्लास अलवर की भतीजी) का विवाह जिस सादगीके साथ हुआ, उसके लिये दोनोंको—खासकर कन्यापक्ष वालोंको—हार्दिक बधाई दी जाती है। विवाहमें तोरण व फेरोंकारस्मके सिवाय कोई रस्म नहीं हुई, तथा तोरण के लिये भी ऐसी उचित व्यवस्था की गई जिससे सब कार्य कुल दो रोज़में सम्पन्न होगया। गत माह श्रीयुत बा. इन्दरचंदजी गोधाका विवाह नरायणानिवासी श्रीमान शाह केशरलालजी लुहाड़ियाकी पौत्री सरलाबाईके साथ हुआ था और इसमें भी प्रचलित प्रथाके विरुद्ध तोरण व फेरे एकही रोज़ हुए थे। करीब दोसाल पहिले श्रीयुत गुलाबचन्दजी सोगाणीके विवाहमें तोरण व फेरे एकरोज़ हुएथे तो कुछ दकियानूसी लोगोंने उनके बहिष्कारका फतवा दिया गया। लेकिन आज इन विवाहोंके खिलाफ कहीं कोई हलचल नहीं सुनाई देती। यह निश्चय है कि अगर दो चार व्यक्ति और साहस कर ऐसे उदाहरण उपस्थित कर सकें तो फिर तोरण फेरे एक रोज़ करनेका भी आम रिवाज़ हो जावेगा। स्थितिपालक व सुधारक सभी अंतरंगसे व्यर्थव्ययके खिलाफ हैं किन्तु नैतिक साहस की कमीके कारण एक दूसरेका मुँह देख रहे हैं।—प्र०

अंतर्जातीय विवाह—स्वर्गीय श्रीमान फूलचन्दजी सगैया कुचवाड़ाके पुत्र बाबूलालजी (अठसका परवार) का विवाह श्रीमान् टड़ा निवासी चौधरी नन्हाईलालजी (लहुरीसेन) की पुत्रीके साथ हुवा। कुछ परवार व्यक्तियोंकी ओरसे विवाहको रुकवानेकी बहुत कोशिश की गई परन्तु वर महोदय दृढ़ रहे और विवाह पूर्ण सफलताके साथ सम्पन्न होगया। सत्तर्क सुधातरंगिणी जैनपाठशाला सागरके अध्यापक प० माणिकचन्द्रजी परवारने पाणिग्रहण संस्कार कराया।

Printed by Pt. Radhaballabh Sharma at the Ajmer Printing Works, Ajmer.

तार का पता—"JAINJAGAT" Ajmer — Reg: No. N 352.

ता० १६ जुलाई सन् १९३४

वर्ष ९ — अंक १७

जैनसमाज का एकमात्र स्वतन्त्र पाक्षिकपत्र।

वार्षिक मूल्य ३) रुपया मात्र। — विद्यार्थियों व संस्थाओं से २॥) मात्र।

जैन जगत्

(प्रत्येक अंग्रेज़ी महीने की पहली और सोलहवीं तारीखको प्रकाशित होता है)

"पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनम् यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः"॥—श्री हरिभद्रसूरि।

सम्पादक—सा०र० दरबारीलाल न्यायतीर्थ, जुबिलीबाग तारदेव, बम्बई। — प्रकाशक—फ़तहचंद सेठी, अजमेर।

प्राप्ति स्वीकार।

जैनजगत्की सहायतार्थ निम्नप्रकार द्रव्य प्राप्त हुवा है—

४) श्री० गुलाबचंदजी छाबड़ा अजमेर (अपने पुत्र बा० मिलापचंदजी एडवोकेटके विवाहके उपलक्षमें)

५॥) श्री० नेमीचन्दजी सोगाणी अजमेर (अपने पुत्र निहालचन्दजीके विवाहके उपलक्षमें)

इस उदारताके लिये दातारोंको धन्यवाद। —प्रकाशक

लोहड़साजन आन्दोलन चर्चा।

अभी हालमें ब्यांद (किशनगढ़) में जो लोहड़साजन-बड़साजन विवाहसम्बन्ध हुवा है, उसके विस्तृत समाचार गतांकमें प्रकाशित हो चुके हैं, विरोधी लोग चौकड़ी भूले हुए हैं। उनसे उक्त विवाहसम्बन्ध करनेवालों तथा उसमें शरीक होने वालोंका न बहिष्कार करते बनता है, न चुप्पी ही लगाई जाती है। यह तो हो नहीं सकता कि वे अकेले श्रीमान् रावतमलजी सेठीका बहिष्कार करदें और पिछले उन १४७ सम्बन्धोंके विषयमें, जिनका विवरण "लोहड़साजन निर्णय" में प्रकाशित हो चुका है, चुप हो रहें, लेकिन साथही यह निश्चित है कि उन १४७ विवाहसम्बन्धोंके खिलाफ़ चूँ करनेकी भी इनमें हिम्मत नहीं है और इसलिये यह स्पष्ट है कि इस १४८ वें सम्बन्धके खिलाफ़ भी कुछ कार्यवाही नहीं की जासकेगी। यही नहीं, बल्कि आगे भी जो लोहड़साजन-बड़साजन सम्बन्ध हों, उनके लिये ये लोग भलेही चाहे जितना चिल्लावें, गीदड़ भभकियाँ दें, डरा धमकाकर विवाह रुकवानेकी चेष्टा करें, परन्तु अगर वर व कन्यापक्षवाले व उनके सहयोगी इसी तरह साहसपूर्वक डटे रहें तो ये लोग उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकते। संक्षेपमें परिस्थिति इस प्रकार है कि जिस तरह कुत्ता डरकर भागनेवालेका पीछा करता है, किन्तु सामना करनेवाले से स्वयं दुबक कर भागता है, विरोधी लोगभी दब्बू व कमज़ोर व्यक्तियोंको ही घुड़कियाँ दिखाते हैं, लेकिन जबर्दस्तको सामने देखकर कोनेमें जा छुपते हैं।

विरोधी लोग अब कहने लगे हैं कि चूँकि लोहड़साजन सम्बन्धी प्रश्न खंडेलवाल महासभाके विचाराधीन है, इसलिये जब तक महासभा इसका निर्णय न कर दे तब तक इस विषयमें कोई नई कार्यवाही नहीं की जानी चाहिये। प्रथम तो लोहड़साजन बड़साजनोंका परस्पर विवाह सम्बन्ध करना

कोई नई बात नहीं है। १४७ ऐसे विवाहोंका 'लोहड़साजननिर्णय'में पूर्ण विवरण दिया जाचुका है। इनके अतिरिक्त ऐसे सैकड़ों उदाहरण और दिये जासकते हैं। अनुचित कार्यवाही वास्तवमें खुशालचन्दजी पहाड्या उर्फ चन्द्रसागरजीकी तरफसे होरही है जो इस प्रश्नके निर्णय होनेसे पूर्वही जगह जगह लोहड़साजनों को पूजाप्रक्षाल करनेसे जबर्दस्ती रुकवा रहे हैं, उनके साथ खानपान करनेका आजन्म त्याग करा रहे हैं। चन्द्रसागरजी खंडेलवाल महासभाकी सत्ताको ठुकरा रहे हैं और इसलिये महासभाका कर्त्तव्य है कि वह उनकी इस अनुचित कार्यवाही को रोके।

पाडलीमें चन्द्रसागरभक्तोंकी बड़ी दुर्दशा हो रही है। कई लोग तो पाड़ली छोड़कर और गाँवोंमें जा बसे हैं। सुना है कि जयपुरमें पाड़ली ठाकुरसाहब तथा गाँवकी समस्त जनताके खिलाफ अपील कीगई है। चन्द्रसागर-भक्त लोहड़साजनोंको बिना किसी हिचकके दस्सा, हीन, नीच, शूद्र आदि बताकर उनका बहिष्कार कर रहे हैं; परन्तु आज जब स्वयं उनपर आपड़ी है, समस्त गाँववाले उनका बहिष्कार कर रहे हैं, तब उन्हें मालूम हुवा है कि किसीको नीच बताकर उसका बहिष्कार कर देना कितना घोर अत्याचार है। अगर हम चाहते हैं कि दूसरे लोग हमारे साथ न्यायानुकूल बर्ताव करें तो हमें भी दूसरोंके साथ न्यायानुकूल बर्ताव करना चाहिये।

बेराठके श्रीमान छीतरमलजी बाकलीवालकी ओरसे "सिणोदमें वृहत् पंचायत सम्मेलन, प्राचीन लोहड़साजन व्यवहारका समर्थन" शीर्षक एक पर्चा प्रकाशित हुवा है जिसपर विभिन्न गाँववालोंके करीब ६० हस्ताक्षर हैं। इसे लोहड़साजनोंके लिये मानहानिजनक समझकर नसीराबादके श्रीमान् घीसालालजी सेठीने उक्त पर्चेपर हस्ताक्षर करनेवाले ११ व्यक्तियोंपर स्थानीय सिटी मजिस्ट्रेट साहबकी अदालतमें इस्तगासा पेश किया है। —प्रकाशक।

—बजरंगगढ़ निवासी श्रीयुत हीरालालजी भूतने अपनी कन्याकी सगाई मुंगावली निवासी श्रीयुत् मंगलचन्दजीके साथ जिनकी अवस्था ४५ वर्षकी है, १०००) लेकर की थी। पंचों तथा कुछ उत्साही नवयुवकोंके समझाने बुझानेसे मंगलचन्दजी रुपया व जेवर वापिस मिलने पर सगाई छोड़नेको राजी हो गये। अतः परिषद् सभापति श्री०डा० जमनाप्रसादजी सबजज तथा अन्य व्यक्तियोंका एक डेपुटेशन बजरंगगढ़ कन्याके पिताके पास गया। कन्याके पिताने इनकी बात स्वीकार कर कन्याको पंचोंके सुपुर्द कर दिया। किन्तु दूसरे दिन भूतजीको लोभने फिर आ दबाया और वे कहने लगे कि हमें तो १०००) चाहिये, लड़की चाहे जिससे विवाही जाय। इस पर सबजज महोदय तथा उनके सहयोगी सुपुर्दगीनामेके अनुसार कन्याको लेकर गुना चले गये। उधर भूतजीने इन लोगोंके खिलाफ कन्याअपहरणका अभियोग लगाकर दावा कर दिया। मुकद्दमा चलनेपर ये सब लोग बरी होगये तथा कन्याकी भी बुड्ढेके चंगुलसे रक्षा होगई। श्री०जमनाप्रसादजी साहब तथा उनके सहयोगियोंने स्वयं विपत्ति झेलकर कन्याको जीवनदान दिया, इसके लिये उनकी जितनी सराहना की जाय, थोड़ी है।

—ता० ४ जुलाईकी रात्रिको महात्मा गाँधी यहाँ पधारे। ता० ५ को प्रातःकाल स्त्रियोंके लिये तथा सायंकाल सर्वजनताके लिये उनके भाषण हुए। जनतामें अपूर्व उत्साह था। अजमेरमें इतना जनसमूह पहिले किसी व्याख्यानसभामें नहीं देखा गया। बाहिरसे कुछ सनातनी पंडित लोग महात्माजीके विरुद्ध आंदोलन करनेके लिये आये थे परन्तु उन्हें यहाँ कुछभी सहयोग नहीं मिला—यही नहीं बल्कि उन्हें बुरी तरह लांछित व तिरस्कृत होना पड़ा। ता० ५ को सनातनी, आर्यसमाजी व जैनियोंके स्थितिपालक दलके कुछ व्यक्ति (श्री० डॉ० गुलाबचन्दजी पाटणी, प० विद्याकुमारजी सेठी न्यायतीर्थ आदि) उनसे मिलेथे। ता० ६ जुलाईको प्रातःकाल महात्माजी ब्यावर गये। वहाँ स्थानकवासी जैनसाधुओं तथा जैनगुरुकुलकी ओरसे उनको मानपत्र दिये गये थे।

वर्ष ९

आषाढ शुक्ला ५

वीर संवत् २४६०

अंक १७

ता० १६ जुलाई

सन् १९३४ ई०

ग्रीष्मप्रवास।

(३)

धामनगाँव—श्रीमान सुगनचन्दजी लुणावत इस प्रान्तके बहुत बड़े श्रीमान और गणनीय जागीदार हैं। आप मुझसे बहुत स्नेह करते हैं। आप हीके लिये मैं यहाँ उतरा। आप मेरे लिये इतने उत्सुक थे कि तीन दिनसे सदलबल स्टेशन पर गाड़ी देखने आते थे।

धामनगाँवमें जैनियोंके बहुत थोड़े घर हैं, और जो हैं भी उनका सामाजिक जीवनसे कुछ सम्बन्ध नहीं है। शायद इन लोगोंने सभा आदिका नाम भी नहीं सुना। यहाँ सुगनचन्दजीके साथ विविध विषयों पर बहुतसी बातचीत हुई। आपकी इच्छा थी कि मैं धामक चलूँ जिससे आपकी माताजी तथा दादीजी आदि पर कुछ प्रभाव पड़े। तदनुसार ता० ५-५-३४ को धामक आया। यहाँभी जैनियोंके कुछ घर हैं। ता० ६-५-३४ को आमसभा की, जिसमें बतलाया कि वास्तविक धर्म क्या है, और वह सम्प्रदायोंमें क़ैद नहीं है, वह किसी उन्नतिका बाधक नहीं है। धर्मके नामपर झगड़ना घोर अधर्म है। इसके बाद समाज-सुधार आदिके सम्बन्धमें कहा।

यहाँ एक वेदान्ती विद्वान थे जिनसे खूब दार्शनिक चर्चा हुई और उन्हें बतलाया कि मेरे सम्प्रदायातीत धर्मका लक्ष्य क्या है ?

सुगनचन्दजीकी जिज्ञासा बड़ी प्रबल है। जितने दिन मैं यहाँ रहा आपको विविध विषय समझाता रहा। लेखमालाके प्रथम तृतीय और छट्ठे अध्यायका वाचन हुआ। दूसरे अध्यायका भी कुछ भाग पढ़ा गया सर्वज्ञकी चर्चाका प्रारम्भिक भाग पढ़ागया। इससे उनको बहुत प्रसन्नता हुई। आपने शास्त्र स्वाध्यायकी तरह लेखमालाको पढ़नेका वचन दिया। आप एक उत्साही निष्कपट और सरल हृदयके जिज्ञासु और सेवाभावी युवक हैं। विचार भी सम्प्रदायातीत हैं। आपसे बहुतसी आशाएँ हैं।

सुगनचन्दजी पर्दा प्रथाके विरुद्ध होने पर भी आपकी माताजी तथा दादीजी बहुत पुराने खयालों की हैं, इससे आपकी धर्मपत्नीको तथा भ्रातृवधूको विवश होकर पर्दा-प्रथाका कठोर पालन करना पड़ता है। बात करना या देखना तो दूर, परन्तु हम लोगों के सामने निकलना भी कठिन है। मारवाड़ी समाज में एक तो योंही पर्दा बहुत है, फिर जो जितना बड़ा श्रीमान और सन्मानित होता है, उसके यहाँ उतना ही अधिक पर्दा होता है। इसीलिये आपके यहाँ पर्दा बहुत है। मैं आपकी माता और दादीजीसे प्रायः नहीं बोलपाता था, तब समझाऊँ तो कैसे समझाऊँ ? यहाँ मेरी पत्नीने काम किया। पर्दा प्रथाकी बुराइयाँ अनेक रूपोंमें समझाईं। कुछ जन समझ तो जाते हैं परन्तु पुराने संस्कार उन्हें परिवर्तनके लिये रोकते हैं। ख़ैर, इसका कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य हुआ जो कि व्यवहारमें भी दृष्टिगोचर होने लगा। आते समय आपने बिना मेरी प्रेरणाके स्वेच्छासे ७५) रु० जैनजगत्को भेंट किये।

वर्धा—८-५-३४ को वर्धा आया। देशभक्त सेठ जमनालालजी बजाजके यहाँ ठहरा। यहाँपर श्रीमान् सेठ चिरंजीलालजी बड़जात्याने हरतरह

सहायता पहुँचायी। आप अत्यन्त उदार, नम्र, प्रखर सुधारक और सेवाभावी महानुभाव हैं। हिरासावजी डोमे अन्तर्जातीयविवाहको कार्यरूपमें परिणत करने वाले सुधारक श्रीमान हैं। यहाँ दो दिनमें मेरे तीन व्याख्यान हुए। व्याख्यानोंका प्रोग्राम छपाकर बँटवा दिया गया था। इन्हीं दिनों बाबू जमनाप्रसादजी सबजज और रतनलालजी काले अमरावती भी आ पहुँचे थे। तीनों व्याख्यान जैन बोर्डिंगमें हुए थे।

ता० ९-५-३४ के व्याख्यानका विषय था-"जैन-धर्मपर ऐतिहासिक दृष्टि-जैनधर्म वैदिकधर्मका अंग है या स्वतन्त्र"। इस व्याख्यानमें मैंने जैनधर्मको स्वतन्त्रधर्म सिद्ध किया था और भगवान महावीर तथा भगवान पार्श्वनाथकी ऐतिहासिकता सिद्ध की थी। इस प्रकार जैनधर्मको २८०० वर्षका सिद्ध करके वर्तमान वैदिक सम्प्रदायोंकी आधुनिकता पर प्रकाश डाला था। उपसंहारमें कहा था कि नवीनता और प्राचीनता किसी धर्मकी सत्यता और असत्यताकी निशानी नहीं है। हिंसादि पाप अनादि हो करके भी बुरे हैं, इसलिये लोगोंमें जो प्राचीनतासे महत्त्व समझनेकी बीमारी है वह दूर होना चाहिये। अगर जैनधर्म कलका सिद्ध होजाय तो मेरी दृष्टिमें उसकी सत्यताका महत्त्व ज़राभी नघटेगा, न उसकी प्राची-नतासे वह बढ़ेगा ही।

इस सभाके अध्यक्ष थे श्रीकृष्णदासजी जाजू। आप पहिले वकालत करते थे, अब खादीभंडारके डाइरेक्टर हैं। गुरुके समान आपकी यहाँ प्रतिष्ठा है। आपने मेरे व्याख्यानका कुछ उद्धरण करके उसका अनुकरण और विचार करनेके लिये श्रोता-ओंको प्रेरित किया।

ता० १०-५-३४ को प्रातःकाल "जैन धर्मकी व्यापकता" पर मेरा व्याख्यान श्रीयुत कन्हैयालालजी पाटनी वकीलकी अध्यक्षतामें हुआ। और शामको 'समाज सुधार' विषयपर श्रीयुत नेमीचन्दजी बदनोरे वकीलकी अध्यक्षतामें मेरा व्याख्यान हुआ। इसमें विजातीयविवाह, विधवाविवाह, अछूतोद्धार आदिपर कहा गया। बाबू जमनाप्रसादजी तथा बाबू रतन-लालजी कालेके भी महत्त्वपूर्ण व्याख्यान हुए। आप दोनों ही सज्जन मेरे विचारोंसे पूर्ण सहमत हैं और जैनजगत्‌से विशेष प्रेम रखते हैं। जहाँ जहाँ आप गये आपने जैनजगत्‌के ग्राहक भी बनाये। आतेसमय ५) सेठ चिरंजीलालजी बड़जात्याने और ५) हिरासाव जयरामजी डोमेने जैनजगत्‌की सहायताके लिये दिये।

हिंगनघाट— ११-५-३४ को हिंगनघाट आया। यहाँ भी तीनों सम्प्रदायके जैनियोंकी बस्ती है। दिगम्बरोंके भी घर हैं। यहाँ मेरा किसीसे भी पुराना परिचय नहीं था। मैंने कुछ युवकोंकी तलाश कराई। मालूम हुआ कि यहां दिगम्बर जैनसमाज में १०-१२ किशोर युवक हैं। उन सबको लेकर मैं एक जगह बैठा और धर्म और समाजके विषयमें स्वतन्त्रतासे चर्चाकी। इससे उनके उत्साह और ज्ञान में वृद्धि हुई। अन्तर्जातीय विवाहका प्रश्नभी खूब वि-चारा गया। शामको स्थानकमें तीनों सम्प्रदायकी एक सभा हुई, जिसमें एक मूर्तिपूजक श्वेताम्बर सज्जन सभापति थे। स्थानकमें सभा होनेसे मूर्ति-पूजक भाई कुछ कम आये। अगर सभा मंदिरमें की गई होती तो स्थानकवासी भाई कम आये होते। हमारे भीतर ज्ञात या अज्ञात रूपसे साम्प्रदायिकता ऐसा असर जमाये बैठी है कि हम आवश्यकता वश भंगीके घर जा सकते हैं, परन्तु धर्मस्थानोंमें नहीं जा सकते। खैर, १॥ घंटेके करीब मेरा व्याख्यान हुआ, जिसमें मैंने धार्मिक क्रान्तिके विचार तथा समाज-सुधारकी बातें कह डालीं।

जब मैं हिंगनघाट गया था तब बाबू जमुना-प्रसादजी आर्वी चले गयेथे। प्रोग्रामके अनुसार ता० १२ के सुबह लौटकर हमलोग वर्धाके स्टेशन पर मिलगये और सब साथही नागपुर आये।

नागपुर—मेरे आनेके समाचारसे नागपुर जैनसमाजमें, खासकर परवार समाजमें, तहलका मचा हुआथा। कुछ तो समर्थक थे। कुछ विरोधी थे परन्तु मेरी बातें सुनना चाहते थे। कुछ चाहते

थे कि व्याख्यान न हो। कुछ चाहते थे कि व्याख्यान भले ही हो परन्तु परवार मन्दिरमें न हो, न मालूम वे क्या क्या कहेंगे ? और कुछकी इच्छा यह थी कि धर्मशालामें ही इन्हें न ठहरने दिया जाय। ये सब समाचार मेरे पास वर्धाही पहुँच गये थे। पहिले तो मेरा विचार धर्मशालामें ठहरनेका न था परन्तु जब ये समाचार पहुँचे तो मैंने यही उचित समझा कि धर्मशालामें ठहरा जाय जिससे कुछ नये अनुभव तो हों। परन्तु जितनी आशा की थी उतने कडुवे अनुभव न हुए। धर्मशालाके अध्यक्ष सेठ फतहचन्द दीपचन्द जिनके पतेपर मैंने अपनी डाक भी मँगवाई थी, सो कि कारणवश कुछ गड़बड़ होगई। बार बार पूछने पर उलटे जवाब दिये गये। इस प्रकार कुछ [illegible] किया गया। कट्टरपंथी लोग [illegible] और [illegible] अन्तरको नहीं समझ सकते। [illegible] एक प्रकारकी [illegible] चाहिये। क्रान्तिकारी सुधारकोंको अपमानको अमृतकी तरह पीना पड़ता है। जगद्वंद्य भगवान महावीरको तुच्छसे तुच्छ और नीचसे नीच लोग भी [illegible] अपमान कर बैठते थे, इस बातका स्मरण करके ऐसा कौन सुधारक होगा जो घोरसे घोर अपमान न सह सके ? खैर, ता० १२ की रात्रि को परवार मन्दिरमें ही मेरा व्याख्यान रक्खा गया। बाबू [illegible]चन्दजी अध्यक्ष थे। मैंने धार्मिक और सामाजिक [illegible] सम्बन्धी अपने खास खास विचार प्रगट किये। बड़ी शान्तिके साथ लोगोंने मेरे विचार सुने। स्त्रियाँ भी थीं और पुरुषोंकी संख्या भी लोगों के कथनानुसार अन्य सभाओंसे अधिक थी। अध्यक्षने भी मेरे विचारोंका पूर्ण समर्थन किया। व्याख्यानके बाद ता० जमुनाप्रसादजी सबजजने घोषणा की कि जिसे किसीको प्रश्न पूछना हो सो पूछले। एक वृद्ध सज्जनने पूछा कि पशु मर कर अधिकसे अधिक बारहवें स्वर्ग तक जाते हैं या सोलहवें ? इसके उत्तर में मैंने दोनों मतोंका उल्लेख किया, और इस भ्रम का कारण दिगम्बर श्वेताम्बर सम्प्रदायमें प्रचलित सोलह बारह स्वर्गोंकी मान्यता बतलाया। और किसीने कुछ नहीं पूछा। फिर बा० जमुनाप्रसादजीने साहित्योद्धारके विषयमें अपना व्याख्यान दिया।

ता० १३-५-३४ के प्रातःकाल स्थानकवासी बन्धुओंकी प्रेरणासे स्थानकमें मेरा व्याख्यान रखा गया, जिसमें तीनों सम्प्रदायकी एकतापर जोर देते हुए साम्प्रदायिक लड़ाइयोंकी मूर्खताका उल्लेख किया और निष्पक्षतासे जैनधर्मको पवित्र बताकर उसके प्रचारका तथा पालनका अनुरोध किया।

इसी दिन शामको देशभक्त श्री पूनमचन्दजी राकाकी अध्यक्षतामें टाउनहालके मैदानमें मेरा आम व्याख्यान हुआ। विषय था—अहिंसा और राष्ट्रीयत्व। इसमें मैंने राजनीतिपर एक सरसरी नजर डालकर अहिंसाकी व्यापक व्याख्या की। अहिंसा भी हिंसा और हिंसा भी अहिंसा कैसे होती है इसको उदाहरण देकर समझाया। राष्ट्रीयताभी कब पाप है और कब पुण्य इसका विशेषण करते हुए कहा कि जो देश अपने उद्धारके लिये राष्ट्रीयता की भावनाको उत्तेजित करते हैं, उनकी राष्ट्रीय भावना पुण्य है जैसे भारतवर्षकी। और जो देश दूसरे देशोंको पीड़ा पहुँचानेके लिये राष्ट्रीयताका नारे लगाते हैं, उनकी राष्ट्रीयभावना पाप है जैसे साम्राज्यवादी देशोंकी। राष्ट्रीयताका स्थान मनुष्यता से [illegible] है। जिनने राष्ट्रीयताको प्राप्त कर लिया है वे अगर उसीसे चिपके रहेंगे तो [illegible] के समान होंगे। परन्तु जो देश सम्प्रदाय और जाति उपजातियोंकी टुकड़ियोंमें बँटे हुए हैं इनके लिये तो राष्ट्रीयता ही आदर्श है। परन्तु उसकी यह राष्ट्रीयता मनुष्यताका अंश है। इस प्रकार एकके लिये राष्ट्रीयता हिंसा है तो दूसरेके लिये वह अहिंसा है। और भी अनेक पहलुओंसे अहिंसा और राष्ट्रीयत्व का विवेचन किया।

पीछे अध्यक्ष महोदयका इसके समर्थनमें भाषण हुआ। श्रीमती विद्यावती देवीने मेरा परिचय देनेके साथ सुन्दर कविता पढ़ी थी। आपका नागपुरमें

अच्छा स्थान है। सुन्दर व्याख्यान देती हैं। आप परवार महिला हैं और बाबू पन्नालालजी डेवड़ियाकी सुयोग्य धर्मपत्नी हैं। ऐसे सुयोग्य दम्पतिसे नागपुर की परवार समाजकी शोभा है, परन्तु खेद है कि यहाँकी परवार समाज मूढ़तावश इनसे किनारासा काटे रहती है। लोग कहते हैं कि जैनसमाज सुयोग्य समाज है परन्तु इस समाजमें सुयोग्य राष्ट्रीय नेता क्यों नहीं उत्पन्न होते? इसका उत्तर सीधा है। नेता कुछ तो बनते हैं और कुछ बनाये जाते हैं। मूर्ख जैन समाजने नेताओंको बनानेकी अपेक्षा उन्हें कुचलने का ही काम किया है। फल यह हुआ कि कुछतो कुचले गये और कुछ छटककर भाग गये। अगर समाजका सहयोग मिलता, उसने नेताओंको आगे बढ़ानेकी पूरी कोशिश की होती तो इसमें संदेह नहीं कि जैनसमाजमें प्रथम श्रेणीके नेताओंकी कमी न होती। परन्तु यह कूपमंडूक समाज टर्राना और घर में ही हाथ पैर फैलाना जानती है। बाहरके विशाल जगतका इसे स्वप्न भी नहीं आता। नागपुरकी परवार समाज इस बातका नमूना है। ऐसे नमूने गाँव गाँव में भरे पड़े हैं।

श्रीमती वेणुबाई अध्यापिका कन्याशाला नागपुर और पन्नालालजी डेवड़िया तथा चवड़ेजीने प्रचार तथा आतिथ्यसत्कार आदिमें खूब सहयोग किया।

ता० १४-५-३४ को रामटेक आया। यहाँ पर नागपुरकी खंडेलवाल समाजकी तरफसे एक पक्का सभामंडप बन रहा है। वह बहुत दिनसे अधबना पड़ा है परन्तु आर्थिक मंदीके कारण उसे पूरा नहीं बनाया जाता। और अपने जातीय नामका मोह इतना है कि दूसरोंको बनानेके लिये भी आज्ञा नहीं दी जाती है। कुछ दिनोंमें छप्पर छपाई आदि न होनेसे वह गिर जायगा, तब शायद इन लोगोंका नाम अमर होजायगा नामका मोह भी क्या प्रबल होता है कि वह किसीभी चीजके नाशकी पर्वाह नहीं करता सिर्फ इसलिये कि कहीं दूसरेका नाम न होजाय। रामटेककी बन्दना करके १५-५-३४ को अमरावती आया।

अमरावती—मेरे पहुँचते ही मुख्य मुख्य व्यक्ति मिलने आये और चर्चा शुरू हुई। श्री० हीरालालजी काले शास्त्रके जानकार तथा पुराने विचारोंके व्यक्ति हैं। सर्वज्ञता पर आपने खूब बहस की। श्री० सिंघई पन्नालालजी भी आये। उनके घरपर भी तर्क वितर्क चला। इसी दिन शामको व्यायामशाला में मेरा व्याख्यान हुआ। ता० १६ को दिन भर भी शंकासमाधान चलता रहा। यही हाल ता० १७ के दिन भर रहा। शामको प्रताप चौकमें आमसभामें व्याख्यान हुआ। सेठ फतहचन्दजी सभापति थे। इन सब सभाओंमें मैंने अपने धार्मिक क्रान्तिके और समाजसुधारके विचारोंको खूब स्पष्टताके साथ प्रगट किया। लोग मेरे विचारोंको बड़ी दिलचस्पीके साथ सुनते थे। जो सहमत नहीं थे वे भी उनकी गम्भीरता और दृढ़ताका अनुभव करते थे।

यहाँ पर सिंघई नंदलालजीकी विधवा पुत्रीने भाई कुन्दीलालजीके साथ पुनर्विवाह किया था। हर्ष की बात है कि यहाँकी पंचायतने इस दम्पतिके धार्मिक अधिकार नहीं छीने हैं, परन्तु खेद है कि जातीय अधिकार छीन लिये हैं। एक दिन कुन्दीलालजी मेरा निमन्त्रण करने आये। मैंने स्वीकार कर लिया। शहर भरमें इसकी चर्चा भी हुई। बहुत से लोगोंकी यह मंशा थी कि मैं जाते समय कुन्दीलालजीके यहाँ भोजन करूँ, अभी न करूँ। परन्तु जातिभेद और सम्प्रदायभेदकी दीवालोंको तोड़नेका प्रयत्न करनेवालेसे यह आशा कैसेकी जासकती है? इसलिये मैंने कहा कि जब मैं कहीं ऐसा विचार नहीं करता तो यहाँ कैसे करूँगा?

मुझे विश्वास तो नहीं किन्तु कुछ शंका थी कि मेरे इस कार्यसे यहाँ की परवार समाज, सम्भव है, कलसे मेरा निमंत्रण न करे। परन्तु मेरी यह शंका व्यर्थ गई।

खानपानके इस भेदभावसे जैनसमाजही नहीं, सारा हिन्दूसमाज त्रस्त होगया है, और वह दिनपर

दिन क्षीण होता जारहा है। हमने धर्मका अर्थ कर लिया है चर्चाखानेके नियम। अब इस मिथ्यात्व का त्याग करना चाहिये। आज किसीको ऐसी बातोंसे जातिसे बन्द करनेका अर्थ है अपनी शक्ति का नाश करना और विरोधियोंकी शक्तिको बढ़ाना। धार्मिक दृष्टिसे विधवाविवाह ऐसाही है जैसा कि विधुरविवाह, इसलिये उसे पाप समझना मिथ्यात्व है। परन्तु मिथ्यात्वके उदयसे जो विधवाविवाहको अधर्म समझते हों उन्हें भी चाहिये कि इससे वे किसीको जातिसे बंद न करें। झूठ बोलना भी तो पाप है, और ऐसा पाप है कि जिसके विषयमें मतभेद या दलबन्दी नहीं है। परन्तु इस निर्विवाद पाप से लिप्त हुये कितने लोगोंको हम जातिसे बन्द करते हैं? तब एक ऐसे कामसे जिसके विषयमें समाजमें जबर्दस्त मतभेद है, किसीको जातिसे बन्द करना, अपने दुरभिमानका पोषण करने केलिये समाजके टुकड़े टुकड़े करके उसे मौतके मुँहमें ढकेलना है। अमरावती समाजने मेरे साथ जो सद्व्यवहार किया वह तो प्रशंसनीय ही है किन्तु भाई फुन्दीलाल को भी अपनाकर उन्हें स्थितिकरणका पालन करना चाहिये।

कई भाइयोंका कहना था कि यह विधवाविवाह आदर्श नहीं हुआ। मैं मानता हूँ, परन्तु इसकी जिम्मेदारी भी समाजपर है। अगर समाजमें यह रिवाज हो और विधवाकन्याओंके विवाहका आयोजन कुँवारी कन्याओं सरीखा किया जाय तो निष्कलङ्क और आदर्श विधवाविवाह ही होने लगें। इस प्रथाको अपनाये बिना समाजकी गुजर नहीं है। तब इसको अभीसे सुसंस्कृत क्यों न बनाना चाहिये?

ता० १८ के शामको मुझे मानपत्र देनेके लिये बाहुबलि व्यायामशालामें श्रीमान सेठ फतहचंद मांगीलालजीके सभापतित्वमें एक सभा हुई, जिसमें रतनलालजी काले, छगनलालजी मालते वकील, गुलाबचन्दजी वैद्य, ददूलालजी, पन्नालालजी गाँधी देवीदासजी महाजन, नत्थूलालजी सिंघईके भाषण हुए। एक प्रस्ताव द्वारा धर्मवीरकी मुझे उपाधि दीगई।

मैं ऐसी उपाधियाँ नहीं लेता और संकोचवश अगर लेना भी पड़े तो उनका उपयोग नहीं करता। पहिले भी सतना जैनसमाजकी तरफसे मुझे तर्करत्न की पदवी दीगई थी, परन्तु मैंने उसका उपयोग नहीं किया। फिरभी मौक़ेपर इस प्रकारकी भेंट मैं सिर्फ इसलिये लेलेता हूँ जिससे यह बात प्रगट होजाय कि मुझ सरीखे क्रान्तिकारीके लियेभी समाजमें अच्छा स्थान है और समाज क्रान्तिके स्वागतके लिये धीरे धीरे तैयारी कर रहा है। यहाँके जैन बन्धुओंने ११) जैनजगत्की सहायताके लिये दिये, और ११) श्रीयुत् पन्नालालजी तुलसीरामजी अमरावतीने दिये।

ता० १७ को मुक्तागिरि गया। गर्मीके दिनोंमें इस तीर्थकी शोभा नष्ट होजाती है। वर्षा और शरद् में यहाँ के प्रपात अवश्य ही दर्शनीय होते होंगे। लौटते समय रास्तेमें एलिचपुर मिला। यहाँ जबमैं दर्शनार्थ मंदिरमें गया तब यहाँके सेठ गोपालशाह हीरालालजी मिलगये। आप खंडेलवाल हैं। आप की दूकानपर बैठा, और भी दोचार सज्जन आगये। तीर्थंकरोंके अतिशयोंपर चर्चा चली, जिनको मैंने निःसार और भक्तिकल्प्य बतलाकर सर्वे देवका स्वरूप समझाया। दिगम्बर-श्वेताम्बर चर्चा चली। मैंने दोनोंही सम्प्रदायके साहित्यको विकृत बतलाया। ये खोजकी सामग्री हैं परन्तु प्रमाणभूत नहीं हैं, न महावीरकी शुद्ध वाणी हैं आदि। इसके बाद एक वृद्ध सेठजीने विधवाविवाहपर चर्चाकी, तब उनको विधवाविवाहकी धर्मानुकूलता समझायी। चर्चाके बाद आप लोगोंने व्याख्यानके लिये ठहरनेका अनुरोध किया परन्तु समय न होनेसे हम लोग न ठहर सके, और न भोजन करनेका अनुरोध पालन कर सके।

मेरा कुछ सामान अमरावतीमें और बाक़ी सामान नागपुरमें पड़ा था, इसलिये अमरावती और नागपुर होकर मैं ता० २१ को सुबह बैतूल आया।

बैतूल— यहाँ सेठ दीपचन्दजी गोठीके यहाँ ठहरा। आप यहाँके राष्ट्रीयनेता और उदार श्रीमान हैं। धर्म और समाजके विषयमें मैंने अपने स्वतन्त्र विचार उन्हें सुनाये जिनका उनने प्रसन्नतासे समर्थन किया। आपके बगीचेमें कलकत्तानिवासी श्रीयुत सरदारसिंहजी मुणोत भी ठहरे हुए थे। आपसे भी इसी तरहकी बातचीत हुई। शामको मेरा व्याख्यान हुआ। ये ही मुणोतजी अध्यक्ष थे। इसमें मैंने सर्व-धर्मसमभाव, धर्मकी वैज्ञानिक परीक्षा, अतिशयादिकी निरर्थकता, धर्मकी उपयोगिता, उसका समाजसे सम्बन्ध आदि बातोंका खुलासा किया। श्री० सेठ दीपचन्दजी गोठीका व्यवहार खूब नम्र और स्नेह-पूर्ण रहा। यहाँके खंडेलवाल भाई भी व्याख्यानमें आये थे। मेरे विचारोंको सुननेके बाद भी उनने मेरा निमन्त्रण किया था। चलते समय सेठ दीपचन्दजी गोठीने ११) जैनजगत्की सहायताके लिये दिये।

बैतूलमें दिगम्बर-श्वेताम्बरोंका एक ही मंदिर है जिसमें दोनोंकी मूर्तियाँ विराजमान हैं, और वहीं स्थानक है। इसप्रकार तीनों सम्प्रदायोंका यह व्यावहारिक एकीकरण बहुत सुन्दर और अनुकरणीय है। यहाँकी आबहवा बहुत ठंडी और स्वास्थ्यप्रद है।

इटारसी—२२-५-३४ को यहाँ आया। यह एक छोटासा नया शहर है। समाजमें कोई बड़ा नेता या श्रीमान यहाँ नहीं है। वैद्य सुन्दरलालजीसे ही यहाँ कुछ जीवन मालूम होता है। कुछ लोगोंसे चर्चा हुई। ता० २३ को गाँधी चौकमें मेरा व्याख्यान हुआ। मैंने अपने विचार सुनाये।

यहाँ मेरा प्रोग्राम पूरा होचुका था, परन्तु अभी कुछ समय बाकी था, इसलिये मैं घरकी तरफ चला गया। इस तरफ भी यथाशक्ति प्रचार किया।

दमोह—ता० २४ को यहाँ आया। पाँच दिन रहा। प्रतिदिन सुबह शाम शास्त्रसभा करता था। ता० २६ को गाँधी चौकमें आमसभा हुई। श्रीयुत प्रेमशंकरजी धगट एम. ए. एलएल. बी. अध्यक्ष थे। भाषणमें धर्म, समाज और राष्ट्रका एकीकरण करके मानवधर्मका रूप बताया गया था।

ता० २८ को सुबह जब मैं शास्त्र बाँच रहा था तो नये दीक्षितोंका प्रकरण निकला जिसमें उन्हें देव-ब्राह्मण कहा गया था। इसपर मैंने जातिपाँतिके ढकोसलोंका खण्डन करके विजातीयविवाहका समर्थन किया। ता० २७ के शामको शास्त्र बाँचते समय श्री० मूलचन्दजी मौवारोंने विधवाविवाह पर प्रश्न किया जिसके उत्तरमें मैंने बहुत देरतक सयुक्तिक विवेचन किया। ता० २८ को भी शामको आपने यही चर्चा उठाई, तब उस दिन भी मैंने इसका जोरदार समर्थन किया। इसके उत्तरमें आप लोगोंका अंतिम कथन यही था कि आपके कथनका खण्डन तो नहीं किया जासकता, परन्तु हमारे संस्कार ऐसे हैं कि हमें यह बात नहीं जँचती। मैंने कहा यह बात स्वाभाविक है परन्तु धीरे धीरे जँचेगी।

स्थितिपालक दलके एक प्रखर प्रतिनिधि भी मेरा शास्त्र सुनने आते थे। उनने एकदिन मुझे एकांतमें कहा कि आज तक मैं आपको हजारों गालियाँ देचुका हूँ, परन्तु आज आपका शास्त्र सुनकर मुझे बहुत प्रेम होता है। यदि आप सिर्फ विधवाविवाहका पक्ष छोड़दें तो मुझे बड़ी खुशी हो। इन बातोंको कहते हुए उनका हृदय गद्‌गद्‌हो गया था, जिससे मुझे उनसे सहानुभूति होगयीथी। परन्तु मैं पक्ष कैसे छोड़ सकता था? मैंने नम्र शब्दोंमें विधवाविवाहका पक्ष छोड़नेमें असमर्थता प्रगटकी साथही यह बातभी कही कि यदि आप निष्पक्षता और दीर्घ दृष्टिसे मेरी बातोंपर विचार करेंगे तो आप शीघ्रही इसकी उप-योगिता और धर्मानुकूलताको समझ सकेंगे।

यहाँपर भाई रघुवरप्रसादजी अच्छे उत्साही और सुधारक कार्यकर्ता हैं।

ता० ३०-५-३४ को मैं शाहपुर (सागर) आया। यहाँ आठ दिन रहा। प्रतिदिन यहाँ सुबह शाम शास्त्रसभा करताथा। एक दो दिन दुपहरको भी चर्चासभाएँ थीं। शास्त्र-सभामें जैनधर्मका मर्म पढ़ा जाता था। सर्वज्ञत्व, जैन ज्योतिष आदिपर

खूब चर्चा हुई थी। ता० २१-५-३४ को आमसभा की गई थी।

ता० ८-६-३४ को चलकर ९ को भेलसा आया। मैं रायसेन जानेके लिये भेलसा उतराथा, परन्तु दानवीर सेठ लक्ष्मीचन्द्रजी, पंडित राजमलजी तथा अन्य अनेक महानुभावोंके अनुरोधसे मैं दिनभर ठहरा। शामको धर्मशालाकी विशाल छतपर प्रोफेसर हीरालालजी अमरावतीकी अध्यक्षतामें मेरा व्याख्यान हुआ। यहाँभी मैंने सब विचार स्पष्टताके साथ कहे जिनका सभापतिने समर्थन किया।

दिनभर पं० राजमलजीके साथ खूब चर्चा हुई, जिस दृष्टिबिन्दुसे जैनधर्मपर मैं विचार करता हूँ उसीसे आपभी विचार करते हैं। यद्यपि कुछ बातों में मतभेद है, फिर भी विचारकी दिशा एक है। शाम को प्रोफेसर हीरालालजी के साथभी विविध वार्तालाप हुआ। उनका प्रश्न था कि वैज्ञानिक दृष्टिसे आप आत्माका अस्तित्व और कार्माण शरीर कैसे मानते हैं? लेखमालामें इसका उत्तर दिया गया है; उसीको मैंने यहां दुहराया। साहित्यचर्चामें हीरालाल जीने कहा कि ऐतिहासिक खोजकी सामग्री श्वेताम्बर साहित्यमें जैसी मिलती है, वैसी दिगम्बर साहित्यमें नहीं मिलती। दुःखकी बात यह है कि समाजके शिक्षितवर्गमें साम्प्रदायिक पक्षपात इतना अधिक है वे चाहे वैज्ञानिकके आसन पर बैठें, चाहे ऐतिहासिक के आसन पर, वे अपनी साम्प्रदायिक कट्टरताका त्याग नहीं कर सकते। प्रोफेसर हीरालालजीके स्वभावमें निष्पक्षता मालूम होती है।

सेठ लक्ष्मीचन्द्रजीने तथा यहाँकी जैनजनताने दूसरे दिन रुकनेका इतना तीव्र अनुरोध किया कि अगर मैं रुकनेकी स्थितिमें होता तो अवश्य रुकजाता परन्तु न रुक पाया। यहांसे एकदिनके लिये रायसेन होता हुआ ता० १२-६-३४ को बम्बई आगया।

उपसंहार।

इस प्रवासमें जैनजगतको १७९।।।) की आर्थिक सहायता प्राप्त हुई और मुझे बहुतसे अनुभव हुए। गर्मी का समय प्रवासके लिये ठीक नहीं है। शिक्षितवर्ग इस समय बाहर चला जाता है। उस्मानाबादका जाना तो इसीलिये रोकदेना पड़ा। समयाभाव कहिये या प्रवासकी थकावट कहिये, गोटेगाँव भोपाल और प्रतापगढ़ मैं जा ही न सका। इसलिये प्रवास दूसरी ऋतुमें हो तो अच्छा। श्वेताम्बर पर्युषणमें मुझे आठ दिनका अवकाश मिलता है। दिवालीके समयभी दस दिनका अवकाश मिलता है, और मार्चमें भी पंद्रह दिनका अवकाश मिलता है। इन दिनों जहाँके लोग मेरा उपयोग करना चाहें वे मुझसे पत्रव्यवहार करें। अगर कोई विशेष बाधा न होगी तो मैं इन दिनोंमें प्रचारार्थ आनेकी कोशिश करूँगा।

वेषपूजाका प्रचार समाजमें कितना है, इसका ज्ञान तो मुझे था परन्तु इसबार कुछ अनुभवात्मक वृद्धि और हुई। धरणगाँवमें स्थानकवासी सज्जनोंने पूछा कि व्याख्याता मुनि हैं या श्रावक? जब उन्हें मालूम हुआ कि श्रावक, तब वे व्याख्यानमें नहीं आये। श्वेताम्बर समाजमें अभी भी हजारों आदमी ऐसे हैं जो इस बातकी कल्पना भी नहीं कर सकते कि श्रावक भी धर्मोपदेश दे सकता है। इस विषय में दिगम्बर समाज बहुत आगे बढ़ा है। यहाँपर प्रत्येक श्रावक अपनेको स्वाध्यायका अधिकारी समझता है और जिसमें थोड़ी बहुत योग्यता होती है वह धर्मोपदेश करता है। हरएक गाँवमें ऐसे धर्मोपदेष्टा श्रावक मिलते हैं। श्वेताम्बर समाजको इसका अनुकरण करना चाहिये।

वेषपूजाका सिर्फ यही रूप नहीं है, किन्तु अमुकवेषके कारण किसीका आदर अनादर करनाभी वेषपूजा है। जब हम किसी व्यक्तिको नहीं पहिचानते तब वेषको देखकर उसके साथ व्यवहार करनेका निर्णय करते हैं, किन्तु परिचित व्यक्तियोंके विषयमें वेषपर ध्यान देना मिथ्यात्व है। यह मिथ्यात्व सुशिक्षित सुधारकों तक में पाया जाता है।

एकतो लोगोंकी आर्थिक अवस्था गिरी हुई है, परन्तु जितनी गिरी हुई है उससे अधिक अनुदारता

है और उससे भी अधिक मूढ़ता है। आजभी ऐसे लोग हैं जो अनावश्यक या कम आवश्यक कार्योंमें बहुत कुछ खर्च करते हैं या करना चाहते हैं, किन्तु आवश्यक और अधिक आवश्यकका विचार नहीं करते।

सुधारक विद्वानोंमें या लोगोंमें यह एक दुर्गुण है कि वे अपनी आर्थिक स्थितिके अनुसार भी उदार नहीं होते। स्थितिपालक लोग अविवेकसे ही सही, किन्तु खर्च करते हैं जबकि समर्थ होनेपर भीसुधारक लोग दूसरोंका मुँह ताकते हैं। मुफ्तमें फ़ायदा उठाने की वृत्तिका त्याग होना चाहिये।

बहुतसे लोग जैनजगत्के ग्राहक बने और उनने तुरन्त पैसे भी देदिये। परन्तु जिननेवी० पी० भेजने को कहा था उनमेंसे अधिकांशने वी० पी० लौटादी। इस प्रकार दूसरोंको परेशान करना और स्वयं विश्वासघात करना तथा पत्रको नुकसान पहुँचाना सुधारकता नहीं, सभ्यताको लजाना है। जिनको ग्राहक बनना हो उन्हें चाहिये कि नक़द रुपया देदें, नहीं तो वचनका पालन करें। वी० पी० मँगानेकी अपेक्षा मनीआर्डरसे रुपये भेजदें। नहीं तो, ग्राहक बननेसे साफ मना करदें। परन्तु इस प्रकार विश्वासघात न करें। प्रवासमें मैंने किसीपर ग्राहक बननेके लिये जोर नहीं डाला क्योंकि मैं समझता हूँ कि ऐसे पत्रका ग्राहक बनना विवेकियोंका ऐसा कर्त्तव्य है जिसके लिये प्रेरणाकी आवश्यकता नहीं है। मैं आशा करता हूँ कि जिन लोगोंके यहाँ से वी० पी० वापिस गई हैं वे मनीआर्डरसे रुपये भेजदेंगे।

प्रवासमें इस बातकी आवश्यकता जगह जगह मालूम हुई कि एक सुशिक्षित सहायक और होता।

और भी अनुभव हुए हैं परन्तु जो प्रकाशित करने योग्य थे, वे प्रकाशित किये गये हैं। जितनी होना चाहिये उतनी तो नहीं, किन्तु जितनी आशा की थी उतनी सफलता अवश्य मिली।
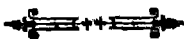
साम्प्रदायिक पक्षपात।

धन, विद्या, शक्ति आदिका जैसा अहंकार होता है, उससे अधिक भयंकर अहंकार सम्प्रदायका है। इसके अभिमानसे मनुष्यमें भयंकर पक्षपात पैदा होता है। ऐसा आदमी दुनियाँ भरकी निंदा करते हुए भी और अपने सम्प्रदायके गीत गाते हुए भी यही समझता है कि मैं सच बात कहता हूँ। अगर कोई निःपक्ष व्यक्ति अपने परायेका भेद छोड़कर निःपक्ष आलोचना करता है तो साम्प्रदायिक पक्षपाती इस बातको सहन न करके उसकी मनमानी निंदा करने लगता है। उसे औचित्य अनौचित्य का भी ख़याल नहीं होता।

अभी जब मैं प्रवासमें था तब मेरे विरोधमें तीन लेख प्रकाशित हुए। एक जैनमित्रमें, जिसका शीर्षक है 'पं० दरबारीलालजी'। दो जैनदर्शनमें जिनके शीर्षक हैं 'काला पक्षपात' और 'पण्डित दरबारीलालका हृदय'। तीनों लेखोंमें एक व्यक्तिगत आक्षेप किया गया है कि मैं एक श्वेताम्बर विद्यालयमें अध्यापक हूँ, इसलिये श्वेताम्बरोंका पक्षपात करता हूँ। मेरे विरोधी मित्र जब युक्तियोंसे पार न पा सके तब इस प्रकारका क्षुद्रतापूर्ण और निराधार आक्षेप किया।

जिस आदमीने एकदिन अपने मतकी रक्षाके लिये इन्दौरकी नौकरीको ठुकरा दिया था, वह आज अपने मत के विरुद्ध किसीकी वकालत करे, यह कहना घोर विद्वेषके सिवाय और क्या कहा जा सकता है?

अगर मुझे श्वेताम्बरोंकी वकालत करना होती तो मैं ऐसी लेखमाला तथा लेख क्यों लिखता जिनमें श्वेताम्बर मान्यताओंका भी वैसा ही विरोध है जैसा दिगम्बर मान्यताओंका। सर्वज्ञकी वर्तमान परिभाषाका न मानना और पार्श्वनाथके पहिलेके इतिहासको अँधेरेमें मानना जैसा दिगम्बरोंके विरुद्ध है, वैसाही श्वेताम्बरों के। पंच कल्याणकोंका विरोध, देवागमनका विरोध आदिभी दिगम्बरोंकी तरह श्वेताम्बरोंके प्रतिकूल हैं। इतनाही नहीं, लेकिन बहुतसी ऐसी बातोंका विरोध भी किया है जो सिर्फ़ श्वेताम्बरोंके ही विरुद्ध हैं। जैसे गर्भापहरण, मूर्त्तियोंका श्रृंगार करना आदि। श्वेताम्बर शास्त्रोंमें जिन्हें निन्हव (धर्मलोपी) कहा गया है, कहीं कहीं मैंने उनका पक्ष लिया। है कहीं कहीं श्वेताम्बर ग्रन्थोंकी बातको न मानकर

दिगम्बर ग्रन्थोंकी बात मानी है जैसे ज्ञान दर्शनकी परिभाषामें मैंने श्रीधवलका मत मान्य किया है। क्या इसी का नाम श्वेताम्बरोंकी वकालत है? मेरे विरोधी मित्र जिस चालाकीसे झूठ बोलरहे हैं, वह अत्यन्त निंदनीय है। वे अपने पाठकोंके साम्हने इस बातको साफ़ उड़ा जाते हैं कि मैंने बहुत जगह श्वेताम्बरोंका भी विरोध किया है और कहीं दिगम्बरोंका भी मंडन। मेरे बहुतसे विरोधी हैं जिनने मुझसे कहा है कि हम आपके विचारोंसे सहमत नहीं हैं परन्तु आपको पक्षपाती नहीं मानते।

श्वेताम्बर साहित्यमें नहीं, किन्तु उनके आचाराङ्गादि सूत्र साहित्यमें प्राचीनता है और उसमें प्राचीन सूत्रोंकी छाया दिखाई देती है। ऐतिहासिक दृष्टिसे उनमें खोजकी सामग्री भी अधिक है। इस तथ्यको एक अन्धश्रद्धालु नहीं समझ सकता, किन्तु जो निःपक्ष विद्वान् हैं वे समझ सकते हैं। इस विषयके यूरोपीय और भारतीय विद्वानों का यही मत है। उस दिन भेलसामें प्रोफ़ेसर हीरालालजी ने भी इस बातको स्वीकार किया था। मैं अनेक दृष्टियों से इस बातका खुलासा कर चुका हूँ, और दिगम्बर विद्वानोंके साम्हने ऐसी समस्याएँ रख चुका हूँ जिनका उनने आजतक उत्तर नहीं दिया।

इन तीनों लेखोंमें जितने आक्षेप किये गये हैं, उनमें से विचारणीय सभी आक्षेपोंका उत्तर दिया जा चुका है परन्तु मेरे विरोधी मित्र उसको छुपा जाते हैं क्योंकि उस उत्तरकी आलोचना करनेकी उनमें ताक़त नहीं है। ख़ैर, यहाँ मैं संक्षेपमें आक्षेपोंका समाधान किये देता हूँ।

आक्षेप—खुद श्वेताम्बरी सूत्रग्रंथ अपना रचना समय विक्रम सं० ५१० बताते हैं।

समाधान—वह रचना समय नहीं किन्तु पुस्तकमें लिखनेका समय है। 'लिहिओ' इस शब्दका अर्थ 'लिखा गया' है न कि बनाया गया। सिद्धसेन दिवाकर इससे कई शताब्दी पहिले होगये हैं और उनने अपने सम्मति प्रकरणमें इन आगमोंके उद्धरण दिये हैं। अगर ये सं० ५१०की रचना होते तो उससे पहिले होनेवाले सिद्धसेन दिवाकरके ग्रन्थमें इनके उद्धरण कहाँसे मिलते?

आक्षेप—तत्वार्थभाष्य संदिग्ध होने पर भी आप उसे श्वेताम्बरीय क्यों कहते हैं?

समाधान—सन्देहमें दोनों कोटियाँ हैं। जिसको जो कोटि प्रबल मालूम होती है वह उसीका समर्थक होजाता है। उमास्वाति एक निःपक्ष विद्वान थे। उन्हें दोनों सम्प्रदायों से कुछ मतलब नहीं था। उनका भाष्य भी निःपक्ष है। मूल तत्वार्थसूत्रकी कई बातें दोनों सम्प्रदायके विरुद्ध जाती हैं। इसीप्रकार भाष्यकी भी। इसलिये जबतक कोई प्रबल प्रमाण न मिले तब तक वह उमास्वाति रचित ही माना जाना चाहिये।

आक्षेप—मौखिकरूपमें तो दिगम्बरीय ग्रंथ भी भगवान् महावीर स्वामीके समयके हैं।

समाधान—किसी रचनाके भावका पुराना होना एक बात है और शब्द-रचनाका पुराना होना दूसरी बात। ऐसा एक भी दिगम्बर ग्रंथ नहीं है, जिसकी शब्द-रचना पुरानी हो। न दिगम्बर शास्त्रही इस बातको स्वीकार करते हैं। श्वेताम्बर शास्त्रोंकी रचनाको विक्रम सं० ५१० में मानना दिगम्बर ग्रन्थोंके भी प्रतिकूल है। दिगम्बर शास्त्रोंके अनुसारभी श्वेताम्बरोंने अपने ग्रन्थ तभी बनाये जब श्वेताम्बर संघ उत्पन्न हुआ था। इसलिये दिगम्बरों के अनुसार भी श्वेताम्बर साहित्य विक्रम सं० १३६ का होना चाहिये (देखो भावसंग्रह)। सं० ५१० में कहना दिगम्बर ग्रन्थोंकी बातको झूठ सिद्ध करना है।

आक्षेप—१९ वें तीर्थंकरको क्या आपने देखा है कि उन्हें आप मल्लिकुमारी कहते हैं? आत्मानन्दजी उन्हें मल्लिनाथही लिखते हैं।

समाधान—श्वेताम्बर लोग मल्लिनाथ कहते हैं, इससे उनका स्त्रीत्व नहीं छिनता। श्वेताम्बर लोग पूज्यतामें आजभी पुरुषके समान स्त्रीको बोलते हैं। जैसे 'महासतीजी महाराज विराज रहे हैं', यह वाक्य आर्यिकाके लिये कहा जाता है। यह समयका कुप्रभाव है। आजके श्वेताम्बर लोग स्त्रीवाची शब्दोंसे किसी पूज्य स्त्रीका नामभी नहीं ले पाते; किन्तु श्वेताम्बरसाहित्यमें १९ वें तीर्थंकरके पद पर मल्लिदेवी थी, यह बिलकुल निर्विवाद है। मूलसे मूल आगम भी इसका समर्थक है। 'णायधम्मकहा' में मल्लिदेवीका विस्तृत जीवन-चरित है।

रही मेरी बात, सो मैं तो भगवान् पार्श्वनाथके पहिले के २२ तीर्थंकरोंको न तो स्त्री मानता हूँ, न पुरुष, न नपुंसक। मैं तो उन्हें अभी मानता ही नहीं। मल्लिदेवीका उल्लेख मैं धार्मिक दृष्टिसे करता हूँ। यह इतिहास नहीं, प्रथमानुयोग है। प्रथमानुयोगका काम किसी धार्मिक-तत्त्व का कथारूपमें चित्रण करना है। स्त्री-पुरुषकी समानताका

सत्य धार्मिकतत्त्व है, जिसका मैं पुजारी हूँ। इसलिये मैं भगवती मल्लिदेवीका उल्लेख करता हूँ। वे हुई हों, चाहे न हुई हों, परन्तु उनका उदाहरण स्त्रियोंके लिये आदर्श है। वह समताका प्रचारक है। इसलिये मुझे मान्य है।

मद्यमांसके विषयमें मैंने ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीको उत्तर देते हुए बारहवें अंकमें बहुत लिखा है। इसलिये यहाँ पिष्टपेषण नहीं किया जाता।

"पंडित दरबारीलालका हृदय" शीर्षक लेखमें भी इसीप्रकार के आक्षेप हैं। उनका उत्तर ऊपर दिया जा चुका है। मांसभक्षण आदिके विषयमें जो उनने लिखा है उसके विषयमें मेरा खुलासा वही है, जो मैंने १२ वें अंकमें दिया है। जब इसका उत्तर दिया जायगा तब उसकी आलोचना भी की जायगी। प्रथमानुयोगका क्या लक्ष्य है, इसका विस्तृत विवेचन भी किया जा चुका है। किसी घटनाका उल्लेख करके उसका विरोध न करना, विधान ही है। दूसरी बात यह है कि उससे उस समयके समाजके जीवन का पता लगता है।

जैनजगत् दिगम्बर जैनसमाजका दूध पीकर क्या करता है, यह उसके पाठक और सहायक अच्छी तरहसे जानते हैं। ऐसे कायरतापूर्ण आक्षेपोंपर ध्यान देनेकी ज़रूरत नहीं है।

महावीर जीवन आदिमें मैंने जो कुछ लिखा है, वह वहीं पर सयुक्तिक सिद्ध किया है। जब तक उन युक्तियों का खण्डन नहीं किया जाता तब तक उसपर कुछ लिखना पिष्टपेषण ही है।

'काला पक्षपात' शीर्षक लेखका उत्तरभी उपर्युक्त वक्तव्यमें तथा १२ वें अंकमें आ चुका है, जहाँ पूर्वजोंका इतिहास सप्रमाण उपस्थित किया गया है।

श्वेताम्बर साहित्यमें से मांसविधान शीर्षक प्रकरण अगर निकाल बाहर किये जावें तो क्या आक्षेप बन्द हो जायगा? दूसरे तो यही कहेंगे कि जैनशास्त्रोंमें मांस-विधान था परन्तु उनने वह निकाल दिया।

अगर आप मांसप्रचारके विरोधी हैं तो इसका उपाय यह है कि आप यह सिद्ध करें कि शास्त्रोंमें मांसका विधान नहीं है। जैसे हमलोग हिन्दू शास्त्रोंमें मांस-भक्षण और बलिकर्मका निषेध ढूँढते हैं जिससे वे लोग मांसभक्षणसे विरत हों और बलिदान न करें; परन्तु जो दूसरोंके शास्त्रों में मांस-भक्षणका विधान ज़बर्दस्ती सिद्ध करना चाहता है, उसे मांसप्रचारक न कहें तो क्या कहें? एक आदमी कहता है कि भाई मांस-भक्षण बुरी चीज़ है, हमारे शास्त्रों में उसकी निंदा है। परन्तु उसके उत्तरमें कोई कहे कि-नहीं जी! तुम यह क्या कहते हो? तुम्हारे भगवान् मांस खाते थे, तुम्हारे शास्त्रोंमें मांसका विधान है। घोरसे घोर मांसप्रचारक और इससे ज्यादः क्या कह सकता है?

श्वेताम्बर शास्त्रोंमें मांस-विधान है या नहीं, इस चर्चा में पड़नेका मेरे पास समय नहीं है। मैं तो निंदात्मक दृष्टिसे उसके निष्कर्षपर कुछ भी विचार न करते हुए साम्प्रदायिक द्वेष बढ़ानेको बुरा समझता हूँ। इसीलिये मैंने दो शब्द लिखे थे।

पाँचपति आदिकी बातों पर मैंने ऐतिहासिक दृष्टिसे और धार्मिक दृष्टिसे सयुक्तिक विवेचन किया है। उसका आप खंडन करें, तो मैं उसपर फिर विचार करूँ? किसी बातको गंदा, अनुचित, सिद्धान्तविरुद्ध, कहकर छुट्टी पा जानेसे छुट्टी मिल सकती है; विजय नहीं मिल सकती। इसलिये आप प्रथमानुयोगसम्बन्धी मेरा विवेचन और प्रथमानुयोगके वर्णनमें सत्यासत्यके निर्णयकी कसौटी क्या है, इसपर विचार करें, फिर इसका खंडन करें। मेरे वक्तव्य को छुपा जाना, जिसका मैं उत्तर दे चुका हूँ उसीको फिर पीसना आदिसे समयकी बर्बादी न करें।

मेरे साम्हने किसीको अपनी तैयारी बतानेकी कोई ज़रूरत नहीं है। जो तैयार है, वह मैदानमें आकर अपनी शक्ति आज़मावे। मैं किस विषयपर कितना लिखना चाहता हूँ इसकी चिन्ता न करके मैंने प्रतिज्ञारूपमें ही जो कुछ लिखा है उसका खण्डन करना चाहिये। पीछे मालूम हो जायगा कि मैंने किस बल पर क्या लिखा है?

दम्भी मनुजों से—

जीवन है कितना जो चलते हो ऐंठ ऐंठ,
खलते हो रात दिन विश्वके दृगन में।
दृष्टि नीची डालते न, पलकें सम्हालते न,
ऊँची ग्रीवा करके निहारते गगन में॥
हाथों को हिलाते जाते नासा सकुचाते जाते,
मौनालम्बी होके जाते "प्रेम" हो मगनमें।
झुकता नहीं है माथ, कोई को तुम्हारा भ्रात,
पाओ तब चैन कैसे मोक्षकी लगनमें॥

—ब्रह्मचारी प्रेमसागर।

विरोधी मित्रोंसे ।

(२०)

आक्षेप (६१)—देवानन्दाके विषयमें आपकी सभी कल्पनाएँ मिथ्या हैं। एक पुत्रके रहने पर दूसरेकी आवश्यकता ही क्या थी? देवानंदाके स्तनोंसे दूध झरा तो गौतमको कैसे मालूम हुआ? क्या उसके कपड़े भींग गये थे? या दूध ज़मीन पर गिर पड़ा था? अथवा क्या दूध पिलानेसे कोई किसीका बच्चा होसकता है? श्वेताम्बर लोग तो इसे निश्चयात्मक मानते हैं। वे आपसरीखी सम्भावनायें नहीं करते। दरअसल जब यह कथाही मनघडंत है तब इसकी उत्पत्ति बैठानेकी घटनामें तत्त्व कहाँसे आसकता है?

समाधान—महावीर ८२ दिनतक ब्राह्मणीके गर्भमें रहे, यह बात मिथ्या है—इसे मैंने स्वीकार ही किया है। परन्तु मैंने यह भी सिद्ध किया था कि इस घटनासे भगवान् महावीरका महत्त्व नहीं बढ़ता, इसलिये इसे भक्तिकल्प्य नहीं कह सकते। तब किसी घटनाका यह रूपान्तर होना चाहिये। सीपमें चाँदीका ज्ञान होना भ्रम है। परन्तु वहाँ यदि सीप न मानी जाय तो वह भ्रम कैसे पैदा होगा? इसी प्रकार गर्भापहरणकी कल्पनाका बीज भी कुछ होना चाहिये। यदि मेरी सम्भावनाएँ ठीक नहीं हैं तो आप अपनी सम्भावना बताइये। अथवा यह बताइये कि किस स्वार्थसे प्रेरित होकर श्वेताम्बरोंने यह कल्पनाकी? ज्ञानमें जो विपरीतता हुई उसका कुछ कारण तो अवश्य बताना चाहिये।

मैंने जो सम्भावनाएँ की हैं, उनके विषयमें मेरा कोई एकान्त-पक्ष नहीं है। वे तो मैंने नमूने पेश किये हैं। ये या ऐसी कोई सम्भावना इसका मूल अवश्य होना चाहिये।

आक्षेपकने मेरी सम्भावनाओंमें जो दोष बताये हैं वे भी ठीक नहीं हैं। उत्तराधिकारीके लियेही दूसरोंके पुत्र नहीं चुराये जाते किन्तु सपत्नीके पुत्रवती होनेपर अपने को पुत्रवती बतलानेके लिये भी ऐसी घटनाएँ होती हैं।

स्तनोंसे दूध झरनेकी बातभी असंगत नहीं है, न उसके ज्ञानके लिये अवधिज्ञानकी ज़रूरत है। भींगा हुआ अंचल साधारण आँखें भी देख सकती हैं। पुराने समयमें स्त्रियाँ आजकलकी तरह पर्दानशीन नहीं होती थीं कि उनका भींगा अंचल न देखा जा सके।

धाय, माता नहीं होती फिरभी उसको धायमाँ कहते हैं। धायमाँ में माताका भ्रम होजाना असंगत नहीं है।

जिस मनुष्यको भ्रम होता है और वह भ्रम जबतक रहता है तबतक वह स्वयं यह नहीं जानता कि मुझे भ्रम हुआ है और इस भ्रमका कारण यह है। इसी प्रकार श्वेताम्बरोंको तो ब्राह्मणीके गर्भमें वास करनेका भ्रम हुआ था इसलिये वे कैसे उस भ्रमको समझते और उसके कारणकी खोज करते?

आक्षेप (६२)—भगवान्के जन्मसे तीन ज्ञान थे, इन्द्रने बड़े बड़े घड़ोंसे अभिषेक कराया, भगवान्को पाठशालामें नहीं जाना पड़ा—इनमें भक्तिकल्प्यता क्या है? आप स्वयं भगवान्को जन्मसे बुद्धिमान् स्वीकार करते हैं। आजकल भी बच्चोंको जन्मसमय स्नान कराया जाता है। बड़े बड़े घड़ोंसे कराया गया तो भगवान भी जन्मसे बलवान थे। जन्मसे अवधिज्ञान अन्यत्र भी होता है। उनको पाठशालामें जानेकी ज़रूरत क्या थी?

समाधान—अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञानके विषयमें जो जैनशास्त्रोंमें लिखा गया है उसकी आलोचना चौथे और पाँचवें अध्यायमें की गई है। इसलिये यहाँ उसका उल्लेख नहीं किया जाता। किसी महात्मा पुरुषको जन्मसे ही भगवान् मान लेना भक्तोंकी ही कल्पना है। अन्यथा महावीर भी जन्मसे उतने ही ज्ञानी थे, जितने अन्य बच्चे होते हैं।

पहिले तो इन्द्रादि ही असिद्ध हैं। फिर उनका मध्यलोक में आना और भी अधिक असिद्ध है। इनके आगमन आदिका न तो कोई प्रमाण है, और न वह संभव ही है। आठ आठ योजनके घड़ोंकी कल्पना और उनसे एक छोटे से बच्चेका अभिषेक, वह भी उस जगह जहाँ कि मनुष्य जीवित ही नहीं रह सकता, भक्तिकल्प्य नहीं तो क्या है? महावीर पाठशालामें गये या नहीं गये, इस बातका प्रश्न नहीं है। प्रश्न यह है कि तीर्थंकर बननेवाला मनुष्य पाठशालामें जाता है या नहीं? पाठशालामें जानेसे उसमें तीर्थंकर बननेकी योग्यता न रही, यह नहीं कहा जा सकता। मैंने महावीरको जन्मसे बुद्धिमान माना है न कि विद्वान्। बुद्धि मतिज्ञान है और विद्या श्रुतज्ञान। विद्याका सम्बन्ध परोपदेशसे है। यह हो सकता है कि कोई मनुष्य पाठशालामें न जावे। परन्तु तीर्थंकरोंको बाल्यावस्थामें

पाठशालामें न जाना चाहिये, यह भक्तिकल्प्य नियम अनुचित है। महावीर अगर पाठशालामें न गये होते तो श्वेताम्बर लोग इस घटनाकी कल्पना क्यों करते? दिगम्बरों की तरह श्वेताम्बर भी महावीरके व्यक्तित्वको असाधारण से असाधारण सिद्ध करना चाहते हैं। इसलिये महावीर को साधारण बनानेवाली घटनाकी कल्पना वे नहीं कर सकते। उनने तो इन्द्र वगैरहको बुलाकर व्यक्तित्वको बढ़ानेकी कल्पना की है जो कि भक्तिकल्प्य है।

आक्षेप (६३)—भगवान् महावीरने अगर साँपको उठाकर फेंक दिया तो बड़ी निर्दयताकी। भगवान ऐसी निर्दयता नहीं कर सकते। और बालकोंकी तरह वे भाग जाते तो क्या बुराई थी? साँप सब जगह थोड़े ही था? वास्तवमें वह देव ही होना चाहिये जिससे वह सब जगह फैल गया और भगवान् महावीरको उसके सिरपर पैर रख कर उतरना पड़ा।

समाधान—महावीर बालक थे, वे महाव्रती मुनि नहीं थे। इसलिये एक क्रूर जन्तुको देखकर, इतनाही नहीं किन्तु उसके डरसे बालकोंको भागते देखकर, बालकोंको धैर्य बँधानेके लिये उनका सर्प पर आक्रमण करना स्वाभाविक और वीरतापूर्ण था। सर्पने सब जगह नहीं रोक रक्खी थी। अगर रोकी होती तो और बालक भाग ही नहीं सकते थे। देवोंका आना असंभव है, यह बात मैं पहिले भी कह चुका हूं। इतने पर भी यदि महावीरको क्रूर कहा जाय तो वह क्रूरता सिर्फ़ पूँछ पकड़नेमें ही नहीं है किन्तु सिर पर पैर रखनेमें भी है। सर्पका सिर कुछ हाथीका सिर नहीं था कि उसपर आसन जमाकर बैठा जाय। सर्पके सिर पर खड़ा होनेसे भी बेचारे सर्पका सिर कुचल जायगा। और बालकोंकी तरह वे भागते कैसे? कायर होते तो भागते।

जब देवोंके आनेका वर्णन ही भक्तिकल्प्य है, तब स्वर्ग में इन्द्रादि द्वारा गुणगान आदि तो भक्तिकल्प्य है ही। महावीरकी स्थिति राजाओं सरीखी नहीं थी कि कभी उसके सेवक रहें और कभी न रहें। महावीर तो जीवनभर उनके लिये पूज्य थे। फिर क्या बात है कि वे देव वैभौके भक्ति दिखाया करतेथे और मौकेपर दूरसे तमाशा देखा करतेथे? महावीर सबकुछ सह सकते थे, इसका यह अर्थ नहीं है कि उनपर आयी हुई विपत्तियोंमें वे लोग तमाशा देखते रहें। इससे उनका यश बढ़ा, इसीसे देव छुट्टी नहीं पाजाते। सीताको चुरानेसे सीता जगत्प्रसिद्ध हुई, इसीलिये रावण कुछ निरपराध नहीं हो जाता।

जैसे दूसरे सम्प्रदायमें इन्द्रादि देव इष्टदेवकी पूजा करनेको बुलाये गये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी। इन्द्रादिके आगमनका विशेष प्रमाण दोनोंके पास नहीं है, इसलिये इस विषयमें सभी एकही श्रेणीमें हैं।

आक्षेप (६४)—जगत्का उद्धार करनेके लिये महावीरने दीक्षा नहीं ली किन्तु आत्मोद्धार करनेके लिये। अनेक केवलियोंने जगद्धार नहीं किया, फिर भी दीक्षा ली थी।

समाधान—इस आक्षेपसे मालूम होता है कि आक्षेपकको लेखमालाकी प्रत्येक बातका खण्डन करना है, भले ही वह निर्विवाद भी हो। भगवान् महावीरकी जगदुद्धारकताको मैंने महत्त्व दिया, यह भक्त लोगोंकी दृष्टिमें भी कोई पाप नहीं है। मैं यह तो नहीं कहता कि वे आत्मोद्धारक नहीं थे। जगदुद्धारकताको मैंने जो महत्त्व दिया उसका कारण यह है कि भगवान् महावीर साधारण केवली नहीं थे, किन्तु तीर्थंकर थे। वे तीर्थकी स्थापना करना चाहतेथे, इसलिये तीर्थ रचनाकी आवश्यकता है, यह बात उनके ध्यानमें होना ही चाहिये।

आक्षेप (६५)—महावीरके विवाहकी बात पर आप उपेक्षा क्यों करते हैं? युक्तिसे कुछ तो सिद्ध कीजिये। अगर कुछ निर्णय नहीं हो सकता तो आदर्शकी दृष्टिसे बाल-ब्रह्मचारी मानिये।

समाधान—यह घटना साम्प्रदायिकताके ऊपर निर्भर नहीं है, सिर्फ़ इतनी ही उपेक्षाकी गई है। अन्यथा यह बात सिद्ध ही है कि महावीरका विवाह हुआ था और उनके पुत्री हुई थी। जमालिके साथ उसका विवाह हुआ था। अगर यह घटना न मानी जाय तो जमालिने भगवान् महावीरके साथ जो विद्रोह किया था, वह सारा वर्णन निर्मूल हो जायगा। जमालिके विद्रोह वगैरहसे भगवान् महावीरका कुछ महत्त्व नहीं बढ़ता, जिससे यह भक्तिकल्प्य कहा जाय। जब भक्तिकल्प्य नहीं है तब उसका उल्लेख ऐतिहासिकताकी रक्षा करनेके लिये ही हो सकता है। जमालि तथा सुदर्शनाके व्यवहारसे भक्तोंकी दृष्टिमें भगवान् महावीरका कुछ महत्त्व घटता है, इसलिये उसको उड़ा देना और उसके लिये उन्हें बाल-ब्रह्मचारी बना देना भक्तिकल्प्य है। विवाहके सिद्ध होजाने पर आदर्श अनादर्शका प्रश्न ही नहीं उठता।

ब्रह्मचारीजीकी विचित्र स्थिति और अजीब निर्णय!

(लेखक—श्रीमान पं० जुगलकिशोरजी मुख़्तार)

ता० ३ मई सन् १९३४ के जैनमित्रमें ब्र० शीतलप्रसादजीने मेरी हालमें लिखी हुई 'भगवान् महावीर और उनका समय' नामक पुस्तककी समालोचना प्रकाशित की है। इस समालोचनामें पुस्तक को "बहुत उपयोगी" बतलाते हुए और उसकी दूसरी किसी भी बातपर आपत्ति न करते हुए सिर्फ़ एक बातपर आपत्ति कीगई है, और वह इस बात पर कि मैंने बौद्धोंके 'सामगामसुत्त' में वर्णित महावीरके उस मृत्यु समाचारको, जो चुन्दद्वारा बुद्धको पहुँचाया गया था, असत्य क्यों मान लिया और क्यों बुद्धके शरीरत्यागको महावीरके निर्वाणसे पहलेका अनुमान कर लिया। पुस्तकको पढ़कर कोई भी सहृदय पाठक सहजहीमें यह समझ सकता है कि न तो मेरी उक्त मान्यता निराधार थी और न अनुमान करना निर्हेतुक। मैंने वस्तुस्थितिकी सूचक जिन घटनाओं एवं प्रमाणोंके संयुक्त आधारपर ऐसा किया उनका उल्लेख पुस्तकमें पृष्ठ ५१ से ५३ तक किया गया है। यहाँ पर पाठकोंकी जानकारीके लिये उनका सार प्रायः पुस्तकके ही शब्दोंमें दिया जाता है और वह इस प्रकार है:—

(१) खुद बौद्धग्रन्थोंमें बुद्धनिर्वाण, अजातशत्रु (कूणिक) के राज्यके आठवें वर्ष बतलाया है।

(२) बौद्धोंके दीघनिकायमें, तत्कालीन तीर्थंकरोंकी मुलाक़ातके अवसरपर, अजातशत्रुके मंत्रीके मुखसे निगंठनातपुत्त (महावीर) का जो परिचय दिलाया है उसमें महावीरका एक विशेषण 'अद्धगतो वयो' (अर्द्धगतवयाः) भी दिया है, जिससे यह स्पष्ट जाना जाता है कि इस परिचयके समय महावीर अधेड़ उम्रके थे, अर्थात् उनकी अवस्था ५० वर्षके लगभग थी। और इसलिये वे अधिक नहीं तो अजातशत्रुके राज्यके २२वें वर्षतक जीवित रहने चाहिये; क्योंकि उनकी अवस्था प्रायः ७२ वर्ष की थी।

(३) अजातशत्रुके राज्यके ८वें वर्ष बुद्धनिर्वाण और २२ वें वर्ष महावीरनिर्वाण होनेसे महावीरनिर्वाण बुद्धनिर्वाणसे १४ वर्ष बाद पाया जाता है।

(४) भगवतीसूत्र आदि श्वेताम्बर ग्रन्थोंसे भी ऐसा मालूम होता है कि महावीरनिर्वाणसे १६ वर्ष पहले गोशालक (मंक्खलिपुत्त गोशाल) का स्वर्गवास हुआ, गोशालकके स्वर्गवाससे कुछ वर्ष पूर्व (प्रायः ७ वर्ष पहले) अजातशत्रुका राज्यारोहण हुआ, उसके राज्यके आठवें वर्षमें बुद्धका निर्वाण हुआ और बुद्धके निर्वाणसे कोई १४–१५ वर्ष बाद अथवा अजातशत्रुके राज्यके २२ वें वर्ष महावीरका निर्वाण हुआ।

(५) हेमचन्द्राचार्यने चन्द्रगुप्तका राज्यारोहण समय वीरनिर्वाणसे १५५ वर्ष बाद बतलाया है और 'दीपवंश', 'महावंश' नामके बौद्धग्रन्थोंमें वही (चन्द्रगुप्तका राज्यारोहण) समय बुद्धनिर्वाणसे १६२ वर्ष बाद बतलाया है। इससे भी प्रकृत विषयका कितना ही समर्थन होता है और यह स्पष्ट जाना जाता है कि वीरनिर्वाणसे बुद्धनिर्वाण अधिक नहीं तो ७-८ वर्ष के करीब पहले जरूर हुआ है।

(६) लंकामें जो बुद्धनिर्वाण संवत् प्रचलित है वह सबसे अधिक मान्य किया जाता है—ब्रह्मा, श्याम और आसाममें भी वह माना जाता है। उसके अनुसार बुद्धनिर्वाण ई० सन् से ५४४ वर्ष पहले हुआ है। इससे भी महावीरनिर्वाण बुद्धनिर्वाणके बाद बैठता है।

(७) चूँकि मंक्खलिपुत्तकी मृत्यु—जो कि बुद्धके छह प्रतिस्पर्धी तीर्थंकरोंमें से एक था—बुद्ध-निर्वाणसे प्रायः एक वर्ष पहले ही हुई है और बुद्ध निर्वाणभी उक्त मृत्यु-समाचारसे प्रायः एक वर्ष बाद माना जाता है; दूसरे जिस पावामें मृत्युका होना लिखा है वह पावा भी महावीरकी निर्वाणक्षेत्रवाली पावा नहीं है, बल्कि दूसरीही पावा है जो बौद्ध पिटकानुसार गोरखपुरके जिलेमे स्थित कुशीनाराके पासका कोई ग्राम है; तीसरे कोई संघभेदभी महावीरके निर्वाणके अनन्तर नहीं हुआ—बल्कि गोशालककी मृत्यु जिस दशामें हुई है उससे उसके संघ का विभाजित होना बहुत कुछ स्वाभाविक है। ऐसी हालतमें सामगामसुत्तमें वर्णित उक्त मृत्यु तथा संघ-भेद-समाचारवाली घटनाका महावीरके साथ कोई सम्बन्ध मालूम नहीं होता। बहुत सम्भव है कि वह मंक्खलिपुत्त गोशालकी मृत्युसे सम्बन्ध रखती हो और पिटक ग्रन्थोंको लिपिबद्ध करते समय किसी भूल आदिके वश इस सूत्रमें मंक्खलिपुत्तकी जगह नात्तपुत्तका नाम प्रविष्ट होगया हो।

इन सब प्रमाणोंमे से किसीका भी कोई खंडन न करते हुए ब्रह्मचारीजी एक युक्तिपुरस्सर निर्णय पर आपत्ति करने चले है, यह देखकर बड़ा ही आश्चर्य होता है ! आपका फर्माना है:—

" सामगाम सुत्त नं० १०४ के शब्दोंसे यह कभी भ्रम नहीं होता कि निर्ग्रन्थ श्रीमहावीर भगवानके सिवाय किसी औरका कथन हो। वहाँ साफ़ लिखा है कि चन्दा (चुन्द) ने आनन्दको खबरदी कि निगंथ नात्तपुत्त पावामें अभी निर्वाण हुए। वह यह भी कहता है कि उनके निर्वाणके पीछे निर्ग्रन्थ साधुओंमें मतभेद होरहा है। तब चन्द व आनन्द दोनों गौतमबुद्धके पास जाकर निवेदन करते हैं। इस कथनको असत्य माननेका कोई कारण नहीं दिखता है। इससे यही सिद्ध है कि गौतमबुद्धके जीवनमें ही श्री महावीरका निर्वाण हुआ। तथा तब गौतम ७६-७७ वर्षके थे "।

ब्रह्मचारीजीके इस अजीब निर्णय एवं आदेश से ऐसा मालूम होता है कि उन्होंने 'सामगामसुत्त' को स्वतः प्रमाण के तौर पर मान लिया है !! परंतु फिर भी आपका कारणकी मार्गना अथवा गवेषणा करते हुए यह लिखना कि " इस कथनको असत्य माननेका कोई कारण नहीं दिखता है " अजीब तमाशा जान पड़ता है !! कारण तो ऊपर एक नहीं अनेक बतलाये गये हैं, उन्हें क्या ब्रह्मचारीजीने पुस्तकमें पढ़ा नहीं और वैसे ही इधर उधरके दो चार पत्र पलट कर अपना निर्णय दे डाला है ? बिना पूरा पढ़े और बिना अच्छी तरहसे जाँच किये किसी भी युक्तिपुरस्सर लेखनीके विरुद्ध क़लम चलाना तो निसन्देह अतिसाहसका काम है ! मैं पूछता हूँ यदि ब्रह्मचारीजीकी दृष्टिमें बौद्धोंका 'सामगामसुत्त' बिल्कुल प्रामाणिक वस्तु है—उसकी सत्यताके विरुद्ध उन्हे कोई भी कारण दिखलाई नहीं पड़ता—तो वे कृपया निम्नबातोंका समाधान कर अपनी पोजीशन को स्पष्ट करें'—

१—सामगामसुत्तके शुरूमे ही लिखा है कि "निगंठनातपुत्तके मरने पर निगंठ (जैनसाधु) लोग दो भाग हो, भंडन (कलह-विवाद) करते, एक दूसरेको मुखरूपी शक्तिसे छेदते विहर रहेथे-'तू इस धर्म-विनय (धर्म) को नहीं जानता, मैं इस धर्म विनयको जानता हूँ। तू क्या इस धर्म विनयको जानेगा, तू मिथ्यारूढ़ है, मैं सत्यारूढ़ हूँ" इत्यादि* यह तूतूकार और गाली गलौज क्या ब्रह्मचारीजी भगवान् गौतम स्वामी और सुधर्मा स्वामी आदिके बीच हुआ मानते हैं जो कि भगवान् महावीरके मुख्य गणधर थे और गौतम स्वामीको तो उसी समय केवलज्ञानकी प्राप्ति भी होगई थी ? यदि ऐसा है तो वे एक केवलज्ञानी और महामुनिकी पोजीशनको कैसे सुरक्षित रख सकेंगे ?

२—इस सूत्रमें वर्णित मृत्युसमाचारको चुन्द नामका बौद्धभिक्षु पावामें वर्षावास समाप्त करते ही

*देखो, 'बुद्धचर्या' में पृ० ४८१ पर उक्त सुत्तका अनुवाद।

बुद्धके पास लेगया था और उसने जाते ही कहा था कि "निगंठनातपुत्त अभी अभी पावामें मरे हैं, उसके मरनेपर निगंठ लोग दो भाग हो" इत्यादि। इससे स्पष्ट है कि यह समाचार मृत्युके बाद थोड़ेही समय के अनन्तर ज्यादासे ज्यादा १५-२० दिनके बाद बुद्ध के पास पहुँचाया गया है। इस अल्प समयके भीतर जैनसंघके कौनसे दो विभाग हुए ब्रह्मचारीजी मानते हैं? क्योंकि दिगम्बर और श्वेताम्बर रूपसे जो दो भेद हुए हैं वे तो महावीरके निर्वाणसे बहुत बादकी— केवलियों और श्रुतकेवलियोंके भी बादके समय की—घटनाएँ हैं। यदि इन्हीं दो भेदोंको लक्ष्य करके इस सूत्रमें उल्लेख किया गया है और जिसका कुछ आभास "निगंठके श्रावक जो गृही श्वेतवस्त्रधारी थे वे भी नातपुत्रीय निगंठोंमें (वैसे ही) निर्विण्ण विरक्त-प्रतिवाणरूप थे" इत्यादि इसी सूत्रके दूसरे वाक्योंमें भी मिलता है, तब यह सूत्र सत्य और प्रामाणिक कैसे?

३—सामगामसुत्तमें जिस पावाका उल्लेख है वह बौद्धग्रन्थोंके अनुसार गोरखपुरके जिलेमें कुशीनारा के पासका कोई ग्राम है, जिसका उल्लेख बुद्धचर्यामें भी कई जगह किया गया है*। ऐसी हालतमें ब्रह्मचारीजी क्या महावीरका निर्वाणस्थान वर्तमान पावापुरको नहीं मानते हैं?

४—सामगामसुत्तके किन शब्दों परसे ब्रह्मचारीजी यह नतीजा निकालनेमें समर्थ हुए हैं कि "तब गौतम ७६-७७ वर्ष के थे?"

५—ब्रह्मचारीजी मज्झिमनिकायके 'सामगामसुत्त' को तो किस आधार पर प्रमाण मानते हैं और उसी मज्झिमनिकायके 'उपालिसुत्त' और अभयराजकुमारसुत्त आदि उन दूसरे कई सूत्रोंको क्यों प्रमाण नहीं मानते हैं, जिनका उल्लेख आपने 'हिन्दी मज्झिमनिकाय' नामके अपने लेखमें किया है, जो बादको १० मई सन् १९३४ के जैनमित्रमें प्रकाशित हुआ है? उपालिसुत्तका तो सामगामसुत्तके साथ खास सम्बन्ध बतलाया जाता है जैसाकि, 'बुद्धचर्या' में सामगामसुत्तका अनुवाद देते हुए, 'अट्ठकथा' के आधारपर दिये हुए निम्न शब्दोंसे प्रकट है:—

"यह नातपुत्त तो नालन्दावासी था, वह कैसे क्यों पावामें मरा? सत्यलाभी उपालिगृहपतिके दश गाथाओंसे भाषित बुद्धगुणोंको सुनकर उसने (मुँहसे) गर्म खून फेंक दिया। तब अस्वस्थही उसे पावा ले गये। वह वहाँ मरा।"

अतः इस विषयका ब्रह्मचारीजीको अच्छा हृदयग्राही स्पष्टीकरण एवं खुलासा करना चाहिए। और साथही यहभी बतलाना चाहिये कि उपालिसुत्त आदि के विषयमें जो उन्होंने अपने हिन्दी मज्झिमनिकाय वाले लेखमें जैनधर्मसे बौद्धोंके ईर्षाभाव तथा द्वेषभावकी कल्पनाकी है वह कल्पना सामगामसुत्तके साथ क्यों संगत नहीं बैठती; क्योंकि इस सूत्रमें भी तो निगंठनातपुत्त (महावीर) के धर्मको दुराख्यात (ठीकसे न कहा गया), दुष्प्रवेदित (ठीकसे न साक्षात्कार किया गया) अनैर्याणिक (पार न लगाने वाला) असम्यक संबुद्धप्रवेदित और प्रतिष्ठारहित आदि बुरे रूपमें उल्लेखित किया गया है।

६—ब्रह्मचारीजीने अपने उक्त लेखमें उपालिसुत्त आदि पर आपत्ति करते हुए लिखा है कि—

"यद्यपि कथन लेखकने ऐसा किया है कि मानो वे सब वाक्य गौतमबुद्धके ही हैं परन्तु ऐसा संभव नहीं है कि ५०० वर्षों तक वे सब वाक्य वैसेके वैसे ही चले आए हों, संभव है कुछ आए हों, उनमें उस समयके लेखकोंने जरूर अपना अभिप्राय प्रवेश किया है, बिलकुल शुद्ध कथन नहीं हो सकता।"

जब मज्झिमनिकाय आदिको लिए हुए पिटक ग्रंथों की ऐसी स्थिति ब्रह्मचारीजी स्वयं स्वीकार करते हैं, तब मैंने निगंठनातपुत्तकी मृत्यु तथा संघभेद समाचारवाली घटनाके विषयमें जो यह युक्तिपुरस्सर कल्पना की है कि वह मंक्खलिपुत्त गोशालकी मृत्यु

*देखो, 'संगीतिपरियायसुत्त' और 'महापरिनिब्बाण सुत्त' आदि।

से सम्बन्ध रख सकती है और इस सूत्रमें मंक्खलिपुत्ताकी जगह नातपुत्ताका नाम किसी भूल या द्वेषादि का परिणाम हो सकता है, इसपर ब्रह्मचारीजी किस आधार पर आपत्ति करने बैठे हैं, वह कुछ समझमें नहीं आता ! उसका भी स्पष्टीकरण होना चाहिए।

७—समालोचनाके अन्तिम पैरेग्राफमें लिखा है—

"गोयमग्गल्लावसुत्त नं० १०८ से विदित होता है कि गौतमबुद्धके देहत्याग के पीछे जब राजगृह में अजातशत्रु राज्य कर रहा था, तब गोयकमग्गलानो ब्राह्मणसे आनन्दका वार्तालाप हुआ है कि जैसे गौतमबुद्ध थे, वैसा कोई बुद्ध उनके पीछे है क्या ? इत्यादि। इससे विदित है कि अजातशत्रुके राज्य होतेही गौतमबुद्धका भी देहावसान होगया था। महावीर स्वामीका इससे ३ या ४ वर्ष पूर्व हुआ था। बुद्धचर्यासे यह बात साफ प्रकट है।"

उक्त सूत्र यद्यपि मेरे सामने नहीं है, फिर भी सूत्र के वक्तव्यको जिन शब्दोंमें ब्रह्मचारीजीने रक्खा है उनपर से समझमें नहीं आता कि वे कैसे उक्त नतीजा निकालने बैठे हैं ! उन शब्दोंसे तो सिर्फ इतनाही पता चलता है कि उक्त वार्तालाप बुद्धकी मृत्युके बाद हुआ और अजातशत्रुके राज्यमें हुआ—इससे अधिक और कुछ नहीं। बुद्धका निर्वाण तो बौद्धग्रन्थोंमें ही अजातशत्रुके राज्यके आठवें वर्षमें बतलाया है, जैसाकि बुद्धचर्याके "सम्यक संबुद्ध अजातशत्रु के आठवें वर्ष में परिनिर्वाणको प्राप्त हुए"। इन शब्दोंसे भी जाना जाता है (पृ० ५७७) और 'महापरिणिव्वाणसुत्त' से यह साफ मालूम होता है कि बुद्ध जब राजगृहमें गृध्रकूटपर्वतपर विहार कर रहे थे तब अजातशत्रुका राज्य चल रहाथा और अजातशत्रु वज्जियों पर चढ़ाई करना चाहता था, जिसके सम्बन्धमें उसने अपने महामंत्रीको भेजकर बुद्धसे प्रश्नभी कराया था (देखो बुद्धचर्या पृ० ५२० पर उक्तसूत्रका अनुवाद)। ऐसी हालतमें ब्रह्मचारीजी का यह कहना कि "अजातशत्रुका राज्य होते ही गौतमबुद्धका देहावसान हो गया था" बड़ा ही विचित्र और बिना सिर पैरका जान पड़ता है।

इसी तरह यह कहना भी निराधार और अविचारित मालूम होता है कि महावीर स्वामीका (देहावसान) इससे ३-४ वर्ष पूर्व हुआ था; क्योंकि इसके द्वारा ब्रह्मचारीजी यह प्रतिपादन करना चाहते हैं कि अजातशत्रुके राज्यसे ३ या ४ वर्ष पहले राजा श्रेणिकके राज्यमें ही महावीरका निर्वाण हुआ है। परन्तु यह बात खुद बौद्धग्रन्थों और उस बुद्धचर्याके भी विरुद्ध पड़ती है जिसकी आप दुहाई दे रहे हैं; क्योंकि दीघनिकायके 'सामंजफलसुत्त' का जो अनुवाद 'बुद्धचर्या' में दिया है उससे साफ जाना जाता है कि अजातशत्रुके राज्यमें बुद्धही नहीं किन्तु निगंठनातपुत्त (महावीर) आदि दूसरे छह तीर्थंकर भी मौजूद थे, अजातशत्रुने उन सबसे मिलकर प्रश्नोत्तर किया था, अन्तको बुद्धके उत्तरसे संतुष्ट होकर वह बुद्धका शरणागत, उपासक बनाथा और उसने बुद्धके सामने अपने पिता (श्रेणिक) को जानसे मारडालनेका अपराध भी स्वीकार किया था। ऐसी हालतमें ब्रह्मचारीजी बतलाएँ कि उनका यह सब कथन कैसे संगत हो सकता है ?

एक स्थानपर ब्रह्मचारीजी लिखते हैं—"प्रभु जब ४२ वर्षके थे तब गौतमबुद्ध ४७ वर्षके थे। गौतमबुद्धका उपदेश अपने ३५ वर्षकी उम्रमें शुरू हुआ अर्थात् महावीर भगवान् से १२ वर्ष पहले। यही कारण था कि राजा श्रेणिक बाल्यावस्थामें बुद्धमतानुयायी होगया था, पीछे महावीर स्वामीके केवलज्ञानी होनेपर जैनी हुआ है।" परन्तु इससे महावीर-निर्वाणका पहले और बुद्ध निर्वाणका पीछे होना कोई लाजमी नहीं आता; बल्कि बौद्धधर्मका प्रचार १२ वर्ष पहले होनेसे उसके उपदेष्टा बुद्धका, जो कि अवस्थामें भी महावीरसे बड़े थे, देहावसान महावीर के निर्वाणके पहले होना अधिक सम्भावित जान पड़ता है। तब समझमें नहीं आता कि ब्रह्मचारीजी ने अन्तिम पैरेग्राफसे पहले इस निरर्थक बातका

उल्लेख करना क्यों जरूरी समझा है ?

इस प्रकार एक कालमकी समालोचनाका पौना भाग व्यर्थकी अनावश्यक और असंगत बातोंसे भरा हुआ है। अच्छा होता यदि इतने स्थानपर पुस्तक का कुछ विशेष परिचय दिया जाता। परन्तु जान पड़ता है ब्रह्मचारीजीकी चलती लेखनीको कभी कभी विशेष परिचयकी बात तो दूर, आवश्यक सामान्य परिचयकी भी कुछ चिन्ता नहीं रहती, जिसका एक ताजा उदाहरण गत ३१ मईके जैनमित्र में प्रकाशित 'समन्तभद्रका समय और डाक्टर पाठक' नामक निबन्धका परिचय है। इसमें यह तक नहीं बतलाया गया है कि डाक्टर पाठकका इस निबन्धसे क्या सम्बन्ध है—केवल इतना लिख दिया है कि "इसमें विद्वान् लेखकने यह सिद्ध किया है कि श्री समन्तभद्रका समय श्री पूज्यपादसे पहले दूसरी शताब्दी है" (यह लिखना भी कुछ सदोष है); जबकि यह बतलाना चाहिए था कि डाक्टर के० बी० पाठकने समन्तभद्रका समय कुछ युक्तियों के आधार पर ईसाकी आठवीं शताब्दीका पूर्वार्द्ध क़रार दिया था, उन सब युक्तियोंका इस निबन्धमें कितनी खोजके साथ कैसा कुछ खण्डन किया गया है। खेद है कि ब्रह्मचारीजी बिना सोचे समझे एक बात पर आपत्ति करने तो बैठगये परन्तु उसका ठीक तौरसे निर्वाह नहीं कर सके और यों ही यद्वा तद्वा लिख गये हैं !

आजकल ब्रह्मचारीजी बौद्धधर्मको अपना रहे हैं और साथही जैनधर्मको छोड़ भी नहीं रहे हैं। आपका कहना है कि 'प्राचीन बौद्धधर्म और जैनधर्म एकही जैसे थे—दोनों समान हैं, निर्वाणका जो स्वरूप जैनसिद्धान्तमें वर्णित है वही बौद्ध सिद्धान्तमें मुझे झलकता है, अमुक बौद्धसूत्रमें मोक्षमार्गका अच्छा वर्णन है, बहुतसे बौद्धसूत्रोंको पढ़नेसे ऐसाही आनन्द आता है मानों जैनसिद्धान्तका स्वाध्याय होरहा है', इत्यादि* और इस तरह आप प्रकारान्तरसे यह प्रतिपादन कर रहे अथवा सुझा रहे हैं कि स्वामी समन्तभद्र और अकलंकदेव जैसे महान् आचार्यों ने बौद्धधर्मको ठीकतौरसे नहीं समझा और इसीलिये वे उसके खंडनमें प्रवृत्त हुए हैं ! जान पड़ता है ब्रह्मचारीजी कुछ दिनसे बौद्धसाहित्यका अध्ययन करते हुए और बौद्धधर्मके मूल सिद्धान्तोंपर ठीक दृष्टि न रखते हुए ग्रन्थोंके ऊपरी शब्द जालमें पड़कर बौद्धधर्मकी मोहमायामें फँसगये हैं। इस मोहमायामय शब्दजालको स्वामी समन्तभद्र जैसे आचार्यों ने परखा था और उसकी सूचना वे "बहुगुणसंपद्सकलं परमतमपि मधुरवचनविन्यासकलं"⊛ जैसे वाक्यों द्वारा अपने ग्रन्थोंमें कर गये हैं। स्वयम्भूस्तोत्रकी टीका लिखकर भी ब्रह्मचारीजीने स्वामीजीके इस संकेतको नहीं समझा, यह आश्चर्य तथा खेदकी बात है ! इसीसे आपकी स्थिति आजकल दो परस्पर विरोधी घोड़ोंकी पीठपर एक साथ सवारी करनेवाले सवार जैसी होरही है !

आशा है इस लेखपरसे ब्रह्मचारीजी अपनी भूलको सुधारेंगे और अपनी पोजीशनको शीघ्रही स्पष्ट करके बतलानेकी कृपा करेंगे।
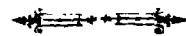
"जैनधर्मका मर्म" पर सम्मति।

श्रीमान चरणदासजी जैन देहली लिखते हैं:—

"आपकी निष्पक्षता पर तीनों समाजके व्यक्ति आप पर मुग्ध हैं। जैनधर्मके मर्म से तो सचमुच क्रान्ति मचरही है। जैनधर्मका वास्तविक रूप व तत्त्व इसीमें आरहा है। अजैन जनताके सामने आज युक्तिपूर्ण साहित्य रखनेकी आवश्यकता है, जिसकी आप पूर्ति कर रहे हैं। क्या यह पुस्तक रूपमें भी कभी प्रकाशित होगा ?"

---
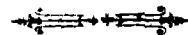
* देखो, जैनमित्रमें प्रकाशित 'हिन्दी मज्झिमनिकाय' आदि बौद्धधर्म-विषयक तथा सीलोनादि यात्रा-विषयक आपके लेख।

⊛ देखो, स्वयंभूस्तोत्र का अन्तिम पद्य।

धर्मवीर महावीर और कर्मवीर कृष्ण ।

[लेखक—श्रीमान पं० सुखलालजी] (क्रमागत) [अनु०—श्रीमान पं० शोभाचन्द्रजी न्यायतीर्थ]

(३)

(२) घटनाके वर्णनकी परीक्षा ।

अब दूसरे दृष्टिबिन्दुके संबंधमें विचार करना है। वह दृष्टिबिन्दु जैसाकि पहले कहा जा चुका है, यह है कि इन वर्णनोंका आपसमें एक दूसरेपर कुछ प्रभाव पड़ा है या नहीं, और इससे क्या परिवर्त्तन या विकास सिद्ध हुआ है, इस बातकी परीक्षा करना। सामान्य रूपसे इस संबंधमें चार पक्ष होसकते हैं—

(१) वैदिक तथा जैन दोनों सम्प्रदायोंके ग्रन्थोंका वर्णन एक दूसरेसे बिलकुल अलग है। किसी का किसीपर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा है।

(२) उक्त वर्णन अत्यन्त समान एवं बिम्ब-प्रतिबिम्ब जैसा है अतः वह बिलकुल स्वतंत्र न होकर किसी एकही भूमिकामें से उत्पन्न हुआ है।

(३) किसी भी एक सम्प्रदायकी घटनाओंका वर्णन दूसरी सम्प्रदायके वैसे वर्णनपर आश्रित है अथवा उसका उसपर प्रभाव पड़ा है।

(४) यदि एक सम्प्रदायके वर्णनका प्रभाव दूसरे सम्प्रदायके वर्णन पर पड़ा ही हो तो किसका वर्णन किसपर अवलम्बित है? उसने मूल कल्पना या मूल वर्णनकी अपेक्षा कितना परिवर्त्तन किया है और अपनी दृष्टिसे कितना विकास सिद्ध किया है?

(१) उक्त चार पक्षोंमें से प्रथम पक्ष संभव नहीं है। एकही देश, एकही प्रान्त, एकही ग्राम, एकही समाज और एकही कुटुम्बमें जब दोनों सम्प्रदाय साथही साथ प्रवर्त्तमान हों तथा दोनों सम्प्रदायोंके विद्वानों तथा धर्मगुरुओंमें शास्त्र, आचार और भाषाका ज्ञान एवं रीतिरिवाज एकही हों, वहाँ भाषा और भावमें इतनी अधिक समानता रखने वाली घटनाओंका वर्णन, एक दूसरेसे सर्वथा भिन्न या एक दूसरेके प्रभावसे रहित मान लेना लोक-स्वभावकी अनभिज्ञताको स्वीकार करना होगा।

(२-३) दूसरे पक्षके अनुसार यह कल्पनाकी जासकती है कि दोनों सम्प्रदायोंका उक्त वर्णन पूर्ण रूपमें न सही अल्पांशमें ही किसी सामान्य भूमिका में से आया है। इस संभावनाका कारण यह है कि इस देशमें भिन्न-भिन्न समयोंमें अनेक जातियाँ आई हैं और वे यहीं आबाद होगई हैं। संभव है वैदिक और जैन संस्कृतिके अंकुर पैदा होनेसे पहले गोप या आहीर जैसी बाहरसे आई हुई या मूलसे इसी देशमें रहने वाली किसी विशेष जातिमें, कृष्ण और कंसके संघर्षणके समान या महावीर और देवोंके प्रसंगोंके समान, अच्छी अच्छी बातें वर्णित हों, और जब उस जातिमें वैदिक और जैन संस्कृतिका प्रवेश हुआ या इन संस्कृतियोंके अनुयायियोंमें उसका सम्मिश्रण हुआ तो उस जातिमें प्रचलित और लोकप्रिय हुई उन बातोंको वैदिक एवं जैन संस्कृति के ग्रन्थकारोंने अपने अपने ढंगसे अपने अपने साहित्यमें स्थान दिया हो। जब वैदिक तथा जैन संस्कृतिके वर्णनोंमें कृष्णका संबंध ग्वालों और आहीरोंके साथ समान रूपसे देखा जाता है और महावीरके जीवन-प्रसंगमें भी ग्वालोंका बारम्बार जिक्र पाया जाता है, तबतो दूसरे पक्षको और भी अधिक सहारा मिलता है। परन्तु वर्त्तमानमें दोनों संस्कृतियोंका जो साहित्य हमें उपलब्ध है और जिस साहित्यमें महावीर तथा कृष्णकी उल्लिखित घटनायें सक्षेपमें या विस्तारसे, समान रूपमें या असमान रूपमें चित्रित की गई नजर आती हैं, उन्हें देखते हुए दूसरे पक्षकी संभावनाको छोड़कर तीसरे पक्ष की निश्चितताकी ओर हमारा ध्यान आकर्षित होता है। हमें निश्चित रूपसे प्रतीत होने लगता है कि

मूलमें चाहे जो हो, परन्तु इस समयके उपलब्ध साहित्यमें जो दोनों वर्णन पाये जाते हैं उनमेंसे एक दूसरे पर अवश्य अवलम्बित है या एकका दूसरे पर प्रभाव पड़ा है; फिर भलेही वह पूर्ण रूप में न हो, कुछ अंशोंमें ही हो।

(४) ऐसी अवस्थामें अब चौथे पक्षके विषय में विचार करना शेष रहता है। वैदिक विद्वानोंने जैन वर्णनको अपनाकर अपने ढंगसे अपने साहित्य में उसे स्थान दिया है या जैन लेखकोंने वैदिक-पौराणिक वर्णनको अपनाकर अपने ढंगसे अपने ग्रंथों में स्थान दिया है ? बस, यही विचारणीय प्रश्न है।

जैन संस्कृतिकी आत्मा क्या है और मूल जैन ग्रन्थकारोंकी विचारधारा कैसी होनी चाहिये ? इन दो दृष्टियोंसे यदि विचार किया जाय तो यह कहे बिना नहीं रहा जासकता कि जैन साहित्यका उल्लिखित वर्णन पौराणिक वर्णन पर अवलम्बित है। पूर्ण त्याग, अहिंसा और वीतरागताका आदर्श, यह जैन संस्कृतिकी आत्मा है और मूल जैन ग्रन्थकारोंका मानस इसी आदर्शके अनुसार गढ़ा होना चाहिये। यदि उनका मानस इसी आदर्शके अनुसार गढ़ा हुआ हो तभी जैन संस्कृतिके साथ उसका मेल बैठ सकता है। जैन संस्कृतिमें वहमों, चमत्कारों कल्पित आडम्बरों तथा काल्पनिक आकर्षणोंको जरा भी स्थान नहीं है। जितने अंशोंमें इस प्रकारकी कृत्रिम और बाहिरी बातोंका प्रवेश होता है, उतने ही अंशोंमें जैनसंस्कृतिका आदर्श विकृत एवं विनष्ट होता है। यदि यह सच है तो आचार्य समन्तभद्र के शब्दोंमें, अंधश्रद्धालु भक्तोंकी अप्रीतिको अंगीकार करके और उनकी परवाह न करते हुए यह स्पष्ट करदेना उचित है कि भगवान महावीरकी प्रतिष्ठा न तो इन घटनाओंमें है और न बालकल्पना ऐसे दिखाई देनेवाले वर्णनोंमें ही। कारण स्पष्ट है। इस प्रकारकी दैवी घटनाएँ और अद्भुत चमत्कारी प्रसंग तो चाहे जिसके जीवनमें लिखे हुए पाये जासकते हैं। अतएव जब धर्मवीर दीर्घ तपस्वी के जीवनमें पग पग पर देवोंका आना देखा जाता है, दैवी उपद्रवोंको बाँधा जाता है, और असंभव प्रतीत होनेवाली कल्पनाओंका रंग चढ़ा हुआ नजर आता है तो ऐसा मालूम होने लगता है कि भगवान् महावीरके जीवन-वृत्तान्तमें मिली हुई ये घटनाएँ वास्तविक नहीं हैं। ये घटनाएँ समीपवर्ती वैदिक-पौराणिक वर्णनमें से बादमें ले ली गई हैं।

इस विधानको स्पष्ट करनेके लिए यहाँ दो प्रकार के प्रमाण उपस्थित किये जाते हैं:—

(१) प्रथम यह कि स्वयं जैन ग्रन्थोंमें महावीर जीवन संबंधी उक्त घटनाएँ किस क्रमसे मिलती हैं, और

(२) दूसरे यह कि जैन ग्रन्थोंमें वर्णित कृष्ण के जीवन-प्रसंगोंकी पौराणिक कृष्ण-जीवनके साथ तुलना करना और इन जैन तथा पौराणिक ग्रन्थों के समयका निर्धारण करना।

(१) जैन सम्प्रदायमें मुख्य दो फ़िरके हैं, दिगम्बर और श्वेताम्बर। दिगम्बर फ़िरकेके साहित्य में महावीरका जीवन बिलकुल खंडित है और साथ ही इसी फ़िरकेके अलग अलग ग्रन्थोंमें कहीं कहीं कुछ कुछ विसंवादी भी है। अतएव यहाँ श्वेताम्बर फ़िरकेके ग्रंथोंको ही सामने रखकर विचार किया जाता है। सबसे प्राचीन माने जानेवाले अंग साहित्य में सिर्फ दो अंग ही ऐसे हैं कि जिनमें महावीरके जीवनके साथ उल्लिखित घटनाओंमें से किसी किसी की झलक नजर आती है। आचारांग सूत्रके—जो पहला अंग है और जिसकी प्राचीनता निर्विवाद सिद्ध है—पहले श्रुतस्कन्ध (उपधान सूत्र अ० ९) में भगवान् महावीरकी साधक अवस्थाका वर्णन है। परन्तु इसमें किसीभी दैवी, चमत्कारी या अस्वाभाविक उपसर्गका नाम निशान तक नहीं है। इसमें तो कठोर साधकके लिये सुलभ बिलकुल स्वाभाविक मनुष्यकृत तथा पशुपक्षीकृत उपसर्गोंका वर्णन है, जो अक्षरशः सत्य प्रतीत होता है. और एक वीतराग संस्कृतिके निर्देशक शास्त्रके साथ सामंजस्य रखने

वाला मालूम होता है। बादमें मिलाये हुये माने जाने वाले इसी आचारांगके द्वितीय श्रुतस्कन्धमें अत्यन्त संक्षेपमें भगवानकी सारी जीवनकथा आती है। इसमें गर्भके संहरणकी घटनाका निर्देश आता है, और किसी प्रकारका ब्यौरा दिये बिना—किसी विशेष घटनाका निरूपण न करते हुए–सिर्फ भयंकर उपसर्गोंको सहन करनेकी बात कही गई है। भगवती नामक पाँचवें अंगमें महावीरके गर्भसंहरणकी घटनाका वर्णन विशेष पल्लवित रूपमें मिलता है। उसमें यह कथन है कि यह घटना इन्द्रने देवके द्वारा कराई। फिर इसी अंगमें दूसरी जगह महावीर अपनेको देवानन्दाका पुत्र बताते हुए गौतमको कहते हैं कि (भगवती श० ५ उद्देश ३३ पृ० ४१६) यह देवानन्दा मेरी माता है। (इनका जन्म त्रिशलाकी कोखसे होनेके कारण सब लोग इन्हें त्रिशलापुत्रके रूपमें तबतक जानते होंगे, ऐसी कल्पना दिखाई देती है)।

यद्यपि अंग विक्रमकी पाँचवीं शताब्दीके आस पास संकलित हुए हैं तथापि इस रूपमें या कहींकहीं कुछ भिन्न रूपमें इन अंगोंका अस्तित्व पाँचवीं शताब्दीसे प्राचीन है। इसमें भी आचारांगके प्रथम श्रुतस्कंधका रूप और भी प्राचीन है। यह बात हमें ध्यानमें रखनी चाहिये। अंगके बादके साहित्यमें आवश्यक निर्युक्ति और उसका भाष्य गिना जाता है, जिनमें महावीरके जीवनसे संबंध रखनेवाली उपर्युक्त घटनाओंका वर्णन है। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि यद्यपि निर्युक्ति एवं भाष्यमें इन घटनाओंका वर्णन है तथापि वह बहुत संक्षिप्त है और प्रमाणमें कम है। इनके बाद इस निर्युक्ति और भाष्यकी चूर्णिका समय आता है। चूर्णिमें इन घटनाओंका वर्णन विस्तारसे और प्रमाणमें अधिक पाया जाता है। चूर्णिका रचना काल सातवीं या आठवीं सदी माना जाता है। मूल निर्युक्ति ई० सं० से पूर्वकी होने पर भी इसका अन्तिम समय ईसाकी पाँचवीं शताब्दीसे और भाष्यका समय सातवीं शताब्दीसे अर्वाचीन नहीं है। चूर्णिकारके पश्चात् महावीरके जीवनकी अधिकसे अधिक और परिपूर्ण वृत्तान्तकी पूर्ति करनेवाले आचार्य हेमचन्द्र हैं। हेमचन्द्रने त्रिषष्ठिशलाका पुरुषचरित्रके दशम पर्वमें तमाम पूर्ववर्ती महावीर–जीवन सम्बन्धी ग्रन्थोंका दोहन करके अपनी कवित्वकी कल्पनाओंके रंगमें रँगकर महावीरका सारा जीवन वर्णन किया है। इस वर्णनमें से ऊपर जिन घटनाओंका उल्लेख किया गया है वे समस्त घटनाएँ यद्यपि चूर्णिमें विद्यमान हैं तथापि यदि हेमचन्द्रके वर्णनको और भागवतके कृष्ण–वर्णनको सामने रखकर एक साथ पढ़ा जाय तो जरूर ही मालूम पड़ने लगेगा कि हेमचन्द्रने भागवतकारकी कवित्व शक्तिके संस्कारोंको अपनाया है। (क्रमशः)
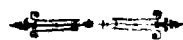
अछूत हैं !

कहते हैं पास में अछूतों को बिठाओ नहीं,
वे तो अपवित्र अपराधके कपूत हैं।
काम करें नीच और गन्दगी के ढेर बनें,
देखने में ऐसे—जैसे कबर के भूत हैं।
छूना इनको है बड़ा पाप इस अवनी पर,
प्रेरे नरकवासियों के नरक के दूत हैं।
दूर रहो—दूर रहो इनसे सदैव "प्रेम",
छूना नहीं भूलसे भी क्योंकि ये अछूत हैं॥

अछूतोंके लिये—

आते हैं सदैव आठों याम जो हमारे काम,
कहकर अछूत उन्हें व्यर्थ ठुकराना है।
मंदिरप्रवेश रोक, धर्म ठेकेदार बन,
कालिमा कलुषताकी भाल पै पुताना है॥
पानी पय होवे, अम्बु अम्बुजसे भिन्न न हो,
"प्रेम" का वितान ऐसा तानके दिखाना है।
विद्याएँ पढ़ाके देव दर्शन कराके और—
स्वच्छता सिखाके आज उनको जगाना है॥

—ब्र० प्रेमसागर।

अछूत

(ले०—श्रीयुत जैनेन्द्रकुमारजी)

महात्मा गाँधी जिन्हें हरिजन कहते हैं, मामूली बोलचाल और व्यवहारमें लोग अछूत कहकर उन्हें जानते हैं। अछूतपन यहाँ यह है, तो वहाँ कुछ और—उसकी परिभाषा देना कठिन है। मद्रास प्रांतमें उसका रूप अत्यन्त विकट है, तो इस प्रान्तमें कुछ कम भयानक हो सकता है। पर, यह व्याधिविष, जो वृहन् जैनसमाज हिन्दू संज्ञासे ज्ञात होता है उस समाजके तमाम शरीरमें ही व्यापा है। समय है वह तमाम शरीर उस विषसे मुक्त हो, और स्वस्थ हो।

व्याधि यह है कि मनुष्योंके एक वर्ग, या कुछ वर्गों को, अन्य वर्ग और वर्णके लोग जन्मसे नीच, अस्पृश्य, उपेक्षणीय समझते हैं। यह विभेदभाव पेशे, आचार, और कर्मके कारण नहीं है, जन्मके कारण है।

पेशे और कर्मके कारण यदि यह भाव स्थित और स्थिर होता, तो न इतना असहनीय होता, न उग्र, न असाध्य। तब मलिन और अस्वास्थ्यकर पेशोंसे निवृत्त होने पर सहजरूपमें हम सब, और शेष सबकी तरह, समाजके लिये वह या वे व्यक्ति मात्र समझे जाते और समाजमें अपने उपर्युक्त स्थान पाते। पर, यह नहीं है। एक व्यक्ति जो सवर्ण हिन्दू-जनसे अधिक स्वच्छ रहता है, लेखन व्यवसायी है, शास्त्राभ्यासी है, सुशील नागरिक है, इसी कारण समाजके लिये अस्वीकार्य और दुरदुराने योग्य है कि वह उन्हींकी बिरादरीका नहीं है!

क्या यह स्थिति समाजकी प्रगति और व्यक्ति के धर्मसाधनमें सहायक हो सकती है?

किसीकी देहको हम अस्पृश्य समझ सकते हैं। यों देहमात्रमें ऐसा बहुत कुछ है जिससे वह अस्पृश्य समझा जाय। फिर उसको प्रकार प्रकारके मल स्पर्शों और कीटाणुओंसे सुरक्षित रखना भी हम प्राणियोंके लिये आवश्यक हो जाता है। इस प्रकारकी अस्पृश्यता न केवल समझमें आती है, सहनीय है, प्रत्युत आचरणीय और सम्माननीय है। जान पड़ता है इसी प्रकारकी स्वास्थ्यप्रद अस्पृश्यताकी आवश्यकतामें से वह प्रथा उपजी जो आज सड़ी व्याधि होगई है।

ऊपरके प्रकारकी अस्पृश्यता धर्मके साधनमें और आत्माकी मुक्तिके मार्गमें सहायक होती है। वह मनको स्वच्छ और प्रीतिभरा बनाये रखनेमें साधन होती है, क्योंकि उसका सम्बन्ध देहसे है, अस्तित्व देहके लिये है, मनको वह वस्तु नहीं छूती।

किन्तु, इसके आगे जब हमने किसी प्राणीको, मानवप्राणी को, उपेक्षणीय, हीन, अवमाननीय, घृणय मानना आरम्भ कर दिया; जब हमारा हृदय किसीके प्रति तिरस्कारसे भर उठा; और उस तिरस्कार पर हमारे मनके भीतर आत्मग्लानि नहीं पैदा हुई वरन् एक आत्मगौरवका भाव ही उदय हुआ तब हम स्पष्ट समझें—हमने आत्मा पर बोझ डाल दिया, बन्धन डाल दिया। आत्मा जो मुक्ति चाहती है, जो नैसर्गिक चिन्ह है, उसे गंदला कर दिया। यह भाव मोक्ष-धर्मके प्रति चुनौती है।

वह अस्पृश्यता जिसका तनिक भी सम्बन्ध हृदयके भावोंसे हो चला; और जिसकी उपयोगिता तनिक भी शारीरिक और चारित्रिक शुद्धिके आगे अन्यथा भी समझी जाने लगी, जिसमें अप्रेम, द्वेष, अवज्ञाका लेशमात्र भी आ चला; जिसके समर्थन में फिर धार्मिक दम्भ भी आ खड़ा हुआ—वह अस्पृश्यता, मिथ्यात्वका लक्षण है, और सम्यग्दर्शनके मार्गमें वह दोष है जो इसलिये नहीं गिनाया गया कि अत्यन्त स्पष्ट था। जिसने ऐसी अस्पृश्यताको मनमें जगह दी वह सम्यग्दर्शनके आसपास भी नहीं है। वह अपनेको सम्यग्दृष्टि समझने का पातकी न बने। †

† निर्विचिकित्सा अङ्ग इसी बातका द्योतक है। धर्मात्माके मलिन शरीरसे भी घृणा न करना एक सम्यग्दृष्टी का धर्म है।

देहीमात्र अछूत है। जो देहको स्पृश्य बनाती है वह उसके भीतर अग्नि-सदृश विराजित आत्मा है। इस प्रकार मृत देह, आत्मा-हीन, निष्प्राण-देह वास्तवमें ही अस्पृश्य है, भस्म करदेने योग्य है। इसके पहिले जब तक उसमें आत्माका निवास है, तबतक वह देवालयकी भाँति सुरक्षणीय और पावन है। और जिनको अछूत कहते हैं, उनमें क्या वह आत्मा नहीं है, जो सहस्रों अग्नियोंसे अधिक आग्नेय है, और शताधिक सूर्योंसे अधिक प्रखर और रश्मिवान् है?

शास्त्रों में प्रमाण है कि निम्नातिनिम्न समझी जाने वाली जातियोंमें से मुनि हुये हैं, और तद्भव-मोक्षगामी भी हुए हैं। आत्माकी ज्योति वह है जो सब मैल को काटदेती है। तब हम इस आत्मतत्व की विडम्बना किस भाँति करें और मानें कि जन्म से कोई व्यक्ति अछूत हो सकता है?

आत्मतत्त्वसे भिन्नकरके देखें तो मनुष्य, देहकी अपेक्षा प्रतिक्षण अशुचि है, अपावन है। गर्भ जन्म आहार-विहारमय जीवन सब विधियोंमें मानवदेह खासी बीभत्स वस्तु है। किन्तु उसको, जहाँतक बनता है हम मन्दिरकी भाँति स्वच्छ, शुद्ध रखते हैं, और उसके द्वारा आत्मधर्म साधते हैं, अध्यात्ममें उत्तरोत्तर पदवृद्धि करते हैं।

तब हम किसको कहें कि तू अशुचि है, तू धर्म के पास मत आ, भगवानके मंदिरसे दूर रह?

हम यही तो कह सकते हैं कि भाई, तू भी ज़रा नहा धो ले, फिर हम-तुम भगवानके चरणोंमें सिर नवाने साथ चलें।

यह न करके किसी की आत्मधर्मकी साधना और तृप्तिमें अपने दम्भका आवरण उपस्थित करना अपना घात करना है, घोर 'धर्मावरणी' कर्मका बन्ध करना है।

'अछूत' की भावना को अपने मनसे दूर हमें अछूतके उद्धारके लिये नहीं करना है, अपने उद्धार के लिये करना है। अपने प्रायश्चित्तके रूपमें, अपनी कर्मनिर्जराके लिये करना है।

हम सब भगवान्के अछूत हैं, उसकी गोदसे छूटे हैं। तब हम किसको कहें, तू अछूत, तू अछूत?

हम सब समय समय पर अछूत हैं, और कोई हर समयके लिये अछूत नहीं है, क्योंकि हर कोई नहा धोकर स्वच्छ होजाने के लिये आज़ाद है।

और जो जितना सेवाके लिये निन्द्य काम करता है, वह परमात्माके हृदयके उतना ही समीप है, चाहे देहसे मलिन ही हो; क्योंकि वह वह काम करता है, जिसके बिना जीवन नहीं, किन्तु जिसे कर सकनेकी हिम्मत थोड़े ही कर सकें।

जन्मगत संस्कारों और जन्मजात संस्कारों की बात सुनने में आसकती है। पर वह कुतर्क हैं, मिथ्यात्वका तर्क है।

किसीके हृदयको किसीने अच्छी तरह नहीं देख लिया। हम यदि हृदय देख सकते हैं तो अपना ही। देखना चाहें, तो अपना ही देखें। जब हम यह करेंगे तो देखेंगे कि हमारे मुँहसे सिवा इसके कोई बात नहीं निकल पाती—'स्वामी, अधम मैं हूँ, पतित मैं हूँ। मैं बड़ा पातकी हूँ।'

इस कातर संबोधन, करुण निवेदनके अतिरिक्त हम और क्या हृदयकी बात कर सकते हैं?

हम मन्दिरमें प्रतिमाके चरणोंमें, निर्माल्यमें अपने आँसू देकर, हाथ जोड़कर यही प्रार्थना करें—परमेश्वर, मैं नीच हूँ, मैंने दूसरोंको नीच समझा, हाय, मैं कितना नीच हूँ! मुझे तू ऐसा बल दे कि मैं अपनेको सबका सेवक गिनूँ, और जिसे अज्ञानमें, अँधेरेमें, निन्द्य समझा उसकी चरणरज माथे पर ले सकूँ।
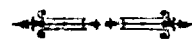
—"वीर"

जगाना है।

उपल समान दिल जिनके कठोर "प्रेम,,
शिक्षा की अनोखी सुधा उनको पिलाना है।
दैनिक चारित्र पै पवित्र पुण्य फल वाली,
करुणाकी कान्त वल्ल कणी चमकाना है॥
दुरितकी दुचि ताप दुःख रूप नाशनेको,
सुकृतका शांतिप्रद सलिल बहाना है।

सोते हैं स्वछन्द भोग विषयोंकी नींदमें जो,
फूँक वीर वाणी-वीणा उनको जगाना है ॥१॥
रूढ़ियोंकी शृंखलामें जकड़े हैं खूब आज,
विद्यासे विरक्त कैसे ज्ञानका कमाना है।
शिक्षासे विहीन पुत्र पुत्रियोंको राखें "प्रेम"
कहते-पढ़ाके, नहीं नौकरी कराना है॥
किन्तु शादियोंके लिए रहते तैयार नित्य,
शिक्षाके दिलानेमें बहानोंका बनाना है।
ऐसी दशा माँहि कहाँ आवेगी समझ यह,
जिसे प्राप्तकर जाति धर्मको जगाना है ॥२॥

—ब्र० प्रेमसागर।

विविध विषय।

[लेखक—श्रीमान् जगदीशचन्द्रजी जैन ऐम० ए०]

सनातनधर्म ।

बाह्य :क्रियाकाण्डके पालन करनेमें धर्म नहीं है। जबतक अंतःकरणकी शुद्धि न हो, उससमय तक समझना चाहिये कि आत्मामें धर्मकी सच्ची भावना जागृत नहीं हुई है। इस सिद्धान्तको सभी धर्मवालोंने मुक्तकण्ठसे स्वीकार किया है। जैनधर्म की नींव तो इसी महान् सिद्धान्तके ऊपर स्थिर है।

इतना होते हुए भी, यह प्रश्न होता है, कि आज अपने आपको धार्मिक समझने वाले लोगोंमें उक्त भावना क्यों नहीं पायी जाती?

तुलनात्मक धर्मशास्त्रके सिद्धान्तके अनुसार भिन्न भिन्न क्षेत्र और कालकी परिस्थितियोंके अनुकूल नाना धर्मोंकी उत्पत्ति होती आयी है। यही कारण है कि प्रत्येक धर्ममें सत्यके कुछ अंश विद्यमान रहते हैं। हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि समय समय पर यह विविध धर्मों और पंथोंकी उत्पत्ति केवल प्रयोगरूप है—यह अन्तिम सत्य नहीं है। परन्तु जिस समय धर्म और पंथकी भावनायें जब जन-समूह में पहुँचती हैं उस समय ये एक आदर्श रूप धारण करलेती हैं। बस, यहींसे हमारी अवनतिका सूत्रपात आरंभ हो जाता है। इसीसमय हम तर्क और बुद्धिको ताकमें रखकर आगे बढ़ते हैं। आगे चलकर यही भावना अंधश्रद्धा, दुराग्रह, कलह, ईर्ष्या, हिंसकवृत्ति आदिका प्रचंड और उग्र रूप धारण करती है।

यों तो इस धार्मिकताकी आड़में न जाने हमारे देशमें कितनी उग्र और भयानक हिंसक वृत्तिका पोषण होता आया है, परन्तु अभी ब्राह्मण-धर्मकी नाककी रक्षा करने के लिये पूनाके सनातनियों ने तपस्वी, त्यागी और निस्स्वार्थ सेवी महात्मा गाँधी जैसे संसारके परमपुरुषके ऊपर हिंसात्मक आक्रमण करके जो अपनी कुत्सितवृत्तिका प्रदर्शन किया है वह अवश्यही घोर निंदाके योग्य है।

यहाँ यह बतानेकी आवश्यकता नहीं कि जैन-धर्मकी तरह ब्राह्मण धर्मने भी अछूतोंके विषयमें बहुत उदारता दिखलाई है। यही कारण है कि व्यभिचारजात और नीच जाति में जन्म लेने वाले वशिष्ठ, पराशर, व्यास आदि महान् ऋषियोंसे लेकर कबीर, रैदास आदि महान् सन्तों तकको ब्राह्मण धर्मके कर्णधारोंमें अग्रस्थान मिला है।

परन्तु आज तो धार्मिक भावनायें बहुत दूषित होगई हैं। प्रजाने धर्मका वैज्ञानिकरूप भुला दिया है। इसीलिये आज उससे उग्र भयंकर पापों और दुराचारोंका पोषण 'सनातन' कहे जाने वाले सभी धर्मोंके नामपर भीषण रूपसे बढ़ता जारहा है। परन्तु यह धर्म नहीं, महान् अधर्म है। हम इस सनातन अधर्मकी कायरताकी प्रवृत्तिका घोर विरोध करते हैं।

जैन युवकों की बेकारी।

इस युगमें बेकारीने जो भयंकर रूप धारण किया है वह बड़ा ही दारुण है। कॉलेज और संस्कृत विद्यालयोंसे निकले हुए सैकड़ों नवयुवक आज जगह जगह किसी धन्धेकी तालाशमें ठोकरें खाते फिरते दिखाई देते हैं। भारतके विश्वविद्यालयों और जैनियोंकी पाठशालाओंकी मशीनें बिना किसी विचारके प्रत्येकवर्ष लगातार ग्रेजुएट्स और न्याय-

तीर्थोंके ढेरके ढेर निकालती चली जाती हैं। कॉलेज और विद्यालयोंसे निकलने पर इन युवकोंकी क्या दशा होती है, सो तो भुक्तभोगी ही जानते हैं। आज इस बेकारीने इतना भयंकर रूप धारण कर लिया है कि भारतके सैकड़ों नवयुवक अपघात करके अपने जीवनकी इतिश्री करनेके लिये बाध्य किये जाते हैं।

जैनसमाज चाहे तो अपने भटकते हुए बेकार शिक्षितोंको थोड़ा पैसा देकर भी उनसे पर्याप्त काम ले सकती है। परन्तु पहले तो जैन समाजके श्रीमन्तोंको इसकी कुछ परवाह ही नहीं। एक प्रकार से देखा जाय तो ऐसे लोगोंके जीवनमें समाजके प्रति कोई रस ही नहीं है। दूसरे, जो कुछ समृद्ध लोग सामाजिक कार्योंमें भाग लेते भी हैं, उनकी सारी शक्तियाँ पार्टीबन्दियोंमें ही समाप्त हो जाती हैं। ऐसी दशामें सामाजिक उन्नति कैसे हो?

अभी श्वेताम्बरमूर्तिपूजक कान्फ्रेंसका एक अधिवेशन बम्बईमें हुआ था। कान्फ्रेन्समें जैनयुवकोंकी बेकारी दूर करनेके संबंधमें कुछ प्रस्ताव पास किये गये थे। परन्तु मालूम होता है कि अभी तक वे प्रस्ताव कागजोंकी ही सम्पत्ति बने हुए हैं।

कुछ दिन हुए 'मुंबई समाचार'में एक जैन नवयुवकका पत्र प्रकाशित हुआ था। यह युवक बहुत दिनोंसे किसी धन्धेकी खोज में है, परन्तु अबतक कोई आश्रय नहीं मिला। इस युवकका कहना है कि यदि मुझे कोई सर्विस नहीं मिली तो बाध्य होकर मुझे किसी दूसरे धर्ममें दीक्षित होना पड़ेगा।

क्या नवयुवकोंकी ऐसी करुणापूर्ण कथाओंको सुनकर, मन्दिरों और पिंजरापोलोंके लिये लाखों करोड़ों रुपयोंका व्यय करनेवाली जैन समाजका हृदय पिघलेगा?

आदर्श विवाह।

विवाह एक सामाजिक बंधन है जो दो आत्माओंके हृदयमें आत्मसमर्पणकी भावनाको जागृत करता है। परन्तु हमारे देशमें ऐसे कितने विवाह होते हैं जो वास्तवमें विवाह कहे जानेके योग्य हैं?

हमारे देशके अधिकांश विवाह तो ऐसे होते हैं जिनमें वर और कन्याकी वृत्ति निरपेक्ष द्रष्टाकी तरह होती है। विवाह बंधनमें बद्ध होनेसे पहले वरको कन्याके विषयमें और कन्याको वरके विषयमें कोई भी वाकफियत नहीं कराई जाती। यदि ऐसे विवाहों को गुड्डे और गुड़ियोंका विवाह कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं है। इसके अतिरिक्त हमारी समाजमें बहुतसे विवाह ऐसे भी होते हैं जिनसे केवल कन्या अथवा वरके माता पिताओंकी घृणित स्वार्थ-वासनाओंकी ही तृप्ति होती है। उदाहरणके लिये रुपये के लोभसे अपनी कन्याका विवाह किसी बूढ़े, विकलांग अथवा नपुंसक वरके साथ करदेना, इसीप्रकार द्रव्यकी लालसासे अथवा अन्य कारणोंसे लड़केका विवाह किसी रुग्ण लड़कीसे करदेना। वास्तवमें ऐसे विवाहोंमें आदर्श लग्नका स्वरूप बिलकुल नष्ट हो जाता है। फल यह होता है कि बिचारी लड़कीको जन्मभर रो रोकर दिन काटने पड़ते हैं। कभी कभी तो पति और पत्नीको बड़े बड़े भयंकर परिणामोंका सामना करना पड़ता है।

सिंधकी आमिल जातिके वर-विक्रयके विषयमें सब लोग जानते हैं। कन्याके संरक्षकोंको अपनी लड़कीका विवाह करते समय वरको मुँहमाँगी रकमें देकर जिस प्रकार अपनी अन्तरात्माका हनन करना पड़ता है, वह बड़ाही भयानक है। इस भीषणताका परिणाम यह होरहा है कि बहुतसी आमिल लड़कियाँ हिन्दू-धर्मको छोड़कर दूसरे धर्मोंमें दीक्षित होरही हैं।

अभी करांचीके प्रोफेसरकी पुत्री श्रीमती सतीकुमारी नामक आमिल कन्याने जो जातीय कुरीतियों को तोड़कर अपनी जातिके श्रीयुत् मोहन नामके युवकके साथ अपने माता-पिताकी इच्छाके विरुद्ध लग्न किया है, वह वास्तवमें अभिनन्दनीय है।

कहा जाता है कि कुमारी सती विवाहके पहले से ही मोहनसे प्रेम करतीथी। यद्यपि इन दोनोंके विवाह होजानेमें मोहनके माँबापको कोई ऐतराज

नहीं था, परन्तु सतीके माता-पिता इस लग्नके लिये किसी भी तरह राजी नहीं थे। यह होते हुएभी सती अपने निश्चय पर अटल रही और उसने अपने माता-पिताको बिना कहे सुने ही विवाहका दिन निश्चित करलिया और अमुक समय अपनी भतीजीके साथ अपना घर छोड़कर विवाहके लिये रवाना होगई। उधर मोहनने भी सब तैयारियाँ करली थीं। सती और मोहनका लग्न होजानेके पश्चात् सतीने अपनी भतीजीसे अपने मातापिताको कहला भेजा कि मैं अपने प्रेमीके साथ विवाहित होगई हूँ, और लग्नकी निशानी स्वरूप यह मिष्टान्न भेजती हूँ।

वास्तवमें एक आमिल बालाका यह साहस बहुत ही सराहनीय है। आशा है आमिल जातिकी कुप्रथाओंको नष्ट करनेके लिये यह लग्न अन्य बालाओंके लिये आदर्श होगा।

समाचार संकलन।

—बम्बईमें श्रीमत्कूर्माचार्य नरसिंहाचार्य पधारे थे। आप मध्वदर्शनके प्रखर आचार्य समझे जाते हैं। अभी हालमें आपका एक व्रत पूर्ण हुआ है जिसकी समाप्तिके लिये आप पिछले बाईस वर्षोंसे ३६० ठंडे पानीके बड़े घड़ोंसे प्रतिदिन स्नान किया करते थे।

—'*रायल बांकनी*' लिखता है कि भारतकी गुड्स रेलगाड़ियोंके क्लर्क और सुपरिन्टेन्डेन्ट १५०) रुपये से लेकर २०००) रुपये मासिक तककी घूँस लेकर पाँच करोड़ रुपयेकी आमदनी कर लेते हैं। इसीप्रकार मुसाफिरी गाड़ियोंके स्टेशन सुपरिन्टेन्डेन्ट ५००) रुपयेसे लेकर २०००) रुपये तक मासिक पैदा करके पाँच करोड़ रुपया अपनी जेबमें डालते हैं। यह दस करोड़ रुपया पब्लिकका मुफ्तमें ही जाता है।

—जबसे इंग्लैण्डने स्वर्णमानका त्याग किया है उस समयसे १ अरब ८७ करोड़ रुपयेका सोना विदेशोंमें भेजा जा चुका है।

—वाइसरॉय रिलीफ फंडमें अबतक लगभग ५४ लाख ५० हजार रुपया एकत्रित हुआ है।

—दिल्लीके विक्टोरिया जनाना अस्पतालमें ७ जून १९३४ के दिन एक ६॥ वर्षकी लड़कीके एक पुत्री उत्पन्न हुई थी। लड़कीकी उमरकी ठीक ठीक जाँच करनेके लिये डॉक्टरोंकी एक कमेटी बैठाई गई। परीक्षा करनेसे मालूम हुआ कि लड़कीकी उक्त उमर ठीक है।

—हैदराबाद (सिंध) में एक मारवाड़ी महिलाके एक साथ चार लड़कियाँ पैदा हुईं। इन लड़कियोंका पेट कुछ बड़ाथा। लड़कियाँ एक दिन तक जीवित रहीं। तत्पश्चात् एकके बाद एक करके चारों मृत्युको प्राप्त हुईं।

पंजाब युनिवर्सिटीकी ऐलएल० बी० की परीक्षा में दो हरिजन विद्यार्थियोंने उत्तीर्णता प्राप्त की है।

—करांचीके पास एक गाँवमें एक सिक्खधर्म पालने वाला मिस्त्री अपनी १३ वर्षकी कुँवारी कन्याका विवाह एक ८० वर्षके बुड्ढेके साथ कर रहा है। कन्याके पिताको जमाईसे एक अच्छी खासी रकम मिली है। कन्याके पिताकी अवस्था कुल ३५ वर्षकी है, जब कि उसका जमाई उससे ४५ वर्ष बड़ा है।

—मौलाना शौकतअली कांग्रेसकी तरफसे असेम्बलीके लिये खड़े होंगे।

—इससमय सम्पूर्ण जगतमें खाद्य पदार्थोंमें चाँवल का उपयोग सबसे अधिक होता है। पापेनके निवासी प्रेमदर्शन करते समय अपनी नाक एक दूसरेसे घिसते हैं भारतके शिक्षाविभागमें सब मिलाकर ६६८०००० स्त्री पुरुष काम करते हैं।

—आस्ट्रेलियामें एकके बाद एक लगातार १५२ दिनोंमें एक मुर्गीने १५२ अंडे दिये। कहा जाता है दुनियाका यह सबसे बड़ा रिकार्ड है।

—कपूरथला तहसीलके काला गाँवके इन्दर नामक एक चिरविधुर पर यह अभियोग लगाया गया है कि उसने अपने भतीजेकी स्त्रीके साथ व्यभिचार करनेकी चेष्टा की और जब वह स्त्री किसी प्रकार सहमत नहीं हुई तो क्रोधावेशमें उसने उसको गँडासे से मार डाला तथा बादमें स्वयं अफीम खाकर आत्म-

घात करनेका प्रयत्न किया।

—भागलपुरके एक गाँवमें शेख लतीफ नामक एक मुसलमानने अपने पुत्रको मसजिदमें पैगम्बरके नाम पर काटकर बलिदान कर दिया। इस धार्मिकता (?) के उपलक्ष्यमें सरकारने उसे आजन्म कालेपानीकी सजा दी है।

—काँगड़ा जिलेके एक ग्रामकी खबर है कि वहाँ एक २५ वर्षीय युवकका विवाह एक अठारह वर्षीय युवतीके साथ होने वाला था। कारणवश वरको, जो शिमलामें किसी निम्नकार्यमें नियुक्त था, छुट्टी नहीं मिल सकी और वह निश्चित तिथि पर अपने ग्राम नहीं पहुँच सका। वरके कुटुम्बियोंने लग्न टल जानेमें अपनी तौहीन समझकर वरके छोटे भाईका, जिसकी उम्र केवल १३ वर्षकी है, उसी १८ वर्षीया युवतीसे विवाह कर दिया और इस तरह बिरादरी में अपनी नाक ऊँची रख ली।

—सुना है कि कलकत्ताके एक वयोवृद्ध सनातनी सेठ श्रीयुत बैजनाथजी बाजोरिया करीब आठ पुत्र पुत्रियोंके होते हुए भी बहुत शीघ्र एक कुँवारी कन्याके साथ विवाह करनेका आयोजन कर रहे हैं। सेठजीकी उम्र ढलचुकी है तथा आप पर यक्ष्मा जैसे भयंकर रोगका आक्रमण भी होचुका है। सबसे अधिक आश्चर्य व खेदकी बात यह है कि आपकी छाती पर एक पन्द्रहवर्षीया विधवा कन्या बैठीहै जिसे देखकर भी आपका चित्त विषयसेवनसे विरक्त नहीं होता।

—आगरामें एक विवाहमें बारातियोंको धोखेसे जलजीरेमें भंग अथवा उससे कोई तीव्र मादकवस्तु मिलाकर पिलादी गई जिसके कारण जलजीरा पीते ही बारातियोंका दम घुटने लगा। वे बुरी तरह चिल्लाने लगे और बेहोश होगये। डॉक्टरी चिकित्सासे और लोग बचगये परन्तु एक सुयोग्य नवयुवक डॉक्टर चन्द्रमोहनका उसी समय देहांत होगया।

सनातन जैन समाजका ६ ठा वार्षिकोत्सव— देहली निवासी श्रीमान सेठ लालचन्दजीने सनातन जैनसमाजको सागरमें अपना वार्षिकोत्सव करनेके लिये आमंत्रित किया है। तदनुसार छठा वार्षिकोत्सव सागरमें मिती आषाढ़ शुक्ला १०, ११ शनिवार रविवार, ता० २१, २२ जुलाई को होगा। जैनसमाज की उन्नतिके इच्छुक सभी जैनबन्धुओंको उत्सवमें पधारनेके लिये सादर आमंत्रण है। —मंत्री।

जैन त्यागियों, व्रतियों व ब्रह्मचारियों को चातुर्मासके लिये निमन्त्रण अमरावतीसे श्रीमान बा० जमनाप्रसादजी सबजज तथा प्रोफेसर हीरालालजीने उपरोक्त शीर्षक विज्ञप्ति प्रकाशित की है। उनका ध्येय यह है कि सभी विद्वान त्यागी अमरावती में चातुर्मास करें तथा वहाँ धर्मप्रचार, साहित्योद्धार, समाजसुधार आदिके विषयमें परस्पर विचार—विनिमय कर भविष्यके लिये कोई ठोस कार्यक्रम निश्चित करें। त्यागीवर्गको निमंत्रण स्वीकार कर इस उपयोगी कार्यमें पूर्ण सहयोग देना चाहिये।

पं० श्रीलालजीका मानहानिकेस—"अन्तर्जातीय विवाह धर्म और शास्त्रोंके अनुकूल है" शीर्षक पर्चेके सम्बन्धमें उसके लेखक श्री० जुगमंदिरदास जी जैन तथा प्रिंटर श्री० बा० दुलीचन्दजी परवार कलकत्ता पर श्रीमान पं० श्रीलालजी काव्यतीर्थने मानहानिका दावा किया है। करीब ६ पेशियोंके बाद गत ता० १५ जून को पण्डित श्रीलालजी काव्यतीर्थने उक्त पर्चेका अंग्रेजी अनुवाद पेश किया और उसके नीचे अपने यह सहीकी कि—"अनुवाद मैंने किया है।" मगर ता० २७ जून को जब अनुवाद पर बहस हुई तो पण्डित श्रीलालजीने कहा कि—मैं अंग्रेजी अच्छी तरह नहीं जानता; मैंने तो डिक्शनरीकी सहायतासे अनुवाद किया था। लेकिन आप उक्त डिक्शनरीका नाम भी नहीं बतासके। जब प्रतिवादीके वकीलने काव्यतीर्थजीसे कुछ साधारण शब्दोंकी हिज्जे, व उनका अर्थ पूछा तो वे कुछ उत्तर न देसके। अतः उक्त अनुवाद रद्द कर दिया गया तथा अगली पेशी ता० ९ जुलाई को दूसरा विश्वस्त अनुवाद पेश करनेका हुक्म हुआ।

तार का पता—"JAINJAGAT" Ajmer   Reg: No. N 352.

ता० १ अगस्त   ॐ   सन् १९३४

वर्ष ६   अंक १८

जैनसमाज का एकमात्र स्वतन्त्र पाक्षिकपत्र।

वार्षिक मूल्य ३) रुपया मात्र।

विद्यार्थियों व संस्थाओं से २॥) मात्र।

जैन जगत्

(प्रत्येक अंग्रेज़ी महीने की पहली और सोलहवीं तारीख़को प्रकाशित होता है)

"पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनम् यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः"॥—श्री हरिभद्र सूरि।

सम्पादक—सा०र० दरबारीलाल न्यायतीर्थ, जुबिलीबाग तारदेव, बम्बई।

प्रकाशक—फ़तहचंद सेठी, अजमेर।

सनातन जैनसमाजका छठा वार्षिकोत्सव।

ता० २१, २२ जुलाईको सागरमे बड़े उत्साह व समारोहके साथ सम्पन्न हुवा। सभापतिका आसन गाडरवारा निवासी श्रीमान बा० भैयालालजी जैन भूतपूर्व म्युनिसिपल कमिश्नर ने ग्रहण किया था। उत्सवमें सहयोग देने वाले अनेक महानुभावोंमेंसे खास तौर पर उल्लेखनीय श्रीमान ब्र० शीतलप्रसाद जी, बा० अमोलकचन्दजी जैन म्युनिसिपल कमिश्नर खण्डवा, ला० चन्द्रसेनजी जैन वैद्य इटावा, ला० जौहरीमलजी सर्राफ़ देहली, बा० विश्वम्भरदासजी गार्गीय झाँसी, बा० रघुवरप्रसादजी दमोह, मानमलजी सिहोर, निर्मलकुमारजी कस्तूरचन्दजी वैद आकोला, भगवन्त गणपते गोयलीय, बा० रतनलालजी मालवीय वकील, सिघई डालचन्दजी, रामलालजी मोदी बम्बई, बालचन्दजी टडैया ललितपुर, देवराज महाजन नागपुर, रामलालजी इटारसी, श्रीकृष्णदासजी मौजी, पं० बालचन्दजी कौशल आदि हैं। ता० २१ जुलाईको सायंकाल ७ बजे अधिवेशन का कार्य प्रारम्भ हुवा। खूब जोरकी वर्षा होरही थी किन्तु तो भी आगन्तुक सज्जनोंसे सभाभवन खचाखच भरा हुवा था। मंगलाचरण, भजन आदिके बाद सभापति महोदयने करीब १॥ घंटे तक अत्यन्त मर्मस्पर्शी भाषण दिया। बादमें मन्त्रीजीने रिपोर्ट सुनाई और विषय निर्वाचिनी समितिका निर्वाचन कर सभा विसर्जित हुई। ता० २२ जुलाईको प्रातःकाल विषयनिर्वाचिनी समितिकी बैठक हुई जिसमे १२ प्रस्ताव सर्वानुमतसे पास हुए। जनरल अधिवेशन उसी दिन दोपहरको तथा रात्रिको हुए और उपरोक्त प्रस्ताव स्वीकृत किये गये। मुख्य प्रस्ताव इस प्रकार हैं—

प्रस्ताव नं० २—विचारस्वाधीनताको हरण करने के लिये जिन लोगोंने युक्तिवादको छोड़कर आतंकवाद ग्रहण करके संसारके सर्वश्रेष्ठ महापुरुष महात्मा गांधी पर पूनामें बम फेंकनेकी जो कायरता दिखलाई है, यह सभा उसका घोर तिरस्कार करती है और अपनी पूर्ण इच्छा प्रदर्शित करती है कि जगतमें शांति और अहिंसाके प्रचारार्थ महात्माजी चिरंजीवि रहें।

प्रस्ताव नं० ३—जैन शास्त्रानुसार प्रत्येक को जैनधर्म धारण करनेका पूर्ण अधिकार है, अतः जैन

साधुओं ब्रह्मचारियों व उपदेशकों को यह समाज प्रेरणा करता है कि वे जैनेतरों को धर्मका स्वरूप बताकर जैनधर्ममें दीक्षित करें और एक नवदीक्षित जैनका आचरण एक जैन गृहस्थके योग्य देखकर उससे रोटीबेटीव्यवहार करनेमें कोई जैन गृहस्थ संकोच न करे।

प्रस्ताव नं० ४–जैन शास्त्रानुसार हर एक दोषका प्रायश्चित है और जिस तरह पुरुष शुद्ध होसकते हैं वैसे स्त्रियाँ भी शुद्ध होसकती हैं। अतएव यह समाज जैन पंचायतोंको सम्मति देता है कि पुरुषोंकी तरह दोषी स्त्रियोंको भी वे शुद्ध करके अपनी समाजमें शामिल रक्खें तथा उनको विधर्मी व भ्रष्ट होनेसे बचावें।

प्रस्ताव नं० ५–छिन्दवाड़ा, अमरावती ललितपुर बाँदा और मैनपुरी आदिकी जिन युवती विधवाओंने अपनेको व्यभिचारसे बचानेके लिये स्वेच्छापूर्वक पुनर्विवाह किया उन्हें यह समाज धन्यवाद देता है और प्रस्ताव करता है कि जो विधवायें ब्रह्मचर्य पालनेमें समसर्थ हों वे अवश्यही पुनर्विवाह कर गृहस्थ बनें। उन्हें भी पुरुषोंके समान पुनर्विवाह करनेका अधिकार है। ऐसे पुनर्विवाहित स्त्री पुरुषों के धार्मिक और सामाजिक सम्पूर्ण अधिकार सुरक्षित रहेंगे और उनके साथ जैनसमाजको समानता का व्यवहार रखना चाहिये।

प्रस्ताव नं० ६—यह सभा प्रस्ताव करती है कि दस्सा, विनैकवाल लोगोंके लिये जैनमन्दिरोंमें दर्शन पूजनका पूरा पूरा अधिकार है। उनकी इस अधिकार रक्षा और उनके आंतरिक भेदभाव मिटानेके लिये १० सज्जनोंकी एक समिति बनाई जाय।

प्रस्ताव नं० ९—सन् १९३३-३४ में परवार, समैया (तारनपंथी) ओसवाल, श्रीमाल, खंडेलवाल, पद्मावती पुरवाल, गंगेरवाल, हूमड़, नरसिंहपुरा, अग्रवाल, चतुर्थ और मेवाड़ा जातीय नवयुवकोंके अन्तर्जातीय विवाहादर्श उपस्थित करनेके शुभ कार्यों और पंचायती रीतिसे अंतर्जातीय विवाहोंका बीड़ा उठानेवाली गुजरात प्रांतीय जैन परिषद्के पवित्र निश्चयके लिये धन्यवाद देती हुई यह सभा प्रस्ताव करती है कि योग्य और प्रौढ़ सम्बन्ध प्राप्त करनेके लियेसमस्त जैनपंचायतोंको यह प्रथा जारोंसे जारी कर देना चाहिये।

प्रस्ताव नं० ११—छिन्दवाड़ाके श्रीमान् नाथूलालजी काला और श्रीमाँगीलालजी काला जैनके अन्तर्जातीय और विधवाविवाह करनेके कारण वहाँ की खंडेलवाल जैनपंचायतने उनकी मन्दिरबंदी करके मंदिरपर पठानोंका पहरा बिठाया और मंदिर जानेपर दोनों सज्जनोंसे हाथापाई की। इन अन्यायपूर्ण हरकतोंके लिये यह सभा पंचायतकी घोर निंदा करती है।

उत्सवकी सबसे बड़ी सफलता यह रही कि किसी को प्रत्यक्षमें आकर विरोध करनेका साहस नहीं हुवा तथा सनातन जैनसमाजको इसी समय आगामी अधिवेशनके लिये दमोहसे निमंत्रण मिल गया।

वैवाहिक प्रथाओंमें सुधार।

—हरमाड़ा निवासी श्रीमान् तेजमलजी पहाड़याके पुत्र कन्हैयालालजीका विवाह पीपलावाले लिखमीचन्दजी पाटणीकी पुत्रीसे हुवा। तोरण व फेरे एकही रोज हुए थे तथा इनके अतिरिक्त और कोई नेग नहीं हुए। विवाहका कार्य केवल दो रोज में सम्पन्न कर तीसरे रोज बारातको विदा करदी गई। वरपक्षकी ओरसे ५२) श्री मन्दिरजी व जैनपाठशाला आदिको दिये गये।

प्रार्थना।

विश्वनाथ कहलाकर भगवन्
ऊँचनीच का फिर यह जाल ?
बिछा दिया क्यों जगमें तुमने ?
या है भक्तजनों की चाल ?
यदि यह तेरीही लीला है,
दीन बंधु क्यों बनते नाथ ?
कौन कहेगा पतितोद्धारक
जब अछूत से खेंचा हाथ ?

—"सौभाग्य," अजमेर

वर्ष ९

श्रावण कृष्णा ७

वीर संवत् २४६०

अंक १८

ता० १ अगस्त

सन् १९३४ ई०

जैनधर्म का मर्म।

(४८)

ब्रह्मचर्य।

शास्त्रोंमे ब्रह्मचर्यका अर्थ अनेक तरहका किया गया है। ब्रह्ममें चर्या करना—आत्मामें लीन होना—पूर्ण संयमका पालन करना ब्रह्मचर्य है। इस अर्थके अनुसार अहिंसाभी ब्रह्मचर्य है, सत्यभी ब्रह्मचर्य है, अचौर्य भी ब्रह्मचर्य है, अपरिग्रह भी ब्रह्मचर्य है, और ब्रह्मचर्य तो ब्रह्मचर्य है ही। परन्तु जब संयमके अहिंसा आदिक पांच भेद किये जाते हैं तब उसका यह व्यापक अर्थ नहीं माना जाता। ब्रह्मचर्यका अर्थ है मैथुनका त्याग। इसी अर्थको मानकर यह चतुर्थ व्रत बनाया गया है।

यद्यपि ब्रह्मचर्यकी महत्ता शास्त्रोंमें बहुत बतलाई गई है और प्रायः सभीने एक स्वरसे उसे एक महान व्रत बतलाया है, फिर भी यह एक प्रश्न है कि ब्रह्मचर्यका व्रत है क्यों ? और मैथुनमें पाप क्या है ? मनुष्य समाजकी स्थिरताके लिये मैथुन तो आवश्यक है ही, मैथुन करनेवाले दोनों पात्र (स्त्री और पुरुष) सुखानुभव करते हैं, इससे किसीके अधिकारोंका नाश भी नहीं होता, फिर क्या बात है कि इसे पाप माना गया है ? हाँ, बलात्कार पाप है, परपुरुषसेवन या परस्त्रीसेवन पाप है, यह कहना ठीक है। परन्तु बलात्कार आदि इसलिये पाप नहीं कहे जा सकते कि उनमें मैथुन प्रसंग है, किन्तु इसलिये पाप कहे जा सकते हैं कि उनमें जबर्दस्ती की जाती है इसलिये वह हिंसात्मक है, उसमें छुपाकर काम किया जाता है इसलिये चोरी है, आदि। मतलब यह कि जिस मैथुनमें जबर्दस्ती नहीं है, चोरी नहीं है, उसे पाप कैसे कहा जा सकता है ?

मैथुनमें रागपरिणति है, इसलिये उसे पाप कहा जाय तब तो भोजनादि भी पाप कहलायेंगे। प्रत्येक इन्द्रियका विषय पाप कहलायगा। यदि उन सबको पाप माना जाय तो पापको पाँचही भागोंमें विभक्त क्यों किया ? मैथुनके समान अन्य इन्द्रियोंके विषय को भी स्वतंत्र पाप गिनना चाहिये था। अथवा ब्रह्मचर्यको भी भोगोपभोग परिमाण नामक व्रत में रखना चाहिये। इसे प्रधान पापोंमें क्यों गिना ? इन सब समस्याओंके ऊपर विचार करनेके पहिले ब्रह्मचर्यके विषयमें कुछ ऐतिहासिक विवेचन करलेना उचित है।

यह बात प्रसिद्ध है कि महात्मा पार्श्वनाथके समयमें चार ही व्रत थे, ब्रह्मचर्यव्रत नहीं था। ब्रह्मचर्यको नया व्रत बनाया महात्मा महावीरने। अब प्रश्न यह है कि यदि उस समय ब्रह्मचर्यव्रत नहीं था तो क्या उस समयके साधु सपत्नीक थे ? अथवा हर किसी स्त्रीसे सम्बन्ध स्थापित कर लेते थे ? अथवा ब्रह्मचर्यव्रतका पालन तो करते थे किन्तु उसे अपरिग्रहव्रतमें शामिल करते थे ? जैनशास्त्रोंके अनुसार पार्श्वतीर्थके साधु भी ब्रह्मचर्य रखते थे, किन्तु उसे वे अपरिग्रहमें शामिल करते थे। परन्तु इस मतमें यह सन्देह तो रह ही जाता है कि जैनशास्त्रोंका यह समन्वय ऐतिहासिक दृष्टिसे (Historical

Method) किया गया है या संगतताकी दृष्टिसे (Logical Method)। पार्श्वतीर्थके श्रमणोंका और महात्मा महावीरका जब समझौता होगया और दोनोंकी एकही परम्परा मानली गई तब यह बहुत सम्भव है कि एक परम्परा सिद्ध करनेके लिये ऐतिहासिकता को किनारे रखकर संगतताकी दृष्टिसे समन्वय किया गया हो। जैनशास्त्रोंके देखनेसे यह बात साफ़ मालूम होती है कि पार्श्वतीर्थमें शिथिलाचार बहुत आगया था, उस समयके मुनि ऐशाराम और कष्टोंको न सहनेवाले होगये थे*।

खैर, माना कि मैथुनविरति अपरिग्रहव्रतमें शामिल थी परन्तु इससे भी इतना तो मालूम होता है कि उस समय स्त्रीसेवनका पाप इतना ही बड़ा था जितना स्वादिष्ट भोजन या अन्य किसी इन्द्रिय विषयके सेवनका पाप हो सकता है। भगवान् महावीरके बाद ब्रह्मचर्यको जो महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ, वह उसे पहिले प्राप्त नहीं था।

जैनशास्त्रोंमें ही क्या, दुनियाँके सभी इतिहासों में इस विषयके पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं कि पहिले मैथुनको लोग कोई पाप नहीं समझते थे, यद्यपि वे अहिंसा, सत्य, अचौर्य और त्यागके गीत उच्चस्वर में गाने लगेथे।

महाभारतके अनुसार तो सतयुगमें स्त्रियाँ बिलकुल स्वच्छन्द थीं। वे चाहे जिसके साथ चली जाती थीं, उस समय उसमें अधर्म नहीं माना जाता था, वह धर्म ही था। यह धर्म उत्तर कुरुमें अभी भी पाला जाता है। इस समाजमें भी विवाहकी मर्यादा अभी थोड़े दिनोंसे आई है, जो कि उद्दालकके पुत्र श्वेतकेतु ने चलाई† है।

द्रौपदी पाँच पति‡ रखतीथी और फिर भी सती थी। इसीप्रकार हजारों स्त्रियाँ रखनेवाले राजा लोग भी अणुव्रती कहलाते थे। इतनाही नहीं, किन्तु वेश्यासेवन करनेपर भी उनका अणुव्रत नष्ट नहीं होता था।

जैनशास्त्रोंके अनुसार आदिम युगमें (भोगभूमिके युगमें) बहिन भाईही पतिपत्नी बनजाते थे। बादमें यह रिवाज़ तो बन्द हुआ; फिर मामाकी लड़की लेनेमें कोई ऐतराज़ न था। इससे मालूम होता है कि मैथुन के विषयमें पुराने लोगोंके विचार बहुत साधारण थे।

इस विषयमें ज्यों ज्यों सुधार होता गया त्यों त्यों हमारे साहित्यमें इन सुधरे रूपोंके वर्णन बढ़ते गये और पुराने रिवाजोंके वर्णन नष्ट होगये। फिरभी जो कुछ बचे हैं, वे कुछ कम नहीं हैं। परन्तु जिन देशों और जातियोंमें इस प्रकारके सुधार नहीं हुए उनमें मैथुन सम्बन्धी स्वच्छन्दता अब भी पाई जाती है। हमारे पड़ौसी तिब्बतमें जिसे संस्कृतमें स्वर्ग (त्रिविष्टप) कहते हैं, आजभी एक एक स्त्री अनेक पति रखती है।

बेबीलोन शहर आजसे पाँचहज़ार वर्ष पहिले एक प्रसिद्ध नगर था, जो भूगर्भस्थ होगया। उसकी खुदाई बहुत वर्षोंसे होरही है, जिससे हज़ारों वर्ष पुराने सामाजिक जीवन पर भी प्रकाश पड़ता है।

* जं सिप्पेगे पवेयन्ति सिसिरे मारुए पवायंते। तंसिप्पेगे अणगारा हिमवाए निवायमेसन्ति। टीका— पार्श्वनाथ तीर्थप्रव्रजिता गच्छवासिनः एव शीतार्दिता निवातमेषन्ति। वयं शालादिका वसती वातायनादिरहिताः प्रार्थयन्ति। किंच इह संघाटीशब्देन शीतापनोदक्षमं कल्पद्वयं त्रयं वा गृह्यते। ताः संघाटीः शीतार्दिता वयं प्रवेक्ष्यामः एवं शीतार्दिता अनगाराः अपि विदधति— आचाराङ्ग ९-२-१३।

† अनावृता किलपुरा स्त्रिय आसन वरानने। कामाचार विहारिण्यः स्वतंत्राश्चारुहासिनि॥ तासां व्युच्चरमाणानां कौमारात्सुभग पतीन् नाधर्मोऽभूद्वरारोहे सहि धर्मः पुराऽभवत्॥ तमद्यापि विधीयन्ते तिर्यग्योनि गता प्रजा। उत्तरेषु च रंभोरु कुरुष्वद्यापि पूज्यते॥ अस्मिंस्तु लोके न चिरान्मर्यादेयं शुचिस्मिते। उद्दालकस्य पुत्रेण स्थापिता श्वेतकेतुना॥ म. भा. आदिपर्व।

‡ एए णं सए पंचपंडवा वरिया, ततेणं तासिं वासुदेव पामोक्खाणं बहूणि राय सहस्साणि महया महया सद्देणं उग्घोसेमाणा २ एवं वयंति सुवरियं खलु भो दोवईए रायवर कन्नाए। हत्थिणाउरे नयरे पंचण्हं पंडवाणं दोवईए देवीए कल्लाणकरे भविस्सति। णायधम्मकहा १६-१२०।

खुदाईमें कई शिलास्तूप मिले हैं जो चारहजार वर्ष पुराने हैं और जिनमें उस समयके क़ानून खुदे हुए हैं। इससे मालूम होता है कि उस समय वहाँ देशकी प्रत्येक स्त्रीको-वह अमीर हो या ग़रीब-जीवनमें एकबार वेश्या अवश्य बनना पड़ताथा। मातापिता अपनी लड़कियोंको और पति अपनी पत्नीको पैसा ठहराकर परिमित समयके लिये दूसरोंके हवाले कर देतेथे। वहाँपर स्त्रियाँ एकही साथ अनेक पतियोंके साथ शादी करती थीं। पीछेसे उरुकागिना नामके एक सुधारक राजाने बहुपतित्वकी यह प्रथा बन्द करदी।

सीथियन जातिमें प्रत्येक स्त्री प्रत्येक पुरुषकी पत्नी है। इस प्रथासे वे लोग यह बड़ा लाभ समझते हैं कि इससे सब पुरुष आपसमें भाई भाई होकर रहेंगे। कौरस्था जातिमें भी ऐसाही अभेद समागम होता है।

केल्टिक जातिमें तो माँ और बहिन को भी पत्नी बना लिया जाता है। यही बात फेलिक्स अरेबियाके लोगोंमें है।

चीनमें फूचीके राज्यकाल तक यह प्रथा थी कि समस्त पुरुषोंका समस्त स्त्रियोंपर समान अधिकार था।

आस्ट्रेलियामें कुमारी अवस्थामें व्यभिचार करना बुरा नहीं समझा जाता। वहाँ पहिले विवाह की प्रथा थी ही नहीं। जब वहाँ कुछ सुधारकोंने विवाहकी प्रथाको चलाना चाहा तो स्थितिपालकोंने यह कहकर बहुत विरोध किया कि इससे हमारी स्वतन्त्रताका अपहरण होता है। परन्तु सुधारक, जो कि विजयी बननेके लिये ही पैदा होते हैं, जब बलवान् होगये तो स्थितिपालकोंको उनके साथ समझौता करना पड़ा और इस शर्तपर उनने विवाह-प्रथाको अपनाया कि विवाहके पहिले प्रत्येक कन्याको वेश्या का काम करना चाहिये।

आर्मीनियन जातिकी कुमारी लड़कियाँ वेश्या जीवन बितानेके लिये अनेटिस देवीके मन्दिरमें रख दी जाती थीं। इसके बाद वे किसी एक पुरुषसे विवाह करतीथीं।

प्राचीन रोममें, जो स्त्री विवाहके पहिले वेश्यावृत्ति से अगर कुछ धन पैदा न करले तो वह घृणाकी दृष्टि से देखी जाती थी। रैड इंडियन जातियोंमें भी यह कार्य उचित समझा जाता है। वहाँ कुटुम्बियोंकी अनुमतिसे स्त्रियाँ परपुरुषोंसे प्रेम-भिक्षा माँगती हैं।

किचनूक जातिके लोगोंके यहाँ जब कोई मेहमान आता है तब वे अपनी पत्नी या बेटी सहवासके लिये उपस्थित करते हैं। मेहमान अगर इस भेंटको अस्वीकार करदे तो इसमें वह घोर अपमान समझता है। चुकची जातिमें भी ऐसा ही रिवाज है। और यही हाल उत्तरी एशियाकी कमैस्कैडल और अलीटस जातियोंका है।

एस्किमो जातिमें दो एक रात्रिके लिये दो मित्र अपनी स्त्रियोंको बदल लेते हैं। इस प्रकार अपनी स्त्रीको मित्रके हवाले करना मित्रताकी पराकाष्ठा समझी जाती है। ऐसा मालूम होता है कि भारतवर्ष में भी ऐसा रिवाज था। यहाँ भी मित्रको पत्नी समर्पित करके मित्रताकी पराकाष्ठा बतलाई जाती थी। इसलिये इस प्रकारके चरित्रोंका चित्रण जैन-पुराणोंमें भी पाया जाता है।

विमलसूरिके 'पउमचरिय' और रविषेणाचार्य के पद्म-चरितमें दो मित्रोंकी ऐसी ही कथा है। यद्यपि इस प्रकार पत्नीप्रदानको जैनाचार्य अच्छा नहीं समझते, फिर भी इससे इतना तो मालूम होता है कि यहाँकी समाजमें कहीं और कभी ऐसे रिवाज होंगे तभी ऐसा चित्रण किया गया है, भलेही वे पीछे से निंदनीय होगये हों। खैर, वह कथा इस प्रकार है—

सुमित्र और प्रभव नामके दो मित्र थे। सुमित्र महाराजा था और प्रभव मामूली आदमी। परन्तु सुमित्रने धन देकर उसे श्रीमान बनादिया था। एक बार सुमित्र एक जंगलमें पहुँच गया। वहां एक भीलने उसके साथ अपनी लड़की (बनमाला) का विवाह कर दिया। इस नवविवाहिता पत्नीको देख

कर प्रभवको काम ज्वर होगया। सुमित्रने जब बीमारी का कारण प्रभवसे पूछा तो उसने कहदिया कि मेरा चित्त तुम्हारी पत्नीपर आसक्त होगया है। उसने जाकर तुरन्तही अपनी स्त्रीसे कहाकि तुम मेरे मित्र की इच्छा पूरी करो, मैं तुम्हें एक हजार ग्राम दूँगा। यह सुनकर वह अपने पतिके मित्र को सन्तुष्ट करने के लिये गई। उसका पति भी छुपकर उसके पीछे इस आशयसे आया कि अगर यह मेरे मित्रकी इच्छा पूर्ण न करेगी तो इसे मार डालूँगा।*

पीछेसे उसके मित्र प्रभवको ही यह कार्य अनुचित मालूम हुआ परन्तु इससे किसी समयके वातावरणको जाननेके पर्याप्त साधन मिलते हैं। इसलिये एस्किमो जातिका यह रिवाज अनुचित होने पर भी आश्चर्यजनक और भारतके लिये अभूतपूर्व नहीं मालूम होता।

मौंगोलकारेन, होडा और इहोटा जातिमें सतीत्व का जरा भी मूल्य नहीं है।

नाडकेर दुआमें वर्षमें एक त्यौहारके दिन सभी स्त्रियोंको व्यभिचार करनेके लिये छुट्टी दी जाती है। हमारे यहाँका होलीका त्यौहार शायद ऐसीही किसी प्रथाका भग्नावशेष है। और यहाँकी कुमारियोंको तो व्यभिचारकी पूरी छुट्टी है। वे वेश्यावृत्तिसे पहिले धन कमाती हैं, फिर उसी धनसे अपना विवाह करती हैं।

रेडकारेन लोग स्त्री–पुरुषके अभेद समागमका खूब समर्थन करते हैं। अगर उनको कोई इस प्रथाकी बुराई बतावे तो बाप-दादोंकी दुहाई देकर वे इसका समर्थन करते हुए कहते हैं कि–वाह! यह तो पुरानी रीति है। क्या हमारे पुरखा मूर्ख थे?

अपर कौंगो, टहोटी, मैकरोनेशिया, कैमरून, और पोल्यूर्द्वीपमें रहनेवाली जातियोंमें अपनी बहिन बेटीको थोड़े धनके लिये चाहे जिसके हवाले कर देते हैं। इससे न तो उनकी इज्जतमें बट्टा लगता है न उस कुमारीके विवाहमें कुछ अड़चन पैदा होती है।

बोटियाक लोगोंमें किसी कुमारीकी सबसे बड़ी शोभा यही है कि वह बहुतसे युवकोंसे फँसी हो। उसके पीछे अगर युवकोंका झुंड नहीं चलता तो उसके लिये यह अपमानकी बात है। अगर कुमारी अवस्थामें ही उसके बच्चा पैदा होजाय तो इससे उसका सन्मान और भी बढ़ता है। इससे वह श्रीमन्त घरानेमें बिवाही जाती है और उसके पिताको खूब धन भी मिलता है।

चिपचा जातिके किसी पुरुषको अगर यह मालूम होजाय कि उसकी पत्नीका कुमारावस्थामें किसी भी पुरुषके साथ सम्बन्ध नहीं था तो वह इसलिये अपने भाग्यको कोसने लगता है कि उसकी स्त्री इतनी तुच्छ है कि वह किसी भी पुरुषको आकर्षित न कर सकी।

प्राचीन जापानियोंमें यह रिवाज था कि पिताका ऋण चुकानेके लिये स्त्री व्यभिचारसे धन पैदा करती थी। और जब लड़की इस प्रकार पैसा पैदा करके आती थी तब कमाऊ पूतकी तरह उसका सन्मान बढ़ जाता था।

नीतिके अन्य अंगों पर भी ऐसा ही विवेचन किया जासकता है जिससे मालूम होगा कि हजारों वर्षोंके अनुभवने मनुष्यको नीतिधर्मकी शिक्षा दी है। आदिमयुगमें मनुष्य हिंसा, अहिंसा आदिको

* सुन्त्वा ग्रामसमस्थत्य दुयं मत्कानिमित्तकम्। सामाशु प्राहिणोत्तस्य सुमित्रो मित्रवत्सलः ॥३६॥ अविलंघ्य वचोऽस्य अथवा स्यादनुकूलिका। ततोनिग्रहमेतस्याः करोमि मुर्त्तिनिश्चतम् ॥३८॥ अथेतस्याश्च सुत्वा कामं सपार्श्वमितस्ततः। ततोग्रामसहस्रेण पूजयिष्यामि सुन्दरी ॥३९॥ पद्मचरित पर्व १२।

समिऊण तस्स वयणं प्रभवो परिअड्ढ दुक्खउप्पन्नो। दट्ठूण तस्स सहियं मोहिम आयल्लयं पत्ता ॥१८ सुमित्तउण वयणमेयं भणइ सुमित्तो निस्सासु वणमाले। वच्छ तुमं वासस्था पभवस्साय पसण्णमुही ॥१९॥ गाम सहस्सं सुन्दरि देमितुम जइ कोहमित ॥ अहन्नं नेच्छसि भद्दे धारे ते निग्गहं काहं ॥२०॥ सुणिऊण वयणमेयं वणमाला वत्थिया समप्पभो से। पत्ता पभवागारं तेणय सा पुच्छिया सहसा ॥२१–पउमचरियं उद्देस १२।

नहीं समझता था। धीरे धीरे सुख शान्तिकी खोज करते करते उसने अहिंसा आदिका आविष्कार किया। उनमें ब्रह्मचर्यका आविष्कार सबसे पिछला है। इसलिये महात्मा पार्श्वनाथके युगमें चारही व्रत हों, यह बहुत स्वाभाविक है। पीछेसे महात्मा महावीरने ब्रह्मचर्य नामक नया व्रत बनाया।

इतिहासके ऊपर इस प्रकार एक विहंगम दृष्टि डालनेसे इतना तो मालूम होता है कि मनुष्य समाज ने मैथुनको पाप बहुत देरमें समझा। और उसे स्वतंत्र पाप माननेकी कल्पना तो और भी देरमें उठी। इसका कारण यही है कि जिस प्रकार हिंसा झूठ चोरी आदि साक्षात् दुःखके कारण हैं, उस प्रकार मैथुन नहीं। परिग्रहसे तो मनुष्य बहुतसी सम्पत्ति एकत्रित करके दूसरोंकी गरीबी और बेकारीमें कारण होता है, परन्तु मैथुनमें तो इतनाभी दोष देखनेमें नहीं आता। इस प्रकार अन्य सब पापोंकी अपेक्षा मैथुनकी दुःखप्रदता बहुत कम होनेसे प्रारम्भका मनुष्यसमाज इसे पापमें न गिन सका। पीछे जब इसे अधिक अनुभव हुआ, उस अनुभवसे उसे सूक्ष्म दृष्टि प्राप्त हुई, तब वह मैथुनको संयममें रखनेका तथा पूर्ण ब्रह्मचर्यका आविष्कार कर सका। फिर तो इस दिशामें समाज इस प्रकार सरपट दौड़ा कि उसे मर्यादाका भी खयाल न रहा। ब्रह्मचर्यके नाम पर स्त्रियोंको जीते जलानेका, उन्हें बलाद्वैधव्य देनेका भी रिवाज पड़गया।

मैं पहिले कह चुका हूँ कि धर्म सुखके लिये है। इसलिये जो सुखका कारण है वह धर्म है, जो दुःखका कारण है वह अधर्म है। इस कसौटी पर कसकर यहाँ विचार करना चाहिये कि मैथुन कितने दुःखका कारण है ?

१—पराधीनता दुःखका कारण है। अन्य इन्द्रियोंके विषयोंमें जितनी पराधीनता है, उससे कई गुणी पराधीनता मैथुनमें है। अन्य इन्द्रियोंमें भोग्य या उपभोग्य सामग्री जड़ या जड़तुल्य होती है इसलिये उसमें इच्छा नहीं होती, जिसका हमें खयाल रखना पड़े। परन्तु मैथुनमें दूसरेकी इच्छाका पूरा खयाल रखना पड़ता है। अगर खयाल न रक्खा जाय तो वह हिंसात्मक और नीरस होजाता है। इसलिये वह अन्य विषयोंकी अपेक्षा दुःखप्रद है।

२—उपर्युक्त विषमता होनेसे उसमें पीछेका कार्य-भार और बढ़ता है। जैसे गर्भाधानादि होने पर जीवनकी शक्तियाँ उसीके संरक्षण आदिमें खर्च होने लगती हैं। जो विश्वको कुटुम्ब मानकर उसकी सेवा करना चाहता है उसकी शक्तियोंका बहुभाग इस छोटेसे कुटुम्बकी सेवामें लगजाता है। और इसके लिये उसे थोड़ी बहुत मात्रामें परिग्रहादि अन्य पापों को भी स्वीकार करना पड़ता है।

३—अन्य इन्द्रियोंके विषय शारीरिक और मानसिक शक्तिका क्षय नहीं करते या इतना नहीं करते जितना मैथुनसे होता है। बल्कि भोजनादिसे शक्ति की वृद्धि तक होती है। इसलिये भी मैथुनको अन्य विषयोंकी श्रेणीसे जुदा किया गया है।

४—मैथुनसेवनके बाद एक प्रकारकी ग्लानि पैदा होती है, इसलिये यह सुख पीछेसे ग्लानिरूप दुःख का देनेवाला है।

५—इसमें स्थायिता नहीं है।

६—जल, वायु और भोजनादि जिस प्रकार जीवनके लिये आवश्यक हैं, उस प्रकार मैथुन नहीं। इसलिये मैथुनसेवन विकारोंकी तीव्रताका सूचक होनेसे पाप है।

प्रश्न—जिस प्रकार भोजन वगैरह शरीरकी माँग है, उसी प्रकार मैथुन भी शरीरकी माँग है। शरीरकी इस माँगकी अगर पूर्ति न की जाय तो इसका शरीर पर बुरा प्रभाव पड़ता है, और अनेक तरहकी बीमारियाँ भी पैदा होजाती हैं।

उत्तर—बीमारियाँ पैदा होती हैं तब, जब इच्छाएँ तो पैदा होकर हृदयमें घूमती रहती हैं और उनको कार्यरूपमें परिणत होनेका मौका नहीं मिलता। परन्तु उन इच्छाओंका अगर रूपान्तर करदिया जाय तो मैथुनकी आवश्यकता नहीं रहती। ऐसी वास-

नाएँ मातृभक्ति, भगिनीप्रेम, पुत्रीवात्सल्य, विश्वप्रेम, दीनसेवा आदि अनेक सद्वृत्तियोंमें परिवर्तित हो सकती हैं। जब हमारे ऊपर कोई भयंकर विपत्ति आजाती है या असह्य इष्टवियोग होजाता है तब ऐसी वासना लुप्त हो जाती है अर्थात् उसका रूप परिवर्तित हो जाता है।

प्रश्न—जब तक इन सद्वृत्तियोंका प्रभाव तीव्र रहता है तभीतक वे मैथुनकी वासना परिवर्तित करती रहती हैं, परन्तु कोई भी सद्वृत्ति सदैव तीव्र नहीं रह सकती। ज्योंही उसमें कुछ मन्दता आयगी, मैथुनकी वासना अपनेही रूपमें काम करने लगेगी।

उत्तर—ऐसे भी कुछ असाधारण लोकोत्तर व्यक्ति होते हैं या हो सकते हैं जिनकी सद्वृत्तियाँ सदैव इतनी तीव्र बनी रहती हैं जिससे कामवासना परिवर्तितरूपमें ही बनी रहे। यह बात अवश्य है कि ऐसे व्यक्ति करोड़ोंमें एकाधही होते हैं, परन्तु होते हैं। फिर भी यह राजमार्ग नहीं कहा जा सकता इसलिये उचित यही है कि इस प्रकार तीव्रवेगके समयमें विवाहित जीवन बिताया जाय। आजकलके हिसाबसे पैंतालीस या पचासवर्ष तककी उमर तक इस प्रकार जीवन बिताना चाहिये। इतना समय तो बहुतही पर्याप्त है, परन्तु इससे भी कम समयमें इस वासनाका वेग इतना मंद हो सकता है जो कि सरलतासे दूसरी सद्वृत्तियोंके रूपमें परिवर्तित किया जा सके।

मैथुनकी वासनाका वेग सामाजिक परिस्थिति पर भी निर्भर है। कई प्राचीन जातियाँ ऐसी भी हैं जिनमें कामवासनाकी आश्चर्यजनक मन्दता पाई जाती है। स्त्रियोंका मासिकधर्म कामवासनाका ही सूचक है परन्तु ऐस्किमो आदि जातिकी स्त्रियोंके वर्षमें तीन बार ही ऋतुकाल आता है। इसी प्रकार पुरुषभी कामका आवेग कम होनेसे शीघ्रही स्खलितवीर्य नहीं होते। ये सब बातें वंशपरम्पराका फल हैं। परन्तु जिन लोगोंको यह परिस्थिति प्राप्त नहीं है वे कुछ समय संयत मैथुनसे अपनी वासनाओंके वेगको कम करें, बादमें उसको अन्य सद्वृत्तियोंमें परिवर्तित करें।

प्रश्न—मैथुनमें जो आपने दोष बतलाये हैं उनका बहुत कुछ परिहार किया जा सकता है। अगर पति-पत्नी दोनोंही संयमी हों तो उनकी इच्छाओंका बलात्कार एक दूसरेपर नहीं होसकता, इससे पराधीनताका कष्ट बहुत कुछ कम हो जाता है। जब अनिच्छापूर्वक कोई काम करना पड़ता है तब पराधीनताका कष्ट होता है। यदि दोनों संयमी हों तो कोई किसीको विवश न करेगा। जब दोनों स्वेच्छासे राजी होंगे तब पराधीनताका कष्ट न रहेगा। गर्भाधानादि रोकनेके लिये कृत्रिम उपायोंसे काम लिया जा सकता है। इसलिये दूसरा भी दोष दूर होजाता है। तीसरा दोषभी इतना जबर्दस्त नहीं है क्योंकि मात्रासे अधिक मैथुनही शक्तिक्षय करता है अगर थोड़ा हो भी तो वह इतना नहीं होसकता जिससे कि मनुष्य कर्तव्यच्युत होजाय। ग्लानिका कारण भी जबर्दस्त नहीं है क्योंकि वह तृप्तिका फल है। यों तो पेट भरनेके बाद भोजन से भी ग्लानि होजाती है, परन्तु इससे भोजन पाप नहीं हो जाता। स्थायिता न हो तो क्या हानि है? जब अन्तमें वह दुःखप्रद नहीं है, तब क्षणिक हो इससे भी लाभ ही है; थोड़ा सही, पर है तो लाभ ही। विकारकी तीव्रता नामक दोष भी विशेष महत्त्व नहीं रखता, क्योंकि जब यह पाप सिद्ध होजाय तभी इसमें विकारकी तीव्रताका दोषारोप किया जा सकता है। उपर्युक्त चार कारण न होनेसे यह कारण भी नहीं रहता।

उत्तर—यद्यपि दोषोंका यह परिहार बिलकुल निर्बल नहीं है, फिर भी कुछ बातें ऐसी हैं जिनसे यह बात मानना पड़ती है कि मैथुन पूर्णसुखमें बाधक है। पहिला परिहार यद्यपि सम्भव है फिर भी इतना दुर्लभ है कि अपवादके नाम पर उसका उल्लेख ही किया जा सकता है, नियमरूपी राजमार्गमें उसको जगह नहीं दी जा सकती। दूसरा परिहार ठीक कहा

जा सकता है और तीसरा भी किसी तरह ठीक है, परन्तु चौथा कुछ विचारणीय है; क्योंकि संगीत आदिके श्रवण करनेसे जो तृप्ति होती है उसका फल ऐसी ग्लानि नहीं है जैसीकि यहाँ होती है। इसलिये अन्य विषयोंकी तृप्तिकी अपेक्षा इसकी तृप्ति कुछ विचित्र है। पाँचवाँ परिहार इससे भी अधिक विचारणीय है क्योंकि क्षणिक सुखका परिणाम दुःख है। जिसका संयोग सुखरूप है उसका वियोग दुःख रूप होता है। अगर संयोगका समय अल्प और वियोगका समय अधिक है, तो यह मानना चाहिये कि सुखकी अपेक्षा दुःख अधिक है। इसलिये अगर संयोगज सुखका भोग ही करना हो तो यथाशक्ति ऐसा भोग करना चाहिये जिसमें संयोग अधिक और वियोग कम हो। इस दिशामें मैथुनका प्रचलितरूप बहुत निम्न श्रेणीका ठहरता है इसलिये जैनशास्त्रों में मैथुनके विविध रूपोंका वर्णन है। इस वर्णनसे यह बात मालूम होती है कि ज्यों ज्यों सभ्यताका विकास और सुखकी वृद्धि होती है त्यों त्यों मैथुनका प्रचलितरूप विकसित होता जाता है और अन्तमें ब्रह्मचर्यमें परिवर्तित हो जाता है।

जैनशास्त्रोंमें देवगतिका जो वर्णन मिलता है उसमें इस सिद्धान्तका सुन्दर चित्रण है। देवगतिके इस वर्णनपर अगर विश्वास न भी किया जाय तो भी इस सिद्धान्तकी सत्यताको धक्का नहीं लगता, क्योंकि वर्तमानमें अपने अनुभवसे भी इस चित्रण की सत्यता समझ सकते हैं।

पहिले और दूसरे स्वर्गके देव मनुष्योंके समान ही मैथुन करते हैं। तीसरे और चौथे स्वर्गके देव आलिङ्गनादिसे ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। इससे आगे के देव सौन्दर्यके अवलोकनसे सन्तुष्ट हो जाते हैं। इससे आगे सहस्रार स्वर्ग तकके देव संगीत सुननेसे ही संतुष्ट हो जाते हैं और इससे आगेके देव मानसिक सङ्कल्पसे ही संतुष्ट हो जाते हैं। और इससे आगेके देवोंके मैथुनकी वासनाही नहीं होती—वे ब्रह्मचारीकी तरह होते हैं। ये देव सबसे अधिक सुखी माने जाते हैं। इससे कमसुखी मानसिक सङ्कल्प वाले, उनसे भी कमसुखी संगीतसे सन्तुष्ट होनेवाले, उनसे भी कम सौन्दर्यसे सन्तुष्ट होनेवाले और उससे कम आलिंगनसे सन्तुष्ट होनेवाले और उससे भी कमसुखी साधारण मैथुन करनेवाले हैं। जैनधर्ममें देवगतिमें संयम नहीं माना जाता, इसलिये सुखकी यह अधिकता संयमकी दृष्टिसे तो है नहीं, इसलिये यह एक विचारणीय बात है कि यह सुख किस दृष्टि से अधिक है? निरीक्षण करनेसे इस सुखका कारण स्थायिताही मालूम होता है। मनुष्योंके समान मैथुन बहुत थोड़े समय तक किया जा सकता है और पीछे से इसमें ग्लानि अधिक है। इसकी अपेक्षा आलिङ्गन आदि अधिक समय तक हो सकता है और इसमें ग्लानि कम है। रूपदर्शन इससेभी अधिक समय तक हो सकता है और स्पर्श न होनेसे इसमें ग्लानि और भी कम है। तथा संगीत तो और भी अधिक आकर्षक तथा स्थायी है और शरीरके अवयवोंका प्रत्यभिज्ञान भी इससे कम होता है इससे ग्लानि तो बिलकुल कम है। मानसिक विचार तो इन सबसे अधिक समय तक स्थायी रह सकता है, इसमें पराधीनता भी नहीं है और ग्लानिके कारणों का किसीभी इन्द्रियसे प्रत्यक्ष नहीं होता इसलिये यह और भी अधिक सुखमय है। और ब्रह्मचारीके समान रहनेवाला तो मानसिक दृष्टिसे भी बिलकुल स्वतंत्र और निराकुल रहता है इसलिये उसका सुख सबसे अधिक है।

* दिगम्बर सम्प्रदायके अनुसार ब्रह्म ब्रह्मोत्तर लान्तव और कापिष्ट स्वर्गके देव। श्वेताम्बर सम्प्रदायमें ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर स्वर्ग एक ही ब्रह्म नामसे पुकारा जाता है। इसी प्रकार लान्तव और कापिष्ट लान्तव नामसे। आगे के शुक्र महाशुक्र, महाशुक्रके नामसे, और शतार सहस्रार, सहस्रारके नामसे। इस प्रकार दिगम्बर सम्प्रदायमें स्वर्गकी संख्या १६ और श्वेताम्बरमें १२ है। वस्तुस्थिति में कुछ भेद नहीं है। फिर भी १२ की मान्यता प्राचीन और दोनों सम्प्रदायोंमें प्रचलित है।

उपर्युक्त क्रम विकासवादकी दृष्टिसे भी उचित मालूम होता है। पशुओंमें स्त्री-पुरुषका सुख प्रायः साधारण मैथुनकी क्रियामें समाप्त हो जाता है। जब कि मनुष्योंमें इससे आगेकी चारश्रेणियाँ (स्पर्श रूप शब्द मन) भी पाई जाती हैं। ज्यों ज्यों सभ्यता का विकास होता है त्यों त्यों कलाओंका भी विकास होता है, और पाशविक लिप्सा कलाप्रेममें परिणत होती जाती है। इससे इतना अवश्य मालूम होता है कि सुखकी वृद्धि ब्रह्मचर्यकी दिशामें ही है।
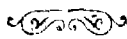
सुधारकी ओट।

जब कोई आन्दोलन इतना जोरदार हो जाता है कि जनसाधारणके हृदय पर ज्ञात या अज्ञात रूपमें उसकी छाप पड़जाती है तब स्वार्थी लोग उसकी ओटमें नाना अनर्थ करने लगते हैं। एक दिन वह था जब किसीको सुधारक कहनेसे वह चिड़ताथा परन्तु आज वह दिन है, जब सुधारकता गौरवकी वस्तु होगयी है। सुधारके विरोधी भी अब अपनेको सुधारक कहने लगे हैं।

सुधारकी इस विजयसे कुछ लोग इसकी ओट में अनर्थ भी करने लगे हैं। विधवाविवाह प्रचारकी ओटमें कुछ लोगोंने दुराचार तथा अर्थोपार्जनके अड्डे बनालिये हैं। ऐसे लोग विधवाविवाहके प्रगट विरोधियोंकी अपेक्षा अधिक भयंकर हैं। ये लोग सुधारमार्गके भयंकरसे भयंकर कण्टक हैं।

आगरेके वनिताआश्रमको लेकर जैनपत्रोंमें काफी चर्चा हुई है। यद्यपि बिना निरीक्षण किये स्पष्टरूपमें कुछ नहीं कहा जासकता फिर भी इस विषयके जो अनेक समाचार छपे हैं और दोनों तरफके खुलासे प्रकट हुए हैं उस परसे सहज ही यह शङ्का होसकती है कि आश्रमके विरोधियोंने अगर नमक मिर्चसे भी काम लिया हो तो भी कुछ दालमें काला जरूर है। यदि यह बात वास्तवमें सत्य है तो मैं ऐसी बातों का सख्त विरोधी हूँ। सुधारकी ओटमें अनिच्छनीय काम करनेवालोंको इस कार्यसे विरत होना चाहिये। परन्तु इस मामलेपर विचार करनेकी दूसरी बाजू भी है। प्रश्न यह है कि ऐसा क्यों होता है? सुधारकी ओटमें जहाँभी कहीं स्वार्थी लोग जो स्वार्थ-सिद्धि करते हैं उनको ऐसे अवसर कैसे मिलजाते हैं? इसका कारण समाजकी मूढ़ता और जड़ता है। अब यह बात मान्य होगई है कि विधवाविवाह आवश्यक है। विरोध करनेपर भी विधवाविवाह रुक नहीं सकते, न रुकते हैं। फिरभी बहुतसे लोग अपनी सन्तानका विधवाविवाह नहीं करते। वे अपनी विधवा-कन्याओंको भागजाने देते हैं या अड्डोंमें भगा देते हैं और इससे वे दुःखी भी होते हैं परन्तु उनमें इतनी हिम्मत नहीं होती कि जिस प्रकार वे कुमारी कन्याका विवाह करते हैं उसी प्रकार विधवा-कन्या का विवाह भी करें। अगर लोग अपनी विधवा बहिन बेटियोंका विवाह अपने अभिभावकत्वमें करें तो इस प्रकारके अड्डे बननेभी न पावें और चुनावभी अच्छा होनेसे विवाहित दम्पतिका दाम्पत्य जीवन भी अधिक सुखमय बने। जबतक लोग अपनी जिम्मेदारियोंको नहीं समझते तब तक ऐसे अड्डे के नाश करनेका कोई रामबाण उपाय नहीं मिल सकता। अगर एक अड्डेको नाश किया जायगा तो दूसरा हो जायगा। इसलिये सबसे अच्छा मार्ग यही है कि जो सुधारक बनगये हैं वे हिम्मतसे कार्यक्षेत्रमें आगे बढ़ें; जो लोग सुधारक नहीं हुए हैं वे अब सुधारकोंको गाली देनेमें अपना और अपनी सन्ततिका जीवन बर्बाद न करें। वे समय और सत्यके आगे सिर झुकावें। सुधारकी छाप जनसाधारणके हृदयमें इस जोरसे लगी है कि कोई कितनी भी कोशिश क्यों न करे, वह छाप उड़ नहीं सकती। सिर्फ इतना किया जा सकता है कि उसकी ओटमें पाप न हो। इसका अव्यर्थ उपाय यही है कि लोग अपनी जिम्मेदारीका काम अपने सिरपर लें।

बाबू जमनाप्रसादजी।

वीर युवक बाबू जमनाप्रसादजीके साहससे समाज बहुत कुछ परिचित है। आप उच्चश्रेणीके

अफसर होते हुए भी सामाजिक कार्योंमें जैसा भाग लेते हैं, वह प्रशंसनीय है। कई वर्ष पहिले आपने एक वृद्धविवाह रुकवायाथा। जिसमें आपको मार भी सहना पड़ी थी। इसीप्रकार अभीभी आपने अपने सत्साहससे एक कन्याकी रक्षा की है, जिसके लिये आप गिरफ्तार भी किये गये और बादमें निर्दोष साबित होकर छूटे। आपका यह साहस प्रशंसनीय और युवकोंके लिये आदर्श है। क्या मैं आशा करूँ कि जैनसमाजके युवक अपनी अकर्मण्यताको त्याग कर कुरीतिनिवारण और सुधारके प्रचारमें अपना जीवन लगानेकी कोशिश करके बाबू जमनाप्रसादजी का अनुकरण करेंगे ?

विरोधी मित्रोंसे।

(२१)

आक्षेप (६६)—लौकान्तिक देवोंको आप विशेष मनुष्य क्यों कहते हैं? भगवान्‌को वैराग्य होनेपर विशेष मनुष्योंके प्रार्थना करनेकी क्या आवश्यकता है? कोई भी आचार्य इस बातसे सहमत नहीं है। जिन आचार्योंकी बातसे आप अपनी बात पुष्ट करते हैं उन्हींकी अवहेलना करते हैं।

समाधान—देवागमन आदिको भक्तिकल्प्य सिद्ध करदेने से लौकान्तिक देवोंका आना आपही से असिद्ध हो जाता है। इसलिये इस कल्पनाका मूल ढूँढ़ना पड़ता है। किसी मनुष्यमें योग्यता भी होती है और वह कुछ करना भी चाहता है, परन्तु लोकमतके अनिश्चित होनेसे वह समयकी बाट देखता रहता है। ऐसे समयमें अगर कुछ लोग अनुकूल विचार प्रगट करते हैं तो उसे बड़ी सुविधा हो जाती है। लौकान्तिक देवोंकी घटना किसी ऐसीही घटना का रूपान्तर है। अगर रूपान्तर न माना जाय तो उसे बिलकुल असत्य और निर्मूल मानना पड़ेगा। आचार्योंकी या शास्त्रोंकी जो बात सत्यके अनुकूल है वह मानी जाती है; जो नहीं है, वह नहीं मानी जाती। इस बातको मैं अनेकबार कह चुका हूँ।

इसके बाद केवलज्ञानके विषयमें लिखा गया है, परन्तु इसका उत्तर तो 'जैनधर्मका मर्म' शीर्षक लेखमालाका चतुर्थ अध्याय है। इसलिये अब उसकी दोहरानेकी आवश्यकता नहीं मालूम होती।

आक्षेप (६७)—बारह वर्ष मौन रखनेका मतलब धर्मप्रचार नहीं करना नहीं हो सकता, क्योंकि धर्मप्रचारके सिवाय और कोई बातचीत भगवान करही नहीं सकते।

समाधान—किसी गाँवको जाते समय किसी से रास्ता पूछना आदि बहुतसे अवसर हैं जिस समय बातचीत की जाती है। भगवान महावीरने भी वह की थी। इसे धर्मप्रचार नहीं कह सकते। इसके अतिरिक्त धर्मप्रचारके लिये धर्म-संस्थाकी स्थापना करना और उसे नियमोंसे बद्ध करना एक बात है, और साधारण वार्तालापमें आनुषङ्गिक धर्मकी बात आना दूसरी बात है। जिस प्रकार विशेष धनसे धनी विशेष परिश्रमसे परिश्रमी आदि शब्दोंका प्रयोग होता है उसी प्रकार विशेष धर्मप्रचारमें धर्मप्रचार शब्दका प्रयोग है। अगर कोई कहे कि अमुक मनुष्य बड़ा आलसी है, वह परिश्रम नहीं करता और उसके विरोधमें कोई कहे कि वह रोटी तो खाता है, क्या कौर बनानेमें और मुँहसे चबानेमें परिश्रम नहीं होता? बस, आक्षेपकने धर्मप्रचार शब्दका भी ऐसाही दुरुपयोग किया है।

इसके बाद आक्षेपकने मेरे ऊपर यह दोषारोपण किया है कि मैं अपनेको तीर्थंकर घोषित करना चाहता हूँ आदि। इसके उत्तरमें कुछ कहना व्यर्थ है।

आक्षेप (६८)—महावीर स्वामीको आपने जीर्णोद्धारक लिखा है और अब नवीनमार्गकी खोज करनेवाला बतलारहे हैं।...... जिन नियमोंको आप मार्ग समझते हो वह मार्ग नहीं है। मार्ग तो निवृत्ति स्वरूप एकही है, साधनोंमें जरूर कुछ भेद है।

समाधान—मैंने 'नवीनमार्ग' नहीं किन्तु 'मार्ग' की खोज करनेवाला लिखा है। नवीन शब्द आक्षेपकने ऊपरसे मिला लिया है। फिर खोज करने वालेका अर्थ बनानेवाला नहीं है। वह तो जीर्णोद्धारकसे भी पीछे है, जबकि उसे आप आगे समझ रहे हैं। 'साधनोंमें भेद है, मार्गमें नहीं'—यह कहना ठीक नहीं; क्योंकि साधनोंका भेदही तो मार्गका भेद है।

नवीनता और बनाना ये शब्द आपेक्षिक हैं। द्रव्य और सामान्यकी दृष्टिसे नवीनता कहीं नहीं होती, न कोई चीज़ बनाई जाती है।

आक्षेप (६९)—"भगवानने कैवल्य प्राप्त करनेके बाद जैसे नियमोपनियम बनाये, वे सब भगवानको पहिलेसे मालूम नहीं थे"—आपकी यह बात आश्चर्यजनक है। यदि ऐसा था तो बिना नियमोंके भगवानने केवलज्ञान कैसे पैदा किया? यदि कर लिया तो फिर नियमोपनियमोंको बनानेकी क्या ज़रूरत हुई? क्या कार्यके बादभी कारण बनाये जाते हैं? और जब मार्ग कोई निश्चित नहीं था तो आप यह कैसे लिख गये कि जैनधर्मके मुताबिक अनंत ईश्वर होगये? उनके लिये कुछ नियम तो होंगे! क्या उन नियमों पर भगवान नहीं चल सकते थे?

समाधान—नियमका मतलब प्रकृतिके नियम नहीं, किन्तु आचार शास्त्रके बाहिरी नियम हैं जो कि द्रव्यक्षेत्रकालभावके अनुसार बदलते रहते हैं। अपनी और समाजकी कमजोरियाँ और असुविधाएँ अनुभवसे मालूम होती हैं तदनुसार नये नियम बनाये जाते हैं। सभी समयके लिये सब नियम एक समान नहीं होते।

अगर किसीने नयी सड़क बनायी हो, फिर उसके विषयमें यह कहा जाय कि यह सड़क पहिलेही बनी थी. अन्यथा वह किस परसे चलताथा? और अगर बिना सड़कसे चलता था तो सड़क बनानेकी ज़रूरत क्या थी? ठीक इसी तरहका कथन आक्षेपकका है। वे इस बातको भूलजाते हैं कि भगवान महावीरने अपनेलिये मार्ग नहीं बनाया था किन्तु दूसरेके उद्धार के लिये बनाया था, जिससे ऐसे व्यक्तिभी मोक्षमार्गमें आगे बढ़ें, जो महावीर बराबर योग्यता नहीं रखते थे; अथवा जो रखते थे वे बिना भटके जल्दी बढ़ सकें।

दूसरे जीव भी मोक्ष गयेथे, किन्तु वे अपने अपने द्रव्यक्षेत्रकालभावके अनुसार बने हुए नियमोंसे गये थे। वे नियम इस समय काम नहीं आ सकते थे, उनमें अवस्थानुसार परिवर्तनकी आवश्यकता थी। इसके अतिरिक्त भूतकाल का अनन्त इतिहास न तो कोई जान सकता है, न भगवान महावीर जानते थे। अगर सब नियम जानते भी होते तो कौन कौन नियम उपयोगी हैं इसका अनुभवमूलक निर्णय करना पड़ता। यहभी नवीनता है। यों तो सामान्य दृष्टिसे नवीनता असम्भव है।

आक्षेपकने अनेक स्थानोंपर इस बातका आक्षेप किया है कि 'यह बात तो आपके मान्य श्वेताम्बर शास्त्रोंके भी विरुद्ध है'। बहुतसे लोगोंको यह भ्रम हुआ है। उन्हें जानना चाहिये कि किसी शास्त्रके विरुद्ध होजाने से कोई बात मेरे विरुद्ध नहीं हो जाती, और न किसी शास्त्रके अनुकूल होजाने से मेरे अनुकूल हो जाती है। अगर किसी विषयमें श्वेताम्बर शास्त्रोंमें मतभेद है तो भलेही रहे उससे मुझे क्या? मैं तो चुनकर वह बात लिखूँगा जो अधिक सम्भव और स्वाभाविक मालूम होगी। जो बात मैं नहीं मानता और वह श्वेताम्बर शास्त्रोंमें उल्लिखित है, उसे मेरे वक्तव्यके साथ जोड़ देना भूल है। वस्त्रके विषय में श्वेताम्बर शास्त्रोंने कुछ भी लिखा हो, उनकी आलोचना करनेसे मेरे कथनकी आलोचना नहीं होती।

आक्षेप (७०)—जब भगवानने परिग्रहका त्याग कियाथा तो दीक्षाके समय बहुमूल्य वस्त्र क्यों रक्खा? क्या उनके घरमें कमक़ीमती कपड़ा नहीं था? या राज्यपदकी बू भगवानके दिमाग़में रहगई थी?

समाधान—साधु नग्न भी होते हैं, और वस्त्रधारी भी। महावीर राजकुमार थे इसलिये कुटुम्बियों

ने संन्यासके लिये जो वस्त्र दिया वह क़ीमती था। इसमें आश्चर्यकी क्या बात है? भगवान वीतराग थे परन्तु उनके कुटुम्बी वीतराग नहीं थे। इसलिये वे कमक़ीमती कपड़ा कैसे देते? इससे महावीरकी वीतरागतापर कुछ भी धक्का नहीं लगता। जैसे किसी साधुको भिक्षामें स्वादिष्ट भोजन मिलजाय तो वह जिह्वालोलुप नहीं कहलाता, उसी प्रकार मूल्यवान वस्त्र रखनेपर भी भगवान महावीर वस्त्रलोलुप नहीं कहला सकते। आश्चर्य तो यह है कि आक्षेपक सरीखे लोग दीक्षाके समय भगवानका पालकी में बैठना स्वीकार करते हैं। उस समय नहीं सोचते कि भगवान्‌के दिमाग़में राजपदकी बू रहगई थी! और समवशरणमें सिंहासनस्थ भगवानके विषयमें तो सोचेंगे ही क्यों?

आक्षेप (७१)—दीक्षा लेनेके बादभी ब्राह्मणने भगवानसे भिक्षा क्यों माँगी? भगवान् क्या वेष से त्यागी नहीं मालूम होतेथे?

समाधान—क्या आक्षेपकने कभी यह शंका की है कि भगवान ऋषभदेव तो त्यागी होगये थे, नग्न भी थे, फिर नमि विनमि उनके साम्हने भिक्षा माँगने क्यों आगये थे? बात यह है कि भिक्षार्थी–स्वार्थी व्यक्ति–साधु श्रावकका विचार नहीं करते, किन्तु जिसे वे अपनेसे अच्छा या उच्च समझते हैं उससे माँगने लगते हैं। यही कारण है कि आधा वस्त्र माँग लेनेपर भी वह फिर आधा वस्त्र लेनेकी नियतसे आगया। किन्तु अबकी बार लज्जावश वह माँग न सका, किन्तु एकबार गिरजाने पर महावीर की इच्छा या उपेक्षा जानकर वह लेगया। यह कहना कि दर्जी बेचारा कपड़ेका मूल्य क्या जाने, बिलकुल बेहूदा तर्क है। कपड़ेका मूल्य तो साधारण आदमी भी समझते हैं, फिर दर्जी तो कपड़ेका काम करने वाला ही ठहरा। इसलिये दर्जीने अधिक मज़दूरी मिलनेके स्वार्थवश ब्राह्मणसे यह बात कही हो, यह बहुत स्वाभाविक है।

आधे कपड़ेका कन्धे पर डाल लेना, या बड़ी झाड़ीसे फँसजाना और काँटे सुलझानेकी अपेक्षा कपड़ाही छोड़देना, या ब्राह्मणके उठाने पर उसका त्यागही करदेना—ये सब घटनाएँ स्वाभाविक हैं, शिथिलमोहीके ये सब सम्भव हैं।

आक्षेपकका सत्रहवाँ लेख इस समय मेरे पास नहीं है। १८ वें लेखका उत्तर और दिया जाता है।

आक्षेप (७२)—महावीर स्वामीका कुलपतिके आश्रममें रहना नहीं बन सकता। अन्यदृष्टियोंकी विनय करना तो जैनधर्मके विरुद्ध है, फिर महावीर कुलपतिको नमस्कार क्यों करते? नग्न महावीरका कुलपतिके आश्रमवालोंसे जोड़ कैसे मिल सकताथा? आश्रममें जब बहुतसे साधु रहतेथे तब उसे एकान्त कैसे कहा जा सकताथा? और महावीर इस बातपर विश्वास कैसे कर सकते थे? वे ढब्बू नहीं थे।

समाधान—धर्मसंस्था बनानेके पहिले अन्य दृष्टि और परदृष्टिका भेद नहीं हो सकताथा। दूसरे सम्प्रदायवालों को विनय न करनेका नियम बहुत पिछला है, मौलिक और सत्य नहीं है। व्यावहारिक शिष्टाचारकी दृष्टिसे वयोवृद्धादिको नमस्कार करना अनुचित नहीं है।

दूसरा वेष हो जानेसे हम पास ही नहीं रह सकते, यह संकुचित भावना न तो भगवान महावीरमें थी, न कुलपतिमें।

एकान्त शब्दका अर्थ आपेक्षिक होता है। कोई आदमी जङ्गलमें जाकर एकान्त सेवन करता है तो इसका यह मतलब नहीं है कि वहाँ पशुपक्षी आदि भी नहीं होते। एकान्त शब्दका व्यवहार अमुक अपेक्षासे होता है। कुलपतिके आश्रममें दूसरे साधु थे, परन्तु गृहस्थोंकी बस्ती न होनेसे वह एकान्त कहलाया। अन्यथा एकान्तमें कोई आश्रम बन ही न सकेगा। दो आदमी भी एकान्तमें न बैठ सकेंगे क्योंकि दो होनेसे ही एकान्तता नष्ट हो जायगी।

आक्षेप (७३)—भगवानने स्वयं तो नियम अभी बनाये नहीं थे और दूसरोंके नियमोंपर चलते नहीं थे फिर उनने चौमासेमें एक जगह रहनेका नियम क्यों पाला ? जो झोंपड़ी उनके निमित्तसे बनायी गई थी, उसमें वे क्यों रहे ? इन्द्रको उत्तर देते समय उनने कहाथा कि मैं दूसरोंके बलपर नहीं रह सकता, फिर भी तापसोंकी सेवा क्यों स्वीकार की ? ऐसे निर्दय लोगोंके आश्रममें क्यों रहे ? एकदम चला जाना चाहिये था। कुलपतिको महावीरकी नग्नता क्यों न खटकी ? जबकि उसे यह बात खटकी थी कि महावीरने झोंपड़ीकी रक्षा क्यों न की ? अगर महावीर को तापसोंका आचरण पसंद था, तो उनने जैनसम्प्रदायकी दीक्षा क्यों ली ? क्या उन्हें सम्प्रदायोंके विषयमें कुछ ज्ञान नहीं था ?

समाधान—भ्रमणशील साधुको चौमासेमें एक जगह रहना पड़ता था, यह नियम किसी सम्प्रदाय विशेषका नहीं, किन्तु प्रायः सभी सम्प्रदायके साधु इसका सापवाद या निरपवाद पालन करतेथे। महावीरने नियम बनाये और चुनाव किया। अनुभवके लिये नियमोंका पालनभी किया; जो अच्छे मालूम हुए रक्खे, बाकी छोड़ दिये; याउसके बदलेमें नये बनाये। अपने निमित्तसे बनी झोंपड़ीमें रहना कि नहीं, उस समय उनने यह नियम भी नहीं बनाया था।

दूसरोंके बलपर न रहना या दूसरोंकी पर्वाह न करना, इसका अर्थ यही है कि ऐसे लोगोंकी सहायता न लेना जो निवृत्तिमार्गके पथिक नहीं हैं या ऐसी सहायता न लेना जिससे तपस्या आदिका मूल्य ही न रहजाता हो। एक साधु दूसरे साधुकी साधारण सहायता स्वीकार करे, इसमें कोई आपत्ति नहीं है। अगर हरएक प्रकारकी सहायता लेना पाप हो, तब तो मुनि भोजन भी न कर सकेगा, धर्मोपकरण भी न ले सकेगा।

जब तक किसीके पासमें न रहा जाय, तबतक उसका ठीक ठीक परिचय नहीं मालूम होता। राजा या राजकुमार बनकर किसी जगह निरीक्षण करने जाओ तो भी असली बातपर पर्दा पड़ा रह जाता है। इसलिये महावीर पहिलेसे नहीं जानते थे कि ये तापस ऐसे हैं। महावीर अप्रिय बातोंको भी सहन करते थे, इसलिये उनने थोड़ी देर सहन भी किया। कुलपतिको महावीरकी नग्नता नहीं खटकी, क्योंकि यह कोई नयी बात नहीं थी, न इससे उसका कुछ नुकसान था; परन्तु झोंपड़ीकी रक्षा न करनेसे उसे दूसरी झोंपड़ी बनवाना पड़ती इसलिये उसे यह खटकी। महावीरने किसी सम्प्रदायमें दीक्षा नहीं ली थी। प्रारम्भमें उन्हें सब सम्प्रदाय एक सरीखे थे। उन्हें तो परिस्थितिके अनुसार नया मार्ग निकालना था, पुराने सम्प्रदायके गुणदोषोंका निरीक्षण करना था।

पं० भगवानदासजीके आक्षेपोंका उत्तर यहाँ समाप्त होता है। इनमेंसे बहुतसे आक्षेप तो साधारण मनोविज्ञानको भुलाने और शब्दोंके अर्थमें छल करनेसे किये गये हैं। फिर भी मैंने संक्षेपमें उत्तर दे दिया है।

"जैन दर्शन" ने सर्वज्ञताकी चर्चाको लेकर जो आक्षेप किये हैं, अब उनका उत्तर दिया जायगा। यह भी एक कारण है जिससे पं० भगवानदासजीके आक्षेपों का उत्तर संक्षेपमें दिया गया है।
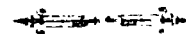
शूद्रा शूद्रेण वोढव्या।

विजातीयविवाहके समर्थनमें जितना लिखा जा चुका है, उसके शतांशका भी उत्तर स्थितिपालक दल नहीं दे सका है। जिन बातोंका अनेक बार खंडन किया जाचुका है उन्हीं बातोंको ये लोग बार बार दुहराया करते हैं। जनता कुछ समयमें युक्तियों को भूल जाती है, उसकी भूलका ये लोग दुरुपयोग करने लगते हैं और बस, पुरानी बातोंको ही फिर उगलने लगते हैं। विजातीय विवाहका समर्थन जैन शास्त्र अच्छी तरह करते हैं। आदिपुराणकर्त्ता भगवज्जिनसेनाचार्यने भी इसका समर्थन किया

है। 'शूद्रा शूद्रेण वोढव्या' वाला श्लोक प्रसिद्ध है। जब मैं 'जैनमित्र' द्वारा विजातीयविवाहका आन्दोलन चला रहा था तब कुछ पंडितोंने इस श्लोका अर्थ बदलनेकी कुचेष्टा की थी, जिसका मैंने व्याकरण और कोषके प्रमाणोंसे उसके वास्तविक अर्थका समर्थन किया था. और पीछेसे मेरे अर्थका समर्थन और भी अनेक वैयाकरण विद्वानोंने किया था। उस समय पंडित मंडली चुप हो गई थी; परन्तु इधर मेरा ध्यान दूसरे आन्दोलनकी तरफ खिंचजाने से समाजकी विस्मरणशीलताका अनुचित लाभ उठाया जा रहा है। पं० श्रीलालजी कलकत्ताने इस श्लोकका असत्य अर्थ एक पैम्फलेट में प्रकाशित कराया है। करीब ५ वर्ष पहिले इन्हीं श्रीलालजीने तथा पं. पल्टूरामजी न्यायतीर्थने ऐसा ही अर्थ किया था जिसका विस्तृत उत्तर मैंने जैनमित्रमें श्रावण शु० ११ वीर सं० २४५२ के अंकमें दिया था। वह यहाँ उद्धृत किया जाता है और उसके खंडनके लिये विरोधी मित्रोंको निमंत्रण दिया जाता है—

शूद्रा शूद्रेण वोढव्या नान्या स्वां तां च नैगमः।
वहेत् स्वां ते च राजन्यः स्वां द्विजन्मा क्वचिच्च ताः॥

इसमें 'शूद्रा', 'वोढव्या' 'वहेत्' इन शब्दोंके अर्थमें विवाद है। दूसरी बात प्रकरण की है। हम दोनों बातों पर प्रकाश डालना चाहते हैं। पहिले शूद्रा शब्दको लीजिये।

हमारा कहना है कि शूद्रा शब्दका अर्थ शूद्र नारी (कन्या) है। पल्टूरामजीका कहना है कि शूद्र वृत्ति (आजीविका) है। पहिले हमको यही देखना चाहिये कि शूद्र शब्दसे शूद्रा कैसे बनगया? व्याकरणकी दृष्टिसे यहाँ 'अजाद्यतष्टाप्' या जैनेन्द्र व्याकरण का 'अजाद्यतात् टाप्' इस सूत्रसे 'टाप्' प्रत्यय हुआ है और शूद्रसे शूद्रा बना है। जब टाप् या ङीप् प्रत्यय किया जाता है तब मूलशब्द स्त्रीवाची बनजाता है जैसे ब्राह्मणसे ब्राह्मणी बनाया तो उसका अर्थ होगया 'ब्राह्मण नारी' न कि 'ब्राह्मणकी आजीविका'। इसी प्रकार 'पंडित' शब्दसे 'पंडिता', 'क्षत्रिय' से 'क्षत्रिया' आदि शब्द बनते हैं। उनका अर्थ 'पंडितनारी' 'क्षत्रियाणी' आदि होता है। जैसे हिन्दीमें शब्दको स्त्रीलिंग बनानेके लिये 'इन' 'इया' वगैरह लगाते हैं उसी तरह संस्कृतमें 'ङीप्' और 'टाप्' लगाते हैं। हिन्दीमें जैसे 'लुहार' से 'लुहारिन', 'कुत्ता' से 'कुतिया' शब्द बना, इसका अर्थ होगा—'लुहार स्त्री' और 'कुतिया'। लुहारकी आजीविका और कुत्तेकी आजीविका, ये लुहारिन और कुतिया शब्दके अर्थ नहीं हो सकते। इसी प्रकार 'शूद्रा' शब्दका अर्थ 'शूद्र नारी' होगा न कि 'शूद्र की आजीविका'।

दूसरी बात यह है कि 'ङीप्' और 'टाप्' ये दोनों प्रत्यय वहीं होते हैं जहाँ एकही जातिका बोध करना हो जैसे 'ब्राह्मण' से 'ब्राह्मणी' और 'क्षत्रिय' से 'क्षत्रिया' शब्द बने हैं। उससे सम्बन्ध रखनेवाली किसी वस्तुके लिये ङीप् और टाप् नहीं होते। अगर शूद्रा शब्दका अर्थ शूद्रवृत्ति किया जाय तो उसका मतलब होगा शूद्रकी वृत्ति या शूद्र सम्बन्धी वृत्ति। इस अर्थमें जिससे ङीप् या टाप् किया जाय, ऐसा कोई सूत्र नहीं है।

'शूद्रकी' या 'शूद्र सम्बन्धी' अर्थ करनेके लिये 'शौद्री' या 'शूद्रीया' चाहिये (शूद्रस्य इयम् शौद्री या शूद्रीया। शूद्र + अण् + वृद्धि + ङीप्=शौद्री, शूद्र + छ=ईय + टाप शूद्रीया) संस्कृतज्ञ महानुभाव कोष्टक की बातोंको अच्छी तरहसे समझ सकेंगे। समानार्थ में ही ङीप् होता है। इसका सूत्र है "जातेरयोङ् शूद्रात्"। शूद्र शब्द और 'य' उपधावाले शब्दों—क्षत्रिय वैश्य आदि—से भिन्न शब्दोंसे ङीप होता है। सूत्रमें 'जातेः' पद पड़ा है जिससे बोध होता है कि इन प्रत्ययोंसे लिंगभेद मात्र होता है, शब्दका अर्थ एकही तरहका रहता है। 'य' उपधावाले और शूद्र शब्दसे इसी अर्थमें टाप् होता है। मतलब यह है कि शूद्रा शब्दसे शूद्र जातीय नारीके सिवाय और किसीका बोध हो ही नहीं सकता।

अब "वोढव्या" पदपर विचार कीजिये। यह

'वह् प्रापणे' धातुसे बना है। लेखकका कहना है कि इसका विवाह अर्थ कहाँ से आगया ? इसका मामूली उत्तर तो यही है कि संस्कृत साहित्यमें बहुतसी धातुएँ ऐसी हैं कि जिनका कथित अर्थ तो प्रयुक्त हो नहीं होता है लेकिन और अनेक अर्थ हुआ करते हैं, जैसे 'श्रिञ् सेवायाम्' धातु है, इसका अर्थ सेवा करना है, लेकिन अर्थ किया जाता है आश्रय लेना। इसलिये शब्दोंके अर्थका विचार करते समय साहित्यपर नजर डालना चाहिये। जैसे—'त्रिंशद्वार्षो वहेत्कन्यां' मनुस्मृति-(तीस वर्षकी उमरवाला कन्याको विवाहे)

'ऊढ़ भार्योऽप्ययं तावदस्वतंत्रो गुरोर्गृहे' । महापुराण पर्व ३८ श्लोक १२७। यहाँ 'ऊढ' शब्द 'वह्' धातुसे बना है जिसका अर्थ 'विवाहित' होता है। 'त्रैवर्णिकेन वोढव्या स्यात्त्रैवर्णिककन्यका' जिनसंहिता ४-२९। त्रैवर्णिकको त्रैवर्णिक कन्याके साथ विवाह करना चाहिये।

इन उदाहरणोंसे मालूम होता है कि 'वह्' धातु का अर्थ बिना उपसर्गके 'विवाह करना' होताहै। खैर।

अब जरा पठित अर्थ (प्रापण) पर विचार करना चाहिये। पं० पल्टूरामजीने 'प्रापण' शब्दका अर्थ किया है 'प्राप्त करना'। न मालूम यह किस कोषकी बानगी है। मालूम पड़ता है आप 'प्रापण' शब्दका अर्थ भी नहीं समझे। 'प्रापण' शब्दका अर्थ है लेजाना या ढोना। 'भारं वहति सेवकः' इसका अर्थ होता है-'सेवक भार ढोता है'। 'सेवक भार प्राप्त करता है' यह अर्थ नहीं होता। इसी तरह संस्कृतमें एक 'णीञ्' धातु है उसका भी अर्थ 'प्रापण' है कि जिसके 'नयति' रूपका अर्थ होता है 'लेजाता है'। सिद्धान्तकौमुदीमें कारक प्रकरणके अकथितश्च इस सूत्रकी व्याख्यामें 'ग्राममजां नयति हरति कर्षति वहति वा' वाक्य दिया हुआ है, जिससे मालूम होता है जो अर्थ 'नयति हरति कर्षति' का है वही 'वहति' का है। धातुकल्पद्रुममें 'वह्' धातुके प्रापण अर्थका इंग्लिश अनुवाद इस तरह किया है—वह प्रापणे-(To carry, to flow as a stream)'। इससे भी 'वह्' धातुका अर्थ To carry (ढोना) सिद्ध होता है।

सिवनीमें जो एक ब्राह्मण शास्त्री हैं उनके पास पल्टूरामजीको जाकर प्रापण शब्दके अर्थपर विचार करना चाहिये। हम पाठकोंसे भी अनुरोध करेंगे कि किसी संस्कृतज्ञसे मिलकर हमारे और पल्टूरामजी के अर्थको विचारनेकी कोशिश करें।

तीसरा शब्द वहेत् है जिसके लिये ऊपरके मनुसंहिता और जिनसंहिताके प्रमाण काफ़ी होंगे।

जब इस श्लोकसे विवाह करनेका ही अर्थ निकलता है, आजीविकाका अर्थ ही नहीं निकलता; तब प्रकरणकी बात उठाना व्यर्थ है, क्योंकि जब एक श्लोकके शब्दके दो अर्थ हो सकते हैं तभी यह देखना पड़ता है कि प्रकरणसंगत अर्थ कौनसा है। यहाँतो एकही अर्थ निकलता है, फिर प्रकरणविचार की जरूरतही क्या है ? अस्तु, पाठकोंके संतोषार्थ प्रकरणपर भी विचार कर लिया जाता है। पल्टूरामजीने २४२वें श्लोकके 'वृत्तेर्नियम' शब्दोंपर और २४९वें श्लोकके 'इमाम् वृत्तिम्' शब्दोंपर जोर दिया है और कहा है कि वृत्तिके प्रकरणमें विवाहका प्रकरण कहाँ से आया ? यहाँपर लेखकने 'वृत्ति' शब्द का बहुत संकुचित अर्थ लिया है। 'वृत्ति' शब्दका यहाँ पर 'प्रवृत्ति' अर्थ है जिसमें व्यापार सम्बन्धी, विवाहसम्बन्धी आदि आदि कार्य शामिल होते हैं। यह अर्थ हमारे घरका नहीं है, कोष और अन्य आचार्यों की रचनासे भी हम इस अर्थको सिद्ध करते हैं।

वृत्तिः प्रवृत्तौ वृत्तौ च कौशिक्यादि प्रवर्तने।

—विश्वलोचन।

यहाँ वृत्ति शब्दका प्रवृत्ति अर्थ किया गया है। अब दूसरे आचार्योंकी रचना लीजिये।

प्रजानां तत्र वृत्तिश्च स तदावधि लोचनः।
उपादिशत्सरागो हि तदानीं त्रिजगद्गुरुः॥

—जिनसंहिता।

इसमें कहा गया है कि भगवान्ने वृत्तिका उपदेश दिया। आगेके प्रकरणसे मालूम होजाता है कि वह

उपदेश क्या है ? पंद्रहवें श्लोकसे बीसवें तक वर्ण-रचना और उनके कर्तव्य बताये हैं। इक्कीस बाईस में मनुष्य जातिकी मुख्यता और वर्णोंकी काल्पनिकता (गौणता) बतलाई है, २३-२४ और २५ वें में उच्च नीचताका जिकर है (यहाँकी प्रतिमें २४ का नम्बर दो श्लोकोंके आगे पड़ा है), २५ वें में शूद्रों की आजीविकाकी अनेकविधताका प्रदर्शन है, २६-२७ वें श्लोकोंमें शूद्रोंको उपनीत्यादि संस्कार और जिनदीक्षाके अयोग्य ठहराया है, २८-२९ वें श्लोकोंमें त्रैवर्णिकोंमें परस्पर विवाह और शूद्रोंके साथ शूद्रोंके विवाहकी आज्ञा है। २८-२९ वें श्लोक हम जैनमित्रमें अर्थसहित निकाल चुके हैं, यहाँ श्लोक मात्र दिये जाते हैं—

क्षत्रियो ब्राह्मणो विट च त्रैवर्णिक इति स्मृतः।
सर्व एव विवाहादि व्यवहारश्च तन्मतः ॥४॥२८॥
त्रैवर्णिकेन वोढव्या स्यात् त्रैर्णिककन्यका।
शूद्रैरपि पुनः शूद्रा स्वा एवान्या न जातुचित्॥४॥२९॥

इसके बाद तीसवाँ श्लोक है।

स्वामिमां वृत्तिमुत्क्रम्य यस्त्वन्यां वृत्तिमाचरेत्।
स पार्थिवैर्नियन्तव्य वर्णसंकीर्णिरन्यथा। ४॥३०॥

यहाँपर वैवाहिक नियमोंके बादही 'इमाम् वृत्तिम्' दिया गया है, इसलिये वृत्ति शब्दसे वैवाहिक नियमोंका ही बोध होता है; लेकिन वृत्ति शब्दका विवाह अर्थ है नहीं, इसलिये वृत्ति शब्दका प्रवृति अर्थ लेना उचित है। इससे १५ वें श्लोकसे २९ वें श्लोक तक जितनी बातें कहीं गई हैं, उन सबको वृत्तिसे पकड़ना चाहिये। धर्मसंग्रहश्रावकाचारमें भी इसीप्रकार वैवाहिक नियमोंके कथनके अनन्तर "वृत्तिम्" पदका प्रयोग किया गया है।

परस्परं त्रिवर्णानाम् विवाहः पंक्तिभोजनम्।
कर्तव्यं न च शूद्रैस्तु शूद्राणां शूद्रकैः सह ॥९॥२५६॥
स्वां स्वां वृत्तिं समुत्क्रम्य यः परां वृत्तिमाश्रयेत्।
स दण्ड्यः पार्थिवैः बाढं वर्णसंकरताऽन्यथा ॥९॥२५७॥

यहाँ 'इमां' पद पड़ा हुआ है। इसीतरह आदि पुराणमें भी उस जगह वृत्ति शब्दका व्यापक अर्थ प्रवृत्ति लिया है। वर्णव्यवस्थामें दो तरहके नियम बनाये जाते हैं—(१) व्यापारिक और (२) वैवाहिक। पहिला मुख्य है, दूसरा गौण। इस मुख्यका कथन पहिले किया है और गौणका पीछे।

हमारे इस समूचे लेखपर विचारकर पाठक कहें कि हमारा अर्थ ठीक है या स्याद्वादकेशरीके लेखक का। हम विरोधी पार्टीके विद्वानोंसे कहेंगे कि आप लोग खूब विरोध करें, इसका हमें डर नहीं है। इसके लिये हम पूर्णरूपसे तैयार हैं लेकिन विरोध जरा ढंगसे और एकमतसे करें। जब आपही लोग इस तरह परस्परविरुद्ध अर्थ किया करेंगे तब तो विरोध हो चुका। स्याद्वाद केशरीके सम्पादकजी व्याकरण के अच्छे विद्वान् माने जाते हैं। उन्हें तो इन मोटी भूलोंपर विचार करना था।

हमारे इस वक्तव्यका समर्थन और भी अनेक विद्वानोंने विस्तृत लेख लिखकर कियाथा। व्याकरणाचार्य पंडित शंभुनाथजी त्रिपाठीने इस श्लोकके अर्थ के लिये एक पत्र मुझे दिया था जो कि जैनमित्र मगसिर सुदी १२ वी० सं० २४५३ में छपाथा। वह भी यहाँ उद्धृत किया जाता है।

इसके अतिरिक्त इसी अंकमें मैंने पंडित पल्टूरामजीके लेखकी अन्य शंकाओंका भी समाधान कियाथा। उसको उद्धृत करनेकी जरूरत नहीं मालूम होती। यहाँ सिर्फ त्रिपाठीजी का लेख उद्धृत किया जाता है—

त्रिपाठीजी का वक्तव्य।

जिस श्लोकके सम्बन्धमें आपने मुझसे इच्छा प्रगटकी है उसके सम्बन्धमें मैंने स्याद्वादकेशरीका ४५ वाँ अंक देखा। देखते हैं पंडित पल्टूरामजीने शूद्रा शब्दका शूद्रवृत्ति अर्थ किया है। मेरे ध्यानसे व्याकरणकी दृष्टिसे इस अर्थमें कुछभी महत्व नहीं है। उन्होंने 'ओऽअादिभ्यः' इस सूत्रसे 'अ' प्रत्यय किया है। पाणिनिजीके 'अर्श आदिभ्योऽच' का भी उल्लेख किया है, परन्तु इस पर ध्यान नहीं दिया कि शूद्रोंका आधार वृत्तियाँ हैं या वृत्तियोंका आधार

शूद्र। क्रियाएँ क्रियावान्में रहती हैं, क्रियावान् क्रियाओंमें नहीं, अतएव मत्वर्थीय विग्रह (शूद्रा विद्यन्ते अस्यां सा शूद्रा) शाब्दबोधकी दृष्टिसे कुछभी महत्व नहीं रखता। 'विद्यावान पुरुषः' होता है, पुरुषवती विद्या नहीं। उसी तरह वृत्तिमन्त. शूद्रा होगा "शूद्रवती शूद्रावृत्तिः" नहीं। किसी जगह—श्लेष आदिमें भी—ब्राह्मणी, क्षत्रिया आदि शब्दोंका प्रयोग वृत्ति अर्थमें नहीं हुआ है। जैनव्याकरणमें अभ्रादिगणका गणपाठ नहीं बना है किन्तु पाणिनीजीने अर्शादि गण बतलाया है उसमें "अर्शस उरस् तुन्द चतुर कलित घटा जटा घाटा अभ्र अर्धकर्दम अम्ललवण हीन स्वांग वर्ण' इतनेही शब्द आये हैं। यह आढ्यादिगण अवश्य कहा गया है, लेकिन इससे मतलब यह नहीं है कि हम सब जगहपर अच् प्रत्यय करें। जो शब्द ऐसे कोई पूर्वाचार्यके संस्कृत साहित्यमें आवें, अर्थ साफ हो (दूसरा अर्थ न होता हो) आधाराधेयभाव सम्भव हो, उनका इसके द्वारा समाधान हो सकता है। इसलिये यहाँपर शूद्रासे शूद्र जातिकी स्त्री (कन्या) अर्थ हो सकता है, वृत्ति नहीं। शूद्रत्व जातिविशिष्ट स्त्री इस विग्रहमें शूद्रा चामहत्पूर्वाजातिः, महत् शब्द पूर्वमें न हो तो जाति वाचक शूद्र शब्दसे टाप् होता है, इससे पाणिनिके मतमें शूद्रजातीय स्त्री अर्थमें टाप होता है। जैन व्याकरणमें भी 'जातेरयोक् शूद्रात्' इससे जातिवाचक शूद्र शब्दसे 'ङीप्' का निषेध और 'टाप्' का विधान होता है। संस्कृत साहित्यमें सैकड़ों जगहपर शूद्रा शब्दका इसी व्याकरणनियंत्रित (शूद्र जाति स्त्री) अर्थमें प्रयोग हुआ है। अतएव शूद्रा शब्दका शूद्र जातीय स्त्री अर्थ होना सम्भव है, इतर नहीं।

वोढव्याका अर्थभी व्याकरण और साहित्यकी दृष्टिसे "विवाह करना चाहिये" ऐसा होता है। "वह" धातुका विवाह करना भी अर्थ है। मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति आदि संस्कृतके ग्रंथोंमें इसी अर्थमें प्रयोग होता है। पण्डित परदूरामजीने वह् धातुका प्राप्त करना या प्राप्त होना अर्थ बतलाया है, किन्तु यह अर्थ ठीक नहीं है। मालूम होता है कि उन्हें प्राप्ति और प्रापणमें कुछ अंतर नहीं जान पड़ता। प्रापणका अर्थ है प्राप्त कराना अर्थात लेजाना ढोना इत्यादि। णीञ् प्रापणेका जो अर्थ है वही "वह" धातुका है। आपने ग्राममजां नयति इस वाक्यको उद्धृत कर आगे नयति अर्थमें वहतिका प्रयोग दिखाया भी है। यहाँपर यह पद शूद्र वृत्तिके साथ लागू भी नहीं होता, क्योंकि वृत्तिको प्राप्त करावे या लेजावे, इसका कुछ भी मतलब नहीं है। इसके माने हुआ कि कोई शूद्रकी आजीविका करे तो शूद्र प्रेरणा करे। इसलिये यह अर्थ बिलकुल विरुद्ध है। साहित्यमें भी प्राप्त करने अर्थमें वह् धातुका प्रयोग नहीं हुआ है, अतएव प्राप्त करना किसीभी तरह मान्य नहीं हो सकता। वैयाकरणको प्राप्ति और प्रापणका अंतर अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। णयंत (प्र + आप + इ—प्रापि) से प्रापण बना हुआ है। इससे स्पष्ट होगया होगा कि ग्रामं प्राप्नोति के स्थानमें ग्रामं वहतिका प्रयोग क्यों नहीं होता? प्राप्त कराना अर्थ होनेसे ही वह् धातु द्विकर्मक कही गई है। पतजंलि मुनिने और वार्तिककार कात्यायनिने भी इसे द्विकर्मक धातुओंमें परिगणन करते समय अच्छा प्रकाश डाला है। सर्वार्थसिद्धिके नय लक्षणको जो उद्धृत किया है, वहाँ भी प्रापणका प्राप्त करानाही अर्थ है। इसलिये आदिपुराणका वह श्लोक विवाहनियम सूचकही है। मेरा आपके विजातीयविवाह आंदोलनकी प्रगतिसे कुछ सम्बन्ध नहीं है। व्याकरणकी दृष्टिसे यह अर्थ लिखा है जो कि शाब्दिक विषय है। —शम्भुनाथ त्रिपाठी।

इस विषयमें विशेष लिखनेकी आवश्यकता नहीं मालूम होती। पण्डित श्रीलालजी उस समय चुप रहगये थे। यदि इतने वर्षोंमें उनने कुछ नयी कमाई की है तो वे प्रगट करें, और इस लेखका खण्डन करें। उनको फिर भी अच्छा उत्तर दिया जायगा।

सांप्रदायिकताका दिग्दर्शन।

(ले०—श्री० पं० सुखलालजी ।)

[अनु०—श्रीमान् जगदीशचन्द्रजी जैन एम० ए०]

(क्रमागत)

भागवत ।

अरहत राजा पाखंडी होगा । वह कोंक, वेंक, कुटक देशमें राज्य करेगा । वह ऋषभदेवके आश्रमातीत परमहंस योग्य जीवनको सुनेगा और उसका अभ्यास करेगा। कलियुगके प्रभावसे उसकी बुद्धि ख़राब होगी और वह निर्भय होकर अपना धर्म छोड़कर अपनी बुद्धिसे पाखंडी मतका प्रचार करेगा । कलियुगमें पहलेसे ही बुद्धि बिगड़ी हुई होती है और फिर यह राजा अधर्मका प्रचार करने में लगेगा । इससे लोग स्वभावसे ही वर्णाश्रमके योग्य आचार छोड़देंगे और देवोंको अपमानित करनेवाले काम करेंगे । उदाहरणके लिये लोग स्नान आचमन न करना, गंदा रहना, लोंच करना अथवा बाल काटना वगैरह छोटे छोटे काम इच्छानुसार करेंगे । कलियुग अर्थात् अधर्मका स्थान, इसकारण लोग बुद्धिभ्रष्ट होकर देव, वेद, ब्राह्मण और यज्ञपुरुषके विषयमें श्रद्धारहित, नास्तिक होंगे ।

हे परीक्षित ! उस अरहत राजाका कपोलकल्पित धर्म वेदके आधार पर नहीं रहेगा । अरहत राजाके बाद में भी दूसरे लोग उस अर्वाचीन धर्मको अंध परम्परासे मानेंगे और स्वयं अपनेही कारण अधतम नरकमें पड़ेंगे।

(भागवत स्कंध ५ अ० ६ निर्णयसागरकी आवृत्ति)

कूर्म पुराण ।

बुद्ध (बौद्ध) श्रावक, निर्ग्रंथ (जैनमुनि), पंचरात्रज्ञ, कापालिक, पाशुपत और उनके समान दूसरे पाखण्डी लोग इतने दुष्टात्मा और तामस स्वभावके हैं कि वे लोग जिसका हवि (श्राद्धभोजन) खाते हैं उसका वह श्राद्ध इस लोक और परलोकमें फलप्रद नहीं होता ।

नास्तिक, हैतुक, वेदानभिज्ञ और अन्य पाखंडियों को धर्मज्ञ लोगोंको पानी भी नहीं देना चाहिये ।

(कूर्मपुराण अ० २१ श्लोक ३२–३३ पृ० ६०२ तथा पृ० ५३१ पं० १५)

(नाटक विषयक) परिशिष्ट २

प्रबोध चन्द्रोदय ।

शांति—हे माता ! हे माता ! तू कहाँ है ? मुझे दर्शन दे ।

करुणा—(त्रासपूर्वक) हे सखि ! राक्षस ! राक्षस!

शांति—कौन यह राक्षस !

करुणा—सखि ! देखो, देखो ! यह गिरते हुए मैल से चिकने, बीभत्स, दुःखसे देखने योग्य शरीरवाला, बालों का लोंच और वस्त्रोंका त्याग किये रहनेसे कष्टसे देखने योग्य, हाथमें मोरकी कलगी और पिच्छी लिये हुए इसी तरफ़ आरहा है ।

शांति—यह राक्षस नहीं, किन्तु निर्वीय है ।

करुणा—तो यह कौन होगा ?

शांति—सखि ! कोई पिशाच होगा, ऐसी शंका होती है ।

करुणा—सखि ! जहाँ चमकते हुए किरणोंकी माला से लोकको प्रकाशित करनेवाला सूर्य तपता हो, वहाँ पिशाचोंका अवकाश किस प्रकार सम्भव है ?

शांति—तो नरकके गड्ढेमें से हालमें ही निकलकर आनेवाला कोई नारकी होगा (देखकर और विचारपूर्वक) अरे समझी ! महामोहमें प्रवर्तित यह दिगम्बर सिद्धान्त है । इसकारण इसका दर्शन सर्वथा दूरसे ही त्याज्य है। (यह सोचकर मुँह फेरलेती है ।)

करुणा—सखि ! ज़रा ठहर । तबतक मैं श्रद्धाको ढूंढ़ती हूँ । (दोनों उसी तरह खड़े रहे) (उसके बाद पहले वर्णन किया हुआ दिगम्बर सिद्धान्त प्रवेश करता है ।)

दिगम्बर—ओम् । अरिहन्तोंको नमस्कार ! नौ द्वार वाली नगरीके अन्दर आत्मा दीपककी तरह रहती है । यह जिनवरका कथन परमार्थ है और यह मोक्ष सुखका देनेवाला है । अरे हे श्रावको ! सुनो, सम्पूर्ण जलसे भी मलमय पुद्गल पिंडकी शुद्धि किस प्रकार होसकती है ? निर्मल स्वभाववाला आत्मा ऋषियोंकी सेवासे जाना जासकता है । क्या यह पूछते हो कि ऋषियोंकी परिचर्या कैसी ? सुनोः—

ऋषियोंको दूरसे चरणोंमें प्रणाम करना, सत्कारपूर्वक मिष्ट भोजन देना तथा स्त्रियोंके साथ क्रीडा करते हुए इनसे ईर्ष्या न करना । (नेपथ्यकी ओर देखकर)

हे श्रद्धे ! पहले इस ओर (दोनों भयपूर्वक देखते हैं; उसके बाद उसके जैसाही वेष धारण करनेवाली श्रद्धा प्रवेश करती है ।)

श्रद्धा—राजकुल क्या आज्ञा करते हैं ?

(शांति मूर्च्छित होजाती है ।)

दिगम्बर सिद्धान्त—तुम थोड़ी देरके लिये भी श्रावकोंके कुटुम्बको मत छोड़ना ।

श्रद्धा—जैसी राजकुलकी आज्ञा ।

(यह कहकर चली गई)

करुणा—प्रिय सखी, धीरज रक्खो । केवल नामसे मत डरो । क्योंकि मैंने हिंसासे सुना है कि पाखण्डियों के भी तमोगुणकी पुत्री श्रद्धा होती है । इस कारण यह तामसी श्रद्धा होगी ।

शांति—(आश्वासन प्राप्त करके) ऐसा ही है । क्योंकि दुराचारयुक्त और दुखपूर्वक देखेजाने योग्य यह अभागिनी (तामसी श्रद्धा) सदाचारवाली और प्रियदर्शनवाली मुझे किसी भी तरह अनुसरण नहीं करती । अच्छा, चलो । बौद्धालयोंमें भी इसकी खोज करेंगे ।

(शांति और करुणा जाती हैं ।)

(पीछेसे हाथमें पुस्तक लियेहुए भिक्षुरूप बौद्धागम प्रवेश करता है ।)

भिक्षु—(विचार करके) हे उपासको ! सब पदार्थ क्षणिक और निरात्मक हैं, तथा बुद्धिगत आंतरिक होने पर भी बाहर हैं ऐसा मालूम होता है । संपूर्ण वासनाओं के नाश होजानेसे वही बुद्धि संतति वैषयिक छाया बिना प्रतीत होती है ।

(थोड़ा फिरकर) अहो ! यह बौद्धधर्म श्रेष्ठ है, क्योंकि इसमें सुख और मोक्ष दोनों हैं । इसमें मनोहर गुफा वाला निवासस्थान है, इच्छानुकूल वैश्य स्त्रियाँ, यथेच्छ मिलनेवाला इष्टभोजन, कोमल गुदगुदी शय्या, तरुण युवतियों द्वारा श्रद्धापूर्वक सेवित चाँदनीसे उज्वल रात्रियाँ, शरीर समर्पण की उत्सव क्रीडासे उत्पन्न होनेवाले आनंद के साथ व्यतीत होती हैं ।

करुणा—सखि ! यह कौन ? नये ताड़के वृक्षकी तरह लम्बे लटकते हुए गेरुए कपड़ेवाला और चोटी छोड़ कर सिर मुँडाये हुए इस तरफ़ आरहा है ।

शांति—सखि ! यह बुद्धागम है ?

भिक्षु—(आकाश की तरफ़ देखकर) हे उपासको और भिक्षुओ ! तुम बुद्धके वचनामृत सुनो । (पुस्तक पढ़ता है ।) मैं दिव्यदृष्टिसे लोगोंकी सुगति और दुर्गति देखता हूँ । सब संस्कार क्षणिक हैं । स्थिर ऐसी कोई आत्मा है ही नहीं । इसलिये स्त्रियोंके ऊपर आक्रमण करनेवाले भिक्षुओंके प्रति ईर्ष्या नहीं करनी चाहिये, क्योंकि ईर्ष्या चित्तका मल है ।

(नैपथ्यकी ओर देखकर) हे श्रद्धे ! ऐसे आवो ।

श्रद्धा—(प्रवेश करके) राजकुल ! फ़रमाइये ।

भिक्षु—उपासकों और भिक्षुओंका चिरकाल तक सेवन करो ।

श्रद्धा—राजकुलकी जैसी आज्ञा । (चली जाती है ।)

शांति—हे सखि ! हमारी तामसी श्रद्धा ।

करुणा—ऐसा ही है ।

क्षपणक—(भिक्षुको देखकर ऊँचेस्वरसे) रे भिक्षुक ! ज़रा इस तरफ़ आ । कुछ पूछता हूँ ।

भिक्षु—(क्रोधसे) रे दुष्ट ! पिशाच जैसी आकृति वाले ! यह क्या बकता है ?

क्षपणक—अरे ! क्रोध छोड़ । कुछ शास्त्रमें से पूछता हूँ ।

भिक्षु—रे क्षपणक ! शास्त्रकी बात भी जानता है ? अच्छा, थोड़ी देर ठहरता हूँ । (पास जाकर) क्या पूछता है ?

क्षपणक—ज़रा कहतो सही, क्षणमात्र में नाशको प्राप्त होनेवाला तू यह व्रत किसलिये धारण करता है ?

भिक्षु—रे ! सुन । हमारी संततिमें आया हुआ कोई विज्ञानरूप दूसरी वासना नष्ट करके मुक्त होगा ।

क्षपणक—किसीभी मन्वंतरमें कोई तो मुक्त होगा। इसलिये इस समय नष्ट होनेवाला वह तुम्हारा उपकार कैसे कर सकेगा ? दूसरी बातभी पूछता हूँ । यह धर्म तुझे किसने उपदेश किया है ?

भिक्षु—अवश्य सर्वज्ञ बुद्ध भगवानने इस धर्मका उपदेश दिया है ।

क्षपणक—अरे, अरे, बुद्ध सर्वज्ञ है, यह तू कैसे जानता है ?

भिक्षु—अरे, उसके आगमसे ही बुद्ध सर्वज्ञ, है यह सिद्ध होता है ।

क्षपणक—हे भोली बुद्धिके, यदि तू उसके ही कथनसे बुद्धको सर्वज्ञ मानता है तो तू भी बाप दादाओंके साथ सात पीढ़ीसे मेरा दास है, यह मैं भी जानता हूँ ।

भिक्षु—(क्रोध से) हे दुष्ट पिशाच ! मैल की कीचड़ को धारण करनेवाले ! कौन, मैं तेरा दास ?

क्षपणक—हे विहारकी दासियोंके यार ! दुष्ट परिव्राजक ! यह मैंने दृष्टान्त दिया है। इस कारण तुझे मित्र कुछ विश्वत रूपसे कहता हूँ। बुद्धका शासन छोड़कर आर्हत शासन अनुकरण कर, दिगम्बर मतको धारण कर।

भिक्षु—अरे ! तू स्वयं नष्ट होगया है और अब दूसरों को भी नष्ट करता है। ऐसा कौन भला आदमी होगा जो श्रेष्ठ स्वराज छोड़ तेरी तरह लोकमें निंदाके पात्र पिशाचपनेकी इच्छा करेगा ? अरिहंतोंके धर्मशास्त्रकी भी श्रद्धा कौन रखता है ?

क्षपणक—ग्रह नक्षत्रोंकी गति, सूर्य, चंद्रके ग्रहणका तात्विक ज्ञान और नष्ट वस्तुकी प्राप्तिका संधान देखनेसे भगवानका सर्वज्ञपना सिद्ध है।

भिक्षु—अनादिकालसे चले आने वाले ज्योतिषचक्रके ज्ञानसे ठगे हुए भगवानने यह अतिदुखद व्रत आचरण किया है। वह देहप्रमाण जीव संबंध बिना तीनों लोकों को किस प्रकार जानता है ? क्या घड़े में रक्खा हुआ सुन्दर और जलने वाला दीपक घरके अंदर रक्खे हुए पदार्थों को प्रकाशित कर सकता है ? इस कारण दोनों लोकसे विरुद्ध अर्हत मतसे बौद्ध मतही श्रेष्ठ, साक्षात, सुखजनक और अत्यन्त रमणीय है, यह मानना चाहिये।

शांति—सखि ! दूसरी जगह चलते हैं।

करुणा—अच्छा, (दोनों जाती हैं।)

शांति—(सामने देखकर) यह सोम सिद्धांत है। अच्छा यहाँ भी देखते हैं (उसके बाद कापालिक रूपधारी सोम सिद्धांत प्रवेश करता है।)

सोम सिद्धांत—(फिरकर) मनुष्यकी हड्डियोंकी मालासे भूषित मैं स्मशानवासी, मनुष्यकी खोपड़ीमें भोजन करने वाला मैं योगांजनसे शुद्ध हुए नेत्रों द्वारा परस्पर भिन्न जगत्को ईश्वरसे अभिन्न देखता हूँ।

क्षपणक—यह कौन पुरुष कापालिक मतको धारण करता है ? इससेभी कुछ पूछूँ। रे कापालिक, मनुष्यकी हड्डियोंकी माला धारण करने वाले ! तेराधर्म और मोक्ष कैसा है ?

कापालिक—हे क्षपणक ! हमारे धर्मको समझ ले। अग्नि में मस्तिष्क, आँतड़ियाँ, चरबीसे पूर्ण मांसकी आहुति देते हुए ब्राह्मणकी खोपड़ीमें भरी हुई शराब पीकर हमारा पारणा होता है और तुरत काटे हुए कठोर गलेमेंसे गिरनेवाले खूनकी धारसे चमकते हुए पुरुषके बलिदानोंसे पूजने योग्य महाभैरव हमारे देव हैं।

भिक्षु—(कान बंद करके) बुद्ध ! बुद्ध ! अहो भयंकर धर्माचरण !

क्षपणक—अरिहंत ! अरिहंत ! अहो घोर पाप करने वाले किसीने इस बिचारेको ठगा है।

कापालिक—(क्रोधसे) हे पाप, हे नीच पाखंडी ! मुँडे हुए सिरवाले ! गुच्छेदार केशवाले ! बालोंको उखाड़कर फेंकने वाले ! अरे ! चौदह लोकोंकी उत्पत्ति, स्थिति और संहारके प्रवर्तक, वेदान्तमें प्रसिद्ध सिद्धांतोंके वैभव वाले भगवान् भवानीपति ठगने वाले हैं ! इसलिये इस धर्मकी महिमा बताते हैं। मैं हरिहर इन्द्र वगैरह श्रेष्ठ देवोंको खेंचकर लाता हूँ, आकाशमें चलते हुए नक्षत्रों की गतिको भी मैं रोकता हूँ। पहाड़ और नगर सहित इस पृथ्वीको जलसे पूर्णकरके फिर संपूर्ण पानीको क्षण मात्रमें पीजाता हूँ, यह तू समझ ले।

क्षपणक—हे कापालिक ! इसीसे मैं कहता हूँ कि तुझे किसी इन्द्रजालिया ने माया बताकर ठग लिया है।

कापालिक—हे पाप ! फिर परमेश्वरको इन्द्रजालिक कहकर आक्षेप करता है। इसलिये इसका दुष्टपना सहन करना योग्य नहीं है। (तलवार खेंचकर) अतएव इस विकराल तलवारसे अच्छी तरह काटे गये इसके गलेमें से निकलने वाले प्रवाही और बबूलोंसे पूर्ण खून से डमडम डमरु की खड़खड़ाहटसे बुलाए हुए भूतवर्गोंके साथ महा भैरवीको तर्पण करता हूँ (यह कहकर तलवार उठाता है)

क्षपणक—(भयसे) हे महाभाग ! अहिंसा परमधर्म है (यह कहकर भिक्षुकी गोद में गिरपड़ता है)

भिक्षु—(कापालिकको रोककर) हे भाग ! कौतूहलमें होनेवाली वाक् कलह मात्रसे इस बेचारेके ऊपर प्रहार करना योग्य नहीं है (कापालिक तलवारको पीछे खेंच लेता है।)

क्षपणक—(आश्वासन पाकर) महाभाग, यदि प्रचण्ड क्रोधावेशसे शान्त होगये हो, तो कुछ पूछना चाहता हूँ।

कापालिक—पूछ।

क्षपणक—तुम्हारा परम धर्म सुनलिया है। अब सुख और मोक्ष कैसा है, कहो।

धर्मवीर महावीर और कर्मवीर कृष्ण ।

[लेखक—श्रीमान पं० सुखलालजी] (क्रमागत) [अनु०—श्रीमान पं० शोभाचन्द्रजी न्यायतीर्थ]

(४)

अंग साहित्यसे लेकर हेमचन्द्रके काव्यमय महावीर-चरित तक, हम ज्यों ज्यों उत्तरोत्तर आगे बढ़ते—जाँचते—हैं, त्यों त्यों महावीरके जीवनकी सहज घटनाएँ क़ायम तो रहती हैं मगर उनपर दैवी और चमत्कारी घटनाओंका रंग अधिकाधिक भरता जाता है। अतएव जान पड़ता है कि जो घटनाएँ अस्वाभाविक प्रतीत होती हैं और जिनके बिना भी मूल जैनभावना अबाधित रह सकती है, वे घटनाएँ किसी न किसी कारणसे जैन साहित्यमें—महावीर जीवनमें—बाहरसे आ घुसी हैं।

इस बातको सिद्ध करनेके लिए यहाँ एक घटना पर विशेष विचार करना अप्रासंगिक न होगा। आवश्यकनिर्युक्ति, उसके भाष्य और चूर्णिमें महावीरके जीवनकी तमाम घटनाएँ संक्षेप या विस्तार से वर्णित हैं। छोटी बड़ी तमाम घटनाओंका संग्रह करके उन्हें सुरक्षित रखने वाली निर्युक्ति, भाष्य तथा चूर्णिके लेखकोंने महावीरके द्वारा सुमेरु कँपाने के आकर्षक वृत्तान्तका उल्लेख नहीं किया, जब कि उक्त ग्रंथोंके आधारपर महावीरजीवन लिखने वाले हेमचन्द्रने मेरु-कम्पनका उल्लेख किया है। आचार्य हेमचन्द्रके द्वारा किया हुआ यह उल्लेख यद्यपि उसके आधारभूत निर्युक्ति, भाष्य या चूर्णिमें नहीं है, फिर भी आठवीं शताब्दीके दिगम्बर कवि रविषेणकृत पद्मपुराणमें है †। रविषेणने यह वर्णन प्राकृतके 'पउमचरिय' से लिया है क्योंकि रविषेणका पद्मपुराण प्राकृत पउमचरियका अनुकरण मात्र है, और पउमचरियमें (द्वि० पर्व श्लो० २५-२६ पृ० ५) यह वर्णन उल्लिखित है। पद्मचरित दिगम्बर सम्प्रदायका ग्रंथ है, इसमें ज़रा भी विवाद नहीं है। पउमचरिय के विषयमें अभी मतभेद है। पउमचरिय चाहे दिगम्बरीय हो, चाहे श्वेताम्बरीय हो, अथवा इन दोनों रूढ़ सम्प्रदायोंसे भिन्न तीसरे किसी गच्छके आचार्यकी कृति हो, कुछ भी हो, यहाँ तो सिर्फ़ यही विचारणीय है कि पउमचरियमें निर्दिष्ट मेरुकम्पन की घटनाका मूल क्या है?

आगम ग्रंथों एवं निर्युक्तिमें इस घटनाका कुछ भी उल्लेख नहीं है, अतएव यह तो कहा ही नहीं जा सकता कि पउमचरियके कर्त्ताने वहाँ से इसे लिया है। तब यह घटना आई कहाँ से? यद्यपि पउमचरियका रचना-समय पहली शताब्दी निर्देश किया गया है, फिर भी कुछ कारणोंसे इस समयमें भ्रम जान पड़ता है। ऐसा मालूम होता है कि पउमचरिय ब्राह्मण पद्मपुराणके बादकी कृति है। पाँचवीं शताब्दीसे पूर्व के होनेकी बहुतही कम संभावना है। चाहे जो हो, परन्तु अंग और निर्युक्ति आदिमें सूचित न की हुई मेरुकम्पनकी घटना पउमचरियमें कहाँ से आई?

† द्वितीय पर्व श्लोक ७५-७६ पृष्ठ १५।

कापालिक—सुन, किसी भी विषयके बिना सुख नहीं दिखाई देता। आनंदानुभव के बिना जीव दशारूप पाषाणकी तरह जड़ मुक्तिको कौन चाहेगा? मुक्त पुरुष पार्वती जैसी सुन्दर स्त्रीके साथ सानंद आलिंगन करके क्रीड़ा करते हैं। ऐसा चंद्रशेखर भवानीपति ने कहा है।

भिक्षु—हे महाभाग! सरागको मुक्ति होती है, यह बात श्रद्धा करने योग्य नहीं है।

क्षपणक—हे कापालिक, यदि गुस्सा न हो तो मैं कहता हूँ कि शरीरधारी और रागी मुक्त होता है, यह परस्पर विरुद्ध है।

कापालिक—(मनमें) अरे, इन दोनोंका मन अश्रद्धाग्रस्त है। इसलिये यह रहने दो। (प्रकाशमें) हे श्रद्धे, ज़रा इधर आओ।

(उसके बाद कपालिनीका रूप धारण करके श्रद्धा प्रवेश करती है)

यह प्रश्न तो कायम ही रहता है।

यदि पउमचरियके कर्ताके पास इस घटनाका उल्लेख करने वाला अधिक प्राचीन कोई ग्रंथ होता और उसीके आधार पर उसने इसका उल्लेख किया होता तो शायद ही निर्युक्ति और भाष्यमें इसका उल्लेख होनेसे रह सकता था। अतएव कहना चाहिए कि यह घटना कहीं बाहरसे पउमचरियमें आ घुसी है। दूसरी ओर हरिवंश आदि ब्राह्मणपुराणोंमें फलद्रूप पौराणिक कल्पनामेंसे जन्मी हुई गोवर्धनको तोलनेकी घटनाका उल्लेख प्राचीनकालसे मिलता है।

पौराणिक अवतार कृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत का तोलन और जैन तीर्थंकर महावीर द्वारा सुमेरुपर्वतका कम्पन, इन दोनोंमें इतनी अधिक समानता है कि कोई भी एक कल्पना, दूसरीपर अवलम्बित है।

हम देख चुके हैं कि आगम-निर्युक्ति ग्रंथोंमें, जिनमें कि गर्भसंक्रमण सरीखे असंभव प्रतीत होने होनेवाले वर्णनोंका उल्लेख है, उनमें भी सुमेरुकम्पन का संकेत तक नहीं है। किसी प्राचीन जैन परम्परा मेंसे पउमचरियमें इस घटनाके लिए आनेकी बहुत कम संभावना है। और ब्राह्मणपुराणोंमें पर्वतके उठानेका उल्लेख है, तब हमें यह माननेके लिए आधार मिलता है कि कवित्वमय कल्पना और अद्भुत वर्णनोंमें ब्राह्मण मस्तिष्कका अनुकरण करनेवाले जैन मस्तिष्कने, ब्राह्मण पुराणके गोवर्धन पर्वतको तोलने की कल्पनाके सहारे इस कल्पनाकी सृष्टि करली है।

पड़ौसी और विरोधी सम्प्रदाय वाला अपने भगवान्‌का महत्व गाते हुए कहता है कि पुरुषोत्तम कृष्णने तो अपनी अँगुलीसे गोवर्धन जैसे पहाड़को उठा लिया; तब साम्प्रदायिक मनोवृत्तिको संतुष्ट करनेके अर्थ जैनपुराणकार यदि यह कहें तो सर्वथा उचित जान पड़ता है कि—कृष्णने जवानीमें सिर्फ एक योजनके गोवर्धनको ही उठाया पर हमारे प्रभु महावीरने तो, जन्म होते ही, केवल पैरके अँगूठेसे, एक लाख योजनके सुमेरु पर्वतको हिला दिया! कुछ दिनों बाद यह कल्पना इतनी सर्वमूल होगई, इतनी अधिक प्रचलित हो गई कि अन्तमें हेमचन्द्र ने भी अपने ग्रंथमें इसे स्थान दिया। अब आज कलकी जैनजनता तो यही मानने लगी है कि महावीरके जीवनमें आने वाली मेरुकम्पनकी घटना आगमिक और प्राचीन ग्रंथगत है।

यहाँ उलटा तर्क करके एक प्रश्न किया जा सकता है। वह यह कि प्राचीन जैनग्रंथोंमें उल्लिखित मेरुकम्पनकी घटनाको ब्राह्मणपुराणकारोंने गोवर्धन को उठानेके रूपमें नक़ल क्यों न की हो? परन्तु इस प्रश्नका उत्तर एक स्थलपर पहले ही दे दिया गया है। वह स्पष्ट है। जैन ग्रन्थोंका मूल स्वरूप काव्यकल्पनाका नहीं है और यह कथन इसी प्रकारकी काव्यकल्पनाका परिणाम है। पौराणिक कवियोंका मानस मुख्य रूपसे काव्यकल्पनाके संस्कारसे ही गढ़ा हुआ नजर आता है। अतएव यही मानना उचित प्रतीत होता है कि यह कल्पना पुराण द्वारा ही जैनकाव्योंमें, रूपान्तरित होकर घुस गयी है।

(२) कृष्णके गर्भावतरणसे लेकर जन्म, बाललीला और आगेके जीवन-वृत्तान्तोंका निरूपण करनेवाले प्रधान वैदिक पुराण हरिवंश, विष्णु, पद्म, ब्रह्मवैवर्त और भागवत हैं। भागवत लगभग आठवीं-नौवीं शताब्दीका माना जाता है। शेष पुराण किसी एकही हाथसे और एकही समयमें नहीं लिखे गए हैं, फिर भी हरिवंश, विष्णु और पद्म ये पुराण पाँचवीं शताब्दीसे पहले भी किसी न किसी रूपमें अवश्य विद्यमान थे। इसके अतिरिक्त इन पुराणों के पहलेभी मूल पुराणोंके अस्तित्वके प्रमाण मिलते हैं। हरिवंशपुराणसे लेकर भागवतपुराण तकके उक्त पुराणोंमें आनेवाली कृष्णके जीवनकी घटनाओं को देखनेसे भी मालूम होता है कि इन घटनाओंमें केवल कवित्वकी ही दृष्टिसे नहीं किन्तु वस्तुकी दृष्टि से भी बहुत कुछ विकास हुआ है। हरिवंशपुराण और भागवतपुराणकी कृष्णके जीवनकी कथा सामने रखकर पढ़नेसे यह विकास स्पष्ट प्रतीत होने लगता है।

दूसरी ओर जैन साहित्यमें कृष्णजीवनकी कथा का निरूपण करनेवाले मुख्य ग्रंथ दोनों—दिगम्बर और श्वेताम्बर—सम्प्रदायमें हैं। श्वेताम्बरीय अंग ग्रन्थोंमेंसे छट्ठे ज्ञाता और आठवें अंतगडमें भी कृष्णका प्रसंग आता है। वसुदेव हिन्डी (लगभग सातवीं शताब्दी, देखो पृ० ३६८, ३६९) जैसे प्राकृत ग्रन्थोंमें कृष्णके जीवनकी विस्तृत कथा मिलती है। दिगम्बरीय साहित्यमें कृष्ण-जीवनका विस्तृत और मनोरंजक वृत्तान्त बतानेवाला ग्रन्थ जिनसेनकृत (विक्रमीय ९ वीं शताब्दी) हरिवंशपुराण है और गुणभद्रकृत (विक्रमीय ९ वीं शताब्दी) उत्तरपुराण में भी कृष्णकी जीवनकथा है। दिगम्बरीय हरिवंश-पुराण और उत्तरपुराण ये दोनों विक्रमकी नौवीं शताब्दीके ग्रंथ हैं।

कृष्णके जीवनके कुछ प्रसंगोंको लेकर देखिए कि वे ब्राह्मणपुराणोंमें किस प्रकार वर्णन किए गये हैं और जैनग्रन्थोंमें उनका उल्लेख किस प्रकारका है ?

ब्राह्मणपुराण

(१) विष्णुके आदेशसे योगमायाशक्तिके हाथों बलभद्रका देवकीके गर्भमें से रोहिणीके गर्भमें संहरण होता है।

—भागवत, स्कन्ध १०, अ० २ श्लो. ६–२३ पृ० ७९९

(२) देवकीके जन्मे हुए बलभद्रसे पहलेके छह सजीव बालकोंको कंस पटक पटक कर मार डालता है।

—भागवत,स्कन्ध १०, अ० २ श्लो, ५

(३) विष्णुकी योगमाया यशोदाके यहाँ जन्म लेकर वसुदेवके हाथों देवकी के पास पहुँचती है और उसी समय देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुए कृष्ण वसुदेवके हाथों यशोदाके यहाँ सुरक्षित पहुँचते हैं। आई हुई पुत्रीको मार डालनेके लिए कंस पटकता है। पर, वह योगमाया होने के कारण निकल भागती है और काली-दुर्गा आदि शक्तिके रूपमें पुजती है।

—भागवत, दशमस्कन्ध, अ० ४ श्लो, २–१० पृ० ८०९

जैनग्रंथ

(१) इसमें संहरणकी बात नहीं है, बल्कि रोहिणीके गर्भमें सहज जन्म लेनेकी बात है।

—हरिवंश, सर्ग ३२ श्लो० १–१०, पृ० ३११

(२) वसुदेव हिन्डी (पृ० ३६८, ३६९) में देवकी के छ पुत्रोंको कंसने मार डाला, ऐसा स्पष्ट निर्देश है। परन्तु जिनसेन एवं हेमचन्द्रके वर्णनके अनुसार देवकी के गर्भजात छह सजीव बालकोंको एक देव, अन्य शहर में, जैन कुटुम्ब में सुरक्षित पहुँचा देता है और उस बाईके मृतक जन्मे हुए छह बालकों को क्रमशः देवकी के पास लाकर रखता है। कंस रोषके मारे जन्मसे ही उन मृतक बालकों को पछाड़ता है और उस जैन गृहस्थके घर पले हुए छह सजीव देवकी-बालक आगे जाकर नेमिनाथ तीर्थंकरके समीप दीक्षा लेकर मोक्ष जाते हैं।

—हरिवंश, सर्ग ३५, श्लो०१–३५ पृ०३६३–३६४

(३) यशोदाकी तत्काल जन्मी हुई पुत्री कृष्णके बदले देवकी के पास लाई जाती है। कंस उस जीवित बालिकाको मारता नहीं है। वसुदेव हिन्डीके अनुसार नाक काटकर और जिनसेनके कथनानुसार नाक सिर्फ चपटा करके छोड़ देता है। यह बालिका आगे चलकर तरुण अवस्थामें एक साध्वीसे जैन दीक्षा ग्रहण करती है और जिनसेनके हरिवंशके अनुसार तो यह साध्वी ध्यान अवस्थामें मरकर सद्गति पाती है लेकिन उसकी अँगुली के लोहू भरे हुए तीन टुकड़ोंसे, वह बादमें त्रिशूलधारिणी कालीके रूपमें विन्ध्याचलमें प्रतिष्ठा पाती है। इस काली के समक्ष होने वाले भैंसोंके वधको जिनसेनने खूब आड़े हाथों लिया है जो आजतकभी विन्ध्याचलमें होता है।

—हरिवंश सर्ग ४९, श्लो, १–५१, पृ०७५८–७६४

(४) कृष्णकी बाललीला और कुमारलीलामें जितने भी असुर कंसके द्वारा भेजे हुए आये और उन्होंने कृष्ण को, बलभद्रको या गोपगोपियोंको सताया है, करीब करीब वे तमाम असुर कृष्णके द्वारा या कभी-कभी बलभद्रके द्वारा मार डाले गए हैं।

—भागवत स्कंध १०, अ० ५-८, पृ० ८१४

(५) नृसिंह विष्णुका एक अवतार है और कृष्ण तथा बलभद्र दोनों विष्णुके अंश होने के कारण सदामुक्त हैं और विष्णुधाम स्वर्गमें विद्यमान हैं।

—भागवत, प्रथम स्कंध, अ० ३ श्लो, १—२४ पृ० १०—११

(६) द्रौपदी पाँच पांडवोंकी पत्नी है और कृष्ण पांडवोंके परम सखा हैं। द्रौपदी कृष्णभक्त है और कृष्ण स्वयं पूर्णावतार हैं।

—महाभारत

(७) कृष्णकी रासलीला एवं गोपीक्रीड़ा उत्तरोत्तर अधिक शृंगारमय बनती जाती है और यहभी यहाँ तक कि अन्त में पद्मपुराणमें भोगका रूप धारण करके वल्लभ सम्प्रदायकी भावनाके अनुसार महादेवके मुख से इसे समर्थन मिलता है।

—पद्मपुराण अ० २४५ श्लो, १७५—१७६ पृ० ८८९—८९०

(८) इन्द्रने व्रजवासियों पर जो उपद्रव किए उन्हें शान्त करनेके लिए कृष्ण गोवर्धन पर्वतको सात दिन तक हाथमें उठाए रखते हैं।

(४) ब्राह्मण पुराणोंमें कंस द्वारा भेजे हुए जो असुर आते हैं वे असुर, जिनसेनके हरिवंश पुराणके अनुसार कंस द्वारा पूर्व जन्म में साधी हुई देवियाँ हैं। ये देवियाँ जब कृष्ण, बलभद्र या व्रजवासियोंको सताती हैं तब वे कृष्णके द्वारा मारी नहीं जाती वरन् कृष्ण उन्हें हराकर जीती ही भगा देते हैं। हेमचन्द्रके (त्रिषष्ठि० सर्ग ५ श्लो, १२३—१२४) वर्णनके अनुसार कृष्ण, बलभद्र और व्रजवासियोंको सतानेवाली देवियाँ नहीं वरन् कंसके पाले हुए उन्मत्त प्राणी हैं। कृष्ण उनकाभी वध नहीं करते किन्तु दयालु जैनकी भाँति पराक्रमी होने परभी कोमल हाथसे इन कंसप्रेरित उपद्रवी प्राणियोंको हराकर भगा देते हैं।

—हरिवंश, सर्ग ३५ श्लो, ३५-५० पृ० ३६६—३६७

(५) कृष्ण यद्यपि भविष्यकालीन तीर्थंकर होनेके कारण मोक्षगामी हैं किन्तु इस समय युद्धके फलस्वरूप वे नरकमें निवास करते हैं और बलभद्र जैन दीक्षा लेनेके कारण स्वर्ग गए हैं। जिनसेनने बलभद्रको ही नृसिंह रूपमें घटानेकी मनोरंजक कल्पनाकी है और लोकमें कृष्ण और बलभद्रकी सार्वत्रिक पूजा कैसे हुई, इसकी युक्ति कृष्णने नरकमें रहते रहते बलभद्रको बताई, ऐसा अति साम्प्रदायिक और काल्पनिक वर्णन किया है।

—हरिवंशपुराण सर्ग ३५, श्लो, १-५५ पृ० ६१८—६२५

(६) श्वेताम्बरोंके अनुसार द्रौपदीके पाँच पति हैं (ज्ञाता १६वाँ अध्ययन) किन्तु जिनसेनने अर्जुनको ही द्रौपदी का पति बताया है और उसे एक पतिवालीही चित्रित किया है (हरिवंश सर्ग ५४ श्लो, १२-२५) द्रौपदी तथा पाण्डव सभी जैन दीक्षा लेते हैं। कोई मोक्ष और कोई स्वर्ग जाते हैं। सिर्फ़ कृष्ण कर्मोदयके कारण जैनदीक्षा नहीं ले सकते फिरभी बाईसवें तीर्थंकर अरिष्टनेमिके अनन्य उपासक बन कर भावी तीर्थंकर पदकी योग्यता प्राप्त करते हैं।

—हरिवंश, सर्ग ६५ श्लो० १६ पृ० ६१९—६२०

(७) कृष्ण रास और गोपी क्रीड़ा करते हैं पर वे गोपियोंके हावभावमें लुब्ध न होकर एकदम अलिप्त ब्रह्मचारी रहते हैं।

—हरिवंश, सर्ग ३५, श्लो, ६५-६६ पृ० ३६९

(८) जिनसेनके कथनानुसार इन्द्र द्वारा किए हुए उपद्रवोंको शान्त करनेके लिए नहीं, वरन् कंसके द्वारा भेजी हुई देवीके उपद्रवोंको शान्त करनेके लिए कृष्णने गोवर्धनपर्वतको उठाया।

—हरिवंश सर्ग ३५, श्लो, ४८-५०, पृ० ३६७

लोहड़साजन–बड़साजन संबंध और बा० नेमीचंदजी बाकलीवालका मिथ्याप्रलाप।

खंडेलवाल जैन हितेच्छु अंक १८–१९ में श्रीयुत बाबू नेमीचन्दजी बाकलीवालने "लाडनूमें लोहड़साजन सम्बन्ध और कलकत्तेका खंडेलवाल जैनसमाज" शीर्षक लेख प्रकाशित कराया है; उसमें बहुतसी बातें विचारणीय हैं। यद्यपि उसका उत्तर देनेकी मेरी इच्छा न थी, परन्तु इस लेखमें मुझ पर भी बहुत कुछ आक्षेप किये गये हैं; इसलिये पाठक महानुभावोंका भ्रम दूर करनेके लिये आवश्यक बातें लिखनी पड़ती हैं। अस्तु।

इस विवाहको रोकनेके लिये कलकत्तेसे कुछ सज्जनों ने लाडनू पंचायतको और श्रीमान् सेठ मूलचन्दजी बड़जात्या सभापति भारतवर्षीय खण्डेलवाल महासभाको तार दिये थे, जिसमें कई महानुभाव तो लाडनू के ही निवासी थे और वे अन्तःकरणसे इस विवाहके पक्षमें थे। केवल अपने सगे सम्बन्धियोंको खुश करनेके लिये ही विरुद्धमें तार दिये थे। नहीं तो विवाह लाडनू में कभी नहीं हो पाता और न लाडनूकी खण्डेलवाल पंचायत एक मतसे श्रीयुत रावतमलजी सेठीके इस विवाहमें सहयोग देती। खण्डेलवाल महासभाके सभापतिका वरके सिरपर पगड़ी बाँधनेसे और आशीष देनेसे तथा उनके सुपुत्र बा० झूमरमलजी बड़जात्याका विवाहके सारे कार्योंमे उत्साह के साथ भाग लेनेसे बिलकुल मेरी बातका समर्थन होता है। इन दोनों बातोंके लिये हमारे पास अकाट्य प्रमाण हैं।

श्रीमान सेठ गजराजजीने भी हितेच्छुके गत अङ्कमें प्रतिवाद केवल कुछ लोगोंको खुश करनेके लियेही छपाया है। सेठ दुलीचन्दजी सेठीने तो बा० माणिकचन्दजी बैनाड़ाके लिखे हुए प्रतिवाद पर आँख मूँदकर ही हस्ताक्षर किये हैं। श्रीमान सेठ मूलचन्दजी सभापतिका वर के सिरपर पगड़ी बाँधने और आशीष देनेसे इतनी दृढ़ता के साथ इनकार करना वास्तवमें ज़बरदस्त कमाल है। वे इसे असत्य सिद्ध करें, हम उन्हें चैलेंज देते हैं। यदि आपकी जानकारीसे लेख तैयार हुआ होता तो उपरोक्त बातसे आप कभी भी न नट पाते। कलकत्ता खण्डेलवाल पंचायतके अधिकांश लोगभी इस विवाहके पक्षमें हैं, जो समय पर मालूम होगा। इस कार्यमें मैंने भाग क्यों लिया और श्री सम्मेदशिखर वार्षिक अधिवेशनके समक्ष मेरा क्या विचार था, इस पर बाबू साहबने जो कुछ विचार प्रकट किये हैं उसमें बहुत बड़ी भूल है। प्रथम तो खण्डेलवाल समाजमें लोहड़साजन (छोटे सजन) और बड़साजन (बड़े सजन) नामकी दो गोठोंका होना मुझे मालूम तक न था; परन्तु समाजके ११ प्रतिष्ठित सज्जनोंकी जाँचकमेटी द्वारा रिपोर्ट प्रकाशित होने से मुझे इनकी परिस्थितिका ज्ञान होगया और इसलिये उस अधिवेशन पर उस रिपोर्टको पास करनेका प्रस्ताव मुझे उपस्थित करना पड़ा। वे ग्यारह महानुभाव समाज के कितने महत्वशाली पुरुष हैं, यह किसीसे छिपा नहीं है। उसपर विश्वास न कर कतिपय पुरुषोंने उनकी लिखी रिपोर्ट पर अविश्वास किया ! मुझे अधिक अफ़सोस तो इस बातका है कि खण्डेलवाल महासभाके महामंत्री श्रीयुत बाबू माणिकचन्दजी बैनाड़ाने अग्रसर होकर प्रस्तावका विरोध किया और दूसरी जाँच कमेटीकी उन्होंने आवश्यकता प्रकट की। मेरी समझमें दूसरी बार जाँच कमेटी नियत भी हुई होती तो वैसा सुन्दर चुनाव कभी नहीं होसकता था, क्योंकि उसमें रायबहादुर धर्मवीर स्वर्गीय सेठ टीकमचन्दजी सोनीका नाम प्रथम था, और अब ऐसे निष्पक्ष और धर्मात्मा सज्जन लाख प्रयत्न करने पर भी नहीं मिल सकते। उन लोगोंकी खोज की हुई रिपोर्ट पर मैंने पूर्ण विश्वास करके ही प्रस्ताव उपस्थित किया था, जिसके कि पास होनेसे समाजमें किसी प्रकार की अशांति नहीं होपाती। परन्तु अफ़सोस है कि वह प्रस्ताव हमेशाकी भाँति इस वर्षभी गड्ढेमें ढकेला गया। रिपोर्टसे लोहड़साजनोंका बीसा होना प्रमाणित होरहा है और लोहड़साजन निर्णय नामकी पुस्तक तो इस विचारको और भी सुदृढ़ बनारही है, जिसका खण्डन अबतक नहीं निकल पाया। सिर्फ़ जातिभूषण डाक्टर गुलाबचन्दजी पाटनीने अब जाकर अपनी बातोंका कुछ जवाब दिया है।

उक्त विवाह लाडनूकी पंचायतसे सम्बन्ध रखता था। क्याही अच्छा होता कि इसमें लाडनूके लोगही विचार करते। भिन्न भिन्न गाँवोंके कुछ लोगोंने तार द्वारा अपने अपने विचार प्रकट किये, उस हालतमें मुझेभी अपनी सम्मति प्रकट करनी पड़ी। मैं लोहड़साजनोंको बीसा समझता हूँ, इसलिये उनके कार्योंमें मेरी पूर्ण

सहानुभूति है। बाबू नेमीचन्दजीका यह लिखना कि मेरा विचार तो लोहड़साजनोंके साथ केवल कच्ची पक्की रोटीका ही सम्बन्ध स्थिर रखनेका था, बेटीव्यवहारका विचार फिर कैसे पैदा हुआ; यह ठीक है, परन्तु अधिक लाभ होनेका अवसर आता हो तो उस परिस्थितिको कोई क्यों अपने हाथसे जाने दे? इसका विचार स्वयं बाबू साहब करसकते हैं। खैर, जिस दिन लोहड़साजन दस्से साबित करदिये जायेंगे मैं अपनी भूलका प्रायश्चित करलूँगा। अबतकके प्रमाणोंसे यह साफ़ प्रकट होचुका है कि वे शुद्ध हैं। ऐसी हालतमें क्यों विवाह सम्बन्ध जारी न किये जाँय?

बाबू नेमीचन्दजी बाकलीवालने लोहड़साजनोंके इस सम्बन्धको अनुचित बतानेका प्रयत्न किया है, परन्तु हमने तो सुना है कि वे स्वयं लोहड़साजनोंसे सम्बन्धित हैं तथा और भी खण्डेलवाल समाजके बड़े बड़े कर्णधार उनके सम्बन्धसे सम्बन्धित पाये जाते हैं। उनका क्या होगा इसपर भी क्या उन्होंने विचार किया है? मेरी निगाहसे उन भाइयोंसे पारस्परिक प्रेमसम्मेलन होना बहुतही आवश्यक है। प्रथम तो उनका कोई अपराध साबित नहीं होता। अगर किसीके पूर्वजोंने कोई साधारण भूल की भी हो तो सैकड़ों पीढ़ियों तक उनकी संतान अपराधी नहीं होसकती; यह शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा सिद्ध है। उसको ठुकरा देना अपनेही अंगको कमज़ोर करदेना है। यदि यही चाल सदा बनी रही तो आगे चलकर बहुत विकट समस्या उपस्थित होगी।

—तनसुखलाल पाण्ड्या, कलकत्ता।
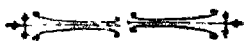
बाकलीवालजी की धींगाधींगी।

ब्यावर (किशनगढ़) में, सदासे होते आये विवाह सम्बन्धोंकी तरह अभी हालमें जो विवाहसम्बन्ध बाबू रावतमलजी सेठीका हुआ है, उसके विषयमें कलकत्ताकी खण्डेलवाल समाजमें कुछ झगड़ा फैलाने वाले व्यक्तियों की मनमानी कार्यवाहीसे काफ़ी सनसनी रही। जब इन लोगोंकी मनमानी बातको विचारशील लाडनू पंचायतने बुरी तरह से ठुकरा दिया तब तो इनके होश फाख्ता होगये। अभी खण्डेलवाल हि० के मेनेजर बाबू नेमीचन्द जी बाकलीवालने "लाडनू लोहड़साजन सम्बन्ध और कलकत्तेका खण्डेलवाल जैनसमाज" शीर्षक लेख छपाकर कलकत्ता खण्डेलवाल सरावगी पंचायतके विषयमें लिखा है कि "जब कि कलकत्तेमें एकही खण्डेलवाल पचायत है जिसके कि मन्त्री बाबू गजराजजी गँगवाल हैं, तब यह कलकत्ता खण्डेलवाल सरावगी पंचायतके मन्त्रीका तार सिर्फ़ लाडनू वालोंको धोखा देनेके लिये ही दिया गया।"

कलकत्तेके खण्डेलवालोंमें बहुत समयसे दो दल और दो पंचायतें होचुकी हैं, जिसे कलकत्तेकी जनताही नहीं बल्कि बाहरकी जनताभी अच्छी तरह जानती है, जिसका प्रमाण पत्रोंमें वितरित उसके विज्ञापन, लेख और विज्ञप्ति इत्यादि हैं। क्या बाकलीवालजी जैन पत्रों को भी नहीं देखते? अवश्य देखते हैं; क्योंकि वे एक जैनपत्रके मैनेजर हैं। फिर यह जानते हुए भी कि कलकत्तेमें दो खंडेलवाल पञ्चायतें हैं, इस प्रकार लोगोंमें भ्रमप्रचार करना बहुत ही अनुचित है।

लाडनू पंचायत इस पंचायत के नोटिस, हैंडबिल, विज्ञापन आदि जैन पत्रोंमें बराबर पढ़ती रही है। लाडनूकी विवेकी समाजने उन बड़े बड़े नामोंके आगे इस कलकत्ता खंडेलवाल सरावगी पंचायतके तारको माननीय ठहराया, इतने पर से ही समझलेना चाहिये कि बाहरके लोग कौनसी पञ्चायतको मान्य करते हैं। फिर सूर्यप्रकाश की तरह प्रकट अपने नामसे दियेगये खुलासा तारको धोखा देनेकी बात लिखना केवल बाकलीवालजीकी कल्पना मात्र है।

—शांतिलाल सेठी,

कलकत्ता खं० सरावगी पंचायत का एक सदस्य।

विधवा दोष!

विधवा अनाथ पतिहीना यदि होय गई,
थांको बारबार उन्हें काहे को खिजात हो।
बूढ़न संग व्याह कर आपन अपराध कियो,
दोष, निर्दोष बालिकान कूँ लगात हो॥
प्रकृति नियम तोड़वे कूँ आपतो समर्थ नाँहि,
कामखिन्न युवतियन कूँ योग सिखलात हो।
हृदय में विचारो "नाथ," कैसे यह धैर्य धरें,
इनके कष्ट देख देख आप जब सिहात हो॥

—"सनातन जैन"

समाचार संकलन।

—लंडनकी स्त्रियाँ केवल अपनेको सुंदर बनानेके लिये एक वर्षमें छः करोड़ पौंड खर्च करती हैं अर्थात् एक स्त्री एक महीनेमें अपनी सुन्दरताके लिये अठारह रुपयेसे कुछ अधिक खर्च करती है। हमारे देशमें तो एक आदमीकी औसत आमदनी दो पाँच रुपये मासिक होती है। दूसरे शब्दोंमें, जितना हम एक महीनेमें कमाते हैं उससे तीन गुना लंडनकी स्त्रियाँ केवल अपनी सुन्दरताके लिये खर्च करदेती हैं।

—मीरा बेन (मिस स्लेड) लंदनमें पहुँच गयी हैं। आपका विचार सारे देशमें प्रवास करनेका है। आप महात्मागाँधीके विषयमें विशाल वातावरण उत्पन्न करती हुई विश्वबन्धुत्वकी भावनाका प्रचार कर रही हैं। आपका कहना है कि यदि इंगलैंडका कोई सच्चा मित्र है तो वह महात्मा गाँधी ही है।

—भाण्डारकर ओरियंटल रिसर्च इन्स्टिट्यूट पूनामें बड़े बड़े विद्वानोंकी अध्यक्षतामें महाभारतका सम्पादन किया जारहा है। इस महान ग्रन्थके सम्पादन के लिये औंधके चीफने छः लाख रुपये दान किये हैं।

—बहुत जल्दीही कलकत्तेमें जापानी मोटरकार बिकना शुरू हो जायगी। इसका मूल्य केवल सात सौ रुपया होगा। इस कारके जापानी कारखानेने कलकत्तामें अपना एजण्ट मुकर्रर करलिया है। इस कारका इंजिन सात घोड़ोंकी ताकत रखता है। कारखानेका दावा है कि यह कार एक गैलनमें और एक घण्टेमें ४५ मील दौड़ती है।

—जापानमें वर्षाके भयंकर तूफानके कारण चार हजार आदमी बेघरबार होगये हैं, दोसौ पचास आदमी डूब गये हैं और तीस पुल बहगये हैं। कहा जाता है कि सैंतीस वर्ष पहले ऐसा भयंकर तूफान आया था।

—आसाममें बड़ी भयंकर बाढ आई है। बीस हजार स्त्रियोंके पास अपनी लाज बचानेके लिये वस्त्र तक भी नहीं है। अब वे झाड़ी और झोंपड़ोंमें छिप कर भूखी मरती हुई रोगका शिकार होरही हैं।

—दुनियाँके सबसे बड़े वृद्ध पुरुष जारो आगा की मृत्यु १६० वर्षकी अवस्थामें इस्तंबुलके अस्पतालमें हुई है। यह वृद्ध पुरुष नैपोलियनके समय फ्रांसके विरुद्ध लड़ाथा। इसने बारह स्त्रियोंके साथ विवाह किया था।

अन्तर्जातीय विवाह।

श्रीमान हुकमचन्दजी परवार (अटसके) एफ० ए० का विवाह मिती आषाढ़ वदी १ को चौधरी गुलाबचन्दजी मँझलोसेन (चौसके परवार) म्युनिसिपिल प्रेसीडेन्ट एवं आनरेरी मजिस्ट्रेट गोटेगाँव वालोंकी पुत्री सावित्रीकुमारीके साथ अत्यन्त समारोहके साथ होगया। विवाहमें वरपक्षके रिश्तेदार पंडित जगन्मोहनजी शास्त्रीके भाई तथा कुटुम्बी सब सम्मिलित हुए थे। जबलपुरके श्री० कंछेदीलालजी जो कि वहाँ के बहुतही धनीमानी और प्रतिष्ठित परवार हैं, आदिसे अंततक विवाहमें सम्मिलित रहे। उन्होंनेही विवाहके सब नेगचार करवाए। स्थानीय परवारभी सम्मिलित हुए थे। भाई जीवनदासजी और चौधरी दुर्गाचन्दजी परवारने इस शादीमें बहुत परिश्रम किया। अतः वे धन्यवादके पात्र हैं। अन्त में श्रीयुत जमुनाप्रसादजी सबजज अमरावती भी सम्मिलित होगए थे। उन्होंने इस आदर्श विवाह की अत्यन्त सराहनाकी। —लोकमणि

—देहलीमें कॉलेज थर्ड ईयरक्लासकी छात्रा श्री० कुंथकुमारी दिगम्बर जैन अग्रवालका शुभ विवाह श्रीयुत बाबू लक्ष्मीचन्द्रजी एम० ए० दिगम्बर जैन पद्मावती पुरवालके साथ सानन्द सम्पन्न हो गया। स्थितिपालक दलमें इस विवाहसे बड़ी सनसनी फैल रही है।

... ...ballabh Sharma at the Ajmer Printing Works, Ajmer.

तार का पता—"JAINJAGAT" Ajmer

Reg: No. N 352.

वर्ष ६ ता० १६ अगस्त

सन १९३४ अंक १६

जैनसमाज का एकमात्र स्वतन्त्र पाक्षिकपत्र।

वार्षिक मूल्य ३) रुपया मात्र।

जैन जगत्

विद्यार्थियों व संस्थाओं से २॥) मात्र।

(प्रत्येक अंग्रेजी महीने की पहली और सोलहवीं तारीखको प्रकाशित होता है)

"पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनम् यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः"॥—श्री हरिभद्रसूरि।

सम्पादक—[illegible] दरबारीलाल न्यायतीर्थ, जुबिलीबाग तारदेव, बम्बई।

प्रकाशक—फतहचंद सेठी, अजमेर।

विचार परिवर्तन करनेमें कौन सिद्धहस्त है?

(ले०—श्री० तनसुखलालजी पाँड्या, कलकत्ता)

खण्डेलवाल जैनहितेच्छुके ता० २८-७-३४ के अंकमें "लालाजीके विचारपरिवर्तन पर दो शब्द" शीर्षक लेखमें श्रीयुत बाबू चाँदमलजी चूड़ीवालने मेरे विचारपरिवर्तन पर कड़ी आलोचना की है। उसके प्रत्युत्तरमें मेरा यही लिखना है कि मेरे विचारों में तो खास कोई परिवर्तन नहीं हुआ; आपके ही विचार नित नये बदलते रहते हैं। पहिले जब आप बीस पंथी थे पंचामृताभिषेक और केशर-पुष्पपूजन आदिको बहुत महत्व देते थे। बादमें जब तेरहपंथी आम्नाय स्वीकारकी तो आपने उपरोक्त क्रियाओंको शास्त्रविरुद्ध ठहरानेका प्रयत्न किया। इसके पश्चात् जब आप साढ़ेसोलहपंथी बने उस हालतमें इसी विषय को लेकर आपने तटस्थता दिखाई और जब आप पुनः बीसपंथी हुए तो उन्हीं पदार्थोंको शास्त्रसंगत सिद्ध करते हुए आज त्रिवर्णाचार और चर्चासागर जैसे ग्रन्थोंका भी समर्थन कररहे हैं। इससे अधिक विचार परिवर्तनका और नमूना कहाँ पाया जा सकता है?

श्रीयुत रावतमलजी सेठीके विवाहसम्बन्धमें जो कुछ आप लिख रहे हैं उसके प्रत्युत्तरमें मेरा यही लिखना काफी होगा कि इस सिलसिलेमें मेरी खास कोई दिलचस्पी नहीं थी। मैंने सिर्फ तार द्वारा सभापति खण्डेलवाल महासभासे और लाडनूं पंचायतसे यही प्रार्थना की थी कि वे महासभाके फैसले तक लोहड़साजन-बड़साजन विवाहसम्बन्धमें हस्तक्षेप न करें। इसका कारण यह था कि मामला महासभामें विचाराधीन था और उसने अबतक ऐसी कोई घोषणा प्रकाशित नहीं की थी जिसमें फैसले से पहले ऐसे कार्य बन्द करने पर जोर दिया गया हो। अगर वह ऐसे विवाहसम्बन्धको अनुचित समझती तो मनाहीका सरक्यूलर तुरन्त निकाल सकती थी। लाडनूं पंचायत भी इस सम्बन्धको अनुचित समझती थी तो रावतमलजीके वैवाहिक कार्यमें उसने दिलचस्पी दिखलाई थी। यही कारण है कि लिखे गये हुए उसने तारोंका उसने कोई मूल्य नहीं समझा और आज इतना आन्दोलन होने पर भी वह मौन है। इसका भी यही अर्थ होसकता है। नहीं तो रावतमलजी की क्या ताकत थी जो उसकी आज्ञाके विरुद्ध इतना बड़ा साहस करते?

लोहड़साजन लोग अशुद्ध हैं इसके लिए कोई प्रमाण भी नहीं मिलते सिवाय इसके कि (१) वे अजाग

क्यों हुए ? और (२) उनका मामला महासभामें क्यों आया ? अशुद्ध समझनेवालोंकी सिर्फ यही दो दलीलें हैं। इनमेंसे प्रथमके लिए तो सम्भव हो सकता है कि किसी कारणसे परस्परमें मनमुटाव होकर दो धड़े पड़गये हों और बादमें मामला बढ़ता बढ़ता इस परिस्थितिमें पहुँच गया हो। दूसरी बात के लिए तो कारण मुनि आहारदानादिका ही मानना पड़ेगा। जबकि इस कार्यमें उनको रुकावटें आने लगीं तो हारकर ही मुकद्दमा महासभामें पहुँचाया गया। उपरोक्त दोनों कारणोंका यही उत्तर ठीक हो सकता है। उसके सिवा मैं तो उनको बीसेही समझता हूँ और इसीलिए मैंने लाडनू-पंचायतको तार भी दिया था और मेरे इस विश्वासके निम्न कारण हैं:—

(१) महासभाद्वारा निर्वाचित जाँचकमेटी, जिसमें समाजके सर्वश्रेष्ठ एवं निष्पक्ष धर्मात्मा सज्जन थे, उनकी जाँचमें लोहड़साजनों बड़साजनोंमें परस्पर कच्चा पक्की रोटी सम्बन्धका ठेठसे चला आना सिद्ध हो रहा है। अलबत्त बेटीव्यवहारकी खोज उनकी नहीं हो पाई। फिर भी उन्हें इससे इन्कार नहीं है। यह उनकी उस समयकी जाँच है जिस समय उनके हृदयमें किसी प्रकारका पक्षपात नहीं था। खैर, रोटीव्यवहारकी बातको ही हम पूरी खोज समझलें तो भी वे बीसेही समझे जा सकते हैं, क्योंकि जिन खंडेलवाल भाइयोंके साथ पंगतमें बैठकर उस प्रकारका हम भोजन कर सकते हैं वे दस्से नहीं हो सकते।

(२) बेटीव्यवहार भी उनका चला आरहा है और स्वयं [illegible] लोग स्वयं यह स्वीकार कर रहे हैं। जो लोग शुद्ध हैं उनमें बेटीव्यवहारका परहेज हो भी नहीं सकता। दस्से तो वे ही कहलाते हैं जिनके साथ खानदान आदि सभी व्यवहार बन्द चले आरहे हों।

(३) जिन लोगोंको गृहस्थाचार्य (भट्टारकगण) एवं समाजके विद्वान, धर्मात्मा, एवं कोट्याधीश लोग शुद्ध समझते हों ऐसी परिस्थितिमें वे अशुद्ध कभी नहीं हो सकते और इसकेलिए हमारे पास काफी प्रमाण आये हुए हैं।

(४) जिन लोगोंके वंशमें भगवान्‌की पूजन प्रक्षाल मन्दिर निर्माण एवं प्रतिष्ठादि कार्य चले आ रहे हों वे अशुद्ध कैसे हो सकते हैं ?

उपरोक्त कारणोंसे मैं उनको बीसे समझता हूँ। मैंने सुना है कि श्री १००८ मुनि चन्द्रसागरजीके चतुर्मासके अवसर पर खास इसीकेलिए महासभाका अधिवेशन कराया जायगा। बहुतही अच्छा हो कि यह मामला वहाँ शान्तिसे निबटा दिया जाय। जहाँ तक मैं समझता हूँ खुलीतौरसे ऐसे मामलोंका निबटारा नहीं हो सकता। फिर भी जाँचके लिये वहाँ एक सबकमेटीका चुनाव करनाही पड़ेगा। इससे तो जो लोग पहिले चुनेगये थे उनकी जाँच पर ही समाज विश्वास करे। उनसे अच्छे निष्पक्ष लोग और कहाँसे प्राप्त होंगे ? खैर, कुछभी हो, मुझे इसमें कुछ हठ नहीं। आप उनको दस्से प्रमाणित करावें, उस हालतमें मुझे अपनी भूलके लिए प्रायश्चित्त करने में कुछ संकोच न होगा।

आपने उनको दस्से (दरोगे) सिद्ध करनेमें जो युक्तियाँ प्रकट की हैं वे बिल्कुल निराधार हैं। इस प्रकारकी संदिग्धतामें सिवाय हानिके कोई लाभ नहीं हो सकता। क्या आपके पास इन लोगोंके दस्सा होनेका कोई प्रमाण है ? यदि नहीं, तो संदिग्धावस्थामें इस [illegible] लिख्यमारना वास्तवमें आपका अतिसाहस है; और यह कुछ कम अनर्थकी बात नहीं है।
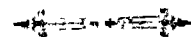
—ब्रिटेनमें नग्नतावादियोंका सम्प्रदाय दिनपर दिन बढ़ता जारहा है। वहाँ अब इस वादका प्रचार करनेकेलिये दर्जनों संस्थायें खुलगई हैं। इन संस्थाओंमें स्त्री पुरुष, युवा, वृद्ध सब नंगे रहते हैं। इस वर्ष वसन्तऋतुमें ब्रिटेनमें नग्नताके प्रचारके कमसे कम सौ केन्द्र खुले हैं। पिछले एक ही वर्षमें ऐसी संस्थाओंके लिये पचासहज़ार पाउंड खर्च किया गया जिससे पचासहज़ार व्यक्तियोंने लाभ उठाया।

वर्ष ९

श्रावण शुक्ला ६

वीर संवत् २४६०

अंक १९

ता० १६ अगस्त

सन् १९३४ ई०

जैनधर्म का मर्म ।

(४९)

इस प्रकार ब्रह्मचर्य सुखवर्द्धक सिद्ध होजाने पर भी हिंसा आदि जिस प्रकार दुःख के कारण हैं और साक्षात् दुःखरूप हैं उनमा मैथुन नहीं है, और न वह भोजनादि की श्रेणीमें ही आता है। उसका स्थान मध्यमें है। हां, अगर वह अन्य पापोंसे मिश्रित हो जाय तो उसकी पापता बहुत भयंकर होजाती है, तथा अन्य भोगोपभोग सामग्रियोंकी अपेक्षा इसमें आरम्भ परिग्रहकी वृद्धि भी बहुत होती है या होनेकी अधिक सम्भावना है।

ब्रह्मचर्यके मुख्य तीन प्रयोजन हैं १—शक्तिका संचय या उसकी रक्षा, २—कौटुम्बिक और सामाजिक जीवनकी शान्ति ३—विश्वप्रेम या समभावकी रक्षा।

१—शरीरमें बहुमूल्य धातु वीर्य है। मैथुनमें पुरुष-स्त्रीके शरीरका यही बहुमूल्य धन नष्ट होता है। अगर इसकी रक्षा की जाय तो शरीरकी शक्ति सुरक्षित रहती है, तथा बढ़ती है। शारीरिक शक्तिके साथ मानसिक शक्तिपर इसका प्रभाव और भी अधिक पड़ता है। अन्यपापोंकी अपेक्षा मैथुनका मन से अधिक सम्बन्ध है। मनमें दूसरा पाप होनेसे मन अपवित्र होता है परन्तु उसका बाह्य प्रभाव उल्लेखनीय नहीं होता, जब कि मानसिक मैथुनका बाह्यप्रभाव बहुत अधिक होता है। इससे वीर्यका स्खलन होता है और शरीर कमजोर होजाता है। इसलिये बाहर से ही मैथुनका त्यागी अगर मनको वशमें नहीं रखता तो वह ब्रह्मचारी तो है ही नहीं; साथ ही बाहिरी ब्रह्मचर्यका बाहिरी फल भी प्राप्त नहीं कर सकता।

विवाहित जीवनमें पति-पत्नीमें परिमित ब्रह्मचर्य का पालन होता है। वह भी शक्तिसंचयका कारण है। परन्तु अगर उसमें मर्यादा न रक्खी जाय, उसमें दो में से किसी एककी भी शक्तिका ह्रास होने लगे तो उसे एक प्रकारका व्यभिचार ही कहेंगे। नियमके शब्दोंकी दृष्टिसे वह व्यभिचारी भले ही न कहा जाय, परन्तु नियमके लक्ष्यकी दृष्टिसे वह व्यभिचारी है।

भोजनादिकी सात्विकताभी ब्रह्मचर्यका अंग है। जिस भोजनको हम पचा नहीं सकते अर्थात् जिसकी उन्मादकताको हम सहन नहीं कर सकते, मनोवृत्तियाँ जिससे विकृत होती हों उससे बचना चाहिये। इसी प्रकार श्रृंगार तथा अन्य इन्द्रियोंकी लोलुपता भी ब्रह्मचर्यमें बाधक है।

शंका।—धर्मका लक्ष्य अगर सुख है तो वह सौन्दर्य आदि सुखसाधनोंका विरोध क्यों करता है? सौन्दर्योपासनामें आखिर पाप क्या है? क्योंकि इससे न तो किसीको कष्ट पहुँचता है, न किसीकी कोई सामग्री छीनी जाती है। यह तो एक ऐसा आनन्द है जिसके लिये हमें किसीकी गुलामी नहीं करना पड़ती प्रकृतिके भण्डारमें जो अनंत सौन्दर्य भरा हुआ है उसको बिना नष्ट किये अगर हम उसका उपभोग कर सकते हैं तो इसमें क्या हानि है? क्या आप यह चाहते हैं कि मनुष्य गंदा रहे? इस गन्दगी और नीरसताके कष्ट सहन करनेसे क्या आत्मोन्नति हो जायगी?

समाधान—कष्ट सहनसे आत्मोन्नति नहीं होती; न धर्मके नामपर गंदगी फैलानेकी जरूरत है। गंदगी तो पाप है और स्वच्छता धर्म है। परन्तु स्वच्छताको सौन्दर्य या शृंगार समझना भूल है। सुंदरसे सुंदर वस्त्राभूषण स्वच्छ नहीं होते और स्वच्छ वस्त्रादिभी सुन्दर नहीं होते। यह सम्भव है कि कहीं स्वच्छता और सुंदरताका मेल होजाय परन्तु इनके मेलका नियम नहीं है। धर्म, विशुद्ध सौन्दर्यकी उपासनाका विरोध नहीं करता मन्दाकिनीकी निरवच्छिन्न धारा, समुद्रकी असंख्य कल्लोले या उसकी अनंत नीरवता, गिरिराजकी हिमाच्छन्न चोटियाँ और बसन्तमें प्रकृतिका अनन्त शृंगार जो आनन्द प्रदान करता है, धर्म उसका विरोध नहीं करता क्योंकि इससे ब्रह्मचर्यके उपरिलिखित तीन प्रयोजनोंमें से किसीकी भी हानि नहीं है। इस सौन्दर्योपासनामें व्यक्त या अव्यक्त रूपमें विश्वमें तल्लीन होजाने की भावना है, संकुचितताका त्याग है। इतना ही नहीं किन्तु इस आशयसे हम प्राणियोंके और मनुष्योंके भी सौन्दर्यकी उपासना कर सकते हैं। जैसे वनस्पति आदि प्राणियोंमें प्रकृतिका सौन्दर्य दिखलाई देता है उसी प्रकार मयूरकी शिखा और कोकिलकी कुहूकुहू भी प्रकृतिका सौन्दर्य है स्वयं मनुष्य भी प्रकृतिका एक अंग है। जिस निर्दोष बुद्धिसे हम बसन्त आदिकी शोभा निरखते हैं या जिस निर्दोष बुद्धिसे हम बालक या बालिकाको या अपनी बहिन और माताको देखते हैं, उसी निर्दोष बुद्धिसे हम किसीभी स्त्री या पुरुषके सौन्दर्यको देखें तो यह ब्रह्मचर्यका दोष नहीं है परन्तु यह याद रखना चाहिये कि इस निर्दोष बुद्धिका सुरक्षित रखना कठिन है। यह पहुँचे हुए महात्माओंका कार्य है। जैनशास्त्रों के अनुसार जैनसाधु स्त्रियोंके साथ विहार नहीं कर सकते परन्तु भगवान महावीरके साथ सैकड़ों स्त्रियाँ (आर्या और श्राविकाएँ) विहार करती थीं। इससे मालूम होता है कि यदि सौन्दर्योपासनामें मैथुनकी वासना न हो तो वह अधर्म नहीं है, क्योंकि इस दुर्वासनाके आनेसे उपर्युक्त तीनों प्रयोजन नष्ट हो जाते हैं।

शंका—सौन्दर्यकी उपासनामें मैथुनकी वासना न हो, यह असम्भव है। जगत्‌का सारा सौन्दर्य मैथुनकी वासनाका रूपान्तर या सूक्ष्म रूप है। बल्कि यों कहना चाहिये कि जो हमारी इस वासनाकी पूर्ति करता है, उसीका नाम सौन्दर्य है। स्त्री और पुरुषमें जो लैङ्गिक आकर्षण है उसकी या उसके साधनोंकी जहाँ समानता दिखलाई देती है उसीका नाम सौन्दर्य है। चन्द्रमा इसीलिये सुन्दर है कि वह प्रेयसीके मुखका स्मरण कराता है। हंस इसीलिये प्यारा है कि वह स्त्रीकी गतिका अनुकरण करके हमें उसका प्र[illegible]न कराता है। आँखोंकी समानतासे कमलोंकी [illegible] है। इतनाही नहीं किन्तु मैथुनके लिये जो समय या जो वातावरण अनुकूल होता है उससे विशेष सम्बन्ध रखनेवाली वस्तुभी सुन्दर मालूम होती है। वसन्तका समय अगर अनुकूल है तो वसन्तमें होनेवाली प्रत्येक वस्तु हमारे लिये सुन्दर होजाती है। बालक आदिमें जबतक यह वासना पैदा नहीं होती तबतक उसका पूर्वरूप रहता है। लैङ्गिक विज्ञानके अनुसार तो माताका पुत्रमें स्नेहभी इसी वासनाका रूपान्तर है। इसलिये सौन्दर्योपासनाको मैथुनकी वासनासे अलग करना असंभव है। इसलिये अब या तो सौन्दर्योपासनाको पाप कहना चाहिये या मैथुनको धर्म कहना चाहिये।

समाधान—मैथुनकी वासनाका रूपान्तर मैथुन नहीं है। यों तो अच्छीसे अच्छी मनोवृत्ति भी बुरीसे बुरी मनोवृत्तिका रूपान्तर कही जासकती है, परन्तु इसीलिये वह बुरी नहीं होती। स्वादिष्ट और सुगंधित फलफूल आदिभी उस स्वादके रूपान्तर होते हैं जो दुर्गंध आदिका समूह है। जैनशास्त्रके अनुसार कषाय और संयम एकही गुणके रूपान्तर हैं, इसलिये कोई किसीका रूपान्तर होजानेसे ही अच्छा या बुरा नहीं होजाता। इसका निर्णय करनेके लिये हमें उसकी स्वतंत्र परीक्षा करना चाहिये।

ब्रह्मचर्यके जो तीन उद्देश्य ऊपर बतलाये हैं उनमें अगर बाधा न आवे तो मैथुनकी वासनाका रूपान्तर होकरके भी सौन्दर्योपासना मैथुनमें शामिल नहीं की जा सकती, न पाप मानी जा सकती है।

इसके साथ एक बात और ध्यानमें रखनेकी है कि ब्रह्मचारीको लोलुप न होना चाहिये। किसी सुन्दरीका दिखजाना एक बात है और उसके लिये लोलुप मनोवृत्तिका होना दूसरी बात। अगर यह लोलुपता रहेगी तो बहुतही शीघ्र मन विकृत और अशान्त होजायगा जिसका अनिवार्य फल मानसिक और शारीरिक मैथुन होगा। इसलिये लोलुपतारहित समभावपूर्वक सौन्दर्यकी उपासना करना चाहिये। अगर इससे मैथुनकी वासनाको उत्तेजना मिलती हो तो इसका त्याग करना ही श्रेयस्कर है। अगर इससे वह वासना परिवर्तित होजाती हो तो यह उचित है।

यद्यपि हरएक पुण्य-पापका विश्लेषण मनोवृत्ति पर ही निर्भर है परन्तु ब्रह्मचर्य तो मनोवृत्तिसे और भी अधिक घनिष्ट सम्बन्ध रखता है। शक्तिके संचय और उसकी रक्षाके लिये मनको वशमें रखना या दुर्वासनाओंको विश्वप्रेम प्रकृतिप्रेम आदिमें रूपान्तरित करना उचित है।

२—कौटुम्बिक और सामाजिक जीवनकी शांति के लिये भी ब्रह्मचर्य अत्यावश्यक है। गृहस्थ जीवन की दृष्टिसे अकेली स्त्री और अकेले पुरुषका जीवन अपूर्ण है। दोनोंके योग्य सम्मिलनसे ही पूर्णता आती है। यह सम्मिलन एक ऐसा सम्मिलन है जिसमें तीसरेको स्थान नहीं मिल सकता है। अगर तीसरेका प्रवेश हुआ तो वह विश्वास और प्रेम नष्ट होजाता है जिससे यह सम्मिलन हुआ है। इससे यह आवश्यक है कि स्वीकृत पति-पत्नीको छोड़कर शेष सभी स्त्रीपुरुषोंके साथ पवित्र प्रेमही रक्खा जाय। उसके साथ मैथुनकी वासनाकी कलुषितता न आने पावे।

स्त्री, पुरुषके लिये भोगकी सामग्री है और पुरुष, स्त्रीके लिये भोगकी सामग्री है—इस तरह इन दोनोंमें दुतरफा भोज्यभोजक भाव है। इसलिये दोनोंही समान हैं। यह समानता अन्यत्र देखनेमें नहीं आती। वहाँ एकही भोज्य और एकही भोजक होता है और भोजककी प्रधानता रहती है। स्त्रीपुरुषमें यह सम्बन्ध दुतरफा होनेसे अन्य जड़ या जड़तुल्य भोग्योंकी अपेक्षा इसमें विशेषता आती है। हमारी कुर्सीके ऊपर अगर कोई दूसरा आदमी बैठजाय तो भी हमारे और कुर्सीके सम्बन्धमें कोई फर्क न पड़ेगा, परन्तु अगर कोई पुरुष दूसरी स्त्रीसे सम्बन्ध स्थापित करले तो पहिली स्त्रीसे उसका वह सम्बन्ध (प्रेम आदि) न रहजायगा। इसीप्रकार स्त्रीके विषयमें भी कहा जासकता है। प्रेमकी यह शिथिलता अविश्वासको पैदा करती है और इस प्रकार यह शिथिलता और अविश्वास कौटुम्बिक शान्तिको बर्बाद करदेते हैं; इतनाही नहीं किन्तु इनसे सभ्यसे सभ्य समाज भी असभ्य बनजाता है।

दुतरफा भोज्यभोजक भाव होनेसे यद्यपि स्त्री और पुरुषमें समानता बतलाई जाती है, फिर भी व्यक्तिगतरूपमें तो दोनों ही अपनेको भोजक समझते हैं। और भोजककी दृष्टिमें तो भोज्य शिकारके तुल्य है। इसलिये अगर इनमें संयमकी मात्रा न हो तो समाज अविश्वास और भयसे इतना त्रस्त हो जाय कि उसे नरक ही कहना पड़े। स्त्रियाँ शृंगारसे, सौन्दर्यसे, छलसे, विश्वासघातसे पुरुषोंका शिकार करें और पुरुषभी पशुबल तथा छल आदि से स्त्रियोंका शिकार करें। इसका फल यह हो कि स्त्रियोंका घरसे निकलना भी मुश्किल होजाय, और पुरुषोंको भी स्त्रियोंसे सदा सतर्क रहना पड़े। न पति को पत्नीका विश्वास रहे, न पत्नीको पतिका।

इन सब कष्टोंसे बचनेके लिये अणु ब्रह्मचर्य (स्वदार सन्तोष, स्वपति सन्तोष) की अत्यावश्यकता है। स्वदारको छोड़कर अन्य स्त्रियोंमें माँ, बहिन और पुत्रीकी भावना और स्वपतिको छोड़कर अन्य पुरुषों में पिता भाई और पुत्रकी भावना अगर हो तो प्रत्येक स्त्री और पुरुष निर्भयताका अनुभव करे। जिस

समाजके लोगोंमें ये पवित्र भावनाएँ नहीं होतीं और वासनाओंका वेग तीव्र होता है अर्थात् लोग नीति-भ्रष्ट और क्रूर होते हैं वहाँ स्त्रियोंको चहार दीवारियोंमें क़ैद रहना पड़ता है, घूँघट आदि आवरणोंमें ढका रहना पड़ता है। इससे स्त्रियोंका विकास रुक जाता है और उनकी सन्तान (स्त्री और पुरुष) मनोबल आदिसे शून्य तथा नीच प्रकृतिकी होती है। यदि स्त्रियोंके विषयमें मातृत्व आदिकी भावना और पुरुषोंके विषयमें पितृत्व आदिकी भावना हो तो इन अनर्थोंसे समाजका रक्षण होता है। इससे जीवनके विकास तथा निर्भयता, स्वतन्त्रता और विश्वासका अनंत आनन्द मिलता है।

३—पूर्णसमभावके लिये भी ब्रह्मचर्य आवश्यक है, क्योंकि मैथुनसे विश्वप्रेम संकुचित होकर छोटे से क्षेत्रमें जकड़ जाता है। ऊपर कहा जाचुका है कि स्त्रीपुरुषकी भोग्यता अन्य वस्तुओंके समान नहीं है, इससे एक कुटुम्बकी स्थापना होती है। अगर सन्तान हुई तब तो दोनोंकी जिम्मेदारियाँ और भी अधिक बढ़ जाती हैं, परन्तु कृत्रिम उपायोंसे संतति-निरोध भी किया गया तो भी दोनोंका एक कुटुम्ब बनजाता है। शास्त्रोंमें ऐसेभी अपवादोंका उल्लेख है जिनमें कुटुम्बियोंको भी पूर्णसमभावी (केवली) बताया गया है, परन्तु ये अपवाद हैं, राजमार्ग नहीं। अपवादस्वरूप ऐसे व्यक्तियोंका कुटुम्ब नाम-मात्रका होता है, वह वास्तवमें नहीं होता। वास्तवमें कौटुम्बिक जीवनके लिये सघनरूपमें प्रेमकी विशेष मात्राकी आवश्यकता होती है। मनुष्यके पास जितना प्रेम है वह अगर किसी संकुचित क्षेत्रमें क़ैद न किया जाय तो वह विश्वप्रेम बनजाता है। यदि क़ैद किया जाय तो नानारूपोंमें विकृत होकर मनुष्यको स्वार्थी, द्वेषी आदि बनाता है। विश्वप्रेमको अगर हम कुटुम्बके भीतर संकुचित करदें तो कुटुम्बके भीतर वह जितना सघन होगा, कुटुम्बके बाहर वह उतना उथला होगा और जहाँ वह जितना उथला होगा वहाँ वह कर्तव्यमें उतना प्रमादी बनायगा। इस प्रकार पूर्ण समभावी बननेके लिये कौटुम्बिक संकुचितताका त्याग करना आवश्यक है और यह बात बिना ब्रह्मचर्यके नहीं बन सकती।

प्रश्न—एक जगह आप कहते हैं कि अकेले पुरुष और अकेली स्त्रीका जीवन अपूर्ण है, और इधर कहते हैं कि कौटुम्बिक संकुचिततासे विश्वप्रेम का नाश होता है। तब दो में कौनसी बात ठीक मानी जाय?

उत्तर—अकेला जीवन अपूर्ण अवश्य है क्योंकि जीवनकी सारी आवश्यकताएँ अकेलेसे पूर्ण नहीं हो सकतीं और न उसमें समाज जीवित रह सकती है। समाजको स्थिर रखनेके लिये सन्तान होना चाहिये और इसके लिये दोनोंकी आवश्यकता है। परन्तु सन्तानको पैदा करना यह एक सामाजिक कार्य है। समाजका ऋण चुकानेके लिये हमें सन्तानोत्पादन और उसका पालन करना चाहिये। अगर हम इस कार्यको मोहका रूप न देकर कर्तव्यका रूप दें तो जीवन पूर्ण भी बन सकता है और संकुचितता भी नहीं आने पाती। परन्तु ऐसा होना बहुत दुर्लभ है। अगर दोमें से किसीमें ऐसी योग्यता आ भी जाय तो दूसरेका इतना संयमी और विवेकी होना दुःशक्य है जिससे संकुचितताका भाव लाये बिना जीवनयापन हो तथा दाम्पत्यजीवनमें अशांति न हो। अगर दोमें से एक भी असंयमी हुआ तो दूसरेकी निर्लिप्तता तथा कर्तव्यमात्रतत्परता द्वेषरूप समझी जायगी, इससे अशान्ति होगी तथा जीवन अनादर्श होजायगा। जबतक इस प्रकारकी योग्यता अपनेमें पैदा नहीं होती, अपना साथी (पति या पत्नी) अपनेही समान संयमी और विवेकी नहीं होता तब तक यथाशक्ति संकुचिततासे बचते हुए अमुक उमर तक कौटुम्बिक जीवन व्यतीत करना चाहिये और बादमें कौटुम्बिक जीवन छोड़ना उचित है। एकही समयमें दोनोंका समन्वय करना दुःसाध्य है इसलिये उमरमें ही उसका विभाग करना उचित है। अपवाद अनेक तरहके सम्भव हैं।

प्रश्न—कोई मनुष्य होश सम्हालतेही अगर गृहविरक्त होजाय तो इसे आप उचित समझेंगे या अनुचित ?

उत्तर—यदि जनसंख्या बढ़रही हो तो वह प्रारम्भसे सन्यासी होसकता है। परन्तु इसमें जोखिम बहुत है। इसे राजमार्ग नहीं कह सकते।

इस प्रकार ब्रह्मचर्यके तीन प्रयोजन हैं। उनका विचार करते हुए ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये।

जिस प्रकार हिंसा आदि पापोंके चार भेद किये गये हैं उसी प्रकार मैथुनके भी चारभेद हैं-संकल्पी, आरम्भी, उद्योगी और विरोधी।

संकल्पी—व्यवहारमें जिसे व्यभिचार कहते हैं, वह संकल्पी मैथुन है। पति या पत्नीकी इच्छा न रहते हुए भी मैथुन करना संकल्पी मैथुन है इसी प्रकार मर्यादासे अधिक (स्वास्थ्यनाशक) मैथुनभी संकल्पी मैथुन है। यद्यपि इनकी सांकल्पिकतामें परस्पर अंतर है-सबसे अधिक सांकल्पिकता व्यभिचारमें है-फिर भी ये हिंसात्मक, दुःखप्रद और निवार्य होनेसे संकल्पी हैं।

आरम्भी—सन्तानोत्पत्तिके लिये या शारीरिक उद्वेगोंको शान्त करनेके लिये जो मर्यादित मैथुन है, वह आरम्भी मैथुन है। दाम्पत्य जीवनमें या नियोगकी प्रथामें आरम्भी मैथन होता है।

शंका—विधवाविवाहसे जो मैथुन होता है उसे आप किसमें शामिल करेंगे ?

समाधान—विधवाविवाह हो या कुमारीविवाह हो, जब स्त्री पुरुष बिना चोरीके तथा स्वेच्छापूर्वक एक दूसरेको स्वीकार करलेते हैं तब उसमें परस्त्रीत्व या परपुरुषत्व रह ही नहीं जाता। वे दोनों दम्पति बनजाते हैं। दाम्पत्यजीवनका मैथुन तो आरम्भी मैथुन है यह पहिले कहा जाचुका है। इस विषयका विशेष विवेचन आगे भी किया जायगा।

शंका—विधवाविवाहको आप आरम्भी मैथुन भलेहो कहें परन्तु नियोगको आप आरम्भी मैथुन कैसे कह सकते हैं, क्योंकि नियोगमें तो विवाह भी नहीं होता ? जब किसी कुटुम्बमें कोई सधवा स्त्री नहीं रहती और विधवाएँ निःसन्तान होती हैं तब वंशरक्षाके लिये उन विधवाओंका या विधवाका किसी योग्य पुरुषसे संयोग कराया जाता है इसे नियोग कहते हैं। यह बात स्पष्ट है कि इसमें परपुरुषसे संयोग कराया जाता है, इसलिये इसे व्यभिचारकी तरह संकल्पी मैथुन ही कहना चाहिये।

समाधान—नियोगकी प्रथा विधवाविवाह और कुमारीविवाहकी अपेक्षा भी अधिक पवित्र है। उपर्युक्त दोनों विवाहोंमें तो सन्तानोत्पत्ति आदिके साथ मर्यादित भोगलालसा भी है, परन्तु नियोग तो शुद्ध वंशरक्षाके उद्देशसे ही किया जाता है। सन्तानोत्पत्ति तकही वह सीमित है। महाभारतके अनुसार पांडु, धृतराष्ट्र और विदुर इसीप्रकार नियोगसे पैदा हुए थे। यह बात दूसरी है कि आज इस प्रथाकी आवश्यकता नहीं है। अब तो गोद लेनेका रिवाज प्रचलित है तथा जनसंख्याभी ब[illegible] रही है। अगर किसी समय इस प्रथाकी आवश्यकता हो तो इसे व्यभिचार कदापि नहीं कह सकते, वह आरम्भी मैथुन ही कहलायगा। व्यभिचारमें हिंसकता या चौर्य वासना और असत्याश्रितता है परन्तु नियोगमें इनमेंसे कुछ भी नहीं है। इसलिये भी यह संकल्पी मैथुनमें नहीं आसकता।

प्रश्न—किसी देशमें विवाहकी प्रथा ऐसी हो जिससे विवाहित स्त्रियोंका स्थान पुरुषकी अपेक्षा नीचा हो जाता हो, इसलिये कोई स्त्री इसप्रकार स्त्रीत्वका अपमान कराना स्वीकार न करे इसलिये, अथवा यह सोचकर कि संतानके लिये अधिकसे अधिक बलिदान तो स्त्रीको करना पड़ता है और संतानका अधिकांश स्वामित्व और नाम पुरुष ले जाता है इसलिये, अथवा और किसी कारणसे कोई स्त्री विवाहित जीवन अस्वीकार करके गर्भाधान मात्रके लिये किसी पुरुषसे क्षणिक सम्बन्ध स्थापित करे

थो* इसे आप व्यभिचार कहेंगे या आरम्भी मैथुन ?

उत्तर—हिंसकता या चौर्य वासना और असत्याश्रितता आदि व्यभिचारके दोष यहाँ भी बिलकुल नहीं पाये जाते इसलिये इसे भी संकल्पी मैथुन या व्यभिचार नहीं कह सकते। यह भी आरम्भी मैथुन है; शर्त यह है कि उसका यह सम्बन्ध परपुरुषके साथ न होना चाहिये।

शंका—जब उसने विवाह ही नहीं कराया तब उसको स्वपुरुष कहाँसे मिलेगा? परपुरुष शब्द से आपका क्या मतलब है ?

समाधान—जो पुरुष विवाहित है उसके लिये अपनी पत्नीको छोड़कर बाक़ी सब स्त्रियाँ परस्त्री हैं, भलेही वह वेश्या हो, विधवा हो या कुमारी। इसी प्रकार जो स्त्री विवाहित है उसके लिये अपने पति को छोड़कर बाक़ी सभी पुरुष परपुरुष हैं, भलेही वे कुमार हों या विधुर। परन्तु अविवाहित स्त्री पुरुषोंके लिये परपुरुष और परस्त्रीकी व्याख्या इसप्रकार नहीं हो सकती क्योंकि 'पर' यह सापेक्ष शब्द है। अविवाहितों को 'स्व' कहनेके लिये ही जब कोई नहीं है तब उनके लिये 'पर' कौन हो सकता है, यह विचारणीय है। इसलिये ऐसे पुरुषोंके लिये वही परस्त्री है जो किसी पुरुषके साथ विवाह सम्बन्धसे बँधी है और ऐसी (अविवाहित आदि) स्त्रीके लिये वही परपुरुष है जो किसी स्त्रीके साथ विवाहसम्बन्धमें बँधा है। जो अविवाहित स्त्री गर्भाधान करना चाहे वह ऐसे पुरुषसे गर्भाधान करे जो अपत्नीक हो। अन्यथा उसे परपुरुषसेवनका दोष लगेगा। वह संकल्पी व्यभिचार होगा।

प्रश्न—यदि अविवाहितोंको इसप्रकारकी छुट्टी दीजायगी तो विवाहित होना कोई पसंद क्यों करेगा ? अविवाहित रहकर वेश्यासेवन आदिसे वह स्वतन्त्रताका उपभोग क्यों न करेगा ?

उत्तर—स्वतन्त्रताका यह उपभोग बहुत मँहगा दुःखद और घृणित है। एक मनुष्य घरके मकानमें रहता है और एक भाड़ेके मकानमें रहता है। भाड़ेवाला चाहे तो हरमहीने मकान बदल सकता है, और घरूमकान वाला अपने घरमें बँधा है, परन्तु गृहस्वामी की अपेक्षा भाड़ेतू बनना कोई पसन्द नहीं करता। गरीबी आदिसे या आर्थिक लाभकी दृष्टिसे भाड़ेतू बनना पड़े, यह दूसरी बात है। अथवा कोई आदमी घरमें रहता है और दूसरा किसी घरमें नहीं रहता, वह आज इस मुसाफिरखानेमें पड़रहता है, कल उस होटलमें और परसों उस धर्मशालामें। क्या यह स्वतन्त्रता स्थिरवासीसे अधिक सुखप्रद है ? मँहगेपनकी दृष्टिसे अविवाहितके लिये मैथुनकी स्वतन्त्रता कष्टप्रद है ही। ऐसे मनुष्यका जीवन अव्यवस्थित, अशान्त, सततवासनापूर्ण और अधिक पराधीन रहता है। इसके अतिरिक्त इस स्वच्छन्दतामें घृणितता भी रहती है, क्योंकि वेश्यासेवन आदिमें सुसंगति स्वच्छता आदि नहीं मिलती, या नहीं के बराबर मिलती है। बहुतसे कार्य ऐसे हैं जिन्हें हम मूलपापोंमें शामिल नहीं करसकते, फिरभी वे बहुत घृणाकी दृष्टिसे देखने योग्य होते हैं, क्योंकि वे अपने और परको साक्षात् नहीं तो परम्परासे दुःखप्रद होते हैं। एक मनुष्य दुर्जनोंकी संगतिमें रहे, अशुचिभक्षण करे तो उसका यह कार्य हिंसादि पापोंमें साक्षात् रूपमें अन्तर्गत न होगा, फिर भी दुःखप्रद और घृणित होनेसे वह हेय होगा। इसीप्रकार अविवाहितके वेश्यासेवन को संकल्पी व्यभिचारमें शामिल न कर सकने पर भी वह उपर्युक्त दोषोंसे पूर्ण होने से हेय है।

हाँ, जो बाई अविवाहित रहने परभी सिर्फ गर्भाधानके लिये क्षणिक सम्बन्ध करती है, इसको वह व्यसन नहीं बनाती, वह संकल्पी व्यभिचारके पापमें नहीं डूबती।

---

* कुछ वर्ष हुए जब इंग्लैंडकी एक बाईने—जिसका नाम मैं भूल गया हूँ—इसी प्रकार सम्बन्ध किया था। इस विषयका उसने आन्दोलन खड़ा करदिया था।

असली बात तो यह है कि इस प्रश्नका सम्बन्ध ब्रह्मचर्य मीमांसासे उतना नहीं है जितना कि समाज में स्त्री-पुरुषोंके अधिकारकी मीमांसासे। सन्तानके निर्माणमें जब अत्यधिक भाग माताका है, तब उस पर माताका ही अधिक अधिकार क्यों न रहे? सन्तान के नामके साथ पिताका नाम क्यों रहे, माताका क्यों न रहे? पिताका निर्णय करना तो अशक्यप्राय है तथा वेश्याओंकी और विधवाओंकी सन्तानके नाम के साथ उसके पिताका नाम लगाना नहीं बन सकता, इसलिये व्यापकताकी दृष्टिसे माताका ही नाम क्यों न लगाया जाय? अगर दायभागके निर्णयके लिये पिताका नाम लगाया जाता है तो दायभागके नियम इस प्रकार पक्षपातपूर्ण क्यों हैं? उन्हें बदलना क्यों न चाहिये? इत्यादि अनेक समस्याएं हैं जिनके साथ उपर्युक्त समस्याका सम्बन्ध है। व्यभिचारका अर्थ सामाजिक वातावरणके अनुकूलही लगाया जासकता है। मैथुनके जिस सम्बन्धको समाज स्वीकार कर लेती है वह व्यभिचार नहीं कहा जासकता। इतना ही नहीं किन्तु सामाजिक विधिमें कोई अन्याय मालूम होता हो तो उसको सुधारनेके लिये नैतिक-बलसे किसी दूसरी विधिका अवलम्बन लेनाभी व्यभिचार नहीं है।

उद्योगी—संकल्पी मैथुनको बचाकर समाज की किसी आवश्यकताको पूर्ण करते हुए अर्थलाभके लिये जो मैथुन किया जाता है, वह उद्योगी मैथुन है।

वेश्याओंका धंधा इसीप्रकारका मैथुन है। यद्यपि उसमें सांकल्पिकताका बचाव नहीं किया जाता, इस-लिये वह सदोष है; फिर भी यह बचाव किया जा सकता है। अगर यह बचाव किया जाय तो वह उद्योगी मैथुन कहलायगा।

वेश्याओंका अस्तित्व यद्यपि समाजका कलंक है तथापि जबतक समाजमें विषमता है और न्याय का पूर्ण साम्राज्य नहीं है, तबतक वेश्याओंका होना अनिवार्य है। इतनाही नहीं किन्तु अगर यह विष-मता दूर नहीं की जाय और न्यायकी रक्षा न की जाय तो वेश्याओंका होना आवश्यक भी है।

वेश्याप्रथाके अस्तित्वमें स्त्री और पुरुष दोनों का हाथ है। अगर स्त्रियोंको वेश्या बननेके लिये विवश न होना पड़े तो यह कुप्रथा नष्ट हो सकती है, अथवा पुरुषोंको वेश्याओंकी जरूरत ही न हो तो यह प्रथा नष्ट हो सकती है। अभी तक समाज की रचना इतनी सदोष है कि उसके लिये वेश्याएँ आवश्यक होगई हैं। हम देखते हैं कि अच्छे अच्छे युवक अविवाहित रहते हैं। कुमारियोंकी संख्या कम होनेसे युवकोंको स्त्रियाँ नहीं मिलतीं। इनमें से सभी युवक आजन्म ब्रह्मचारी नहीं रहसकते, इस-लिये यह अनिवार्य है कि परस्त्रियोंके ऊपर छलसे या बलसे इनके आक्रमण हों। उनके इस आक्रमण को रोकनेके लिये वेश्याप्रथा कुछ समर्थ होसकती है। इधर स्त्रियोंके ऊपर भी समाजका अत्याचार कम नहीं है। वैधव्य प्राप्त करने पर उन्हें ब्रह्मचर्यके लिये विवश किया जाता है, जिसको वे पालन नहीं कर सकतीं। इससे व्यभिचार बढ़ता है। बादमें गर्भ रहजाने पर वह बिलकुल बहिष्कृत कर दीजाती हैं। अन्तमें वह गिरते गिरते पतनकी सीमा पर पहुँच कर वेश्या बनजाती है। इसप्रकार समाजकी अव्य-वस्था और अत्याचारशीलताने एक तरफ वेश्याओं के निर्माणका कारखाना खोल रक्खा है और दूसरी तरफ युवकोंको अविवाहित रहनेके लिये विवश कर दिया है। ऐसी अवस्थामें वेश्याओंका होना अनि-वार्य है। वेश्याएँ कुछ इसलिये अपना धन्धा नहीं करतीं कि उन्हें कामसुख लूटना है किन्तु इसलिये करती हैं कि उन्हें पेटकी ज्वाला शान्त करना है। उन बेचारियोंमें भूखों मरनेका साहस नहीं है। इसलिये उनका कार्य संकल्पी मैथुन अर्थात् व्यभि-चार न कहलाकर उद्योगी मैथुन कहलाता है।

इस उद्योगी मैथुनमें साङ्कल्पिकताका प्रवेश न होना चाहिये अर्थात् इसमें परस्त्रीसेवन और पर-पुरुषसेवनका पाप न आना चाहिये। जो पुरुष विवाहित है उसके लिये वेश्या भी (स्वस्त्री से भिन्न

होने से) परस्त्री है, इसलिये वेश्यागमन करके वह व्यभिचार करता है। और विवाहित होने से वेश्या के लिये भी वह परपुरुष (पर=दूसरी स्त्री का पुरुष) है इसलिये उससे सम्बन्ध करके वह भी व्यभिचारिणी होती है। जिनको अनिवार्य कारणवश अविवाहित जीवन व्यतीत करना पड़ता है, सिर्फ उन्हींके लिये वेश्याओंकी सृष्टि है। इससे बाहिर ज्योंही वह सम्बन्ध आगे बढ़ा त्योंही वह व्यभिचार होगया।

शंका—विवाहित पुरुष वेश्या सेवनसे व्यभिचारी कहलावे यह तो ठीक है, क्योंकि वह जानता है कि 'मैं विवाहित हूँ'। परन्तु वेश्या तो नहीं जानती कि 'यह पुरुष विवाहित है या अविवाहित' इसलिये उसका क्या दोष ?

समाधान—वेश्याके लिये इस विषयमें कुछ असुविधा जरूर है परन्तु शुद्धमनसे उसे इस बातकी जाँच करना चाहिये और पता लगजाने पर उसको पास न आने देना चाहिये, और उससे अपत्नीक होनेका वचन लेलेना चाहिये। अन्य उपायोंके कर लेने पर भी अगर कोई धोखा देजाय तो वेश्या व्यभिचारके दोष से मुक्त रहेगी, सिर्फ पुरुष ही व्यभिचारी कहलायगा।

शंका—तब तो वेश्या अपना धन्धा करते हुए भी अगर विवाहित पुरुषों से सम्बन्ध न रक्खे तो पञ्च अणुव्रत लेसकती है।

समाधान—जो वृत्ति समाजकी किसी अनिवार्य और अहिंसक आवश्यकताका फल है उसे करते हुए अणुव्रतोंमें बाधा नहीं पड़ सकती। इसलिये उपर्युक्त विवेक रखने वाली वेश्या भी अगर चाहे तो पाँच अणुव्रतोंका पालन कर सकती है।

वेश्याका धन्धा संकल्पी मैथुन न होने पर भी वह किसी समाजकी शोभा नहीं है, बल्कि वह कलङ्क है—समाजकी अव्यवस्थाकी सूचक है। इसलिये ऐसे साधनोंको एकत्रित करना चाहिये जिससे इस प्रथाकी जरूरत ही न रहे। इसके लिये निम्नलिखित उपाय काममें लेना चाहिये।

क—समाजका प्रत्येक पुरुष और स्त्री विवाहित हो इसलिये विवाहकी पूर्ण स्वतन्त्रता होना चाहिये। इसमें जाति पाँतिका तथा विधवा-कुमारीका विचार न रक्खा जाय।

ख—विवाहोत्सवका खर्च इतना कम हो कि पैसेके अभावसे किसीका विवाह न रुकसके।

ग—जिस मनुष्यकी आमदनी इतनी अधिक नहीं है कि वह संतानका पालन कर सके तो वह कृत्रिम उपायोंसे सन्तानानिग्रह करे।

घ—विधवाओंको किसी भी हालतमें समाजसे बाहिर न किया जाय। अगर वह ब्रह्मचर्यसे न रह सकती हो या न रह सकी हो तो उसके पुनर्विवाह का आयोजन किया जाय।

ङ—व्यभिचारके कार्यमें व्यभिचारजात संन्तानका कोई अपराध नहीं है, इसलिये उनका दर्जा वैसा ही समझा जाय जैसा कि अन्य सन्तान का समझा जाता है।

च—अगर कोई विधवा आजीविकासे दुःखी हो तो उसे आजीविका दीजाय जिससे वह पेटके लिये वेश्या न बने।

इसप्रकार अगर एक तरफ पुरुषोंको वेश्याकी आवश्यकता न रहेगी, दूसरी तरफ स्त्रियोंको पेटके लिये इस घृणित व्यापारकी आवश्यकता न रहेगी तब यह व्यापार आपही आप उठ जायगा।

विरोधी—आत्मरक्षा या आत्मीय रक्षाके लिये यदि व्यभिचार करना पड़े तो वह विरोधी व्यभिचार कहलायगा। अगर युद्धके समय कोई स्त्री जासूसका काम कर रही है और इस कार्यमें वह शत्रुका गुप्त रहस्य तभी जान सकती है, जब वह शत्रुपक्षके किसी अफ़सरके साथ प्रेमका नाट्य करे, ऐसी अवस्थामें जो व्यभिचार होगा वह विरोधी व्यभिचार होगा। यदि किसी स्त्री को किसी अत्याचारीने क़ैद कर लिया है और अगर वह उसकी

इच्छा तृप्त नहीं करती तो वह उसके बच्चेको मार डालता है, ऐसी अवस्थामें अगर वह व्यभिचार करती है तो उसका यह कार्य आत्मीय रक्षाके लिये होने से विरोधी व्यभिचार है। इसीप्रकार प्राणरक्षा के लिये भी विरोधी व्यभिचार हो सकता है।

प्रश्न—सीता आदि सतियोंने आत्मरक्षाकी पर्वाह न करके सतीत्वकी रक्षाकी, उसी प्रकार प्रत्येक स्त्रीको क्यों न करना चाहिये? अथवा कमसे कम उस स्त्रीको अवश्य करना चाहिये जिसने अणुव्रत लिये हैं। अणुव्रतधारिणीको भी आप इतनी छूटदें तब सतीत्व आखिर रहेगा कहाँ? सीता आदिके जीवन तो दुर्लभ ही हो जायँगे।

उत्तर—सीता आदिने जो प्राणोंकी बाजी लगाकर सतीत्व की रक्षा की, वहाँ सतीत्वका प्रश्न मुख्य नहीं है किन्तु वह अत्याचारके आगे सत्याग्रह नामक महाशस्त्र का उपयोग है। अगर रावणने बलात्कार किया होता तो सीताके ब्रह्मचर्यव्रतको जराभी धक्का न लगता। अथवा दुर्भाग्यवश अगर रावणने राम को कैद करलिया होता और वह रामको छोड़नेके लिये सिर्फ इसी शर्तपर तैयार होता कि सीता रावण की इच्छा पूरी करे और पतिरक्षाके लिये सीताने रावणका प्रस्ताव स्वीकार करलिया होता तो सीता का ब्रह्मचर्यागुव्रत कभी भंग न होता। भगवती सीता ने लोकोत्तर दृढ़ताका परिचय दिया इसलिये उनके विषयमें ऐसी कल्पना करते भी संकोच होता है, परन्तु अगर कोई दूसरी स्त्री इस प्रकार दृढ़ताका परिचय न दे सके तो हम उसकी गिनती वीराङ्गनाओंमें भले ही न करें परन्तु उसे चरित्रभ्रष्ट या असंयमी नहीं कह सकते।

व्यभिचार किस वासनाका फल है, इसका विचार करनेपर यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जायगी। व्यभिचारमें समाजके ऊपर एक प्रकारका आक्रमण किया जाता है, दूसरेके कुटुम्बके बन्धनको शिथिल बनाया जाता है, कौटुम्बिक जीवन विश्वासशून्य और अशान्त बनाया जाता है और इन सब कार्योंके लिये कोई भी नैतिक अवलम्बन नहीं होता; जब कि विरोधी मैथुनमें ये सब बातें नहीं होतीं। व्यभिचार जिस प्रकार कामवासनाकी उत्कटता—अमर्यादिता—का परिणाम है, उस प्रकार उपर्युक्त विरोधी मैथुन नहीं।

शंका—क्या इस छूटका दुरुपयोग न होगा? क्या इसकी ओटमें वास्तविक व्यभिचार न छुपाया जायगा?

समाधान—छुपानेको मनुष्य किसकी ओटमें क्या नहीं छुपा सकता? देखना इतना चाहिये कि छूटके भीतर पापको पकड़नेके पर्याप्त साधन हैं कि नहीं? उदाहरणार्थ कोई स्त्री व्यभिचार करके अगर यह कहेकि यह विरोधी मैथुन है तो उसे अपने इस कामको बलात्कार सिद्ध करना पड़ेगा और उस पुरुष को शत्रु बताना पड़ेगा। परन्तु स्वेच्छापूर्वक किये गये इस कार्यमें ऐसा होना अत्यन्त कठिन है।

मैथुनके इन चार भेदोंके बलाबल पर अवश्य विचार करना चाहिये। सुख शांतिके लिये ब्रह्मचर्य आदर्श है, परन्तु समाजसंरक्षणके लिये अमुक सीमा तक मैथुन भी आवश्यक है। दोनोंका समन्वय करके ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये, तथा द्रव्यक्षेत्र कालभावके विचारको न भूलना चाहिये। अपनी शक्ति और स्वतन्त्रताकी तथा दूसरोंके अधिकारोंकी रक्षाके लिये ब्रह्मचर्य उपयोगी है।

सम्पादकीय टिप्पणियाँ।

बर्बरता का नग्न तांडव।

एक दिन मनुष्य इतना बर्बर—मूढ़—असभ्य था कि वह दुःखों को दूर करनेके लिये असभ्यसे असभ्य और क्रूरसे क्रूर निरर्थक कार्य कर डालता था। पशुमें और उस मनुष्यमें सिर्फ इतनाही अन्तर था कि पशु दुःखोंके कारणोंको बिलकुल नहीं समझता, और यह बिलकुल उलटा समझता था।

उस समय मनुष्यको दो बड़े भारी भ्रम थे। एक तो यह कि जितनी बीमारियाँ तथा प्राकृतिक

उपद्रव होते हैं वे सब देवताओंके कोपसे होते हैं। अगर उनको खुश करदिया जाय तो ये बीमारियाँ और उपद्रव दूर हो जाँयगे। मनुष्यकी इस मूढ़ताने लाखों मनुष्योंको असमयमें ही कालके कराल गालमें पहुँचाया है। लाखों आदमी देवताओंके भरोसे बिना चिकित्साके असमयमें मौतके मुँहमें चले गये हैं।

मनुष्यका दूसरा भ्रम यह था कि ये देवता मांससे प्रसन्न होते हैं। इसलिये बेचारे दीन पशुओं को काटकाट कर देवताओंको प्रसन्न किया जाता था। परन्तु सैकड़ों वर्षोंके अनुभवने तथा विवेक-शक्तिने बतलाया कि ये दोनों मूढ़ताएँ मनुष्यके दुःखोंको बढ़ानेवाली ही हैं, इनसे दुःख दूर करनेकी बात तो एक प्रकारका पागलपन ही है।

हजारों वर्षसे श्रमण सम्प्रदाय इस सत्यको पुकार पुकार कर कह रहा है करीब ढाई हजार वर्ष पहिले महात्मा महावीरने इस आवाजको ब्रॉडकास्ट किया था, जोरदार बनायाथा, जिससे भारतीय समाजमेंसे यह बर्बरता क्षीण होगई। यज्ञ वगैरहमें जो हिंसा होती थी वह तो पोथियोंमें ही रहगई। इस प्रकार भारतवर्ष सभ्य देश कहलानेके लायक़ बना। उस समय दुनियाके अन्य देश बहुतही बर्बर थे। जब भारतवर्ष वनस्पतिके भक्षणमें भी पापकी भावना करने लगाथा—उसने वनस्पतियोंमें भी प्राणका संचार देखा था और उनके साथ भी सहानुभूति बतलाना उचित समझा था—तब दुनियाँके अन्य देश पशु पक्षियोंको भी प्रासुक समझते थे। उस समय भारतवर्ष जगद्गुरु था, सभ्य था, सहृदय था। उसमें विवेक था, मनुष्यता थी। परन्तु हाय रे कालचक्र! तू आज बिलकुल उलटा होगया है। आज दुनियाँके अन्य देश केवल राजनैतिक शक्तियोंमें और सांसारिक वैभवमें ही नहीं बढ़गये हैं, परन्तु धर्मके उस क्षेत्रमें भी बढ़गये हैं जो भारतवर्षकी प्रसिद्ध वस्तु है। आज यूरोपमें धर्मके नामपर कोई छोटीसी चिड़िया भी नहीं मारता। परिस्थितिवश पेटकी ज्वाला शान्त करनेके लिये वे पशुवध करते हैं; इसमें उनकी स्वार्थता है परन्तु मूढ़ता और बर्बरता नहीं है। बल्कि इसके विरोधमें भी वहाँ आन्दोलन होता है। जब कि यह देश जगद्गुरुके पदसे भ्रष्ट होकर अनन्त-बर्बरताका सेवन कर रहा है। आज भी यहाँ ऐसे लोग लाखोंकी संख्यामें हैं जो बीमारियोंको हटानेके लिये देवी देवता नामक पत्थरोंके साम्हने चलते फिरते प्राणियोंका रक्त बहाते हैं। आफ्रिका आदि की कुछ जंगली जातियोंको छोड़कर ऐसी बर्बरता और मूढ़ता कहीं नहीं पाई जाती।

आज भी इस पवित्र भारतभूमिमें देवी देवता नामक कुछ पत्थर, मन्दिर नामक कुछ कसाईखानों मे विराजमान हैं जिनके साम्हने ब्राह्मण नामक कसाई बेचारे दीन निरपराध पशुओंका क़त्ल किया करते हैं। इन मूढ़ोंको इतना भी समझमें नहीं आता कि इस जगत्के बनाने और संचालनमें अगर सचमुच इन देवी देवताओंका हाथ है, ये सचमुच हमारे माईबाप हैं, तो वे उन पशुओंके भी तो माईबाप होंगे। क्योंकि अगर कोई भगवान या देव होगा तो वह पशुओं का जुदा और मनुष्योंका जुदा न होगा। ऐसी हालत में वह इतना क्रूर कैसे हो सकता है कि पशुओंका बलिदान लेकर खुश हो? क्योंकि पशु भी तो आखिर उसकी सन्तान हैं और ऐसा कौन क्रूर होगा जो अपनी सन्तानका मांस भक्षण करनेका उत्सुक होजाय? सभ्यताके आदिमयुगका यह हलकासा पाठ भी इन पंडितों और शंकराचार्योंने अभीतक न पढ़पाया—यह इन लोगोंके लिये शर्मकी और देशके दुर्भाग्यकी और मनुष्यताके कलंककी बात है। अरे! अगर ये लोग इतना नहीं समझते तो स्वार्थकी दृष्टिसे भी विचार करें। जो देश देवताओंके आगे बलिदान नहीं करते किन्तु स्वच्छतासे रहते हैं, योग्य चिकित्सा करते हैं, वे हम लोगोंकी अपेक्षा अधिक नीरोग हैं, वे बीमारियोंको शीघ्र भगाते हैं और दीर्घजीवी होते हैं।

कलकत्ता आदि सैकड़ों स्थानोंपर जो बर्बरता का नग्नतांडव होता रहता है, वह देशकी शरम है।

परन्तु कभी कभी यह नग्नतांडव ऐसा भयंकररूप धारण कर लेता है कि देशकी सहृदय आत्मा काँप उठती है, वह लज्जासे सिर झुका लेती है, शोकसे रोने लगती है और क्रोधसे आगकी चिनगारियाँ छोड़ने लगती है।

अभी दक्षिणमें एलोर नामक ग्राममें हजारों पशुओं का निर्दयतासे बलिदान कर दिया गया, क्योंकि वहाँ चेचककी बीमारी फैली थी। पशुओंके मुंडोंका पहाड़ बनाया गया, रुंडोंको सड़क पर खींचा गया, खूनसे रँगे वस्त्रोंको पहिनकर जुलूस निकाला गया, खूनमें रँगे चाँवल सड़कों पर बिछाये गये! और कसाइयों को लज्जित करनेवाली इस क्रूरताका समर्थन किया उस शंकराचार्यने जो धर्मगुरु कहलाता है!

बर्बरताके इस नग्न तांडवका देशमें सब जगह विरोध होरहा है और इसमें केवल जैनीही भाग नहीं ले रहे हैं किन्तु वैदिकधर्मावलम्बी जनता भी इसे धर्मविरुद्ध समझती है इसलिये वह भी उसका विरोध कर रही है। परन्तु बहुतसी मूढ़ताएँ ऐसी हैं जिन्हें अगर बलपूर्वक न रोका जाय तो वे नष्ट नहीं होतीं। बालविवाह और सतीप्रथा आदिको रोकने के लिये जब क़ानूनकी जरूरत पड़ी है तब इसके लिये भी एक जबर्दस्त क़ानूनकी आवश्यकता है।

आगामी धारासभामें कुँवर रघुबीरसिंहजी एक बिल पेश करनेवाले हैं जिसके अनुसार दुधारु जानवरोंका क़त्ल करना बंद कर दिया जाय। भारतवर्ष सरीखे अहिंसाप्रधान, और कृषिजीवी देशके लिये यह क़ानून कितना अधिक उपयोगी होगा, इसके कहनेकी कोई जरूरत नहीं है।

जैनसमाज इस बिलका हृदयसे समर्थन करती है। इस समय बड़ी धारासभाके मेम्बरोंका कर्तव्य है कि वे इस बिलका एकस्वरसे समर्थन करें।

परन्तु यह कलंक इतनेसे ही दूर नहीं होता। हमारी बर्बरताका यह कलंक तभी जायगा जब धर्म के नाम पर जो हिंसाका यह नग्न तांडव हो रहा है वह दूर होगा। आज सभी प्रान्तोंमें धर्मके नाम पर पशुबध होता है, इसलिये यह आवश्यक है कि क़ानूनके द्वारा यह पशुबध रोक दिया जाय। कुछ स्वार्थी और मूढात्मा धर्मके नामपर इसके विरुद्ध भी चिल्लायेंगे परन्तु जमाना इतना आगे बढ़ गया है कि इसप्रकारकी चिल्लाहटके लिये चिल्लानेवालोंको बेशरमीकी बहुत अधिक जरूरत पड़ेगी। फिर भी अगर कुछ लोग चिल्लाएँ तो भी इसकी पर्वाह न करना चाहिये। अच्छेसे अच्छे कार्यके विरोधी होते हैं इसलिये इसके भी विरोधी निकलें तो इसमें कौन अधर्म है? परन्तु आज उनको ऐसा बल नहीं मिल सकता जिसे नैतिक बल कहा जा सके। और बिना नैतिक बलके कोई चिल्लावे तो उसके मतका मूल्य करना पाप है। इसलिये बिलको इस प्रकार संशोधित रूपमें रखना चाहिये जिससे इस पवित्र देशमें धर्मके नाम पर जो बर्बरताका नग्न तांडव हो रहा है वह सदाके लिये अदृश्य हो जावे।

चैतन्यजीका सत्साहस।

मुनि श्री चुन्नीलालजी स्थानकवासी जैनसमाज के प्रतिष्ठित मुनि हैं, परन्तु वर्षोंसे आपके विचार सम्प्रदायातीत हैं। आप गाँधीजीके भक्त और जैन जगतके प्रेमी हैं। अत्यन्त सदाचारी सेवाभावी तथा विनीत हैं। परन्तु आज भारतवर्षका कोई सम्प्रदाय ऐसा नहीं है जहाँ मनुष्यताका मूल्य हो, सत्य और विवेककी पूजा हो। प्रत्येकको सिर्फ़ सम्प्रदायके गौरवकी चिन्ता है। आज सम्प्रदाय भी अभिमान-प्रदर्शनका एक चिन्ह बनगया है। सम्प्रदायके बाह्य नियमोंको पालते हुए तथा उसके गीत गाते हुए कोई कितना भी पाप कर सकता है, परन्तु समाज उसे माफ़ करती रहेगी। एक दिगम्बर साधुका सब से बड़ा अपराध यह है कि वह लँगोटी लगा ले। अगर वह व्यभिचार करे, पैसा रक्खे, गालियाँ बके, कलह करे, एकता न होने दे, झूठ बोले, तो समाज इन सब पापोंको माफ़ करेगी; परन्तु लँगोटीके पापको माफ़ न करेगी। इसीप्रकार स्थानकवासी समाजमें मुँहपत्ति है। समाजको बाह्यरूपके रक्षाकी इतनी चिन्ता है

कि दूसरा कोई भी पाप वह इससे बड़ा नहीं समझती। उद्दिष्टत्यागका जो बाहिरी रूप है वह बना रहना चाहिये, भले ही इसके नामपर बादशाहों सरीखा आरम्भ होता रहे। अगर कोई कहे कि भाई, इससे अच्छा तो यह है कि निमन्त्रण स्वीकार कर लिया जाय, तो लोग गर्ज उठेंगे। इसप्रकारकी मूढ़ता समाज की रग रगमें फैलगई है। सच्चे जैनत्वकी, सच्चे त्याग की, सच्चे सदाचार और सेवाधर्मकी किसीको चिन्ता नहीं है। बस, दम्भ और दम्भ;उसीका साम्राज्य फैला हुआ है। कहनेको तो कहते हैं कि साम्प्रदायिकता नहीं चाहिये परन्तु कार्यक्षेत्रमें जैनत्वकी पर्वाह न करते हुए साम्प्रदायिक विशेषताओंके लिये प्राण दिये देते हैं। ऐसी अवस्थामें एक सत्यप्रेमी कल्याणेच्छु भाईका मार्ग बिलकुल न्यारा हो जाता है। आजसे दो ढाई हजार वर्ष पहिले आचारशास्त्र के जो नियम बनाये गये थे, उनमें संशोधनकी जरूरत है। जैनधर्मने जो साम्प्रदायिक रूप पकड़ लिया है उसे हटाकर सर्वधर्मसमभाव अर्थात् स्याद्वाद रूप बनानेकी जरूरत है। कोई भाई सम्प्रदायोंके भीतर क़ैद रहकर इस महान् उद्देश्यको सिद्ध नहीं कर सकता। अब व्यवहारमें लोगोंको समझानेकी जरूरत है कि साधुता अमुक वेषमें नहीं, विवेक-पूर्वक त्याग और सेवामें है। जिसमें ऐसी साधुता है, वह किसी सम्प्रदायका गुलाम नहीं बन सकता। चैतन्यजीने जो वक्तव्य प्रकाशित किया है वह उपयोगी होनेसे यहाँ उद्धृत किया जाता है:—

वेष परिवर्तन करते समयका निवेदन।

जैनधर्मका नहीं, किन्तु साम्प्रदायिकताका त्याग।

मैं नम्रतापूर्वक यह निवेदन करने की आज्ञा लेता हूँ कि मैंने स्थानकवासी जैन सम्प्रदायमें ग्यारह वर्षसे दीक्षा ली है, और स्था० जैन साधु कहलाता हूँ। आज तकके स्वल्प वाँचन, श्रवण, मनन, चिन्तन और अनुभवके पश्चात् यह निर्णय करसका हूँ कि जैन धर्मका सापेक्ष कथन अर्थात् स्याद्वाद सच्ची समझ (सम्यग्ज्ञान) प्रगट करता है और समभाव चारित्रकी शुद्धि करता है। ये दोनों ज्ञान व क्रियाके प्राणस्वरूप तत्व अपूर्व हैं, स्व-पर कल्याण और सच्ची शान्तिके अद्वितीय साधन हैं। मैं इन तत्वोंको अर्थात् शुद्ध जैनधर्मको अन्तःकरणसे स्वीकार करता हूँ; लेकिन आज जो जैनधर्मके नामसे विभिन्न दल हैं, अनेक सम्प्रदाय हैं उनमें जो छोटी छोटी मान्यताओं, क्रियाकाण्डों व वेषका आग्रह है उनके विषयमें स्वल्प शक्तिके अनुसार जिज्ञासा-बुद्धिसे प्रयत्न करने पर भी नितान्त आग्रहका औचित्य समझमें नहीं आया किन्तु उल्टा उनसे प्रायः जैनत्वका नाश प्रतीत हुआ—कारण एकान्त आग्रह को जैनधर्मने ही मिथ्यात्व कहा है।

मेरा यह स्वानुभव तथा धैर्यपूर्वक किया हुआ निर्णय है कि जैन मुनियोंके अनेक नियम तथा उपनियम ऐसे हैं जो किसी देश, काल व व्यक्तिके लिये भले ही लाभदायी हों परन्तु इस समय अधिकांश स्वास्थ्यरक्षा, जनसेवा और एकतादिमें बाधक हैं। अतः इनमें उचित सुधार करने ही से सत्यकी आराधना हो सकती है। साथ ही मैं अपनी तरफ से आत्मशुद्धिके लिये यह बात स्पष्ट रूपसे प्रगट करना उचित समझता हूँ कि जैन मुनियोंके कुछ नियम इतने दुःसाध्य हैं कि उनका पालन करनेका त्याग, वैराग्यबल उतना न होने से अनेक आचार विधि (निर्दोष भिक्षादि) में प्रत्यक्ष पापसे बचनेके लिए परोक्षमें अधिक पापोंका भागी बनना पड़ता है और मिथ्याचार, कपट तथा दम्भका सेवन करना पड़ता है। इससे मैं अपना आत्मघात देख रहा हूँ, इसलिये मैं जितना पालन कर सकता हूँ और मुझ में जितनी योग्यता है उस पद पर ही स्थित रहकर उच्च आदर्शका उम्मीदवार रहूँ, यह अधिक हितकर होगा। नकली रुपयेसे असली पैसा अच्छा है। अब मैं अपने को स्था० जैन मुनिके स्थानपर जैन ब्रह्मचारी मानता हूँ, जाहिर करता हूँ और तदनुसार जीवन व्यतीत करूँगा।

यह निर्णय मैंने उतावलसे नहीं किया है किन्तु

लगभग दो वर्ष तक गम्भीर विचार करनेके बादही किया है। —चैतन्य

(स्थानकवासी जैन मुनि चुन्नीलाल)

चैतन्यजी अपने इस निर्णयके लिये बधाईके पात्र हैं, क्योंकि आपका यह निर्णय अशक्ति या चरित्रहीनताका फल नहीं किन्तु सच्चे मुनित्वका फल है।

आपके साथमें इन्हीं भावोंसे प्रेरित होकर मुनि श्री कल्याणऋषिजी (चैतन्यजीके पिता) और मुनि श्री लक्ष्मीऋषिजी (सेवाप्रियजी) ने भी वेष का त्याग किया है। इस अवसर पर व्यावरमें एक समारोह मनाया गया था, जिसमें इसी विषयपर अच्छे अच्छे लोगोंके प्रभावशाली भाषण हुए थे, तथा उस मौक़े पर महात्मागाँधीजी आदि राष्ट्र-नेताओंके तथा तीनों सम्प्रदायके मुनियों और विद्वानोंके संदेश—जो कि वेषत्यागके कार्यके समर्थनमें आये थे—पढ़े गये थे। इसके बाद ये तीनोंही महानुभाव सत्याग्रह आश्रम वर्धा चले गये हैं।

समाजमें ऐसे अनेक सच्चे त्यागी और सेवक हैं जो साम्प्रदायिकताकी चक्कीमें पिस रहे हैं। इन सबके उद्धारके लिये, जैनत्वके सच्चे उद्योतके लिये, और सच्चे सेवकोंकी प्राप्तिके लिये आवश्यक है कि कोई ऐसी संस्था बनाई जावे जहाँ इस प्रकारके चुने हुए व्यक्ति निराकुलतासे रहें, जहाँ वे स्वयं ज्ञानोन्नति करते हुए सेवाधर्मका पालन करें। मैं जानता हूँ कि तीनोंही सम्प्रदायोंमें इस प्रकारके उदार व्यक्ति हैं। विद्वान भी हैं, अविद्वान भी हैं, अमीर भी हैं, ग़रीब भी हैं; परन्तु साहस न होनेसे चुप बैठे हैं। परन्तु इस प्रकार चुप बैठनेसे हम जैनत्वका नाश कर रहे हैं तथा जैनसमाजके मैदानमें दंभियोंका तांडव करा रहे हैं। अगर ये सब लोग मिलकर किसी अच्छे केन्द्रमें एक ऐसी संस्था स्थापित करें जहाँ ऐसेही सच्चे त्यागी रहें, जहाँसे सच्चे जैनत्व का साहित्य प्रकाशित हो, जहाँ शान्तिका इच्छुक कोई भी गृहस्थ कुछ समयके लिये जाकर रहसके, और संसारके दावानलसे हटकर थोड़ी शान्तिका अनुभव कर सके, तो बड़ा लाभदायक हो। पहिले तो कोई ऐसा स्थान होना चाहिये जो रेलवेका स्टेशन हो, शहरसे न तो दूर हो, न शहरमें हो, जहाँ के स्थानीय आदमी कुछ सहानुभूति रखते हों, वायु मंडल कुछ ठंडा हो। ऐसा स्थान मिलनेपर कार्यका प्रारम्भ किया जासकता है और बहुतही थोड़े खर्चमें ऐसी संस्था चलाई जा सकती है जिससे समाज खूब लाभ उठा सके। तीनों सम्प्रदायोंके उदार श्रीमानोंको इस विषयमें कुछ चेष्टा करना चाहिये। विशेष बातें पत्रव्यवहारसे तय की जासकती हैं। मैं आशा करता हूँ कि चैतन्यजीका सत्साहस व्यर्थ न जायगा।

विविध विषय।

(लेखक—श्रीमान् जगदीशचन्द्रजी एम. ए.)

आइसक्रीम का आविष्कार।

कल्टीली नामके एक इटलीवासीने आइसक्रीम की खोज सन् १६६७ में की थी। एक दफ़ाकी बात है कि गरमीके दिनोंमें कल्टीलीको बहुत ज़ोरकी गरमी मालूम हुई। गर्मीको शांत करनेके लिये उसने ठंडा पानी पीया परन्तु गर्मी शान्त नहीं हुई। कल्टीली को एक नया विचार सूझा। उसने पानीमें थोड़ासा बरफ़ डाला और उसे पीगया। इससे कल्टीलीको कुछ शान्ति मिली और वह बहुत प्रसन्न हुआ। बादमें कल्टीलीने दो खानोंवाली एक लड़कीकी सन्दूकड़ी तैयारकी। उसने एक खानेमें बरफ़ और दूसरेमें मलाई रक्खी और एक औज़ारसे दोनोंको इस तरह मथा कि दोनों चीजें एकमेक होकर नये रूपमें बदल गई। कल्टीलीका यह प्रयोग बहुत सफल हुआ और उसने पेरिसमें आइसक्रीमका एक बड़ा कारखाना खड़ा कर दिया। इस नयी मिठाईमें आइस (बर्फ़) और क्रीम (मलाई) का मिश्रण होने से इसका नाम आइसक्रीम पड़ा। धीरे धीरे सारी दुनियाँमें इस नयी मिठाईकी खपत खूब बढ़गई।

ब्रिटेनके बड़े बड़े कारखानोंमें आइसक्रीमके प्रयोग में लानेसे पता चलता है कि वहाँ जिसदिन सूरजकी गरमीका तापमान ७५ डिग्री होता है उसदिन आइस-क्रीमकी १५ लाख प्लेटोंकी खपत होती है। जैसे जैसे सूरजकी गर्मी बढ़ती है वैसे वैसे आइसक्रीमका उपयोगभी अधिक परिमाणमें होता जाता है। इसका हिसाब लगानेसे मालूम होता है कि सूर्यका तापमान दो डिग्री बढ़नेसे आइसक्रीमकी २॥ लाख प्लेटोंकी खपत बढ़ती है। ब्रिटेनके बड़ेसे बड़े कारखानेमें गत ग्रीष्म ऋतुमें एकदिनके भीतर आइसक्रीमकी ३५ लाख प्लेटें तैयार की गई थीं।

स्त्यानगृद्धि ।

प्रकृतिके भीतर अनन्त रहस्य छिपे हुए हैं। मनुष्य-बुद्धिकी गति इतनी परिमित है कि लाख प्रयत्न करनेपर भी इस ब्रह्माण्डके वैचित्र्यको जानने में हम अपनी असमर्थता ही प्रगट करते हुए नजर आते हैं। प्रकृतिकी विविध विचित्रताओंमें से 'स्त्या-नगृद्धि' भी एक अद्भुत मानसिक क्रिया है। जैन-शास्त्रोंमें इसे दर्शनावरणीयकर्मका भेद बताया गया है। मालूम होता है कि जैनविद्वानोंने इस मानसिक-क्रियाका सूक्ष्म निरीक्षण किया था।

सुप्तावस्थामें मानसिक क्रियाओंकी उग्रता होने के कारण उन क्रियाओंके शारीरिक रूप धारण करने को स्त्यानगृद्धि करते हैं। अंग्रेजीमें इसका नाम सोमनेमब्यूलिजम (Somnambulism) है।

मानसशास्त्रवेत्ताओंका कथन है कि जागृत अ-वस्थाकी तरह हमारी स्वप्नावस्था भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। इन वैज्ञानिकोंके अनुसार स्वप्नावस्था हमारी जागृत अवस्थाका ही एक प्रतिबिम्ब अथवा रूपान्तर है। अतएव हमारी जो इच्छायें जागृत अवस्थामें पूर्ण नहीं हो सकती हैं वे सुषुप्ति अवस्थामें पूरी होती हैं। संक्षेपमें इसी सिद्धान्तके ऊपर जर्मनीके प्रसिद्ध डॉक्टर फ्रायड (Freud) ने अपने आत्म-विश्ले-षण (Psychoanalysis) के सिद्धांतकी नींव रक्खी है।

इन विद्वानोंके मतानुसार स्त्यानगृद्धिभी स्वप्न-जगत्की एक ऐसीही मानसिक क्रिया है जिसकी पूर्ति जागृत-जगत्में नहीं हो सकी है। मानस-शास्त्र के साहित्यमें स्त्यानगृद्धिके बड़े बड़े विचित्र उदाहरण पाये जाते हैं। इस दशामें मनुष्यका मस्तिष्क (Mind) अचेतन अवस्थामें रहता है इसलिये वह कभी कभी घोरसे घोर नृशंसकर्म तक कर डालता है। सोते सोते उठकर कहीं चले जाना, कुएसे पानी खेंचना, बाहर भागजाना आदि स्वप्नावस्थाकी मान-सिक क्रियाओंके साधारण उदाहरण हैं। परन्तु कभी कभी स्त्यानगृद्धिमें मनुष्य स्वयं अपनी हत्या तक कर डालते हैं। इसी अचेतन मानसिक क्रियाकी अवस्थामें एक गणितज्ञने ऐसा कठिन प्रश्न हल कियाथा जिसे वह बार बार प्रयत्न करनेपर भी अपनी जागृत-दशामें नहीं निकाल सका। बहुतसे लोगोंको स्वप्नावस्थामें हस्तमैथुन करनेकी भी आ-दत होती है। स्त्यानगृद्धिके उदाहरण समस्त संसार में विविध रूपोंमें पाये जाते हैं।

मानसिक अशांति (Unfulfilment of desires) तो स्त्यानगृद्धिका कारण है ही परन्तु इसका बाह्य कारण पेटकी अजीर्णता है। स्वास्थ्य विशारदोंका कथन है कि यदि भोजनका परिपाक सुचारुरूपसे होता रहे तो सुप्तावस्थाकी मानसिक अशांतिमें बहुत कुछ ह्रास हो सकता है।

विज्ञान और 'आकाश'

जैनसिद्धान्तोंकी विज्ञानके साथ तुलना करनेके लिये जैनधर्मके विस्तृत ज्ञानके साथ साथ आधुनिक विज्ञानके पूर्ण अभ्यास करनेकी आवश्यकता है। वैज्ञानिक सिद्धांतोंको ठीक ठीक न समझकर उनका जैनतत्वोंके साथ मिलान करने लगना, विज्ञानके क्षेत्रमें अंधविश्वासको स्थान देना है। आयन्स्टाइन के अपेक्षावादके सिद्धांत (Theory of Rela-tivity) को न समझकर उसे अनेकान्तवादका सिद्धांत बताना, धर्माधर्म तत्वोंकी न्यूटनके आकर्षण सिद्धांत (Law of Gravitation) से तुलना

करना, आदि इसी अंधश्रद्धाके उदाहरण हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि जैनधर्मके कुछ सिद्धांत आधुनिक वैज्ञानिक खोजोंके साथ मिलते जुलते हैं परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि हम जैनधर्मके प्रत्येक सिद्धांतकी विज्ञानसे तुलना करनेकी खींचातानी करने लग जाँय। उदाहरणके लिये शब्दको पुद्गलकी पर्याय मानना, वनस्पतिमें चेतनताका अस्तित्व स्वीकार करना आदि जैनसिद्धांत वैज्ञानिक सिद्धांत कहे जा सकते हैं। जैनधर्मकी 'आकाश' सम्बन्धी मान्यता भी विज्ञानसे बहुत कुछ मिलती जुलती है।

अभी चिकागो विश्वविद्यालयके प्रोफेसर विलियम डी० मैकमिलनने 'आकाश' के सम्बन्धमें खोज की है। आपका कहना है कि यदि अखिल ब्रह्मांड के अणुसमूहको तोड़कर उसे आकाशमें तितर बितर कर दिया जाय तो एक अणुसे दूसरे अणुका फासला सात फीट होगा। दूसरे शब्दोंमें उक्त प्रोफेसरका कहना है कि विश्वमें 'आकाश' मण्डल सब से बड़ा मण्डल है। इस वैज्ञानिकके अनुसार 'आकाश' तीस करोड़ लाइट इयर्स (Light years) के व्यासार्धका एक विशाल मण्डल है।

उक्त वैज्ञानिक मान्यता जैनधर्म के 'आकाश' सम्बन्धी सिद्धान्तसे कुछ साम्यता रखती है। जैन विद्वानोंको चाहिये कि आधुनिक विज्ञानका ठीक ठीक अभ्यास करनेके बाद उसकी जैनतत्वज्ञानके साथ तुलना करें।
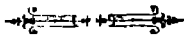
विरोधी मित्रोंसे।

(२२)

मेरे पास शक्ति, समय और स्थान बहुत थोड़ा है और विरोधी मित्रों और उनके पत्रोंकी संख्या अधिक है, फिर भी मैंने प्राय: सभी विरोधी मित्रों के आक्षेपोंका समाधान किया है। मेरे विरोधमें जैनदर्शनमें एक लेखमाला एक वर्ष से निकल रही है जिसका शीर्षक है "जैनधर्मका मर्म और पं० दरबारीलालजी"। यह लेखमाला आगे भी चलेगी और यथाक्रमसे जैनजगत्में उसका उत्तर भी दिया जायगा। परन्तु स्थान और समयकी कमीसे सबका उत्तर बहुत संक्षेपमें दिया जायगा। हाँ, कोई ऐसी बात न छोड़ी जायगी जिससे किसी कमज़ोरीके छुपानेकी सम्भावना हो। अनावश्यक बातोंका ही उत्तर न दिया जायगा। यहाँ पर जैनदर्शनके वक्तव्यको आक्षेपके रूपमें और अपने वक्तव्यको समाधानके रूपमें रखता हूँ।

आक्षेप (७४)—परीक्षाप्रधानताको जैनधर्म भी महत्व देता है, परन्तु वह स्वेच्छाचारिता—मर्ज़ी मुआफिक चाहे जो कुछ मान बैठना या कर डालना—को त्यागने योग्य दोष ठहराता है।

समाधान—परीक्षाप्रधानता की सीमा क्या है, जब तक इसका कोई निश्चित रूप न मालूम हो तब तक परीक्षाप्रधानता और स्वेच्छाचारिता की दुहाई देना व्यर्थ है। जैनधर्म जगत्कर्ता ईश्वर को भी नहीं मानता। दूसरे लोग इसे स्वेच्छाचारिता कहते हैं या कह सकते हैं। अपने मत के बाहर के विचार प्रायः सभीको स्वेच्छाचारिता ही मालूम होते हैं। इस लिये यह दुहाई व्यर्थ है। वास्तव में सयुक्तिक बोलना परीक्षा है और अयुक्तिक बोलना स्वेच्छाचार है या अन्धश्रद्धा।

आक्षेप (७५)—जो प्रत्यक्ष अनुमान के प्रतिकूल हो उसको निकाल देने के पक्ष में तो हम भी हैं, परन्तु जो असिद्ध हो उसे निकालने से तो बहुत सी सत्य बातें भी निकाल देना पड़ेंगी। आगमगम्य अनेक बातें ऐसी हैं जिन्हें हम जान ही नहीं सकते। तब उनकी परीक्षा कैसे होसकती है?

समाधान—जो बातें प्रत्यक्ष अनुमान के प्रतिकूल हैं प्राय: उन्हींको निकाल बाहर किया गया है। परन्तु बहुत सी असिद्ध बातें भी निकाली जाती हैं, अगर वे उपमान वगैरह से अविश्वसनीय मालूम होती हों अथवा प्रत्यक्ष और अनुमानके विषयके भीतर होने पर भी सिद्ध न होती हों। भौतिक विज्ञान सम्बन्धी बहुत सी बातें इसी श्रेणी की हैं। आगमगम्य वे ही बातें हम नहीं जान सकते जो पौराणिक कहलाती हैं किन्तु इसीलिये वे सब विश्वसनीय नहीं होजातीं। अन्यथा हमें जैनपुराणों पर ही क्यों, सभी पुराणों पर विश्वास करना चाहिये; क्योंकि अन्य पुराणोंकी बातें भी हमारे लिये प्रत्यक्ष अनुमानगम्य नहीं हैं। प्रत्यक्ष अनुमान का विषय

न होने पर भी जब हम दूसरों की बहुत सी बातोंपर विश्वास नहीं करते तब अपने लिये भी हमें उसी निःपक्षता-से काम लेना चाहिये। प्रत्यक्ष अनुमानका विषय न होने पर भी अगर हमें यह मालूम हो कि अमुक बात राग, भक्ति या द्वेषवश होकर लिखी गई है तो हम उसे आप्तवचन न मानकर छोड़ देंगे।

आक्षेप (७६)—हमें सत्यता असत्यताका ही निर्णय नहीं करना है किन्तु यह भी देखना है कि यह बात भगवान् महावीर स्वामीकी उपदेशपरम्परामें से है या नहीं? अन्यथा हम उसे जैनधर्मका मर्म नहीं कह सकते। साथही हमको इस बातका अधिकार कदापि नहीं है कि हम उसके स्थान पर नवीन बातोंकी स्थापना करें।

समाधान—परम्पराकी और व्यक्तिविशेषकी गुलामी करनेके लिये प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र है, परन्तु जो सत्यान्वेषी और कल्याणेच्छु है, वह सत्यता असत्यताका ही निर्णय करना चाहता है। वह अगर अपनेको जैन मानता है तो वह जैनधर्मको सत्य न कहेगा किन्तु सत्यको जैन धर्म कहेगा। अगर वह बौद्ध है तो वह बौद्धधर्मको सत्य न कहकर सत्यको बौद्धधर्म कहेगा। इसीप्रकार वह अपनेको किसी भी धर्मका अनुयायी मानता हो, परन्तु वह सत्य का ही अनुयायी होगा। मैं जैनधर्मको सत्य नहीं किन्तु सत्यको जैनधर्म मानता हूँ, इसलिये मुझे परम्परा की पर्वाह नहीं, सत्यकी पर्वाह है। और फिर परम्पराका क्या ठिकाना? दिगम्बर श्वेताम्बरोंसे लेकर यापनीयक तक महात्मा महावीरकी परम्पराके गीत गाते हैं, इसलिये परम्पराका निर्णय कैसे हो सकता है? दिगम्बर श्वेताम्बर आदि ने अपने अपने विचारोंके अनुसार परिवर्तन कर डाला। इसीप्रकार जिन बातोंमें दोनोंका कोई मतभेद न होगा और दोनोंको एक सरीखे परिवर्तनकी आवश्यकता हुई होगी अथवा इन सम्प्रदायोंके पहिले जो सैकड़ों वर्षों में परिवर्तन हुए हैं, उनका क्या ठिकाना? इसलिये परम्परा की दुहाई बिलकुल व्यर्थ है। रही नवीन कल्पनाकी बात, सो परम्परा विश्वसनीय न होनेसे यह कहना कठिन है कि यह बात नवीन है या लुप्त तत्वका अन्वेषण है। जहाँ प्रचलित परम्पराओंमें से किसीका भी मत कसौटीपर ठीक नहीं उतरता और उस जगह पर किसी न किसी बातका अस्तित्व अवश्य रहता है तब जो सम्भव मालूम होता है उसीकी कल्पना की जाती है। दूसरी बात यह है कि जिस दृष्टिविन्दुके आधार पर कोई तीर्थंकर कोई बात कहता है उसी दृष्टिविन्दुको लेकर अगर उसमें संशोधनकी आवश्यकता हो तो उसमें कोई अनुचितता नहीं है। उदाहरणार्थ, भौतिक विज्ञानके विषयमें भगवान् महावीरने बहुत बातें कहीं थीं। पिछले सौ वर्षोंमें विज्ञानने जो असाधारण प्रगति की है उसकी सहायता लेकर अगर भगवान महावीरके कथनमें थोड़ा बहुत संशोधन किया जाय या उसका कुछ विकास किया जाय तो यह सब उनके अनुकूल ही होगा। इसी विचारसे जैनाचार्योंने समय समय पर कथासाहित्य, आचार शास्त्र, न्यायशास्त्र आदिमें इच्छानुसार परिवर्तन और परिवर्द्धन किये हैं। इससे कुछ जैनधर्म का महत्व नहीं घट गया है। यह कार्य उचित ही नहीं है किन्तु आवश्यक है। बौद्धाचार्योंने सौत्रान्तिक आदि भेदों में बटकर न्याय और दर्शनशास्त्रका जो अद्भुत विकास किया है उससे बौद्धधर्मकी महत्ता ही बढ़ी है। प्रत्येक धर्म के आचार्य इसी ढंगसे नवीन बातोंकी स्थापना करते रहे हैं और उसको उसी धर्मका नाम देते रहे हैं।

आक्षेपकने अपने दूसरे लेखमें सर्वज्ञताकी चर्चा करते हुए ज्ञानकी शक्तिका विचार किया है। मेरा कहना है कि ज्ञान अनंत पदार्थोंको नहीं जान सकता; अगर वह जाने तो पदार्थ सान्त होजाय, आदि। उसके उत्तरमें आक्षेपक का कहना है—

आक्षेपक (७७)—क—ज्ञान अनन्त है इसलिये वह अनन्तको जान सकता है। अनन्तके द्वारा अनन्तका ज्ञान होजाता है। जैसे हम लोहे की और शीशे की दो पट्टियोंको अनन्त मानलें तो एकके भीतर दूसरी प्रतिबिम्बित हो जायगी और दोनोंही अनन्त बनी रहेंगी।

ख—ज्ञानका स्वभाव अनन्त पदार्थोंका जानना है। आपके अनुसार अगर वह असंख्य पदार्थोंको जानता है तो भी वह अनन्त है क्योंकि वह अनन्तकाल तक असंख्य पदार्थोंको जानता रहेगा (अनन्त × असंख्य) ऐसी अवस्थामें वह भी अनन्त पदार्थों का ज्ञाता ही ठहरता है। एक समयमें जितनेको जाननेकी शक्ति है वह दूसरे समय में भी है। इस प्रकार अनन्त समयमें जितने पदार्थोंको जाननेकी शक्ति है वह प्रति समय मानना पड़ेगी।

समाधान—(क)—ज्ञान अनंत पदार्थोंको जान सकता है (साध्य) क्योंकि वह अनंत है। (हेतु) इस अनुमानमें आक्षेपकने एकही वस्तुको हेतु और साध्य बना

दिया है। अनंत पदार्थोंको जान सकना ही तो ज्ञानकी अनंतता है। कुछ लम्बाई चौड़ाईकी दृष्टिसे तो ज्ञान अनंत है नहीं। इस दृष्टिसे तो वह आत्माके बराबर असंख्य प्रदेशी है।

अगर हम दोनोंको जुदे जुदे धर्म भी मानलें तो भी इसमें अन्योन्याश्रय है, क्योंकि जब ज्ञानकी अनन्तता सिद्ध होजाय तब उसकी अनन्त पदार्थोंको जाननेकी शक्ति सिद्ध हो सकती है; और जब अनन्त पदार्थोंको जाननेकी शक्ति सिद्ध होजाय तब उसकी अनन्तता सिद्ध हो सकती है। जब दोनोंही असिद्ध हैं तब कौन किसको सिद्ध कर सकता है ?

लोहेकी पटरी और शीसेकी पटरीका दृष्टान्त तो वहीं काम आसकता है जहाँ कोई बात हेतुसे सिद्ध हो। दूसरे इस दृष्टान्तमें विषमता है क्योंकि उपर्युक्त कल्पनामें दोनों ही पटरियाँ क्षेत्र और कालकी दृष्टिसे समान हैं जबकि केवलज्ञान और सर्व पदार्थ न तो क्षेत्रकी दृष्टिसे समान हैं न कालकी दृष्टिसे।

(ख) अनन्तके विषयमें आक्षेपककी दूसरी युक्ति तो और भी अधिक हास्यास्पद है। वह अनुभव, युक्ति और आगम सबके विरुद्ध है। आक्षेपकका कहना है कि ज्ञान अगर एक समयमें एक पदार्थको भी जाने तो वह अनंत-काल तक प्रति समय एक पदार्थको जानता रहेगा इस लिये वह अनन्तको जाननेवाला कहलाया। शक्तिकी यह कल्पना कितनी विचित्र है, यह बात निम्नलिखित उदाह-रणोंसे मालूम होगी।

जैनधर्ममें कालद्रव्यको एकप्रदेशी बतलाया है, इसी लिये उसे अकाय कहा है। परन्तु आक्षेपकके अनुसार अब वह एकप्रदेशी न रहा क्योंकि वह अनंत समयोंसे एकप्रदेशी है इसलिये 'अनंत × १' प्रदेशी अर्थात् अनंत प्रदेशी कहलाया। इस प्रकार धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, जीव, परमाणु आदि सभी अनंतप्रदेशी कहलाये।

अगर कहा जाय कि उस आदमीमें कितने ऊँचे कूदनेकी ताक़त है, तो आक्षेपकके शब्दोंमें वह करोड़ों योजन कूदनेकी ताक़त रखनेवाला कहलायगा भलेही वह एक हाथसे ज्यादः न कूद सकता हो, क्योंकि प्रति समय एक हाथ कूदनेकी ताक़त रखनेसे जीवनमें जितने समय हैं उतने हाथ ऊँचे कूदनेवाला कहलायगा। इस प्रकार एक आदमी जीवनके प्रति समय जितना ऊँचा है उसका गुणा करनेपर वह लाखों मील ऊँचा सिद्ध हो जायगा, भले ही उसकी ज्यादःसे ज्यादः ऊँचाई एकही धनुष हो। इस प्रकारके और भी उदाहरण दिये जासकते हैं जिससे इस युक्तिकी हास्यास्पदता मालूम हो जायगी।

जैनशास्त्रोंके अनुसार मति और श्रुतज्ञान अनंत पर्यायोंको नहीं जान सकते* परन्तु आक्षेपकके मतानुसार ये ज्ञान भी अनंतको विषय करनेवाले हो जायँगे। इसलिये हम आप सभी अनन्तज्ञानी कहलाये। तब केवलीमें और साधारण प्राणियोंसे क्या विशेषता रही ? यदि कहा जाय कि साधारण प्राणी अनन्त समयोंमें अनन्त पदार्थोंको जानता है जबकि केवली एकही समयमें अनन्त पदार्थों को जानता है तो बस, यही सिद्ध करना चाहिये कि ज्ञानका स्वभाव एक समयमें अनन्त पदार्थोंको जाननेका है। परन्तु यह बात आक्षेपकने सिद्ध न करके एक विचित्र और हास्यास्पद कल्पना की है।

शक्ति आदिका कथन लोक और शास्त्रमें सब जगह एक समयकी दृष्टिसे किया जाता है। यदि ऐसा न हो तब तो अनन्तके सिवाय किसी दूसरी राशिकी गुंजायश ही न रहेगी। सबमें सब बातें अनन्त हो जायँगी। इस प्रकार कोई भी ज्ञान ऐसा नहीं हो सकता जो एक समय में अनन्त पदार्थोंको जान सके। जिस प्रकार कालद्रव्य या परमाणु अनन्त समयमें अनन्तप्रदेशवाले होकर भी वे एक समयमें अनन्तप्रदेशी नहीं होते उसी प्रकार ज्ञान एक समयमें अनन्त पदार्थोंको जाननेका स्वभाव नहीं रखता।

शक्तिका विवेचन करते समय सिर्फ़ इतनाही कहा जा सकता है कि वह कितना जानता है। यह नहीं कहा जा सकता कि वह किसको जानता है। इसलिये पूर्णज्ञान एक समयमें जितना जानेगा उतनाही दूसरे समयमें जानेगा। परन्तु उतना जानेगा उसको ही न जानेगा। मानलो दस पदार्थोंको जाननेकी ताक़त ज्ञानमें है। पहिले समयमें दस पदार्थोंको जाना, फिर दूसरेमें दसको जाना इस प्रकार वह बीसको जाननेवाला न कहलाया, क्योंकि उसकी ताक़त १० को ही जाननेकी है। दूसरे समयमें अगर

*तानि द्रव्याणि मतिश्रुतयोर्विषयभावमापद्यमानानि कति-पयैरेवपर्यायै विषयभावमापद्यमानानि कतिपयैरेव पर्यायैर्विष-यभावमास्कन्दंति न सर्वपर्यायैरनन्तैरपि। सर्वार्थसिद्धि १–२६

वह दूसरे दस पदार्थोंको जानता है तो पहिले दस उसके विषय नहीं रहते। इसलिये प्रतिसमयकी शक्तिका जोड़ लगाकर उसकी शक्तिको अनन्त कहना अनुचित है।
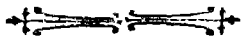
साहित्य परिचय।

जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास—

लेखक श्रीयुत् मोहनलाल दलीचन्द देसाई, ऐडवोकेट हाईकोर्ट बम्बई। प्रकाशक श्री जैनश्वेताम्बर कान्फरेंस आफ़िस बंबई। मूल्य ६)

क़रीब १३०० पृष्ठोंके इस मोटे पोथेमें जैनधर्मके इतिहासका अच्छा संग्रह है। इसमें श्वेताम्बर सम्प्रदाय के आचार्यों राजाओं तथा साहित्य आदिका सिलसिलेवार परिचय दिया गया है। विषयसे सम्बन्ध रखनेवाले बहुत से चित्र भी हैं। आनुषङ्गिक रूपमें दिगम्बर सम्प्रदायका भी बहुतसा परिचय दिया गया है। इतिहासप्रेमियोंके लिये बहुतही उपयोगी संग्रह है। लेखक महोदय गुजराती साहित्यके प्रसिद्ध इतिहासलेखक हैं और यह पुस्तक लिख कर तो उनने जैनइतिहासप्रेमियोंका बहुत उपकार किया है। क्याही अच्छा होता कि कोई महाशय दिगम्बर संप्रदाय का भी इस प्रकार इतिहाससंग्रह करते, जिससे इतिहासकी साधारण बातें जाननेके लिये इधर उधर न भटकना पड़ता। यद्यपि इस ग्रन्थका मैंने सूक्ष्म निरीक्षण नहीं किया है फिर भी साधारण नज़रसे ही मालूम पड़ जाता है कि लेखक महाशयने इसके लिये खूब परिश्रम किया है, जिसके लिये वे बधाईके पात्र हैं। गुजराती जाननेवाले इतिहासप्रेमियोंके संग्रहकी चीज़ है।

तणखा—(Sparks)—

सम्पादक भाईलाल बावीशी, प्रकाशक महावीर स्टूडेन्टस यूनियन। महावीर विद्यालय गोवालियाटेंक मुंबईके विद्यार्थी प्रतिवर्ष एक विशेषाङ्क निकालते थे जो कि हस्तलिखित रहता था। इस वर्ष वह छपा हुआ निकाला गया है। छपाई सफ़ाई बहुत सुन्दर है। आधा भाग गुजराती और आधाभाग अंग्रेज़ी है। अनेक लेख पठनीय हैं। यह बहुत अच्छा प्रयत्न है। इससे विद्यार्थियोंमें विचारशीलता जाग्रत होनेके साथ लेखनशक्तिका विकास होता है जोकि इस अंकको देखनेसे अच्छी तरह जाना जासकता है। यूनियनका और सम्पादकका प्रयत्न प्रशंसनीय है।

जैनधर्म की उदारता—

लेखक पंडित परमेष्ठीदासजी न्यायतीर्थ, प्रकाशक जौहरीमलजी जैनी सर्राफ़ दरीबाकलाँ देहली। मूल्य ≈)॥

इसका विषय नामसे ही प्रगट है। इसमें पापियोंका उद्धार, उच्च और नीचोंमें समभाव, जातिभेदका आधार आचरण है, वर्ण और गोत्र एक जन्ममें बदल सकते हैं, पतितोंका उद्धार, शास्त्रीय दण्डविधान, उदारताके उदाहरण, जैनधर्ममें शूद्रोंऔर स्त्रियोंके अधिकार और वैवाहिक उदारता पर जैनशास्त्रोंके आधार पर सुन्दर विवेचन किया गया है। पुस्तक पठनीय है। प्रचारके लिये मूल्य थोड़ा रक्खा गया है।

परमेष्ठिपद्यावली—

मूल्य ≈) लेखक व प्रकाशक उपर्युक्त। इसमें लेखककी ४९ कविताओंका संग्रह है। कविताएं कवित्वकी दृष्टिसे तो साधारण हैं, परन्तु सामाजिक दृष्टिसे अच्छी हैं।

बहीखाता प्रवेशिका—

लेखक जौहरीमनलाल रिटायर्ड डिप्टी इन्स्पेक्टर। मूल्य ।) इसका विषय नामसे प्रगट है। पाठ्यक्रममें रखने लायक पुस्तक है।

प्राकृतभाषानी उपयोगिता—

लेखक पंडित लालचन्द भगवानदास गाँधी, श्री जैनधर्म प्रसारक सभा भावनगर। प्राकृतभाषाकी उपयोगिता बतलानेके लिये गुजरातीभाषामें यह एक सुन्दर निबन्ध है। विविध विषयोंमें प्राकृतका कैसा साहित्य है, वर्तमान भाषाओंसे इसका कितना घनिष्ट सम्बन्ध है, संस्कृतकी अपेक्षा यह कितनी सरल है, आदि बातोंका सोदाहरण और सप्रमाण विवेचन किया गया है।

पल्लीवाल जैन—

सम्पादक नारायणप्रसाद जैन बी० ए० और हजारीलाल जैन प्रेमी। प्रकाशक श्यामलाल जैन एम० ए० एलएल० बी० आगरा। वार्षिक मूल्य २)

यह एक सामाजिक मासिकपत्र है। साहित्यिक दृष्टिसे भी अच्छे लेख रहते हैं। नीति भी उदार मालूम होती है। सहयोगीका स्वागत है।

ओसवाल सुधारक—

सम्पादक चाँदमल चोरड़िया बी० ए० एलएल०

बी० और सूर्यवर्मा आगरा। इसकी नीति नामसे ही प्रगट है। पाक्षिक-पत्र है। हम आशा करते हैं कि ओसवाल सुधारक अपने नामको सार्थक करता हुआ सुधारके कार्य को आगे बढ़ायगा।
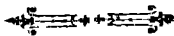
सांप्रदायिकताका दिग्दर्शन।

(११)

(ले०—श्री० पं० सुखलालजी।)

[अनु०—श्रीमान् जगदीशचन्द्रजी जैन ऐम० ए०]

करुणा—हे सखि, देखो, देखो। यह रजसकी पुत्री श्रद्धा है। यह शोभायमान नीलकमल जैसे लोचनवाली, मनुष्य अस्थिकी माला से विभूषित, नितम्ब और पुष्ट स्तनके भारसे मन्द, पूर्णचन्द्र जैसे मुखवाली विलासिनी है।

श्रद्धा—(फिरकर) मैं उपस्थित हूँ। हे स्वामी आज्ञा कीजिये।

कापालिक—हे प्रिये, पहले इस दुरभिमानी भिक्षु को पकड़ (श्रद्धा भिक्षुका आलिंगन करती है)।

भिक्षु—(आनन्दपूर्वक आलिंगनसे रोमांचित हो कर कानमें) अहो! कपालिनीका स्पर्श सुखदायी है। क्योंकि तीव्ररागके कारण भुजयुगलसे मर्दित पुष्टस्तन के भारसे मैंने बहुतसी वेश्याओंका आलिंगन किया है लेकिन कपालिनीके पीन और उन्नत स्तनोंके आलिंगनसे उत्पन्न होने वाला हर्षातिरेक मुझे कहीं भी मिला हो तो मैं सैकड़ों बार बुद्धोंकी शपथ खाता हूँ। अहो! कपालिनीकी चर्या पवित्र है। सोमसिद्धान्त प्रशंसनीय है। यह धर्म आश्चर्यकारी है। हे महाभाग! अब मैंने बुद्धके शासन को बिलकुल छोड़ दिया है और महादेव के सिद्धान्तको अंगीकार किया है। इसलिये तू आचार्य है और मैं शिष्य हूँ। मुझे परमेश्वरी दीक्षा दे।

क्षपणक—अरे भिक्षुक! तू कपालिनीके स्पर्शसे दूषित होगया है, इसलिये दूर बैठ।

भिक्षु—हे पापी! तू कपालिनीके स्पर्शानन्दसे वंचित है।

कापालिक—हे प्रिये! क्षपणकको पकड़ (कपालिनी क्षपणक को आलिंगन करती है)।

क्षपणक—(रोमांचपूर्वक) अहो अरिहंत। अहो अरिहंत! कपालिनीके स्पर्शका सुख! हे सुन्दरी! दे, दे, फिरसे अंकपाली—उत्संगभाग। अरे, महान् इन्द्रियविकार उत्पन्न हुआ है। है कोई उपाय? यहाँ क्या योग्य है? ठीक, पीछीसे ढकूँगा। अयि! पुष्ट और सघन स्तनसे शोभित, भयभीत मृगके समान लोचनवाली कपालिनी, यदि तू इच्छासे ही रमण करे तो श्रावक लोग क्या करेंगे? अहो! कापालिक का दर्शन ही एकसुख और मोक्षका साधन है। हे कापालिक! अब मैं तेरा दास हो गया हूँ। मुझे भी महाभैरवके शासनमें दीक्षित कर।

कापालिक—बैठ जाओ। (दोनों बैठ जाते हैं।)

(कापालिक बर्तन लेकर ध्यान करता है।)

श्रद्धा—भगवन्! शराबसे बरतन भरा हुआ है।

कापालिक—(स्वयं पीकर बाकी भिक्षु और क्षपणक को देता है।)

यह पवित्र अमृत पीओ। यह भवका भेषज है और भैरव पशुपाश (संसार बन्ध) के नाशका कारण है। (दोनों विचार करते हैं।)

क्षपणक—हमारे अरहंत शासनमें मद्यपान नहीं है।

भिक्षु—कापालिकका झूठा मद्य कैसे पीऊँ?

कापालिक—(स्वतः विचारकर) हे श्रद्धे! क्या विचार करती है? अभी इन दोनोंका पशुत्व दूर नहीं हुआ है इसलिये ये मेरे मुखके संसर्गदोषसे मद्यको अपवित्र समझते हैं। अब तू इस सुरा को अपने मुखसे पवित्र करके दोनोंको दे, क्योंकि स्मृतिकारोंने भी कहा है कि स्त्रियोंका मुख सदा पवित्र है।

श्रद्धा—जैसी भगवानकी आज्ञा। (पीनेका बर्तन लेकर, पीकर उसमेंसे बचे हुए मद्यको देती है।)

भिक्षु—बड़ी कृपा (यह कहकर प्यालेको लेकर पीजाता है) मद्यका सौंदर्य आश्चर्यकारी है। मैंने विकसित बकुलपुष्पकी सुगंध जैसी मधुर और स्त्रियोंके मुख की झूठी सुरा वेश्याओंके साथ बहुतबार पी है। ऐसा मालूम होता है कि कपालिनीके मुखके मद्यसे सुगंधित मदिराके नहीं मिलनेके ही कारण देवगण अमृतके लिये लालायित रहते हैं।

क्षपणक—हे भिक्षु! ज्यादा मत पी। कपालिनीके मुखकी झूठी मदिरा मेरे लिये भी रख।

(भिक्षु क्षपणकको प्याला देता है।)

क्षपणक—अहो! सुराकी अजब मधुरता है।

इसका स्वाद अजब है, गंध अजब है और सौरभ भी अजब है। बहुत समयसे आर्हत् शासनमें दीक्षित मैं इस सुरा रससे वंचित ही रहगया। हे भिक्षु! मेरे शरीर में चक्कर आता है, इसलिये अब सोऊँगा।

भिक्षु—ऐसा ही करो (दोनों ऐसा ही करते हैं।)

कापालिक—हे प्रिये! बिना मूल्यके ही दो दास खरीदे हैं इसलिये अब ज़रा नाचते हैं (दोनों नाचते हैं।)

क्षपणक—अरे भिक्षु! कापालिक या आचार्य कपालिनीके साथ सुन्दर नाचते हैं। हम भी इनके साथ नाचें।

भिक्षु—आचार्य! यह दर्शन अत्यन्त आश्चर्यकारी है, जिसमें क्लेशके बिना ही इष्ट अर्थकी सिद्धि होती है।

(नशेमें स्खलनापूर्वक नाचते हैं।)

क्षपणक—(अयि पीनस्तनी आदि बोलता है।)

कापालिक—तू यह कितने आश्चर्यसे देखता है?

× × ×

क्षपणक—महाराज महामोहकी आज्ञासे सत्की पुत्री श्रद्धाको लाओ।

कापालिक—कहो कहाँ है दासीकी पुत्री? मैं उसे जल्दी ही विद्याके बलसे लाता हूँ।

क्षपणक—(खड़िया लेकर गणित करता है।)

शान्ति—सखि! अभागिनियोंकी इस माताके विषय में ही संभाषण सुनती हूँ। उसे ध्यानपूर्वक सुनें।

करुणा—हे सखि! ऐसा करते हैं।

क्षपणक—(गाथा गिनकर) जो जलमें, स्थलमें, गिरिगह्वर या पातालमें नहीं है, वह विष्णुकी भक्तिसे महात्माओंके हृदयमें बसता है।

करुणा—(सहर्ष) सखि! भाग्य हमारे पक्षमें ही है कि श्रद्धादेवी विष्णुभक्तिके पास ही है।

शान्ति—(हर्ष सूचित करती है)

भिक्षु—कामसे मुक्त इस धर्मकी प्रवृत्ति कहाँ है?

क्षपणक—(फिर गिनकर) जो जल, थल, गिरिगह्वर या पातालमें नहीं है वह विष्णुभक्तिसे महात्माओंके हृदयमें बसता है।

× × ×

श्रद्धा—इसके बाद हे देवी! दुष्ट महामोहने पाखंड तर्कके साथ लड़ाईके वास्ते सब पाखंड आगमोंकी रचना की। इतनेमें हमारे सैन्यको आगे करके वेद, उपवेद, अंग, उपांग, पुराण, धर्मशास्त्र, इतिहास आदिसे शोभित सरस्वती प्रगट हुई।

विष्णुभक्ति—पीछे से?

श्रद्धा—हे देवी! पीछेसे वैष्णव, शैव और आदि आगम सरस्वती देवीके सन्मुख आये।

विष्णुभक्ति—पीछे, पीछे?

श्रद्धा—बादमें सांख्य, न्याय, कणाद, महाभाष्य, पूर्वमीमांसा आदि दर्शनोंसे वेष्टित वेदत्रयी मानों त्रिनेत्र कात्यायनी ही हो इसप्रकारके सरस्वती सामने प्रगट हुई।

शान्ति—ये विरोधी दर्शन एकजगह कैसे मिले?

श्रद्धा—हे पुत्री शान्ति! ये दर्शन परस्परविरोधी होने पर भी वेदमें से निकले हैं। इसलिये जब कोई वेद का विरोध करता है, उससमय ये सब इकट्ठे होकर वेद विरोधीके सामने आते हैं।

विष्णुभक्ति—पीछे, पीछे।

श्रद्धा—हे देवी! उसके बाद महामोहके पाखंड दर्शन और हमारे आस्तिक दर्शनोंमें भयंकर युद्ध हुआ। इस युद्धमें इन पाखंडियोंने लोकायत शास्त्रको आगे किया। परन्तु वह तो सबके अन्दर अन्दरके संघर्षसे ही नष्ट होगया। तथा दूसरे पाखंडी आगम सत्य आगमरूप समुद्रके प्रवाहमें बिलकुल छिन्नभिन्न होगये। बौद्ध लोग सिंध, गांधार, पारसिक, आन्ध्र, हूण, वंग, कलिंग, आदि म्लेच्छोंकी अधिक संख्यावाले देशोंमें चले गये, और पाखंड, दिगम्बर, कापालिक वगैरह लोग नीच लोगोंसे पूर्ण पंचाल, मालव, आभीर, आवर्त भूमिमें दरियाके पास छिपकर रहते हैं। न्याययुक्त मीमांसाके प्रहारसे जर्जरित नास्तिकोंका तर्क पाखंडी आगमोंके पीछे पीछे भागगया। (प्रबोधचन्द्रोदय अङ्क ३ पृष्ठ९१)

(दर्शनविषयक)परिशिष्ट ३ तंत्रवार्तिक।

सांख्य, योग, पाँचरात्र पाशुपत, बौद्ध और जैन-दर्शन द्वारा मान्य धर्म अधर्मके कारणोंको कोई तीनोंवेदों का ज्ञाता नहीं स्वीकार करता। इन दर्शनोंकी मान्यताओं में भी वेदकी छाया तो आ ही गई है। इन दर्शनोंके आद्य पुरुषोंका इन मान्यताओंके चलानेमें लोकसंग्रह, लाभ, पूजा और ख्याति ही खास उद्देश्य है और ये मान्यतायें वेदत्रयीके विपरीत हैं। ये केवल दृष्टशोभाके ऊपर निर्भर हैं; प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, अर्थापत्ति वगैरह प्रमाणों की युक्तियों द्वारा स्थापित कीगई हैं। इन मान्यताओंके

प्रवर्तकोंने इन मान्यताओंको श्रुति स्मृतिमें मिलनेवाले अहिंसा, सत्य, दम, दान और दया वगैरहके भावका रंग चढ़ाकर अपनी सिद्धिके प्रभावमें (ज़हर उतारनेकी विद्या, वशीकरण विद्या, उच्चाटन विद्या, उन्मादन विद्या, मूठ मारनेकी विद्या वगैरह किसी सिद्धिके प्रभावमें) आजीविकाके लिये चलाया है।

× × ×

यदि हम अपना अनादर करके इन मान्यताओंकी उपेक्षा करके ही बैठ रहें और इन मान्यताओंका अप्रामाणिक पना न ठहरावें तो दूसरे भी 'इन मान्यताओंका अप्रामाणिकपना नहीं ठहरा सकते हैं', यह मानकर समदृष्टि बनजावें अथवा इन मान्यताओंकी शोभा, सुकरता और तर्कयुक्तता देखकर या कलिकालके कारण यज्ञमें कही हुई पशुहिंसा वगैरहका त्याग करके भ्रममें पड़जावें।

जो जातिसे क्षत्रिय होकर भी क्षत्रियोचित धर्मका त्याग करके उपदेशक और भिक्षुका धर्म स्वीकार करे, ऐसे धर्मातिक्रमी मनुष्यके द्वारा क्या हम शुद्ध धर्मके उपदेश दिये जानेका विश्वास कर सकते हैं ?

जो मनुष्य परलोकके विरुद्ध प्रवृत्तियाँ करता है उसका त्याग दूर से करना चाहिये—जो अपनी जातिको नष्ट करता है वह दूसरेका हित कैसे करेगा ?

इस प्रकारका धर्मव्यतिक्रम बुद्ध वगैरहने किया है और अलंकारबुद्धि नामके ग्रंथकारने यह वास्तविकता इसी प्रकार बताई है।

"लोकमें यदि कोई दुष्कर्म हो तो उस सबका भार मेरे ऊपर आवे और लोक इस दुष्कर्मके परिणामसे मुक्त बने" इस प्रकारके विचार अलंकारबुद्धिने बुद्धके नामसे प्रगट किये हैं। इससे यह मालूम होता है कि बुद्धने अपने क्षत्रियधर्मको छोड़कर लोकहितके लिये ब्राह्मणोचित उपदेशक धर्मको स्वीकार किया और अपने धर्मका अतिक्रम किया। तंत्रवार्तिक पृ० ११६

शांकर भाष्य।

बाह्यार्थवाद, विज्ञानवाद, शून्यवाद इन परस्पर विरुद्ध तीन वादोंका उपदेश देकर बुद्धने असम्बद्ध प्रलापी बनेका स्पष्ट परिचय दिया है, अथवा लोगोंमें बुद्धकी ओरसे इतना प्रद्वेष है कि सबलोग परस्पर विरुद्ध अर्थका ज्ञान करके मोहमें पड़ते हैं।

शांकर भा० अ० २ पा० २ सू० ३२

सांख्यतत्व कौमुदी।

आप्तके कथनसे अयुक्त शाक्यभिक्षु, निर्ग्रंथिक, संसारमोचक वगैरह आगमाभासोंका निराकरण होता है। इन आगमोंका अयुक्तपना नीचेके कारणोंसे जानना चाहिये।

१—मनु वगैरहने इनकी निंदा की है।

२—ये वेदरूप मूलसे रहित हैं।

३—ये परमार्थविरुद्ध अर्थको प्रतिपादन करते हैं।

४—इन्हें म्लेच्छ वगैरह और पशु जैसे अधम पुरुषों ने स्वीकार किया है।

सांख्यतत्व कौमुदी पृ० ४१–४२ (कलकत्ता आवृत्ति)

शास्त्रीजी और पाटनीजीका असत्य प्रलाप।

(ले०–श्री० पं० मिलापचन्दजी जैन न्यायतीर्थ)

पाठकोंको मालूम होगा कि श्री० पं० कन्हैयालालजी शास्त्री द्वारा 'लोहड़साजन निर्णय' नामक एक पुस्तक प्रकाशित हुई है। उसमें पंडितजीने अनेक प्राचीन और अर्वाचीन प्रमाणों द्वारा अच्छी तरहसे यह बात सिद्ध कर दी है कि लोहड़साजन बड़साजनोंके समानही शुद्ध (बीसा हैं)। उसमें एक सौ सैंतालीस ऐसे वैवाहिक सम्बन्धोंका भी सप्रमाण ब्यौरा दिया गया है, जो लोहड़साजन और बड़साजनोंके पारस्परिक सम्बन्धको प्रमाणित करते हैं। इस ब्यौरेमें उन लोहड़साजन या बड़साजनोंके हस्ताक्षर भी मौजूद हैं जिनका परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध हुआ है। इतनाही नहीं तत्तत् ग्रामके पंचों के भी हस्ताक्षर इसमें ले लिए गए हैं। इन १४७ सम्बन्धोंको देखनेसे यह स्पष्ट ही प्रतीत होजाता है कि हमारी समाजके अनेक गणयमान्य बड़े बड़े प्रतिष्ठित घरानोंका भी सम्बन्ध लोहड़साजनोंसे अवश्य है। अब ये सम्बन्ध कोटिशः प्रयत्न करने पर भी मिटाए नहीं मिट सकते। इसीलिये आज तक किसीने लोहड़साजननिर्णयकी प्रामाणिकता पर सन्देह नहीं किया और न इसकी किसी भी बातका खंडन करनेका साहस किया। हाँ, पंडित

इन्द्रलालजी शास्त्री और पन्नालालजी सोनीने यह तो अपने लेखोंमें अवश्य लिखडाला कि इस पुस्तक में पक्षपातसे काम लिया गया है तथा सत्यता और न्यायसे काम नहीं किया है किन्तु इन दोनों पंडितोंका यह लिख देनाही बिल्कुल प्रमाणहीन और पक्षपात-ग्रस्त है। किसी बातको जल्दीसे झूंठी बतादेना बहुत सरल कार्य है, पर किसी विषयको प्रमाणसे साबित करना ज़रा टेढ़ी खीर है। क्या किसीने आजतक यह लिखनेका साहस किया कि लोहड़साजननिर्णय इसलिये ग़लत है, उसमें दिए गये वैवाहिक सम्बंध और सम्मतियाँ इसलिये ठीक नहीं हैं। अनेकबार सामाजिक पत्रोंमें भी यह प्रगट किया गया है कि कोई लोहड़साजननिर्णयको असत्य सिद्ध करनेका साहस करें, पर किसीने क़लम न उठाई। किसी को चोर कहदेना एक बात है और उसे सिद्ध कर देना दूसरी बात है। अगर पंडित इन्द्रलालजी और उनके हिमायती वस्तुतः सत्यके पक्षपाती हैं तो निः-पक्ष दृष्टिसे भगवान् महावीरकी साक्षपूर्वक लोहड़सा-जननिर्णयको असत्य सिद्ध करनेको मैदानमें आवें। केवल उसे असत्य कहदेने मात्रसे काम नहीं चल सकता। शास्त्रीजी महाराजने अनेकबार लोहड़सा-जनोंके बाबत लेख लिखकर हितेच्छुको काला किया, पर आजतक कभी आपसे यह प्रमाणित न हो सका कि लोहड़साजननिर्णय ग़लत है और लोहड़साजन दस्सा हैं, क्योंकि ऐसा हो सकना बिलकुल असंभव है। जब कभी शास्त्रीजी लोहड़साजनोंके सम्बन्धमें परस्परविरुद्ध, प्रमाणहीन बातें अपने घरके हितेच्छु में लिखते रहते हैं, किन्तु समय समय पर आपके उन सब लेखोंका सयुक्तिक उत्तर दिया जा चुका है। इससे निःसंदेह यह कहा जा सकता है कि 'लोहड़-साजन निर्णय' इस विषयपर पूरा प्रकाश डालने-वाली एक अखंडनीय पुस्तक है। शास्त्रीजीकी माया अपरम्पार है कि पहले ऊहापोहपूर्वक सोच समझकर लोहड़साजनोंके सम्बन्धमें दीगई हुई अपनी और निर्वाचित सदस्योंकी सम्मतिको अविचारपूर्ण बतला रहे हैं! यदि ये सदस्य बिना विचारे ऐसे ही सम्मति देनेवाले थे तो महासभाने क्या समझकर इनका चुनाव किया था? और आजतक दो वर्षके दीर्घकाल तक भी उन निर्वाचित कमेटीके (आपके अतिरिक्त) आठ सदस्योंने अपनी सम्मतिके बदलने की घोषणा समाजमें प्रगट क्यों नहीं की?

इससे सिद्ध है कि कमेटीके सदस्योंने ऊहापोह पूर्वक छानबीनके साथ फ़ैसला दिया था। अत्यन्त आश्चर्यकी बात है कि सम्पादकपद पर आसीन होकर भी शास्त्रीजी बच्चोंके समान सम्मति बदलनेका यह खिलवाड़ रच रहे हैं! और यह लिखनेका भी दुस्साहस करते हैं कि स्वर्गीय धर्मवीर रायबहादुर सेठ टीकमचन्दजी, धर्मधीर पं० श्रीलालजी पाटणी, सेठ चैनसुखजी पाँड्या आदि सभीने बिना विचारे जल्दी में विश्वासमें आकर ऐसी सम्मति देडाली! अहा, कैसी हँसीकी बात है! इससे अधिक और महासभा की प्रतिष्ठा कम करनेका कारण क्या हो सकता है? हम पाठकोंको सानुरोध निवेदन करते हैं कि प्रत्येक भाई लोहड़साजननिर्णयका साद्योपान्त अध्ययन करें, जिससे मालूम होजाय कि सत्य किधर है और उन्हें यदि कोई भी बात असत्य जँचे तो वे समा-चारपत्रों द्वारा हमें सूचित करें। हम उसका सयुक्तिक उत्तर देंगे।

उन एकसौ सैंतालीस वैवाहिक सम्बन्धोंमें संबंध नम्बर तीसरे और चौथेसे डॉक्टर गुलाबचन्दजी पाटनीका भी सम्बन्ध है। पर अत्यन्त आश्चर्यके साथ लिखना पड़ता है कि पुस्तक प्रकाशित होने से सात महीने बाद हितेच्छुके गतांकमें उक्त डाक्टर साहबने "लोहड़साजन निर्णय पुस्तक बिलकुल ग़लत है समाज धोखेमें न आवे" इस शीर्षकका एक लेख प्रकाशित कराया है, और उसमें यह दिखलानेकी व्यर्थ चेष्टाकी गई है कि उन तीसरे चौथे नम्बर वालोंसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। लोहड़साजननिर्णयमें सेवतीलालजी की लड़की प्यारीबाई से जो आपका विवाह होना बतलाया है

उस विवाहसे तो आप इनकार नहीं करते, किन्तु सिर्फ यह लिखते हैं कि मेरा विवाह किसी प्यारीबाई के साथ नहीं हुआ। पर हम आपसे यह पूछते हैं कि आपका विवाह सेवतीलालजीकी लड़कीसे हुवा है या नहीं? उसका नाम प्यारीबाई न सही कोई और बाई होगा। नामके सम्बन्धमें ग़लती होना भी सम्भव है, और आपकी इच्छानुसार नाम आप भी बदल सकते हैं। हमें नामसे विवाद नहीं, हमारा लिखना केवल यही है कि आपका विवाह सेवतीलालजी लुहाड्या सासनी निवासीकी एक लड़कीसे हुवा है जैसाकि स्वयं आपने भी स्वीकार किया है। अब केवल यह बात प्रमाणित करना बाक़ी रहजाती है कि सेवतीलालजी और अमृतलालजीके कुटुम्बी रिश्ता क्या था। अमृतलालजी लिखमीचन्दजी और किरोड़ीलालजीने स्वयं आपसमें कुटुम्बी रिश्ता स्वीकार कर नं० ३ और नं० ४ के सम्बन्धों पर हस्ताक्षर किए हैं और स्वीकार किया है कि हम आपस में कुटुम्बी भाई हैं। डॉक्टर साहबका लेख देखनेके बाद मैंने फिर इस सम्बन्धमें सासनी पत्र भेजकर श्रीमान किरोड़ीलालजीसे दर्याफ्त किया तो उनका भी यही जवाब मिला कि सेवतीलालजी, लिखमीचन्दजी, अमृतलालजी हमारे कुटुम्बी हैं। इसलिये इस बातमें कोई सन्देह नहीं रहजाता कि नं० ३ और नं० ४ के सम्बन्ध वालोंसे जो डॉक्टर साहबका सम्बन्ध बतलाया गया है वह बिलकुल सही है। यदि डॉक्टर साहब उनका कहना असत्य मानते हैं तो सेवतीलालजी आदि की वंशपरम्परा पेश करें, अन्यथा आपके लिखनेका कोई मूल्य नहीं है। हमें आपके इस लिखनेपर बहुत आश्चर्य होता है कि "हमने तो इस नामकी कोई जाति न देखी न सुनी" क्योंकि जब लोहड़साजनोंसे सम्बन्ध रखनेवालों के साथ आपका सम्बन्ध हुआ है तब आपका लोहड़साजनोंसे परिचय न हो इस बातको कौन समझदार स्वीकार कर सकता है?

आगे चलकर आपने जो अपने लेखमें यह लिखा है कि उक्त पुस्तककी अन्य कई बातोंकी सचाईका निर्णय किया तो कई बातें बिलकुल ग़लत मालूम हुईं, सो मेहरबान् वे कौनसी बातें हैं? उन्हें भी प्रगट करनेकी कृपा कीजिए। हम उनकाभी सयुक्तिक उत्तर अवश्य देंगे। आपने जो यह लिखकर जनताको धोखेमें डालना चाहा है कि "यदि कोई भाई मेरे ससुर, दादा ससुर, पड़दादा ससुर, सड़दादा ससुर या और एक दो पीढ़ी आगे तक वालोंको या उनकी स्त्रियोंको लोहड़साजनोंमें से सिद्ध कर सकता हो तो कृपया वह मयवंशावलिके साबित करें"। इसपर हमारा इतनाही जवाब पर्याप्त है कि आपके इन ससुर आदि की वंशावलि हमारे पास तो कहाँसे आवेगी, किन्तु आपके पासतो अवश्य होगी, क्योंकि इसीलिये आप किरोड़ीमलजी वगैरहके ऐसा लिखने और कहनेपर भी उनकी बातों पर विश्वास न कर समाजको धोखेमें डालना चाहते हैं; आशा है कि आप इनकी सच्ची वंशपरम्पराको प्रकाशित कर इस विषयको स्पष्ट करदेंगे।

पत्रोंकी प्रतिध्वनि।

सामूहिक बलिदानका रुद्ररूप

पैशाचिक पशुहिंसाकी निष्ठुर प्रवृत्ति मानव समाजमें युगोंसे वर्तमान पायी जाती है। वेदोंमें अश्वमेधादि यज्ञोंके विराट समारोहोंमें पशु-बधके अनेक प्रमाण पाये जाते हैं। प्राचीन मिस्र, ग्रीस तथा रोमके मन्दिरोंमें सार्वजनिक उत्सवों पर असंख्य पशुओंका बलिदान होता था। शक्तिके उपासकोंने, तांत्रिकोंने, काली, कालभैरव आदि देवी देवताओंके मन्दिरोंमें असंख्य पशु-बधकी प्रथाका प्रचार करके भारतके अगणित नर नारियोंको अमानुषिक उपासनाके लिये प्रेरित किया है और यदि नरक नामका कोई स्थान अन्तरिक्षमें वास्तवमें वर्तमान है तो उसकी भयंकरता को उन्होंने इसीलोकमें प्रत्यक्ष रूपमें दिखाया है। अपनी इस हिंसक मनोवृत्तिकी

धर्मका रूप देकर मनुष्यने जिस जघन्य क्रूरताका परिचय दिया है वह लोमहर्षक तथा हृदयविदारक है। इस धर्मान्धताके फलस्वरूप हमारा कोमल हृदय, करुणाशील महिलासमाज भी बलिदानके सम्बन्धमें निर्दयताका परिचय देता आया है। विशेष करके बंगाली स्त्रियाँ इस मामलेमें बड़ी कट्टर हैं और पशुहत्याके बिना कालीकी पूजा अपूर्ण समझती हैं। बंगालमें क्वारके महीनेमें जो दुर्गापूजा होती है उसे बंगाली सबसे बड़ा त्यौहार मानते हैं। उस अवसरपर बंगालमें प्रत्येक घरमें आनन्दोत्सव मनाया जाता है और आबाल-वृद्ध-वनिता सबमें परम उत्साह और उल्लास छाया रहता है। हर्षके इस परम पवित्र अवसर पर लाखों बकरे और भैंसे जिस निष्ठुरतासे वध किये जाते हैं वह कल्पनातीत है। इसका अर्थ स्पष्ट ही यह है कि घोर हिंसात्मक प्रदर्शनोंसे मानव हृदयको सबसे अधिक आनन्द प्राप्त होता है।

पर केवल बंगालमें ही कालीके भक्त और कालभैरवके पुजारी नहीं हैं, भारतमें सर्वत्र न्यूनाधिक अंशमें उनका अस्तित्व वर्तमान है। बंगालियोंमें द्राविड जातीय रक्तका सम्मिश्रण किसी अंशमें पाया जाता है, पर मद्रासियोंमें वह प्रायः पूर्णमात्रा में वर्तमान है। द्राविड लोगोंमें रामायणके युगसे ही हिंसाप्रियता और साथ ही प्रचण्ड प्रवेगमयी भावुकता पायी गयी है। इस कारण अपनी हिंसक प्रवृत्तिको धार्मिक रूप देना उन्हींका काम था और फलतः कालीपूजाकी करालताकी ओर वे इस क़दर आकृष्ट दिखायी देते हैं। आध्यात्मिक दृष्टिसे भले ही चण्डीपूजाका विध्वंसवाद महत्वपूर्ण हो, पर प्रत्यक्षवादकी दृष्टिसे उसकी पैशाचिकता घोर विभीषिकापूर्ण है। इस धर्मवादके कारण साधारण जनतामें कैसा अन्ध हिंसोन्माद उद्वेलित हुआ पाया जाता है, इस विषय पर जब गौर करनेका अवसर मिलता है तो दिल दहल उठता है। बुद्धि और हेतु के इस युगमें भी जब हम प्राचीन अन्धकारमय युगकी नारकीय प्रथाओंका पुनरावतरण देखते हैं तो हृदयमें आतंक छाजाना सम्पूर्ण स्वाभाविक है।

हालमें मद्राससे खबर आयी थी कि वहाँ चेचक का प्रकोप शान्त करनेके उद्देश्यसे मन्दिरोंके पण्डे पुजारियोंने यह निश्चय किया कि 'शीतला माई' को बलिदान द्वारा तृप्त किया जाय। इस निश्चयके अनुसार ६००० पशुओंका सामूहिक वध करनेका प्रस्ताव पण्डा-कान्फरेंस द्वारा पास होगया। निश्चित दिन तड़के सवेरेसे लेकर आधी राततक हजारों मनुष्योंकी उपस्थितिमें स्थान स्थानमें असंख्य पशुओं का वध किया गया। कहा जाता है कि अकेले एलोर में ही २००० से भी अधिक पशुओंकी हत्या कीगई। इस नग्न नृशंसताकी हद तब हुई जब प्रधान पुरोहित पशुओंके रक्तकी होलीके रंगसे सने हुए वस्त्र पहनकर एक विराट् जन-समूहके साथ शहर की आम सड़कोंमें जुलूस निकालकर मन्त्रोच्चारण करता हुआ और तमाम रास्तेमें रक्तसे स[illegible] हुए पके चाँवल बिखेरता हुआ चला गया। [illegible]ट हुए पशुओंके सिरोंका एक पहाड़ खड़ा कर दिया गया और उनके धड़ आमरास्तोंसे होकर घसीटकर ले जाये गये। इस राक्षसी जघन्यताके रक्तोन्मत्त हर्ष को मरणोन्मुख सनातन धर्मके विनाशकालीन अट्टहासके अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जासकता।

धर्मके नामपर पशु वध करनेका जो अमिट कलंक भारतके नामको दीर्घकालसे कलुषित करता चला आया है, वह इस विंश शताब्दिके तूफानी युगमेंभी पूर्ववत् उसी नग्न निर्लज्जतासे अपनी रोमांचकर विकरालता दिखाता जारहा है यह देखकर सारी हिन्दू जातिको लज्जित होना चाहिये। इसप्रकारकी उन्मत्तताके विरुद्ध सामूहिक विरोधका प्रचार करने की आवश्यकता है। हरिजन सुधारसे इस आन्दोलनका कुछ कम महत्व नहीं है।

स्त्री-व्यापार की पैशाचिकताका विस्तार।

यह देखकर मर्मान्तक आश्चर्य होता है कि स्त्री-व्यापारके क्षेत्रका विस्तार किस तीव्रगतिसे देशके

एक कोनेसे लेकर दूसरे कोनेतक बढ़ता चला आ रहा है। समस्त भारतवर्षमें एक भी प्रान्त अथवा उपप्रान्त छूतकी इस घातक सामाजिक बीमारीसे बचा हुआ नहीं है। नादान लड़कियोंसे लेकर वयस्का स्त्रियों तक कोई भी अबला खतरेसे मुक्त नहीं है। लड़कियोंको बलपूर्वक हरण करके उन्हें साधारण दामोंमें बेचदेना अन्तरप्रान्तीय स्त्री-व्यापारीदलके गुण्डोंके बाँये हाथका खेल है। वयस्का स्त्रियोंका सतीत्व नष्ट करके उन्हें ये नर-पिशाच समाज द्वारा परित्यक्त होनेके लिये बाध्य करते हैं, और तब उनसे नियमित रूपसे पेशा करवाकर अथवा उन्हें किसी वेश्यालय-संचालक या किसी कामान्ध बुड्ढेके हाथ चोखे दामोंमें बेचकर बिना लेशमात्र ग्लानिके गुलछर्रे उड़ाने लगते हैं। कितने घर इन नैतिक हत्यारोंके कारण बरबाद होगये हैं, इसका ठिकाना नहीं; कितनी स्त्रियाँ इन पिशाचोंके फेरमें पड़नेके कारण पतित-जीवन बितानेको बाध्य की जारही हैं, यह वर्णनातीत है; ... लड़कियाँ उनके कराल पंजोंमें गिरफ्तार होकर आत्महत्या करचुकी हैं, इसका हिसाब नहीं लगाया जा सकता। जहाँ देखिये, नित्य वही एक ही क्रन्दन सर्वत्र उठरहा है। जिधर दृष्टि फेरिये, वहीं नारी-अपहरण, स्त्री-विक्रय तथा बालिका-बलात्कारकी करुण कहानियोंका निदारुण, मर्मभेदी आर्तनाद सुनाई देता है। नित्यप्रति अदालतोंमें इसी प्रकारके मामलोंकी पेशियाँ होती रहती है। इस देशव्यापी अत्याचारके आतङ्कका निवारण कैसे हो? इस भयंकर उत्तरोत्तर वृद्धिको प्राप्त अवस्थाका दमन किस प्रकार किया जाय? जबतक समाजकी संगठित शक्तियाँ एकत्रित होकर मिलित रूपसे इसके विरोधके लिये व्यवहृत न होंगी तबतक इस महाव्याधिका कोई इलाज नहीं किया जासकता।

इधर कुछ समयसे स्त्री-व्यापारियोंके गुण्डादल अल्पवयस्का बालिकाओंको बहकाकर अथवा जबर्दस्ती भगाकर उन्हें बेचनेके प्रयत्नमें लगे हैं अथवा उनसे जीवनभर घृणित पेशा करानेके उद्देश्यसे प्रारम्भसे ही अपनी मुट्ठीमें किये रहनेका विचार करके नाना छल-बलसे उनका शिकार कर रहे हैं। इस बीच शिमलेमें बहुतसी भले घरानोंकी पंजाबी लड़कियाँ भगायी गयी जिनमें रामदेवी नामकी एक बारहवर्षीया लड़की भी है। लड़कीने अदालतमें जो बयान दिया है उससे पता चलता है कि कुछ मुसलमान गुण्डे इस मामलेमें शरीक थे। एक गुण्डा उसे पकड़कर, रिक्शामें बिठाकर किसी दूसरे मुसलमान गुण्डेके यहाँ लेगया। वहाँ उ... के साथ बलात्कार किया गया। दूसरे दिन वह दूसरे व्यक्तिके यहाँ उसे लेगया और स्वयं रास्तेमें उसने उस अबोध असहाय लड़कीके साथ बलात्कार किया और छुरी निकालकर उसे धमकी दिखायी कि यदि उसने चू भी किया तो वह छुरी उसकी छातीमें भोंक दी जायगी। उसके दूसरे दिन रातमें फिर एक तीसरे व्यक्तिके यहाँ वह उस लड़कीको लेगया और वहाँ भी उस अभागिनी पर बलात्कार हुआ। इसके बाद वह एक और आदमीके यहाँ रातमें लेजायी गयी और वहाँसे किसी तरह बचाली गयी।

लड़कीके इस बयानसे यह बात स्पष्ट प्रमाणित होती है कि बहुतसे मुसलमानोंकी (तथा कुछ हिन्दुओंकी भी) नैतिक विकृतिने अत्यन्त घृणित रूप धारण करलिया है और वे अल्पवयस्का लड़कियों पर ... आक्रमण करते हैं ... किसी अन्य ... नहीं ... कि ... इसी प्रकारके ... पाशविक ... विशेष आनन्द प्राप्त होता है। यही कारण है कि दुष्ट ... अल्पवयस्का बालिकाओंको पकड़कर उन्हें पशु ... पुरुषोंके ... कर खासा व्यवसाय चलाते हैं।

... भी इसी प्रकारका एक समाचार आया है। कहा जाता है कि दु... नामक एक व्यक्ति एक बारहवर्षकी सुहागी लड़कीको ... जिलेसे भगाकर लेगया और उसे शाहाबाद जिलेके एक गाँवमें लेजाकर देवीदयाल राय नामके एक व्यक्ति

के हाथ (५०) रु० में बेंच दिया ! सौदा बाक़ायदा एक आनेके टिकटयुक्त क़ानूनी लिखतके साथ हुआ। बेचारी लड़की एक कमरेके भीतर बेजार रोरही थी। उसके चिल्लानेकी आवाज सुनकर पड़ौसियोंको संदेह हुआ और पुलिसमें खबर दी गयी। सबइन्सपेक्टर जब भीतर आया तो लड़की उसे अपना त्राणकर्ता समझकर उससे चिपट गई और धाड़ मारमार कर रोने लगी। मामला जब अदालतमें गया तो रौंचीके सबडिवीजनल ऑफिसर श्री पी० सी० चौधरीने दुःखनको सात वर्षकी सजाका हुक्म सुनाया तथा अन्यान्य अभियुक्तोंको भी कड़ी सजा दी गयी। फैसला सुनाते हुए चौधरी महाशयने कहा कि लड़कियोंके व्यवसायकी प्रथा राँचीके आसपासके स्थानों में बहुत बढ़ रही है और बहुतसे मामले अदालत तक पहुँच ही नहीं पाते। उन्होंने यह मत भी प्रगट किया कि जबतक ऐसे मामलोंपर सख्तीसे विचार नहीं किया जायगा तबतक इस अवैध व्यवसायका दमन होना असंभव है। चौधरी महाशयकी राय महत्व-पूर्ण है। —"मासिक विश्वमित्र" के सौजन्यसे।

एक प्रशंसनीय प्रयत्न !

बड़ौदा राज्यमें एक नया क़ानून बनाया जारहा है, जिसका उद्देश्य मन्दिर, मसजिद, गिर्जे आदि धार्मिक उपासनाकी इमारतोंके बनाये जानेपर नियन्त्रण रखना होगा। इस क़ानूनके अनुसार कोई व्यक्ति सरकारी मंजूरीके बिना इस तरहकी इमारत न बना सकेगा। यदि कोई व्यक्ति इस कानूनके विरुद्ध [illegible] बनावेगा, तो उसे गिरा दिया जावेगा और [illegible] बालेको [illegible] महीनेकी क़ैद या [illegible] के जुर्मानेकी सजा दीजायगी। इस कानूनका मुख्य उद्देश्य यही बतलाया गया है कि [illegible] ऐसी इमारतोंके कारण प्रायः साम्प्रदायिक झगड़े उत्पन्न होजाते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि [illegible] वर्षोंमें इस देशमें जो धार्मिक दंगे हुए, [illegible] अधिकांश मन्दिरों और मसजिदोंके नाम पर [illegible]। इस सम्बन्धमें कोई नियन्त्रणकारी क़ा[illegible] [illegible] हिन्दू और मुसलमान अपने उपासना-स्थान चाहे जहाँ बना लेते हैं और फिर अजान, घंटा और बाजे आदिका बहाना निकालकर आपसमें सिर-फुड़ौवल करने लगते हैं। ऐसी परिस्थितिमें यदि कोई शासक उन पर नियन्त्रण रखनेकी चेष्टा करता है, तो उसे किसी प्रकार दोषी नहीं बतलाया जासकता। अगर कोई इस विषयमें दोषी हैं, तो वे ही धर्मके मतवाले मुसलमान और हिन्दू, जो मनुष्यत्वको तिलांजलि देकर इन तुच्छ बातों पर समाजमें विद्वेष और अशांतिकी अग्नि प्रज्वलित कर देते हैं। इस प्रकारके क़ानूनकी आवश्यकता केवल एक इसी कारणसे नहीं है। हम तो यह कहना चाहते हैं कि आजकल जो कोई इनके बनवानेमें धन खर्च करता है, वह देशका परम अपकार करता है। इस समय देशमें मंदिर और मस्जिदोंकी कमी नहीं है। उनमेंसे कितने ही तो उपासकोंके अभावसे कुत्तों और चमगीदड़ोंके आश्रयस्थल बने हुए हैं। आश्चर्य है कि फिर भी लोग आँख बंद करके नये नये मंदिर और मस्जिद बनवाते आते हैं। इनकी क्या आवश्यकता है ? जिन लोगोंको इनमें पूजापाठ या उपासना करनेको जाना है, उनके लिये अब भी गली-गली और कोने कोनेमें ये पाये जाते हैं। इनमें जो धन लगाया जाता है, उससे समाजके उपकारी और अनेक कार्य किये जासकते हैं। इनके द्वारा तो उल्टे सण्ड-मुसण्ड और निकम्मे लोगोंकी ही वृद्धि होती है, जो समाजका रक्त चूस कर जीवित रहते हैं। अथवा इनके कारण पापके अड्डोंकी सृष्टि होती है, जहाँ गुप्त व्यभिचार, दुराचार, नशेबाजी और ठगी आदि दुर्गुणोंकी भरमार रहती है। इसलिये जब हमको यह विदित हुआ कि भारतका एक प्रतिष्ठित राज्य इस सम्बन्धमें आगे क़दम बढ़ा रहा है और इनके लिये एक अंकुश उत्पन्न कर रहा है तो हमें हार्दिक प्रसन्नता हुई। आशा है कि अन्य राज्य और ब्रिटिश भारत भी इस समाजकल्याणकारी कानूनकी तरफ लक्ष्य देंगे और इस बुराईके प्रतिकारका ऐसा ही कोई उपाय सोचेंगे। —"चाँद"

Printed by Pt. Radhaba[illegible] Lal Sharma at the Ajmer Printing Works, Ajmer

तार का पता—"JAINJAGAT" Ajmer. Reg: No. N 352.

ता० १ सितम्बर सन् १९३४

वर्ष ९ अंक २०

जैनसमाज का एकमात्र स्वतन्त्र पाक्षिकपत्र।

वार्षिक मूल्य ३) रुपया मात्र।

जैन जगत्

विद्यार्थियों व संस्थाओं से २॥) मात्र।

(प्रत्येक अंग्रेज़ी महीने की पहली और सोलहवीं तारीखको प्रकाशित होता है)

"पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनम् यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः"॥—श्री हरिभद्रसूरि।

सम्पादक—सा०र० दरबारीलाल न्यायतीर्थ, जुबिलीबाग तारदेव, बम्बई। प्रकाशक—फतहचंद सेठी, अजमेर।

जयसागरकी व्यभिचार लीला! मुनिवेष त्यागकर पुनः कपड़े पहिन लिये !!

कुछ दिन पूर्व जैनमित्रमें प्रकाशित हुवा था कि जयसागरने मुनिवेष त्याग दिया है और कपड़े पहिन कर पूनाकी तरफ चले गये हैं। इस सम्बन्धमें विशेष हाल जाननेके लिये हमने जैनमित्र आफिसको कई पत्र लिखे परन्तु खेद है कि उन्होंने उत्तर देने तक की कृपा नहीं की। विवश होकर हमें इस सम्बन्ध का पूराहाल जाननेके लिये और साधनोंका उपयोग करना पड़ा और कठिन परिश्रमके बादही आज हम इस रहस्यका उद्घाटन करनेमें समर्थ होसके हैं:—

करीब तीन साल पहिले जयसागरने मुनिकलंक मुनीन्द्रसागरसे दीक्षा ली थी। इसके पूर्व वे ब्रह्मचारी महावीरप्रसादके नामसे शिरड (शाहापुर) के जैन बोर्डिंगहाउसमें सुपरिन्टेंडेन्टका काम करते थे। उस समयके इनके कारनामोंका दिग्दर्शन कराना इस समय हमारा ध्येय नहीं है। उसके लिये बादमें कभी देखा जायगा। हैदराबादमें २१ उपवास कर इन्होंने काफी ख्याति प्राप्त करली थी। मालूम हुवा है कि उस समय भी ये दुराचारमें प्रवृत्त थे तथा लुकछिप कर रातको खाया करते थे। बहुत अर्सेसे इनके साथमें कसार (जैन) जातीया रंगम्मा नामकी एक विधवा है और इसके साथ उक्त मुनिजीका अनुचित सम्बन्ध रहा है। इनकी मुनि अवस्थामें ही वह गर्भवती होगई थी। उसको त्याग न कर सकनेके कारण इन्हें मुनिवेष त्यागना पड़ा और आजकल ये पतिपत्नी रूपमें पूनामें रहते हैं।

पूनाके एक संवाददाताके अनुसार इन्होंने अब अपना नाम शामराव रख लिया है और ये सिले हुए कपड़ोंकी फेरी लगाकर अपना निर्वाह करते हैं।

जूनके मध्यमें जब ये उस्मानाबाद गये थे तो वहाँ उनको कुछ जैनियोंने रातको कोठरीमें भोजन करते देखा था। दूसरे ही रोज ये वहाँसे खिसक गये और कुछ दिन बाद शोलापुर पहुँचे। शोलापुर के कई प्रतिष्ठित व्यक्ति यथा श्रीमान पण्डित बंशीधरजी शास्त्री (प्रकाशक जैनगजट), सेठ रावजी सखारामजी दोशी, सेठ हीराचन्दजी रामचन्दजी आदिके पास इनकी क्रियाओंका विवरण विश्वस्तरूप से पहुँचा दिया गया था, तो भी शोलापुरमें नवधा भक्ति पूर्वक इन्हें आहार दिया गया तथा सत्कार किया गया। दो तीन रोज बाद ये एकाएक वहाँसे भाग गये और एक दो मील पर जाकर कपड़े पहिन

कर शोलापुर स्टेशनसे रेलमें सवार होकर पूना चल दिये।

मुनि अवस्थामें इनके साथ तात्या नामक एक व्यक्ति नौकरकी तरह रहता था। उसने पूनासे लौटकर सब हाल श्रीमान पं० वंशीधरजी शास्त्री, सेठ रावजी सखारामजी दोशी आदिको सुनाया तथा उनकी तसल्लीके लिये उनके विश्वस्त आदमियों को अपने साथ पूना लेजाकर उस मकानके मालिक से, जिसमें शामराव पहिले ठहरे थे, सब बातकी तसदीक करादी।

शास्त्रार्थ संघ अम्बालाके प्रचारक श्रीमान दिग्विजयसिंहजी कई महीनों तक मुनिजीके प्राइवेट सेक्रेटरी रह चुके हैं। इन्होंने मुरुड़में श्रीजिनमंदिर की प्रतिष्ठा करानेकी इजाजत निजाम सरकारसे दिलवानेका आश्वासन देकर कई हजार रुपया जैनियोंसे एकत्रित किया था। बादमें आपसमें खटपट हो जाने पर मुनिजीने अपने उक्त नौकर तात्यासे प्राइवेट सेक्रेटरी महाशयको खूब पिटवाया।

जैसाकि ऊपर प्रकट किया गया है, जयसागरजी की सब लीलाएँ हमारे स्थितिपालक दलके नेताओं को बहुत पहिलेसे ज्ञात हैं किन्तु खेद है कि वे जान बूझकर चुप्पी लगाये हैं और इस तरह मुनिधर्मको कलंकित करनेवालोंके हौंसले बढ़ा रहे हैं। —प्र०

मुनींद्रसागरकी चटाईमें से सोनेके ज़ेवर तथा १८७०) के नोट निकले।

मुनींद्रसागरने अपनी मंडली सहित इस वर्ष चातुर्मास कुंडलपुरमें प्रारम्भ किया था, परन्तु एकाएक चातुर्मासके बीचमें ही ये लोग कुंडलपुर छोड़कर दमोह चल दिये। इस वक्त मंडलीमें मुनींद्रसागरके अतिरिक्त तीन मुनिवेषी और देवेन्द्रसागर, विजयसागर तथा सिद्धान्तसागर हैं। साथमें एक श्राविका भी है जो अपना नाम जिनमतीबाई बताती है। कई बार श्रावकों द्वारा वह इस मंडलीसे अलग करदी गई किन्तु आगे दूसरे स्थानपर वह फिर मंडलीमें आ मिलती है। मुनींद्रसागर किसी भयंकर व्याधिसे ग्रसित हैं। डॉक्टरों द्वारा उसका इलाज होरहा है। कई इंजैक्शन लग चुके हैं। वैसे जाहिरा जिनमती बाई अलग कमरेमें ठहरी हुई है परन्तु वह दिनमें ही नहीं किन्तु रातको भी कईबार मुनींद्रसागरके पास जाती आती रहती है। मुनींद्रसागर अपने कमरेमें ही पाखाना फिरते हैं और जिनमती बाई उनके साथ रहकर उन्हें पानी देकर अपने हाथसे सोंचाती है। इनका ऐसा परस्परका व्यवहार देख कर दमोहकी समाजने जिनमती बाईको मंडली छोड़कर चली जानेको कहा तो वह बोली कि मेरे पास जो सामान है उसे बिकवा दिया जाय तो मैं जानेको तैयार हूँ। तदनुसार उसका सामान किसी संस्थाके लिये ५५) रुपयेमें खरीद लिया गया। इसके बाद उसके पास ३००) नक़द और पाये गये। इस पर उसने धर्मकी शपथ खाकर कहा कि इनके अलावः अब मेरे पास कुछ भी सामान या द्रव्य नहीं है। यह सब रुपया देदेने पर भी वह दमोहमें ही अड़ी रही और उसने वहाँसे जानेका नाम भी नहीं लिया। इसी बीचमें गत ता० १७ अगस्तको एक विचित्र घटना होगई। मुनींद्रसागर जिस चटाई पर बैठते उठते हैं, वह दोहरी है तथा उसके बीचमें पयाल भरी हुई है। झाड़ू लगाते समय उस चटाई को झटकारा गया तो उसमेंसे एक पोटली व एक पोलका निकल पड़े। पोलके की तहमें १८७०) के नोट मिलेहुए थे तथा पोटलीमें सोनेके जेवर जंजीर, चूड़ी, कर्णफूल अंगूठी, बाली, आदि मिले। जवाब तलब करने पर मुनींद्रसागर बोले—यह सामान जिनमती बाईका है। प्रथम तो जिनमती बाई शपथपूर्वक कह चुकी थी कि मेरे पास ३५५) के अलावः और कुछ नहीं है; इसके अतिरिक्त अगर यह सामान वास्तवमें जिनमती बाईका ही था तो प्रश्न यह है कि उसको मुनींद्रसागरने अपनी चटाईमें छिपाकर क्यों रख छोड़ा था? खैर, आखिर यह सब रक़म व जेवर जिनमतीबाईको साथ लेजाकर उसके नामसे श्रीमान सेठ गुलाबचन्दजीके यहाँ अमानतके तौरपर जमा करादिया गया। मुनींद्रसागरने कुछ सोचकर फौरन

(शेष पृष्ठ २१ कॉलम २ में देखिये)

जैनधर्म का मर्म ।

(५०)

अपरिग्रह ।

साधारण लोग परिग्रह को पाप नहीं मानते। बल्कि उनकी दृष्टिमें जो जितना बड़ा परिग्रही है वह उतना ही बड़ा पुण्यात्मा है, आदरणीय भी है। धन और धनवानोंकी महिमासे समस्त जगत्का साहित्य भरा पड़ा है, दुनियाँके बड़े बड़े राज्यशासन—चाहे वे प्रजातंत्र हों या एकतंत्र—और बड़े बड़े विद्वान्–भले ही वे बात बातमें धर्मके ही गीत गाते हों, प्रायः सभी धनवानोंके इशारों पर नाचते रहे हैं और नाचते हैं। आज 'बड़ा आदमी' शब्दका बहुप्रचलित और सुगम अर्थ 'धनवान' है। जो धन सर्वशक्तिमान के स्थानपर विराजमान है उसके संग्रहको पाप कहना और उसके त्यागको व्रत संयम आदि कहना विचारणीय तो अवश्य है।

'परिग्रह पाप है'—इस सिद्धान्तकी छाप लोगों पर इतनी अवश्य बैठी है कि वे इस सिद्धान्तका मौखिक विरोध नहीं करते, परन्तु मनमें और व्यवहार में इस सिद्धान्तपर जरा भी विश्वास नहीं रखते। इस विषमताका कारण क्या है, यह भी विचारणीय है।

इस सिद्धान्तके विषयमें यह भी एक प्रश्न है कि जब परिग्रहमें हिंसा नहीं है, झूठ नहीं है, चोरी नहीं है अर्थात् यदि किसीने ईमानदारीसे धन पैदा किया है तो उसका संग्रह पाप क्यों है? हाँ, अगर पैसा बेईमानीसे, चोरीसे, या क्रूरतासे पैदा किया गया है तो अवश्य पाप है। परन्तु उस समय उसे परिग्रह पाप नहीं कह सकते; वह तो हिंसा, झूठ या चौर्य पाप कहा जा सकता है। मतलब यह कि शुद्ध परिग्रह—ईमानदारीसे एकत्रित किया हुआ धन—पाप कैसे कहा जा सकता है?

इन सब समस्याओंपर प्रकाश डालनेके लिये हमें परिग्रहपर मूलसे ही विचार करना पड़ेगा कि परिग्रह क्यों और कैसे आया? उससे जगत्की हानि क्या है? परिग्रह किसे कहते हैं? इसके भी अपवाद हैं या नहीं? हैं तो क्या? इत्यादि।

जब मनुष्य वन्यजीवन व्यतीत करता था, बन्दरोंकी तरह स्वतन्त्रतासे विचरण करता था, प्राकृतिक फलफूलोंसे अपनी सब आवश्यकताएँ पूरी कर लेता था; जैनशास्त्रोंके शब्दोंमें जब मनुष्य भोगभूमिके युगमें था, तब वह परिग्रही नहीं था। प्राकृतिक सम्पत्ति अधिक थी और मनुष्य-संख्या तथा उसकी आवश्यकताएँ थोड़ी थीं। तब परिग्रहकी जरूरत ही क्या थी? तब खानेके लिये उसे मनचाहे फल मिलते थे, पत्र और पुष्प उसके शृंगार थे, बम्बूल आदिकी फली तथा बाँसुरी वगैरह उसके वादित्र थे, वल्कल के वस्त्र थे, पर्वतकी कन्दराएँ और वृक्षोंकी खोह उसके मकान थे, अनेक वृक्षोंका मादकरस पीकर वह मद्यसेवन करता था। जब इस तरह चैनसे गुजरती थी तब वह संग्रह करनेके झगड़ेमें क्यों पड़ता? परन्तु इस शान्तिका भी अन्त आया। जनसंख्या बढ़ने लगी, कृषि और बुद्धिका भी विकास हुआ।

अब कृत्रिम वस्त्र, कृत्रिम गृह आदिकी रचना हुई। इस प्रकारसे समाजमें अत्यन्त क्रान्तिकारी युगान्तर उपस्थित हुआ। पहिले तो प्राकृतिक सम्पत्तिके हिस्सा बाँटसे ही काम चलगया परन्तु पीछे और भी अनेक विधिविधानोंकी आवश्यकता हुई। अब मनुष्य प्राकृतिक सम्पत्तिसे ही गुजर न कर सका, उसे परिश्रम भी करना पड़ा। इधर आवश्यकताएँ यहाँतक बढ़ीं और इतने तरहकी बढ़ीं कि एक मनुष्यसे अपनी सारी आवश्यकताएँ पूरी न हो सकीं। इसलिये कार्यका विभाग कर दिया गया। इस प्रकार मनुष्य पूरा सामाजिक प्राणी बन गया।

परन्तु सब मनुष्योंकी योग्यता और रुचि बराबर नहीं थी। कोई परिश्रमी थे, कोई स्वभावसे कुछ आरामतलब। कोई बुद्धिमान् थे, कोई साधारण। जो परिश्रमी थे, बलवान् थे, बुद्धिमान् थे, वे अधिक और असाधारण काम कर सकते थे, इसलिये यह स्वाभाविक था कि वे अपने कार्यका अधिक मूल्य माँगें। और यह उचित भी था। इस प्रकारके अधिक मूल्य चुकानेके दो ही उपाय थे—एक तो यह कि उसने जितना अधिक काम किया है उसके बदलेमें उसका कुछ अधिक काम कर दिया जाय। उदाहरणार्थ, अगर वह अधिक परिश्रम करनेसे थक गया है तो उसके शरीरमें मालिश कर दिया जाय, लेटनेके लिये दूसरोंकी अपेक्षा अच्छा पलंग आदि दिया जाय आदि; दूसरा उपाय यह था कि उससे दूसरे दिन काम न लिया जाय और उसे भोगोपभोगकी सामग्री दूसरे दिन भी दी जाय। बस, यहींसे परिग्रहका प्रारम्भ होता है। कोई कोई लोग कहने लगे कि अमुक मनुष्यको एक दिनके काममें अगर दो दिनकी सामग्री दी गई है तो मेरा काम तो उससे बहुत अच्छा है, मैं चार दिनकी लूँगा। इस प्रकार यह संख्या बढ़ती ही गई। दूसरी तरफ़ एक अनर्थ और हुआ। लोगोंने यह सोचा कि एक दिन काम करके चार दिन आराम करनेकी अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि दस बीस वर्ष काम करके शेष जीवन आराम किया जाय। परन्तु मरनेका तो कुछ निश्चय न था, इसलिये लोग जिन्दगीभर संग्रह करने लगे। खैर, यहाँतक भी कुछ हर्ज नहीं था, अगर वे लोग इस संग्रहीत धनको भोग डालते या मरते समय समाजको ही दे जाते। परन्तु इसी समय मनुष्यके हृदयमें अनंत जीवनकी लालसा जागृत हुई। उसने अपने स्थान पर पुत्रको स्थापित किया और अपनी संग्रहीत संपत्ति उसे दे दी।

कहनेको तो यह काम क़ानूनी था परन्तु इस क़ानूनकी जो मंशा थी उसकी इसमें पूरी हत्या हो गई थी। समाजके विधानकी मंशा तो यह थी कि जिसने अपनी योग्यतासे अधिक मूल्यकी सेवा की है वह दूसरोंसे (अर्थात् समाजसे) अधिक सेवा लेले। परन्तु उसे दूसरोंसे सेवा लेनेका अधिकार था न कि उनकी जीवन-निर्वाहकी सामग्रीको छीननेका या दबा लेनेका।

जिन लोगोंने अधिक सेवाकी उनका यह कहना था कि हमने अधिक सेवाकी है, इसके बदलेमें हमें कुछ प्रमाणपत्र तो मिलना चाहिये जिसको देकर हम समाजके किसी सदस्यसे इच्छानुसार उतने मूल्यकी सेवा ले सकें। समाजने कहा—अच्छा, प्रमाणपत्रके रूपमें तुम अपने पास अधिक सामग्री रखलो, जो कोई तुम्हारी सेवा करे उसको तुम यह देदेना। इस प्रकार समाजने जो सामग्री दी थी, वह सिर्फ इसलिये कि वह अपनी सेवाके बदलेमें सेवा लेसके, न कि इसलिये कि वह सदाके लिये उस सामग्रीको रखले, भले ही उसके बिना दूसरे भूखे मरते रहें। यह तो एक प्रकारसे विश्वासघात और हिंसा है।

शंका—जिस ज़मानेमें सम्पत्तिका संग्रह अन्न, वस्त्र, गाय, भैंस, ज़मीन आदिमें किया जाता था उस ज़मानेमें संग्रह करनेवाला अवश्य पापी था क्योंकि वह दूसरोंकी जीवन-निर्वाह सामग्री लेकर लौटानेकी कोशिश नहीं करता था, जिससे दूसरे भूखों मरते थे। परन्तु जब धनका संग्रह चाँदी, सोना, हीरा आदि

में होने लगा, या हुंडियों, नोटोंमें होने लगा तब कोई संग्रह करे तो क्या हानि थी ? सोना चाँदी नोट आदि तो खाने पीनेकी चीज नहीं हैं इसलिये उनका कोई कितना भी संग्रह करले, उससे किसीका क्या नुक़सान है ?

समाधान—जीवनोपयोगी वस्तुओंका संग्रह करना या उनको प्राप्त करनेके साधनोंका संग्रह करना एकही बात है। व्यवहारकी सुगमताके लिये भोगोपभोगकी वस्तुओंके स्थानमें चाँदी सोना या उनके सिक्के या नोट वगैरह स्थापित करलिये जाते हैं। इसलिये सिक्का आदिका मूल्य मूल वस्तुओंके समान ही है। सिक्कों या नोटोंका संग्रह जब एक जगह हो जाता है तब दूसरोंको वे नहीं मिल पाते, इसलिये दूसरे लोग भोगोपभोग की सामग्री क्या देकर प्राप्त करें ? मतलब यह कि किसीभी रूपमें धनका संग्रह किया जाय, वह दूसरोंके न्यायोचित अधिकारोंको छीनता है, इसलिये पाप है।

शंका—यदि परिग्रहको पाप माना जायगा तब तो समाजका विकास ही रुक जायगा। अगर धन संचयका प्रलोभन न रह जायगा तो कोई असाधारण कार्य क्यों करेगा ? फिर तो किसी भी तरहके आविष्कार न हो सकेंगे और मनुष्य जङ्गली हो रह जायगा।

उत्तर—संयमी मनुष्य तो बिना किसी प्रलोभनके, कर्तव्यवश—समाजकी उन्नतिके लिये—असाधारण कार्य करता है। फिर भी यह ठीक है कि ऐसे संयमी इनेगिने ही होते हैं इसलिये प्रलोभन आवश्यक है। इसके लिये यह उचित है कि जो असाधारण काम करे उसे तदनुसारही असाधारण धन दिया जाय। परन्तु उसका कर्तव्य है कि वह या तो उस धनका दान करदे अथवा भोग करले। पहिले मार्गसे उसे यश मिलेगा, दूसरेसे काम सुख। दोनोंही मार्गसे धन दूसरोंके हाथमें पहुँचकर उन्हें सुखी करेगा, बेकारी और ग़रीबीको दूर करेगा।

शंका—धनके भोग करनेकी बात कहकर आप मनुष्यको विषयका गुलाम बनाते हैं। एक मनुष्य धन पैदा करनेके साथ अगर सात्त्विक जीवन व्यतीत करना चाहता है, मौज शौककी चीजोंका उपयोग नहीं करना चाहता तो क्या बुरा करता है ?

समाधान—मूलव्रतकी रक्षा न करते हुए उत्तरव्रतका पालन करना व्रतकी दृष्टिसे मृतक शरीर के शृंगारकी तरह है। शृंगार अच्छी चीज भलेही हो परन्तु मुर्देका शृंगार किस कामका ? इसी प्रकार जब तक मूलव्रत अपरिग्रह नहीं है तब तक भोगोपभोगपरिमाण नामक उत्तरव्रतका कुछ मूल्य नहीं है। भोगोपभोग सामग्रीका परिमाण करनेका या त्याग करनेका यही उद्देश्य है कि बची हुई सामग्री दूसरोंके काम आवे, परन्तु अपरिग्रह व्रतका पालन किये बिना इस उद्देश्यकी सिद्धि हो ही नहीं सकती, क्योंकि उस सामग्रीको प्राप्त करनेका उपाय जो धन है वह तो उसने दबा रक्खा है। तब भोगोपभोगकी सामग्रीका उपयोग न करनेपर भी वह दूसरेको कैसे मिलेगी ? इस प्रकार यह व्रत निष्प्राण होगया है। तब भोगोपभोग परिमाणके द्वारा इस निष्प्राण व्रतके सम्हाल शृङ्गारसे क्या लाभ है ? यही कारण है कि जैनशास्त्रोंने भोगोपभोग परिमाणको मूलव्रतोंमें नहीं गिना, इसे अपरिग्रह व्रतका सिर्फ सहायक कहा है। महात्मा महावीरने अपरिग्रह और भोगोपभोग परिमाणव्रतमें जो स्थानभेद बतलाया है और अपरिग्रहको जो महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है इससे उनकी अर्थशास्त्र मर्मज्ञता साबित होती है। इसीलिये उनने मौज शौककी अपेक्षा धनके संग्रहमें अधिक पाप बतलाया है—इसे मूल पापमें गिना है।

शंका—यदि आर्थिक दृष्टिसे दो आदमी एक सरीखे हों तो मौज शौकसे जीवन बितानेवाला आपकी दृष्टिमें अच्छा कहलाया। परन्तु इस तरह संयमकी अवहेलना करना क्या उचित है ?

समाधान—यदि दोनों ईमानदारीसे धन पैदा करते हों, दोनोंकी ऐहिक आवश्यकताएँ समान हों तो इन दोनोंमें जो रूखासूखा आदि खाकर बाह्य संयम पालता है और उससे जो पैसेकी बचत होती है उसका संग्रह करता है, उसको अपेक्षा वह अच्छा है जो आई हुई लक्ष्मीका संग्रह करनेकी अपेक्षा उचित भोगोंमें उसे खर्च कर डालता है। हाँ, अगर उसमें भोगलालसा इतनी बढ़जाय कि वह उसके लिये पाप भी करने लगे या उसमें कष्टसहिष्णुता न रहे तो वह पापी कहलायगा। परन्तु अपरिग्रहकी दृष्टिसे नहीं, किन्तु अन्य पापोंकी दृष्टिसे। स्पष्टताके लिये मैं यहाँ छः श्रेणी किये देता हूँ:—

१—जो मनुष्य समाजकी सेवामें अपना सर्वस्व लगा देता है, बदलेमें समाजसे कुछ नहीं लेता किन्तु पूर्वोपार्जित धनसे निर्वाह करता है, अथवा जीवन निर्वाहके योग्य सामग्री लेता है किन्तु संग्रह कुछ नहीं करता, वह प्रथम श्रेणीका अपरिग्रही है। इस श्रेणीमें महावीर, बुद्ध, ईसा आदि आते हैं।

२—जो मनुष्य समाजकी खूब सेवा करता है और उसके बदलेमें नियमानुसार यथोचित धन लेता है, साधारण गृहस्थकी तरह जीवननिर्वाह करके बची हुई सम्पत्ति शुभदानमें लगा देता है, वह दूसरे नम्बरका अपरिग्रही है।

३—समाजकी सेवा करके यथोचित धन लेने वाला (दूसरी श्रेणीके समान) अगर इस आशय से धनका संग्रह करता है कि 'इससे मैं भविष्यमें अपना जीवननिर्वाह करता हुआ बिना किसी बदले के समाजकी सेवा करूँगा, अपने जीवननिर्वाहका बोझ मैं समाज पर न डालूँगा, मरनेके बाद मेरी संग्रहीत सम्पत्ति समाजकी ही होगी' तो वह तीसरी श्रेणीका अपरिग्रही बनता है।

४—न्यायमार्गसे धन पैदा करनेवाला भोग करके अपने और अपनी सन्तानके लिये धनका इतना संग्रह करता है जितना उसकी सन्तानकी शिक्षा और सन्तानकी नाबालिग अवस्थामें जीवननिर्वाहके लिये आवश्यक है तो वह चौथी श्रेणीका अपरिग्रही है।

५—पूर्वजोंसे उत्तराधिकारित्वमें उसे बहुत धन मिला हुआ है इसलिये उसके पास धनका संग्रह है। अब वह इसमें जितना बढ़ाता है उतना किसी न किसी उचित उपायसे खर्च कर डालता है, मूलधन को भी शुभ दानमें लगाता है, वह पाँचवी श्रेणीका अपरिग्रही है।

६—पाँचवीं श्रेणीका अपरिग्रही अगर मूलधन को संग्रहीत रखता है किन्तु बाकी आमदनी खर्च कर डालता है तो वह छट्ठी श्रेणीका अपरिग्रही है।

उपर्युक्त सभी श्रेणीवाले समाजकी सम्पत्ति बढ़ानेके लिये उद्योग धन्धोंके न्यायोचित प्रचारमें पूर्ण सहयोग कर सकते हैं। अपरिग्रहीके लिये निष्कर्मा और निरुद्योग होनेकी आवश्यकता नहीं है। उसे संग्रहसे बचना चाहिये अथवा संग्रह करके उसे समाजमें किसी न किसी न्यायोचित उपायसे वितरण कर देना चाहिये। ऊपर अपरिग्रहियोंकी श्रेणियाँ बतलाई गई हैं। नीचे परिग्रहीकी श्रेणियाँ बतलाई जाती हैं:—

१—किसी तरह की समाजसेवा करके नहीं, किन्तु पूँजीके बलपर पैसा पैदा करके धनका अनावश्यक संग्रह करनेवाला, आमदनीसे बहुतही कम खर्च करनेवाला कंजूस, प्रथम श्रेणीका परिग्रही है।

२—अगर ऐसा ही मनुष्य धनसंग्रहकी सीमा बाँधले तो द्वितीयश्रेणीका परिग्रही।

३—अगर सेवा करके धनसंग्रह करे तो तृतीय श्रेणीका परिग्रही।

४—अगर सेवा करके धनसंग्रहकी मर्यादा बाँधले तो चतुर्थश्रेणीका परिग्रही।

इन चारोंही श्रेणियोंके मनुष्य अगर भोगोपभोग की मर्यादा करते हैं किन्तु उससे धनसंग्रहकी लालसा में कुछ भी कमी नहीं होती तो अपरिग्रह व्रतकी दृष्टि से उनका कुछ मूल्य नहीं है। हाँ, इन्द्रियविजय-ब्रह्मचर्य आदिकी दृष्टिसे भले ही उनका मूल्य हो। वे संयमी नहीं, किन्तु उसके अभ्यासी कहे जासकते हैं।

शंका—जो लोग धनसंग्रहकी सीमा बाँध लेते हैं उन्हें तो अपरिग्रहियोंकी श्रेणीमें रखना चाहिये। परिग्रहियोंकी उपर्युक्त चार श्रेणियोंमें से द्वितीय और चतुर्थ श्रेणीको भी अपरिग्रहियोंमें रखिये !

समाधान—धनसंग्रह करनेवाला मर्यादा बाँध कर अपरिग्रहियोंकी तीसरी चौथी श्रेणीमें आ सकता है अथवा अगर वह पहिलेसे ही श्रीमान् है तो पाँचवीं छट्ठी श्रेणीमें आ सकता है। अगर मर्यादा बाँध करके भी वह इन श्रेणियोंमें नहीं आता तो उसकी मर्यादा स्वपर वञ्चनाके सिवाय कुछ नहीं है। वह अपरिमित संग्रहियोंकी अपेक्षा कम परिग्रही अवश्य है, फिर भी अपरिग्रहव्रतियोंमें उसकी गिनती नहीं की जा सकती।

प्रश्न—अपरिग्रहव्रतका लक्ष्य तो साम्यवाद माळूम होता है। अधिक साम्यवादीके पास भी कुछ न कुछ धन रहता है और आप तो संग्रहमात्रका विरोध करते हैं। तब क्या मनुष्य बिलकुल पशुकी तरह हो जाय ? धनका जगह जगह कुछ अधिक मात्रामें संग्रह रहे, इसीमें समाजकी भलाई है; क्योंकि आवश्यकतावश वह संग्रहीत धन किसी अच्छे कार्यमें लगाया जा सकता है। अगर सब लोग फाँकेमस्त हो जाँयगे तो किसी अच्छे कार्यके लिये धनसंग्रह कहाँ से होगा और संग्रह करनेमें कठिनाई भी कितनी होगी ? वर्षाका पानी कूए तालाब आदिमें जब संग्रहीत होता है तभी लोग सुभीतेके साथ पानीका उपयोग कर सकते हैं। अगर इन जलाशयोंका पानी समान रूपमें सब जगह फैला दिया जाय तो पीनेके लिये पानीका मिलना भी मुश्किल होजाय।

उत्तर—जैनशास्त्र साम्यवादके विरोधी नहीं किन्तु उसके पूर्ण पोषक हैं। जैनशास्त्रोंमें जो पहिले दूसरे तीसरे (आरा) कालकी कल्पना की गई है और जो सबसे अच्छा युग बतलाया गया है, वह पूर्ण साम्यवादी है। इसी प्रकार स्वर्गलोगके भी दो भेद हैं—एक तो साम्राज्यवादी, दूसरे पूर्ण साम्यवादी। साम्राज्यवादी सौधर्म आदि स्वर्गोंके देवोंकी अपेक्षा पूर्ण साम्यवादी ग्रैवेयक आदिके देवोंका स्थान बहुत उच्च है। वे सभ्यता, शिक्षा, शान्ति, शक्ति, सुख आदि में साम्राज्यवादी देवोंसे बहुत बढ़े चढ़े हैं। साम्राज्यवादी देवोंका सम्राट इन्द्र भी उनकी बराबरी नहीं कर सकता। इससे इतना तो मालूम होता है कि सुखमय समाजका पूर्ण आदर्श साम्यवाद है। परन्तु यह साम्यवाद समाजके व्यक्तियोंकी योग्यता और निःस्वार्थता पर निर्भर है। समाज अगर मूढ़ और स्वार्थी हो तो साम्यवाद महाभयंकर हो जाता है। वह या तो समाजको नरक बना देता है या साम्राज्यवाद या राज्यवादमें परिणत कर देता है। परन्तु इस प्रकारका दुरुपयोग तो प्रत्येक गुणका होता है या हो सकता है, इसीलिये वह गुण हेय नहीं हो जाता। सिर्फ योग्यताका विचार करना चाहिये। समाजकी योग्यता और निस्वार्थताका विचार करके मात्रासे अधिक नहीं, फिर भी अधिकसे अधिक साम्यवादका प्रचार करना चाहिये। साम्यवाद और अपरिग्रहव्रतका यह उद्देश्य नहीं है कि मनुष्य पशु की तरह हो जाय किन्तु यह उद्देश्य है कि दूसरे लोग अपनी न्यायोचित सुविधाओंसे वञ्चित रहकर भूखों न मरें। समाजके पास जितनी सम्पत्ति है उसे देखते हुए जितना भाग हमारे हिस्सेका है, अथवा कर्तव्यको पूरा करनेके लिये जो हमें आवश्यक है उसका उपभोग और संग्रह करनेसे कोई परिग्रही नहीं कहलाता। किन्तु अनावश्यक तथा अपने हिस्सेसे बहुत अधिक संग्रह करना परिग्रह है। एकही समान बाह्य परिग्रह रखनेपर भी एक समय और एक जगह परिग्रहका पाप हो सकता है और दूसरे समय और दूसरी जगह नहीं। जब काम अधिक हो और करने वाले कम हों तब भोगोपभोग की जितनी सामग्री किसीको परिग्रही बना सकती है उतनी बेकारीके जमानेमें नहीं बना सकती। जब काम कम और करनेवाले अधिक होते हैं और वे बेकार फिरते हैं तब भोगोपभोगकी चीज़ोंका अधिक संग्रह किया

जा सकता है। मतलब यह कि समाजकी परिस्थिति के ऊपर परिग्रह और अपरिग्रहकी मात्रा अवलम्बित है। ढाईहजार वर्ष पहिले मुनि जितने उपकरण रख सकता था, आज उससे कई गुणे उपकरण रखकर भी अपरिग्रही हो सकता है। हाँ, उसके ऊपर अनावश्यक स्वामित्व न होना चाहिये। इसलिये अपरिग्रहव्रतमें संग्रहमात्रका निषेध नहीं है, किन्तु उसके मात्राधिक्यका निषेध है। जगह जगह संग्रह करने की आवश्यकता तभी होती है जब एक तरफ अत्यंत कङ्गाली हो। यदि सभीको न्यायोचित साधन मिले तो किसीके पास अधिक संग्रह हो इसकी क्या आवश्यकता है? यदि कोई सार्वजनिक बड़ासा कार्य करना हो तो इसके लिये सरकारके पास सार्वजनिक कोष होता है, उसका उपयोग किया जासकता है या सब लोग मिलकर वह कार्य कर सकते हैं, और जलाशयोंकी उपमा यहाँ भी लागू हो सकती है। जलाशयोंका होना अच्छा है परन्तु उसके ऊपर व्यक्ति विशेषकी ठेकेदारी होनाही दुःखद है। विवश होकर यह व्यवस्था अपनाना पड़े यह ठीक है, परन्तु इसे आदर्श नहीं कह सकते। सफल साम्यवादी समाजमें श्रीमानोंका और दानवीरोंका जितना अभाव होता है उससे भी बड़ा अभाव उनकी आवश्यकताका होता है। दानियोंका होना अच्छा है परन्तु भिखमंगोंका न होना इससे हजारगुणा अच्छा है।

अभीतकके विवेचनसे इतनीबात समझमें आगई होगी कि परिग्रह किस प्रकार अन्याय है, विश्वासघात आदि दोष इसमें किस प्रकार जड़ जमाये बैठे हैं, समाजके असली ध्येयको वह किस प्रकार नष्ट करता है। परन्तु इसमें अभी एक और भयंकर दोष है जोकि अनेक अत्याचारोंको जन्म देता है।

पहिले कहा जाचुका है कि हमें अधिक सेवा करके अधिक सेवा लेनेका ही अधिकार है, उसके प्रमाणपत्र रूप जो सम्पत्ति समाजने हमारे पास रक्खी है उसको अनिश्चित कालके लिये दबा रखने का नहीं। अगर हम दबा रखते हैं तो विश्वासघात करते हैं। परन्तु यह विश्वासघात उससमय एकप्रकार के अत्याचारमें परिणत होजाता है, जब हम उस संग्रहीत धनको भी धनार्जनका उपाय बनालेते हैं। हमको जो धन मिला है वह सेवाके बदलेमें मिला है। सेवाके बदलेमें धन लेना उचित है परन्तु हमारे पास धन है इसलिये बिना सेवा किये ही हमें और धन दो, यह कहना अनुचित है। परन्तु होता यही है। हम मकान बनवाकर जो उसके भाड़ेसे आमदनी करते हैं, कारखानोंके शेयर (हिस्से) लेकर या व्याज पर रुपये देकर जो आमदनी करते हैं, वह अनुचित है। इतना ही नहीं किन्तु जिस व्यापारकी आमदनी हमारी योग्यता और श्रमका फल नहीं किन्तु पूँजी का फल है, वह आमदनी भी अनुचित है। यह बात दूसरी है कि इस प्रथाका सर्वथा बहिष्कार करना अशक्य है, परन्तु है यह अन्याय अर्थात पाप ही।

यह पाप यहाँ जाकर ही नहीं अटकता परन्तु आगे चलकर यह बड़े बड़े अत्याचारोंको जन्म देता है। उससे साम्राज्य नहीं किन्तु साम्राज्यवाद *

---

* लेलिनका मत है कि साम्राज्यवाद वह आर्थिक अवस्था है जो पूँजीवादके विकासके समय पैदा होती है। उसकी पाँच विशेषताएँ या दोष हैं। (१) पूर्ण अधिकारोंकी स्थापना (२) कतिपय महाजनोंका आधिपत्य (३) पूँजीका निर्यात (४) अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक गुटों का निर्माण (५) आर्थिक दृष्टिसे देशोंका बटवारा। जब बहुत बड़ी पूँजी लगाकर कोई व्यापार किया जाता है तब उसके लिये बड़े क्षेत्रकी आवश्यकता होती है परन्तु दूरके क्षेत्रोंमें दूसरे पूँजीपति अपना स्थान जमा बैठते हैं इसलिये इन लोगोंमें खूब प्रतियोगिता होने लगती है। इससे इनकी आर्थिक लूट बहुत कम हो जाती है। तब ये आपसमें मिलकर एक गुट बना लेते हैं। जो व्यापारी इनके गुटमें शामिल नहीं होना चाहता उसके विरुद्ध आर्थिक लड़ाई छेड़ दी जाती है जिससे या तो वह इनके गुटमें आजाता है अथवा मिट जाता है। इस प्रकार व्यापारके ऊपर अमुक गुटका पूर्णाधिपत्य स्थापित हो जाता है। किसी गाँव में एकही दूकानदार हो तो वह किस प्रकार मनमानी लूट करेगा, इससे हम इस पूर्णाधिकारकी भयंकरताको

रूपी एक भयंकर राक्षस पैदा होता है जिसके दाँतों के नीचे करोड़ों मनुष्य पिसजाते हैं, पिसते रहते हैं। इतिहासके बहुतसे पन्ने इसीप्रकारकी काली कथाओं से भरे पड़े हैं। इसीके लिये उपनिवेशोंकी रचना होती है। उपनिवेश पहिले भी होते थे परन्तु उपनिवेश स्थापनाके पहिले ध्येय और अबके ध्येयमें ज़मीन आसमानका अन्तर है। पहिले तो लोग जीवननिर्वाहके लिये बस जाते थे, परन्तु अब तो पूँजी लगाकर पैसा पैदा करनेके लिये उपनिवेश बनाये जाते हैं। इसके लिये दूसरी प्रजाओंको पशुओंकी मौत * मरना पड़ता है। संसारके सभ्यसे

समझ सकते हैं। ये गुट बड़ी भारी पूँजी और व्यापकक्षेत्र के कारण एक विशालकाय दैत्य सरीखे होते हैं। इस प्रकारके दो गुटोंमें जब भिड़न्त होती है तब परिस्थिति विकट हो जाती है और कभी कभी तो दो राष्ट्रोंके बीचमें युद्ध छिड़ जाता है। इन गुटोंमें बल तो पूँजीका रहता है इसलिये महाजनोंका आधिपत्य हो जाता है। महाजनों के पास जब इतना रुपया इकट्ठा हो जाता है कि उनके बैंक अच्छा व्याज पैदा नहीं कर पाते तब बैंकोंका रुपया व्यापारमें लगा दिया जाता है। इस प्रकार देशके व्यापार पर बैंकोंका अर्थात् बैंकोंके मालिकों—श्रीमानों—का राज्य हो जाता है। देशके भीतर व्यापार मुख्य वस्तु होनेसे ये लोग उस देशके वास्तविक शासक हो जाते हैं। जब धन, धनको पैदा करने लगता है तब पूँजीवादका चक्र एक देशके भीतर ही सीमित नहीं रहता किन्तु पूँजी बाहर भेजी जाने लगती है, क्योंकि देशमें काफ़ी पूँजी लगजाने से और अधिक पूँजी लगानेकी गुंजायश नहीं रहती। तब पूँजीपति लोग विदेशोंमें पूँजी भेजने लगते हैं और इस प्रकार व्याजकी अपेक्षा कई गुणी आमदनी करते हैं। जिन देशोंमें यह पूँजी लगाई जाती है उनके पास अधिक पूँजी होती नहीं है इसलिये नफ़ाके बदले वहाँ प्राकृतिक और आवश्यक वस्तुएँ पूँजीपति देशोंके पास पहुँचती हैं। यह एक तरहकी सभ्य डकैती है। इस प्रकार पूँजीका प्रभावक्षेत्र जब राष्ट्रके बाहर भी हो जाता है तब प्रतियोगितासे बचनेके लिये जिस प्रकार राष्ट्रके भीतर आर्थिक गुट बनाये जाते थे उसी प्रकार राष्ट्र के बाहर भी अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक गुट बनाये जाने लगते हैं। और इसके बाद अमुक गुट अमुक देशको लूटे और अमुक अमुकको इस प्रकार संसारके देशोंका बटवारा कर लिया जाता है। इस बटवारेके लिये भयंकर युद्ध तक किये जाते हैं। जो देश या जो व्यापारी लोहेके कारखानों में या बारूद आदि विस्फोटक पदार्थोंके कारखानोंमें पूँजी लगाते हैं वे इस बातकी चेष्टा करते हैं कि किसी प्रकार युद्ध हो। धनिक होनेके कारण इनका प्रभाव बहुत होता है, प्रचार करनेके साधन भी इनके पास बहुत अधिक होते हैं इसलिये ये लोग देशभक्ति आदिके नामपर जनता को उत्तेजित कर लड़ादेते हैं। लोग बुरी मौत मरते हैं किन्तु इनका व्यापार चमकता है।

* कांगो (आफ्रिका) जब बेलजियमका उपनिवेश बनाया गया तब वहाँ की चीज़ोंके संग्रहके लिये मूलनिवासियोंके साथ सख़्ती की जाने लगी। अनेक प्रकार की सख़्ती पर भी जब वे लोग माल नहीं लाते थे तो उनसे रबर और हाथीदाँतके रूपमें टैक्स लिया जाने लगा। और जबतक वे रबर या हाथीदाँत नहीं लातेथे तब तक उनकी औरतें पकड़ कर रखी जाती थीं। इसके लिये गाँवों पर सैनिकोंका पहरा बैठा दिया जाता था। दिन दिनभर बेगार कराई जाती थी। रबरकी माँग इतनी अधिक की जाती थी कि मूलनिवासियोंको खेती करनेकी फ़ुरसत भी न मिलती थी। इससे दुर्भिक्ष फैलता था, लोग भूखों मरने लगते थे, बच्चोंकी मृत्युसंख्या असाधारण रूपमें बढ़जाती थी, आदमियोंको देश छोड़कर भाग जाना पड़ता था। कभी कुछ लोग उपद्रव भी कर बैठते थे तो उपद्रव दबाने के बहाने हज़ारों आदमियोंको फाँसी दी जाती थी, अथवा कोई कठोर दण्ड दिया जाता था। इसी प्रकार पूर्व आफ्रिकामें जब अच्छी अच्छी ज़मीन जर्मन पूँजीपतियोंको मिली तो उनने ज़बर्दस्ती मूलनिवासियोंसे मज़दूरी कराना शुरू किया। इससे तंग होकर उनने उपद्रव करदिया जिससे उनका बड़ी क्रूरतासे दमन किया गया। सन् १८९८ में केनियाकी सारी ज़मीन ब्रिटिश सरकारने छीनली, और यूरोपियनोंको बाँट दी। मूलनिवासियोंको ज़मीन रखनेका हक़ ही न रहा जिससे वे गोरे पूँजीपतियोंकी गुलामी करें। इतने पर भी जब उद्देश सिद्ध न हुआ तो उनपर मुंड कर लगा दिया, और जो मज़दूरी न करे उसपर दूना कर लगाया गया। इतने पर भी जब काम न चला तो मजूर ज़बर्दस्ती पकड़े जाने लगे, और अगर वे भाग जाते

सभ्य और शान्तिप्रिय देश पराधीन बनाये जाते हैं ! और पैसा पैदा करनेके लिये उनके व्यापारको नष्ट कर * दिया जाता है। वे दूसरोंके साथ व्यापार न कर सकें इसप्रकार की शर्तें उनपर लादी ‡ जाती हैं। पूँजीपति लोग कर्ज़ देकर शासक राजाओंको गुलाम † बनाते हैं और व्यापारके लिये राज्य तक हड़पे ॐ जाते हैं।

परिग्रह पाप—जिसको दुनियाँने अभीतक एक स्वरसे पाप नहीं माना है—कितना दुःखप्रद है, यह बात साम्राज्यवादके इतिहाससे अच्छी तरह जानी सकती है। साम्राज्य और श्रीमान होना बुरा नहीं है किन्तु साम्राज्यवाद और पूँजीवाद बुरा है। वास्तव में यही परिग्रह है। अगर आज दुनियाँ भरके देशों का एक साम्राज्य बना दिया जावे जिससे एक राज्य दूसरेसे न लड़सके अर्थात् युद्ध एक ग़ैरक़ानूनी चीज़ ठहर जाय तो यह साम्राज्य बुरा नहीं है। परन्तु साम्राज्यवादका यह लक्ष्य नहीं होता। इससे तो निर्बल, ग़रीब और भोले मनुष्य बदमाश और सबलोंसे पीसे जाते हैं। इसी प्रकार श्रीमान और पूँजीवादमें अन्तर है। जहाँ धनसे धन पैदा न किया जाता हो वहाँ श्रीमत्ता है, पूँजीवाद नहीं। पूँजीवाद क्या है, उसका भयंकररूप ऊपर बता दिया गया है।

यह न समझना चाहिये कि बड़े बड़े श्रीमान ही पूँजीवादी होते हैं। सम्भव है कि श्रीमान भी पूँजीवादी न हो और मध्यम तथा और भी नीची श्रेणीके मनुष्य भी पूँजीवादी हों, क्योंकि जब साधारण गृहस्थ भी श्रीमान बनना चाहता है तब वह पुराने श्रीमान् से भी भयंकर हो जाता है। वह अपनी छोटीसी पूँजीसे भी अधिकसे अधिक धन पैदा करता है, तथा बहुसंख्यक ‡ होनेसे इनके पापका

तो उन्हें जेल भेज दिया जाता। तब क़ैदीकी हैसियतसे उन से मुफ्तमें ही काम लिया जाता। इससे दुःखी होकर जब उनने उपद्रव किया तो क्रूरतासे दबाया गया। नेताओं को गोली मारदी गई या क़ैद करलिया गया। भीड़ पर गोलियाँ चलाकर अनेक स्त्रियोंको भी सदाके लिये सुला दिया गया। ये तो थोड़ेसे नमूने हैं, परन्तु इस प्रकार के अत्याचार असंख्य हैं। आफ्रिकाके हब्शियोंकी गुलामी प्रथाके अत्याचार सुननेवालोंके रोंगटे खड़े कर देते हैं। अमेरिकामें रेडइंडियनोंका पशुओंकी तरह शिकार किया गया था। रेडइंडियनोंकी सभ्यता यूरोपियनोंसे कुछ कम नहीं थी। उनके गाँवके गाँव नष्ट किये जाते थे। मतलब यह कि इन उपनिवेशोंका जन्म लाखों निर्दोष और पवित्र आदमियोंके रक्तप्रवाहमें हुआ है।

* ईस्ट इंडिया कम्पनीने भारतके कारीगरों पर जो अत्याचार किये हैं और विविध उपायोंसे भारतके व्यापार को जिस तरह नष्ट किया है, उसका पुराण भी बहुत लम्बा और भयंकर है।

‡ ईस्ट इंडिया कम्पनीने बंगालके जुलाहों पर ऐसा ही अत्याचार किया था। बेल्जियमकी सरकारने कांगोके मूलनिवासियों पर भी ऐसा अत्याचार किया था, जिससे वे सरकारी एजेन्टोंके सिवाय और किसीके हाथ कोई चीज़ नहीं बेच सकते थे।

† उत्तरी आफ्रिकाके मुसलिम राज्य १९ वीं शताब्दी में कमज़ोर थे। यूरोपीय राष्ट्र उन्हें चकमा देकर ऋण देते थे, इस प्रकार वे और ऐयाश हो जाते थे। इससे आर्थिक अवस्था और ख़राब हो जाती थी; तब वे लोग और ऋण देते थे, जिसे चुकानेके लिये वह प्रजापर अधिक कर लगाता था जिससे बलवा हो जाता था जिसको दबानेके लिये वह और ऋण लेता। इस प्रकार जब ऋण न चुकने लायक़ होजाता तब ये लोग राजाको अपने संरक्षणमें लेलेते और अपने व्यापारके प्रसारके लिये मनमाना अन्याय करते। अगर वह या उसकी प्रजा कुछ चीं चपड़ करती तो वह दबा दी जाती और राज्यपर पूर्णाधिकार करलिया जाता। इस विषयकी चालबाज़ियोंका काला पुराण भी बहुत लम्बा है।

ॐ भारत इसी तरह हड़पा गया। कोरिया, मंचूकुओ, जापानने हड़प लिये। आस्ट्रेलिया, अमेरिका और आफ्रिका की भी यही दशा हुई। वहाँ के मूलनिवासियोंका तो अस्तित्व भी नहीं के बराबर हो गया है।

‡ फ्रान्सके जिन किसानों और मज़दूरोंने मोरक्को की सरकारको ऋणदेनेके लिये ऋणपत्र (बौंड) खरीदे थे वे सब यही चाहते थे कि जैसे बने वैसे फ्रांसकी सरकार मोरक्को पर अपना प्रभाव क़ायम रक्खे। इसलिये वे

प्रतीकार भी कठिन होता है।

धनमें जो मनको पैदा करनेकी शक्ति है, वह कभी नष्ट हो सकेगी या नहीं, यह कहना कठिन है। परन्तु परस्पर सहयोगके जिस तत्त्वपर समाजकी रचना हुई है, उसके यह विपरीत है। इसीलिये यह पाप है। यह बात दूसरी है कि अधिकांश लोग इसे पाप नहीं समझते, परन्तु इससे तो सिर्फ यही सिद्ध होता है कि समाजमें अभी बहुतसी जड़ता बाकी है। बहुतसी जङ्गली जातियाँ ऐसी हैं जिनमें किसी मनुष्यको मार डालना और खा जाना बहुत साधारण बात है। वे इसे पाप नहीं समझतीं। हमारे पूर्वज भी किसी समय हिंसाको पाप नहीं समझते थे। धीरे धीरे उनमेंसे कुछ विचारशील लोगोंने हिंसाको पाप समझा। परन्तु उनकी समझको अपनानेमें समाजने शताब्दियाँ नहीं, सहस्राब्दियाँ लगाई हैं। परिग्रहके पापको पाप रूपमें घोषित कर देनेपर भी इसको अभी समाजने नहीं अपना पाया है। परन्तु एक न एक दिन वह इसे भी अपना लेगा।

हिंसा आदि को पाप रूपमें स्वीकार करलेनेपर भी हिंसा दुनियाँसे उठ नहीं गई है। इससे सिर्फ अहिंसाको नैतिक बल तथा समाजका पीठ बल मिला है इसीप्रकार परिग्रह पाप भी नष्ट न होगा किन्तु अपरिग्रह व्रतको नैतिक बल तथा समाजका पीठ बल मिल जायगा। यही क्या कम है ?

सम्पादकीय टिप्पणियाँ।

अद्भुत आत्मवञ्चना।

परवञ्चककी वञ्चनाको निष्फल बनानेके तो बहुतसे उपाय हैं परन्तु जो अपनेको धोखा देना चाहता हो, उसकी रक्षा विधाता भी नहीं कर सकता। ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी इसी प्रकारके आत्मवञ्चकों में प्रधान हैं। जिन बातोंका आप किसी भी तरह उत्तर नहीं दे पाते, उनके विषयमें भी आप अद्भुत संताप कर लेते हैं, इतनाही नहीं किन्तु कुछ न कुछ निरर्गल लिखकर आत्मवञ्चकोंकी सीमापर पहुँच जाते हैं।

बारहवें अंकमें मैंने एक लेख लिखा था—'अन्ध श्रद्धा और पक्षपात' जिसमें मैंने ऐतिहासिक दृष्टिसे मद्यमांसभक्षणकी आलोचना की थी। उसके उत्तर में ब्रह्मचारीजीने कुछ लिखनेकी कोशिश की है। आपने जो तीन आपत्तियाँ उठाई थीं, उनका मैंने विस्तारसे और सयुक्तिक उत्तर दिया था। परन्तु इसके उत्तरमें आपकी आलोचना अद्भुत है, जैसे—

मैंने कहाथा कि रामचन्द्र अगर पागल होगये थे तो पागलपनमें वे ऐसे वाक्य नहीं बोल सकते थे जो उनके मनमें या कार्यमें कभी न आते हों। फिर कवि को यहाँ शराबके वर्णनकी क्या आवश्यकता थी ? दौलतरामजी की तरह उनने दुग्धादिका वर्णन क्यों न किया ? नौकरोंको आश्चर्य क्यों न हुआ ? रविषेणाचार्यने उस समय शराबकी माँगकी निन्दा क्यों न की ? इन सब बातोंका आपके पास कुछ उत्तर नहीं है। परन्तु आप कुछ न कुछ लिखनेके लिये लिखते हैं कि बस, रामचंद्र पागल होगये थे ! अरे भाई, पागलपनकी अवस्था मानलेने पर भी उस वर्णनसे जो निष्कर्ष निकलता है उसका आपके पास क्या उत्तर है ?

दूसरी बात आप कहते हैं कि शराब पीनेवाले लोग जैन न होंगे। यहाँ आप मुद्दई सुस्त गवाह चुस्त की कहावत चरितार्थ करते हैं। रविषेणाचार्यने तो इस बातका ज़रा भी उल्लेख न किया कि शराब पीने वाले सब अजैन थे, जो कि उन्हें करना चाहिये था। आप यहाँ जानबूझकर कथासाहित्यकी शैलीको भुला जाते हैं। एक जैनपुराणमें समाजका जो साधारण वर्णन आता है, वह जैनसमाजका ही होता

फ्रान्सकी सरकारके अत्याचारोंका भी समर्थन करते थे। अगर किसी एक ही श्रीमान ने यह ऋण दिया होता तो अधिकांश किसानों और मजदूरोंकी सहानुभूति मोरक्को की तरफ होती।

है। हाँ, अगर उसमें कहीं इस बातका निषेध किया हो तो बात दूसरी है। परन्तु आचार्योंने वहाँ इस बात का ज़रा भी उल्लेख नहीं किया। जैनमुनियोंके केवली होनेपर हर्ष मनानेवाले तथा जैनराज्यमें रहनेवाले लोगोंके सामान्य वर्णनको जैनसमाजका वर्णन न समझें तो किसका समझें? लंकाके वर्णनमें जहाँ देखो वहाँ जैनियोंका वर्णन है; अष्टाह्निकोत्सवमें क्या, युद्ध के वर्णनमें क्या, सब जगह हमें जैनसमाजका ही वर्णन मिलता है। धर्मशर्माभ्युदयका जो मद्यवर्णन है वह धर्मनाथ स्वामीकी बारातका वर्णन है। एक जैन तीर्थंकरकी बारातके वर्णनको हम जैनसमाज का वर्णन न समझें तो किसे समझें? परन्तु इस बातको आप साफ़ उड़ा गये। फिर भी आप कहते हैं कि जैनियोंके वर्णनमें मद्यमांसका वर्णन आता ही नहीं!

तीसरी बात आपकी यह है कि "बहुतसे राजाओंके वर्णनमें मद्यका वर्णन नहीं है। वज्रकर्णने रामचन्द्रजीके लिये जो भोजन भेजा था उसमें शराब का वर्णन नहीं है। रामचन्द्र तो भगवान्‌के मन्दिर में जाते थे, वे सामायिक करते थे; वे शराब कैसे पीते होंगे?"

शराबका वर्णन सब जगह होना चाहिये, यह कोई आवश्यक नहीं है। ऐसी तो बहुतसी बातें हैं जो सब जगह नहीं मिलतीं; इससे कुछ उनका अभाव नहीं हो जाता है। किसी आदमीने अगर जाति में शादी की हो तो इसका यह मतलब नहीं है कि जिसने विजातीयविवाह किया है वह झूठा है। मेरा कहना यह है कि जहाँ उसका वर्णन है, वहाँ तो उसे मानना चाहिये। भोजनमें शराबका नाम न आना यह स्वाभाविक है, क्योंकि दाल शाक की तरह शराब के साथ रोटियाँ नहीं खाई जातीं। शृंगार आदि मौजशौकके अवसर पर ही उसका उपयोग होता है। कोई आदमी सामायिक करताथा, इसलिये वह शराब नहीं पीताथा यह भी बड़ा विचित्र तर्क है! रावण भी बड़ा पुजारी था, उसकी पूजासे तो खुश होकर नागेन्द्र तक दौड़ा आया था, फिर भी वह सीता चुराने तकका पाप क्योंकर बैठा? दूसरी बात यह है कि जो बात साधारण रिवाजके रूपमें रहती है उसके विषयमें यह कोई बलवान कारण नहीं है। जब पूजा वगैरह करनेवाले लोकविरुद्ध पाप तक कर सकते हैं तब जो पाप रिवाजमें शामिल होगया उसे करने में आश्चर्य या अविश्वासकी क्या बात है?

आपकी चौथी बात है प्रासुक शराबकी। जो श्लोक मैंने उद्धृत किये हैं, उनमें सब तरहकी शराबों का वर्णन है। महुए आदि की शराब भी है। उसे भी जब आप प्रासुक समझते हैं तो आजकल की सभी शराबें प्रासुक हैं। आजकल भी शराब कुछ जानवरोंको मारकर थोड़ेही बनायी जाती है। वह भी ताड़, नारियल, खजूर आदिसे निकाली जाती है या अंगूर आदिसे तैयार की जाती है। ये सब भक्ष्य-फल हैं। यदि कहोकि अंगूर आदिमें मादकता तब आती है जब उनमें त्रस जीव पैदा होते हैं, तो क्या यह बात उस समय नहीं थी? फिर, शराबका दोष मादकताकी दृष्टिसे है, न कि हिंसाकी दृष्टिसे। अगर कोई जैन व्रती या ब्रह्मचारी आज ताड़ी पिये तो वह प्रासुक शराबकी दुहाई देकर बच नहीं सकता।

मांसके विषयमें मैं पहिले ही लिख चुका था कि मद्यकी अपेक्षा इसका बहिष्कार पहिले हुआ तथा यह शराबकी तरह शृङ्गारका सभ्य साधन न होने से इसका अधिक वर्णन नहीं आता। फिरभी बहुतसे उदाहरण मैंने दिये हैं। आप कहते हैं कि वे भ्रष्ट थे, सो यह तो आजकी दृष्टिसे है। फिर भी इसमें रिवाजकी सिद्धि तो होती ही है। जैनराजा अष्टाह्निका आदि पर्वोंमें मांसका निषेध कराते हैं, किन्तु सदाके मांसलोलुपी इस समय पर मांसका त्याग नहीं करते, इससे भी रिवाज सिद्ध होता है। नेमिनाथके विवाहमें राजाओंके भोजनके लिये पशुओंका संग्रह भी एक प्रबल प्रमाण है। षड्यंत्र की बात तो बिलकुल बेबुनियाद है। नेमिनाथके बलसे कृष्ण शंकित होगये थे परन्तु इससे तो वे अब

का बहुत आदर करने लगे थे। विवाहकी योजना भी षड्यन्त्र था, यह झूठ है। जब वे दीक्षाको जाने लगे तब भी कृष्णने उनको लौटनेके लिये मनाया है। जानवर गाँवके बाहर बाँधे गये थे, इसमें कोई कृत्रिमता क्या है? पहिले तो कृष्णके द्वारा षड्यन्त्र किया जाना ही ठीक नहीं है। अगर मान भी लिया जाय तो भी इससे यही सिद्ध होता है कि उससमय मांसभक्षणका रिवाज था। अगर रिवाज न होता तो नेमिनाथको आश्चर्य होता कि मांस तो कोई खाता ही नहीं, फिर सारथी ऐसा क्यों कह-रहा है? नेमिविवाहकी घटना बिलकुल स्वाभाविक है और रिवाजकी सूचक है।

उस जमानेकी सभ्यताका और भी एक प्रमाण लीजिये। सिद्धकूट चैत्यालयमें अनेक जातिके विद्याधर एकत्रित हुए हैं। जैन चैत्यालयमें आनेके कारण कमसे कम उन्हें जैनी तो समझनाही चाहिये। परन्तु उन विद्याधरोंमें बहुतसे विद्याधर हाड़ और चमड़ा पहिने हुए हैं। मन्दिरों तकमें हाड़ और चमड़ेका शृङ्गार होना भी इस बातका सूचक है कि एक समयका जैनसमाज ऐसे वर्णनोंको स्वाभाविक समझता था।

इसीलिये मैं कहता हूँ कि अब अवसर्पिणी माननेका जमाना नहीं है। पुराने गीत गाने वाले हज़ारों हैं; उनके वाक्योंका कुछ मूल्य नहीं है जिससे उनके उद्धरण दिये जायँ। भारतके विषयमें आप चाहे जैसे गीत गा लीजिये परन्तु भारतके बाहरके देश पहिले जमानेसे हज़ारगुणे अच्छे हैं। यह नहीं हो सकता कि अकेले भारतवर्षके लिये अवसर्पिणी हो और बाकी सब देशोंके लिये उत्सर्पिणी। अगर आज हम अवसर्पिणीकी कल्पनापर अड़े रहेंगे तो अप्रत्यक्षरूपमें अपने पतन और भ्रष्टाचार का समर्थन करेंगे, विज्ञानके विरुद्ध व्यर्थका बकवाद करेंगे, उन्नतिके कार्यमें निरुत्साह बनेंगे।

मैं अपने पूर्व लेखमें भी लिख चुका हूँ कि मांस भक्षण सरीखी जङ्गली और क्रूर प्रथाओंको चलाने की आवश्यकता नहीं है किन्तु इसके लिये हमें वास्तविकताका लोप न करना चाहिये, क्योंकि भविष्य में जब भी कभी इनका भण्डाफोड़ होगा उससमय आजकी अपेक्षा भी अधिक कठिनाइयोंका साम्हना करना पड़ेगा।

ब्रह्मचारीजीसे एक बात और कहना है कि वे मूलचर्चासे आँखमिचौनी न करें। मेरा पहिला लेख इस बातको लेकर था कि हमें साम्प्रदायिकता के कारण एक दूसरे पर परस्पर आक्रमण न करना चाहिये, नहीं तो याद रखिये कि घर घर मिट्टीके चूल्हे हैं। परन्तु आप उस बातको साफ उड़ा जाते हैं उदारताका ढोंग करते हुए भी तथा उसके गीत गाते हुए भी आप उसकी ओटमें किस भयंकर और क्रूर साम्प्रदायिकता को छिपाये हुए हैं, यह बात आपकी लेखनीसे साफ मालूम होती है। एक तरफ तो आप साम्प्रदायिक द्वेष बढ़ानेवाले साहित्यको उत्तेजन देते हैं, यहाँ तककि उसकी व्यावहारिक बुराइयों पर भी ध्यान नहीं देते, बतलाने पर उत्तर भी नहीं देते, न उन्हें स्वीकार करते हैं; किन्तु आनुषङ्गिक गौण चर्चाको लेकर महाभारत मचाते हैं। अगर आप सत्य और कल्याणकी पूजा करनेका साहस नहीं रखते तो कमसे कम समयकी आवाजको तो पहिचानिये! साम्प्रदायिक कट्टरताओंने मनुष्य जाति का—खास कर इस देशका—कितना सत्यानाश किया है, जरा इसपर नजर डालिये और थोड़ा बहुत सम्प्रदायमदका और आत्मवञ्चनाका तो त्याग कीजिये! आशा है आप इस पर गम्भीरतासे विचार करेंगे!
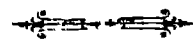
विरोधी मित्रोंसे।

(२३)

आक्षेप (७८)—सत्का नाश नहीं होता इसलिये अनन्तके ज्ञान हुए बिना कालकी अनंतता का भले ही निश्चय किया जा सके, परन्तु क्षेत्रकी अनन्तताके परिज्ञानके लिये अनन्तका परिज्ञान

अनिवार्य है, क्योंकि सत् होनेसे ही कोई पदार्थ क्षेत्र की दृष्टिसे अनन्त नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार स्कंधोंके अनन्तप्रदेशित्व जाननेके लिये भी अनंत परमाणुओंका ज्ञान होना आवश्यक है क्योंकि अवयवोंको जाने बिना समुदायका ज्ञान नहीं होसकता।

समाधान—आक्षेपकने यहाँ पर क्षेत्र और क्षेत्रस्थके भेदपर ध्यान नहीं दिया। क्षेत्रमें स्थित जो पदार्थ हैं उनको मैंने अनंत नहीं माना परन्तु स्वयं क्षेत्रको अनंत माना है। मतलब यह कि जगह अनंत है, वस्तुएँ अनन्त नहीं। जिस प्रकार कालकी अनन्तता जाननेके लिये सब समयोंको जाननेकी जरूरत नहीं, उसी प्रकार क्षेत्रकी अनंतता जाननेके लिये सब जगहको जाननेकी आवश्यकता नहीं है। दोनोंकी अनंतता अनुमानसे जान सकते हैं। उत्तर पर्यायकी उत्पत्तिके बिना पूर्वपर्यायका नाश नहीं हो सकता इसलिये यह पर्यायपरम्परा अनंत है, यही कालकी अनंतता है। इसी प्रकार दूसरे प्रदेशके प्रारम्भ हुए बिना पूर्व प्रदेशका अंत नहीं हो सकता अर्थात् एक प्रदेशके बाद दूसरा प्रदेश अवश्य आता है, भलेही उसमें कोई वस्तु हो या न हो, इसलिये समयपरम्पराके समान प्रदेशपरम्परा भी अनन्त है। मतलब यह कि क्षेत्र और काल दोनोंकी अनंतता अनुमानसे जानी जाती है, न कि प्रत्यक्षसे।

अनन्त परमाणुओंका स्कन्ध तो कोई होता ही नहीं, यह बात मैं अपनी लेखमालामें ही उसी अवसर पर लिख आया हूँ, क्योंकि एक प्रदेशमें दो मूर्तिक द्रव्य नहीं बन सकते। और कोई भी स्कंध आकाशके अनंत प्रदेशोंमें व्यापक नहीं है, वह अधिकसे अधिक असंख्यप्रदेशी होता है। इसलिये उसके परमाणु भी असंख्यसे अधिक (अनंत) नहीं हो सकते। अब दो तरहके स्कंध रहे—एक संख्यात प्रदेशी, दूसरा असंख्यात प्रदेशी। ये दोनों ही ज्ञान की उस मर्यादाके भीतर हैं जो मैंने बतलाई है। इसलिये इनका चाहे प्रत्यक्ष हो या अनुमान इसमें कोई विरोध नहीं है। हाँ, इतनी बात और समझने की है कि किसी स्कंधका संख्यातप्रदेशित्व और असंख्यात प्रदेशित्व भी हम अनुमानसे ही जान सकते हैं क्योंकि परमाणु—जो कि एक प्रदेशके बराबर होता है—प्रत्यक्ष का विषय नहीं है। परमाणुका हम अनुमानही कर सकते हैं। जब परमाणु अनुमानके विषयमें है तब उनकी गिनती भी अनुमेय कहलाया। समुदायको जानने के लिये अवयवोंके ज्ञानकी आवश्यकता है परन्तु उस ज्ञानको प्रत्यक्ष ही होना चाहिये, यह नियम नहीं है। मतलब यह कि ज्ञान अनन्त पदार्थोंको नहीं जान सकता, हाँ, अनंतत्व धर्मको जान सकता है।

आक्षेप (७९)—वर्तमानका प्रत्येक पदार्थ किसी न जीवके ज्ञानका विषय है, इसी प्रकार भूत भविष्यतके भी। जीव सब समान हैं इसलिये जिसको एक जीव जानता है उसको दूसरा भी। इस प्रकार सब जीवोंके ज्ञानका विषय एक जीवके भी ज्ञानका विषय कहलाया। इसलिये प्रत्येक जीव सब पदार्थों को जाननेवाला कहलाया। जैसे, दो रेखा दो समान रेखाओंमें से यदि किसी एकके समान है तो वह दूसरीके भी समान है।

समाधान—आक्षेपककी दोनों बातें ठीक नहीं हैं। प्रत्येक पदार्थ किसी न किसीके ज्ञान का विषय है, यह कहना मिथ्या है। द्रव्य क्षेत्र काल और भावकी दृष्टिमें विश्व इतना महान् है कि उसके आगे ज्ञानकी शक्ति समुद्रके आगे बिन्दु बराबर भी नहीं है। अगर हम विश्वके सारे पदार्थोंको सब जीवोंमें बाँट दें तो भी एक जीवके हिस्से में इतने पदार्थ पड़ेंगे कि उनकी एक समयकी अवस्थाएँ वह करोड़ों जन्ममें भी न जान पायगा। फिर त्रैकालिक अवस्थाओंका तो कहनाही क्या है? हमारे शरीरमें कितने परमाणु हैं, यह हम नहीं जान सकते और इनमेंसे कितने परमाणु किस किस समयमें आये और गये और उनका क्या हुआ आदि भी नहीं जान सकते। मतलब यह कि जानते बहुत थोड़ा हैं और नहीं जानते बहुत हैं। जब मनुष्य सरीखा प्राणी सिर्फ अपनेसे सम्बन्ध रखनेवाली बातें बहुत थोड़ी

जान सकता है तब पशुपक्षी कीट पतंग आदिका तो कहना ही क्या है ? हाँ, सामान्यरूपमें हम संग्रह करते हैं जैसे सब सत् हैं इत्यादि । परन्तु यह तो एकही धर्मका ज्ञान है । अभी अनंत विशेषरूप तो बाक़ी पड़े हैं । इसलिये यह कहना अनुचित है कि प्रत्येक पदार्थ किसी न किसीके ज्ञानका विषय है । पदार्थका अस्तित्व उसकी अर्थक्रिया पर निर्भर है । वह ज्ञानका विषय न हो तो भी अपना काम करता रहता वह है । उसके अस्तित्वके लिये ज्ञानका विषय होना आवश्यक नहीं है ।

दूसरी बात भी ठीक नहीं है क्योंकि उसमें समानता और एकताके भेदको भुलाया गया है । सब जीव समान हैं न कि एक, इसलिये एक जीव जितना जान सकता है उतनाही दूसरा जान सकता है; परन्तु उतना जान सकता है न कि दोनोंका जोड़ । उदाहरणार्थ दो रेखाएँ हैं और उनमें से प्रत्येक रेखा दस दस हाथ लम्बी है । अब अगर कोई तीसरी रेखा पहिली रेखाके बराबर है तो वह दूसरी रेखा के भी बराबर कहलायगी, परन्तु वह पहिली और दूसरी दोनोंके जोड़ (१० + १०=२०) के बराबर नहीं । प्रत्येक आत्माकी ज्ञानशक्ति बराबर है अर्थात् जितना एक प्राणी जान सकता है उतनाही दूसरा भी । परन्तु जगत्के सब प्राणी जितना जान सकते हैं, उतना एक नहीं । इस प्रकार न तो सम्पूर्ण पदार्थ ज्ञानके विषय हैं और न जो सबके विषय हैं वे एकके विषय हैं । इससे सर्वज्ञता आत्माका स्वभाव नहीं कहा जा सकता ।

आक्षेप (८०)—नास्तिअवक्तव्य भंगका स्वरूप आप नहीं समझे, अथवा जानकरके भी जनता को भ्रममें डालते हैं ।

पूर्णज्ञानका विषय असंख्य है, इस बातको सिद्ध करनेके लिये न तो अभावस्वरूप हेतु है, न भाव स्वरूप । असंख्य पक्ष मान लेने पर जीव असंख्य समय तक ही ज्ञाता रह सकेगा, बादमें वह अज्ञानी हो जायगा । परन्तु ऐसा हो नहीं सकता ।

अथवा अगर सूक्ष्मताकी दृष्टिसे असंख्यातका विवेचन किया जाय तो अनंत पदार्थ आजाते हैं । क्योंकि असंख्यात अविभागी प्रतिच्छेदों तकके पदार्थ असंख्यात तरहके होसकते हैं, परन्तु वे होंगे तो अनंत ही इस प्रकार ज्ञानकी सीमा अनन्त पर ठहरती है, न कि असंख्यात पर ।

समाधान—नास्ति अवक्तव्य भंगका स्वरूप एक विद्यार्थी भी समझता है और बीसों बार मैंने भी समझाया है । न यह अप्रसिद्ध है, न कठिन । मैंने अपने 'न्याय प्रदीपमें' सप्तभंगी पर एक अध्यायही लिखा है । फिर भी आक्षेपकका इस विषयमें मुझे नासमझ बतलाना साहस ही है । शायद बहुतसे लोग विपक्षी और मूर्ख शब्दोंको पर्यायवाची समझते हैं । मैंने यहाँ धोखा भी नहीं दिया है । बात यह है कि जिसप्रकार मैं जैनधर्मकी प्रत्येक शाखामें संशोधन कर रहा हूँ, उसीप्रकार सप्तभंगीके विषयमें भी करने वाला हूँ । जैन शास्त्रोंमें सप्तभंगीका जो स्वरूप मिलता है वह विकृत है, वह मौलिक भी नहीं है । उसका मौलिक और सत्यरूप बतलानेके लिये मैं लेखमालामें लिखनेवाला हूँ । उसी समय उसका निर्णय होगा ।

पूर्णज्ञानका असंख्य विषय माननेमें भावस्वरूप हेतु है । वह यह कि एक समयमें एक आत्मा एक ही पदार्थको जानसकता है, और जीवनमें असंख्यात ही समय होते हैं, इसलिये अधिकसे अधिक वह असंख्यात पदार्थही जानसकेगा । अगर इस जीवन के संस्कार अगले जन्ममें भी माने जावें तो भी असंख्यात संस्कार ही होंगे क्योंकि अनंत जन्मके संस्कारोंका एक साथ रहना सम्भवही नहीं है । क्योंकि प्रत्येक संस्कारकी आदि होती है, इसलिये वह किसी भी निश्चित समयमें अनंतकालिक नहीं कहा जासकता ।

असंख्यात समयके बाद जीव किसीको न जान सकेगा, यह शंका असंख्यात पर बिलकुल विचार न करनेका फल है । असंख्यात तो खैर बड़ा परिमाण

है, परन्तु आत्मामें सिर्फ १०० पदार्थोंको जाननेकी शक्ति होती तो भी वह अनंतकालतक ज्ञानी बना रहता और सौकी संख्याका अतिक्रमण भी नहीं होता, क्योंकि आत्मा नयेनये पदार्थोंको जानता जाता है और पुरानोंको भूलता जाता है। अधिकसे अधिक संस्कार रूपमें वह असंख्यातका संग्रह कर सकता है। जैनशास्त्रोंमें आत्माके योगस्थान अनुभाग बन्धाध्यवसायस्थान आदि असंख्यात ही बतलाये हैं, फिर भी वे अनंत काल तक रहते हैं। असंख्यात समयके बाद उनका अंत नहीं होजाता।

सूक्ष्मताकी दृष्टिसे जो असंख्यातमें भी अनंतका समावेश किया गया है, वह भी भ्रम है। समान अविभागप्रतिच्छेद वाले बहुतसे पदार्थोंमेंसे अगर हम एकको जानलें तो उससे सबका ज्ञान नहीं हो जाता है। एक आदमीके देखलेनेसे सब आदमी नहीं दिख जाते। हाँ, मनुष्यत्व नामक धर्मका ज्ञान हो सकता है। मनुष्यत्वके प्रत्यक्षसे सब मनुष्योंका प्रत्यक्ष नहीं होजाता।

प्रकरणवश यहाँ पर ज्ञानके विषयरूप 'एक पदार्थ' का स्वरूप स्पष्ट कर दिया जाता है। एक पदार्थका अर्थ यहाँ परमाणु आदि एक द्रव्य नहीं है किन्तु एक या अनेक द्रव्योंका कोई एक धर्म है। इस दृष्टिसे अनेक द्रव्योंका भी एक पदार्थ होता है और एक द्रव्यके भी अनेक पदार्थ होते हैं। उदाहरणार्थ—हमने घड़ा देखा। घड़ेमें यद्यपि असंख्यात परमाणु हैं, फिर भी ज्ञानकी दृष्टिसे वह एक ही पदार्थ है क्योंकि घड़ेको जानते समय हमें उसके परमाणुओंका जुदा जुदा ज्ञान नहीं हो रहा है। हमें तो उन सब परमाणुओंकी जो घटरूप अवस्था हुई है सिर्फ उसका ज्ञान हुआ है; और वह एक ही पदार्थ है। इसी प्रकार सेना आदिका ज्ञान भी एक पदार्थका ज्ञान है क्योंकि अनेक सैनिकोंके विशिष्ट-समूहरूप एक ही पदार्थका ज्ञान हमें होता है। इसीप्रकार और भी अनेक उदाहरण दिये जासकते हैं। कहीं एकही द्रव्य ज्ञान विषयकी दृष्टिसे अनेक पदार्थ बनजाता है। जैसे किसीको यह ज्ञान हुआ कि मैं सुखी हूँ। दूसरे समयमें ज्ञान हुआ कि मैं ज्ञानी हूँ। फिर ज्ञान हुआ कि मैं बलवान् हूँ, आदि बीसों तरहके ज्ञान हो सकते हैं। यहाँ द्रव्य एक हो कर भी पदार्थ बीसों हैं।

समाधान करनेके लिये यद्यपि इस विवेचनकी विशेष आवश्यकता नहीं थी, फिर भी पाठकोंके सुभीतेके लिये यह स्पष्टीकरण किया गया है।

प्राचीन ग्रन्थकारोंने सर्वज्ञसिद्धिके लिये जो युक्तियाँ दी थीं उनका मैंने खण्डन किया। आचार्यों के विषयमें पूज्यभाव होनेसे मैंने उनका नाम नहीं लिया था, सिर्फ उनकी युक्तियोंका खंडन किया था। बहुतसे आचार्योंको मैं महान् और पूज्य मानता हूँ। अपनेको उनसे उपकृत भी मानता हूँ। परन्तु उनने जो गलतियाँ की हैं उनका मैं सुधार न करूँ तो यह मेरा कपूतपन होगा। मुझे याद नहीं आता कि आचार्योंके विषयमें उनकी शानके खिलाफ़ मैंने कुछ कहा हो। हाँ, उनमें कोई दोष और वस्तुनिर्णयके लिये दोष का बतलाना आवश्यक हो तो वह जरूर बतलाना पड़ता है। मेरे शब्द थे कि "प्राचीन लेखकोंने इस कल्पित सर्वज्ञत्वकी सिद्धिके लिये बहुत कोशिश की, किन्तु आत्मवञ्चनाके सिवाय इसमें कुछ नहीं है।" इसका मतलब यह हुआ कि वास्तवमें वे सर्वज्ञका मण्डन तो नहीं कर सके, किन्तु उनने झूठ मूठ ही आत्माको सन्तुष्ट किया। बड़े बड़े आचार्यों पर भी समय और अपने चारों तरफ़की परिस्थिति का प्रभाव पड़ता है। युक्तिवादी भी खोजते खोजते किसी एक बातसे आकर्षित होकर जब किसी सम्प्रदायके अङ्ग बन जाते हैं तब उनकी युक्तियाँ साम्प्रदायिक दायरेमें चक्कर काटने लगती हैं, उनका उन्मुक्त विहार नष्ट हो जाता है जैसा कि हम आचार्य विद्यानन्दीके विषयमें कह सकते हैं।

यहाँ पर आत्मवञ्चना शब्दका यह अर्थ नहीं था कि "वे आचार्य सर्वज्ञ नहीं मानते थे और उनने सर्वज्ञकी सिद्धिकी है"। यह आत्मवंचना नहीं, परवंचना

है किन्तु उसका यह अर्थ था कि साम्प्रदायिकता आदि के कारण उनके हृदय पर सर्वज्ञताकी छाप तो पड़ी थी परन्तु उसकी ठीक ठीक सिद्धि न कर सकने पर भी उनने आत्मसन्तोष कर लिया था। मीमांसक सम्प्रदायके सामना करनेके कारण इनकी युक्तियाँ कुछ प्रबल मालूम होने लगती थीं—वास्तवमें वे प्रबल नहीं थीं। उदाहरणार्थ—मीमांसक कहता है कि सर्वज्ञका साधक कोई प्रमाण नहीं है। तब जैन उत्तर देते हैं कि अनुमान प्रमाणसे सर्वज्ञ सिद्ध होता है; और अनुमान बनाते हैं कि कोई आत्मा सकल पदार्थोंका साक्षात्कार करता है क्योंकि सकल पदार्थोंका साक्षात्कार करना उसका स्वभाव है और उस स्वभाव को रोकनेवाले आवरण उसके नष्ट होते हैं (कश्चिदात्मा सकल पदार्थ साक्षात्कारी, तद्ग्रहण स्वभावत्वे सति प्रक्षीणप्रतिबन्धप्रत्ययत्वात्—प्रमेयकमलमार्तंड) जैनियोंका यह अनुमान बिलकुल कमजोर है। यहाँ पर साध्यके समान हेतु भी असिद्ध है। किसी आत्मा का सर्वज्ञ होना जैसा असिद्ध है, वैसा ही सर्वज्ञत्व आत्माका स्वभाव है, यह भी असिद्ध है। हेतुकी इस कमजोरीको दूर करनेके लिये प्रभाचन्द्रजी कहते हैं कि "यह न कहना कि सबको जानना आत्माका स्वभाव नहीं है क्योंकि ऐसा कहनेसे वेदके बलसे भी तुम किसीको सर्वज्ञ न मान सकोगे। (न तावत्सकलार्थग्रहणस्वभावत्वमात्मनोऽसिद्धं चोदनाबलान्निखिलार्थ ज्ञानोत्पत्त्यन्यथा नुपपत्तेः—प्र० क० मार्तण्ड) अगर मीमांसक वेदजन्य सर्वज्ञता न मानता होता तो यहाँ पर प्रभाचन्द्रजीका तद्ग्रहणस्वभावताके समर्थनका क्या मूल्य होता?

हाँ, आचार्योंने स्वतन्त्र युक्तियाँ भी दी हैं जिनकी आलोचना मैंने की है। पं० राजेन्द्रकुमारजी ने जो मेरी आलोचनाका विरोध किया है, उसका परिहार आगे किया जाता है।

क्या जैनधर्म नवयुगका विश्वधर्म हो सकता है ?

(लेखक—श्रीयुत हेमचन्द्रजी मोदी बम्बई)

यह क्रान्तियुग है। भगवती क्रान्ति असंख्य नर नारियोंके रक्तसे स्नान कर भीषण अट्टहास करती हुई थिरक थिरक कर नाच रही है। नवयुगका अरुणोदय नरनारियोंके अरुणरक्तके सागरकी क्षितिज पर दमक रहा है।

कलिकालका अन्त होरहा है। बस, अब सतयुग शुरू होने वाला है। कालचक्र घूम चुका है, अवसर्पिणी कालका अन्त हो चुका है। बस, अब उत्सर्पिणीकी ओर उन्मुख चक्र काँप रहा है।

पुरानी कलियुगी समाजव्यवस्था अब टिक नहीं सकती। कलियुगी विचार अब जीते नहीं रह सकते। अब लुटेरोंका युग गया, देवताओंका युग आया है। न तो खूनी, खूँख्वार अब शासक हो सकेंगे, न लोभी लुटेरे लोग ही शासक बन प्रजाको चूस सकेंगे। सरस्वतीको लक्ष्मीका गुलाम बनकर अब न रहना पड़ेगा। परिश्रमी और कार्यपटु लोग निरुद्यमी और आलसी लोगोंकी टकसालोंमें अब पुर्जोंका काम न देंगे।

देवियों, सोलहों शृङ्गार सज अक्षत चन्दनसे नवयुगके बालसूर्यकी पूजा करो और अपने स्नेहके दीपकसे आरती उतारो। अब तुम्हें हृदयहीन पुरुष जातिकी, सोने चाँदीसे खरीदी हुई असहाय गुलाम बनकर न रहना पड़ेगा। अपने हृदयके रक्तसे रंजित वैधव्य नामक महान् बेवकूफीके नामपर रोते हुए अब तुम्हें न मरना होगा। कसाइयों द्वारा हाँकी जाती हुई गायोंकी तरह तुम्हें अब इस अहसानफ़रामोश पुरुष जातिके द्वारा हाँके न जाना पड़ेगा।

कवियो, कलाकारो, वैज्ञानिको, यह नूतनयुग तुम्हारी ही सृष्टि है, तुम्हारी ही तपस्याका फल है। वह आरहा है जब कि तुम्हारे हृदयके टुकड़ोंका

मूल्य, तुम्हारी तपस्याका फल, चाँदी सोनेके कमीन टुकड़ोंकी संख्यामें गिना जाता था। प्रत्येक मनुष्यके जन्मसिद्ध अधिकार अच्छा खाना, अच्छा पहनना और अच्छी जगह रहना सम्पूर्ण मात्रामें तुम्हें मिलेगा और मिलेगा मनुष्य जातिसे उसका हृदय, उसकी भक्ति और उसकी कृतज्ञता।

सतयुगके उदय होनेका चिह्न और उसकी विशेषता है कल्पवृक्षोंका उदय। कल्पवृक्ष उदित हो चुके हैं, और बड़ी शीघ्रतासे दिन दूने रात चौगुने बढ़ रहे हैं। दुनियाँके बड़ेसे बड़े मस्तिष्क, बड़ेसे बड़े वैज्ञानिक, बड़ेसे बड़े कलाकार, बड़ेसे बड़े योद्धा अपने हृदयके रक्तसे इस कल्पवृक्षके पौधेको सींच रहे हैं।

ज्यों ज्यों कल्पवृक्षका पौधा धीरे धीरे बढ़ता जाता है, गुलामीके सभी पुराने बंधन टूटते जाते हैं। सामाजिक गुलामी, धार्मिक गुलामी, बौद्धिक गुलामी राजनैतिक गुलामियाँ अस्त होती जारही हैं और मनुष्य जाति दिनपर दिन अधिकाधिक स्वतंत्र होती जाती है। सच्चे प्रेम, सच्चे धर्म और सचाईको खुल खेलनेका अधिकाधिक क्षेत्र मिलता जाता है तथा विषयवासना और मोहका राज्य क्षीण होता जाता है। नया जन्म, नया अवतार हो रहा है।

परन्तु दीपक बुझते बुझते क्षणभरको अधिक तेज होजाता है। मोक्ष प्राप्तिके पहले मरनेका कष्ट उठाना पड़ता है। कलियुग भी अपने अन्तके पहिले अपना उग्ररूप दिखा रहा है। इसीलिए प्रेमके वेषमें वासना और मोह, धर्मके वेषमें ढोंग और सत्यके वेषमें स्वार्थ, तथा समाजसुधारके वेषमें व्यभिचार नग्न ताण्डव कर रहा है। दीन जनता पहलेके समय से अधिक पीसी जारही है। परन्तु यह सब क्षणिक है। यह क्रांतिका दोष नहीं है। यह नवयुगके अरुणोदयका दोष नहीं है। बस, यह दीपकका बुझनेसे पहले भड़क उठना है। यह नवयुगकी प्रसवपीड़ा है।

तुम पूछोगे—यह सब किस तरह होरहा है? तुम्हारे कल्पवृक्ष क्या चीज हैं? और वे किसतरह हमारी सामाजिक, नैतिक, धार्मिक परिस्थितियों और मनोवृत्तियोंमें परिवर्तन कर रहे हैं?

मैं बताऊँगा—सब बताऊँगा। जरा धीरज धरो। पहले कल्पना करो कि कल्पवृक्ष आगये हैं, उनसे जो चीज चाहें, हमें वह इच्छामात्रसे मिल सकती है। पहले तो जिस व्यक्तिकी संपत्तिमें, घरमें आँगनमें, बाड़ेमें या जमीनमें ऐसे किसी वृक्षकी उत्पत्ति हो जायगी या हो गई है, वह उसके द्वारा मालामाल होने की कोशिश करेगा। उसपर वह सख्त हथियारबन्द पहरा बिठा देगा तथा उस कल्पवृक्षसे हजारों तरहकी चीजें उत्पन्न करके वह उन्हें बाजारमें अधिकसे अधिक मूल्यमें बेचनेकी कोशिश करेगा। जो लोग अत्यन्त परिश्रम करके वैसी ही चीजें तैयार करके बाजारमें बेचने लायँगे उनसे होड़ करके उनकी चीजोंके भावको गिरा देगा तथा सभी उद्योगोंका धीरे धीरे नाश कर देगा। अन्य जिन व्यक्तियोंके यहाँपर वैसे ही कल्पवृक्ष उग आये हैं उनसे समझौता करलेगा और यदि वे न मानेंगे तो लड़ झगड़कर उन्हें मार डालनेकी और उनकी चीज हथिया लेनेकी कोशिश करेगा। हजारों मनुष्य जो पहले धन्धे रोजगारमें लगे हुए थे वे अब बेकार हो जायँगे। उनके पास न खानेको अन्न, न पहिरनेके लिए कपड़ा ही रहेगा और न खरीदनेको रुपये ही रहेंगे। बेकार आदमी इकट्ठे होकर ऐसे कल्पवृक्षके मालिकोंपर धावा बोलेंगे और लड़ झगड़कर उन वृक्षोंको हथियानेकी कोशिश करेंगे। कल्पवृक्षोंके कारण न अन्नकी कमी होगी और न वस्त्रोंकी परन्तु फिर भी करोड़ों आदमी भूखे और नंगे फिरेंगे। गरीबीके कारण भले घरकी लड़कियोंकी, शादियाँ न होंगी। भले घरके लड़के भी मारे मारे फिरेंगे। सार्वजनिक गरीबीके कारण पैसेका मूल्य बढ़ जायगा और बड़ेसे बड़े विद्वान्, महापुरुष, नेता छोटीसे छोटी रिश्वतोंसे वश किये जा सकेंगे और सत्यको छिपाया जायगा, बड़ीसे बड़ी सतियाँ अपने बच्चोंके लिए, अपने लिए और अपने पतियोंके लिए

को टुकड़े रोटियोंके लिए व्यभिचार करनेके लिए तैयार होंगी। समाजमें अनीति अनाचारका दौर दौरा हो जायगा।

बहुतसे पाठक यह समझे बगैर नहीं रहे होंगे कि कल्पवृक्षोंसे मेरा मतलब दिनपर दिन अधिकाधिक उन्नत होने वाले यन्त्रोंसे है। बिजली, भाफ आदि शक्तियोंसे चलने वाले यन्त्रोंकी शक्ति कल्पित कल्पवृक्षोंकी शक्तिसे शायद ही किसी तरह कम हो। इन यन्त्रोंने समाजमें भी करीब करीब वही परिस्थिति पैदा करदी है जो कि प्राचीन पुराणवर्णित कल्पवृक्षोंकी इस जमानेमें उत्पत्ति होनेसे हो सकती है। फिरभी अभी यन्त्रोंकी उन्नति होना रुका नहीं है। भाफके बाद बिजली और बिजलीके बाद अब वैश्विक किरणों (Cosmic Rays) का नम्बर आया है। ये किरणें वे हैं जिनसे कि विश्वकी सृष्टि और विनाश होता है। जोरोंके साथ इन किरणोंके विषयमें अनुसंधान चल रहे हैं। इन किरणोंके वशमें हो जाने पर बड़ेसे बड़े पहाड़को नष्ट भ्रष्ट करना उतना ही सहज हो जायगा जितना कि धूलको उड़ाना। असंख्य जनसंख्याका नाश क्षणभरमें किया जा सकेगा। बिना परिश्रम अत्यन्त कम खर्चमें दुनियाँके सभी कारखाने चलाये जा सकेंगे ऐसा कोई रोग नहीं है जो कि इन किरणोंसे अत्यन्त थोड़े कालमें अच्छा न किया जा सके। यह होगा मानव बुद्धिका चरम उत्कर्ष। फिर भी क्या आपको संदेह है कि ये सब शक्तियाँ कल्पवृक्षसे किसी बातमें भी कम हैं ?

हमारे समाजकी जैसी कि हालत आज है, यदि वैसी और भी अधिक दिन तक रहेगी तो क्या हालत होगी ? नये नये आविष्कारोंसे हजारों, लाखों, करोड़ों आदमी बेकार होते जायँगे। पृथ्वीपर इस समय जितना अन्न, जितनी रुई पैदा हो रही है, उससे दुनियाँमें जितने आदमी आज हैं उससे कई गुने आदमियोंका खूब अच्छी तरह गुजारा हो सकता है; परन्तु फिर भी एक चौथाई आदमियोंके पास कलके लिए खानेको नहीं है। अमेरिकामें लाखों बुशेल गेहूँ सरकारकी तरफ़से इसलिए [illegible] दिया जाता है कि जिससे अन्नका भाव बढ़े और व्यापारी उर्फ़ क़ानूनी लुटेरे कुछ कमा खाँय। दूसरी ओर करोड़ों आदमी अन्नके दाने दानेके लिए तरसते हैं।

यह स्थिति बहुत दिन तक नहीं चल सकती। शीघ्र ही परिवर्तन होगा और हो रहा है। वर्तमान शताब्दीके पैगम्बर, साम्यवादको दृढ़ नींवपर जमाने वाले महर्षि कार्लमार्क्सने आजसे करीब आधी शताब्दी पहले इस परिवर्तनकी जो रूपरेखा बाँध दी थी, उसी रूपरेखापर वह परिवर्तन हो रहा है। भगवान महावीर स्वामीने तथा अन्य सर्वज्ञ महर्षियोंने इस परिवर्तित युगकी छाया पाई थी और वे भी अपने अपने ढंगसे सत्‌युग आदि नामोंसे उस श्रेष्ठ परिस्थितिका वर्णन कर गये हैं जो कि इस परिवर्तनके संपूर्ण होनेपर आरही है।

यह परिवर्तन विभिन्न देशोंमें विभिन्न रीतियोंसे हो रहा है, परन्तु इसके मुख्य दो रूप हैं। एक तो है सीधा बलवा करना, तथा दूसरा है सिर्फ़ लोगोंमें इस तरहके विचार फैलाते जाना और घटनाओंको प्राकृतिक नियमानुसार होते रहने देना। रूस देशके साम्यवादियोंने बलवेका मार्ग ग्रहण किया तथा दूसरे देशोंके साम्यवादी दूसरा मार्ग ग्रहण कररहे हैं। पहला मार्ग जोखिमका है; परन्तु दूसरा मार्ग सुखका है किन्तु धीमा है। दूसरे मार्गसे जानेसे भी आगे पीछे छोटी मोटी क्रांति होना तो निश्चित ही है, परन्तु उस क्रांतिके तीव्र होनेकी उतनी सम्भावना नहीं है। पहले मार्गके अनुयायी पूँजीपतियोंसे जबरन् रुपया छीनकर और राज्य छीनकर किसान और मजदूरोंको सौंप देना चाहते हैं, परन्तु दूसरे पक्षके अनुयायी कहते हैं कि पूँजीपतियोंको अपनी आग से स्वयं ही जल मरने दो, हम क्यों हाथ लगायें ?

अच्छा, अब हम यह बताते हैं कि ये पूँजीपति किस तरह अपनी सुलगाई आगमें खुद जलकर मर रहे हैं।

हम कह चुके हैं कि कल्पवृक्ष रूपी यन्त्रोंके उदयसे दिनपर दिन अधिकाधिक आदमी बेकार होते जा रहे हैं और आम जनतामें दिनपर दिन अधिकाधिक दरिद्रता फैलती जाती है। इस कारण लोगों की खरीदनेकी शक्ति कम होती जारही है। खरीद-शक्ति कम होने से यन्त्रोंसे पैदा होने वाली चीजों की खपत कम होती जाती है और यन्त्रोंके चलानेका खर्च मजदूरी आदि निकलना भी कठिन होता जाता है। चीजोंकी खरीद फरोख्त कम होने से व्यापार में दिनपर दिन अधिकाधिक मन्दी आती जाती है। इन पूँजीपतियोंके खर्च इतने जबर्दस्त हैं कि वे इस मन्दीके जमानेमें धीरे धीरे उन्हें मार डालनेके लिए काफी है। सिवाय इसके, दुनियामें प्रायः सभी देशोंमें पूँजीपतियोंका ही एकच्छत्र शासन है। पार्लमेन्टमें वे ही लोग जाते हैं जिनके पीछे पूँजीपतियोंका अवलम्बन है और पूँजीपति ही उनके नामसे शासन करते हैं। एक देशसे दूसरे देशकी लड़ाई वास्तवमें एक देशके पूँजीपतियोंसे दूसरे देशके पूँजीपतियों की लड़ाई है, और एक देशका दूसरे देशपर राज्य, एक देशके पूँजीपतियोंका दूसरे देशके पूँजीपतियों पर शासन तथा दोनोंका मिलकर उस देशकी साधारण जनताको चूसनेका प्रबन्ध है। पार्लमेन्ट, मन्त्रिगण, अखबारवाले तथा सैनिक सब पूँजीपतियोंके खरीदे हुए गुलाम हैं। सामरिक युद्ध-कलाका पिछले कुछ वर्षोंमें इतना विकास हुआ है कि उनके द्वारा लाखों करोड़ों आदमियोंका विनाश इतना सहज हो गया है कि भविष्यमें यदि कभी कोई बड़ा युद्ध हुआ तो इसमें सन्देह नहीं है कि सभी पूँजीवादी राष्ट्रोंका नाश निश्चित ही है।

पूँजीवादके नाशके बाद ही नूतनयुग अपने यौवनको प्राप्त होगा। प्रायः बिना परिश्रमके ही समस्त मानवसमाजको अच्छेसे अच्छा खाना पीना रहना मिलेगा। समाजमें पैसेवालों और गरीबोंका भेद मिट जायगा। स्त्रीपुरुष अपना अधिकांश समय साहित्य, संगीत, कलाकी तथा आध्यात्मिक उन्नतिमें बितायँगे। जातिभेद वर्णभेद मिट जायँगे। अपनेसे कमजोरको खाकर अपना पोषण करनेकी मनोवृत्ति से पैदा हुए जाति और वर्णोंके भेद नष्ट हो जायँगे। स्वार्थ वासना नष्ट हो जानेके कारण उस वासनापर अवस्थित जो झूठा प्रेम है, वासना है, वह भी नष्ट हो जायगी। वैवाहिक प्रथामें आमूल परिवर्तन होगा। वासनाके सार्वजनीन प्रशान्त होनेके कारण भाई भी स्त्री पुरुष विवाहकी आवश्यकता ही नहीं समझेंगे। भाई बहिनका प्रेम ही आदर्श प्रेम समझा जायगा और भाई बहिन जन्मसे ही लेकर मृत्युपर्यन्त सदा निर्विकार प्रेमसे एक साथ रहेंगे। सन्तानकी इच्छा प्राकृतिक तौरपर देखा जाय तो जिन्दगीमें एक दो दफा ही होती है, और चूँकि उस कालके प्राणी आध्यात्मिक जीवन बितानेवाले होंगे और इस कारण उन्हें जिन्दगीमें एक आध दफा ही ऐसी इच्छा होगी, ऐसी अवस्थामें प्रायः भाई बहिनों का ही सम्बन्ध हो जायगा। फ्रॉयड प्रभृति महान मनोवैज्ञानिकोंने वर्तमानमें भाई बहिनका विवाह सम्बन्ध समाजमें प्रचलित न होने का एकमात्र कारण यही बताया है कि भाई बहिनके बीचमें अतिशय सान्निध्य और परिचितताके कारण एक दूसरेके प्रति विकार पैदा होना बहुत कठिन है। यह भी मालूम हो गया है कि ऐसे सम्बन्धमें संतान अधूरी या रोगी आदि पैदा होती है, सैकड़ों उदाहरणोंसे गलत सिद्ध हो चुका है। सच्चा और शुद्ध प्रेम तो भाई बहिनका ही हो सकता है और यह आदर्श प्रेम नवीन उत्क्रान्तिमुख युगमें ही सिद्ध होगा। जैनधर्म भी अपने आदर्श युगमें ऐसे सम्बन्धको बताकर इसकी आदर्शता सिद्ध करता है, और उसकी निर्विकारिता इस बातसे सिद्ध करता है कि ऐसे सम्बन्धमें एक ही सन्तान होती थी।

मैं लिख चुका हूँ कि यह परिवर्तन, यह क्रांति जुदे जुदे देशोंमें जुदे जुदे रूप धर कर हो रही है। कहीं तो इसका नाम कम्यूनिज्म है, कहीं फासिज्म, कहीं नेशनल सोशलिज्म और कहीं सिर्फ सोशलिज्म

है। कम्यूनिज्म और फासिज्ममें कोई विशेष अन्तर नहीं है। कम्यूनिज्मने व्यक्तिगत सम्पत्तिका नाश कर के सब सम्पत्तिको राज्यकी करार दिया है—हजारों पूँजीपतियोंको मिटाकर सिर्फ एक पूँजीपति और वह सिर्फ सरकारको बना दिया है। फासिज्मने भी यही किया है परन्तु पूँजीपतियों को सिर्फ नामके लिए रहने दिया है—कहलानेको वे पूँजीपति हैं पैसेवाले हैं, परन्तु उन्हींके पैसेपर उनका कोई अधिकार नहीं है। वे सिर्फ राज्यके हाथके खिलौने रह गये हैं। इङ्गलैण्डके बादशाहकी तरह वे कहलाने भरके लिए बादशाह हैं, धनि : हैं परन्तु संपत्ति पर अधिकार उनका कुछ भी नहीं है। पूँजीपतियोंको रहने दिया गया है परन्तु उनके हाथ पैर काट दिये हैं। इटली, और जर्मनीके बाद अब अमेरिकामें भी फासिज्म नये रूपमें प्रेसिडेन्ट रूजवेल्टकी अध्यक्षता में पैदा होगया है। इङ्गलैण्डमें भी फासिस्टोंकी बड़ी तीव्र गतिसे उन्नति हो रही है। फासिज्मकी लोकप्रियता और कम्यूनिज्मकी लोकनिन्दाका कारण यही है कि पूंजीपति लोग मरनेकी अपेक्षा हाथ पैर कटे जाना अधिक पसन्द करते हैं और जब और कहीं त्राण दीख नहीं पड़ता तब उनके अखबार फासिज्मकी तारीफ करना शुरू करते हैं। (क्रमशः)

धर्मवीर महावीर और कर्मवीर कृष्ण।

[लेखक—श्रीमान पं० सुखलालजी] (क्रमागत) [अनु०- श्रीमान पं० शोभाचन्द्रजी न्यायतीर्थ]

(५)

पुराणों और जैनग्रन्थोंमें वर्णित कृष्णके जीवन की कथाके, ऊपर जो थोड़ेसे नमूने दिये गये हैं उन्हें देखते हुए इस सम्बन्धमें शायदही यह संदेह रहे कि कृष्ण वास्तवमें वैदिक या पौराणिक पात्र हैं और जैनग्रन्थोंमें उन्हें पीछेसे स्थान मिला है। पौराणिक कृष्ण जीवनकी कथामें मार फाड़, असुर संहार और शृंगारी लीलाएँ हैं। जैन ग्रन्थकारोंने अपनी अहिंसा और त्यागकी भावनाके अनुसार उन लीलाओंको बदलकर अपने साहित्यमें एक भिन्नही रूप दिया है। यही कारण है कि पुराणोंकी भांति जैनग्रन्थोंमें न तो कंसके द्वारा बालकोंकी हत्या दिखाई देती है और न कंसके भेजे हुए उपद्रवियोंका कृष्णके द्वारा प्राणनाश ही दिखाई पड़ता है। जैसे दुर्वाराजन शाहबुद्दीनको छोड़ दिया उसी प्रकार कंसके भेजे हुए उपद्रवियोंको कृष्ण द्वारा जीते छोड़नेकी बात जैनग्रन्थोंमें पढ़नेको मिलती है। यही नहीं बल्कि सिवाय कृष्णके और सब पात्रोंके जैनदीक्षा स्वीकार करनेका वर्णन भी हम देखते हैं।

हाँ, यहाँ एक प्रश्न हो सकता है वह यह कि मूलमें बलदेव, कृष्ण आदिकी कथा जैनग्रन्थोंमें हो और बादमें वह ब्राह्मण ग्रन्थोंमें भिन्न रूपमें क्यों न ढाल दी गई हो ? परन्तु जैन आगमों तथा अन्य कथाग्रन्थोंमें कृष्ण-पाण्डव आदिका जो वर्णन किया गया है उसका स्वरूप, शैली आदिको देखते हुए इस तर्कके लिए गुंजाइश नहीं रहती। अतएव विचार करने पर यही ठीक मालूम होता है कि जब जनता में कृष्णकी पूजा प्रतिष्ठा हुई, और इस संबंधका बहुत सा साहित्य रचा गया और वह लोकप्रिय होता गया तब समयसूचक जैन लेखकोंने रामचन्द्रकी भाँति कृष्णको भी अपनालिया और पुराणगत कृष्ण-वर्णन में जैन दृष्टिसे प्रतीत होनेवाले हिंसाके विषको उतार कर उसका जैन संस्कृतिके साथ संबंध स्थापित कर दिया इससे अहिंसाकी दृष्टिसे लिखे जानेवाले कथा-साहित्यका विकास सिद्ध हुआ।

जब कृष्ण-जीवनके ऊधम और शृंगारसे परिपूर्ण प्रसंग जनतामें लोकप्रिय होते गए तब यही

प्रसंग एक ओर तो जैनसाहित्यमें परिवर्तनके साथ स्थान पाते गए और दूसरी ओर उन पराक्रमप्रधान अद्भुत प्रसंगोंका प्रभाव महावीरके जीवन-वर्णन पर होता गया, यह विशेष संभव है। इसी कारण हम देखते हैं कि कृष्णके जन्म, बालक्रीड़ा और यौवनविहार आदि प्रसंग, मनुष्य या अमनुष्य रूप असुरों द्वारा किए हुए उपद्रव एवं उत्पातोंका पुराणों में जो अस्वाभाविक वर्णन है और उन उत्पातोंका कृष्ण द्वारा किया हुआ जो अस्वाभाविक किन्तु मनोरंजक वर्णन है वही अस्वाभाविक होने पर भी जनताके मानसमें गहरा उतरा हुआ वर्णन, अहिंसा और त्यागकी भावनावाले जैनग्रन्थकारोंके हाथों योग्य संस्कार पाकर महावीरके जन्म, बालक्रीड़ा और यौवनकी साधनावस्थाके समय देवकृत विविध घटनाओंके रूपमें स्थान पाता है। पौराणिक वर्णन की विशेष अस्वाभाविकता और असंगतिको हटाने के लिए जैनग्रन्थकारोंका यह प्रयास था किन्तु महावीर जीवनमें स्थान पाए हुए पौराणिक घटनाओंके वर्णनमें कुछ अंशोंमें एक प्रकारकी अस्वाभाविकता एवं असंगति रह ही जाती है और इसका कारण तत्कालीन जनताकी रुचि है।

३—कथाग्रन्थोंके साधनोंका पृथक्करण और उनका औचित्य।

अब हम तीसरे दृष्टिबिन्दु पर आते हैं। इसमें विचारणीय यह है कि "जनतामें धर्मभावना जागृत रखने तथा सम्प्रदायका आधार मजबूत करनेके लिए उस समय कथाग्रन्थों या जीवनवृत्तान्तोंमें मुख्य रूपसे किस प्रकारके साधनोंका उपयोग किया जाता था? उन साधनोंका पृथक्करण करना और उनके औचित्यका विचार करना।"

ऊपर जो विवेचना की गई है, वह प्रारम्भमें किसी भी अतिश्रद्धालु साम्प्रदायिक भक्तको आघात पहुंचा सकती है, यह स्पष्ट है क्योंकि साधारण उपासक और भक्त जनताकी अपने पूज्य पुरुषके प्रति जो श्रद्धा होती है वह बुद्धिशोधित या तर्कपरिमार्जित नहीं होती। ऐसी जनताके खयालसे शास्त्रमें लिखा हुआ प्रत्येक अक्षर त्रैकालिक सत्यस्वरूप होता है। इसके अतिरिक्त जब उस शास्त्रको त्यागी गुरु या विद्वान् पंडित बाँचता है तब तो इस भोली जनताके मन पर शास्त्रके अक्षरार्थकी यथार्थताकी छाप वज्रलेप सरीखी होजाती है। ऐसी अवस्थामें शास्त्रीय वर्णनों की परीक्षा करनेका और परीक्षापूर्वक उसे समझाने का कार्य अत्यन्त कठिन हो जाता है, और विशिष्ट वर्गके लोगोंके गले उतरनेमें भी बहुत समय लगता है और वह बहुतसा बलिदान माँगता है। ऐसी स्थिति सिर्फ जैनसम्प्रदायकी ही नहीं किन्तु संसारमें जितने भी सम्प्रदाय हैं सबकी यही दशा है और इस बात का समर्थक इतिहास हमारे सामने मौजूद है।

यह युग विज्ञानयुग है। इसमें दैवी चमत्कार या असंगत कल्पनाएँ टिक नहीं सकतीं। अतएव इस समयके दृष्टिकोणसे प्राचीन महापुरुषोंके चमत्कारप्रधान जीवनचरितोंको पढ़ें तो उनमें बहुतसी असम्बद्धता और काल्पनिकता नजर आवे, यह स्वाभाविक है। परन्तु जिस युगमें ये वृत्तान्त लिखे गए, जिन लोगोंके लिए लिखे गए और जिस उद्देश्यसे लिखे गए, उस युगमें प्रवेश करके, लेखक और पाठकके मानसकी जाँच करके, उसके लिखनेके उद्देश्यका विचार करके, गम्भीरतापूर्वक देखें तो हमें अवश्य मालूम होगा कि इस प्राचीन या मध्ययुगमें महान् पुरुषोंके जीवनवृत्तान्त जिस ढंगसे चित्रित किए गए हैं वही ढंग उस समय उपयोगी था। आदर्श चाहे जितना उच्च हो, उसे किसी असाधारण व्यक्ति ने बुद्धि शुद्ध करके भले ही जीवनगम्य कर लिया हो, फिर भी साधारण लोग इस अति सूक्ष्म और अति उच्च आदर्शको बुद्धिगम्य नहीं कर सकते। तो भी उस आदर्शकी ओर सबकी भक्ति होती है, सब उसे चाहते हैं, पूजते हैं।

ऐसी अवस्था होनेके कारण लोगोंकी इस आदर्श सम्बन्धी भक्ति और धर्मभावनाको जागृत रखने

के लिए स्थूल मार्ग स्वीकार करना पड़ता है। जनता की मनोवृत्तिके अनुसार ही कल्पना करके उसके समक्ष यह आदर्श रखना पड़ता है। जनताका मन यदि स्थूल होनेके कारण चमत्कारप्रिय और देव-दानवोंके प्रतापकी वासना वाला हुआ तो उसके सामने सूक्ष्म और शुद्धतर आदर्शको भी चमत्कार एवं दैवी बाना पहनाकर रखा जाता है। तभी सर्वसाधारण लोग उसे सुनते हैं और तभी वह उनके गले उतरता है। यही वजह है, कि उस युगमें धर्मभावनाको जागृत रखनेके लिए उस समयके शास्त्रकारों ने मुख्य रूपसे चमत्कारों और अद्भुतताओंके वर्णन का आश्रय लिया है। इसके अतिरिक्त दूसरी बात यह है कि जब अपने पड़ौसमें प्रचलित अन्य सम्प्रदायोंमें देवताई बातों और चमत्कारी प्रसंगोंका बाजार गर्म हो तब अपने सम्प्रदायके अनुयायियों को उस ओर जानेसे रोकनेका एकही मार्ग होता है और वह यही कि अपने सम्प्रदायको टिकाए रखने के लिए वह भी विरोधी और पड़ौसी सम्प्रदायमें प्रचलित आकर्षक बातोंके समान या उससे अधिक अच्छी बातें लिखकर जनताके सामने उपस्थित करे। इस प्रकार प्राचीन और मध्ययुगमें धर्मभावनाको जागृत रखने तथा सम्प्रदायको मजबूत करने के लिए भी मुख्य रूपसे मंत्र-तंत्र, जड़ी बूटी, दैवी चमत्कार आदि असंगत प्रतीत होनेवाले साधनोंका उपयोग होता था।

गाँधीजी उपवास या अनशन करते हैं। संसार के बड़ेसे बड़े साम्राज्यके सूत्रधार व्याकुल हो उठते हैं। गाँधीजीको जेलसे मुक्त करते हैं; फिर पकड़ लेते हैं और दुबारा उपवास प्रारम्भ होने पर फिर छोड़ देते हैं। देशभर में जहाँ जहाँ गाँधीजी जाते हैं वहाँ वहाँ जनसमुद्रमें ज्वारसा उमड़ आता है। कोई उनका अत्यन्त विरोधी भी जब उनके सामने जाता है तो एकबार तो मनोमुग्ध हो गर्वगलित हो ही जाता है। यह एक वास्तविक बात है, स्वाभाविक है और मनुष्यबुद्धिगम्य है। किन्तु यदि इसी बातको कोई दैवी घटनाके रूपमें वर्णन करे तो न तो कोई बुद्धिमान् मनुष्य उसे सुनने या स्वीकार करनेको तैयार होगा और न उसका असली मूल्य जो अभी आँका जाता है, क़ायम रह सकता है। यह युगबल अर्थात् वैज्ञानिक युगका प्रभाव है। यह बल प्राचीन या मध्ययुगमें नहीं था अतएव उस समय इसी प्रकारकी स्वाभाविक घटनाको जबतक दैवी या चमत्कारिक लिबास न पहनाया जाता तबतक लोगोंमें उसका प्रचार न हो पाता था। यह दोनों युगोंका अन्तर है, इसे समझकर ही हमें प्राचीन और मध्य युगकी बातों का तथा जीवनवृत्तान्तोंका विचार करना चाहिए।

अब अन्तमें यह प्रश्न उपस्थित होता है कि शास्त्रमें उल्लिखित चमत्कारपूर्ण और दैवी घटनाओंको आज कल किस अर्थमें समझना और पढ़ना चाहिए? इसका उत्तर स्पष्ट है। वह यह कि किसी भी महान् पुरुषके जीवनमें 'शुद्ध बुद्धियुक्त पुरुषार्थ' ही सच्चा और मानने योग्य तत्त्व होता है। इस तत्त्वको जनताके समक्ष उपस्थित करनेके लिए शास्त्रकार विविध कल्पनाओंकी भी योजना करते हैं। धर्मवीर महावीर हों या कर्मवीर कृष्ण हों, किन्तु इन दोनों के जीवनमें से सीखने योग्य तत्त्व तो एकही होता है। धर्मवीर महावीरके जीवनमें यह पुरुषार्थ अन्तर्मुख होकर आत्मशोधनका मार्ग ग्रहण करता है और आत्मशोधनके समय आनेवाले आन्तरिक या बाह्य-प्राकृतिक-समस्त उपसर्गोंको यह महान् पुरुष अपने आत्मबल और दृढ़ निश्चयके द्वारा जीत लेते हैं और अपने ध्येयमें आगे बढ़ते हैं। यह विजय कोई ऐसा वैसा साधारण मनुष्य नहीं प्राप्त कर सकता, अतः इस विजयको दैवीविजय कहनेमें ज़रा भी अतिशयोक्ति नहीं है। कर्मवीर कृष्णके जीवनमें यह पुरुषार्थ बहिर्मुख होकर लोकसंग्रह और सामाजिक नियमनका रास्ता लेता है। इस ध्येयको सफल बनानेमें शत्रुओं या विरोधियोंकी ओरसे जो अड़चनें डाली जाती हैं, उन सबको कर्मवीर कृष्ण अपने धैर्य, बल तथा चतुराईसे हटाकर अपना कार्य

सिद्ध करते हैं। यह लौकिक सिद्धि साधारण जनताके लिए अलौकिक या दैवी मानी जाय तो कुछ असंभव नहीं। इस प्रकार हम इन दोनों महान् पुरुषोंके जीवनको, यदि कजई दूर करके पढ़ें तो उलटी अधिक स्वाभाविकता और संगतता नजर आती है और उनका व्यक्तित्व अधिकतर माननीय, विशेषतया इस युगमें, बन जाता है।

उपसंहार।

कर्मवीर कृष्णके सम्प्रदायके भक्तोंको धर्मवीर महावीरके आदर्शोंकी विशेषताएँ चाहे जितनी दलीलों से समझाई जाँय, किन्तु वे शायद ही पूरी तरह उन्हें समझ सकेंगे। इसी प्रकार धर्मवीर महावीरके संप्रदायके अनुयायी भी शायद ही कर्मवीर कृष्णके जीवनादर्शकी खूबियाँ समझ सकें। जब हम इस साम्प्रदायिक मनोवृत्तिको देखते है तो यह विचार करना आवश्यक हो जाता है कि क्या वास्तवमें धर्म और कर्मके आदर्शोंके बीच ऐसा कोई विरोध है जिससे एक आदर्शके अनुयायी दूसरे आदर्शको एक दम अग्राह्य करदेते है या उन्हें वह अग्राह्य प्रतीत होता है ?

विचार करनेसे मालूम होता है कि शुद्धधर्म और शुद्धकर्म, ये दोनों एक ही आचरणगत सत्यके जुदा जुदा बाजू हैं। इनमें भेद है किन्तु विरोध नहीं है।

सांसारिक प्रवृत्तियोंकी त्यागना और भोगवासनाओंसे चित्तको निवृत्त करना, तथा इसी निवृत्ति के द्वारा लोककल्याणके लिए प्रयत्न करना अर्थात् जीवन धारण के लिए आवश्यक प्रवृत्तियोंकी व्यवस्थाका भार भी लोकोंपर ही छोड़कर सिर्फ उन प्रवृत्तियोंमें के क्लेश-कलहकारक असंयम रूप विषको दूर करना, जनताके सामने अपने तमाम जीवनके द्वारा पदार्थपाठ उपस्थित करना, यही शुद्धधर्म है।

और संसार सम्बन्धी तमाम प्रवृत्तियोंमें रहते हुए भी उनमें निष्कामता या निर्लेपताका अभ्यास करके, उन प्रवृत्तियोंके सामञ्जस्य द्वारा जनताको उचित मार्गपर लेजानेका प्रयास करना अर्थात् जीवन के लिए अति आवश्यक प्रवृत्तियोंमें पग-पग पर आनेवाली अड़चनोंका निवारण करनेके लिए, जनता के समक्ष अपने समग्र जीवन द्वारा लौकिक प्रवृत्तियों का भी निर्लेप रूपसे पदार्थपाठ उपस्थित करना, यह शुद्धकर्म है।

यहाँ लोककल्याणकी वृत्ति यह एक सत्य है। उसे सिद्ध करनेके लिये जो दो मार्ग है वे एकही सत्य के धर्म और कर्मरूप दो बाजू है। सच्चे धर्ममें सिर्फ निवृत्तिही नहीं किन्तु प्रवृत्ति भी होती है सच्चे कर्म मे केवल प्रवृत्ति ही नहीं मगर निवृत्ति भी होती है। दोनोंमे दोनो ही तत्त्व विद्यमान है, फिर भी गौणता और मुख्यताका तथा प्रकृति भेदका अन्तर है। अतः इन दोनों तरीकोंसे स्व तथा परकल्याणरूप अखंड सत्यको साधा जा सकता है। ऐसा होने पर भी धर्म और कर्मके नामसे अलग अलग सम्प्रदायोंकी स्थापना क्यों हुई, यह एक रहस्य है। किन्तु यदि साम्प्रदायिक मनोवृत्तिका विश्लेषण किया जाय तो इस अनुद्घाट्य प्रतीत होनेवाले रहस्यका उद्घाटन स्वयमेव हो जाता है।

स्थूल या साधारण लोग जब किसी आदर्शकी उपासना करते है तो साधारणतया वे उस आदर्शके एकाध अंशको अथवा उसके ऊपरी खोखलेको ही चिपट कर उसीको सम्पूर्ण आदर्श मान बैठते हैं। ऐसी मनोदशाके कारण धर्मवीरके उपासक, धर्मका अर्थ अकेली निवृत्ति समझकर उसीकी उपासनामें लग गए और अपने चित्तमें प्रवृत्तिके संस्कारोंका पोषण करते हुए भी प्रवृत्ति अंशको विरोधी समझ कर अपने धर्मरूप आदर्शसे उसे जुदा रखनेकी भावना करने लगे। दूसरी ओर कर्मवीरके भक्त कर्म का अर्थ सिर्फ प्रवृत्ति करके, उसीको अपना परिपूर्ण आदर्श मान बैठे और प्रवृत्तिके साथ जुड़ने योग्य निवृत्तिके तत्त्वको एक किनारे करके प्रवृत्तिको ही कर्म समझने लगे। इस प्रकार धर्म और कर्म दोनों के उपासक एक दूसरेसे बिलकुल विपरीत आमने सामनेके किनारों पर जा बैठे। उसके पश्चात् एक

दूसरेको आदर्शको अधूरा, अव्यवहार्य अथवा हानिकारक बताने लगे। परिणाम यह हुआ कि साम्प्रदायिक मानस ऐसे विरुद्ध संस्कारोंसे गढ़ा जा चुका है कि यह बात समझना भी अब कठिन हो गया है कि धर्म और कर्म ये दोनों एकही सत्यके दो बाजू हैं। यही कारण है कि धर्मवीर महावीर और कर्मवीर कृष्णके पंथमें परस्पर विरोध, अन्यमनस्कता और उदासीनता दिखाई पड़ती है।

यदि विश्वमें सत्य एकही हो और उस सत्यकी प्राप्तिका मार्ग एकही न हो तो भिन्न भिन्न मार्गोंसे उस सत्यके समीप किस प्रकार पहुँच सकते हैं, इस बातको समझनेके लिए विरोधी और भिन्न-भिन्न दिखाई देनेवाले मार्गोंका उदार और व्यापक दृष्टिसे समन्वय करना प्रत्येक धर्मात्मा और प्रतिभाशाली पुरुषका आवश्यक कर्त्तव्य है। अनेकान्तवादकी उत्पत्ति वास्तवमें ऐसीही विश्वव्यापी भावना और दृष्टिसे हुई है तथा उसे घटाया जा सकता है।

इस जगह एक धर्मवीर और एक कर्मवीरके जीवनकी कुछ घटनाओंकी तुलना करनेके विचारमें से यदि हम धर्म और कर्मके व्यापक अर्थका विचार कर सकें तो यह चर्चा शब्दपटु पंडितोंका कोरा विवाद न बनकर राष्ट्र और विश्वकी एकतामें उपयोगी होगी। (समाप्त)

लोहड़साजन चर्चा।

खण्डेलवाल हितेच्छुके २१ वें अंकमें लोहड़साजनोंके सम्बन्धमें एक लेख चाँदमलजी काला किशनगढवालोंका, एक लेख नेमीचन्दजी बाकलीवाल कलकत्तेवालोंका और एक लेख चैनसुखजी छाबड़ा महामंत्री दिगम्बर जैन महासभा केनाममे प्रकाशित हुआ है। इन तीनोंही लेखोंमें कोई ऐसीबात नहीं लिखी गई है जो लोहड़साजन आन्दोलनके सम्बन्धमें प्रकाश डालकर इस प्रश्नको हल करने वाली कही जासके. बल्कि ये तीनोंही लेख लोहड़साजनों के सम्बन्धमें केवल झूठा भ्रम फैलानेवाले हैं। ऐसेही लेखोंसे यह मामला बहुत पेचीदा होगया है, क्योंकि इनमें मूल विषय पर विचार न कर दूसरेके व्यक्तित्वपर आक्रमण किया जाता है। भाई नेमीचन्दजी बाकलीवालका सारा लेख केवल श्रीमान् सेठ मनसुखलालजीकी निन्दा करने ही के लिए लिखा गया है, ऐसा जान पड़ता है। हितेच्छुको जब अच्छे लेख नहीं मिलते तब बेचारे को ऐसेही गाली गलौज़से भरे हुए लेखोंसे अपनी उदरपूर्त्ति करनी पड़ती है।

हम भाई नेमीचन्दजीसे यह पूछना चाहते हैं कि जब मुरादाबाद आदि कई प्रान्तोंमें लोहड़साजनोंके साथ सदासे विवाहसम्बन्ध चालू है, तब भाई रावतमलजी सेठीने लोहड़साजन कन्यासे विवाहकर कौनसा अन्याय करडाला? इससे जातिमर्यादा टूटनेकी आशंका करना तो बिल्कुल निर्मूल है क्योंकि लोहड़साजन और बड़साजनोंकी कोई भिन्न भिन्न जाति नहीं है। भाई नेमीचन्दजी 'अज्ञात कुलशीलस्य वासो देयोन कस्यचित्" अगर इसका ठीक अर्थ समझते तो अपने लेखमें कभी इसको लिखनेका कष्ट नहीं उठाते क्योंकि दोनोंही पक्षवालोंने कुल और शीलकी अच्छी तरह जाँच करही यह सम्बन्ध किया है। नहीं तो यह श्लोक आप पर भी लागू अवश्य होता क्योंकि आपके श्वसुरभी तो लोहड़साजनोंसे सम्बन्धित हैं। आपने भी सम्बन्ध करते समय कुल शील का विचार क्यों नहीं किया?

यह आपका लिखना बिल्कुल गलत है कि जयपुरके कुछ लोग ही लोहड़साजनोंके अनुकूल हैं। सारे जयपुरमें जैनोंमें सौ पचास आदमियोंको छोड़कर बाकी सबके सब लोहड़साजनोंके पक्षमें हैं। जयपुरके बड़े बड़े धनी मानी प्रतिष्ठित व्यक्ति न्यायानुकूल होनेके कारण लोहड़साजनोंके पक्षका समर्थन करते हैं। आप चाहें तो स्वयं आकर अनुभव कर सकते हैं। स्वर्गीय धर्मवीर सेठ टीकमचन्दजी साहबने यदि जयपुरके लोगोंके कहनेसे अपनी सम्मति वापसकी थी तो इसका मतलब यही था कि वे जयपुर के सम्मति देने वाले बड़े बड़े प्रतिष्ठित धर्मात्मा सज्जनों पर बहुत अधिक विश्वास करते थे। अन्यथा उक्त सेठ साहब जैसे धर्मात्मा ऐसे लोगोंकी बात कभी न मानते। इसलिये सेठ साहबकी सम्मतिका मूल्य घटानेका प्रयत्न करना एक बड़ा भारी दुःसाहस है। ९ सज्जनोंमें से २ की सम्मति नहीं आई और ७ ने बिना सोचे समझे सम्मति देडाली—इस बातको पढ़ कर किसे दुःख न होगा। अगर जैन

समाजके इन प्रतिष्ठित सज्जनोंने बिना सोचे समझे ही सम्मति देडाली अथवा सम्मति पर हस्ताक्षर कर दिये तो क्या इसप्रकारकी गलती वे किसी रुपयोंके मामलेमें भी कर सकते हैं? मनुष्यका मूल्य तो वचनोंसे है। महासभा द्वारा निर्वाचित सदस्य इसप्रकार बिना विचारे अपनी सम्मत्ति देडालें, यह तो एक उपहासास्पद बात है।

लेखकने आगे जाकर जो यह लिखा है कि सुननेमें आता है कि जयपुर में ये लोग दस्सेके नामसे प्रसिद्ध हैं सो हम आपसे पूछना चाहते हैं कि अगर आप सच्चे हैं तो कमसे कम एक दो तो ऐसे व्यक्तियोंके नाम प्रगट कीजिये कि जो दस्से होते हुए भी जयपुरमें लोहड़साजनोंके नाम से प्रसिद्ध हैं। आपके सारे लेखकी इसीसे सत्यता प्रगट हो जायगी। आशा है हितेच्छुके आगामी अंकमें उन व्यक्तियोंके नाम प्रगट करनेमें साहसपूर्वक आगे आवेंगे। लोहड़साजनोंका कच्चे पक्के भोजनका व्यवहार तो सर्वत्र चालू है ही, इसके अतिरिक्त अनेक प्रान्तोंमें बेटीव्यवहार भी चालू है। दुःख है कि बार बार इन्हीं बातोंको दोहराना पड़ता है। १४७ सम्बन्धोंको आपने भानमतीका कुनबा जोड़ना बतलाया है सो आपकी बुद्धिकी बलिहारी है। शायद आपकी विचित्र दृष्टिमें सर सेठ साहब आदि भानमतीका कुनबा ही होगा! इस छोटे मुँह बड़ी बात से आपके बड़प्पनका अन्दाज़ा लगजाता है।

आपने जो यह लिखा है कि पुस्तककी सम्मतियाँ जगह जगह जाकर लोगोंको उल्टा सीधा समझा कर लिखाई गई हैं, सो इस तरहकी बे सिर पैरकी बातोंका कई बार जवाब दिया जाचुका है। फिरभी न जाने आप लोग ऐसी बातोंको बार बार क्यों दोहराया करते हैं? इन सम्मतियोंमें एकभी ऐसी सम्मति नहीं है जो ज़बरदस्ती लिखाई गई हो। जिस आगाने वैवाहिक सम्बन्धोंका संग्रह किया है उनके सम्बन्धमें भी कईबार जवाब दिया जाचुका है। सेठ साहब हुकमचन्दजीके सुपुत्र हीरालालजीका लोहड़साजनोंसे सम्बन्ध हुए ८६ वर्ष होगये सो आपके ऐसा लिखनेका रहस्य हमारे समझमें नहीं आया। चाहे कितने ही वर्ष क्यों न होजावें किन्तु हीरालालजी साहब का सम्बन्ध तो लोहड़साजनों से क्याही रहेगा? व गुलाबचन्दजी पाटणीके उस लेखका जवाब सयुक्तिक दिया जाचुका है जिसमें उन्होंने यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि मेरा लोहड़साजनोंसे सम्बन्ध नहीं है। श्रीमान् हीरालाल जी साहब के सम्बन्ध की बाबत जो आपने यह लिखा है कि ऊपर तो परमेश्वरदासजी लिखा है और नीचे अंग्रेज़ीमें दस्तखत किये हैं उसमें लिखा है परमेष्ठीदास, सो विचार करें परमेश्वरदास और परमेष्ठीदासमें कितना अन्तर है। इस पर हमारा पाठकोंसे यही निवेदन है कि वे बाकलीवालजीकी इस युक्ति पर अवश्य विचार करें। अगर ऊपरवाले नाममें परमेष्ठीदासकी जगह परमेश्वरदास छपगया तो इसमें कौनसा अनर्थ होगया? यह तो छापेकी गलती है, पर लोहड़साजन विरोधियोंके लिए तो इतनीसी छापेकी गलती ही एक बड़ाभारी हथियार है। आश्चर्य है कि आप इसी युक्तिके बलपर लोहड़साजन निर्णयका खण्डन करनेको तैयार होगये!

आपको जो लोहड़साजन निर्णयमें लोहड़साजनोंसे सम्बन्धित लिखा गया है वह बिलकुल सही है। उसे कोई भी गलत साबित नहीं कर सकता। किसीके सुनने सुनाने पर हवाई महल खड़ा नहीं किया गया है किन्तु दृढ प्रमाणोंके आधारसे लिखा गया है। आपके ससुर श्रीमान शंकरलालजीके पुत्र विष्णुकान्तजीका जो आपने पत्र उद्धृत किया है उससे तो हमारे वक्तव्यका ही समर्थन होता है क्योंकि उस पत्रमें कहीं भी यह नहीं लिखा है कि हमारा लोहड़साजनोंसे सम्बन्ध नहीं है। बल्कि लोहड़साजन निर्णयमें जो उनकी सम्मति छपी है उससे आपके पत्रका कोई मूल्य नहीं रह जाता। पाठकोंकी जानकारीके लिए हम वैद्यजीकी सम्मतिको ज्योंकी त्यों उद्धृत करदेते हैं—

"श्रीमान् पण्डित कन्हैयालालजी महोदय, सादर जयजिनेन्द्र। हम लोहड़साजन बड़साजनमें कोई भेद नहीं समझते। हमारे यहाँ उक्त दोनोंमें बराबर रोटी बेटीका व्यवहार चालू है। लोहड़साजन और बड़साजनोंमें भेद मानना निरी भूल है। मेरा स्वयं भी लोहड़साजनोंसे सम्बन्ध है, और सुजानगढ निवासी बड़साजन पण्डित पन्नालालजी बाकलीवाल मेरे सम्बन्धी हैं। इसलिए यह विषय निर्विवाद है। शंकरलाल वैद्य सम्पादक 'वैद्य', गोत्र बज पता 'वैद्य' आफिस मुरादाबाद २१-६ ३१."

आपकी सम्मति पर जो पंडित इन्द्रलालजी शास्त्रीने नोट लगाया है उसमें तो उन्हीं पुरानी बातोंको दोहराया गया है जिनका जवाब जैनजगत्‌में पचासोंबार दिया जाचुका है। हमारी समझमें नहीं आता कि उन्हीं बातोंको बार बार दोहरानेसे क्या लाभ है?

इस बाकलीवालजीके समान ही भाई चाँदमलजी कालाका लेखभी बिल्कुल प्रमाणहीन है। उन्होंने लिखा है कि लोहड़साजनोंमें कोई ऐसा दोष है जिससे यह नाम पड़ा; किन्तु कालाजीको विवेकसे काम लेना चाहिये और समझना चाहिये कि यह नाम किसी दोषके कारण नहीं पड़ा, किन्तु छोटी गोट होनेसे यह नाम पड़ा है। कालाजीके जिन महानुभावने लोहड़साजनोंको सदोष बताया है उनको ऐतिहासिक प्रमाणोंसे यह भी पूछना चाहिये कि वे सदोष क्यों है? अन्यथा उनका ऐसा कहना कोई महत्व नहीं रखता। ऐसे तो कोई आपको भी सदोष कह सकता है। लोहड़शून्या रुपयामें भी लोहड़ शब्दका अर्थ छोटा ही है। संसारके किसी भी कोषमें लोहड़ शब्दका अर्थ सदोष नहीं होता है। यदि कोई विद्वान् लोहड़का अर्थ सदोष सिद्ध करदे तो हम इस आन्दोलनसे अपना मुँह मोड़ लेंगे। "जाओ लोहड़ीबहूको बुला लाओ" इसमें क्या लोहड़ शब्दका अर्थ सदोष होता है? आप लोगोंकी विचित्र बुद्धि पर हमें बहुत अफसोस होता है कि बिना सोचे समझे चाहे जिस विषय पर कलम उठानेको तैयार हो जाते हैं।

मुनिभक्त होनेका यश लूटनेके लिए जो आपने मुनि चन्द्रसागरजीको लोहड़साजन आन्दोलनके नेतृत्वके लांछनसे अलग करना चाहा है, यह भी जान बूझकर सत्य पर पर्दा डाला है। जब वे मुनि महाराज जगह जगह लोहड़साजनोंके साथ खानपानादिका त्याग कराकर आहार लेरहे हैं तब यह कैसे कहा जासकता है कि वे इसके प्रवर्तक नहीं है? गोचरीके वक्त ऐसी प्रतिज्ञा दिलाना आचार शास्त्रके बिल्कुल विरुद्ध है। लोहड़साजनोंको जो आपने यह उपदेश देनेकी कृपाकी है कि आप पहले न्याय के लिए लड़िये सो महाराज लोहड़साजन न्यायहीके लिए लड़ रहे हैं, पर आप तो पक्षपातके वशीभूत होकर इस न्याय रक्षार्थ आन्दोलनको अन्याय बतला रहे हैं, और उल्टे चोर कोतवालको दंड देवे वाली कहावतको चरितार्थ कर रहे हैं। लोहड़साजन, समाजमें कलहाग्नि प्रज्वलित नहीं कर रहे हैं किन्तु इस कलहाग्निके जिम्मेवार वे लोग हैं जो लोहड़साजनोंके न्यायोचित धार्मिक और लौकिक अधिकारोंको छीननेका अनुचित प्रयत्न कररहे हैं। उन लोगोंको अवश्यही तीव्र पापका बन्ध होगा जो जानबूझ कर ऐसी निंद्य चेष्टा कररहे है।

दिगम्बर जैन महासभाके महामन्त्री महोदयने जो बैनाड़ाजी महोदयकी पीठ ठोकते हुए उनकी सूचनाको अधिकृत और उचित बतलाया है उसके लिए हमारा इतना ही उत्तर पर्याप्त है कि जो महासभा खण्डेवाल समाजके कल्याणार्थ स्थापित हुई थी उसके कार्यकर्ता स्वार्थवश पक्षपाती बनकर न्यायान्यायका कुछ भी खयाल नहीं करते। महासभाका कोई कार्य नियमानुकूल और व्यवस्थित नहीं है। यह सारे खण्डेलवाल समाजकी सभा न होकर केवल दस बीस व्यक्तियोंके घरकी सभा है। इसके सिवाय महामन्त्रीजीकी आज्ञा इसलिये भी अनधिकार चर्चा है कि जब तक स्थानीय पंचायती इस सम्बन्धमें कुछ भी न करले तब तक उनको आगे बढ़नेकी कोई जरूरत नहीं थी। इस सम्बन्धमें स्थानीय पंचायती तो बिल्कुल मौन है, और महामन्त्रीजीने यह नादिरशाही फरमान निकाल दिया है। सचमुचही उनको ऐसा करने का कोई अधिकार नहीं था।

अन्तमें नाम मात्रकी खण्डेलवाल महासभाके कार्यकर्ताओंको और खण्डेलवाल जैन समाजके अन्य धर्मीमानी विद्वान सज्जनोंसे हमारा नम्र निवेदन है कि वे इस मामलेमें जल्दबाजी न कर विवेकसे काम करें, अन्यथा इसका नतीजा अच्छा न होगा।　　घासीलाल जैन.

[पृष्ठ २ से आगे]

अपने किसी भक्तको भेजकर पुलिसमें रिपोर्ट करादी कि तीनहजार रुपया चोरी गया है। पुलिस ने आकर रातको १२ बजे तक तहकीकात की और ये मुनिवेषी इतनी राततक अपने अपने बयान लिखाते रहे। बादमें करीब एक बजे रातका सब सामान व उक्त बाई को हिरासतमें लेकर जब पुलिस जाने लगी तो मुनीन्द्रसागरने जिनमती बाईको पुकार कहा-मुझे दवाई तो देती जा। लेकिन पुलिसने उसे वापिस नहीं आने दिया और अपने साथ लेगई। बादमें मुनिवेषी देवेन्द्रसागर लालटैन लेकर छतसे नीचे उतरकर आये और लोगोंसे पूछने लगे-क्या बाई पुलिसके साथ चली गई? पुलिस तहकीकात जारी है।

अंतिम समाचार यह है कि ता० ३ अगस्तको मुनीन्द्रसागर अपनी मंडली सहित तांगोंमें बैठकर जैन धर्मशालासे चलदिये और स्टेशनके पासकी सरायमें जाकर ठहरे हैं।　　—संवाददाता।

सुधर्मसागरजी के उद्गार।

"मैंने तेरहपंथ व बाबूपार्टी के नाश करनेके लिये तथा चर्चासागर के माफ़िक अमल करानेके लिये ही मुनिवेष धारण किया है !"

"शास्त्र हमारी जबान में है !"

श्री शांतिसागर संघका चातुर्मास उदयपुरके पास आयड़ ग्राममें हो रहा है। वैसे कहनेको इस मंडलीके प्रमुख व आचार्य श्री शान्तिसागरजी कहे जाते हैं, परन्तु वास्तवमें इसके सर्वेसर्वा सुधर्मसागरजी उर्फ़ पंडित नंदनलालजी हैं। शांतिसागरजी में इतना साहस नहीं कि वे सुधर्मसागरजीकी किसी अनुचित कार्यवाही को रोक सकें। शांतिसागरजी गुरु कहानेपर भी इनके हाथकी कठपुतली बने हुए हैं।

मिती आषाढ़ शुक्ला ६ को प्रातःकाल करीब साढ़े सात बजे सुधर्मसागरजी व क्षुल्लकोंको छोड़ कर बाकी सब मंडली खण्डेलवालोंके मन्दिरमें दर्शनार्थ गई। उस समय प्रतिमाजी पर फूल केसर आदि चढ़े हुए नहीं थे। सबने शांतिपूर्वक दर्शन किये। इसके बाद करीब ९ बजे सुधर्मसागरजी अपनी क्षुल्लक मंडलीको लेकर उसी मंदिरमें पहुँचे और अपने कुछ भक्तोंको आग्रह कर उनसे पंचामृताभिषेक कराया, प्रतिमाजी पर इत्रका लेप कराया, प्रतिमाजीके घुटनों तक चंदनका लेप कराया, अंग अंगमें फूल चढ़ाये, तथा सुरागायके बालके चँवर प्रतिमाजी पर ढुलवाये। जब कुछ खंडेलवाल भाइयों ने इसका विरोध किया तो सुधर्मसागरजी बोले— "मैंने तेरहपंथ व बाबूपार्टीका नाश करनेके लिये तथा चर्चासागरके माफ़िक अमल करानेके लिये ही मुनिवेष धारण किया है!" शांतिसागरजीसे इस घटनाके सम्बन्धमें कहा गया तो उन्होंने कुछ ध्यान नहीं दिया। सुधर्मसागरजीसे अपने इस दुराग्रहके समर्थनमें शास्त्र प्रमाण पूछा गया तो वे कहने लगे— शास्त्र हमारी जबानमें है!

मिती सावनबदी ५ को आयड़में सुधर्मसागरजी ने श्री जिनप्रतिमाका अभिषेक बड़ही विचित्र ढंगसे कराया। अभिषेक श्रीमान् भैरूँलालजी गोधा व उनकी धर्मपत्नीने मिलकर कियाथा। इसके उपलक्ष में सुधर्मसागरजीने इन्हें इन्द्र व इन्द्रानीके पद प्रदान किये। भैरूँलालजी अपने घरसे खाजा, आटेकी पूरी, बेसनकी बर्फी, खीर आदि पदार्थ तैयार कर लेगये थे। मालूम हुवा है कि दूध एक तेलीके यहाँ से लाया गयाथा। इसके अतिरिक्त तीन टोकरी फूल व बहुत से अमरूद, सेव, नारंगी, नींबू आदि भी लेजाये गयेथे। प्रतिमाजीको वेदीमें से बाहिर विराजमान कर उनके चारों ओर सुरागायके केसके चँवर लटकाये गये तथा वैही चँवर प्रतिमाजी पर ढोले गये। श्रीपद्मसागरजी आदिसागरजीके अतिरिक्त पूरी मंडली मौजूद थी। जल से अभिषेक करनेके पश्चात् प्रतिमाजी पर चन्दन का लेप किया गया तथा बाद में अनारका रस, नींबूका रस, घी, शक्कर, दूध, खीर वगैरह शामिल कर क़रीब आधा मन रस बनाकर उससे उपरोक्त इंद्र व इंद्रानीने अभिषेक किया। यहाँ एक बात खास तौरसे उल्लेख करनेकी है। महादेवजीपर जलधारा देनेके समान जिनप्रतिमाजीके मस्तक पर एक चलनी लटकाकर उसमें पंचामृत डालकर चलनीमेंसे गिरती हुई बूँदोंसे प्रतिमाजी का अभिषेक किया गया था। अभिषेकके पश्चात् फिर केशर चढ़ाई गई तथा फूल इतनी अधिक मात्रामें चढ़ाये गये कि प्रतिमाजी फूलोंमें सराबोर थी—केवल मुँह बाहिर नजर आता था। फिर प्रतिमाजीके आगे पूरी, खाजा, व बरफी वगैरा परोसी गई। पंचामृतका गंधोदक मंदिरके पिछवाड़े वाली एक कूँडीमें डाल दिया गया किंतु वह उसमें न समा सकनेके कारण बाहिर बह निकला, इस कारण वहाँ हजारों कीड़े मकोड़े, मक्खियें आदि इकट्ठे हो गये और उनमेंसे बहुतसे वहीं मरगये। सुधर्मसागरजीकी जब इस हिंसाकांडका जिकर किया तो वे तमककर बोले—हमारी तरफ़से लाखों कीड़े मर जावें, हम क्या करें! हम इसकी फ़िकर नहीं करते।

श्री शान्तिसागरजीसे इस सकल कार्यवाही की धार्मिकताके विषयमें पूछा गया तो उन्होंने केवल यह कहकर कि जैसे जिसके भाव होते हैं, वे वैसा ही करते हैं, चुप्पी साधली।　　—संवाददाता।

Printed by Pt. Radhaballabh Sharma, at the Ajmer Printing Works, Ajmer.

तार का पता—"JAINJAGAT" Ajmer   Reg: No. N 352.

वर्ष ६   ता० १६ सितम्बर   सन् १९३४   अंक २१

जैनसमाज का एकमात्र स्वतन्त्र पाक्षिकपत्र।

जैन जगत्

वार्षिक मूल्य ३) रुपया मात्र।

विद्यार्थियों व संस्थाओं से २॥) मात्र।

(प्रत्येक अंग्रेजी महीने की पहली और सोलहवीं तारीखको प्रकाशित होता है)

"पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनम् यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः॥"—श्री हरिभद्रसूरि।

सम्पादक—सा०र० दरबारीलाल न्यायतीर्थ, जुबिलीबाग तारदेव, बम्बई।   प्रकाशक—फतहचंद सेठी, अजमेर।

प्राप्ति स्वीकार।

श्रीमान वैद्यरत्न पं० कन्हैयालालजी जैन कानपुर ने २५) तथा श्री० कस्तूरचन्दजी वैद्य आकोलाने ५) जैनजगत्की सहायतार्थ प्रदान किये हैं, एतदर्थ धन्यवाद! —प्रकाशक।

मुनींद्रसागर-चर्चा।

मुनींद्रसागर, विजयसागर व देवेन्द्रसागरने लंगोटियाँ पहिनलीं!

दमोह जैनधर्मशालामेंसे निकाले जानेके पश्चात् मुनींद्रसागर मंडली स्टेशनके पासकी सरायमें जा कर ठहरी। उस दिन जब मैं सरायमें गया तब माणिकबाई (जिनमती) मुनियोंके लिये भोजन बना रही थी, ... कोठरीमें मुनींद्रसागर एक चटाई पर, दूसरी चटाई ओढ़े हुए लेटा था। विजयसागर हिन्दीकी पहली पुस्तक पढ़ रहा था। मेरे पहुँचने पर वह मुसाफिरोंको मुनिनिंदक बताकर तरह तरहके शाप देने लगा। बोला—भगवान् सब की सुनते हैं, इन लोगोंका सत्यानाश हो जायगा! देखो, अजमेरका फतहचन्द सेठी मुनिनिंदा करता था, उसके फलसे उसकी दोनों आँखें फूट गई! एक अजैनसज्जन इन्हें रखनेके लिये सरायमें गये तो मुनींद्रसागर गिड़गिड़ा कर कहने लगा—भैया, हमारी मदद करो, हम तुम्हें अच्छा आशीर्वाद देंगे!

देवेन्द्रसागर जातिका तेली बताया जाता है। इसे एक दिन लोगोंने स्टोव (विलायती चूल्हा) पर भजिया बनाते देखा था! रातको ये लोग अक्सर खाया करते हैं!

ता० ७ सितम्बरको मुनींद्रसागर, विजयसागर, और देवेन्द्रसागर तथा माणिकबाई और एक बुढ़िया, (जो मुनींद्रसागरकी नानी बताई जाती है) इसतरह पाँच आदमी मोटर लारीमें बैठकर दमोहसे जबलपुर चलदिये। सरायसे मुनींद्रसागर ताँगेमें बैठकर और शेष लोग पैदल चलकर मोटर स्टैंड तक आये थे। मुनींद्रसागरके पाससे जो नकद व जेवर बरामद हुआ था वह पहिले श्रीमान् सेठ गुलाबचन्दजीके पास जमा करा दिया था। बादमें उसे पुलीस लेगई, परन्तु वह वापिस गुलाबचंदजीको लौटा दिया गया। उस द्रव्यको लेनेके लिये ता० ९ सितम्बरकी रातको माणिकबाई लौटकर फिर दमोह आई थी। रुपया वापिस इन लोगोंको देना या नहीं, इस विषय पर समाजमें मतभेद है। कुछ लोगोंका कहना है कि मुनींद्रसागर व माणिकबाईसे रसीद लिखवाकर

रुपया दे दिया जाना चाहिये, किन्तु अधिकांश समाजकी यह राय है कि भोले भाले स्त्री-पुरुषोंको ठग कर मुनींद्रसागरने यह रुपया इकट्ठा किया है इसलिये यह रुपया वापिस उसे कदापि नहीं दिया जाना चाहिये। जबलपुरसे सूचना मिली है कि वहाँके लोगोंके कहनेसे मुनींद्रसागर विजयसागर व देवेन्द्रसागरने लँगोटियाँ पहिनली हैं। माणिकबाई से पूछा गया तो उसने भी इस समाचारकी सत्यता स्वीकार की।

मुनींद्रसागर और माणिकबाई दोनों अफीम खाते हैं। तलाशीमें इनके पाससे अफीम बरामद भी हुई थी। ता० ७ सितम्बरको मेरे समक्षही माणिकबाईने अफीमकी दूकानसे आठ आनेभर अफीम खरीदी थी।

मुनींद्रसागर बहुत बीमार है। डॉक्टरोंकी रायमें "लीवरएब्सिस" है। कोई कोई पेटमें फोड़ा बतलाते हैं।

मुनींद्रसागर मंडलीके एक मुनिवेषी सदस्य सिद्धान्तसागर दमोहमें ही रह गये हैं और जैनधर्मशालामें ठहरे हैं। ये जातिके सेतवाल हैं। ये कुछ सरलपरिणामी हैं और लोगोंकी बात मान लेते हैं, इसलिये इन्हें बस्तीमें आहार मिल जाता है। कुछ लोग इनके भक्त भी हैं, किन्तु शायद उन्हें यह मालूम नहीं कि इनकी जातिमें विधवाविवाह होता है और तलाकका रिवाज भी जारी है। ये अभी ५-६ महीने पहिले ही दीक्षित हुए हैं। —संवाददाता।
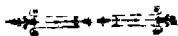
श्री जिनप्रतिमाके भोग लगाया गया!

उदयपुरमें श्री शांतिसागर संघकी कृपासे आजकल पंचामृताभिषेककी बाढ़सी आ रही है। प्रायः हर दूसरे तीसरे रोज पंचामृताभिषेक हुआ करता है। ता० ४ सितम्बरको इन्द्रमलजी बड़जात्या (सोंगानेरिया) ने सकुटुम्ब अभिषेक किया। विशेषता यह रही कि प्रतिमाजीके मुँहमें मिश्रीका टुकड़ा ठूँसा गया! कलिकाल सर्वज्ञ श्री शांतिसागरजीकी छत्रछायामें सुधर्मसागरजी जो जो अधर्म न करें सो थोड़ा है। —संवाददाता।

शास्त्रीजीकी उद्दंडता—इसदिन स्थानीय तेरहपंथी धड़ेके मन्दिरमें सायंकालकी शास्त्रसभामें अकारण वितण्डावाद खड़ाकर दिया गया। श्री पद्मपुराणजीका वाचन हो रहा था। वक्ता महाशय श्री० पं० बनारसीदासजी शास्त्रीने फ़रमाया कि श्री पद्मपुराणजीमें श्री नेमिनाथ स्वामी का जन्मस्थान द्वारका लिखा है, किन्तु अमुक आचार्य महाराजने सौरीपुर लिखा है। इसपर एक युवकने सरलभाव से पूछा कि दो आचार्योंके कथनमें भिन्नता क्यों है? तथा कौनसा कथन सत्य है? शास्त्रीजीने उत्तर दिया कि दोनों कथन सत्य हैं। युवकने कहा-दो परस्पर विरोधी कथन कैसे सत्य हो सकते हैं? उनमें से एक अवश्य ही असत्य होना चाहिये। पण्डितजी इसका कोई सन्तोषजनक उत्तर न दे कर टालमटूल करने लगे: बोले—तुम्हें धवलसिद्धान्तमें श्रद्धा है या नहीं? युवकने कहा— मेरे प्रश्नसे इसका क्या सम्बन्ध है? बात यह थी कि शास्त्रीजी केवल अंधश्रद्धाके ढोंगे से इस परस्परविरुद्ध कथनको उनके गले उतारना चाहते थे जिसके लिये युवक महाशय तैयार न थे। आखिर जब और कुछ न बन पड़ा तो शास्त्रीजी खिसिया कर कहने लगे—जो लोग कुतर्क कर धर्म पर आघात करते हैं, जो निकटभव्य नहीं हैं जिनकी आगमपर श्रद्धा नहीं है, उनकी जिह्वा गल जायगी! युवकने कहा—इस तरह अनर्गल प्रलाप व व्यक्तिगत आक्षेपसे क्या लाभ है? इस पर शास्त्रीजीका धार्मिक जोश और अधिक उमड़ पड़ा और वे हुंकार कर बोले—तुम मेरे परम शत्रु हो! मैं तुम पर अवश्य आक्षेप करूँगा! सभामें बैठे हुए और श्रद्धालु निकटभव्यों(?)ने भी युवकको दबानेकी चेष्टा की। एक अत्यन्त मामूली शङ्कापर शास्त्रीजीका पर्युषण पर्वमें इस प्रकार बिगड़ उठना उनके हृदयकी ही नहीं किन्तु विद्वत्ताकी भी गहराई को सूचित करता है। वे इस अकाण्डताण्डवसे अपने आश्रयदाता सेठजीको भले ही खुश कर सके हों, परन्तु धर्म की रक्षा करनेमें वे बुरीतरह विफल हुए। उनकी उद्दंडता से उक्त युवककी ही नहीं, किन्तु और भी अनेक विचारशील व्यक्तियोंकी श्रद्धाको ठेस लगी। वे इस आशङ्कासे कि जब इस धड़ेके व्यक्तिके साथ भी यहाँ इस प्रकार दुर्व्यवहार होता है तो दूसरे व्यक्तिके साथ तो शायद शास्त्रीजीकी शत्रुता वचनरूपसे कर्मरूपमें परिवर्तित होजाय, चुपके बैठे रहे, परन्तु उनका हृदय इस धार्मिक नादिरशाही के प्रति विद्रोह कर रहा था। —एक दर्शक।

सत्यशोधक समाज।

मनुष्य जैसे बालक, युवा और वृद्ध होकर अन्त में मरजाता है उसी प्रकार सम्प्रदाय भी पैदा होते हैं, बढ़ते हैं, जीर्ण होते हैं और अन्तमें निष्प्राण हो जाते हैं। परन्तु निष्प्राण होने पर मनुष्यका शरीर तो जला दिया जाता है जब कि सम्प्रदायोंका शरीर नहीं जलाया जाता। फल यह होता है कि वे सड़ते हैं, दुर्गंध देते हैं, लोगोंके स्वास्थ्यको बर्बाद करते हैं।

जैन, बौद्ध, वैदिक, ईसाई इस्लाम आदि जितने सम्प्रदाय हैं सबकी आज यही दशा है। अपने अपने समयमें इन सबने अच्छा काम किया है इसलिये इनकी तथा इनके प्रवर्तकोंकी पूजा और प्रशंसा की जाना चाहिये परन्तु इसीलिये यह नहीं कहा जा सकता कि आज वे जीवित हैं। इतने लम्बे समयके बाद उनका जीवित रहना सम्भव नहीं है। हाँ, उनका पुनर्जन्म सम्भव है।

परन्तु मूढ़ समाज आज उन्हींके मृतक शरीरसे चिपटा हुआ है, मानो उसके लिये उनके प्राणोंका कुछ भी मूल्य नहीं है, शरीरका ही मूल्य है। फल यह हुआ है कि धर्म, जिस उद्देश्यसे आये थे वह उद्देश्य ही नष्ट होरहा है।

कोई भी धर्म जब अवतार लेता है, तब उसका प्रधान अवलम्बन विज्ञान और सत्य होता है। जन-समाजमें जो खराबसे खराब और असत्यसे असत्य मान्यताएँ होती हैं उनका वह विरोध करता है, और प्रचलित रूढ़ियोंसे कम खराब रूढ़ियों, प्रचलित असत्योंसे कम असत्य या सत्यके निकटतर रहनेवाले असत्यका प्रचार करता है। मुहम्मद साहिबने इसीलिये मनुष्यवधके स्थान पर पशुवधको चुना, बहुत से कल्पित देवीदेवताओंके स्थान पर एक खुदाकी कल्पना की। वैदिकोंने इसीलिये उत्तरदायित्वशून्य और व्यवस्थानाशक लोगोंको ठिकाने लगानेके लिये वर्णव्यवस्था तथा आश्रमव्यवस्थाकी रचना की। परलोकके नामपर होनेवाले अनर्थोंके कारण नास्तिकोंने उसका निषेध कर दिया, और इसीलिये महात्मा बुद्धने इसपर उपेक्षा की। महात्मा महावीरने भी परलोक अनियमित रूपको एक नियमपूर्ण कल्पनासे सुशृंखलित बनाया। इन सबने वैज्ञानिक युक्तियोंका भरपूर उपयोग किया था। इसीसे वे विजयी बने थे।

धर्मोंके इस प्राणको उनके अनुयायी बुरी तरह भूले हुए हैं। जिस तरहकी विचारस्वतन्त्रता, निःपक्षता और वैज्ञानिक निरीक्षण की दुहाई देकर इन महात्माओंने जगत्को सत्यके निकटतर पहुँचाया था, उसी विचारस्वतन्त्रता, निःपक्षता और वैज्ञानिकता को ये लोग बड़ाभारी दोष समझते हैं। आज एक वैज्ञानिक जो आविष्कार करता है, उसका अनुयायी दूसरा वैज्ञानिक उसमें सुधार करता है; इसीलिये वैज्ञानिक जगत्में बड़ी द्रुतगतिसे उन्नति होरही है। प्रत्येक विषयकी उन्नतिका यही बीज है। परन्तु धर्मके क्षेत्रमें लोग इससे उलटे ही जाते हैं; इतनाही नहीं किन्तु उलटे जानेमें वे अपना महत्त्व समझते हैं। इसीलिये धर्मोंके क्षेत्रमें उन्नति नहीं हो पाती—धर्मशास्त्रोंमें सदा अवसर्पिणी—अवनतिशीलताका ही राग आलापा जाता है।

फल यह हुआ है कि एक तरफ तो अन्धविश्वास (मिथ्यात्व) और उससे अविनाभावसम्बन्ध रखने

वाली अनन्त ईर्ष्या,घृणा,द्वेष आदि (अनन्तानुबन्धी कषाय) के फेरमें पड़े लोग समाज और राष्ट्रका हर तरह नाश कर रहे हैं, दूसरी तरफ कुछ लोग धर्म मात्रसे घृणा करने लगे हैं। सम्प्रदायसे घृणाके कारण वे धर्मको ही छोड़ रहे हैं। इन दोनोंकी दशा अवश्य चिन्तनीय है। इसलिये यह अत्यावश्यक है कि धर्मकी प्रतिष्ठा विश्वासपर नहीं, विज्ञानपर की जाय। पहिलेके महात्माओंने भी विज्ञानपर धर्मकी प्रतिष्ठा की थी, परन्तु इन हजारों वर्षोंमें, खासकर सौ वर्षोंमें, विज्ञानने प्रत्येक शाखामें जबर्दस्त क्रान्ति कर दी है। इसलिये जिस प्रकार उस समयके वैज्ञानिक सत्योंको धर्मोंने तब अपनाया था, इसीप्रकार इस समयके वैज्ञानिक सत्योंको अब अपनाना चाहिये और भविष्यमें जो वैज्ञानिक सत्य प्रगट हों उनको अपनाते रहना चाहिये। हमारा धर्म सत्य है, इसीसे हमारी भलाई है, आदि अहंकारसे भरी हुई मूढ़तापूर्ण उक्तियोंको भूल जाना चाहिये; किन्तु जो सत्य है, जिससे हमारी भलाई है, वही धर्म है आदि सम्यक्त्ववर्धक उक्तियोंको अपनाना चाहिये।

धर्मशास्त्र एक व्यापक शास्त्र है। यद्यपि उसका स्वतंत्र स्थान है, फिर भी उसके भीतर अनेक शास्त्र आते हैं—खासकर विज्ञान तो आ ही जाता है। इस लिये अगर ये शास्त्र आगे बढ़ जायँ और धर्मशास्त्र ज्योंका त्यों बना रहे, बूढ़ा, अर्धमृतक या मृतक विज्ञान ही उसकी आधारशिला बना रहे तो निःसंदेह उस धर्मशास्त्रको, साथ ही धर्मको मरना पड़ेगा। अगर वह विज्ञानके साथ चले, उसको पचाता चले तो वह किसी न किसी सुन्दर रूपमें बना रहेगा। साथ ही इसमें बड़ा लाभ यह भी होगा कि धार्मिक विभिन्नता के कारण मनुष्यमें जो द्वेष ईर्ष्या आदि पैदा होजाते हैं, वे नष्ट प्राय होजायँगे। सहयोगकी भावना बढ़ेगी।

जैनजगतका नाम यद्यपि जैनजगत है, परन्तु अभी तक उसने जो कार्य किया है, वह सिर्फ जैन समाजका ही न होकर सभीका है;वास्तवमें वह सत्यशोधक है। जहाँ तक सामाजिक आन्दोलनोंका सम्बन्ध था, वहाँ तक उसका मुख्य कार्य-क्षेत्र जैन समाज ही रहा और विशेषकर दिगम्बर जैनसमाज, यद्यपि उसका कार्य सभी समाजोंके लिये एकसा अनुकूल था। परन्तु जबसे "जैनधर्मका मर्म" निकलना शुरू हुआ तबसे उसका कार्य-क्षेत्र व्यापक हो गया है। उसमें जैनधर्मकी आलोचनाके रूपमें धर्म की ऐसी आलोचना की गई है जो किसी भी धर्मकी आलोचना कही जा सकती है। उसमें वास्तवमें जैनियोंके सम्प्रदायोंका ही समन्वय नहीं किया गया है परन्तु अन्यधर्मोंको भी बिलकुल निष्पक्ष भावसे देखा गया है। जैनधर्मका मर्म तो उसे सिर्फ इस लिये कहते हैं कि वह जैनशास्त्रोंके पारिभाषिक शब्दों में लिखा गया है। वे ही बातें अन्य किसी भी धर्म के शब्दोंमें लिखी जासकती हैं; तब यही मर्म अन्य किसी भी धर्मका मर्म कहा जासकेगा। अगर जीवन में मुझे समय मिला तो यह कार्य करनेका भी मेरा विचार है।

परन्तु इन सब विचारोंके प्रचारसे सिर्फ वातावरण कुछ अनुकूल होता है; जो लोग पूरा लाभ उठाना चाहते हैं वे नहीं उठा पाते। वायुमण्डलमें पानीके फैलजानेसे कुछ ठंडक मालूम होती है, परन्तु प्यास नहीं बुझती। यही बात इस प्रचारके विषयमें भी है। कोई एक दृढ़ अवलम्बन न होनेसे इन विचारोंको कार्यरूपमें परिणत करना कठिन होता है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, इसलिये वह समाजको चाहता है। समाजका पीठबल न होनेसे वह कुछ नहीं कर सकता। विजातीय विवाहका आंदोलन विचारोंकी दृष्टिसे पूर्ण सफल होनेपर भी बहुत दिनों तक कार्य रूपमें परिणत नहीं हुआ क्योंकि लोगोंको भय रहा कि वर्तमान समाजसे अलग होना पड़ा तो हमको कोई अवलम्बन न मिलेगा। बहुत समयके बाद यह भय बहुत थोड़ी मात्रामें दूर हुआ है। विधवाविवाह आदिके विषयमें भी यही बात है। आज सम्प्रदायके विषयमें भी यही समस्या खड़ी है।

अगर कोई दिगम्बर जैन है तो उसका समाज

उससे यह आशा करता है कि वह दिगम्बर सम्प्रदायके विरुद्ध एक शब्द भी न बोले, उसकी किसी भी त्रुटिका आवश्यक निदर्शन भी न करे; इतना ही नहीं किन्तु कोई बात दूसरी जगह कुछ अच्छी या नयी है तो उसकी प्रशंसा भी न करे, उनके धर्मस्थानोंमें न जावे, उचित विनय न करे। अगर विज्ञान से या ऐतिहासिक प्रमाणोंसे कोई बात सत्य सिद्ध होती है किन्तु वह साम्प्रदायिक मान्यताके प्रतिकूल है तो विज्ञान और इतिहास आदिको न माने या उन्हें संदेहात्मक कहे। प्रमाण दृष्टिसे एकही सरीखा बल रखने वाली दो बातोंमें से उसीको माने जो अपने सम्प्रदाय की हो, आदि। अगर वह ऐसा कार्य नहीं करता तो उसकी निंदा की जाती है, उसे धर्मद्रोही, रिश्वतखोर आदि कहा जाता है। इन सब बातों का फल यह होता है कि साधारण मनुष्य या तो धर्म से उपेक्षा कर जाता है या मन ही मन जलता रहता है अथवा उसी मिथ्यात्वगर्तमें पड़ा रहता है। ऐसे लोगोंको अगर थोड़ा बहुत सामाजिक अवलम्बन हो तो वे स्वतन्त्रतामें उन्मुक्त विहार कर सकते हैं, सत्यशोधनके कार्यमें जीवन लगाकर स्वपर कल्याण कर सकते हैं। इसके लिये यह अत्यावश्यक मालूम होता है कि एक सत्यशोधक समाजकी स्थापना की जाय, जिसके सदस्य सत्यके उपासक हों, धर्मोंके दोषोंको दूरकर उनसे लाभ उठाने वाले तथा किसी भी धर्म अर्थात् सम्प्रदायसे द्वेष न करनेवाले, पूरे समाजसुधारक हों।

इस संस्थाकी रूपरेखा कैसी होना चाहिये, इसके विषयमें तो समयानुसार ही लिखा जाता रहेगा, परन्तु अभी कुछ ऐसी सूचनाएँ लिखदेना आवश्यक है जिससे मेरे वक्तव्यका खुलासा होजाय, इसके विषय में लोगोंको मिथ्या भ्रम न रहे और इस समाजके सदस्य बनने वाले अपनी जिम्मेदारीको समझें।

मैं इस विषयमें बहुत दिनोंसे कुछ न कुछ करना चाहता था परन्तु यह सोचकर कि इस प्रकारका आयोजन न करना पड़े तो अच्छा, क्योंकि इससे सम्भव है एक दल और बढ़जाय—मैं चुप था। परंतु समाजकी दशा ऐसी है और अभी मनुष्यका स्वभाव ऐसा है कि थोड़े बहुत दोषको अपनाये बिना उसे गुणभी नहीं दिया जा सकता, इसलिये यह आयोजन उचित समझा गया है।

हाँ, इस बातकी मैं पूरी चेष्टा करनेवाला हूँ कि साम्प्रदायिकताका विष यहाँ न आने पावे। इस विषयमें जो मैं निम्नलिखित शिक्षानियम लिख रहा हूँ उससे भी यह बात स्पष्ट हो जायगी कि विषापहरण करनेकी यहाँ पूरी चेष्टा की गई है।

१—सत्यशोधक समाजका लक्ष्य यह नहीं है कि एक नया सम्प्रदाय खड़ा किया जाय। उसका लक्ष्य सिर्फ यही है कि सम्प्रदायोंके भीतर साम्प्रदायिक कट्टरता तथा पारस्परिक द्वेष न रहे तथा सत्यशोधन के कार्यमें साम्प्रदायिक मान्यताएँ रोड़े न अटकावें। 'जैनधर्मका मर्म' में जिस प्रकारका उदार और निःपक्ष जैनधर्म बतलाया गया है, इसी तरह प्रत्येक सम्प्रदाय उसी उदार और निःपक्षभावको लेकर अपने सम्प्रदायको माने। इस प्रकारके लोग व्यावहारिक दृष्टिसे अपने अपने सम्प्रदायके सदस्य बने रहेंगे। हाँ, जो लोग सम्प्रदायोंके क्षुद्र वातावरण से ऊब गये हों, जिनको अपने सम्प्रदायमें रहना पसन्द न हो, वे निःपक्ष बनकर सत्यशोधक समाज में ही पूर्ण निष्ठा रक्खें। इस प्रकार सत्यशोधक समाजके सदस्य दो तरहके होंगे १—पाक्षिक और २—नैष्ठिक।

जो अपने अपने सम्प्रदायके सदस्य रहकर सत्यके उपासक होंगे वे पाक्षिक।

जो अपने सम्प्रदायका त्यागकर पूर्णरूपसे सत्यशोधक समाजके सदस्य बनेंगे वे नैष्ठिक।

ये दोनों प्रकारके सदस्य इस समाजके सिद्धान्तों और नियमोंको कार्य रूपमें परिणत करेंगे। इसके अतिरिक्त एक तीसरी श्रेणी अनुमोदकों की होगी, जो पाक्षिकोंकी तरह किसी सम्प्रदायके सदस्य होंगे,

सिद्धान्तों और नियमोंका समर्थन करेंगे और उन्हें कार्यरूपमें परिणत करनेमें यथाशक्ति सहायता देंगे परन्तु कौटुम्बिक आदि किसी परिस्थितिवश कार्य रूपमें परिणत करनेकी जिम्मेदारी न ले सकेंगे। उदाहरणार्थ विजातीयविवाह आदि कार्यमें पाक्षिक और नैष्ठिक श्रेणीका सदस्य तो सहयोग करेगा; बल्कि नैष्ठिक श्रेणीमें तो दस्सा पंचा विनैक्या भील मुसलमान अंग्रेज हब्शी हरिजन आदि जो भी जब सम्मिलित कर लिया जायगा तब उन सबकी एक ही जाति बन जायगी, रोटीबेटीव्यवहारमें इनमें जातिभेदकी बाधा न मानी जायगी । हाँ, सभ्यता शिक्षा स्वभाव तथा आर्थिक आदि विषमताओंसे कोई बेटीव्यवहार न करे तो दूसरी बात। परन्तु अनुमोदक श्रेणीका सदस्य कर सके तो करे, न कर सके तो न करे । यह उसकी परिस्थिति पर निर्भर है ।

२—पाक्षिक श्रेणीके सदस्य, जैन बौद्ध वैदिक ईसाई मुसलमान आदि अनेक शाखाओंमें या दिगम्बर श्वेताम्बर वैष्णव शैव आदि प्रशाखाओंमें विभक्त रहेंगे। मतलब यह कि निःपक्षता और सत्यशोधकता तो सबमें रहेगी और एक शाखावाला दूसरी शाखाका विरोध न करेगा, एक दूसरेको धर्मबंधु भी समझेगा, एक दूसरेके धर्मस्थानोंमें भी जायगा परन्तु रुचि या परिस्थितिवश वह सत्यको साम्प्रदायिक शब्दोंमें प्रगट करेगा। जैसे जैनधर्म का मर्म (जैनधर्म शोधन) में जैन धर्मके शब्दों में विश्वधर्म रक्खा गया है, उसीप्रकार प्रत्येक शाखा वाला अपने धर्मके शब्दोंमें सत्यशोधक समाज द्वारा निश्चित धर्मको समझेगा और जीवन में उतारेगा।

३—जिस धर्म मंदिरमें सत्यशोधकताका अपमान होनेकी सम्भावना न हो और वहाँ किसी सत्यके लाभकी सम्भावना हो उसका वह उपयोग करेगा, भलेही वह किसी भी सम्प्रदायका मंदिर हो। परन्तु सत्यशोधक समाजके धर्मस्थानमें सर्वधर्मसमभाव का पूर्ण परिचय दिया जायगा। उसमें जगत्‌के धार्मिक नररत्नोंकी मूर्तियाँ और चित्र उचित आदर के साथ रक्खे जायँगे। यह तो नैष्ठिक सत्यशोधक मन्दिर होगा। परन्तु पाक्षिक सत्यशोधक मंदिर किसी शाखाका होगा और उसमें उस शाखाके तीर्थंकरकी मूर्ति मूलनायकके समान होगी। बाकी अन्य शाखाओंके तीर्थंकरोंकी मूर्त्तियाँ या चित्र भी पूर्ण आदरके साथ रहेंगे बौद्ध शाखाके सत्य शोधक मन्दिरमें महात्मा बुद्धकी मूर्त्ति मूलनायकके स्थान पर होगी, बाकी महात्मा महावीर, मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र, कर्मयोगी कृष्ण, महात्मा ईसा और मुहम्मद साहिब आदकी मूर्ति या चित्र उपनायकके स्थान पर होंगे। इसीप्रकार जैनशाखामें महात्मा महावीर, वैष्णव शाखामें कर्मयोगी कृष्ण या मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र, ईसाई शाखामें महात्मा ईसा और इस्लामशाखामें मुहम्मद साहिबकी मूर्ति या चित्र होंगे। आजकल जैन मंदिरोंमें जुदे जुदे मूलनायक होते हैं—जहाँ चन्द्रप्रभकी प्रतिमा अगर मूलनायक है, वहाँ बाकी तीर्थंकरोंकी प्रतिमाएँ भी होती हैं। यद्यपि उस मंदिरमें उस तीर्थंकरकी प्रधानता होती है परन्तु बाकी तीर्थंकर छोटे नहीं समझे जाते, न इस बात को लेकर दलबन्दी होती है, इसीप्रकार सत्यशोधकके शाखामंदिरमें किसी नररत्नकी प्रधानता होगी, परन्तु बाकी नररत्न इसी लिये छोटे न समझे जावेंगे, न इन शाखा मंदिरोंको लेकर दलबन्दी होगी। रुचिभेदको कोई अनादर की दृष्टिसे न देखेगा।

४—जो बात मंदिरके विषयमें है, वही बात शास्त्रों के विषयमें है। वह प्रत्येक सम्प्रदायके शास्त्रोंकी निःपक्ष आलोचना करेगा। अगर इतनी योग्यता न हो तो वह किसीकी निन्दा न करके उसमेंसे जो जो सत्य मालूम होगा उसे स्वीकार करेगा। वह निःपक्ष होगा।

५—नैष्ठिक सदस्य, सत्यशोधक समाजकी किसी भी शाखाके सदस्यके साथ या किसी अन्य नैष्ठिक सदस्यके साथ जातिभेद या धर्मभेदके नाम पर रोटीबेटीव्यवहारमें बाधा उपस्थित न करेगा।

वह कृत (स्वयं करना) कारित (दूसरोंसे कराना) और अनुमोदनमें जातिभेद और साम्प्रदायिकताका नाशक होगा। पाक्षिक सदस्य अपनी शाखाके अनुसार कुछ शिथिल होगा अर्थात् रोटी व्यवहार में तो जातिभेद और धर्मभेदको बिलकुल न मानेगा, परन्तु बेटीव्यवहारमें वह सिर्फ कारित और अनुमोदनसे ही इस उदारताका परिचय देगा। स्वयं वह यथा परिस्थिति काम करेगा। इतना भी न कर सके तो वह अनुमोदक सदस्य हो जायगा।

६—दोनों प्रकारके सदस्य स्त्री और पुरुषोंके अधिकारोंमें समानताके तत्वको मानेंगे। धर्मकार्यों और धर्मस्थानोंमें स्त्रीका स्थान जरा भी छोटा न माना जायगा। दायभाग आदिके मामलोंमें पाक्षिक सदस्य परिस्थितिके अनुसार दोनोंकी समानताका परिचय देगा और नैष्ठिक सदस्य सत्यशोधक समाज द्वारा निश्चित नियमोंका पालन करेगा।

७—सार्वत्रिक और सार्वकालिक दृष्टिसे अधिकतम प्राणियोंके अधिकतम सुखके लिये सत्यकी खोज करना और उसे जीवनमें उतारनाही सत्यशोधकका काम है। राष्ट्रीयता आदिका समर्थन वह तभी करेगा जब न्यायकी रक्षाके लिये या अन्याय के नाशके लिये वह आवश्यक होगा।

८—सत्यशोधक समाजका पाक्षिक या नैष्ठिक सदस्य अन्य किसी ऐसी धार्मिक या सामाजिक संस्थाका सदस्य न रहेगा जो सत्यशोधक समाजके उद्देश्यके विरुद्ध काम करती हो। राजनैतिक तथा अन्य तटस्थ संस्थाओंका वह सदस्य बन सकेगा।

९—आर्थिक दृष्टिसे जो स्वाधीन हो तथा सत्यशोधकसमाजके अनुसार कार्य करनेमें कुटुम्बियोंकी तरफसे जिसे कोई बाधा न हो वही व्यक्ति इस समाज का पाक्षिक या नैष्ठिक सदस्य बने, अन्यथा वह अपना नाम अनुमोदकोंकी श्रेणीमें रक्खे। मतलब यह कि किसी आवश्यक कर्तव्यके लिये कुटुम्बियोंकी तरफ की बाधा बतलाकर बहाना करना उचित नहीं है।

१०—पाक्षिक या नैष्ठिक सदस्यको वेषका पूजक न होना चाहिये। कोई आदमी गृहस्थवेषमें हो या साधुवेषमें या किसी मध्यवेषमें, अथवा साधुवेषमें भी किसी भी सम्प्रदायके साधु वेषमें हो, सबका गुण के अनुसार आदर करना चाहिये। वेषको देखकर ही किसीको साधु, पूज्य आदि न मान लेना चाहिये और गुणको देखकर वेषके अभावसे किसीको साधु से कम आदरणीय न समझना चाहिये। वेष तो सिर्फ किसी धर्मसंस्थाके सदस्य होनेकी निशानी है, पूज्यापूज्यताका उससे कोई सम्बन्ध नहीं है।

इस वक्तव्यसे पाठक अच्छी तरहसे समझ सकेंगे कि सत्यशोधक समाजकी स्थापना करनेमें मेरा क्या लक्ष्य है? यह क्रान्ति केवल धार्मिक क्रान्ति ही होकर न रहेगी किन्तु सामाजिक, राजनैतिक आर्थिक आदि अनेक समस्याओं पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ेगा, एक प्रकारसे नवचेतनका संचार होगा।

इसके बाद अब इस समाजकी संघटनाके विषय मे दिग्निर्देश करना है। संघटनाके ये नियम कामचलाऊ हैं। ज्यों ज्यों इसका क्षेत्र बढ़ता जायगा त्यों त्यों इनमें संशोधन होता जायगा।

१—जब तक कोई दूसरी सुव्यवस्था न हो जाय तब तक मेरा निवासस्थानही इसका प्रधान कार्यालय रहेगा।

२—इस समाजकी ग्राम्य शाखाएँ और प्रान्तिक शाखाएँ रहेंगी।

३—जिस गाँवमें पाक्षिक और नैष्ठिक दोनों मिलाकर पाँच सदस्य होंगे वहाँ एक ग्राम्यशाखा खोली जायगी। उसमें एक अध्यक्ष, एक मंत्री और तीन सदस्य रहेंगे। ग्राम्यशाखाके सदस्यही अध्यक्ष आदिका चुनाव करेंगे।

४—जिस गाँवमें ग्राम्यशाखा खोली जायगी उसमें समाजके किसी न किसी सदस्यके पास समाजका मुखपत्र (हालमें जैनजगत्) अवश्य आना चाहिये।

५—जिस प्रान्तमें दस शाखाएँ बनजायँगी वहाँ एक प्रान्तिकशाखा खोली जासकेगी, जिसके कार्यालयमें समाजका मुखपत्र अवश्य आना चाहिये।

६—जिस गाँवमें पाँचसे कम सदस्य होंगे वहाँ ग्राम्य शाखा न बनेगी। वहाँके सदस्योंका नाम प्रकीर्णक सदस्योंकी लिस्टमें रहेगा।

७—सदस्योंमें स्त्री और पुरुषका भेद न रहेगा। पति और पत्नी अलग अलग सदस्य बनसकेंगे।

८- ग्राम्य शाखाके सदस्य कमसे कम दो घरों के अवश्य होना चाहिये। एकही घरके सदस्योंसे ग्राम्य शाखा स्थापित न होसकेगी वे सब प्रकीर्णक सदस्य कहलायँगे।

९—घरके आर्थिक सूत्रधारके पाक्षिक या नैष्ठिक सदस्य बन जाने पर उसके आश्रित रहने वाले व्यक्तियोंको नवमाँ शिक्षानियम बाधक न होगा। अर्थात् सदस्य बननेके लिये सदस्यका आश्रित व्यक्ति भी आर्थिक दृष्टिसे स्वतन्त्र समझा जायगा।

१०—सदस्य बननेके लिये कमसे कम अठारह वर्षकी उमर होनी चाहिये।

११—प्रधान कार्यालयमें सब सदस्योंकी सूची अवश्य आना चाहिये।

इस प्रकार साधारण रूपरेखा यहाँ पर भी दे दी गई है। भविष्यमें इसका संशोधन होता रहेगा। यहाँ पर एक प्रवेशपत्रकी नक़ल दी जाती है। तदनुसार प्रवेशपत्र भर कर भेजना चाहिये।

पाक्षिक और नैष्ठिक सदस्योंके लिये।

संचालक—सत्यशोधक समाज।

मैंने सत्यशोधक समाजके दस शिक्षानियमोंको पढ़ा है। मुझे वे पसन्द हैं। मैं मानता हूँ कि साम्प्रदायिक और जातीय कट्टरता मनुष्यकी उन्नति तथा सुख शान्तिके लिये बाधक है। धर्म वही है जो सत्यके निकटतम हो और अधिकसे अधिक कल्याण कर सकता हो। सत्यशोधक समाजकी नीति इस विषयमें श्रेष्ठ है, इसलिये आजसे मैं अपनेको उस समाजका सदस्य बनाता हूँ। मैं तन मन धनसे उसके उद्देश्योंका पालन करूँगा और उसकी उन्नतिके लिये प्रयत्न करूँगा।

पूरा नाम..

पिता या पतिका* नाम..

आजीविका..

उम्र..

विवाहित अविवाहित आदि..

वर्तमान जाति उपजाति वगैरह..

वर्तमान सम्प्रदाय..

सदस्यताकी शाखा†..

वर्तमानमें किन किन संस्थाओंका सदस्य हूँ ....

अब मैं किनकिन का सदस्य रहूँगा। ....

प्रकीर्णक या ग्राम्य शाखा‡..

ग्राम्य शाखाका नाम..

विशेष परिचय..

पूरा और स्थायी पता..

हस्ताक्षर..

अनुमोदकोंके लिये।

मैंने सत्यशोधक समाजके विवरणको पढ़ा है। मैं मानता हूँ कि साम्प्रदायिक और जातीय कट्टरता मनुष्यकी सुख शान्ति और उन्नतिमें बाधक है। जो सत्यके निकटतम है और अधिकसे अधिक कल्याण

* विवाहित स्त्रियाँ पतिका नाम लिखें।

† नैष्ठिक या पाक्षिक। और पाक्षिकमें किस शाखा का पाक्षिक—जैन पाक्षिक, बौद्ध पाक्षिक, वैष्णव पाक्षिक आदि; तथा उपशाखामें रहना हो तो दिगम्बर जैन पाक्षिक आदि भी लिखा जा सकता है।

‡ जब तक ग्राम्यशाखाएँ नहीं बनी हैं तब तक प्रकीर्णक श्रेणीमें ही अपना नाम लिखना चाहिये, और ग्राम्य शाखाके नामके आगे कुछ नहीं लिखना चाहिये।

करने वाला है, वही धर्म है। सत्यशोधक समाजकी नीति इस विषयमें स्तुत्य है। कई कारणोंसे अभी मैं उस समाजका पाक्षिक या नैष्ठिक सदस्य तो नहीं बनसकता, परन्तु उसका अनुमोदक बनता हूँ। मेरी उसके साथ पूर्ण सहानुभूति है और मैं यथाशक्ति सहायता करता रहूँगा। आपका—

नाम व पूरा पता.........................

वर्षोंके मनन और चिन्तनके बाद मैं जिस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ और जिस बातकी आवश्यकता मुझे मालूम हुई है, उसका दिग्दर्शन किया है। वर्षोंसे भूमिका तैयार होरही है, परन्तु चिरकाल तक भूमिका ही बनती रहे यह समयको बर्बाद करनेके समान है। अब इस ढंगके विचार रखनेवालोंको संगठित होकर उत्साहसे आगे आनेकी जरूरत है। जो लोग सम्प्रदायातीत विचार रखते हैं तथा जिनने अन्तर्जातीय विवाह किया है उन्हें तो नैष्ठिक सदस्य बननेमें भी बाधा न होगी। अन्यथा उन्हें पाक्षिक सदस्य तो बननाही चाहिये। "जैनधर्मका मर्म" पर जिनने सम्मतियाँ दी हैं उनमें से भी अधिकांश महाशय सदस्य बन सकते हैं। जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी इस विषयमें आगे बढ़ना चाहिये। आगामी ग्रीष्मप्रवास तक इस विषयमें अच्छा प्रचार होजाय और ग्रीष्मप्रवासके लिये अच्छी सामग्री तैयार होजाय तो थोड़े परिश्रमसे अच्छा कार्य हो सकेगा। आशा है, पाठक इस विषयमें उपेक्षासे काम न लेंगे। जिनको जो कुछ पूछना हो वे मेरे पतेसे पत्रव्यवहार करें!
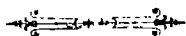
सम्पादकीय टिप्पणियाँ।

"जैनदर्शन" पत्रसे दो शब्द।

किसीकी बात न जंचती हो तो उसका सयुक्तिक विरोध करना बुरा नहीं है। जैनदर्शन पत्रका—जो जैनजगत्का विरोध करनेके लिये ही पैदा हुआ है—मैंने स्वागत किया था। पण्डित राजेन्द्रकुमारजीने जो लेखमाला मेरे विरुद्ध लिखी है, उसका मैंने सहर्ष स्वागत किया है। जो लेखमालाएँ युक्तियोंके आधार पर ही लिखी जाती हैं उनकी समालोचना करनेमें मुझे भी थकावट नहीं मालूम होती और समाजको भी लाभ होता है। परन्तु जैनदर्शनके अन्यतम सम्पादक पं० अजितकुमारजी की नीति बहुतही विचित्र है। आप निर्गल आक्षेप किया करते हैं। उनका समाधान करनेपर कोई दूसरे आक्षेप करने लगते हैं, मूल बातको उड़ाजाते हैं। मेरे बचाव पक्षकी बातोंको जानबूझकर छिपाते हैं, उनका उत्तर भी नहीं देते और जिस बातका उत्तर दिया जा चुका है उसी बातको फिर लिखकर उत्तर देनेका श्रेय लूटते हैं। इस प्रकार नीतिसे बाहर जाना तथा अपने पाठकोंको धोखा देना एक सम्पादकके लिये अत्यन्त अनुचित है। खैर, आपकी नीतिके कुछ नमूने देखिये।

आपने मुझे श्वेताम्बरोंका पक्षपाती लिखा था। इसके उत्तर मैंने लिखा कि "अपने मतकी रक्षाके लिये जो आदमी अपनी एक मात्र आजीविका को छोड़ सकता है वह अपने मतके विरुद्ध किसीकी वकालत क्यों करेगा? फिर मैंने ऐसी बहुतसी बातें लिखी हैं जो दिगम्बरोंके समान श्वेताम्बरोंके भी विरुद्ध हैं तथा अनेक बातें सिर्फ श्वेताम्बरोंके ही प्रतिकूल हैं और दिगम्बरोंके अनुकूल हैं" परन्तु मेरे इस वक्तव्यको आप साफ उड़ा गये। कमसे कम अपने पाठकोंके साम्हने यह बात तो रखदेना चाहिये थी, फिर उनको पक्षपात समझना होता तो भलेही समझते। आपने जो मेरे विरोधमें पिष्टपेषण किया है उसका उत्तर तो यहीं दिया जायगा परन्तु अगर वह विरोध उचित भी होता तो भी मैं पक्षपाती नहीं कहला सकता था; क्योंकि मेरे लेखोंमें गुण दोष सत्य असत्य आदि भलेही कोई माने परन्तु उनमें सभी सम्प्रदायोंका आंशिक समर्थन और सभीका आंशिक खण्डन है। साम्प्रदायिक पक्षपातीके ये चिन्ह नहीं हैं। खैर, इसमें पण्डित अजितकुमारजीका शायद इतना दोष न हो,

क्योंकि दिगम्बर जैनसमाजके पण्डित जिस संकुचित वातावरणमें पलते पुसते हैं, जिस तरहका साहित्य वे पढ़ते हैं, उनके चारों तरफका जैसा वातावरण रहता है, उससे उनके लिये यह कल्पना असम्भव मालूम होती है कि कोई निःपक्ष भी हो सकता है। मेरी लेखमालाको जो भी पढ़ेगा वह उसकी किसी बातसे असहमत भलेही हो परन्तु अगर वह अपनेको धोखा नहीं देता तो उसे निःपक्ष अवश्य मानेगा। जिन बातोंके विषयमें यह कहा जाता है कि इनसे जैनधर्मका मूलोच्छेद हो जायगा, जब उनके विषयमें भी मैंने श्वेताम्बरोंकी पर्वाह नहीं की तब किसी छोटीसी बातमें मैं उनकी पर्वाह करूँगा. छोटी बड़ी बीसों बातोंका खण्डन करके किसी एकाध छोटीसी बातको लेकर मैं श्वेताम्बरोंको खुश करूँगा ऐसी बात किसी गैरजिम्मेदार और दुःसाहसी मनुष्यके सिवाय और कोई नहीं कह सकता। इसी अंकसे पाठक 'सत्यशोधक समाज' के विषयमें अग्र-लेख पढ़ेंगे, उससे भी वे समझेंगे कि मेरा ध्येय क्या है? साम्प्रदायिक पक्षपातरूपी पिशाचके पीछे, तुच्छ शक्ति होते हुए भी मैं अपनी छोटीसी लकड़ी लेकर किस तरह पड़ा हूँ इसका खुलासा करनेके लिये इस अंकका अग्रलेख काफी है। और इससे भी अधिक पूर्ण उत्तर निकट भविष्यमें मेरा जीवन देगा। खैर, नीतिका मार्ग क्या है, यह मैंने बतला दिया है। इतने पर भी अजितकुमारजी अगर अपने पाठकोंको धोखा ही देते रहना चाहते हैं तो वे भलेही दें, परन्तु यह याद रहे कि आजके बाद कल भी जगत् है और यहाँके बाद वहाँ भी जगत् है। 'कालोह्ययम् निरव-धिर्विपुला च पृथिवी'।

भगवती मल्लिदेवीके विषयमें मैंने कहा था कि "यह इतिहास नहीं, प्रथमानुयोग है। प्रथमानुयोग का काम किसी धार्मिक तत्त्वका कथारूपमें चित्रण करना है। स्त्री-पुरुषकी समानताका तत्त्व धार्मिक तत्त्व है, इसलिये मैं भगवती मल्लिदेवीका उल्लेख करता हूँ। वे हुई हों, चाहे न हुई हों, परन्तु उनका उदाहरण स्त्रियोंके लिये आदर्श है, वह समताका प्रचारक है, इस लिये मुझे मान्य है।" परन्तु आप इसका कुछ उत्तर न देकर उसी प्रश्नको फिर दुहराते हैं जिस प्रश्नके उत्तरमें यह बात कही गई थी। आप कहते हैं कि जब आप मल्लिको मानते ही नहीं, तब श्वेताम्बरीय मान्यताके अनुसार उन्हें मल्लिकुमारी ही बतलाते हैं सो क्यों?" अरे भाई 'इसी 'सो क्यों?' का उत्तर ही तो ऊपर दिया गया है। अब तो कुछ उसके आगे लिखना चाहिये, जिससे मुझे भी कुछ आगे बढ़कर प्रत्युत्तर देनेका मौका मिले। इस प्रकार पिष्टपेषण करके क्यों अपना और दूसरोंका समय बर्बाद करते हैं?

पहिले तो आपने यहाँतक कहा था कि श्वेताम्बर लोग भी मल्लिको पुरुषही मानते हैं। यदि आपको अपने कहनेपर विश्वास है तो यहाँ मुझसे क्यों कहते हैं कि मैं श्वेताम्बर मान्यताके अनुसार लिख रहा हूँ? आपकी मान्यताके अनुसार तो श्वेताम्बर लोग मल्लिको पुरुषही मानते हैं, तब तो यह मेरी मान्यता ही कहलाई। सच बात तो यह है कि आगे पीछेका कुछ भी ख्याल न करके आपका लक्ष्य किसी तरह विपक्षीको खोटीखरी सुना देना है। खैर, जब मैंने ज्ञातृधर्मकथाका उल्लेख किया उसके बाद आपका मन अपनेही आप बदल गया—क्योंकि किसीके कोई बात सिद्ध करनेसे आपका मन कभी नहीं बदलता; अगर बदलता है तो भी उसे आप अपनेही आप बदलना कहते हैं—परन्तु आप स्वीकार तो करते कि 'अब मैं मानता हूँ कि श्वेताम्बर शास्त्र मल्लिको स्त्री ही लिखते हैं।' परन्तु आप भला स्वीकार क्यों करेंगे?

दो नमूने काफी हैं। अन्य आक्षेपोंके समाधान में भी ऐसे नमूने मिलेंगे। अब यहाँ आपके आक्षेपोंका भी उत्तर दे दिया जाता है।

आक्षेप—समय सुन्दरगणीने कहा है 'देव-र्धिगणी क्षमाश्रमणने न्यून अधिक त्रुटित अत्रुटित आगमके पाठ अनुक्रमसे अपनी बुद्धि द्वारा संकलन

करके पुस्तकारूढ़ किये। इस कारण आरम्भमें गणधर भाषित होनेपर भी संकलनके बाद उन आगमोंके कर्ता देवर्धिगणी ही हुए हैं'। इससे साफ़ मालूम होता है कि सूत्रग्रंथोंकी रचना देवर्धिगणी क्षमाश्रमणने की थी।

समाधान— दिन दहाड़े धूल झोंकना इसीका नाम है। बेचारे समयसुन्दरजी तो साफ शब्दोंमें कह रहे हैं कि देवर्धिगणीने टूटफूटे सूत्रोंका संकलन किया अर्थात् उन्हें सिलसिलेवार जमाकर संग्रह किया, इसलिये वे कर्ता कहलाते हैं। परन्तु अजितकुमारजी कहते हैं कि देवर्धिगणीने रचना की अर्थात् बनाया। संकलन करना, संग्रह करना आदिका अर्थ 'बनाना' है-ऐसी अद्भुत बात कहकर कैसा असफल धोखा दिया जारहा है! पहिले भी आप लिखित अर्थात् लिखा गया शब्दका 'बनाया' अर्थ कर गये थे। जब मैंने आपकी भूल बतायी तो उसके विषयमें चुप्पी साधकर यह दूसरी वैसी ही भूल फिर कर डाली।

आक्षेप— दिगम्बरीय ग्रंथरचनाका ऐतिहासिक समय वि० संवत्से पहिलेका निश्चित होता है।

समाधान— इस बातके समर्थनमें जब तक दोचार आचार्योंके ग्रंथोंका समय सिद्ध न कर दिया जाय तब तक इसका कुछ मूल्य नहीं है। कुंदकुंद, [illegible] का समय इतना अनिश्चित है कि [illegible] शताब्दीका या उससे पहिलेका कहना कल्पना मात्र है। हाँ, श्वेताम्बर सूत्रसाहित्यके संकलनके पहिले अवश्य ही कुछ दिगम्बर ग्रंथ बन गये थे। परन्तु सूत्रसाहित्यके संकलनके पहिले श्वेताम्बर ग्रंथ भी बहुत बन गये थे। श्वेताम्बरोंके पउमचरिय नामक ग्रंथकी प्रशस्तिसे मालूम होता है कि वह ग्रंथ विक्रम संवत् ६० में अर्थात् वीर निर्वाणके ५३० वर्ष बाद बना था।

पंचेवय वाससया दुसमाए तीस वरिस संजुत्ता।
वीरे सिद्धि मुवगए तओ णिबद्धं इमं चरियं॥

इसी प्रकार तरंगवती आदिके रचयिता पादलिप्त सूरिका समय भी बहुत प्राचीन है। वे सिद्धसेनसे भी बहुत पुराने हैं। खैर, यहाँ मतलब सिर्फ इसी बातसे है कि देवर्धिगणीके पहिले भी ऐसे बहुतसे श्वेताम्बर आचार्य होगये हैं जिनने ग्रंथरचना की है।

आक्षेप—भाषाकी दुहाई देकर सुनिश्चित ऐतिहासिक समयको उलट नहीं सकते। आजभी पाँचसौ वर्ष पुरानी हिन्दीभाषामें ग्रंथरचना की जा सकती है।

समाधान—जहाँ दूसरे प्रमाण निर्बल होते हैं, वहाँ भाषाशैलीका निरीक्षण नवीनता प्राचीनता पर प्रकाश डालता है। इस बातको लेकर दिगम्बर श्वेताम्बर तथा जैनेतर ग्रंथोंके समय-निर्णयमें महत्वपूर्ण कार्य हुआ है। सब सूत्रोंकी भाषा एकसी नहीं है। अन्यसूत्रोंकी अपेक्षा सूत्रकृतांग उत्तराध्ययनकी भाषा प्राचीन है और इनसे भी अधिक प्राचीन आचारांगकी भाषा है। इससे इतना तो मालूम होता है कि यह सब रचना देवर्धिगणीकी नहीं है। हाँ, भाषा परसे सुनिश्चित समय बदला नहीं जा सकता परन्तु सिर्फ सुनिश्चित ही नहीं बदला जा सकता, अनिश्चित, अर्धनिश्चित, संदिग्ध बदला जा सकता है। देवर्धिगणीने सूत्र बनाये, यह निश्चित ही नहीं है बल्कि आज भी सूत्रोंमें पाठान्तर मिलते हैं जो माथुरी वाचनाके समयमें थे। इससे उनका अस्तित्व देवर्धिगणीसे पहिले ही सिद्ध होता है। अन्य प्राचीन आचार्योंके ग्रन्थोंमें उनका उल्लेख, दिगम्बर ग्रंथोंमें श्वेताम्बर ग्रन्थरचनाके समयका प्राचीन होना तथा देवर्धिगणीके द्वारा श्वेताम्बर शास्त्ररचनाका उल्लेख न होना आदि अनेक प्रमाण उनको प्राचीन बताते हैं। ऐसी हालतमें भाषाका प्रमाण भी उसका समर्थन करता है तो वह माह्य होजाता है। सुनिश्चित समयको वह बदलता नहीं है, किन्तु उसका समर्थन करता है।

आक्षेप—श्वेताम्बर आचार्य मानते हैं कि आगम पहिले संस्कृतमें थे, पीछे प्राकृतमें बनाये गये।

समाधान—यह बात सर्वविदित है कि

भगवान् महावीरकी भाषा अर्धमागधी थी। दोनों सम्प्रदायके अनुसार प्राचीन सूत्र प्राकृतमें थे; बल्कि सिद्धसेन दिवाकरने जब इन सूत्रोंको संस्कृतमें करना चाहा तो इस विचारके लिये संघने उन्हें दंडित किया। इसलिये यह कहना कि पहिले सूत्र संस्कृतमें थे, बिलकुल विचित्र कल्पना है। तत्त्वनिर्णय प्रासाद की जो गाथा उद्धृतकी गई है उससे भी यह बात सिद्ध नहीं होती कि पहिले सूत्र संस्कृतमें थे। उससे तो सिर्फ इतना ही मालूम होता है कि जैनसिद्धान्त की रचना जो प्राकृतमें की गई है उसका कारण सिर्फ यही है कि जिससे सर्वसाधारण लोग उसे समझ सकें। पहिले संस्कृतमें थे, पीछे प्राकृतमें थे, यह अर्थ न तो श्लोकसे निकलता है, न जैनियोंका इतिहास ही इसका समर्थन करता है। जैनियोंका साहित्य संस्कृत से प्राकृतमें नहीं किन्तु प्राकृतसे संस्कृतमें आया है।

आक्षेप—सिद्धसेनको श्वेताम्बर बतलाना ठीक नहीं। उनके ग्रन्थोंसे यह बात सिद्ध नहीं होती। जिनसेन आदि दिगम्बर ग्रन्थकारोंने उनका नाम आदरसे लिया है।

समाधान—ऐसी ऐसी रद्दी कल्पनाओंके उत्तरके लिये भी कागज काला करना पड़ता है, यह मेरी खेदजनक विवशता है। सिद्धसेन दिवाकरके सुप्रसिद्ध ग्रंथ सन्मतितर्कका भी जिनने निरीक्षण नहीं किया, वे कैसे उनके विषयमें कुछ लिखनेका दुःसाहस करते हैं यह आश्चर्यकी बात है। सन्मतिप्रकरणका दूसरा कांड जो कि केवलज्ञानके उपयोगोंकी चर्चा में लिखा गया और जिसमें आगमके नाम पर श्वेताम्बर सूत्रोंके ही उद्धरण आये हैं उन्हें दिगम्बर कहना दयनीय अज्ञान है। रही नाम लेनेकी बात सो समन्तभद्रका भी श्वेताम्बर आचार्योंने आदरसे नाम लिया है, कुंदकुंदकी भी स्तुति की है। तो क्या वे आचार्य श्वेताम्बर कहलाने लगे? सिद्धसेन किसके शिष्य थे, कैसे दीक्षित हुए, संघमें रहते हुए उनका क्या झगड़ा हुआ, कैसे उनने प्रायश्चित्त लिया आदि उनके जीवनकी पर्याप्त सामग्री अभी भी मिलती है। इससे वे श्वेताम्बर सिद्ध होते हैं। सिद्धसेनके विषयमें सतीशचन्द्रजीका मत कोई प्रामाणिक मत नहीं है। यों तो विक्रमकी प्रथम शताब्दीमें होनेके उनके प्रमाण मिलते हैं, परन्तु बहुभागकी मान्यता यही है कि वे देवर्द्धिगणीके पहिले हुए हैं।

आक्षेप—तत्त्वार्थ भाष्य उमास्वामिकृत ही है, यह बात विचारणीय है। सम्भव है हिमवंत थेरावली के समान ही इस भाष्यके विषयमें कृतिकी होगई हो। अगर उमास्वामिकृत था तो सर्वार्थसिद्धि आदि में उसका उल्लेख क्यों न हुआ?

समाधान—तत्त्वार्थकी समस्या जटिल अवश्य है। एक तत्त्वार्थके दो पाठ कैसे होगये? इस बातका कुछ उत्तर नहीं है। परन्तु भाष्यके विषयमें इतना अवश्य कहा जासकता है कि वह प्राचीन है। किसी श्वेताम्बरने बनाकर उमास्वातिके सिर मँढ़ दिया हो यह बात बिलकुल गलत है, क्योंकि उसकी बहुतसी बातें श्वेताम्बर सम्प्रदायके भी प्रतिकूल हैं। उमास्वाति न तो दिगम्बर थे, न श्वेताम्बर। किन्तु इतने व्यक्तित्वशाली थे कि दोनों सम्प्रदायोंको उनको अपनानेके लिये विवश होना पड़ा। यद्यपि उमास्वातिकी रचना दोनों सम्प्रदायोंके प्रतिकूल है, फिर भी उनका भाष्य दिगम्बर नहीं पचासकते थे, वे सिर्फ सूत्रोंको ही तोड़ मरोड़ सकते थे। श्वेताम्बरोंको भी उसका पचाना कुछ कठिन था, फिर भी मतभेदकी बातें बहुत भयंकर न थीं इसलिये उनने भाष्यको भी अपना लिया। वास्तवमें वे किसी निष्पक्ष परम्पराके थे, यह बात उनके भाष्य और सूत्रोंके सूक्ष्म निरीक्षण से मालूम होसकती है। अगर मेरे पास दूसरे बहुत से काम न होते तो मैं तत्त्वार्थ पर एक लेखमाला ही लिखडालता जिसमें दिगम्बर श्वेताम्बर टीकाकारों की त्रुटियाँ तथा पक्षपातकी आलोचनाकी जाती। हिमवंत थेरावलीका नाम लेकर श्वेताम्बर ग्रंथोंको जाली सिद्ध किया जाय तब भद्रबाहु संहिता, उमास्वामि श्रावकाचार, कुन्दकुन्द श्रावकाचार, और

जिनसेन त्रिवर्णाचार आदि जाली ग्रंथोंके उदाहरण से कई गुणे दिगम्बर ग्रंथ जाली सिद्ध किये जा सकेंगे।

आक्षेप—श्वेताम्बर ग्रन्थ वि० सं० १३६ में बने थे, यह कहना गलत है।

समाधान— जिन दिगम्बर आचार्योंने श्वेताम्बर संघकी उत्पत्तिका वर्णन किया है, उनने यह बात भी कही है कि उससमय उन श्वेताम्बरोंने स्त्री-मुक्ति आदिको सिद्धकरने वाले ग्रन्थ बनाये। इससे इतना सिद्ध हुआ कि विक्रमकी दूसरी शताब्दीमें श्वेताम्बर ग्रन्थ बन गये थे। यह समय देवर्द्धिगणी से बहुत पहिले है। भाव संग्रह और दर्शनसारकी निम्नगाथाएँ इसका प्रमाण हैं—

इयरोसंघाहिवऊ पयडिय पासंड सेवडो जाओ।
अक्खई लोए धरमं सगांथे अत्थि णिव्वाणं ॥६९॥
सच्छाइ विरइयाइं णियणिय पासंड गहियसरिसाइं।
वक्खाणिऊण लोए पवत्तिओ तारिसायरणं ॥७०॥
—भावसंग्रह।

तेणकियं मयमेअं इत्थीणं अत्थि तब्भवे मोक्खो।
केवलणाणीण पुणो अद्दक्खाणं तहा रोगो ॥१३॥
अंवर सहिओ वि जई सिज्झइ वीरस्स गम्भचारित्तं।
परलिंगे विय मुत्ती फासुयभोजं च सव्वत्थ ॥१४॥
अरणं च एवमाइ आगम दुट्ठाइं मित्थसत्थाइं।
विरइत्ता अरपाणं परिठविमं पटमए णरए ॥१५॥
—दर्शनसार।

आक्षेप—द्रौपदीके पाँच पति थे, इस श्वेताम्बरीय मान्यताका क्या कारण?

समाधान—जिस प्रकार अणुव्रती होकर भी कोई बहुत पत्नी रख सकता है, उस प्रकार बहुत पति रख करके भी कोई अणुव्रतवाली या सती कहलासकती है, इसप्रकारकी सैद्धान्तिक सत्यताका समर्थन होनेसे द्रौपदीके पाँच पति मैंने माने हैं। वैसे तो द्रौपदीकी कथा एक ऐतिहासिक या अर्ध-ऐतिहासिक अथवा कल्पित उपन्यास है। दूसरा कारण यह है कि दिगम्बरोंकी कथा हो या श्वेताम्बरोंकी कथा हो, वह हिन्दुओंके महाभारतसे ली गई है, इस लिये इस कथाके विषयमें मौलिकताकी दृष्टिसे दिगम्बर श्वेताम्बर दोनों कथाओंकी अपेक्षा महाभारत अधिक प्रामाणिक है, और महाभारतमें द्रौपदीके पाँच पति माने गये हैं। प्रथमानुयोगके विषयमें मेरी क्या दृष्टि है इसके लिये 'जैनधर्मका मर्म' का ३८ वाँ लेखांक देखना चाहिये।

आक्षेप—श्वेताम्बरीय कर्मसिद्धान्तानुसार भी श्री मल्लिनाथका स्त्रीरूप होना और राजीमती का मुक्त होना आदि असत्य सिद्ध होता है।

समाधान—दिगम्बर सिद्धान्तके अनुसार भी स्त्रीमुक्ति कैसे सिद्ध होती है, यह बात मैंने क़रीब साढ़ेचार वर्ष पहिले शास्त्रीय चर्चाके ९ वें लेखांकमें सिद्ध की है (जैनजगत् वर्ष ५ अंक १६)। पहिले आप उसका खंडन कीजिये। साथही, श्वेताम्बर सम्प्रदायके अनुसार क्या सैद्धान्तिक बाधा आती है उसे बतलाइये। तब आपको स्त्रीमुक्तिकी वास्तविकता मालूम हो जायगी। दिगम्बर सम्प्रदायका यापनीय संघ भी स्त्री-मुक्तिको मानता रहा है। बहुपतित्व आदिके विषयमें मैंने 'विधवाविवाह और जैनधर्म' नामक लेखमालामें लिखाथा जो सव्यसाचीके नाम से निकली थी।

आक्षेप—हम मानते हैं कि कोई श्वेताम्बर साधु मांसभक्षक नहीं हुआ किन्तु कतिपय श्वेताम्बरीय ग्रंथकार ऐसे हुए हैं जिन्होंने शिथिलाचार पुष्ट करनेके लिये आचारांग आदि ग्रन्थोंमें साधुके लिये वैसा अनुचित विधान कर दिया है। उसको एकदम निकाल देना चाहिये। पर्दा डालनेका प्रयत्न एकदम हानिकारक है।

समाधान—श्वेताम्बर सूत्रोंमें एक जगह नहीं अनेक जगह, और एक ग्रंथमें नहीं अनेक ग्रंथों में, साधारण शास्त्रोंमें नहीं किन्तु मूलसूत्रोंमें, वे प्रकरण पाये जाते हैं, जिन्हें मांसविधायक कहा जाता है। इतिहास में न तो ऐसा कोई प्रमाण मिलता

है न श्वेताम्बरोंमें-साधुओंमें तो क्या श्रावकोंमें भी-इसका प्रचार है। तब किसीने मिलाया हो यह बात बिलकुल बेबुनियाद है। अगर मिलाया होता तो देवर्धिगणी क्षमाश्रमणके समयमें अवश्य ही अलग कर दिया गया होता, अगर बादमें मिलाया होता तो वह अवश्यही पकड़ा गया होता, और संस्कृत टीकाकार उसकी टीका भी न करते। लेकिन प्राचीन से प्राचीन टीकामें भी वह पाठ मिलता है। ऐसी हालतमें प्रक्षिप्त कहना विश्वसनीय नहीं हो सकता। अगर ये सब पाठ निकाल दिये जाँय तो यह बात तो बनी ही रहेगी कि श्वेताम्बर सूत्रोंमें मांसका विधान था जो अमुक समय निकाल दिया गया। अभीतक तो मांसविधानकी बात असिद्ध या संदिग्ध कोटिमें पड़ी है, पीछे वह निश्चित हो जायगी। जो श्वेताम्बर लोग उसे प्रक्षिप्त कहते हैं वे उतावलीमें बड़ा दुःसाहस करते हैं। जो लोग इन अवतरणोंके द्वारा मांसका प्रचार नहीं करना चाहते उनके लिये तीन उपाय हैं। (१) वे या तो चुप रहें, अथवा (२) हेमचन्द्राचार्यके समान उसका अर्थ वनस्पति रूप करें, अथवा (३) मेरे मतके अनुसार विकास वादका समर्थन करें कि धीरे धीरे मांसका प्रचार रुका है, पहिले जैनलोग भी मांसभक्षी थे आदि। जो लोग इन तीनोंमें से कोई भी मार्ग स्वीकार नहीं करते वे निःसन्देह मांसप्रचारक हैं, भलेही अपनी मांसप्रचारकताको वे खुद न समझते हों।

दिगम्बर सम्प्रदायके विद्वानोंने जिन बातोंको लेकर मेरा विरोध किया उनमें अधिकांश बातें दिगम्बर सम्प्रदायसे सम्बन्ध रखती हैं, इसलिये उनका उत्तर दिगम्बर सम्प्रदायके विरुद्ध जाता है। अगर इसी प्रकार श्वेताम्बरोंने विरोध किया होता तो उनको दिया जानेवाला उत्तर श्वेताम्बरोंके विरुद्ध जाता। इस प्रकार जिस तरह कुछ दिगम्बर मुझे श्वेताम्बरोंका पक्षपाती कहते हैं, उसी प्रकार कुछ श्वेताम्बर मुझे दिगम्बरोंका पक्षपाती कहते, जबकि वास्तवमें मैं किसीका पक्षपाती नहीं हूँ।

लेखमालाका बहुभाग तथा सत्यशोधक समाज की स्कीम इस बातका प्रबल प्रमाण है कि मैं निःपक्ष हूँ। मैं ग़लती करसकता हूँ, परन्तु पक्षपात नहीं। मेरा भविष्य जीवन भी इस बातका प्रबल प्रमाण होगा। फिर भी इतना तो कहनाही पड़ता है कि जो लोग शुद्ध विचारक हैं वे मेरी निःपक्षताको अभी भी समझ सकते हैं और जो किसी सम्प्रदायके गीत गाने का धंधा ले बैठे हैं वे क़यामत तक भी नहीं समझ सकते।

अब समय आगया है कि मैं इस प्रकारके निरर्थक आक्षेपोंके उत्तर देनेमें शक्ति बर्बाद न करूँ। इसलिये प्रामाणिक चर्चाको छोड़कर बाक़ी चर्चाओं पर यथासाध्य उपेक्षाकी जायगी। पाठक स्वयं ऐसे आक्षेपोंका उत्तर समझ लेंगे, या कभी कोई मित्र दे देंगे।

एक उचित अनुरोध।

पाठकोंने 'सत्यशोधक समाज' की स्कीम इसी अंकमें पढ़ी ही होगी। इस ढंगके समाजकी स्थापना कितनी आवश्यक है और इसके लिये लोग कितने लालायित हैं, इस बातका परिचय श्रीयुत गोकमचंद चुन्नीलालजी कोटेचा बार्शी टाउन (शोलापुर) के पत्रसे लगसकता है। जैनजगतके पाठकोंके लिये यह पत्र पठनीय होगा, इसलिये उसका मुख्यभाग यहाँ उद्धृत किया जाता है।

"आपके निःपक्ष क्रान्तिकारक साहित्यखोजी लेख जैनजगत् आदि पत्रों द्वारा पढ़कर मुझे जो समयसमय पर आनन्द होता रहा है, उसे लेखनी द्वारा लिखनेमें असमर्थ हूँ। आपका 'जैनधर्मका मर्म' बड़ी खूबीके साथ निःपक्षतासे लिखा जा रहा है। आज दिगम्बर श्वेताम्बर स्थानकवासी आदिका चालचलन वातावरण, पक्षापक्ष, रागद्वेष, साम्प्रदायिक मोह देखकर मुझसरीखे अल्पज्ञानीको भी दुःख होरहा है। उनके ढोंगोंको लिखनेमें असमर्थ हूँ।"

"इससमय सर्वधर्मे माननीय स्याद्वाद, अहिंसा

सत्य और विषयकषायत्याग आदि बातें सर्व शास्त्रोंमेंसे मथन करके निःपक्ष सच्चाधर्म-पंथ-मार्ग स्थापित करनेकी बहुत जरूरत है। द्रव्य क्षेत्र काल भावके अनुसार एक नये ढंगका उत्तम शास्त्र बनना चाहिये, और इसकेलिये एक संस्था स्थापित करके ऐसा नया समाज बनाना चाहिये जिसमें साधु और गृहस्थकी व्यवस्था बिलकुल नये ढगकी हो। उससे देश समाज और आत्माकी उन्नति हो। आपके लेखोंसे मुझे मालूम होता है कि आप इस कामके लिये पूर्ण योग्य हैं। इससमय नयामार्ग, नयाशास्त्र, नया समाज बनानेकी बड़ी जरूरत है। समयसमय पर बदलते रहनेसे ही धर्मकी नींव क़ायम रहसकती है। इसकामको करनेके लिये आपको कष्ट तो बहुत होगा, परन्तु नाम अजरामर होजायगा और उस सत्य मार्गको स्वीकार करने वालोंका सदा कल्याण होता रहेगा उस विशाल वृक्षके नीचे आत्मकल्याण के लिये आने वालोंका समाज बढ़ता ही रहेगा। इसलिये यह काम आप जरूर करनेकी कृपा करें! इसके लिये हम आपको जितनी चाहिये उतनी तन से मनसे धनसे शक्त्यनुसार सहायता हरदम करते रहेंगे। आप अवश्यही इस प्रार्थना को स्वीकार करके संतोषजनक उत्तर देनेकी कृपा करें। ढील न करें। समय परिवर्तनशील है। इसके लिये आप सरीखे पण्डित महात्माओंकी बड़ी जरूरत है।"

श्रीयुत् चुन्नीलालजीके जैसे विचार हैं, वैसे और भी अनेक सज्जनोंके हैं। उनमें सभी श्रेणीके सज्जन हैं। उन सबको चाहिये कि वे इस विषयमें अपने अपने विचार लिखें, और वे किस तरह कितनी सहायता कर सकते हैं, सूचित करें। इस कामके लिये जितने त्यागकी आवश्यकता होगी उतना करनेको मैं भी तैयार हूँ। अपने अनेक अर्थोपयोगी कामोंको भी बन्द रखकर मैं जैनजगत् के लिये प्रतिदिन चार पाँच घंटे कठोर परिश्रम करता हूँ। अब छुट्टीको भी प्रवासमें लगाता हूँ। सारा काम और बढ़े और किसी स्वतन्त्र आश्रमकी सुव्यवस्था होजाय तो मैं अपनी आजीविकाके सब काम बन्द करके सारी शक्ति और सारा समय इसी काममें लगानेको तैयार हूँ। और भी ऐसे समाज-सेवकोंकी कमी नहीं है जो बिना किसी वेतनके अपनी सारीशक्ति और सारा समय उस आश्रमको देंगे। हाँ, उनके भोजन, वस्त्रका प्रबन्ध अवश्य ही आश्रमकी तरफ़से होना चाहिये।

किसी नगरके बाहर या किनारे कोई लम्बा सा ज़मीनका टुकड़ा मिल जाय और वहाँ रहने योग्य थोड़े मकानात बन जायँ तो वहाँ प्रारम्भमें आश्रम की स्थापना कर दी जाय। प्रारम्भमें तो सिर्फ एक भोजनालयकी आवश्यकता होगी, जहाँ पर आश्रम में कार्य करने वाले तथा उसी निमित्तसे आने वाले अतिथियोंके भोजनका प्रबन्ध हो। एक अच्छीसी लायब्रेरी भी हो, तथा साहित्य प्रकाशनके लिये पूरी सामग्री हो।

श्रीयुत चुन्नीलालजी सरीखे विचार रखनेवाले अगर चार पाँच श्रीमान चाहें तो अवश्य ही इस कार्यके लिये सरलतासे व्यवस्था कर सकते हैं। प्रारम्भमें काम चलानेके लिये ज़मीन और मकानके अतिरिक्त ३००) मासिकके स्थायी प्रबन्धकी आवश्यकता होगी। इसके बाद ज्यों ज्यों काम बढ़ता जायगा त्यों त्यों धन भी मिलता जायगा। पाँच वर्ष के भीतर ही इसका काम खूब व्यापक रूप धारण कर सकता है। साधारणसे साधारण संस्थाएँ भी इससे अधिक खर्च करती हैं, जिनका कार्य बहुत ही साधारण होता है। फिर एक युगान्तकारी संस्थाके प्रारम्भके लिये इतना प्रबन्ध करना ज़रा भी मँहगा नहीं है।

प्रारम्भमें इसका मुख्य काम यही होगा कि सत्यशोधकसमाजका संदेश सरलतासे सब जगह नाना भाषाओंमें पहुँचाया जाय। इसी संदेशको नानारूपोंमें रखनेके लिये अनेक तरहके उपन्यास, कथाएँ, कविताएँ, तथा विवेचनात्मक ग्रंथ बनाये जाँय और प्रकाशित किये जाँय। आश्रममें रहने

वाले प्रकाशनके कार्यमें मदद करें, इस विषयका विशेष ज्ञान प्राप्त करें तथा समयसमय पर प्रचारार्थ भ्रमण करें। इसके अतिरिक्त बाहरसे आने वाले लोग अतिथिरूपमें महीने या दो महीने तक रहकर ज्ञान प्राप्तिका लाभ उठावें। और भी बहुतसे काम हैं जो समय आने पर किये जा सकेंगे।

किस नगरमें यह काम किया जाय, यह प्रश्न भी विचारणीय है। मुझे तो किसी भी स्थानसे रागद्वेष नहीं है, फिर भी इतना अवश्य कहना है कि किसी हिन्दीभाषाभाषी प्रान्तमें हो तो अच्छा है, नहीं तो कमसे कम उस नगरमें हिन्दीभाषियोंकी अच्छी संख्या अवश्य हो। तथा उस नगरमें कुछ श्रीमान् तथा युवक भी ऐसे अवश्य हों जो सत्यशोधक समाजके सदस्य हों, जो संस्थाकी सहायताके लिये तैयार हों। रेलवे स्टेशन हो आदि।

अभी तक तो ये सब बातें कल्पनारूपमें ही मेरे मनमें रहीं हैं परन्तु अब कार्यरूपमें परिणत करनेका समय आ पहुँचा है। मेरा स्वप्न कितना विशाल है यह बात तो समय आनेपर ही प्रकाशित हो सकेगी। अभी तो सत्यशोधक समाजकी स्थापना और उसके लिये एक स्थायी संस्थाकी जरूरत है। उसके लिये सबको अपनी अपनी योग्यतानुसार काम करना चाहिये, और शीघ्रसे शीघ्र अपने विचार और कर्तव्यकी स्वीकृतिकी सूचना मुझे देना चाहिये।
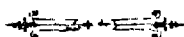
"जैनधर्मका मर्म" पर सम्मति।

(३२)

(प्रसिद्ध विद्वान् मुनि श्री फूलचन्दजी जैनधर्मोपदेशक का पत्र)

श्रीमन्, लेखके तीन चार पृष्ठ लिखनेके अनंतर जब पैंसिल घिस गई तो मैंने कलमतराशसे उसे तीक्ष्ण बनानेके लिए निश्चय किया। उसे कागज के ऊपरसे उठाया और कलमतराशके छिद्रके अर्पण कर दिया। एक मिनिटके पश्चात जब उसे बाहर निकाला तो देखता क्या हूँ कि वह तो क्रोधकी मारी लाल-काली होगई है। उसको कागज पर चलनेके लिए कहा तो वह उसीमें घुसकर रहगई और जब कुछ तेजी दिखाई तो कागजमें छिद्र कर डाला। मैं तुरन्त ताड़ गया कि मूक-निर्जीव वस्तु भी कभी हठ पर आजाती है तो वह भी इस प्रकार प्रोटेस्ट किया करती है।

मैंने कहा, आखिर इतना क्रोध क्यों? इस अप्रसन्नताका कुछ कारण? पैंसिलने कहा—पहले आप यह बताएँ कि जो बर्ताव मुझसे करते हैं अपने आपसे क्यों नहीं करते? मैंने पूछा, कौनसा सलूक? जवाब मिला कि जब मैं घिस जाती हूँ, आप मुझे तराश कर फिर काममें आने योग्य बना लेते हैं, अर्थात् आवश्यकतानुसार मेरी आकृति बदलते रहते हैं। परन्तु आपकी निजी अवस्था यह है कि सैंकड़ों शताब्दिके पुराने विचारोंमें घिरे पड़े हैं। आवश्यकता आपको पुकार पुकार कर विवश कर रही है कि अपनी धुनकी पुरानी आकृतिको बदलिए। परन्तु एक आपही हैं जो इस कानसे सुनकर उस कानसे निकाल देते हो। मैंने वार्तालाप जो सुना तो उसमें बोध था, युक्ति थी। भविष्यका परिणाम था। कुछ सोचने लगा। पैंसिलने फिर कहा कि बस, जबतक आप अपने संकीर्ण विचारोंको और पुराने विचारोंको काटछाँट कर नवीन तथा प्राकृतिक रूप न दोगे तब तक मैं लिखनेकी नहीं। मैं हैरान-आश्चर्यचकित होगया। परन्तु जब जैनजगत् आँखों और हृदयके सामने आया तो उसकी बातको अक्षरशः ठीक पाया। परचा १ अगस्तका था। इसमें जैनधर्मका मर्म और वह भी खंडान्वय करके अक्षरशः समझाया गया है। आक्षेपकको शान्तिपूर्वक समझाया है। शूद्रकी असली व्याख्या कर बताई है। इसमें सभी विषय मार्मिक और उपयोगी रहे हैं। इसके पढ़ते पढ़ते आत्मा यह एकदम मान बैठा कि देश कालानुसार संसारके सामने वैज्ञानिक ढंगसे जबतक जैनसिद्धांत को न बताया जाय तब तक इस बीसवीं शताब्दी

का जनसंसार किसी भी बातको माननेके लिए तैयार नहीं है—चाहे साक्षात् अवतार भी क्यों न साक्षी देने लगे। वास्तवमें अब वह पुराना समय गर्मीमें बर्फकी तरह ढलगया है जबकि प्रथमानुयोगकी रसभरी कथाएँ साधु और पगड़ीवाले पंडित सुनाया करते थे जिसमें कहीं चन्द्राजाको मन्त्रित डोरेसे कुक्कुट बनाया गया है, कहीं एक शरीरसे आत्माको निकाल कर हाथी–छिपकली–तोता आदिके शरीरमें घुमाया गया है। और भोले श्रोता कह देते कि जी महाराज, सत्य वचन। इन डींगोंके हाँकनेका समय तो अब लद गया। अब औपन्यासिक धर्मके स्थानमें वैज्ञानिकताने अपना स्थान लिया है। विषयको अक्ल की कसौटी पर खूब जाँच परख लिया जाता है और फिर बुद्धिकी आज्ञा होनेपर ही कहीं वह बात गले उतर पाती है।

इस प्रकारकी आवश्यकताको मैं तो चिरकालसे अनुभव कर रहा था बल्कि इन विचारोंका एक रोगसा लग गयाथा कि या तो इन उलझे हुए सैद्धान्तिक विषयोंको आर्योंकी सनातन मनुस्मृतिकी भाँति काटछाँट कर देना चाहिए या इनकी अग्नि परीक्षा की जाय। पर जैनजगत्के पढ़ते पढ़ते तो कल्पना और भी दृढ़ हो जाती है। प्रतीत हुआ कि मेरी तरह औरोंका दिमाग भी चलपड़ा है और इसे असली जामा पहनानेके लिए न्यायतीर्थभी कूद पड़े हैं। अब भेड़िया धसान और अंध विश्वास न रहना चाहिए। पूर्वकी तरह अपना चरित्रका पवित्र रूप में सुधार करना चाहिए। तंग श्रद्धाको बदलकर विशालक्षेत्र बना दिया जाय। सदियोंके पुराने ढंग के विश्वासको चूर करनेके लिए इस बीसवीं शताब्दी ने जन्म लिया है पर जो कार्य इसने अपने बचपन और जवानीमें न किया होगा वह अपनी बुढ़ौतीमें धड़ाके से कर रही है। बस, दशवर्षकी मामूलीसी बात रहगई है। हाथी तो निकल गया है, पूँछ बाक़ी है। पहलू बदलते रहो। यह भी निकल जायगी। छः द्रव्यके चारही तो द्रव्य रहगए हैं। यह बेचरदासजी का उपकार है। लेखनीका ढंग बदलते रहो। सब कुछ बदलनेमें इसीसे सुगमता होती चली जायगी। मैदान जीतकर कार्यक्षेत्रके लिए मैदान साफ़ कर देगी, और फिर कर देगी।

महाशयजी! आपकी ब्रह्मचर्यमीमांसा पढ़ी। आपने यथाशक्य नवीन और पुराने प्रमाण जड़े और खूब जड़े। यदि ज्ञातांग सूत्रसे और पांडवचरित्रसे सुकुमारिकाके उपपतिका खुल्लमखुल्ला प्रमाण लिख देते तो आपके आधुनिक प्रमाणोंमें सुनहरी रंग आजाता। समय पुराना था, मगर था विलक्षण। पिता पुत्रीके लिए स्वयं उपवर लाकर उसे पतिके रूपमें रखनेका आग्रह करता है, जिसे सुकुमारिका सहर्ष स्वीकार कर लेती है क्योंकि उसे पतिकी आवश्यकता जो थी ना? पर हाँ, आजकलकी विधवाओंको तो शायद पतिराजकी आवश्यकता ही न रह गई है। तबही तो उनसे बलात्कार शील पलवानेका अनुराध किया जाता है। और खुद दस पाँच शादी कर लेने पर भी आवश्यकता अधिक रहजानेके कारण बाजारोंकी पत्तलें चाटते फिरते हैं। साथही कमरकी हड्डी पर तड़ातड़ डंडे पड़ने पर भी अपनी उस अनन्त पुरुषपुन्याईको आवश्यकतासे बाज़ नहीं आते। बल्कि स्वर्गोंकी आवश्यकताएँ और बढ़ा बैठते हैं जहाँके विमान निराधार आकाशमें ठहरे हुए हैं, जिनमें बेचारी घनवात-तनवातके सहारेकी भी आवश्यकता शास्त्रकारोंने नहीं समझी है। हाँ, तो उनमें के देवोंका वर्णन बड़ी खूबीसे इस ढंग पर किया जाता है कि जिनसे आवश्यकताशील श्रोताओंके कबज़े टूट फूटने लग पड़ते हैं, मारे खुशीके पुण्य करते करते बाछें खिल उठती हैं। खुशीका बादल उमड़ उठता है। क्यों न उमड़े? वहाँ पर यहाँकी तरह देवोंके संभोगका वर्णन बड़ी उत्कंठासे चावसे सुना जाता है। उनके मतलबकी जो बात है, क्योंकि उनकी आवश्यकता और भी दृढ़ बन्धनमें आजाती है। हाँ, तो देव संभोग तो करते हैं ऊपरसे, और वीर्य झड़ जाता है नीचेके देवलोकमें रहनेवाली देवियों

के गर्भाशयमें। शरीर उनका वैक्रियक ही बताया जायगा। पर वीर्य औदारिकों जैसा या बनावटी। यदि बनावटी है तो बेचारे स्वर्गमें भी वाटमें ही रहेंगे। सन्तानके जब कामका नहीं तो ·········। यदि वीर्य वास्तविक है तो निकाल दो उन देवोंको उस महँगे स्वर्गलोकसे जो कि अधर विमानोंको घेरे पड़े हैं। ले आओ मानवलोकमें और बनाडालो अपना मर्त्य-बन्धु। एक भी देव आगया तो कमसे कम अपनी अपार वैक्रियक शक्ति द्वारा स्वराज्य तो दिलवा ही देगा, जिसकी आधी सदीसे राह जो रहे हैं। क्या वह एक चिटुकी चले इतनेमें जम्बूद्वीपकी सात परिक्रमा करनेवाला देव इतना काम भी न कर सकेगा? पर यह सबकुछ हमारी इच्छानुसार हो जाना कोई खालाजीका घर नहीं है।

इसीसे मिलती जुलती एक और बात याद आ जाती है। जब भगवान ऋषभदेव स्वामीका निर्वाण अचानक होगया, तब देवेंद्र उसी समय देवगणके साथ प्रभुका अग्नि संस्कार करने आए, और वायुकुमार तथा अग्निकुमारको आज्ञा दी कि इन चंदन की चिताओंको चेतन करो। वे भी उन तीन प्रकार की चिताओंको आगसे जाज्वल्यमान करते हैं, और आँसू बहाकर खूब रोते हैं। ओह! गजब! रोके रुकते भी न थे। भला जिनका वीर्य स्खलित हो सकता है, उनको आँसुधाराका गिराना कोई बड़ी बात नहीं है। आँसु तो गिरपड़ कर वहीं रह गए होंगे, पर वीर्यको तो कई राजू नीचे एक क्षणमें पहुँचाना पड़ता है—देवाणं मणसाणं—वाह खूब! यह भी एक ही हुई, लोग सुनकर मुझसे पूछते हैं कि क्या मानवोंकी भाँति देवोंकी आँखोंसे भी अश्रुपात होता है? अगर होता है तो वैक्रियक शरीर और आँसुओं का आना शशक शृंगवत् कह सकेंगे। अगर नहीं कहोगे तो कहना पड़ेगा कि यह मायाजाल था जो एक प्रकारसे बनावटी माना जायगा, जिससे कमसमझोंकी आँखोंमें धूलसी फैंकी जाना सिद्ध होगा, यदि कहोगे कि आँसू थे तो क्या वैक्रियक शरीरका खंडन हमारे आचार्योंको भी अभीष्ट था? पर हम यह नहीं मान सकेंगे! शरीर तो उनको वैक्रियक ही मिला था, और वही रहेगा जो भगवानने फर्माया है, पर यह हम कहेंगे कि आँखें अवश्य थी पर उनमें आँसू न थे। पर यह सब उन्होंने विलापात किया किस लिए? तो इसके लिये अधिक झेंपनेकी कोई आवश्यकता नहीं। देव यहाँ जो काम करते हैं लोकोंमें मर्यादा बाँधनेके अर्थही करते हैं। और यह सबकुछ करना धरना रामका सीताके वियोगमें रोनेकी तरह औरोंके लिए मर्यादा पुरुषोत्तम बनकर मर्यादा बाँधनेका था। नहीं तो दिक्कुमारियोंका उत्सव और इन्द्र तथा देवोंका न्हवनाभिषेकका अनुकरण आज भी जैनलोक क्यों करते? देवोंने नंदीश्वर द्वीपमें अठाई महोत्सव किया था। उनका अनुकरण जैनबन्धु भी बड़े चावसे करते हैं। हाँ तो इसी प्रकार इनके इस रोने धोनेकी बातका भी शायद यही अर्थ निकलता है कि इसका अनुकरण भी मानव संसार करे। पर मुझे यह और स्मरण हो उठा कि रोएँगे तो अनुकरण करनेके लिए, पर रोने धोनेके अनन्तर उनके आँसू कौन पूछेगा? हाँ, बात भी पतेकी है उत्तरभी पतेका है और सुगम है वे आँसू। आज बीसवीं शताब्दीमें जैनजगत द्वारा पोछे जारहे हैं, जिससे आज लोकोंमें स्वयं विचारशीलता आ गई है।

जो रचना सर्वज्ञ परमात्माकी आड़में की गई है, जिसे विचार क्षेत्र पर लानेसे उसकी वास्तविकताका एकदम पता लग जाता है, और लोकोंको देव सुख तकके प्रलोभनमें फँसाया जाता है। आज जैनजगत् जैनसंसारको उस गर्तसे निकालनेमें एकदम सिद्धहस्त होगा। उसमें आज खरे समालोचक पैदा होगए हैं। वे वीर परमात्माका वास्तविक सिद्धान्त संसारके कोने कोने में पहुँचानेका सतत प्रयत्न कर रहे हैं। आज उन्होंने उस मोतोके तीसरे परदेका रेत निकाल फैंका है जिसमें आपको यह भ्रम था कि यह तो वास्तविक ही है। मैं आशा करता हूँ कि जैनजगत्के द्वारा संसार सच्चा अनेकान्ती बनेगा।

उनके दिलोंमें सच्ची दयाकी लगन पैदा करेगा। जाति पाँतिका पहलेकी तरह अब इस संघमें कोई भेदभाव न रहेगा। गुणस्थान पर चढ़नेवाला कभी पातकी रह सकता है ? कभी नहीं, हरगिज़ नहीं। आत्माकी स्थायी भाव गुणस्थान पर ही मिलेगा। इस युगकी माँग भी यही है, मानो उसे पूरा करनेके अर्थही जैन-जगतकी सृष्टि की गई है। इसने जन्म लेकर अपनी विश्वमयी चिनगारी पैदा की है। आशा है इन चिनगारियोंसे लाभ उठाकर उन्हें लोक अपनेमें सेवण करेंगे और भ्रम तथा अंध विश्वासको जला बलाकर भस्मसात् कर डालेंगे। मुझे कहना चाहिए कि यह जैनोंका एक अग्निपरीक्षाका समय है। इसमें से पूरा उतरना प्रत्येक जैनबन्धुका मुख्य कर्तव्य है। इस अग्निपरीक्षामें जातिवाद–संप्रदायवाद–टोलावाद–गच्छवाद–पूँजीपतिवाद–सत्तावाद, हुकूमतवाद–वेषवाद–जीहुज़ूरवाद इत्यादिकोंको जलाकर एक सुवर्णकी भाँति स्याद्वाद–अनेकान्तवादको संसारके सामने चमकाकर दिखावें जिसमें हम सब एकताके सूत्रमें ओतप्रोत होने दीखें। —जैनभिक्षु फूलचन्द्र।

क्या जैनधर्म नवयुगका विश्वधर्म हो सकता है ?

(लेखक—श्रीयुत प्रेमचन्द्रजी मोदी बम्बई)

अब हम हिन्दुस्तानकी ओर आते हैं। यहाँ समाज बहुत पिछड़ा हुआ है यहाँकी परिस्थितियाँ बिलकुल ही जुदी हैं। यहाँपर न तो पाश्चात्य प्रकारका कम्यूनिज्म ही इस समय पनप सकता है और न पाश्चात्य फासिज़म ही। यहाँ के पूँजीवादने अपनेको धर्मकी, वर्णव्यवस्थाकी, सामाजिक रूढ़ियोंकी तथा राजनैतिक गुलामी—विदेशी शासन—की ढालोंके पीछे छिपा रक्खा है। इस देशमें पाश्चात्य प्रकारका कम्यूनिज्म या फासिज़म चमके इसके पहले इन सब ढालोंको तोड़ना अनिवार्य है। यहाँका पूँजीवाद इतना प्राचीन है कि वह यहाँ के लोगोंकी जन्मघुट्टीमें मिल गया है। पूँजीवादियोंने अपनी रक्षाके लिये यहाँ के धर्मके ठेकेदारोंको मालपुये दान वगैरहके रूपमें रिश्वतें दे देकर ऐसे ऐसे धार्मिक विश्वासोंको पैदा करवा दिया है कि उन्हें दूर करना बड़ी ही टेढ़ी खीर है। यह सब कैसे हुआ, उसका थोड़ा दिग्दर्शन यहाँ कराया जाता है।

अन्य देशोंकी भाँति हिन्दुस्तानमें भी किसी जमानेमें दो वर्ग थे। एक तो पैसेवाले या पूँजीपति, दूसरे दरिद्र या मजदूर। पूँजीपतिवर्ग शायद विदेश से आया था और यहाँ के लोगोंको उसने गुलाम करार दिया। पूँजीपतिवर्गने दूसरे वर्गके लोगोंको उसी तरह नीच समझना आरम्भ कर दिया जैसे कि यूरोपमें आजकल होता है। धीरे धीरे यूरोपके समान ही दोनों वर्गोंमें पारस्परिक व्यवहार होना बन्द होगया। नियमानुसार पुनर्विवाह आदिकी कोई बन्दी न होने पर भी आजकलके यूरोपके पूँजीपतिवर्गके समान उनमें भी स्त्रियोंके पुनर्विवाह होना बन्द हो गये। यूरोपके पूँजीपति श्रमिकवर्गकी कन्या लेना या देना जिस प्रकार बुरा समझते हैं, उसी प्रकार भारतमें भी यह बुरा समझा जाने लगा और जिन्हें कि आजकल विजातीयविवाह कहते हैं, बन्द हो गये। धीरे धीरे पूँजीपतिवर्गमें भी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यके भेद धन्धे—रोज़गारके सम्बन्धसे पड़ने लगे। इस अप्राकृतिक वर्णभेदने धीरे धीरे धर्मका रूप लेना शुरू किया। धर्मके नामसे इन भेदोंके पोषणके लिये अनेक नियम बनाये गये।

इसलिये यदि हमें पूँजीवादका नाश करना है तो हमें चाहिये कि हम पीछेकी ओरसे शुरू करें। पहले तो वर्ण, जाति आदिके भेदोंका लोप करें, विजातीयविवाह, विधवाविवाह आदिका प्रचार करें, और जब सब भेदभाव लुप्त हो जाय—सिर्फ दो ही

भेद रह जायँ—पूँजीपति तथा श्रमिक—तब पाश्चात्य कम्यूनिज्म या फासिज्मकी रीतियाँ काममें लाकर इन भेदोंका भी नाश कर दें।

पाठक लोगोंको समझनेमें यह भूल न करना चाहिये कि रूस या किसी देशमें सतयुगका प्रारम्भ हो गया है, परन्तु हाँ, यह अवश्य है कि वे उस दिशामें हम सबसे बहुत आगे बढ़ चुके हैं। जो उपाय वे काममें लाये, वह आवश्यक नहीं है कि हम भी उन्हें ही काममें लायें। वहाँ तक पहुँचनेके और भी मार्ग हो सकते हैं। अपनी परिस्थितियोंके अनुकूल हमें मार्ग ढूँढ़ लेना चाहिये।

यूरोपमें सामाजिक और राजनैतिकक्षेत्रमें जो हेरफेर हो रहे हैं उसमें केवल यांत्रिकोंका या वैज्ञानिकोंका ही हाथ नहीं है, उसमें बड़े बड़े दार्शनिकों और विचारकोंका भी हाथ है। डार्विन, नीट्शे, हेगल, रूसो, रसेल प्रभृति महान दार्शनिकोंने अपनी सतत् खोजोंके द्वारा मानवप्रकृतिके रहस्योंका जो अन्वेषण किया और उन्हें प्रकट किया उसका वहाँ के सामाजिक और राजनैतिक विचारों पर बहुत ही गहरा प्रभाव पड़ा। साम्यवादके आचार्य कार्लमार्क्स दार्शनिक विचारोंमें हेगलके अनुयायी थे। मुसोलिनी प्रभृति लोग नीट्शेके अनुयायी हैं। दार्शनिक वह व्यक्ति है जिसकी और जिसके विचारोंकी पहुँच तीनों कालों और तीनों लोकोंमें हो। वह मर्वज्ञ है, वह सर्वशक्तिशाली है, वह दुनियाँकी आँख है, वह दुनियाँ के कान है और वह दुनियाँकी शक्ति है। भारतवर्षमें भी महावीर और बुद्धने लोगोंके सामाजिक और राजनैतिक जीवनपर अमिट छाप मारी है।

दुनियाँ में आकर यह जीव निरन्तर तरह तरह के धन्धे और द्वन्द्व किया करता है। इन सबके पीछे उनमें कौनसी मनोवृत्ति काम करती है? जीवके प्रत्येक हलनचलनके पीछे उसकी कौनसी वृत्ति उसका संचालन कर रही है? जीवकी मूल इच्छा क्या है? आदि प्रश्नोंका उत्तर अनेक दार्शनिकोंने अनेक तरहसे दिया है, और उनके विचारोंकी समाज पर अमिट छाप पड़ती है। निम्न श्रेणीके जानवरोंकी मनोवृत्तिका अध्ययन तपस्याके रूपमें वर्षों करके डार्विनने खोज निकाला कि जीवकी मूल भावना और मूल इच्छा जिजीविषा है और यह दुनियाँ अस्तित्वके युद्धका क्षेत्र है। योग्यतम व्यक्ति ही इस युद्धमें से विजेता होकर बाहर निकलता है, अयोग्य व्यक्ति नष्ट हो जाते हैं। इसके बाद महान दार्शनिक नीट्शेने कहा कि नहीं, जीवके भीतर जिजीविषा मुख्य इच्छा नहीं है; जीवकी मूलभावना शक्ति प्राप्त करना है, परिस्थितियों पर विजय प्राप्त कर शासन करना है। इस इच्छाने ही जीवका मनुष्यरूपमें विकास किया है और यही इच्छा उसकी वर्तमान उन्नतिका मूल कारण है। डार्विनने जिसे "जीवन-युद्ध" कहा है वह वास्तवमें "अधिकारका युद्ध" है। इन दोनोंसे आगे बढ़कर बुद्धने कहा कि नहीं, जीवकी मूल इच्छा "दुःखोंपर विजय प्राप्त करना है"। भगवान महावीरने कहा—नहीं, जीवकी मूल-इच्छा "स्वातन्त्र्य प्राप्त करना है, Will to Freedom" है। यही मत आधुनिक पाश्चात्य Russel प्रभृति दार्शनिकोंका है। पाश्चात्य आधुनिक दर्शन का जन्म भी प्राचीनतम वेदोंके "जीवेम शरदश्शतम्" के दर्शनसे हुआ और अन्त भारतीय दर्शनों में अन्तिम जैनदर्शनकी 'स्वातन्त्र्य'—समस्त कर्मों, समस्त परिस्थितियोंसे स्वतन्त्र होनेकी भावनासे ही हुआ है। डार्विनने यूरोपीयन राष्ट्रोंमें अपनेसे कमजोर राष्ट्रोंको खा जानेकी भावना उत्पन्न की—ठीक उसी प्रकार जैसे कि वैदिक दर्शन वेदान्तने प्राचीन आर्योंमें यह इच्छा पैदा की। वेदान्तका ईश्वर समस्त जीवोंको खाकर मोटा होने वाला प्राणी है। नीट्शेने जर्मनी आदि राष्ट्रोंमें सर्वशक्तिशाली होने की भावना उत्पन्न की जिसका कि परिणाम महायुद्ध हुआ। हेगल और रसेलने व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य की भावना पैदा की कि जिसका परिणाम साम्यवाद या समाजवादमें हुआ और जो वर्तमान रूसकी उत्पत्ति

का प्रधान कारण हुआ । हेगल और भगवान् महावीर स्वामीकी भावना एक ही है, परन्तु भगवान महावीरको वह उर्वर क्षेत्र नहीं मिला जो कि यूरोपियन स्वातन्त्र्यवादी या साम्यवादी दार्शनिकोंको मिला । व्यक्तिगत स्वातन्त्र्यवादका नाम ही साम्यवाद है । साम्यवादने जिस आदर्श राष्ट्रकी कल्पना की है उससे भगवान् महावीरकी सुखमा सुखमा कालकी कल्पना विभिन्न नहीं है । हाँ, जैनग्रन्थोंमें उस भावनाने कुछ रूपककी सी परिस्थिति प्राप्त कर ली है, परन्तु वह अत्यन्त स्पष्ट है ।

इस समय सारी दुनियाँ युद्धके नामसे त्राहि त्राहि पुकार रही है, फिर भी युद्ध अपनी विकराल सूरतमें सामने खड़ा मालूम होरहा है । युद्धकी तैयारी और शस्त्रास्त्रों का प्रत्येक राष्ट्रपर इतना भार लदा हुआ है कि उसके मारे प्रत्येक राष्ट्र दबकर मरा जा रहा है । युद्ध क्यों होते हैं, तथा इस समय शस्त्रास्त्रों की वृद्धि का क्या कारण है, इसपर विचार करनेपर यह बात अपने भीषण रूपमें स्पष्ट होजाती है कि इसका कारण पूँजीवाद ही है । पता लगता है कि गत महायुद्धके कुछ ही दिन पहले और युद्धकालमें भी फ्रान्सके अनेक पूँजीपति कारखाने युद्धकी बहुत सी सामग्री गुप्त रीति से जर्मनी को बेचते थे तथा जर्मनीके बहुतसे कारखाने गुप्त रीतिसे युद्धसामग्री बारूद आदि फ्रान्सको बेचते थे । लाखों मनुष्योंके खूनपर तुच्छ धनके लिए देशद्रोह करते हुए पूँजीपतियोंको जरा भी शर्म नहीं लगती विभिन्न देशोंको युद्धके लिये उकसानेमें तोपों और बारूदके कारखानेवाले पूँजीपति करोड़ों रुपया वहाँके राजनीतिज्ञों को रिश्वतमें खिला देते हैं । जर्मनी की नाजी पार्टीको वहाँ के क्रूसके कारखानेने करोड़ों रुपयोंकी इसीलिए मदद दी कि इस पार्टी के हाथ में शासन आनेपर उनसे वह गोला बारूद और तोपोंके ऑर्डर प्राप्त करे । भारतवर्षमें भी सत्याग्रह और असहयोगके आन्दोलनोंमें मिल मालिकोंने लाखों रुपये की मदद इसीलिए दी कि जिसमें स्वदेशीके प्रचारसे उन्हें करोड़ों रुपयोंकी कमाई हो । परन्तु, जब कांग्रेस असफल होने लगी तब उन्होंने भी अपना हाथ रोक लिया । इतना ही नहीं, फिर उन्हें इंगलैण्ड और जापानसे देशद्रोहपूर्ण समझौते करनेमें भी शर्म न आई ।

युद्धका नाश पूँजीवादके नाशसे ही हो सकता है । महावीरस्वामीके सम्पूर्ण अहिंसाके सिद्धान्तके आदर्श तक पूँजीवादके नाशसे पहुँचा जासकता है । भगवान महावीरकी आदर्श सामाजिक व्यवस्था भी पूँजीवादके नाशसे ही प्राप्त हो सकती है ।

जैनधर्म भी पूँजीवादके नाशका पक्षपाती है । दुनियाँ का प्रत्येक धर्म पूँजीवादके नाशका पक्षपाती है । ईसाई और मुसलमान धर्मके अनुसार भी पूँजीपति धनिक स्वर्ग प्राप्त नहीं कर सकता । भारतवर्षके धर्म भी स्वर्ग या मोक्षप्राप्तिके पूर्व दानादि मार्गोंसे पूँजीवादके नाश करनेके पक्षपाती हैं । परंतु दान धर्मके मार्ग असामयिक और पुराने होगये हैं । अब नूतन मार्गोंकी आवश्यकता है ।

हम पूँजीवादके विरोधी हैं, पूँजीपतियोंके नहीं । साम्यवादके अधिकांश नेता जमींदारों, राजकुमारों और पूँजीपति वर्गके हुए हैं, यह न भूलना चाहिए । जैनधर्मके प्रचारक, तीर्थंकर, आचार्य भी अधिकांश पूँजीपति वर्गके ही थे, परन्तु वे पूँजीवादके कट्टर विरोधी थे । हालमें बर्नार्डशा ने अपने एक नये नाटकमें कहा है कि पूँजीपति लोग साम्यवादके उतने विरोधी नहीं हैं जितने कि वे महत्वाकांक्षी लोग जो पूँजीपति होना चाहते हैं । उनका कहना यह भी है कि पूँजीपति सबसे अधिक अशांत और दुखी हैं ।

क्या जैनधर्मके अनुयायी नवयुगके स्वागतमें तथा नेतृत्वमें किसीसे पीछे रहेंगे ? यदि रहेंगे तो वे अपने धर्मको शर्माएँगे, अपने तीर्थंकरोंका नाम डुबायँगे !

सांप्रदायिकताका दिग्दर्शन।

(१२)
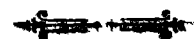
(ले०—प्रो० पं० सुखलालजी ।)

[अनु०—श्रीमान् जगदीशचन्द्रजी जैन ऐम० ए०]

इस लेखमालाके गत लेखोंमें वैदिक साहित्यका उपयोग किया गया है। इस लेखमें जैनसाहित्यका उपयोग किया जायगा। प्राचीनकालमें जैनसाहित्य का विभाग * वस्तुकी दृष्टिसे किया गया है। यह विभाग बहुत व्यापक और सर्वसम्मत है। पश्चिमीय विद्वान् ‡ नयीदृष्टिसे जैनसाहित्यका विभाग करते हैं। प्रस्तुत लेखमें ऐतिहासिक और तुलनात्मक दृष्टि की प्रधानता है इसलिये जैनसाहित्यके दूसरे भागको एक तरफ रखकर उपयोगिताकी दृष्टिसे जैनसाहित्य का निम्नरूपसे विभाग किया जाता है।

१–आगम, २–चरित, ३–खंडनात्मक, ४–तर्क।

पहले विभागमें, प्राचीन और आगम आगमों की सम्पूर्ण व्याख्यायें दूसरेमें, मध्यकालमें बनाये हुए कथा, आख्यान, आख्यायिका आदि जीवन वर्णन करने वाले ग्रन्थ तीसरेमें, मुख्यतया दूसरे मतका खंडन करके अपना मत स्थापित करनेकी दृष्टिसे लिखे हुए शास्त्र तथा चौथे विभागमें प्रमाण प्रमेयका तर्क पद्धतिसे निरूपण करनेवाले ग्रन्थोंका समावेश होता है।

श्वेताम्बर सम्प्रदायका साहित्य उक्त चार विभागोंमें उपलब्ध होता है, लेकिन दिगम्बर सम्प्रदायमें आगम को छोड़कर बाकी तीन विभाग ही पाये जाते हैं।

जैनसाहित्यमें आगम मुख्य है। वेद और त्रिपिटककी तरह यद्यपि आगमोंकी पाठसंकलना, विभाग-व्यवस्था और संशोधन यह सब रचनाके समयके पीछे हुआ है, फिर भी आगमसाहित्यकी प्राचीनता लुप्त नहीं हुई है। विशिष्ट विचार-प्रवाह, भाषाका प्राचीनरूप और बहुतसे वर्णन वगैरह इस जैन परम्पराका समर्थन करते हैं कि मूल आगम गणधरोंके रचे हुए हैं। आगमोंकी रचनाका समय भगवान् महावीरके नजदीकका समय समझना चाहिये।

यह समय दीर्घतपस्वी महावीरके द्वारा जीवन में उतारे हुए अहिंसाप्रधान आचार और अनेकांत-प्रधान विचारसरणीकी स्थापनाका समय था। इस समय महावीरके जीवन आचार-विचारोंको अपने अपने जीवनमें उतारकर अपने सिद्धान्तकी स्थापन करनेकी ही भावना महावीरके शिष्योंमें मुख्य थी। उससमय आन्तरिक योग्यताको ही मान दिया जाता था और उसी ढंगसे क्रांतिका काम चलता था। उस समय अपने विरुद्ध आचार-विचारोंका निरसन आदर्श जीवनसे होता था, केवल शब्दसे नहीं। इस युगमें भगवान् महावीरके सिद्धान्तोंके रचनात्मक कार्यकी मुख्यता और विरोधी मन्तव्योंके खंडनात्मक कार्य की गौणता थी। अनुयायियोंकी संख्याकी अपेक्षा योग्यताके प्रमाणकी ओर विशेष ध्यान दिया जाता था तथा उसी ढंगसे स्वपक्षके निर्माणका कार्य चलता था। अपने सिद्धांतके ऊपर अचल और जागरूक श्रद्धाके कारण यद्यपि उससमय प्रचलित और अपने को भ्रान्त मालूम होने वाले अनेक आचार-विचार-विषयक मन्तव्योंके सम्बन्धमें अपना विरोध स्पष्टरूपसे बताया जाता था परन्तु फिर भी उस विरोधी मन्तव्यको धारण करनेवाले व्यक्ति या समूहके विषयमें द्वेषवृत्ति न रखकर केवल उदासीनताका भाव ही रहता था।

इसीलिये आगमग्रन्थोंमें से बहुतसे आगमोंमें दूसरे मतोंका निरसन अथवा उन मतोंका उल्लेख करते समय किसी व्यक्ति या पक्षविशेषका नाम नहीं पाया जाता। आगमोंमें केवल दूसरे मतके विरोधसूचक मिथ्यादृष्टि, अनार्यदर्शन, बाल, मन्द आदि शब्दही

* द्रव्यानुयोग, चरणकरणानुयोग, गणितानुयोग, धर्मकथानुयोग। इसके लिये देखो "पुरातत्त्व" वर्ष २ पृ० १२२, पं० बेचरदासजीका लेख।

‡ तत्त्वविद्या, विश्वविद्या, जीवविद्या और मानसशास्त्र। विस्तारके लिये देखो प्रो० लोयमान लिखित निबंधका गुजराती अनुवाद "बुद्ध और महावीर" पृ० ३१

पाये जाते हैं। आगमोंके इन स्थलोंको गम्भीरतासे पढ़ने पर आगमोंमें साम्प्रदायिकता न होनेकी मन पर छाप पड़ती है। आगमोंमें केवल स्वसिद्धान्तकी जागरूक श्रद्धा और श्रद्धासे प्रामाणिक रूपमें होने वाला परमतका विरोध दिखाई देता है।

जैनसाहित्यमें मूल आगमके बाद दूसरा स्थान आगमोंके व्याख्याग्रंथोंका है। आगमोंके व्याख्या-ग्रन्थ मुख्यरूपसे निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि और टीका इन चार विभागोंमें बाँटे जासकते हैं। इन चारोंमें निर्युक्ति प्राचीन है। निर्युक्तिके कर्ता आचार्य भद्रबाहु माने जाते हैं। भद्रबाहु मौर्यसम्राट चन्द्रगुप्तके समकालीन थे। ये भद्रबाहु भगवान् महावीरके १०० बरस बीत जानेके बाद हुए। इससमय पहलेकी परिस्थिति सम्पूर्णरूपसे क़ायम नहीं रही थी। इस युगमें सिद्धान्त-स्थापनाके कार्यके साथ पहले स्थापित किये हुए स्वपक्षके रक्षणका कार्य भी आरम्भ होगया था और इसीकारण विरोधी पक्षका मुक़ाबला करना और उसे यथाशक्ति परास्त करनेका कार्यभी चलने लगा था। राजसभामें जाने और राजाके आश्रयमें अपने पक्षकी सुरक्षितता देखने का पराभवी प्रसंग सब लोगोंको समानरीतिसे मिला था, तथा परपक्षकी पराजयमें ही स्वपक्षका तेज है इस भावनाको स्वीकार करने और इसका प्रचार करने की परावलम्बी प्रथा सब सम्प्रदायोंमें शुरू होगई थी। उससमय विरोधी मतवाले व्यक्ति या समूहका अपमान करनेका भाव और प्रवृत्तिका जन्म भी हो गया था। उस ज़मानेका कोई भी सम्प्रदाय इस परिस्थितिसे मुक्त नहीं था। यद्यपि इससमय तक मध्यकालकी साम्प्रदायिक कटुता प्रविष्ट नहीं हुई थी, तो भी स्वपक्षराग और तज्जन्य परपक्षद्वेषका थोड़ा थोड़ा वातावरण अवश्य तैयार होगया था।

इस वातावरणका प्रतिघोष हम निर्युक्तिमें देखते हैं। निर्युक्तिकार श्री भद्रबाहु महाविद्वान् और तपस्वी थे परन्तु फिरभी उनकी निर्युक्ति पढ़नेसे पता लगता है कि भद्रबाहुको भी साम्प्रदायिकताके सहवासी वातावरणसे अलग रहना बहुत कठिन होगया था। भद्रबाहुके सामने अनेक प्रतिपक्षी थे। इन प्रतिपक्षियोंमें बौद्ध और वैदिक दर्शनसे उसीसमय निकली हुई परस्पर विरोधी शाखायें भी थीं। इन प्रतिपक्षियोंमें मुख्य रूपसे बौद्ध, याज्ञिक, सांख्य, वैशेषिक और आजीवक पन्थ थे। निर्युक्तिमें भरत-चक्रवर्ती द्वारा ब्राह्मणवर्णकी स्थापना, ब्राह्मणोंको दान देनेकी शुरू होनेवाली प्रथा और असली आर्य वेदोंकी रचना होनेके वर्णनकी तरह जो सांख्य और वैशेषिक दर्शन वगैरहकी उत्पत्तिके सम्बन्धका वर्णन किया है उससे मालूम होता है कि निर्युक्तिमें उस समयकी साम्प्रदायिकताका प्रतिबिम्ब आचुका था।

निर्युक्तिमें यत्र तत्र जो साम्प्रदायिकताके बीज पाये जाते हैं तथा जो बीज आगे चलकर चरित-साहित्यमें वृक्ष और महावृक्षका रूप धारण करते हैं, वेही बीज भाष्य, चूर्णि और टीकाग्रन्थोंमें क्रमसे अंकुरित और बढ़ते हुए दिखाई देते हैं। भाष्य, चूर्णि और टीकाकी साम्प्रदायिकतासूचक बातें, निर्युक्तिकी संक्षिप्त सूचनाओंका विविध विस्तार और पूर्ति मात्र है। भाष्य, चूर्णि और टीकाकी रचना मध्यकालमें हुई इसलिये उनमें उस समयकी ब्राह्मण पुराणकी साम्प्रदायिक कटुकता तथा प्राचीन आगम की तटस्थताकी कमी दृष्टिगोचर होती है।

चरित, खंडनात्मक और तर्क इन तीनों विभागों की साहित्यरचना भी मध्यकालमें होनेसे यह साहित्य इससमयकी फैली हुई साम्प्रदायिकताकी विषवल्लीके कटुकतम फलोंसे मुक्त रहा हो, यह सम्भव नहीं है।

इन सब साम्प्रदायिकताके कुछ नमूनोंको हम ऐतिहासिक दृष्टिसे आगे चलकर उपस्थित करेंगे। परन्तु इन नमूनोंके उल्लेख करनेसे पहले उन्हें स्पष्ट प्रकारसे समझनेके लिये कुछ आवश्यकीय बातें कह देना ज़रूरी है। (क्रमशः)
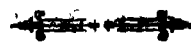
पत्रोंकी प्रतिध्वनि।

जैन महिलाओं की जागृति।

अलाहाबादकी अग्रवाल महिला कान्फरेंसकी सुधारप्रियताका परिचय पानेके कुछ दिन बाद ही बम्बईसे समाचार मिला है कि वहाँ जैन-महिला-परिषद्में अनिवार्य वैधव्यप्रथाके विरुद्ध प्रस्ताव पास किया गया है। इसके पहले वहाँ जैन कान्फरेंस का महत्त्वपूर्ण अधिवेशन हुआ था, पर उसमें ऐसा प्रस्ताव पेश करनेका साहस कोई न करसका। यह देखकर स्त्रियोंने आगे क़दम बढ़ाया और समाजके सामने वस्तुस्थितिको रख दिया। परिषद्की अध्यक्षा श्रीमती मंगल बहिनने स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि—"जिस समाजमें विधवायें दुःखके गरम आँसू बहाती होंगी, जिस समाजमें विधवाओंका सदा अपमान किया जाता होगा, जहाँ विधवाओंको मानवीय अधिकार प्राप्त न होंगे और वे एक गुलामकी तरह जीवन बिताती रहेंगी, उस समाजका कभी उद्धार नहीं होसकता।" आश्चर्य है, यदि एक महिलाके इन उद्गारोंको सुनकर भी जातीय नेताओं की आँखें न खुलें! वैधव्यका प्रश्न खासकर स्त्रियों से ही संबंध रखता है और यदि वे उसे दिलसे पसन्द नहीं करतीं अथवा उसके अनुसार आचरण करने को तैयार नहीं होतीं, तो फिर उसका कोई अर्थ ही नहीं है। ऐसी दशामें वे कायासे, वचनसे अथवा मनसे अवश्यही वैधव्य-व्रतसे डिग जायँगी। इसलिये समाजका कल्याण इसीमें जान पड़ता है कि स्त्रियोंको अवांछनीय रीतिसे इस व्रतसे डिगने की अपेक्षा पहले हीसे उनको इस विषयमें स्वतंत्रता दे दी जाय। —"चाँद"

ज़ारो आग़ाकी जीवनचर्या।

तुर्किस्तानमें ही नहीं बल्कि दुनियाभरमें वयोवृद्ध ज़ारो आग़ा अभी इस्तंबुलमें १६० वर्षकी उमर में मृत्युको प्राप्त हुए हैं। ज़ारो आग़ा क़रीब १४५ वर्ष पहले नेपोलियनके विरुद्ध सीरियाके युद्धमें लड़े थे। मृत्युके समय आपकी ८८ वर्षकी लड़की और ग्यारवीं स्त्री मृत्युशय्याके पास उपस्थित थीं।

सन् १९३० में ज़ारो आग़ा अमेरिका गये थे और इस्तंबुल लौटते हुए रास्तेमें लंदन भी उतरे थे। उससमय एक पत्रके प्रतिनिधिने आपसे मुलाक़ात की थी। अपनी दीर्घायुका मर्म समझाते हुए ज़ारो आग़ाने पत्र प्रतिनिधिको कहा था—"मैं कभी भी मद्यपान या धूम्रपान नहीं करता हूँ। मेरे दाँत गिर गये हैं इसलिये मुझे शाकाहार बहुत अच्छा लगता है। मैं एक स्त्री के मरने पर दूसरी, तीसरी शादी करता गया। इससमय मेरे ग्यारवीं स्त्री है। इस स्त्रीके साथ चार वर्ष हुए मैंने विवाह किया है। मेरे ३६ लड़के हैं जिनमें सबसे बड़ेकी उमर १०१ वर्ष की है। इस लड़केकी लड़की ७६ वर्षकी है।

"दीर्घायुष्यके लिये मैं कोई विशेष प्रयत्न नहीं करता। खुली हवाका मैं बहुत सेवन करता हूँ। मैं किसान हूँ इसलिये खेतमें काम करता हूँ और इसी कारण मैंने तम्बाकूका स्पर्श भी नहीं किया है। आज कल भी भूख लगनेपर मैं तीनबार दूध, भाजी और रोटी खाता हूँ।

"मेरा जन्म सन १७७३ में हुआ था। उस समय जन्म लिखे जानेका रिवाज नहीं था। जिस समय से यह रिवाज शुरू हुआ उस समय १२५ वर्षसे ऊपरकी उमरके ५०० आदमियोंमें से मैं सबसे बड़ा था, इसलिये सरकारने मुझे मुफ़्तमें ही यात्रा करने की इजाज़त दी थी। मेरे जीवनमें तुर्किस्तानमें बारह सुलतानोंने राज्य किया है।

"मैं खूब घूमता हूँ, न्यूयार्कमें रोज दो मील चलता था। रातको प्रतिदिन नौसे दस घंटे तक सोता हूँ। अबतक मुझे कोई विकार नहीं हुआ है। मेरा हृदय खूब मजबूत है।

"१४१ वर्ष पहले रशियामें नैपोलियनके विरुद्ध लड़नेवाले अंग्रेज़ोंको मैंने देखा है। महायुद्धकी लड़ाईमें मेरे छह घाव हुए थे। मैं सौवर्ष पहले तुर्कों की तरफसे युद्धमें लड़ा था, इसलिये मुझे अब भी पेन्शन मिलती है। —"प्रजाबन्धु"

मानव-धर्म ।

(ले०—श्री० पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार)

मानवधर्म मानवोंमें नहिं
करना घृणा सिखाता है;
मनुज-मनुजको एक बताता
भाई-भाईका नाता है ।
असली जातिभेद नहिं इनमें
गो-अश्वादि-जाति-जैसा;
शूद्र-ब्राह्मणीके संगमसे
उपजे मनुज, भेद कैसा ? १॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र
ये भेद कहे व्यवहारिक हैं,
निज-निजकर्माश्रित, अस्थिर,
नहिं ऊँचनीचता-मूलक हैं ।
सब हैं अंग समाज-देहके, क्या
अन्त्यज, क्या आर्य महा,
क्या चाण्डाल-म्लेच्छ, सबहींका
अन्योऽन्याश्रित कार्य कहा ॥२॥

सब हैं धर्मपात्र, सबही हैं
पौरिकता*के अधिकारी;
धर्मादिक अधिकार न दे जो
शूद्रोंको वह अविचारी ।
शूद्र तिरस्कृत-पीड़ित हो
निजकार्य छोड़दें यदि सारा,
तो फिर जगमें कैसी बीते ?
पंगु समाज बने सारा !!३॥

गर्भवास औ' जन्मसमय में
कौन नहीं अस्पृश्य हुआ ?
कौन मलों से भरा नहीं ?
किसने मल-मूत्र न साफ किया ?
किसे अछूत जन्मसे तब फिर
कहना उचित बताते हो ?
तिरस्कार भंगी-चमार का
करते क्यों न लजाते हो ?४॥

जाति-कुमदसे गर्वित हो
जो धार्मिकको ठुकराता है,
वह सचमुच आत्मीय धर्मको
ठुकराता न लजाता है !
क्योंकि धर्म धार्मिक पुरुषोंके
बिना कहीं नहिं पाता है;
धार्मिकका अपमान इसी से
वृष-अपमान*कहाता है ॥५॥

मानवधर्मविवर्जित सब हैं
धर्मबन्धु अपने प्यारे;
अपनोंसे नहिं घृणा श्रेष्ठ है,
हैं उद्धार-योग्य सारे ।
अतः सुअवसर सुविधाएँ सब
उन्हें मुनासिब देना है;
इसहीसे कल्याण उन्होंका,
औ' अपना भी होना है ॥६॥

बनकरके 'युग-वीर' उठादो,
रूढि-जनित संस्कारों का—
पर्दा हृदय-पटलसे अपने,
ढादो गढ़ हुंकारों† का ।
तब होगा दर्शन सुसत्यका,
मानवधर्म-पुण्यमय का,
जीवन सफल बनेगा तबही,
अनुगामी हो सत्पथ का ॥७॥

---

* नागरिकता (Citizenship), पौराधिकार ।

* धर्मोपमान । † जाति-कुल-विद्या-ऐश्वर्यादि मदों का, अहंकारों का ।

अजमेर दिगम्बर जैनसमाज

करीब १२–१३ वर्षसे अजमेर दिगम्बर जैन-समाजमें परस्पर वैमनस्य फैल रहा है और खेद है कि वह मिटनेके बजाय दिनबदिन अधिकाधिक बढ़ता जारहा है। कई श्रद्धालु भाई इसका कारण धार्मिक मतभेद बताया करते हैं, परन्तु धर्मका इससे कितना सम्बन्ध है, वह पाठकोंको नीचे लिखे विवरणसे प्रकट होगा।

इस वैमनस्यका सूत्रपात स्थानीय जैन औषधालयके मामलेको लेकर हुवा। ज्योंही नूतन संगठित कमेटीने कार्यभार ग्रहण कर औषधालयकी खंडहर इमारतको सुधारनेका कार्य प्रारम्भ किया कि पड़ौसके कुछ लोगोंने जो औषधालयकी इमारतको लावारिसी मालकी तरह उपयोगमें लारहे थे, उसमें अपना हक्क बताकर औषधालय पर दावा दायरकर कार्य रुकवा दिया। इन लोगोंने अपने इस स्वार्थप्रेरित कार्यमें सफलता पानेके उद्देश्यसे जनतामें औषधालयके प्रति नाना प्रकार के भ्रम फैलाये। कमेटीके कुछ सदस्योंने इस आशयसे कि औषधालय व्रती व अव्रती सभी जैनी भाइयोंके लिये समान रूपसे उपयोगी होसके, यह प्रस्ताव पेश किया कि औषधालयमें मर्यादानुसार गीली औषधियाँभी यथा अर्क शरबत आदि व्रितरणार्थ रखी जावें। यद्यपि भारतवर्ष भरके प्रायः सभी जैन औषधालयोंमें गीली औषधियाँ रखी जाती हैं लेकिन कुछ महानुभावोंने इससे धर्मडूबने का भय दिखाकर एक व्यर्थका आन्दोलन खड़ाकर दिया। बात यहाँ तक बढ़ी कि श्रीमान सेठ भागचन्दजीके पिता स्वर्गीय श्रीमान रायबहादुर सेठ टीकमचन्दजीने इसी बहाने औषधालय फंडका कई हज़ार रुपया जो उनके यहाँ व्याजके तौरपर जमा है, रोक लिया और उसका आजतक व्याज तकभी नहीं दिया गया। यही नहीं बल्कि उनकी पंचायती ने यह नियम बनाकर कि औषधालयकी सहायतार्थ जो कोई व्यक्ति दान देगा, वह जातिबहिष्कृत कर दिया जावेगा, उस पंचायतके कई प्रतिष्ठित व्यक्तियों को बहिष्कृत कर दिया! तारीफ यह है कि जिस औषधालय को आर्थिक सहायता देना पंचायती कुसूर निर्दिष्ट किया गया, उसी औषधालयसे सहायता लेना,—वहांसे औषधियें व चिकित्सा प्राप्त करना—कुछ भी आपत्तिजनक नहीं समझा गया और वह आजतक उसी प्रकार जारी है। इसके अतिरिक्त सबसे बड़े मजेकी बात यह है कि जब कि इस मंडलीके प्रमुख श्रीमान सेठ भागचन्दजी की फर्मने केवल इस आशंकासे कि औषधालय में शायद कभी आयुर्वैदिक गीली औषधियाँ रख दी जावें, औषधालय का निजका रुपया—जो उनके यहाँ व्याजके तौर पर जमा कराया गया है, जिस रकमको लौटानेमे या उसका व्याज देनेमें उनका कोई एहसान नहीं है,—असल व व्याज रोक रखा है,—वही श्रीमान सेठ भागचन्द्रजीकी फर्म उन सरकारी शफाखानोंमें जहाँ मद्य व मांसका निर्बाध रूपसे सेवन कराया जाता है सहायता व दानस्वरूप हजारों रुपया देती है! क्या औषधालय—विरोधी आंदोलन की यही धार्मिकता है?

इसी प्रकार श्रीमान सेठ भागचन्दजीकी फर्मने दिगम्बर जैन व्यापारिक पाठशाला का हजारों रुपया रोक रखा है। इस सम्बन्धमें तो यहाँ तक हठधर्मी कीगई कि एक समस्त पंचायती संस्थाको उठाकर उसके स्थानपर अपनी एक निजी संस्था दिगम्बर जैन महावीर विद्यालयके नामसे स्थापित करदी। व्यापारिक पाठशालाके विरुद्ध यह आरोप लगाया गया था कि उसमें धार्मिक शिक्षा यथेष्ठ नहीं दी जाती तथा अंग्रेजी भूगोल आदि धर्मविरुद्ध विषय पढ़ाये जाते हैं! लेकिन आज उनकी खुदकी संस्था महावीर विद्यालयकी क्या दशा है? पिछले ८-९ वर्षोंमें उसने जैनधर्मके कितने विद्वान तैयार किये? उसके पाठ्यक्रममें क्या विशेषता है? वे अब अंग्रेजी भूगोल आदि विषय क्यों पढ़ाते हैं? किन्तु सबसे अधिक हास्यास्पद बात यह है कि जब कि श्रीमान

सेठ भागचन्दजीकी फर्मने बरसोंसे चलती हुई जैन संस्थाको—केवल इस भ्रमसे कि उसमें जैनधर्मकी यथेष्ट शिक्षा नहीं दी जाती अथवा धर्मविरुद्ध शिक्षा दी जाती है,—उसको नेस्तनाबूद कर उसका हजारों रुपया जो उनके यहाँ ब्याज पर जमा था रोक रखा है, वही फर्म सनातन धर्म कॉलेज जैसी संस्था में जिसमें खुले तौर पर सनातनधर्मकी तथा जैन धर्मविरुद्ध विषयोंकी शिक्षा दी जाती है, हजारों रुपया दान देती है! इस विवेचनसे यह स्पष्ट है कि श्रीमान सेठ भागचन्दजीकी फर्मने जैन औषधालय व दिगम्बर जैन व्यापारिक पाठशालाका जो हजारों रुपयोंका फंड रोक रखा है और इस तरह व्यापारिक पाठशालाके उन्मूलनसे तथा अर्थाभावके कारण औषधालयको सीमित व संकुचित कार्यप्रणालीकी वजहसे अजमेरकी जैन व अजैन जनताको उनसे होने वाले लाभोंसे वंचित कर रखा है, वह किसी प्रकार भी धार्मिक भावनासे प्रेरित नहीं कहा जासकता।

इन दोनों संस्थाओंके अतिरिक्त श्री दिगम्बर जैन विद्यालय भट्टारकका भी कई हजार रुपया श्रीमान सेठभागचन्दजीकी फर्मसे जमा है, जो अकारण ही रुका पड़ा है। एक दो फण्ड इनके अलावः और भी बताये जाते हैं। इस तरह संस्थाओंका करीब चालीस पचास हजार रुपया श्रीमान् सेठ भागचंदजीके यहाँ बेकार पड़ा हुवा है, जिसका ब्याज तक भी उन संस्थाओंके उपयोगके लिये नहीं दिया जाता! कितने अफसोसकी बात है कि अजमेरकी उक्त दिगम्बर जैन संस्थाएँ निजी फंड होते हुए भी इसप्रकार द्रव्य रोक लिये जानेके कारण बंद पड़ी हुई हैं अथवा जो जीवित हैं वे पैसे पैसेको तरसती हुई नाम मात्रका जीवन बिता रही हैं! औषधालय की इमारत फंडका अलग कई हजार रुपया सेठ साहिबके यहाँ जमा है, लेकिन द्रव्य प्राप्त न हो सकनेके कारण ही औषधालयभवनके पासकी इमारत खरीदी न जा सकी—एक दूसरे भाई ने खरीद ली—और इसप्रकार औषधालयके भविष्य विकासका मार्ग ही सदाके लिये बंद होगया!

करीब चार पाँच बरस पहिले यहाँ भारतवर्षीय अग्रवाल महासभा व अग्रवाल महापंचायतके अधिवेशन हुए थे। उसी अवसर पर यहाँ राजस्थानी नवजीवन मंडलका अधिवेशन भी हुवा था। उसके अनेक स्वागतमंत्रियोंमें एक श्रीमान् बाबू फतहचन्दजी सेठी भी थे। केवल इसी बातको लेकर स्थानीय जैन कुमार सभाने फतहचन्दजी सेठीको जातिबहिष्कृत करनेका आन्दोलन उठाया। तेरहपंथी धड़ेकी पंचायतने अगुवा बनकर अजमेरमें ही नहीं वरन प्रान्तभरमें फूट फैलाई और मंदिरों व पंचायतों का सैकड़ों रुपया व्यर्थ नष्ट किया तथा कराया। लेकिन आज जब जैनकुमार सभाके या उसके संचालनके संरक्षक तथा तेरहपंथीधड़ेके प्रमुख श्रीमान् सेठ भागचन्दजी साहब कौंसिलर बने हैं तो श्रीमान् जेठमलजी बड़जात्या, भारतवर्षीय दिगम्बर जिनधर्म संरक्षिणी महासभाके सहायक महामंत्री श्रीमान सुजानमलजी सोनी, जातिभूषणजी व उनके पृष्ठपोषक आदि चुप्पी लगाये बैठे हैं। अब उनका धर्मप्रेम क्यों नहीं उमड़ता?

वैवाहिक प्रथाओंमें सुधार करनेके कारण, धर्म की ठेकेदार इसी तेरहपंथीधड़ेकी पंचायतने श्रीमान् सिद्धकरणजी सेठी, छीतरमलजी सोगाणी व अन्य कई व्यक्तियोंका बहिष्कार किया तथा लोगोंको भड़काकर और पंचायतोंसे भी कराया। उनका यह आन्दोलन कितना निष्फल रहा यह इसीसे स्पष्ट है कि आज इन बहिष्कारोंकी कोई पर्वाह नहीं करता और सब लोग निःसंकोच उनके साथ परस्पर खान-पान करते हैं। इसके अतिरिक्त अभी हाल हीमें प्रायः उसी पद्धति पर और भी अनेक विवाह हुए हैं, परन्तु अब उनके खिलाफ चूँ करने तकका किसीको साहस नहीं होता।

पारस्परिक वैमनस्य कई बार इतने भीषण रूप में प्रकट हुआ है कि बात बातमें जाति व धर्मकी दुहाई देनेवालोंने म्युनिसिपल कमिश्नरीके चुनावके स-

मय श्रीमान बा० हेमचन्द्रजी सोगाणी ऐड्वोकेट सरीखे शिक्षित,सुयोग्य व सर्वप्रिय व्यक्तिके खिलाफ अन्य जाति व अन्य धर्मके लोगोंको तन मन धनसे सहायता देकर खड़ा किया और ऐसा संगठित आंदोलन उठाया मानो यह सब वे धर्मकी रक्षाके लिये ही कर रहे हों ! इससे अधिक नैतिक पतन और क्या हो सकता था ?

जब श्रीमान् रायबहादुर बा० नौंदमलजीके भतीजे श्रीमान डा० सोभागमलजी उच्चशिक्षा प्राप्तकर विलायतसे लौटे तो कतिपय धर्मके ठेकेदार स्व० सेठ टीकमचन्दजी साहबकी दुहाई देकर उनका बहिष्कार करने तथा उनके साथ खानपान न करनेके लिये इधर उधर लोगोंको बहकाते फिरे। परन्तु जब स्वर्गीय सेठ साहबके खास समधी झालरापाटनवाले श्रीमान सेठ [illegible] सेठी विलायतयात्रा कर आये तो उनके साथ सादर खानपान किया !

खैर ! इसी प्रकारके और कई उदाहरण दिये जा सकते हैं। मेरा अभिप्राय केवल यह है कि अजमेर जैनसमाजमें जो पारस्परिक वैमनस्य है वह किसी धार्मिक या सैद्धान्तिक मतभेद पर स्थिर नहीं है। बात यह है कि कुछ लोग अपने स्वार्थके खातिर या व्यक्तिगत द्वेषकी पूर्तिके लिये सदा समाजको उलटा सीधा बहकाते रहते हैं। उनको अगर किसी श्रीमान का आश्रय व सहयोग मिल जाय तो उनकी भयकरता और बढ़ जाती है। साधारण लोगोंमें वैसेही नैतिक साहसका अभाव होता है किन्तु इस पर भी जब धनसत्ता व धर्मसत्ता दोनों मिलकर एक साथ आक्रमण करती हैं तो लोगोंके हृदयोंमें जड़ता घर कर लेती है और वे मूक पशुओंकी तरह उन स्वार्थी नामधारी नेताओं द्वारा हँकाले जाते हैं। धीरे धीरे दलबन्दी हो जाती है और फिर ऐसी अन्धाधुन्धी चलती है कि एक दलका कोई व्यक्ति चाहे कैसी भी उपयोगी बात क्यों न कहे, दूसरे दल वाले आंख मींचकर उसका विरोध करते हैं, दूसरे दलवालोंकी साधारणसी बातों पर समाजमें ऊधम उठाया जाता है और अपने दलके व्यक्तियोंके बड़ेसे बड़े दुराचारों व अन्यायों पर पर्दा डाला जाता है या उनका समर्थन तक किया जाता है। समाजकी यह दशा अत्यन्त दयनीय होती है।

अजमेर जैनसमाजमें श्रीमानोंका, विद्वानोंका व साहसी युवकोंका अभाव नहीं है। केवल परस्पर प्रेम व सहयोग न होनेके कारण शक्ति, समय व द्रव्यकी बरबादी हो रही है।

श्रीमान सेठ भागचन्दजी साहबसे निवेदन है कि वे इस ओर लक्ष दें तथा इस स्थितिको सुधारने में अग्रसर बनें। उनको उचित है कि वे अजमेरकी विभिन्न जैनसंस्थाओंका कुल रुपया ब्याजसहित लौटा दें। ब्याज पर जमा कराये रुपयोंको रोक रखनेमें सबसे अधिक बदनामी उन्हीं की है।

पर्युषण पर्वमें हम लोग विशेषरूपसे धार्मिक कार्यों व संस्थाओंमें दान दिया करते हैं। उपरोक्त संस्थाओंके फंडोंका रुपया लौटानेमें तो दानका प्रश्न भी नहीं है क्योंकि वह उनका वाजिब रुपया है और बिना विलम्ब लौटाया जाना ही चाहिये। श्रीमान सेठ भागचन्दजी साहिबसे निवेदन है कि वे औषधालयका रुपया औषधालय कमेटीके सुपुर्द कर दें तथा उसके सच्चे संरक्षककी तरह सहयोग कर औषधालयका उचितरूपसे संचालन करें। उन संस्थाओं के रुपयोंके विषयमें, जो मृत हो गई हैं, समाजके प्रतिष्ठित व विचारशील महानुभावोंकी सम्मतिसे उचित व्यवस्था की जानी चाहिये।

पर्युषण पर्वकी समाप्ति पर हम लोग परस्पर एक दूसरेके अपराधोंको क्षमा करते हैं तथा कराते हैं। क्या ही अच्छा हो यदि इस बार हम शुद्ध व सरल हृदयसे पिछली सब बातोंको भुलाकर गले मिलें तथा आगेके लिये परस्पर प्रेम व सहयोगपूर्वक अजमेर जैनसमाजमें नवजीवन संचार करनेका निश्चय करें। इसका परिणाम केवल अजमेर व प्रान्तके लिये ही नहीं वरन समस्त जैनसमाजके लिये लाभदायक होगा।

—एक स्पष्टवक्ता।

Printed by Pt. Radhaballabh Sharma at the Ajmer Printing Works Ajmer.

तार का पता—"JAINJAGAT" Ajmer. Reg: No. N 352.

वर्ष ६ ता० १ अक्टूबर सन १९३४ अंक २२

जैनसमाज का एकमात्र स्वतन्त्र पाक्षिकपत्र।

वार्षिक मूल्य ३) रुपया मात्र।

जैन जगत्

विद्यार्थियों व संस्थाओं से २॥) मात्र।

(प्रत्येक अंग्रेज़ी महीने की पहली और सोलहवीं तारीखको प्रकाशित होता है)

"पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनम् यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः"॥—श्री हरिभद्रसूरि।

सम्पादक—सा०र० दरबारीलाल न्यायतीर्थ, जुबिलीबाग तारदेव, बम्बई।
प्रकाशक—फतहचंद सेठी, अजमेर।

प्राप्ति स्वीकार।

जैनजगतकी सहायतार्थ निम्नलिखित द्रव्य प्राप्त हुआ है। दातार महानुभावोंका इस उदारताके लिये आभारप्रदर्शन किया जाता है:—

१८) श्रीमान कल्याणमलजी पाटणी अजमेर।

१०) श्रीमान चौधरी गुलाबचन्दजी जैन ऑनिरेरी मजिस्ट्रेट गोटेगाँव।

१०) श्रीमान बा० ज्ञानचन्द्रजी जैन, ड्राफ्टसमैन स्टेट इंजीनियर्स ऑफिस कोटा। —प्रकाशक।
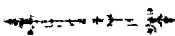
मुनीन्द्रसागर-लीलाका अन्तिम दृश्य—

मुनीन्द्रसागर मंडलीके मोटरलारीमें बैठकर जबलपुर चलेजाने तथा वहाँ जाकर मुनिवेष त्यागकर कपड़े पहिन लेनेके समाचार गतांकमें प्रकाशित हो चुके हैं। जबलपुर जैनसमाजने इनका पूर्ण बहिष्कार किया। मुनीन्द्रसागर उर्फ मुन्नालाल कुछ दिन धर्मशालामें रहा। किन्तु बादमें वह विक्टोरिया अस्पताल में भरती करा दिया गया। वैसे तो वह मुनिवेषमें भी दिन व रात्रिको हर कभी जो जी में आता खाता था, किन्तु अब प्रकट रूपमें भी हर कोई चीज़ हर किसीके हाथकी खाने लगा तथा अंग्रेजी दवा लेने लगा। बीमारी बहुत बढ़ चुकी थी। आखिर ता० २६ सितंबरको प्रातःकाल ४बजे अस्पतालमें ही उसने प्राण त्याग दिये। जबलपुरके जैनी भाई यह सोचकर कि एक जैनीकी लाशका लावारिसोंकी तरह मेहतरों द्वारा जलाया जाना ठीक न होगा, सूचना मिलतेही काफी संख्यामें अस्पतालके मुर्दाघर पर इकट्ठे होगये। इधर एक शास्त्रीजीको गाजे बाजे मँगवानेकी सूझी। यह देखकर देवेन्द्रसागरके हौंसले भी बढ़ने लगे। वह बोला—आचार्य महाराजकी अंत्येष्ठिक्रिया शास्त्रानुसार की जानी चाहिये। उन्हें चन्दनकी चितामें जलाना चाहिये। हम लोग भी फिर नग्न होकर मुनिवेष धारण कर पिच्छी कमण्डलु लेकर इनके साथ स्मशान तक जावेंगे, आदि। इस पर लोगोंने इसे बुरी तरह धिक्कारा, इनके कमंडलु छीनकर फोड़ डाले तथा पिच्छियाँ तोड़ मरोड़ कर फेंक दीं। आखिर इनकी अकल ठिकाने आई और इन्होंने सीधी तरह स्मशान जाकर मुनीन्द्रसागरकी अंत्येष्टि क्रिया की। सब कार्य देवेन्द्रसागर ही कर रहा था। विजयसागर अलग बैठा रो रहा था। लोगोंने उसे देवेन्द्रसागरको मदद देनेके लिये कहा तो वह बोला—"मेरी तो टकसाल यह आचार्य महाराज थे जो

आज हम लोगोंको इसप्रकार अनाथ बना कर चल दिये हैं।"

माणिकबाई (१८५०) नकद व जेवर वापिस लेनेके उद्देश्यसे दमोह गई हुई थी। उस द्रव्यके लेनेका हकदार कौन है, इसके निर्णयके लिये दमोह मे दीवानी दावा दायर होगया है। वह मुनीन्द्रसागर के अन्त समयमें भी उसके पास न रही। इधर स्मशानमें मुनीन्द्रसागर का अन्तिम संस्कार हो रहा था, उधर उसकी नानी सामान समेटनेमें लगी हुई थी। लोगोंके वापिस लौटकर आनेके पहिलेही यह सामान लेकर और कहीं चल दी।

इसी दिन शामको करीब चार बजे एकाएक सुना कि हनुमानताल वाली धर्मशालाके कुँएमें गिरकर देवेन्द्रसागरने आत्महत्या करली। पुलिस ने लाश निकाली और जाँचके लिये चीरघर लेगई।

अब रह गये विजयसागर सो वे भी अपनी 'टकसाल' मुनीन्द्रसागर तथा गुरुभाई देवेन्द्रसागरके वियोगमें अत्यन्त व्यथित है। सुना है कि उन्होंने उनसे शीघ्र जा मिलनेके उद्देश्यसे अपने गलेमें फन्दा डाला था किन्तु कुछ लोगोंके समयपर आजानेके कारण वे इहभवबन्धनसे मुक्त न हो सके।

माणिकबाई (उर्फ जिनमतीबाई) अपने आपको प्रतापगढ़ (मालवा) की रहनेवाली तथा जातिकी हमड़ बतलाती है। जो महाशय इसका विशेष परिचय रखते हो तथा जिन्होंने इसे अथवा मुनीन्द्रसागर को नकद अथवा जेवर दिया हो, वे कृपया इस सम्बन्ध की पूरी सूचना श्रीमान रघुबरप्रसादजी मोदी गौंधी चौक दमोह, को देनेका कष्ट करें।

—संवाददाता।
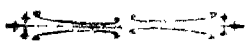
स्थानीय चर्चा।

पर्युषण पर्व सानंद समाप्त होगया। केवल छोटा धड़ा व बड़ा धड़ाके मंदिरोंमें कुछ चखचख हुई। छोटा धड़ा नागौर गादीके भट्टारककी आम्नायका है। उक्त गादीके भट्टारक श्री महेन्द्रकीर्तिजी यहीं पर चातुर्मास कररहे हैं। आप 'जैनपतबादशाह' कहलाते हैं और इसलिये शाही ठाठ बाटमें रहते हैं। जैसे कहीं भी जाना हो तो पालकी पर बैठकर जाना, चाँदीकी खड़ाऊँ पहिनना, चाँदीकी पिच्छी व कमंडलु रखना, मसहरी लगाकर सोना, चाँदीके बरतनों मे परोसा हुआ भोजन करना, कई नौकर चोबदार चपरासी आदि रखना, जिनके यहाँ आहार लेते हैं उनसे नियत प्रकार आदर सत्कार कराना तथा भेट लेना आदि। महाव्रती नहीं होते हुए भी आप कुछ क्रियाएँ महाव्रतियोंकी नकल करनेके लिये करते है जैसे हथेलीमेंसे भोजन करना, निरंतराय भोजन करना आदि। भोजन करते समय अनिष्ट शब्द सुनाई न पड़े इसके लिये थाली, झालर आदि बजाई जाती है। आप मानभद्रके उत्कट उपासक है तथा प्रति रविवार उनकी विशेषरूपसे पूजा करते हैं, प्रसाद चढ़ाकर वितरण करते है व अपने भक्तोंको मंत्र तंत्र आदि से उनकी मनोकामना पूरी करने का आश्वासन देते है और विरोधियों का उसी बलसे अनिष्ट करने उन्हें पागल करदेन आदिकी धमकी देते हैं। एक रोज आप क्रोधके इतने वशीभूत होगये कि आपने धोती खोलकर जोरसे एक श्रावकके सिर पर फैंक मारी, मानो आप उसे कोई श्राप देरहे हो। अत्यंत अफसोसकी बात यह है कि इतने बड़े पद पर प्रतिष्ठित होते हुए भी आपमें ज्ञान व चारित्रकी मात्रा प्रायः नगण्य है। छोटे धड़ेके कई सदस्य इनमें श्रद्धा भक्ति नहीं रखते और इसलिये उन्हें भट्टारकजीकी नियत क्रियाओंके साथ तथा अमुक प्रकारसे सत्कार कर आहार देनेमें आपत्ति थी। भट्टारकजी चाहते थे कि छोटे धड़ेका प्रत्येक सदस्य कमसेकम एक बार मुझे अवश्य ही घर पर बुलाकर आहार दे। इसी हठके कारण भट्टारकजी को बीचमें कई बार निराहार भी रहना पड़ा। मिती भादवा सुदी १४ को कलशाभिषेक के समय भट्टारकजी अड़ कर बैठ गये और बोले कि जब तक मुझे आहार देनेका प्रश्न हल न होजायगा, कलशाभिषेक नहीं

(आगे पृष्ठ २८ कॉलम २ में देखिये)

वर्ष ९ — अंक २२

आश्विन कृष्ण ८ — वीर संवत् २४६० — ता० १ अक्टूबर सन १९३४ ई०

सत्यसमाज क्यों ?

गतांकमें सत्यसमाजकी आवश्यकताके विषयमें बहुत कुछ स्पष्टीकरण किया गया है। परन्तु उसमें इतनी नूतनता है कि अच्छासे अच्छा सुधारक भी एक बार चौंक उठेगा और उसके मनमें नानाप्रकारके संदेहमूलक प्रश्न उठेंगे। हीराबागकी व्याख्यानमालामें मैंने इन सब संदेहोंका उत्तर विस्तारसे दिया था। उसका फल आशातीत हुआ। जिन लोगोंसे इसके समर्थनकी स्वप्नमें भी आशा नहीं थी, उनने मुक्तकंठसे इसकी प्रशंसा की और इस कार्यको आगे बढ़ानेकी प्रेरणा की। जैनजगत्‌ने अनेक विस्फोटक क्रान्तियाँ की हैं। इससे उसको नाजुकसे नाजुक समय देखना पड़ा है। परन्तु उसने जिस दृढ़तासे उसका सामना किया है, वह पाठकोंको मालूम है। यह समय भी, सम्भव है, ऐसा ही नाजुक हो, परन्तु यह भी मैं निश्चयपूर्वक कह देना चाहता हूँ कि इस अवसरपर जैनजगत् कभी पीछे न हटेगा। अभी तकके आन्दोलन तो इस महान आन्दोलनकी भूमिका मात्र थे। वास्तविक आन्दोलनका प्रारम्भ तो अब होता है। अब मैं अपने अंतिम स्थानपर आ पहुँचा हूँ, जहाँ रहकर मुझे अपने जीवनकी सारी शक्तियाँ और सर्वस्व लगाना है। अब जिन भाइयोंको किसी भी तरहका संदेह हो वे सूचित करें। यहाँ भी मैं कुछ शंकाओंका निराकरण कर देना चाहता हूँ जिससे पाठकोंको मालूम हो जाय कि सत्यसमाजकी स्थापना मैंने क्यों की ?

प्रश्न(१)—सत्यसमाजकी आवश्यकता ही क्या है? जिस तरह आप अभी तक विचारोंमें क्रान्ति कर रहे हो, उसीप्रकार आगे भी करते रहो!

उत्तर—विचारक्रान्ति आवश्यक अवश्य है, परन्तु विचारक्रान्ति साध्य नहीं, साधन है। विचार-क्रान्ति अगर कार्य रूपमें परिणत न होपाय, तो उसका होना न होना बराबर है। आज जैन और जैनेतर समाजमें हजारों नहीं लाखोंकी संख्यामें ऐसे लोग हैं जिनके विचार अच्छी तरह बदल गये हैं, परन्तु एक फीसदी व्यक्ति भी कार्यक्षेत्रमें आगे नहीं आ पाते; क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है इसलिये उसे समाजकी आवश्यकता तो है ही। अब अगर कोई सुधारके कार्यमें आगे बढ़ता है तो पंचायतें या समाजें उसे अलग कर देती हैं। वह अपनी समाजका त्याग तो कर सकता है परन्तु वह समाजरहित होकर नहीं रहसकता; उसे कोई न कोई समाज अवश्य चाहिये। आज सभी समाजें संकुचित हैं। जो लोग सर्वधर्म समभाव रखना चाहते हैं तथा भिन्न भिन्न तरहके समाज-सुधारके कार्य करना चाहते हैं, उनका वर्तमान समाजमें रहना कठिन है, अथवा वे किसी तरह रह भी सकें तो उनका सदा भय लगा रहता है। इसलिये एक ऐसी समाजकी आवश्यकता है जहाँ कोई भी सर्वधर्म-समभावी समाजसुधारक निराकुलतासे रह सके, अथवा अपनी अपनी समाजमें रहते हुए भी वह इस स्वतन्त्र समाजकी आशामें निराकुल रह सके। अगर इस समाजकी स्थापना न की जाय तो ऐसे लोग या तो अपने संकुचित क्षेत्रमें पड़ेपड़े जीवन बिता देंगे या बहिष्कृत होकर कष्टमय और पश्चात्ताप-

मय जीवन बिताते रहेंगे । ऐसी हालतमें दूसरोंकी हिम्मत आगे बढ़नेकी नहीं होगी । इसके अतिरिक्त बहुतसे सुधार-कार्य ऐसे हैं जो स्वतन्त्र वायुमण्डल में ही शीघ्रतासे हो सकते हैं । एक हिन्दू स्त्री लाख शिक्षा देने पर भी अपनी वेषभूषा, भाषा, स्वच्छता आदिमें परिवर्तन नहीं कर पाती, किन्तु ईसाई होते ही बिना किसी संकोचके वह सैकड़ों परिवर्तन कर डालती है । समाज परिवर्तनसे उसका पुनर्जन्म सा होजाता है । इसलिये ऐसे लोग जोकि अपनी समाज में रहते हुए छोटी बड़ी क्रान्तियाँ नहीं कर सकते वे सत्यसमाजके स्वतन्त्र वातावरणमें आते ही बड़ी सरलतासे कर सकेंगे । इधर उन्हें सत्यसमाजके अन्य सदस्योंका पीठबल मिलेगा, उधर पुराने समाज वाले छेड़छाड़ करना भी छोड़ देंगे । हाँ, जो लोग अपनी समाजमें रहते हुए भी सर्वधर्म-समभाव आदिका परिचय देसकते हैं, वे वहीं रहकर काम करें । परन्तु जिनके लिये समाजमें जगह नहीं है अथवा जो समाजसे घृणा करने लगे हैं, उनके लिये तो कोई स्वतन्त्र स्थान देना ही होगा । वह स्थान सत्यसमाजका होगा ।

प्रश्न (२)—जिस प्रकार वर्तमानके समाज हैं, क्या उसी प्रकार सत्यसमाज भी न हो जायगा ? क्या इसमें भी कट्टरता न आ जायगी ? आर्यसमाज वगैरह आखिर कट्टर सम्प्रदाय ही तो बन गये ?

उत्तर—आर्यसमाज स्वतन्त्र सम्प्रदाय भले ही बन गया हो, परन्तु जिस उद्देश्यको लेकर आर्य समाज खड़ा हुआ था उसकी छाप उसने समस्त हिंदू समाज पर मार दी है और अमुक अंशमें उसने नव-जीवनका सञ्चार कर दिया है । इसलिये आर्य-समाज नामक सम्प्रदाय बननेसे जितनी हानि हुई है, उससे अधिक लाभ उससे होनेवाली जागृतिसे हुआ है । इस प्रकारका भय अगर रक्खा जाय तब तो कोई सुधार नहीं किया जासकता; क्योंकि विजातीय-विवाहसे भी कालान्तरमें एक नयी जाति पैदा होने की सम्भावना है, इसी प्रकार विधवाविवाहसे भी । छोटे छोटे सुधारोंसे भी दलबन्दियाँ हो जाती हैं और वे स्थायीरूप भी पकड़ लेती हैं, इसलिये अगर सम्प्रदाय बननेकी सम्भावना भी हो तो भी हमें सिर्फ इसी बातका खयाल रखना चाहिये कि उससे लाभ अधिक है या हानि ? सत्यसमाजकी स्थापनामें आर्य-समाजके समान कट्टरताका बीज भी नहीं है । आर्य-समाजको परिस्थितिसे विवश होकर सब सम्प्रदायों का उग्ररूपमें खण्डन करना पड़ा था, परन्तु सत्य-समाज प्रारम्भसे ही सभीके समन्वयपर जोर देता है, और विचार-स्वातन्त्र्यका पोषक है । इसलिये एक आस्तिक भी सत्यसमाजी हो सकता है और एक नास्तिक भी सत्यसमाजी होसकता है । सत्यसमाजमें समानाधिकार रखनेवाली पाक्षिक श्रेणी भी है, जिसमें हरएक धर्मके व्यक्ति होंगे । उनका अस्तित्व भी सत्य-समाजको कट्टर बननेसे रोकेगा । इतनी सतर्कता रखनेपर भी अगर कभी सत्यसमाज विकृत होकर कट्टर बनेगा भी तो उसपर किसीका क्या वश है ? अन्तमें इस प्रकारकी विकृति तो किसी भी सुधार या क्रान्तिमें होती है । तब उसमें क्रान्ति करनेके लिये नये सुधारककी आवश्यकता होती है । इस प्रकार क्रांति-चक्र अनन्त है । हमारा काम है कि हम अधिकसे अधिक सतर्कता रक्खें । सत्यसमाजमें जितनी उदारता रक्खी गई है, उतनी उदारता दूसरी जगह न मिलेगी । अगर वह कभी विकृत भी होगी तो विकृत होनेके पहिले समाजकी इतनी सेवा कर जायगी जिसके सामने विकृतिका दोष किसी गिनतीमें न होगा । हमें अपनी वर्तमान समस्या हल करना चाहिये, भविष्यकी समस्या भविष्यके सुधारक हल करेंगे ।

प्रश्न (३)—सब धर्मोंमें समभाव रखना तो वैनयिक मिथ्यात्व है, इससे आत्माका कल्याण कैसे होसकता है ?

उत्तर—सर्वधर्मसमभाव और वैनयिक मि-

थ्यात्व ऊपरसे एक सरीखे मालूम होते हैं, परन्तु दोनोंमें जमीन आसमानसे भी अधिक अन्तर है। वैनयिक मिथ्यात्वी तो इसलिये सब देवोंको पूजता है कि इनमें जो सच्चा होगा वह मेरा उद्धार करदेगा। किसमें क्या गुण है, यह बात वह बिलकुल नहीं समझता, जब कि सर्वधर्मसमभावी सब धर्मोंके सारासारको समझता है। वैनयिक मिथ्यात्वी अविवेककी चरमसीमा पर है, जब कि सर्वधर्मसमभावी विवेककी चरमसीमा पर है। पागलके समदर्शित्व और महात्माके समदर्शित्वमें जो अन्तर है, वैसाही अन्तर यहाँ भी समझना चाहिये।

प्रश्न (४) - सत्यसमाज अगर एक अलग संस्था बन जायगी तो उसमें आनेके लिये या उससे लाभ उठानेके लिये अपनी जाति और सम्प्रदायसे संबंध तोड़ना पड़ेगा, परन्तु यह बहुत कठिन है। बहुतसे सुधारक सुधार करना चाहते हैं परंतु अपने समाजसे संबंध विच्छेद नहीं करना चाहते। आप उनको खो देंगे और इसलिये लोगही आपका साथ देसकेंगे।

उत्तर—सत्यसमाजमें पाक्षिक श्रेणी इसीलिये है कि किसीको अपने समाजसे सम्बन्धविच्छेद न करना पड़े। यहाँ तक कि जो लोग सत्यसमाजके सिद्धान्तोंको कार्यरूपमें जराभी परिणत नहीं कर सकते किन्तु सत्यसमाजके विचारोंको पसन्द करते हैं, अनुमोदक रूपमें वे भी सत्यसमाजमें शामिल [illegible] हैं। यों तो छोटासे छोटा सुधार भी कुछ [illegible] माँगता है। विजातीयविवाह [illegible] त्याग और साहसकी जरूरत है, उस [illegible] त्याग सत्यसमाजकी सदस्यता नहीं [illegible] और [illegible] बननेके लिये तो इतने [illegible] नहीं है। जो लोग जैन- [illegible] हैं, और विजातीय [illegible] भाग लेसकते [illegible] पक्षपाती हैं, वे तो अगर सत्य- [illegible] भी बनें तो भी उन्हें कुछ

अधिक त्याग न करना पड़ेगा, न अधिक संकट झेलना पड़ेगा। अगर पाक्षिक सदस्य बनें तब तो उन्हें और भी अधिक सुभीता है। जैनधर्मके मर्ममें जो धर्मका चित्रण किया गया है, उसीका मूर्तिमान रूप यह सत्यसमाज है। जिन लोगोंने लेखमालाको पसन्द किया है, उन्हें इसे भी पसन्द करना चाहिये। अगर आपके लिये सत्यसमाजका सदस्य बनने पर भी अपनी समाजमें स्थान है तो आप पाक्षिक सदस्य बनिये; अगर अपनी समाजमें स्थान नहीं है तो नैष्ठिक सदस्य बनिये। मैं पाठकोंसे पूछना चाहता हूँ कि विजातीय विवाह, विधवाविवाह, अछूतोद्धार, अन्धश्रद्धाके विपर्योंसे रहित सर्वधर्मसमभावरूप वैज्ञानिक जैनधर्म, आदिके विचार केवल विचारके लिये हैं कि कार्यरूपमें परिणत करनेके लिये ? बोलनेके लिये बोलना और विचार करनेके लिये विचार करना तो सुधारकता नहीं है। इसतरह तो हम अनन्तकाल तक स्थितिपालकदल पर वास्तविक विजय प्राप्त न कर सकेंगे और विश्वमात्रकी या मनुष्यमात्रकी सेवा करनेकी बात तो दूर, परन्तु अपने देशकी भी सेवा न कर पायेंगे। यदि आपका बोलना सिर्फ बोलनेके लिये और विचार सिर्फ विचारके लिये नहीं हैं, यदि आप उनको थोड़ी बहुत मात्रामें कार्य परिणत भी करना चाहते हैं, तो बतलाइये किस तरह करेंगे ? इसके लिये आपको आज नहीं तो कल, सहयोगियोंकी आवश्यकता तो अवश्य है और उन सहयोगियोंको प्राप्त करनेका उपाय क्या है ? उन सहयोगियोंको एक जगह एकत्रित किये बिना कैसे समझेंगे कि हमें ऐसे सहयोगी मिलगये हैं जो मौक़े पर काम आयेंगे ? जब तक आपके पास इस प्रकारके मूर्त्तिमन्त सहयोगी न होंगे, तब तक दूसरोंको किस बल पर भरोसा देसकेंगे ? आज नहीं तो कल इसके लिये आपको एक न एक दल आवश्यक होगा ही, फिर उसे आप सत्यसमाजके नामसे पुकारिये या और किसी नामसे। आपके साम्हने दोनों रास्ते खुले हैं। आप अपनी समाजमें

रहकर भी कामकर सकते हैं और अलग होकर भी। अपनी रुचि और परिस्थितिके अनुसार आपको जो मार्ग पसन्द हो, उसीसे आप कार्यक्षेत्रमें आइये। प्रारम्भमें इनेगिने लोग ही साथ देंगे, परन्तु अभी तो वे इनेगिने ही कहाँ हैं? अभी तो हमारे पास एक भी नहीं है जिसपर सहयोगका भरोसा रखकर हम कुछ कार्य भी कर सकें। बात बनानेवाले सैकड़ोंकी अपेक्षा कार्यरूपमें सहायता देनेवाले इनेगिने भी बहुत अच्छे हैं। अभी तक जितने आन्दोलन किये गये, सबमें प्रारम्भमें इनेगिने ही मिले हैं। सत्यसमाज में अगर उससे भी कम आवें तो भी कार्यकारी होने से हम लाभमें ही रहेंगे। अगर हम इनेगिने ही हिम्मतसे कामलें तो यह निश्चित है कि थोड़े ही दिनोंमें काफी संख्यामें हम हो जायँगे। बड़ीसे बड़ी नदियोंके स्रोत उद्गमस्थानपर गाँवकी नालीके बराबर भी नहीं होते। उनको देखकर महानदीकी कल्पना करना भी कठिन होता है। थोड़ी देरको मानलो कि हम इनेगिने ही रहे तो भी आजकी अपेक्षा छोटे में न रहेंगे। इस मुट्ठीभर कार्यसे पहाड़ बराबर विचारक्रान्ति होगी। इसके लिये अगर हमारा बलिदान ही हुआ तो भी वह व्यर्थ न जायगा, वह भविष्यकी सन्तानके लिये पथप्रदर्शक और सहायक होगा। हम एक कदम आगे और बढ़े और समाज हमारा अगर साथ न भी दे तो भी वह वर्तमान अवस्थासे एक कदम आगे अवश्य बढ़ेगी। यही क्या कम है? इस विषयमें बुरीसे बुरी सम्भावना जो की जासकती है उसको देखते हुए भी हम नुकसान में नहीं रहेंगे परन्तु मुझे तो आशा है कि अगर हम थोड़ीसी भी हिम्मत दिखलायेंगे तो ये बुरी सम्भावनाएँ पास न फटकने पावेंगी। साथमें इतनी बात और कहदूँ कि जो समाजसेवा और आत्मोद्धार करना चाहते हैं उन्हें इस मन्त्रका सदा जाप करना चाहिये कि-'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'।

प्रश्न (५)—क्या ऐसी संस्था स्थापित करने की आप शक्ति रखते हैं?

उत्तर—मैं तो निमित्त मात्र हूँ। असली कारण तो समाजकी आवश्यकता है। हाँ, मैं उसमें निमित्त मात्र भी बन सकता हूँ कि नहीं, यह प्रश्न अवश्य है। परन्तु इसका उत्तर शब्दोंसे नहीं दिया जासकता। ऐसी शक्तियाँ जबतक कार्यरूपमें परिणत नहीं हो जातीं तब तक उनका अस्तित्व नहीं मालूम होता। फिर, यह कार्य सिर्फ मुझे ही नहीं करना है, परन्तु यह तो प्रत्येक विचारशील सुधारकका काम है। फिर भी इतना कहदेना तो अनुचित न होगा कि विजातीयविवाह आन्दोलनसे लेकर "जैन धर्म का मर्म" लिखने तक मुझसे जो सेवा हो सकी है उसे देखते हुए इस कार्यके लिये मैं अपने मित्रों को निमंत्रण दूँ, यह अनुचित नहीं है। इस प्रश्नका ठीकठीक उत्तर तो भविष्य ही दे सकता है, वह आज नहीं दिया जासकता और शब्दोंसे नहीं दिया जा सकता।

हाँ, इतनी बात और कहदेता हूँ कि यदि मैं अयोग्यतासे सफल न भी हुआ तो भी भविष्यके किसी अधिकयोग्य सेवकके लिये कुछ न कुछ अवश्य देजाऊँगा। वह अगर किसी महान भवन का निर्माण करेगा तो मैं एकाध ईंटकी सहायता भी कर सका तो भी कुछ हानि नहीं है। सेवाकी भावना ही मेरी बड़ी शक्ति है।

प्रश्न (६)—विज्ञानके विद्वान हुए बिना क्या आप वैज्ञानिक सत्योपासक संस्था खड़ी करसकते हैं?

उत्तर—वैज्ञानिक सत्यधर्मकी उपासनाके लिये विज्ञानका पंडित होना आवश्यक नहीं है, किन्तु उसकी दृष्टिको समझ लेना जरूरी है। पुराने जमानेके लोग विश्वकी जैसी रचना मानते हैं, तत्त्वों के विषयमें उनके जो विचार थे, भूतपिशाचोंको मान कर उनकी कथाकहानियोंसे लाभ्याते थे, वैसी बातों के लिये आजका युग तैयार नहीं है। विज्ञानने और हमारे अनुभवोंने उनको मिथ्या या अविश्वसनीय सिद्ध किया है। इसलिये आज ऐसे धर्मकी आव-

श्यकता है जो विश्वसनीय बातोंके आधार पर खड़ा हो, तथा वह धर्म विज्ञानकी प्रगतिमें रोड़े न अटकावे। पहिले समयमें धर्मशास्त्रोंमें सब शास्त्रों का समावेश करना पड़ा था या किया गया था परन्तु अब हमको धर्मशास्त्रको एक स्वतन्त्र शास्त्र मानकर भौतिकविज्ञान, इतिहास, भूगोल आदिको उससे अलग करदेना है, जिससे धर्मशास्त्र किसी दूसरे शास्त्रकी प्रगतिमें बाधा न डाले, तथा धर्म-शास्त्रका प्राण दूसरे शास्त्रोंके साथ कुचला न जावे। यहाँ मात्र धर्मकी वैज्ञानिकता है। इसके लिये भौतिक विज्ञानके महान पंडित होनेकी या उसकी प्रयोग-शाला खोलनेकी जरूरत नहीं है, सिर्फ उसकी दृष्टि को समझकर शुद्ध [illegible]कतामें काम लेनेकी जरूरत है। और यह काम भौतिक विज्ञानका पंडित हुए बिना भी किया जा सकता है।

प्रश्न (७)— इसका नाम आप जैन आर्य-समाज क्यों नहीं रखते ?

उत्तर — निःसन्देह आर्यसमाज कोई इतनी खराब संस्था नहीं है कि उसके नामको अपनानेमें कोई विशेष एतराज हो, परन्तु इससे भ्रम बहुत होगा। आर्यसमाज, हिन्दू समाजका एक सुधारक दल है; वह वर्तमानमें एक कट्टर सम्प्रदाय बनगया है। जिस समय आर्यसमाज उत्पन्न हुआ उससमय भारतवर्ष की परिस्थिति ऐसी थी कि उसमें कट्टरताके बीज तभी घुसगये थे। उसके इस स्वरूपकी छाप प्रत्येक जानकारके हृदयपर बराबर बैठी हुई है। आर्य-समाजको प्रायः सभी सम्प्रदायोंका खंडन ही करना पड़ा। उसका साहित्य और उसके कार्यकर्त्ताओंके कार्य आज भी उसी रुख पर हो रहे हैं। सत्यसमाज का ध्येय दूसरे किसी भी सम्प्रदायकी निन्दा करना नहीं है। वैज्ञानिक दृष्टिसे जो उनमें कुछ अविश्वस-नीय तत्त्व आगये हैं उनको बड़ी कोमलतासे अलग कर देना है, उनको निन्दाका रूप नहीं देना है, तथा सर्वधर्मसमभावका प्रचार करना है। आर्य-समाजका आदर करते हुए भी मुझे इतना कहना ही पड़ता है कि सत्यसमाजका यह ध्येय आर्य समाज शब्दसे प्रगट नहीं होता। दूसरी बात यह है कि 'जैन आर्यसमाज' का कार्यक्षेत्र सिर्फ जैन समाज ही होगा। छोटीसी जैनसमाजमेंसे हमें इतनी अधिक संख्यामें मनुष्य नहीं मिलसकते जिन से एक विशाल समाज बनसके। जैनसमाज यों ही मुट्ठीभर है। उनमें से ही अगर हम सत्यसमाजका चुनाव करेंगे तो वे चुटकी भर भी न होंगे। साथ ही हमें यह खयाल रखना चाहिये कि किसी भी युगमें किसी नये सिद्धान्तको कार्यरूपमें परिणत करनेके लिये उत्तम और मध्यम श्रेणीके लोग इने गिने ही मिलते हैं। चाहे वह सिद्धान्त धार्मिक हो या सामाजिक या राजनैतिक, अधिकतर जघन्य श्रेणीके लोग ही उसे कार्यरूपमें परिणत करते हैं, पीछेसे मध्यम और उत्तम श्रेणीके लोग उसमें आमिलते हैं तथा निम्न श्रेणीके लोग भी उत्तम मध्यम श्रेणीके बनजाते हैं। जैनसमाज साधारण, जिसकी गिनती मध्यम श्रेणीमें की जाती चाहिये, उसमेंसे हजार पाँचसौसे अधिक सत्य-समाजी न मिलेंगे और उसमें [illegible] ही मुश्किलसे होंगे। इसलिये सत्यसमाजको [illegible]सन्न करनेके लिये दूसरे लोगोंको ही उपादान बनाना पड़ेगा। म० महावीर, म० बुद्धसे लेकर अभी कल तक जितनी धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक क्रान्तियाँ हुई हैं सभीका इतिहास इस बातका साक्षी है। एक बात और ध्यानमें रखना चाहिये कि आजका युग संकुचितताओंको नष्ट करनेका है। समाजका कल्याण इसीमें है कि कमसेकम उसमें मनुष्यता देवीका अवतार हो। इससे छोटे लक्ष्यको लेकर अगर काम किया जायगा तो वह इतनी जल्दी साम्प्रदायिक कट्टरताका रूप धारण करेगा कि उस का होना न होना बराबर होजायगा। इसलिये जितने समयमें यह संस्था खड़ी होगी, उतने समयमें तो इस की उपयोगिता ही नष्ट होजायगी। इसप्रकार पग

भर खड़ी होते न होते तो इसको मिटानेकी आवश्यकता होजायगी। इसलिये मनुष्यताको लक्ष्यमें रखकर ही हम सत्यसमाजकी स्थापना करसकते हैं। जब हम वैज्ञानिक सत्यकी खोजमें हैं, हम उसकी आराधना करना चाहते हैं तब यह कैसे हो सकता है कि उसका लाभ अमुक छोटासा वर्ग उठावे और बाकी लोग उससे वञ्चित रहें? जब जातिपाँतिके साधारणविचारमें भी 'मनुष्यजातिरेकैव' का शुभसन्देश सुनाते हैं तब एक वैज्ञानिक धर्मके लिये मनुष्यताके टुकड़े करना चाहें तो वह कहाँ तक उपयुक्त होगा? इन सब बातोंका विचार करके मैंने "सत्यसमाज" नाम रक्खा है। हमें सत्यकी पूजा करना है, असत्य को दूर करना है, परन्तु आर्य और अनार्यके कृत्रिम और हानिकर भेदोंसे मनुष्यताके टुकड़े नहीं करना है।

और भी अनेक प्रश्न इस विषयमें खड़े होसकते हैं और खड़े हुए हैं। उनका उत्तर भी मेरे पास है, परन्तु उसकी अभी आवश्यकता नहीं मालूम होती। सत्यसमाज जब एक चलती फिरती संस्था हो जायगी तभी उसके सामने सैकड़ों नई नई समस्याएँ आयँगी और उसी समय उनका निपटारा करना पड़ेगा। उसी समय उन प्रश्नोंका उत्तर भी उपयुक्त होगा। फिर भी जिन पाठकोंके मनमें कुछ भी शंका हो वह अवश्य ही पूछें। मैं यथाशक्ति उसका उत्तर देनेकी अथवा उसके अनुसार संशोधन करने की चेष्टा करूँगा।

पाठकोंको इस स्कीमपर खूब गम्भीरतासे विचार करना चाहिये; अपने समर्थक या विरोधी विचार मुझ पर अवश्य प्रकट करना चाहिये। विरोधी विचारवाले यह लिखनेकी भी कृपा करें कि सत्यसमाजने जो कार्यक्रम सामने रक्खा है, उसकी आज आवश्यकता है कि नहीं? यदि है तो सत्यसमाजकी स्थापनाके सिवाय दूसरा मार्ग क्या है जो इससेभी सरल तथा ऐसा ही लाभप्रद हो?

यदि हम चाहते हैं कि हम इस युगमें जीवित रहें, अपना और जगत्का कल्याण करें तो हमें अपनी शक्तिको न छिपाकर कार्यक्षेत्रमें अवश्य आगे बढ़ना चाहिये।
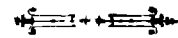
सम्पादकीय टिप्पणियाँ।

प्रतापगढ़में पाँच दिन।

ग्रीष्मप्रवासके वर्णनमें मैंने एक सूचना निकाली थी कि मुझे अमुक समयपर अवकाश रहता है, उसका जो भाई उपयोग करना चाहें कर लें। तदनुसार श्री० मसकलालजी वकीलने प्रतापगढ़से निमंत्रण भेजा। ग्रीष्मप्रवासके समय आपका निमन्त्रण स्वीकार करके भी मैं पहुँच न सका था, इसलिये इस मौकेका उपयोग कर लेना उचित समझा।

प्रतापगढ़में हूमड़ लोगोंकी अधिक बस्ती है। उसमें तीनों सम्प्रदायके व्यक्ति हैं जिनमें परस्पर बेटी-व्यवहार होता है। अन्य स्थानोंकी अपेक्षा कुछ उदारता भी अधिक है। एक दूसरेके धर्मस्थानोंमें आते जाते हैं। मैं ता० ४ को चलकर ५ की शामको वहाँ पहुँच गया था।

ता० ६ के प्रातःकाल ज्योंही मैं तेरहपंथी दिगम्बर मन्दिरमें गया त्योंही वहाँके कुछ भाइयोंने शास्त्रमें बैठनेको कहा। शास्त्रमें साधारण प्रश्नोंका उत्तर दिया। शास्त्रके बाद एक भाईने पूछा—आपकी जाति क्या है? मैंने कहा—'परवार'। तब उनने कहा—परवार जाति बहुत बुद्धिमान जाति है, उसमें अच्छे अच्छे विद्वान हैं।

मैंने कहा—यह आपका भ्रम है। कोई भी गुण किसी जातिविशेषके ठेकेमें नहीं पड़ा है। परवारोंमें एकसे एक बढ़कर विद्वान हैं, और एकसे एक बढ़कर मूर्ख। योग्यताकी दृष्टिसे यही बात अन्य जातियोंके विषयमें भी कही जा सकती है। जिन्हें हम जाति कहते हैं उनमें कोई ऐसी विशेषता नहीं है जिससे हम उन्हें जाति कह सकें, और एकको दूसरीसे अलग पहिचान सकें। परिस्थिति मिलनेपर

सभी जातियोंके आदमी सभी तरहके बन सकते हैं।

दूसरे सज्जनने पूछा—क्या माता-पिताका संतान पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता ?

मैंने कहा—काफी प्रभाव पड़ता है, परन्तु ऐसा कोई प्रभाव नहीं है जो वर्तमानकी दीवार आदि एक जातिसे दूसरी जातिको जुदा करता हो। माता पिताकी विशेषताएँ व्यक्तिगत हैं, जातिगत नहीं। इसके अतिरिक्त एक ही माता-पिताकी सन्तान समयभेदसे, परिस्थितिभेदसे तथा अपने पूर्वजन्मके संस्कारोंके भेदसे अनेक तरहकी होसकती है। एक ही घरमें रावण भी होता है और विभीषण भी। एक भाई देव हो सकता है, दूसरा दानव। मतलब यह कि एक जातिके व्यक्तियोंमें भी विषमता होती है और उससे असंख्यगुणी समता दो जातियोंके व्यक्तियोंमें भी हो सकती है। इसलिये जातिभेदकी यह कृत्रिम दीवाल व्यर्थ है।

लोगोंकी यह इच्छा थी कि मैं शामको आकर भी धर्मोपदेश दूँ। मैंने उनका यह अनुरोध स्वीकार किया। मैं शामको गया और उनकी इच्छाके अनुसार 'सम्यक्त्व' पर विवेचन किया, जिसमें मैंने बतलाया कि सम्यक्त्व साम्प्रदायिक नहीं है, न बाह्य क्रियाकांडसे उसका कुछ सम्बन्ध है। जैनशास्त्रों के अनुसार नवग्रैवेयक तक मिथ्यात्वी होते हैं, शुक्ल लेश्याधारी भी मिथ्यात्वी होते हैं और सातवें नरक में सम्यक्त्वी होते हैं; और पशुओंमें तो व्रती तक होते हैं, आदि।

शामको मित्रमण्डलके व्याख्यानभवनमें भाषण हुआ। विषय था—समाज और संगठन। इसमें महावीरकी संघव्यवस्था, उसकी विशेषता, संघके विषय में उनकी सतर्कता; इस विषयमें मृगावती, श्रेणिक आदिके उदाहरण बताकर दिगम्बर श्वेताम्बर आदि भेदोंकी निरर्थकता बतलाई। मतभेदोंकी निःसारता बतलाते हुए स्त्रीमुक्ति पर कहा। वर्तमानके जैनियों की मान्यताके अनुसार न तो आज स्त्रियाँ मोक्ष जाती हैं, न पुरुष। अगर स्त्रियाँ मोक्ष जायँ तो दिगम्बरोंकी ताक़त नहीं है कि वे उन्हें रोक लें। अगर न जायँ तो श्वेताम्बरोंकी ताक़त नहीं है कि वे उन्हें उठाकर मोक्षमें रख दें। स्त्रियोंको जैनधर्मने जो महत्वपूर्ण स्थान दिया था उसे तो दिगम्बरोंने भी छीन लिया है और श्वेताम्बरोंने भी। अधिकारकी दृष्टिसे जैनेतर महिलाओंकी दशासे न जैन महिलाओं की दशा अच्छी है, न दिगम्बर महिलाओंकी दशा से श्वेताम्बर महिलाओंकी। तीर्थोंके झगड़े भी निरर्थक हैं। वास्तवमें आज जैनसमाज उनको पूजता नहीं है, भोगता है। पूजनेकी चीज़ पर लड़ाई नहीं होती, भोगनेकी चीजपर लड़ाई होती है। अब तो निःपक्ष बनकर भेदभावको छोड़कर तीनों सम्प्रदायोंको एक बन जाना चाहिये और एक संगठित समाज बनाना चाहिये। पं० दीपचन्दजी यतिने व्याख्यान की सराहना की।

ता० ७-९-३४ को सुबह ९ बजे उसी व्याख्यानभवनमें जिनभक्ति पर बोलते हुए कहा कि—"हम लोग भक्तिके विषयमें बहुत अन्धे हैं। जिनेन्द्रके वास्तविक गुणोंकी भक्ति न करके उनकी चमकदमक की भक्ति करते हैं, उनके नक़ली गुणोंको पूजते हैं। दूसरी भूल यह है कि जिनभक्तिसे धनपैसा चाहते हैं, परन्तु जैन तीर्थंकर कोई सेठ साहुकार नहीं हैं कि खुश होकर वे कुछ दे दें। ऐसी चीजें न तो वे देते हैं, न वे दे सकते हैं। ऐसी चीजें माँगना तो उन्हें शर्मिन्दा करनेका प्रयत्न करना है। सौभाग्यसे वे वीतराग हैं और उनकी मूर्त्तियोंके सामने हम माँग पेश करते हैं इसलिये उन्हें लज्जा परीषहका विजय नहीं करना पड़ता, परन्तु हमारा प्रयत्न तो ऐसा ही है। भक्ति कोई साक्षात धर्म नहीं है, किन्तु धर्मका साधन है। उससे तो हमें सिर्फ भावना मिल सकती है। भावनाके लिये तो हमें उनके वास्तविक गुणों की भक्ति करना चाहिये। वे आत्मदर्शी थे, कर्तव्याकर्तव्यके विवेकी थे, उनका ज्ञान पोथियोंका नहीं, किन्तु अनुभवमूलक था, तथा वे समदर्शी अर्थात् वीतराग थे तथा समाजसेवी अर्थात् हितोपदेशी थे।

बस, यही भावना हमें उनसे मिल सकती है। हमें तो जिन बननेकी भावना रखना चाहिये। प्रारम्भिक अवस्थामें इसप्रकारकी भक्ति रखना चाहिये, बादमें रागरूप भक्तिका त्याग ही करना उचित है। इन्द्रभूति गौतम महात्मा महावीरके पट्टशिष्य और गणधर होने पर भी तबतक केवली न बन सके जबतक वे महावीरके रागी भक्त रहे। इसलिये जिनभक्तिके समय हमें विवेकसे काम लेना चाहिये, नहीं तो हमारी भक्ति निरर्थक ही न जायगी, किन्तु हानिप्रद अर्थात् मिथ्यात्ववर्धक हो जायगी।

यहाँ से उठकर ११॥ बजे पर्वाराधना इस विषय पर दूसरे मन्दिरमें कहा। १० मिनिटके इस छोटेसे व्याख्यानसे लोग बहुत प्रभावित हुए। भोजनके बाद श्रीयुत् लक्ष्मीचन्द्रजी घियासे सर्वज्ञता तथा अतिशयोंकी निरर्थकता आदिके विषयमें दो घंटे तक वार्तालाप हुआ।

शामको जब व्याख्यानमें कुछ देर थी, किन्तु बहुतसे श्रोता एकत्रित थे, राज्यके नायब दीवान श्रीयुत् माणिकलालजीके साथ कुछ प्रश्नोत्तर हुए। उनके उत्तरमें मैंने जो कुछ कहा उसका सार यह था कि—"मैं सब धर्मोंमें अच्छापन और कुछ न कुछ त्रुटियाँ देखता हूँ। शास्त्रोंको मैं न्यायाधीश नहीं, साक्षी मानता हूँ। आवश्यकता होने पर मुझे जैनाचार्योंका विरोध भी करना पड़ता है। हाँ, उनके व्यक्तित्वकी निंदा नहीं करता। किसी बातको मैं सिर्फ इसीलिये मान्य नहीं करता कि वह जैनशास्त्रों की है, न इसीलिये अमान्य करता हूँ कि वह अन्य शास्त्रोंकी है। युक्तियुक्त बात कहीं की हो, मैं उसे ही मानता हूँ। वैज्ञानिक निर्णयोंको अपनाता हूँ और जहाँ विज्ञान चुप है अथवा संदिग्ध है, वहाँ तर्कसे काम लेता हूँ। मेरा विचार जैनोंके तीनों सम्प्रदायोंका ही नहीं, सब धर्मोंका समन्वय करके सत्यकी खोज करना है।"

आपने मेरे विचार सुनकर आश्चर्य और प्रसन्नता प्रकट की। बादमें अहिंसा विषय पर मेरा व्याख्यान हुआ। अहिंसा विषयक मेरे विचार प्रकट हो चुके हैं, इसलिये उनका यहाँ उल्लेख नहीं किया जाता है। ये सब बातें यहाँ के लोगोंके लिये नई और आकर्षक थीं। मेरा व्याख्यान सुनकर नायबदीवान साहबने कहा—"मैंने बहुतसे व्याख्यान सुने थे, परन्तु ऐसा व्याख्यान आज तक न सुना था।"

ता० ८-९-३४ को शामको श्रीयुत् झमकलालजी वकील आदिके साथ जैनधर्मके मर्मपर चर्चा हुई। मैंने समझाया कि सर्वज्ञ क्यों नहीं बनता और उसके माननेमें क्या हानि है, तीर्थंकरके अतिशयोंको भी मैंने क्यों नहीं माना आदि।

रात्रिको मेरा व्याख्यान जैनधर्मकी व्यापकता पर हुआ, जिसमें मैंने कहा—"जैनधर्म व्यापक है, जैनमत नहीं। मत तो कोई भी व्यापक नहीं होता" आदि। सम्प्रदायातीत धर्मका विवेचन करके उसकी विश्वव्यापकता बतलाई। यहाँ के संस्कृत विद्यालयके प्रधानाध्यापक एक ब्राह्मण विद्वान पं० जगन्नाथजी शास्त्री व्याकरणाचार्यने कहा कि—"आजतक मैंने बहुतसे व्याख्यान सुने हैं, परन्तु ऐसा अद्भुत, अपूर्व व्याख्यान मैंने आज ही सुना, मुझे इससे बहुत प्रसन्नता हुई। वास्तवमें साम्प्रदायिक कट्टरता अच्छी चीज नहीं है।"

ता० ९-९-३४ के सुबह तेरहपन्थी मन्दिरमें एक भाईने मुझसे पूछा—आप गोत्र मानते हैं कि नहीं? मानते हैं तो कैसा? मैंने कहा—"जिससे लोकमें उच्च कहा जाय वह उच्च गोत्र, जिससे नीच कहा जाय वह नीच गोत्र। गोत्र तो रहता है, परन्तु देश कालके अनुसार उसका बाह्यकारण (नो कर्म) बदलता रहता है। कहीं इसका कारण वंशपरम्परा माना जाता है तो कहीं शक्ति, विद्या, आचरण, धन आदि। नारकियों, देवों और सम्मूर्छनोंमें वंशपरम्पराका लक्षण घट ही नहीं सकता।"

एक त्यागी कहलानेवाले सज्जनने गोम्मटसारकी गाथाका उल्लेख किया। इसके उत्तरमें मैंने कहा—यह लक्षण सार्वत्रिक और सार्वकालिक नहीं है, किन्तु मनुष्यसमाजकी अमुक बातको लेकर है। मैं

अभी कह चुका हूँ कि वह लक्षण अन्य तीन गतियों में नहीं जाता और मनुष्यमें भी सब जगह नहीं जाता। भोगभूमिके बाद कर्मभूमिके प्रारम्भमें जो नीचगोत्री बनते हैं, वे वंशपरम्पराके बिना ही बनते हैं। इसी प्रकार छठे कालमें जब सभी नीचगोत्री हो जायँगे तब बहुतसे उच्चगोत्रियोंकी सन्तान ही नीचगोत्री बन जायगी। इसी प्रकार उत्सर्पिणीमें नीचगोत्रियोंकी परम्परामें उच्चगोत्री होंगे।

बेचारे त्यागी महाशय इतनी बात समझ भी नहीं सकते थे इसलिये बोले—"हम आचारजके वाक्य मानते हैं" मैंने कहा—"मैं भी तो आचार्यके वाक्य कह रहा हूँ। आपको तो किसी एक वाक्यको पकड़ कर बैठ जाना है जब कि मुझे तो सबका समन्वय करके सत्यकी पूजा करना है"। बेचारे त्यागीजी क्या समझें कि सबका समन्वय क्या बला है, इसलिये वे बोले—"तो हमें ऐसी बात नहीं सुनने"। मैंने कहा—"भाई! जब तुमने पूछा तब मैंने उत्तर दिया, नहीं सुनना था तो पूछा क्यों?" इसके बाद चर्चाकी शान्ति होगई; और बातें होने लगीं। जैन लोग एक दिन वैज्ञानिकताकी दुहाई देते थे, वे शास्त्रोंकी परीक्षा का दम भरते थे, अपनेको निःपक्ष और विवेकी कहते थे। परन्तु आज जब उसकी वैज्ञानिक समालोचना का समय आया तब सबके सब अन्धविश्वासके गीत गाकर जैनधर्मको लजाने लगे हैं। जैनपत्रोंमें जैन विद्वान आजकल इसी तरहकी अविवेकिता और भीरुताका परिचय देरहे हैं। यहाँ भी उसीका एक नमूना दिखलाई दिया।

यहाँ पर दाड़िमचन्दजी नामके एक वयोवृद्ध सज्जन हैं। मैंने सुना था कि आप मेरे विचारोंके और व्यक्तित्वके घोर विरोधी हैं। दुपहरको जब मैं अपने डेरेपर कुछ लोगोंकी शंकाओंका समाधान कररहा था, तब आप आये। आप एक खास चर्चाके लिये आये थे। आप अरहन्त और सिद्धके अनन्त चतुष्टयमें अन्तर मानते हैं, इतनाही नहीं किन्तु अरहंतों में भी ज्ञानादि-गुण समान नहीं मानते। इस विषय में आपने मेरा मत पूछा।

मैंने कहा—"मैं भी केवलियोंमें न्यूनाधिकता मानता हूँ और आपसे भी अधिक मानता हूँ, परंतु साथ ही मैं यह कह देना चाहता हूँ कि इस प्रकारकी न्यूनाधिकता माननेवाला सर्वज्ञ नहीं मान सकता, और न वास्तवमें अनन्तज्ञानी मान सकता है।" आपने कहा—'अनन्तके अनन्त भेद हैं'। मैंने कहा—"उत्कृष्ट असंख्यातमें एक जोड़ देनेसे अनन्त कहलाने लगता है, परन्तु वह राशि अन्तरहित नहीं होसकती इसलिये आप केवलीके ज्ञानको नःमका अनन्त कह सकते हो परन्तु वास्तविक अनन्त नहीं। दूसरी बात यह है कि जब एक केवलीके ज्ञानसे दूसरे केवलीके ज्ञानको आप न्यून मानोगे तब आपको यह भी मानना पड़ेगा कि केवली होनेपर भी कुछ न कुछ वह नहीं जान पाया है। तब, वह आजकलकी मान्यताके अनुसार सर्वज्ञ कैसे होगा? तथा क्या आप बतलाओगे कि एक केवली क्या नहीं जानता और दूसरा केवली क्या अधिक जानता है?" आप बोले—"हम छद्मस्थ उनके ज्ञानका अनुभव कैसे कर सकते हैं?" मैंने कहा—"अनुभव तो अरहंत सिद्ध का भी नहीं कर सकते, फिरभी तर्कणासे उनकी तरतमताको हम सिद्ध कर सकते हैं। उसी तर्कणासे हमें यह भी बताना होगा कि एक केवली दूसरे केवलीसे कम क्यों जानता है और क्या बात नहीं जानता है?"

आप केवलियोंमें तरतमता भी मानना चाहते थे, और सबको सर्वज्ञ भी। साथही यह नहीं बता सकते थे कि न्यूनाधिकता ज्ञेयके किस अंशको न जानने से हुई है। मैंने कहा कि अगर आप तरतमता मानना चाहते हैं तो मेरा समर्थन ही करते हैं, परंतु इससे आप सर्वज्ञ नहीं मानसकेंगे।

उनके पूर्ण अनुकूल न होने पर भी आपको मेरी सम्मतिसे प्रसन्नता हुई। इसबातको आपने नगर में भी इधर उधर कहा।

शामको जबमें डेरेपर बैठा था तब दो नाई युवक आये। दोनों भाई भाई थे, सुशिक्षित थे, कवि और गायक थे। इन सब बातोंका इनने मुझे परिचय दिया। ये दोनों युवक बेगार प्रथाके विरुद्ध सत्याग्रह भी कर चुके थे, सत्याग्रहियोंके नेता थे, अमुक अंशमें इन्हें सफलता भी मिली थी। मैंने सोचा, ऐसे युवक इस बातके उज्ज्वल प्रमाण हैं कि कोई भी सद्गुण उच्चवर्णी कहलाने वालोंकी ठेकेदारीमें नहीं पड़ा है।

रात्रिको कुछ सज्जनोंकी शंकाओंके समाधानके बाद समाजसुधार विषयपर व्याख्यान दिया। इसमें मृत्युभोज, पर्दाप्रथाका विरोध, अन्तर्जातीयविवाह, स्त्रियोंके अधिकार तथा कुरीतिनिवारणके विषयमें कहा।

ता० १० को दिनमें दिगम्बर जैन मिडिल स्कूलका निरीक्षण किया। धर्मशास्त्र, हिन्दी, संस्कृत, इतिहास और भूगोलमें परीक्षा ली। बादमें विद्यार्थियोंके लिये उपयोगी व्याख्यान दिया। इसके बाद विद्यार्थियोंको प्रश्न पूछनेको कहा। विद्यार्थियोंने जिज्ञासापूर्ण और विनोदी प्रश्न पूछे, जिसके उत्तरोंसे उन्हें बहुत प्रसन्नता हुई।

रात्रिको गुमानजीके मंदिरमें रत्नत्रय पर व्याख्यान दिया जिसमें बहिरात्मा आदिकी व्याख्या नये ढंगसे की। ता० ११-९-३४ को रवाना होकर ता० १२ के प्रातःकाल मुम्बई आगया। आते समय सफर खर्च आदिके लिये मुझे ६५) दिये गये परन्तु मेरा खर्च सिर्फ ४०) ही हुआ था, इसलिये बाकी २५) सत्यसमाजके आन्दोलनके लिये दे दिये।

सत्यसमाजकी सूचना।

गतांकमें "सत्यशोधक समाज" नामसे जो स्कीम निकली थी उसके विषयमें धाराशिव श्री० मोतीचंदजी चुन्नीलालजीने लिखा था कि इस नाममें परिवर्तन होना चाहिये, क्योंकि इस नामकी एक संस्था महाराष्ट्रमें है और यह महाराष्ट्र भरमें खूब प्रसिद्धि भी पा चुकी है, उसके विषयमें लोगोंका अच्छा या बुरा मत भी बन चुका है।

और भी दो तीन तरफसे मुझे ये समाचार मिले, इसलिये अच्छा होनेपर भी यह नाम मुझे बदलना पड़ता है। परन्तु "सत्य" शब्द इतना आवश्यक मालूम हुआ कि इसे नहीं निकाल सका, सिर्फ शोधक शब्द अलग करके 'सत्यसमाज' यह नाम रख दिया गया है। अन्य पाठक भी इस विषयमें कुछ सूचना भेज सकते हैं। जैनजगत्के नये वर्षके पहिले ही इसका निर्णय हो जाना जरूरी है, इसलिये १६ अक्टूबर तक सूचनाएँ आजाना चाहिये।

सत्यसमाजकी स्कीम जैनजगत्में अलग निकल चुकी है, तथा वह अलग भी मिल सकेगी, परन्तु सदस्य बननेके लिये जो फार्म भरना पड़ता है वह अलग नहीं छपा है। नामका तथा अन्य बातोंका निर्णय हो जाने पर उसका संशोधित रूप प्रकाशित किया जायगा। अभी तो जो सज्जन सत्यसमाजके सदस्य बनना चाहें वे प्रवेश-फार्मकी नकल करके भरकर भेजदें। सब समझकर और दृढ़ निश्चय करके भेजें।

क्या यह आत्मवंचना नहीं है ?

मनुष्य जब अपनी कमजोरीको समझ करके भी नहीं समझता, अपनी कमजोरियोंको दूर हटाने के बदले उनपर आँखमिचौनी करता है, इसने परभी अगर उसे आत्मवञ्चक न कहें तो क्या कहें ? ब्रह्मचारीजीने मांसप्रकरणको लेकर साम्प्रदायिक वैमनस्यका जो समर्थन किया था उसके उत्तरमें जब मैंने कहा तो आप तिलमिला उठे। जिस बातका उत्तर अच्छी तरह दे दिया जाता है, उसका खंडन न करके आप पुरानी बातको पीटते रहते हैं और अन्तमें कहदेते हैं कि मैं अब उत्तर ही न दूंगा। मानों अभी तक आप उत्तर ही देरहे थे। [illegible] रहना आपके शब्दोंमें [illegible] है [illegible] अब मुझे कुछ नहीं कहना है [illegible] आपके शब्दोंमें इस बातको स्पष्ट कर दिया है कि [illegible] साम्प्रदायिक [illegible] भावको लेकर वैमनस्य न बढ़ाना चाहिये, और यह

भ्रम निकाल देना चाहिये कि "हमारे पूर्वज हर एक तरहसे हमसे अच्छे थे। हम लोग दिनपर दिन नालायक ही बनते जारहे हैं।"

इतिहास, विज्ञान, पुरातत्त्व आदि शास्त्र तथा और शास्त्र भी मेरी बातका ही समर्थन करते हैं। मेरा कहना सत्य तो है ही परन्तु कल्याणकारी भी है। मुझे विश्वास है कि ब्रह्मचारीजी और उनके साथी एक न एक दिन इस तथ्यको अवश्य समझेंगे। अभी वे आत्मवञ्चना कर रहे हैं सो भलेही करें। आत्मवञ्चना करनेका प्रत्येकको अधिकार है।

"जैनधर्मका मर्म" पर सम्मतियाँ।

(३३)

श्रीमान् शिवचरणलालजी जैन एम० आर० ए० एस० जसवन्तनगरसे लिखते हैं--

"मैं आपके जैनधर्मके मर्मका स्वाध्याय शुरूसे ही कर रहा हूँ और विपक्षी लेख भी देख रहा हूँ। परन्तु देखता हूँ कि मर्म तक पहुँचनेके लिये कुछ टाइम लगेगा, और जो लोग पहुँचे भी हैं उनके पक्षपात और मोह अभी छूटा नहीं है। आपका प्रयास सराहनीय है। कुछ समयबाद जैनजगत् धर्मके मर्मकी प्रतिष्ठा करेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।"

"हाँ, अंक २० में अपरिग्रहका विषय देखा। स्त्री-समाजके लिये विशेष प्रकाश डालिये कि वह अपरिग्रही कैसे हो सकती है, क्योंकि वर्तमानमें स्त्री-समाजके लिये धन संचयका साधन नहीं है।"

आपका—शिवचरणलाल जैन।

नोट—अहिंसादि व्रतोंके विषयमें जो कुछ अभी लिखा गया है, वह साधारण दृष्टिसे है। अणुव्रत और महाव्रतके रूपमें वह इसी अध्यायमें फिर लिखा जायगा। अपरिग्रहका विषय २० वें अंकमें सामान्य दृष्टिसे भी पूरा नहीं हुआ था। फिरभी, आपकी सूचना बहुत उपयोगी है अगर अन्य पाठक भी इसप्रकार मेरा ध्यान दिलायेंगे तो बहुत सुविधा होगी। —सम्पादक।

सांप्रदायिकताका दिग्दर्शन।

(१२)

(ले० — श्री० पं० सुखलालजी।)

[अनु० - श्रीमान् जगदीशचन्द्रजी जैन ऐम० ए०]

ब्राह्मणवर्णकी उत्पत्ति। *

तत्त्वज्ञान और आचारसम्बन्धी बहुतसी बातों में वैदिक और जैनदर्शनमें प्रबल मतभेद है। परन्तु इन सब बातोंमें याज्ञिक हिंसाका मतभेद मुख्य है, तथा इसी याज्ञिक हिंसाके कारण वेदका प्रामाण्य और ब्राह्मणवर्णका जन्मसिद्ध श्रेष्ठत्व भी मतभेद का मुख्य विषय होगया है। जैनदर्शनकी तरह बौद्ध-दर्शनका भी वैदिक दर्शनके साथ उक्त तीन बातोंमें मतभेद है। वेदके प्रामाण्यके सम्बन्धमें बौद्ध और जैनोंका समान मतभेद होने पर भी उनमें थोड़ीसी भिन्नता भी है और वह भिन्नता यह है कि जैनग्रन्थ हिंसाप्रधान वर्तमान वेदोंको कल्पित मानकर वेदोंकी

* ब्राह्मण शब्दकी उत्पत्तिके विषयमें जैनोंकी कल्पना खास ध्यान खींचती है। भरतने अपने कर्त्तव्यका भान कराने के लिये व्रतधारी श्रावकोंको हमेशा अपने दरवाज़ेपर बैठकर "मा हण मा हण" शब्दका उच्चारण करनेको कहा। इसी शब्दसे ब्राह्मण नामकी उत्पत्ति हुई है। यही कल्पना सब श्वेताम्बर ग्रन्थोंमें है। पउमचरियमें ब्राह्मण नामके सम्बन्धकी कल्पना बिलकुल दूसरे प्रकारकी है। इसमें ब्राह्मण नामकी उत्पत्ति तो माहण शब्द से ही बताई गई है, परन्तु यह माहण शब्द यहाँ दूसरे अर्थमें लिया गया है। जब ऋषभदेवकी भविष्यवाणीसे लोगोंको मालूम हुआ कि भरतके द्वारा स्थापित ब्राह्मणवर्ग आगे चलकर अभिमानी होगा और सच्चे धर्मका लोप करेगा तो लोग इस वर्गको हणने (पीटने) लगे। इन लोगोंको ऋषभदेवने 'मा (मत) हण (मारो)' कहकर रोका। उस समयसे प्राकृतमें माहण और संस्कृतमें ब्राह्मण शब्द प्रचलित हुए। आदि-पुराणमें द्विजका विवेचन करते हुए कहा गया है कि ब्राह्मणत्व जन्मसिद्ध है, परन्तु वह शास्त्र और तपके संस्कार द्वारा योग्य बनता है और उसी समय द्विज कहा जा सकता है।

उत्पत्ति पीछेसे मानते हैं और असली वेदोंको लुप्त हुआ स्वीकार करते हैं, परन्तु बौद्ध इसविषयमें कुछ कहते हों यह अबतक ज्ञात नहीं है। यज्ञोंमें होने वाली पशुहिंसाके विरोधके समय ही ब्राह्मणवर्णका जन्मसिद्ध श्रेष्ठत्व और वेदके प्रामाण्यका प्रश्न उपस्थित हुआ। ब्राह्मणमात्र जन्मसे ही उच्च नहीं है, उच्चताका आधार गुण-कर्मकी योग्यता है। चांडाल कुलमें उत्पन्न होकर भी श्रेष्ठ गुण कर्मसे ब्राह्मणके समान उच्चता सम्भव है—इस प्रकारका वैदिक ब्राह्मणोंके प्रति जैनोंका आक्रमण उत्तराध्ययन नामक जैन आगमके हरिकेशबल नामक बारहवें अध्यायमें पाया जाता है। धर्ममार्गमें हरेकवर्णको समान अधिकार देनेवाले जैनोंको, लोकमें रूढ़ ब्राह्मणवर्णकी जन्मसिद्ध उच्चताका विरोध करना पड़ा। उच्चताभिमानी ब्राह्मण लोग जैनोंको यज्ञनिंदक, ब्राह्मणनिंदक, कहकर लोकमें निन्दा करने लगे। यह संघर्षण बहुत बढ़ा। 'क्षत्रियकुल ब्राह्मणकुलसे बड़ा हुआ है' यह जैनियोंके प्रसिद्ध ग्रंथ कल्पसूत्रमें जो वर्णन है वह इसी परस्परके संघर्षणका परिणाम है, ऐसा विद्वान लोग मानते हैं। जो कुछ भी हो, ब्राह्मणवर्णकी प्राचीनताके विरुद्ध बहुत चर्चा बढ़ी।

ब्राह्मण लोग वेदके आधार पर यह मनवानेका प्रयत्न करते थे कि "ब्रह्माके मुखसे सबसे पहले ब्राह्मण, उसके बाद अन्य अंगोंसे दूसरे वर्ण उत्पन्न हुए, इसलिये इतर वर्णोंकी अपेक्षा ब्राह्मण प्राचीन और पूज्य हैं।" उस समय ब्राह्मणोंके विरुद्ध जैनी लोगोंने यह कहना शुरू किया कि पहले क्षत्रियादि तीन वर्णोंकी सृष्टि हुई, तथा बादमें इन तीन वर्णोंमेंसे ही ब्राह्मणवर्ण उत्पन्न किया गया। जैनोंका यह पक्ष श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ग्रंथोंमें युक्ति और विविध कल्पनाओंके मिश्रणपूर्वक वर्णन किया गया है।

यह वर्णन श्वेताम्बर आगम और चरित दोनों साहित्यमें है। दिगम्बर सम्प्रदायमें केवल चरित साहित्यमें यह वर्णन मिलता है। आगम साहित्यमें यह वर्णन निर्युक्ति, भाष्य आदि चार प्रकारके आवश्यक सूत्रके ऊपरका व्याख्या-साहित्यमें मिलता है। चरित विभागमें श्री विमलसूरि कृत पउमचरिय * तथा आचार्य हेमचन्द्र कृत त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र ‡ मुख्य हैं तथा दिगम्बर साहित्यमें यह वर्णन पद्मपुराण † और आदिपुराण ¶ में किया गया है।

इन ग्रन्थोंमें ब्राह्मणवर्णकी उत्पत्तिके वर्णनका संक्षिप्त सार यहाँ दिया जाता है। [क्रमशः]

---
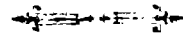
* इस ग्रन्थके लेखक विमलसूरिका समय अभी निश्चित नहीं हुआ है। प्रो० याकोबीका कहना है कि यह ग्रन्थ चौथी सदीसे पुराना नहीं है (यद्यपि ग्रन्थकारके लिखे अनुसार यह विक्रमकी पहली शताब्दिका होना चाहिये)। पद्मपुराण पउमचरियका अनुकरण है, ऐसा बहुत लोग मानते हैं। यदि यह मन्तव्य ठीक हो तो पद्मपुराणके लेखक विक्रमकी सातवीं आठवीं सदीमें होनेवाले रविषेणसे पहले ही पउमचरियके कर्त्ता विमलसूरिका समय होना चाहिये।

‡ इस चरित्र ग्रन्थमें आचार्यने त्रेसठ महान् जैन पुरुषोंके जीवनका वर्णन किया है, इसलिये इसे त्रिषष्ठिशलाका पुरुषचरित्र कहते हैं।

† इस ग्रन्थके लेखक दिगम्बराचार्य रविषेण हैं जो विक्रमकी सातवीं आठवीं सदीमें हो गये हैं। इनके विषयमें देखो विद्वद्रत्नमाला (नाथूरामजी प्रेमी द्वारा लिखित) पृष्ठ ४३।

¶ यह ग्रन्थ दिगम्बराचार्य जिनसेनका बनाया हुआ है। जिनसेन विक्रमकी नवमीं सदीमें प्रसिद्ध जैन राजा अमोघवर्षके समकालीन थे। आदिपुराण महापुराणका पूर्वभाग है और उत्तरपुराण उत्तरभाग। आदिपुराणमें श्री ऋषभदेवजी का वर्णन है और उत्तरपुराणमें बाकी २३ तीर्थंकरों का।

उत्तरपुराण गुणभद्र स्वामीका बनाया हुआ है। ये भट्टारक जिनसेनके शिष्य थे, जिनका समय विक्रमकी नवमी दसवीं शताब्दि गिना जाता है। जिनसेन और गुणसेन स्वामीका समय, ग्रन्थ आदिके विषयमें विशेष जानने के लिये देखो विद्वद्रत्नमालाका पहलाभाग।

आश्चर्यमय जगत्।

(लेखक—श्रीयुत जगदीशचन्द्रजी जैन एम० ए०)

प्रकृतिके अन्तस्तलमें जो अनन्त रहस्य छिपे पड़े हैं उन सबका ज्ञान करना मानवीय बुद्धिके बाहर है। आकाशमण्डलमें अट्टहास करती हुई अनंत तारकाओंकी पंक्ति, सूर्य और चन्द्र, पृथ्वीमण्डल पर कल्लोलोंकी महान् हिलोरोंसे गर्जन करता हुआ अथाह गम्भीरसागर तथा गगनचुम्बी भीमकाय पर्वतमाला आदि प्रकृतिके महान् अद्भुत खिलौनोंको देखकर कौन सगनस्क प्राणी आश्चर्यविमुग्ध होकर प्रकृतिदेवीके सामने सिर नहीं झुका देता ?

अपनी शक्तिको परिमित समझता हुआ भी मनुष्य एक ऐसा खटपटी प्राणी है जो हमेशा प्रकृतिके गूढ़तम रहस्योंको समझनेके लिये कुछ न कुछ उधेड़बुन किया ही करता है। अबसे शताब्दियों पहले ग्रीकदर्शनके सर्वप्रथम जन्मदाता थेलीज (Thales) ने इस महान् विश्वको देखकर कल्पना की थी कि यह ब्रह्माण्ड जलसे उद्भूत हुआ होना चाहिये। लगभग यही कल्पना सृष्टिके आदिमें हिन्दू लोगोंकी थी।

सूर्य,चन्द्र,पृथ्वी आदिके विषयमें नाना जातियों ने नाना तरहकी चित्र-विचित्र कल्पनाएँ की हैं। जैनधर्मके अनुसार तीसरे कालके अन्तमें तारांगण नामके कल्पवृक्षोंकी आभा कम होनेपर गगनमंडल में सूर्य, चन्द्र आदिको देखकर लोगोंके हृदयमें भय हुआ। उस समय प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ भगवान ने बतलाया कि आकाशमें दिखाई पड़नेवाले सूर्य,चन्द्र ज्योतिष्क देवोंके बिमान हैं। पहले इनकी आभा कल्पवृक्षोंकी कान्तिके सामने कम थी, इसलिये ये विमान दिखाई नहीं देते थे। इनसे भयभीत होनेका कोई कारण नहीं है। इतना ही नहीं, बादमें चलकर जैनशास्त्रोंमें सूर्य और चन्द्रको सौ इन्द्रोंमें शामिल किया गया और उनके भीतर अरहंत भगवानकी अकृत्रिम प्रतिमाकी कल्पना की गई। ईजिप्तके रहने वाले, सूर्यको अपने देवताओंका प्रधान मानते थे। सीरिया, परशिया, रोम, पेरू वगैरह देशोंमें भी सूर्य-देवताके मन्दिरोंके ध्वंसावशेष पाये गये हैं, जिससे मालूम होता है कि इन देशोंके निवासी सूर्य देवता के मन्दिर बनाकर उसकी पूजा करते थे। हिन्दू और पारसीलोग तो आजतक भी सूर्यको अर्घ देते हैं। इसी प्रकार हिन्दुओंके अनुसार यह पृथ्वी क्षीर-सागरमें तैरते हुए कछुएकी पीठ पर खड़े हुए चार सफेद वर्णके हाथियोंपर टिकी हुई कही जाती है। सूर्योदय और सूर्यास्त होनेके विषयमें भी इन लोगों का कहना था कि संध्याके समय सूर्य किसी समुद्र में डूब जाता है, इस समुद्रमें सूर्य अपनी अग्नि बुझ जानेसे ठंडा हो जाता है। देवता लोग बहुत चिंतत होते हैं। वे रातोंरात बहुत परिश्रम करके नया सूर्य बनाते हैं और सुबह होते होते इसे पूर्व दिशामें स्थापित कर देते हैं।

पहले जमानेमें प्रायः लोग पृथ्वीको थालीकी तरह चपटी मानते थे। उनका कहना था कि पृथ्वी चारों तरफ़से समुद्रसे वेष्टित है और उसके बीच बीचमें पहाड़ियाँ और ऊँची नीची विषम जमीन है,इसलिये पृथ्वी चपटी ही होनी चाहिये। साथही इन लोगोंकी यह भी मान्यता थी कि पृथ्वी स्थिर है और उसके चारों ओर सूर्य, चन्द्र आदि घूमते हैं। आजसे दो तीन हजार वर्ष पहले हिन्दू, चाइनीज और कैलडियन लोगोंने भूगोल-खगोल विद्याका ज्ञान प्राप्त किया था। ग्रीक लोगोंने इस विषयका विशेष अभ्यास किया और इस विद्याको एक वैज्ञानिक रूप दिया। सबसे पहले ईस्वी सन्के ५७२-४९७ वर्ष पहले ग्रीसके पाइथैगोरस (Pythagoras) नामके विद्वान्ने पृथ्वीके गोलाकार होनेका सिद्धान्त स्थापित किया। (कुछ हिन्दू-ग्रन्थोंमें भी पृथ्वीके गोलाकार होनेका और उसके सूर्यकी प्रदक्षिणा करनेका सिद्धान्त स्थापित किया गया है।) पाइथैगोरसके बाद ग्रीसके प्रसिद्ध विद्वान् अरिस्टॉटल (Aristotle) ने पृथ्वीको

गोल तो माना पर उसने कहा कि सूर्य, चन्द्र और सारे पृथ्वीके चारों ओर घूमते हैं। सबसे पहले ग्रीस का यह अरिस्टेरकस (Aristarchus) नामका विद्वान् था जिसने बताया कि पृथ्वी स्थिर है और सूर्य, चन्द्र तथा नक्षत्र पृथ्वीका चक्कर लगाते हैं। आश्चर्य है कि इस वैज्ञानिकके इस नूतन सिद्धान्त पर किसीने विश्वास नहीं किया। अन्तमें ईस्वी सन् १४७३-१५४३ में निकोलस कोपर्निकस (Nicholas Copernicus) नामका वैज्ञानिक उत्पन्न हुआ और उसने वैज्ञानिक दृष्टिसे पृथ्वी तथा अन्य नक्षत्रों का सूर्यके चारों ओर घूमना सिद्ध करके वैज्ञानिक जगत्में एक बड़ी भारी क्रान्ति मचा दी।

कोपर्निकसके इस पृथ्वीभ्रमणके नूतन सिद्धांत से यूरोपके सभी देशोंमें बड़ा भारी तहलका मच गया। फलतः पोपलोगोंने कोपर्निकसकी लिखी हुई पुस्तकोंको जब्त कर लिया और लोगोंको उनके पढ़नेकी मनाई की गई। खैर, वह तो क्रान्तिके आरम्भका युग था, इसलिये ऐसा किया जाना कोई आश्चर्यकी बात नहीं थी, परन्तु जब हम देखते हैं कि आजकल भी बहुतसे लोग पृथ्वीकी गोलाई और उसके अस्थिरत्वके विषयमें सन्देह करते हैं अथवा इस वैज्ञानिक मान्यताको स्वीकार करते हुए झिझकते हैं तो हमारे आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहता। पाठकोंकी जानकारीके लिये यहाँ पृथ्वीके गोल होने के कुछ प्रमाण दिये जाते हैं—

१—जिस समय चन्द्रग्रहण पड़ता है अर्थात् चंद्रमापर पृथ्वीकी छाया पड़ती है, उस समय चंद्रमा का कृष्ण भाग हमेशा गोलाकार रहता है।

२—हरेक आदमी पृथ्वीकी प्रदक्षिणा कर सकता है। मैगेलन (Magellan) नामक व्यक्तिने सन १५२० में पृथ्वीकी प्रदक्षिणा की। वह पश्चिमसे रवाना होकर पूर्वमें पहुँचा।

३—पृथ्वी चपटी होती तो दुनियाँके सब प्रदेशों में सूर्य एक ही समयमें उदय और अस्त होता।

४—समुद्रके किनारे खड़े होकर देखनेसे आकाशका घेरा (Horizon) नजदीक दिखाई देता है, पहाड़ीके ऊपर चढ़कर देखनेमें नहीं।

५—किनारेकी ओर आनेवाला जहाज किनारे पर खड़े हुए आदमीको एकदम पूरा दिखाई नहीं पड़ता। पहले जहाजका धुँआ, नली, मस्तूल और जहाजका ढाँचा ये क्रम क्रमसे दीख पड़ते हैं।

(क्रमशः)
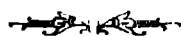
पं० श्रीलालजीका मायाचार।

लोहड़साजन—आन्दोलनके संबंधमें श्री० पं० श्रीलालजी पाटणी अभी तक मौनावलम्बन किये हुए थे, पर जब "लोहड़साजन निर्णय" से यह सिद्ध होने लगा कि ये पंडितजी भी लोहड़साजनोंके सम्बन्धियोंसे सम्बन्धित हैं तब तो पंडितजीकी निद्रा भङ्ग हुई और अपनेको निर्लेप सिद्ध करनेके लिये "लोहड़साजन-निर्णय" पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। इसी सम्बन्धमें हितेच्छुके गताङ्कमें आपने एक लेख लिखा है। उस सारे लेखमें कोई तथ्य की बात नहीं है—केवल पं० कन्हैयालालजी शास्त्री को या तो कुछ बुरा भला कहा गया है अथवा उन्हें नरकायुके बंध बाँध लेनेका फतवा दे डाला है। नरकायुका बंध आपके हुआ या पं० कन्हैयालालजीके, यह तो भगवान केवली ही जान सकते हैं; पर हम इतना तो जरूर कह सकते हैं कि नरकायुके लिये कारणीभूत कृष्ण लेश्या है, और आपके परिणामों में भी हमें कृष्णलेश्याका अनुभव हो रहा है, अन्यथा लेखकके प्रति आप ऐसे अपशब्दोंका व्यवहार कभी न करते।

कोई मुनि लोहड़साजनोंके अथवा किसीके यहाँ आहार ले अथवा न ले, यह उसकी इच्छापर निर्भर है, किन्तु इससे चारित्ररक्षाका कोई सम्बन्ध नहीं है। और जिन मुनि महाराजके सम्बन्धमें आपका संकेत है वे तो केवल इतना ही नहीं करते किन्तु वे जिनके यहाँ आहार लेते हैं उनसे पहले यह प्रतिज्ञा

कराते हैं कि "हम लोहड़साजनोंसे किसी प्रकारका खानपानका सम्बन्ध न रखेंगे।" क्या आचार-शास्त्र के अनुसार आप यह सिद्ध कर सकते हैं कि मुनि के लिये आहारके पहले ऐसी प्रतिज्ञा कराना उचित है? *यदि उचित है तो फिर उन्हींके दीक्षागुरु १०८* आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज अथवा उनके संघस्थ मुनिराज ऐसी प्रतिज्ञा क्यों नहीं कराते? क्या आप इस बातको भूल गये जब आपने सम्वत् १९८८ के आश्विन मासमें पाटोदीके मंदिरमे श्री० मुनि चन्द्रसागरजीको यह कहा था कि खण्डेलवाल महासभाकी निर्वाचित कमेटीका फैसला बिलकुल ठीक है, लोहड़साजनोंके यहाँ आहार लेनेमे कोई आपत्ति नहीं है, आपको अवश्य आहार लेना चा-चाहिए? आश्चर्य है कि दो तीन वर्षके अन्तरालमे ही आपका यह एकाएक रुख बदल गया। हमारी समझ मे "लोहड़साजन-निर्णय" के प्रकाशनसे आप क्रुद्ध होगये हैं इसके अतिरिक्त और कोई दूसरा रुख बदलनेका कारण नहीं है। आपने जो यह लिखा है कि यदि पं० कन्हैयालालजी इस पुस्तकको लिखकर महासभाको देदेते तो शायद निर्णय भी होजाता और कलह भी न बढ़ती, सो महाशय आप केवल इसी बातपर नाराज़ हुए जान पड़ते हैं कि उक्त पंडित जीने आप जैसे पंडितोंको बिना पूछे ही बालाबाला इसे प्रकाशित करदिया। पर, इसमे तो कोई नाराज़ होनेकी बात न थी। हमारी समझमे नहीं आता कि इस पुस्तकसे खण्डेलवाल महासभाका भारी अप-मान कैसे होगया? जो खण्डेलवाल महासभा प्रति वर्ष इस मामलेमे कुछ भी विचार न कर टालमटूल करती जाती है, उसके बारबार गीतगाना केवल आप जैसोंका ही काम है।

लोहड़साजन शब्दमे लोहड़का अर्थ नीचा नहीं किन्तु छोटा है। इस बातको जैनजगत्में कई बार लिख दिया गया है। लोहड़, संस्कृतके लघु शब्दका अपभ्रंश है। व्यवहारमें भी लोहड़का प्रयोग छोटे के अर्थमें ही होता है। लहोड़ी बहू, लहोड़ाभाया आदिमे लोहड़का अर्थ नीचा नहीं है। जयपुरमें एक ल्होड़ी-बड़ीका नीम है, वहाँ भी ल्होड़ीका अर्थ छोटी स्त्रीसे है। हमारे जयपुर जिलेमें दो बगरू नामके ग्राम हैं। जिस गांवमें थोड़े घर हैं, उसको *लोहड़ा बगरू, और जो कस्बा है उसको बड़ा बगरू* कहते है। इसके अतिरिक्त नामोंके अनुसार जातिका अर्थ करना भी ठीक नहीं है, अन्यथा "लुहारिया" और "सं.नी" आदिका इतिहास ढूँढ कर वास्तविक जड़का पता लगाना होगा। हम लोगोंके ८४ गोत्र कैसे बने, इस पर विचार करनेसे तो हमें अवाक् रह जाना पड़ता है इसलिये इस शाब्दिक अर्थको भी हम महत्व नहीं देते। आपने आगे जाकर जो लोहड़साजन निर्णयको सरासर झूठ और मिथ्या कल्पना बताई है, इससे जान पड़ता है कि या तो आपने इस पुस्तकको पढ़ा नहीं है और अगर पढ़ा है तो आप इस बातसे डररहे हैं कि इस निर्णयके आधारसे तो मेरा भी लोहड़साजनोंसे परम्परा-सम्बन्ध सिद्ध होता है। किन्तु, पंडितजी महाराज, आप चाहे कितने ही लेख लिखें पर लोहड़साजनों के सम्बन्धियोंमे जो आपका रिश्ता है वह हटाया हट नहीं सकता। हम पाठकोंके परिचयके लिए एक दो ऐसे उदाहरण पेश करते हैं जिससे लोहड़-साजनोंके साथ पंडितजीका परम्परा रिश्ता स्पष्ट ज्ञात हो सके।

श्रीमान् प्यारीलालजी सेठी जयपुरके बहनोई श्री पन्नालालजी वैद जडवाल धड़ा लोहड़साजन हैं। इनके बहनोई श्री केशवसरणजी लुहाड़िया हरियाणा बडसाजन हैं। ये केशवसरणजी और आपके सुपुत्र कमलकुमारजी की बहू मामा-बुआके बहिन भाई हैं। हम आपसे पूछते हैं कि आपके पुत्रकी धर्मपत्नी केशवसरणजी की बहूको भोजाई मानती है या नहीं? और इस प्रकार श्री प्यारीलालजी सेठी के सम्बन्धियों से सम्बन्धित होने से आप भी उनसे सम्बन्धित हैं या नहीं? यदि हमारे लिखने पर भी आप जान-बूझकर विश्वास करना नहीं चाहते तो

आप मुरादाबाद में श्रीमान् मुंशी सुन्दरलालजी वकील मोठिया की कोठीपर पधारनेकी तारीख निश्चित कर हमें सूचित करें। हम उसी समय श्रीपन्नालालजी श्रीकेशवसरणजी, श्रीप्यारीलालजी सेठी को लेकर मुरादाबाद आजावेंगे और सब लोगोंकी उपस्थितिके बीचमें हम आपको अच्छी तरहसे प्रमाणित कर बतलायँगे कि हमारा लिखना साधार और प्रमाणित है। और तब आपको मालूम हो जायगा कि लोहड़साजन-निर्णय गलत है या नहीं।

इसके अतिरिक्त पाठक महोदय लोहड़साजन निर्णयके ५२ वें पृष्ठ पर नं०५ के सम्बन्धको भी ध्यानपूर्वक देखें, जिससे अच्छी तरह मालूम हो जायगा कि पंडितजी इस प्रकार लेख लिखकर जनतामें कैसा भ्रम फैला रहे हैं। इस सम्बन्धमें हम पाठकोंके अवलोकनार्थ पंडितजी के खास समधी (कमलकुमारजीके श्वसुर) श्रीमान् सुन्दरलालजी साहब मुरादाबाद वालोंने जो सम्मति दी है उसको भी ज्योंका त्यों उद्धृत कर देते हैं—

"श्रीमान् पंडित कन्हैयालालजीको सुन्दरलाल मोठियाकी जय जिनेन्द्र बंचना। अपरंच हमारे यहाँ लोहड़साजन व बड़साजनमें कोई किसी क़िस्मका फ़र्क़ नहीं है। आपसमें रोटी-बेटी-व्यवहार हमेशासे चला आरहा है। मेरी रिश्तेदारी लोहड़साजनोंमें है और मेरी रिश्तेदारी पं० श्रीलालजी पाटणी अलीगढ़वालोंसे और देहली वग़ैरहमें है। यहाँ दस्साओंसे रोटी बेटी-व्यवहार नहीं है।"

Sun Lr Lal Moradabad 28-?-33.

इसके सिवाय यह ग़ौर करनेकी बात है कि जैनसमाजके प्रसिद्ध विद्वान् श्रीमान् पं० चुन्नीलाल जीकी सुपुत्री श्रीमती सुखिया बाईका विवाह श्री० गुमानीरामजी वैद लोहड़साजनके सुपुत्र गंगारामजी से हुआ है। पाठक लोहड़साजन निर्णयके पृष्ठ ५२ सम्बन्ध नं० ११ को देखें। आपका यह लिखना भी ग़लत है कि पुस्तकमें कहींसी मुरादाबाद वालों को ही लोहड़साजन लिख दिया गया है, क्योंकि जो लोहड़साजन धड़ेमेंसे हैं उन्हींको लोहड़साजन लिखा गया है। हाँ, यह बात अवश्य है कि उधरके विवेकी लोग लोहड़साजन और बड़साजनके भेदको बिलकुल व्यर्थ समझते हैं। लोहड़साजन निर्णय सम्बन्ध नं० २ में कुंदरखीके लाला चाँदबिहारीजीकी सुपुत्री का अलीगढ़के लाला चंदालालजी वैदके सुपुत्रसे जो सम्बन्ध बतलाया गया है वह बिलकुल सही है, वह आपके लिखने मात्रसे मिथ्या नहीं होसकता। लोहड़साजन निर्णयमें सम्बन्ध नं० २ पर लाला चन्दालालजीके हस्ताक्षर हैं और सम्बन्ध नं० १८ पर साहु कुंजबिहारीलालजी रईसके हस्ताक्षर चाँदबिहारीजीकी क़लमसे मौजूद हैं। आपने लोगोंको भ्रममें डालनेके लिये जो यह लिखा है कि यदि कन्हैयालालजीकी बात सच हो तो मैं (श्रीलाल पाटणी) लोहड़साजनोंसे बेटीव्यवहार करता हूँ, चाहे समाज मुझे पतित कर दे, सो महाशय ऐसी बढ़ चढ़कर बातें न कीजिये, नहीं तो लेनेके देने पड़ जायँगे। आप लोहड़साजनोंसे बेटीव्यवहार अब क्या करेंगे? वह तो किसी न किसी रूपमें पहलेसे ही मौजूद है। क्या आपके लड़केका सम्बन्ध सुन्दरलालजी मोठियाकी लड़कीसे नहीं हुआ? और क्या उनके भानजे केशवसरणजीका विवाह पन्नालालजी वैद जड़वाल लोहड़साजनकी बहनके साथ नहीं हुआ जो कि श्रीप्यारीलालजी सेठी धड़ा लोहड़साजन जयपुर वालोंके बहनोई हैं?

आपने जो कन्हैयालालजीका लिखना कच्चा-झूठे बतलाई सो जनाब हमारे ऊपरके विवेचनसे तो आप ही सफेद झूठ लिखनेवाले सिद्ध हो रहे हैं। मुरादाबादके मुखियाओंने जो जो सम्मतियाँ दी हैं वे सब एक तरफ़की बात सुनकर नहीं किन्तु अच्छी तरह सोच समझ कर दी हैं। उन्होंने विचारपूर्वक सम्मतियाँ दी हैं या नहीं, इस बातका निर्णयतो उनकी सम्मतिको पढ़नेसे ही हो जाता है। लोहड़साजन निर्णयके २१ वें पृष्ठको खोलकर पाठक महानुभाव

एकबार फिर उस सम्मतिको पढ़ें। आपका यह लिखना बिल्कुल ग़लत है कि जब ९ सदस्योंकी कमेटीमें आपका नाम चुना था तब लोहड़साजनोंसे आप अनभिज्ञ थे। यदि ऐसा होता तो महासभाके रैणवाल अधिवेशनमें जब फ़ैसलेको वापिस लौटाने का प्रस्ताव पं० पन्नालालजी सोनीने रखा था तब आप उस (सोनीजीके प्रस्ताव) का ज़ोरदार विरोध कभी न करते। लोहड़साजनोंसे सदासे होते आए सम्बन्धको जानते हुए भी आप कैसे चुप रहे, इस का जवाब तो आपका हृदय ही दे सकता है, हम क्या जानें? आप धर्मधीर होकर भी प्रमाणहीन बातें लिखनेके लिए तैयार हो जाते हैं, यह बहुत दुःखकी बात है! आशा है हमारे लेखपर निष्पक्ष दृष्टिसे आप विचार करेंगे। हम जो भी कुछ लिख रहे हैं, वह बिल्कुल सत्य है।

इस लेखपर नोट लगानेके बहाने पं० इन्द्रलालजीने कन्हैयालालजी शास्त्री के व्यक्तित्वपर आक्रमण कर अपने हृदयकी ज्वालाको शान्त करना चाहा है। इससे पं० इन्द्रलालजीकी तुच्छताका पता लग जाता है। कन्हैयालालजी चाहे खण्डेलवाल हों या सेतवाल इससे लोहड़साजन-निर्णय झूँठा नहीं होजाता। 'लोहड़साजन निर्णय'को असत्य सिद्ध करने के लिए पं० कन्हैयालालजीकी वंशावलि पूछना क्या अर्थ रखता है, सो पाठक ही सोचें। इसप्रकार तो जो जो लोहड़साजनोंके पक्षको लेकर लेख व सम्मति लिख रहे हैं उन सबकी वंशावलि भी आप पेश करनेको कहेंगे! पं० कन्हैयालालजीके पास कोई फ़ालतू समय नहीं है जो आपके लिए वंशावलि पेश करें। जब लोहड़साजन निर्णयका युक्तियोंसे खंडन करनेमें पस्त-हिम्मत होगए तब खिसिया कर कभी तो पण्डितजीकी वंशावलि पूछते हैं, कभी कहते हैं कि पण्डितजीको दो मिनिट संस्कृत बोलना नहीं आता आदि आदि। किशनगढकी गादीके पण्डित होकर भी (आप कहते हैं) हमारी जातिसे आपको क्या मतलब? तब तो आपसे भी कोई यह कह सकता है कि लोहड़साजनोंके सम्बन्धमें लेख लिखनेसे आपको भी क्या मतलब? जबकि कन्हैयालालजी किसी गादीके पंडित हैं तब तो उनका सबसे बड़ा यह कर्तव्य है कि वे परोपकारार्थ इस मामलेमें अवश्य भाग लें जिससे सत्य और झूँठका अवश्य निर्णय हो।

थोड़े दिनों पहले यही कन्हैयालालजी आपके लिए बड़ेसे बड़े धर्मात्मा थे और आज जब उनने आपकी हाँ में हाँ मिलाना छोड़ दिया, तब इस प्रकारकी व्यर्थकी समालोचनाके पात्र बन गए।

अन्तमें दोनों पण्डित महोदयोंसे हमारा निवेदन है कि आप लोगोंको व्यर्थमें समाजकी शान्तिको भङ्ग करनेके लिए ही समय और शक्तिका दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। अगर पण्डित लोग निष्पक्षतासे किसी विषयका विचार करें तो प्रत्येक विषय बहुत जल्दी तय होसकता है।

समाजसेवक—
नानूलाल पाँड्या, जयपुर।

पूनामें सर्वप्रथम जैन विधवा-विवाह।

गत श्रावण शुक्ला २ वीर सं० २४६० रविवार ता० १२-८-३४ के दिन शामको ठीक साढ़े छ बजे पूना के प्रसिद्ध श्रेष्ठी श्रीमान् बाबूलाल नानचन्द शाहकी 'भगवानदास जैन धर्मशाला'में स्थानीय जैनविधवा विवाह मण्डलकी मार्फ़त श्री० रिधकरणजी कांठारी (पूना) का श्रीमती हीराबाई (मु० सिदुस्वरा, जि० पूना) के साथ पुनर्विवाह बड़े समारोह के साथ निर्विघ्नतया पूर्ण हुवा। उसमें निम्नलिखित कतिपय प्रतिष्ठित जैन-जैनेतर सज्जन सम्मिलित थे।

रा० ब० सहस्रबुद्धे, बै० गाडगील, श्री० दाते वकील, ज्ञानप्रकाश सम्पादक श्री० लिमये, रिटायर्ड ए० इन्स्पेक्टर श्री० दीक्षित, स्थानीय विधवा-विवाह मण्डलके मन्त्री श्री० पाटणकर, प्रकृष्ट सुधारक प्रिन्सिपल अत्रे, सेठ बाबूलाल नानचन्द, राजस्थानी वीर सम्पादक श्री० नारायणदासजी धूत, श्री० भिड़े, श्री० गमनाजी पिताजी, श्री० घोरडीरामजी कर्नावट,

जैनमित्रमण्डलके मन्त्री श्री भूस, जैन बन्धुसमाज के मन्त्री श्री० चन्दुलाल शाह, स्थानीय कतिपय नये जूने विचारके वृद्ध, तरुण, मारवाड़ी विद्यार्थी भुवनके समस्त छात्र तथा स्थानकवासी जैन विद्यालयके कतिपय छात्र, श्री० बाबूराव माहुले आदि १००–१२५ पुरुष तथा सौ० लीलाबाई पाटणकर सौ० मालतीबाई जोशी, सौ० इन्दिराबाई साठे, सौ० यमूताई सहस्रबुद्धे, सौ० सुहासिनीबाई म्हेत्रे, सौ० प्यारीबाई धूत, सौ० केशरबाई जोशी, सौ० लक्ष्मीबाई बलदोटा तथा सौ० सरलाबाई बलदोटा आदि स्त्रियाँ भी शामिल थीं।

शामको छह बजे जैनधर्मशालामें बैण्डवादन प्रारम्भ हुआ। साढ़े छः के पहिले पहिले आमन्त्रित मण्डली एकत्र होगई। पुरोहितका कार्य श्री० दाते वकीलने किया। ठीक साढ़े छः बजे विवाहसंस्कार शुरू हुआ। सभारम्भ कार्यका अध्यक्षपद जैनविधवा-विवाह मण्डलके माननीय अध्यक्ष श्रीमान् युवकवीर श्री० राजमलजी बलदोटा बी० एस सी०, एलएल बी० ने मण्डित किया था। मङ्गलाष्टक और वर-वधू पर अक्षता पड़नेपर मण्डलके मानद मन्त्री श्री० कनकमलजी मुणोत बी० ए० (ऑनर्स) ने नूतन स्थापित मण्डलके उद्देश और कार्यकी दिशा पर विवेचन किया। तदनन्तर वर-वधूका संक्षेपमें परिचय कराया। इसके बाद श्री० बाबूलाल नानचन्द महोदयने अपने भाषणमें जैनसमाजकी अवनत अवस्थाका करुणार्द्र चित्र खींचकर विधवा बहिनों की असहाय स्थितिका ज्ञान कराया। पश्चात् स्थानीय विधवाविवाहमंडलके मंत्री श्री पाटणकरने ओजस्वी वाणीमें इस कार्यमें किस रूपकी आपत्तियाँ आती हैं उनका अनुभवसे ज्ञान कराया। तत्पश्चात पूनाके प्रसिद्ध विनोदी लेखक एवं नाटककार मि० अत्रे ऐम० ए० टी० डी० (लण्डन) का विनोदपूर्ण एवं उद्बोधक भाषण हुआ। इसके बाद बैरिस्टर गाडगील आदि कतिपय सज्जनोंके भाषण हुए। आखिरमें अध्यक्ष महोदयने जैन समाजमें विधवा विवाहकी कितनी आवश्यकता है यह बताते हुए सद्गत पण्डित उदयलालजी काशलीवालके पुनर्विवाहकी कथाका मार्मिकतासे उल्लेख किया। "समाज कपटाचरणके पापको सहनकर सकती है लेकिन खुल्लमखुल्ला व्यवहारको वह नहीं सह सकती। पैसोंके अभावमें एवं रूढ़िके कारण अविवाहित, विधुर एवं विधवा बहिनोंके आन्तरिक व्यवहार पर यदि नजर डाली जाय तो आँखें स्तम्भित हो जाती हैं। हमारी समाज उसे भी आँखोंसे देखती है। लेकिन इस अधःपातको रोकने लिये इस पुण्य अनुष्ठान रूप विधवाविवाह प्रथाको प्रारम्भ करनेमें अपनी अनुमति प्रदान नहीं कर सकती। यही मार्ग श्री रिधकरणजी कोठारी तथा श्रीमती बहिन हीराबाईने हमारे समाजके कल्याणहेतु खुला कर दिया इस लिये उनका मैं जितना अभिनन्दन करूँ उतना थोड़ा ही होगा।" इस प्रकार अध्यक्ष महोदयका भाषण होनेपर श्रीमान् बाबूलाल नानचन्दने आमंत्रित सज्जनोंके आभार माने। इसी मौक़ेपर वरराज श्री रिधकरणजीने भी सभाके आभार माने और आखिरमें वीरकी जयध्वनिमें समारम्भका कार्य संपूर्ण हुआ। इस कार्यमें श्री० धोण्डीरामजी कर्नावट, स्थानीय विधवाविवाह मण्डलके कर्मचारी तथा श्री दाते वकील आदि महानुभावोंने खूब सहायता पहुँचाई। —संवाददाता।

नोट—इसप्रकारके आदर्श विधवाविवाहोंकी समाजमें आवश्यकता है। आशा है उपर्युक्त मण्डल उत्साहसे काम करेगा। —सम्पादक।
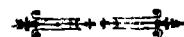
विधवाकी आवश्यकता।

सत्यसमाज व्याख्यानमाला ।

(लेखक—श्री० हेमचन्द्रजी मोदी)

आज मन्दिरमें खूब भीड़ है। छमछमाती हुई नवेलियाँ अठखेलियाँ करती हुई बिजलीसी चमक जाती हैं। परन्तु चन्द्रमुखियोंकी चाँदनीमें भी आज कुछ व्यक्तियोंके मुखपर चिन्ता धुँधा रही है। परस्पर खुसर खुसर होरही है कि "दरबारीलालने तो ग़ज़ब ढाया। ये आफ़तके परकाले पर्चे जहाँ देखो वहीं दीख पड़ते हैं। क्या करें? वहाँ लोगोंको जानेसे कैसे रोकें?" यह देख मैंने थोड़ी देर आँख मींचली। देखता क्या हूँ कि अधेड़, पोपले मुँहकी एक स्त्री बनी ठनी खड़ी है। कह रही है कि पड़ौसमें इस जलमुँही राँड़ने आकर मेरा सारा कारोबार खराब कर दिया। सोनेकी चिड़ियाँ एक एक करके उसके पास उड़ती जारही हैं!"

आजसे सत्यसमाजकी ओरसे स्थानीय हीराबाग हॉलमें पर्युषणपर्वमें व्याख्यानोंकी एक आयोजना की गई। आठ दिन लगातार व्याख्यान होंगे। प्रथम व्याख्यान है पं० दरबारीलालजीका। इसकी सूचना पर्चों द्वारा बटवा दी गई है। हर दफ़ा जब कभी पण्डितजीके व्याख्यानकी सूचना मन्दिरोंमें चिपकाई जाती तबही उस पोपली स्त्रीके प्रेमी लोग उसे फाड़ डालते। इसीलिए यह चाल चली गई।

मन्दिरमें बैठा हुआ शास्त्र सुन रहा था। कथानक रसीला था। मृगाक्षियोंकी केलियोंका वर्णन सुन सुन रसिकजन रसके घूँट पी रहे थे। बीच बीचमें पण्डितजी नमक मिर्च भी लगाते जाते थे। और और विषयोंकी चर्चा भी साथमें होती। सुधारकों और बाबुओंको, विधवाविवाहवालोंको खूब कोसा जाता। कहा जाता कि पं० दरबारीलालजीके व्याख्यानोंमें भूलकर भी न जाओ। वहाँ जानेसे तुम्हारे श्रद्धानमें फ़रक हो जायगा। मति खराब हो जायगी। मिथ्यात्वी होकर नरकमें पड़ोगे। श्रोतागण झपकियोंमें झूम रहे थे। परन्तु हाँ, पण्डितजी 'अरसिकेषु कवित्व निवेदनं' नहीं करते थे। जहाँ कहीं तत्त्वकी बात आती कि सब लोग ज़रा आँख खोल घूँघटमंडित मृगाक्षिवृंदकी ओर कटाक्षपात करते और फिर "स वै रसः" की योगनिद्रामें लीन हो जाते। मुझे भी सुनते सुनते झपकी आगई। देखता क्या हूँ कि वही पोपली स्त्री शास्त्रके आसन पर विराज अपनी कटीली चितवनोंसे श्रोतावृन्दका दिल खींच रही है। कह रही है कि "मेरी पड़ौसिनके यहाँ मत जाना। वह धतूरा खिलाकर ऐसा वशीकरण करती है कि वह अपने साथ तुम्हें भी नरक ले जायगी। देखो तो, तुम्हारी कदमपरस्तीमें इतनी उमर हो गई। क्या तुम बेमुरौवतीके साथ मुझे छोड़ कर उस कलकी छोकड़ीके पास चले जाओगे और उस बेवफ़ाके पीछे मुझ बावफ़ाको छोड़ भूखा मार डालोगे?" परन्तु इतनेमें ही एक मित्रने मुझे हिलाकर जगा दिया। देखता क्या हूँ कि वहाँ उस स्त्री के स्थान पर तो और ही कोई बैठा है और कह रहा है—"दरबारीलाल तो रोटियोंका खरीदा गुलाम है। श्वेताम्बरोंकी रोटी तोड़ता है और उन्हींको खुश करनेकी बातें कहता है!" मैं तो वहाँसे उठा और चल दिया।

टन्-टन्-टन् सात बज गये। व्याख्यानका समय हो गया। परन्तु देखता हूँ कि हॉल खाली। ३०-४० आदमियोंके सिवाय वहाँ और कोई नहीं। उफ़ सब मिहनत व्यर्थ। पाँच हज़ार सूचनापत्र बटवाये, अखबारोंमें सूचना छपवाई। वह सब क्या इसीलिए? मैं निराशामें गोते खाने लगा। परन्तु देखता क्या हूँ कि पण्डितजी उसी तरह प्रसन्न हैं। उन्हें कुछ परवाह ही नहीं है। मैंने आँखें मीचीं। देखता हूँ कि एक तरफ़ वही पोपली कामिनी हज़ारों लोगों की भीड़में खड़ी मुँह मटकाती, आँखें नचाती कमर तोड़ती, फुदक रही है। शराबका जाम हाथमें और मुँहमें उसका एक घूँट। एक एक घूँट ले लेकर वह अपने प्रेमियोंके खुले हुए मुँहमें एक एक करके बुलकती जाती है। दूसरी ओर देखता हूँ कि एक देवी मानों दूसरी सीता ही हों, अपने दो चार भक्तों

के कानोंमें प्रेममय ज्ञानामृतकी वर्षा कर रही हैं। एक तरफ़ कामुकताका ताण्डव और दूसरी ओर सात्विकताकी मनोहर प्रतिमाकी पवित्र पूजा। एक तरफ़ विशाल जनसमूह और दूसरी ओर इनेगिने ज्ञान-पिपासु, सच्चे प्रेमके परवाने, सच्चे प्रेमी।

पण्डितजी का व्याख्यान शुरू हुआ। मानो वैखरी बिखरने लगी। विषय था—"सत्यकी खोजमें शास्त्रका स्थान।" भगवान् समन्तभद्रके शास्त्रके लक्षणके पहले तो आपने शास्त्र, आप्त आदिकी सुन्दर व्याख्या की, तथा आगे पीछेके सभी शास्त्रोंकी आलोचना करते हुए उन्होंने एक सच्चे सत्यके परवाने विज्ञानवेत्ताके सूक्ष्म विश्लेषण और जहाद के एक ग़ाज़ीकी तरह जोशमयी वाणीमें अपना निर्णय दिया कि शास्त्रोंका स्थान वही है जो कि किसी मुकद्दमे में गवाहोंका होता है तथा सत्यका स्थान सत्यखोजीके रूपमें न्यायाधीशका है। जैन-जगत्के पाठकोंके लिए यह बात नई नहीं है, परन्तु चूँकि सत्य है इसलिए सुन्दर है, रमणीय है। जितनी भी दफ़ा और जितनी भी तरह सत्य खिलता है उतनाही रमणीय वह प्रतीत होता है। क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदीय रूपं रमणीयतायाः।

दूसरे दिन श्री शान्तिलाल सॉलीसीटरका व्याख्यान हुआ। विषय था—धर्मके विरुद्ध बगावत। व्याख्यानमें जोश खरोश था; अन्यायसे तड़पती हुई आत्मा थी, कुचला हुआ अभिमान था परन्तु विज्ञान-वेत्ताकी सूक्ष्म विश्लेषक शक्ति नहीं थी। समाजमें जिन लोगोंके पास धन है वे ही क्यों सबसे अधिक धर्मात्मा समझे जाते हैं? क्यों उन्हें ही धर्मकार्यों के करनेका एकमात्र अधिकार होता है? मन्दिरोंमें बोली बोलकर क्यों पैसेवालोंको धर्म बेचा जाता है? जैसे पाखाना और पेशाबकी हाजत होती है उसी तरह स्त्रीपुरुषोंको मैथुनकी इच्छा होती है। फिर जब पाखाना और पेशाब करनेके लिए किसी को नहीं रोका जाता, तब क्यों निर्धन कुमारों और विधवाओंको इन आवश्यकताओं को रोक रखकर व्याधिग्रस्त बनने को मजबूर किया जाता है? आर्थिक दृष्टिसे देखा जाय तो जबतक उच्चवर्णके लोग अपने आप मरे हुए गाय-बैलोंके चमड़ोंका उपयोगके लिए सुसंगठित चर्मालय न स्थापित करें तब तक गोशालाएँ, पींजरापोल खोलना व्यर्थ है; तब क्यों लोगों की आमदनी पर धर्मके नामपर यह व्यर्थका टैक्स लगाया जाता है? जैनी लोग ऐसे चर्मालय स्थापित कर क्यों नहीं अहिंसा धर्मका पालन करते? जब मोतियोंके धंधेमें पाप नहीं समझा जाता, तब क्यों इस धंधेको बुरा समझा जाता है? क्यों समाजने अपने एक टुकड़ेको अछूत करार देकर उसे लाचार कर रक्खा है? उनके भाषणमें ऐसे ही सुलगते हुए प्रश्नोंकी भरमार थी। उनका सारा शरीर मानो जलरहा था। मानो किसी सतीसे किसी दुराचारीने छेड़खानी की हो।

तीसरा व्याख्यान पं० जगदीशचन्द्रजीका हुआ। विषय था—"सामाजिक विकासके लिये क्या धर्मकी आवश्यकता है?" शान्तिलालकी अशान्त अग्निके स्थानमें मानो शीतल वारिकी वर्षा हुई हो। वक्ता महोदयने कहा कि धर्मकी आवश्यकता तो है परन्तु वह धर्म वैज्ञानिक होना चाहिये? उन्होंने वैज्ञानिक धर्म अथवा धार्मिक विज्ञान नामक एक नई चीज़की सृष्टि की। पंडितजीकी विचारसरणी यद्यपि गंभीर थी, परन्तु कुछ अस्पष्ट थी। इसके बाद पं० दरबारीलालजीने अपने विशिष्ट नमूनेदार ढंगसे सारी वस्तु पर रोचक रङ्ग रङ्ग दिया। उन्होंने कहा कि धर्म हमेशा वैज्ञानिक नींव पर ही अपनेको स्थापित करता है। धर्म कभी बदलता नहीं है, परन्तु विज्ञान की जिस नींव पर वह स्थापित किया जाता है, उस विज्ञानमें परिवर्तन होते रहते हैं। सभी धर्मोंकी शिक्षा एक ही है, परन्तु जहाँ एक प्राचीन मत रावण को पहाड़के बराबर और सीताको उसके प्रमाणमें चींटीके बराबर चित्रित कर उनमें मैथुनको सम्भव मानता है तब बादका मत इसे असम्भव बताकर या

तो यह कह कर कि उस जमानेमें मनुष्योंका आकार ही पहाड़के बराबर होता था या यह कहकर कि वह रावण भी सीताके बराबर था, धर्म परसे लोगोंकी डिगती हुई श्रद्धाको सदाचार–धर्म पर स्थिर रखने की कोशिश करता है। जैसे जैसे विज्ञानकी वृद्धि होती जाती है वैसे वैसे धर्मका यह कर्तव्य होता है कि समयके अनुकूल वह अपनेको नई नींव पर स्थापित करे। सच्चे धर्मको इस बातसे कोई मतलब नहीं कि पृथ्वीका आकार चपटा है या गोल ? सूर्य के सात घोड़े हैं या आठ ? ईश्वर है या नहीं ? उसे तो सिर्फ इसी बातसे मतलब है कि लोग किसतरह सदाचारसे रहें, व्यभिचार न करें, चोरी न करें, हत्या न करें आदि। परन्तु लोग भूलसे जो धर्म नहीं है उसपर विश्वास करनेको ही धर्म समझ बैठे हैं।

चौथे दिन सुप्रसिद्ध वक्ता श्री जमनादास द्वारकादासका 'मोक्ष' पर व्याख्यान हुआ। मानो कोई प्रोफेसर अपने शिष्योंके सामने भाषण दे रहा हो ! उन्होंने कहा कि बचपनमें जिस तरह खिलौनोंके लिये लड़ा–झगड़ा करते थे, उसी तरह हम आज भौतिक सम्पत्तिके लिये जो कि स्वयं एक खिलौना–मात्र है, लड़ते झगड़ते हैं। इन खिलौनोंके लिये केवल व्यक्तियाँ ही नहीं बड़े बड़े राष्ट्र तक परस्पर लड़ते झगड़ते हैं, एक दूसरेको गुलाम बनाते हैं। हम बड़े होकर जिस तरह उन पर उपेक्षाकी नजर करते हैं उसी तरह हमारे व्यक्तिगत जीवनमें तथा राष्ट्रोंके जीवनमें एक ऐसी अवस्था कभी आवेगी, जिसमें कि इन खिलौनोंका मोह छूट जायगा। इस अवस्थाका नाम ही सम्पूर्ण मुक्ति या मोक्ष है। विलायत वालोंको यदि हम समझावें कि ये सब खिलौने हैं, इनका मोह छोड़ो और यदि यह बात उनके मनपर बैठ जायगी तो हिन्दुस्तान अवश्य ही स्वतन्त्र हो जायगा।

आकाशमें दिन व दिन चन्द्रमाकी कौमुदी बढ़तीही जाती थी, उसी तरह जमीनपर हमारी व्याख्यानमाला भी "प्रतिपच्चन्द्रलेखेव" बढ़ रही थी। जिसने एक दफ़ा भी उसका स्वाद चखा, वह हररोज आने लगा और अपने साथ १०–५ आदमियोंको और भी लाने लगा। जमनादासजी को जब हमने बुलाया तो मनमें यह खयाल होता था कि यदि लोग इतने कम आवेंगे तो वे अपने मनमें क्या सोचेंगे ? परन्तु नहीं, हमारी लाज रह गई। लोग काफ़ी संख्यामें इकट्ठे होगये और दिनपर दिन बढ़ते ही गये।

पाँचवें दिन धूप-दशमी थी। लोगोंके आनेकी कम सम्भावना थी, परन्तु फिर भी लोग बहुत संख्या में आये। व्याख्यानका विषय था "साम्यवाद और भारत"। पहले कुछ शब्द मुझे बोलने पड़े। बोलने का मुहाविरा नहीं था। टूटे फूटे कुछ दो शब्द बोला जिसमें मैंने इतिहासके साम्यवादी अर्थपर जोर दिया और बतलाया कि वर्गीय युद्ध कुछ कार्लमार्क्स की ही सृष्टि नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ जैसी कि आज हैं क़रीब वैसी ही आजसे दो तीन हज़ार वर्ष पूर्व भारत में भी उत्पन्न हुई थी। महावीर स्वामीके जमानेमें कई गणतन्त्र राज्य भी थे, परन्तु यन्त्रोंके आविष्कारके बाद आर्थिक परिस्थितियाँ जटिल होनेके कारण मजदूरोंकी तरफ़का पलड़ा भारी होता जाता है जिसके कारण साम्यवाद के अनुकूल परिस्थितियें दिन पर दिन पैदा हो रही हैं और पूँजीवाद क्रूरताके उपायों, नृशंस निरंकुश शासनप्रणालियोंका सहारा लेरहा है। भगवान महावीर और बुद्धके जमानेका जैनधर्म और बौद्धधर्म उस जमानेके अनुकूल साम्यवादका स्वरूप था। कई बौद्ध राजाओंने अपनी जिन्दगीमें कई दफा अपनी प्रजामें सम्पत्तिका बराबर बराबर बटवारा किया था, आदि बातें भी कहीं। इसके बाद पं० दरबारीलाल जीने भी इस विषयपर सुन्दर भाषण दिया। अधिक बातें वे ही थीं जो कि वे 'जैनधर्मका मर्म' में अपरिग्रह पर लिख चुके हैं।

छठवाँ दिन था। आज श्री चिमनलाल चकुभाई शाह सॉलीसीटरका व्याख्यान "स्त्रियोंके [illegible]

धिकार" पर हुआ। जितनी शान्तिसे, गहराईसे और सफाईसे आपका भाषण हुआ वैसा शायदही किसी अन्य व्यक्तिका हुआ हो। जहाँ तहाँ अतिशय आदर्शवादिताकी पुट जरूर दीख पड़ती थी, परन्तु उसने भी एक विशिष्ट सौन्दर्यकी सृष्टिकी थी। प्राचीन ग्रंथोंमेंसे अपने अनुकूल उदाहरण चुनचुनकर उन्होंने इसप्रकार सबके सामने रखे जिससे यह प्रभाव पड़े बगैर नहीं रह सकता था कि प्राचीन आर्यसंस्कृतिमें स्त्रियोंका स्थान मर्दोंकी बराबरीका रहा है। सीता, द्रौपदी, राधा, अरुन्धती, मैत्रेयी, गार्गी आदिके सुन्दर उदाहरण दिये। उन्होंने इस बातपर जोर दिया कि फर्ज और हक़ ऐसी वस्तुएँ हैं जो एक दूसरेसे भिन्न नहीं की जा सकतीं। स्त्रियोंको यदि हम उनके हक़ दें तो सम्भव है कि वे उनका दुरुपयोग करें परन्तु केवल इसीकारण अधिक दिन तक उनको उन हक़ोंसे वर्जित नहीं रख सकते क्योंकि इसप्रकार हम अपने ही पैरोंपर कुल्हाड़ी मारते हैं। स्त्रियोंके हक़ छीननेसे हमारा ही अध पतन होरहा है। स्त्रियोंसे यह कहना कि तुम योग्यता प्राप्त करो तब हम तुम्हें अधिकार देंगे, ठीक वसी है तरह जैसे कि अंगरेजोंका यह कहना कि तुम स्वराज्य के योग्य हो जाओ तब तुम्हें स्वराज्य देंगे या किसी बच्चेका यह कहना कि पहले मैं तैरना सीख लूँ तब पानीमें घुसूँगा। वक्ता महोदयने यह भी कहा कि आजकल स्त्रियोंको अधिकार देनेका मतलब यह समझा जाता है कि हम उन्हें खूब अच्छी तरह बनाव सिंगार करके सजाकर बूट पहराकर उन्हें बगलमें लेकर घूमें। यह अधिकारोंका प्रदान करना नहीं है, परन्तु अपने विलासके लिए उन्हें खिलौना बना लेना है। वास्तवमें स्त्रियोंको आर्थिक समानता का हक मिलना चाहिए। उसे अपने हक़की एक निश्चित रकम स्वातन्त्र्यपूर्वक खर्च करनेका अधि- मिलना चाहिए। विवाहादिके विषयमें सम्पूर्ण स्वातन्त्र्य होना चाहिए। पर्दा वगैरह दूर करना चाहिए। वक्ता महोदयके बाद पण्डित दरबारीलालजीने आलोचना करते हुए एक मार्केकी बात यह कही कि आज हमारे देशमें सतीत्वकी कोई क़ीमत नहीं रह गई है। जब तक हमारे समाजमें विधवाविवाह करने की स्वतन्त्रता न हो तब तक सीताका मूल्यही क्या हो सकता है? एक प्रश्नका उत्तर देते हुए वक्ता महाशयने कहा कि तलाक़ देने का हक़ तो कानूनसे जायज होना चाहिए परन्तु विधवाविवाहके क़ानून की तरह उसका व्यवहारमे उपयोग न करना पड़े, समाजकी ऐसी रचना होनी चाहिए।

सातवें दिन 'स्याद्वाद और वेदान्तकी व्यवहारिक उपयोगिता' इसविषय पर पं० दरबारीलालजी का सुन्दर विवेचन हुआ। जैन और वेदान्तके आचार्योंने परस्पर एक दूसरेको नीचा दिखानेके लिए वितंडाके कैसे कैसे हथकंडोंका उपयोग किया, इसका उन्होंने खूब दिग्दर्शन कराया तथा अवक्तव्य भंगके विषयमें उन्होंने अपने मौलिक विचार प्रकट किये। धर्म और सदाचरणसे रखनेके लिए ही दर्शनशास्त्र का निर्माण हुआ है। वेदान्तके सिद्धान्तानुसार सम्पूर्ण आचरण करनेवाले तथा स्याद्वादके सिद्धांत के अनुसार अपनी सम्पूर्ण चर्या बनाने वालेके बाह्य आचरण बिल्कुलही एकसे होने चाहिए। ईश्वरमें माननेवाला भी चोरी नहीं करेगा, कर्मसिद्धान्तमें माननेवाला भी चोरी नहीं करेगा। अर्धपरिपक्व आदमी ही दुराचार करते हैं और अपने सिद्धान्तका दुरुपयोग करते हैं। निवृत्ति-प्रवृत्ति, कर्म और ज्ञान क्षणिकवाद-नित्यवाद, द्वैत-अद्वैत, नास्तिकता-आस्तिकता आदिका भी उस दिन सुन्दर समन्वय किया गया।

आठवें दिन अन्तिम व्याख्यान भी पं० दरबारीलालजीका हुआ। विषय था "धार्मिक और सामाजिक क्रान्तियोंकी आवश्यकता।" उसदिन सत्य समाजके उद्देश्य, उसकी स्थापना आदि परभी उन्होंने विस्तारसे समझाया तथा उसके विरोधी आक्षेपोंका परिहार किया।

आठों दिन पण्डितजीने अन्य वक्ताओंके व्या-

ख्यानोंपर सुन्दर आलोचनाएँ आदि करके श्रोताओं का मन हरण कर लिया था। सभीका आग्रह था कि व्याख्यानमाला और भी चालू रखी जाय। आखिर निर्णय हुआ कि समाजकी ओरसे हर महीने १-२ व्याख्यान कराये जायँगे।

बम्बईमें महाशय काशीनाथजी नामक एक व्यक्ति बहुतही बहुश्रुत और विचारक हैं। वे सभी सभा सोसायटियोंके व्याख्यान सुनने नियमित रूपसे जाते हैं। उन्होंने सबसे पीछे बोलते हुए हमारे समाजकी बहुत ही उचित प्रशंसा की। उन्होंने कहा कि सत्य समाजके उद्देश्यों और आदर्शकी कोई भी दूसरी संस्था इससमय दुनियाँमें नहीं है। थियासफीके उद्देश्योंसे भी इसके उद्देश्य अधिक ऊँचे हैं। आज से १००-१५० वर्ष पहले महान् यूरोपीय दार्शनिक कान्टने जिस उद्देश्यको लेकर पॉजिटिविस्ट समाज की स्थापना की थी उसी उद्देश्यकी यह पूर्णाहुति है।

× × ×

व्याख्यानमाला समाप्त कर रात्रिको ११ बजे मैं घर गया। सत्यसमाजके विषयमें सोचता सोचता सोगया। स्वप्नमें क्या देखता हूँ कि वही पोपलमुखकी मयंकिनी विलाप कर रही है। आज उसके हजारों प्रेमियोंमेंसे एक भी नहीं रहा है। वह गुनगुना रही है:—

अब अलसाती नहीं मैं नितम्ब भार से।
कदली-समान गोल जाँघे अब हैं नहीं॥
वह कटि हाय! जिसे धर करकंजोंसे।
प्रेमपूर्ण निंदा करते थे लोग सिंह की॥
झुकने लगे हैं अब! उन्नत उरोज वे।
नम्र हुए! अधर सुधा-विहीन हो गये॥
रत्न जितने थे यौवन के इस कोष में।
काल ने हैं लूट लिये बन में निदाघ ने॥

क्या देखा?

दुर्वृत दुष्ट दुष्कृत जनको, दुनियाँमें सुख पाते देखा।
सीधे सादे सुजनोंको, हरदम ठोकर खाते देखा॥
छल छन्दोंकी माया फैला, अपराधी मस्त विचरते हैं।
असहाय दीन निर्दोषोंको, फाँसी पर लटकाते देखा॥
लोहूके प्यासे सिंहोंको, बनका निष्कंटक राज्य मिला।
निर्बल भेड़ोंको बकरोंको, बलि-वेदीपर जाते देखा॥
सतियाँ आँचलसे मुँह ढाँपे, कोनेमें रोया करती हैं।
रसरङ्गरँगी गणिकाओंको, हँस हँसकर बल खाते देखा।
खेतोंमें बैठे दीन कृषक, वर्षाके लिये तरसते हैं॥
मूसल धाराएँ ऊसरपर, मेघोंको बर्षाते देखा।
ठग धूर्त लुटेरे व्यभिचारी, निर्भय हो मौज उड़ाते हैं॥
निस्पृह सच्चे सत्पुरुषोंको, जीवनभर दुख पाते देखा॥
मीठे बोलोंके कारणही, शुक पिक पिंजड़ेमें पड़ते हैं।
स्वच्छन्द भावसे कौओंको, चीलोंको मँडराते देखा॥
मतलबकी ठकुर-सुहाती सुन, वे फूले नहीं समाते हैं।
सच्ची हितकारी बातोंपर, प्रभुओंको झुँझलाते देखा॥
बेधड़क खरी कहनेवाला, नजरोंसे चट गिर जाता है।
मतलबी चापलूसोंको ही ऊँचे ओहदे पाते देखा॥
चलता है वश न पहाड़ोंसे, मुँहकी खाकर रहजाती है।
मतवाली आँधीको केवल, तरु-गुल्म-लता ढाते देखा॥
वाणीके सच्चे सेवकका, कोई भी नाम नहीं लेता।
नक्काल टुकड़ची तुक्कड़को, कवि दिग्गज कहलाते देखा॥
क्यों उलटी गङ्गा बहती है, यह कैसी चाल निराली है।
पूछा जो बुद्धि निधानोंसे, उनको सिर खुजलाते देखा॥
कुछ समझ न सके पहेली हम, फिर क्या बतलावें क्यादेखा
झूठेको इतराते देखा, सच्चेको शर्माते देखा॥

—"हिन्दू पंच"

विविध विषय।

श्री शांतिसागर संघके प्रतापसे उदयपुरमें अशांति—पिछले दो अंकोंमें उदयपुरके जो समाचार प्रकाशित हुए, उनसे संघ तथा भक्तमंडलीमें बड़ी खलबली मची हुई है। उन समाचारोंका प्रतिवाद तो कैसे किया जासकता है, कारण वे अक्षरशः सत्य हैं। अतः खिसियाकर अंधभक्त लोग किसी एक व्यक्ति पर यह आरोप लगाकर कि इसने जैन

जगत्को समाचार भेजे हैं, खुल्लमखुल्ला उसे गालियाँ देते हैं, उसके खिलाफ समाजको भड़का कर उसे जातिबहिष्कृत करनेकी धमकियाँ देते हैं। फूलपार्टी के प्रमुख सूत्रधार श्रीमान् बापूलालजी सोनी मुनिवेषियोंमें श्रद्धा नहीं रखते थे, किंतु इस बार केवल इस कारण कि श्री शांतिसागर संघके गणधर सुधर्मसागरजी (पंडित नंदनलालजी) तेरहपंथ आम्नायके नाशका व्रत लिये हुए हैं और इसलिये उनके जरिये फूलपार्टीको प्रकटरूपमें सहायता मिल रही है, आप इनका समर्थन कर रहे हैं, और समाजमें व्यर्थ द्वेष भड़का रहे हैं।

हर्ष है कि आजकल यहाँ स्त्रियाँ श्री जिन पूजा, प्रक्षाल, अभिषेक आदि धार्मिक कृत्य करने लगी हैं। कुछ स्थितिपालक बंधुओंके ऐतराज करने पर श्री शांतिसागरजीने समझाया कि यह क्रिया धर्मानुकूल है—आप लोग केवल रूढ़िके कारण स्त्रियोंको धार्मिक कृत्य करनेसे रोकते हैं, सो उचित नहीं है।

—संवाददाता.

कलहकारी चन्द्रसागरजी—अपनी मंडली सहित कुचामणमें ठहरे हुए हैं और अपने एकमात्र ध्येय लोहड़साजन-सर्वनाशके लिये प्राणपणसे चेष्टा कर रहे हैं। कुचामणकी भोली समाज प्राय: उनके अनुकूल है। जो लोग अंतःकरणसे उनके विरुद्ध हैं वे भी साहस न होनेके कारण चुपचाप रहना ही ठीक समझते हैं। अत: ऐसी परिस्थितिमें उनका कुचामणप्रवास शांतिपूर्वक व्यतीत होना चाहिये था। किन्तु कलहप्रिय चन्द्रसागरजीके लिये शांतिसे बैठ रहना बिलकुल असम्भव है। कुचामणमें एक आर्यिकाका भी चातुर्मास होरहा है। आपने उसका बहिष्कार करनेके लिये यह घोषणा की है कि जो कोई श्रावक उस आर्यिकाको आहार देगा अथवा उसको केवल पड़गाहेगा ही, उसके यहाँ मैं आहार नहीं लेऊँगा। इसके फलस्वरूप आर्यिकाको प्रारम्भमें कुछ दिन निराहार रहना पड़ा। बादमें श्रावकोंमें दो भाग होगये—एक आर्यिकाको आहार देता है तो दूसरा चन्द्रसागरजीको। नेता कहलाने वालोंमें इतना विवेक व साहस कहाँ कि वे न्यायपूर्वक उत्तमक्षमाधारियोंका झगड़ा निबटा दें और मुनिधर्मको कलंकित न होने दें।

—संवाददाता।

जबर्दस्ती नुकता कराने की चेष्टा—अभी कुछ अर्सा हुआ ऊँटड़ानिवासी श्रीमान चैनसुखजी बैदकी धर्मपत्नीका देहान्त होगया। इनकी बीमारी के समयमें ही, जब वे बेहोश थीं, इनके पीहरवाले श्रीमान लालचन्दजी पाटणी बीरवाले ऊँटड़ा गये और उनका जेवर वगैरह अपने साथ ले आये। उनके वारिस (देवरके पुत्र) श्रीयुत रामपालजी बैद जेवर वगैरह माँगते हैं तो लालचन्दजी कहते हैं कि अगर मोसर (नुकता) करो तो मैं जेवर देनेको तैयार हूँ; वरना जेवर नहीं लौटाता। समझ मे नहीं आता कि इस तरह जबर्दस्ती नुकता कराकर पाटणीजी पंचायती काणकी रक्षा करना चाहते हैं, या मृत व्यक्तिको राखमे से निकालकर उसकी सद्गति करना चाहते हैं, अथवा अपना बड़प्पन प्रदर्शित करना चाहते हैं?

—एक ऊँटड़ा निवासी।

बीरके दिगम्बर जैनमन्दिरकी दुर्व्यवस्था—बीर (अजमेर) में स्वर्गीय श्रीमान सेठ सूरतरामजीका मन्दिर प्राचीन व विशाल है। इसका प्रबन्ध बीर पंचायतके सर्वेसर्वा श्री० सेठ बालचंदजी गदियाके हाथमें है। वर्षोंसे आप इसका न कोई हिसाब किताब देते हैं और न मन्दिरका उचित प्रबन्ध ही करते हैं। कई वर्षोंसे आपने इसकी सफेदी व मरम्मत तक नहीं कराई है। मन्दिरकी इमारत कई जगहसे टपकने लगी है, परन्तु आपको इस ओर लक्ष देनेकी जरा भी फुरसत नहीं है।

बीर पंचायतकी स्वेच्छाचारिता—उपरोक्त श्रीमान् सेठ बालचंदजी गदिया व उनके कुछ साथियोंकी हठधर्मीके कारण बीरमें दो दल हो रहे हैं। बीरमें पंचायतकी ओरसे एक जैन औषधालय भी है। सेठ बालचंदजीके दलने अपनी पंचायतमें

यह निश्चय किया है कि दूसरे दल वालोंको जैन औषधालयसे दवा न दी जावे, न वहाँके वैद्य उनकी चिकित्सा करें। बीर एक छोटा सा क़सबा है और जैन औषधालयके अतिरिक्त वहाँ और कहीं किसी प्रकारकी चिकित्सा उपलब्ध नहीं होसकती। अतः मजबूर होकर दूसरे दलवालोंको अपना अलग औषधालय स्थापित करना पड़ा है। जिन्हें हम म्लेच्छ कहते हैं, वे लड़ाईके समय भी दुश्मनोंके घायलों तककी सेवा शुश्रूषा, मरहमपट्टी आदि करते हैं, परन्तु दयाधर्मधारी जैनी लोग जराजरासे मामलोंमें पंचायती झगड़े डालकर अपने सगे भाई भतीजों तकको दवा देनेसे मुँह छिपाते हैं! मालूम होता है इन धर्मके ठेकेदारोंका धर्म दुनियासे कुछ निराला ही है! —एक बीर निवासी।

चातुर्मास में मुनिवेषियोंका एक स्थानसे दूसरे स्थान को पलायन—दिगम्बर जैन मुनि वर्षा ऋतुमें चार मासतक एक स्थान परही रहें, शास्त्रानुसार ऐसी मर्यादा निर्दिष्ट है। परन्तु कई वर्तमान मुनि इसके विपरीत प्रवृत्ति करते हैं। श्री सूर्यसागर संघने मथुरामें चातुर्मास प्रारम्भ किया परन्तु बीचमें ही वह मथुरा छोड़कर आगरा चल दिया। कुछ दिन पहिले उनके एक शिष्य अहिलक महेन्द्रसागर आगरासे चौरासी आगये और उन्होंने भी यहीं पर चातुर्मास करना चाहा तो सूर्यसागरजीने उनकी बहुत निन्दाकी और कहा कि यदि यह दुष्ट यहाँ रहेगा तो हम यहाँ से चले जायँगे। लोगोंने बहुत समझाया और कहाकि महाराज, इन्हें बगीचेमें एक कोनेमें रहने दीजिये, आपका क्या हर्ज है? तो भी वे नहीं माने और बोले कि—ऐसा हर्गिज नहीं हो सकता; वह यहाँ पर रहना ही नहीं चाहिये। तीन चार रोज बीत जानेपर भी जब अहिलक महाशय वहाँ से नहीं हटे तो सूर्यसागरजी अपना सामान वग़ैरह बाँधकर भागने लगे। आखिर सूर्यसागरसंघका चातुर्मास मथुरामें करानेके उद्देश्यसे अहिलकजी को वहाँ से टरकाना पड़ा और वे हाथरस चले गये। लोगोंको विश्वास होगया था कि अब इस संघका चातुर्मास चौरासी—मथुरामें ही होगा। इस पर ऋषभब्रह्मचर्याश्रमके अध्यापकोंने उनके पाठनके लिये उचित व्यवस्था करदी तथा कार्य प्रारम्भ भी कर दिया। मथुरासे तीन चौके भी श्रावकोंके चौरासी आगये। किन्तु एकाएक आगरासे पण्डित छेदालालजी दो तीन व्यक्तियोंको लेकर आये और न मालूम आपसमें क्या खुसर पुसर हुई कि सूर्यसागर जी फ़ौरन आगरा जानेको तैयार होगये। लोगोंने बहुत समझाया और कहाकि चौमासेमें इसप्रकार विहार करना अयोग्य है लेकिन आप न माने। आपने कहा—पं० छेदालालजीने प्रतिज्ञाकी है कि अगर मैं आगरामें चातुर्मास करूँ तो वे आजन्म मेरी सेवामें रहेंगे, मुझे पढ़ावेंगे तथा मुनि होजावेंगे। इसलिये अब तो जाना ही होगा; मैं उनसे कहचुका हूँ। कर्मका उदय ऐसा ही है।" सूर्यसागरजी आगरा पहिले भी तीन मास तक रह चुके हैं। पं० छेदालालजी उससमय भी इन्हें पढ़ाते थे और इसके उपलक्षमें उन्हें करीब २००) की प्राप्ति हुई थी। पं० छेदालालजीने अपने स्वार्थके लिये चकमा देकर सूर्यसागरजीसे मर्यादाका उल्लंघन कराया अथवा वे वास्तवमें मुनि होना चाहते हैं, यह आगे प्रकट होगा।

श्री शान्तिसागरजी (छाणी) के सम्बन्धमें और भी विचित्र समाचार मालूम हुए हैं। उन्होंने सागवाड़ामें चातुर्मास करना निश्चय किया था परन्तु किसी बातसे नाराज होकर चातुर्मास प्रारम्भ होनेसे दो रोज पहिले वे एकाएक पासके एक गाँवमें चल दिये और वहीं वर्षायोगके लिये स्थापना करली। सागवाड़ा वालों को यह बुरा मालूम हुआ। इसमें उन्होंने अपनी हतक समझी। स्थितिपालक दलके विद्वानोंसे इस विषयमें सलाह मशविरा कियागया। आखिर एकरोज सागवाड़ाके पंच लोग कुछ आदमियोंको लेकर उस गाँवमें गये और शान्तिसागरजी को उस चौकी सहित, जिस पर वे उस समय बि-

राजमान थे, कंधेपर उठाकर सागवाड़ा ले आये। अब शान्तिसागरजी सागवाड़ामे विराजमान हैं, और उसी तरह कालयापन कररहे हैं मानो प्रारम्भ से उन्होंने सागवाड़ामे ही चातुर्मास किया हो तथा बीचमे कोई घटना नहीं हुई हो।

वर्तमान मुनियोंकी तथा उनके अन्धभक्तोंकी लीलाएँ अपरम्पार हैं। —संवाददाता।

दिग्विजयसिंहजीकी थोथी डींग !—पाठकों को याद होगा कि गत वर्ष श्रीमान पं० शोभाचंद्रजी भारिल्ल न्यायतीर्थ तथा श्री ब्र० दिग्विजयसिंहजी के परस्पर वर्णव्यवस्थाविषयक शास्त्रार्थके लिये खूब लम्बा पत्रव्यवहार चला था। दोनो ओरके पत्र गत वर्ष जैनजगतमे प्रकाशित हुए थे। पं० शोभाचन्द्रजीने अन्तिम पत्र ता० ६ जून १९३३ को रजिस्ट्री द्वारा शास्त्रार्थ-संघ अम्बालाके पते पर भेजा था जिसका उत्तर आजतक उक्त ब्रह्मचारीजीने नहीं दिया है। इस सम्बन्धमे पं० शोभाचन्द्रजीकी ओर से एक सूचना भी इसी वर्षके प्रथम अंक (ता० १६ नवम्बर १९३३) मेप्रकाशित हो चुकी है। ब्र० दिग्विजयसिंहजी स्वयं शास्त्रार्थमे मुँह छिपा रहे है, किन्तु आश्चर्य है कि आप जैनगजट अंक ४२ मे लिखते है—"गत वर्ष अजमेरमे पण्डित शोभाचंद्रजी भारिल्ल (सहायक सम्पादक "वीर") मे इस विषय पर हमारा एक शास्त्रार्थ होने वाला था और उस सम्बन्धमे बहुत दिनों तक लम्बा पत्रव्यवहार भी चला। पर दुःख है कि भारिल्लजीकी टालमटूलसे वह नहीं हो सका"। ब्रह्मचारीजीमे शास्त्रार्थ करने का हौसला हो तो उन्हें अब भी पं० शोभाचन्द्रजीके ६ जून १९३३ के पत्रका शीघ्र उत्तर देकर आगे आना चाहिये। अन्यथा यही कहना पड़ेगा कि अपनी दुर्बलता छिपाकर दूसरोंपर मिथ्या आक्षेप करना समुचित नहीं।

जैनजगत् वर्ष ८ अंक १७ ता० ? जुलाई १९३३ मे हमने "ब्र० दिग्विजयसिंहजीसे प्रश्न" शीर्षक एक एक नोट प्रकाशित किया था, जिसमे हमने उनसे सात प्रश्न पूछे थे। खेद है कि ब्रह्मचारीजी ने आज तक उक्त प्रश्नोंका उत्तर देनेका साहस नहीं किया। हम उक्त नोटकी ओर पुनः उनका ध्यान आकर्षित करते हैं।

—प्रकाशक।

(पृष्ठ २ से आगे)

होने दूँगा। भट्टारकजीके पास कई पुराने पट्टे व दस्तावेज आदि है जिनके बल पर वे अपना हक निर्धारित करते हैं। बहुत देर तक परस्पर हुज्जत होती रही परन्तु हर्ष है कि छोटे धड़केपंचोंने इसप्रश्न को खूबीकेसाथ निपटालिया और अपने धड़ेमे किसी प्रकारकी फूट नहीं फैलने दी। मामला निपट जाने के बाद रात्रिके करीब ११ बजे कलशाभिषेक हुआ।

बड़ा धड़ा भी यद्यपि बीसपंथ आम्नायका है, परन्तु उसकी गादी अलग है। श्री ललितकीर्तिजी के स्वर्गवासके बादसे इसकी गादी खाली है, मंदिर व उसकी सम्पत्तिका प्रबन्ध श्रीमान पं० हरकचन्दजीके हाथमे है। उनके प्रबन्धसे कई लोग असंतुष्ट हैं। बारबार मांगने पर भी पंडितजी पंचोंको हिसाब नहीं बताते और टालमटूल करते रहते है। तीर्थक्षेत्र-फंडके नामसे पंडितजी प्रतिवर्ष धड़ेके सब सदस्योंसे रुपया उगाह लेते हैं परन्तु एकत्रित रुपया तीर्थक्षेत्र कमेटी को नहीं भेजते और न उसका और किसी तरह ही सदुपयोग करते हैं। पंडितजीको अपने स्वेच्छाचारमे पंचोंकी दस्तंदाजी पसन्द नहीं है और इसलिये, सुना है कि, वे निकट भविष्यमें स्वयं भट्टारक बनकर अजमेर गादी को सुशोभित करनेका आयोजन कर रहे हैं। यदि यह सत्य है तो पंडित हरकचन्दजी व उनके समर्थकों को समझ लेना चाहिये कि कोई पद कितना भी उच्च व महत्वशाली क्यो न हो, उसके योग्य गुणी व संयमशील व्यक्तिके आसीन होनेसे ही वह प्रतिष्ठाको प्राप्त कर सकता है तथा समाजका श्रद्धाभाजन बन सकता है। अयोग्य व्यक्ति अपनी किरकिरी तो कराता ही है किन्तु साथही उस पदको भी वह लजाता है। मुनीन्द्रसागर वर्षों पुजता रहा परन्तु अंतमें उसकी व उसकी मंडलीकी जैसी दुर्गति हुई उससे उन्हें नसीहत लेना चाहिये। —एक स्पष्टवक्ता।

Printed by Pt. Radhavallabh Sharma at the Ajmer Printing Works Ajmer.

तार का पता—"JAINJAGAT" Ajmer. Reg: No. N. 382

वर्ष ९ ता० १६ अक्टूबर ॐ सन् १९३४ अंक २३

जैनसमाज का एकमात्र स्वतन्त्र पाक्षिकपत्र।

वार्षिक मूल्य ३) रुपया मात्र।

जैन जगत्

विद्यार्थियों व संस्थाओं से २॥) मात्र।

(प्रत्येक अंग्रेज़ी महीने की पहली और सोलहवीं तारीखको प्रकाशित होता है)

"पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनम् यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः"॥—श्री हरिभद्रसूरि।

सम्पादक—मा० र० दरबारीलाल न्यायतीर्थ, हुविलीबाग तारदेव, बम्बई। } प्रकाशक—फतहचंद सेठी, अजमेर।

सबसे बड़ी राक्षसी।

पुराणोंमें राक्षसों और राक्षसियोंकी बड़ी बड़ी कहानियाँ आती हैं। पुराने ज़मानेके सभी धर्मोंकी कहानियोंमें तथा लोककाव्योंमें इनका स्थान है। परन्तु जबसे भौतिक-विज्ञानने युवावस्थामें प्रवेश किया है तबसे लोग इन राक्षसों और राक्षसियोंपर विश्वास नहीं करते अथवा इनपर विश्वास करनेवाले, ज्ञानियोंके क्षेत्रमें सभ्य नहीं कहलाते।

कहा जाता है कि ये राक्षस कामरूप होते थे। वे जैसा चाहे रूप बना लेते थे। पहिले वे लुभाते थे, खुश करते थे, फिर जीवन बर्बादकर डालते थे। एकके दो होजाते थे तथा अनेक राक्षस पैदाकर देते थे। आदि अनेक तरहकी गप्पोंसे भरी हुई ये कहानियाँ लोगोंका मनोरंजन करती थीं।

इन कथाओंको जिस रूपमें लोग समझते हैं, उस रूपमें ये गप्पें ही होंगी; परन्तु अगर इन्हें रूपक मान लिया जाय तो कहना पड़ेगा कि आज संसारमें अनेक राक्षस पैदा हुए हैं और उनने एक भयंकर राक्षसीको पैदा किया है जो एक एक कौरमें हज़ारों मनुष्योंको खाजाती है! ये राक्षस हैं बड़े बड़े कारखाने और उनसे पैदा होनेवाली राक्षसी है बेकारी!

मनुष्यको राक्षसोंसे डरनेकी कोई ज़रूरत नहीं है क्योंकि उसने उन पर विजय प्राप्त की है। पुराने लोगों की यह मान्यता है कि अगर राक्षसों, भूतों, पिशाचोंको वशमें रक्खा जाय तो उनसे मनचाहा काम कराया जा सकता है। परन्तु अगर हम उन्हें न सम्हाल सकें, उनके तांडवका नियन्त्रण न करसकें तो बस मौत ही समझिये!

पाश्चात्य देशके यन्त्रोंने मनुष्यजातिको बड़ी सुख स्वप्न दिखाये हैं। वे सुखस्वप्न देखते देखते हम उनके इतने आदी होगये हैं कि अगर हमारा सुखस्वप्न भंग होजाय तो हम ज़िन्दा न रहें या ज़िन्दा रहना पसन्द न करें। परन्तु राक्षसोंको पैदा करके उनके तांडवको हम नियन्त्रणमें नहीं रख सके हैं और उसने मौतके समान बेकारी रूपी भयंकर राक्षसी पैदा करदी है!

महात्मा गाँधीजीने इस तत्वको समझा और उनने इन राक्षसोंको नियन्त्रणमें रखनेके लिये चरखा चक्र चलाया; परन्तु यह राक्षस इतना पुष्ट होचुका है कि अब वह इतनेसे अकेले नहीं मर सकता।

भारत तो गुलाम देश है; इसलिये उसकी जो दुर्दशा न हो वही थोड़ी है। परन्तु जो देश स्वतन्त्र कहलाते हैं, जिनके पास सोना चाँदी रखनेको जगह ही नहीं है, वे भी आज दुर्दशाग्रस्त हैं। रूसने अवश्य ही इन राक्षसोंको वशमें रखनेका प्रयत्न किया है और फिलहाल वह इन्हें वशमें रक्खे हुए है, परन्तु अन्य देशोंकी दशा बहुत भयंकर है। और फिर भारत सरीखे पराधीन देशकी तो बात ही न पूछिये।

दूसरे देशोंमें लोगोंको बेकारीसे बचानेके लिये सरकार कुछ न कुछ प्रयत्न करती है, उन्हें खानेको देती है; परन्तु यहाँ ऐसी व्यवस्था नहीं है, न इस तरफ़ किसीका ध्यान है। आये दिन एक न एक भयङ्करकाण्ड होते रहते हैं, परन्तु किसीके कानोंपर जूँ भी नहीं रेंगती !

अभी एक रेलवे कुलीने बेकारीसे तंग आकर रेलवे लाइनपर लेटकर आत्महत्या करना चाहा। भाग्य या दुर्भाग्यसे वह पकड़ा गया। जान तो बची परन्तु वह न बचनेसे भी भयंकर थी। आत्महत्याकी चेष्टा करनेके प्रयत्न में वह पकड़ा गया और उसपर २५) रुपयेका जुर्माना हुआ। भरपेटकी बात जाने दीजिये परन्तु अधपेट रोटियाँ भी उसके पास नहीं थीं अब वह पचीस चांदीके चन्द्रमा कहाँसे देदे। अगर इनको जेल भेज दिया जाय तो भी कुछ लाभ नहीं क्योंकि इससे उनके बालबच्चे तो भूखों ही मरते रहते हैं उनकी चिन्तासे बचनेके लिये ही तो उसने आत्माहत्या करनेका प्रयत्न किया था वह चिन्ता तो उस पर अब भी सवार रही।

देशके अन्तस्तलमें जो भयंकर ज्वालामुखी धाँयधाँय कररहा है उसकी यह एक चिनगारी है जो हमारी आँखों के साम्हने आकर हमें चौंका देती है। हममें से बहुतसे तो अभी उस भयंकर तांडवकी कल्पना भी नहीं कर सकते।

किसी एक ही श्रेणीके साम्हने यह समस्या हो सो बात नहीं है। श्रीमान इससे चिन्तित हैं परन्तु उनकी गुजर होरही है। किसान बहुत दुःखी हैं परन्तु यह आजसे नहीं बहुत दिनोंसे हैं। मजूर जैसा पहिले था, वैसा अभी है या बहुत थोड़ा अन्तर है परन्तु एक बड़ी भारी श्रेणी मध्यवित्त लोगोंकी है जिसमें मध्यमश्रेणीके व्यापारी हैं और पढ़े लिखे बेकार हैं। इनकी कुलीनता और गरीबी दोनों तरफ़से इनके प्राण चूस रही है। यही वह भयंकर राक्षसी है जिसे यन्त्र रूपी राक्षसोंने पैदा किया है।

यन्त्रोंसे हम काम करानेकी शक्ति तो बढ़ा सके परन्तु इसमें मनुष्यको हम दूसरा काम क्या दे सके ? यह तो एक प्रकारसे मनुष्योंका कौर छीनकर यन्त्रोंको देना कहलाया।

अब हमारे साम्हने यह एक जटिल समस्या है कि इस राक्षसीको कैसे मारा जाय या तो इन राक्षसोंका अङ्गभङ्ग कर गृहउद्योगके रूपमें परिणत किया जाय या ये राष्ट्रकी सम्पत्ति बनाये जाकर बेकारोंका आश्रय स्थल कर दिये जाँय। अन्यथा इसमें सन्देह नहीं कि यह राक्षसी मनुष्यजातिका प्राण लेकर छोड़ेगी।

जैनसमाज जो कि एक मध्यमश्रेणीकी समाज है वह एक तरफ़ बेकारी और दूसरी तरफ़ कुलीनताके "टग आफ वार" में इस तरह खींचा जारहा है कि उसकी हड्डियाँ तक उखड़ी जारही हैं। इसलिये जैनसमाजको इसपर गम्भीरतासे विचार करना चाहिये। अपनी समाज में ऐसे धनीमानी श्रीमन्त सज्जन बहुत पड़े हैं जो चाहें तो आज ही अपनी समाजको इस भयंकर राक्षसी बेकारी की चुंगलमें से बचाकर समाजको उन्नति पथमें लासकते हैं। उसमें ज़रूर है धर्मप्रेम और धर्मपर मरमिटनेकी तमन्ना भी उसमें ज़रूर है स्वधर्मी वात्सल्य और मनुष्य प्रेम भी। धर्मके नामपर रंक और राय, सेठ और नौकर, ज्ञानी और अज्ञानी सभी समान हैं। वहाँ उच्च नीचकी दीवाल नहीं है वहाँ तो भगवान महावीरका आदर्श धर्म प्रेम है। समाजके वे शक्तिशाली व्यक्तियों समाजकी उन्नतिके लिये कटिबद्ध हों और समाजके एक अतिमहत्वके भागको बेकारीकी चुंगलमें से बचाले यही अभ्यर्थना।

आगरा जैन वनिताश्रम केस—श्र० भा० जैन वनिताश्रम, आगराके मुक़द्दमेका फ़ैसला गत ता० ५ सितम्बर १९२४ को मि० हेनकोक्स सिटी मजिस्ट्रेटकी अदालतमें सुना दिया गया। अभियुक्त फूलचंदको, तीन व्यक्तियोंको धोखा देनेके अपराधमें दफ़ा ४२० के अनुसार ६—६ मासकी सख्त क़ैदकी तीन सज़ायें दी गईं। ये तीनों सज़ायें साथ साथ चलेंगी।

फ़ैसलेका अन्तिम अंश इस प्रकार है:—' यह प्रमाणित होगया है कि अभियुक्त कई सालसे जनता को धोखा देकर रुपया ठग रहा है। यद्यपि यह नहीं ज्ञात हो सकता कि उसने कुल कितना रुपया ठगा; किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह बहुत ज्यादा है। कुछ साल पहले अभियुक्त १२) महिनेका नौकर था, किन्तु अब आश्रमके हिसाबके अनुसार उसकी स्त्री विमलादेवीके २७००) आश्रम पर हैं, जिसका ब्याज १) प्रति सैंकड़ा माहवारकी दरसे उसे मिल रहा है !

यदि पुलिस चाहे तो दफ़ा ३४२ के अनुसार दूसरा मामला चला सकती है; किन्तु वह इस अदालतमें नहीं चल सकता। कोर्ट इंसपैक्टरका ध्यान इस ओर आकर्षित किया जायगा। जिनको बन्द रक्खा गया है, वे भी यदि चाहें तो मामला चला सकते हैं। "

—संवाददाता।

वर्ष १

आश्विन शुक्ला ८

वीर संवत् २४६०

अंक २३

ता० १६ अक्टूबर

सन् १९३४ ई०

जैनधर्म का मर्म।

(५१)

अपरिग्रहके अपवाद—व्यवहारमें तो लोगोंने अभी तक परिग्रहको पाप समझना नहीं भी सीखा है परन्तु जब उनसे चर्चा करने बैठो तब वे बालकी खाल निकालते हैं उनकी दृष्टिमे साधारण कपड़े पहिनने वाला या लँगोटी लगानेवाला, चलनेके सुभीतेके लिये एकाध लकड़ी रखनेवाला या दो चार पैसे रखनेवाला भी परिग्रही है, अर्थात् उनकी दृष्टि से प्रत्येक वस्तु परिग्रह ही है। यद्यपि जुदे जुदे सम्प्रदायोंने जुदे जुदे उपकरणोंको अपवादरूप स्वीकार किया है किन्तु उनके वे नियम विशेष विशेष साधु संस्थासे सम्बन्ध रखते हैं, परन्तु मुझे तो यहाँ यह विचार करना है कि संयमकी दृष्टिसे इसके अपवाद क्या है? अपरिग्रही कितनी और कौन कौन चीजें रख सकता है?

१—जीवननिर्वाहके लिये जो चीजें अनिवार्य हैं उन्हें परिग्रह नहीं कहते। जैसे कोई आदमी रोटी आदि खाद्य सामग्रीको रखता है तो वह परिग्रही नहीं कहलाता। अपरिग्रह व्रत का पालन करने वाला इसीलिये भिक्षा मांगने में अगर अन्न लावे तो उसे परिग्रही नहीं कहेंगे।

शंका—एक आदमी किसीके यहाँ भोजन कर आवे यह तो ठीक है, परन्तु अगर वह किसी पात्रमें भिक्षावस्तु लेकर रक्खेगा तब तो परिग्रही कहलायगा।

समाधान—किसीके यहाँ भोजन करना या अनेक घरोंसे भिक्षा माँगकर एक जगह भोजन करना अपरिग्रहकी दृष्टिसे एक ही बात है।

शंका—अपने स्थानपर भिक्षान्न लानेवाला कुछ समयके लिये धान्यका परिग्रह करता है, इसलिये वह परिग्रही ही है। अगर उसे परिग्रही न कहा जाय तो कोई जीवन भरके लिये धान्यका संग्रह करे तो उसे भी परिग्रही न कह सकेंगे। इसलिये कुछ न कुछ मर्यादा तो बाँधना ही पड़ेगी। कोई मर्यादा बाँधी जाय तो उसका कोई कारण तो बतलाना पड़ेगा। और ऐसा कोई कारण है नहीं जिससे यह कहा जाय कि अमुक समय तक संग्रह करना चाहिये और बादमें नहीं।

समाधान—अपने पास रखनेसे ही कोई परिग्रही नहीं होता। अपने पास रखनेपर भी अगर स्वामित्व की वासना न हो तो वह परिग्रही नहीं कहलाता। दूसरी बात यह कि जो चीज हम ग्रहण करें वह हमारे वास्तविक अधिकारके बाहरकी न होना चाहिये। पहिले परिग्रहका विवेचन करते समय यह बताया गया है कि परिग्रह क्यों पाप है? जिस संग्रह में परिग्रहका वह लक्षण नहीं जाता वह परिग्रह नहीं कहला सकता। समयकी मर्यादा भी यहाँ आवश्यक नहीं है। वह तो देशकालके अनुसार बाँधी जासकती है। भिक्षा या परिश्रमके द्वारा प्रतिदिन भोजन मिलनेकी सुविधा हो तो दूसरे दिनके लिये संग्रह न करे। अन्यथा कई दिनके लिये भी संग्रह किया जा सकता है। प्रवास आदिमें भी कई दिनके लिये सं-

ग्रह किया जा सकता है। हाँ, इस बातका विचार अवश्य रखना चाहिये कि यह संग्रह दूसरोंके अधिकारोंमें बाधा न डाले। उदाहरणार्थ दुर्भिक्ष आदिके समय कोई वर्षोंकी भोजन सामग्रीका संग्रह कर ले तो यह परिग्रह ही है। समाजके पास कौनसी चीज़ कितनी है और उसमें मेरा क्या हिस्सा है, इसके अनुसार संग्रह किया जा सकता है उसमें कालकी मर्यादा नहीं बाँधी जा सकती, अथवा देशकालके अनुसार अस्थायी मर्यादा बाँधी जा सकती है।

शंका—जैनियोंका एक सम्प्रदाय तो यह कहता है कि अपने स्थान पर भी भिक्षा न लाना चाहिये और दूसरा यह कहता है कि दूसरे दिनके लिये न रखना चाहिये; परन्तु आप कालकी मर्यादा भी नहीं बाँधते, यह क्या बात है?

समाधान—जैनियोंके दोनों सम्प्रदायोंमें जो मुनियोंके नियम हैं, वे एक मुनिसंस्थाके नियम हैं। जुदी जुदी संस्थाओंके नियम जुदेजुदे होते हैं और वे देशकालके अनुसार बदलते रहते हैं। मुनिसंस्था रखना चाहिये कि नहीं? और रखना चाहिये तो उसके नियम कैसे हों? पुराने नियम कितना परिवर्तन माँगते हैं? आदि बातोंपर तो अगले अध्यायमें विचार किया जायगा। यहाँ तो अपरिग्रह व्रतका विचार किया जाता है। मुनिसंस्थामें तो उन नियमोंकी भी आवश्यकता होसकती है जो अपरिग्रहव्रतमें शामिल नहीं किये जा सकते किन्तु एक वर्गमें उसका पालन कराने लिये समयानुसार बनाये गये हैं, संस्था बात जुदी है और संयम जुदी। संयम तो संस्थाके बाहर रहकर गृहस्थवेषमें भी पालन किया जासकता है और मुनिसंस्थामें भी किसी संयमको शिथिल बनाया जा सकता है। यहाँ तो संयमका विचार किया गया है।

२–जीवननिर्वाहके लिये अन्नादि जिन साधनोंकी अनिवार्य आवश्यकता है उसको प्राप्त करनेके लिये जो न्यायोचित साधन हों, उनका संग्रह भी परिग्रह पाप नहीं है। उदाहरणार्थ खेती करनेके लिये जिन औजारोंकी आवश्यकता है, उनका रखना परिग्रह नहीं है।

शंका—इसे आप अल्प परिग्रह कहसकते हैं परन्तु बिलकुल परिग्रह ही न मानें, यह कैसे होसकता है? ऐसा माननेसे तो एक मुनि भी खेती करने लगेगा! तब गृहस्थ और मुनिमें अन्तर क्या रहजायगा?

समाधान—गृहिसंस्था और मुनिसंस्थाका भेद अगर नष्ट भी होजाय तो भी गृहस्थ और मुनिका भेद रहनेवाला है। जिसके कार्य विश्वप्रेमको लक्ष्य में रखकर होते हैं वह मुनि है, और जिसके कार्य परिमित स्वार्थको लक्ष्यमें लेकर होते हैं वह श्रावक है। जिस ज़मानेमें कृषि आदि कार्य करनेवालोंकी कमी नहीं होती और निःस्वार्थ सेवकोंकी आजीविका आदिका प्रबन्ध करनेके लिये समाज विनयपूर्वक तैयारी बताती है, उस समय साधुओंको निराकुलताके साथ समाजसेवाका मौका देनेके लिये कृषि आदिकी मनाही करदी जाती है। परन्तु अगर परिस्थिति बदल जाय, साधुसंस्था समाजके लिये बोझ होजाय अथवा समाज साधुओंको कुपथमें खींचना चाहे, रूढ़ियों और परम्परागत अन्यायोंका समर्थन कराना चाहे अथवा वातावरण ऐसा हो या राज्यके क़ानून ऐसे हों जिससे अपनी आजीविका स्वयं चलानेकी आवश्यकता हो तो मुनि खेती भी कर सकता है और उसके योग्य उपकरण भी रख सकता है, वह रहनेके लिये कुटी भी बना सकता है। दि० जैन सम्प्रदायमें द्राविड़ संघ ऐसा हुआ है जो खेती और व्यापारसे अपनी आजीविका चलाना मुनित्वके बाहर नहीं समझता था। साम्प्रदायिक कट्टरताके कारण यद्यपि उसे पापी कह दिया गया है परन्तु इस प्रकार की गालियाँ तो अच्छेसे अच्छे व्यक्तिको भी दीगई हैं। इतने पर भी द्राविड़ संघके अनुयायियोंकी संख्या कम नहीं रही, वह एक विशाल संघ हुआ है। आचार तथा आचार सम्बन्धी विचारोंमें उसने अनेक सुधार † किये थे। इसलिये

† बीएसु णत्थि जीवो उब्भसणं णत्थि फासुगं णत्थि।

जैन मुनि निर्लिप्तिताके साथ कृषि आदि कार्य करे, इसमें आश्चर्यजनकता और अनुचितता बिलकुल नहीं है।

शंका- मुनित्व और श्रावकत्वका भेद भावों पर है यह ठीक, परन्तु निष्परिग्रहता और अल्पपरिग्रहताका कोई बाहिरी रूप भी तो बतलाना चाहिये। बाह्यपरिग्रहकी दृष्टिसे एक मुनि कैसा होगा? और एक गृहस्थसे उसमें क्या अन्तर होगा?

उत्तर—मुनि और गृहस्थका बाह्य अन्तर सदा के लिये नहीं बताया जा सकता. परन्तु जो आजकलकी परिस्थितिके अनुकूल हो वह बताया जा सकता है कि एक मुनि आवश्यकतानुसार सम्पत्ति रक्खेगा, परन्तु उस सम्पत्तिका उत्तराधिकारित्व वह समाजको देगा, वह सन्तानको या सन्तानके स्थानापन्न किसी व्यक्तिको नहीं। इसके अतिरिक्त आवश्यकतानुसार ही सम्पत्ति रक्खेगा, महत्ता बतलानेके लिये नहीं। इन दो बातोंकी रक्षा करता हुआ वह खेती करे या और कुछ, उसके मुनित्वमें बाधा नहीं आ सकती अर्थात् वह परिग्रहका दोषी नहीं कहला सकता।

३—'देशकी सम्पत्तिमें अपना जितना हिस्सा हो सकता है उससे अधिक ग्रहण करना परिग्रह है, इसमें इस बातका ख़याल रखना चाहिये कि अगर समाजसेवाके लिये उपकरण रखना हों तो वे परिग्रह नहीं हैं। जैसे एक विद्वान ज्ञान बढ़ाकर समाजका कल्याण करना चाहता है, इसके लिये उसे पुस्तकालयकी आवश्यकता है तो वह परिग्रह नहीं है। हाँ, अगर वह काम कुछ नहीं करता या बहुत थोड़ा करता है, किन्तु सिर्फ महत्ता बतलानेके लिये पुस्तकोंका ढेर एकत्रित करके रखता है, कोई असुविधा या हानि न होने पर भी उनका उपयोग दूसरों को नहीं करने देता तो वह परिग्रही है। उन पुस्तकोंको अपनी सम्पत्ति समझता है तो परिग्रही है। जो बात यहाँ ज्ञानोपकरणके विषयमें कही गई है वही बात और भी अनेक तरहकी सेवाके उपकरणों के लिये लागू है। इतना ही नहीं किन्तु सेवा करने के लिये शरीर के लिये कुछ सुविधा देनेकी आवश्यकता हो तो वह भी परिग्रह नहीं है। उदाहरणार्थ अधिक परिश्रमके कारण औषध वगैरहका सेवन करना पड़े या वाहन आदिका उपयोग करना पड़े तो वह सब परिग्रह नहीं है।

शंका—यदि अपवादका क्षेत्र इतना विस्तृत कर दिया जायगा तब इसकी ओटमें ऐयाशी का राज्य जम जायगा। मामूली नाम मात्रकी सेवा करनेवाले भी स्वास्थ्यकी दुहाई देकर पहिले दर्जेमें ही रेलयात्रा करेंगे, दो दो चार चार रुपयोंके फल उड़ायेंगे, मोटरमें सैर करेंगे और फिरभी कहेंगे कि हम अपरिग्रही हैं! क्या यह ठीक होगा?

समाधान—नियमों और उनके अपवादोंका दुरुपयोग सदासे होता आया है और आजभी होता है, भविष्यमें भी होगा परन्तु इसीलिये अपवादोंका विचार न किया जाय यह नहीं हो सकता। क्योंकि ऐसा करनेसे वास्तविक अपरिग्रहता रखते हुए भी उसके बाह्य रूपको न रख सकनेके कारण अपरिग्रहीकी समाजसेवक वृत्तियाँ व्यर्थ जाती हैं। हाँ, उपर्युक्त दुरुपयोगोंको हम पहिचान सकें, इसके लिये कुछ विचार अवश्य ध्यानमें रखना चाहिये। उदाहरणार्थ, अगर कोई समाजसेवक पहिले दर्जेमें रेलयात्रा करता है तो हमें निम्नलिखित बातोंपर विचार करना चाहिये:—

क्या उसके स्वास्थ्यके लिये यह आवश्यक है कि वह अगर पहिले दर्जे में रेलयात्रा न करेगा तो उसका स्वास्थ्य इतना ख़राब होजायगा कि उससे सेवाकार्य में क्षति पहुँचेगी? या उसका जीवन जोख़िममें पड़जायगा? क्या उसकी सेवा इतनी बहुमूल्य है? क्या समाज के लिये उसके व्यक्तित्व की प्रभावना करना इतना आवश्यक है? क्या समाज बिना किसी

सावज्जं णहु मण्णइ ण गणइ जिह कप्पियं अट्ठं। २६।
कच्छं खेत्तं वसहिं वाणिज्जं कारिऊण जीवंतो। ण्हंतो सीयलणीरे पावं पउरं स संजेदि। २७। दर्शनसार।

कष्टके इतनी सुविधा देनेको तैयार है ? सेवक व्यक्ति इसके लिये सीधी या टेढ़ी रीतिसे किसीको विवश तो नहीं कर रहा है ? अहंकारसे तो वह ऐसा नहीं कर रहा है ? इसी प्रकारके प्रश्न अन्य दुरुपयोगोंके विषयमें भी करना चाहिये। इन प्रश्नोंके उत्तरसे वास्तविकताका पता लग जायगा।

नीति तो सिर्फ मार्ग बतला सकती है। उसका ठीक पालन करना हमारी शुद्ध बुद्धि पर निर्भर है।

४—आत्मरक्षाके लिये लकड़ी आदिके रखनेकी आवश्यकता हो तो वह भी परिग्रह नहीं है। मार्ग आदि चलनेमें लकड़ी आदिमें बहुत सहायता मिलती है, इसलिये अगर कोई लकड़ी रखेगा तो वह परिग्रह न कहलायगी। हाँ, अगर वह उससे हिंसा करेगा तो अवश्य परिग्रह हो जायगी क्योंकि अब उसका लक्ष्य आत्मरक्षा न रहा।

प्रश्न——पशुओं वगैरहसे आत्मरक्षा करनेके लिये लकड़ी रखना परिग्रह है या नहीं ? अथवा अगर वह आत्मरक्षाके लिये लकड़ीका प्रयोग करे, पशुको कदाचित् मार भी दे तो फिर उसे परिग्रह कहेंगे या नहीं ?

उत्तर——यह प्रश्न हिंसा-अहिंसासे सम्बन्ध रखता है। प्रत्येक बाह्य हिंसाको हम हिंसा नहीं कहसकते, इस बातका विचार करके ही हम उपर्युक्त प्रश्नका उत्तर देसकते हैं। मनुष्यके समान पशुओंके भी आत्मा है इसलिये उन्हें नहीं सताना चाहिये। परन्तु वे अपनी भाषा नहीं समझते इसलिये लकड़ी वगैरहका संकेत करके उन्हें रोका जाय तो यह हिंसा नहीं है। जैसे पशुपालनमें ऐसे अनेक अवसर आते हैं परन्तु इसीलिये पशुपालक हिंसक नहीं कहला सकता। इसी प्रकार आत्मरक्षा आदिके काममें भी समझना चाहिये।

५—समाजसेवाके लिये समाजाश्रित न रहना पड़े, इसके लिये धनसंग्रह करने वाला परिग्रही नहीं है।

समाजसेवाका कार्य बड़ा जटिल है। समाजके सुधारके लिये जब कुछ ऐसे विचारोंकी आवश्यकता होती है जो प्रचलित मान्यताके विरुद्ध जाते हैं तब उनका प्रचार करना मुश्किल होता है। इस समय अगर कोई मनुष्य किसी भी तरहसे समाजाश्रित हो तो उसका टिकना अत्यन्त कठिन हो जाता है। वह समाजको सत्पथ दिखला ही नहीं सकता। समाज, सुधारकोंकी पीठ पर तो मुक्के लगाती ही है, परन्तु पेट पर भी मुक्के लगाती है। इससे सिर्फ सुधारकका जीवन दुःखपूर्ण ही नहीं होता और उसकी बहुतसी शक्ति बर्बाद ही नहीं जाती किन्तु इससे सुधारका कार्य असफल या अत्यल्प सफल होजाता है। इसके लिये अगर वह वैध उपायोंसे अर्थ संग्रह करे तो भी वह परिग्रही नहीं कहला सकता। हाँ, उसे आवश्यकतानुसार ही सम्पत्तिका उपयोग करना चाहिये और उसका उत्तराधिकारित्व समाजको ही देना चाहिये।

शंका——समाजसे माँगकर अगर कोई इसी बहाने से धनका संचय करे तो आप उसे परिग्रही कहेंगे या अपरिग्रही ?

समाधान——समाजसे पैसा लेकर अपने लिये या अपने नाम पर संग्रह करनेवाला व्यक्ति परिग्रही ही नहीं, विश्वासघाती भी है। साधारणतः समाजसे धन जिस लिये माँगा गया है उसी काममें लगाना चाहिये, विशेष अवस्थामें अन्य किसी समाजोपयोगी कार्यमें लगाया जासकता है परन्तु एक क्षणभरके लिये भी उसपर अपना स्वत्व स्थापित नहीं करना चाहिये। ऊपर जो अपवाद बतलाया गया है वह तो सिर्फ उस संचयके लिये है जो अपने परिश्रम आदिके बदलेमें वैध उपायोंसे प्राप्त किया गया है।

सब अपवाद गिनाये नहीं जासकते और न सब अपवादोंके दुरुपयोगोंसे बचानेके लिये उपाय गिनाये जासकते हैं। हाँ, उसकी कुंजी बतलाई जासकती है, या कसौटी दी जासकती है। परिग्रह, क्यों दुःखप्रद है, इसका वर्णन पहिले किया गया है। उसको समझलेनेसे अपरिग्रहके अपवाद समझे जा सकते हैं, और अगर कोई उसका दुरुपयोग करे तो उसकी दुरुपयोगता भी ध्यानमें आ सकती है।

प्रश्न—अभी तक जो आपने अपरिग्रहका वर्णन किया है वह सिर्फ पुरुषसमाजके विषयमें ही मालूम होता है। परन्तु स्त्रियोंके हाथमें तो साम्पत्तिक अधिकार भी नहीं है। वे न तो परिग्रहका पाप ही कर सकती हैं, न अपरिग्रह व्रत ही रखसकती हैं। उनके लिये इस व्रतका क्या रूप है ?

उत्तर—अभी तक अपरिग्रहके विषयमें जो कुछ कहा गया है वह जैसा पुरुषोंके लिये लागू है वैसा स्त्रियोंके लिये भी। यह दूसरी बात है कि किसी स्त्रीके हाथमें सम्पत्ति न हो, परन्तु अभी बहुतसी स्त्रियोंके हाथमें सम्पत्ति होती है। स्त्रियाँ व्यापार भी करती हैं, नौकरी भी करती हैं। कुटुम्ब में दूसरा न होनेसे सारा उत्तराधिकारित्व भी उन्हें मिलता है। यूरोप, खासकर रूस में तो स्त्रियोंका साम्पत्तिक अधिकार और भी अधिक है। बर्मामें व्यापारादि कार्यमें स्त्रियाँ अधिकतर भाग लेती हैं इस लिये परिग्रह और अपरिग्रहकी चर्चा जैसी पुरुषोंके लिये है वैसी ही स्त्रियोंके लिये भी है। साधारणतः इस प्रकार इस प्रश्नका उत्तर दे देने परभी इस प्रश्नका एक विचारणीय अंश पड़ाही रहजाता है। उसपर विचार करना चाहिये। जो लोग गुलाम हैं, वे इस व्रतका पालन कैसे करें ? अनेक स्त्रियाँ कहलानेको तो सेठानी कहलाती हैं परन्तु सम्पत्तिपर उनका वास्तविक अधिकार बिलकुल नहीं रहता। वे इस व्रतका पालन कैसे करें ?

इस प्रश्नके उत्तरके लिये हमें परिग्रहके या पाप के मूलस्वरूप पर विचार करना चाहिये। पाप केवल बाहिरी क्रियाका नाम नहीं है, किन्तु असली पाप अपने अभिप्रायपर निर्भर है। जहाँ आसक्ति है वहाँ परिग्रह है। एक स्त्रीका अपने पतिकी सम्पत्तिमें लोकप्रचलित क़ानूनके अनुसार हक़ हो या न हो परन्तु वह उस सम्पत्तिमें उतनी ही आसक्त होती है जितना कि उसका पति। बस, यही परिग्रहकी भूमिका है। कुटुम्बमें दस आदमी हों और उनमें कोई एक मुखिया हो तो इसीलिये बाक़ी नव आदमी परिग्रहके पापसे छूट नहीं जाते। स्त्रियाँ अपरिग्रहके लिये उसमें आसक्ति कम करें, दानादि देनेमें बाधक न बनें, इसतरह वे अपरिग्रहव्रतका पालन कर सकती हैं।

जहाँ स्त्रीधनके रूपमें स्त्रियोंके पास सम्पत्ति रहती है वहाँ वे उसकी अपेक्षासे अपरिग्रहव्रतका पालन कर सकती हैं।

दास और पशुओंके पास धन नहीं होता। वे अनासक्ति तथा भोगोपभोगोंकी परिमिततासे इस व्रत का पालन कर सकते हैं। कदाचित् उनके हाथमें सम्पत्ति आवे तो वे अपनी अपरिग्रहताका परिचय देसकते हैं।

परिग्रहके चार भेद—हिंसा, असत्य आदिके जैसे चार चार भेद पहिले किये गये हैं उसीप्रकार परिग्रहके भी चार भेद समझना चाहिये। यहाँ तो उनका नाममात्र वर्णन किया जाता है, बाक़ी विवेचन तो ऊपर किया ही जा चुका है।

संकल्पी—भोगोंकी लालसासे, अहंकार या मोहसे अपने हिस्सेसे अधिक सम्पत्ति रखना सङ्कल्पी परिग्रह है।

कोई महात्मा या कर्मयोगी कारणवश अधिक सामग्री भी रक्खेगा परन्तु मौज उड़ानेके लिये नहीं, अपनी सन्तानके मोहसे नहीं, बड़ा आदमी कहला कर दूसरोंके ऊपर धाक जमानेके लिये नहीं किन्तु सिर्फ समाजसेवाके लिये। इसलिये इसे सङ्कल्पी परिग्रह न कह सकेंगे।

आरम्भी—सेवा आदि कार्यके लिये या जीवन के निर्वाहके लिये जिन चीज़ोंकी आवश्यकता है उनका रखना आरम्भी परिग्रह है। जैसे पढ़नेके लिये पुस्तक (किसीके यहाँ पुस्तकोंका व्यापार होता हो तो वह आरम्भी परिग्रह न कहलायगा। यही बात सेवाके अन्य उपकरणोंके विषयमें भी समझना चाहिये) कुर्सी पलंग आदि। परन्तु इनका अनावश्यक संग्रह किया जाय, या नाममात्रकी आवश्य-

कतासे संग्रह किया जाय या सम्पत्ति मानकर इनका संग्रह किया जाय तो यह संकल्पी परिग्रह होजायगा। उदाहरणार्थ दूध पीनेके लिये एक गाय रखना एक बात है परन्तु इस आशयसे कि अगर पचास गायें रखूँगा तो इस रूपमें दो चार हजारकी सम्पत्ति हाथमें रहेगी, यह सङ्कल्पी परिग्रह ही है। परन्तु गौरक्षाकी दृष्टिसे रक्खीं जाँय तो यह संकल्पी परिग्रह नहीं है।

उद्योगी—व्यापार आदिके उपकरणोंको रखना उद्योगी परिग्रह है। जैसे आरम्भी परिग्रहमें मात्राकी अधिकता आदि से संकल्पीपन आजाता है, वैसा यहाँ भी आजाता है। इसलिये अपरिग्रहीके लिये इसके मात्राधिक्यसे बचना चाहिये।

विरोधी—अन्यायी और अत्याचारियोंसे आत्मरक्षा करनेके लिये जो परिग्रह रक्खा जाता है वह विरोधी परिग्रह है। जैसे चोरोंसे रक्षित रहनेके लिये द्वार, ताला, तिजोड़ी आदि; अथवा शत्रुओंसे रक्षित रहनेके लिये तलवार बंदूक आदि। ये ही वस्तुएँ अगर दूसरोंपर आक्रमण करनेके लिये रक्खी जाँय तो यहाँ संकल्पी परिग्रह कहलायगा।

इन चार प्रकारके परिग्रहोंमें संकल्पी परिग्रहही वास्तवमें परिग्रह है और वही पाप है। बाकी तीन परिग्रह तो तभी पाप बनजाते हैं जब उनमें किसी तरहसे संकल्पीपन आजाता है।
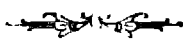
सम्पादकीय टिप्पणियाँ।

कन्याओंका शिकार।

विवाहकी वेदीपर कन्याओंका जो बलिदान होता है उसकी गिनती करना असम्भव है। परन्तु ये अत्याचार बलिदानपर ही सीमित नहीं हैं, बल्कि शिकार तक पहुँच गये हैं। बलिदान तो एकप्रकार का आत्मसमर्पण है, फिर भलेही वह अच्छा हो या बुरा। लाखों कन्याएँ मूढ़तावश इसप्रकारका आत्मसमर्पण करती हैं। परन्तु अनेक कन्याओंका एक प्रकारसे शिकार तक किया जाता है। उनको जबर्दस्ती मरनेके लिये विवश होना पड़ता है। अभी लखनऊकी बात है, एक वृद्धशिकारीने एक कन्याको जालमें फँसाया। सुहागरातके दिन जब कन्याने पतिदेवको अच्छी तरह देखा तो उसके होश उड़गये। पतिदेवके रूपमें एक भयंकर बुड्ढेको देखकर उसे इतनी ग्लानि हुई और भविष्य जीवन उसे इतना अन्धकारमय मालूम हुआ कि उससे बचनेके लिये उसने आत्महत्या करली; क्योंकि अब न तो वह पुनर्विवाह कर सकती थी, न आजीवन ब्रह्मचर्यपालनकी उसमें शक्ति थी। तीसरा उपाय सिर्फ व्यभिचारका रहगया था जिसके लिये वह तैयार न थी। अतः उसने जीवन देना ही ठीक समझा।

लाहौरमें एक दूसरी घटना हुई है। एक बुड्ढेने अपने जवान बेटेके होते हुए भी एक कन्यासे शादी की। बुड्ढेमें तो अब देखने मात्रका पुरुषत्व रहगया था। असली पुरुषत्व तो उत्तराधिकारित्वके रूपमें उसके पुत्रको मिलगया था। इसलिये बुड्ढेकी नव वधू पर बुड्ढेकी अपेक्षा उसका पुत्र आसक्त होगया। उसकी आसक्तिको चरितार्थ करनेमें बुड्ढेका अस्तित्व बाधक था, इसलिये उसके चिरञ्जीवने अपने पितारामका खून करवा दिया। परन्तु पाप छुप न सका, अन्तमें भण्डाफोड़ होगया, सब पकड़े गये, इसप्रकार उस कुटुम्बका सर्वनाश होगया।

यह बात लोगोंकी समझमें क्यों नहीं आती कि जब बुड्ढोंकी कामवासना इतनी तीव्र होसकती है तब बेचारी उन विधवाओंकी क्या दशा होती होगी जिनका यौवन अभी खिल ही रहा है? सचबात तो यह है कि ऐसा नियम बन जाना चाहिये कि विधुर समवयस्क विधवाओंके साथही शादी कर सकें। कन्याओंके शिकारको रोकनेका और दूसरा सरल उपाय नहीं है।

लज्जाजनक क्रूरता।

क्रूरता तो आखिर क्रूरता ही है, वह लज्जाजनक तो होती ही है, परन्तु जब उसके साथ भी 'कृत्ता-

जनक' विशेषण लगाया जाता है तब समझना चाहिये कि साधारण क्रूरताकी अपेक्षा भी उसमें सीमोल्लंघन हुआ है, कुछ अधिक बीभत्सता आई है। पुरुषसमाज स्त्रियोंके ऊपर कैसे कैसे अत्याचार कर सकता है और इस कार्यमें वह कितनी निर्लज्जता और पशुताका परिचय देसकता है, इसका यह एक नमूना है।

कलावती नामकी एक स्त्री के ऊपर उसका पति और श्वसुर क्रूरतापूर्ण व्यवहार करते थे, इसलिये कलावतीके पिताने उन दोनों पर मुकद्दमा चलाया जिससे उन्हें सजा हुई। इससे उन्हें कुछ शिक्षा लेना चाहिये थी परन्तु ऐसा न कर उनने बीभत्स निर्लज्जता तथा क्रूरताका व्यवहार किया। कलावतीके पतिने हलका एक बैल निकालकर उसकी जगह पर अपनी स्त्री कलावतीको जोत लिया और जिसप्रकार बैलको लकड़ीसे हाँका जाता है उसीप्रकार अपनी स्त्री को हाँकना शुरू किया। इसी अवस्थामें हाँकते हाँकते वह कलावतीको बाजारमें लाया।

खैर, यह मामला भी कोर्टमें पहुँचा और दोनों अपराधियों को चार चार महीनेकी कड़ी कैदकी सजा और डेढ़ डेढ़ सौ रुपये जुर्माना हुआ।

जुर्माना और जेल हुआ सो तो ठीक, परन्तु इस देशका यह कैसा अधःपतन है! हमारे देशके पतियोंका पत्नीप्रेम और पौरुष क्या यही है? हमारे यहाँके श्वसुरोंका वात्सल्य भी क्या यही है? न मालूम ऐसे ऐसे देशकलंक और पुरुषकलंक इस देशमें कितने न होंगे! स्त्रियोंके साम्हने इसप्रकार पशुबलका प्रदर्शन करना नपुंसकत्वकी चरमसीमा है और शर्मकी बात तो यह है कि नपुंसकत्वकी इस सीमा पर हजारों पुरुषाकार जन्तु पड़े हुए हैं!

अन्धविश्वास और वहम

प्रकृति हमारी गुलाम नहीं है इसलिये थोड़े बहुत प्राकृतिक कष्ट हमारे पीछे पड़े ही रहेंगे, परन्तु इन कष्टोंसे अधिक दुःखप्रद कष्ट वे हैं जो मनुष्योंने अपने सिरपर मूर्खतावश लाद लिये हैं। अन्धविश्वास और वहमोंके कष्ट इसीप्रकारके कष्ट हैं, जो सहस्राब्दियोंसे मनुष्यसमाजके ऊपर लदे हुए हैं। देखने में ये बहुत भयंकर नहीं मालूम होते परन्तु इन का फल इतना भयंकर होता है कि किसी देशके इतिहासको बदल देता है, सैकड़ों जीवनोंको नरक की तरह बना देता है।

इतिहासमें इस प्रकारकी सैकड़ों घटनाएँ पाई जाती हैं जब साधारण अन्धविश्वासने विजयी और समर्थ लोगों को भी पराजित कर दिया है।

युद्धस्थलके विजयी और बहादुर सैनिक अगर किसी प्रकार यह जान पाते हैं कि किले परका झंडा झुक गया है तो उनकी सारी बहादुरी रफूचक्कर हो जाती है, उनके मनमें दृढ़ विश्वास हो जाता है कि अब हम किसी भी प्रकार विजय प्राप्त नहीं कर सकते, इसलिये वे भाग उठते हैं या मारे जाते हैं। इसीप्रकार साम्हने से बिल्ली निकल जाने पर भी सेनाएँ लड़ाई रोक देती थीं और मौका चूक जाने पर दुश्मनोंके रातके छापेमें मारी जाती थीं। खैर, ये तो ऐतिहासिक बातें हैं, परन्तु वर्तमानमें भी यह अन्धविश्वास गजब ढा रहा है।

बीमारी हो जाने पर हरिजनोंको मार डालना या मारना, डाइन कहलानेवाली बुढ़ियाओंकी खोपड़ी फोड़ देना, सैकड़ों पशुओंको मौतके घाट उतार देना आदि अन्धविश्वासके सैकड़ों भयंकर और पापमय रूप हमें आज भी दिखलाई देते हैं।

शकुन और अपशकुनके वहम भी घर घरमें घर किये हुए हैं। सैकड़ों आदमी इसी लिये मौके पर नहीं पहुँच पाते या विदा नहीं हो पाते कि मुहूर्त अच्छा नहीं निकला था। इस प्रकार अवसरको खोकर पछताते हैं।

घरके भीतर प्रवेश करने पर और स्त्रीसमाज पर नजर डालने पर तो इन वहमोंका साम्राज्य ही दिखलाई देता है। इनके तांडवको देखकर 'त्राहि त्राहि' की आवाज निकालना पड़ती है।

घरमें नई दुलहिन आती है और उसके आने पर अगर व्यापारमें टोटा पड़ जाता है, तो वह

अभागिन समझ ली जाती है, अगर कोई मर जाता है तो वह डाकिन कहलाने लगती है, अगर विधवा हो जाय तो पतिभक्षिणी है ही। इन स्त्रियोंका जीवन कैसा होता होगा, इसका तो हम सिर्फ अनुमान ही लगा सकते हैं।

बेचारी विधवा एक तो स्वयं दैवकी सतायी हुई होती है, उस पर उसका तिरस्कार करके हम जले पर नमक छिड़कते हैं। एक तरफ़ तो हम वैधव्य को एक प्रकारकी दीक्षा कहते हैं दूसरी तरफ उसे अपशकुन समझते हैं, और बेचारी विधवाओंके दुःखको कई गुणा बना डालते हैं।

उसीप्रकार उस नई दुलहिनका जीवन भी बर्बाद कर देते हैं जिसके आने पर किसी कारणवश कुटुम्ब पर कोई विपत्ति आ पड़ी है। उस विपत्तिमें बेचारी दुलहिनका कोई अपराध नहीं होता, परन्तु तिरस्कृत होती है वही, यहाँ तक कि यही तिरस्कार बढ़ते बढ़ते अत्याचारमें परिणत हो जाता है। इस प्रकार वहम छोटेसे नरककी सृष्टि करता है।

इसी वहमके कारण सैकड़ों मनुष्य अकाल मौत मरते हैं। गाँव गाँव और घर घरमें यह अन्ध विश्वास फैला हुआ है कि अमुककी पूजा करनेसे अमुक बीमारी दूर होती है, अमुक मंत्रसे अमुक व्याधि नष्ट होती है। इस प्रकार वहमके फेरमें पड़े रहनेवाले लोग वास्तविक चिकित्सासे विमुख रहकर अकालमें ही मौतके मुँहमें चले जाते हैं। इस प्रकार के अन्धविश्वास अशिक्षितोंमें ही नहीं पाये जाते किंतु शिक्षितोंमें भी पाये जाते हैं; जंगली लोगोंमें ही नहीं किन्तु सभ्य लोगोंमें भी पाये जाते हैं, हमारे देशमें ही नहीं किन्तु यूरोप अमेरिका आदि देशोंमें भी पाये जाते हैं। मतलब यह कि यह बीमारी समग्र मनुष्य जातिको बुरी तरह सता रही है।

जैनधर्मके शब्दोंमें यह सब मिथ्यात्व है और मिथ्यात्व तो पाँच पापोंसे भी अधिक भयंकर कहा जाता है। अन्धविश्वासोंको मान देकर वास्तवमें हम अपने धर्म पर भी अविश्वास करते हैं। दैव और पुरुषार्थ किसी भी कार्यके साधन हैं। क्या ये शकुन और अपशकुन दैवको हटा सकते हैं अथवा क्या पुरुषार्थके मार्गमें आड़े आ सकते हैं? इसका उत्तर 'न' के सिवाय दूसरा हो ही नहीं सकता। फिर हम क्यों इस प्रकारके मिथ्यात्वको अपनाये हुए हैं? क्यों नहीं विवेकसे काम लेकर सुखके मार्गमें चलते हैं? अगर हम विवेकी, सम्यग्दृष्टि जैनी बनना चाहें और अपनेको तथा समाजको सुखी करना चाहें तो हमारा परम कर्तव्य है कि इस प्रकारके वहमोंका त्याग करें।

विरोधी मित्रोंसे।

(२४)

आक्षेप (८१)–आचार्य समन्तभद्रके वक्तव्य को आपने उनके शब्दोंमें नहीं रक्खा। सूक्ष्मादि पदार्थोंको प्रत्यक्षका विषय सिद्ध करने से, इनसे भिन्न पदार्थ व्याप्ति ग्रहणके लिये रहजाते हैं। परन्तु आपके शब्दोंमें यदि आचार्यका वक्तव्य रक्खा जाय तो व्याप्तिके लिये कोई स्थान ही नहीं रहता।

समाधान––मेरा कहना है कि अनुमेयत्व और प्रत्यक्षत्वकी व्याप्ति असिद्ध है। मेरा यह कहना नहीं है कि व्याप्तिके लिये स्थान ही नहीं है। यदि हम सब पदार्थोंको साध्य बना लें तो भी व्याप्तिके लिये स्थान रहेगा। पक्ष के भीतर जितना भाग सिद्ध है वह दृष्टान्त है। यहाँ व्याप्तिग्रहण हो सकता है और जितना भाग असिद्ध है वह साध्य है। पक्षका एकांश सिद्ध होने पर भी पूरा असिद्ध हो सकता है (एक सत्वेऽपि द्वयं नास्ति)। आचार्य समन्तभद्रके शब्दोंको मैंने जिन शब्दोंमें रक्खा है वह सरलताके लिये है, न कि झूठा दोष देनेके लिये। जिस दोषकी आपने कल्पना की है वह न तो मैंने दिया है, न वहाँ दिया जासकता है।

*इसका विशेष और स्पष्ट वर्णन 'न्यायप्रदीप' के द्वितीय अध्यायमें किया गया है।

जिस शैलीको मैंने अपनाया है वह आचार्यको भी स्वीकृत है। आचार्य सूक्ष्मादि को पक्ष बनाकर उपसंहारमें 'सूक्ष्मादिज्ञ संस्थितिः' नहीं कहते किन्तु 'सर्वज्ञ संस्थितिः' कहते हैं। इससे सिद्ध होता है कि आचार्य सूक्ष्मादिज्ञता और सर्वज्ञतामें इतना अन्तर नहीं समझते जिससे उन्हें अलग अलग दो अनुमान बनाना पड़े। पहिले अनुमानमें अनुमेयत्व से सूक्ष्मादिज्ञकी सिद्धि की जाय और दूसरे अनुमानमें सूक्ष्मादिज्ञसे सर्वज्ञकी सिद्धिकी जाय। आचार्यने इस प्रकार दो अनुमान नहीं बनाये, इसका कारण यही है कि वे यहाँ पर सूक्ष्मादिज्ञता और सर्वज्ञता में भेद नहीं मानते, इसप्रकार निरर्थक कथनसे बचते हैं। यही बात मैंने भी की है। खेद है कि आक्षेपक ने न्यायकी इस साधारण बातका भी ध्यान न रक्खा।

आक्षेप (८२)—चुम्बककी आकर्षणशक्तिके उदाहरण से अनुमेयत्व हेतु व्यभिचारी नहीं हो सकता। चुम्बक की आकर्षणशक्तिको हम प्रत्यक्ष से नहीं जानते, किन्तु इसका यह अर्थ कैसे निकल सकता है कि इसमें प्रत्यक्षविषयताका ही अभाव है। यदि हमारी प्रत्यक्षता के साथही पदार्थका अस्तित्व व्याप्त होता तब तो इसप्रकारका परिणाम निकाला जासकता था, किन्तु ऐसा है नहीं। वायुका रूप होता है, इसको हम प्रत्यक्षसे नहीं जानते, फिर भी इसका अभाव नहीं किया जासकता। यदि स्पर्शवत्त्व से रूपित्वका अनुमान किया जाय तो अनुमेयत्वसे प्रत्यक्षत्वका अनुमान कर लिया जायगा।

समाधान—प्रत्यक्षका विषय न होनेसे पदार्थ के अस्तित्वनाशकी बात निरर्थक है। मेरा यह कहना नहीं है कि विश्वका कोई प्रत्यक्ष नहीं कर सकता, इसलिये विश्व है ही नहीं। मेरा कहना तो सिर्फ इतनाही है कि प्रत्यक्षका विषय नहीं होसकता, इस लिये अप्रत्यक्ष है। अभावकी बात लाना व्यर्थ है। वायुका रूप प्रत्यक्षसे नहीं जाना जासकता इसलिये हम उसका अभाव भलेही न मानें परन्तु वह अप्रत्यक्ष है इतना तो कह सकते हैं। बस, यही बात चुम्बककी शक्तिके विषयमें है। मैं उस शक्तिका अभाव नहीं कहता, सिर्फ उसे अप्रत्यक्ष कहता हूँ। इसीसे यहाँ मतलब है।

यद्यपि "जो वस्तु हमारे प्रत्यक्षका विषय नहीं उसमें प्रत्यक्षविषयता नहीं है", यह नहीं कहा जा सकता परन्तु उसमें प्रत्यक्षविषयता है, यह भी तो निश्चयपूर्वक नहीं कहा जासकता। क्योंकि जो हमारे प्रत्यक्षका विषय नहीं, वह दूसरेके प्रत्यक्षका विषय होना ही चाहिये यह भी नियम नहीं है। इसलिये यहाँ संदेह तो है ही। और जो संदिग्ध है वह असिद्ध है। यहाँ मेरा कहना भी सिर्फ इतना ही था कि यह व्याप्ति असिद्ध है। जब व्याप्ति असिद्ध है तब उसके आधार पर अनुमान कैसे खड़ा किया जा सकता है?

व्याप्तिका निर्णय कैसे करना चाहिये, यह एक लम्बी चर्चा है। इस विषयमें मुझे जैन न्यायकी त्रुटियोंको बतलाना पड़ेगा तथा बौद्धादि न्यायकी विस्तृत आलोचना करना पड़ेगी, जिसके लिये न समय है न स्थान। इसलिये व्याप्तिनिर्णयकी विवादग्रस्त बातोंको छोड़कर सीधे ढंगसे ही विचार करता हूँ। मूल लेखमें भी मैंने यह विचार किया था जिसको आक्षेपकने छोड़ ही दिया।

अन्यथानुपपत्ति ही हेतुका प्राण है। साध्यके विना साधनका न होसकना अन्यथानुपपत्ति कहलाती है। जैसे अग्निके विना धुँआ नहीं होता, इसी प्रकार यह नियम होना चाहिये कि जब तक किसी पदार्थका प्रत्यक्ष न हो तब तक उसका अनुमान हो ही नहीं सकता। तभी अनुमेयत्वसे प्रत्यक्षत्वकी व्याप्ति बन सकती है। किसी पदार्थके कार्य आदिका प्रत्यक्ष होने से कारण आदि के प्रत्यक्ष होने का जब तक नियम न बन जाय तब तक अनुमेयत्वसे प्रत्यक्षत्व की व्याप्ति नहीं बन सकती। इसलिये यह व्याप्ति असिद्ध है।

आक्षेप (८३)—चुम्बककी आकर्षण शक्तिभी सूक्ष्म है इसलिये वह भी पक्षके भीतर है। अगर

पक्षान्तर्गत पदार्थोंमें भी व्यभिचारकी कल्पना की जायगी तब तो जगत्में कोई हेतु व्यभिचारशून्य न हो सकेगा।

समाधान--अगर प्रत्येक व्यभिचारस्थलको पक्षान्तर्गत मान लिया जायगा तब तो व्यभिचारी नामक हेत्वाभास कहीं भी न रहेगा। जिस समय ईश्वरकर्तृत्ववादी पृथ्वी पर्वत आदिको बुद्धिमत्कर्तृक मानता है और इसके लिये व्याप्ति बनाता है कि जो जो कार्य है वह सब बुद्धिमत्कर्तृक है, इसके उत्तरमें जैन लोग व्यभिचारदोष देते हुए कहते हैं कि विद्युत् वगैरह कार्य हैं परन्तु बुद्धिमत्कर्तृक नहीं हैं। इस पर वह कह सकता है कि वह भी बुद्धिमत्कर्तृक है। इसप्रकार जितने भी व्यभिचारस्थल बताये जायँगे वह सबको पक्षान्तर्गत करता जायगा। कल कोई यह कहे कि अयोगोलकमें धूम है अग्नि होने से, इस पर आप व्यभिचार देते जाओ, वह उसे पक्षान्तर्गत करता जावे तब तो हो चुका। इस लिये पक्षान्तर्गतताकी दुहाईसे ही काम नहीं चलता है जब तक अन्यथानुपपत्तिका निर्णय ठीक ढंगसे न किया जाय। प्रत्यक्षत्वके बिना अनुमेयत्व क्यों नहीं बन सकता जब तक इस बातको प्रमाण सिद्ध न किया जाय अथवा संदिग्ध व्यभिचारस्थलोंका जब तक पूर्ण अभाव न होजाय तब तक यह व्याप्ति असिद्ध ही मानी जायगी।

आक्षेप (८४)--हम यह कब कहते हैं कि प्रत्यक्षके अभावमें अनुमान नहीं होता। मौजूदा व्याप्ति प्रत्यक्ष ज्ञान और अनुमान ज्ञान की नहीं किन्तु प्रत्यक्षविषयता और अनुमानविषयताकी है। दोनोंमें अन्तर है। पहिला ज्ञानस्वरूप है, दूसरा ज्ञेयस्वरूप। प्रत्यक्ष ज्ञान और प्रत्यक्षविषयतामें कोई साहचर्य सम्बन्ध नहीं है।

समाधान--'प्रत्यक्ष ज्ञान और प्रत्यक्षविषयताका साहचर्य सम्बन्ध नहीं' यह कहना ठीक नहीं। ये परस्पर सापेक्ष हैं। एकके बिना दूसरा हो ही नहीं सकता। जिसे प्रत्यक्ष जानता है वही तो प्रत्यक्ष विषय कहलाता है। जहाँ प्रत्यक्ष नहीं, वहाँ प्रत्यक्ष विषय कैसे बन जायगा? हाँ, पदार्थ रहेगा परन्तु बिना किसी प्रत्यक्षके वह प्रत्यक्षविषय न कहला सकेगा। इसलिये जब तक अनुमान और प्रत्यक्षकी व्याप्ति न बनसके तब तक अनुमानविषयता और प्रत्यक्ष विषयताकी व्याप्ति कैसे बन सकती है? जब प्रत्यक्षके अभावमें अनुमानका होना आक्षेपकको स्वीकार है तब प्रत्यक्षविषयताके अभावमें अनुमानविषयता हो सकती है, यह भी स्वीकार करना पड़ेगा। इसलिये किसीके द्वारा अनुमेय हो इससे वह न तो अनुमानकरने वालेके प्रत्यक्षका विषय सिद्ध हो सकता है, न दूसरेके प्रत्यक्षका विषय, जिससे वह किसीके भी प्रत्यक्षका विषय सिद्ध किया जासके।

आक्षेप (८५)--व्यधिकरण कोई दूषण ही नहीं है। अगर हो भी तो यहाँ वह है नहीं।

समाधान--"पर्वतमें अग्नि है, क्योंकि मेरे रसोईघरसे धुँआ निकल रहा है" यहाँ पर व्यधिकरण होनेसे ही यह अनुमान ठीक नहीं मानाजाता। यदि व्यधिकरण दोष न माना जाय तब तो जहाँ चाहे जिस चाहे वस्तुकी सिद्धि की जा सकेगी। इस प्रकार अनुमानकी उपयोगिता ही नष्ट हो जायगी। हाँ, साध्य और साधनका जुदे जुदे स्थानों पर रहना ही व्यधिकरण दोष नहीं है किन्तु जहाँ पर जुदा जुदा आधार होने से हेतु असिद्ध होता हो, उसकी व्याप्ति नष्ट होती हो वहीं पर यह दोष है, जैसा कि इस समाधानके प्रारम्भमें दिया है। आचार्य समन्तभद्र तथा अन्य आचार्योंके इस अनुमान में यह दोष भी है, क्योंकि वे पदार्थमें जिस व्यक्ति की अपेक्षासे अनुमेयता मानते हैं, उसीसे प्रत्यक्षता नहीं मानते। ऊपर कहा जाचुका है कि विषयीके बिना विषय नहीं हो सकता। जब अनुमान और प्रत्यक्षमें वैयधिकरण्य है तब अनुमानविषयता और प्रत्यक्षविषयतामें भी यह दोष अवश्य है।

जैसे मैंने किसी वस्तुका अनुमान किया तो इससे यही सिद्ध होगा कि मुझे ही उसके हेतुका प्रत्यक्ष आदि था। मैं धुँआ देखूँ और दूसरा अनुमान करे, यह नहीं हो सकता, भलेही फिर कोई दुहाई दे कि विषय तो एक ही है। इसलिये अगर हम अनुमेयतासे प्रत्यक्षताका अनुमान करना चाहें तो यह आवश्यक है कि जिस व्यक्तिकी अपेक्षासे वह पदार्थ अनुमेय है उसीकी अपेक्षासे उसमें प्रत्यक्षता आ सकती है। अन्यथा वैयधिकरण्य दोष होगा।

आक्षेप (८६)—"आपका यह कहना ठीक नहीं है कि व्याप्ति स्वीकार करलेने पर भी यह कैसे कहा जासकता है कि जितना अनुमेय है वह सब एक ही प्राणीका प्रत्यक्ष है?" आत्मा सब समान है, इसलिये एक प्राणी जिसे जान सकेगा उसे दूसरा भी जान सकेगा।

समाधान—सब प्राणी समान हैं तो जितना एक जान सकेगा उतना दूसरा जानसकेगा। जिसे एक जानेगा उसे ही दूसरा न जानेगा। सब प्राणी समान हैं, एक नहीं। आपके इस आक्षेपका समाधान पहिले विस्तारसे किया जा चुका है। (जैन जगत् वर्ष ९, अंक २०, पृ. १४; ७९ वाँ आक्षेप)।

आक्षेप (८७)—"सम्पूर्ण पदार्थ अनुमानके विषय नहीं हैं इसलिये सबमें प्रत्यक्षता कैसे सिद्ध हो सकती है?" आपकी यह चौथी बाधा भी ठीक नहीं है, क्योंकि सब पदार्थ एक अनुमानके विषय नहीं हैं परन्तु अनेक अनुमानके विषय तो हैं। जैसे एक नय, प्रमाणका अंश है परन्तु सब मिलकर उसकी बराबरी कर सकते हैं।

समाधान—अनेक अनुमान मिलकर भी सब पदार्थोंको नहीं जानसकते—यह बात युक्ति, अनुभव, तथा जैन शास्त्रोंसे भी सिद्ध है। अनुमान जिसज्ञान का टुकड़ा है जब उसीमें सबको जाननेकी शक्ति नहीं, तब अनुमान कैसे जानसकता है। अनुमान कितने भी एकत्रित हो जायँ परन्तु वे मतिश्रुतके विषयके बाहर तो नहीं पहुँचसकते। नय भी सब मिलकर सिर्फ श्रुतज्ञानकी जगह भर सकते हैं, न कि प्रमाण मात्रकी। नय श्रुत ज्ञानके विकल्प हैं।

सर्वज्ञसिद्धिके अनुमानमें जो चार बाधाएँ हैं वे इसप्रकार बराबर बनी हुई हैं। वे किसीप्रकार भी दूर नहीं की जा सकतीं।

साहित्य परिचय।

अध्यात्मतत्त्वालोक—लेखक मुनि श्री न्याय विजयजी न्यायतीर्थ, प्रकाशक सुरेन्द्र लीलाभाई जवेरी बी० ए० बड़ोदरा। मूल्य १॥)

इसका विषय नामसे प्रगट है। संस्कृत पद्योंमें है जिसका गुजराती अनुवाद भी मुनिजीने किया है। मुनिजीकी संस्कृतरचना सरल और प्रासाद-गुणयुक्त होती है। वह यहाँ भी है। छपाई सफाई आदि भी सुन्दर और आकर्षक है।

उत्थान—महावीर अंक। जैनप्रकाशके साथ कभी कभी उत्थानपत्रिका निकलती है। उसीका यह विशेषांक है। इसके सम्पादक हैं शान्तिलाल सेठ न्यायतीर्थ। अधिकांश लेख गुजरातीमें हैं, किन्तु सभी पठनीय हैं और अच्छे परिश्रमसे लिखे गये हैं। महावीर जीवनके विषयमें अच्छी सामग्री एकत्रितकी गई है। सम्पादकका परिश्रम प्रशंसनीय है। अंक तात्त्विक ग्रंथोंकी तरह संग्रहणीय हुआ है। इस अंकका मूल्य ॥।) है जोकि उचित है। जैन प्रकाश आफिस मेडोस्ट्रीट बम्बईसे मिल सकता है।

मेरी अजमेर-मुनिसम्मेलनयात्रा—संग्रहकर्ता मुनि फूलचन्दजी जैन धर्मोपदेष्टा। प्रकाशक लाला शिब्बूमल बख्शीरामलजी ओसवाल जैन मोतीबाज़ार मालेरकोटला (पंजाब) मूल्य २।)। अजमेरके स्थानकवासी साधुसम्मेलनकी धूम खूब ही मची थी। उसके लिये मुनिजीने यात्राकी थी। इस यात्रामें मुनिजीने जो व्याख्यान वगैरह दिये थे उनका इसमें संग्रह है। साथ ही मुनि सम्मेलनका कार्यनिष्ठा भी

है। स्थानकवासी बन्धुओंके पढ़ने लायक हैं।

The comparative Prakrit Grammar—लेखक—बी० जे० चौकसी बी०ए० (ऑनर्स), मूल्य ॥=) मुंबई यूनिवर्सिटीने अर्धमागधी या प्राकृत विषय प्रीवियससे एम० ए० तक रक्खा है। प्राकृत भाषामें महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, अर्धमागधी (श्वेताम्बर आगमोंकी भाषा), पैशाची चूलिका, पैशाची अपभ्रंशका समावेश किया जाता है। यद्यपि हेमचन्द्र व्याकरणमें इसविषयमें बहुत कुछ लिखा गया है, परन्तु संस्कृतमें होनेसे तथा पुरानी शैलीसे लिखा होनेसे विद्यार्थियोंको संतोष नहीं होता। इस लिये यह पुस्तक लिखीगई है, जो कि कालेजमें अर्धमागधी लेनेवालोंके लिये उपयोगी है।

आदर्श कहानियां—लेखिका—पंडिता चन्दाबाई, संपादिका, 'जैनमहिलादर्श'। प्रकाशक—मूलचन्द किसनदास कापड़िया, सूरत। मूल्य १=)

जैनमहिलादर्शमें ये कहानियाँ निकल चुकी हैं। कहानियाँ सरल और निरलंकार है। जो लोग सार्वजनिक साहित्य पढ़ते हैं, उनका मनोरंजन तो नहीं कर सकतीं, परन्तु साधारण शिक्षित स्त्रियोंके लिये कामकी हैं। साथ ही जो जरा पुराने खयाल की हैं, उनके लिये और भी ठीक हैं।

निम्नलिखित पुस्तकें भी मिलगई हैं:—

महावीर जैन विद्यालयकी अठारहवीं रिपोर्ट—श्वेताम्बर सम्प्रदायकी यह सबसे बड़ी शिक्षण संस्था न्यायतीर्थ ग्रेज्युएट निकालती है। यह इसकी बड़ी विशेषता है।

गोवालिया टेंक मुंबई से मिल सकती है।

तत्वज्ञान मंदिर त्रैमासिक—सम्पादक दिनकर सावलराम नाइक। तत्त्वज्ञान मंदिर, अमलनेर।

दशलक्षण धर्म शतक—लेखक ब्र० प्रेमसागर पञ्चरत्न, प्रकाशक मंगलकिरण जैन, मन्हीपुर प्रेस सहारनपुर। मूल्य -)

सज्जन सम्मेलन—ले०—हकीम बसन्तलालजी जैन पुलहा, झांसी। प्रकाशक—श्री वीरसेवामण्डल पैंची, पो० बीनागंज (गवालियर)। मूल्य सदुपयोग।

संक्षिप्त कार्य विवरण—जैनसेवामण्डल आगराका छट्ठा वार्षिक विवरण।

जैनेन्द्र—जैनेन्द्रगुरुकुल पंचकूलाका मासिक पत्र। सम्पादक श्यामलाल जैन बी०ए०, न्यायतीर्थ, विशारद। वार्षिक मूल्य १॥)

वार्षिक विवरण—जैन कन्याशिक्षालय, धर्मपुरा, देहलीका छब्बीसवाँ वार्षिक विवरण।

जैनझंडा गायन—ले०—कल्याणकुमार जैन, शशि। प्रकाशक—जौहरीमल सर्राफ, दरीबाकलाँ देहली। मूल्य)।

"पतितोद्धारक जैनधर्म"।

उक्त नामकी पुस्तकके लिये २००) रु० पारितोषिककी जो विज्ञप्ति निकाली गई थी, उसकी अवधि ३१ अक्टूबरकी बहुत निकट आरही है। खेद है कि अभी तक दो दिगम्बर विद्वानोंके सिवाय और किसीकी भी ओरसे उक्त पुस्तकके लिखे जाने की सूचना प्राप्त नहीं हुई है! ऐसी परमोपयोगी पुस्तकके लिखनेमें अनेक विद्वानोंके प्रवृत्त होनेकी आशा की जाती है और खास जरूरत भी है। सम्भव है कुछ दूसरे विद्वान भी लिख रहे हों और अपने उस इरादेकी सूचना न दे सके हों। अत: उनसे निवेदन है कि वे अब शीघ्र सूचित करनेकी कृपा करें। साथ ही इस विचारसे कि पुस्तक नियत शर्तोंके मुताबिक़ उत्तमसे उत्तम लिखी जाय, जो लिख रहे हैं उन्हें अपने लेखके संशोधन तथा परिमार्जनादिका यथेष्ट अवसर मिल सके और जो अभी तक भी लिखनेमें पूरी तौरसे प्रवृत्त न हुए हों—तय्यारी कर रहे हों—वे भी प्रवृत्त हो सकें, पुस्तक के लिये दो महीनेकी अवधि और बढ़ाई जाती है। अब उक्त पुस्तक ३१ दिसम्बर सन् १९३४ तक मेरे पास पहुँच जानी चाहिये।

—जुगलकिशोर मुख्तार, सरसावा (सहारनपुर)।

साम्प्रदायिकताका दिग्दर्शन

(१२)

लेखक—श्रीमान पं० सुखलालजी।
(अनुवादक—श्री० पं० जगदीशचंद्रजी एम० ए०)

(क) आवश्यकवृत्ति।

अपने भाइयोंको प्रव्रज्यामें दीक्षित हुआ जानकर भरत चक्रवर्ती खिन्न हुए। उन्होंने सोचा कि यदि मैं इन्हें वैभव प्रदान करूँ तो सम्भव है ये लोग उसे स्वीकार करें। यह सोचकर भरतने अपने भाइयों से अपने वैभवका भोग करनेके लिये प्रार्थना की। परन्तु जब उन मुनियोंने त्यक्त वैभवको स्वीकार न किया तो भरतने सोचा कि इन निःसंग भ्रातृमुनियोंको आहार देकर मैं धर्मानुष्ठान करूँ। भरतने नाना प्रकारके आहार से भरी हुई पाँचसौ गाड़ियाँ मँगाईं। परन्तु जब यतियोंको मालूम हुआ कि वह आहार उन लोगोंके ही निमित्तसे बनाया गया है तो यतियोंने उस सदोष आहारको लेना अस्वीकार किया। इसके बाद भरतने निर्दोष आहार के लिये यतियोंको आमन्त्रित किया, परन्तु जब भरतको भगवानसे मालूम हुआ कि राज अन्न भी यति लोग ग्रहण नहीं करते तो भरत बहुतही उद्विग्न हुए। उस समय भरत सोचने लगे, भगवानने मुझे हरेक तरहसे ही छोड़दिया है। उससमय भगवान् ऋषभदेवके पास आये हुए इन्द्रने भरतको खिन्न देखकर उनको शांत करनेकी चर्चा उठाई। अंतमें भरतने सोचा कि और कुछ नहीं तो मैं इन भिक्षुओंको अपने देशमें विचरनेकी अनुमति देकर ही कृतार्थ होऊँ। भरतने भिक्षुओंको अपने देशमें विचरनेकी अनुमति दी, और वहाँ आये हुए इन्द्रसे भरतने पूछा कि इस मँगाये हुए अन्न-जलका क्या करना चाहिये? इन्द्रने कहा कि इस अन्नजलको गुणश्रेष्ठ पुरुषोंको देकर उनका सत्कार करो। बहुत विचार करनेपर भरतको मालूम हुआ कि साधुकी अपेक्षा श्रावकही श्रेष्ठ हैं, क्योंकि श्रावक लोग त्यागधर्मी हैं, इसलिये वे गुणोंमें श्रेष्ठ हैं। यह विचार कर भरतने उस अन्नजलको श्रावकोंको ही देदिया। श्रावकोंको बुलाकर भरतने कहा कि आप लोग हमेशा मेराही अन्नजल ग्रहण करो, खेती आदि कार्य मत करो और सदा शास्त्राभ्यासमें परायण रहो; तथा भोजनके बाद मेरे घरके दरवाजे पर बैठकर कहो कि 'जितो भवान् वर्धते भयं तस्मान्मा हन मा हन'; अर्थात आप जीतगये हैं, भय बढ़ता है, अतएव अपने आत्माके गुणको मा हण मा हण। श्रावकोंने ऐसाही किया। इसप्रकार श्रावकोंके कहनेसे भरत को सूझा कि उसने राग आदि दोषोंको जीतलिया है और इन्हीं दोषोंसे भय बढ़ता है। इस आलोचना से भरतको वैराग्य प्राप्त हुआ।

भोजन करने वालोंकी संख्या बहुत बढ़नेपर जब रसोइये लोग इतने अधिक लोगोंकी रसोई न बना सके तब उन्होंने भरतसे विनय की कि महाराज, बहुतसे लोग भोजनके लिये आते हैं, परंतु कौन श्रावक है और कौन नहीं है, इसका कुछ पता नहीं लगता। भरतने रसोइयोंको हरेक आदमीसे पूछ लेनेकी आज्ञा की। रसोइये भोजनके लिये आनेवालोंसे पूछने लगे कि तुम कौन हो? यदि आगन्तुक पुरुष अपनेको श्रावक बतलाता तो वे लोग फिर प्रश्न करते थे कि श्रावकोंके कितने व्रत हैं? उत्तरमें आगन्तुक पुरुष कहता था कि श्रावकोंके व्रत (महाव्रत) नहीं होते हैं। हम लोग पाँच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रतोंका पालन करते हैं। रसोइयोंने बारह व्रतके पालन करनेवाले श्रावकोंकी बात भरत से कही। भरतने छह महीने तक इन श्रावकोंकी परीक्षा ली और जो लोग श्रावक मालूम हुए, उनपर काकिणीरत्न से चिन्ह बनाकर उन्हें ब्राह्मण घोषित किया। ये लोग अपने लड़कोंको दीक्षा देनेके लिये साधुओंको देते और जो दीक्षित न होते, वे श्रावक ही रहते थे। भरतकी देखादेखी और लोग भी इन श्रावकोंको भोजन कराने लगे। इन श्रावकोंके स्वाध्यायके लिये भरतने अर्हत्स्तुति तथा मुनि और

श्रावकोंकेआचार प्ररूपण करनेवाले वेदोंकी रचना की। इन श्रावकोंकी काकिणीरत्नकी रेखाही यज्ञोपवीतके रूपमें बदली और धीरेधीरे ये लोग माहन के बदले ब्राह्मण कहे जानेलगे। ये श्रावकही मूल ब्राह्मण हैं तथा यह मर्यादा भरतके राज्यके समय स्थापित की गई थी।

इसके पश्चात् भरतका पुत्र आदित्ययश हुआ। उसके समय काकिणीरत्न उपलब्ध नहीं था, इसलिये उसने सोनेका यज्ञोपवीत चलाया। इसके बाद महायश वगैरह राजाओंने चाँदी और विचित्र पत्र सूत्र के जनेऊ चलाये। यह ब्राह्मणधर्म आठ पीढ़ियों तक बराबर चलता रहा। भरतके द्वारा निर्माण की हुई ब्राह्मणोंकी सृष्टि और ब्राह्मणोंके लिये रचेहुए आर्य वेद सुविधि नामक नौवें तीर्थंकर तक चलते रहे। इसके बाद सुलस, याज्ञवल्क्य वगैरहने अनार्य वेदों की रचना की। (पृ० १५६ से १५८)

यही बात विस्तारके साथ अलंकारिक रूपमें त्रिषष्टिशलाका-पुरुषचरित्रमें कही गई है। देखो गुजराती अनुवाद पृ० २२३ से २२७।

(ख) त्रिषष्टि-चरित्र।

ब्राह्मणत्वका पतन—श्रीसुविधि स्वामीके निर्वाण जानेके कुछ समय बाद कालके दोषसे साधुओंका उच्छेद होगया। उस समय जैसे मार्गभ्रष्ट बटोही दूसरे मार्ग जाननेवाले मुसाफिरोंसे रास्ता पूछता है, वैसे ही धर्मसे अज्ञ लोग स्थविर श्रावकोंसे धर्म पूछने लगे। श्रावकोंने अपने मनके अनुसार धर्मका उपदेश दिया। इस प्रकार स्थविर श्रावक अपनी पूजाके कारण द्रव्यादिमें लुब्ध होकर नये कृत्रिम शास्त्रोंकी रचना करने लगे और इन शास्त्रोंमें इन लोगोंने विविध प्रकारके महान् फल देनेवाले दानों का वर्णन किया। स्थविर श्रावक लोगोंका लोभ प्रतिदिन बढ़ताही गया। इन लोगोंने इस लोक और परलोकमें निश्चित् महान् फलके देनेवाले कन्यादान, पृथ्वीदान, लोहदान, तिलदान, कपासदान, गौदान, सुवर्णदान, रौप्यदान, गृहदान, अश्वदान, गजदान और शय्यादान वगैरह विविध दानोंको मुख्यप्रकार से गिनाया। साथही बड़ी बड़ी आकांक्षा रखनेवाले और दुष्ट आशयवाले इन स्थविर श्रावकोंने यह भी घोषित किया कि सब प्रकारके दान देनेके लिये वे लोगही योग्य पात्र हैं और बाक़ी सब लोग अपात्र हैं। इस प्रकार स्थविरश्रावक, लोगोंको ठगते हुएभी प्रजाके गुरु समझे जाने लगे। जैसे बिना वृक्षके देशोंमें लोग अरंडके वृक्षकी ही वेदिका बनाते हैं उसी प्रकार वे लोग भी यहाँ पूजे जाने लगे।

इसप्रकार भरत क्षेत्रमें श्री शांतिस्वामी के तीर्थ-प्रवर्तनके समयतक सबप्रकारसे तीर्थोच्छेद रहा। इसलिये उस समय जैसे रातको उल्लूकाही अखंड राज्य रहता है, उसी तरह भरत क्षेत्र में इन कनिष्ठ ब्राह्मणोंने एकछत्र राज्य किया। इसके बाद छह तीर्थंकरोंके बीचमें अर्थात् शांतिनाथ तीर्थंकरके अंतर तक भीतर भीतर मिथ्यात्व का प्रवर्तन होतागया और तीर्थके उच्छेद होनेसे उससमय मिथ्यादृष्टियों का खूब ही प्रचार बढ़ा।

(त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, गुजराती भाषांतर पृ० ७८)

(ग) पउमचरिय।

श्री ऋषभदेवने गाँव, नगर आदि बसाये, इनकी रक्षा के लिये उन्होंने एक वर्ग नियुक्त किया जो क्षत्रियके नामसे प्रसिद्ध हुआ। व्यापार, खेती, पशुपालन आदि करने वाला वर्ग वैश्य तथा दूसरों की आज्ञानुसार काम करने वालों, नीच कर्मोंमें रत वर्ग शूद्र नामसे कहा गया। शूद्रके अनेक भेद थे।

(तृतीय उ० गा० ११२ से ११६ पृ० १२)

मगधके राजा श्रेणिकने गौतमसे कहा कि मैंने तीनवर्णोंकी उत्पत्ति सुनी, अब आप ब्राह्मण वर्णकी उत्पत्ति कहिये। गौतमने कहा कि जब भरत चक्रवर्तीका मँगाया हुआ आहार त्यागी श्रमणोंने अपने निमित्तसे बना हुआ जानकर स्वीकार नहीं किया, उससमय भरतने व्रतधारी गृहस्थोंको दान देनेका विचार करके श्रावकोंको निमंत्रित किया। और

व्रतधारी श्रावक आँगनमें पड़ी हुई सजीव वनस्पति के ऊपरसे न चलकर राजमहलके भीतर नहीं जाते थे, उन्हें भरतने व्रतधारी श्रावक समझ कर उनके गलेमें यज्ञोपवीत पहनाया तथा इन सब श्रावकोंका दानमानसे बहुत सत्कार किया। इस आदर सत्कार से श्रावक लोग बहुत घमंडी होगये। एकसमय मति सागर नामके मंत्रीने भरतचक्रवर्तीसे सभामें कहा कि हे राजन, जैसा जिनेश्वर ऋषभदेवने कहा है वैसा मैं कहता हूँ, आप एकचित्त होकर सुनिये। हे नराधिप, आपने जो पहिले व्रतधारी श्रावकोंका सत्कार किया था, वे सब महावीरके निर्वाण जानेके बाद कुतीर्थके प्रवर्तक होंगे। वे लोग झूठे वचनोंसे वेदकी रचना करके उसके द्वारा यज्ञमें पशुओंका वध करेंगे और अनेक आरंभ परिग्रहमें लिप्त होकर स्वयं मूर्ख बनकर लोगोंको मोहमें डालेंगे।

यह सुनकर भरत कुपित हुए और उन्होंने लोगोंको अभिमानी श्रावकोंको शहरके बाहर निकाल देनेको कहा। लोगोंने चिढ़कर इन भावी ब्राह्मणों को पत्थर वगैरहसे मारना शुरू करदिया। बेचारे श्रावक लोग ऋषभदेवकी शरण गये। श्री ऋषभदेवने भरतको रोक कर कहा कि 'मा हण', अर्थात् इन्हें मत मारो। उस समयसे ये लोग ब्राह्मण कहेजाने लगे।

जो लोग सबसे पहले प्रव्रजित होकर पीछे प्रव्रज्यासे भ्रष्ट होगये थे, वे लोगही तापस और पाखंडी बने। इन्हीं लोगोंके भृगु, अंगीरा वगैरह शिष्य प्रशिष्योंने कुशास्त्रोंकी रचना करके लोगोंको मोहमें डालदिया।

(चतुर्थ स० गा० ६८ से ८८ पृ० १७)

(ख) पद्मपुराण पृ० ३८ तथा पृ० ४६ पर पउमचरियके कथनको ही विशद करके लिखा है। उसमें इतना अधिक है कि भ्रष्ट वल्कलधारी तापसों में से ही परिव्राजक-दण्डिमत, सांख्य-योगमत निकले।

जातिमदकी क्रूरता।

जैनधर्ममें मदको बड़ा भारी दुर्गुण माना है। मद से केवल चारित्रसे ही पतन नहीं होता, परन्तु सम्यक्त्वसे भी पतन होता है। सम्यक्त्वसे पतन अर्थात् भाव जैनत्वसे पतन। इसका अर्थ यह हुआ कि जहाँ मद है, वहाँ जैनत्व नहीं है। इसीलिये जैनसाहित्य जातिमदके त्यागके उपदेशोंसे भरा हुआ है।

दुर्भाग्यसे जैनसमाजको ऐसे दिन देखना पड़े जब उसे अपने जीवनको टिकाये रखनेके लिये बहुत से पापोंको अपनाना पड़ा। उनमें से जातिवादका पाप एक बड़ा पाप है। शताब्दियों तक इस पापको अपनाये रहनेसे जैनसमाजके लिये भी यह स्वाभाविकसा हो गया है। परन्तु कुछ वर्षोंसे ऐसी परिस्थिति पैदा होरही है कि अगर जैनसमाज चाहे तो इस विकारको दूर कर सकती है। एक दिन महात्मा महावीरने शूद्रोंका उद्धार करके जो अजरामर नाम कमाया था, उसकी कीर्ति आज फिर प्राप्तकी जासकती है।

महात्मा गांधीजीने इस कार्यके लिये बड़ी शक्ति लगाई है और इस आन्दोलनको देशव्यापी आन्दोलन बना दिया है।

परन्तु हिन्दूसमाजकी मूढ़ता अनन्त मालूम होती है। इस मूढ़ताके वश होकर उसने अपने हजारों भाइयोंको सदाके लिये अपना विरोधी बना लिया। जो भाई एक दिन हिन्दुत्वका अभिमान रखते थे, वे ही आजकल मुसलमान बनकर हिन्दुत्वको घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। जो भारत सन्तान थे, वे ही अपने को अरब और तुर्कीके समझने लगे। जातिभेदका इस प्रकार प्रत्यक्ष फल देखते हुए भी अभी इनकी आँखे नहीं खुली हैं, बल्कि कहीं कहींके लोग तो मूढ़ता का ऐसा नग्नतांडव करते हैं, जातिमदकी क्रूरताका ऐसा भयंकर प्रदर्शन करते हैं कि उसके समाचार पढ़कर हृदय कांप उठता है और इन मूढ़ धर्मद्रोहियों की नीचताको देखकर आत्मीयताके नाते सिर लज्जा से झुक जाता है।

अछूतोद्धारकी चर्चा नगरोंमें कुछ होती रहती है और खास खास नगरोंमें थोड़ा बहुत काम भी हुआ है। परन्तु भारतवर्ष नगरोंमें नहीं बसता; वह बसता है, उन गाँवोंमें जहां व्याख्यानके रंगमंचकी तीव्रसे तीव्र गर्जना भी नहीं पहुँचती। परन्तु उसका विपरीत रूप पहुँचता है कि हरिजन हिन्दूमंदिरोंपर आक्रमण कर रहे हैं। फल इसका यह होता है कि मूढ़ हिन्दूजनता उनपर और भी अधिक अत्याचार करने लगती है।

कुछ दिन हुए, जब दिल्लीका समाचार था कि उधरके कुछ गाँवोंमें हरिजनोंको पक्के मकान बनवाने की भी इजाजत नहीं है। क्योंकि अगर वे बेचारे पक्के मकानोंमें रह लेंगे तो हिन्दुओंका अपमान हो जायगा। शुद्धाशुद्धिके किस शैतानी रूप पर यह जातिमद खड़ा हुआ है, इसका उत्तर असंभव है।

बंगालके एक गांवसे जो समाचार प्रगट हुआ है, वह तो और भी नीचतापूर्ण और घृणास्पद है। एक हरिजनने कुछ गुस्ताखी की। वहाँकी पुलिस में कट्टर हिन्दू थे। वे उसे थानेमें लेगये और दो भंगियोंको बुलाकर उसके मुँहपर भिष्टा पोता गया और ऐसे ही मुँहसे वह नगर भरमें घुमाया गया। धर्मके नामपर बीभत्सताकी हद होगई। इस प्रकारकी राक्षसी मनोवृत्तिका परिचय कोई देसकता है और वह हिन्दू कहलाता है, इससे बढ़कर हिन्दुत्वको लजाने वाली बात और क्या होगी!

एक तीसरा समाचार भी बड़ा विचित्र है, जिसमें जातिमद क्रूरता, और मूढ़ताका ऐसा विचित्र सम्मिश्रण हुआ है कि जिसे देखकर आँखोंसे आग बरसने लगती है। यह घटना मध्यप्रान्तके एक गाँवकी है।

एक स्त्री अकस्मात् कुएमें गिर पड़ी। यह बात कुछ हरिजनोंको मालूम हुई। वे तुरंत दौड़े हुए आये और उस स्त्रीको बचानेके लिये कुएमें उतरने लगे। परन्तु हरिजनोंके कुएमें उतरनेसे तो सनातन धर्म न मालूम किस रसातलमें डूब जाता है। इसलिये सनातनियोंने हरिजनोंको कुएमें उतरनेसे रोक दिया, परन्तु धर्मवीरताका ढोंग करनेवाले इन मर्दोंसे इतना न बना कि स्वयं कोई उतरकर उस स्त्रीको बचाले। बेचारीने एक दो गोते खाए, एक दो बार चिल्लाई और फिर पानीके गर्भमें सदाके लिये सो गई। इस प्रकार धर्मके नाम पर इन नर हत्यारोंने न तो स्वयं उसकी रक्षाकी न हरिजनोंको करने दी।

ये तीन घटनाएं तो ऐसी हैं जो किसी तरह समाचारपत्रोंके पन्नों पर आगई हैं। परन्तु गाँवोंमें प्रतिदिन ऐसी सैकड़ों घटनाएँ होती रहती हैं, जिनमें मनुष्यताकी दिन दहाड़े हत्याकी जाती है।

हमारी यह कुकीर्ति जो कोई सुनेगा वही हमारे नामपर थूकेगा और विदेशी तो खुली तरहसे कहेंगे कि जो लोग ऐसे अत्याचारी हैं उनको कोई अधिकार क्यों मिलना चाहिये। हरिजन भी यही सोचेंगे कि हमें ऐसे धर्म और ऐसे समाजमें क्यों रहना चाहिये जहाँ हम पशुओंसे भी नीचे समझे जाते हों।

यद्यपि जैनियोंकी संख्या बहुत कम है फिर भी आज जैनसमाज थोड़ा बहुत प्रभाव रखती ही है; इधर समय अनुकूल है, इसलिये अगर जैनसमाज चाहे तो वह जातिमदकी क्रूरताको नष्ट करनेके लिये ऐसा प्रयत्न कर सकती है कि उसका नाम अमर हो जाय और जगतका भी कल्याण हो।

सत्यसमाजपर लोकमत।

श्री. सेठ ताराचन्दजी नवलचन्दजी जवेरीकी सम्मति

(?)

सत्यसमाजकी स्कीम मैंने पढ़ी है। जैनधर्मका मर्म मैं पहिलेसे ही पढ़ रहा हूँ। उसको पढ़नेसे जो मर्म समझमें आता है वह किसी भी धर्मका मर्म कहा जासकता है। और उसीका फल यह सत्य-समाज है। यह स्कीम बहुत अच्छी, उपयोगी तथा आवश्यक है। जिसप्रकार जैनधर्मकी मीमांसा आपनेकी, उसीप्रकार अन्य धर्मोंकी मीमांसाकी भी आवश्यकता है। जिससे सब धर्म इस ढंगसे एक दूसरेके निकट आजावें कि उनमें विरोध न रहे तथा साम्प्रदायिकतासे जो आत्मका तथा मनुष्य मात्रका

नाश होरहा है वह रुके। सत्यसमाजकी स्कीम उदार तथा व्यापक है। इसमें सभी तरहके सत्यप्रेमी भाग लेसकते हैं। जो अपने सम्प्रदायमें रहना चाहें वे भी और जो न रहना चाहें वे भी। परन्तु उन सबको सत्यका पुजारी होना चाहिये। ऐसी स्कीम की आवश्यकता थी। इससे अवश्यही मनुष्य जाति का लाभ होगा। यद्यपि कठिनाई है, परन्तु सफलता अवश्य होगी। मेरी इसमें पूर्ण महानुभूति है।

(२)

श्री० सेठ सुगनचन्दजी लुणावत, जमीदार और बैंकर, धामनगाँव (बरार) से लिखते हैं—

"सत्यसमाजके उद्देश्य मालूम हुए और उन्हीं उद्देशोंको लेकर सत्याश्रमकी स्थापना कीजायगी यह जानकर आनन्द हुआ। मुझे यह सब स्कीम पसन्द है लेकिन अभी मैं उसका अनुमोदक बनता हूँ। मेरी पूर्ण सहानुभूति है। मैं यथाशक्ति सहायता करता रहूँगा और शीघ्रही पाक्षिक सदस्य बननेका प्रयत्न करूँगा।"

(३)

श्रीमान् सेठ भीकचन्द चुन्नीलालजी कोटेचा बार्शी टाउन (सोलापुर) से लिखते हैं—

"सत्यसमाजकी स्कीम पढ़कर जो मुझे आनन्द हुआ वह आनंद मेरे जीवनमें कभी नहीं हुआ। आपने अपनी स्कीममें सचमुच निःपक्षता और वैज्ञानिक सत्यताकी कसौटी बतलाई है। हम आपके कार्यमें सहमत होकर तन मन और शक्ति अनुसार धन अर्पण करेंगे। बार्शी शाखा खोलनेके लिये तैयार हूँ। आज्ञा मुजब सेवा करता रहूँगा......। आपके विचार बहुत उच्च हैं। जिस दिन ये विचार पूर्ण होंगे उस दिन को ही भाग्यका दिन गिनूँगा। इतने निःपक्षताके विचार आपके सिवाय और जगह मिलना मुश्किल है......।"

(४)

श्री० ब्र० श्री चैतन्यजी फलौदीसे लिखते हैं—

"आपका सत्यसमाजका लेख उत्सुकता और आल्हादानुभवके साथ पढ़ा। मैं इन विचारोंसे सहमत हूँ। 'एक उचित अनुरोध' शीर्षक लेख भी पढ़ा। आप आश्रम खोलें। मैं भी इसमें यथा योग्य लाभ देना चाहता हूँ और उसकी सफलताके लिये यत्न करूँगा।.... अनेक युवक लोग आजके रूढ़ि जन्य धर्मसे विरक्त हो चुके हैं उन्हें सत्यमार्गकी जरूरत है। इसकी सफलताके और क्या क्या साधन आवश्यक हैं इसका विचार आपने कियाही होगा।"

(५-६)

श्रीमान् बाबू राजमलजी उमेदचन्दजी बलदौटा वकील, पूना और कनकमलजी लालचंदजी मुनोत, पूना, लिखते हैं—

"जैनजगत् मिला। सत्यसमाज पर आपके द्वारा उठाई हुई कलमको अवगत किया। आपकी योजना हमें बहुत पसन्द आई। हमारी उसमें पूर्ण सहानुभूति है। उसकी ग्राम्यशाखा भी हम यहाँ खोलनेकी योजना करेंगे। सचमुच आप समाज के एक असामान्य नररत्न हैं। आपकी विशाल बुद्धि की, गम्भीर ज्ञानकी भूरि भूरि प्रशंसा किये बिना हम नहीं रह सकते ।"

(७)

श्रीयुत सागरमलजी जैन बैरसिया (भोपाल) से लिखते हैं—

मैंने सत्यसमाजके १० शिक्षा नियमोंको पढ़ा। मुझे वे पसन्द ही नहीं किन्तु बहुत हृदयग्राही होकर मार्मिक सत्यरूप मालूम हुए। मैं इस बातको कई दिनसे सोच रहा हूँ कि साम्प्रदायिक और जातीय कट्टरता मनुष्यकी उन्नति तथा सुख शान्तिके दुश्मन के समान हैं। सत्यधर्म वही है जो सत्यके पास होते हुए ज्यादःसे ज्यादः उपकार कर सकता हो। सत्यसमाजकी नीति इस विषयमें सर्वोत्तम है। इसलिये मैं अपने को उस समाजका सदस्य (दि० जैन पाक्षिक) बनाता हूँ। मैं तन मनसे उसके उद्देश्यों का पालन करूँगा और उसकी उन्नतिमें सहायक होकर प्रयत्न करूँगा।

विविध विषय।

लोहड़साजन प्रश्नपर एक झलक—आजसे करीब सवासौ वर्ष पहिलेकी बात है जब अजमेरमें केवल एक धड़ा था—जो आज बड़े धड़ेके नामसे प्रख्यात है। इस समय श्री० तेजसी पदमसीके नामसे सुप्रसिद्ध ढड्ढा(बीसा ओसवाल, श्वेताम्बर जैन)परिवारकी फर्म चलती थी। किसी उचित अवसर पर ढड्ढा परिवारने छओं न्यात (ब्राह्मण व वैश्य) को जिमानेकी इच्छा प्रकटकी। उस जमानेमें जैनियोंकीखूब प्रतिष्ठा थी। छओं न्यातकी परवानगी देनेके लिये सभी जैन अजैन पंच एकत्रित हुए। घसेटीके अग्रवाल तथा कतिपय सरावगी छओं न्यातकी परवानगी नहीं देना चाहते थे, किन्तु कुछ सरावगी सर्राफ जिनका ढड्ढोंसे विशेष सम्पर्क रहता था, उनकी अवहेलना कर न्यातमें जीम आये। इसपर सरावगी पंचायत ने करीब ४० व्यक्तियोंको जातिवहिष्कृत कर उनका केवल रोटीबेटी व्यवहारही बन्द नहीं किया किन्तु मंदिर व्यवहार भी बन्दकर दिया। पारस्परिक द्वेष यहां तक बढ़ा कि अगर उक्त ४० परिवारवालोंमेंसे कोई व्यक्ति मन्दिरकी बाहिरी सीढ़ी पर भी पैर रखदेता तो सीढ़ी तुरन्त धुलाई जाती। बहुत दिनों तक इनके साथ यह अत्याचार चलता रहा। आखिर जब ये लोग बहुत तंग आगये तो इनमेंसे कुछ आदमी नागौर गादीके भट्टारकजीके पास गये और उनकी सहायतासे यहां अपना अलग मन्दिर स्थापित किया। सरावगी मोहल्लेमें इनको मंदिर बनवानेके लिये भी जमीन नहीं दीगई, अत इन्होंने अजैन ब्राह्मणों से जमीन लेकर उनके मोहल्लेमें मंदिर बनवाया। इसके बाद भी कुछ अर्से तक झगड़े चलते रहे किंतु नागौर गादीके भट्टारकका मुकाबिले पर होनेके कारण यहां वालोंकी कुछ न चल सकी और धीरे धीरे सब भेद भाव दूर होगया। अब उनके साथ सब व्यवहार पूर्ववत चालू हैं उक्त धड़ा आजभी छोटे धड़ेके नामसे पुकारा जाता है यद्यपि उसकी सदस्य संख्या तेरहपंथी धड़ेके अतिरिक्त और धड़ों मेंसे प्रत्येकसे ज्यादा है। अगर इस धड़ेको नागौर गादीके भट्टारककी सहायता न मिली होती तो आज उनकी भी शायद वही दशा होती जो लोहड़साजनों की हो रही है।

लोहड़ शब्दका अर्थ "छोटा" है तथा लोहड़साजनोंका विभाजन भी ऐसे ही किसी अवसर पर किसी न्यातमें जीमनेके कारण हुआ है। सैकड़ों वर्षों से इन पर अत्याचार हो रहे हैं। बड़साजन कहलाने वालोंका यह कर्तव्य है कि वे शीघ्रातिशीघ्र इस अत्याचारको दूर करें तथा अपने बिछुड़े भाइयोंको गले लगावें। इसीमें उनकी बुद्धिमानी है।—एक जानकार।

कराचीमें जैनमुनिका अहिंसा-प्रचार तथा हरिजन-सुधार सुप्रसिद्ध मुनि श्रीमान फूलचंदजी जैन, धर्मोपदेशार्थ सिंधप्रान्तमें, सिंध जीवदयामंडल खुलवाकर जैनधर्मका प्रचार बड़े जोरोंसे प्रारम्भ कर दिया है। इस मंडलके प्रधान लार्ड मेयर मि० जमशेदजी भाई नसरवानजी चुने गए हैं। अब तक सैकड़ों सिंधी मुसलमान भाई मांस-मदिरा-सेवनका त्याग कर चुके हैं। गत २० सितम्बरको श्री मुनि महाराज भील सेवामंडलमें पहुँचे। वहाँ आपने रामायण द्वारा अहिंसाका प्रवचन किया। इसके अनन्तर मूलचन्द बालक भाईकी मण्डल ने सिगरेट—मदिरानिषेध पर सजीव ड्रामे कर दिखाए जिसका भील भाइयों पर अच्छा प्रभाव पड़ा। वहाँ महाराज श्रीने अपनी भिक्षाको झोली फैलाकर तीन भिक्षाएँ भी माँगीं। वे थीं—मदिरात्याग, कन्या-विक्रयत्याग और पशुबलित्याग। आशा है महाराज के शुभ प्रयत्नसे ३००० भील भाइयोंकी उपरोक्त तीनों कुटेवें छूट जावेंगीं।

उसी दिन महाराज श्रीने ५ बजे नारायणपुर नामक हरिजनोंके मह्ल्लेमें जाकर हरिजन-सुधारपर महत्वशाली व्याख्यान दिया, जिसके परिणामस्वरूप लगभग ६० हरिजन बन्धुओंने मदिरा, मांससेवन तथा पशुबलिका त्यागकर दिया। उसी अवसरपर हरिजन पुस्तकालयका निरीक्षण करते समय बेचरदास भाई, नत्थूभाई वाणिया तथा चमनदास सिंधीने भी महाराज श्रीके समक्ष मांस त्यागकर दिया।

—देवचन्द नेणशी संघवी।

Printed by Pt. Radhaballabh Sharma at the Ajmer Printing Works Ajmer.

तार का पता—"JAINJAGAT" Ajmer, Reg: No. N. 352

ता० १ नवम्बर सन् १९३४

वर्ष ९. अंक २४

जैनसमाज का एकमात्र स्वतन्त्र पाक्षिकपत्र।

वार्षिक मूल्य ३) रुपया मात्र।

जैन जगत्

विद्यार्थियों व संस्थाओं से २॥) मात्र।

(प्रत्येक अंग्रेजी महीने की पहली और सोलहवीं तारीखको प्रकाशित होता है)

"पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनम् यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः"॥—श्री हरिभद्रसूरि।

सम्पादक—सा०र० दरबारीलाल न्यायतीर्थ, जुबिलीबाग तारदेव, बम्बई।
प्रकाशक—फतहचंद सेठी, अजमेर।

प्राप्ति स्वीकार।

श्रीमान् सेठ ताराचन्दजी नवलचंदजी जवेरी बम्बईने जैनजगत्की सहायतार्थ १००) प्रदानकर गुणग्राहकताका परिचय दिया है, तथा संचालकों के उत्साहको बढ़ाया है। इसके लिये संचालकगण उनके अत्यन्त आभारी हैं। —प्रकाशक।

क्षमा प्रार्थना—करीब तीन हफ्ते प्रवासमें रहने तथा बादमें लौटकर आनेपर स्वयं तथा परिवारवालों के बीमार हो जानेके कारण यह अंक इतनी देरीसे निकल रहा है। इसके लिये पाठकोंसे क्षमाप्रार्थी हूँ। वर्ष समाप्त होनेके कारण ता० १६ नवम्बर का अंक बन्द रहेगा और दसवें वर्षका पहिला अंक ता० १ दिसम्बरको प्रकाशित होगा। —प्रकाशक।

समाधान करें—जन्मका सौर (सूतक) और मृत्युका सूतक जो आजकल जैन समाज में चालू है वह किस ग्रन्थके आधारसे है, विद्वान सप्रमाण उत्तर देवें। प्रमाणमें भाषा ग्रन्थकी जरूरत नहीं। सिद्धांत ग्रन्थका नाम मय कर्ताके होना चाहिए। उत्तर जैन पत्रों द्वारा दीजिए।

—मगनलाल बाकलीवाल, मन्त्री श्री दिगम्बर जैन विद्या प्रचारिणी सभा बेलनगंज आगरा।

विविध विषय।

मुनीन्द्रसागर मण्डली—की सदस्या माणिकबाई उर्फ जिनमतीबाईके ता० २७ अक्टूबरको दमोह में पुत्री पैदा हुई है। माणिकबाई करीब ८-१० साल से विधवा है। पिछले तीन चार वर्षसे तो वह मुनीन्द्रसागर संघके साथमें ही रह रही थी। गर्भवती अवस्थामें पुलिसके पूछने पर उसने कहा कि मेरे पतिको मरे हुए सात साल हुए हैं। मालूम हुआ है कि बादमें उसने यह स्वीकार किया कि मुनीन्द्रसागर मण्डलीके अमुक व्यक्तिके सम्पर्कसे वह गर्भवती हुई थी।

प्रतापगढ़ नरेशने बलिदान बन्द किया—प्रतापगढ़ (मालवा) के महाराजाने अपने राज्यमें बलिदान बन्दकर यह आज्ञा घोषित कर दी है कि राज्यकी तरफसे जहाँ जहाँ जीवोंका बलिदान होता रहा है वहाँ बलिके बजाय गुड़भोग उतनी ही कीमतका चढ़ाया जावे और बीजमालामें गुड़की लापसी चढ़ाई जावे।

एक जैन आई० सी० एस०—दिगम्बर जैन महासभाके संस्थापक श्रीमान् स्वर्गीय डिप्टी चम्पत-

रायजीके पौत्र तथा महासभाके भूतपूर्व कोषाध्यक्ष श्री० स्वर्गीय बा० नवलकिशोरजी वकीलके पुत्र श्री० लक्ष्मीचन्द्रजी जैन विलायतमें आई० सी० एस० परीक्षामें उत्तीर्ण हो ता० १२ नवम्बरको भारत पधारे हैं। आप अलीगढ़में जोइन्ट मजिस्ट्रेटके पद पर नियुक्त हुए हैं। बधाई,

बधाई—अजमेर-मेरवाड़ाकी ओर से श्रीमान सेठ भागचन्दजी सोनी बहुमतसे लैजिस्लेटिव असैम्बलीके सदस्य चुने गये हैं। इस सफलताके उपलक्षमें हम उन्हें बधाई देते हैं। देश व प्रान्तकी सेवा करनेका सेठ साहबको यह अनुपम अवसर प्राप्त हुवा है। हमारी कामना है कि सेठ साहब इस पदके योग्य साहस, गम्भीरता, व बुद्धिमत्ता प्रदर्शित कर समस्त जनताको बिना किसी भेदभावके, लाभ पहुँचानेका प्रयत्न करें, जिससे जैनजातिका गौरव बढ़े तथा सभ्य समाजके सम्मुख उनके समर्थकोंका व प्रान्तका मुख उज्ज्वल होसके।

अमरावतीमें सहभोज—ता० ८ अक्टूबरको श्री० प्रोफ़ेसर हीरालालजी जैनने अमरावतीके हरेक जैन जातिके लोगोंको निमंत्रण देकर सहभोजन कराया। १२जातियोंके जैनभाई भोजमें सम्मिलित हुए थे। दस्सा बीसा आदिका कोई भेदभाव नहीं रखा गया था।

व्यभिचारी साधु—पर्युषणके महान पवित्र दिन संवत्सरीके दिन ब्राह्मणवाड़में श्वेताम्बर मुनि पुण्यविजय एक कमरेमें एक स्त्रीके साथ व्यभिचार करते हुए पकड़ा गया। लोगोंने उसे खूब पीटा और मुनिवेष छुड़ानेका प्रयत्न किया किन्तु श्री शांतिविजयजी ने उसे बचा लिया।

पाशविकताकी पराकाष्ठा—जोधपुर में रमजानी नामक एक मुसलमान एक सुनारकी लड़कीको फुसलाकर सोईजीकी मसजिदके पासवाले अखाड़ेकी कोठरीमें ले गया और उसके साथ दुष्कर्म किया। उसके बाद उसके जेवर उतार उसके शरीर पर तेजाब छिड़ककर नृशंसतापूर्वक मार डाला और उस पर पत्थर रखकर चुपचाप चल दिया! उक्त नरपिशाच पकड़ लिया गया है। लड़कीके आभूषण भी उसके घरसे बरामद हुए बताते हैं।

बाल दीक्षाएँ—जिस तरह गृहस्थ अपना वंश चलानेके लिये पुत्रके लिये लालायित रहते हैं, साधु लोग अपनी परम्परा चलानेके लिये चेले मूँडनकी फिकरमें रहते हैं। किसी किसी साधुमें तो यह पुत्रैषणा इतनी तीव्र मात्रामें हो जाती है कि वह योग्य अयोग्यका कुछ विचार नहीं करता और चाहे जिस ऐरे गैरे व्यक्तिको साधु बना डालता है। दिगम्बर जैनसमाजमें ऐसे कई व्यक्ति जो गृहस्थ अवस्थामें रोटियोंके लिये मोहताज थे, आज मुनि, ऐलक, क्षुल्लक आदि बने फिरते हैं, और केवल इस पदके कारण खूब मौजमें जिन्दगी बिता रहे हैं। श्वेताम्बर समाजमें इस रोगने एक दूसरा किन्तु अधिक भयङ्कर रूप धारण कर रखा है। वहाँ छोटे छोटे बालकोंको तथा उन पुत्रोंको भी जो अपनी स्त्री तथा वृद्ध माता पिताके एक मात्र आधार हैं, फुसलाकर दीक्षा देदी जाती है। श्वेताम्बर समाजमें इस कारण कई बार मारपीट तथा मुक़दमे बाज़ी हो चुकी है। अभी जोधपुरमें तेरहपंथी श्वेताम्बर आम्नायके आचार्य श्री कालूरामजीने सात सात वर्षकी अवस्थाके बालकोंको दीक्षा देकर मुनि बनाया है। कुछ सुधारप्रिय व्यक्तियोंने इसकी निन्दाकी तथा हर प्रकारसे इस लीलाको रोकनेका प्रयत्न किया, किन्तु भक्तलोगोंके आगे उनकी कुछ न चल सकी।

गुजराती ओसवाल जैनसमाजमें प्रथम विधवाविवाह

—ता० ११ अक्टूबरको नागपुरमें श्री० सेठ पूनमचंदजी गोंकाकी अध्यक्षतामें श्रीमती कमलादेवी शाहका पुनर्विवाह श्री दयालजी भाई महेताके साथ अत्यन्त समारोहके साथ सम्पन्न हुआ। वर व वधू दोनों गुजराती ओसवाल जैनजातिके हैं। विवाहमें गुजराती, परवार, सैतवाल खंडेलवाल, महेश्वरी, अग्रवाल आदि जातियोंके प्रमुख व्यक्तियोंने पूर्ण सहयोग दिया। —प्रकाशक।

जैनधर्म का मर्म ।

(५२)

पूर्ण और अपूर्ण चारित्र ।

चारित्रको पांच भागोंमें विभक्त करके जो उसका वर्णन किया गया है, वह सामान्य दृष्टिसे है। उसमें पूर्ण अपूर्णका विचार नहीं किया गया है । अथवा उसे पूर्ण चारित्रका वर्णन मानना चाहिये । और आगे बताई जानेवाली कसौटियोंसे पूर्ण अपूर्णकी कल्पना करना चाहिये ।

चारित्रकी पूर्णता और अपूर्णताका जैसा विचार आजकल किया जाता है या जैनशास्त्रोंमें किया गया है, वह एक देशी है। आजकल गृहस्थके व्रत को अणुव्रत* और मुनिके व्रतको महाव्रत कहते हैं। परन्तु सैद्धान्तिक दृष्टिसे यह परिभाषा ठीक नहीं है। क्योंकि गृहस्थ और मुनि, ये तो दो संस्थाएँ हैं। कोई किसी भी संस्थामें रहे, परन्तु इससे उसके व्रत अपूर्ण या पूर्ण नहीं कहे जा सकते हैं। मुनिसंस्थामें रहनेवाला भी महाव्रती या अव्रती होसकता है और गृहस्थ संस्थामे रहनेवाला भी महाव्रती और केवली होसकता है। कूर्मापुत्र† केवलज्ञानी होनेपर भी घर में रहे थे, इसके अतिरिक्त बहुतसे मनुष्योंने मुनि-संस्थामें प्रविष्ट हुए बिना, मुनिवेष लिये बिना केवलज्ञान प्राप्त किया था। सम्राट् भरत‡, इलापुत्र, आसाढ़भूति आदि इसके उदाहरण हैं। इससे यह बात स्पष्ट है कि जैनसिद्धान्तके अनुसार भी अणुव्रत और महाव्रतका सम्बन्ध गृहस्थ और सन्यास आश्रमसे नहीं है। किसी भी आश्रममें मनुष्य अणुव्रती और महाव्रती हो सकता है। आवश्यकता होने पर मुनि संस्था तोड़ी जा सकती है, परन्तु महाव्रती नष्ट नहीं किये जा सकते। सब लोग मुनि या संन्यासी हो जायँ, यह बात किसी भी समाजके लिये असह्य है, क्योंकि इससे उस समाजका नाश होजायगा। परन्तु अगर सब लोग महाव्रती हो जायँ तो यह मनुष्य-समाजका सुवर्णयुग होगा।

अणुव्रत और महाव्रतकी एक दूसरी परिभाषा भी जैनशास्त्रोंमें प्रचलित है। उनने रागद्वेष आदि कषायोंकी वासनाके ऊपर अणुव्रत और महाव्रतका विभाग रक्खा है। इस दृष्टिसे चारित्रके चार भेद किये गये है.-(१) स्वरूपाचरण चारित्र, (२) देश चारित्र, (३) सकलचारित्र, (४) यथाख्यातचारित्र।

---

* अणुव्रतोऽगारी। तत्त्वार्थ ७

† भावेण कुम्मपुत्तो अवगयतत्तो य अगहिय चरित्तो।
गिह वासे वि वसंतो संपत्तो केवलं णाणं। कुम्मा० च० ७

‡ भावेण भरह चक्की नारिससुहन्नमज्झम [illegible]।
आयंस घर निविट्ठो गिहो वि सो केवली जाओ॥१४०॥
वंसग्गिसमारूढो मुणिपवरे के वि दट्ठु विहरंते।
गिहिवेस इलापुत्तो भावेणं केवली जाओ॥१४१॥
आसाढभूइमुणिणो भरहेसरपिक्खणं कुणंतस्स।
उप्पन्नं गिहिणो वि हु भावेणं केवलं णाणं॥१४२॥
--कुम्मापुत्त च०।

चारित्र अर्थात् कर्त्तव्यके पालनमें राग और द्वेष सबसे बड़ी बाधाएँ हैं। हमारे मुँहके ऊपर भले ही ये प्रकट न हों, परन्तु जब तक ये वासनाके रूप में हृदयमें बने रहते हैं, तब तक न तो हमें शुद्धज्ञान प्राप्त होता है, न हम शुद्धचारित्रका पालन कर सकते हैं। कौन आदमी कितना अचारित्री है—इस बातको समझनेके लिये हमें यह समझना चाहिये कि उसकी कषायवासना कितने अधिक समय तक स्थायी है। जितनी लम्बी कषायवासना, उतनी ही अधिक चारित्र-शून्यता।

इस परिभाषाके अनुसार जिस व्यक्तिमें राग-द्वेषकी वासना बिलकुल नहीं रहती, वह यथाख्यात चारित्री कहा जाता है। यह चारित्रका सर्वोत्तम स्थान है। जिसकी कषायवासना पन्द्रह दिन तक रहती है, वह सकल चारित्री है। साधारणतः मुनियोंके कम से कम यह चारित्र होना चाहिये। जिसकी कषायवासना चार मास तक ठहरती है, वह देशचारित्री है। यह चारित्र साधारणतः गृहस्थोंके माना जाता है। और जिसकी कषायवासना एक वर्ष तक ठहरती है, इससे ज्यादा नहीं ठहरती वह स्वरूपाचरण चारित्री कहलाता है। यह चारों गतियोंमें होसकता है। इस चारित्रवालेको सम्यग्दृष्टि भी कहते हैं। क्योंकि सम्यग्दर्शनके साथ यह चारित्र अवश्य होता है। इससे भी अधिक जिसकी कषायवासना ठहरती है, वह मिथ्यादृष्टि है। उसकी कषायवासना अनन्तानुबन्धी कहलाती है। उसके कोई चारित्र नहीं माना जाता है।

इन चार प्रकारके चारित्रोंको नाश करनेवाली जो कषायें हैं, उनके चार नाम रक्खे गये हैं:—अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन।

अनन्तानुबन्धीकी वासना श्वेताम्बर * मतानुसार जीवनभर रहती है और दिगम्बर † मतानुसार अनन्त या असंख्य भवों तक। अप्रत्याख्यानावरण की वासना एक वर्ष (श्वेताम्बर) अथवा छः मास (दिगम्बर), प्रत्याख्यानावरणकी वासना चार मास (श्वेताम्बर) अथवा एक पक्ष (दिगम्बर) और संज्वलनकी वासना एक पक्ष (श्वेताम्बर) अन्तर्मुहूर्त—अड़तालीस मिनटसे कम (दिगम्बर)।

कषायोंकी वासनासे चारित्र—अचारित्र की परीक्षा करना कुछ अधिक युक्तिसंगत है। मुनिसंस्था और गृहस्थसंस्थामें चारित्रको विभक्त करनेकी अपेक्षा इस प्रकार संस्कार कालमें विभक्त करना अधिक उपयोगी है।

प्रश्न- गृहस्थजीवनमें यह हमारा कर्तव्य है कि हम अपने कुटुम्बियोंसे सदा प्रेम करें। इस दृष्टिसे प्रेमकी वासना जीवनभर स्थायी कहलायी और इससे प्रत्येक गृहस्थ मिथ्यादृष्टि कहलाया। उसके स्वरूपाचरण चारित्र भी न रहा। इसलिये अगर वासनापर चारित्र अचारित्रका विचार किया जाय तो कोई भी गृहस्थ चारित्रधारी न बन सकेगा; अथवा उसे कुटुम्बियोंसे प्रेम करना छोड़ना पड़ेगा।

उत्तर- प्रेमको वासना समझना भूल है। वासना है मोह, आसक्ति आदि। प्रेम तो निश्छल वृत्ति है। सामाजिक सुव्यवस्थाके लिये हम जिन लोगोंके साथ कर्तव्यमें बँधे हुए हैं, उनके साथ निश्छल व्यवहार करना, हृदयसे उनकी सेवा करना प्रेम है; यह कषाय नहीं है। हम अपनी पत्नीसे प्रेम भी कर सकते हैं, मोह भी। प्रेम बुरा नहीं है। वह तो कर्तव्यतत्पर बनानेवाली मानसिक वृत्ति है उसका अचारित्रसे कोई सम्बन्ध नहीं है। निर्लिप्त होकर कार्य करना चाहिए और मोह तो सम्बन्धियोंका भी न होना चाहिए। सम्यग्दर्शनके प्रकरणमें इस विषयपर बहुत विवेचन किया गया है। कषायवासना रहित होकर

* जाजीव वरिस चउमास पक्खगा नरय तिरिय नर अमरा।
सम्माणुसव्व विरइ अहखाय चरित्त घाय करा ॥
— कर्मविपाक १-१८।

† अन्तोमुहुत्त पक्खं छम्मासं संखऽसंखणंतभवं।
संजलणमादियाणं वासण कालो दु णियमेण ॥
—गोम्मटसार कर्मकाण्ड ४६।

जीवनके सभी काम किये जा सकते हैं। जैन तीर्थङ्कर या केवली क्षणभरके लिए भी कषायवासना नहीं रखते, परन्तु धर्मप्रचार आदिका काम दिनरात करते रहते हैं। वासनारहित होनेसे मनुष्य कुछभी काम न कर सकेगा, वह व्यवहार शून्य हो जायगा अथवा इन कामोंसे वासना आजायगी—आदि शंकाएँ ठीक नहीं।

इस अध्यायके प्रारम्भमें चारित्रकी जो परिभाषा बतलाई गई है, उसीको कसौटी बनाकर पूर्णता अपूर्णताका विचार करना चाहिये। सुखके सच्चे प्रयत्नमें जो बाधाएँ हैं उनको जितना हटाया जायगा चारित्र उतनाही उन्नत कहलायगा। ऊपर जो वासना का विवेचन किया गया है, वह भी सुखमें बाधक है; इसलिये उसे जितना हटाया जायगा चारित्र उतना ही उन्नत कहलायगा।

इससे इतना तो मालूम होता है कि चारित्रकी एक अखंड धारा है। उसमें कोई ऐसी सीमा नहीं है जो स्वभावतः चारित्रके विभाग करती हो। एक वर्षसे अधिक वासना रहनेपर चारित्रका नाश मानना भी आपेक्षिक है। क्योंकि तेरह महीने तक वासना रखनेवाले और दो वर्ष तक वासना रखनेवालेमें भी तरतमता है। दो वर्ष तक कषाय वासना रखनेवाले की अपेक्षा तेरह महीने तक कषाय वासना रखनेवाला चारित्रवान है। एक वर्ष और एक समय अधिक एक वर्षमें जितना अन्तर है उतना अन्तर एक वर्षके भीतर या बाहर सब कहीं पाया जासकता है। इससे हम चारित्रकी न्यूनाधिकता तो जान सकते हैं; परन्तु यह नहीं कहसकते कि अमुक समय तककी वासनामें महाव्रत मानाजाय और अमुक समय तक अणुव्रत।

अहिंसाके प्रकरणमें यह बात कही जाचुकी है कि चारित्र अचारित्रका भेद अनासक्ति आसक्तिका भेद है। उस अपेक्षासे भी हम चारित्र और अचारित्रकी दिशाको ही जानसकते हैं; परन्तु अणुव्रत महाव्रतका भेद नहीं कर सकते। क्योंकि आसक्ति की कितनी मात्राको अणुव्रत मानाजाय और उससे अधिकको अव्रत अथवा उससे कमको महाव्रत—इस की कोई सीमा नहीं बनाई जासकती।

चारित्र और अचारित्रके विषयमें और भी दिशा सूचन किया जासकता है। जैसे—जो न्यायके आगे सिर झुकादे वह चारित्रवान है। चारित्रहीन मनुष्य न्याय अन्यायकी पर्वाह नहीं करता। वह पशुबलसे डरता है, न्यायबलसे नहीं। अगर अंकुश छूटजाय तो वह अन्याय पर उतारू हो जायगा।

चारित्र और अचारित्रकी यह कसौटी भी बहुत सुन्दर है, परन्तु देश चारित्र और सकल चारित्रकी सीमा बनाना इसमें भी बहुत मुश्किल है। क्योंकि छोटेसे छोटे न्यायके आगे पूर्णरूपसे सिर झुकादेने वाला सकल चारित्र है और बड़ेसे बड़े न्यायके आगे ज़राभी न झुकनेवाला चारित्रहीन है। इसके बीचमें ऐसी सीमा बाँधना अशक्य है, जिसे देश चारित्र कह सकें।

और भी कोई चारित्रकी कसौटी कही जाय परन्तु उससे सिर्फ़ चारित्र अचारित्रका निर्णय होगा; परन्तु चारित्रके बीचमें कोई रेखा न होगी, जिसके एक तरफ़को अणुव्रत और दूसरी तरफ़को महाव्रत कहा जाय।

हाँ! व्यवहार चलानेके लिये अगर हम उनमें सीमा बाँधना चाहें तो अवश्यही सीमाकी कल्पना कर सकते हैं। जैसे पहिले स्वरूपाचरण आदि चारित्रके चार भेद किये गये थे और उनको वासना कालमें विभक्त किया गया था, उसप्रकारके व्यवहारोपयोगी भेद बनाये जासकते हैं।

परन्तु ऐसे भेद गृहस्थाश्रम और सन्यासाश्रम आदिके साथ जोड़े नहीं जासकते। गृहस्थभी एक पक्षसे अधिकवासना न रक्खे, यह होसकता है; और मुनि भी अधिक वासना रक्खे, यह भी होसकता है। ये आश्रमके भेद तो सामाजिक तथा व्यक्तिगत सुविधाओंके लिये बनाये जाते हैं; इनका चारित्र अचारित्रसे कोई सम्बन्ध नहीं है। हाँ! यह बात

यद्यपि गृहस्थ वेषमें रहते हुए भी ये बातें पैदा हो सकती हैं हुई हैं, और होती हैं, परन्तु उसमें कुछ असुविधा रहती है।

४—कभी कभी कौटुम्बिक परिस्थितिके कारण भी गृहत्याग करनेकी जरूरत होजाती है। कुटुम्बी खासकर पत्नी जब अपने ही समान न हो, उसका स्वभाव और आवश्यकताएँ ऐसी हों, जिससे वह साथ न दे सकती हो, तब भी गृहत्याग करनेकी आवश्यकता होती है। पत्नीको पति और पतिको पत्नी सिर्फ प्रतिकूल होकर ही बाधक नहीं होते बल्कि अनुकूल होकरके भी बाधक होते हैं। मोह, जिसे कि लोग प्रेम समझते हैं, ऐसी बाधाएँ उपस्थित करता है तब तीर्थंकर या क्रान्तिकारकको गृहत्याग करना पड़ता है।

इस प्रकार गृहत्यागके अनेक कारण हैं। जिन तीर्थंकरोंके सामने वे कारण उपस्थित होते हैं, वे गृहत्याग करते हैं और जिनके सामने वे कारण उपस्थित नहीं होते वे गृहत्याग नहीं करते। तीर्थंकर घरमें रहें या वनमें, उनमें निःस्वार्थता और निर्लिप्तता रहती है। घरमें रहते हुए भी वे गृहत्यागी होते हैं। इससे यह बात समझमें आ जाती है कि पूर्ण चारित्र और अपूर्ण चारित्रका सम्बन्ध गृहस्थ संस्था या मुनिसंस्थासे नहीं है। चारित्रकी पूर्णता या अपूर्णताका सम्बन्ध भावनापर निर्भर है।

पूर्ण और अपूर्ण चारित्रका सम्बन्ध गृहस्थ और मुनि-संस्थासे हो या न हो, परन्तु इन दोनों संस्थाओंके बाहिरी नियमोंमें कुछ न कुछ अन्तर रखना पड़ेगा। यह बहुत कुछ सम्भव है कि किसी अवस्थामें मुनि-संस्था हटा दी जाय, परन्तु अधिकांश समयमें इस संस्थाकी आवश्यकता रहती है। हाँ, एक तरहकी विकृत मुनिसंस्था तोड़कर दूसरी तरहकी मुनिसंस्था बनाई जा सकती है। उसका स्थान भी ऊँचा नीचा बदला जासकता है, आर्थिक दृष्टिसे उसे अधिक स्वावलम्बी बनाया जासकता है। इस प्रकार इसमें बहुत परिवर्तन हुए हैं।

वर्तमानकी जैनमुनिसंस्था ढाईहजार वर्ष पुरानी है। बीचमें कुछ संशोधन हुए थे, परन्तु वे नाम मात्र के थे। आज तो वह कई तरहसे निरुपयोगी और विकृत हो गई है। इसलिए आज उसमें साधारण सुधार नहीं, किन्तु क्रान्तिकी आवश्यकता है। दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायमें मुनियोंके लिए जो कुछ नियम बनाये गये हैं, उनका प्रयोजन क्या है, एक समयमें वे उपयोगी होनेपर भी आज वे निरुपयोगी क्यों हैं और उनको क्यों हटाना चाहिये तथा उन्हें हटाकर दूसरे कौनसे नियम लाना चाहिये, इसी बातका यहाँ विवेचन किया जाता है।

सत्यसमाजपर लोकमत।

शाखा खुली!
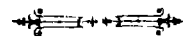
(८—९—१०—११—१२)

श्री० भोगेन्द्रनाथजी शास्त्री कानपुरसे लिखते हैं:—

"आपकी कृपासे सत्यसमाजकी शाखा वैद्य महेशचन्द्रजीके उद्योग द्वारा स्थापित की गई, तथा उसके सभापतित्वका आसन श्रीयुत् महेशचन्द्रजी आयुर्वेदाचार्यने ग्रहण किया, जो सदाके लिये रहेंगे। तथा मन्त्रीका कार्य मेरे लिये दिया गया। सभापतिजी वैद्यरत्न हकीम कन्हैयालालजीके सुपुत्र हैं। ......आप प्रतिभाशाली सज्जन हैं।

—भोगेन्द्रनाथ शास्त्री, मंत्री, शाखा सत्यसमाज,
चाँद औषधालय, मेस्टनरोड, कानपुर।

इस पत्रके साथ पाँच सज्जनोंके आवेदनपत्र भी भरकर आये हैं। इनकी इबारत वही है, जो जैनजगत्में प्रकाशित हुई है। यहाँ तो उनका संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

१—महेशचंद्रजी आयुर्वेदाचार्य, पिताका नाम वैद्यराज कन्हैयालालजी, उम्र ३० वर्ष, नैष्ठिक श्रेणी।

२—भोगेन्द्रनाथजी जैन शास्त्री, पिताका नाम—नाथूरामजी जैन, उम्र २२ वर्ष, जैन पाक्षिक।

३–रामप्रसादजी जैन, पिताका नाम–ज्योतिप्रसादजी जैन, उम्र २७ वर्ष, नैष्ठिक श्रेणी।
४–कृष्णाकुमारीजी, पतिका नाम—मोहनलालजी उम्र ३० वर्ष, वैष्णव पाक्षिक।
५–पद्मकुमार जैन, पिताका नाम–भगवानदास जैन, उम्र २० वर्ष, जैन पाक्षिक।

(१३)

प्रसिद्ध विद्वान पं० कुँवरलालजी न्यायतीर्थ बिलराम (एटा-यू०पी०) से लिखते हैं—

"जबसे जैनजगत्‌में "जैनधर्मका मर्म" शीर्षक लेखमाला प्रकाशित हुई है, जैनियोंके तीनों सम्प्रदायके विचारशील व्यक्तियोंके लिये विचार करनेको बहुतसा साहित्य जुट गया है। यद्यपि सभी लोग उसे उसी रूपमें ग्रहण करनेको तैयार नहीं हैं, जिस रूपमें वह प्रकट हुई है, और ऐसा होना स्वाभाविक ही है, तथापि उसकी प्रभावपूर्ण तार्किक लेखन शैली तथा स्पष्ट विचारधारा अनेक विद्वानोंकी श्रद्धा एवम् स्पर्द्धाका निमित्त बन रही है।

अनेक लोग उसका विरोध करना चाहते हैं; किन्तु लेखकके गम्भीर अध्ययन और असीम परिश्रमके सामने टिक सकनेका साहस न होनेसे, छिपते, बहाने बनाते, तथा समाजको भ्रमपूर्ण वातावरणमें ही अटकाये रखनेका असफल प्रयत्न करते हैं।

अभी जो 'सत्यसमाज' की स्थापनाकी स्कीम प्रकट हुई है, वह कोई अनहोनी बात नहीं है। समय समयपर पुरानी समाजोंका साम्प्रदायिक मोह इसी तरह दूर होकर नई समाजें स्थापित हुआ करती हैं। जिस समाजकी जितनी उदारनीति होगी, उतनी ही वह विशाल और स्थायी होगी। सङ्कुचितनीति सदा घातक होती है। महावीर स्वामीके समयमें जैन समाजकी जो उदारनीति थी, यदि उसे जैनियोंने अपनी सङ्कुचित मनोवृत्तिसे सङ्कुचित न कर दिया होता तो आज जैनसमाज इतना निर्बल न बन जाता, जिससे उसका अस्तित्व ही सन्देहास्पद हो रहा है। इसलिये मैं सत्यसमाजकी स्थापनाका समर्थक होता हुआ सदा उदारसे उदार नीतिसे काम लेनेका पक्षपाती हूँ।

(१४)

श्री० भानुकुमारजी जैन, मंत्री हिन्दीसाहित्य संसत्, बम्बई, लिखते हैं—

श्रद्धास्पद !

'सत्यसमाज' के उद्देश्य और नियम प्राप्त हुए। आभार! मैंने उन्हें अच्छी तरह पढ़ा। मैं उनसे पूर्णतया सहमत हूँ। कृपया उसके पाक्षिक सदस्यों में आप मुझे संयुक्त कर लें।

मेरे ही समान मैं प्रत्येक मानवसे यह आशा करता हूँ कि वे इसके सदस्य बनकर जीवनमें प्रेम सहानुभूति, बन्धुत्व और उदारताका पाठ सीखें - क्योंकि—

"जीवन जीनेके लिये है। जिसने जीकर भी जीना नहीं जाना, वह मानवतासे रहित है। मानवता की सृष्टि किसी (Ideal) आदर्शके लिये ही है, यदि वह न भी हो तो जीवनमें यथार्थता तो होनी ही चाहिये; और यदि वह भी नहीं तो मानवता पशुता से बदतर है—ऐसी मेरी मान्यता है।

जीवनका मार्ग प्रशस्ततर करनेके लिये एक सुन्दर सु-लक्ष्य की आवश्यकता है—और वह सु-लक्ष्य ही एक आदर्श है। आदर्श की ओर झुकने के लिये एक बंधनकी आवश्यकता है। यदि वह न हो तो मनुष्य अपने आदर्शसे च्युत हो सकता है। इसलिये एक बंधन रचा गया है, और वह है 'समाज' का बंधन।

वे व्यक्ति जो विभिन्न सम्प्रदायोंके होते हुए भी उनकी प्रचलित अमान्य मान्यताओंसे ऊब गये हैं, या उनसे मुक्त होना चाहते हैं; अथवा किसी समाज के समाजो पदसे पद च्युत कर दिये गये हैं, उन्हें भी जीवनमें एक आदर्शकी ओर अग्रसर होनेके लिये आवश्यकता तो है ही; और चूँकि वह बिना बंधन के उस ओर नहीं अग्रसर हो सकते, एतदर्थ आजकलके इस सम्प्रदायातीत समयमें भी उनके लिये

'सत्य-समाज' उपयुक्त हो सकता है।

जहाँ व्यक्तिगत द्वेषकी भावनाएँ भड़क उठी हैं; कट्टरताकी कठोर हथकड़ियोंने मानव-मानवको जकड़ रखा है; जहाँ स्त्री-पुरुषमें, पिता-पुत्रमें, भाई-भाईमें, और समाज-समाजमें वैमनस्य-बीज बोया जा चुका है; जिससे मानवता और पशुतामें कोई अंतर नहीं रहा है; और जबकि पारस्परिक वैमनस्यके कारण ही राष्ट्रको गुलामीका जीवन व्यतीत करना पड़ रहा है तथा क्या पता कबतक करना पड़ेगा; ऐसे समयमें मनुष्य-मात्रमें प्रेम, सहानुभूति, बंधुत्व और एककी दूसरेके प्रति उदारता की भावनाके प्रादुर्भाव होनेकी अत्यन्त आवश्यकता है; और मुझे हर्ष है कि सत्य-समाजका मूल यही है।

जब ढोंगके कारण, स्वार्थके कारण और अंध-श्रद्धाके कारण मनुष्य किसी व्यक्ति-विशेष या सम्प्रदायका अनुकरण करने लगता है, उसके निर्देश किये हुए मार्ग पर आत्मचिन्तन रहित होकर बढ़ने लगता है और भूत, भविष्यत्, वर्तमानकी लाभहानि का कुछ भी विचार नहीं रखता, तब वह पतनके भीषण गर्तमें गिरता चला जाता है। अन्ततोगत्वा पतनकी चरमसीमामें पहुँचकर आत्म-चिन्तवनकी पश्चात्तापरूपी प्रबलाग्निमें प्राणार्पण कर अपनी पूर्णाहुति देदेता है। उस समय यह नहीं कहा जासकता कि वह जिया था, या मरा था या जीनेके लिये जिया था या मरनेके लिये, अथवा आदर्शके लिये जिया या पतनके लिये।

ऐसे व्यक्तियोंके लिये प्रारम्भसे ही सुन्दर सुमार्ग "सत्यं शिवं सुन्दरम्" की उक्तिके अनुसार सत्यसमाजमें ही मिलेगा अन्यत्र शायद ही मिले—ऐसा मैं दावा कर सकता हूँ।

अंतमें—'सत्य-समाज' से पूर्ण सहानुभूति है। मैं तन-मनसे उसमें सहयोग देनेके लिये तैयार हूँ। मैं सत्य-समाजकी दिन-प्रतिदिन वृद्धिकी आशा करता हूँ और चाहता हूँ—भविष्य सुखदायी हो।

आश्चर्यमय जगत

सौरजगत्।

(लेखक—श्रीयुत जगदीशचन्द्रजी एम० ए०)

सूर्यके विषयमें नानादेशोंकी कल्पनाके संबंधमें पहले कहा जाचुका है। जैन तत्व वेत्ताओंने खगोलके संबंधमें विशाल साहित्यका निर्माण किया है। जैन-खगोलके अनुसार सूर्य एक प्रकारका ज्योतिष्कदेव है जिसकी आयु हजार वर्ष सहित एक पल्यके प्रमाण मानी गई है। इस सूर्यके बारह हजार किरणें और चार देवांगनायें होती हैं। चित्रा पृथ्वीसे आठसौ योजनकी दूरी पर सूर्यका विमान अवस्थित है। इस विमानका व्यास एक योजनके इकसठ भाग में से अड़तालीस भाग प्रमाण माना गया है। यह सूर्यका विमान मेरुपर्वतकी प्रदक्षिणा करता रहता है, जिससे दिन और रातका विभाग होता है।

वैज्ञानिक जगत्‌में, जैसा कि लिखा जाचुका है, सर्व प्रथम महान क्रान्तिकारक वैज्ञानिक कोपर्निकस ने पृथिवीके घूमनेके सिद्धान्तको निश्चित रूप दिया। कोपर्निकसकी मृत्युके पश्चात गैलिलियो नामक एक दूसरा वैज्ञानिक हुआ, जिसने दूरबीन Telescope का आविष्कार करके सचमुच वैज्ञानिक जगत्‌में एक नया युग उपस्थित कर दिया। इस दूरबीन नामक यंत्रसे बहुत दूर दूरके पदार्थ दिखाई देनेलगे।

वैज्ञानिकोंका कहना है कि हमें सूर्य पूर्व से पश्चिमकी ओर ढलता हुआ दिखाई देता है लेकिन वह हमारा भ्रम है। वास्तवमें पृथ्वी अपनी कीली (Axis) पर घूमती है और इसीसे दिन रातका विभाग होता है। लण्डनमें साउथ केन्सिंगटनके साइंस म्यूज़ियममें ६५ फ़ीट लम्बा एक लटकन (Pendulum) बनाया गया है, जो म्यूज़ियमकी छतसे बंधा हुआ है। जब यह लटकन जमीन पर रक्खे हुए पैमानेके ऊपर झुलाया जाता है, उससमय कुछ देरके बाद पैमानेके ऊपर झूलते हुए इस लटकनकी दिशामें कुछ अन्तर पड़जाता है। यदि पृथ्वी घूमती न

होती तो इस लटकनको सदा एकही दिशामें झूलना चाहिये था। इस लटकनके झूलनेमें एक घंटेके भीतर जो क़रीब पौने बारह डिग्रीका अन्तर पड़ जाता है, वह नहीं पड़ना चाहिये।

वैज्ञानिकोंने सूर्यका सूक्ष्म अन्वेषण करके पता लगाया है कि पृथ्वी-मण्डलसे सूर्य नौकरोड़ तीस लाख मीलकी ऊँचाई पर है। यदि दो मिनिटमें एक मील दौड़ने वाले हवाई जहाज़में बैठकर इस सूर्यके पास पहुँचनेका प्रयत्न किया जाय तो सूर्य तक पहुँचनेमें नब्बे वर्ष लगेंगे। इसके अतिरिक्त नाना प्रयोगों द्वारा कठोर तपस्याके पश्चात वैज्ञानिकोंको मालूम हुआ है कि सूर्य एक अत्यधिक गरम अग्निका गोला है, जिसका तापमान पाँच हज़ारसे सात हज़ार सेन्टीग्रेड डिग्री है और जो निरन्तर अपने चारों ओर गरमी और प्रकाश देता आरहा है। सूर्यसे निकलने वाली इस गरमीका दो अरब बीस करोड़वाँ हिस्सा हमारे पास तक पहुँचता है। इस गरमीमें भिन्नभिन्न देश और कालके अनुसार परिवर्तन होता रहता है।

सूर्य पृथ्वीसे ३३३४२ गुना बड़ा है। सूर्यका व्यास ८६६००० मीलका है। पाश्चात्य ज्योतिषियोंका कहना है कि कभी सूर्य इतना अधिक उष्ण था कि पृथ्वीमण्डल पर किसी भी प्रकारका जीवन संभव नहीं था। अब धीरे धीरे सूर्य ठंडा होता जारहा है। इन लोगोंका यह भी कथन है कि अब पृथ्वी पहलेसे कम तेज़ीसे घूमती आरही है। इसलिये अब दिन बड़े होते जाते हैं और गरमी कम होती जारही है। पहलेके दिन आजकलके दिनोंसे तिहाई भी न होते थे। अब धीरे धीरे वह दिन आरहा है जब कि एक एक दिन एक एक वर्षके बराबर होगा। उससमय सूर्य बिलकुल ठंडा हो जायगा और वह आकाशमें स्थिर होकर लटक जायगा संभवत: भारतीयशास्त्रों ने इसी दशाको प्रलयके नामसे कहा हो। वैज्ञानिकों का कहना है कि अभी इस स्थिति तक पहुँचने लिये लाखोंसे भी अधिक बरस लगेंगे। वैज्ञानिकोंके अनुसार मनुष्यको अपनी सचेतन अवस्थामें आये हुए कुल तीस हज़ार वर्ष हुए हैं। अतएव हमने जब इतने थोड़े समयमें इतनी अधिक उन्नतिकी है तो अभी हमारे पास उत्कर्षकी सीमा तक पहुँचनेके लिये पर्याप्त समय है।

सम्पादकीय टिप्पणियाँ।

जैनजगत् या सत्यसेवक।

जैनजगत्का नाम यद्यपि जैनजगत् है, तथापि अपने जन्मसे ही वह किसीका पक्षपात न करके सत्यकी ही सेवा करता रहा है। और जबसे इसमें 'जैनधर्मका मर्म' लिखा गया है तबसे इसकी निःपक्षता चरम सीमापर पहुँच गई है। सत्यकी खोजमें इस प्रकारकी निःपक्षता अत्यन्त आवश्यक है। इसके बिना कोई विशेष धर्म तो क्या परन्तु सामान्यधर्म भी नहीं टिक सकता और न मनुष्यका कल्याण हो सकता है।

सत्य और निःपक्षताके गीत सभी गाते हैं, परन्तु नामका मोह सब जगह है। सत्यकी प्राप्तिमें यही मोह बाधक है। आज लोगोंमें साम्प्रदायिकता इतनी अधिक है कि हरएक आदमी अपने सम्प्रदायके नाम से सब कुछ सुननेको तैयार है, परन्तु दूसरेके नाम से कुछ भी सुननेको तैयार नहीं है। "जैनधर्मका मर्म" जो कुछ लिखा गया है वह सब "बौद्धधर्मका मर्म" या "वैदिकधर्मका मर्म" आदि नामसे भी लिखा जा सकता है, परन्तु उस समय इन्हीं बातों के पढ़नेमें जैनियोंको आकर्षण न रहेगा। यही है नामका मोह, अहंकारकी पूजा।

परन्तु जो है वह तो है ही। मुझे तो इसीका इलाज करना है। जिस प्रकार जैनियोंकी यह इच्छा है कि जो कुछ कहा जाय वह जैनधर्मके नामसे कहा जाय, उसी प्रकार दूसरोंकी भी यही इच्छा अपने अपने सम्प्रदायके नाम लिये हो यह स्वाभाविक है। इसीलिये मेरी इच्छा है कि जो सत्य "जैनधर्मका मर्म" नाम रखकर लिखा गया है वही, अन्य धर्मों

के मर्मके नामपर भी लिखा जाना चाहिये। इसके लिये मैं यथाशक्ति प्रयत्न करूँगा।

अगर हम किसी सत्यका प्रचार करना चाहते हैं तो हमारे सामने दो ही रास्ते हैं। उस सत्यको हम सबको अपने अपने सम्प्रदायके नामसे दें, अथवा किसी ऐसे नामसे दें, जिसमें किसी खास सम्प्रदाय की छाप न हो। मैं इन दोनों ही मार्गोंका उपयोग करना चाहता हूँ। कुछ लेखमालाएँ सम्प्रदायके नामों पर और कुछ केवल सत्यके नाम पर लिखना है। इस प्रकार लेखमालाओंकी समस्या तो हल हो जायगी, परन्तु अगर हम वे सब लेखमालाएँ या वे सब विचार 'जैनजगत्' में रखकर दें, तो उनकी तरफ सिर्फ इनेगिने जैनियोंका ही ध्यान आकर्षित होगा। इस प्रकार हम नामके मोहके कारण सत्यको एक बाड़ेमें बन्दकर डालेंगे। अगर हम जैनधर्म भी दुनियोंको समझाना चाहते हों, तो आज हमें आवश्यक है कि उसपर जैनधर्मकी छाप न लगावें। सत्य को सत्यके नामसे ही प्रकट करें।

नामके मोहके कारण जो कठिनाई उपस्थित होती है, उसका मुझे काफी अनुभव है। जिन लोगोंको मेरे विचार खूब पसन्द आते हैं, वे भी जैनजगत्के ग्राहक होनेसे डरते हैं या उपेक्षा करते हैं। किसी जैनेतर व्यक्तिसे यह बात जोर देकर नहीं कही जा सकती कि तुम एक जैनपत्रके ग्राहक बनो! इससे जैनजगत्के प्रचारमें बड़ी बाधा पड़ती है। साथ ही जब मैं नामके मोहका स्मारक लिये फिरता हूँ, तब दूसरेसे कैसे कहूँ कि तुम लोग नामका मोह मत रक्खो? इसलिये अगर हम जैनधर्मके मर्मका वास्तवमें प्रचार करना चाहते हैं और उसे विश्वधर्म बनाना चाहते हैं तो उसे हम 'जैनजगत्' इस नामके पात्रमें नहीं रख सकते।

अगर इसके लिये कोई दूसरा पत्र निकाला जाय तो यह अशक्य और निरर्थक दोनों हैं। न तो मेरे पास शक्ति है जो इस प्रकार दो पत्र चलाऊँ, न प्रकाशकर्त्ताके पास। न दोनोंके लिये ग्राहक भी मिल सकते हैं, न घाटेकी पूर्ति। साथ ही उस नये पत्र का कार्य जैनजगत्से कुछ विशेष न होगा। तब दो पत्रोंकी आवश्यकता ही क्या है?

इसलिये अबतक जो पत्र 'जैनजगत्'के नामसे निकलता रहा है वही पत्र अब "सत्य सेवक" या ऐसे ही किसी सम्प्रदायातीत नामसे निकाला जाय तो इसका क्षेत्र बहुत व्यापक होसकता है और इसका प्रचार भी बढ़ सकता है तथा जैनजगत्की जो नीति अभी तक रही है तथा भविष्यमें भी रहेगी उसीके अनुसार उसका नाम बन सकता है। जो पत्र महावीर, बुद्ध, कपिल आदि किसीमें कोई पक्षपात नहीं रखता, युक्तियुक्तताको ही महत्व देता है, वह अपने मुख पर किसी एक सम्प्रदायकी छाप लगाये तो यह निरर्थक है।

कुछ मित्रोंका भी ऐसाही अनुरोध है, कुछ तटस्थ हैं और कुछ को एक शंका है कि इसपत्रका सम्बन्ध जैनसमाजसे टूट जायगा। परन्तु यह शंका निरर्थक है। जिन लोगोंने जैनजगत् पढ़ा है उनमें अधिकांश तो ऐसे होंगे जिन्हें नामकी चिन्ता नहीं है। वे सत्य चाहते हैं। और कुछ स्वयं समझेंगे कि जैनजगत् अभी तक जितना उदार है उससे अधिक उदार और क्या होगा? बाकी सज्जनों को विश्वास करना चाहिये कि जैनजगत् जैसा अभी है अथवा इस नामको रखकर जैसा वह रहनेवाला है, नाम बदलने परभी वह वैसा ही रहेगा। "जैनधर्मका मर्म" निकलता ही रहेगा तथा जैनसमाजकी सामाजिक चर्चाएँ चलती ही रहेंगी। सत्यसमाजकी नीति किसी सम्प्रदाय या समाजसे सम्बन्धविच्छेद करनेकी नहीं, किन्तु सबसे सम्बन्ध जोड़ने की है। ऐसी हालतमें जिस समाजसे जैनजगत्का जन्मसे सम्बन्ध है उससे सम्बन्ध क्यों तोड़ेगा? हाँ! दूसरे समाजोंकी आलोचनाएँ भी होने लगेंगी, परन्तु उससे जैनसमाजका सम्बन्ध न टूट जायगा, तथा नीति तो वही रहेगी जो अभी तक है।

एक बात और भी ध्यानमें रखनेकी है कि यदि

जैन लोग यह चाहें कि उनके भीतर कोई ऐसा पत्र हो जिसकी आवाज़ सार्वजनिक कही जासके तथा उसका प्रभाव भी सार्वजनिक हो तो यह निश्चित समझिये कि हमें नाम और रूप सार्वजनिक ही बनाना पड़ेगा। संकुचित नामसे हम अपनी आवाज को सार्वजनिक नहीं बना सकते।

पाठकोंको इस बातपर गम्भीरतासे विचार करना चाहिये। फिर भी अगर कुछ शंका रहे तो उन्हें मुझे सूचित करना चाहिये। अपनी राय मुझे अवश्य और शीघ्र सूचित करें जिससे इस विषयमें शीघ्रही विचारपूर्ण परिवर्तन हो। मेरी इच्छा 'सत्यसेवक' नाम रखने की है। पाठक और भी कुछ सूचित कर सकते हैं।

दिगम्बर जैन मुनि।

आठ दस वर्ष पहिले जब लोगोंने दि० जैनमुनि संस्थाको पुनरुज्जीवित करनेका प्रयत्न किया तथा उसके फलस्वरूप जो कुछ मुनिवेषधारी समाजके साम्हने आये तथा जिसप्रकार ईर्ष्या, द्वेष, कलह, दंभ, मिथ्यात्व आदिके कार्योंमें उनका उपयोग किया गया उसे देखकर जैनजगत्ने एक सख्त चेतावनी दी थी कि यह सब दि० जैनसमाजके लिये बड़ा खतरा है।

दि० जैनसमाज मुनियोंकी भूखी थी, इसलिये उसने आगे देखा न पीछा और मनचाहा अभक्ष्य भक्षण करने लगी। उसकी आसक्ति देखकर किसी की यह हिम्मत न हुई कि वह जैनसमाजको इस मूढ़तासे रोके। उससमय मुनिवेषियोंके विरुद्ध एक शब्द बोलनेकी भी किसीकी हिम्मत न थी—सब पण्डित और सब पत्र चुप थे। स्थितिपालकोंका इससे साहस बढ़ा। जिस दुर्लक्ष्यको लेकर वे इस संस्थाको पुनरुज्जीवित करना चाहते थे उसमें उनने अपनी शक्ति लगायी। जिसप्रकार मुसलमानोंने हिन्दुओंसे लड़ते समय अपने साम्हने गायोंकी कतार लगाली थी, उसीप्रकार स्थितिपालकोंने सुधारकोंसे लड़नेके लिये मुनिवेषियोंकी कतार लगाली। परन्तु सुधारकोंने हिन्दुओं की सी मूर्खता नहीं की; उनने इस कतारका कुछ भी विचार न किया। उनके गोलों से इस कतारका भी पतन हुआ और उनकी ओटमें छिपने वालोंका भी।

स्थितिपालकोंकी इस कायर नीतिका एक बुरा असर फिर भी रहा कि इस दलबन्दीकी ओटमें एक से एक बढ़कर स्वार्थी और भ्रष्टाचारी इस संस्थामें घुस गये। किसी भले आदमीको इस संस्थामें कोई जगह न रही। और स्थितिपालकोंको तो सब भ्रष्टाचारियोंकी अरहंतोंके समान स्तुति करनी पड़ी। एक तो समाजका भोलापन, फिर पंडितोंकी यह स्वार्थपूर्ण अविचारितरम्य दुर्नीति। ऐसे समयमें किसीकी भी हिम्मत नहीं होती थी कि सत्य और कल्याणके लिये एक शब्द भी बोले। उस समय जैनजगत्ने इस साहसपूर्ण कार्यका बीड़ा उठाया।

शक्ति तो थोड़ी थी, परन्तु साहस अनन्त था; साथ ही था सिरपर भगवान् सत्यका वरद हस्त। ज्योंही जैनजगत्ने मुनिवेषियोंके भंडाफोड़ करनेके लिये पहिला वार किया, समाजको जगानेके लिये पहिली बाँग दी त्योंही चारों तरफ़से पंडितदल टूट पड़ा, जैनसमाजके प्रायः सभी पत्र बिगड़ पड़े, बहिष्कार होने लगा, समाज चिल्लाने लगी परन्तु 'जाको राखे साइयाँ, मार न सकि है कोय'—जहाँ भगवान सत्यका वरद हस्त हो, वहाँ कोई क्या करसकता था? तोपके गोले फूल बनने लगे, अग्निके स्फुलिंग शीतल वारिकी बूँदोंके समान शान्ति सरसाने लगे।

जैनजगत् न मरा। उसकी आवाज न दबी, उसके ऊपर विपत्तियोंकी जो वर्षा की गई थी, वह कचरेकी तरह झाड़कर फैंक दी गई। लोगोंने देखा कि जैनजगत्की तलवार ज्योंकी त्यों चमक रही है और उसीके प्रकाशमें उन्हें मालूम हुआ कि पापरूपी दैत्य सिसक रहा है, अधमरा पड़ा है, जिसे वे देव समझकर पूजना चाहते थे।

अब तो मुनिनिंदकताकी जो छाप जैनजगत् पर लगाई गई थी, उसे सभी लगाने लगे। चुपचाप सबने

जैनजगत्का अनुकरण किया और जैनगजट तक मुनिनिंदा करने लगा। जो लोग जैनजगत्की किसी बात पर विश्वास नहीं करते थे उन्हें अन्तमें स्वीकार करना पड़ा कि जैनजगत्ने जो कहा है सत्य कहा है।

मुनीन्द्रसागर-कांडकी समाप्तिके साथ इस नाटकका एक अंक समाप्त होता है मुनीन्द्रसागर मर गया, उसके साथी मुनिने आत्महत्या करली। परन्तु इससे जो जैनसमाजकी बदनामी हुई तथा इन आत्माओंका अधःपतन हुआ, इसका पाप किसके सिर पर ? क्या मुनीन्द्रमंडलीके अधःपतनका पाप समाज पर नहीं है ? निःसंदेह ये लोग धूर्त थे, नीच थे, बेचारे दुष्कर्मोंके सताये हुए थे, परन्तु उनकी धूर्तता और नीचताको फलने फूलने दिया किसने ? जब ये लोग अजमेर थे उस समय इनके दुराचारोंका सारा भंडाफोड़ होगया था। इसके लिये वहाँ पंडितमंडली भी एकत्रित हुई थी। पंडितोंको और श्रीमानोंको आँखों से दिखाकर यह साबित कर दिया गया था कि ये लोग दुराचारोंके अजायबघर हैं, फिर भी पंडितोंने सेठोंने और उनके पत्रोंने उनके पापोंको ढकनेकी पूरी कोशिश की। इस प्रकार रक्षा पाकर वह दुराचार दिन दूना रात चौगुना बढ़ता गया, और सारे जैनसमाज की बदनामी करके, जैनियोंके सिरपर बड़ा भारी कलंकका टीका लगाकर, दुराचारकी असह्य दुर्गन्ध सब जगह फैलाकर जीवनके साथ मरा। स्वयं मरा और दूसरोंको मारा।

दमोह और जबलपुरके जो सज्जन जैनजगत्को मुनिनिंदक समझते थे उनको अब विश्वास होगया है कि जैनजगत्ने मुनियोंके विषयमें आजतक जो कुछ लिखा है वह अक्षरशः सत्य है। परन्तु उससमय भी जैनगजटने मुनीन्द्रसागरके गीत गाये हैं। एक पत्रके लिये इससे बढ़कर शरम और बेजिम्मेदारीकी बात क्या होसकती है ? परन्तु जब बेचारा मुनीन्द्रसागर मरगया, उसका साथी आत्मघात करगया तब इसी जैनगजटने उनके मरनेके समाचार भी न छापे। यह भी बेजिम्मेदारी और शरमकी बात है !

अब जैनसमाजसे हम कहदेना चाहते हैं कि मुनि होते न होते तो उनके भ्रष्ट होनेके समाचार आने लगे। कोई किसी औरतको लेकर भागा, कोई कहीं छुपगया। कोई मरगया। कोई आत्महत्या कर गया। बाकी जो बचे हैं उनमें अधिकांश नारकियों की तरह लड़रहे हैं। गुरु-शिष्यमें भी दलबन्दियाँ खड़ी होगई हैं। मुनित्वकी चिन्ता नहीं है, समाजसेवा की भावना नहीं है, बस 'ख्यातिलाभ पूजादि चाह, धर करत विविध विध देहदाह' हैं इन लोगोंको निभाना दुराचारका ताण्डव कराना है। ये लोग स्वयं डूबेंगे, दूसरोंको डुबायेंगे, तथा समाजके सिर पर कलंकका ऐसा टीका लगायेंगे जो कभी न धुलेगा।

जैनजगत्ने जो मार्ग बतलाया है और आंशिक रूपमें जिसका थोड़ा बहुत अनुसरण भी लोग करने लगे हैं उसीका पूर्णरूपमें अनुसरण करनेकी जरूरत है। अभीतक सैकड़ों वर्षोंसे दिगम्बर मुनि नहीं थे, परन्तु इससे दिगम्बर जैनसमाजकी कुछ भी हानि नहीं थी। और अब ये जितनी जल्दी जायँ, उतना ही अच्छा है। आजका युग ऐसे गुरुडमके विरुद्ध है। दुनियाँ उसका नाश कर रही है। ऐसे असमयमें अगर हम इस पौधेको नये सिरेसे लगायगें, तो इसका नाश तो होगा ही साथ ही इनके पीछे सारा बगीचा उजड़ जायगा।

अगर मुनियोंका रक्षनाही है तो उन्हें आसमान पर मत चढ़ाओ ! उनको पापोंको मत छिपाओ ! बल्कि उनका भंडाफोड़ करके, उनका ऑपरेशन कर दो जिससे उनकी रक्षा हो और दूसरोंकी भी रक्षा हो। इनमें जो दम्भ और झगड़ालूपन आगया है, उसे मिटादो। अगर ये दुर्गुण न मिटें तो इन्हेंही मिटादो। इसीमें तुम्हारा, इनका तथा जगत्का कल्याण है।

सत्यसमाज मंदिर।

सत्यसमाजकी स्कीममें जो मंदिरके विषयमें लिखा गया है उसके विषयमें एक भाई लिखते हैं।

"आप शायद एक पंथी मंदिरको ही साम्प्रदायिक मंदिर मानते हैं, अनेक पंथी (स्कीममें वर्णित)

मंदिरको नहीं। मुझे तो इसमें सम्प्रदायकी बू आती है। अगर सत्यसमाजमें से मंदिरव्यवस्था निकाल दी जाय, तो क्या हर्ज है? बिना मंदिरव्यवस्थाके भी भारतमें अनेक नये सम्प्रदाय फले फूले हैं। जान पड़ता है, नई बात प्रचार करनेकी दृष्टिसे मंदिरव्यवस्था रक्खी गई है। अगर ऐसा है तो क्या यह एक प्रकारका मोह नहीं है? जिन परम-आत्माओंकी मूर्तियाँ रहेंगी उनकी ऐतिहासिकता और चरित्रमें घोर विरोध होना सम्भव है। उदाहरण लीजिये। ता० १६-७-३३ के जैनजगतमें पृ० २३ में एक सज्जनने (जो कि सत्यसमाजके नैष्ठिक सदस्य बननेके योग्य हैं) कृष्णको कायर और दुःशील बतलाया है और आपने कृष्णको कर्मयोगी लिखा है। अब बतलाइये कृष्णको कायर और दुःशील माननेवाले सज्जन, जब नैष्ठिक मंदिरमें कृष्णमूर्ति विराजमान होगी तब, उसे वे किस प्रकार पूज्य (आदर करने योग्य) समझेंगे? देखिये, कहीं ऐसा न हो कि ये मंदिर पत्थरकी नाव जैसा काम करें"

जितने अधिक सम्प्रदायोंका समन्वय किया जायगा, साम्प्रदायिकता उतनी ही कम होगी। साम्प्रदायिकताके नाश करनेका यह सर्वोत्तम उपाय है। आपको साम्प्रदायिकताकी बू आती होगी, परन्तु उस बू का चिन्ह क्या है? क्या किसी आदर्शका मूर्तमन्त रूप बनाना ही साम्प्रदायिकता है? या एकान्त आग्रहसे सत्यकी अवहेलना करना? यदि पहिली बातको भी आप साम्प्रदायिकता मानते हैं, तब तो साम्प्रदायिकता कोई बुरी चीज न कहलाई, क्योंकि जबतक मानव शरीरमें हृदय है तबतक उसे अपनी भावनाओंका मूर्तमन्तरूप अवश्य ही चाहिये। अगर उसे वह रूप न दिखलाया जायगा तो वह अन्य बुरे रूपोंकी तरफ आकर्षित होगा। अगर साम्प्रदायिकताका आप दूसरा रूप मानते हैं, जैसा कि मैं मानता हूँ, तो सत्यसमाज मंदिरमें साम्प्रदायिकता नहीं है; क्योंकि न तो वहाँ एकान्त आग्रह है, न सत्यकी अवहेलना।

सत्यसमाजमें से अगर मंदिरव्यवस्था निकालदी जाय तो इसका अर्थ यह होगा कि सत्यसमाजमें बुद्धिजीवियोंको छोड़कर और किसीको स्थान नहीं है। सभी धर्मोंके महात्माओंके लिये हमें जिस आदरभावको व्यक्त करनेकी जरूरत है, उसके पाठ पढ़ानेका हमारे पास कोई स्थान न रह जायगा। वर्तमानके मंदिरोंको सुधारनेके लिये हम कोई नमूना पेश न कर सकेंगे। दूसरे धर्मके महात्माओंके साम्हने सिर झुकानेमें जो संकोच होता है, उसे दूर करनेका कोई उपाय न रह जायगा।

बिना मंदिरके भी सम्प्रदाय फले फूले हैं इससे सिद्ध होता है कि अगर साम्प्रदायिकता आना होगी तो बिना मंदिरके भी आजायगी, और नहीं आना होगी तो मंदिरके होनेपर भी न आयगी। यह सब मंदिरके होने न होने पर नहीं, किन्तु आदर्श और विचारोंकी उदारतापर निर्भर है। मंदिरव्यवस्था, नई बातके प्रचारके लिये नहीं, किन्तु उदारताका पाठ पढ़ानेके लिये तथा मंदिरसुधारका नमूना पेश करनेके लिये है।

महात्माओंके चरित्र आदिमें विरोध ही हो सकता है। विरोधकी घोरता सत्यसमाजका वातावरण नष्ट करदेगी। महात्माओंके जीवनमें भी कमजोरियाँ होती हैं, और एक इतिहासज्ञके आसनपर बैठकर उन कमजोरियोंका उल्लेख भी किया जा सकता है, परन्तु उनके प्रचलित जीवनचरित्रमें अतिशयोक्ति आदिको निकालकर जो आदर्श चमकता दिखलाई देगा उसीको वहाँ प्रधानता दी जायगी। अगर कोई भाई श्रीकृष्णको कायर समझता है तो उस भाईकी बात सुननेको मैं तैयार हूँ। ऐतिहासिक दृष्टिसे उस पर विचार करनेमें कोई हानि नहीं है। परन्तु सत्यसमाजमंदिरमें हमें धार्मिक दृष्टिसे विचार करना है। कर्मयोगी श्रीकृष्णका महात्मापन बतलाना है। सच बात तो यह है कि हमें राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, जरथुस्त, ईसा, मुहम्मद आदिसे कुछ मतलब नहीं

है। मतलब है हमें उनके अनुयायियोंसे। इन सबका समन्वय इसलिये है कि उनके अनुयायियोंका समन्वय हो। हम अपनेमें भी त्रुटि देखना सीखें और दूसरोंमें भी गुण देखना सीखें। यदि आज कोई भाई श्रीकृष्णके विषयमें आदर नहीं रखता तो उसे सत्यसमाजका सदस्य बनने पर आदर करना आ जायगा और वह धार्मिक दृष्टिसे निन्दा न करेगा।

मान लो कोई भाई किसी महात्माके विषयमें आकर्षण नहीं रखता तो वह उसका उपयोग न करेगा, परन्तु साधारण शिष्टाचारका पालन उसे करना चाहिये। जैसे, कोई व्यक्ति महात्मा गाँधीके विचारों के विरुद्ध हो सकता है, उनके जीवनमें उसे बहुतसे दोष दिखलाई दे सकते हैं, परन्तु कभी उनके यहाँ जानेका या कहीं मिलनेका अवसर आवे तो समाज में उनका जो स्थान है और अपना जो स्थान है, उसके अनुसार शिष्टाचारका पालन करना आवश्यक है। उसी प्रकार राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध आदिके विषयमें शिष्टाचारका पालन करना चाहिये।

जो मूर्तिका आदर न करना चाहते हों वे न करें। परन्तु मूर्तिका आदर करने वालेकी निंदा न करें। बस, उनके लिये इतना ही आवश्यक है। मूर्ति न माननेवालोंके लिये एक ऐसे स्थानकी आवश्यकता तो है ही, जहाँ सब लोग मिल सकें और जो स्थायी हो। इसके लिये ऐसे उदार मंदिरकी आवश्यकता है। मंदिरमें प्रार्थनाके सिवाय और कोई पूजाविधि या द्रव्यपूजाको स्थान न रहेगा, जिससे दलबन्दी हो या विधियोंका संघर्ष हो। इस विषयकी जो छोटी बातें हैं उनके विषयमें मैंने विचार किया है, किन्तु उन सब बातोंपर प्रकाश तभी पड़ सकता है जब वे मंदिर बनकर तैयार हों। विश्वास करने या न करने के लिये आप स्वतन्त्र हैं, परन्तु यह मैं कह सकता हूँ कि वे पत्थरकी नाव न होंगी।

मिथ्याभाषी और अपशब्द प्रयोजक कौन है?

उपरोक्त शीर्षकका एक लेख खंडेलवाल हितेच्छु के अंक २४–२५ में प्रकाशित हुआ है। उसमें सुधारकोंको मिथ्याभाषी और विरोधियोंको सत्यभाषी सिद्ध करनेकी असफल चेष्टा की गई है। हमारा विरोधीदल कितना सत्यभाषी और मिष्टशब्द प्रयोजक है यही दिग्दर्शन कराना इस लेखका उद्देश्य है।

अभी हालमें कलकत्तेमें जो मानहानि केस बा० जुगमन्दिरदासजी जैन और बा० दुलीचन्दजी परवार पर चलाया गया था उसके विषयमें अभी भीतरी बातें लिखना उपयुक्त न होगा, क्योंकि केस अभी हाईकोर्टके विचाराधीन है। तो भी विरोधीदलकी सत्यवादिता (?) प्रकट करनेके लिए दो चार नमूने उक्त कोर्टमें शपथपूर्वक (धर्म उठाकर) दिये हुए बयान तथा जिरहसे उद्धृत करना अनुचित न होगा:—

(१) जैनियोंमें खंडेलवाल और जैसवाल दो दल हैं।
(२) मैं दिगम्बर जैन हूँ, और मेरी जानकारीमें उनमें यही एक अन्तर्जातीय विवाह हुआ है।
(३) मैं अन्तर्जातीयविवाहका समर्थन करता हूँ यदि वे एकही जातिके हों। इसलिए मैं ब्राह्मण खंडेलवाल और वैश्य खंडेलवालके विवाहका समर्थक हूँ, तथा इसीप्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र सभी यदि खंडेलवाल हों तो मैं उस विवाह का समर्थक हूँ।
(४) धर्मशास्त्रानुसार शूद्रवृत्ति करनेको मैं तैयार हूँ।

इन बातोंकी सत्यता बतानेके लिए कोई विशेष वक्तव्य देनेकी आवश्यकता नहीं तो भी हमारे डींग हाँकनेवाले महानुभावोंके सन्तोषके लिए कुछ खुलासा कर दिया जाता है;—

(१) जैनियोंमें खंडेलवाल और जैसवाल दो ही दल हैं, इसे (धर्म उठाकर) शपथपूर्वक अदालतके सामने कहना यह विरोधियोंसे ही बन सकता है। सुधारकदल इतना अतिसाहसी नहीं है। जिस बातको जैनियोंका बच्चा बच्चा जानता है कि जैनियों

में चौरासी जातियाँ हैं, उनमें केवल दो जातियाँ बतलाना वास्तवमें सत्यवादिताका अपूर्व उदाहरण है, जिस पर अवश्य ही विरोधियोंको गर्व होना अस्वाभाविक नहीं है!

(२) सत्यवादिताका दूसरा नमूना, जैनियोंमें यही एक अन्तर्जातीयविवाह हुआ है, कहकर दिखाया गया है। जब अदालतोंमें ही उनकी आँखोंमें अङ्गुली देकर जैनमित्रकी फाइलसे बीसियों उदाहरण बताये गये तब कहीं जाकर आपने स्वीकार किया कि हाँ, कितनेक अन्तर्जातीय-विवाहोंके समाचार मुझे अब जैनमित्रकी कापियोंसे मिले हैं। कहिये इतना सत्यवादी तो शायद जैनसमाजमें खोजनेपर भी न मिले! पण्डितजीको अबतक मालूम ही न था कि जैनियों में और भी अन्तर्जातीयविवाह हुए हैं! ऐसी सत्यवादिताके लिए विरोधीदलको पंडितजीके लिए कम से कम एक मानपत्र देना चाहिए और साथ ही खण्डेलवालहितेच्छुके सम्पादकको भी, क्योंकि आपकी सत्यवादिताको खंडेलवाल हितेच्छुने ही तो प्रकट किया है।

(३) तीसरा आक्षेप तो खंडेलवाल समाज पर है जिसमें आप क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र सभी वर्णोंमें परस्पर विवाहके समर्थक हैं, यदि वे सभी खंडेलवाल जातिके हों। परन्तु क्या पण्डितजीने अपने मित्र पाँड्याजीको भी पूछ लिया है, क्योंकि दुर्भाग्यवश जैनेतर जातियोंमें चारों वर्णोंमें खंडेलवाल पाये जाते हैं? क्या खंडेलवाल समाज पंडित जीके वक्तव्यानुसार विवाहसम्बन्ध करनेको तैयार है? यदि तैयार हो तो बड़ी खुशीकी बात है।

(४) जो लोग शूद्रवृत्ति करनेको तैयार हैं वे शौक से करें, उन्हें कौन रोक सकता है? काव्यतीर्थजीको चाहिए कि शीघ्र कोई शूद्रवृत्ति ग्रहणकर अपने कितनेक सहयोगियों और मित्रोंको, जो ठाले बैठे हैं, आदर्श उपस्थित करेंगे। यदि वे ऐसा न करेंगे तो फिर अवश्य ही सत्यवादिताको बट्टा लग जायगा। देखें वे कबतक अपने वचनको कार्यरूपमें परिणत कर सत्यवक्तापना सिद्ध करते हैं!

यह तो केवल नमूना मात्र है। जब कभी पूरा विवरण प्रकाशित होगा तभी समाज सारे केसका कच्चाचिट्ठा जान सकेगा।

बाहरकी बात तो जाने दीजिये, कलकत्तेमें तो विरोधीदल मात्र सुधारकदलका अनुकरण कररहा है। यदि कुछ अन्तर है तो यही कि सुधारक जिसे आज करता है, विरोधीदल उसके १०-१५ वर्ष पीछे करता है। इसके एक दो उदाहरण दे देना अनुचित न होगा।

छापेके ग्रन्थोंका आजसे १५ वर्ष पहले सुधारकों ने प्रचलन जारी किया। उस समय विरोधियोंने इसे रोकनेके लिए क्या क्या न किया? परन्तु आज वे विरोधी ही स्वयं शास्त्रोंको छपा छपाकर बेचकर अपनी आजीविका चलाते दृष्टिगोचर होते हैं!

यज्ञोपवीत धारण करानेका आन्दोलन ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीने आजसे तीस वर्ष पहिले आरम्भ किया था। उस समय इसे भी इनेगिने लोगोंने स्वीकिया था, परन्तु आज विरोधीदल किस रूपमें इसे स्वीकार कर रहा है, इसे बताना व्यर्थ है।

कलकत्तेमें ही जब दिगम्बर जैनयुवक समिति खोली गई थी तो कतिपय बुद्धिविशारदोंने घोर विरोध किया था, यही नहीं बल्कि इसे हरतरह बन्द करानेकी चेष्टाएं कीं। सब चेष्टाएँ विफल हो जाने पर इतना प्रभाव तो हुआ ही कि उस समय इसके पुस्तकालयमें जैनग्रन्थ न रखे जा सके। अब पीछे से जैनग्रन्थ भी रखे जाने लगे हैं। मगर आज विरोधीदल उनका ही अनुकरण कर सभा और पुस्तकालय खोल चुका है। और भी बहुतसी बातें हैं जिन पर विरोधी आज १०-१५ वर्ष बाद खुल्लमखुल्ला बराबर चल रहे हैं। अन्तर केवल यही है कि सुधारक लोग उन बातोंको १०-१५ वर्ष पहिले स्वीकार कर चुके थे। अस्तु, विरोधी लोगोंने अब तक किया भी वही है, कर भी वही रहे हैं और करें-

गे भी वही, किन्तु १०–१५ वर्षके बाद।

अब रहा सामाजिक मामलोंमें मुकदमे चलाने का विषय सो सुधारक लोग न्याय पथके पथिक हैं। वे सिफ़ारिशों, या अन्य अनुचित उपायोंका अवलंबन करना अनुचितही, नहीं बल्कि पाप समझते हैं। ये तथा अन्य ऐसे कुछ कारण हैं कि वे विरोधी दलसे हार जाते हैं, जिनमें कि विरोधी दल सिद्धहस्त है। सो इसप्रकारकी हारमें भी सुधारक लोग जीतही अनुभव करते हैं, क्योंकि आखिर संसार अन्धा नहीं है। वह असलियत पर पहुँचे बिना नहीं रहता और जहाँ जनताके हृदयपर यह प्रभाव हुआ कि पक्ष तो सुधारकोंका सत्य था परन्तु किन्हीं अनुचित उपायोंसे ऐसा होगया है, कि सुधारकोंका कार्य सफल हो जाता है, भले ही प्रत्यक्षमें वे हारे समझे जायँ।

अपशब्दोंके प्रयोजक कौन हैं, यह जनता खूब जानती है। इसके लिये विवेचन करना व्यर्थ कागज़ काला करना है। पक्षपातग्रसित मनुष्योंको सीधी सच्ची और शास्त्रानुकूल बात भी नहीं जँचती, इसके लिए सुधारकदल क्या करे? आशा है कि समाज "हितेच्छु" जैसे कलहप्रिय और अहितेच्छुओंसे सावधान रहेगा।

विनीत—नेमीचन्द जैन, कलकत्ता।
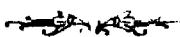
साम्प्रदायिकताका दिग्दर्शन।

(१४)

लेखक—श्रीमान पं० सुखलालजी।

(अनुवादक—श्री० पं० जगदीशचंद्रजी ऐम० ए०)

(ङ) आदिपुराण

जिससमय भगवान ऋषभदेवने असि (शस्त्र धारण), मसि (लिखना), कृषि (खेती), विद्या, वाणिज्य और शिल्प इन छह कर्मों से लोगोंको आजीविका चलाने का उपदेश दिया, उससमय उन्होंने तीनवर्णोंकी स्थापना की। शस्त्रधारण करनेवाले क्षत्रिय, खेती व्यापार और पशुपालन करनेवाले वैश्य, तथा क्षत्रिय और वैश्य की सेवा करनेवाले शूद्र कहलाये। धोबी, नाई वगैरह कारु, और धोबी, नाई को छोड़कर अकारु, इस प्रकार शूद्रों के दो भेद हुए। कारुमें प्रजासे बाह्य अस्पृश्य शामिल किये गये, बाकीके स्पृश्य कहलाये। प्रत्येक वर्णवाले अपने लिये निश्चित कर्मों को करतेथे तथा विवाह, जातिसंबंध आदि सम्पूर्ण व्यवहार और सम्पूर्ण निर्दोष आजीविका श्रीऋषभदेवके बताये अनुसार चलती थी (पर्व १६ श्लोक १७९ से १८८)

भगवान के वर्णनमें—जैसे हिमालय गंगाको धारण करता है वैसे ही ऋषभदेव कंठमें हार, कटिभागमें कटिसूत्र और कंधे पर यज्ञोपवीत (जनेऊ) धारण करके शोभित होते थे (श्लोक २३५)

भगवानने अपने हाथमें शस्त्र धारण करके क्षत्रियकर्म, जंघासे यात्रा करके वैश्यकर्म, और पैर से यात्राकरके शूद्रकर्म का प्रतिपादन किया *। इन तीनों वर्णोंकी ऋषभदेवने रचना की। पीछेसे भरत ने शास्त्रोंको पढ़ाकर ब्राह्मण बनाये और प्रत्येकके कर्मव्यवहार वगैरह निश्चित हुए। उससे पहलेकी भोगभूमि अब कर्मभूमि हुई (पर्व १६ श्लोकसे २४९)

गौतमने कहा, हे श्रेणिक, मैं क्रमसे ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति कहता हूँ, तू सुन। जिससमय दिग्विजय करके भरत वापिस आये, उससमय उन्होंने विचार किया कि यह सम्पूर्णधन जैन महामह यज्ञमें लगा कर विश्वको सन्तुष्ट करना चाहिये। मुनिलोगतो निस्पृह हैं, इसलिये गृहस्थोंमें जो दान और मानके योग्य हों उन्हींका सत्कार करना चाहिये। इस दान मानके योग्य अणुव्रतधारी श्रावक लोग ही हैं, इस विचारसे इन श्रावकोंकी परीक्षा करनेके लिये भरत ने उपस्थित राजाओंको अपने अपने परिवारके

* तुलना करो पुरुषसूक्त मं० १० सू० ९०, ऋ० १२ 'बाहुसे राजाओंको; उरुसे वैश्योंको और पैरसे शूद्रोंको उत्पन्न किया।'

साथ अलग अलग आनेको आमंत्रित किया। दूसरी ओर, भरतने अपने महलके आँगनमें हरी वनस्पति फल, फूल आदि को फैलादिया और हरेक आगंतुक को उस रास्तेसे होकर महलमें आनेको कहा। जो लोग अज्ञानी थे, वे वनस्पतिको खूँदकर बेधड़क महल में चलेगये। परन्तु बहुतसे लोग बाहर ही खड़े रहे। भरतने इन लोगोंको अंदर आनेको कहा, परन्तु उनलोगोंने सचित्त वनस्पतिको खूँदकर भीतर आने के लिये इन्कार किया। भरतने उन लोगोंको व्रतधारी समझकर दूसरे रास्तेसे महलमें बुलाया, तथा अनेक तरह भरतने इन लोगोंका सत्कार किया और व्रतकी निशानीके रूपमें पद्मनिधिसे जनेऊ मँगाकर भरतने इन लोगोंको जनेऊसे चिन्हित किया। किसीको एक, किसीको दो, इसतरह सूत के ग्यारह तागों तकका जनेऊ उन लोगोंको दिया। जिसके एक प्रतिमा † थी उसे एक, दो वालेके दो और ग्यारह प्रतिमावालोंको ग्यारह सूत्रोंसे चिन्हित किया गया। भरतने प्रत्येक व्रतधारीका आदर किया और अव्रतियोंको बाहर किया। व्रतधारी लोग सत्कार पानेसे अपने अपने व्रतमें और अधिक स्थिर होगये तथा लोग भी उनका आदर सत्कार करने लगे। भरतने उपासकाध्ययन नामके सातवें अंगमें से इन व्रतियोंको इज्या (पूजा), वार्ता, दत्ति, § स्वाध्याय संयम और तपका विस्तारपूर्वक उपदेश दिया। इस उपदेशमें भरतने अनेक तरहके जैनयज्ञ, दानके प्रकार वगैरह समझाये और अन्तमें बताया कि जो जाति (जन्म) से द्विज हो, परन्तु तप और श्रुतके संस्कार से रहित हो, वह नाममात्रसे द्विज कहा जाता है। तप और श्रुतके संस्कारसे युक्त जातिद्विज ही वास्तविक द्विज है। इन द्विजोंके संस्कार दृढ़ बनानेके लिये भरतने श्रावकाध्याय संग्रहमें से गर्भान्वय, दीक्षान्वय, और कर्त्रन्वय नामकी तीन प्रकारकी क्रियाओंका उपदेश दिया। भरतने गर्भान्वयके ५३ दीक्षान्वयके ४८ और कर्त्रन्वय क्रिया के ७ भेद बहुत विस्तारके साथ * प्रतिपादित किये।

दुःस्वप्नका फल: ब्राह्मण पूजा— एक बार भरतने बहुतसे दुःस्वप्न देखे। इन स्वप्नों का सामान्यरीतिसे अनिष्ट फल जानकर भी भरत इन स्वप्नों का विशेष खुलासा जाननेके लिये भगवान ऋषभदेवके पास गये और स्वप्नोंको कह सुनाया।

इन विलक्षण स्वप्नोंमें एक स्वप्न ऐसा था जिस मे लोग नैवेद्य भक्षण करते हुए कुत्तोंकी पूजा करते थे। इस स्वप्नका फल बताते हुए भगवानने कहा अव्रती ब्राह्मण गुणी और व्रतीकी तरह सत्कार प्राप्त करेंगे। इस फलश्रुति कहनेके पहले भगवान ने भरतके स्थापित किये हुए ब्राह्मण वर्णके विषयमें मार्मिक विचारोंको कहा। भगवानने कहा "हे वत्स, तूने इन धर्मात्मा द्विजोंकी साधुओंकी तरह पूजाकी है सो बहुत अच्छा किया, परन्तु इसमें जो थोड़ा दोष है उसे सुन। तूने जो गृहस्थोंकी रचनाकी है, यह रचना सत्ययुग तकही रहेगी, परन्तु कलियुग

† एक प्रकारके अभिग्रह अथवा नियमको प्रतिमा कहते हैं। ये नियम ११ होते हैं। ये नियम श्रावकोंके लिये हैं। एक मासकी पहली प्रतिमा, दो मासकी दूसरी, इसतरह बढ़ते बढ़ते ग्यारह मासकी ग्यारह प्रतिमायें होती हैं। हरेक प्रतिमामें भिन्न भिन्न गुणोंका पालन करना होता है (देखो उपासक दशांग पृ० १५)

§ दान देते समय एकबार एक साथ जितना दिया जाय वह एक दत्ति, तथा दूसरी बार जितना एकही साथ दिया जाय वह दूसरी दत्ति कही जाती है।

* गर्भाधानसे मोक्षप्राप्ति तक ५३ संस्कार किये जाते हैं। ये सब संस्कार गर्भान्वय क्रियामें गिनेजाते हैं। इस प्रकारके १६ संस्कार और १६ से अधिक संस्कार ब्राह्मण शास्त्रोंमें वर्णन किये गये हैं। व्रत स्वीकार करने से मोक्ष प्राप्त करने तक की आनेवाली विभागवार क्रियाओंको दीक्षान्वय क्रिया कहते हैं। ये क्रियायें ४८ होती हैं। इसी तरह कर्त्रन्वय क्रियायें ७ हैं। इन क्रियाओंको मोक्षमार्ग [illegible] आराधक [illegible] कहा है। इन सम्पूर्ण क्रियाओंका विस्तृत वर्णन पढ़ने लायक है। [illegible] में समग्र ब्राह्मण वर्णाश्रम व्यवस्थाकी छाप है। (देखो, आदि पुराण पर्व ३८-३९-४०)

पास आतेही ब्राह्मण लोग जातिके अभिमानसे, सदाचार से भ्रष्ट होकर मोक्षमार्गके विरोधी बनेंगे। कलियुगमें अपनी महत्ताके अभिमानमें फँसकर ये लोग धनकी इच्छासे मिथ्याशास्त्रद्वारा सब लोगोंको मोहित करेंगे, तथा आदरसत्कारसे अभिमान बढ़नेके कारण वे लोग उद्धत होकर स्वयंही शास्त्रों की रचना करके लोगोंको ठगेंगे।"

"ये अधार्मिक ब्राह्मण प्राणियोंकी हिंसामें परायण होंगे, मांस भक्षणको पसन्द करेंगे और प्रवृत्ति रूप धर्मकी घोषणा करेंगे। ये लोग अहिंसाधर्ममें दोष बताकर वेदोक्त मार्गका पोषण करेंगे। पाप चिन्हरूप जनेऊ धारण करनेवाले ये लोग हिंसामें रत होकर भविष्यमें इस श्रेष्ठ मार्गके विरोधी होंगे।"

"इसलिये यद्यपि भविष्यकी दृष्टिसे ब्राह्मणोंकी रचना दोषरूप है तथापि अब वर्णकी स्थापना करने के बाद मर्यादा रखनेके लिये उसका लोप नहीं करना ही योग्य है। तूने जो पुजते हुए कुत्तोंका स्वप्न देखा है उसका फल भविष्यमें होनेवाली धर्मस्थितिका नाश है, धर्मभ्रष्ट ब्राह्मणोंकी पूजा इसी स्वप्नका फल है।" (विस्तारके लिये देखो पर्व ३८, ३९, ४०, ४१)"

अन्यमतियोंका संग त्यागनेके लिये भरतका उपदेश

एक बार राजसभामें उपस्थित हुए सम्पूर्ण मुख्य क्षत्रियोंको उनके धर्मका उपदेश देते हुए भरतने कहा कि तुम स्वयं ही उच्च वंशमें उत्पन्न हुए हो, इसलिये तुम्हें अन्यमतवालोंके ऊपर श्रद्धा रखकर उनके पाससे शेष (पूजा आदिसे बचा हुआ चाँवल) और स्नानोदक (अभिषेकका पानी) न लेना चाहिये, क्योंकि उससे तुम्हारी महत्ता कम होती है, तथा और भी दोष लगते हैं। दूसरे मतवालोंको नमस्कार करनेमें बड़प्पन नहीं है। यदि कोई द्वेषी हो, तो वह शेष, स्नानोदक आदि द्वारा विषप्रयोग, वशीकरण, के प्रयोगोंसे तुम्हें नष्ट कर सकता है। अतएव राजाओं को अन्य मतवालोंके पाससे शेष, शांतिवचन, शांति मंत्र, पुण्याहवाचन आदि कुछ भी न लेना और न कराना चाहिये।

जो इन बातोंको नहीं मानते वे नीचकुलमें पैदा होते हैं। परन्तु जिनेश्वर स्वयं क्षत्रिय हैं, अतएव उनका स्नानोदक, चरण, पुष्प आदिके स्वीकार करनेमें कोई दोष नहीं है, बल्कि उससे अनेक लाभ हैं। इसी तरह यदि कोई ब्राह्मण या वैश्य मुनि हो जाय तो उसके शेष आदि लेनेमें कोई बाधा नहीं है, क्योंकि जो गुणसे क्षत्रिय हो उसे मुनि कहते हैं, और सजातीयको क्षत्रिय कहते हैं, इसलिये सजातीयकी वस्तु लेनेमें दोष नहीं है। भरतने कहा है कि जो राजा लोग इस प्रकार वर्तन नहीं करेंगे उन्हें अन्य मतवाले ब्राह्मण मिथ्यापुराणका उपदेश देकर ठग लेंगे। (पर्व ४२ पृष्ठ १४८५ से आगे)

जैन अग्निहोत्रका उपदेश।

भगवानके निर्वाणोत्सवके बाद इन्द्र और देवों ने श्रावक ब्रह्मचारियोंको उपदेश देते हुए कहा कि तुममें से जो लोग उपासकाध्ययन नामक सातवें अङ्गके अभ्यासी हो और सातवीं, आठवीं, नौवीं, दसवीं और ग्यारहवीं प्रतिमाके धारक हो उन्हें गार्हपत्य, परमाहवनीयक और दक्षिणाग्नि नामके तीन कुंड बनाकर उसमें त्रिसंध्य अग्नि स्थापित कर जिनेन्द्रकी स्थापना करके पूजा करनी चाहिये। उससे तुम लोग आदर सत्कार प्राप्त करके अतिथिपदको प्राप्त करोगे। (पर्व ४७ श्लोक ३५० से ३५३ पृ० १६५८)
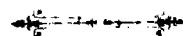
सत्यसमाज व्याख्यानमाला बम्बई।

उक्त समाजकी ओरसे नवमाँ व्याख्यान गत ता० ७-१०-३४ ई० रविवारको संध्या समय ७॥ बजे हीरा बागके व्याख्यानभवनमें—

"सत्यका वास्तविक स्वरूप और उसकी व्यावहारिक उपयोगिता"

विषय पर आयोजित किया गया था। उक्त अवसरके प्रधान वक्ता महाशय काशीनाथजीका व्याख्यान नीचे दिया जाता है:—

जबसे मनुष्यमें सोचनेकी भावनाका प्रादुर्भाव

हुआ तबसे वह सत्यके निर्णय करनेकी कोशिश करता आ रहा है। वैज्ञानिकलोग देश-कालकी परिस्थितिके अनुसार उसकी व्याख्या करते आ रहे हैं। परन्तु वे सब सत्यके अंतिम निर्णय करनेमें किस अंश तक पहुँचे हैं? और पहुँचे हैं या नहीं? अथवा पहुँचेंगे भी या नहीं? यह नहीं कहा जासकता।

'सत्य' विशाल है। इसकी व्याख्या अनन्तकाल से होती आई है और होती चली जायगी। इसकी महिमा स्मृति, पुराण, वेद आदि शास्त्रोंमें भी गाई गई है। उनमें भी सर्वोपरि सत्यको ही धर्म बतलाया गया है। इसलिये अब हमें यह देखना चाहिये कि वह कौनसा सत्य है और वह है क्या? और महात्माओं, ऋषि मुनि आदिकोंने किस सत्यकी महिमा गाई है? यहबात अवश्य ही विचारणीय है।

आत्मा-परमात्माके सम्बन्धमें विचार करते समय यह कहा जाता है कि परमात्मा सत्य स्वरूप है अर्थात् एक वस्तु है जिसे 'सत्' कहते हैं, और फिर उसके लिये कहा जाता है कि उसका त्रिकाल में भी नाश नहीं होता। तब प्रश्न यह उठता है कि वह त्रिकाल या काल कौनसा है? और उसमें सत्य का वास्तविक स्वरूप क्या माना गया है?

उसके लिये कहा गया है कि 'जो पदार्थ कभी नष्ट नहीं होता या यों कहा जाय कि त्रिकालमें भी किसी चीजका कोई रूप परिवर्त्तन नहीं होता तो वह सत्य स्वरूप है।'

इसलिये क्या हम उक्त व्याख्याको सत्य मानलें? सत्यकी व्याख्या हम कई प्रकारसे कर सकते हैं। जैसे:—(१)

Metaphysical or Unknown or Unknowable or Superphysical	Truth अर्थात्	इन्द्रियातीत या अनिर्वचनीय या पारमार्थिक या अज्ञेय	सत्य

(२) Scientific-truth अर्थात् वैज्ञानिक सत्य
(३) Ethical-truth अर्थात् आचारिक-सत्य
(४) Practical-truth अर्थात् व्यावहारिक-सत्य
(५) Political-truth अर्थात् राजनैतिक-सत्य
(६) ... ,, दार्शनिक-सत्य
(७) Psychological-truth अर्थात् मनोवैज्ञानिक-सत्य।

अंतिम-सत्यका निर्णय करनेके लिये दार्शनिकों ने जब सोचा तो एक ब्रह्म-सत्य ही उन्हें अंतिम सत्य मालूम हुआ। वैज्ञानिकोंने सर्व प्रथम Atoms (एटम्स) में और उसमें से Electrons (विद्युत्-अणु) में घटाया। वेदान्ती-लोग भी अंतिम-सत्य ब्रह्म या चेतनको ही मानते हैं। परन्तु उसे सिद्ध करनेके लिये उनके पास कोई ऐसा वैज्ञानिक प्रमाण नहीं हैं; वे उसे गोलमोल ही सिद्ध किया करते हैं। ये सब लोग Monism के मानने वाले हैं, अर्थात् अंतिम-सत्य एक पदार्थ है और वह चाहे चेतन हो या जड़। वेदान्तियोंका कहना है कि पृथ्वीके सब पदार्थ एक चेतन-ब्रह्मसे ही उद्भूत हुए हैं। उसीसे पहाड़, नदी, नद आदिकी सृष्टि हुई है, लेकिन जड़-वादी या Materialist कहते हैं कि एक पदार्थ जड़ है और क्रमशः उसमें विकास होते होते कई वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं फिर उनमें चैतन्य भी आ जाता है। वैज्ञानिकोंका कहना मात्र इतना ही है कि "हम खोज कर रहे हैं, अभी तक अंतिम-सत्यका निर्णय हम नहीं कर सके और यह भी नहीं कह सकते कि कब तक कर पावेंगे।" पंडितोंका या पुरातनवादियों का कथन ठेकेदारीका कथन है। वे कहते हैं कि जो हमारे शास्त्रोंमें लिखा है वही सत्य है। वे इस बात का दावा करते हुए नहीं चूकते कि इसके सिवाय और कोई सत्य हो ही नहीं सकता। वे अपने धर्म के शास्त्रके और कर्मकांडके शब्दोंको ही अंतिम-सत्यके निर्णयका भार दे देते हैं। हमें कहना चाहिये कि ऐसा दावा करने वाले लोग ढोंगी हैं। परन्तु जिन जिन लोगोंने सत्यके अनुशीलनमें दिमाग़ खपाया है, अपने विचारानुसार ही उसका प्रति-

पावन किया है, वे अवश्य ही हमारे लिये सन्माननीय हैं। वैज्ञानिकों, साम्प्रदायिकों और धार्मिक लोगोंमें इस प्रकारके कई अन्तर हैं।

दार्शनिकोंके मतानुसार हम सत्यको दो वस्तुओं में विभाजित करेंगे-(१) चेतन (२) जड़—किसीने चेतनको प्रधानता दी और किसीने जड़को। परन्तु अभी तक ठीक ठीक पता न लगा कि वह अंतिम वस्तु क्या है? चेतनका विचार करते हुए हमें उसका दूसरा नाम 'आत्मा' मान लेना पड़ता है। अब हमें सोचना चाहिये कि 'आत्मा' क्या है? वह कहाँ रहती है? और कैसा उसका स्वरूप है? परन्तु अभी तक उसका कोई पता नहीं लग पाया, इस बातको धार्मिक और साम्प्रदायिक जगत् नहीं मान सकता। वैज्ञानिक लोगोंका यही कहना है। साम्प्रदायिक लोग महामूर्खता की बातको तो मान लेंगे, परन्तु अनुभव और तर्कगम्य बातको नहीं।

दार्शनिकोंने सृष्टिके स्वरूपको आत्माके साथ घटाने पर यह निर्णय किया कि भिन्न भिन्न मतानुसार भिन्न भिन्न विचार हुआ करते हैं, जैसे:—

दुःख-सुखके आवागमनके लिये भिन्न भिन्न मतोंके भिन्न भिन्न माने हुए कारण हैं।

ईसाइयोंका कथन है—ईशूकी इच्छा।

मुसलमानोंका कथन है—खुदा करे सो होगा।

हिन्दुओंका कथन है—परमात्मा करे सो।

जैनियोंका कथन है—कर्मोंका फल है, आदि।

परन्तु हमें इनसबसे मतलब नहीं। हमें तो सिर्फ इतना ही देखना है कि आत्मा और सृष्टि की परिभाषामें अंतिम-सत्य क्या है?

आवागमन, परलोक, नरक आदि सब कोरी कल्पनाएँ हैं—ढोलमें पोल हैं, और इसी लिये आज कल बहुतसे लोग बाइबल आदि धर्मग्रन्थोंके सिद्धान्तोंको मानना भी छोड़ रहे हैं। और यदि सुधारकोंमेंसे कोई पुराने ग्रन्थोंका अनुयायी हो भी तो वह उनके विभिन्न अर्थ निकालता है।

Metaphysical या अनिर्वचनीय अथवा आत्मा-परमात्माके लिये मैं तो यह मानता हूँ कि मनुष्य की विचार-शक्ति परिमित है, उसे उसके संबंध में अन्वेषणकी ओर लगाना चाहिये। उसीमें उसे आनंद है और सुख है, परन्तु वह उसका, पूर्ण-सत्य का, पता नहीं पासकता। आत्मा Unknowable (अज्ञेय) है यद्यपि उपनिषद् बाइबिल आदि ग्रन्थों में उसके लिये कई विचार व्यक्त किये गये हैं। परन्तु वे उस समयके विचार हैं। समय-समयके विचार समयकी गतिविधिके साथहीसाथ परिवर्तित होते रहते हैं। इस लिये अभी तो हम यही कह सकते हैं कि उसका अभी तक कोई पता नहीं लगा।

अब रहा वैज्ञानिक सत्य, इस सम्बन्धमें पहिले ही कहा जा चुका है कि ये वैज्ञानिक बेचारे भोले-भाले सीधे-साधे आदमी हैं। ये आडंबरहीन, अहम्मन्यताहीन लोग हैं। ये लोग Phenominal जगत्का अन्वेषण कर रहे हैं। Phenominal जगत्का अन्वेषण रसायन, ज्योतिष आदि साधनों द्वारा हुआ करता है। वैज्ञानिकोंने अपने पुरुषार्थ से बहुतसी दबी हुई बातोंका पता लगाया है, और अब भी पता लगा रहे हैं। इसलिये हम यह मान सकते हैं कि वैज्ञानिक लोग उन्नति कर रहे हैं। वैज्ञानिकोंकी सत्यकी खोजका हमें प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है। परन्तु साधारण जनतामें False nationality अर्थात् साम्प्रदायिकता या दुराग्रहकी बू समा गई है।

Ethical-truth—अर्थात् आचारिक-सत्य मन, वचन और कायसे किसी कार्यके करनेको कहते हैं। जैसा मनमें है वैसा कहो और कहनेके अनुसार ही करो। यह आंशिक-सत्यका स्वरूप है, क्योंकि जितना जाने उतना ही करे यह असम्भव है। जानना और करना दोनों दो वस्तुएँ हैं। मनुष्यके विचार और कार्य परिमित हैं। इसलिये उसे सत्य पर तो अमल करना चाहिये परन्तु साथही देश, काल और परिस्थितिका खयाल अवश्य रखे।

Ethical-truth को सदाचारकी सीमाके

अन्दर रखकर लोगोंने देशका बहुत पतन किया है, क्योंकि इसके कारण ही देशमें अनेक कुप्रथाएँ चल रही हैं जिनका प्रयोग वैज्ञानिकोंके कथनानुसार करना आवश्यक है।

सत्यसे पतन भी हो सकता है और उन्नति भी। सत्यके Standard के लिये कसौटीके लिये उसका उचित प्रयोग करनेके लिये हमें सदाचार-सम्बन्धी सिद्धान्तोंका विचारपूर्वक प्रयोग करना चाहिये।

पारिवारिक, सामाजिक और धार्मिक जीवनमें सत्य कुछ और ही है। क़ानूनी-सत्य कुछ और है। राजनैतिक सत्य कुछ और है। क़ानूनके अनुसार जज महोदयको क़ानूनी पुस्तकोंके अनुसार ही फैसला देना होगा, न कि वास्तविक सत्यका। जजके लिये Metaphysical और Ethical-truth प्रमाणभूत न होगा।

अब, सत्यका प्रयोजन हेतु क्या हो? हम उसका प्रयोग क्यों कर करें? इस सम्बन्धमें, विभिन्न मत हैं। कोई कहता है 'ईश्वरसे डरनेके लिये'। कोई कहता है 'संसारके व्यवहारमें सुविधा है'। कोई कहता है "सत्यके पालन करनेसे हमारी उन्नति होती है, गौरव बढ़ता है" आदि।

परन्तु उपरोक्त सब कथन मात्र मौखिक क्रिया के लिये ही हैं। वास्तवमें आजकलका सत्य क़ानूनके कारण ही अवलम्बित है। यदि क़ानून न हो तो हम भी अपनी नियत बदल कर चोरी करने लगें, डाका डालने लगें, और जो इच्छा हो निर्बन्ध होकर जो चाहें सो करने लगें। क़ानून सत्यके पालनमें कितना सहायक है, इसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण यह है कि करफ्यू आर्डर जब होता है तब शहरके सब काम नियमित रूपसे होने लगते हैं। ठीक समय पर सारे नगरवासियोंको घरमें घुसकर बैठ जाना पड़ता है। घरसे बाहर निकले कि जान हथेली पर आई। घर में घुसकर बैठे रहनेसे रात्रिको शहरमें जितना भी पाप होता है सब बन्द हो जाता है, जैसे:—जुआ, सट्टा, वेश्यागमन पाप आदि। अतः यह सिद्ध हो गया कि क़ानून वर्तमानमें सत्यके पालनका मुख्य आधार है।

हमारा सत्य, मनोवैज्ञानिक सत्य (Psychological-truth) कुछ और ही है, क्योंकि समय समय पर हमें तरह तरहसे कार्य साधने पड़ते हैं, जैसे कभी झूठ बोलना पड़ता है, तो कभी सत्य बोलना पड़ता है। कभी ईमानदारीसे काम निकालना पड़ता है तो कभी बेईमानीसे आदि। व्यावहारिक सत्य भी इसी का नाम है। सत्यका Test यही है कि जितने मन, उतनेही मत और जितने मत उतनेही मन।

वर्तमानमें Politics की दृष्टिसे Nonviolence (अहिंसा) ही सत्य मालूम पड़ता है। कभी वह असत्य भी हो सकता है। इसप्रकार पूर्ण सत्य अज्ञेय है।

पं० दरबारीलालजी न्यायतीर्थका व्याख्यान।

आजके विषयके हम दो विभाग कर सकते हैं—(१) सत्यका स्वरूप (२) उसकी व्यावहारिक उपयोगिता। चूँकि पूर्ववक्ता महोदय कह चुके हैं कि सत्य अज्ञेय है, इसलिये उसका अज्ञेयत्व क्या है वह हमें जानना चाहिये, और फिर उस अज्ञेयत्व से ही काम चलाना चाहिये। उस अज्ञेयत्व को ही जीवनमें उतारना होगा।

सत्य अज्ञेय और अवक्तव्य अवश्य है, परन्तु उसमेंसे भी जीवनके लिये कुछ मिल सकता है। प्रत्येक समयमें मनुष्यकी मनोवृत्तिके अनुसार ही हमें सत्य की व्याख्या करनी होगी, क्योंकि सत्यकी व्याख्या इतनी विशाल है कि जिन्दगी भर भी उसके निर्णय करनेके लिये काफ़ी नहीं है। सत्यके लिये झगड़ा वहीं होता है जहाँ हम उसे अपने मनोनुसार मान कर अमलमें नहीं लाते। औषधिको सापेक्ष दृष्टिसे देखने पर विष और अमृत दोनों हो सकती है। इस लिये अपेक्षाकृत धार्मिक सत्य भी व्यावहारिक सत्य में मिल जाता है। परन्तु वैज्ञानिक सत्यकी व्याख्या इनसे भी परे है।

चूँकि प्रत्येक वस्तुमें शुभांश और अशुभांश दोनो ही रहते हैं—सत्य और असत्य दोनो ही रहते हैं, हमें चाहिये कि सत्यांश–शुभांशको तो खीच लें और असत्यांश–अशुभांशको छोड़ दें। ठेकेदारी–अहम्मन्यताका सत्य वास्तविक सत्य नही है और सामयिक-सत्य मात्र समय समयके लिये अच्छा होता है, न कि हमेशाके लिये। न कि प्रत्येक देशके लिये, प्रत्येक समाजके लिये। ठेकेदारीके सत्यका प्रयोग मनुष्यके जीवनके विकासमे सबसे अधिक बाधाकारक वस्तु है।

सत्यकी खोज करनेवालेको मुक्तव्यवहार करना होगा। उसे कोई सीमा ऐसी नही मानना चाहिये कि जिससे कोई रुकावट पैदा हो, सत्यकी खोजमे बाधा उत्पन्न हो। सत्यके खोजीको पुरानी बातोंका अनुगामी बनकर सत्यकी खोजमे नही बैठना होगा, वरन उसे निष्पक्ष दृष्टिसे सत्यका विश्लेषण करना होगा। उपर्युक्त दोनो बन्धनोंसे मुक्त होकर ही सत्य की खोज हो सकती है।

अब प्रश्न यह उठता है कि सत्यका स्वरूप क्या है? उसका उत्तर हमें, निम्नप्रकार समझना चाहिये। जिस प्रकार औषधिके लिये पूछने पर कि वह क्या है? हम कोई उत्तर नही दे सकते, परन्तु सापेक्ष दृष्टिसे औषधिका वर्णन करके यह बतला सकते हैं कि वह क्या है और किस रोगादिके लिये है; उसी प्रकार सत्यका वर्णन भी हम सापेक्ष दृष्टिसे कर सकते हैं। निरपेक्ष सत्यकी व्याख्या हम नहीं कर सकते।

सत्यकी उत्पत्ति उसी समयसे हुई जबसे भाषा की उत्पत्ति हुई है। झूठ बोलनेके लिये सत्यकी आवश्यकता नहीं, अक्लकी आवश्यकता है। पर, सत्य बोलनेके लिये अक्लकी कोई आवश्यकता नही। सत्य है विश्वासके लिये। और विश्वास है सत्यके लिये, सहयोगके लिये। इसलिये सत्यकी कसौटी भी यही है। वैज्ञानिक जगत्का सत्य है कि पृथ्वी गोल है, पर अभी हमें उसका विचार नहीं करना है। हमें तो मात्र उस सत्यको जीवनमें उतारना है जिससे सुख मिले—सन्तोष मिले, और विश्वास बढ़े, सहयोग बढ़े। इसी कसौटीको रखकर उसे हमे जीवनमें उतारना होगा।

हमे आज सत्यपर चलनेकी आवश्यकता है पर देश काल और परिस्थितिका खयाल रखकर ही। सत्य हमेशा शुद्ध वस्तु होती है। वह तत्व है, व्यवहारकी चीज नही। परन्तु उसकी विकृतावस्था ही व्यावहारिक वस्तु है। सत्य-तत्वकी हम खोज नहीं पा सकते परन्तु उसका विकृतावस्थामे जो तथ्यांश रहेगा उसका हम उपयोग कर सकते हैं।

सत्य महान आदर्श है। जिस प्रकार सूर्यके आसमान पर बैठे रहने पर भी उसकी किरनें जमीन पर पड़ने पर ही काम आती है उसी प्रकार सत्य भी है। सत्य जैसे समाजमे पड़ता है वैसाही उसका रूप हो जाता है। वेसाही व्यावहारिक सत्य हो जाता है। इसलिये सत्यकी विकृतावस्था व्यावरिक-सत्यही हुआ। उस व्यावहारिक सत्यमेसे ही हमें तथ्य–सत्य खेंच लेना होगा।

हमे ध्यानमे रखना चाहिये कि सत्यका अर्थ तथ्य नही है। सत्यका अर्थ है, जिसमे हमें जीवन मे शान्ति मिले। सत्यको रूपकमे यदि घटावें तो सत्य हमारा पिता है, अहिंसा माता है। सत्य कठोर है, अहिंसा कोमल है। जो हमे शान्तिकी ओर ले जावे वही हमारे लिये सत्य है। सत्यका काम बाहरसे कमाई करके लाना और अहिंसाका काम उसे सुरक्षित रखना है। इसीलिये हमें सत्यकी उपासना करना चाहिये। सत्यकी खोज करना चाहिये। पर उसके लिये घमंड मत करो। अपने में सर्वज्ञताका दावा मत करो।

सत्यकी कसौटी है—अहिंसा, शान्ति आदि। आजकी विद्वत्ता कलके लिये मूर्खता हो सकती है। किसी प्राचीन पद्धतिका विरोध करना मूर्खता नहीं है। उसके विरोधका तात्पर्य मात्र इतना ही है कि वह पद्धति आजकल अनुकरणीय नहीं। विवेक

सहित जन-कल्याणकी भावनासे, अहंकाररहित हो सत्यकी उपासना करनाही सत्यकी व्याख्या है। पूर्ण सत्य प्राप्त करनेका दावा करना मूर्खता है।

—भानुकुमार जैन।

इन्दौरमें नग्नविहारमें रुकावट।

ता० १३ अक्टूबरके कर्मवीर के संवाददाताके-कथनानुसार होलकर-सरकार-गजटमें आज्ञा प्रकाशित हुई है कि "कोई भी साधु नग्नावस्थामें शहर (इन्दौर) में नहीं निकल सकता। यदि कोई साधु नग्नावस्थामें आएँ तो उनके आनेके पूर्व ही उस धर्मके माननेवालोंको मजिस्ट्रेट या पुलिससे उनके बाहर निकलनेकी इजाजत लेलेनी होगी।" इस समाचार से जैनियोंमें असन्तोष फैल गया है। महाराजा साहब, प्रधान मन्त्री तथा अन्य मन्त्रियोंके नाम इस क़ानूनको उठा देनेके लिए तार भेजे गये हैं। एक डेप्युटेशन भी प्राइममिनिस्टर साहबकी सेवामें गया है। 'जगत्' के पाठक जानते हैं कि इसके पहिले भी नग्न-साधुओंके विहारमें कई जगह रुकावटें डाली गई हैं और उनके विरोधमें जरूरतसे ज्यादह आन्दोलन किये जा चुके हैं। निज़ाम राज्यमें जयसागरकी रुकावटकी बात अभी ताज़ी है। उसे दूर करनेके लिए ज़मीन-आसमान एक किया गया था। लखनऊके नामी वकील बा० अजितप्रसादजी इसके लिए हैदराबाद गये थे और उन्होंने जीतोड़ परिश्रम किया था वह रुकावट दूर भी होगई थी; परन्तु आखिर जयसागरने जैनधर्मकी कितनी प्रभावना की? वह एक औरतको लेकर भाग गया और अब पूनेमें उसी के साथ मौज करता है! मुनीन्द्रसागरकी लीलाओं से सभी परिचित हैं। पाँच छह वर्ष तक जैनजगत् इसके जघन्य चरित्रको सर्वसाधारणके सामने खोल खोलकर रखता रहा, फिर भी इसकी पूजा होती रही और गुजरातमें जब इसके नग्न-विहारमें बाधा उपस्थित की गई, तब फिर भी जैनसमाजने आसमान सिरपर उठा लिया। तार दिये गये, डेप्युटेशन भेजे गये, महात्मा गाँधी और सरदार पटेल आदि को कोसा गया और न जाने क्या क्या किया गया! उस समय स्वर्गीय रायबहादुर सेठ टीकमचन्दजी जैसे प्रभावशाली पुरुष भी उसके दर्शनके लिए गये। बड़े बड़े पंडितों और शास्त्रियों तकने उस अशिक्षित मूर्ख और चरित्रहीनको महाकवि, न्यायविद्यावाचस्पति जैसी पदवियाँ दे डालीं। परन्तु अन्तमें दमोह में उसका सारा कच्चाचिट्ठा प्रकाशित होगया। लोगों को ज़रा भी सन्देह न रहा कि वह एक नग्नमुनिके वेपमें पक्का धूर्त, पाखण्डी, व्यसनी और कदाचारी था। मुनीन्द्रसागरका ही एक शिष्य ज्ञानसागर था, जो कई वर्ष पहले कपड़े पहिन चुका है और अब बम्बईमें सट्टा खेलता है। एक दूसरा ज्ञानसागर (सूवालाल गँगवाल) जिसके भ्रष्टाचारको देखकर मालवाके श्रावकोंने उसे कपड़े पहिना दिये थे, दूसरे प्रान्तमें जाकर फिर नग्न होगया है और मुनिराज बना फिरता है। ऐसी ऐसी घटनायें होती ही रहती हैं, मुनियोंके चरित्रकी शिकायतें आए दिन सुन पड़ती हैं, फिर भी जैनसमाज अपनी बेढंगी रफ़्तार नहीं छोड़ना चाहता। विवेकसे काम लेना शायद वह जानता ही नहीं। हम यह जानते हैं कि इन्दौर स्टेटमें जैनोंका काफ़ी प्रभाव है। वहाँके प्राइममिनिस्टर स्वयं जैन हैं, इसके सिवाय रावराजा सरसेठ हुकमचन्दजी, लीगल रिमम्ब्रेंसर मुंतज़िमबहादुर ला० जौहरीलालजी मित्तल आदि भी बड़े प्रभावशाली हैं। इसलिए होल्कर-दरबारकी उक्त आज्ञा के रद्द होनेमें विशेष कठिनाई नहीं होगी, वह अवश्य रद्द हो जायगी या उसमें उचित संशोधन कर दिया जायगा। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या वास्तवमें ही वह आज्ञा अनुचित है? जब कि हरएक सम्प्रदायमें सिंहकी खाल ओढ़कर घूमते हुए शृगालोंकी कमी नहीं है, सच्चे तपस्वी विजितेन्द्रिय वीतराग साधु बहुत ही विरल हैं, तब यदि एक राज्य उनके नियन्त्रणके लिए, अपने नागरिकोंके कल्याणके लिये इस प्रकारकी आज्ञा जारी करता है, तो क्या बुरा?

करता है ? केवल जैनसाधुओंको लक्ष्यमें रखकर ही उक्त आज्ञा जारी की गई हो, सो भी नहीं है। जैनेतरोंके साधु भी नग्न रहते हैं। इस समय तो यह आम रिवाज होरहा है—भले ही यह शास्त्रीय न हो—कि जैनमुनियोंके आनेकी सूचना प्रत्येक नगरवालों को पहले ही मिल जाती है। ऐसी दशामें उनके शहर में आनेके सम्बन्धमें बिना किसी अड़चनके आज्ञा ली जा सकती है। हमारी समझमें इससे तो एक तरहका लाभ ही होगा। वह यह कि जयसागर, ज्ञानसागर जैसे चरित्रभ्रष्ट साधु यदि आना चाहेंगे तो न आ सकेंगे। पर जो साधु सच्चरित्र और तपस्वी हैं, वे बिना अड़चन आ सकेंगे—उनके लिए आज्ञा मिल जायगी। ऐसी दशामें उक्त आज्ञा का विरोध करनेकी क्या आवश्यकता है ? हमारी समझमें इस प्रश्नपर कुछ ठंडे मस्तकसे विचार किया जाना चाहिये। —सुधारक।

विरोधी मित्रोंसे।

(२५)

आक्षेप (८८)'त्रिकाल त्रिलोकके प्रत्यक्षके बिना सर्वज्ञका अभाव सिद्ध नहीं किया जासकता'। यह कथन सिर्फ प्रत्यक्षकी अपेक्षासे है। जैनाचार्य यह नहीं कहते कि 'त्रिकाल त्रिलोकके प्रत्यक्षके बिना अनुमान वगैरहसे भी हम कुछ निर्णय नहीं कर सकते'। इसलिये आपका यह खंडन व्यर्थ है।

समाधान—यदि जैनाचार्योंका यह कहना नहीं है तो उनका यह खंडन नहीं कहलाया। जिनका यह कहना है उनके लिये तो यह खंडन ठीक है। मुझे किसी खास आचार्यका या खास कृतिका खण्डन नहीं करना है किन्तु जिस किसीका भी यह वक्तव्य हो उसका खण्डन करना है। आजकल ऐसे बहुतसे अर्धदग्ध लोग हैं जो ऐसी ऐसी कुयुक्तियोंसे ही सर्वज्ञसिद्धि मान बैठते हैं। दूर जानेकी जरूरत नहीं है। अभी ता० १-११-३४ के जैनमित्र* में एक ब्रह्मचारी कहलाने वाले भाईने इसी ढंगकी युक्तिका उपयोग करके सर्वज्ञसिद्धि करना चाही है। बेचारेने अभीतक जैनजगत नहीं पढ़ा इसीलिये उसे इस प्रकार लिखनेका दुःसाहस हुआ है। इसप्रकार के दुःसाहसको रोकनेके लिये मुझे यह आलोचना लिखना पड़ी है। किसी बातका मैं खण्डन करता हूँ वह अगर जैनाचार्योंकी नहीं है तो इससे यही सिद्ध हुआ कि वह बात जैनाचार्योंकी नहीं है परन्तु इससे उसका खण्डन असत्य नहीं हो जाता। युक्त्याभासोंकी आलोचना की भूमिकामें मैंने साफ़ लिख दिया है कि "सर्वज्ञताके विकृत स्वरूपको सिद्ध करनेके लिये प्राचीन और नवीन लेखकोंने अनेक युक्त्याभासोंका प्रयोग किया है। सत्यकी खोजके लिये उन पर एक दृष्टि डाल लेना आवश्यक है।" मतलब यह कि आजकलके लेखकोंकी कुयुक्तियों का भी खंडन करना था इसलिये यह खण्डन किया।

दूसरी बात यह है कि अकलङ्क आदिने भले ही सर्वज्ञप्रकरणमें इस युक्त्याभासका उल्लेख न किया हो परन्तु इनके सिवाय और भी प्राचीन लेखक हैं जिनने सर्वज्ञप्रकरण पर बहुत कुछ लिखा है। वे भ्रमवश यह समझते हैं कि "सर्वज्ञ हुए बिना सर्वज्ञाभावकी प्रतीति नहीं होसकती है, सर्वज्ञाभाव अनुमानका विषय ही नहीं है।" बृहत्सर्वज्ञसिद्धिमें

---

* "पं० दरबारीलालजी कहते हैं कि सर्वज्ञ नहीं है किन्तु यह खुलासा नहीं किया कि इसी काल इसी क्षेत्र की अपेक्षा कहते हैं या सर्वक्षेत्र सर्वकालोंको लेकर कहते हैं। यदि इस क्षेत्र इस कालकी ही अपेक्षा कहते हों तो ऐसा हम भी मानते हैं, और जो सर्वक्षेत्र व सर्वकालोंमें सर्वज्ञका अभाव मानों तो यह धर्मादि द्रव्योंका प्राचीन भरतादि राजाओंके हालको बतानेवाला कौन था ? यदि भूत, भविष्य, वर्तमानके सर्वक्षेत्र सर्वकालको आप हो जानते तो फिर आप भी तो सर्वज्ञ हुए"।

पहिले भी कुछ भोले भाइयोंने इसी ढंगकी कुयुक्तियों का उल्लेख किया था।

* अनन्तवीर्यने इसी ढंगके विचार प्रगट किये हैं।

जब मैंने किसी खास आचार्यका या ग्रंथका नाम नहीं लिया है तब आक्षेपकको किसी खास आचार्यकी वकालत करनेकी कोई ज़रूरत नहीं थी। मैंने जो पूर्वपक्ष किया है वह किसका है, किस का नहीं इस विषयमें कुछ लिखनेकी ज़रूरत नहीं है। ज़रूरत सिर्फ यही है कि अगर कोई ऐसा पूर्व पक्ष करे तो मेरा उत्तर ठीक है या नहीं। आक्षेपकने मेरे उत्तरका तो खंडन नहीं किया किन्तु यह कहा कि यह जैनाचार्योंका कथन नहीं है। मैंने ऊपर बतलाया है कि कुछ जैनाचार्योंने ऐसा कथन किया है तथा वर्तमान लेखक भी करते हैं, इसलिये उसका खण्डन आवश्यक था।

कुछ लोग ऐसे होते हैं जो किसी बातको सिर्फ इसीलिये मान लेते हैं कि उसका अभाव सिद्ध नहीं होता। ऐसे लोगोंको यह समझाना ज़रूरी था कि अभाव अगर सिद्ध न भी हो तो भी इससे सर्वज्ञ सिद्ध नहीं हो जाता है, जैसा कि जैनमित्रमें लिखा गया है।

आक्षेप (८९) "यदि अभाव प्रमाणसे सर्वज्ञ का अभाव प्रमाणित किया जायगा तो सर्वज्ञका अस्तित्व ही सिद्ध हो जायगा। क्योंकि बिना सर्वज्ञ के अस्तित्वके इसके विषयमें अभाव प्रमाणकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती।......सर्वज्ञका अभाव कालत्रय और लोकत्रयमें करना है अतः इनका ज्ञान और सर्वज्ञ का स्मरण हुए बिना सर्वज्ञके सम्बन्धमें अभाव प्रमाण कैसे हो सकता है।" आपने शास्त्रकारके इस कथनकी परवाह नहीं की और उसको एक दम बदल दिया।....

समाधान—आक्षेपकको यह भ्रम होगया है कि मैंने अमुक पुस्तकके साम्हने रखकर सर्वज्ञ खण्डन किया है। इसलिये वे बारबार यह दुहाई दिया करते हैं कि यह कथन आचार्योंका नहीं है: आदि। परन्तु उन्हें समझना चाहिये कि मैं यहाँ किसी ग्रंथ या आचार्यका खण्डन करने नहीं बैठा हूँ, किन्तु सर्वज्ञकी सिद्धिके विषयमें जो जो बातें कही गई हैं कही जाती हैं और कही जासकती हैं उनका खंडन करने बैठा हूँ। तीसरा युक्त्याभास—जिसका कि मैंने खण्डन किया है—एक निर्बल कुयुक्ति है। आप को इसके समझनेमें भी भूल हुई है कि वह मार्तण्ड के अभाव प्रमाण वाले उद्धरणका परिवर्तित रूप है। वह पूर्वपक्ष अभाव प्रमाणसे नहीं, अनुमानसे सम्बन्ध रखता है।

हाँ, अभाव प्रमाणका उल्लेख करके आपने एक नये पूर्वपक्षका उल्लेख अवश्य कर दिया है, जिसका खण्डन मुझे यहाँ कर देना चाहिये।

प्रश्न यह है कि क्या सर्वज्ञके अस्तित्वके बिना अभाव प्रमाणकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती? यदि ऐसा होता तब तो खरविषाणके अस्तित्वके बिना खरविषाणमें भी अभाव प्रमाणकी प्रवृत्ति न होना चाहिये। इसप्रकार किसी भी वस्तुका अभाव सिद्ध न किया जासकेगा। फिर तो खरविषाण, खपुष्प, वंध्यापुत्र आदि सभी वस्तुएँ सिद्ध हो जावेंगी। इसी ढंगसे अगर सर्वज्ञ सिद्ध करना है तो यह सिद्ध न करनेसे भी बुरा है।

यद्यपि जैनन्यायमें अभाव प्रमाण नहीं माना जाता किन्तु यहाँ तो अभाव प्रमाणको मानकर ही उसका उल्लेख हुआ है। इसीलिये मैंने भी मानकर उसका उल्लेख किया है।

यदि कहा जाय कि खर और विषाण इनको अलग अलग जानकर खर विषाणकी कल्पना की जाती है फिर उसका स्मरण होजाता है। इसप्रकार खरविषाणमें अभाव प्रमाणकी प्रवृत्ति होजाती है तो इसीप्रकार सर्व + ज्ञको अलग अलग जानकर उसकी कल्पना हो जायगी। इसप्रकार उसका स्मरण होकर वहाँ भी अभाव प्रमाणकी प्रवृत्ति होगी। मतलब

* अनुमानेनापि सर्वज्ञाभावप्रतिपत्तिर्नासर्वज्ञस्य कल्प्यते। तथाहि—न तावदनुमानादसर्वज्ञस्य सर्वज्ञाभाव प्रतीतिर्युक्ता। अनुमानं हि ज्ञात संबधस्यैकदेश दर्शनादेकदेशांतरेऽसंनिकृष्टेऽर्थे बुद्धिः न चासर्वज्ञत्वे।

यह कि खरविषाणके अभाव सिद्ध करनेके लियेजिस प्रकार वहाँ अभावप्रमाणकी प्रवृत्तिमें कोई बाधा नहीं है उसीप्रकार सर्वज्ञके विषयमें भी अभाव प्रमाणकी प्रवृत्तिमे कोई बाधा नहीं है।

मुनि सुधर्मसागरके पराक्रम—पं० नन्दनलालने पंडिताई की, वैद्य बने, क्षुल्लक ज्ञानसागर बनकर सूर्यप्रकाश और चर्चासागरको प्रकट करके जैनसाहित्यको कलंकित किया और फिर दिलकी आग निकालनेको सुधर्मसागर मुनि भी बन गये! आप फरमाते हैं कि "मैं तेरहपंथ और बाबूपार्टीका नाश करनेके लिए मुनि बना हूँ।" मगर उन्हें खबर नहीं है कि दिल्ली दूर है। जब भट्टारकोंका दौरदौरा था, तबभी तेरहपंथका बाल बाँका नहीं हो पाया, तो सुधर्मसागर बेचारे क्या चीज हैं? मुझे भय है कि कहीं ऐसे वेषधारियोंकी कषायपुष्टिको लेकर प्रशान्त जैनसमाजमें तेरह बीसकी आग न सुलग उठे! सुधर्मसागर दुराग्रहपूर्वक लोगोंके मनको दुखाकर पंचामृताभिषेक कराते हैं! फूलोंसे भगवानको पूज देते हैं! चन्दन और इत्रका लेप प्रतिमा पर कराते हैं! और खाजा पूरी बर्फी खीर वगैरह चढ़वाते हैं! एक जैनी भाई उदयपुरसे लिखते हैं कि "सुधर्मसागरके दुराग्रहसे तेरहपंथी भाई बहुत दुखी हैं। वे हमारी मान्यताको मिट्टीमें मिला रहे हैं"। उदयपुरके निष्पक्ष नेताओंको इस ओर ध्यान देना चाहिए और सुधर्मसागरकी दुराग्रहपूर्ण प्रवृत्तियोंको रोकना चाहिए। अन्यथा इसका परिणाम भयानक आने वाला है।

—परमेष्ठीदास जैन।

'वीर' साप्ताहिक होगया—श्री भारत दिगम्बर जैन परिषदका मुखपत्र "वीर" पाक्षिकसे साप्ताहिक होगया है। वार्षिक मूल्य वही ३) रहेगा। देशविदेशके ताजे समाचार प्रकाशित करनेका भी प्रबन्ध किया गया है। —प्रकाशक "वीर" मल्हीपुर (सहारनपुर)

"जयप्रकाश पारितोषिक फंड"—'जैनप्रदीप' के सम्पादक श्रीमान बा० ज्योतिप्रसादजी जैनने अपने स्वर्गीय भ्राता श्री जयप्रकाशके स्मारक स्वरूप ५००) दानकर "जयप्रकाश पारितोषिक फन्ड" स्थापित किया है जिसके ब्याजसे उत्तीर्ण विद्यार्थियों को पारितोषिक दिया जाया करेगा।

"जैनशिक्षण सन्देश"

गत विजया दशमीपर श्री जैन गुरुकुल ब्यावर ने महोत्सव मनाया। इस अवसर पर जैनसमाजके अग्रगण्य विद्वान पं० बेचरदासजी न्याय व्याकरण तीर्थकी अध्यक्षतामें जैनशिक्षण परिषद् भी हुई थी। इस परिषद्की ओरसे 'जैनशिक्षण सन्देश' नामक पत्र शीघ्र ही प्रकाशित होगा। सम्पादक श्री शोभाचन्द्र भारिल्ल न्यायतीर्थ तथा श्री शान्तिलाल वनमाली न्यायतीर्थ नियत हुए हैं। प्रत्येक शिक्षा संस्था और प्रत्येक माता-पिताके लिये यह पत्र अत्यन्त उपयोगी होगा। जल्दी ग्राहक बनिये। मूल्य, प्रचार के उद्देश्यसे, सिर्फ एक रुपया रखा गया है।

पता- धीरजलाल के. तुरखिया,
मन्त्री, शिक्षण परिषद्
ठि० जैन गुरुकुल, ब्यावर (राजपूताना)

ब्यावर गुरुकुलका नया टर्म।

जैन गुरुकुल ब्यावर जैनसमाजमें बौद्धिक और मानसिक शिक्षा देनेवाली एक सुप्रसिद्ध शिक्षा-संस्था है। प्रत्येक सन्तानहितैषी माता-पिताका कर्त्तव्य है कि वह ऐसे गुरुकुलमें अपने बालकको भेजकर विद्वान् सदाचारी और बलिष्ठ बनावें। गुरुकुलमें नया टर्म प्रारंभ होने वाला है। जो छात्र अंग्रेजीके साथ हिन्दीकी तीसरी कक्षा उत्तीर्ण हो, बुद्धिमान तथा निरोग हो, उसे शीघ्र भेजिये। मासिक भोजन व्यय ५) ७) अथवा १०) शक्ति अनुसार लिए जाते हैं। वस्त्र और पुस्तकोंका खर्च अलग है। शिक्षा, स्थान आदिका व्यय गुरुकुल उठाता है। कार्त्तिक शुक्ला १५ तक छात्र प्रवेश किए जायेंगे।

—अधिष्ठाता, श्रीजैन गुरुकुल, ब्यावर।

Printed by Pt. Radhaballabh Sharma, at the Ajmer Printing Works, Ajmer.